हाइड्रोजन गैस बनना

समपादन कुण्डलकी

→आव टीजन

श्रीगणेशाय नमः

अथ

श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण

विषयानुक्रमणिका

प्रथम-बालकाण्ड

तृतीय-अरण्यकाण्ड

चतुर्थ किष्किन्धाकाण्ड

पंचम सुन्दरकाण्ड

षष्ठ युद्धकाण्ड

* विषयानुक्रमणिका *

उत्तरार्द्ध

सप्तम उत्तरकाण्ड पूर्वार्द्ध

* विषयानुक्रम[illegible]

उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध

॥ विषयानुक्रमणिका समाप्त ॥

श्रीगणेशायनमः

श्रीमद्वाल्मीकीय मुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा

प्रथम बालकाण्ड

पहला सर्ग

(श्रीवाल्मीकिजीके प्रश्न पर देवर्षि नारदजी द्वारा मूलरामायण वर्णन)

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि, जब अपने समाधि आदि तपोनुष्ठानसे अलौकिक कवित्त्व-शक्ति प्राप्त करचुके और जब इस प्रकार उन्हें अनन्य पुण्य-समूहकी प्राप्ति हो गई, तब वे किसी एक सर्वोत्कृष्ट विषयका वर्णन करने की इच्छा करने लगे। इसपर भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर देवर्षि नारदजीको वाल्मीकिजीके पास भेजा। जब नारदजी वाल्मीकिजीके पास आ गए, तब महर्षि ने आतिथ्य-क्रियाकर आसन दे उन्हें बैठाया और स्वयं भी उनके समीप बैठ कुछ कालतक परस्पर सम्भाषण करते रहे। तदन्तर, तप-स्वाध्याय-तत्पर, वेदज्ञ पुरुषोंमें श्रेष्ठ और मुनियों में उत्तम श्रीनारदजीसे तपस्वी ऋषि वाल्मीकिजीने पूछा—हे मुने! इस समय संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता, दृढ़व्रती, सुन्दर, चरित्रवान्, सब प्राणियोंका हितैषी, विद्वान्, सब शास्त्रोंका जाननेवाला, सर्वकार्य-समर्थ, एकही प्रियदर्शन, आत्मज्ञ, क्रोधको जीतनेवाला, कान्तिमान् और असूया-रहित अर्थात् किसीकी निन्दा न करने वाला, ऐसा कौन पुरुष है जिसके रणाङ्गणमें क्रोध करने पर देवता भी भयभीत हो जाते हैं? हे महर्षे! इसके सुननेकी कुतूहलपूर्वक मेरी बड़ी इच्छा है। आप इस प्रकारके नरको जाननेमें समर्थ हैं। तब वाल्मीकिजीके इस वचनको सुनकर, त्रिलोक-ज्ञाता नारद मुनिने उन्हें सम्बोधित कर कहा—सुनिये। फिर अपने मुखको उनकी ओर करके, संतुष्ट हो इस प्रकार कहने लगे—हे मुने! आपने जिन बहुत दुर्लभ गुणोंका कीर्तन किया है, उन गुणोंसे युक्त नरको मैं विचारकर कहता हूँ, सुनिये। वैवस्वत

म... वंशमें इ...कुवंशमें उत्पन्न हुए, एक ऐसे पुरुष हैं जो जनों में रामनाम से विख्यात हैं। वे नियतात्मा, महावीर्य, द्युतिमान्, धृतिमान्, वशी (सबके स्वामी या जितेन्द्रिय); बुद्धिमान्, नीतिमान् अर्थात् मर्यादा का पालन करने वाले, सुन्दर वक्ता, श्रीमान्, शत्रुहंता, उन्नत स्कन्धवाले, महाबाहु, कंबुग्रीव, महाहनु और सुन्दर ऊँची ठोढीवाले हैं। जो विशाल वक्षस्थलवाले और विशाल धनुषधारी हैं, जिनके गलेके नीचेकी दोनों हँसलियाँ मांस से छिपी हुई हैं, जो शत्रुके दमनकर्त्ता, आजानुभुज, सुन्दर शिर-ललाट-शोभित और गज-गतिवाले हैं। वे ही शरीर से सम (न अधिक ऊँचा न नाटा) तुल्य, एकाकार, पृथक्-पृथक् अङ्गवाले, स्निग्ध, देहके चिकने रंगवाले, मांसल वक्षःस्थलवाले, विशालनेत्र, लक्ष्मीवान् और शुभ लक्षण-संयुक्त हैं। वे धर्मज्ञ (प्रजापालनादि धर्म के ज्ञाता) सत्यसंध (सत्य-प्रतिज्ञ) प्रजाओंके हितमें तत्पर, श्रेष्ठकीर्तिवाले, ज्ञानसम्पन्न, सबको पवित्र करनेवाले, स्वयं पवित्र, जितेन्द्रिय और मनको एकाग्र रखनेवाले हैं। जो प्रजापति (ब्रह्मा) के समान, श्रीमान्, सर्व-पोषक, शत्रुहन्ता और प्राणिमात्र के रक्षक तथा धर्म के रक्षक हैं। शरणागत-रक्षकरूप, स्वधर्म-पालक तथा जो स्वजनोंके रक्षक, वेद, वेदाङ्गके ज्ञाता और धनुर्वेदमें एकमात्र निष्ठावाले हैं। जो सर्व-शास्त्र-तत्त्व-वेत्ता, सर्वदा धृतिमान्, प्रतिभाशाली, सर्वलोक-प्रिय, साधु, कृपणता-रहित और जो सब विषयोंके विलक्षण विद्वान् हैं। जैसे नदियों में समुद्र श्रेष्ठ है, वैसेही वे सर्वदा सत्पुरुषोंसे परिवारित आर्य अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ और सब शत्रुओं और मित्रोंके विषयमें समान और सर्वदा एकही प्रियदर्शन हैं। इस प्रकार वह सर्वगुण-सम्पन्न कौशल्यानन्द-वर्द्धन, गंभीरतामें समुद्रके समान और धैर्यमें हिमाचलके समान हैं। वे विष्णुके समान बलवान्, चन्द्रमाके समान प्रिय-दर्शन, क्रोधमें कालाग्नि और पृथ्वीके समान क्षमाशील हैं। उनका त्याग कुबेरके समान है, और सत्य-भाषणमें साक्षात् धर्मके समान स्थित हैं। ऐसे वे सर्वगुण-सम्पन्न तथा सत्पराक्रमी श्रीराम हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त, प्रजाके हितमें तत्पर और सब पुत्रोंमें ज्येष्ठ प्रिय पुत्र रामचन्द्रका राजा दशरथने, प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे प्रेमवश युवराजपद-युक्त करनेकी इच्छाकी। तब उन रामचन्द्रक के राज्याभिषेककी तैयारी देख, महामति दश-

रथकी भार्या कैकेयीने, अपने पूर्व पाये हुए वरोंको राज्य माँगा, जिसमें राम को बन-वास और भरतको राज्य माँगा। राजा दशरथ ने सत्य वचनके धर्म-पाशमें बँधकर प्रियपुत्र रामको बनवास दे दिया। वीर रामचन्द्र कैकेयीका प्रिय करनेके लिए पिताकी आज्ञासे वनको चले गये। तब सुमित्रानन्द-वर्द्धन, विनय-शील लक्ष्मण जो अपने बड़े भाई रामको बहुतही प्रिय थे, उनसे न रहा गया और अपने सुवन्धुत्वका परिचय देते हुए, स्नेह-वश वनको जानेवाले अपने भाईके पीछे चले। फिर जनकके कुलमें उत्पन्न सीताभी जो अवतीर्ण हुई देवमायाकी भाँति सुन्दरी, सर्व लक्षण-सम्पन्न, नारियोंमें उत्तम वधू और रामकी प्रिय भार्या, नित्य प्राण-तुल्य हितकारिणी और नित्य रामके प्राण-रक्षणमें सावधान रहा करती थी; रामचन्द्रके पीछे चली, जैसे चन्द्रमाके पीछे रोहिणी चलती है। समस्त पुरवासीजन तथा राजा दशरथ बहुत दूर-तक उनके पीछे-पीछे गये। फिर शृङ्गबेरपुरमें अपने प्रिय निषादराज गुहके पास पहुँचकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रने सूतको (सारथिको) विदा कर दिया। फिर लक्ष्मण, सीता और गुह सहित रामचन्द्र बहुत जलवाली नदी गंगाको उतरकर सबके सहित एक वनसे दूसरे वनमें जाकर, पश्चात् भरद्वाज-जीसे मिलकर उनकी आज्ञा ले चित्रकूट चले गए, जहाँ रमणीक पर्णशालाकी कुटी बनाकर तीनों व्यक्ति बनमें विचरने लगे। कितनेही काल तक देव-ताओं और गन्धर्वोंके समान प्रकाशित रामचन्द्र, वहाँ सुखपूर्वक वास करने लगे। जब रामचन्द्र चित्रकूट पर विराजमान् हुए, तब पुत्र-शोकसे व्याकुल राजा दशरथ पुत्रोद्देश्यसे "हा पुत्र" इस प्रकार विलाप करते हुए स्वर्गगामी हुये। उनके स्वर्गगमन के पश्चात् वशिष्ठादि ब्राह्मणोंके द्वारा राज्यके लिए नियुक्त किए जाने पर भी महावली भरतने राज्यकी इच्छा न की और राम-चन्द्रके चरण-सेवक बने, वे वीर राम की प्रसन्नताके लिए वनमें उनके पास पहुँचे। बनमें जाकर भरतने पूज्य पुरुषोंकी मर्यादाको आगे किया और आर्यभावसे सत्पराक्रमी रामचन्द्रके समीप जा अपने इष्ट मनोरथकी याचनाकी, तथा रामचन्द्रसे यह कहा कि, हे धर्मज्ञ ! राजा तो आपही हैं और ऐसे हैं कि, सुमुख परमोदार और बड़े ही यशस्वी। परन्तु महावली रामचन्द्रने पिताके आदेश के आगे राज्य की इच्छा न की, और राज्यार्थ अपनी प्रतिनिधि-

रूप पादुका (......) भरतको देकर उन्हें बारम्बार आग्रह करके लौटा दिया। भरत अपने मनोरथको न पाकर रामचन्द्रकी दोनों पादुका ले, उसकी नित्य सेवा करते हुए, रामचन्द्रागमन की आशा से नन्दिग्राम में राज्य करने लगे। भरतके चले जाने पर सत्यसंध, जितेन्द्रिय श्रीमान् रामचन्द्रने चित्र-कूटमें नगर-निवासियोंका आना-जाना देखकर (उनसे बचने के लिए) साव-धान हो दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। उस महावनमें पहुँचकर कमललो-चन श्रीरामचन्द्रने विराध नामक राक्षसको मारकर शरभंग मुनिका दर्शन किया। फिर सुतीक्ष्ण और अगस्त्य तथा अगस्त्य मुनिके भ्राता के दर्शन किये, और अगस्त्य मुनि के वचनोंसे परम प्रसन्न हो इन्द्रधनुष, खड्ग और अक्षय बाणवाले दो तूणीरोंको बड़े ही प्रेमसे ग्रहणकर उस वनके वनचारी जीवोंके साथ निवास किया। एक दिन उस वनमें, समीपके कबंधादि असुरों तथा खर, दूषण आदि राक्षसोंके बधके लिए बहुतसे ऋषि रामचन्द्र-के पास आये। तब उस समय रामचन्द्रने वनमें उन ऋषियोंसे, उन राक्षसों-के बधकी प्रतिज्ञाकी। रामने उन अग्निके समान देदीप्यमान दण्डकारण्य-वासी ऋषियोंको युद्धमें राक्षसोंको मारनेका वचन दिया। युद्धमें राक्षसोंके बधकी प्रतिज्ञाकी। उसी दण्डकारण्यमें वास करते हुए उन रामचन्द्रने जन-स्थान में वास करनेवाली, कामरूपिणी सूर्पणखा नामक राक्षसीके नाक कान छेदन कर उसे विरूप कर दिया। सूर्पणखाको विरूप करनेके पश्चात् जब उसके वाक्योंसे, सब राक्षस युद्धको उद्यत हुए तब खर, त्रिशिरा और दूषण नामक राक्षसोंका उनके सब अनुचरों सहित युद्धमें रामचन्द्रने संहार किया। इस प्रकार उस वनमें निवास करनेवाले चौदह सहस्र राक्षस मारे गये। तत्पश्चात् खर, दूषण आदि बंधुजनोंका बध सुनकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया। उसने मारीच नामक राक्षससे सहायता माँगी। मारीचने, इस प्रकार बहुत बार मना किया कि, हे रावण! बलवान् रामचन्द्रके साथ तुम्हें विरोध करना उचित नहीं। तथापि काल-प्रेरित रावण मारीचके वाक्यका निरादरकर, उसे साथले रामचन्द्रके आश्रमपर गया और जब उनकी पर्णकुटी के निकट पहुँचा, तब उस मायावीने अपना सुवर्णका रूप कर लिया। कनक-मृग बन गया। फिर तो उन दोनों नृप-पुत्रों को दूर लेजाकर अपना प्राण

त्याग कर दिया। तब अवसर पाकर रावणने सीताको साथ ले अपना मार्ग पकड़ा। मार्गमें सीताका रुदन सुन जटायुने रोका। रावणने जटायु नामक गृध्रको मारकर रामकी भार्याका हरण कर लिया। जब मारीचको मार लक्ष्मण सहित रामचन्द्र पर्णशाला पर लौटे तो वहाँ सीताको न देखकर बहुत ढूँढ़ने लगे। कुछ आगे जाने पर मार्गमें मारे हुए गृध्रको देख और रावण द्वारा मैथिलीका हरण सुनकर इन्द्रियोंसे व्याकुल और शोक-सन्तप्त हो राघव विलाप करने लगे। उसी शोक में उन्होंने जटायुका दाह किया। फिर वनमें सीताको खोजते हुए, उन्होंने बहुतसे राक्षसोंको भी देखा और एक विकरालरूप, घोर-दर्शन जो कबंध नामक राक्षस पर उनकी दृष्टि पड़ी तो उसे भी मारकर उन महाबाहु रामचन्द्रने उसका भी दाह किया। तब स्वर्ग जाते हुए उस कबंधने यह कहा कि, हे राघव! आप धर्म-निपुण श्रमणी अर्थात् परिव्राजकरूप चतुर्थ आश्रमको प्राप्त धर्मचारिणी शबरीके आश्रम पर जाइए जो यहाँसे थोड़ीही दूरपर है। तब महातेजस्वी शत्रु-नाशक रामचन्द्र शबरीके आश्रम पर गये। शबरीने उनकी पूजाकी। फिर दशरथ-सुत रामचन्द्र वहाँसे पम्पासरको गये। वहाँ उनकी हनुमान् नामक वानर से भेंट हुई। फिर हनुमान्के वचनसे सुग्रीवसे मिले। तब महाबली रामने आद्योपांत सब वृतान्त विशेषकर सीताका वृतान्त सुग्रीवसे कहा। रामचन्द्रके उस वृतान्तको सुनकर सुग्रीवने अग्निको साक्षी कर प्रसन्न हो रामसे मयत्रीकी। तदन्तर दुःखित हो वानरराज सुग्रीने स्नेह पूर्वक बालि-बिरोधका सम्पूर्ण अनुकथन रामचन्द्रसे निवेदन किया। रामने बालि-बधकी प्रतिज्ञा की। तब सुग्रीवने बालिके बलका वर्णन किया। क्योंकि उसे रामके बलके विषयमें नित्य शंका थी। इससे उसने रामकी परीक्षाके लिए दुन्दुभि दैत्यका पर्वताकार शरीर दिखाया। उसे देखकर महाबाहु अमितबली रामने "यह कितना है" ऐसा निरादरकर बाँयें पैरके अंगूठेकी ठोकरसे उसके सारे शरीरके ढेरको दश योजन पर फेंक दिया। फिर उसी समय विश्वासोत्पत्तिके लिए उन्होंने एकही वाणसे सात तालवृक्षों और उनके समीपवर्ती पर्वत और रसातलको भेद दिया। रामके इस कार्यसे महाकपि सुग्रीव मनही-मन प्रसन्न हुए और उन्हें राम पर विश्वास हो गया। फिर प्रसन्नचित्त हो, महाकपि सुग्रीव उसी

समय उनके साथ किष्किन्धा गुहाको गमन किये। वहाँ पहुँचकर सुवर्ण के समान पिङ्गलवर्णवाले कपिश्रेष्ठ सुग्रीवने गर्जना की। तब उस नादको सुनकर कपीश्वर बालि घरसे निकल बाहरकी ओर चला। उस समय मना करती हुई ताराको समझाकर, उसने सुग्रीवसे आकर युद्ध किया। उस युद्धमें राघवने एकही बाणसे बालि को मार दिया। बालि को मार रामचन्द्रने उसके राज्यपर सुग्रीवको बिठाया। तब बानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवने जनकात्मजाकी खोज करनेके लिए सब बानरोंको बुलाकर उन्हें ढूँढ़नेके लिए भेजा। हनुमान संपाति नामक गृध्रके वचनसे सौ योजन विस्तृत खारे समुद्रको लाँघ गये। उन्होंने रावण—पालित लंकापुरीमें पहुँचकर अशोकवाटिकामें बैठी सीताको देखा जो रामचन्द्रका ही ध्यान कर रही थीं। हनुमान्ने रामचन्द्रके अंगूठीरूप चिन्हको निवेदनकर तथा रामचन्द्रकी कुशलवार्ता आदि कहकर वैदेही का समाधान किया अर्थात् सब प्रकार धैर्य दिया और अशोकवाटिकाके वहिर्द्वारको चूर्ण कर डाला। फिर पाँच प्रधान सेनापतियों और सात मन्त्रि—पुत्रोंको मारकर शूर अक्षयकुमार नामक रावणके पुत्रको भी चूर्णकर, इन्द्रजीतके चलाए ब्रह्मास्त्रसे बन्धनको प्राप्त हुये। यद्यपि वे प्रयत्न के ब्रह्मास्त्रसे मुक्त थे, तथापि ब्रह्माके वरदानसे, उसे जानकरभी अपनेको बँधा-मान हुये और राक्षसों द्वारा इधर-उधर खिंचते हुए भी वीर हनुमान् उनकी यन्त्रणाओंको सहन कर रहे थे। फिर तो एक मिथिला-राजसुता सीताके स्थानको छोड़कर महावीरने सम्पूर्ण पुरीको जला दिया और रामचन्द्रजीसे सीता-दर्शनरूप प्रिय आख्यान कहनेके लिए लौट आये। अमित बुद्धिशाली वीर हनुमान्ने वहाँ जाकर रामचन्द्रकी प्रदक्षिणाकर सम्मुख स्थित हो, यह सत्य समाचार निवेदन किया कि, हे भगवन्! मैंने सीता देखी। तत्पश्चात् भगवान् राम सुग्रीवके साथ महोदधि समुद्रके तट पर गये और उन्होंने अपने सूर्यके समान प्रकाशित वाणों से समुद्रको क्षुब्ध कर दिया। तब नदियोंका स्वामी समुद्र अपनारूप धारणकर उनके सामने आया, समुद्रके वचनसे रामने बानर नलके द्वारा सेतुकी रचना कराई और उसी सेतुरूप मार्गसे लंकापुरीमें जाकर युद्धमें रावणको मारा। सीताको पाकर फिर रामचन्द्रको बड़ी लज्जा हुई। तदन्तर राम भरी सभामें उस पतिव्रता सीतासे मर्मभेदी वचन कहने लगे।

तब इस बातको न सहनकर सती सीताने अग्नि-प्रवेश किया। पश्चात् अग्निके वचनसे उन्होंने सीताको दोष-रहित जाना। महात्मा राघवके इस महान् कर्मसे देवर्षिगणों सहित चराचर सम्पूर्ण त्रैलोक्य संतुष्ट हो गया। फिर लंकाके राज्य पर विभीषणको अभिसिक्त कर रामचन्द्र कृतकृत्य और शोक-रहित हो गये। सब देवताओं से वर पाया। फिर रामचन्द्र संग्राममें मरे हुए वानरोंको सम्यक्-प्रकारेण जिलाकर, विभीषण आदि सुहृदों सहित पुष्पकविमानमें बैठ अयोध्याके लिए प्रस्थित हुये। मार्गमें भरद्वाज मुनिका आश्रम आया। वहाँ पहुँचकर सत्य पराक्रमी रामचन्द्रने भरतजीके पास हनुमान्‌को भेजा। फिर सुग्रीव सहित आख्यादिका (पूर्व वृतान्त) कहते हुए, वे पुष्पकविमानसे नन्दिग्रामको चले। नन्दिग्राममें पहुँच माताओं सहित रामचन्द्रने जटा त्यागकी और सीता सहित फिर राज्यमें स्थित हुये। सारे लोकोंमें आनन्द छा गया। लोग प्रसन्न, सुखी, सन्तुष्ट, पुष्ट, सुन्दर, धर्माचरण करनेवाले, शरीर-रोगरहित, आरोग्य अर्थात् मानसिक-व्यथा-रहित और दुर्भिक्ष-भय-रहित हो गये, जिसका यह भविष्य हुआ कि, राम-राज्यमें कोई पुरुष पुत्र-मृत्यु न देखेगा और स्त्रियाँ भी सदा सुहागिन और पतिव्रता होंगी। न अग्निका भय होगा और न जीव जलमें डूबेंगे, न वायुजन्य भय होगा, न ज्वरका, न क्षुधाका, न चोरका, सभी नगर और राष्ट्र धन-धान्यसे युक्त होंगे। सतयुग की भाँति सभी प्रसन्न रहेंगे। महायशस्वी श्रीरामजी बहुत-सी-दक्षिणावाले सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ करके, यज्ञ-पुरुष का भजन करते हुए, दश हजार करोड़ गौवें तथा असंख्य धन ब्राह्मणोंको देंगे। सैकड़ों राजवंशोंकी स्थापना करेंगे। लोकमें चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्म में लगावेंगे। फिर ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करके रामचन्द्र ब्रह्मलोकको प्रस्थान करेंगे। यह राम-चरित्र वेदों के समान पवित्र, पाप-नाशक और पुण्यदायक है। जो पुरुष इसका पाठ करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा। इस आयुकारक रामायणरूप आख्यानको पढ़ता हुआ मनुष्य पुत्र-पौत्रों और बन्धु, भृत्यगणों सहित सर्वदा सुखी रह, परलोक-गमनपर स्वर्ग-सुखको प्राप्त होता है। यदि ब्राह्मण इस संक्षिप्त रामायणका पाठ करता है, तो वह वाणीकी श्रेष्ठताको प्राप्त होता,

क्षत्रिय भूमि-पति होता, वैश्य अपने व्यवहार-वृत्तिसे लाभ प्राप्त करता और शूद्र महत्वको प्राप्त करता है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

दूसरा सर्ग

क्रौञ्च-वधसे कुपित वाल्मीकिका व्याधको शाप और श्लोकोत्पत्ति।

देवर्षि नारदजीके इन वचनों को सुनकर, वाक्य-विशारद धर्मात्मा वाल्मीकिजीने शिष्यों सहित उन महामुनिकी पूजा की। तब वाल्मीकिजीसे यथोचित पूजित हो, उनसे संभाषण कर, विदा ले नारदजी देवलोकको चले गये। उनके चले जानेके पश्चात् वाल्मीकिजी क्षण भर अपने आश्रममें रहे और पुनः गंगाके निकटवर्ती तमसा नदीके तटपर चले गये। वहाँ जाकर वे मुनि नदीके अवतरण स्थानको कर्दम (कीचड़) विहीन देखकर अपने समीप खड़े शिष्यसे यह कहने लगे—हे वत्स भरद्वाज ! देखो, यह अवतरण स्थान कैसा कर्दम (कीचड़) शून्य और रमणीय है तथा इसका जल सज्जनों के चित्त के समान ही निर्मल है। जो हो, हे तात ! तुम कलश रखकर मुझे वल्कल दो। मैं इस उत्तम तमसा तीर्थ में स्नान करूँगा। महात्मा वाल्मीकिजीने जब यह कहा, तब गुरुके अनुगत शिष्य भरद्वाजने गुरु-मुखसे यह वाक्य सुनकर उन्हें वल्कल दिया। जितेन्द्रिय वाल्मीकिजी शिष्यसे वल्कल ग्रहण कर, तटेस्थित वनकी निविड़ता का इधर-उधर टहलकर अवलोकन करने लगे। तब उन्होंने उस वनके निकट एक उत्तम चकवा-चकवी (क्रौञ्च पक्षी) के जोड़े को सुस्वरसे गान करते और विचरते हुए देखा। इतने ही में एक महापापी, अकारण बैर करने वाले निषादने आकर वाल्मीकिजीके देखते-देखते उस जोड़ेमेंसे चकवेको मार डाला। उसको रुधिरमें डूबते हुए पृथ्वीमें लोटते देखकर, मृतक हुआ जानकर उसकी भार्या क्रौञ्ची अत्यन्त करुणासे रुदन करने लगी। नर पक्षीकी यह दुर्दशा देखकर धर्मात्मा मुनिको बड़ी दया आई। रोती हुई क्रौञ्ची का आर्तनाद सुनकर ऋषि कहने लगे, यह कार्य बड़ाही अधर्मजनक है और निषादसे बोले—'रे निषाद ! तुझे कभी भी शाश्वत शान्ति न मिलेगी'। क्योंकि तूने इस क्रौञ्चके जोड़ेमेंसे एकको, जो कामसे मोहित हो रहा था, निरपराध मार डाला।

वाल्मीकिजी व्याधको इस प्रकार शाप देकर बारम्बार यह चिन्ता करने लगे कि, मैंने पक्षीके लिए व्याकुल चित्त हो यह क्या कह डाला ? तब मुनि-पुङ्गव महर्षि मनही मन यह चिन्ता करते हुए अपने शिष्यसे बोले—हे वत्स ! शोकार्त्त हो जो यह श्लोक प्रवृत्त हुआ है, वह अन्यथा नहीं होगा, क्योंकि कि यह पादवद्ध अक्षर समस्त समान और तंत्री-लय समन्वित है। इसलिए यह श्लोकरूप होगा। वाल्मीकिजीके यह वचन सुन भरद्वाजने उनकी बड़ी प्रशंसाकी, जिससे मुनि परम सन्तुष्ट हुये। तदन्तर महामुनि उस उत्तम तीर्थ-में सविधि स्नानकर उसी विषयका विचार करते हुए आश्रमकी ओर लौटे। शास्त्राधिकारी विनीत शिष्यभी कंधे पर जलका भरा कलश लिए उनके पीछे आश्रमको लौटे। शिष्य सहित आश्रममें आ धर्मज्ञ वाल्मीकिजीने बैठकर नाना प्रकारके कथनोपकथन किए और ध्यान किया। उनके ध्यान करते ही सृष्टि-कर्त्ता, शक्तिमान्, महातेजस्वी, चतुर्मुख ब्रह्मा उनके सामने आये। ब्रह्माजी को देख ऋषि वाल्मीकिजी विस्मित हो, संयम सहित सहसा सविनय हाथ जोड़ उठ खड़े हुये। फिर पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुति द्वारा ब्रह्मदेवका अर्चन किया। फिर उनके चरणों में प्रणामकर कुशल पूछी और आसन पर बिठाया। ब्रह्माजीने आसन पर बैठकर वाल्मीकिजीकोभी बैठनेकी आज्ञादी। वाल्मीकि-जी आसन पर बैठ ध्यानमें क्रौञ्च-वधकी वार्ताका स्मरण कर मनही-मन चिन्ता करने लगे कि,—हा ! उस वनचारी पापी व्याधने कैसा पाप-कार्य किया ? उसने अकारणही अच्छे कंठवाले क्रौञ्चको मारा। इस आशयसे मुनि मनही-मन श्लोकका स्मरण करने और उस कहनेकी बातको मनही मन छिपाने लगे। तब प्रजापति ब्रह्माजीने हँसकर कहा—हे महामुने ! तुम्हारे कंठसे निकला हुआ निर्गुण वाक्य श्लोकरूप हो ख्याति-लाभ करेगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हे ब्रह्मन् ! मेरी इच्छासे ही तुम्हारे मुखमें सरस्वतीका आवि-र्भाव हुआ है। हे मुनिवर ! अब तुम शीघ्रही धर्मात्मा, गुणवान् और बुद्धि-मान् भगवान् रामचन्द्रका चरित्र वर्णन करो। नारदजीसे रामके संबंधमें जो कुछ सुना है, तदनुसार ही रहस्य—चरित्र और प्रकाशित चरित्र जगत्में प्रका-शित करो। इसी प्रकार लक्ष्मण और सीताका चरित्र तथा राक्षसोंका, गुप्त-प्रकट सब विषयोंका वर्णन करो। जिन बातोंको कोई नहीं जानता, तुम उनको

जाननेको समर्थ हो। मैं वर देता हूँ कि, इस काव्यमें तुम्हारी वाणीकी युक्ति मिथ्या न होगी, तुम इस रमणीय रामायणकी श्लोकोंमें रचना करो। साथही यह जान लो कि, संसारमें जब-तक जीव, पर्वत और नदियाँ रहेंगी, तब-तक तुम उच्च से उच्च मेरे लोकमें निवास करोगे। यह कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। शिष्य सहित वाल्मीकिजी परम आश्चर्यित हुये। फिर तो क्रमशः उनके सभी शिष्य इस श्लोकका बारम्बार गान करने लगे। जब वे गान करें, तब उनके सन्तोष और आश्चर्यकी सीमा न रहे। तब इस प्रकार समान-युक्त अक्षरोंवाले चार पदकी जो रचना वाल्मीकिजीने गानकी है, वह श्लोक नामसे कही गई। तब ज्ञानी महर्षि की यह इच्छा हुई कि समग्र रामायण इसी प्रकारके श्लोकों में बनावें। उदार असीम कीर्तिमान् वाल्मीकिजीने सुन्दर छन्द, उत्कृष्ट अर्थ और अच्छे पदोंसे युक्त सम अक्षरोंसे पूर्ण बहुतसे श्लोकाकारमें इस महाकाव्य की रचना की, जो उनका यशोवर्द्धन करनेवाला है। अब उसी सन्धि-समास-प्रकृति और प्रत्यय-साध्य, दोष-विहीन, मधुर-युक्त, प्रसन्नताका गुण अवलम्बन करनेवाला, ऋषिके कहे हुए राम-चरित्र को रावण-संहार सहित वृत्तान्तको सुनो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

रामायण-रचना

अब मुनीश्वर वाल्मीकिजीने, नारदजीसे धर्मार्थयुक्त, हितकर, जितना कुछ रामचरित्र सुना था, उसे फिर भली प्रकार जाननेको उत्सुक हुये। तब वे पूर्वकी ओर मुख कर कुशासनपर बैठ गए और यथाविधि आचमनकर हाथ जोड़, योग-बलसे तद्विषयक संध्या करने लगे। तब राम, लक्ष्मण, सीता तथा राजा दशरथ की कौशल्यादि रानियों और अयोध्याके राज्यनिवासियोंसे सम्बन्धित इन लोगों की जितनीभी बातें थीं—हास, परिहास, खेल, उन सबको इन मुनिराजने ध्यानमें प्रत्यक्षके समान देखा और जाना। सारी बातें वे प्रत्यक्षसी देखने लगे। सत्य-प्रतिज्ञ रामने लक्ष्मण और सीताके साथ बनमें जो कष्ट भोग किया था, वह सब देखने लगे। योगमें स्थित वाल्मीकिजीको समस्त कथा हाथमें आमलक फलकी नाईं दिखाई पड़ीं। इस प्रकार योगमार्ग

अवलम्बी महामती महर्षिने तत्त्वसे सब कुछ देखकर श्रुति-सुखद रामचरित्रका वर्णन करना आरंभ किया। जिस प्रकार रत्नाकर रत्न-समूहाधार है, इसी प्रकार रामायण भी मनोहर, श्रुति-सुखद और सन्दर्भपूर्ण है। इसमें धर्मार्थ, कामार्थ न्यूनता नहीं है तथा इसके अतिरिक्त इसमें और भी बहुतसे गुण भरे हुए हैं। इस ग्रन्थको जैसा पहले नारदजीने कहा था, महामुनिने उसीके अनुसार यह रघुवंश-चरित्र वर्णन किया है। इसमें राम-जन्म से लेकर वैदेही-वनवास तक के सारे प्रसङ्गोंका विषद् वर्णन है। साथही रामचन्द्रके राज्य-कालमें भूतल पर जो कुछ भविष्यमें हुआ, वह भी महर्षि द्वारा उत्तरकाण्डमें वर्णन किया गया है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग

राम-दरबार में लव, कुश का रामायण-गान

श्रीरामचन्द्रके सिंहासनारूढ़ होनेपर भगवान् ऋषि वाल्मीकिने विचित्र, पद-पूर्ण और अर्थ-संयुक्त रामचरित्र सम्बन्धी काव्य-रचना की। इसके कुल चौबिस हजार श्लोक ऋषिने बनाये हैं जिनमें पाँच सौ सर्ग और उत्तर सहित सात काण्ड हैं। भविष्य तथा उत्तर सहित समस्त रामायण पूर्ण कर लेने के पश्चात् वाल्मीकिजी इसके प्रकाशित होने की बात सोचने लगे। विज्ञानी कवितात्मक मुनि यह सोचही रहे थे कि, इतनेमें मुनि-वेषधारी लवकुशने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वे दोनों भाई धर्मके ज्ञाता, राजपुत्र यशस्वी, गान-स्वरयुक्त और आश्रमवासी थे। मुनिने देखा कि ये इस काव्य के ग्रहण करने योग्य हैं। क्योंकि जैसे वे बुद्धिमान् थे, वैसे ही वेद-निष्ठ भी थे। तब करुणामय मुनिने उनकी शक्ति देख विदितवेद्य होनेके लिए उन्हें इस काव्यको पढ़ाया। श्रेष्ठव्रती ऋषिने रावण-वध नामक सीता-चरित्र सम्बन्धी अपनी वह सम्पूर्ण रामायणरूप काव्य-रचना उन्हें पढ़ायी जो पढ़ने और गानेमें मधुर तीन प्रमाणोंसे, द्रुत, मध्य, विलम्बित सुन्दर अधिक ताल-लय-मिश्रित संगीत सहित स्वर-पूर्ण था और जिसमें शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर, बीभत्स, अद्भुत और शान्त, ये नवों रस विद्यमान थे, पढ़ाया। इसमें राम-सीताका रमण, शृङ्गार, राजा दशरथका विलाप इत्यादि करुण,

शूर्पणखाकी विरूपता इत्यादि हास्य और लक्ष्मण सहित हनुमान्‌के कर्म वीररससे पूर्ण हैं। रावण इत्यादिके काम रौद्र-रस, मारीचलीला भयानक रस, कबन्ध-वृतान्त इत्यादि बीभत्स, राम-रावण युद्ध अद्‌भुत-रस और श्रवण-सुखद होनेसे वह शान्त—रस भी है। तब ऐसे काव्यको दोनों गाने लगे। क्योंकि वे दोनों भाई गान-विद्यामें बड़े ही दक्ष और सब ताल, स्वर, लय आदिमें प्रवीण मानों गन्धर्वकी मूर्त्ति ही थे। उनका सुन्दर स्वर और सुलक्षण देखनेमें जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उठ जाता है, वैसे ही रामचन्द्रके समान ही उनकी देह से प्रकट हो रहा था। इस प्रकार उन अनिन्द्य दोनों भाइयोंने सर्व श्रेष्ठ रामायण ग्रन्थका अध्ययन किया और अपनी शिक्षा की निपुणता से पढ़ने तथा गींत गानेके कार्य में ऋषियों, द्विजातियों और साधुओंके समीप उनकी संगतिमें जैसा पढ़ा था वे दोनों तत्ववेत्ता सावधानीसे गाकर सबको संतुष्ट करने लगे। एक समय जब बहुतसे आत्मज्ञानी ऋषियोंका समाज बैठा था, तब सर्वलक्षण-संपन्न वे दोनों भाई बैठकर यह काव्य गाने लगे, जिसे सुनतेही सुननेवाले सब धर्मवत्सल मुनियोंके नेत्रोंमें जल भर आया, और वे विस्मययुक्त हो परम प्रेमसे 'धन्य हो-धन्य हो' कहकर उन गानेवाले लव-कुश बालकोंकी प्रशंसा करने लगे। उनमें कोई तो गानेवालोंकी ओर, कोई गीतोंकी मधुरिमा की, कोई गीत-रचनाके पांडित्यकी प्रशंसा करने लगे। क्योंकि चिरकालका हुआ भी यह उन्हें प्रत्यक्ष-सा दीखने लगा। इसी प्रकार ये दोनों भाई नित्य विष्णुकी सभामें प्रवेश कर इस काव्यका उत्तम गान करने लगे। तब उनके इस मधुर और उच्च-स्वरसे मनोहर-गानसे प्रसन्न होकर उन महातपस्वी ऋषियोंने उनकी प्रसंशा तो की ही, साथ ही किसी मुनिने प्रसन्न होकर उन्हें अपना कलश दे दिया, और किसी महातपस्वीने प्रसन्न होकर अपना वल्कल, किसीने मृगछाला, किसीने यज्ञोपवीत, किसीने कमण्डलु, किसीने भुजबंधन, किसीने आसन और किसीने कौपीन दे दी। इसी प्रकार किसीने प्रसन्न होकर कुठार, गेरुआ रँगा वस्त्र, चीर-वस्त्र, जटा-बंधन की डोरी, काष्ठ-संग्रहकी रस्सी, यज्ञपात्र, काष्ठभार और किसीने गूलरकी रस्सी दे दी। और जिन्होंने द्रव्यादि नहीं दिया, उनमेंसे किसीने स्वस्ति, किसीने प्रसन्न होकर दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार सत्यवादी

ऋषियोंने लव-कुशको वर दिया। सबने आश्चर्यित हो एक स्वरसे वाल्मीकिजी के अनुपम काव्यकी प्रशंसा की तथा यह कहा कि, यह काव्य कवियोंका आधार होगा। क्योंकि यह काव्य-क्रमसे समाप्त हुआ है। फिर जैसाही यह काव्य अद्भुत है, वैसाही गान-विद्या-कुशल इन दोनों भाइयोंने इसका मनोहर गान किया। यह आयु-वर्द्धक, पुष्टि-जनक और सुखोद्दीपक है। इस प्रकार दोनों भाई चारों ओर से अच्छी ख्याति संग्रह करने लगे।

एक दिन जब दोनों भाई अयोध्याके राजमार्गमें गाते हुए घूम रहे थे कि, इतनेमें जो रामचन्द्रजीने उन्हें देखा, तो कुश-लव दोनों भाइयोंको अपने गृहमें बुलालाये और बड़ा आदर कर बैठाया तथा स्वयं प्रभु सुवर्णके दिव्य सिंहासनपर आसीन हुये। उनके बैठतेही लक्ष्मण आदिक भ्राता और मंत्री भी उनके निकटही आकर बैठ गये। तब इन दोनों भाइयोंको रूपवान्, विनीत और बलवान् देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसे कहने लगे—"तुम इन देवताके समान तेजस्वी दोनों भाइयोंसे एक अपूर्व आख्यान सुनो।" ऐसा कह उन्होंने इन दोनों भाइयोंको गानेकी आज्ञादी। दोनों भाई उच्च-स्वरसे, राग-रागिनी सहित, वीणाके समान मधुर स्पष्ट भावसे, सुननेवालों के शरीरको रोमांचित और हृदयोद्वेलित करनेवाले संगीतमें प्रवृत्त हुये। श्रवण-सुखद वह गान जन-समाजमें शोभित हुआ। तब रामचन्द्रजी अनुजोंसे बोले—हे भ्राताओं! यद्यपि ये गायक कुश और लव महा तपस्वियोंकेसे मुनि वेषधारी हैं तथापि इनके शरीरमें राज-चिन्ह शोभित हैं तथा ये गायक और उपाख्यान दोनोंही माधुर्य गुणसे सम्पन्न, कल्याणकर और मेरे यश से परिपूर्ण है। इसलिए तुम स्थिर होकर सुनो। भ्राताओंसे ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने फिर उन दोनों गानेवालोंसे गान करनेके लिए कहा। दोनों भाई सुन्दर गीत गाने लगे। सभामें बैठे रामचन्द्रजीका चित्त उस गीतके सुननेमें आसक्त हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

पाँचवाँ सर्ग

अयोध्या-वर्णन

महात्मा मनुसे लेकर सागरावेष्ठित यह पृथ्वी जिस वंशके विजयशाली राजाओंके अधिकारमें रही, जिन्होंने समुद्रको खोदकर सगर नामसे ख्याति

प्राप्त की और जिनके चलते समय साठ हज़ार सन्तानें उनका अनुगमन करती थीं, उन महात्मा इक्ष्वाकु नृप-श्रेष्ठकी कुल-परम्परामें "रामायण" नामसे प्रसिद्ध इस महान् ऐतिहासिक काव्यकी अवतारणा हुई है। अब हम अर्थ, धर्मदायक इस कथाका आदिसे अन्त तक गान करेंगे। आपलोग निन्दा-त्याग भावसे एकाग्र चित्त हो, श्रवण कीजिये। सरजूके तटपर धनधान्यसे पूर्ण, आनन्द, कोलाहलपूर्ण कोशल नामका एक देश है, जिसकी राजधानी अयोध्या संसार में प्रसिद्ध है। उस पुरीको मानवेन्द्र महाराज मनुने बसाई थी, जिसकी लम्बाई बारह योजन और चौड़ाई तीन योजन है तथा जो बड़ी ही दर्शनीय है। इस राजधानीके तीन प्रधान मार्ग हैं, जिसका विशाल राजमार्ग सर्वशोभा सम्पन्न पुष्प-माल्यों से शोभित है और जहाँ नित्य छिड़काव होता रहता है। जिस प्रकार देवराज इन्द्र देवलोकमें वास करते हैं, इसी प्रकार इस पुरीमें राज्य-वर्द्धन प्रतापशाली राजा दशरथ निवास करते थे। इस नगरीके चारों ओर किवाड़ और तोरण लगे हुए हैं और सब प्रकारके यंत्रायुधोंको धारण किये कहीं-कहीं शिल्पीगण बैठे हुए हैं। सूत, मागधोंके निवास और धन-धान्यसे पूर्ण वह पुरी बड़ी ही दर्शनीय है तथा जिसकी शोभा-सम्पन्न सभी उच्च अट्टालिकाओंपर लगी हुई झाड़ियाँ वायुसे उड़ती हुई दिखाई देती हैं और जिसपर किलेके रक्षार्थ तोपें लगी हुई हैं। कहीं स्त्रियोंकी नाट्यशाला शोभित हैं तो कहीं उद्यानोंमें पुष्पवाटिका और आम्र-वृक्ष लगे हुए हैं तथा शाल्व-वृक्ष मानो उस नगरीकी कांची है। किलेके चारों ओर गहरी खाँई खुदी हुई है, जिसमें जल भरा हुआ है, जिससे सर्वसाधारण वहाँ नहीं पहुँच सकते। वहाँ कहीं-कहीं हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर और गाय, बैल बँधे हुए हैं। कहीं नृपति-वृन्द खड़े हैं, तो कहीं नानाप्रकारके वणिक्गण वाणिज्यकी वस्तुओंसे सज्जित हैं। वह पर्वताकार सारा राज्य-भवन रत्नमय है। कहीं स्त्रियोंका क्रीड़ा-स्थल तो और ही विचित्र दूसरी अमरावती-सा शोभित है। कहीं-कहीं ऐसी श्रेष्ठ स्त्रियाँ शोभित हैं कि, जहाँ सब स्थानों पर सुवर्णकी झालर फिरी हुई है तथा वहाँके विमान-गृह अनेक प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण और शोभा दे रहे हैं। यहाँकी समस्त भूमि सम और सभी गृह सुन्दर हैं तथा सभी भूमि शालि, तंडुल (धान, चावल) से पूर्ण और जल इक्षु-रस-सा मीठा है। समस्त नगरी शंख

मृदंग, वीणा और नगाड़ोंके महानिनादसे बड़ी ही शोभायमान हो रही है। इसीसे सिद्ध पुरुष इस स्थानको तपोयुक्त जान विमानवत् आश्रित हैं और यहाँ श्रेष्ठ-पुरुषगण सुन्दर वेष धारण किए सर्वदा शोभित हैं। जहाँ पिता-पुत्र रहित निःसहाय और शत्रु-भयभीत भगेड़ोंको सहायता प्राप्त होती है और जहाँ हस्त-लाघवी, चतुर शब्दबेधी सहस्रों वीर जो मतवाले शब्द करते हुए सिंहों, व्याघ्रों और सूकरोंको वनमें तीक्ष्ण अस्त्रों और बाहु-बलसे मार डालने वाले हैं—ऐसे अगणित महारथियोंसे जो नगरी सर्वदा रक्षित है, ऐसी पुरीमें राजा दशरथ वास करते थे, जिसमें साग्निक, गुणज्ञ, वेद-वेदाङ्गके ज्ञाता और षडङ्ग ज्ञाता, सत्यपरायण, सहस्रदाता महर्षियोंके समान कितने ही ऋषि और ब्राह्मण निवास करते हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

छठवाँ सर्ग

राजा दशरथका राज्य-काल वर्णन

उस अयोध्यामें महाराज दशरथ नामसे एक राजा हुए, जो वेदवित्, सर्व-संग्रही, दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, नगर और प्रान्तकी प्रजाके प्रिय थे। वे अति-रथी, यज्ञ करनेवाले, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय, महर्षियोंके समान गुणवाले तथा कुबेरके समान धनी थे। जैसे महातेजस्वी मनुजी लोक-रक्षक हैं, वैसेही महा-राज दशरथ भी प्रजाके रक्षक थे। महाराज दशरथ धर्म, अर्थ, कामकी सेवा करते हुए अयोध्याका पालन वैसेही करते थे, जैसे अमरावती अमरनाथ इन्द्रसे रक्षित होती है। उनके राज्यमें नगरकी प्रजा धर्मपरायण, शास्त्रवित, लोभ-रहित, सत्यवादी और अपने-अपने धनसे सन्तुष्ट रहनेवाली थी। सभी आवश्य-कतानुसार उत्तमोत्तम द्रव्य संग्रहकर रखते तथा घर-घरमें गौ, घोड़े और धन्यधान्य संचित रहता था। उनके शासन-कालमें सबकी अभिलाषाएँ पूर्ण होती थीं। वहाँ कोई कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख अथवा नास्तिक पुरुष देखनेको भी न मिलता था। वहाँके स्त्री और पुरुष सभी धर्मात्मा, संयमी, सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शील और सदाचारकी दृष्टिसे महर्षियोंकी भाँति विशुद्ध थे। सभी कुण्डलकिरीटऔर माल्यधारी,पवित्रभोजी और इत्र सुगन्धित तथा चन्दन-चर्चित रहा करते थे और इनसे रहित कोई न था। न कोई ऐसा रहता था

कि जो सुन्दर भोजन न करता हो तथा दाता न हो। सभी कंठा, बाजू और कंकणादि पहनते थे। सभी पवित्र अन्तःकरणवाले थे। ऐसा कोई न था जो अग्निहोत्र और बलिवैश्यदेव न करता हो। सभी यज्ञ-दीक्षित थे। कोई भी नीच, चोर, दुश्चरित्र और वर्णशंकर नहीं था। ब्राह्मण इन्द्रियजित, आत्म-कर्मठ, दान, ध्यान-परायण और प्रतिग्रह दान नहीं लेता था। नास्तिक, मिथ्याभाषी, अल्प पढ़ा हुआ, निन्दक, व्रतादि-हीन और मूर्ख कोई भी न था। सभी षडङ्ग-वेदपाठी थे। कोई भी व्रत-रहित, अल्पज्ञ, दरिद्र, विज्ञप्ति अथवा व्यथित न था। स्त्री-पुरुष कोई भी कुरूप दिखाई न पड़ता था। कोई भी राज-भक्तिके विरुद्ध न था। अयोध्या में ऐसे ही पुरुष वास करते थे। ब्राह्मणादि चारों वर्णके लोग देवता और अतिथिकी पूजा करते थे। सभी कृतज्ञ, दाता, शूर और पराक्रमी थे। सभी मनुष्य दीर्घायु और सत्य धर्मावलम्बी थे। किसी की अकाल मृत्यु न होती थी और सभी पुत्र,पौत्र, कलत्र सहित उस नगरीमें निवास करते थे। क्षत्रिय ब्राह्मणानुगामी, वैश्य क्षत्रियानुवर्त्ती और इसी प्रकार शूद्र अपने कर्म में अनुरक्त रह, ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंकी सेवामें नियुक्त थे। बुद्धिमान प्रजापति मनु के समान ही, इक्ष्वाकुनाथ-दशरथजी इस राजधानी के शासक थे। जैसे सिंहोंद्वारा पर्वतों की गुफ़ाएँ पूर्ण हो जाती हैं, वैसेही यह राजधानी धनुर्विद्या पारदर्शी वीरों से परिपूर्ण थी। इस पुरीमें काम्बोज और बाह्लीक जाति के घोड़े भरे रहते थे तथा यह वनायुदेश और सिन्धुनदके समीपवर्ती देशके ऊच्चैःश्रवाके समान अश्वों से पूर्ण रहा करती थीं। इसी प्रकार विन्ध्य पर्वतके उत्पन्न, हिमालयोत्पन्न, पर्वताकार, बड़े ही बली मत्त कुंजरोंसे अयोध्या पूर्णतः रक्षित रहती थी। साथ ही ऐरावत-कुलके, महापद्म-कुलके अञ्जन, और वामन वंशके हस्तियों सहित, भद्र-मन्द्र, मृग-भद्र, भद्रमृग और मृगमंद नामक हस्तियोंसे यह पुरी आच्छादित रहा करती थी। सभी हाथी मतवाले और पर्वताकार थे। ऐसे हाथियोंसे यह सर्वथाही पूर्ण रहा करती थी। यहाँ कोई युद्ध करने नहीं आता था। इसी कारण इसका अयोध्या नाम सार्थक ही है। यद्यपि इसका तीन ही योजन विस्तार है, तथापि इसके दो योजनमें भी कोई युद्ध करनेका साहस नहीं करता था। जैसे तारानाथ उडुगणों का शासन करते हैं, ऐसे ही शत्रु-दमनकारी, बड़े ही तेजस्वी राजा

दशरथ इस पुरीके पालक थे। इन्द्रके समान ही महाराज दशरथ इस सत्य नामवाली, सुदृढ़ तोरणोंसे युक्त, शोभित, अर्गलायुक्त, दिव्य-विचित्र गृहोंसे शोभित अयोध्याका पालन करते थे जो सहस्र लोकोंसे व्याप्त थी।

इति श्रीवाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

सातवाँ सर्ग

महाराज दशरथ के अष्ट-मंत्रियों का वर्णन

इक्ष्वाकुवंशीय महाराज दशरथके धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र, ये आठ मन्त्री थे, जो अन्य-तत्वज्ञ और बाह्य-चेष्टा देखकर मनके भाव समझनेवाले थे। वे बड़े ही यशस्वी और गुणवान् थे तथा सर्वदाही राजाके हितमें लगे रहते थे। उनके स्वभाव और विचार बहुतही शुद्ध थे तथा राज-काजमें निरन्तर लगे रहते थे। ऋषि-श्रेष्ठ वशिष्ठ और वामदेव—ये दोनों राजाको यज्ञ कराया करते थे तथा ऐसे ही और भी ऋषि मन्त्रीका कार्य करते थे। इनके सिवा सुयज्ञ, जावालि, कश्यप, गौतम, दीर्घायु, मार्कण्डेय और कात्यायन ऋषिभी राजाके मन्त्री थे। इन ब्रह्मर्षियोंके साथ परम्परागत ऋत्विज भी राज्यके कार्यमें सहायता करते थे। वे सभी विद्वान्, विनीत, शीलवान् और जितेन्द्रिय थे। देखनेमें ये बड़े ही सुन्दर, महात्मा, शास्त्रनिपुण, बड़े पराक्रमी, कीर्तिमान, राजकाजमें सावधान और राजा जो कहें वह करनेवाले थे, जिनमें तेज, क्षमा और यश पूर्ण भरा था और सभी हँसमुख हो बात करनेवाले थे। उनमें ऐसा कोई भी नहीं था, जो काम, क्रोध या स्वार्थके वशीभूतहो, कभी असत्य बोलता हो। वे आत्म-अनात्मके सब विषयोंके जानकार थे और शत्रु-पक्षके, हुए, होनेवाले और हो रहे, कार्योंको दूत द्वारा जान लिया करते थे। ये व्यावहारिक कार्योंमें बड़ेही प्रवीण थे, जिनकी राजाने भलीभाँति परीक्षा करली थी। यदि पुत्र भी अपराधी हो तो भी ये लोग उसे दंड देनेमें कसर नहीं करते थे। साथ ही कोष-संग्रह और सैन्य-संग्रहमें तो ये लोग बड़े ही यत्नवान् रहा करते थे और निरपराधी शत्रुकाभी ये लोग स्वभावतः अहित नहीं चाहते थे। ये सभी उत्साही, वीर, नीति-शास्त्र का अनुष्ठान करनेवाले और पवित्र थे। ये अपने देशवासियोंके सर्वदा रक्षक थे। ये सभी मंत्री दोषीका दोष विचार, उसका बला-

बल देखकर ही दण्ड देते, तथा ब्राह्मण क्षत्रियोंके प्रति सर्वथाही अहिंसक रह राजकोषको पूर्ण किया करते थे। सभी मंत्री एक मतावलम्बी और निर्मल बुद्धिवाले थे, जिनके विचारसे कोई भी मिथ्यावादी उस पुरी और देशमें नहीं था। नीच स्वभाववाला दुष्ट, पर-स्त्रीसे प्रेम करनेवाला, दुष्ट आशयवाला और दुष्ट प्रकृतिके पुरुष वहाँ नहीं थे। नगरमें सर्वत्र शान्ति विराजमान थी। सभी मन्त्री श्रेष्ठ-व्रती और राजाके हितैषी थे। वे सर्वदा न्याय शास्त्रानुसार ही कार्य किया करते थे। गुरुजनोंके गुणग्राही और स्व-विक्रम-प्रभावसे विख्यात थे, जिन्हें अन्य देशोंकी घटनायें ज्ञात रहतीं और सर्वत्र जिनकी बुद्धिमत्ताकी प्रसिद्धि थी। यद्यपि ये अनेक गुणोंके अच्छे पंडित थे, तथापि सत्व, रज, तम इन तीनों गुणोंमें कभी हीन न पड़ते थे। जैसे ये सन्धि और विग्रहमें निपुण थे, वैसेही बड़े व्यवहार-कुशलभी थे। इनमें जैसी प्रवल गूढ़ मन्त्रणा-शक्ति थी, ऐसी ही सूक्ष्म बुद्धि भी थी। ये सभी नीतिशास्त्रज्ञ और सर्वदा प्रिय-भाषी थे। इस प्रकारके गुणज्ञ मन्त्रियोंके साथ रहकर निष्पाप राजा दशरथ पृथ्वीका पालन करते थे। उन्होंने दूतोंके मुखसे, पर-राष्ट्रोंका तत्त्व जानकर, धर्मानुसार प्रजा-पालन करते हुए अधर्मको तिलांजलि दे दी थी। उनकी दानशीलता त्रयलोक्य-प्रसिद्ध थी तथा युद्धोंमें वह अपनी प्रतिज्ञा सत्य करते थे। इस प्रकार वह पुरुष-सिंह पृथ्वी-शासक थे। जैसे इन्द्र देवलोकके शासक हैं, वैसेही उन्होंने सारे जगतका राज्य किया था, जिन्होंने अपने समान किसी अधिक बलवान् शत्रुका मुख देखा भी न था। जैसे उनके मित्र प्रबल थे, ऐसे ही उनके अधीनस्थ राजा भी उन्हें नमन करते थे। उनका राज्य सर्वथा ही निष्कण्टक था। किरणमाला—मण्डित उदित सूर्यके समान ही वे अपने मंत्र जाननेमें निपुण, पर-हितकारी, अनुरागी, सूक्ष्मदर्शी और सामर्थ्यशाली मन्त्रियों सहित परम शोभाको प्राप्त थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

आठवाँ सर्ग

महाराज दशरथ का अश्वमेध-यज्ञ

ऐसे प्रभावशाली महात्मा धार्मिक दशरथजीने पुत्रकी कामनार्थ तप भी किया, तथापि उनके वंशधर कोई पुत्र न उत्पन्न हुआ। तब इसके लिए

चिन्ता करते-करते, एक दिन उन महात्माके मनमें यह विचार हुआ कि, मैं पुत्रार्थ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान क्यों न करूँ? फिर तो उन बुद्धिमान् राजाने अपने कुशल मन्त्रियोंके साथ विचारकर यज्ञ करनेका दृढ़ निश्चय किया। तब श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्तसे संभाषण कर उन्हें गुरुजी और सब पुरोहितोंको बुलानेकी आज्ञा दी। सुमन्त शीघ्रही वेदपारायण गुरु वशिष्ठजी और पुरोहितको राजाके पास लाये। सुयज्ञ, बामदेव, जाबालि, कश्यप, वशिष्ठ और अन्य ऋषि-श्रेष्ठगण आ उपस्थित हुये। महात्मा दशरथजीने उनकी पूजाकर इस प्रकार धर्मयुक्त मधुर वचनोंमें कहा कि, पुत्रका कामना से मेरे हृदयमें किंचित् सुख नहीं है। इसलिए मैं पुत्रार्थ शास्त्रानुसार अश्वमेध यज्ञ किया चाहता हूँ। अब आप लोग बतलाइए कि, किस प्रकार मेरी यह कामना पूर्ण होगी? राजाके मुखसे यह बात सुनकर वशिष्ठादि मुनिगण बारम्बार उन्हें धन्यवाद और साधुवाद देने लगे। पश्चात् परम प्रेम युक्त राजा से कहा कि, यज्ञकी सब सामग्री मँगवाकर यज्ञका घोड़ा छोड़ा जावे। सरयूके उत्तर तटपर यज्ञकी भूमि बने। इस अनुष्ठानसे आपके पुत्र होंगे। आपकी बुद्धि जब इस प्रकारके धर्ममें प्रवृत्त हुई है तो अवश्यही यह शुभ-फल आपको प्राप्त होगा। ब्राह्मणोंकी इस बातसे राजाको बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। फिरतो उसी समय राजाने हर्ष-विकसित नेत्रोंसे मन्त्रियोंको सम्बोधनकर कहा कि, आप लोग गुरुदेवकी आज्ञानुसार यज्ञकी आवश्यक सामग्रियों को एकत्र करें। साथही उत्तम रक्षकोंसे रक्षित और उपाध्याय सहित श्रेष्ठ समर्थ अश्व छोड़ा जावे और सरयूके उत्तर तटपर यज्ञ-भूमिका विधान किया जावे। कल्प तथा विधिके अनुसार शान्तिकी कल्पना की जाय। कारण कि, सभी राजा इस यज्ञको नहीं कर सकते और इस यज्ञ में अनेक विघ्न होनेकी संभावना रहती है। विशेषकर विद्वान् ब्रह्म-राक्षस छिद्रान्वेषण करते हैं। विधि-विहीन यज्ञ-कर्त्ता शीघ्रही नष्ट हो जाता है। इसलिए ऐसा उपाय कीजिए कि, यज्ञ-कार्य सविधि सम्पन्न हो। आप सब समर्थ ऐसाही विधान करें। तब 'जो आज्ञा' हो कहकर मन्त्रियोंने राजाज्ञाको शिरोधार्यकी। पुनः राजाज्ञासे सत्कृत हो, धर्मज्ञ द्विजवर उन्हें आशीर्वाद देने लगे। पश्चात् उनकी आज्ञासे ब्राह्मण-मंडली निज-निज आश्रमको गई। तब उन्हें विदाकर

राजाने मन्त्रियोंसे कहा कि, ऋत्विजोंने जैसी आज्ञा दी है, यज्ञार्थ वैसी ही सामग्रीका विधान कीजिये। मंत्रियोंको ऐसी आज्ञा दे, राजा अन्तःपुरमें चले गये। वहाँ जाकर वह अपनी हृदयानन्ददायिनी पत्नियोंसे बोले कि, मैं पुत्र-कामनासे एक यज्ञ करूँगा। तुम लोग भी इस कार्यमें दृढ़-निश्चयी हो नियमतः दीक्षित हो जाओ। तब राजाके ऐसे सुन्दर वचन सुनकर उनका मुख-कमल वैसे ही खिल गया कि, जैसे वसन्त-कालमें कमलिनी शोभाको प्राप्त हो जाती है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

नवाँ सर्ग

दशरथ-सुमन्त संवाद

तब राजा निश्चय ही यज्ञ करेंगे, यह जानकर मन्त्री सुमन्तने एकान्तमें जाकर राजासे कहा कि, हे महाराज ! मैं ऋत्विजोंके मुखसे सुनी हुई एक पौराणिक वार्ता कह रहा हूँ, इसे ध्यान देकर सुनिये। सन्तानके लिए यज्ञ करना ऋषियोंका मत है। परन्तु इस सम्बन्धमें मैंने कुछ विशेषरूपसे सुना है। पूर्वकालमें यही भगवान् सनत्कुमारजीने ऋषियोंके निकट आपके पुत्रोत्पत्ति के विषयमें यह कथा कही थे कि, हे मुनीश्वरों ! महर्षि कश्यपके विभाण्डक नामका जो पुत्र है उसके एक पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग नामका होगा। जो पितृ-यत्नसे बड़ा होकर वनवासियोंके ही समान समय व्यतीत करेगा और जिस विप्र-वर्यको पितृ-आज्ञा पालनके अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञान न होगा। वह महात्मा दो प्रकार का ब्रह्मचर्यव्रत करेगा। इसे सभी ब्राह्मण सर्वदा करते हैं और यह बात सारे लोकमें प्रसिद्ध है। जब इसप्रकार अग्निपरिचर्या और पितृ-सेवा करते ऋष्यश्रृङ्गको कुछ काल व्यतीत होगा, तब उसी समय अङ्गदेश में रोमपाद नामक एक बड़ा प्रतापी राजा होगा, जिसके दोषसे उसके राज्यमें दारुण सब लोकोंको भयप्रद, घोर अनावृष्टिसे सब लोग व्याकुल हो जायँगे और राजा बड़ा ही चिन्तित हो जायगा। तब शास्त्रवेत्ता मुनियोंको बुलाकर उनसे अपने पापका प्रायश्चित पूछेगा, जिसमें सब ब्राह्मण उसे बतलावेंगे कि, आप विभाण्डक-पुत्रको किसी उपायसे यहाँ बुलाकर श्रेष्ठ सत्कार कीजिये और उन्हें सविधि अपनी कन्या शान्ताको दे दीजिये, जिसे सुनकर राजा

चिन्तित हो जायगा। परन्तु वह चिन्ता तो हट जायगी और उसे यह चिन्ता लग जायगी कि, मुनिको किस प्रकार बुलाया जाय। तब वह मन्त्रियोंसे परामर्शकर पुरोहितों और सेवकोंको वहाँ जानेकी आज्ञा देगा। परन्तु महर्षि विभाण्डकके भयसे वे लोग ऋष्यशृङ्गके पास जानेसे इन्कार करेंगे। परन्तु फिर वेही लोग मन्त्रियोंके साथ विचारकर वेश्याओंके द्वारा ऋषिकुमारको अङ्गदेशमें बुलावेंगे। इसप्रकार अङ्गराजके बुलानेपर ऋष्यशृङ्गके आते ही उस देशमें वृष्टि होने लगेगी। तत्पश्चात राजा रोमपाद उन्हें अपनी शान्ता नामक कन्या अर्पण कर देंगे। हे महाराज! वही आपके जामात्र शृङ्गी ऋषि आपकी पुत्र-कामना पूर्ण करेंगे। यह सनत्कुमारजीकी कही वार्ता मैंने आपको सुनायी। सुमन्तकी यह सलाह राजा दशरथ को अच्छी न लगी। उन्होंने सुमन्तसे कहा—हे सूत! ऋष्यशृङ्ग जिस प्रकार वहाँ बुलाए गये थे, वही उपाय कहो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का नवाँ सर्ग समाप्त॥ ९॥

दशवाँ सर्ग

ऋष्यशृङ्गकी कथा

तदन्तर राजा दशरथने हर्षित हो सुमन्तसे कहा—हे सुमन्त! जिस प्रकार अंगराज ऋष्यशृङ्गको ले आये थे, वह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहो। तब राजाकी आज्ञा पाकर सुमन्तने कहा—महाराज! राजा रोमपादके मन्त्रियोंने ऋष्यशृङ्गको जिस प्रकार और जिस उपायसे अङ्गदेशमें बुलाया था, वह सब मैं बताता हूँ, आप मन्त्रियों सहित उसे श्रवण कीजिये। आमात्यों सहित कुल-पुरोहितने राजा रोमपादसे कहा कि, हे महाराज! हम लोगोंने एक उपाय सोचा है, जिसे काममें लाने से किसी भी विघ्न-बाधाके उठनेकी संभावना नहीं है। ऋष्यशृङ्ग मुनि सर्वदा वनमें रहकर तपस्या और स्वाध्यायमें लगे रहते हैं। वे स्त्री-सहवासके सुख और विषयको जानते तक नहीं। अतः यदि सुन्दरी वेश्यायें भली भाँति शृङ्गार करके वहाँ जायँ तो वे उन्हें तरह-तरहके उपायोंसे लुभाकर सत्कारपूर्वक यहाँ लानेमें सफल होंगी। राजाने पुरोहितोंपर इस कार्यका भार सौंपा। सम्मतसे मन्त्रिगण भी राजी हो गये। मन्त्रियोंकी आज्ञासे वाराङ्गनायें वनमें प्रवेशकर महर्षि-आश्रमके निकट जा एकान्तमें उनको देखनेका यत्न करने लगीं। मुनि-कुमार ऋष्यशृङ्ग बड़े

धीर स्वभावके थे और सर्वदा आश्रममें ही रहा करते थे। उन्हें पिताके पास रहने ही में सुख मिलता था, इसलिए वे कभी आश्रमके बाहर नहीं निकलते थे। उन्होंने जन्मसे लेकर उस समय तक, नगर या राष्ट्रके गावोंमें उत्पन्न हुए पुरुष, स्त्री या और किसी प्राणीको नहीं देखा था। एक दिन विभाण्डककुमार ऋष्यशृङ्ग अकस्मात् घूमते-फिरते उस स्थानपर चले आये, जहाँ वे वेश्यायें ठहरी हुई थीं। वहाँ उन्होंने उन सुन्दरी वनिताओंको देखा जिनके वेश बड़े ही सुन्दर और आकर्षक थे। वे मधुर-स्वरमें गान कर रही थीं। ऋषिकुमार को देख सभी उनके पास चली आईं और बोलीं—'ब्रह्मन्! आप कौन हैं? यहाँ क्या करते हैं? इस निर्जन वनमें आश्रमसे इतनी दूर आकर अकेले क्यों विचर रहे हैं? यह सब बातें बताइये, हमलोग जानना चाहते हैं।' ऋष्यशृङ्ग ने वनमें कभी ऐसी मनोहर रूपवाली स्त्रियाँ नहीं देखी थीं। उस दिन उन्हें देखकर उनके मनमें उन स्त्रियोंके प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया। इसलिए उन्होंने उनसे अपने पिताका परिचय देनेका विचार किया। वे कहने लगे—'मेरे पिता-का नाम विभाण्डक मुनि है, मैं उन्हींका औरस पुत्र हूँ, तथा ऋष्यशृङ्गके नामसे प्रसिद्ध हूँ। मेरे तपस्या आदि धर्म भी इस पृथ्वीपर सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। मेरा आश्रम यहाँसे समीप ही है। आप सब लोग वहाँ चलें। मैं सबका विधिवत् स्वागत करूँगा।' ऋषिकुमारकी बात सुनकर सबने उनका आश्रम देखनेका निश्चय किया और सभी उनके साथ वहाँ तक गयीं। वहाँ जानेपर ऋष्यशृङ्गने 'यह अर्घ्य है, यह पाद्य है तथा यह भोजनके लिए मूल और फल प्रस्तुत है।'—ऐसा कहते हुए उन सबका विधिवत् पूजन किया। ऋषिकी पूजा स्वीकार करके वे सभी वहाँसे चले जानेको उत्सुक हुईं। उनको विभाण्डक मुनिका डर लग रहा था, इसलिए शीघ्र ही जानेका विचार करके बोलीं—प्रियवर! हमारे पास भी ये उत्तम-उत्तम फल हैं; इन्हें लीजिये और शीघ्र ही खा जाइये, विलम्ब न कीजिये।' यह कहकर उन सबने हर्षसे भरकर ऋषिका आलिङ्गन किया और उन्हें खाने योग्य उत्तम-उत्तम पदार्थ तथा तरह-तरहकी मिठाइयाँ दीं। उनका रसास्वादन करके उन तेजस्वी ऋषिने समझा कि, ये भी फल ही हैं, क्योंकि उस दिनके पहले उन्होंने कभी वैसे पदार्थ नहीं खाये थे। भला, सदा वनमें रहनेवालोंके लिए वैसी वस्तुओंके स्वाद लेनेका अवसर

कहाँ मिलता है? तत्पश्चात् उनके पिता विभाण्डक मुनिके डरसे वे स्त्रियाँ व्रत और अनुष्ठानका बहाना बनाकर ऋष्यशृङ्गकी आज्ञा ले वहाँसे चली गयीं। उन सबोंके चले जानेपर ऋष्यशृङ्ग मन-ही-मन व्याकुल हो उठे और अत्यन्त दुःखी होकर इधर-उधर घूमने लगे। फिर दूसरे दिन भी मनमें उन्हींका चिन्तन करते हुए उसी स्थानपर गये, जहाँ पहले दिन उन्होंने वस्त्र और आभूषणोंसे सजी हुई उन सुन्दरी वेश्याओंको देखा था। तब मुनि-कुमारको देखते ही वेश्याओंका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। वे सब-की-सब उनके पास जाकर बोलीं—सौम्य! आज हमारे आश्रमपर चलिये। वहाँ विचित्र कन्दमूल, फल और भोजन यहाँसे अधिक हैं। वहाँ यहाँकी अपेक्षा आपका अतिथि-सत्कार कुछ विशेष होगा। तब यह हृदयानन्द दायिनी बात सुनकर ऋषि-पुत्र उसी समय वहाँ जानेको सन्नद्ध हो गये और वह स्त्रियाँ उन्हें साथ लेकर राजा अङ्गके नगरमें चली आईं, इस प्रकार उन राजकुमारके रोमपादके राज्यमें पदार्पण करते ही प्रजा आनन्दित हो गई और शचीनाथ अनर्गल वृष्टि करने लगे। वर्षा सहित ऋषि-कुमारके आगमनको देख राजा विनम्र हो उनके चरणोंमें जा गिरा और बड़ी वन्दना की। फिर यह जानकर कि—यह छलसे लाये गये हैं, कहीं कुपित न हो जायँ, शीघ्र ही यथाविधि अर्घ्य-पाद्य दे, उनकी प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करने लगे और तत्क्षण अपने अन्तःपुरमें लिवा जाकर अपनी शान्ता नामक कन्या उन्हें अर्पण कर दी, जिस्से वे बहुत ही सन्तुष्ट हो गये और राजा भी आनन्दित हुये। हे महाराज! इस प्रकार महातेजस्वी शृङ्गी ऋषि सर्वकाम पूर्ण हो सहधर्मिणी शान्ता सहित वहाँ निवास करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा प्रथम बालकाण्ड का दशवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

सनत्कुमारजी द्वारा वर्णित भविष्यत्कथा-वर्णन

सुमन्तने कहा—हे राजेन्द्र! देव-प्रवर बुद्धिमान् सनत्कुमारजीने जो कहा था, वह अपने हितकर वाक्य मुझसे फिर सुनिये। उन्होंने कहा था कि, इक्ष्वाकुवंशमें श्रीमान् दशरथ नामसे एक धर्मात्मा और सत्यवादी राजा उत्पन्न होंगे; जिनकी अङ्गदेशके राजासे मयत्री होगी। उन्हीं महाराज दशरथके शान्ता नामकी एक कन्या होगी। पश्चात् अङ्गराजके पुत्र रोमपादसे जब राजा दशरथ

की मित्रता होगी, तब एक ऐसा समय होगा कि यशस्वी अवधनाथ अंगनाथके पास जाकर यह कहेंगे कि, हे राजन्! मेरे सन्तान नहीं है। इसलिए मैं आपके जामात्र ऋष्यशृङ्गको लेजाकर यज्ञ किया चाहता हूँ। आप अनुमति दें। मेरे वंशकी रक्षा हो। यह सुनकर अंगराज मनमें सोच-समझ की पुत्र सहित ऋष्यशृङ्गको उनके समर्पण कर देंगे। तब प्रसन्न मनसे उनको ले नरनाथ चिन्ता-रहित हो पुत्रेष्ठि यज्ञका अनुष्ठान करेंगे। सन्तान द्वारा यथेच्छुक धर्मवेत्ता राजा दशरथ हाथ जोड़ उन मुनि ऋष्यशृङ्गको यज्ञ में वरण करेंगे। उनकी यह पुत्र और स्वर्ग प्राप्तिकी कामना विप्रवर ऋष्यशृङ्गसे पूर्ण होगी। उससे ही उन्हें त्रिलोकविख्यात चार वंशधर पुत्र प्राप्त होंगे। इसी प्रकार सत्-युगमें ऋषियोंसे मिलनेपर देव-प्रधान सनत्कुमारजीने कहा था। इसलिए हे नरशार्दूल! अब आप सबल बाहनोंसे वेष्ठित हो, जाकर बड़े आदर सम्मान से उन महर्षिको लाइये। सुमन्तके वचन सुन दशरथ प्रफुल्लित हो वशिष्ठजीसे भी पूछकर, उनकी आज्ञा ले, रानियों मंत्रियों और पुरचरियों सहित अंग-राज्यकी ओर चले। कई वनों और नदियोंको पारकर रोमपादके समीप रहनेवाले मुनि-पुङ्गव उन ब्राह्मणश्रेष्ठके निवास-स्थान पर पहुँचे। वहाँ प्रदीप्त अग्निके समान उन ऋषिके दर्शनकर उनकी यथाविधि अर्चनाकी। राजा रोमपादने विभाण्डक–पुत्र महर्षि ऋष्यशृङ्गसे अपनी और महाराज दशरथकी मित्रताका परिचय दिया। उसे सुन ऋषि अन्तःकरणसे संतुष्ट हुए तथा उन्होंनेभी दशरथजीका यथोचित सत्कार किया। इसप्रकार रोमपादसे सत्कृत हो सात-आठ दिन एकत्र वास करके राजा दशरथ ने रोमपादसे कहा कि,—हे मित्र रोमपाद! आप अपनी पुत्री शान्ताको उसके पति सहित मुझे दीजिये। हे राजन्! एक कार्य उपस्थित हुआ है। मुझे एक यज्ञ करना है। इस कारण स्वामी सहित शान्ताको मेरे यहाँ जानेकी आज्ञा दीजिये। तब मित्र का अभिप्राय समझ, अंगराज इस बातमें सहमत हो गये और पुत्री शान्ता सहित जामात्रको मित्रके यहाँ जानेकी आज्ञा दी। ऋष्यशृङ्गनेभी इसे स्वीकार किया। सहधर्मिणी सहित ऋष्यशृङ्ग अयोध्या को चले। महाराज दशरथ ने शीघ्रगामी दूत भेज अयोध्यामें पहले ही सूचना भेजवा दी कि, नगरको भलीभाँति सज्जित करा दिया जाय। तब यह समाचार पाकर पुरवासियोंने

प्रसन्न हो अच्छी तरह नगर में सजावट कर दी। राजा सज्जित राजधानीमें पहुँचे। सबने शंख-दुन्दुभी बजा ऋषि-श्रेष्ठकी अगवानीकर उनके आगमन का स्वागत किया, जिसे पाकर वे आनन्दित हुये। सुरराध्य-सा वामनदेवका-सा स्वागत। ऐसे ही इन्द्रके सहकारी नरेन्द्र भी ऋष्यशृङ्ग-सहित शोभित हुये। फिर तो सपत्नीक ऋष्यशृङ्गको अन्तःपुरमें लेजाकर राजाने उनकी सविधि पूजाकी और उनके आगमन से अपनेको कृतकृत्य माना। पति-सहित दीर्घनेत्री-शान्ताको देख सारा रनवास प्रेमानन्दमें कृतकृत्य हो गया। फिर तो नृपति दशरथ और अन्यान्य अन्तः पुरवासियोंके प्रेमसे राज-पुत्री शान्ता बड़े सुख पूर्वक वहाँ कुछ दिन तक के लिए जा बसीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

बारहवाँ सर्ग

राजा दशरथका पुत्रेष्ठि यज्ञकी अनुमति देना

तदनन्तर बहुत काल व्यतीत होने पर, जब वसन्तकालका समय आया, तब राजा दशरथने अपना यज्ञ करनेका विचार किया। उन्होंने महर्षि ऋष्य-शृङ्गके चरण-कमलोंकी वन्दनाकी और कुलकी रक्षार्थ तथा सन्तानकी कामनासे उनका यज्ञमें वरण किया। तब यज्ञ-कार्यवृत्त हो उन्होंने आज्ञा दी कि, यज्ञकी सामग्रियाँ एकत्रित हों और घोड़ा छोड़ा जावे। सरयूके उत्तर तट पर यज्ञभूमि बनाई जाय। फिर तो राजाने सुमन्त्रको देवपाठी ब्राह्मणोंको बुलानेकी आज्ञा दी। राजाज्ञा से सुमन्त्रने सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, पुरोहित वशिष्ठ तथा और भी याज्ञिक ब्राह्मणोंको शीघ्र ही यज्ञके लिए बुला लिया। राजा दशरथने उन सब ब्राह्मणोंकी पूजा की और धर्मानुगत हो इसप्रकार मधुर वाक्य कहा कि,—हे विप्रदेवों! मैं पुत्र-कामनार्थ उस ममतामें ऐसा तप्त हूँ कि, मुझे किंचित् सुख नहीं मिलता। इसलिए मैंने अश्वमेध यज्ञ करनेका निश्चय किया है और जिसके लिए मैंने ऋष्यशृङ्गका वरण किया है। मुझे विश्वास है कि, इन ऋषि के प्रभावसे मेरी मनोकामना पूर्ण होगी। ब्राह्मणोंने कहा—बहुत अच्छा! फिर वशिष्ठादि सब ब्राह्मण विभाण्डकजीके पुत्रको आगेकर राजा दशरथ से कहने लगे—आप यज्ञका सामान कीजिये, घोड़ा छोड़िये, सरयूके उत्तर तट पर यज्ञभूमि की रचना

कराइये। जब आप ऐसा अनुष्ठान करने में प्रवृत्त हो गए हैं, तब उत्तम रीति से कार्यका अनुष्ठान करने पर आपके अमित विक्रमी चार पुत्र होंगे। फिर तो ब्राह्मणों के यह वाक्य सुनकर राजा बहुतही प्रसन्न हुए और उन्होंने मंत्रियों से कहा—आप लोग इन विप्र देवोंके वचन सुन रहे हैं? यज्ञकी सब सामग्री शीघ्र प्रस्तुत कीजिये। समर्थ पुरुष यज्ञीय अश्व की रक्षार्थ नियुक्त हों। श्रेष्ठ-याज्ञिकोंसे मंत्र-पूतकर अश्वको छोड़ो। सरयूके उत्तर भागमें यज्ञभूमि बनाओ। सविधि शान्ति कराई जाय। यद्यपि सभी राजाओंको यज्ञ करनेका अधिकार है; परन्तु यह सरलतासे नहीं होता। इस कार्यमें बड़ी बाधा पड़ती है। विद्वान् ब्रह्म-राक्षस इसमें विशेष विघ्न करते हैं। इसमें छिद्र ढूँढ़ते हैं। विधि-उलंघनीय यज्ञ करनेसे यज्ञ-कर्त्ता नष्ट हो जाता है। इसलिये मेरा यह यज्ञ जिस प्रकार सविधि पूर्ण हो, इस विषयमें आपलोगोंको सर्वदा सावधान रहना चाहिये। क्योंकि आपलोग सविधि यज्ञ करनेमें समर्थ हैं। तब ऐसी राजाज्ञा सुन मन्त्रियोंने कहा——महाराजकी जो आज्ञा। फिर वे तदनुसार कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए। ब्राह्मणोंका समाज धर्मात्मा राजाकी स्तुति कर उनसे विदा ले, अपने आश्रमको प्रस्थान किया। राजा भी अपने अन्तः-पुरको चले गये।

इति श्रीमद्वल्मीकीय रामायण भाषा प्रथम बालकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

यज्ञ-निमन्त्रण और यज्ञशालाका वर्णन

देखते-देखते सारा वर्ष व्यतीत हो गया। दूसरा वसन्त आया। तब कहीं राजा यज्ञके लिए उद्यत हुए। तब एक दिन वे महीपाल विप्रवर वशिष्ट-जीके पास जा उनके चरणोंमें प्रणामकर पुत्रके लिए वार्त्ताकी और कहा कि, हे ब्रह्मन्, मुनिपुङ्गव! आप शास्त्रानुसार मेरे इस कार्यको सम्पन्न कराइये। आपसे यही प्रार्थना है कि, ऐसी विधि कीजिए जिससे यज्ञमें कोई विघ्न न उपस्थित हो। आप हमारे हितैषी बन्धु और परम गुरु हैं। इस उपस्थित कार्यका सारा भार आप ही ग्रहण करें। वशिष्ठजीने कहा——अवश्य, आपकी यह प्रार्थना पूर्ण होगी। मैं वह सब कार्य करूँगा, जिसकी आपको अभिलाषा है। तदनन्तर उन्होंने यज्ञ-कार्य-कुशल, वृद्ध, धार्मिक, स्थापत्य-कर्मनिष्ठ, यज्ञ-कर्म निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोंको यज्ञ-समाप्ति तक की नियुक्तिके लिए और

शिल्पकारों, भृत्यों तथा कूपादि खनकों, ज्योतिषियों तथा चर्मकारादि नटों, नर्तकों, पवित्र शास्त्रज्ञों और बहुत पढ़े हुए पुरुषोंको बुलाकर आज्ञा दी कि, तुम सब लोग राजाज्ञया यज्ञ-कार्यमें नियुक्त किये गये। शिल्पी शीघ्र ही ईंटें जमा करें और राजाओंके ठहरने योग्य भवन बना; उन्हें बहुत-सी वस्तुओंसे सजाओ। ब्राह्मणोंके लिए भोजन-पानकी वस्तुओंसे भरे पूर्ण असंख्य आश्रम बनाओ। पुरवासियों और राज्य निवासियों तथा अनेक देशोंसे आए हुए राजाओंके लिए पृथक्-पृथक् स्थानोंकी रचना करो। अश्वशाला, हस्तिशाला, शयनागार, और विदेशी वीरोंके निवास-स्थान निर्मित करो। शास्त्र-विधिसे परलोक-प्रयोजनीय बुद्धिसे योग्य पात्रोंको सोत्साह-बुद्धिसे दान दो। अनिच्छुकको सादर दान न देना। करना यह चाहिए कि, जिसमें सभी यह जानें कि हमारा उचित सत्कार हुआ। काम-क्रोधवश किसीका तिरस्कार न होने पावे। शिल्पकारोंकी भी यथोचित पूजा हो। भोजनादिसे सभीका आदर किया जाय। मन लगाकर काम करनेवालोंका काम बिगड़ने न पावे। इस प्रकार सब कोई लोग प्रेमसे चित्त लगाकर करना। वशिष्ठजीके इन वाक्योंको सुनकर सबने उनके निकट जाकर कहा कि, आपने जो आज्ञा की है, उसमें कोई त्रुटि न होने पावेगी। तब वशिष्ठजीने सुमन्त्रको बुलाकर कहा कि, अब समस्त भूमण्डलके राजाओं, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंको इस कार्यमें बड़े आदर सम्मानसे निमन्त्रण भेजा जाय। सभी देशके मनुष्योंको सादर इसमें आमन्त्रित करो। महामतिमान् सत्यवादी मिथिलाधिपतिं राजा जनकको तुम स्वयं ही जाकर न्योता दे आओ। वे हमारे प्राचीन मित्र हैं। इस कारण उनको सबसे पहले सादर आमन्त्रण देना प्रयोजनीय है। फिर विशुद्ध-स्वभाव प्रियवादी, देवोपम काशिराजको भी तुम्हीं जाकर आमन्त्रण दो। फिर वहाँसे लौटकर महाराजके श्वसुर परम धार्मिक वृद्ध पुत्र सहित केकयराजको आमन्त्रण दो। फिर राजाके परम मित्र महाधनुर्धारी अंगराज लोमपादको निमन्त्रण दो, फिर कोशलेन्द्र भानुमान और सर्वशास्त्रविद् मगधराजको इन पुरुष-श्रेष्ठ महाराज दशरथ की ओरसे न्योता दो। इनके अतिरिक्त दक्षिणके राजाओंको फिर पूर्वके, और सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र और दक्षिणात्यके सभी राजाओंको, आमन्त्रित करो। अधिक क्या कहूँ; भूमण्डलके जितने भी आत्मीय हैं, तुम

उन सबको उनके अनुचरों और भाई बन्धुओं सहित शीघ्र आमन्त्रित करो। राजज्ञया इन सबके पास दूत प्रेषित करो। वशिष्ठजीके वाक्य सुन, सुमन्तजीने शीघ्रगामी उपयुक्त दूतों को बुला, राजाओंको आनेके लिए उनके पास भेजा। फिर मुनिके शासनानुसार स्वयंभी बुद्धिमान् सुमन्तने शीघ्रही बहुतसे राजाओंको बुलानेके लिए प्रस्थान किया। इधर सभी कर्मकारों और भृत्यादिकोंने वशिष्ठजीके पास आकर, यज्ञके उन सब कार्योंको कह सुनाया कि, जो उन्होंने किया था। तदनन्तर विप्रवरने प्रसन्न हो उनसे यह कहा कि, सबको आदर सहित वस्तुएँ देना। अवज्ञा, निरादर और खिलवाड़में दिए दान से दाता निसन्देह नष्ट हो जाता है। इसके दो-ही एक दिनके पश्चात् नृपतिगण आने लगे। महाराज दशरथकी भेंटके लिए अगणित रत्न-भार समन्वित आमन्त्रित राजाओंका आगमन हुआ। तब परम प्रसन्न हो वशिष्ठजी राजा दशरथसे बोले—हे राजन्! आपकी आज्ञासे सभी आमन्त्रित राजा आ गये हैं; जिनका मैंने यथोचित सम्मान कर दिया है। भृत्योंने यज्ञकी सर्व सामग्रीभी प्रस्तुत कर दी है। अतएव अब आप यज्ञ-दीक्षित होने के लिए यज्ञ-स्थलमें चलें। हे राजेन्द्र! यज्ञ-स्थलमें सारी वस्तुएँ पूर्ण हैं। देखने पर यही बोध होगा कि; मानों मनकी कल्पनाने ही इनकी रचना की है। प्रत्यक्ष देखते ही आपको ज्ञान हो जायगा। फिर तो वशिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके वचन से शुभ नक्षत्र सहित दिनमें राजाने यज्ञ-स्थलके लिए प्रस्थान किया। तदुपरान्त ऋष्यशृङ्गको आगे कर वशिष्ठादि ऋषियोंने यज्ञ आरम्भ किया। रानियों सहित महाराज दशरथ ने यज्ञकी दीक्षा ली। सविधि शास्त्रानुसार यज्ञ आरम्भ हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदि काव्य बालकाण्ड का तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवाँ सर्ग

यज्ञ—कथा

अब संवत्सर अर्थात् एक वर्ष व्यतीत होने पर यज्ञीय अश्व भ्रमणकर आया। सरयूके उत्तर तट पर बागमें यज्ञ होने लगा। ऋष्यशृङ्गको आगेकर महात्मा दशरथजी यज्ञ करने लगे। वेदपाठी व्रतीगण यथोक्त विधि और मीमांसादिके अनुसार यथाकाल विचारकर सभी कृत्य आरंभ किये। तब

सर्व प्रथम; जैसा शास्त्रमें विधान है, उन्होंने 'प्रवर्ग्य' कार्य समाप्त कर, शास्त्रानुसार 'उपसद' नामक इष्टि-कार्य किया और फिर देवताओंकी पूजाकर, प्रसन्न मनसे सब ब्राह्मणों और मुनि वशिष्ठने प्रातःसवनादिक कार्य किया। फिर सर्व-प्रथम इन्द्रको आहुति दे, राजाकी श्रुतिकर मध्यन्दिन सवनादिक कार्यका अनुष्ठान हुआ। पश्चात् ब्राह्मणोंने उन महात्मा राजाका तृतीय सवन कार्य सम्पन्न किया। तब ऋष्यशृङ्ग-प्रभृति वेदके मंत्र, शिक्षा, अक्षर और स्वर सहित पाठकर इन्द्र आदिक श्रेष्ठ देवताओंका आवाहन किया। तब उनके शिक्षा-संयुक्त वेद-मंत्रादि द्वारा आह्वान्वितहो देवगण आकर अपना यज्ञ-भाग ग्रहण करने लगे; जिसमें कोई भी आहुति व्यर्थ न दी गई और न कोई कार्य शेष रहा। मंत्रपूत हो सारे मांगलिक कार्य हुये। कोई भी ब्राह्मण यज्ञ-कार्यमें अज्ञ न था। विशेषतः किसी दिन याचक ब्राह्मणोंको श्रम या क्षुधा का बोध न हुआ। इनकी सेवाके लिए सैकड़ों सेवक नियुक्त थे। यज्ञ-भूमिमें ब्राह्मण, शूद्र, तपस्वी, संन्यासी सभी व्यक्ति भोजन करते थे। बूढ़े, रोगी, स्त्री, बालक, सभी इच्छानुसार भोजन पाने लगे। फिर भी रात-दिन भोजन करते रहने पर भी किसीको तृप्ति न होती थी। सबके मुखसे यही निकला करता कि, अन्न दो, अन्न दो, वस्त्र दो। फिर तो उन सबके मनोरथ पूर्ण होने लगे। उत्तरोत्तर पर्वत-तुल्य कच्चे-पक्के अन्नोंका ढेर दिखाई पड़ने लगा। अनेक देशोंके नर-नारीगण इन महात्मा राजाके यज्ञमें आकर भोजन-पान करने लगे। प्रशंसा पूर्वक ब्राह्मण स्वादिष्ट भोजन पाने लगे। फिर तो;---"हम अघा गये, हे राजन्! आपकी जय हो"---ऐसा कहकर राजाका यशोवर्द्धन करने लगे। उत्तम वस्त्र-धारी ब्राह्मण द्विजातियोंको परसते तथा मणिमय कुण्डलादिधारी उन परसने वालोंकी साहाय्य करते। दूसरी ओर धीर पंडितोंका अन्योंको परास्त करनेका वाद-युक्त विचार आरंभ हुआ। कर्म-कुशल ब्राह्मण प्रतिदिन यज्ञ-कर्म कराने लगे। यूप-रचनामें, इस यज्ञके लिए कुल इक्कीस खंभ गाड़े गये, जिसमें छः बेलका, छः खैर का, छः पलाश का, दो देवदारुका और एक बहेड़े का था। ये खंभ विस्तृत भुजाओंके समान लम्बे थे, जिन्हें शिल्प और यज्ञ-कर्म निपुण शास्त्रीय पुरुषोंने यज्ञ-शोभार्थ बनाया था और जिनपर सोनेका पानी फिरा था। ये इक्किस

खंभ, और चौबिस अंगुलकी एक 'अरन्ति' थी। प्रत्येक वस्त्र-वेष्ठित थे। इस प्रकार ये बड़े सज्जित और शोभनीय थे। इनकी वस्त्रोंसे ढँककर गन्ध, पुष्पादिसे पूजा हुई। प्रयोजित ईंटोंसे शिल्प-निपुण ब्राह्मणोंने अग्निकुण्ड बनाया था। इसके औरभी सभी स्थान ईंटोंके बने थे। इस प्रकार राजसिंह महाराज दशरथके उस यज्ञमें कुशल ब्राह्मणोंने वेदी बनाकर उसपर सुवर्ण की ईंटोंसे पंख-युक्त अठारह प्रस्तरका, जैसी अश्वमेधकी विधि है; एक गरुड़ का भी निर्माण किया था, और अन्य देवताओंके लिए अनेक प्रकारके सर्प, विहङ्ग और तुरंग स्थापित किये थे, तथा बलि देनेके लिए जितने जलधर प्रभृति जन्तु इकट्ठे किए गये थे, वे सब शास्त्रानुसार यथास्थान अलगही बँधे थे। पूर्व-कथित स्तंभोंमें तीन सौ पशु और महाराजका अश्वदूत बाँधा गया था, जिसकी महाराजकी पटरानी कौशिल्याजीने परिचर्य्या-प्रोक्षणादिकर तीनखंगसे प्रसन्नता पूर्वक बध किया। तदनन्तर धर्म-प्राप्तिकी कामनासे कौशिल्याजी स्वस्थचित्त हो एक रात्रि तक उस अश्वके पास रहीं। फिर होताओं, अध्वर्यों और उद्गाताओंने अन्य राजमहर्षियोंको यज्ञीय अश्वके साथ नियोजित किया। फिर श्रुतिकार्यके जानकार इन्द्रियजित ऋत्विजोंने उस अश्वकी बसा (चर्बी) ले शास्त्रानुसार हवन किया। राजा दशरथ यथासमय न्यायपूर्वक अपने पाप-शमनार्थ वह अर्थवसा सुगन्धित धूम्र-गन्ध सूँघने लगे। फिर सोलह ऋत्विज ब्राह्मण घोड़ेके सब अंग-प्रत्यंगादि छेदन कर अग्निमें सविधि आहुतियाँ प्रदान करने लगे। फिर जहाँ अन्य यज्ञोंमें पाकर की शाखामें हवा स्थापितकर आहुति दी जाती है, वहाँ इस अश्वमेध यज्ञमें वेतमें स्थापित करनेका नियम है और तदनुसार ऋत्विज वेत-दंडकी आहुति देने लगे। तीन दिन सवन-क्रिया की गई। तब दिनके मध्यमें पहले दिन अग्निष्टोम, द्वितीय उक्थ, और तीसरे दिन अतिरिक्त यज्ञ अनुष्ठित हुआ। फिर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आप्तोर्याम, जो महायज्ञके कार्य होते हैं, होने लगे। कुल-वर्द्धन राजा दशरथजीने पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण चारों दिशाएँ होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाताको क्रमशः दक्षिणामें वैसेही दान दे दीं कि, जैसे स्वायंभुवमनुने इस यज्ञके करनेपर दक्षिणामें दे दी थीं। इस प्रकार ऋत्विजोंको पृथ्वी-दानकर कुल-वर्द्धन राजा

दशरथने यज्ञ समाप्तकी। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। तब ऋत्विजोंने श्रीमान् इक्ष्वाकुनन्दन निष्पाप राजासे कहा कि,—हे महाराज! आप अकेलेही समस्त भूमण्डलकी रक्षा करने योग्य हैं। हमें यह भूमि नहीं चाहिये। क्योंकि हम इसके पालनमें असमर्थ हैं। हे महीपति! हम तो सर्वदा वेद पढ़ने में ही लगे रहते हैं। इसलिए हमें कुछ धन दे दीजिये। हम आपसे इसके बदले कुछ मणि, रत्न, सुवर्ण या गोधनादि ले सकते हैं, वही आप हमें दीजिये। परन्तु पृथ्वीका अधिपत्य लेकर हमें क्या करना है? ऋत्विजोंके ऐसा कहनेपर राजाने उन वेदपाठी ब्राह्मणोंको एक लक्ष्य गौवें, दश करोड़ अशर्फियाँ और इससे चौगुनी चाँदीकी मुद्राभी, उन ऋत्विजोंको प्रदानकर दीं। इन्हें ग्रहणकर ऋत्विजोंने फिर यह सब वस्तुएँ और धन महात्मा ऋष्य शृङ्ग और बुद्धिमान् वशिष्ठजीके हाथमें दे दिया, और जब उन्होंने भाग करदिया, तब उन सब विप्रोंने अपना-अपना भाग लिया। फिर प्रसन्न हो राजासे अपनी सन्तुष्टता व्यक्तकी। फिर राजाने अभ्यागतोंकोभी बहुत-सा-धन दिया। फिर दरिद्र ब्राह्मणोंको राजाने जम्बू देशका सोना दिया, जिसमें कई करोड़ व्यय हुआ। फिर एक अकिंचन ब्राह्मणके धन माँगने पर राजाने उसे अपने हाथका कंकणही निकालकर दे दिया। जब वह ब्राह्मण अभिलषित पदार्थ पाकर चला गया, तब द्विजवत्सल राजाने प्रसन्नतासे व्यग्र होकर सब ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रणाम किया और ब्राह्मणों ने उन्हें अनेक आशीर्वाद दिया और यज्ञको समाप्त किया। इस प्रकार पापहारी और स्वर्गकारी अश्वमेघ यज्ञको; जिसे अन्य राजा नहीं कर सकते; समाप्तकर राजा दशरथने बड़े प्रेमसे मुनिवर ऋष्यशृङ्गसे कहा—हे सुव्रत! अब आप मेरे वंश-रक्षणका अनुष्ठान कीजिये। इस पर ऋष्यशृङ्गने कहा, तथास्तु। हे राजन्! कुलको बढ़ानेवाले तुम्हारे चार पुत्र होंगे। तब उनके मुखसे यह अश्वास्य-वाक्य सुनकर, राजाने शिर झुकाकर, बड़ी प्रसन्नता प्राप्तकी, और बड़े प्रेमसे ऋष्यशृङ्गसे फिर यही बात कहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

रावणसे दुःखी देवताओंका विष्णुजीकी स्तुति और वरदान

तब मेधावी वेदज्ञ ब्रह्मर्षि (ऋष्यशृङ्ग) कुछ क्षणके लिए मौन हो गये।

फिर विचारकर राजासे बोले—राजन् ! मैं आपको पुत्र प्राप्त करानेके लि
अथर्ववेदमें कथित मन्त्रोंसे सिद्ध होनेवाला पुत्रेष्ठियज्ञ करा[illegible] । ऐसा कहकर
महातेजस्वी ऋषि पुत्रेष्ठि यज्ञ आरंभ कर अथर्व वेदकी विधिसे होम करने लगे
फिर तो देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण विधिके अनुसार अपना-अपन
भाग ग्रहण करनेके लिए उस यज्ञमें एकत्रित हुये। तब वहीं पर सब देवताओंने
सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीसे कहा कि, हे भगवन् ! रावण नामका राक्षस आपक
कृपा-प्रसाद पाकर हम सब लोगोंको बड़ा कष्ट दे रहा है । हममें इतनी शक्ति
नहीं है कि, अपने पराक्रमसे उसको दबा सकें। आपने प्रसन्न होकर उसे व
दे दिया है, और उसके मारे तीनों लोकके प्राणियोंके नाकमें दम हो रह
है। वह दुष्टात्मा जिनको कुछ उच्च-स्थितिमें देखता है, उन्हींके साथ द्वेष करने
लगता है । आपके वरदानसे मोहित होकर वह इतना उद्दण्ड हो गया है कि
ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों, असुरों तथा ब्राह्मणोंका अपमान करता फिरता है
सूर्य उसको ताप नहीं दे सकते, वायु उसके निकट जोरसे नहीं चलता तथ
जिसकी उत्ताल तरङ्गें सर्वदा ऊपर-नीचे होती रहती हैं, वह समुद्रभी रावणको
देखकर भयके मारे स्थिर-सा हो जाता है, और उसमें कम्पन नहीं होता । व
राक्षस देखनेमें भी बड़ा भयंकर है। उससे हम लोग बड़े ही भयभीत हैं
इसलिए हे भगवन् ! उसके बधका कोई न कोई उपाय अवश्य कीजिये
देवताओंकी यह बात सुनकर स्वायंभुव बोले—मैंने उस दुरात्माके बधका उपा
स्थिर कर लिया है । उसने मुझसे यह वर माँगा था कि, देवता, गन्धर्व
यक्ष और राक्षससे मैं न मरूँ । मैंने भी उसे यह वर दे ही दिया । परन्
मनुष्योंको कुछ न समझकर, उस राक्षसने अज्ञानसे इनसे अवध्यता न माँगी
इसलिए मनुष्यके हाथसे ही उसकी मृत्यु होगी । प्रजापति ब्रह्माकी यह वाण
सुन, देवताओं और महर्षियोंको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। इतनेहीमें भगवा
कमलापति वहाँ आ पहुँचे, जिनके अङ्गकी शोभा; शोभाको भी मात कररह
थी । वे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए और पीताम्बर पहने हुए थे । त
बादलों पर सूर्य नारायण जैसे शोभित होते हैं, वैसे ही वे गरुणपर शोभा
मान हो रहे थे। वह अंगोंमें तप्त स्वर्णके बाजू पहने हुए थे । तब जिन्
देखते ही देवतागण स्तुति करने लगे, वे ब्रह्माजीसे मिलकर सावधानी सहि



वसिष्ठ जी द्वारा चारों भाइयों का नामकरण।

सभामें विराजमान हो गये। तब देवताओंने विनीत भावसे उनकी स्तुति करके कहा—हे विभो ! सब मंगलोंके मंगलार्थ; हमलोग आपको किसी कार्यमें नियुक्त करेंगे। राजा दशरथ जो अयोध्याके राजा हैं और ह्री, श्री, कीर्तिके समान जिनके तीन रानियाँ हैं इन बड़े दानी, धर्मज्ञ और महर्षि तुल्य राजाकी उन स्त्रियोंसे आप अपने चार स्वरूप बनाकर, उनके गर्भसे पुत्ररूपमें अवतार धारण कीजिये। इस प्रकार मनुष्यरूपमें प्रकट होकर, आप संसारके लिए प्रबल कण्टकरूप रावणका, जोदेवताओंके लिए अवध्य हो रहा है बध कीजिये। यह मूर्ख राक्षस अपने बढ़े हुए पराक्रमसे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंको बहुत कष्ट दे रहा है। अतएव हम सभी देवता सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष तथा महर्षिगण उसके वधके लिए आपकी शरण आए हैं। हे भगवन् ! आपही हम सब लोगोंकी परमगति हैं। अतः इस देवशत्रुका बध करने के लिए आप मनुष्यलोकमें अवतरित होनेका निश्चय कीजिये। तब इस प्रकार स्तुति करने पर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देवगण ! आपका कल्याण हो, आपलोग भयका त्याग करें। मैं आपका हित करनेके लिए रावणको उसके पुत्र, पौत्र, मन्त्री तथा भाई बन्धुओं सहित युद्धमें मार डालूँगा। देवता और ऋषियोंको भयदायक उस क्रूरकर्मा दुर्धर्ष राक्षसका नाश करके मैं ग्यारह हजार वर्ष तक पृथ्वीका पालन करता हुआ मनुष्य लोकमें निवास करूँगा।' देवताओंको ऐसा वरदान देकर भगवान् विष्णुने मनुष्य-लोकमें पहले अपनी जन्मभूमिके सम्बन्धमें विचार किया। इसके बाद अपनेको चार स्वरूपोंमें प्रकट करने और राजा दशरथको पिता बनानेका निश्चय किया। तब देवता, ऋषि, गन्धर्व तथा रुद्र आदिने दिव्य स्तुतियों द्वारा भगवान् मधुसूदनका स्तवन किया। वे कहने लगे—भगवन् ! रावण बड़ा उद्दण्ड है, उसका तेज अत्यन्त उग्र और घमंड बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वह देवराज इन्द्रसे सदा द्वेष रखता है। साधुओं और तपस्वियोंके लिए तो वह बहुत बड़ा कण्टक है। अतः आप उस भयंकर राक्षसकी जड़ उखाड़ डालिये। हे प्रभो ! सारे जगत्को सतानेवाले उस दारुण पराक्रमी रावणको सेना और बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट करके फिर अपने बैकुण्ठधाममें पधारियेगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदि काव्य बालकाण्ड का पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त॥ १५॥

सोलहवाँ सर्ग

देवताओंको वर दे भगवान् विष्णुका अन्तर्धान होना और अग्निदेव द्वारा राजाको पायसकी प्राप्ति।

तदन्तर विष्णु नारायण यद्यपि रावणके विनाशकी सब उपाय जानते थे, तथापि नम्रतासे देवताओं से बोले—हे देवगण! मैं कैसे उस देवकण्टक राक्षसका संहार करूँगा; क्या इस विषयमें आप लोगोंने भी कोई युक्ति सोच रक्खी है? तब सब देवता विष्णुजी की यह बात सुनकर, उनसे इस प्रकार कहने लगे कि, 'आप मनुष्य शरीर धारणकर रावण का संहार करेंगे। हे शत्रुहन्ता! उस राक्षसने पूर्वकालमें बड़ा तप किया है; जिससे संसार के पूर्व उत्पन्न संसार-रचयिता ब्रह्माजीने उसपर प्रसन्न और सन्तुष्ट हो उसे यह वर दे दिया है कि, मनुष्यको छोड़ तुझे किसी प्राणी से भय न होगा। वह मनुष्यों को तुच्छ समझता था, इस कारण उसने मनुष्यों से अभयत्व नहीं माँगा। इस प्रकार पितामहके वर से वह रावण दर्पित हुआ है। इस समय वह त्रयलोकको उजाड़ कर नर-नारियोंको बलपूर्वक आकर्षण कर रहा है। हे परन्तप! यही निश्चय है कि, मनुष्यके हाथ से उसकी मृत्यु होगी। देवताओं के मुख से ऐसा वाक्य सुनकर भगवान् विष्णुने दशरथजी को पिता कहकर उन्हें बतला दिया। फिर जब निःसन्तान महाकान्तिमान् राजा दशरथजी पुत्रेष्ठि यज्ञ-दीक्षित हो यज्ञ करने लगे, तब उसी समय विष्णुणी उनके यहाँ अवतार लेनेको कृत-संकल्प हुये। इस प्रकार के निश्चय से ब्रह्माजीको आमंत्रणकर महर्षियों से पूजित हो, देवताओंके मध्यसे भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। फिरतो उसी समय यज्ञ-दीक्षित दशरथजीके यज्ञ-कुण्डकी अग्निसे महावीर्यवान् बलशाली अमित-प्रभावशाली वह पुरुष प्रकट हुआ; जो लाल वस्त्र धारण किए 'रक्तमुख' कृष्णवर्ण और दुन्दुभि-शब्द कर रहा था। उसके सिंह-सी रोमावलि थी और वह दाढ़ी, मूछ युक्त था, तथा केश चिकने थे। उसका शरीर पर्वतके शिखर-सा उत्तुङ्ग और वह सिंह-सा विक्रमी था। उसमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे और वह दिव्य अलंकारों से शोभित था। आकृति में सूर्य जैसा, और चन्द्र-किरणोंसा उनका तेज था। वह अग्निके समान प्रदीप्त वस्त्र पहने और तप्त सुवर्ण के समान राजचिन्होंसे भूषित थे।

अपने हाथों में प्रिय पत्नीवत् दिव्य खीरका पात्र लिए, एक उत्तम भार्याकी तरह उसे स्व-करों से सँभाले हुए, राजा दशरथकी ओर देखकर, उनसे बोले——हे नृप ! मुझे प्रजापति ने भेजा है। तब उनका यह वाक्य सुनकर, राजा अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर बोले——हे भगवन् ! स्वागत है, कहिए मुझे क्या करना है ? तब उस पुरुषने कहा—हे राजन् ! आपने जो देवाराधन किया है, उससे अब यह पायस आपको प्राप्त हुई है। हे राजन् ! यह वस्तु देवनिर्मित वंशदायक और प्रशंसित वह पायस है जो आयु और आरोग्यदायक है, आप इसे ग्रहण कीजिये। इसे लेकर आप अपनी अनुरूप रानियोंको खिलाइये। ऐसा करने से उनके गर्भसे आपको कई पुत्रोंकी प्राप्ति होगी, जिनके लिए आप यह यज्ञ कर रहे हैं। राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर उस दिव्य पुरुष के दिए हुए देवान्नपूर्ण सुवर्ण-पात्रको अपने मस्तकपर धारण किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर उस पुरुषकी प्रदक्षिणकी। इसके बाद वह परम तेजस्वी अद्भुत पुरुष अपना काम कर अग्निकुण्डमें अन्तर्धान हो गया। फिरतो जैसे शरद् पूर्णिमाकी शोभा होती है, वैसेही खीर पाने से राजा दशरथकी रानियोंका मुख-मण्डल शोभाको प्राप्त हो गया। वह खीर ले राजा रनिवास में चले गये और वहाँ पहुँचतेही, उन्होंने कौशिल्यसे कहा——लो, यह पायस ग्रहण करो, इससे तुम्हें पुत्र होगा। तब सर्व प्रथम राजाने उस खीरका आधा भाग कौशिल्याको दिया और आधी खीरके दो भाग कर एक भाग सुमित्रा को अवधनाथ ने दिया। फिर पुत्रार्थ उस अमृत समान खीर के शेष बचे आधे भाग को पुत्र होनेके लिए राजाने कैकेयीको दिया। फिर राजाने विचारकर कैकेयीके भागमें से उसके अर्धांशका आधा सुमित्राको दिया। इस प्रकार राजाने प्रजापतिके दिए हुए पायसको रानियोंमें पृथक्-पृथक् बाँट दिया। महाराज के हाथसे वह खीर पाकर उन साध्वी स्त्रियोंने अपना-अपना सम्मान समझा। उनका चित्त प्रफुल्लित हो गया। फिरतो वे श्रेष्ठ रानियाँ राजा प्रदत्त उस पायसको पाकर, तत्कालही गर्भवती हो गईं। उनमें बाल सूर्य-सा तेज आ गया। तब उन्हें गर्भवती देख, अपने मनोरथको प्राप्त हो राजा-दशरथ ऐसे ही बहुत सन्तुष्ट हुए, जैसे स्वर्ग लोक में ऋषियों, सिद्धों, देवताओं

और इन्द्रादिकों से पूजित हो नारायण प्रसन्न होते हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ सर्ग

ब्रह्माजीसे देवताओंकी वार्तालाप और देवांश से बानरोंका जन्म।

इस प्रकार भगवान्‌के, महात्मा दशरथजीका पुत्र होना, स्वीकार कर लेने पर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले—सत्य-प्रतिज्ञ भगवान् विष्णु हम सब लोगों के हितैषी हैं। तुम उनकी सहायताके लिए ऐसे पुत्रोंकी उत्पत्ति करो, जो महान् बली, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, मायावी, शूर, चलनेमें वायुके समान वेगवान्, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, किसीसे परास्त न होनेवाले, तरह-तरहके उपायोंके जानकार, दिव्य शरीरधारी तथा सब प्रकारकी अस्त्रकी विद्या जानने-वाले हो। इसके लिए मैंने पहले ऋक्षराज जाम्बवान्‌को उत्पन्न कर रक्खा है। एकबार मैं जँभाई लें रहा था, उसी समय सहसा मेरे मुखसे प्रकट हो गया। तब ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा सुनकर सब देवता कपिरूपधारी पुत्र उत्पन्न करने लगे। ऐसेही ऋषियों, महात्माओं, सिद्धों, विद्याधरों, सर्पों, चारणों और नागोंने भी बानररूपी पुत्र उत्पन्न किए तथा देवेन्द्रसे महेन्द्रके समान बालिकी, सूर्यसे सुग्रीवकी और बृहस्पतिसे महाकपि तारकनाथकी उत्पत्ति हुई। यह सब वानरोंमें मुख्य और श्रेष्ठ बुद्धिमान हुआ। ऐसेही धनदसे गंधमादन नामक बानर और विश्वकर्मासे महाकपि नल उत्पन्न हुआ। ऐसेही पावकका पुत्र श्रीमान् नील अग्निकेही समान कान्तिमान् हुआ। फिर विचित्ररूप-सम्पन्न दोनों अश्विनीकुमारोंसे मयन्द और द्विविद नामके दो पुत्र उत्पन्न हुये, तथा वरुणसे सुषेण, मेघदेवसे शरभ नामका महाबली बानर और पवनसे श्रीमान् हनुमामान्‌जीकी उत्पत्ति हुई जो गमनतामें गरुणकेही समान थे। हनुमान्‌जी सब बानरोंमें मुख्य हुये। बल-वीर्यमें भी ये सबसे अधिक थे। इस प्रकार रावणके विनाशार्थ असंख्यों बानर उत्पन्न हुये। ये सभी अमितबली, कामरूपी मातङ्ग और पर्वततुल्य देहधारी हुये। इस प्रकार ऋक्ष, बानर और गोपुच्छ सब क्रमशः उत्पन्न हुए। ये सभी देव-सन्तानें बल-विक्रममें अन्योंसे अधिक बलशाली हुईं। इस प्रकार ऋषियोंसे किन्नरियोंमें बन्दरों और रीछोंकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुण, यक्ष, नाग, किन्नर,

सिद्ध तथा विद्याधर आदि सबने प्रसन्नता पूर्वक हज़ारों पुत्र उत्पन्न किये। वे सबके सब इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बलवान् थे। जो जहाँ चाहते, जा–आ सकते थे। दर्प और बलमें वे सिंहको भी मात करते थे। वे पत्थरकी चट्टानों पर प्रहार करते और पर्वत उखाड़कर लड़ते थे। वे सब नख और दाँतोंसे भी शस्त्रोंका काम लेते थे। उन सबको सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान था। वे पर्वतोंको भी कम्पित कर देते और खड़े वृक्षोंको भी तोड़ डालते थे। अपने वेगसे समुद्रमें भी हलचल पैदा कर देते थे। उनमें पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करनेको और महासागरको भी लाँघ जानेकी शक्ति थी। ऐसे बलशाली और इच्छानुसाररूप धारण करनेवाले बानर करोड़ोंकी संख्यामें उत्पन्न हुये। वे सभी अन्यान्य बानरोंके यूथपति थे। बानरोंके बड़े समुदायों पर उनका आधिपत्य था, इन यूथपतियोंने भी अनेकों बानर वीरोंको उत्पन्न किया और वे भी अपने जन्म-दाताओंकी भाँति महान् यूथपति हुये। उनमेंसे हज़ारों यूथपति ऋक्षवान् पर्वतके शिखर पर रहने लगे तथा दूसरोंने नाना प्रकारके पर्वतों और बनोंका आश्रय लिया। इन्द्रकुमार बालि और सूर्यनन्दन सुग्रीव ये दोनों भाई थे। समस्त वानर-यूथपति उन दोनोंके अधीन हो गये। बहुतेरे वानर नल, नील, हनुमान् तथा अन्य यूथपतियोंके आश्रयमें रहने लगे। उन सबके शरीर और लक्षण नाना प्रकारके थे। वे शूरवीर बानर पर्वतों बनों और समुद्रों सहित समस्त भूमण्डलमें फैल गये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी सहायता के लिए उन महाबली बानर यूथपतियोंसे पृथ्वी समाच्छन्न हो गई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

अट्ठारहवाँ सर्ग

दशरथ-अयोध्यागमन और रामादि-जन्मकी कथा

महात्मा दशरथका यज्ञ समाप्त होनेपर देवगण अपना-अपना भाग ग्रहणकर अपने-अपने स्थानको चले गये। राजा भी दीक्षा-विधि समाप्तकर रानियों सहित बल-बाहन और भृत्यों सहित अयोध्यापुरीसे जानेकी इच्छा करने लगे। विदेशी नृपति भी यथोचित सम्मान पाकर ऋष्यशृङ्गको प्रणामकर अपने-अपने देशोंको चले गये। तब उन सबके चले जानेपर राजा दशरथ

ब्राह्मणोंको आगेकर अयोध्यामें प्रविष्ट हुये। ऋष्यशृङ्ग भी शान्ता सहित पूजित हो अपने घर लौटे। भृत्यों सहित राजा दशरथने उन्हें बहुत दूर तक पहुँचाया। इस प्रकार सब आमन्त्रितोंको बिदाकर सिद्धकार्य हो पुत्र होनेकी चिन्तामें सुखसे समय व्यतीत करने लगे। जब पुनर्वसु नक्षत्रमें रवि, मंगल, शनि, गुरु और शुक्रके मेष, मकर, तुला, कर्क, मीन राशिमें पंच-ग्रहोंको और बृहस्पति, चन्द्र सहित कर्क राशिमें उदय हुए, तब कौशल्याने दिव्य लक्षण संयुक्त, सर्वलोकोंके नमस्कार करने योग्य, जगत्‌के नाथ श्री रामचन्द्रजीको जन्म दिया। महाभाग दशरथके यह पुत्र विष्णुके अर्द्धांशमें उत्पन्न हुए; जिनके लाल होंठ, लाल नेत्र, विशाल भुजा और स्वर दुन्दुभीके (नगाड़ेके) समान थे। वे इक्ष्वाकुका वंश-वर्द्धन करनेवाले और आनन्दवर्द्धन करनेवाले थे। उस अमित तेजस्वी पुत्रके जन्मसे रानी कौशल्या बड़ी शोभायमान हुईं। तत्पश्चात् कैकेयीके गर्भसे सत्पराक्रमी भरतका जन्म हुआ। तदन्तर रानी सुमित्राने लक्ष्मण और शत्रुघ्न– इन दोनों पुत्रोंको जन्म दिया। भरत सदा प्रसन्न चित्त रहते थे। उनका जन्म पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में हुआ था। सुमित्राके दोनों पुत्र अश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्नमें उत्पन्न हुए थे। जबकि सूर्य अपने उच्च-स्थानमें विराजमान् थे। इस प्रकार दशरथजीके पृथक्-पृथक् ये चार पुत्र उत्पन्न हुये। ये चारों ही गुणज्ञ, रूपवान् तथा नक्षत्रों के समान ही प्रभा-सम्पन्न हुये। उस समय गन्धर्व मधुर संगीत और अप्सरायें नृत्य करने लगीं। देवता दुन्दुभि बजा आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। अयोध्यामें उत्सवका श्रोत प्रवाहित हो उठा। मार्गों तथा घाटों पर नट-नर्त्तकोंकी भीड़ जमा हो गई। गाने-बजानेकी धूम मच गई। गलियाँ रत्न-शोभित हो गईं। इस उत्सवमें राजाने सूत, मागध और बन्दीजनोंको बहुत-सा धन दिया। ब्राह्मणों को भी असंख्य गौवें दीं। ग्यारह दिनके बाद पृथ्वीपतिने पुत्रोंका नामकरण करवाया। महर्षि वशिष्ठजीने प्रसन्नता सहित सबके नामकरण किये। तब ज्येष्ठ पुत्रका नाम राम, कैकेयीके पुत्रका भरत, सुमित्राके एक पुत्रका लक्ष्मण और दूसरेका शत्रुघ्न रक्खा। राजाने ब्राह्मणों, पुरवासियों तथा राज्य-निवासियोंको भोजन कराया। ब्राह्मणोंको बहुतसे उज्वल रत्न दान दिये

वशिष्ठजीने समय-समयपर उन बालकोंके जातकर्म, नामकरण आदि सभी संस्कार कराये। इन पुत्रोंमें रामचन्द्रजी पताकारूप और पिताके सबसे अधिक प्रिय हुये। जिस प्रकार ब्रह्माजी सब प्राणियोंके प्रिय होते हैं ऐसे ही रामचन्द्रजी हुये। सब भाई शूरवीर वेदविद् और सर्वोपकारी हुये। सभी ज्ञान-सम्पन्न और सर्व-गुणाधार हुये। उनमें रामचन्द्रजी तो और ही सर्वाधिक्य अधिक पराक्रम-शाली हुये। निर्मल चन्द्रमाके समान ही ये सबके प्रिय हुये। हाथी, घोड़े और रथ पर बैठनेमें यह बड़े निपुण हुये। ये जैसे धनुर्विद्यामें पारदर्शी हुए, ऐसे ही पितृसेवामें भी रत हुये। लक्ष्मीवर्द्धन लक्ष्मणभी बाल्यकालसे ही रामचन्द्रानु-रागी हुये। लोकोंके आनन्ददाता ये अपने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रकी आज्ञा-पालक हुये तथा अपने शरीरसे भी अधिक ये उनसे प्रेम रखते। मानों रामचन्द्रके दूसरे प्राण ही थे। बिना रामचन्द्रके शयन किए ये कभी शयन नहीं करते। खाने-पीनेकी वस्तुएँ भी बिना रामके खाये कभी नहीं खाते! शिकारमें सर्वदा रामके साथ रहते। लक्ष्मणकी नाईं शत्रुघ्न भी भरतजीके प्राणों से अधिक प्रिय हो गये। जैसे शत्रुघ्नजी भरतको प्यार करते थे, ऐसे ही भरतजी भी शत्रुघ्नजीको बड़ा प्यार करते थे। तब ऐसे सर्वगुण सम्पन्न पुत्रोंको देखकर लोकस्वामी दशरथ वैसे ही प्रसन्न रहने लगे, जैसे देवगणोंसे ब्रह्माजी सन्तुष्ट रहा करते हैं। जिस समय वे पुरुषसिंह वेद पढ़ने लगे, तो शीघ्रही धनुर्विद्याके पारांगत हो गये। साथही पितृ-सेवामें भी बड़े रत हुये। तब राजा दशरथको उनके विवाहकी चिन्ता हुई। राजाके समान ही उनके मंत्री, मित्र और पुरोहितोंने भी इस विषयमें चिन्ता की।

तब इस प्रकार जब वे महात्मा चिन्ता कर ही रहे थे कि, इसी समय मुनिवर विश्वामित्रजी वहाँ द्वार पर जा पहुँचे। उन्होंने राज-दर्शनके लिए द्वारपालसे प्रार्थना की और कहा कि, मैं गाधिका पुत्र हूँ, तुम लोग मेरे आनेका संवाद राजाको शीघ्र दो। तब विश्वामित्रकी यह बात सुन, दो द्वार-पालोंने तत्काल ही राज-भवनमें प्रवेश किया और जाकर इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न राजा दशरथजीको वह समाचार दिया। तब द्वारपालोंके वचन सुन राजा दशरथजी पुरोहित और मंत्रियोंको साथ लेकर, जैसे इन्द्र ब्रह्माकी अगवानी करें, वैसेही

वे उन्हें आगे लेनेके लिए गये। देखा तो बड़े ही तीक्ष्ण कठिन व्रतधारी वे ऋषि-श्रेष्ठ सामनेही अपने दीप्तिसे प्रतीप्त खड़े हैं। तब अत्यन्त प्रसन्न हो राजा ने मुनिजीको अर्घ्यदिया, जिसे मुनिने शास्त्रानुसार ग्रहणकर राजासे कुशल-प्रश्न किया और पुर, कोश, देश और बन्धु-बान्धवोंका कुशल-मंगल पूछा। फिर धर्मात्मा विश्वामित्रने राजासे यह पूछा कि,—हे भूमिनाथ! कहिए, आपके सामन्त, नृपति और रिपुदल वशमें तो हैं? देवताओं और मनुष्यों के कार्य तो सुखसे सम्पादित हो रहे हैं? फिर उन महात्मा विश्वामित्रजीने वशिष्ठजीसे मिलकर उनकी कुशल और अन्य ऋषियोंसे कुशल पूछकर प्रसन्न मनसे राज-भवनमें प्रवेश किया। वहाँ भी यथोचित पूजित हो आसन पर बैठे। फिर प्रसन्न मन राजा; विश्वामित्रजीकी भलीभाँति पूजाकर प्रसन्न हो उनसे बोले—हे परमोदार! आपका यह समागम अमृत-प्राप्तिके ही समान है। जैसे निर्जल-प्रदेशमें जलकी वर्षा हो, अथवा अपनेही समान रूप, गुण, अवस्थावाली स्त्रियोंमें पुत्र रहितको पुत्रहो, या कोई खोई हुई वस्तु पा जावे। ऐसेही हर्ष-कालकी अवस्थाके समान, मैं इस समय आनन्दित हुआ हूँ। इसी प्रकार मैं आपका आगमन मानता हूँ। हे मुने! कहिए, आप सुखसे तो आये? अब आज्ञा दीजिये कि, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? आप सेवासुश्रुषाके योग्य पात्र हैं। हे ब्रह्मन! मेरे भाग्यसे ही आपका यहाँ आगमन हुआ है। जो हो, मैंने आज जाना है कि, मेरा जीवन-जन्म सुफल हुआ। तब महाराज दशरथके इन विनम्र वचनोंको सुनकर परम यशस्वी और सर्व-गुण सम्पन्न महर्षि विश्वामित्रजी बड़े हर्षित हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का अठारहवाँ सर्ग समाप्त॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

[विश्वामित्र द्वारा श्रीदशरथजीसे राम-याँचना और महाराज दशरथजीका खेद तथा विश्वामित्रजी द्वारा राम-महिमा वर्णन]

राजसिंह महाराज दशरथके इन अद्भुत और विस्तृत वचनोंको सुन-कर महातेजस्वी विश्वामित्र हर्षितरोम हो यह कहने लगे कि, हे रजशार्दूल! ऐसे वचन, आप जैसे इक्ष्वाकुवंशी और वशिष्ठजीके यजमानको छोड़कर

और कौन कहेगा ? हे राजशार्दूल ! अब मैं अपनी हृद्गत बात कहता हूँ कि जिसके अनुसार कार्य करने आप अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करें । हे पुरुषर्षभ ! जब मैं नियममें स्थित (यज्ञ-दीक्षित) होता हूँ, तब कामरूपी दो राक्षस आकर उसमें विघ्न करने लगते हैं और जब इस प्रकार बहुत दिनों तक का मेरा यज्ञ पूर्ण होनेको आता है, तब वे राक्षस आकर यज्ञवेदी पर रक्त-मांस की वर्षा करने लगते हैं, जिससे मेरा नियम भ्रष्ट हो जाता है । तब मैं हतोत्साहित हो, वहाँ से हट जाता हूँ और नियममें क्रोध करना निषेध है जिससे मैं उन्हें शाप भी नहीं दे सकता । इसलिए हे राजशार्दूल ! काकपक्षधारी सत्य-पराक्रमी, शूर, अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्रको मुझे दीजिये । वे मुझसे रक्षित हो, अपने तेजसे, मेरे यज्ञकी रक्षा करते हुए, उन राक्षसोंका नाश कर देंगे । मैं इनके कल्याणके लिए बहुत-सी विधियाँ और क्रियाएँ इन्हें बतलाऊँगा जिससे इनकी त्रयलोकमें ख्याति हो जायगी । श्रीरामचन्द्रके समक्ष वे राक्षस कभी ठहर न सकेंगे, जिन्हें कोई अन्य मनुष्य नहीं मार सकता । क्योंकि वे दोनों बड़े बलवान् और घमंडी हैं, पापवश जिनके मरनेका अब समय बीत रहा है । हे राजशार्दूल ! महात्मा रामचन्द्रजी, इसके लिए पर्याप्त हैं । हे राजन् ! आप पुत्र-स्नेहमें न पड़ेंगे । मैं आपसे कहता हूँ कि आप उन राक्षसोंको मरा हुआ ही समझें । मैं महात्मा वशिष्ठ और वामदेवादिक तपस्वी जो यहाँ बैठे हैं, ये सभी, सत्य-पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीको जानते हैं । हे राजेन्द्र ! यदि आप यह चाहते हों कि, संसारमें आपका पुण्य और यश स्थायी हो जाय, तो आप श्रीरामचन्द्रजीको मुझे दीजिये । इसके लिए आप चाहें तो प्रमुख वशिष्ठजीसे और अपने मंत्रियों आदि से परामर्श भी करलें और यदि ये लोग कहें, तो श्रीरामचन्द्रजीको मेरे साथ कर दीजिये । मेरे यज्ञकी पूर्तिके लिए, दश दिनके लिए राजीवलोचन श्रीराचन्द्रजीको मुझे शीघ्र दीजिये, जिसमें मेरे यज्ञका समय न निकलने पावे—ऐसा ही कीजिये । आपका कल्याण हो, आप मनमें शोक न करें । इस प्रकार कहकर वे महातेजस्वी धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये । तब उनकी इस शुभ बातको सुनकर राजेन्द्र दशरथ तीव्र भयसे शोकग्रस्त हो गये । उनका मन व्याकुल हो गया । वे मूर्च्छित हो सिंहासनसे गिर पड़े ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १९ ॥

बीसवाँ सर्ग

महाराज दशरथका श्रीरामचन्द्रजीको मुनीश्वर विश्वामित्रके साथ भेजनेसे इनकार करना।

विश्वामित्रजीके ऐसे कथनको सुनकर राजशार्दूल दशरथजी एक मुहूर्त्त तक संज्ञाहीन रहे। सचेष्ट होने पर बोले—मेरे राजीवलोचन राम तो अभी केवल पन्द्रह वर्षके-ही हैं, जिन्हें मैं किसी प्रकार भी राक्षसोंके साथ युद्ध करने योग्य नहीं समझता हूँ। हाँ, मैं भलेही अपनी बृहद् सेना सहित उन राक्षसोंसे युद्ध करूँगा। मेरे ये शूर युद्ध विद्यामें बड़ेही दक्ष और पराक्रमी हैं। ये वेतनभोगी योद्धा उन राक्षसोंसे युद्ध करने योग्य हैं। आप रामको न ले जाइये। मैं स्वयं धनुष बाण लिए हुए रणक्षेत्रमें खड़ा और आपके यज्ञ की रक्षा करता हुआ; जब-तक मेरे शरीरमें प्राण रहेंगे, राक्षसोंसे लड़ता रहूँगा, जिससे आपकी व्रतचर्या निर्विघ्न समाप्त होगी। मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा। आप श्रीरामको वहाँ न ले जाइये। क्योंकि मेरा राम तो अभी निरा बालक ही है। न अनुभव ही है और न शत्रुके बलाबलको ही समझेगा और न बुद्धि विद्या ही में कुशल है। राक्षस बड़े छल-कपटका युद्ध करते हैं, राम उनका सामना करनेमें योग्य नहीं हैं। मैं श्रीरामचन्द्रजीका उनसे युद्ध करना कदापि सहन नहीं कर सकता। श्रीरामके वियोगमें मैं क्षण भर भी जी नहीं सकता। अतः हे मुनीश्वर! आप उनको न ले जाइये और यदि उनको ले-ही जाना चाहें तो मुझे और मेरी चतुरङ्गिणी सेनाको भी उनके साथही लेते चलिये। चौथेपनमें बड़े क्लेशसे मैंने इन्हें पाया है। अतः इनको न ले जाइये। चारों पुत्रोंमें सबसे मेरा रामचन्द्रजी परही अधिक प्रेम है। वह धर्मप्रधान और ज्येष्ठ हैं। अतः राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीको आप न ले जाइये। अच्छा, यह तो बतलाइये कि, उन राक्षसोंमें कितना बल है और किसके पुत्र हैं? वे कितने बड़े हैं और उनके कौन-कौन सहायक हैं, और श्रीरामचन्द्र उन्हें कैसे मार सकेंगे? हे भगवन्! यह बतलाइए कि, हमारी सेना और मैं उन मायावियों और दुष्ट भाववाले बड़े पराक्रमी राक्षसोंके साथ युद्धमें क्योंकर ठहर सकता हूँ? तब महाराज दशरथके इन वचनोंको सुनकर विश्वामित्रजी बोले—हे राजन्! पुलस्त्यके वंशमें उत्पन्न रावण नामका राक्षस हुआ है जो ब्रह्माजीके

वरदानसे त्रैलोक्यको दुःख दे रहा है। स्वयं भी वह बड़ा बलवान् और पराक्रमी है तथा अनेकों राक्षस उसके अनुयायी हैं। सुनते हैं कि, महाबली रावण राक्षसोंका राजा है। वह साक्षात् कुबेरका भाई और विश्रवा मुनिका पुत्र है। वह महाबली स्वयं तो यज्ञमें विघ्न नहीं करता, किन्तु उसकी प्रेरणासे दो बड़े बलवान राक्षस जिनका नाम मारीच और सुबाहु है; ऐसे यज्ञोंमें विघ्न डालते हैं। विश्वामित्रके इन वचनोंको सुनकर महाराज दशरथने उनसे कहा—मैं तो उस दुरात्माका सामना नहीं कर सकता। हे धर्मज्ञ! आप मेरे पुत्र पर और मुझपर दया करें। आप मुझ अल्पभागीके केवल देवता-से पूज्य ही नहीं, किन्तु गुरु भी हैं। जब देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी और सर्प भी रावणको युद्धमें नहीं जीत सकते, तब फिर बेचारे मनुष्य तो किस गणनामें हैं? रावण युद्धमें बलवानोंके बलको क्षय कर देता है, अतएव मैं उसके अथवा उसकी सेनाके साथ युद्ध-विजयी नहीं हो सकता। तब भला मैं ऐसोंसे युद्ध करनेके लिए अपने देव-तुल्य पुत्रको, जो युद्ध-विद्यामें अदक्ष है; कैसे भेज सकता हूँ? हे ब्रह्मन्! मैं अपने नन्हेंसे पुत्रको, न दूँगा। सुन्द-उपसुन्दके पुत्र मारीच और सुबाहु जो युद्ध-कलामें बड़े ही बलशाली और युद्धमें पूर्ण दक्ष हैं तथा वही आपके यज्ञमें जो विघ्न करते हैं, उनके साथ लड़नेके लिए मैं अपने पुत्रको न भेजूँगा। उनको छोड़ आप और जिससे कहें, उनके साथ अपने मित्र तथा बान्धवों सहित मैं लड़नेको तैयार हूँ। महाराज दशरथके इन असङ्गत वचनोंको सुन, कौशिक-सुत विश्वामित्रजी बड़े ही कुपित हो गये। अग्निमें पड़ी घृताहुति-सी उनका क्रोधाग्नि धधक उठा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ सर्ग

विश्वामित्रके क्रुद्ध होनेपर गुरुवशिष्ठका राजा दशरथको समझाना।

महाराज दशरथके पुत्र-स्नेहसे सने हुए वचनोंको सुनकर विश्वामित्रजी क्रुद्ध हो बोले—"हे राजन्! आप महाराज रघुके कुलमें उत्पन्न होकर पूर्वकी हुई प्रतिज्ञासे इन्कार करते हैं; जो आपकी वंश-परम्पराके विपरीत है और अच्छा नहीं है। अच्छा, हे राजन्! यदि आपकी यही इच्छा है तो क्षमा कीज़िएगा, मैं जिस मार्गसे आया हूँ; उसी मार्गसे लौट जाऊँगा। आप अपनी

प्रतिज्ञा भङ्गकर अपने बन्धुओं सहित सुखी रहिये।" इस प्रकार बुद्धिमान् विश्वामित्रके कुपित होनेपर समस्त पृथ्वी कम्पित हो उठी। देवता भयभीत हो गये। तब सारे संसारको त्रस्त देखकर महर्षि वशिष्ठजी राजा दशरथसे बोले-- आप महाराज इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न मानों साक्षात् धर्मकी दूसरी मूर्ति हैं। आप श्रीमान्, धृतिवान् और सुव्रतधारी होकर धमका त्याग न कीजिये। तीनों लोकमें आप धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं। इसलिए आप अपने धर्मकी रक्षा कीजिये। हे राजन्! जो कोई प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ति नहीं करता, उसे इष्टा-पूर्त्त नाशका पाप लगता है। अतः आप श्रीरामचन्द्रजीको भेज दीजिये। श्रीरामचन्द्र चाहे अस्त्र विद्यामें कुशल हों या न हों, राक्षस उनका कुछ भी नहीं कर सकते। फिर जब विश्वामित्र उनके रक्षक हैं, तब श्रीरामचन्द्रका कोई क्या कर सकता है? यह विश्वामित्र शरीरधारी धर्म हैं, जो बड़े ही बल-वान् हैं। इनसे बढ़कर बुद्धिमान् और तप-परायण इस संसारमें तो दूसरा कोई नहीं है। अस्त्र विद्यामें त्रैलोक्यमें तथा चराचरमें यह अद्वितीय हैं। इन्हे सब नहीं जानते और न जान सकते हैं। इनकी महिमाको देवता, ऋषि, असुर, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और महोरग—कोई भी नहीं जानता। प्रजापति कृशाश्वके परम धार्मिक पुत्रोंने इन विश्वामित्रको, जब ये पहले राज्य कर रहे थे, सब अस्त्र दिए थे, जिन प्रजापति कृशाश्वकी कन्याओंके ये पुत्र हैं। ये एक रूप नहीं हैं। ये बड़े ही बलवान्, दीप्तिमान् और सबको जीतनेमें समर्थ हैं। दक्ष-प्रजापतिकी जया और सुप्रभा नामक दो कन्याओंने सैकड़ों अति चमचमाते हुए अस्त्र उत्पन्न किए, जिनमें जयाने ५०० अस्त्ररूपी पुत्र उत्पन्न किए (पाँच सौ अस्त्रोंका चमत्कार किया) जो बड़े ही तेजस्वी थे और मायावी असुर-सेनाका संहार करनेमें समर्थ हैं। फिर सुप्रभाने भी पाँच सौ शस्त्रास्त्र रूपी पुत्र उत्पन्न किए जिन सबका नाम संहार पड़ा। ये परम तेजस्वी अस्त्र कभी निष्फल नहीं जाते। विश्वामित्रजी इन सब अस्त्रोंके जानकार हैं। इनके अति-रिक्त इन महात्मामें और भी नये-नये अस्त्रोंके निर्माणकी शक्ति है। हे राघव! इन मुनिवर सर्वज्ञ महात्मा विश्वामित्रको तीनों कालकी बात ज्ञात है। आप इन महातेजस्वी विश्वामित्रजीके साथ श्रीरामचन्द्रजीको निःसन्देह भेज दीजिये। इन विश्वामित्रजीमें इतनी शक्ति है कि, ये उन राक्षसोंको स्वयंही मार सकते

हैं। परन्तु ये आपके पुत्रके हितार्थ ही उन्हें आपसे माँगने आए हैं।" तब गुरुदेव वशिष्ठजीके इस प्रकार समझाने पर महाराज दशरथ, श्रीरामचन्द्रजीको विश्वामित्रजीके साथ भेजनेको उद्यत हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्ड का इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

बाईसवाँ सर्ग

श्री राम और लक्ष्मण विश्वामित्रके साथ तथा ऋषि द्वारा उन्हें बला, अतिबला नामक विद्याका दिया जाना।

इस प्रकार वशिष्ठजीके समझाने पर राजा दशरथने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीको बुलवाया और भेजते समय माता कौशल्या, पिता दशरथ तथा कुल-पुरोहित वशिष्ठजीने मन्त्र-अभिमन्त्रित मंगलाचार किया। राजाने प्रसन्न होकर पुत्रोंका मस्तक सूँघकर उन्हें विश्वामित्रको सौंपा। विश्वामित्रके साथ कमल-लोचन श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके जानेके समय शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु चलने लगा, आकाश से पुष्पोंकी वर्षा हुई और देवताओंने नगाड़े बजाये। अयोध्यामें भी जगह-जगह शंखध्वनि हुई और लोगोंने नगाड़े बजाये। आगे-आगे विश्वामित्र और उनके पीछे महायशस्वी श्रीरामचन्द्र और उनके पीछे हाथमें धनुष लिए और शिरपर बाल सँवारे सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी चले जाते थे। उस समय उनका वह चलना ऐसाही था जैसे ब्रह्माजीके पीछे अश्विनीकुमार चल रहे हों। उस समय उन महाद्युतिमान् दोनों सुन्दर भाइयों श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीसे मुनि उसी प्रकार शोभित हो रहे थे, जैसे स्कन्ध और विशाखसे शिवजी शोभित होते हैं। जब अयोध्यासे छः कोश दूर सरयूके दक्षिण तटपर पहुँचे, तब वहाँ विश्वामित्रजी, श्रीरामचन्द्रजी से मधुरवाणीमें बोले कि—"हे वत्स! जलसे शरीर शुद्ध कर डालो अथवा आचमन करो, अब विलम्ब मत करो। शरीर शुद्ध हो जाने पर मैं तुम्हें बला और अति-बला विद्याएँ, जिनके प्रभावसे तुम्हें न तो कभी श्रम प्रतीत होगा, न आक्रान्त होगे और न कभी रूप-विपर्यय होगा। सोते समय अशुद्ध दशामेंभी राक्षस लोग तुम्हारा कुछ न कर सकेंगे और तुम्हारे बाहुबल की समानता कोई न कर पावेगा। तुम्हारे सौभाग्य, दाक्षिण्य और चतुरताको तीनों लोकोंमें कोई न पावेगा। हे राम! इन

विद्याओंके सीखलेनेपर तुम्हारे बराबर किसी बातका उत्तर देने में भी तुम्हारी समताका कोई न होगा। हे नरोत्तम राम ! सब विद्याओंकी माताएँ इन बला अतिबला नाम्नी विद्याओंके प्रभावसे तुमको भूख और प्यासभी कभी न सतावेगी। इसके पढ़ लेनेसे तुम्हारा अतुल यश सर्वत्र फैल जायगा। क्योंकि ये दोनों तेजस्विनी विद्याएँ पितामह ब्रह्माकी पुत्री हैं। हे काकुत्स्थ ! हम तुम्हें ये विद्याएँ पढ़ावेंगे, क्योंकि तुम्हीं इनके योग्य पात्र हो। यद्यपि जो बातें इनके पढ़ने से उत्पन्न होती हैं, उनमें से अनेक निस्सन्देह अब भी तुममें विद्यमान हैं; तथापि तुम्हारे द्वारा प्राप्त होने पर इनकी उन्नति होगी। इनका प्रचार होगा।" यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने जलसे आचमनकर पवित्र और प्रसन्न चित्त होकर विश्वामित्रसे उन विद्याओंको सीखा। उन विद्याओंके सीखने पर परम-पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीकी वैसीही शोभा हुई, जैसी शरत्काल के सूर्यकी होती है। पश्चात् दोनों भाइयोंने गुरुके समान विश्वामित्रकी चरण-सेवा आदि करके सरयू-तट पर वह रात मुनिके साथ आनन्द पूर्वक व्यतीत किये। राजकुमार होनेके नाते दशरथनन्दन दोनों बलवान् राजकुमारोंने तृणों की शय्या पर ही सोकर वह रात्रि व्यतीत की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

तेईसवाँ सर्ग

गङ्गा और सरयूके सङ्गमपर विश्वामित्रजीका दोनों राजकुमारों को शिवाश्रम दिखलाना और उनका वृतान्त कहना।

प्रातःकाल चार घड़ी तड़के ही दोनों राजकुमार सूखे पत्तों की शय्यासे सोकर उठ गए, तब महामुनि विश्वामित्रजी ने उनसे कहा—हे कौशल्यानन्दन राम ! प्रातः होने को है। अब उठ बैठो और प्रातःकृत्य कर डालो। तब परमोदार ऋषिके ये वचन सुनकर राजकुमार उठ बैठे। फिर स्नान कर सूर्य को अर्घ्य दिया। देवर्षि तर्पण किया। पश्चात् परम मंत्र गायत्री का जप किया। फिर प्रसन्नता सहित तपस्वी विश्वामित्र प्रणामकर आगे चलनेको तैयार हुए। तब उन्हें साथ लिए हुए विश्वामित्र उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ श्रीगङ्गाजी और श्रीसरयूजीका शुभ सङ्गम है और जिसे वहाँ उन्होंने देखा। वहाँ उन्होंने उन अनेक उग्रतपा ऋषियों के परम पवित्र आश्रम देखे, जो

वहाँ सहस्रों वर्षोंसे कठोर तप कर रहे थे। उस आश्रमको देख श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी परम प्रसन्न हुये तथा विश्वामित्रसे यह बोले कि, हे भगवन्! यह परम पवित्र आश्रम किसका है और यहाँ अब कौन रहता है? हमें इसका वृतान्त सुनने की बड़ी कुतूहल है। यह सुन विश्वामित्रजी हँस पड़े और बोले—हे राम! सुनिए, पहले एक कन्दर्प मुनि थे जिन्हे पण्डितजन कहते हैं कि शरीर धारी थे और इसी स्थानपर नियमतः ध्यानावस्थित हो शिवजीभी तप किए थे। जब वे देवेश महादेवजी विवाहकर देवताओं सहित चले आते थे, तब कामदेवने उनके मनमें विकार उत्पन्न करना चाहा तो शिवजीने उसे एक हुङ्कार दी और पुनः क्रुद्ध होकर जो अपना तीसरा नेत्र खोलकर देखा तो उनके देखते ही उस दुष्टके शरीरके सब अङ्ग प्रत्यङ्ग अलग-अलग होकर बिखर गये। तब से वह अब-तक बिना शरीरका हो गया है। हे राघव! तभी से उसका नाम अनङ्ग पड़ा है और उसके अंग जिस देशमें गिरे थे, वह अंगदेशके नामसे विख्यात् है। यह महादेवजीका आश्रम है। इस आश्रमके वासी समस्त मुनि, परम्परासे शिवजीके भक्त, बड़े धर्मात्मा और पाप-रहित हैं। हे शुभदर्शन राम! आजकी रात हम यहीं ठहरेंगे और कल इन पुण्यशलिला नदियोंको पारकर हमलोग आगे चलेंगे। हे पुरुषोत्तम! पहले स्नानकर, पवित्र होकर तथा जप, होमकर, हम सब इस पवित्र आश्रममें प्रवेश करेंगे। ये लोग वहाँ यह वार्त्ता करही रहे थे कि, उस आश्रमके वासी मुनियोंने इन लोगोंका आगमन जानकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और विश्वामित्रजीको अर्घ्यपाद्य अर्पण किया। राम-लक्ष्मणका आतिथ्य-सत्कार किया। उनसे सत्कारित हो तथा उन मुनियोंसे कथा वार्ता सुनकर इन्होंने सन्ध्योपासनादिक नित्य कर्म किये। तदुपरान्त आश्रमवासी सभी ऋषि-गण विश्वामित्रजीके पास आये। फिर इन्हें अपने आश्रममें लिवा ले गये। तब उस कामाश्रममें राम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्रजीने सुखसे वह रात्रि व्यतीत की और मुनियोंने राजकुमारोंको भाँति-भाँतिकी मनोरंजक कहानियाँ सुनायीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदि काव्य बालकाण्ड का तेइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ सर्ग

राम, लक्ष्मण सहित विश्वामित्र का गंगाके पार हो ताड़का-बन में प्रवेश ।

प्रातःकाल होते ही प्रातः क्रिया कर दोनों राजकुमार विश्वामित्रजीक आगेकर नदीके तटपर पहुँचे । उस आश्रमके निवासी व्रतधारी ऋषिगण भ उनके साथ नदीके तट पर गये और एक अच्छी नौकाका प्रबन्धकर विश्व मित्रजीसे बोले—"अब आप विलम्ब न करें और राजपुत्रोंको लेकर नौक पर सवार हों ।" यह सुन विश्वामित्रजीने उन ऋषियोंकी पूजाकी औ सागरगामिनी उस नदीके पार पहुँचे । जब नौका बीच धारमें पहुँची, त वहाँ जलकी तंरगोंके परस्पर टकरानेका शब्द श्रीरामचन्द्रजी और उनके छो भाई लक्ष्मणने जो सुना तो नौकारूढ़ विश्वामित्रजीसे श्रीरामचन्द्रजीने पूछाकि 'हे महाराज ! यह जो तुमुल शब्द हो रहा है, वह क्या है ?' तब विश्व मित्रजीने कहा—हे राम ! कैलाश पर्वत पर ब्रह्माजीने अपने मनसे ए सरोवर बनाया । हे नरशार्दूल ! मनसे बनानेके कारण उसका ना 'मान सरोवर' पड़ा । ब्रह्माजीके उसी मानसरोवरसे निकली हुई पवित्र सर नदी जो अयोध्या होती हुई बहती है, यहाँ गंगाजीसे मिलती है । इन दोन सोताओंके जलोंके परस्पर टकरानेसे यह शब्द होता है । तुम, इसको मन प्रणाम करो । दोनों राजकुमारोंने उन नदियोंको प्रणाम किया । इतने उनकी नौका भी दक्षिण तट पर ताटका वनमें सहजही जा लगी । तब व नावसे उतर वे दोनों आगे चले । चलते-चलते उन्होंने एक बड़ा भयान बन देखा । तब उस निर्जन वनको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रजी पूछा कि, 'हे मुनिवर ! यह बन तो बड़ा ही भयानक है । इसमें झीं झंकार रहे हैं और बड़े-बड़े भयंकर जीवोंके बाद से परिपूर्ण है। बाज प भी बड़ी दारुण बोली बोल रहे हैं । इस वनमें देखिए, सिंह, ब्याघ्र, बर और हाथी भी बहुत देख पड़ते हैं । अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भी यह व कैसा सघन और भयंकर हो गया है ।' तब यह सुन महातेजस्वी विश्वामि श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—हे वत्स श्री रामचन्द्र ! सुनो, मैं बतलाता हूँ कि यह विकट बन जिसका है । पहले यहाँ धन-धान्यसे पूर्ण मलद और क

नामके दो देश बसे हुए थे। हे राम! वृत्रासुरको मारकर जब इन्द्र अपवित्र अवस्थामें भूखे प्यासे थे, तब उनके शरीरमें ब्रह्महत्याने आकर प्रवेश किया। तब इन्द्रको उनकी अपवित्रता दूर करनेके लिए देवताओं और तपस्वी ऋषियोंने पहले गंगाजलसे, फिर घड़ोंमें भरे मंत्रपूत जलसे स्नान करा इन्द्रकी क्षुधा, श्रम एवं अपवित्रता यहाँ दूर की और तब इन्द्रको प्रसन्नता प्राप्त हुई। जब इन्द्र प्रसन्न हुए, तब उन्होंने प्रसन्न हो इस देशको यह उत्तम वरदान दिया कि, मेरे शरीरके मलको धारण करनेवाले ये देश मलद और करुष नामसे विख्यात होंगे तथा धन-धान्यसे पूर्ण हो, ये त्रैलोक्यविख्यात होंगे। इन्द्र द्वारा उस देशको प्रतिष्ठित होते देख, देवताओंने साधु-साधु कहकर इन्द्रकी प्रशंसाकी। हे अरिन्दम! ये दोनों मलद और करुष देश, बहुत दिनों तक धन-धान्यसे पूर्ण बने रहे। कुछ दिनों बाद यहाँ एक स्वेच्छाचारिणी यक्षिणी पैदा हुई, जिसके शरीरमें हज़ार हाथियोंका बल है। उनका नाम ताटका है। उसके मारीच नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इन्द्रके समान पराक्रमी है। वह विशालकाय भयानक राक्षस नित्यही प्रजाको सताया करता है। हे राघव! वह दुष्ट ताटका या ताड़का इन दोनों भरेपूरे मलद और करुष देशोंको नित्यही उजाड़ा करती है। वह यक्षिणी इस मार्गको अवरुद्ध किये हुए यहाँ से आधे योजन अर्थात्, दो कोस पर रहती है। अतः अब ताड़का बनमें चलना चाहिये। अब मेरे कहनेसे तुम अपने बाहुबलसे उस दुष्ट यक्षिणीका वधकर इस स्थानको पुनः निष्कण्टक बना दो। हे राम! इस दुष्टाके भयसे, आनेकी आवश्यकता होते हुए भी, कोई यहाँ नहीं आता। अब तुम ऐसा करो कि, जिसमें यह भयङ्कर राक्षसी इस पवित्र देशको न उजाड़ सके।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा प्रथम बालकाण्ड का चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

पचीसवाँ सर्ग

ताड़का-वधके लिए विश्वामित्र द्वारा श्रीरामचन्द्रको उत्साहित करना

अब ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीके इन उत्तम बचनोंको सुनकर नरशार्दूल श्रीरामजी इस प्रकार शुभ वचन बोले—'हे मुनिपुङ्गव! हमने तो यह सुना है कि; यक्ष जातिमें बहुत थोड़ा ही बल होता है। इस अबलाके शरीरमें हजार हाथियोंका बल कहाँसे आ गया?' तब विश्वामित्रजी बोले—'हे राघव!

यह अबला वरदानके प्रभावसे इतनी बलशालिनी हो गई है। सुकेतु नामका एक बड़ा बलवान् यक्ष था। हे राम! सदाचारी होनेपर भी जिसके कोई सन्तान न थी। अतएव उसने बड़ा तप किया। तब प्रसन्न हो उस यक्षपतिको ब्रह्माजीने 'ताटका' नामकी एक उत्तम कन्या प्रदान की, जिसके शरीरमें ब्रह्माजीने हजार हाथियोंका बल भी दिया। परन्तु उस यक्षको महायशस्वी ब्रह्माजीने कोई ऐसा बली पुत्र नहीं दिया। जब वह कन्या बढ़कर रूप यौवनशालिनी स्त्री हुई, तब उसके पिताने उनका विवाह जम्भके पुत्र सुन्दके साथ कर दिया, जिससे थोड़े ही दिनों बाद इस यक्षिणीने पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम मारीच है और जो बड़ाही बलवान् है। यक्ष होनेपर भी शाप-वश वह राक्षस है। हे रामजी! जब अगस्त्यजीने सुन्दको शाप देकर मार डाला; तब ताटका अपने पुत्र सहित उन अगस्त्यजीको भक्षण करने के लिए गरजती हुई दौड़ी। तब उस यक्षिणीको अपनी ओर आते देख भगवान् अगस्त्य ऋषिने उसके पुत्र मारीचको शाप दे दिया कि—'तू राक्षस हो जा।' साथही अगस्त्यजीने अत्यन्त कुपित हो, ताटकाको भी शाप दिया कि, तू मनुष्य-भक्षिणी हो जा और विरूपा तथा विकृतानना हो जा। तेरा यह रूप न रहे। तू विकराल रूपवाली हो जा। यह शाप सुन ताटका अत्यंत कुपित हुई। उसी शापसे वह ताटका इस पवित्र देशको उजाड़े देती है। अगस्त्यजी इसी देशमें तपस्या करते थे। इसलिए हे राम! तुम इस दुष्ट, परम दारुण और दुष्ट स्वभाववाली ताटकाको मारकर, गो-ब्राह्मणका हित साधन करो। क्योंकि और कोई मनुष्य इस शापयुक्ताको नहीं मार सकता। हे नरोत्तम! तीनों लोकोंमें तुमको छोड़ ऐसा और कोई नहीं है, जो इसे मार सके। ऐसी स्त्रीका बध करनेमें तुम्हारे मनमें घृणा उत्पन्न न होनी चाहिये। चारों वर्णोंका हित-साधन करना राजकुमारका कर्त्तव्य है। प्रजा-रक्षणके लिए चाहे अच्छे काम करने पड़ें, या बुरे। दोष लगे या पाप ही क्यों न लगे, किन्तु राज्यकी रक्षाका भार उठाए हुए क्षत्रियोंके लिए सब प्रकारकी रक्षा करना ही उनका सनातनधर्म है। इसलिए हे राम! इस अधर्मिणी ताटकाको मारिए। इस ताटकामें तिल भर भी धर्म नहीं है। सुना जाता है कि, पूर्वमें राजा विरोचनकी पुत्री मन्थराको, जो

पृथ्वीका नाश करना चाहती थी, इन्द्रने जानसे मार डाला था। इसी प्रकार हे राम! भगवान् विष्णुने भी भृगु-पत्नी और शुक्रकी माताको, जो इन्द्रका नाश करना चाहती थी, मार डाला था। इस प्रकार अनेक पुरुषोत्तम राजपुत्रोंने समय-समयपर अनेक अधर्माचरणवाली स्त्रियोंका बध किया है। अतएव तुम भी मेरी आज्ञासे इस दुष्टा यक्षिणीको मारनेमें कोई विचार न करो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

ताड़का-बध

दृढ़व्रत दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने ऋषिप्रवर विश्वामित्रजीके उत्साहबर्धक वचनोंको सुन हाथ जोड़कर यह उत्तर दिया कि—'मुझे अपने पिताकी आज्ञासे और उनकी बात रखनेके लिए, आपके कथनानुसार निःशङ्क होकर यह कार्य करना मेरा कर्त्तव्य है। क्योंकि महाराजने गुरु वशिष्ठजीके सामने अयोध्यासे प्रस्थान करते समय, मुझे यह आज्ञा दी है। अतः मैं उस आज्ञाकी अवहेलना नहीं कर सकता। आपकी आज्ञासे मैं निःसन्देह ताटकको मारूँगा। मैं इस देशवासियोंको सुखी करनेको तैयार हूँ। मैं गो-ब्राह्मणका हित-साधन करूँगा।' यह कह और हाथमें धनुष ले, श्रीरामचन्द्रजीने दशों दिशाओंको प्रतिध्वनित करनेवाली प्रत्यञ्चाको टंकार कर घोर शब्द किया। उस शब्दको सुनकर ताटका-बनके रहनेवाले जीवधारी बहुत ही भयभीत हो गये। स्वयं ताटका भी उस शब्दको सुनकर बहुत ही कंपित हुई। किन्तु तत्क्षण अपना कुछ कर्त्तव्य निश्चित न कर सकी। केवल वह उस ओर बड़े क्रोधसे दौड़ी कि, जिधर वह शब्द हुआ था। तब उस क्रुद्ध, विकृत और टेढ़े मुँह वाली राक्षसीको देख श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'देखो लक्ष्मण! इस यक्षिणीका शरीर कैसा भयङ्कर और विकट है। इसे देखते ही कायरोंके हृदय तो काँप उठते होंगे। देखो, इस विकट मायाविनी और दुर्जयाके कान और नाक काटकर मैं अभी इसे भगाये देता हूँ। क्योंकि स्त्रीका बध करना उचित नहीं, स्त्रीकी तो रक्षा ही करनी चाहिए। किन्तु मैं इसके हाथ पैर तोड़कर, इसे अब आगे दुष्ट कर्म करने योग्य न रहने दूँगा।' श्रीरामचन्द्रजी ऐसा कह ही रहे थे कि, अत्यन्त कुपित ताटका हाथ उठाए और गरजती हुई उनकी ओर झपटी।

यह देख महर्षि विश्वामित्रने "हुँ" कहकर उसे डपटा और श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणको आशीर्वाद देकर कहा कि, तुम्हारी जय हो। इतने पर भी ताटका ने इतनी धूल उड़ाई कि, कुछ देर तक राम और लक्ष्मणको कुछ देख न पड़ा। ताटकाने ऐसी माया रची कि, वह छिपे-छिपे श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण पर पत्थरोंकी वर्षा करती रही। यह देख श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने उस महती शिला–वृष्टिको वाणों द्वारा बन्द कर दिया और उसके दोनों हाथोंको भी काट डाला। भुजाओंके कट जानेसे श्रान्त, किन्तु तिसपर भी उसे गरजते हुए अपने समीप आते देखकर क्रुद्ध हो लक्ष्मणजीने उसके नाक कान काट डाले। वह कामरूपिणी तुरन्त अनेक प्रकारके रूप धारण करने लगी और राजकुमारोंको धोखा देनेके लिए कभी-कभी छिप भी जाने और घूम-घूम कर पत्थर बरसाने लगी। तब चारों ओरसे राजकुमारों पर पत्थर बरसते देख, श्रीमान् विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—हे राम! बस, बहुत हुआ। अब इस पापिनी दुष्टा पर अधिक दया दिखानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि इसे छोड़ दोगे, तो यह यज्ञमें विघ्न डालनेवाली माया द्वारा फिर प्रबल पड़ जायगी। संध्या होनेके पहले ही तुम इसे झटपट मार डालो। क्योंकि संध्याकालमें राक्षसोंका बल बढ़ जाता है। यह कह विश्वामित्रने पत्थर बरसानेवाली यक्षीको श्रीरामचन्द्रजीको दिखा दिया। श्रीरामचन्द्रजीने शब्दवेधी वाणोंसे उसे चारों ओरसे घेर लिया। वह शरजालोंसे घिरी हुई बलशालिनी और मायाविनी दोनों राजकुमारों पर गरजती हुई झपटी। तब उसे अपनी ओर झपटते देख, श्रीरामचन्द्रजीने उसकी छातीमें एक ऐसा वाण मारा कि, वह पृथ्वीपर गिर पड़ी। तब उस विकराल रूपवाली यक्षिणी को मरी हुई देख, प्रसन्न हो इन्द्र आदि देवता श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगे। फिर प्रसन्न देवता श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—"हे कौशिक मुनि! आपका कल्याण हो, इन्द्र सहित हम सब देवता श्रीरामचन्द्रजीके इस कार्यसे बहुत तुष्ट हैं। अब तुम श्रीरामचन्द्रजी पर विशेष स्नेह प्रदर्शित कर, कुशाश्व प्रजापतिके सत्य पराक्रमी अस्त्र-शस्त्ररूपी जो पुत्र हैं, उन सबको तपस्वी एवं बलवान् श्रीरामचन्द्रजीको अर्पण कर दो। क्योंकि ये ही इनके योग्य पात्र हैं और आपकी इच्छानुसार कार्य करनेवाले हैं। ये राजकुमार देवताओंके बड़े-बड़े

कार्य करेंगे।" यह कह और विश्वामित्रजीके प्रति सम्मान प्रदर्शित कर, सब देवता जहाँसे आये थे, वहाँ प्रसन्नता पूर्वक लौटकर चले गये। इतनेमें संध्या हो गई। तब मुनिवर विश्वामित्र ताटका-वधसे प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्रजीका माथा सूँघकर यह बोले—"हे शुभदर्शन राम! आजकी रात यहीं विश्राम कर, प्रातःकाल होते ही हम अपने आश्रमको चलेंगे। रामचन्द्रने सुख पूर्वक रात भर ताटका-वनमें ही विश्राम किया। ताटका जिस दिन मारी गई; उसी दिनसे ताटकाके वनका शाप छूट गया और वह चैत्ररथ वनकी तरह अत्यन्त रमणीक हो गया। देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ी प्रशंसा की। रात भर वहाँ रहकर प्रातःकाल होते ही श्रीरामचन्द्रजी जाग उठे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

विश्वामित्रजी द्वारा श्रीरामचन्द्रजी को सर्व अस्त्र-प्रदान।

तब उस रात्रिमें वहाँ निवास करते हुए विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर मधुर वाणीमें श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि, हे महायशस्वी राजकुमार! मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। इसलिए प्रसन्नता पूर्वक तुम्हें वे सब अस्त्र देता हूँ कि, जिनसे तुम सुर, असुर, गन्धर्व और नाग आदि अपने शत्रुओंको वशमें कर उन्हें जीत लोगे। लो, यह महा—दिव्य दण्डचक्र है। हे वीर! यह लो धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र और अत्यन्त उग्र ऐन्द्रास्त्र। हे नरश्रेष्ठ! यह लो वज्रास्त्र। हे राघव! यह है ब्रह्मशिर और ऐषीक। हे राम! मैं तुमको सब अस्त्रोंसे बढ़कर यह ब्रह्मास्त्र देता हूँ और यह लो मोदकी और शिखरी नामकी दो गदायें। हे नृपात्मज राम! मैं तुमको अत्यन्त उग्र धर्म-पाश और कालपाश नामक अस्त्र देता हूँ। यह लो वरुणपाश, शुष्क और अशनि नामके दो वज्र। यह लो पैनाकास्त्र, नारायणास्त्र और आग्नेयास्त्र, जिसका नाम शिखर है। हे राम! यह लो प्रमथ नामक वायव्यास्त्र, हयशिरास्त्र और क्रौञ्चास्त्र। मैं दो शक्तियाँभी तुम्हें देता हूँ। मैं तुम्हें अब भयङ्कर कङ्काल नामक मुशल, कापाल और भयङ्कण देता हूँ। मैं तुम्हें वे सब अस्त्र देता हूँ जो राक्षसोंके वधके लिए उपयोगी हैं। यह विद्या-धरास्त्र है और यह नन्दन नामक तलवार है। हे राजकुमार! यह सब मैं

तुम्हें देता हूँ। यह लो गन्धर्वास्त्र और प्रिय मानवास्त्र। ये हैं प्रस्वापन और प्रशमन, सौर, दर्पण, शोषण, सन्तापन, विलापन, मदनास्य, पैचास्त्र, प्रिय मोहनास्त्र, सौमन, संवर्त्त, दुर्धर्ष, मौसल; सत्यास्त्र, परमास्त्र, मायाधर और ये हैं तेजप्रभ नामक अस्त्र जिनसे शत्रुका तेज हरण किया जाता है। फिर शिशर नाम सोमास्त्र, त्वाष्टास्त्र, भागास्त्र, शीतेषु और मानव। हे महाबाहो! तुम इन महाबली, कामरूपी तथा परमोदार अस्त्रोंको शीघ्र ग्रहण करो। तदन्तर महामुनि विश्वामित्रने पूर्वकी ओर मुख करके पवित्र और प्रसन्न हो, उन सम्पूर्ण देवदुर्लभ अस्त्रोंके मंत्र बतलाकर श्रीरामचन्द्रजीको दे दिये। तब ज्योंही विश्वामित्रजी उन मंत्रास्त्रोंका उच्चारण करने लगे, त्योंही वे मंत्र अपना साक्षात् रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीके सामने हाथ जोड़कर आ-खड़े हुये और प्रसन्न हो कहने लगे—हे परमोदार राघव! हम सब आपके दास हैं। आप जो भी कार्य हमसे लेना चाहेंगे, हम वही करेंगे। तब श्रीरामचन्द्रजीने उन सबको अपने हाथ से स्पर्श किया और बोले—मैं जब तुम्हारा स्मरण करूँ, तब तुम आकर मेरा काम कर जाना। यह कह श्रीरामचन्द्रजीने मुनि-प्रवर विश्वामित्रजीको प्रणाम किया और कहा कि, चलिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

विश्वामित्र जी द्वारा राजकुमारों को अस्त्र फेंककर उन्हें लौटानेकी विधि बतलाना और यज्ञ में विघ्न करनेवाले राक्षसों का परिचय देना।

अस्त्रोंको पवित्रतापूर्वक ग्रहण कर लेनेके बाद मार्गमें चलते हुए श्रीराम-चन्द्रजी विश्वामित्रजीसे बोले—'हे भगवन्! आपकी कृपासे मुझे वे अस्त्र जो सुरों और असुरोंकोभी दुष्प्राप्य हैं, मिल गए, जिनके चलानेकी विधि आपने बतलादी। अब उनके लौटानेकी विधि भी बतला दीजिये।' तब श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर विश्वामित्रजीने उन सब मंत्रास्त्रोंका संहार भी बतला दिया। फिर उन सब मंत्रास्त्रोंको भी उन्होंने बतलाया जो बतलाने से रह गये थे। तब "बहुत अच्छा"—ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने तेज-स्वी कृशाश्व-पुत्रोंको जो वे सब शररूप और कामरूप थे, ग्रहण किया। वे सभी दिव्यरूप, देदीप्यमान शरीर से आ उपस्थित हुए और कहा—हम उप

स्थित हैं, क्या आज्ञा है ? श्रीरामचन्द्रजीने कहा—तुम सब मेरे मन में वास करो और काम पड़नेपर मेरी सहायता करना । अस्त्रोंने स्वीकार किया । रामचन्द्रने कहा, अब तुम चाहे जहाँ जा सकते हो । तब रामचन्द्रकी प्रदक्षिणाकर, उनकी आज्ञा ले सब चले गये । अस्त्रोंके चले जाने पर श्रीरामचन्द्रजीने महामुनि विश्वामित्रजीसे चलते-चलते पूछा कि; हे महाराज ! वह पर्वतके निकट मेघ-सा क्या दिखाई पड़ता है ? वह तो वृक्षोंका समूह जैसा जान पड़ता है, जिसे देखनेसे मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है । वह अनेक वन पशुओं युक्त दर्शनीय और अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है । वहाँ तो मीठी बोली बोलनेवाले पक्षी बोल रहे हैं । इससे ज्ञात होता है कि, अब हमलोग भयङ्कर रोमाञ्चकारी बनके पार हो गये । हे भगवन् ! कृपाकर बतलाइए कि यह किसका आश्रम है ? हे महामुने ! क्या हमलोग आपके उस आश्रम पर पहुँच गए कि, जहाँ दुराचारी ब्रह्महत्यारे राक्षस आकर यज्ञमें विघ्न डाला करते हैं ? हे भगवन् ! आपका वह यज्ञ-स्थल कहाँ है, जहाँ चलकर राक्षसोंका वधकर मैं आपका यज्ञ-रक्षण करूँगा ? हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सब बातें मैं जानना चाहता हूँ ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ सर्ग

विश्वामित्रजीका श्रीरामचन्द्रजीसे सिद्धाश्रमका पूर्व वृत्तान्त-कथन ।

अचिन्त्य वैभववाले श्रीरामचन्द्रके इस प्रकार उस वनके विषयमें पूछनेपर महातेजस्वी विश्वामित्रजी कहने लगे—'हे राम ! यह वह स्थान है, जहाँ देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णुने वर्षों और युगों तक तपस्या करनेके लिए वास किया था । यह आश्रम पहले बामनजीका था, यहाँ पर उन महातपाका तप सिद्ध हुआ था, इसीसे यह सिद्धाश्रमके नामसे प्रसिद्ध है । उसके समय राजा विरोचनके पुत्र बलिने इन्द्र और मरुद्गण सहित सब देवताओंको जीतकर जगत् विख्यात तीनों लोकोंका राज्य किया था । बलिने जब यज्ञ करना आरम्भ किया, तब सब देवता अग्निको आगेकर, विष्णुके पास इसी आश्रममें आकर बोले—विरोचन पुत्र राजा बलि एक यज्ञ कर रहा है । उस यज्ञ की समाप्ति होनेके पूर्व देवताओंके हितार्थ जो कुछ करना हो कीजिए । उसके

यज्ञमें अनेक देशोंसे आये हुए, याचक जो कुछ माँगते हैं, वह उन्हें वही देता है। अतः आप देवताओंके लिए अपनी मायाके योगसे अथवा बलसे, वामनावतार धारणकर, हमलोगोंका कल्याण कीजिए, हे राम! इसी बीचमें अग्निके समान प्रभावाले कश्यपजी अपनी स्त्री अदिति सहित तपः प्रभावसे देदीप्यमान थे। देवीके सहित कश्यपजी, सहस्र वर्षोंकी तपस्याका व्रत समाप्तकर, वरदानी भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगे। हे पुरुषोत्तम! आप तप द्वारा आराध्य हैं, तपका फल देनेवाले हैं, ज्ञानस्वरूप हैं और तपस्वर्गा हैं। इसलिए मैं तपः प्रभावसे आपको देखता हूँ। हे प्रभो! मैं आपके शरीरमें यह चेतन अचेतनात्मक सारा जगत् देख रहा हूँ। आप अनादि हैं, अर्थात् उत्पत्ति-रहित हैं, अनिर्देश्य हैं, (अर्थात् आपकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता अथवा आप अकथनीय हैं। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। (इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर) यह सुन भगवान् विष्णु पापरहित कश्यपजीसे बोले—'हे कश्यप! तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर माँगो। मैं तुम्हें वर देनेको तैयार हूँ। यह सुन मरीचिके पुत्र कश्यपजीने कहा—मेरी स्त्री अदितिकी तथा देवताओंकी प्रार्थना है कि, हे वरद! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वर दें कि आप मेरी निष्पापा स्त्री अदितिके गर्भसे पुत्र रूपमें जन्म लें। हे अरिसूदन! इन्द्रके छोटे भाई बनकर आप शोकार्त्त देवताओंकी सहायता कीजिए। यज्ञ आश्रम आपकी कृपासे सिद्धाश्रमके नामसे प्रसिद्ध होगा। हे देवेश! जब काम सिद्ध हो जाय तब आप यहाँसे उठिए। यह सुन महातेजस्वी भगवान् विष्णु अदितिके गर्भसे वामनरूप धारणकर, राजा बलिके पास गये और उससे तीन पग भूमिकी याचना की और तीन पग भूमि पाकर, सब लोकोंके हितार्थ, तीन पगसे तीनों लोकको नाप डाले। फिर इन्द्रको तीनों लोकोंका राज्य दे, बलिको अपने बल-प्रभावसे बाँध लिया (और पातालको भेजा)। इस प्रकार उस महातेजस्वीसे तीनों लोकोंको पुनः इन्द्रके अधीन कर दिया। श्रमनाशक यह आश्रम उन्हींका है। मैं भी उन्हीं वामन भगवान् की भक्तिकर, इस आश्रमका उपभोग करता हूँ। इसी अश्रममें आकर राक्षस उपद्रव मचाया करते हैं। हे पुरुषसिंह! यहीं उन दुराचारियोंका बध करना होगा। हे राम! आज (उसी) उत्तम सिद्धाश्रमको हमलोग चलते हैं। हे वत्स! यह आश्रम जैसा है वैसा ही

तुम्हारा भी है। यह कह श्रीरामचन्द्र लक्ष्मणको साथ लिए हुए, विश्वामित्रने अपने सिद्धाश्रममें प्रवेश किया। उस समय ऐसी शोभा जान पड़ी मानों पुनर्वसुके साथ-साथ शरदकालीन चन्द्रमा शोभा दे रहा हो। विश्वामित्रजीको देख सब सिद्धाश्रमवासियोंने उठकर और परम प्रसन्न हो विश्वामित्रजीके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। जिस प्रकार धीमान् विश्वामित्रका सम्मान किया गया, उसी प्रकार राजकुमारोंका भी सम्मानपूर्वक अतिथि सत्कार किया गया। कुछ देर विश्रामकर शत्रुहन्ता दोनों राजकुमारोंने हाथ जोड़कर विश्वामित्रजीसे कहा—हे मुनिप्रवर! आप आजहीसे अपना यज्ञ आरम्भ कीजिए। आपका मङ्गल होगा। यह सिद्धाश्रम है। अतः आपका कार्य सिद्ध हो और आपका वचन सत्य हो। यह सुन, महातेजस्वी ऋषिप्रवर विश्वामित्रजीने नियमपूर्वक, जितेन्द्रिय हो यज्ञ करना आरम्भ किया और दोनों राजकुमार भी उस रातमें सावधानतापूर्वक वहीं रहे और प्रातःकाल होते ही दोनों राजकुमारोंने उठकर सन्ध्या की। तदन्तर नियमानुसार आचमनपूर्वक पवित्र हो, गायत्री मंत्रका जप किया। फिर अग्निहोत्र करके, आसनपर विराजमान विश्वामित्रजीको उन्होंने प्रणाम किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त। २९॥

तीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी द्वारा विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा।

देश और कालके जाननेवाले और शत्रुके मारनेवाले दोनों राजकुमार देश कालका विचार कर विश्वामित्रजीसे बोले—हे भगवन्! हम जानना चाहते हैं कि, वे दोनों राक्षस यज्ञ विध्वंस करने किस समय आते हैं, जिससे वे हमारी अनजानमें आक्रमण न कर पावें। जब सिद्धाश्रमवासी मुनियोंने राजकुमारोंकी यह बात सुनी और उनको राक्षसोंसे तुरन्त लड़नेके लिए तत्पर देखा, तब वे सब राजकुमारोंकी प्रशंसा कर कहने लगे—हे राजकुमारों! आजसे आप लोग छःदिनों तक यज्ञकी रक्षा करें। विश्वामित्रजी यज्ञ-दीक्षा ले चुके हैं। अतः अब वे छःदिनों तक न बोलेंगे अर्थात् मौन रहेगें। मुनियोंके वचन सुन, वे दोनों यशस्वी राजकुमार, छःदिनों और रातो दिनको विना शयन किए निरंतर उस तपोवनकी रक्षा करते रहे। दोनों वीर

राजकुमार धनुषबाण धारण किए, विश्वामित्र और उनके यज्ञकी रक्षा दृढ़ता पूर्वक अर्थात् अत्यन्त सावधानीके साथ करते रहे। पाँच दिन तो निर्विघ्न बीत गये। छठवें दिन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा—सावधान रहो अर्थात् खबरदार हो। जब युद्ध करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा, तब अकस्मात् यज्ञवेदी भकसे जल उठी और उपाध्याय, पुरोहित, ऋत्विक् तथा विश्वामित्रजीके देखते-देखते कुश, चमस, स्रुवा, पुष्प आदि यज्ञीय पदार्थोंके सहित वेदी भभक उठी। यद्यपि विश्वामित्रजीका यज्ञ विधि-विधानसे ही हो रहा था (अतः कोई विघ्न नहीं होना चाहिये था); तथापि इतनेमें आकाश में बड़ा भयानक शब्द हुआ। जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें मेघ आकाशको ढँक लेते हैं, उसी प्रकार राक्षसगण राक्षसी माया करते हुए (आकाशमें) दौड़ने लगे। मारीच, सुबाहु और उनके साथी अन्य भयंकर राक्षसोंने आकर वेदी पर रुधिरकी वर्षा की। वेदीको रुधिरमें डूबी हुई देख और क्रुद्ध हो, लक्ष्मण सहित जब सहसा श्रीरामचन्द्रजी दौड़े, तब उन्हें आकाशमें मारीचादि राक्षस देख पड़े। तब उनको अपनी ओर दौड़कर आते देखकर, राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको देख, उनसे कहा—हे भाई! जरा इन मांसाहारी तथा दुराचारी राक्षसोंको तो देखो। मैं इनको मानवास्त्रसे वैसे ही उड़ाये देता हूँ, जैसे पवन बादलको उड़ा देता है। (यह कहकर) परमोदार श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त क्रुद्ध हो, चमचमाता मानवास्त्र मारीचकी छातीमें मारा। मारीच उस परमास्त्र मानवास्त्रके लगनेसे घायल हो १०० योजनकी दूरी पर समुद्रमें जा गिरा। उस मानवास्त्रसे पीड़ित मूर्छित और चक्कर खाते हुए मारीचको देख, श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा—लक्ष्मण! शीतेषु नामका मनुनिर्मित अस्त्रका प्रभाव तो देखो। इसने मारीचको मूर्छित कर दूर तो कर दिया, पर उसका बध नहीं किया। अब मैं इन दुष्ट, निर्दयी, पापी, यज्ञमें विघ्न डालनेवाले और रुधिर पीनेवाले राक्षसोंको भी मारता हूँ। यह कह कर, श्रीरामचन्द्रजीने आग्नेयास्त्र निकाला और सुबाहुकी छातीमें मारा। सुबाहु उसके लगते ही पृथ्वी पर धड़ामसे गिर पड़ा और मर गया। तब अन्य बचे हुए राक्षसोंको श्रीरामचन्द्रजीने वायव्यास्त्र चलाकर नष्ट किया। इस प्रकार परमोदार

श्रीरामचन्द्रजीने मुनियोंको प्रसन्न किया। उन यज्ञ-विघ्नकारी समस्त राक्षसोंको मारनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीकी उन मुनियोंने इन्द्रकी तरह पूजाकी। यज्ञके निर्विघ्न समाप्त होने पर महर्षि विश्वामित्रजी, दसों दिशाओंको उपद्रव रहित देख, श्रीरामचन्द्रजीसे यह बोले—हे महाबाहो ! मैं आज कृतार्थ हुआ। तुमने गुरुकी आज्ञाका खूब पालन किया। हे महायशस्वी राम ! तुमने इस स्थानका नाम सिद्धाश्रम चरितार्थ कर दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३० ॥

एकतीसवाँ सर्ग

विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम लक्ष्मणकी जनकपुर-यात्रा।

वीरवर और मुदित श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणने, विश्वामित्रका काम पूरा कर और प्रसन्न हो, रातभर उसी आश्रममें शयन किया। सबेरा होनेपर शौचादि कर्मोंसे निश्चित हो, दोनों भाई विश्वामित्र तथा अन्य ऋषियोंको प्रणाम करने गये। अग्निके समान तेजस्वी मुनि-श्रेष्ठ विश्वामित्रको प्रणाम कर वे दोनों मधुरभाषी मधुर एवं उदार वाणीसे उनसे बोले—हे मुनिशार्दूल ! हम दोनों आपके दास उपस्थित हैं। यथेष्ठ आज्ञा दीजिये कि, हम लोग अब आपकी क्या सेवा करें ? उन दोनों राजकुमारोंको इस प्रकार बोलते सुन, विश्वामित्रजीको अगुआ बना, सब महर्षियोंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—हे नर-श्रेष्ठ ! परम धर्मिष्ठ मिथिलाधीश महाराज जनकके यहाँ यज्ञ होनेवाला है। हब सब लोग वहाँ जा रहे हैं। हे नरशार्दूल ! तुम भी हमारे साथ चलना। वहाँ तुम एक अद्भुत एवं श्रेष्ठ धनुष भी देख सकोगे। पूर्वकालमें देवताओं ने यह धनुष जनकको दिया था। वह धनुष बड़ा भारी और बहुत ही चमकदार है। किसी मनुष्यकी तो बिसाँत ही क्या है ? उसपर रोदा चढ़ानेके लिए पर्याप्त बल न तो गन्धर्वोंमें है, न असुरोंमें और न राक्षसों में। उस धनुषका बल अजमानेके लिए—अनेक बड़े-बड़े बलवान् राजा आए, किन्तु कोई भी उसपर रोदा न चढ़ा सका। हे नरशार्दूल ! वहाँ चलकर महात्मा मिथिलाधीश के उस धनुषको और उनके अद्भुत यज्ञको देखना। हे रामचन्द्र ! एक समय महाराज जनकने यज्ञ किया और उस यज्ञका फल स्वरूप सुनाभ नामक उत्तम

धनुष उन्होंने सब देवताओंसे माँग लिया। वह धनुष मिथिलाधीशके घरमें पूजाके स्थान पर रखा रहता है और धूपदीपादिसे नित्य उसका पूजन किया जाता है। यह कह कर मुनीश्वर विश्वामित्रने वहाँ से प्रस्थान किया। उनके साथ दोनों राजकुमार तथा ऋषिगण भी गये। चलते समय विश्वामित्रजीने वन-देवताओंको बुलाकर उनसे कहा—तुम्हारा कल्याण हो, मेरी यज्ञ-क्रिया सुसम्पन्न हुई। अब मैं सिद्धाश्रमसे ही श्रीगंगाजीके उत्तर तट पर और हिमालय पर्वतकी तराईमें होकर (जनकपुर) जाऊँगा। तदनन्तर उस उत्तम सिद्धाश्रम की परिक्रमा कर, वे उत्तरकी ओर रवाना हुये। विश्वामित्रजीके चलते ही ब्रह्म वादी ऋषि भी चले और उनके सैकड़ों छकड़े भी चले। उसी सिद्धाश्रमके रहनेवाले हिरन और पक्षी भी महर्षि महात्मा विश्वामित्रजीके पीछे हो लिये। परन्तु विश्वामित्रजीने उन सब पशु-पक्षियोंको लौटा दिया। जब वे लोग बहुत दूर निकल गए और सूर्य अस्ताचलगामी होने लगे, तब सब लोगोंने शोण नदीके तट पर डेरा डाले। सूर्यास्त होने पर उन लोगोंने स्नान कर सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र किया। तदनन्तर सब मुनि, विश्वामित्रको आगे कर बैठे। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणने सब मुनियोंका पूजन किया और बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके सामने जा बैठे। महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रने महर्षि विश्वामित्रसे कौतूहल पूर्वक पूछा—हे भगवन्! यह हरे-भरे बनवाला देश कौन-सा है? मैं यह जानना चाहता हूँ। कृपया मुझे इसका ठीक-ठीक वृतान्त बतलाइये। श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछने पर, महातेजस्वी और सुव्रत विश्वामित्रने प्रसन्न होकर उन सब ऋषियोंके बीच बैठकर, उस देशका सारा हाल बताया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा आदि काव्य बालकाण्ड का इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

विश्वामित्र की वंशावलि।

हे राम! ब्रह्माजीके पुत्र, बड़े तपस्वी, अखण्डित व्रतधारी, धर्मज्ञ और सज्जनोंका सत्कार करने वाले कुशध्वज नामके एक राजा थे। उन्होंने उत्तम कुलमें उत्पन्न अपने अनुरूप वैदर्भी नामक रानीके गर्भसे चार पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम कुशाम्ब, कुशनाभ, आधूर्तरंजस, और वसु थे। ये चारों

राजकुमार बड़े तेजस्वी और उत्साही थे। तदनन्तर प्रजापालक धर्मकी प्रेरणासे धर्मिष्ठ और सत्यवादी पुत्रोंसे राजा कुशने कहा—हे पुत्रों! प्रजाका पालन करो, इससे बड़ा पुण्य होगा। पिताका यह वचन सुन चारों श्रेष्ठ राजकुमारोंने अपने-अपने नामके चार नगर बसाये। महातेजस्वी कुशाम्बने "कौशाम्बी" नामकी पुरी बसाई। धर्मात्मा कुशनाभने "महोदध" नामक नगर बसाया। हे राम! राजा आधूर्रजसने "धर्मारण्य" और राजा बसुने "गिरिव्रज" नामक नगर बसाया। हे राम! "गिरिव्रज" का दूसरा नाम 'वसुमती' हुआ। इसके चारों ओर प्रकाशमान पाँच बड़े-बड़े पर्वत हैं। मगध देशमें बहनेवाली यह मागधी नदी, जिसे शोण (सोन) भी कहते हैं, पाँचों पर्वतोंके बीच (पर्वतोंकी) मालाकी तरह शोभायमान है। हे राम! वसुकी वही मागधी नदी (सोन) पूर्व दिशाकी ओर बहती है और इसके दोनों तटों पर अनाजके अच्छे-अच्छे खेत हैं। हे रघुनन्दन! घृताची नामकी अप्सरासे धर्मात्मा राजर्षि कुशनाभके सौ सुन्दरी कन्यायें उत्पन्न हुईं। ये जवानीमें पहुँचनेपर बड़ी रूपवती हुईं और एकदिन सजधज कर फुलवाड़ीमें जा वैसेही शोभायुक्त हुईं, जैसे वर्षाकालमें बिजली शोभायमान होती है। वे गहने, कपड़ोंसे सुसज्जित उस वाटिकामें चारों ओर गाती, नाचती और बाजे बजाती हुई, बड़ा आनन्द मनाने लगीं। उनके सभी अंग सुन्दर थे। वे पृथ्वी तल पर सौंदर्यकी मूर्तियाँ थीं। वे उस बागमें वैसेही सुशोभित होरही थीं, जैसे आकाशमें तारागण सुशोभित होते हैं। उन सब गुणवतियों और रूपवतियोंको देख, सब जगह रहनेवाले वायुदेवने उन सबसे कहा—मैं तुमको चाहता हूँ। तुम मेरी पत्नी बनो। तुम मनुष्योंका अनुराग त्यागो; जिससे तुम दीर्घजीविनी बन सको। क्योंकि यौवन तो कभी किसीका रहता नहीं, फिर विशेषकर मनुष्य जातिका यौवन तो शीघ्रही चलायमान् अर्थात् नष्ट हो जाता है। अतः यदि तुम मेरी पत्नी बनोगी तो तुम्हारा यौवन अक्षुण्य (कभी क्षय न होनेवाला) हो जायेगा और तुम अमरभी हो जाओगी। अप्रतिहत कर्म करनेवाले वायुदेवकी इन बातोंको सुनकर, वे सौ राजकन्याएँ वासुदेवका उपहास करती हुई बोलीं—हे देव! तुमतो सबके अंतःकरणकी बात तो

जानतेहीहो और हमभी आपके प्रभावको अच्छी तरह जानती हैं। ऐसी दशामें (ऐसा अनुचित प्रस्तावकर) आप हमारा अपमान क्यों करते हैं ? हे देवताओंमें उत्तम वायुदेव ! हम सब महाराज कुशनाभकी कन्याएँ हैं। हम अपने तपोबलसे तुम्हें तुम्हारे लोकसे नीचे गिरा सकती हैं। पर ऐसा इसलिए नहीं करतीं कि, ऐसा करनेसे हमारा तपोबल घट जाएगा और तप घटाना हमको अभीष्ट नहीं है। हे दुर्बुद्धि ! वह समय (ईश्वर करे) न आवे कि, हम अपने सत्यवादी पिताकी अवहेलना कर, हम स्वयंवरा होवें। अर्थात् हम स्वयं अपने लिए वर पसन्द करें। क्योंकि हमारे पिता; हमारे लिए परम देवता स्वरूप हैं और वे हमारे लिए मालिक है—वे हमें जिसे दे देंगे, वही हमारा पति होगा। उन सब कन्याओंकी इन (अपमानजनक) बातोंको सुन, पवनदेव अत्यन्त कुपित हुए और उन राज-कन्याओंके शरीरमें घुसकर उनको कुबड़ी बना दिया अथवा उनके शरीरके अंगोंको टेढ़ामेढ़ा कर उनका सौंदर्य नष्ट कर डाला। जब वायुने उनके अंग कुरूपकर डाले तब वे लज्जित हुईं और व्याकुल चित्त हो रोती हुई अपने पिताके घर गईं। राजा, अपनी प्यारी एवं परम सुन्दरी कन्याओंको दुःखी और कुरूपा बनी हुई देख, विकल हुए और यह बोले—बतलाओ, तो यह क्या हुआ ? किसने धर्मका अनादर कर तुमको कुबड़ीकर दिया ? तुम जानबूझकरभी क्यों नहीं बतलातीं ? इस घटनासे राजा बड़े व्यथित और चिन्तित हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ सर्ग

कुशनाभ की कन्याओं के विवाह का वर्णन।

बुद्धिमान् राजा कुशनाभके पूछनेपर सौओं राजकुमारियोंने पिताके चरणोंमें शीश नवाया और कहा—यद्यपि पवनदेव सबकी आत्माओंमें विराजते हैं, (अतः उन्हें हरएक काम विचार कर करना चाहिये) तथापि वे अधर्म में प्रवृत्त हो हमारा धर्म बिगाड़ना चाहते थे। हमने उनसे कहा कि, हमको मनमाना काम करनेकी स्वतंत्रता नहीं है; हम स्वेच्छा चारिणी नहीं हैं। हमारे पिता विद्यमान हैं, यदि उनसे हमें आप माँग लें, तो हम आपकी हो सकती हैं। हमारी इस बातको न मानकर उस पापीने हम सबकी यह दशा

करदी। राजकुमारियोंकी इन बातोंको सुन, परम-धार्मिक राजा कुशनाभ उन शत सुन्दरी राजकुमारियोंसे बोले—तुमने पवनदेवके प्रति क्षमा प्रदर्शित कर, बहुतही अच्छा काम किया है। हे राजकुमारियों! क्षमाशीलोंको ऐसा ही करना चाहिये। तुमने पवनदेवको क्षमा करके हमारे कुलके अनुकूलही कार्य किया है। स्त्रियों अथवा पुरुषोंके लिए तो क्षमाही आभूषण है। तुमने पवनदेवको क्षमाकर अति दुष्कर काम किया है। रूप और ऐश्वर्य सम्पन्न लोगोंके लिए तो अपराध-सहिष्णुता विशेष करके दुष्कर है। जैसी तुमने क्षमा दिखलाई विशेषकर वैसी क्षमा सबमें नहीं है। हे कन्याओं! क्षमाही दान है, क्षमाही सत्य है और क्षमाही दूत है। अर्थात् जो पुण्य, दान देने, सत्य बोलने और यज्ञ करनेसे होता है, वही क्षमासे प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षमाही यश है, क्षमाही धर्म है और क्षमाही संसारका आधार है। हे राम! इस प्रकार राजकुमारियोंको समझाकर और उन सबको बिदा कर, देवसमान पराक्रमी राजा कुशनाभने, अपने सब मंत्रियोंको बुलाकर, उनसे यह सलाह ली कि, उन राजकन्याओंका विवाह अच्छे देशकाल व घरमें किया जाय। कुशनाभके राजत्व कालहीमें "चूली" नामके एक बड़े तेजस्वी, ऊर्ध्वरेता एवं सदाचारी महर्षिने ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए तप किया। उस समय वहाँ तपस्या करतेहुए उन मुनिकी सेवा, उर्मिला नामकी गंधर्वीकी कन्या जिसका नाम सोमदा था, करने लगी। जब सोमदाने बहुत दिनों तक उन महर्षिकी बड़ी श्रद्धाभक्तिके साथ सेवा-सुश्रूषा की; तब वे ऋषि उसपर प्रसन्न हुये। हे राम! समय पाकर, महर्षिने उससे कहा—मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, जो काम तू कहे, वह मैं तेरे लिए करूँ। मुनिको अपने ऊपर प्रसन्न जानकर बातचीत करनेमें प्रवीण (वह) गंधर्वी मधुर स्वरमें बड़ी प्रसन्नताके साथ, वाक्यकोविद चूली ऋषिसे बोली—हे महाराज! ब्रह्मतेजसे युक्त, ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाला और धार्मिक श्रेष्ठ एक पुत्र मैं चाहती हूँ। पर न तो मेरा कोई पति है और न मैं किसीकी स्त्री होना चाहती हूँ। क्योंकि मैं ब्रह्मचारिणी हूँ। इससे मुझे अपने तपोबलसे ऐसा मानस पुत्र दीजिए, जो धार्मिक हो। यह सुन ब्रह्मर्षि चूलीने प्रसन्नहो ब्रह्मदत्त नामक एक मानस पुत्र उसको दिया। वह ब्रह्मदत्त

कम्पिताक राजा हुआ और वहाँकी राजधानीसे ऐसा विभूषित हुआ, जैसे इन्द्र सुरपुरमें विभूषित होते हैं। कुशनाभने इन्हीं ब्रह्मदत्तको अपनी सौ राजकुमारियोंको देनेका विचार किया। राजा कुशनाभने राजा ब्रह्मदत्तको बुलाकर, उन्हें प्रसन्नता पूर्वक अपनी सौ राजकुमारियाँ दे दीं। हे राम! वैभवमें इन्द्रके समान राजा ब्रह्मदत्तने यथाक्रम उन सौ राजकुमारियोंका पाणिग्रहण किया। विवाहके समय जो वर होता है वह उस कन्याका, जिसके साथ उसका विवाह होता है, हाथ पकड़ता है। ब्रह्मदत्तके द्वारा पाणिग्रहण होतेही उन सबका कुबड़ापन जाता रहा और वे परम सुन्दरी हो गईं। राजा कुशनाभ अपना मन चीता कार्य हुआ देख अर्थात् राजकुमारियोंके शरीरसे वायुका विकार दूर हुआ देख, अत्यन्त प्रसन्न हुये। इस प्रकार ब्रह्मदत्तके साथ उनका विवाह कर, कुशनाभने राजकुमारियोंको विदाकर, उनके साथ अपने उपाध्यायोंकोभी भेजा। सोमदा जिस प्रकार अपने पुत्रकी पद मर्यादा के अनुरूप संबंध हुआ देख प्रसन्न हुईं, उसी प्रकार सुन्दर बहुओंको देखकर भी वह आनन्दित हुई और उनका सत्कार किया और उन राजकुमारियोंको देख और वर्तकर, उसने राजा कुशनाभकी सराहनाकी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्ड का तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ सर्ग

गाधि, विश्वामित्र और विश्वामित्रकी बहिनकी उत्पत्ति वर्णन।

हे राम! ब्रह्मदत्तके व्याह करके चले जानेके पश्चात्, कुशनाभ, पुत्रवान् न होनेके कारण, पुत्रप्राप्तिके लिए पुत्र्येष्टि यज्ञ करने लगे। जब यज्ञ होने लगा, तब ब्रह्माजीके पुत्र और परमोदार राजा कुशनाभके पिता, राजाकुश अपने पुत्रसे बोले—हे वत्स! तेरे, तेरे ही समान धर्मात्मा पुत्र होगा। उसका नाम गाधि होगा और उसके होनेसे संसारमें तेरी कीर्ति अमर होगी। हे राम! कुश अपने पुत्र राजा कुशनाभसे यह कहकर आकाश मार्गसे सनातन ब्रह्मलोकको चले गये। कुछ समय बीतनेपर बुद्धिमान् कुशनाभसे परम धर्मिष्ठ गाधि नामक एक पुत्र हुआ। हे राम! वे ही परम धर्मिष्ठ मेरे पिता हैं। कुशवंशोद्भव होनेके कारण मैं कौशिक (भी) कहलाता हूँ। हे राघव। मेरी बड़ी बहिनका नाम सत्यवती था, जो पतिव्रता थी। उसका विवाह ऋचीकके

साथ हुआ था। पतिके मरनेके बाद, वह सत्यवती पतिके साथ सशरीर स्वर्गको गई। फिर वही परम उदार कौशिकी नदी हो बहने लगी। इसका श्लाघ्य और अति पवित्र जल है और यह बड़ी रमणीक है। यह हिमालयसे निकल कर बहती है। लोकोंके हितके लिए मेरी बहनने नदीका रूप धारण किया है। हे राम! बहनके स्नेहवश मैं हिमालयके समीप कौशिकीके तटपर ही रहता था। धर्ममें स्थित, पतिव्रता, सत्यवती, नदियोंमें श्रेष्ठ, महाभागा यह कौशिकी है। हे राम! यह यज्ञ पूरा करनेके लिए मैं उसे छोड़ सिद्धाश्रम चला आया था। वहाँ तुम्हारे प्रतापसे मेरा काम सिद्ध हुआ। हे महाबाहो राम! मैंने तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें इस देश, अपनी उत्पत्ति तथा वंशका वृतान्त सुनाया। हे राम! यह वृतान्त सुनाते-सुनाते आधी रात बीत चुकी। तुम्हारा मंगल हो। अब जाकर शयन करो, जिससे चलनेमें कल विघ्न न हो। हे रघुनन्दन! अब किसी वृक्षका पत्ता तक नहीं हिलता है। पशु-पक्षी तक शान्त हैं। निशाका घोर अंधकार सब दिशाओंमें व्याप्त है। शनैः शनैः सन्ध्याका समय बीत गया। आकाश तारोंसे देदीप्यमान हो, शोभित हो रहा है। ऐसा जान पड़ता है, मानों आकाश सहस्रों नेत्रोंसे देख रहा है। समस्त संसारके अंधकारको नष्ट करनेवाला और शीतल किरणोंवाला चन्द्रमा, प्राणियोंके मनको हर्षित करता हुआ ऊपरको उठता चला आता है। इतना कहकर महातेजस्वी विश्वामित्रजी शान्त हो गये। तब मुनियोंने वाह-वाह कहकर विश्वामित्रजीकी प्रशंसा की और कहा—हे विश्वामित्रजी! विशेषकर आप तो इस वंशमें महायशस्वी हैं तथा नदियोंमे श्रेष्ठ कौशिकी नदीने तो इस वंशको उजागरकर दिया है। उन मुनि श्रेष्ठोंने इस प्रकारसे विश्वामित्रकी प्रशंसा की। तदनन्तर श्रीमान् विश्वामित्रजी सो गये। मानों सूर्य अस्ताचलगामी हो गये हों। श्रीरामचन्द्रजी भी लक्ष्मण सहित कुछ-कुछ विस्मित हो और विश्वामित्रजीकी प्रशंसा करते हुए सो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४ ॥

पैंतीसवाँ सर्ग

गंगावतरण तथा उमा-कथा वर्णन

विश्वामित्रजीने उन सब ऋषियों सहित शेष रात्रि सोन नदीके तटपर

व्यतीत की। प्रातःकाल होनेपर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—हे राम! उठिए, प्रातः काल हो गया। तुम्हारा मंगल हो। अब सन्ध्योपासनकर चलनेकी तैयारी कीजिये। श्रीरामचन्द्रजी, मुनिवरके यह वचन सुन प्रातः क्रियासे निवृत्त हुए और चलनेको तैयार हो बोले—हे ब्रह्मन्! इस शोण नदीमें जल तो कम है, बालू विशेष है। तो बताइये किस रास्तेसे हमलोग उसपार चलें? ऐसा सुन विश्वामित्रजी बोले—जिस रास्तेसे सब महर्षि जाते हैं वही रास्ता मैं बतलाता हूँ। वह यह है। बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रजीके यह कहनेपर वे रास्तेमें विविध वनोंको देखते हुए चलने लगे। वे जब बहुत दूर निकल गए, तब दोपहरको उनको मुनियों द्वारा सेवित श्रीगंगाजी देख पड़ीं। श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मणजी सहित सब मुनि, हंस-सारसोंसे सुशोभित, पुण्य-शलिला जाह्नवीके दर्शनकर, बहुत हर्षित हुए। वे सब गंगाजीके तटपर ठहर गये और यथा विधि स्नानकर, पितृदेव-तर्पणादि कर्म सम्पन्न किये फिर अग्नि-होत्रकर और बचे हुए पवित्र हविष्यान्नको खानेके पश्चात्, वे लोग प्रसन्नचित्त हो और आसनोंपर गंगाजीके पवित्र तटपर बैठे। सब मुनियोंके बीचमें विश्वा-मित्रजी (और उनके सामने दोनों राजकुमार) बैठे। उस समय प्रसन्नचित्त श्रीरामने विश्वामित्रजीसे कहा—हे भगवन्! मैं त्रिपथगा गंगाजीका वृतान्त सुनना चाहता हूँ। वे किस प्रकार तीनों लोकोंको लाँघकर समुद्रसे जा मिलीं? श्रीरामजीके पूछनेपर मुनिवरने श्रीगंगाजीकी वृद्धि या जन्मकी कथा कहनी आरम्भ की। धातुओंकी खान हिमालय नामक पर्वतके दो कन्यायें हुईं, जो पृथ्वीपर सौन्दर्यमें बेजोड़ थीं; अर्थात् अत्यन्त सुन्दरी थीं।' इन कन्याओंका नाम मैना है जो मेरु पर्वत की सुन्दरी कन्या और हिमालयकी पत्नी हैं। हिमालयकी बड़ी पुत्रीका नाम गंगा और छोटीका नाम उमा पड़ा। इस त्रिपथगा नदी गंगाको सब देवता मिलकर निज कार्यसिद्धिके लिए माँगकर ले गये। हिमालयने भी तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली, मनमाने मार्गसे जाने-वाली गंगाको, तीनों लोकोंकी भलाईके लिए, माँगनेवालेको देना चाहिए, अपना यह धर्म समझ, देवताओंको दे दिया। तीनों लोकोंका हित चाहनेवाले, देवतागण गंगाको लेकर और कृतार्थ हो चले गये। हे रघुनन्दन! हिमालय-

की दूसरी कन्या जो उमा थी, उसका तप ही धन था। अतः उसने अति उग्र तप किया। कठोर तप करनेवाली तथा लोकवन्दिता अपनी पुत्री उमा शैल-पर हिमालयने, महादेवको, उसके (उमा) लिए उपयुक्त वर समझ, उन्हें व्याह दी। हे राम! दोनों लोक नमस्कृता गंगा नदी और उमा देवी प्रसिद्ध हिमाचलकी बेटियाँ हैं। हे तात! मैंने तुमसे त्रिपथगा गंगाजीके प्रथम स्वर्ग जाने का वृतान्त कहा। हिमाचलकी पुत्री, रमणीक और पाप नाश करनेवाले जलसे बहनेवाली और सुरलोकको लानेवाली यही सुरनदी गंगा नदी है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ सर्ग

क्रुद्ध उमाका देवताओंको शाप

मुनि विश्वामित्रजीके इस प्रकार कहनेपर, दोनों राजकुमार विश्वामित्रजीकी जानकारी और स्मरणशक्ति और कथा कहने की रीति की बड़ाई करते हुए बोले—हे ब्रह्मर्षि! आपने पुण्य देने वाली उत्तम कथा कही, अब हिमाचल की ज्येष्ठ पुत्री गंगाकी कथा मुझसे कहिये। आप सब जानतेहैं, वह अब आप विस्तार पूर्वक यह कहिये कि, लोकपावनीगंगा स्वर्गसे मनुष्य-लोकमें क्यों आईं और तीनों लोकोंमें क्यों कर बहीं? हे धर्मज्ञ। नदियोंमें उत्तम गंगा का नाम तीनों लोकों में त्रिपथगा किन २ कर्मों के कारण हुआ? विश्वामित्रजी बोले—हेराम! पूर्व कालमें महातपस्वी महादेवजीका विवाह पार्वतीजीके साथ हुआ और वे उनको देख, कामवशवर्ती हो, उनके साथ विहार करने लगे। देवताओंके मानसे सौ वर्ष तक धीमान् नीलकण्ठ महादेवजीके देवीजीके साथ विहार करने पर भी कोई सन्तान न हुई। सभी देवता गण व्याकुल हो ब्रह्माजी सहित विचारने लगे कि—इन दोनोंके संभोगसे जो जीव उत्पन्न होगा, उसका भार कौन सँभालेगा? तब सब देवता महादेवजीकी शरणमें जा प्रणाम कर बोले—हे देवदेव महादेव! प्रसन्न हूजिये। इस लोक की रक्षा कीजिये। हे सुरोत्तम! आपका तेज कोई भी धारण नहीं कर सकेगा। अतः आप देवी सहित वैदिक विधिसे तप कीजिये। तीनों लोकोंके हितके लिए अपना तेज अपने शरीरमें ही रखिये, जिससे तीनों लोकोंकी रक्षा हो। आप उनका नाश न कीजिये। सर्वलोक-नियन्ता महादेवजी; देवताओंके वचन

सुन बोले—बहुत अच्छा। हे देवतागण! मैं उमाके साथ अपना तेज शरीरमें ही धारण किये रहूँगा। परन्तु यह बतलाओ कि, मेरा जो तेज (वीर्य) स्थानच्युत हो गया है, उसे कौन धारण करेगा? देवतागण बोले—उसे पृथ्वी धारण करेगी। यह सुन महादेवजीने अपना तेज पृथ्वी पर छोड़ा, जिससे वन, पर्वत सहित पृथ्वी पूर्ण हो गई। (जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि; उस तेजको धारण करनेमें पृथ्वी असमर्थ है तब) वे अग्निसे बोले कि, तुम वायुके साथ इस रुद्रके तेजमें प्रवेश करो। तब अग्निके उसमें प्रवेश करनेसे वह तेज एक स्थान पर (समिट कर) श्वेत पर्वताकार हो गया। फिर अग्नि और सूर्यकी तरह चमकीला अति दिव्य सरपतका वन हो गया। उसीसे स्वामिकार्तिक अग्निके समान तेजस्वी उत्पन्न हुये। तदनन्तर सब देवताओं और ऋषियोंने उमा और शिवकी पूजा की। हे राम! जब प्रसन्न मन से देवताओंने पूजन किया, तब उमा (क्रुद्ध होकर) देवताओंसे बोली—अरे देवताओं! तुमने जो मेरे लिये अप्रिय कार्य किया है, उसका फल तुम भोगोगे। सूर्यके समान दीप्तिमान् उमाने यह कह कर हाथमें जल लिया और क्रोधमें लाल नेत्रकर सब देवताओंको शाप दिया कि, तुमने मेरे पुत्र उत्पन्न होनेमें बाधा डाली है, सो कोई भी देवता अपनी स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न न कर सके; आजसे तुम्हारी स्त्रियाँ सन्तान-रहित होंगी। देवताओंको शाप देकर, उमाने पृथ्वीको भी शाप दिया कि, हे पृथ्वी! तू एक सी नहीं रहेगी। तेरे अनेक पति होंगे। अर्थात् समस्त भूमण्डलका एक राजा न होगा—अनेक राजा होंगे। हे सुदुर्भेदे! मेरे क्रोधसे तुझे पुत्र सुख न होगा, क्योंकि तूने मेरे पुत्रको नहीं चाहा। महादेवजीने इन्द्र तथा सब देवताओंको लज्जित देख, वरुण दिशाकी ओर जानेकी इच्छाकी। वहाँ जाकर हिमालयके उत्तर भागमें हिमवत्प्रभव नामक पर्वत-शृंगपर उमा सहित वे तप करने लगे। हे राम! हिमालयकी एक पुत्रीकी यह कथा मैंने विस्तार पूर्वक कही। हिमालयकी दूसरी पुत्री गङ्गाकी विस्तृत कथा लक्ष्मण सहित तुम सुनो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

स्वामिकार्तिकेयकी उत्पत्ति

जब महादेवजी तप करने लगे, तब इद्रादि देवता अग्निको आगे कर,

सेनापति (अपनी सेनाके लिए एक सेनापति) प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्माजी के पास गए, और प्रणाम कर, इन्द्र और अग्निको आगे कर, ब्रह्माजीसे सब देवता प्रणाम पूर्वक बोले—हे भगवान् ! आदिकालमें जिन (रुद्र) को अपने हमारा सेनापति बनाया था, वे तो उमाके साथ हिमालय पर जाकर तप कर रहे हैं। अतएव इसके बाद लोकोंके हितार्थ जो करना उचित जान पड़े, वह कीजिये; क्योंकि हमारी दौड़ तो आपही तक है। देवताओंके इन बचनोंको सुन, ब्रह्माजी मधुर वचनोंसे देवताओंको सान्त्वना प्रदान कर, अर्थात् ढाँढस बँधा कर यह बोले—हे देवगण ! उमादेवीने तुम लोगोंको जो शाप दिया है कि, तुम्हारी स्त्रियोंको सन्तान न होगी, वह तो अन्यथा होगा नहीं। हाँ, अग्नि-देव इस आकाश-गङ्गासे जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगे, वह देवताओंके शत्रुओं का नाश करनेवाला होगा। हिमालयकी ज्येष्ठा पुत्री गङ्गा, अपनी छोटी बहिन का पुत्र होनेके कारण, उसे निज पुत्रवत समझेगी और उमा तो उसे निश्चय ही बहुतही मानेगी अर्थात् बहुत प्यार करेगी। हे राम ! ब्रह्माके ये वचन सुन, देवताओंने अपनेको कृतार्थ समझा और प्रणामादि कर ब्रह्माजीका पूजन किया। तदनन्तर सब देवता अनेक धातुओंसे परिपूर्ण कैलास पर्वत पर गये और पुत्रोत्पत्तिके लिये अग्निको प्रेरण करने लगे। (देवतागण, अग्निसे कहने लगे) यह देवताओंका कार्य है। इसे करो। हे महातेजस्वी अग्निदेव। आप अपना वीर्य गङ्गामें छोड़ो। अग्निदेवने देवताओंसे यह कार्य करनेको प्रतिज्ञाकी, और गङ्गाजीसे कहा--हे देवि ! तुम हमसे गर्भ धारण करो। क्योंकि यह कार्य देवताओंको अभिलषित है। अग्निदेवका यह बचन सुन गङ्गा देवीने दिव्य स्त्रीरूप धारण किया। अग्निने गङ्गाजीका सौंदर्य देख, अपने तब अंगों से वीर्य छोड़ा। हे राम ! गङ्गाकी प्रत्येक नाड़ी अग्निके तेज (वीर्य) से परि-पूर्ण हो गई—कोई अंग खाली न रहा। तथ गङ्गाने अग्निसे कहा—हे देव ! मैं तुम्हारे बढ़ते हुए तेजको धारण नहीं कर सकती। क्योंकि तुम्हारे तेजसे मैं जली जाती हूँ और मैं बहुत दुःखी हूँ। यह सुन अग्निने कहा--इस हिमा-लयके पास इस गर्भको रख दो। यह सुन गङ्गाजीने वह परम तेजस्वी गर्भ अपने अंगोंसे निकाल दिया। जब वह गर्भ भूमि पर गिरा तब वह अत्यन्त

चमकदार जाम्बूनद सुवर्ण हो गया। वही विशुद्ध और सुन्दर सोना है, जो पृथ्वी पर है। उसके पास जितने पदार्थ थे, वे चाँदी हो गये। जहाँ-जहाँ उसकी तीक्ष्णता पहुँची; वहाँ ताँबा और लोहा हो गया। उसके मैलका जस्ता और सीसा हो गया। इस प्रकार वह तेज भूमि पर अनेक धातुओंके रूपमें फैल गया। गर्भके छोड़ते ही संपूर्ण पर्वत और वहाँका वन तेजसे परिपूर्ण हो सुवर्ण हो गया। हे राम! तबसे यह सोना प्रसिद्ध हुआ और हे पुरुष-व्याघ्र! सुवर्ण की अग्नि जैसी कान्ति हो गई। वहाँ जो तृण, गुल्म, लताएँ थीं, वे भी सुवर्ण हो गईं। तदनन्तर उस तेजसे कुमारका जन्म हुआ। तब इन्द्रादि देवताओंने उस बालकको दूध पिलानेके लिए कृत्तिकाओंको नियुक्त किया। निज पुत्र कहलानेकी प्रतिज्ञा कराकर सबने दूध पिलाया। तब सब देवताओं ने कहा कि, यह बालक तुम्हारा पुत्र भी कहलावेगा, और उसका कार्तिकेय नाम रख कर कहा—यह बालक निःसंदेह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा। वह सुन कृत्तिकाओंने गिरे हुए गर्भसे उत्पन्न उस कुमारको अच्छी तरह स्नान कराये, जिससे उस बालकका शरीर अग्निवत् दमकने लगा। यह बालक गर्भ-श्रावसे उत्पन्न था, अतः देवताओंने उसका स्कन्द नाम भी रखा। हे रामचन्द्र! अग्निके सदृश महाभाग कार्तिकेयके लिए कृत्तिकाओंके दूध उत्पन्न हो गया। वह बालक छः मुखोंसे छःओं कृत्तिकाओंके स्तनोंका दूध पान करने लगा और एक दिन दूध पीकर, उस सुकुमार शरीरवाले बालकने अपने पराक्रम से दैत्योंकी सेनाको जीता। तब उस विमलद्युति वाले कुमारको, देवताओंकी सेनाके सेनापति पद पर अग्नि आदि देवताओंने अभिषिक्त किया। हे राम! यह गङ्गाजीका तथा कार्तिकेयके जन्मका बृतान्त विस्तार पूर्वक मैंने कहा। यह कथा बहुत अच्छी और पुण्यदायिनी है। हे राम! इस पृथ्वी तल पर जो लोग इसे भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं। वे आयुष्मान् और पुत्र-पौत्र वाले होकर, अन्तमें स्कन्द लोकमें जाकर वास करते हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

अड़तीसवाँ सर्ग

सगर के साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति तथा यज्ञ

मधुर वाणीसे उक्त कथा श्रीरामचन्द्रजीको सुनाकर, फिर विश्वामित्रजी

बोले—हे वीर! पहले अायोध्यापुरीमें एक सगर नामक राजा थे जिनके कोई पुत्र न था, अतः उन्हें पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा थी। सगरकी पटरानीका नाम केशिनी था। वह विदर्भ देशके राजाकी बेटी और बड़ी धर्मिष्ठा और सत्य-वादिनी थी। इनकी दूसरी रानीका नाम सुमति था और वह अरिष्टनेमिकी कन्या थी तथा अत्यन्त सुन्दरी थी। उन दोनों रानियों सहित महाराज सगर हिमालयके भृगुप्रस्रवण नामक प्रदेशमें जाकर तप करने लगे। तपस्या करते २ महाराज सगर को, जब सौ वर्ष पूरे हो गये, तब सत्यवादी महर्षि भृगुने सगरकी तपस्यासे प्रसन्नहो, उन्हें यह वर दिया—हे श्रेष्ठपुत्र! हे अनघ! तुम्हें बहुतसे पुत्रोंकी प्राप्ति होगी और अतुल कीर्तिभी मिलेगी। (इन दो रानियोंसे) एकके तो वंश बढ़ाने वाला केवल एकही पुत्र होगा और दूसरीके साठ हजार पुत्र पैदा होंगे। मुनिके ऐसा कहनेपर दोनों रानियोंने हाथ जोड़ कर कहा—हे ब्रह्मन्! आपका वरदान सत्यहो, परन्तु यह बतलाइए कि, एक किसके और साठ हजार पुत्र किसके होंगे? यह सुन महाराज भृगुजीने कहा—यह तुम दोनोंकी इच्छा पर निर्भर है। जो जैसा चाहेगा, उसके वैसा होगा। तुम दोनों अलग २ बतलाओ कि, तुममेंसे कौन वंशकी वृद्धि कर-नेवाला एक पुत्र, और कौन बड़े बलवान् कीर्तिशाली और अमित उत्साही साठ हजार पुत्र-प्राप्तिका वर चाहती है? हे रघुनन्दन! भृगुजीके इस प्रश्न को सुन केशिनीने वंशकर एक पुत्र प्राप्तिका वर प्राप्त किया और गरुड़की बहन सुमतिको बलवान् कीर्तिमान् साठ हजार पुत्र होनेका वरदान मिला! हे राम! महर्षि भृगुकी परिक्रमा कर शीश नवा प्रणाम कर, रानियों सहित महाराज सगर अपनी राजधानीको लौट गये। कुछ समय व्यतीत होनेपर सगरकी पटरानी केशिनीके गर्भसे असमंजस नामका एक राजकुमार उत्पन्न हुआ। हे पुरुष-श्रेष्ठ! रानी सुमतिके गर्भसे एक तूँबा निकला। उस तूँबेको फोड़ने पर उसमेंसे साठ हजार बालक निकले। उन सबको दाइयोंने घी के घड़ेमें रखकर पाला-पोसा और इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेपर, वे सब जवान हुये। बहुत दिनोंमें सगरके ये साठ हजार पुत्र जवान हुये। हे राम! सगरका ज्येष्ठ राजकुमार असमंजस अयोध्यावासियोंके बालकोंको

पकड़कर सरयू नदीमें फेंक दिया करता और जब वे डूबने लगते, तब वह उन्हें डूबते हुए देखकर प्रसन्न होता था। वह बड़ा दुराचारी हो गया और वह सज्जनोंको सताने लगा अर्थात् उसके आचरण सज्जनोंके आचरणोंसे बहुत दूर थे। महाराज सगरने, पुरवासियोंको सताने वाले असमंजसको देश निकाले का दण्ड दिया। असमंजसके अंशुमान नामक एक पराक्रमी पुत्र था। जो सबकी सम्मतिसे चलता था, सबसे प्रिय वचन बोलता था। बहुत दिनों बाद महाराज सगरकी इच्छा हुई कि, एक यज्ञ करें। हे राम! ऐसा निश्चयकर, वे ऋत्विजोंको बुलाकर यज्ञ करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा आदि काव्य बालकाण्ड का अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ सर्ग

सगर के यज्ञीय घोड़े का हरण। खोज में साठ हजार पुत्रों का जाना। पुत्रों द्वारा पृथ्वी का खोदा जाना। देवताओं का ब्रह्मा जी के पास जाना।

उक्त कथाके समाप्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजी परम प्रीतिके साथ अग्निवत् देदीप्यमान विश्वामित्र मुनिसे बोले—हे ब्रह्मन्! आपका मंगल हो। मैं विस्तार पूर्वक यह सुनना चाहता हूँ कि, मेरे पूर्वज महाराज सगरने किस प्रकार यज्ञ किया? यह सुन हर्षित हो विश्वामित्रजी बोले—हे राम! महाराज सगरका चरित विस्तार पूर्वक सुनिये। शंकरके ससुर हिमाचल और विन्ध्याचल एक दूसरेको देखते हैं। हे पुरुषोत्तम! इन्हीं दोनों पर्वतोंके बीचकी भूमि पर महाराज सगरका यज्ञ हुआ। हे नर-व्याघ्र! हिमालय और विन्ध्य पर्वतके बीचकी भूमि यज्ञ कर्मके लिये उत्तम है। हे काकुत्स्थ! उस यज्ञमें छोड़े हुए घोड़ेकी रक्षाके लिए दृढ़ धनुषधारी, महारथी, अंशुमान महाराज सगरके आदेशसे नियुक्त हुये। अनन्तर उस यजमानके पूर्व दिन इन्द्र राक्षस का रूप धारण कर यज्ञीय अश्वको हरले गये। जब यज्ञीय अश्व लेकर इन्द्र चले, तब हे राम! सब ऋत्विग्गणने राजासे कहा कि, यज्ञका घोड़ा कोई बड़ी तेजीसे चुराकर लिए जाता है। अतः हे काकुत्स्थ! घोड़ा चुराकर भागनेवालेको मारकर घोड़ा लाइए। उस यज्ञमें ऋत्विजोंके ये वचन सुनकर, राजा अपने साठ हजार पुत्रोंसे बोले—हे पुत्रों! यज्ञीय अश्वके हरने वाले दुष्ट राक्षस नहीं दिखाई पड़ते कि, वे किस मार्गसे घोड़ा चुराकर ले

गये। यज्ञ बड़े २ यज्ञवेत्ता महात्माओं द्वारा कराया जाता है, जिससे किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न हो। अब तुम लोगोंको चाहिए कि, तुरन्त जाकर घोड़ेका पता लगाओ; तुम्हारा मंगल हो। समुद्रमें घिरी हुई जितनी पृथ्वी है, सब ढूँढ़ना। एक २ योजन ढूँढ़ कर आगे बढ़ना। मेरी आज्ञासे अश्व-हर्त्ताको ढूँढ़ते हुए, तब-तक पृथ्वीको खोदते जाना, जब-तक घोड़ा दिखाई न दे। मैं तो यज्ञीय दीक्षा लिये हूँ। सो जब-तक मैं घोड़ेको देख न लूँगा, तब-तक अंशुमान और उपाध्यायों सहित, यहीं रहूँगा। जाओ, तुम्हारा मंगल हो। हे राम! वे महाबली राजकुमार प्रसन्न हो और पिताकी आज्ञा पाकर, पृथ्वीभरमें ढूँढ़ने लगे। हे नरशार्दूल! समस्त पृथ्वी खोद चुकनेके बाद अपने वज्रवत् नखोंसे प्रत्येक राजकुमार एक २ योजन पृथ्वी खोदने लगे। हे रघुनन्दन! उस समय बड़े-बड़े त्रिशूलों और मजबूत हलोंसे पृथ्वी खोदते समय हाहाकार मच गया। पृथ्वी खोदनेमें अनेक नाग, दैत्य और बड़े-बड़े दुर्धर्ष राक्षस मारे गये और अनेक घायल हुये। हे रघुनन्दन! उन वीर राजकुमारोंने साठ हजार योजन भूमि खोद डाली। खोदते २ वे पाताल तक पहुँच गये। हे नृपशार्दूल! इस प्रकार वे राजकुमार पर्वतों सहित इस जम्बूद्वीपको खोदते और चारों ओर ढूँढ़ते फिरते थे। तब तो समस्त देवता, गंधर्व, असुर और पन्नग बिकल हो ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीको प्रसन्न कर, वे उदास मन अत्यन्त भयभीत हो, ब्रह्माजीसे बोले—हे भगवन्! महाराज सगरके पुत्रोंने समस्त पृथ्वीको खोद, अनेक सिद्धों तथा जलवासियोंको मार डाला है। उनके समक्ष जो पड़ जाता है, उसे वे यह कह कर मार डालते हैं कि, हमारे यज्ञीय अवश्वका चोर यही है, यही हमारा अश्व चुरा ले गया है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा प्रथम बालकाण्ड का उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ सर्ग

ब्रह्माजी द्वारा देवताओंको शान्त्वना देना। पृथ्वीका खोदा जाना। कपिलजीका दर्शन तथा उनकी हुंकार शब्दसे साठ हजार पुत्रोंका भस्म होना।

देवताओंके इन वचनोंको सुन, ब्रह्माजी सगरके पुत्रोंसे, जिनके सिरपर काल खेल रहा था भयग्रस्त देवताओंसे बोले—हे देवगण! यह समस्त

भूमि जिन श्रीमान् भगवान् वासुदेवकी है, वे ही कपिलके रूपमें निरन्तर इस पृथ्वीको धारण करते हैं अब वह समय उपस्थित है जब कि समस्त राजकुमार उन्हीं कपिलके क्रोधानलसे दग्ध हो जायेंगे। यह पृथ्वी तो सनातन है। जिसका निश्चय ही नाश नहीं हो सकता और नाशवान् सगरके पुत्रोंका शीघ्र नाश होगा; अतः तुम चिन्ता मत करो। ब्रह्माके ये वचन सुन तैंतीसो देवता प्रसन्नहो लौट गये। इधर पृथ्वी खोदनेवाले सगरके पुत्रोंका पृथ्वी खोदनेका कोलाहल वज्रपातके समान हुआ। वे समस्त पृथ्वीको खोद, उसकी परिक्रमा कर अपने पितासे बोले—हमने समस्त पृथ्वी ढूँढ डाली और देव, राक्षस, पिशाच, उरग और पन्नग जो हमें मिले उन्हें हमने मार डाला, किन्तु हमें न तो यज्ञीय अश्वका और न उसके चुरानेवालेका पता चला। अतः अब आपही सोच कर बताइए कि, हम क्या करें? राजकुमारोंकी यह बात सुन, नृप-श्रेष्ठ सगर, कुपित हो उनसे बोले—जाओ पुनः पृथ्वी खोदो और घोड़ा चुरानेवालेको पकड़, और सफल हो करही लौटो। महाराज सगरकी इस आज्ञाके अनुसार वे साठ हजार राजकुमार रसातलकी ओर दौड़े और खोदते-खोदते उन्होंने उस पर्वताकार विरूपाक्ष दिग्गजको देखा, जो पृथ्वी-मण्डलको धारण किये हुए है। हे रघुनन्दन! पर्वत सहित उस दिशाकी समस्त पृथ्वीको महाराज विरूपाक्ष अपने सिरपर धारण किए रहता है और जब थक जाने पर वह दम लेता है और पृथ्वी डोलती है उसीको भूडोल कहते हैं। तब पूजन करके हे राम! वे रसातल खोदते हुए आगे बढ़े और पूर्व दिशाको खोद-कर, वे दक्षिण दिशाको पुनः खोदने लगे। दक्षिण दिशा में भी उन्होंने बड़े विशाल पर्वतोपम डीलडौलके दिग्गज महापद्मको देखा। उसे अपने सिरपर उस दिशाकी पृथ्वी रखते हुए देख, वे लोग अत्यन्त विस्मित हुए। महाराज सगरके पुत्रोंने उसकी परिक्रमाकी। फिर साठो हजार पुत्र पश्चिम दिशाकी भूमि खोदने लगे। पश्चिम दिशामें भी एक बड़े पहाड़के समान सोमनस नामक दिग्गजको उन महाबली राजकुमारोंने देखा। उन लोगोंने उसकीभी प्रदक्षिणाकी और कुशल-प्रश्न पूछा। हे रघुनन्दन! तदनन्तर उन लोगोंने उत्तर दिशाकी भूमि खोदने पर वर्फके समान सफेद रंगका भद्र नामक बड़े डीलडौलका दिग्गज देखा, जो उस दिशाकी भूमिको धारण किए हुए था। उसकीभी प्रदक्षिण

कर साठो हजार राजकुमार पृथ्वी खोदते हुए आगे बढ़े और प्रसिद्ध दिशा ईशानमें जाकर बड़े क्रोधसे पृथ्वी खोदने लगे। उन सब भीम वेगवाले महात्मा और महाबली सगर-पुत्रोंने सनातन बासुदेव कपिल देवको देखा और उसके समीपही चरते हुए अपने यज्ञीय अश्वकोभी देखा। हे राम! वे सब घोड़ेको देख अत्यन्त प्रमुदित हुए और कपिलदेवको उस घोड़ेका चुरानेवाला समझ और अत्यन्त क्रुद्धहो उन्हें मारनेके लिए हल, कुदाल, वृक्ष, पत्थर लेकर उनकी ओर दौड़े और क्रुद्धहो कहने लगे, ठहरो! हम तुम्हें घोड़ा चुरानेका फल चखाते हैं। तूनेही हमारा यज्ञका घोड़ा चुराया है। तू बड़ा दुर्बुद्धि है। देख, हम सब महाराज सगरके पुत्र आ पहुँचे। हे रघुनन्दन! सगरके पुत्रोंकी ये बातें सुन, कपिलदेव अत्यन्त क्रुद्ध हुए और "हुँकार" शब्द किया। हे राम! अप्रमेय बलशाली महात्मा कपिलने सगरके सब पुत्रोंको भस्मकर, भस्मका एक ढेर लगा दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

एकतालीसवाँ सर्ग

पुत्रों की खोजमें अंशुमान का जाना तथा भस्म देख दुःखी होना। कपिल आश्रम में पशु देखना और पुत्रों के उद्धरार्थ गंगाको लानेका उपदेश मिलना, पशु ले जाकर यज्ञ पूरा करवाना तथा अपने पितृको भस्म होनेका हाल कहना।

हे रामचन्द्र! जब महाराज सगरने देखा कि, उन राजकुमारोंको गये बहुत दिन हो चले, तब अपने तेजस्वी दीप्तिमान पौत्र अंशुमानसे कहा—हे वत्स! तुम शूर वीरहो, विद्वान्‌हो और अपने पूर्वजोंके समान तेजस्वीभी हो इससे जाकर अपने पितृव्योंका और घोड़ा चुरानेवालेका पता लगाओ। इस पृथ्वीके भीतर बिलोंमें बड़े-बड़े पराक्रमी जीवधारी हैं। अतः उनको हरानेके लिए खड्ग व धनुष बाण लिए रहो। जो वन्दना करने योग्य पुरुष मिलें, उनको प्रणाम करना और जो विघ्नकारक हों उनका वध करना। इस प्रकार कार्य सिद्धकर लौटना, जिससे अधूरा यज्ञ पूरा हो। अपने बाबाके इस प्रकार समझाने पर और धनुष बाण एवं तलवार ले, अंशुमान तुरन्त चल दिया महाराजकी आज्ञाके अनुसार वह उस मार्ग पर जा पहुँचा। जिसे उसके पितृव्योंने खोद कर बनाया था और उस मार्गसे पातालमें पहुँच गया। देव,

दानव, यक्ष, राक्षस, पिशाच और नाग, मार्गमें जो-जो मिलता वही इसक आदर सात्कार करता। जाते २ महा तेजस्वी अंशुमानने एक दिग्गजको देखा। उसकी परिक्रमा कर तथा उससे शिष्टाचारकी बातें कर, अंशुमानने उस दिग्गजसे अपने चाचाओंका और अश्वके हरने वालेका पता पूछा। दिग्गजने कहा—हे असमंजसके पुत्र अंशुमान! तुम अपना कार्य सिद्ध कर घोड़ा लेकर शीघ्रही लौटोगे। दिग्गजके वचन सुन, अंशुमान आगे बढ़ा और यथाक्रम शेष दिग्गजोंसे भी वही पूछा। उन सब दिग्गजोंने बात करनेमें चतुर अंशुमान द्वारा पूजित होकर, वही बात कही अर्थात् आगे बढ़ते चले जाओ। उनके इस प्रकारके वचन सुन, अंशुमान शीघ्र वहाँ पहुँच गया जहाँ सगरके पुत्रों और उसके चाचाओंके भस्म किए हुए शरीरकी राखका ढेर पड़ा था। अंशुमान उसे देखकर बहुत दुःखी हुआ और उनकी मृत्यु पर शोकान्वित हो रोने लगा। दुःख शोकातुर अंशुमानने समीपही यज्ञीय अश्वकोभी चरते हुए देखा। अंशुमानने मरे हुए राजकुमारोंका तर्पण करना चाहा, किन्तु तलाश करनेपरभी उसे वहाँ कोई जलाशय न मिला। दृष्टि फैलाकर चारों ओर देखनेपर उसे अपने चाचाओंके मामा वायुके समान वेग वाले गरुड़जी देख पड़े। गरुड़जीने अंशुमानसे कहा—हे पुरुषसिंह! तुम दुःखी मत हो। क्योंकि इन सबका बध लोक-सम्मतही हुआ है। ये सब अमित प्रभाव वाले महात्मा कपिल द्वारा भस्म किये गए हैं। हे प्राज्ञः! इनको लौकिक जल–दान मत करो। हे पुरुषर्षभ! हिमालयकी जेष्ठा पुत्री गंगा नदीके जलसे तुम अपने पितरोंका तर्पण करो। जब लोक–पावनी गंगाजीके जलसे इनकी भस्म तर होगी, तब साठ हजार राजकुमार स्वर्गवासी होंगे। हे महाभाग! हे पुरुषोत्तम! तुम अश्व लेकर लौट जाओ और अपने बाबाका यज्ञ पूरा करवाओ। गरुड़जी की ये बातें सुन, अंशुमान तुरन्त घोड़ा लेकर लौट आया। यज्ञ–दीक्षासे दीक्षित महाराज सगरके पास जाकर, उनको गरुड़जीकी कही हुई बातें सुनाईं। अंशुमानकी उन दारुण बातोंको सुन महाराज सगर बहुत दुःखी हुये। तदनन्तर उन्होंने यथाविधि यज्ञ पूरा किया और अपनी राजधानीको लौट गए, और बहुत सोचनेपरभी महाराज सगरको

गंगाजीके लानेका कोई उपाय न सूझ पड़ा। अन्तमें तैंतीस हजार वर्षों तक राज्य कर वे स्वर्गवासी हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका एकतालिसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ सर्ग

अंशुमानका पुत्र दिलीप को राज्य सौंप हिमालय पर जा, तप कर स्वर्ग सिधारना। दिलीप का यज्ञ करना तथा अपने पुत्र भगीरथ को राज्य दे स्वर्ग सिधारना। भागीरथका उग्र तप कर वर लेना।

महाराज सगरके स्वर्गवासी होनेपर; मंत्रियोंने बड़े धर्मात्मा महाराज अंशुमान्को राजसिंहासनपर बैठाया। हे रघुनन्दन! महाराज अंशुमान बड़े प्रतापी राजा हुये। उनके पुत्र जगत् प्रसिद्ध महाराज दिलीप हुए। महाराज अंशुमानने अपने पुत्र दिलीपको राजसिंहासनपर बैठा, स्वयं हिमालयके शिखर पर जा कठिन तप किया। अन्तमें बत्तीस हजार वर्ष तप करनेके बाद वे महा यशस्वी अंशुमानभी स्वर्गवासी हुये। किन्तु गंगा नहीं आईं। महाराज दिलीप अपने पितामहोंके बधका वृत्तान्त सुन मर्माहत हुये, किन्तु गंगा जी के लानेका कोई उपाय वे भी न कर सके। वे नित्यही सोचा करते कि, श्री गंगाजी किसी प्रकार आवें, पितामहोंकी उनके जलसे जल-क्रिया कैसेकी जाय और हम उनको किस प्रकार तारें? धर्मात्मा सुप्रसिद्ध महाराज दिलीप नित्य ऐसा सोचा करते कि; इतनेमें उनके परम धार्मिक भगीरथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज दिलीपने बहुत यज्ञ किए और तीस हजार वर्ष राज्यभी किया। महाराजभी पितरोंके उद्धारके लिये चिन्तित थे कि, इतनेमें नर-शार्दूल दिलीप बीमार हुए और मर गये। अपने पुण्य कर्मोंके फलसे दिलीप स्वर्ग गये और अपने सामनेही नर–श्रेष्ठ महाराज अपने पुत्र भगीरथको राजसिंहासनपर बिठा गये। हे रघुनन्दन! महाराज भगीरथ परम धार्मिक राजर्षि थे और निःसंतान होनेसे वे सन्तान होनेकी इच्छा करते थे। हे रघुनन्दन! जब उनके पुत्र न हुआ, तब राज्य-भार अपने मंत्रियोंको सौंप, वे स्वयं गोकर्ण नामक तीर्थ पर जा, गंगावतरणके लिए बहुत दिनों तक तपस्या करते रहे। वे ऊपरको हाथ उठाये रखते, पंचाग्नि तापते, महीनों बाद किसी एक दिन भोजन करते और इन्द्रियोंको वशमें रखते। इस प्रकार एक हजार वर्ष तक

वे कठोर तप करते रहे। हे महाबाहो! एक हजार वर्ष बीतने पर लोकों स्वामी और प्रभु ब्रह्माजी भगीरथ पर प्रसन्न हुए, और देवताओंको साथ ले, वे तपस्यामें लगे हुए, महात्मा भगीरथके पास जाकर बोले–हे महाराज भगीरथ! तुमने बड़ी कठिन तपस्या की, अतः हम तुम पर प्रसन्न हैं। हे सुव्रत! वर माँगो। यह सुन महा तेजस्वी भगीरथने हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे कहा—हे भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरे तपका फल देना चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि, सगरके पुत्रोंको मेरे द्वारा गंगा-जल प्राप्त हो। क्योंकि हमारे धर्मात्मा परदादे तभी स्वर्गवासी होंगे, जब उनकी राख गंगाजलसे भींगेगी। हे देव! दूसरा वर मैं यह माँगता हूँ कि मेरा इक्ष्वाकुवंश नष्ट न हो। इसलिए मुझे सन्तान भी दीजिये। यह मैं दूसरा वर भी चाहता हूँ। महाराज भगीरथके ये वाक्य सुन, सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा यह मधुर एवं शुभ वाणी बोले—हे महारथी भगीरथ! तेरा मनोरथ है तो बड़ा; किन्तु वह पूर्ण होगा अर्थात् तुझे पुत्रकी प्राप्ति होगी। रे इक्ष्वाकु–कुलवर्धन! तेरा मंगल हो। हिमालयकी जेष्ठा पुत्री यह गंगाजी जब बड़े वेगसे पृथ्वी पर गिरेंगी, तब इनका वेग पृथ्वी न सँभाल सकेगी। उनके वेगको सँभाल सकनेकी शक्ति शिवजीको छोड़ और किसीमें नहीं है। इस प्रकार ब्रह्माजी महाराज भगीरथ और गंगाजीसे कहकर, देवताओं सहित स्वर्ग-लोकको गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

गंगाके वेगके सहनके लिए भागीरथका तप द्वारा महादेवजीको प्रसन्न करना। गंगावतरण। शिवजीका अपनी जंटामें गंगाको छिपाना। पुनः तपसे शिवजीको प्रसन्न करना। किन्तु सरोवरमें शिवजीका गंगाको छोड़ना। गंगाका भगीरथके पूर्वजों का उद्धार करना।

ब्रह्माजीके चले जानेके पश्चात्, महाराज भगीरथने पैरके एक अंगूठे सहारे खड़े होकर, एक वर्ष तक शिवजीकी उपासना की। हे अरिन्दम! भागीरथी ऊपरको बाहु किए निरालम्ब, वायु-पान कर, बिना आश्रय, खंभेकी तरह अचल हो, रात-दिन खड़े रहे। जब एक वर्ष पूरा हुआ, तब सर्व-लोक नमस्कृत उमापति महादेवजीने भागीरथसे कहा—हे नर-श्रेष्ठ! हम तेरे ऊपर प्रसन्न हैं और जो तू चाहेगा, सो हम तेरे लिए करेंगे। हम श्रीगङ्गाजीको

अपने सिर पर धारण करेंगे। तब सब लोकोंके नमस्कार करने योग्य गङ्गाजी, महद्रूप धारण कर और दुःसह वेगके साथ आकाशसे शिवजीके मस्तक पर गिरीं और गिरते समय परम दुर्धरा गङ्गा देवीने सोचा कि, मैं अपनी धारके साथ महादेवजीको बहा कर पाताल ले जाऊँगी। गङ्गादेवीके इस अभिमान भरे विचारको जान कर, भगवान् महादेवजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनको अपने जटा जूटमें छिपा रखना चाहा। हिमालयके समान और जटा-मण्डल रूपी गुफावाले शिवजीके पवित्र मस्तक पर, श्रीगङ्गाजी गिरीं और अनेक उपाय करने पर भी जटा जूटसे निकल; पृथ्वी पर न जा सकीं। वे शिवजीके जटा जूटोंमें कितने ही वर्षों तक घूमीं परन्तु, बाहर न निकल सकीं। हे रघुनन्दन! गङ्गाजीको न देख, महाराज भगीरथने फिर कठोर तप किया और तप द्वारा भगवान् शिवको फिर प्रसन्न किया। तब शिवजीने श्रीगङ्गाजीको हिमालय पर्वत पर स्थित विन्दुसरमें छोड़ा। छोड़ते ही गङ्गाजीकी सात धारायें हो गईं। ह्लादिनी, पावनी और नलनी। गङ्गाजीकी ये तीन कल्याण-कारिणी धारायें उस सरसे पूर्वकी ओर बहीं। गङ्गाजी के शुभ जलकी सुचक्षु, सीता और सिन्धु नामकी तीन धारायें पश्चिमकी ओर बहीं। सातवीं धार महाराज भगीरथके पीछे-पीछे चली। राजर्षि भगीरथ एक सुन्दर रथमें बैठे हुए आगे-आगे चले जाते थे और उनके पीछे-पीछे श्रीगंगाजी चली जाती थीं। आकाशसे श्रीमहादेवजीके मस्तक पर और उनके मस्तकसे श्रीगंगाजी धरणीतल पर आईं। उनके पृथ्वी पर गिरते ही बड़ा शब्द हुआ और मछलियाँ, मछुए, सूँस आदि जल जन्तुओंके झुण्डके झुण्ड गंगाजीकी धारके साथ गिरते पड़ते चले जाते थे। जिधर श्रीगंगाजी जाती थीं, उधरकी भूमि सुशोभित हो जाती थी। देव, ऋषि, गंधर्व, यक्ष, और सिद्धगण, आकाशसे आई हुई गंगाको देखनेके लिए उत्तम नगराकार विमानों, हाथियों और घोड़ों पर सवार होकर आये हुए थे। श्रीगंगाजीकी धारका जल कहीं ऊँचा कहीं टेढ़ा, कहीं फैला हुआ और कहीं ठोकर खाकर उछलता हुआ धीरे-धीरे बहता था और कहीं-कहीं तो जल; जलसे ही टकरा कर बार-बार ऊपरको उछलता और फिर पृथ्वी पर गिर पड़ता था। इस प्रकार वह निर्मल और पापहारी जल सुशोभित हो रहा था। वहाँ पर देव, ऋषि, गंधर्व, और बसुधा-

तलवासी लोगोंने उस शिवजीकी जटासे गिरे हुए पवित्र जलको छुआ। जो लोग शापवश ऊपरके लोकोंसे भूलोकमें आये हुए थे, वे इस जलमें स्नान कर पापोंसे छूट गये और पापोंसे छूट और तेज युक्त हो आकाश मार्गसे पुनः अपने-अपने लोकोंको चले गये। जहाँ गंगाजी जातीं वहाँके मनुष्य श्रीगंगाजीके जलमें स्नान करके निष्पाप हो जाते थे। राजर्षि भगीरथ भी एक दिव्य रथमें बैठे हुए, आगे-आगे चले जाते थे, और श्रीगंगाजी उनके पीछे-पीछे बही चली जाती थीं। हे राम! सब देवता, ऋषिगण; दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, बड़े-बड़े सर्प तथा अप्सराएँ महाराज भगीरथके रथके पीछे-पीछे जा रही थीं और समस्त जलचर जीव प्रसन्न हो श्रीगंगाजीके पीछे चले जाते थे। जिधर महाराज भगीरथ जाते थे, उधर ही यशस्विनी, सब पापोंको नाश करनेवाली तथा नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगंगाजी भी जा रही थीं। चलते-चलते श्रीगंगाजी वहाँ पहुँचीं, जहाँ अद्भुत कर्म करने वाले जह्नु नामक महर्षि यज्ञ कर रहे थे। वहाँ श्रीगंगाजीने सब सामान सहित उनकी यज्ञशाला बहा दी। हे राम! तब तो श्रीगंगाजीका ऐसा गर्व देख जह्नुऋषि कुपित हुए और ऐसा चमत्कार दिखाया कि वे गंगाके समस्त जलको पी गये। महात्मा जह्नुका यह प्रभाव देख देवता, गन्धर्व, ऋषिगण आदि बड़े विस्मित हुए और पुरुषोंमें श्रेष्ठ महात्मा जह्नुकी स्तुति करने लगे और बोले, आजसे श्रीगंगाजी आपकी बेटी कहलाएँगी। इस पर प्रसन्न हो महातेजस्वी जह्नुने दोनों कानोंके रास्तेसे जलको निकाल दिया। तबसे ही जह्नुसुता श्रीगंगा जाह्नवी कहलाती हैं। उसी प्रकार श्रीगंगा रथके पीछे हो लीं और चलते-चलते नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगंगा समुद्रमें जा पहुँचीं और फिर वे भगीरथकी कार्य सिद्धिके लिये रसातल गयीं। राजर्षि भगीरथ बड़े यत्नके साथ श्रीगंगाजीको साथ ले गए, और दुःखी मनसे अपने पुरुखोंके भस्म हुए शरीरोंकी राख देखा। हे रघुनन्दन! श्रीगंगाजीका पवित्र जल ज्योंही भगीरथके पुरुखोंकी भस्मकी ढेर पर पड़ा, त्योंही वे सब निष्पाप हो स्वर्गमें पहुँच गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ सर्ग

महाराज भगीरथ श्रीगंगाजीके साथ समुद्र-तट पर पहुँचे और वहाँसे

पातालमें गए, जहाँ पर (महाराज सगरके पुत्र) भस्म किए गये थे। हे राम! उस भस्मपर गंगा जलके पड़नेसे सब लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने भगीरथसे यह कहा—हे नरशार्दूल! महात्मा सगरके साठ हजार पुत्रोंको आपने तार दिया। वे देववत् स्वर्गको गये। हे राजन्! जब तक सागरमें एक बूँद भी जल रहेगा तब-तक महाराज सगरके पुत्र स्वर्गमें देवताओंकी तरह वास करेंगे। यह श्रीगङ्गा तुम्हारी ज्येष्ठ कन्या होंगी और तुम्हारेही नामसे प्रसिद्ध होकर भूलोकमें रहेंगी। इसके तीन नाम होंगे। त्रिपथगा, भागीरथी और जाह्नवी। तीन पथपर चलने वाली होनेके कारण यह त्रिपथगा कहलाई है। हे राजन्! अब तुम अपने सब पितरोंका तर्पण करो और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। अत्यन्त यशस्वी महाराज सगरने यह मनोरथ पूरा न कर पाया और अमित तेजवाले अंशुमानने भी श्रीगंगाके लानेकी प्रतिज्ञाकी, पर उनकी प्रतिज्ञाभी पूरी न हो सकी। राजर्षियोंमें गुणवान् और महर्षियोंके समान तपस्यामें हमारे तुल्य और क्षत्री धर्म प्रतिपालक अति तेजस्वी तुम्हारे पिता महाभाग दिलीपने श्रीगंगाकी प्रार्थनाकी, पर वे भी न ला सके; किन्तु हे पुरुषोत्तम! तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। हे शत्रुहन्ता! तुम्हें बड़ा यश मिला, क्योंकि तुम श्रीगंगा जी को लाये। इस कार्य से तुम धर्म के परमस्थान में पहुँच गये। हे नरोत्तम! अब तुमभी सदा स्नान करने योग्य, इन श्रीगंगा जी में स्नान करो और हे पुरुष-सिंह! पवित्र होकर, पुण्यफल प्राप्त करो। तथा अपने समस्त पुरखों का तर्पण करो। हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। अब हम अपने लोक को जाते हैं, तुम भी अपनी राजधानी को जाओ। यह कह कर देवेश महा-यशस्वी ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये। राजर्षि भगीरथ ने भी श्रीगंगा जल से यथाविधि महा यशस्वी सगर-पुत्रों का तर्पण कर और पवित्र हो अपनी राजधानीमें प्रवेश किया और सब प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हुए राजा भगीरथ राज्य करने लगे। हे राघव! भगीरथके पुनः राज्यशासन की बागडोर अपने हाथमें लेनेसे प्रजा अत्यन्त प्रसन्न हुई। सब लोगों का दुःख दूर हो गया, सबकी चिन्ता मिट गयी और सब धन-धान्यसे भरे पूरे हो गये। हे राम! यह मैंने तुमसे श्रीगंगावतरणकी कथा विस्तारपूर्वक कही। तुम्हारा मंगल हो। अब सन्ध्योपासनका समय हो चुका है, सन्ध्यो-

पासन कीजिए। धन, धान्य, यश; आयु, पुत्र और स्वर्गको देने वाला यह आख्यान जो कोई ब्राह्मण क्षत्रिय आदिको सुनाता है, उसपर पितर और देवता प्रसन्न होते हैं। हे रामचन्द्र ! इस गंगावतरणकी शुभ कथाको जो कोई स्थिर चित्त हो सुनता-सुनाता है, उसकी सब मनोकामनाएँ पूरी होती हैं, उसके सब पाप–ताप नष्ट हो जाते हैं, उसकी आयु और कीर्तिकी वृद्धि होती है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका चौवालिसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

समुद्र-मंथन की कथा।

विश्वामित्रजीकी बातें सुन, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे विश्वामित्रजी से कहने लगे—हे ब्रह्मन् ! आपने श्रीगंगा जलसे समुद्र के पूर्ण होने का आख्यान तो बड़ा अद्भुत सुनाया। इस कथा को सुनते-सुनते वह रात बातकी बातमें बीत गयी अर्थात् मालूमही न पड़ी कि, कब बीती। श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मण सहित वह सारी रात उक्त उपाख्यान के चिन्तवन करने ही में व्यतीत की। जब विमल प्रातः काल हो गया, तब श्रीरामचन्द्रजी आह्निक कर्म कर चुकनेपर विश्वामित्रजी से बोले—हे महर्षि ! रात तो शुभ कथाके सुनने में व्यतीत हुई। हम लोगों को रात्रि क्षणके समान जान पड़ी। अब आइए, आपकी कथित समस्त कथा का चिन्तवन करते हुए नदियोंमें श्रेष्ठ और पुण्य देनेवाली त्रिपथगा श्रीगंगाजीको पार करें। आपको आया हुआ जान सुखसे पार करनेवाली ऋषियोंकी यह सजी सजाई (अर्थात् जिसमें अच्छा बिछौना आदि बिछा हुआ था) नावभी बहुत जल्द आगयी है। महात्मा श्रीरामके ये वचन सुन, विश्वामित्रजीने मल्लाहोंको बुलाया और ऋषिगण एवं राजकुमारोंके साथ वे सब श्रीगंगाके पार हुए। श्रीगंगाजीके दूसरे तटपर पहुँचकर, ऋषियोंका सत्कारकर वे सब श्रीगंगाके तटपर बैठकर सुस्ताने लगे और उन लोगों ने वहाँसे विशाला नाम्नी एक नगरीको देखा। तदन्तर विश्वामित्रजी वहाँसे तुरन्त दोनों राजकुमारों सहित, इन्द्रपुरीके समान अति सुन्दर विशाला नगरीमें गये। तब उस समय महाप्राज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर

विश्वामित्रजीसे विशाला नगरीका इतिहास पूछा कि हे महर्षे! आपका मङ्गल हो, अब बतलाइए कि, इस पुरीमें किस वंशका राजा राज्य करता है। यह जाननेके लिए मुझे बड़ी उत्सुकता हो रही है। मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी, श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुन विशालापुरीका पुरातन इतिहास कहने लगे। हे राम ! इस देशके सम्बन्धमें इन्द्रसे मैंने जो वृत्तान्त सुना है उसे मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। पहले सतयुगमें दितिके महाबली पुत्र (दैत्य) और अदिति के भाग्यवान् और अत्यन्त धर्मात्मा पुत्र (देवता) हुए। उन महात्मा बुद्धिमानोंकी यह इच्छा हुई कि, कोई ऐसा उपाय हो, जिससे हम लोग अजर, अमर और निरामय हो जावें, अर्थात् रोग, मृत्यु और बुढ़ापेके कष्टों से हम सदाके लिए छुट्टी पा जावें। सोचते-सोचते उन लोगोंने यह उपाय (ढूँढ़कर) निकाला कि, हमलोग क्षीरसमुद्रको मथें, जिससे हमको अमृत मिले। ऐसा निश्चयकर वासुकि नागको मन्थन की डोरी और मन्दराचलको मन्थरदण्ड बना वे महापराक्रमी देवता समुद्र को मथने लगे। हजार वर्ष तक मथने पर वासुकी विष उगलने लगे और (मन्दराचल) की शिलाओं को दाँतों से काटने लगे। उससे अग्निके समान हलाहल नामका महाविष उत्पन्न हुआ और देव, असुर तथा मनुष्य सहित सारे संसार को जलाने लगा। तब सब देवता श्रीमहादेवजी अर्थात् श्रीशंकरजी की शरणमें गये और "त्राहि-त्राहि" (अर्थात् बचाइये-बचाइये) कह कर उनकी स्तुति करने लगे। देवताओंके इस आर्त्तनादको सुन, देवदेव महादेवजी तथा शंखचक्रधारी श्रीहरि वहाँ प्रकट हुए। तब त्रिशूल धारण किए हुए श्रीमहादेवजीसे भगवान् विष्णुने हँस कर कहा कि देवताओंके (समुद्र) मथने पर जो वस्तु सर्व प्रथम निकली है, उसे हे सुरश्रेष्ठ ! आप ग्रहण कीजिए; क्योंकि आप देवताओंके अगुआ हैं। अतः आप इसे अपनी अग्रपूजा जान कर इस विष को ग्रहण कीजिए। यह कहकर सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णु तो वहीं अन्तर्धान हो गये। तब देवताओं का कष्ट देख और भगवान् विष्णु के वचन सुन भगवान् शिव उस महाविषको अमृत की तरह पी गये। हे रघुनन्दन ! देवता और दैत्य पुनः समुद्र मथने लगे। किन्तु मन्थनदण्ड मन्दराचल धीरे-धीरे पातालकी ओर अर्थात् नीचे

की ओर जाने एवं खसकने लगा। तब देवता और गन्धर्व मिलकर भगवान् विष्णु की स्तुति कर कहने लगे, हे भगवन्! आप सब प्राणियोंके स्वामी हैं और विशेषकर देवताओंके तो आप सर्वस्वही हैं। अतः हे महाबाहो! आप हम सबकी रक्षा कीजिए और नीचे जाते हुए मन्दराचलको उठाइए। यह सुनकर भगवान् विष्णुने कच्छपका रूप धारण किया। भगवान्ने जलके भीतर जो मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया और उसके आगेके सिरेको अपने हाथसे थाम, देवताओंके बीच खड़े होकर भगवान् पुरुषोत्तम समुद्र मथने लगे तो एक हजार वर्षों तक इसप्रकार समुद्रको मन्थन करनेके बाद आयुर्वेदके आचार्य धर्मात्मा धन्वन्तरिजी हाथोंमें दण्ड कमण्डलु लिए हुए निकले। हे राम! तदन्तर सुन्दर अप्सराएँ निकलीं। हे नरश्रेष्ठ! उनका नाम अप्सरा इसलिए पड़ा कि, अप अर्थात् जल और सर अर्थात् निकलीं। अर्थात् जो जलसे निकली हों। हे राम! जलसे निकलनेके कारण वे सुन्दर स्त्रियाँ अप्सरा कहलायीं। हे राम! इन सुन्दरी अप्सराओं की संख्या साठ हजार थी और उनकी दासियोंकी संख्या तो इतनी अधिक थी कि उनकी गणना नहीं की जा सकती अर्थात् वे असंख्य थीं। उनको न तो देवताओंने और न दैत्योंने ही लेना पसन्द किया। अतः जब उन्हें किसीने लेना स्वीकार न किया, तब वे साधारण स्त्रियाँ (अर्थात् सर्व साधरणकी सम्पत्ति) कहलाईं। हे रघुनन्दन! तदन्तर वरुणदेवकी कन्या वारुणी उत्पन्न हुई जो अपने ग्रहण करनेवाले ग्राहकी खोज करने लगीं। हे राम! दितिके पुत्रोंने तो वरुणकी बेटीको ग्रहण ही न किया, किन्तु अदितिके पुत्रोंने उस आनिन्दित वारुणी यानी सुराको ग्रहण किया। तब सुरा अर्थात् मदिराको न ग्रहण करनेवाले असुर और ग्रहण करने वाले सुर कहलाए। सुर अर्थात् देवता, सुराको ग्रहणकर अत्यानन्दित हुए। हे राम। फिर उच्चैःश्रवा (लम्बे कानों वाला अथवा ऊँचा सुनने वाला या बहरा) नामका घोड़ा, फिर कौस्तुभमणि और तदन्तर उत्तम अमृत निकला। हे राम! जिस अमृतके कारण दोनों कुलवालोंकी सुरों और असुरोंकी, बड़ी क्षति हुई। क्योंकि अदितिके पुत्र, दितिके पुत्रोंके

साथ अमृतके लिए लड़ पड़े। तब सब असुर राक्षसोंसे मिल गये। फिर तो हे राम! तीनों लोकोंको मोहनेवाला सुरों असुरों का बड़ा विकट युद्ध हुआ। जब दोनों पक्षके बहुतसे योद्धा मारे जा चुके, तब भगवान् विष्णुने मोहिनी मायाको फैलाकर, उनसे अमृत छीन लिया। अविनाशी भगवान् विष्णुका जिसने सामना किया, उन सबको भगवान् विष्णुने मार डाला। देवताओं और दैत्योंके इस घोर संग्राममें अदितिके पुत्रोंने अर्थात् देवताओंने दितिके पुत्रोंको अर्थात् असुरोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। अर्थात् इस युद्धमें बहुतसे दैत्य मारे गए। दितिके पुत्रों अर्थात् असुरोंको मारकर इन्द्रने राज्य पाया और वे ऋषियों और चारणों सहित प्रसन्न हो शासन करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा आदि काव्य बालकाण्ड का पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

दिति का मरीचि-पत्र और पति कश्यपसे इन्द्रहन्ता पुत्र के लिये याँचना। कश्यपको ईप्सित-वर देना तथा इन्द्रका दितिके गर्भमें घुसकर गर्भस्थ बालकका टुकड़े-टुकड़े करना।

हे राम! दिति अपने पुत्रोंके मारे जाने पर अत्यन्त दुःखी हो, मरीचि के पुत्र और अपने पति कश्यपसे बोली—हे भगवन्! तुम्हारे बलवान् पुत्रोंने मेरे पुत्रोंको मार डाला है। अतः मैं इन्द्रका मारनेवाला पुत्र चाहती हूँ, भलेही वह बड़ी तपस्या करने परही क्यों न प्राप्त हो? मैं तपस्या करूँगी। आप मुझे ऐसा गर्भ दीजिए, जिसमें बलवान्, महाविजयी, दृढ़ बुद्धिवाला, समदर्शी, तीनों लोकोंका स्वामी और इन्द्रको मारनेवाला पुत्र जन्मे। तब दितिके यह वचन सुन, मरीचिसुत कश्यपजी, जो बड़े तेजस्वी थे, अत्यन्त दुःखी दितिसे बोले—तेरा कल्याणहो, और जैसा तू चाहतो है, वैसा ही हो! हे तपोधने! तू पवित्रहो ऐसा पुत्र जनेगी जो युद्धमें इन्द्रको मारनेवाला होगा। किन्तु यह तभी होगा, जब तू एक हजार वर्षोंतक पवित्रतासे रहेगी। मेरे अनुग्रहसे तीनों लोकोंका स्वामी पुत्र तेर उत्पन्न होगा। इस प्रकार कह और दितिको आश्वासन दे और उनका पेट हाथसे सुहराकर तथा उसे आशीर्वाद दे कश्यपजी तपस्या करने चले गये। हे पुरुषोत्तम! उनके जानेके बाद दिति बहुत प्रसन्न हुई और कुशप्लव नामक वनमें जा घोर तप करने लगी। हे राम!

उसको तप करते देख, इन्द्र बड़ी भक्तिके साथ उसकी सेवा करने लगे। अग्नि; कुश, लकड़ी, जल, फल, मूल आदि जिन २ वस्तुओंकी दितिको आवश्यकता पड़ती, इंन्द्र उन्हें बड़ी विनम्रतासे ला देता था, और जब तप करनेके कारण दितिका शरीर श्रान्तहो जाता, तब उसका शरीरभी दबाया करते थे। इन्द्र सदाही दितिकी परिचर्यामें लगे रहते थे। हे राम ! इस प्रकार करते-करते, जब एक हजार वर्ष पूरे होनेमें केवल दश वर्ष बाकी रह गए, तब दितिने इन्द्रसे परम हर्षित होकर कहा—हे इन्द्र ! तुम्हारे पिताने मुझे माँगनेपर एक हजार वर्ष बीतनेपर एक पुत्र होनेका वर दिया है। सो अब केवल दस वर्ष और शेष रह गये हैं। इसके बाद तुम (अपने) भाईको देखोगे। यद्यपि मैं उसे तुम्हें जीतनेके लिए उत्पन्न करना चाहती हूँ; तथापि उसके साथ तुम तीनों लोकोंको विजयकर राज्य सुख भोगोगे। तुम किसी बातकी चिन्ता मत करो। दितिने इस प्रकार इन्द्रसे कहा और इतनेमें दोपहरहो गया। दितिको नींद आगयी और वह पैतानेकी ओर सिर कर उल्टी सो गयी। उसको सिरहानेकी ओर पैर, और पैतानेकी ओर सिर किए सोती हुई, अपवित्र दशामें देख, इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और हँसे। फिर वे उसके शरीरमें घुस गये। हे राम ! धैर्यवान् इन्द्रने अपने असंख्य धारों वाले वज्रसे गर्भस्थ बालकके शरीरके सात टुकड़े कर दिए। इस पर गर्भस्थ बालक जब रोने लगा, तब दितिकी नींद टूटी। इन्द्रने गर्भस्थ बालकसे कहा, मत रो, मत रो। इन्द्र रोते हुए बालकको भी पुनः काटने लगा। तब दिति इन्द्रसे कहने लगी—अरे मत मार ! मत मार ! इन्द्र माता का कहना मान उदरके बाहर निकल आया और वज्र सहित हाथ जोड़कर, वे दितिसे कहने लगे—हे देवि ! तू पैताने सिर रख कर सोई थी। इससे तू अशुचि हो गयी। इस अवसरको पा मैंने युद्धमें अपने मारनेवालेके सात टुकड़े कर डाले, इसके लिए तू मुझे क्षमा कर दे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

वायु और विशाला की उत्पत्ति। राजा सुमतिकी इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंकी नामावली तथा विश्वामित्रजी के साथ समागम।

जब गर्भके सात टुकड़े हो गये तब दिति बड़ी विकलहो गयी और दुरा

धर्ष इन्द्रसे बड़ी विनयके साथ बोली—हे इन्द्र ! हे बलसूदन ! मेरी भूलसे मेरे गर्भके सात टुकड़े हुए हैं। इसमें तुम्हारा कुछभी अपराध नहीं है। यह गर्भ तो बिगड़ चुका, परन्तु इसपरभी मैं तुम्हारा और अपना हित चाहती हूँ। अतः ये सातों उनचास पवनोंके स्थानपाल हों। दिव्यरूप वाले ये मेरे सातों पुत्र, वालस्कन्ध, मारुतके नामसे विख्यात होकर, आकाशमें विचरण करें। इनमेंसे एक ब्रह्मलोकमें, दूसरा इन्द्रलोकमें और महायशस्वी तीसरा वायुके नामसे, आकाशमें विचरें। हे इन्द्र ! शेष मेरे चारों पुत्र तुम्हारी आज्ञाके अनुसार देवता बनकर दिशाओंमें घूमा करें और ये सबके सब तुम्हारे रखे हुए मारुत नामसे प्रसिद्ध हों। दितिके ये वचन सुन, सहस्राक्ष इन्द्र दितिसे हाथ जोड़कर बोले, तुमने जैसा कहा निश्चयही वैसा होगा—इसमें कुछभी सन्देह नहीं। तुम्हारे पुत्र देवरूप हो करके विचरेंगे। उस तपोवनमें इस प्रकार समझौताकर माता और पुत्र—दोनों हे राम ! कृतार्थहो स्वर्ग गये। मैंने यही सुना है। हे रामचन्द्र ! यह वही देश है जहाँ इन्द्रने तपःसिद्धा माता दितिकी सेवा की थी। हे पुरुषसिंह ! इक्ष्वाकुके परम धार्मिक पुत्र विशालने; जो अलम्बुसाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था यहाँ पर यह विशाला नगरी बसाई। हे राम ! विशालाका महाबलवान् हेमचन्द्र नामक पुत्र हुआ। फिर सृञ्जयके महा प्रतापी सहदेव नामका पुत्र हुआ। सहदेवका पुत्र कुशाश्व हुआ जो बड़ा धर्मात्मा था। कुशाश्वके महा प्रतापी सोमदत्तके काकुत्स्थ नामका पुत्र हुआ। उसीका महातेजस्वी, परम प्रसिद्ध और दुर्जेय पुत्र राजा सुमति आजकल इस विशालापुरीमें राज्य करता है। महाराज इक्ष्वाकुकी कृपासे विशाला-पुरीके सभी राजा दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी तथा बड़े धर्मिष्ठ होते रहे हैं। हे राम ! आजकी रात हम सुख पूर्वक यहीं ठहरेंगे। कल प्रातःकाल पुरुषों में श्रेष्ठ महाराज जनकजीसे भेंट करेंगे। इसी बीचमें राजाओंमें श्रेष्ठ महा तेजस्वी और महायशस्वी राजा सुमतिने विश्वामित्रजीके आनेका समाचार सुना और वे उनकी अगमानीको गये। उपाध्याय तथा बन्धु बान्धवोंके साथ उनका भलीभाँति पूजनकर तथा हाथ जोड़कर, कुशलतादि पूँछी। तदन्तर

वे विश्वामित्रजीसे बोले—हे मुने! आज मैं धन्य हूँ जो आपने मेरे राज्यमें पधारकर मुझे दर्शन दिए हैं। मुझसे बढ़कर धन्य आज कोई नहीं है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

भेंटके अवसर पर परस्पर कुशल प्रश्नके अनन्तर राजा सुमतिने महर्षि विश्वामित्रजीसे कहा—हे मुने! (भगवान् करें) इन्हें नजर न लगे, यह तो बतलाइये कि, ये दोनों कुमार, जो देवताओंके समान पराक्रम वाले हैं, जो जगतसिंह शार्दूल और वृषभके समान चाल चलनेवाले हैं, जो कमल जैसे नेत्र वाले हैं, जो खड्ग तरकस और धनुष धारण किए हैं। जो अश्विनी कुमारों जैसे सुस्वरूप हैं, जो युवावस्थाकी सीमा पर पहँचे हुए हैं, जो देवताओंकी तरह निज इच्छानुसार पृथिवीतल पर आए हुए हैं, पाँव प्यादे अर्थात् पैदल कैसे और किस लिए यहाँ आए हैं और किसके पुत्र हैं? इन दोनोंने देशको वैसेही सुशोभित किया है जैसे सूर्य और चन्द्रमा आकाशको सुशोभित करते हैं। डीलडौल, बात चीत और चेष्टासे समान (भाईसे जान पड़ते हैं) ये दोनों नर-श्रेष्ठ वीर, श्रेष्ठ आयुधोंको धारण किए हुए इस दुर्गम मार्गमें किसलिए आए हैं, इनका पूरा-पूरा हाल सुनना चाहता हूँ। सुमतिके प्रश्नको सुन, विश्वामित्रने उनके (राजकुमारों के) सिद्धाश्रममें रहने और राक्षसोंके मारनेका जो वृत्तान्त था सो सब कहा। राजा सुमति विश्वामित्रजीके वचन सुन अत्यन्त हर्षित हुए और उन दोनों दशरथ-नन्दनोंको परम पवित्र अतिथि मान उनका विधिवत् पूजन किया और सत्कार करने योग्य दोनों महा बलवानोंका अच्छी तरह सत्कार किया। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण, राजा सुमतिसे सत्कार प्राप्तकर एक रात वहाँ ठहरे। दूसरे दिन मिथिलापुरीको प्रस्थानित हुए और महाराज जनककी रम्य पुरीको देख सब ऋषि "वाह-वाह" कह, उसकी प्रशंसा करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने मिथिलापुरीके एक उपवनमें एक पुराना, निर्जन किन्तु रमणीक आश्रम देखकर विश्वामित्रजीसे पूछा कि, हे मुने! यह आश्रम तो परम शोभायमान है परन्तु इसमें कोई ऋषि रहता हुआ देख नहीं पड़ता, सो यह क्या बात है?

हे भगवन्! मैं सुनना चाहता हूँ कि, पहले यह किसका आश्रम था? श्री रामचन्द्रजीका कथन सुन, वाक्य-विशारद बातचीत करनेमें परम निपुण अर्थात् महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्रजीने कहा—हे राघव! मैं तुमसे इस आश्रम का समस्त वृत्तान्त कहूँगा, उसे तुम सुनो—जिसका यह आश्रम है और जैसे एक महात्माने क्रोधमें भर इसे श्राप दिया था। हे राम! पूर्वकालमें यह आश्रम गौतमका था। यह देवताओं जैसा आश्रम था और देवता इसकी वन्दना करते थे। इस आश्रममें अहल्याके साथ उन मुनिने बहुत वर्षोंतक तपस्या किया। हे राम! एक दिन गौतम ऋषि कहीं दूर चले गये। आश्रममें मुनिको अनुपस्थित देखकर, सहस्राक्ष शचीपति इन्द्रने गौतमका रूप धारण कर, अहल्यासे कहा—कि कामी पुरुष ऋतुकालकी प्रतीक्षा नहीं करते। हे सुन्दरी! अतः आज हम तेरे साथ मैथुन करना चाहते हैं। हे रघुनन्दन! मुनिवेष धारण किए हुए इन्द्रको न पहचानकर अहल्याने इन्द्रके साथ भोग किया। तदन्तर वह अर्थात् अहल्या इन्द्रसे बोली, हे इन्द्र! यहाँ से अब तुम शीघ्र चले जाओ। हे मानद अर्थात् इज्जत बढ़ानेवाले! अपनी और मेरी रक्षा सदा गौतमसे करते रहियेगा। इसके उत्तरमें हँसकर इन्द्रने यहभी कहा कि हे सुश्रोणि अर्थात् सुन्दर कटि वाली! मैं तेरे साथ भोग करनेसे तेरे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। मैं अब आनन्द पूर्वक अपने स्थानको जाऊँगा। यह कह इन्द्र अहल्या की कुटीके बाहर निकले। हे राम! गौतमके भयसे इन्द्र उस समय विकल और सशंकित थे कि, उन्होंने कुटीमें गौतम को प्रवेश करते देखा। वे ऋषि, दानवों और देवोंसे न जीते जानेवाले, तपोबलसे युक्त, तीर्थके जलसे भींगे हुए, अग्निके तुल्य प्रकाशमान तथा हवनके लिए लकड़ियाँ और कुश हाथों में लिए हुए थे, उनको देखतेही इन्द्र बहुत डरे और उनका चेहरा फीका पड़ गया। गौतमजीने इन्द्रको अपना रूप धारण किए हुए देख और उनके चेहरेसे यह जानकर कि यह असतकर्म करके जा रहा है, क्रोधमें भर यह शाप दिया कि अरे दुष्ट! मेरे रूपको बनाकर इस अनकरने कर्मको किया है अतः तू अण्डकोश रहित अर्थात् नपुंसक हो जा। महात्मा गौतमके कुपित होकर शाप देतेही, उसी क्षण इन्द्रके दोनों वृसण पृथ्वी पर गिर पड़े। इस प्रकार

इन्द्रको शाप देकर, गौतमजीने अहिल्याको शाप दिया कि, तू इसी स्थान पर हज़ारों वर्षों तक वास करेगी और तेरा भोजन केवल पवन होगा और कुछ भी न खा सकेगी। मेरे शापसे अपनी करनीका फल भोगती हुई भस्ममें लोटा करेगी। तू इसी स्थान पर अदृश्य होकर रहेगी अर्थात् तुझे कोईभी प्राणी देख नहीं सकेगा। जब इस घोर वनमें महाराज दशरथके पुत्र अजेय श्रीरामचन्द्रजी पधारेंगे, तब तू पवित्र होगी अर्थात मेरे इस शापसे मुक्त होगी। अथवा जो तू ने यह गर्हित कार्य किया है, उसके पापसे छूटेगी। हे दुष्टे! लोभ और मोहसे रहित उनका सत्कार अर्थात् आतिथ्य करनेपर, तू अपने पहले शरीरको धारणकर अति प्रसन्न हो, मेरे समीप आवेगी। इस प्रकार महा तेजस्वी गौतम ऋषि अहिल्याको शापदे और इस आश्रमको त्यागकर सिद्धों तथा चारणोंसे सेवित हिमालय शिखर पर जा, तप करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ सर्ग

इन्द्रके अंडकोशोंका गिरना। मेष द्वारा अण्डकोशोंकी प्राप्ति। श्रीरामचन्द्रजीका गौतम के आश्रम में जाना। अहल्या तथा गौतम द्वारा राम का सत्कार तथा पूजन करना।

गौतम ऋषिके शापसे नपुंसकत्वको प्राप्त हुए एवं उदास मन इन्द्र अग्नि आदि देवताओं, सिद्धों, गंधर्वों और चारणोंसे बोले—महात्मा गौतमके तपस्यामें विघ्न डालनेके लिए मैंने उन्हें क्रुद्ध कर, देवताओंका यह काम बनाया। ऋषिने क्रुद्ध होकर मुझे तो नपुंसक कर दिया और अहिल्याको शाप देकर त्याग दिया। इस प्रकार उनसे शाप दिलाकर, मैंने उनकी बड़ी तपस्याका फल हर लिया। अतएव हे देवताओं! देवर्षियों! चारणों! तुम सब मेरे अच्छे होनेमें पुन्सत्व प्राप्तिके लिये सहायता करो। तब पवनादि—देवतागण कव्यवाहनादि पितरोंके पास जाकर बोले—इन्द्र वृषण रहित होगए हैं और तुम्हारे इस मेढ़ेके अण्डकोश हैं, अतएव इसके अण्डकोश उखाड़ कर इन्द्रको तुरन्त दे दीजिये। मेढ़के अण्डकोश रहित होनेसे तुम्हें संतुष्ट करनेमें कुछ उठा न रखा जायेगा। आजसे जो मनुष्य, वृषण रहित मेढ़का यज्ञ

बलिदानकर, आपको प्रसन्न करें, उनको तुम लोग अक्षय्य एवं अनन्त फल देना। अग्निदेवके यह वचन सुन, पितरोंने मेढ़के वृषण निकालकर इन्द्रके लगा दिये। तबसे हे रामचन्द्र! पितृगण यज्ञमें अण्डकोश रहित मेढ़े लेने लगे। क्योंकि हे राघव! मेढ़के अण्डकोश निकाल कर, इन्द्रके लगा दिये गये हैं। यह महात्मा गौतमके तपका फल है। इसलिये हे महा तेजस्वी! अब तुम पुण्यात्मा गौतमके आश्रमपर चलो और महाभागा अहिल्याको तारो जिससे वह देवरूपिणीहो जाय। श्री रामचन्द्र और लक्ष्मणने विश्वामित्रजी के येवचन सुन और उनको आगेकर, गौतम ऋषिके आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ जाकर देखा कि, अहिल्या तपके तेजसे प्रकाशित हो रही थी। उसे सुर, असुर और मनुष्य कोई भी नहीं देख सकते थे। मानों ब्रह्माजीने अति यत्नसे स्वयं अपने हाथोंसे उस दिव्य स्त्री को मायाविनीकी तरह बनाया हो। कुहरेसे छिपी हुई पूर्णमासीके चन्द्रमाकी स्वच्छ चाँदनीकी तरह, अथवा जलमें पड़े हुये सूर्यके प्रतिविम्बके दुराधर्ष प्रकाशकी तरह वह, दीप्तिमती देख पड़ती थी। अथवा धुयेंमें जलती हुई, आगकी लपटकी तरह, वह अहिल्या गौतम ऋषिके शापसे किसीको नहीं दिखलाई पड़ती थी। अहिल्याको लोग इसलिये देख नहीं पाते थे कि, गौतम ऋषिने शाप देते समय यह कह दिया था कि, जब तक श्री रामचन्द्रजीके दर्शन तुझे न होंगे, तब-तक तेरे समीप जाकरभी त्रिलोकीका कोईभी जीव, तुझे नहीं देख सकेगा। श्री रामचन्द्र और लक्ष्मणके अहिल्याने पैर छुए। अहिल्याने गौतम ऋषिकी कही हुई बातको स्मरणकर और दोनोंको पूजनीय समझ, उन दोनोंके चरण पकड़े अर्थात् उनके पैरों पर गिरी। अहिल्याने अर्घ्य पाद्यादिसे उनका आतिथ्य किया। दोनों राजकुमारोंनेभी शास्त्रोंमें वर्णित विधि-विधानके साथ किये गये, उसके आतिथ्यको ग्रहण किया। उस समय आकाशसे पुष्प-वृष्टि हुई। देवताओंने नगाड़े बजाये। गंधर्व और अप्सरायें गाने और नाचने लगीं। देवतागण अहल्या की प्रशंसा करने लगे। गौतमजी तपः प्रभावसे श्री रामचन्द्रजीका आना जान अपने आश्रममें पहुँचे, और वहाँ पूर्वके समान धारण किए हुए अहल्याको पाकर प्रसन्न हुए। अहल्या सहित महातेजस्वी गौतम ऋषिने प्रसन्न हो श्री रामचन्द्रजीका भली-भाँति पूजन किया और फिर वे उसी आश्रममें तप करने

लगे। तदनन्तर श्री रामचन्द्रजी महर्षि गौतमसे विधिवत् पूजा ग्रहणकर मिथिलापुरीमें गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४६ ॥

पचासवाँ सर्ग

विश्वामित्र का श्री रामचन्द्र सहित जनक की यज्ञशालामें जा कर टहलना। आतिथ्य सत्कार। दोनों राजकुमारों का परिचय।

तब विश्वामित्रजीको आगे कर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण सहित ईशान कोणकी ओर चलकर महाराजकी यज्ञशालामें पहुँचे। दोनों राजकुमारोंने पुरी और यज्ञशालाकी सजावटको देखकर विश्वामित्रजीसे कहा—महाराज जनकके यज्ञकी तैयारी तो बड़ी अच्छी है। हे महाभाग ! देखिए, नाना देशोंके रहनेवाले हजारों वेदाध्ययनशाली ब्राह्मण यहाँ देख पड़ते हैं। ऋषियोंके आवास स्थानोंमें सैकड़ों छकड़े देख पड़ते हैं। हे ब्रह्मन्! कोई स्थान ठीक कीजिये, जहाँ हम सब लोग रहें। श्री रामचन्द्रजीके ये वचन सुन, महर्षि विश्वामित्रजीके आनेका संवाद पा कर अपने प्रसिद्ध पुरोहित शतानन्दको आगे कर, महाराज जनक अपने ऋत्विजों सहित; विश्वामित्रजीके लिये अर्घ्यादिका सामान साथ लिये हुए, बड़ी नम्रताके साथ तुरन्त वहाँ पहुँचे। महाराज जनकने धर्मशास्त्रानुसार मधुपर्क आदि विश्वामित्रजीके आगे रखा। महाराज जनककी पूजा स्वीकार कर विश्वामित्रजीने महाराज जनकसे उनके राज्यकी कुशल तथा यज्ञकी निर्विघ्नता पूँछी। फिर शतानन्द आदि जो ऋषि महाराज जनकके साथ आये थे, उनसेभी कुशल प्रश्न किया और प्रसन्न हो सबसे मिले। तब राजा जनक हाथ जोड़कर विश्वामित्रजीसे बोले—महाराज ! आप और अन्य ऋषि-प्रवर आसनों पर विराजें। यह सुन विश्वामित्रजी अन्य ऋषियों सहित आसनों पर बैठे। तदनन्तर राजा जनक भी अपने पुरोहित, ऋत्विजों और मंत्रियोंके साथ उचित स्थानोंपर आसनोंमें बैठे। राजा जनक बीचमें थे और अन्य सब उनके चारों ओर बैठे हुए थे। सब लोगोंको यथास्थान बैठा देख, महाराज जनक, विश्वामित्रजीसे बोले—आज देवताओंके अनुग्रहसे मेरे यज्ञमें जो कमी थी वह पूरी हुई। हे भगवन्!

आज आपके दर्शन प्राप्त कर मुझे यज्ञका फल मिल गया। मुनियों सहित आपके यज्ञशालामें पधारनेसे मैं आज धन्य और अनुगृहीत हुआ। हे ब्रह्मर्षे! ऋत्विज लोग कहते हैं कि, अब केवल बारह दिन और यज्ञ पूर्ण होनेको रह गये हैं। तदनन्तर यज्ञ भाग लेनेके लिये देवता आवेंगे। हे कौशिक! आप उनको देखेंगे। विश्वामित्रजीसे यह कहकर राजा जनक प्रसन्न हुए। और हाथ जोड़कर वे फिर बोले—आपके आशीर्वादसे इन कुमारोंका कल्याण हो। यह तो बतलाइये कि, ये दोनों कुमार जो देवताओंके समान पराक्रमी हैं राजसिंह, शार्दूल तथा वृषभके समान कन्धोंवाले, वीर, कमल जैसे नेत्रोंवाले, खड्ग, तरकस और धनुषधारी, सौन्दर्यमें अश्विनीकुमारों जैसे चढ़ती जवानीवाले, स्वेच्छापूर्वक देवताओंकी तरह स्वर्गसे पृथ्वी पर उतरे हुए, क्यों और किस लिये पैदल यहाँ आये हैं और किसके पुत्र हैं? इनके विशाल एवं कमल सदृश नेत्र हैं, श्रेष्ठ आयुध धारण किए हुए हैं। गोहके दस्ताने हाथोंमें पहने हुए हैं, तलवारें भी लिये हुए हैं, बड़ी द्युतिवाले हैं, काक पक्ष रखे हुए हैं, कार्तिकेय के समान वीर हैं। रूप और उदारता आदि गुणों से मनुष्यके मनको हरने वाले हैं। हमारे कुलको उजागर करके, हमारा उद्धार करने यहाँ आये हैं। इस देशको ऐसा भूषित कर रहे हैं जैसा चन्द्र व सूर्य आकाशको भूषित करते हैं। डीलडौल, चालढाल और चेष्टासे दोनों भाई जान पड़ते हैं। हे मुनीश्वर! बतलाइए कि, ये दोनों किसके पुत्र हैं? मैं इनका पूर्ण वृतान्त सुनना चाहता हूँ। राजा जनकके वचन सुन, विश्वामित्रजी बोले—ये दोनों महाराज दशरथके राजकुमार हैं। फिर विश्वामित्रजीने दोनों राजकुमारों का सिद्धाश्रममें रहने, वहाँ राक्षसोंका वध करने, रास्ते में विशाला नगरीको देखने, अहिल्याका उद्धार और गौतमसे भेंट होनेका सारा वृतान्त कहा और यह भी कहा कि, यहाँ ये आपके बड़े धनुषको देखनेके लिए आये हैं। उन सब घटनाओंका वृतान्त महाराज जनकको सुनाकर, महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रजी चुप हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्ड का पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ सर्ग

शापयुक्ता माता अहल्या का वृतान्त सुन शतानन्दका प्रसन्न होना। श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति। कौशिक-वृतान्त! विश्वामित्रका ससैन्य वसिष्ठाश्रम में प्रवेश।

बुद्धिमान विश्वामित्रजीके वचन सुनकर, महातेजस्वी एवं महा तपस्वी शतानन्दजीके रोंगटे खड़े हो गए। शतानन्दजी महर्षि गौतमके ज्येष्ठ पुत्र थे और तपके प्रभावसे जगमगा रहे थे। वे श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कर, बड़े विस्मित हुए। तब दोनों राजकुमारोंको सुख पूर्वक बैठा हुआ देखकर, शतानन्दजी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे बोले—हे मुनिशार्दूल! हमारी यशस्विनी माता बहुत दिनोंसे तपस्या करती थीं, क्या आपने उन्हें श्रीरामचन्द्रजी को दिखलाया था? क्या मेरी माताने सब प्राणियोंके पूज्य श्रीरामचन्द्रजी का फल फूलादि वनके पदार्थोंसे सत्कार किया था? इन्द्रने मेरी माताके साथ जो दुराचार किया था, वह प्राचीन वृत्तान्त क्या आपने श्रीरामचन्द्रजी से कहा? हे कौशिक! यह तो कहिए कि, श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके प्रभावसे मेरी माता मेरे पिताको मिलगयीं या नहीं? हे विश्वामित्रजी! क्या मेरे पिताने श्रीरामचन्द्रजीका सत्कार किया था? क्या श्रीरामचन्द्रजी मेरे पिताके द्वारा सत्कारित होकर, यहाँ आए हैं? हे विश्वामित्रजी! यह भी बतलाइये कि आश्रममें जब मेरे शान्त चित्त पिता आये, तब श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम किया था या नहीं? अथवा मेरी माताके दोषोंपर ध्यान दे उन्होंने उनका तिरस्कार तो नहीं किया? शतानन्दके इन प्रश्नोंको सुन, महर्षि विश्वामित्रजी जो बात चीत करनेका ढंग भली भाँति जानते थे, बातचीत करने में बड़े निपुण शतानन्दजीसे बोले—हे मुनिप्रवर! जो कुछ मेरे कहने सुनने करने धरनेका था सो मैंने कहा सुना और किया। मैंने अपना कोई कर्त्तव्य बाकी नहीं रखा। जैसे जमदग्निने रेणुकाको शाप दिया और पीछे अनुग्रह कर उसको अंगीकार किया वैसेही आपके पिताने भी आपकी माताके ऊपर कृपाकी और उसे ग्रहण कर लिया। बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके इस उत्तरको सुन, महातेजस्वी शतानन्दजी बोले—हे पुरुषोत्तम! आपका आना शुभप्रद हो। यह बड़े भाग्यकी बात है जो आप विश्वामित्रजीके साथ मेरे पिताके आश्रममें पधारे और मेरी माता

का उद्धार किया। इन महर्षि विश्वामित्रजीकी कहाँ तक प्रशंसाकी जाय। इनका सैकड़ों ऋषि सम्मान करते हैं। इनके सब कर्म अचिन्त्य अर्थात् मन और बुद्धिसे अगोचर हैं। साधारण मनुष्यकी समझमें नहीं आ सकते। देखिए, आप तपोबलसे राजर्षिसे ब्रह्मर्षि हो गये। फिर ब्रह्मर्षियोंमें साधारण ब्रह्मर्षिनहीं। प्रत्युत अमित प्रभावशाली हैं। इन महातेजस्वी विश्वाजित्रजीको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यंह आपके परम हितैषी हैं अथवा जगत्के परम हितैषीकर हैं। हे राम! आपसे अधिक बढ़कर धन्य इस भूतलपर और कोई नहीं है, जिनके रक्षक महातपस्वी विश्वामित्रजी हैं। हे राम! सुनिये, मैं महात्मा विश्वामित्रके बलका और इनका बृत्तान्त कहता हूँ। हे अरिन्दम्! पहले बहुत दिनों तक यह एक बड़े धर्मात्मा, शत्रुनाशक, सब विद्याएँ पढ़े हुए और प्रजा-पालनमें तत्पर राजा रह चुके हैं। प्रजापतिके एक पुत्र कुश नामके एक राजा हो गए हैं। उनके पुत्र कुशनाभ बड़े बलवान् और धर्मात्मा राजा हुए। कुशनाभके प्रसिद्ध गाधि नामक पुत्र हुए। उन्हीं राजा गाधिके यह महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्रजी पुत्र हैं। महातेजस्वी विश्वामित्रजीने राजा होकर हजारों वर्षोंतक पृथ्वीका पालन और राज्य किया। एक बार राजा विश्वामित्र सेना इकट्ठीकर और एक अक्षौहिणी सेना साथ ले घूमनेके लिए निकले। हे राम! अनेक नगरों, राज्यों, नदियों, पर्वतों और ऋष्याश्रमोंको मँझाते हुए वशिष्ठजीके आश्रममें पहुँचे। वशिष्ठजीका आश्रम तरह-तरहके पक्षियों और लताओंसे भरा पूरा और भाँति-भाँतिके जीवोंसे शोभायमान हो रहा था। उसमें सिद्ध चारण रहते थे। देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर भी उसकी शोभा बढ़ाते थे। वह शान्त स्वभाव हिरनोंसे भरा-पूरा था और ब्राह्मण गण भी वहाँ बास करते थे। उसमें ब्रह्मर्षि और देवर्षिभी बास करते थे। तपश्चर्यासे वे अग्निके समान देदीप्यमान थे। वह आश्रम सदैव ब्रह्माके समान वेदोंकी शाखाओंमें विभाग करने वाले महात्माओंसे सदा भरा रहता था। इनमें कोई तो केवल जल पीकर, कोई-कोई केवल वायु भक्षण कर, कोई-कोई सूखी पत्तियाँ खाकर और कोई-कोई फल फूल खाकर रहते थे। वहाँ अपने और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखने वाले ऋषि तथा बालखिल्य ब्रह्मचारी सहस्रों थे। यहाँ कोई भी ऋषि ऐसा न था, जो नियत समय पर

संध्योपासन, जप और अग्निहोत्र न करता हो। इसके अतिरिक्त उस आश्रमके चारों ओर अनेक वानप्रस्थी भी रहते थे। कहाँ तक वर्णन करें, वसि महाराजका आश्रम क्या था—मानों दूसरा ब्रह्मलोक ही था। वीर-श्रे महाबली राजा विश्वामित्रजीने वशिष्ठजीके ऐसे आश्रमको देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

बावनवाँ सर्ग

ऐसे आश्रमको देख महाबलवान् राजा विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए औ जप करने वालोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीको विनय सहित प्रणाम किया। वशिष्ठजी विश्वामित्रजीका स्वागत कर अथवा यह कहकर "आप बहुत अच्छे आए बैठनेके लिए आसन दिया। जब बुद्धिमान विश्वामित्रजी आसनपर बैठ गये, त वशिष्ठजीने फल मूल जो वहाँ उस समय मौजूद थे, विश्वामित्रको भोजनके लिए दिये। इस प्रकार वशिष्ठजीका सत्कार ग्रहण कर, नृप-श्रेष्ठ विश्वामि त्रजीने वशिष्ठजीसे तप, अग्निहोत्र और शिष्य सम्बन्धी कुशल प्रश्न किए वशिष्ठजीने इसके उत्तरमें सर्वत्र और सबका–यहाँ तक कि पेड़ों तकका कुशल नृप-श्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे कहा। सुखसे बैठे हुए राजा विश्वामित्रजीसे मह मुनि, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ और ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठजीने पूछा—हे राजन् आपके यहाँ तो कुशल है? आप धर्मपूर्वक प्रजाको प्रसन्न रखते हैं? औ राजवृत्तिसे प्रजाका पालन तो करते हैं? राज्यके कर्मचारियोंको वेतन तो निय समय पर दे दिया करते हो? आपकी प्रजा आपके कहनेमें चलती है? राजन्! आपने अपने सब शत्रुओंको जीत तो लिया है? हे नरव्याघ्र हे अनघ! आपकी सेना, धनागार, मित्र, पौत्रादि सब कुशलपूर्वक हैं? राजा विश्वामित्रजी इन प्रश्नोंके उत्तरमें वशिष्ठजीसे विनय पूर्वक बो कि, सब कुशल पूर्वक है। तदन्तर वे दोनों प्रेम पूर्वक, तरह-तरहकी ब और कथाएँ कह सुनकर एक दूसरेको प्रसन्न करते रहे। हे रघुनन्दन! ज विश्वामित्रजी बात चीत कर चुके, तब वशिष्ठजीने मुसकाकर विश्वामित्रजी यह कहा—हे राजन्! यद्यपि आपके साथ बहुत भीड़ है, तथापि मेरी इ है कि, यदि आप स्वीकार करें, तो सेना सहित आप सबकी मैं आति

मेहमानदारी करूँ। क्योंकि हे राजन्! आप राजा होनेके कारण अतिथिश्रेष्ठ हैं। आपका आतिथ्य प्रयत्नपूर्वक करना ही उचित है। अतः मुझसे जो कुछ बन पड़े उसे आप प्रसन्नता पूर्वक अङ्गीकार करें। वशिष्ठजीके इस प्रकार कहनेपर राजा विश्वामित्र कहने लगे—हे भगवन्! आपके इन आदर पूर्वक कहे हुए वचनोंहीसे मेरा तो आतिथ्य हो चुका। इसके अतिरिक्त फलमूल खाकर और दर्शनसे भी मेरा आतिथ्य हो चुका। हे महाप्राज्ञ! उचित तो यह था, कि मैं आपकी पूजा करता; प्रत्युत आपने मेरा सत्कार किया। मैं अब आपको प्रणाम करता हूँ और अपने डेरेको जाता हूँ। मेरे ऊपर सदा कृपादृष्टि बनाए रखियेगा। राजा विश्वामित्रके इसप्रकार कहनेपर भी उदारमना वशिष्ठजीने न्योता स्वीकार करनेके लिए राजासे बार-बार आग्रह किया। तब विश्वामित्रजीनेकहा—"बहुत अच्छा" आप जिससे प्रसन्न रहें, वही ठीक है। अथवा आप मुझपर प्रसन्न बने रहें, मुझे वही करना चाहिए। जब विश्वामित्रने ऐसा कहा अर्थात् वशिष्ठजीका न्योता मान लिया; तब मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजीने अपनी प्यारी चितकबरी कामधेनुको बुलाया और उससे कहा—हे शबले! यहाँ आओ और जो मैं कहता हूँ उसे सुनो। मैं सेना सहित राजर्षि विश्वामित्रकी पहुनाई करना चाहता हूँ। अतः मेरे कहनेसे तू अच्छे-अच्छे भोजनोंसे इनका अच्छी तरह सत्कार कर। षट्रसोंके पदार्थमेंसे, जो जिस रसका पदार्थ चाहे, उसे वही पहुँचना चाहिए। क्योंकि तुम कामधेनु ठहरीं, तुम क्या नहीं दे सकतीं? हे शबले! तू छः-प्रकारके खाद्य पदार्थोंके जैसे—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य, पेय और खाद्य व्यञ्जनोंके ढेर तुरन्त लगादे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ सर्ग

वशिष्ठजीका शबला द्वारा, विश्वामित्रका अपूर्व सत्कार तथा विश्वामित्रका शबलाके लिए लोभ।

वशिष्ठजीके इस प्रकार कहने पर, शबलाने जिसको जो वस्तु अपेक्षित थी, उसे वही-वही पहुँचा दी। खानेके लिए ऊखके रस यानी शक्करकी बनी अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ, शहद, धानके लावा, पीनेके लिए मदिरा तथा उत्तम आसव, प्रस्तुत किए। गर्मागर्म भातके पर्वताकार ढेर लगा दिये। खीर, कढ़ी, दही, बरा आदि तरह-तरहके स्वादिष्ट षट्रसात्मक हजारों पदार्थ और

गुडकी मिठाइयाँ प्रस्तुत कर दीं। इन सब पदार्थोंको खा-पीकर और आदर सत्कारसे विश्वामित्रके साथके सभी लोग अच्छी तरह तृप्त हुए और आत्मानन्दित हुए। हे राम! वशिष्ठजीने विश्वामित्रजीके साथी-संगियोंको भलीभाँति तृप्त किया। राजर्षि विश्वामित्रजीभी अपने पुरोहित,मन्त्री,दीवान सबके साथ अपूर्व पदार्थ भोजनकर तथा महर्षिके आदर सत्कारसे बहुत प्रसन्न हुए। जब नौकर-चाकर मन्त्री दीवन सेना आदिके साथ विश्वामित्रजी भलीभाँति सत्कारित हो चुके, तब परम प्रसन्नताके साथ वशिष्ठजीसे बोले—हे ब्रह्मन्! आपने पूज्य होकर भी मेरा अच्छा सत्कार किया। हे वाक्यविशारद! अब मैं कुछ कहता हूँ, उसे आप सुनें। हे भगवन्! आप अपनी इस शबला गौके बदले मुझसे एक लाख गौएँ ले लें और इसे मुझे दे दें। कारण यह है कि, शबला एक रत्न है और रत्न रखनेका राजाही अधिकारी हैं। हे द्विज! अतः इस गौको आप मुझे दे दें। धर्मकी दृष्टिसे यह मेरीही है। जब मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठजीसे विश्वामित्रजीने इस प्रकार कहा, तब धर्मात्मा वशिष्ठजी राजासे बोले—हे राजन्! एक लाख गौओंकी तो बातही क्या; एक करोड़ गौएँ भी यदि आप शबलाके बदलेमें दें अथवा इसके बदले आप चाँदीके ढेर लगा देना चाहें, तो भी मैं शबला आपको नहीं दे सकता। हे राजन्! यह मेरे यहाँसे जाने योग्य नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार मनस्वी पुरुषका अपनी कीर्तिसे संबन्ध होता है, उसी प्रकार शबलाका मुझसे संबंध है। इसीके द्वारा मेरे देव और पितृ संबंधी कार्योंका तथा मेरा निर्वाह होता है। मेरे अग्निहोत्र बलि वैस्यदेव, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और विविध प्रकारकी विद्याएँ, इसीके सहारे चलती हैं। हे राजर्षे! कहाँ तक कहूँ, आप निश्चय जानिए, मेरा तो सभी काम यही चलाती है। यह मेरा सर्वस्व है। इसीसे मैं सदा संतुष्ट चित्त रहता हूँ। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कारण इसे न देनेके हैं। अतः हे राजन्! शबलाको तो मैं आपको न दूँगा। वशिष्ठजीका यह उत्तर सुन, विश्वामित्रजी अत्यन्त आवेशमें भर आग्रह पूर्वक कहने लगे। हे ऋषिवर! सोनेके घंटों, सोनेके आभूषणों और सोनेके अंकुशोंसे भूषित चौदह हजार हाथी मैं देता हूँ। इतनाही नहीं चार-चार सफेद घोड़ों वाले बड़े सुन्दर सोने

के एक सौ आठ रथ देता हूँ। साथही अच्छी नस्लके दिसावरी और सुवर्ण के आभूषणोंसे सुसज्जित ग्यारह हजार घोड़े तुमको देता हूँ। इनके अतिरिक्त तरह-तरहके रंगोंवाली जवान करोड़ों गौएँ देता हूँ। आप मुझे शबला दे दें। हे द्विजोत्तम! आप जितने रत्न और जितना सुवर्ण चाहें, मैं सब देनेको तैयार हूँ। आप मुझे शबला दे ही दें। इस प्रकार विश्वामित्रजीके कहने पर भी बुद्धिमान् वशिष्ठजीने कहा कि, हे राजन्! शबलाको तो मैं किसी तरहसे भी नहीं दे सकता, क्योंकि मेरे लिये तो शबला मेरा रत्न और शबला ही मेरा धन है। शबलाही मेरा सर्वस्व है और शबलाही मेरा जीवन है। यही मेरे पौर्णमास और दश यज्ञोंकी, जो विविध दक्षिणायुक्त किए जाते हैं तथा अन्य क्रियाओंकी आधारभूता है अर्थात् इसीके सहारे मैं उक्त सब यज्ञ किया करता हूँ। हे राजन्! बहुत बकनेकी क्या आवश्यकता है, सारांश यह है कि, मैं सब क्रियाकी मूल, इस कामधेनुको नहीं दूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ सर्ग

विश्वामित्र से वशिष्ठकी शत्रुता का कारण

हे राम! जब विश्वामित्रने देखा कि, वशिष्ठजी अपनी प्रसन्नतासे वह गौ नहीं देंगे, तब वे बलपूर्वक उस गायको खोल कर ले जाने लगे। हे राम! जब विश्वामित्र गौ को बलपूर्वक ले जाने लगे, तब दुःखी हो वह रोने लगी और मारे शोकके विकलहो अपने मनमें सोचने लगी कि महात्मा वशिष्ठजीने मुझे क्यों त्यागा? मैंने तो उनका कोई अपराध नहीं किया। फिर क्यों राजाके भट अर्थात् नौकर मुझ दुःखिनीको बलपूर्वक पकड़ कर लिए जा रहे हैं? महासिद्ध महात्मा महर्षि वशिष्ठका मैंने कौन अपराध किया जो मुझ निर्दोषिनी, अनुरागिनी और प्यारीको धार्मिक मुनिप्रवर त्यागे देते हैं। शबला गौ ऐसा सोच और बारम्बार ऊँची साँसे ले तथा उन सैकड़ों वीर राजकर्मचारियोंके हाथसे अपनेको छुड़ा कर वायु वेगसे भागी और वशिष्ठजीके चरणों में जा गिरी। शबला बड़े जोरसे चिल्लाती और रोती हुई कहने लगी—हे भगवन्! हे ब्रह्माके पुत्र! क्या आपने मुझे त्याग दिया? जो आपके यहाँ से मुझे राजाके सिपाही लिये जा रहे हैं? यह सुनकर महर्षि वशिष्ठजीने

कहा—हे शबले! न तो तूने मेरा कोई अपराध किया और न मैं अपनी इच्छासे तेरा परित्यागही कर रहा हूँ। यह राजा बलसे मत्तहो बरजोरी मुझसे छीनकर, तुझे लिये जा रहा है। मेरे पास राजाके बराबर सैन्यबल नहीं है। फिर एक तो वह राजा, दूसरे क्षत्रिय और तीसरे पृथ्वीका मालिक। अतः वह मुझसे बलमें अधिक है। ऐसा सुन शबला बोली—हे ब्रह्मर्षे! ब्राह्मणोंके बलके सामने क्षत्रियोंका बल तुच्छ है। क्योंकि ब्राह्मणोंका बल दिव्य होता है, अतः क्षात्रबल शारीरिक बलसे बहुत अधिक है। आपमें अतुलित बल है। वह क्षत्रिय आपका सामना नहीं कर सकता है। हे महा-भाग! आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं आपके ब्रह्मबलके प्रतापसे इस दुष्टके बलका गर्व नष्ट कर दूँ। हे राम! ऐसा सुन वशिष्ठजी बोले—अच्छा, तुम अपने बलसे ऐसी सेना उत्पन्न करो, जो शत्रुके सैनिक-बलको मींज डाले। यह सुन शबलाने वैसीही सेना उत्पन्न करदी। शबलाके 'हुँकार" शब्दसे, सैकड़ों म्लेच्छ उत्पन्न हो गए और विश्वामित्रकी आँखोंके सामने उनकी समस्त सेना का नाश करने लगे। तब अपनी सेनाको नष्ट हुआ देख, राजा विश्वामित्र परम क्रुद्ध हुए और लाल-लाल नेत्र कर रथमें बैठ आक्रमण करने लगे। नाना प्रकारके छोटे बड़े आयुधोंसे (पल्पवों) म्लेच्छ विशेषको मार डाला। तब सैकड़ों पल्पवोंका विश्वामित्रके हाथसे मारा जाना देख शबलाने क्रोधमें भर यवनों सहित शकोंको उत्पन्न किया। इन यवनों और शकोंसे पृथ्वी पूर्ण हो गई। ये सब शक, यवनादि बड़े तेजस्वी महापराक्रमी थे। सबके शरीर का रंग सुवर्णकी तरह चमकीला था। सबके सब पीली पोशाकें पहने हुए थे। बड़ी-बड़ी तलवारें, व गदा, हाथोंमें लिए हुए थे। इन सबने प्रदीप्त अग्निकी तरह विश्वामित्रके सैनिकोंको दग्ध कर डाला। तब महा तेजस्वी विश्वामित्रजीने अस्त्र छोड़े, जिनसे वे सब यवन, काम्भोज और पल्पव विकल हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीयं रामायण भाषा प्रथम बालकाण्ड का चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ सर्ग

वशिष्ठ और विश्वामित्र का युद्ध

जब विश्वामित्रके अस्त्रों-शस्त्रोंसे उन यवनोंको वशिष्ठजीने विकल देखा, तब उन्होंने शबलासे कहा—अब मेरे कहनेसे योगकी महिमासे म्लेच्छ उत्पन्न

कर। तब शबलाके हुँकारसे सूर्यके समान तेजस्वी काम्भोज नामक म्लेच्छ और यवनोंसे हाथोंमें शस्त्र लिए पल्पव उत्पन्न हुए। योनिसे पवन, गुदासे शक, रोमोंसे म्लेच्छ, हारीत और किरात उत्पन्न हुए। हे राम! इन लोगोंने विश्वामित्रकी हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सैनिकों सहित सारी सेनाको तुरन्त नष्ट करदी। इस प्रकार अपनी सेनाका वशिष्ठजीकी सेना द्वारा नाश देख, विश्वामित्रजीके सौ पुत्र अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र ले और क्रुद्ध हो, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीके ऊपर दौड़े; किन्तु भगवान् वशिष्ठजीने "हुँकार" शब्द कर उन सबको भस्म कर डाला। राजकुमारोंके साथ जो घोड़े, रथ और पैदल सिपाही थे उन्हेंभी भस्म कर डाला। विश्वामित्र अपने सौ पुत्रोंको सैन्य सहित नष्ट हुआ देख, अत्यन्त लज्जित हो, चिन्तामग्न हो गए। वे पेय रहित समुद्र, विषदन्त-रहित सर्प और राहु-ग्रसित सूर्यकी तरह निष्प्रभ हो गये। बचे हुए एक पुत्रको राज्य सौंप और क्षात्रधर्मसे राज्य करनेका उसे उपदेश दे वे स्वयं वनको चल दिये। वे हिमालय पर उस स्थानपर गये जहाँ किन्नर और उरग रहते थे और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करने लगे। कुछ कालके बाद, वरदानी भगवान् वृषभध्वज महादेवजी महाबली विश्वामित्रजीके समक्ष प्रकट हुए। वे बोले—हे राजन्! तुम किसलिए तप कर रहे हो? तुम क्या चाहते हो? मैं वर देनेके लिये प्रस्तुत हूँ। ऐसा सुन विश्वामित्र प्रणामकर बोले—हे महादेव! हे अनघ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अंग, उपांग, उपनिषद् तथा रहस्य सहित, धनुर्वेद मुझे बतला दीजिये। जिन प्रसिद्ध अस्त्रोंका प्रचार दानवों, महर्षियों, गंधर्वों, यक्षों और राक्षसोंमें हैं वे सब, हे देवोंके देव! आपके अनुग्रहसे मुझे प्राप्त हों। यह वर माँगने पर महादेवजी "एवमस्तु" अर्थात् ऐसा ही हो, कह कर चले गये। महादेवजीसे अस्त्रोंको पाकर महावली विश्वामित्र महान् दर्पसे युक्तहो अभिमानमें डूब गये। तदनन्तर राजा विश्वामित्र, वशिष्ठजीके आश्रमपर जा पहुँचे और अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। उन अस्त्रोंकी आगसे वह हराभरा तपोवन जल उठा। सभी तपोवनवासी सैकड़ों मुनि भयभीत हो चारों ओर भाग गये। वशिष्ठजीके जो शिष्य थे तथा जो हजारों पशु-पक्षी वहाँ रहते थे, वे भी सब भयभीत हो, चारों ओर भाग गये। महात्मा वशिष्ठजीके आश्रममें एकभी जीव

धारी न रहा। घड़ीभरमें ही वहाँ सन्नाटा छा गया। वशिष्ठजी उन सबसे बार-बार चिल्ला-चिल्ला कर यह कहते थे कि, डरो मत! डरो मत! मैं विश्वामित्रका अभी उसी प्रकार नाश किए डालता हूँ, जैसे सूर्य कुहरेका नाश करते हैं। उन सबसे यह कह कर तपस्वि-प्रवर वशिष्ठजीने रोषमें भर विश्वामित्रजीसे यह कहा—तूने मेरे बहुत पुराने और भरे पुरे इस आश्रमको नष्ट कर दिया है। अतएव हे दुराचारी और मूढ़! अब तू बचने न पावेगा। यह कहकर, वशिष्ठजीने क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे अपना दण्ड उठाया जो धूम-रहित कालाग्निके समान अथवा दूसरा यमदण्ड जैसा भयंकर था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ सर्ग

वशिष्ठजीसे युद्धमें पराजित विश्वामित्रका ब्रह्म-बलके संपादनकी प्रतिज्ञा।

वशिष्ठजीके ऐसे कठोर वचन सुनकर, महाबली विश्वामित्रने आग्नेयास्त्र उठाया और कहा—खड़ा रह! खड़ा रह! वशिष्ठजीनेभी दूसरे कालदण्डके समान ब्रह्मदण्डको उठाकर क्रोधपूर्वक विश्वामित्रसे यह कहा—अरे क्षत्रियोंमें नीच! ले मैं खड़ा हूँ। तूने महादेवसे जो अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किए हैं, उन सबको मेरे ऊपर चला। अरे गाधिके छोकड़े! तुझे जो इन अस्त्रोंका मद है, उसे मैं अभी दूर किए देता हूँ। अरे कहाँ क्षत्रियोंका पशुबल! और कहाँ ब्राह्मणोंका बड़ा तपबल! ओ क्षत्रियाधम! मेरा दिव्य ब्रह्मबल देख। वशिष्ठजीने अपने ब्रह्मदण्डसे विश्वामित्रका चलाया हुआ वह भयंकर आग्नेयास्त्र उसी प्रकार शान्त कर दिया, जिस प्रकार जल आगको शान्त कर देता है। तदनन्तर विश्वामित्रने क्रुद्ध हो वरुण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत तथा ऐषीक अस्त्र चलाये। फिर मानव, मोहन, गांधर्व, स्वापन, जृम्भण-मादन, सन्तापन, विलापन, शोषण, चारुण, सुदुर्जय, वज्रास्त्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुण्यपास, पिनाकास्त्र, प्यारा शुष्कार्द्र, दोनों शनि, दण्डास्त्र, पैशाचास्त्र, क्रौञ्चास्त्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्यास्त्र, मथनास्त्र तथा हयशिरास्त्रभी चलाये तथा दोनों शक्तियोंको फेंकी। तदनन्तर कंकाल, मुसल, वैद्याधर नामक महास्त्र, कठोर कालास्त्र, घोर त्रिशूल, कापाल और कङ्कणास्त्र, हे राम! ये सब अस्त्र विश्वामित्रजीने वशिष्ठजीके उपर चलाये। किन्तु

यह बड़े अचम्भेकी बात हुई कि ब्रह्माजीके पुत्र और तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीने इन सबही अस्त्रोंको अपने ब्रह्मदण्डसे ग्रस लिया अर्थात् पकड़ लिया। इन सब अस्त्रोंके विफल होनेपर विश्वामित्रने ब्रह्मास्त्र चलानेके लिए उठाया, यह देख अग्त्या देव, देवर्षि, गन्धर्व और महोरग घबड़ा गये। ब्रह्मास्त्रके उठातेही तीनों लोक बहुत भयभीत हुए किन्तु, हे राम! उस ब्रह्मास्त्रको भी अपने ब्रह्मविद्याभ्यास जनित तेजसे अर्थात् ब्रह्मदण्डसे पकड़कर वशिष्ठजीने शान्तकर दिया। ब्रह्मास्त्रको ग्रास करते समय वशिष्ठजीका तीनों लोकोंको भयसे मूर्च्छित करनेवाला और अत्यन्त डरावना रूप हो गया। उन महात्मा वशिष्ठजीके प्रत्येक रोमकूपसे धूमरहित अग्नि ज्वालाकी तरह चिनगारियाँ निकलने लगीं। वशिष्ठजीके हाथका जो ब्रह्मदण्ड धूमरहित कालाग्निके तुल्य अथवा दूसरे यमदण्डके समान था—जल उठा। यह देख तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीके अन्य मुनिगण स्तुति करने लगे और बोले—हे ब्रह्मन्! आपका बल अगाध हैं, आप ब्रह्मास्त्रके इस तेजको अपने तपकी महिमासे शान्त कीजिए। हे ब्रह्मन्! आपने इस महातपा विश्वामित्रका गर्व खर्व कर दिया है। हे तपस्विप्रवर! अब आप प्रसन्न हों, जिससे सब लोकोंको शान्ति प्राप्त हो। मुनियोंके ऐसा कहने पर महातपा वशिष्ठजी शान्त हो गये। तिरस्कृत विस्वामित्रभी ठंडी साँसे लेकर यह बोले—क्षत्रियबलको धिक्कार है। ब्रह्मतेजहीका बल यथार्थ बल है। देखो न, अकेले ब्रह्मदण्डने मेरे सब अस्त्रोंको निकम्मा कर दिया। अतः मैं अब क्षत्रिय-स्वभाव-सुलभ रोषको परित्यागकर ब्रह्मत्व प्राप्त करनेके लिए तप करूँगा; जो ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेका कारण अर्थात् उपाय है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

अपने तिरस्कारको बारम्बार स्मरण कर, विश्वामित्रका हृदय सन्तप्त हुआ और वशिष्ठजीके साथ वैर करनेका जो फल प्राप्त हुआ, :सके लिए वे ऊँची स्वाँसें लेते हुए अर्थात क्रोधसे दग्ध होते हुए, हे रामचन्द्र! विश्वामित्र अपनी रानी सहित दक्षिण दिशामें चले गए, और वहाँ उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की। विश्वामित्रजीके कुछ दिनों बाद सत्यवादी, महारथी और

धर्मात्मा हविष्यन्द, मधुष्यन्द, दृढ़नेत्र नामके पुत्र हुए। जब तप करते-करते एक हजार वर्ष पूरे हो गये तब लोक-पितामह ब्रह्माजी प्रकट हुए और तपस्वी विश्वामित्रजीसे बोले—हे कुशीकके पुत्र! हे राजर्षे! तुमने तपके बलसे राजर्षियोंके लोक जीत लिए। अतः तुम अपनी इस तपस्याके बलसे राजर्षि हुए। यह कहकर लोकेश्वर ब्रह्माजी देवताओं सहित अपने ब्रह्मलोकको और देवगण स्वर्ग लोकको चलेगये। ब्रह्माजीके इन बचनोंको सुन विश्वामित्र-जीने मारे लज्जाके मुख नीचा कर लिया और परम दुःखितहो, दीनता पूर्वक बोले—हा! इतना घोर तप करनेपर भी समस्त देवता और ऋषि मुझे राजर्षि ही कहते हैं, ब्रह्मर्षि नहीं? अतः मैं इसको तपका फलही नहीं मानता। हे राघव! अपने मनमें यह निश्चय कर, परम यत्नवान् महातेजस्वी विश्वामित्र फिर कठोर तप करने लगे। इसी बीचमें सत्यवादी और जितेन्द्रिय इक्ष्वाकुवंशी त्रिशंकु नामक, राजाके मनमें, हे राघव! यह बात उठी कि, हम ऐसा कोई यज्ञ करें जिससे हम अपने इस पार्थिव शरीरसे स्वर्ग जायँ। उन्होंने अपने मनके इस विचारको वशिष्ठजीको बुलाकर उनके सामने प्रकट किया। महात्मा वशिष्ठजीने त्रिशंकुका विचार सुनकर कहा कि, ऐसा होना असम्भव है। जब वशिष्ठजीने त्रिशंकुको इस प्रकार सूखा जवाब दे दिया, तब दक्षिण दिशामें अपने मनोरथकी सिद्धि के लिए वशिष्ठजीके पुत्रोंके पास गया। जाते-जाते राजा त्रिशंकु वहाँ पहुँचा जहाँ वशिष्ठजीके अनेक पुत्र बड़ा तप कर रहे थे। वहाँ जा महातेजस्वी त्रिशंकुने वशिष्ठजीके बड़े यशस्वी पुत्रोंको देखा कि, वे सबके सब तपस्यामें लीन हैं। उन सब महात्मा गुरुपुत्रोंके पास जा त्रिशंकुने यथाक्रम सबको प्रणाम किया, किन्तु लज्जाके मारे मुख नीचेही किए रहे और हाथ जोड़कर उन सब बड़े भाग्यवान् गुरु-पुत्रोंसे बोले—आप शरणागतकी रक्षा करनेवाले हैं। अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मैंने आपके पिता जीसे यज्ञ करानेको कहा था; किन्तु उन्होंने मुझे जबाब दे दिया अर्थात् यज्ञ करानेसे इन्कार कर दिया, अब आप लोगोंसे प्रार्थना है कि, उस महायज्ञको करनेकी आज्ञा हो। मैं अपने सब गुरु-पुत्रोंको प्रसन्न करनेके लिए उनको नमस्कार करता हूँ। मैं बारम्बार प्रणाम कर, आप तपस्वी ब्राह्मणोंसे यह माँगता हूँ कि, आप लोग मुझे सावधानता पूर्वक यज्ञ करावें जिससे मेरा

मनोरथ सिद्ध हो। और जिससे मैं इसी शरीरसे स्वर्ग जाऊँ। हे तपोधने! गुरु वशिष्ठजीने तो मुझे जवाब दे दिया, अतः मैं गुरुपुत्रोंको छोड़, इस कार्यके लिए अन्य किसीको योग्य नहीं समझता। यदि आप सब लोगोंने सूखाही ठुकराया तो मुझे और कोई नहीं देख पड़ता। इक्ष्वाकुवंशीय सब राजाके तो कार्य उनके पुरोहित द्वाराही होते रहे हैं, अथवा राजा इक्ष्वाकुके वंशकी यह रीति है कि, सदा पुरोहितसे प्रीति करें। अतः मेरा आपकी शरणमें आना कोई अनोखी बात नहीं है। श्रेष्ठ विद्वान् वशिष्ठजीही इक्ष्वाकु वंशीय राजाओंके सदासे रक्षक रहे हैं। उनके पश्चात् आप सब लोग ही मेरे रक्षक हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्ड का सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

हे राम! राजा त्रिशंकुका वचन सुन, वशिष्ठजीके सौ पुत्र क्रोधकर उससे यह बोले—हे दुर्बुद्धे! तेरे सत्यवादी गुरुने तुझे जिस कार्यके करनेका निषेध कर दिया, उनकी उस आज्ञाकी अवहेलना कर तू दूसरोंके पास आया है? तेरेही कथनानुसार इक्ष्वाकु वंशीय राजाओंके लिए पुरोहित वशिष्ठजीही परमगति हैं। उन सत्यवादीकी बातको टालना हमारे लिए असंभव है। भला जिस यज्ञके विषयमें भगवान् ऋषि वशिष्ठजी कह चुके हैं कि; यज्ञ नहीं हो सकता, कुछ तो सोच ले, उस तेरे यज्ञको हम कैसे करा सकते हैं? हे राजन्! हम जान गए कि तुम अनाड़ीहो! तुम अब अपनी राजधानीको लौट जाओ। हे राजन्! भगवान् वशिष्ठजी तो तीनो लोकोंको यज्ञ करा सकते हैं, फिर तुम तो उनके शिष्यही हो। यदि उन्होंने तुमको किसी कारण-विशेष-वश यज्ञ कराना नहीं चाहा, तो इसका यह अर्थ मत समझो कि, वे वैसा यज्ञ करा नहीं सकते; किन्तु उनका वैसा न करवाना तुम्हारेही हितके लिए है। हम उनका अपमान कैसे कर सकते हैं? उनके ऐसे क्रोध युक्त वचन सुन, राजाने उनसे फिर यह कहा—अच्छा महाराज! गुरुजीने जिस प्रकार जबाब दे दिया, उसी प्रकार आप लोगोंनेभी मुझे सूखा ठुकराया। हे तपस्वियों! आप लोग आनन्द कीजिए, मैं अब जाता हूँ और अन्य किसीका सहारा पकड़ूँगा। ऋषि-पुत्रोंने जब राजाके मुखसे निकले हुए ऐसे घोर अपमान

कारक वचन सुने, तब वे परम क्रुद्ध हुए और राजाको शाप दिया कि, "तू चाण्डाल हो जायगा"। यह शाप दे, वे सब उठकर अपनी-अपनी कुटियोंके भीतर चले गए। रात बीतने पर राजा चाण्डालताको प्राप्त हो गया। पीताम्बरकी जगह उसने नीले रंगका तहमत पहना। उसका शरीरभी काला पड़ गया। शरीर पर रूखाई आ गई। सिरके बाल छोटे हो गये, चिताकी भस्म शरीरमें पुत गई। उसके जितने सोनेके गहने थे वे सब लोहेके हो गये। हे राम! इस प्रकार राजाको चाण्डालत्वको प्राप्त हुआ देख, सब पुरवासी, जो उसके अनुगामी थे, नगरसे भाग गये। हे राम! तब राजा भी वहाँसे अकेला चल दिया और रात-दिन चिन्ताकुल वह राजा तपस्वी विश्वामित्रजी के पास गया। विश्वामित्रजीको, उस राजाको राज्य-भ्रष्ट और चाण्डालत्वको प्राप्त हुआ देख, उस पर दया आई। दयावश महातेजस्वी और परम धार्मिक विश्वामित्रजीने उस घोर रूपधारी राजासे यह कहा—हे महाबली राजपुत्र! तुम्हारा मंगलहो। मेरे पास तुम किस लिए आए हो? मैं यह जानता हूँ कि, तुम अयोध्याके राजा हो और इस समय तुम शापवश चाण्डालके रूपमें हो। चाण्डालताको प्राप्त राजा त्रिशंकु इन वाक्योंको सुन, वचन बोलनेमें चतुर राजा हाथ जोड़कर, परम चतुर विश्वामित्रसे बोला—हे महाराज! मेरे गुरु और उनके पुत्रोंने मुझे हताश किया है। मैं चाहता था कि, मैं सशरीर स्वर्ग जाऊँ। सो तो उन्होंने न किया, उल्टा मुझे चाण्डाल बनाकर, इस लोकमें भी मुँह दिखाने योग्य न रक्खा। महाराज! मैंने जो सौ यज्ञ किए, उसका फलभी मुझे न मिला। मैं न तो कभी झूठ बोला, न कभी बोलूँगा, भलेही मुझपर कोई कष्ट क्यों न पड़े; मैं क्षात्रधर्मकी शपथ खा कर कहता हूँ, मैंने अनेक यज्ञ किए, धर्मपूर्वक प्रजाका पालन किया, अपने शील और आचरणसे पूज्य जनों और महात्माओंको सन्तुष्ट किया। अबभी मैं धर्महीके लिए एक यज्ञ और करना चाहता था। हे मुनिपुङ्गव! परन्तु गुरुलोग राजी न हुए। सो हे मुने! मैं तो भाग्य ही को प्रबल मानता हूँ, पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है। जो कुछ होता है, वह भाग्यही से होता है, भाग्यही सब कुछ होता है। सो मुझ परमहीन अभागे पर आप कृपा कीजिए। आपका मंगल हो। मैं न तो किसी दूसरेके

पास जाऊँगा और न मुझे कोई दूसरा इसके योग्य देख ही पड़ता है। अतः आप अपने पुरुषार्थसे मेरे दुर्भाग्यको दूर कीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त। ५८॥

उनसठवाँ सर्ग

साक्षात् चाण्डालताको प्राप्त राजाने जब ऐसा कहा, तब उस पर कृपाकर विश्वामित्रजीने उससे मधुर वाणीमें कहा—राजन्! मैं तेरा स्वागत करता हूँ। मैं जानता हूँ कि, तू धर्मात्मा है। मैं तुझे अपनी शरणमें लूँगा; अथवा मैं तेरी रक्षा करूँगा। हे नृपपुङ्गव! तू मत डर। हे राजन्! मैं सब पुण्यकर्मनिरत महर्षियोंके पास न्योता भेजता हूँ। वे सब आकर यज्ञमें सहायता करेंगे और तू सानन्द यज्ञ करेगा। गुरुशापसे तेरा यह जो रूप बिगड़ गया है, सो तू इसी रूपसे और इसी शरीरसे स्वर्गको जायगा। हे राजन्! जब तू शरणागतवत्सल विश्वामित्रके शरणमें आचुका; तब स्वर्गको तो मैं तेरे हाथमें ही आया हुआ ही समझता हूँ। राजासे यह कहकर विश्वामित्रजीने परम धार्मिक अपने पुत्रोंको यज्ञकी तैयारीकी आज्ञा दी। फिर अपने सब पुत्रोंको बुलाकर उनसे कहा कि, हे वत्सो! तुम लोग जाकर मेरी आज्ञासे सब ऋषियोंको बुला लाओ। वे सब अपने-अपने सुहृदों, ऋत्विजों और विद्वानों सहित आवें और जो कोई मेरी आज्ञाके विरुद्ध कुछ कहें, उनकी कही वह ज्योंकी त्यों मेरे अपमानकी बात, आकर मुझसे कहो। विश्वामित्रजीके वचन सुन और उनकी आज्ञासे वे सब चारों ओर चल दिए। विश्वामित्रजीका न्योता पाकर उनके देशोंसे ब्रह्मवादी ऋषि आने लगे। शिष्य भी जो न्योता देने गए थे परम तेजस्वी विश्वामित्रके पास लौटकर आ गए और बोले—आपका न्योता पाकर सब ब्रह्मवादी ऋषि और ब्राह्मण आरहे हैं। सब देशके ऋषि तो आभी चुके हैं, पर महोदय नामक ऋषि नहीं आए। इनके अतिरिक्त वसिष्ठजीके सब पुत्रोंने महाक्रुद्ध हो जो कुवाच्य कहे, वे सब, हे मुनिपुङ्गव! सुनिए। वे बोले, कि जिस यज्ञमें विषेशकर चाण्डालके यज्ञमें क्षत्रिय तो याजक—यज्ञ करानेवाला हो, उस यज्ञमें देवर्षि किस प्रकार हवि ग्रहण करेंगे, और ब्राह्मण वा महात्मा लोग जो विश्वामित्रजीके वशमें हों, चाण्डालका अन्न भोजन कर कैसे स्वर्ग जायँगे? ये कठोर बचन, क्रोधमें भर, हे मुनिशार्दूल! वशिष्ठजीके उन सब पुत्रोंने तथा

महोदय ऋषिने कहे हैं। उन शिष्योंके मुखसे ये बचन सुनकर विश्वामित्र
मारे क्रोधके लाल २ नेत्रकर, रोष सहित बोले। देखो मैं महाउग्र तपस्
कर रहा हूँ, सब प्रकारसे दोष रहित हूँ। तिसपर भी जो वसिष्ठके दुष्ट पु
मुझे दूषण देते हैं, वे सबके-सबके दुरात्मा, निश्चयही भस्म हो जायँगे औ
कालपाशमें बँधे हुए, आजही यमपुरीमें पहुँचा दिए जायँगे और सात
जन्म तक "मृतया" शवभक्षी मुर्दा खानेवाले होंगे। उन्हें नियमित रू
कुत्तेका माँस खाना पड़ेगा और "मुषक" उनका नाम होगा। वे निर्दय घृणि
और कुरूप होकर इधर-उधर घूमेंगे। महोदय नामक दुर्बुद्धिने मुझ निर्दो
को जो दोष लगाया है सो वह सब लोगोंसे दूषित हो निषाद योनिको पावेग
और हिंसक तथा निर्दय होकर दीर्घकाल तक मेरे क्रोधसे बड़ी दुर्ग
भोगेगा। महातपस्वी विश्वामित्रजी ऋषियोंके बीच बैठे हुए इस प्रका
उनको शाप देकर चुप हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥५६॥

साठवाँ सर्ग

महोदय सहित वसिष्ठजीके पुत्रोंको अपनी तपस्याके बलसे मारकर, मह
तेजस्वी विश्वामित्र ऋषियोंके बीचमें बैठे हुए कहने लगे—इक्ष्वाकुवंशी य
प्रसिद्ध राजा त्रिशंकु, जो धर्मिष्ठ और उदार है, मेरे शरणमें आया है। यह अप
इसी शरीरसे देवलोक स्वर्ग को जाना चाहता है। इसलिए जिस प्रका
यह अपने इसी शरीरसे स्वर्गलोकमें जाय, उसी प्रकार आप लोग मेरे सा
मिलकर, इसे यज्ञ करवाइये। विश्वामित्रके वचन सुन सब महर्षि लोग,
धर्मका मर्म जाननेवाले थे, आपसमें कहने लगे—यह कुशिकवंशीय विश्व
मित्रजी बड़े क्रोधी हैं। जो यह कह रहे हैं, यदि उसके अनुसार हम लोगों
कार्य न किया, तो यह साक्षात् अग्निके तुल्य विश्वामित्र क्रुद्ध हो हमें शा
दे देंगे। अतः ऐसा यज्ञ करो जिससे इक्ष्वाकु वंशज त्रिशंकु, विश्वामित्र
तपः प्रभावसे सशरीर स्वर्गको चला जाय। सो अब सबको मिलकर यज्ञार
करना चाहिए। यह कह, वे सब ऋषि लोग वेद-विधानसे यज्ञ-क्रियाएँ कर
लगे। उस यज्ञमें याजक विश्वामित्रजी हुए और अन्य बड़े-बड़े विज्ञानी लो
जो भलीभाँति वेदके मंत्रोंके जाननेवाले थे, यथाक्रम ऋत्विज आदि हुए। उ

सबने यज्ञके समस्त कर्म विधिपूर्वक यथाक्रम किए। इस रीतिसे बहुत दिनों तक यज्ञ-क्रिया होती रही। तदन्तर महातपस्वी विश्वामित्रजीने यज्ञभाग ग्रहण करनेके लिए सब देवताओंको बुलाया; किन्तु बुलाने पर भी कोई भी देवता यज्ञ-भाग लेनेको न आया। तब तो महर्षि विश्वामित्रजी कुपित हुए और श्रुवा उठा, त्रिशंकुसे यह बोले—हे राजन्! मेरी तपस्याका प्रभाव देखिये, मैं तुमको इसी शरीरसे अपने तपोबल द्वारा स्वर्ग पहुँचाता हूँ। हे राजन्! यद्यपि इस पार्थिव शरीरसे स्वर्ग में जाना असंभव है, तथापि मेरा जो कुछ थोड़ा बहुत तपस्याका फल है, हे राजन्! उसके द्वारा तू सशरीर स्वर्गको जा। जब विश्वामित्रने यह कहा, तब त्रिशंकु सशरीर मुनियोंकी आँखोंके सामने (त्रिशंकु सशरीर) स्वर्गको गये और वहाँ पहुँच गये। हे राम! सशरीर राजा त्रिशंकुको स्वर्गमें आया हुआ देख, इन्द्रने अन्य सब देवताओं सहित कहा,—हे त्रिशंकु! तू पृथ्वी पर जाकर रह, तू स्वर्गमें रहने योग्य नहीं है। क्योंकि तू गुरुके शापसे शापित है, अतः हे मूर्ख! तू नीचेको सिर कर पृथ्वी पर गिर। इन्द्रके यह कहते ही त्रिशंकु नीचेकी ओर गिरने लगा और विश्वामित्रजीको पुकार कर कहने लगा, मुझे बचाइये! बचाइये!! इस प्रकार चिल्लाते हुए राजाके ऐसे वचन सुन विश्वामित्रजी महाकुपित हो बोले "तिष्ठ-तिष्ठ" (वहीं) ठहर! (वहीं) ठहर! उस समय ऋषियोंके बीच, विश्वामित्रजी दूसरे प्रजापति जैसे ज्ञात हो रहे थे। विश्वामित्रजीने कुपित हो दक्षिण दिशामें पहले तो नवीन सप्तर्षियोंकी रचनाकी, तदन्तर अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्र बना डाले। क्रोधसे बिकल और ऋषियोंके बीचमें बैठे हुए विश्वामित्रजी जब दक्षिण दिशामें नवीन नक्षत्र बना चुके, तब विचारने लगे कि, मैंने जो यह नये स्वर्गकी कल्पना की है, उसके लिए एक नया इन्द्र भी बनाऊँ अथवा इस नये स्वर्गको बिना इन्द्र ही का रहने दूँ। और इस नवीन स्वर्गका स्वामी त्रिशंकु ही हो। फिर वे क्रोधमें भरकर नवीन देवताओंकी भी रचना करने लगे। तब तो ऋषि, देवता, असुर, किन्नर यक्ष, सिद्ध और चारण बहुत घबड़ाये और विश्वामित्रजीके पास जाकर विनय पूर्वक कहने लगे—हे महाभाग! यह राजा गुरुशापसे शापित होनेके कारण, हे तपोधन्! सशरीर स्वर्गमें जानेके योग्य नहीं है। उन

देवताओंका यह वचन सुन महर्षि विश्वामित्र उन सब देवता
से यह बोले कि, हे महात्माओं ! आपका कल्याण हो । इस राजा त्रिशंकु
सशरीर स्वर्गमें पहुँचानेकी मैंने जो प्रतिज्ञाकी है, उसे मैं अन्यथा नहीं क
सकता । इस राजा त्रिशंकुको निरन्तर स्वर्गमें रखनेके लिए मेरे बनाए
सहित वे सब नक्षत्र, तब-तक बने रहें, जब-तक अन्य लोक बने रहें। अथ
जब-तक अन्य स्वर्गादि लोक रहें, तब-तक मेरा बनाया हुआ नया स्वर्ग
रहे और मेरे बनाये हुए सब देवता भी रहें । हे देवताओं ! तुम सब ऐ
अनुमति दो। यह सुन उन सब देवताओंने विश्वामित्रजोसे कहा, अच्छी बा
है, आपका मंगलहो । आपके बनाये ये नक्षत्र, ध्रुव तथा देवता स
बने रहेंगे; किन्तु प्राचीन वैस्वानरमार्ग (उत्तरायणमार्ग) के बाहर ही ये रहेंगे
हे मुनिश्रेष्ठ! उन चमकते हुए नक्षत्रोंमें अधोमुख राजा त्रिशंकुभी अमरके सम
देवताओंकी तरह बना रहेगा और जिस प्रकार कीर्त्तिवान् एवं सिद्ध म
रथ जीवके पीछे नक्षत्र चलते हैं, उसी प्रकार त्रिशंकुके पीछे-पीछे आप
बनाए हुएसब नक्षत्र भी चला करेंगे । देवताओंने धर्मात्मा विश्वामित्रजी
इसप्रकार कहा और उनकी स्तुतिकी। विश्वामित्रजीने भी उनकी अर्थात् देवत
ओंकी बात मान ली । हे राम ! उस यज्ञमें जो देवता और तपस्वी आ
आए थे वे यज्ञकी समाप्ति हो चुकने पर अपने-अपने स्थानको चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा आदि काव्य बालकाण्ड का साठवाँ सर्ग समाप्त ॥६ ॥

एकसठवाँ सर्ग

हे राम ! नरशार्दूल महात्मा विश्वामित्रजीने उन ऋषियोंको जा
हुए देखकर, उन सब तपोवन वासियोंने कहा कि, उस दक्षिण दिशामें रहने
मेरी तपस्यामें एक बड़ा विघ्न पड़ा । अतः अन्य किसी दिशामें जाकर,
अब तप करूँगा । विशाल पश्चिम दिशामें, जहाँ पुष्कर आनन्द माता ती
है, और जिसके समीप बहुत अच्छा तपोवन है, वहीं मैं आनन्दसे त
करूँगा । यह कहकर विश्वामित्रजी पुष्करको चले गये, और वहाँ पहुँच
फल-फूल खाकर; उग्र तप करने लगे । इसी बीचमें अयोध्याके अम्ब
नामक राजाने यज्ञ करना आरम्भ किया । उस राजाके यज्ञ-पशुको ह

चुरा ले गये। पशुके इस प्रकार नष्ट होनेपर पुरोहितने राजासे कहा—हे राजन्! आज यज्ञ-पशु चोरी होगया है, सो तुम्हारी असावधानतासे ही गया है। यह अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि अरक्षित पशुके हरे जानेका दोष रक्षकके माथेही रहता है। हे राजन्! अतएव यज्ञ-कर्म समाप्त होते-होते या तो कोई दूसरा पशु लाइए अथवा गोधन देकर कोई नर ही शीघ्र लाइए। जिससे इस विघ्नका प्रायश्चित्त हो। पुरोहितके वचन सुन, वह नरोत्तम बड़ा बुद्धिमान् राजा, सहस्रों गौएँ देकर यज्ञ-पशुको ढूँढ़ने लगा। उन्होंने यज्ञ-पशुकी तलाशमें अनेक देश नगर, जनपद, वन, आश्रम और तीर्थ छान डाले। पशुकी तलाश करते-करते अम्बरीषने भृगुतुङ्ग नामक किसी पर्वतके शृंगपर भार्या और पुत्रों सहित बैठे हुए महर्षि ऋचीकको देखा। महाप्रतापी राजाने मुनिको प्रणामकर उन्हें अनेक प्रकारसे प्रसन्न किया, और तपस्यामें निरत ब्रह्मर्षिसे कुशल-प्रश्न पूछा। तदनन्तर अम्बरीषने ऋचीक से कहा—यदि आप एक लाख गौएँ लेकर अपने पुत्रको यज्ञपशु बनानेके लिए, हमारे साथ लेकर चलते, तो मैं आपका बड़ा अनुगृहीत होता। संपूर्ण देश मझा डाले, न तो मेरे पहले यज्ञ-पशुकाही पता लगा, और न तो दाम देनेपर ही कोई यज्ञ-पशु मिला। अतः आप मूल्य लेकर मुझे अपना एक पुत्र दे दीजिये। यह सुन महातेजस्वी ऋचीक बोले—हे राजन्! मैं अपने ज्येष्ठ पुत्रको तो कभी न बेचूँगा। ऋचीककी यह बात सुन, उनके महात्मा पुत्रोंकी माता, राजा अम्बरीषसे यह बोलीं—मेरे पति महाभाग भार्गवने कहा है कि, ज्येष्ठ पुत्र तो बेचा जा नहीं सकता; क्योंकि वह पितृ-कर्म करने का अधिकारी है। हे राजन्! सबसे छोटे पुत्र शुनक पर आप मेरी बड़ी प्रीति जानें। अतः उसे मैं आपको न दूँगी। हे नरश्रेष्ठ! श्रेष्ठपुत्र पिताको और सबसे छोटा माताको प्रायः बहुत प्यारे होते हैं। अतः मैं छोटे को न दूँगी। हे राम! मुनि और मुनिपत्नीकी इस बातचीतको सुनकर उनका मझला पुत्र शुनःशेप स्वयं राजासे बोला—पिताजी बड़ेको बेचना नहीं चाहते, और माता छोटेको देना नहीं चाहती। इससे मझलेको बेचा हुआ समझ, आप मुझेही ले चलिये। हे राम! यह सुन, राजाने ऋचीकको एक लाख गौएँ दीं

और शुनःशेपको लेकर वहाँसे चला। महातेजस्वी राजर्षि अम्बरीष शुनःशेपक रथपर चढ़ा वहाँसे शीघ्र रवाना हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

बासठवाँ सर्ग

हे राम! महायशा राजा अम्बरीष शुनःशेपको लिए हुए पुष्कर पहुँ और दोपहर भर वहाँ विश्राम किया। जब राजा विश्राम कर रहे थे, त अवसर पाकर शुनःशेपने श्रीपुष्करजीमें जाकर विश्वामित्रजीके दर्शन किए ऋषियोंके समूहमें बैठकर तप करते हुए अपने मामा विश्वामित्र को देख उदास, प्यासा, थका हुआ और परमातुर शुनःशेप उनकी गोदमें गिर प और बोला—जब मेरे माता-पिता नहीं हैं, तब जाति-विरादरी और भाई-बन् हो ही कहाँ सकते हैं? हे सौम्य! हे मुनिराज! मैं शरणागत धर्मकी दुहा देता हूँ, मुझे बचाइए। मेरी ही क्यों? शरण आनेपर आप समस्त संसारक रक्षा कर सकते हैं। अतः ऐसा कीजिए जिससे राजाका यज्ञ निर्विघ्न पूरा ह जाय और मैं बहुत काल तक जीवित रहकर, उत्तम तपस्याकर अन्तमें स्व जाऊँ। आप मुझ अनाथ के नाथ हो। जिस प्रकार पिता अपने पुत्रकी र करता है, उसी प्रकार आप मेरी भी इस संकटसे रक्षा कीजिए। शुनःशेपक ऐसे दीन वचन सुन, विश्वामित्रजीने उसे बहुत कुछ सान्त्वना दी और अप पुत्रों से बोले—हे पुत्रों! जिस परलोकके प्रयोजनके लिए पिता सत्पुत्रों उत्पन्न करते हैं, उसका समय आ पहुँचा। हे पुत्रों! यह ऋचीक मुनिक पुत्र है। अभी बच्चा है और हमारे शरणमें आया है। इसके प्राणोंकी र कर हमारा प्रिय करो। तुम सब पुण्यात्मा और धर्मात्मा हो। अतः तुमलो स्वयं राजाके यज्ञ-पशु बनकर अग्निदेवको तृप्त करो। ऐसा करनेसे शुनःशेपक प्राण बच जायेंगे, राजाका यज्ञ भी निर्विघ्न पूरा हो जायेगा, देवता सन्तु होंगे और मेरी बात भी रह जायेगी। विश्वामित्रजीके वचन सुन, उनके म छन्दादि पुत्र अभिमान सहित उपहास करते हुए यह बोले—हे महाराज आप अपने पुत्रोंको छोड़, अन्यके पुत्रकी रक्षा क्यों करते हैं? यह तो वै ही कर्म है; जैसा कि सुन्दर भोज्य पदार्थोंको छोड़ कुत्तेका मांस खाना

अथवा आपका यह कार्य उसी प्रकार अनुचित है जिस प्रकार कुत्तेका मांस खाना अनुचित है। अपने पुत्रोंकी ये बातें सुन, क्रोधसे लाल-लाल आँखेंकर विश्वामित्रजी उनसे कहने लगे, तुम्हारा यह कहना उद्दण्डतापूर्ण, धर्मकी दृष्टि से भ्रष्ट, और पितृभक्ति-रहित होनेके कारण दारुण (कठोर) है, अतएव रोमाञ्चकारी और मेरी अवज्ञा करनेवाला है। अतः तुमलोग भी वशिष्ठजीके पुत्रोंकी तरह चाण्डाल होकर और कुत्तोंका मांस खाते हुए पूरे एक हजार वर्ष तक पृथ्वीपर घूमोगे। इसप्रकार मुनिवर अपने पुत्रोंको शाप दे, सब प्रकार से शुनःशेपकी रक्षाकर, उससे बोले—हे मुनिपुत्र! जब तुम अम्बरीषके यज्ञमें पवित्र फाँसीसे, वैष्णवस्तम्भमें, लाल माला और लाल चन्दनसे सजाकर बाँधे जाओगे, तब तुम इन दो मन्त्रोंसे स्तुति करना। इससे तुम्हारा काम हो जायगा अर्थात् तुम बच जाओगे। शुनःशेपने बड़ी सावधानीसे उन दोनो मन्त्रोंको याद कर लिया और फिर तुरन्त अम्बरीषसे कहा; हे महबलवान् राजसिंह! चलिए अब शीघ्र चलें और पहुँचकर आप यज्ञ-दीक्षा ले, अपना यज्ञ पूरा कीजिए। ऋषिपुत्रका वचन सुन, राजा परम हर्षित हो तुरन्त अपनी यज्ञशालाको गया। फिर यज्ञ करानेवालोंकी सम्मतिसे राजाने उस शुनःशेपको पशु बना और लाल कपड़े पहना, खम्बेमें बाँध दिया। तब बँधे हुए शुनःशेपने विश्वामित्रजीके बतलाए हुए मन्त्रोंसे इन्द्र और उपेन्द्रकी यथावत् स्तुति की। शुनःशेपकी मन-ही-मन कही हुई स्तुतिको सुन, इन्द्र उस पर प्रसन्न हो गए और इन्द्रने उसे दीर्घजीवी होनेका वरदान दिया। हे राम! नरश्रेष्ठ राजाने भी यज्ञ समाप्तकर, इन्द्रकी कृपासे अनेक प्रकारके वरदान पाये। हे राजन्! धर्मात्मा विश्वामित्र ने भी पुनः पुष्कर क्षेत्रमें दश हजार वर्षों तक अच्छी तरह तप किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ सर्ग

विश्वामित्रजीको तप करते हुए जब पूरे एक हजार वर्ष बीत गये, अथवा जब उनका पुरश्चरण पूरा हुआ, तब सब देवता उनको उनके तपका फल-स्वरूप वर देनेकी इच्छासे आये। उनमें परम तेजस्वी ब्रह्माजी परम रुचिकर यह वचन बोले कि, हे विश्वामित्र! तुम्हारा मङ्गल हो; तुम अपने उपार्जित शुभ कर्मों द्वारा ऋषि हुए। अर्थात् अभी तुममें ब्रह्मर्षिपद अथवा

ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हुआ यह कह ब्रह्मादि देवता अपने-अपने लोकोंको लौट गए और विश्वामित्रजी पुनः तप करने लगे। जब तप करते-करते उन्हें बहुत दिन हो गए, तब एक दिन मेनका नामकी अप्सरा पुष्करमें स्नान करनेके लिए वहाँ आई। तब मेघमें चमकती हुई बिजलीकी तरह मेनकाको देख, महा-तपस्वी विश्वामित्र मुनि कामासक्त हो, उससे यह बोले—हे अप्सरा! मैं तेरा स्वागत करता हूँ। तू मेरे इस आश्रममें रह। तेरा मङ्गल हो। तू मेरे ऊपर अनुग्रह कर। क्योंकि मैं तुझे देख कामासक्त हो गया हूँ। यह सुन वह सुन्दरी मेनका ऋषिजीके आश्रममें रहने लगी। मेनकाके वहाँ आश्रममें रहनेके कारण, विश्वामित्रजीकी तपस्यामें बड़ा भारी विघ्न पड़ा। हे राघव! मेनका अप्सरा दस वर्षतक विश्वामित्रके उस आश्रममें रही। अर्थात् मुनिराज विश्वामित्रने उसके साथ भोगविलास कर दसवर्ष बातकी बातमें निकाल दिए। तदन्तर दसवर्ष बीतने पर महर्षि विश्वामित्रजी अपनी इस भूलपर लज्जित हुए और चिन्तामें पड़कर बहुत दुःखी हुए। हे रघुनन्दन! जब विश्वामित्रजीने इसका कारण विचारा, तब उनकी समझमें यह आया कि, मेरे इस चिरकालीन तपको हरण करनेके लिए यह सब देवताओं की करतूत है। उन्होंने यह विघ्न डाला है। अरे दसवर्ष बीत गये, किन्तु मुझे जान पड़ता है, मानों अभी एकही रात्रि बीती है। हा कामासक्त होनेके कारण मेरे तपमें बड़ा भारी विघ्न पड़ा! महर्षिजी यह कह और बार-बार ऊँची साँसे ले, पछताकर दुःखी हुए। शापके डरसे थरथराती और हाथ जोड़े हुए खड़ी मेनकाको देख, विश्वामित्रजीने, मीठे वचन कहकर उसे विदा किया। हे राम! तदन्तर विश्वा-मित्रजी पुष्कर क्षेत्रको छोड़ उत्तर दिशामें पर्वत पर अर्थात् हिमालय पर चलेगए और व्रत समाप्त होने तक कामको जीतनेकी इच्छासे, महायशा विश्वामित्र कौशिकी नदीके तट पर जा फिर उग्र तपस्या करने लगे। जब उनको उग्र तप करते-करते एक हजार वर्ष बीत गए, तब हे राम! हिमालय पर्वत पर तप करनेसे देवता लोग बहुत डरे और सब देवर्षि और देवता ब्रह्माजीके पास जाकर बोले, अब विश्वामित्रको 'महर्षि' की पदवी प्रदान कीजिए। देवताओं का यह वचन सुन ब्रह्माजी तपस्वी विश्वामित्रजीके पास जा उनसे

मीठे वचनोंमें बोले—हे विश्वामित्र! तुम बहुत अच्छे भले हो। अर्थात् तुम्हारी उग्र तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और तुमको ऋषियोंमें मुख्य होनेका आशीर्वाद देता हूँ। ब्रह्माजीके वचन सुन तपोधन विश्वामित्रजी हाथ जोड़ और प्रणामकर ब्रह्माजीसे बोले—मैंने तो यह अतुलित तपस्या ब्रह्मर्षिपद प्राप्त करनेके लिए की थी। यदि आप मुझे महर्षिही कहते हैं, तो मैं समझता हूँ कि मैं जितेन्द्रिय नहीं हूँ। तभी तो आप मेरा अभीष्ट ब्रह्मर्षिपद प्रदान नहीं करते और मुझे महर्षि कहते हैं। इस पर ब्रह्माजीने कहा—हाँ, अभी तक तुम सचमुच जितेन्द्रिय नहीं हो पाये। हे मुनिशार्दूल! अभी और तप करो। यह कह ब्रह्माजी स्वर्गको चले गये। सब देवताओंके यथास्थान चले जाने पर महर्षि विश्वामित्रजी बिना सहारे ऊपरको बाँह उठाये और केवल वायुसे पेटभर कर तप करने लगे। गर्मीमें वे पंचाग्नि तापते, वर्षा ऋतुमें छायादार जगहसे निकल कर, खुले मैदानमें बैठते। जाड़ोंके दिनोंमें जलके भीतर खड़े रहते थे। इसप्रकार उन्होंने एक हजार वर्षों तक उग्र तप किया। महर्षि बिश्वामित्रके इस प्रकार तप करनेसे इन्द्र सहित समस्त देवताओंमें बड़ी खलबली मच गई। वे लोग बहुत घबड़ाये। तदनन्तर देवराज इन्द्र सब देवताओं सहित रंभा अप्सरासे अपने हित और विश्वामित्रके अनहितकी यह बात बोले—

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्ड का तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

चौंसठवाँ सर्ग

हे रंभे! देवताओंका यह महान् कार्य है कि, विश्वामित्रको कामासक्त करना। हे राम! जब इन्द्रने रंभासे यह कहा, तब वह बहुत लज्जित हुई और हाथ जोड़कर इन्द्रसे बोली—हे इन्द्र! यह विश्वामित्र बड़े क्रोधी हैं। जैसे ही मैं उनके पास गई कि, वे अत्यन्त क्रुद्ध हो निश्चय ही शाप दे देंगे। इसीलिये मैं उनके समीप जाती हुई बहुत डरती हूँ। आप कृपया मुझे वहाँ न भेजिये। हे राम! उस डरी हुई रंभाके यह कहनेपर इन्द्रने कहा—डर मत; तेरा मंगल हो, मेरी आज्ञा मान। मैं स्वयं वसन्त ऋतुमें मनोहर कुहुक करनेवाला कोकिल पक्षी बनकर, कामदेव—सहित किसी सुन्दर वृक्षके ऊपर तेरे आस-पास ही रहूँगा। हे रंभे! तू अपना बड़ा सुन्दर और चट-

कोल।– भड़कीला शृङ्गार कर, उन तपस्वी विश्वामित्रका मन तपसे चलायमान करना। इन्द्रके इस प्रकार समझानेपर वह सुन्दरी अपना शृंगारकर और मंद-मंद मुस्कराती हुई, विश्वामित्रके मनको लुभाने लगी। उस समय विश्वामित्रजी कोकिलका मधुर कुहकना सुन और प्रसन्न हो, रंभाकी ओर देखने लगे। परन्तु उस कोकिलकी कुहूक तथा रंभाका मनोहारी गाना सुन और उसको देख, विश्वामित्रजीके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया। और यह जानकर कि, यह सब नटखटी इन्द्रकी है, विश्वामित्रजी बहुत क्रुद्ध हुए और रंभाको यह शाप दिया। हे रंभे! काम, क्रोधको अपने वशमें करनेकी इच्छा रखनेवाले मुझे जो तू लुभाती है, सो हे दुर्भगे! तू दस हजार वर्ष तक शिला होकर रहेगी। हे रंभे! फिर कोई बड़ा तेजस्वी एवं तपस्वी ब्राह्मण तुझ पाप रूपिणीको, मेरे कोपसे उबारेगा। महर्षि विश्वामित्र यह शाप देनेके अनन्तर, क्रोधको रोक न सकनेके लिए, बहुत पछताये। विश्वामित्रजीके उस महा-शापसे रंभा शिला हो गई और महर्षि विश्वामित्रके क्रोधयुक्त वचन सुन कामदेव और इन्द्र वहाँसे रफूचक्कर हो गये। हे राम! कोप करनेसे महाते-जस्वी विश्वामित्रका तप नष्ट हो गया। वे अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें न रख सके। इससे उनके मनको शान्ति न मिली। तब उन्होंने निश्चय किया कि, अब सैकड़ों वर्षों तक साँस न लूँगा और इन्द्रियोंको जीतनेके लिए मैं अपने शरीरको सुखा डालूँगा इस प्रकार इन्द्रियोंको अपने वशमें करूँगा। जब तक तपोबलसे मुझे ब्राह्मणत्व प्राप्त न होगा, तब तक कितना ही समय क्यों न लगे, मैं न तो साँस ही लूँगा और न भोजन करूँगा और सदा खड़ा ही रहूँगा। मुझे इस बातका तो भयही नहीं है कि, भोजन न करने या साँस न लेने अथवा सदैव खड़े रहनेसे मेरे शरीरके अवयव क्षीण हो जायेंगे। हे रघुनन्दन! महर्षि प्रवर विश्वामित्रने एक हजार वर्षों तक उक्त विधिसे तप करनेका अतुल्य संकल्प किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका चौसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ सर्ग

तदनन्तर महर्षि विश्वामित्र उत्तर दिशाको त्यागकर और पूर्व दिशामें जाकर, फिर उग्र तप करने लगे। हे राम! उन्होंने एक हजार वर्षों तक मौन-

व्रत धारणकर परम दुष्कर अतुलित तप किया। यहाँ तक कि, जब एक हजार वर्ष पूरे हो गए, तब विश्वामित्रजीका शरीर काष्ठकी तरह हो गया। इस बीचमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित हुए, किन्तु मुनिराजके अन्तःकरणमें क्रोध उत्पन्न न हुआ। हे राम! जब वे अन्न-भोजन करनेको बैठे तो उसी समय इन्द्र ब्राह्मणका रूप धारणकर आए और विश्वामित्रजीकी थालीमें परोसे हुए भोज्यपदार्थोंके लिए उनसे याजना की। भोजनके लिए जो अन्न तैयार हुआ था, वह सबका सब उठाकर, उन्होंने इन्द्रको सचमुच ब्राह्मणदान दे दिया और स्वयं विना खाये ही रह गये। किन्तु ब्राह्मणसे कुछ भी न कहा, क्योंकि वे मौनव्रत धारण किए हुए थे। तदन्तर फिर उन्होंने एक हजार वर्ष तक साँस रोककर तप करना आरम्भ कर दिया। साँस रोक रखनेसे अर्थात् कुम्भक करनेसे उनके सिरसे धुआँ निकलने लगा। इससे तीनों लोकवासी घबड़ा गए और तीनों लोक तप्त हो गए। तब तो देवता, गन्धर्व, सर्प, नाग और राक्षस सबही उनके तप रूपी अग्निसे मूर्छित हो गए और उनके तेज मंद पड़ गए। उन सबने दुःखी हो ब्रह्माजीसे कहा—हे देव! हमने महर्षि विश्वामित्रको अनेक प्रकारसे लुभाया और क्रुद्ध करना चाहा, किन्तु ये अपने तपसे न डिगे, प्रत्युत इनका तप बढ़ता ही गया। अब इनमें राग-द्वेष नाममात्रको भी नहीं है। यदि अब भी उनको उनका अभीष्ट वर अर्थात् ब्रह्मर्षिकी पदवी न दिया गया, तो वे अपने तपसे सचराचर तीनों लोकोंको नष्टकर डालेंगे। देखिए, सब दिशाएँ विकल हैं और प्रकाश रहित हैं। अर्थात इनकी तपस्याके तेजसे सबका तेज छिप गया है। समुद्र क्षुब्ध हो गए हैं और सब पर्वत फटे जाते हैं। महर्षिकी तपस्याके तेजसे सूर्य प्रभाहीन पड़ गया है, पृथ्वी काँप रही है और वायुकी गति भी मंद हो गयी है। हे ब्रह्मन्! इनका प्रतिकार हम लोगोंको अब नहीं सूझ पड़ता। इस हलचलके कारण लोग नास्तिकोंकी तरह कर्मानुष्ठान शून्य हुए जाते हैं। क्योंकि इस समय किसीका मन ठिकाने नहीं है और सब विकल हैं। अतः हे देव! विश्वामित्राजी के मनमें इस जगत्को नाश करनेकी इच्छा उत्पन्न होनेके पूर्व ही, आप इनको सन्तुष्ट कर दीजिए। क्योंकि इस सयय वे अग्निरूप होनेके कारण महाद्युतिमान्

हो रहे हैं। जैसे प्रलयके समय-कालाग्नि तीनों लोकोंको जलाकर नष्टकर डालते हैं, वैसे ही ये भी जलाकर भस्मकर डालेंगे। यदि यह इन्द्रासन चाहें तो वह भी इनको देकर इनका अभीष्ट कीजिए। अथवा यदि इनको आप ब्रह्मर्षि-पद, जो इनका अभीष्ट है नहीं देंगे; तो यह इन्द्रपुरीके राज्यकी इच्छा करने लगेंगे। उन लोगों से इस प्रकार अनुरोध किए जानेपर ब्रह्माजी सब देवताओंको साथ ले, महात्मा विश्वामित्रजीसे जाकर, ये मधुर वचन बोले-हे ब्रह्मर्षे! हम तुम्हारा स्वागत करते हैं अर्थात् तुम्हें बधाई देते हैं! हम तुम्हारी तपस्यासे भली-भाँति सन्तुष्ट हुए। हे विश्वामित्र! तुमने अपने उग्र तपके प्रभावसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। अब हम सब देवताओं सहित तुमको आशीर्वाद देते हैं कि, तुम दीर्घजीवी हो; तुम्हारा मङ्गल हो। हे सौम्य! अब जहाँ तुम्हारी इच्छा हो जाओ। ब्रह्माजीके इन वचनोंको सुन, विश्वामित्रजीने सब देवताओंको प्रणाम किया और वे प्रसन्न हो बोले, यदि मुझे ब्राह्मणत्व दिया है और दीर्घायु प्राप्त हो चुका है, तो ओंकार वषट्कार तथा वेद भी मुझे अंगीकार करें और क्षत्रियोंकी वेद विद्या अथर्वण वेद जानने वालोंमें श्रेष्ठ तथा ब्राह्मणोंकी वेद विद्या जाननेमें भी श्रेष्ठ अर्थात् चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजी भी मुझे "ब्रह्मर्षि" कहें। यदि मेरा यह अभीष्ट पूरा हो जाय, तो आपलोग अर्थात् सब देवता चले जा सकते हैं। यह सुन देवता लोग ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठजीके पास गये और उन्हें मनाकर राजी किया। वशिष्ठजी आए और विश्वामित्रजीसे मेल किया अर्थात् वैर छोड़ दिया और कहा तुम ब्रह्मर्षि हो गए। तुम्हारे ब्रह्मर्षि होनेमें अब कुछ भी संदेह नहीं है। अब तो सबने तुम्हारा ब्रह्मर्षि होना मान ही लिया है। यह कह देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गए। विश्वामित्रने भी उत्तम ब्राह्मणत्व प्राप्त करके महर्षिप्रवर ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीका पूजन किया और स्वयं कृतकार्य हो और तप करते हुए ये अब सारी पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे हैं। शतानन्दजी बोले—हे राम! इस तरह इन महात्मा विश्वामित्रजीने ब्राह्मणत्व पाया है। हे राम! यह मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं और तपकी तो साक्षात् मूर्ति ही हैं। यह सदा धर्मकार्योंको करनेमें तत्पर रहते हैं, यह अब भी तपोवीर्य

परायण हैं। यह कहकर ब्राह्मणश्रेष्ठ महातेजस्वी शतानन्दजी चुप हो गये। शतान्दजीकी बात पूरी होनेपर, श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणके सामने राजा जनकसे हाथ जोड़कर कौशिकजीसे कहा; हे कौशिक! मैं आपनेको धन्य मानता हूँ, और आपका बड़ा अनुगृहीत हूँ। क्योंकि आप श्रीराम और लक्ष्मण सहित मेरे यज्ञमें पधारे हैं। हे ब्राह्मण! आपने दर्शन देकर मुझे पवित्र किया है। हे महाभाग! ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी! आपके दर्शनसे मेरा मान बढ़ा है, मैंने विस्तारपूर्वक आपके तपकी कीर्तिका वृतान्त सुना है। मैंने श्रीरामचन्द्रजीने तथा मेरे सभासदोंने आपके असंख्य गुण सुने। हे कौशिक! आपका तप और बल अचिन्त्य है। आपके गुण अपार हैं। हे विभो! आपकी विस्मयोत्पादिनी कथाओंको सुनते-सुनते मेरा जी नहीं भरा। अब सूर्य अस्त होनेवाला है, सन्ध्योपासनादि कर्म करनेका समय समीप है। अतः अब मैं विदा होता हूँ। हे तप करनेवालोंमें श्रेष्ठ! आप इस समय भले पधारे। कल प्रातःकाल फिर मुझे आपके दर्शन होंगे। अब जानेकी आज्ञा दीजिए। जब जनकजीने ऐसा कहा, तब विश्वामित्रजीने उनकी प्रशंसा करते हुए, प्रसन्न मनसे बड़े प्रेमके साथ उनको तुरन्त विदा करदिया। तदन्तर राजा जनकने अपने उपाध्याय और बन्धु-बान्धवों सहित उठकर विश्वामित्रजीकी प्रदक्षिणा की और वे वहाँसे चल दिए। धर्मात्मा विश्वामित्र भी श्रीराम लक्ष्मण सहित मुनियोंसे सम्मानित हो अपने निवास-स्थानमें आये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

छाछठवाँ सर्ग

प्रातः काल होतेही राजा जनकने आह्निक कर्मानुष्ठानसे निश्चितहो, दोनों राजकुमारों सहित विश्वामित्रजीको बुला भेजा। शास्त्रविधिके अनुसार अर्घ्यपाद्यादिसे विश्वामित्र व राम लक्ष्मणकी पूजा कर धर्मात्मा राजा जनक बोले—हे भगवन्! आपका मैं स्वागत करता हूँ, कुछ सेवा करनेके लिए आज्ञा दीजिए। क्योंकि मैं आपकी आज्ञा पानेका पात्र हूँ। जब महात्मा जनकजी ने ऐसा कहा, तब बातचीत करनेमें अत्यन्त चतुर विश्वामित्रजी राजासे बोले–ये दोनों कुमार महाराज दशरथके पुत्र, क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ, और

लोक में विख्यात श्रीरामचन्द्र एवं लक्ष्मण, वह धनुष देखना चाहते हैं, जो आपके यहाँ रक्खा है। आपका मंगल हो, अतः आप उसे इन्हें दिखलवा दीजिए। उसे देखनेही से इनका प्रयोजन हो जायगा और ये चले जायँगे। यह सुन राजा जनक विश्वामित्रजीसे बोले कि, जिस प्रयोजनके लिए यह धनुष यहाँ रक्खा है, उसे सुनिए—हे भगवन्! राजा निमिकी छठवीं पीढ़ीमें देवरात कार्मुक एक राजा हो गए हैं; उनको यह धनुष धरोहरके रूपमें मिला था। पूर्वकालमें जब महादेवजीने दक्ष प्रजापतिका यज्ञ विध्वंसकर डाला; क्योंकि उसमें महादेवजीको यज्ञ-भाग नहीं मिला था। तब लीलाक्रमसे शिवजीने क्रोधमें यही धनुष उठा देवताओंसे कहा था, हे देवों! यतः (चूँकि) तुम लोगोंने मुझ भागार्थीको यज्ञ-लाभ नहीं दिया, अतः मैं इस धनुषसे तुम सबके सिरों को काटे डालता हूँ। हे मुनिप्रवर! शिवजीका यह वचन सुन, देवता लोग बहुत उदास होगए और किसी न किसी तरह शिवजीको मनाकर प्रसन्न किया। तब प्रसन्न होकर महादेवजीने यह धनुष देवताओंको दे दिया, और देवताओंने उस धनुषरत्नको धरोहरकी तरह देवरातको दे दिया, सो यह वही धनुष है। एक समय यज्ञ करनेके लिए मैं हलसे खेत जोत रहा था, उस समय हलकी नोकसे एक कन्या भूमिसे निकली जो अपने जन्मके कारण सीता के नामसे प्रसिद्ध है और मेरी पुत्री कहलाती है। पृथ्वीसे निकली हुई वह कन्या दिनों दिन मेरे यहाँ बड़ी होने लगी। उस अयोनिजा कन्याके विवाहके लिए मैंने पराक्रमही शुल्क समझा। पृथ्वीसे निकली हुई वह मेरी कन्या जब धीरे-धीरे बड़ी होने लगी तब, हे मुनिश्रेष्ठ! मेरी उस कन्याके साथ अपना विवाह करनेके लिए अनेक देशोंके राजा आए। सीताके साथ विवाह करनेकी इच्छा करनेवाले उन सब राजाओंसे कहा गया कि, वह कन्या 'वीर्यशुल्का' है। अतः मैं वरके पराक्रमको परीक्षा किए बिना अपनी कन्या किसीको नहीं दूँगा। तब तो हे मुनिश्रेष्ठ! सब राजा लोग इकट्ठे हो अपने पराक्रमकी परीक्षा देनेको मिथिलापुरीमें आए। उनके बलकी परीक्षा लेनेके लिए मैंने यह धनुष उनके सामने रोदा चढ़ानेके लिए रखा था। उनमेंसे कोई भी राजा उस धनुषको उठाकर उसपर रोदा न चढ़ा सका, तब उन राजाओंको अल्पवीर्य समझ मैंने उनमेंसे किसीको अपनी कन्या न दी। हे मुनिराज! यह बात आपभी जान

लें। जब मैंने अपनी कन्याका विवाह उनमेंसे किसीसे न किया तब उन लोगोंने क्रुद्ध हो मिथिलापुरीको घेर ली। क्योंकि धनुष द्वारा बलकी परीक्षा देनेमें उन्होंने अपना अपमान समझा। उन लोगोंने अत्यन्त क्रुद्ध हो मिथिला वासियोंको बड़े-बड़े कष्ट दिए। एक वर्ष तक लड़ाई होनेसे मेरा धनभी बहुत नष्ट हुआ। इसका मुझे बड़ा दुःख हुआ। तब मैंने तप द्वारा देवताओंको प्रसन्न किया। देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर मुझे चतुरङ्गिणी सेना दी। तब तो वे हतोत्साह राजा पराजित हो भाग गए। भीरु और वीरताकी झूठी डींगे मारनेवाले वे राजा अपने मन्त्रियों सहित भाग गए। हे मुनिश्रेष्ठ! यह वही दिव्य धनुष है। हे सुव्रत! मैं इसे श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणको भी दिखलाऊँगा और यदि श्रीरामचन्द्रजीने धनुष पर रोदा चढ़ा दिया, तो मैं अपनी अयोनिजा सीता उनको ब्याह दूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा प्रथम बालकाण्ड का छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

सरसठवाँ सर्ग

राजा जनककी बातें सुनकर, महर्षि विश्वामित्रने राजा जनकसे कहा—हे राजन्! वह धनुष रामचन्द्रजीको दिखलाइए तो। तब राजा जनकने अपने मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि, जो दिव्य धनुष चंदन और पुष्पमालाओंसे भूषित है, उसे ले आओ। राजा जनककी आज्ञा पाकर मंत्रीलोग मिथिलापुरीमें गए और उस धनुषको आगेकर चले। पाँच हजार मजबूत मनुष्य, धनुषकी आठ पहियेकी पेटीको कठिनतासे खींच और ढकेलकर वहाँ ला सके। जिस पेटीमें धनुष रखा था वह लोहेकी थी—उसे लाकर, मन्त्रियोंने महाराज जनकको सूचना दी। मन्त्री बोले—हे राजन्! यह वही धनुष है, जिसकी पूजा सब राजा कर चुके हैं। हे मिथिलाके अधीश्वर! हे राजेन्द्र! अब आप जिसे चाहें उसे इसे दिखाइये। मन्त्रियोंकी बात सुन राजाने हाथ जोड़, महात्मा विश्वामित्र और राम-लक्ष्मणसे कहा—हे ब्राह्मण! यह श्रेष्ठ धनुष वही है, जिसका पूजन सब निमि वंशीय राजा करते चले आते हैं और यह वही धनुष है जिसपर बड़े-बड़े पराक्रमी राजा लोग रोदा नहीं चढ़ा सके। समस्त देवता, असुर, राक्षस, गंधर्व, यक्ष, किन्नर और नाग भी जब इस धनुषको उठा और झुकाकर इसपर रोदा नहीं चढ़ा सके, तब बपुरे मनुष्यकी तो बात

ही क्या है, जो इस धनुषको उठाकर और झुकाकर, इसपर रोदा चढ़ा सके। हे ऋषिश्रेष्ठ! वह श्रेष्ठ धनुष आ गया है। हे महाभाग! उसे इन राजकुमारोंको दिखाइये। राजा जनककी बातें सुन विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—हे वत्स! इस धनुषको देखो। महर्षिके ये वचन सुन, श्रीरामचन्द्रजी वहाँ गये जहाँ धनुषको रखा था और उस पेटीको, जिसमें वह धनुष था, खोलकर, धनुष देखा और बोले—हे ब्रह्मन्! अब इस धनुषको मैं हाथ लगाता हूँ और इसे उठाकर इसपर रोदा चढ़ानेका प्रयत्न करता हूँ। राजा जनक और विश्वामित्रने उनकी बात अंगीकार करते हुए कहा—"बहुत अच्छा"। मुनिके वचन सुन श्रीरामचन्द्रजींने बिना प्रयास धनुषको बीचसे पकड़ उसे उठा लिया। और हजारों मनुष्योंके सामने धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने बिना प्रयास उसपर रोंदा भी चढ़ा दिया और ज्यों ही रोंदेको खींचा, त्योंही वह धनुष बीचसे टूट गया अर्थात् उस धनुषके दो टुकड़े हो गये। उसके टूटनेका शब्द वज्रघातके समान हुआ। बड़े जोरसे भूमि हिल गई और बड़े-बड़े पहाड़ फट गये। धनुषके टूटनेके विकराल शब्दके होनेपर, विश्वामित्र, राजा जनक और दोनों राजकुमारोंको छोड़, सब लोग मूर्छित हो गिर पड़े। सब लोगोंकी मूर्छा भंग हुई। वे सचेत हुए तथा राजा जनकके सब सन्देह दूर हो गये। तब राजा जनक हाथ जोड़, चतुर विश्वामित्रसे कहने लगे—हे भगवन्! मैंने महाराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीका पराक्रम देखा। मेरी पुत्री सीता, श्रीरामचन्द्रजीको अपना पति बनाकर, मेरे वंशकी कीर्ति फैलायेगी। हे कौशिक! मैंने सीताके विवाहके लिये "वीर्यशुल्क" की जो प्रतिज्ञा की थी, वह आज पूरी हो गई। आज मैं अपनी प्राणोंसे भी प्यारी सीता श्रीरामको दूँगा। हे ब्रह्मन्! हे कौशिक! यदि सम्मति हो तो, मेरे मन्त्री रथपर सवार हो, शीघ्र अयोध्याको जाँय और महाराज दशरथको नम्रतापूर्वक यहाँका सारा हाल सुनाकर यहाँ लिवा लावें और महाराजको आपके यहाँ स्थित दोनों राजकुमारोंका कुशल समाचार भी सुनायें। इस प्रकार महाराजको प्रसन्न कर, उन्हें अति शीघ्र यहाँ बुला लावें। इसपर जब विश्वामित्रने कहा कि, बहुत अच्छी बात है, तब राजाने मन्त्रियोंको समझाकर और महाराज दशरथके नामका कुशलपत्र उन्हें दे, अयोध्याको रवाना किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्डका सरसठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

राजा जनककी आज्ञा पा, वे दूत शीघ्रगामी रथोंपर सवार हो और मार्गमें तीन रात्रि व्यतीत कर, अयोध्यामें पहुँचे। उस समय उनके रथके घोड़े थक गए थे और राजभवनकी ड्योढ़ीपर जाकर, द्वारपालोंसे यह बोले कि, जाकर तुरन्त महाराजसे निवेदन करो कि, हम राजा जनकके दूत आपके दर्शन करना चाहते हैं। दूतोंके ऐसा करनेपर उन द्वारपालोंने जाकर महाराज दशरथसे निवेदन किया। तब महाराज दशरथकी आज्ञासे राजा जनकके दूत राजभवनके भीतर गये। वहाँ जाकर उन लोगोंने देवोपम वृद्ध महाराज दशरथके दर्शन किए और उनके सौजन्यको देख, निर्भय हो, तथा हाथ जोड़कर, बड़ी नम्रतासे यह मधुर वचन कहे—महाराज! मिथिलापुरीके स्वामी, महायज्ञशाली राजा जनकने बारम्बार मधुर और स्नेहयुक्त वाणी तथा शान्त मनसे आपकी और आपके पुरवासियोंकी कुशल-क्षेम पूछी है और विश्वामित्रजीकी अनुमतिसे आपको यह सन्देश भेजा है कि, श्रीमान्को तो यह ज्ञात ही है कि, मेरी पुत्री वीर्यशुल्का है। उसके लिए अनेक राजा हतोत्साह हो, विमुख हुए। उस मेरी कन्याको विश्वामित्रके साथ मेरे सौभाग्यसे आकर श्रीमान्के कुँवरने आकर जीत लिया है। क्योंकि धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने एक बड़ी सभाके बीच उस दिन धनुषको बीचोबीचसे तोड़ा है। अतः मैं अपनी वीर्यशुल्का सीताका विवाह श्रीरामचन्द्रजीके साथ करना चाहता हूँ। जिसमें मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरीकर सकूँ। आप इस सम्बन्धके विषयमें मुझे आज्ञा दे। हे महाराज! आप उपाध्याय और पुरोहितों सहित, शीघ्र यहाँ पधारकर अपने राजकुमारोंको देखिए और हे राजेन्द्र! मेरी प्रीतिको निबाहिये। यहाँ पधारकर दोनों राजकुमारोंके विवाहकी शोभा देख प्रसन्न होइये। हे महाराज! यह शुभ सन्देश महाराज जनकने महर्षि विश्वामित्र और अपने पुरोहित शतानन्दजीकी अनुमतिसे आपकी सेवामें निवेदन करनेको कहा है। इतना कह और दशरथके प्रभावमें आ, दूत शान्त हो गये। उन दूतोंकी बातोंको सुन, महाराज दशरथ अत्यन्त प्रसन्न हुए और वशिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मन्त्रियोंसे कहने लगे—विश्वामित्रसे रक्षित, कौशल्याके

आनन्दको बढ़ानेवाले लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजीका पराक्रम राजा जन
भलीभाँति देख चुके हैं और अब वे अपनी कन्याका विवाह श्रीरामचन्द्रजी
साथ करना चाहते हैं। यदि इसे आपलोग पसन्द करें, तो हम लोगों
मिथिलापुरीके लिए शीघ्र प्रस्थान कराना चाहिये, जिससे वहाँ पहुँचनेमें विलं
न हो। महाराजका वचन सुन; सब उपस्थित ऋषियों और मन्त्रियोंने कहा
"यह तो बहुतही अच्छी बात है।" तब महाराजने प्रसन्न होकर, मन्त्रियों
कहा—"तो कल ही यहाँसे चल देना चाहिए।" राजा जनकके मन्त्रियोंकी
जो दूत बनकर अयोध्या गए थे, आवभगत की गई और उन लोगोंने
सुखसे रात्रि व्यतीत की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

महाराज दशरथका बरात सहित जनकपुर-गमन और प्रवेश तथा जनककी भेंट।

रात्रि व्यतीतकर महाराज दशरथने उपाध्याय और बन्धु-बांधवों सहित
प्रसन्न हो अपने मुख्य मन्त्री सुमन्तसे कहा—आज सब कोषाध्यक्षगण
बहुत-सा धन और भाँति-भाँतिके रत्न साथ लेकर चलें। सबका उचित प्रबं
रहे। मेरी समस्त चतुरङ्गिणी सेना शीघ्र ही तैयार हो और जिसके साथ र
और पालकियाँ भी तैयार हों। मेरी इस आज्ञामें अन्तर न पड़े। वशि
वामदेव, जावालि, कश्यप, दीर्घायु, मार्कण्डेय और कात्यायन ब्राह्मण,
सभी ब्राह्मण आगे चलें। मेरा भी रथ शीघ्र तैयार हो। देखो, राजा जनक
दूत बड़ी शीघ्रता कर रहे हैं। फिर तो ऋषियों सहित महाराज दशरथ
प्रस्थान करते ही उनकी चतुरङ्गिणी उनके पीछे हुई और मार्गमें चार दि
व्यतीत कर महाराज दशरथ जनकपुरमें जा पहुँचे। उनका आगमन सु
राजा जनक बड़े सज्जित-साजसे उनके आगे जा मिले तथा अगमानी की। वृ
महाराज दशरथसे मिलकर जनकजीको बड़ा ही आनन्द आया। तब न
श्रेष्ठ जनक, नर-श्रेष्ठ दशरथजीसे बोले—महाराज! मैं आपका स्वागत करत
हूँ। आज मेरे बड़े भाग्य हैं जो आप पधारे हैं। आपके दोनों पुत्र बड़े
पराक्रमी हैं। इन्हें देखकर तो आप और ही प्रसन्न होंगे। यह भी बड़े सौभाग
की बात है कि महान् तेजस्वी भगवान् वशिष्ठ ऋषि सब ऋषियोंके सा

देवताओं सहित इन्द्रकी नाईं यहाँ पधारे हैं। सौभाग्यकी बात है कि, अब कन्यादानके समस्त विघ्न नष्ट हो गए हैं, और मेरा यह प्रतिष्ठित कुल वीर-श्रेष्ठ महात्मा रघुवंशियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे प्रतिष्ठित हो गया। हे नरेन्द्र! आप कल प्रातःकाल अवभृत-स्नान (यज्ञका अन्तिम-स्नान) हो चुकनेपर, ऋषियोंकी सम्मतिसे विवाहचारकी रीति करावें। तब ऋषियोंके मध्यमें बैठे हुए वाक्यकोविद महाराज दशरथ राजा जनकसे बोले—'हमने तो पहलेहीसे यह सुना है कि, दान दान देनेवालेके अधीन है। इसलिए हे धर्मज्ञ! आप जैसा कहेंगे, हमलोग वैसाही करेंगे।' तब सत्यवादी महाराज दशरथके ऐसे धर्मयुक्त और यशोवर्द्धक वचन सुन राजा जनकको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर ऋषियोंने भी परस्पर मिलकर भेंट की। बड़ी प्रसन्नतासे सबने वह रात्रि व्यतीत की। महाराज दशरथभी अपने पुत्रों (श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण) को देख, परम प्रसन्न हुए और राजा जनकके स्वागतसे सुखपूर्वक वहाँ वास किया। राजा जनकने भी, यज्ञ और विवाहकी रीति-भाँतिकर विश्राम किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥६९॥

सत्तरवाँ सर्ग

राजाजनकका अपने भाई कुशध्वजको बुलवाना तथा उनके आनेपर उनकी कन्याओंको विवाहके लिए माँगना और वशिष्ठजी द्वारा दशरथ-वंशावलिवर्णन

प्रातःकाल ऋषियोंकी सहायतासे यज्ञादिक क्रिया समाप्तकर राजाजनक अपने पुरोहित शतानन्दसे बोले—देखो, मेरे लघु भ्राता कुशध्वज जो बड़ेही तेजस्वी, महाबलवान् और बड़ेही धार्मिक हैं उन्हें सांकाश्यपुरीसे शीघ्र बुलाना चाहिए। वह साङ्काश्या नामकी पुरी बड़ीही पवित्र है जिसकी रक्षार्थ उसके चारो ओर खाईं है और जिसमें भाँति-भाँतिके यन्त्र लगे हैं; जिसके समीपहीमें इक्षु नदी बहती है और जो पुष्पक विमानके आकारकी बनी है। मैं अपने उसी प्रिय भाईको देखना चाहता हूँ। वह भी इस विवाहोत्सवमें सम्मिलित हो आनन्द उठावें। इसप्रकार राजाजनक शतानन्दसे कह ही रही थे कि, इसी समय वहाँ कुछ सामर्थ्यशाली दूत आ गये। राजाजनकने उन्हें जानेकी आज्ञा दी। वे दूत राजा जनककी आज्ञासे शीघ्रगामी घोड़ोंपर सवार हो शीघ्रही

सांकाश्यपुरीमें पहुँच राजा कुशध्वजसे मिले। महाराज जनकका सन्दे
निवेदन किया। तब उन दूतों द्वारा राजाजनकका सन्देश सुन, उनकी आज्ञा
नुसार राजाकुशध्वज जनकपुरीमें आ गये। जनकपुरीमें पहुँच कुशध्व
धर्मवत्सल महात्मा जनकसे मिले। शतानन्दजी सहित अत्यन्त धर्मिष्ठ जन
कजीको प्रणाम किया। फिर राजाओंके बैठने योग्य आसनोंपर बैठे। जब
दोनों भाई आसनपर बैठे, तब उन्होंने मन्त्रिप्रवर सुदामा नामक अपने मंत्रीक
महाराज दशरथके पास राजकुमारों और मन्त्रियों सहित उन्हें बुलानेके लि
भेजा। वह महाराज दशरथके उस स्थानमें गया जहाँ वह अपने डेरे तंबुओं
ठहरे थे, तब वहाँ जाकर प्रणामकर बोला—'हे वीर अयोध्याधिपति! मिथि
लाधीश विदेह राजकुमारों, उपाध्याय और पुरोहित सहित आपके दर्श
करना चाहते हैं।' तब उस श्रेष्ठ मन्त्रीके यह बचन सुन ऋषियों और ब
बान्धवों सहित महाराज दशरथ वहाँ गए जहाँ राजाजनक अपने पुरोहि
बान्धवों और मन्त्रियों सहित बैठे थे। तब वाक्य-विशारद महाराज दशर
राजाजनकसे बोले—हे विदेहराज! आप तो जानते ही हैं कि, ये महारा
वशिष्ठजीही इक्ष्वाकुकुलके देवता हैं जिन्हें मेरी ओरसे बोलनेका अधिका
प्राप्त है। अतः विश्वामित्रजीकी तथा अन्य महर्षियोंकी सलाहसे धर्मा
वशिष्ठजीही हमारी गोत्रावली यथाक्रम आपको सुनावेंगे। यह कह जब मह
राज दशरथ तूष्णी (चुप) हुए, तब भगवान् वशिष्ठ ऋषि, राजाजनक त
उनके पुरोहित (शतानन्दजी) को सम्बोधनकर बोले—हे राजन्! अव्य
ब्रम्हसे शाश्वत, नित्य और अव्यय ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। फिर उनके मरी
मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे वैवस्वत मनु हुए जो प्रथम प्र
पति कहलाए। फिर मनुसे इक्ष्वाकु हुए, जो अयोध्याके प्रथम राजा थे। त
उन इक्ष्वाकुके पुत्र कुक्षि, कुक्षिके विकुक्षि, विकुक्षिके प्रतापी बाण, उनके अ
रण्य, उनके पृथु, उनके त्रिशंकु, उनके धुन्धुमार, उनके महाबली युवना
युवनाश्वके पृथ्वीपति मान्धाता, उनके सुसन्धि और इन सुसन्धिके ध्रुवसं
तथा प्रसेनजित ये दो पुत्र हुए, तब यशस्वी ध्रुवसन्धिके भरत और भरत
महातेजस्वी असित उत्पन्न हुए। तब इन असितके हैहय, तालजंघ औ

शशिविन्दु ये तीन पुत्र हुए। ये तीनों ही बड़े वीर थे। किन्तु इन्होंने अपने पिता असितसे बैर बाँध लिया जिससे असितको युद्धमें परास्तकर उन्हें राज्य से बंचित कर दिया। राजा असित अपनी दोनों रानियों सहित हिमालयपर चले गए और वहीं मृत्युको प्राप्त हुए। परन्तु उस समय उनकी दोनों रानियाँ गर्भवती थीं। तब उनमें एकने अपनी सौतका गर्भ नष्ट करनेके लिए उसे विष दे दिया। उस समय भृगुवंशी च्यवन ऋषि हिमालयपर तप कर रहे थे। तब वह विष-प्राप्त रानी कालीकी देववर्चस च्यवनके पास जा, उत्तम पुत्र होनेकी इच्छासे, मुनिकी वन्दना करती हुई जो उनके सामने बैठ गई, तो मुनिने उस रानीसे कहा कि, हे महाभागे! तेरी कुक्षिमें तो एक उत्तम, महायशस्वी, महाबली और महातेजस्वी बालक है, यह विष सहित शीघ्रही उत्पन्न होगा। हे कमलेक्षणे! तू कुछभी चिन्ता न कर। तब उस पतिव्रता एवं पतिके शोकसे आतुर राजपुत्रीने च्यवनको प्रणाम किया। च्यवनने आशीर्वाद दिया। उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब जो उसकी सौतने उसका गर्भ नष्ट करनेके लिए उसे विष दिया था, उस विषके साथ पुत्रके उत्पन्न होनेके कारण उस बालकका नाम सगर पड़ा। फिर उस सगरके असमंजस, असमंजसके अंशुमान, अंशुमानके दिलीप और दिलीपके भगीरथ हुए। फिर भगीरथके ककुत्स्थ, ककुत्स्थके रघु और रघुके तेजस्वी किन्तु नरमांसभोजी अर्थात् राक्षस पुत्र 'प्रवृद्ध' हुआ जो आगे चलकर यही कल्माष नामसे कहा गया। तब इस कल्माषके शंखण, शंखणके सुदर्शन, सुदर्शनके अग्निवर्ण, अग्निवर्णके शीघ्रग, उनके मरु, मरुके प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुकके अम्बरीष हुए। अम्बरीषके सत्य पराक्रमी नहुष, और नहुषके ययाति और यतातिके नाभाग हुए। फिर इन्हीं नाभागके पुत्र अज और अजके पुत्र ये महाराज दशरथ और इन दशरथजीके ये दोनों भाई श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण हैं। यह इक्ष्वाकुवंशके सत्यवादी राजाओंका वर्णन मैंने आपको सुनाया जो बड़ाही विशुद्ध, धर्मनिष्ठ और सत्यवादी हैं। ये महाराजा दशरथ आपकी कन्याओंको अपने पुत्रोंके लिए माँगते हैं जो सब प्रकार योग्य हैं। अतः आप इनको अपनी श्रेष्ठ कन्याएँ दे दीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्ड का सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७०॥

एकहत्तरवाँ सर्ग

जनक-मुखसे उनके वंशका परिचय और श्रीराम-लक्ष्मणको सीता और उर्मिलाके देनेकी उनकी प्रतिज्ञा

जब यह कहकर वशिष्ठजी चुप हो गए, तब उनको हाथ जोड़कर राजा जनक उनसे इस प्रकार बोले—हे महर्षे! आपका मङ्गल हो। अब मेरे कुलकी परम्परा सुनिए। क्योंकि कन्यादानके समय कुलीनको अपने कुलका आद्यन्त अथवा समस्त परम्परा अवश्य बतलानी चाहिए। इसलिए हे महर्षे आप सुनिए। हमारे कुलमें अपने सुकर्मोंद्वारा त्रयलोक्य प्रसिद्ध, सत्यवादी और सब राजाओंमें श्रेष्ठ निमि नामके एक राजा हुए हैं। जिन निमिके मिथि और मिथिके जनक हुए। इन्हीं जनकके नामसे इश वंशके सभी राजा जनक कहलाते हैं। तब इन आदि जनकके उदावसु और उदावसुके धर्मात्मा नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धनके सुकेतु, सुकेतुके महाबली धर्मात्मा देवरात और देवरातके राजर्षि बृहद्रथ हुए। फिर बृहद्रथके बड़े शूरवीर और प्रतापी महावीर, महावीरके धृतिमान और धृतिमानके सत्य पराक्रमी सुधृति हुए। फिर सुधृतिके धर्मात्मा धृष्टकेतु और धृष्टकेतुके राजर्षि हर्यश्वके मरु, मरुके प्रतिवन्धक और प्रतिबन्धकके धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ हुए। फिर कीर्तिरथके देवमीढ़, देवमीढ़के विबुध और विबुधके महीध्रक, उनके कीर्तिरात, उनके राजर्षि महारोमा, महारोमाके धर्मात्मा स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमाके राजर्षि ह्रस्वरोमा हुए। फिर इन धर्मज्ञ ह्रस्वरोमाको दो पुत्र हुए, जिनमें श्रेष्ठ मैं हूँ और दूसरे मेरे यह वीर छोटे भाई कुशध्वज हैं। हमारे पिता मुझ ज्येष्ठ पुत्रको राज्य सौंपा तथा कुशध्वजको मेरे पास रख वनको चले गए और जब मेरे वृद्ध पिताजी स्वर्गवासी हुए, तब मैं धर्मपूर्वक राज्य करने लगा और देवताके समान अपने छोटे भाईको स्नेहपूर्वक पालने लगा। कुछ काल पश्चात् साँकाश्यामपुरीके विक्रमी राजा सुधन्वाने मिथिलाको आ घेरा, जिसने मेरे पास यह कहलाया कि शिवधनुष और पद्माक्षी सीताको मुझे दे दो। हे महर्षे! इस बातको मैंने स्वीकार न किया। इससे मेरे साथ उसने घोर युद्ध किया। मैंने इस युद्धमें सुधन्वाको मार डाला। सुधन्वाको मार मैंने साँकाश्यामपुरीके सिंहासन पर अपने वीर भाई इन कुशध्वजको बिठा दिया। हे महर्षे! यह मेरे छोटे भाई कुशध्वज हैं। मैं इनका बड़ा भाई हूँ। हे मुनिपुङ्गव! मैं परमप्रीति

साथ आपको दो वधुएँ देता हूँ, जिनमें वीर्यशुल्का सीता जो देवकन्याके समान हैं उसे तो रामचन्द्रके लिए और दूसरी उर्मिला लक्ष्मणजीके लिए त्रिवाचा भरकर देता हूँ। अब इस बातमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अब आप दोनों राजकुमारोंसे गोदान कराइए। हे राजन्! आपका मङ्गल हो। तदनन्तर आप नान्दीमुख श्राद्ध करवाकर, विवाह सम्बन्धी विधि करवाइए। हे महाबाहो! आज मघा नक्षत्र है। आजके तीसरे दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र आवेगा, जिस नक्षत्रमें विवाह होना चाहिए। हे राजन्! श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणके लिए दान-कार्य कीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा प्रथम बालकाण्ड का एकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

वशिष्ठजीकी आज्ञासे विश्वामित्रजीका कुशध्वजकी कन्याओंको भरत और शत्रुघ्नके लिए माँगना और जनकजीका देना स्वीकार कर, अगले दिन विवाह करनेका निश्चयकर महाराज दशरथजीका जनवासेमें जाना और वहाँ गोदानादि करना।

जब जनकजीने इस प्रकार कहा, तब वशिष्ठजीके अभिप्रायानुसार महामुनि विश्वामित्रजीने राजाजनकसे कहा—हे राजन्! इक्ष्वाकु और विदेह—दोनोंही वंशोंकी वंशपरम्परायें विस्मयोत्पादनी हैं और इनकी महिमा असीम है। इनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई कुलही नहीं है। श्रीरामचन्द्र और सीता तथा लक्ष्मण एवं उर्मिलाका धर्म संबंध अर्थात् वैवाहिक संबंध बराबर का है। क्योंकि वर-वधू दोनोंही क्या रूप और क्या सम्पत्ति—सब बातोंमें समान हैं। हे राजन्! यह होनेपर भी मुझे इसपर कुछ वक्तव्य है, उसे सुनिये। आपके यह छोटे और धर्मज्ञ भाई जो कुशध्वज हैं, इन धर्मात्माकी दो कन्याओंको, जो इस संसारमें अपने सौंदर्यमें श्रेष्ठ हैं, बहू बनानेके लिए मैं माँगता हूँ। अर्थात् हे राजन्! एक कन्या बुद्धिमान् राजकुमार भरतके लिए और एक शत्रुघ्नके लिए माँगते हैं। महाराज दशरथके चारों राजकुमार रूपवान्, यौवनशाली, लोकपालोंके समान अथवा देवतुल्य पराक्रमी हैं। सो हे राजन्! इन दोनों राजकुमारोंका भी संबंध कीजिए। इक्ष्वाकु कुल निर्दोष है और आपभी पुण्यात्मा हैं। विश्वामित्रजीके ये वचन सुन और वशिष्ठजीकी सम्मति जान,

महाराज जनक हाथ जोड़कर दोनों महर्षियोंसे बोले—मेरा कुल धन्य है, जो आप दोनों महर्षियोंने स्वयं इस कुल-संबंधको समान बतलाया है। आप जो आज्ञा देंगे, वही होगा। आपका मंगल हो, कुशध्वजकी कन्याओंका विवाह भरत और शत्रुघ्नके साथ कर दिया जाएगा। हे मुनि! एकही दिन महाराज दशरथके चारों महाबली राजकुमार इन चारोंका पाणिग्रहण करें अर्थात् चारों का विवाह एकही दिन हो। हे ब्रह्मन्! कल उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है। पंडितों का मत है कि, इस नक्षत्रमें विवाह होना उत्तम है। क्योंकि इस नक्षत्रका प्रजापति भगदेवता है। यह कहकर राजाजनक खड़े हो गए और हाथ जोड़ कर दोनों मुनियोंसे बोले—आप दोनोंके अनुग्रहसे मुझे यह कन्यादानरूप धर्म प्राप्त हुआ। मैं सदा आप दोनोंका दास हूँ। आप दोनों इन मुख्य आसनोंपर विराजिए। प्रभुत्वमें जैसे जनकपुरी महाराज दशरथकी है, वैसेही अयोध्यापुरी मेरी है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अतएव आपको जो उचित जान पड़े सो कीजिए। जब जनकने ये वचन महाराज दशरथ से कहे, तब उन्होंने प्रसन्न होकर, जनकसे कहा—हे मिथिलेश्वर! आप दोनों भाइयोंमें असंख्यगुण हैं। आपने ऋषियों और राजाओंका अच्छा सत्कार किया है। फिर महाराज दशरथने कहा कि, मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ कि, आपका कल्याण हो। अब मैं स्वस्थानपर जाकर विधिपूर्वक नान्दीमुख आदि सब श्राद्धकर्म करता हूँ। इस प्रकार राजाजनकसे विदा हो महाराज दशरथ दोनों मुनियोंको आगेकर, तुरन्त चल दिए। अपने स्थानपर जाकर महाराज दशरथने विधिसे श्राद्ध किया और अगले दिन प्रातःकाल होते ही गोदानादि किए। महाराज दशरथने अपने राजकुमारोंकी मंगल कामनाके लिए एक-एक लाख गौएँ, एक-एक ब्राह्मणको दीं। उन गौओंके सींग सोनेके पत्रोंसे मढ़े हुए थे, दुधार थीं, उनके साथ बछड़े थे। प्रत्येक गौ के साथ काँसेका दूध दुहनेका पात्र था। इस प्रकार चारलाख गौएँ महाराजने दीं। पुत्रवत्सल राजाने पुत्रोंके कल्याणके लिए बहुत सा धन गोदानके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दिया। पुत्रों सहित गोदानकर महाराज दशरथ ऐसे शोभित हुए जैसे लोकपालों सहित ब्रह्माजी शोभित होते हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

राम-विवाह वर्णन ।

जिस दिन महाराज दशरथने उत्तम गोदान किए, उसी दिन युधाजित्जी भी जनकपुर पहुँचे। केकय देशके राजाके पुत्र, भरतजीके साक्षात् मामाने महाराज दशरथजीसे मिलकर, कुशल क्षेम पूछी और यह बोले—हे महाराज! केकय देशाधिपतिने बड़ी प्रीतिके साथ अपना कुशल कहा है और कहा है कि आप जिनलोगोंकी कुशल चाहते हैं वे सब कुशली हैं। हे राजेन्द्र! हमारे पिताको भरतजीके देखनेकी इच्छा है। सो इसीलिए प्रथम अयोध्या गया। जब मैंने वहाँ सुना कि, आप राजकुमारोंका विवाह करनेके लिए उनको लेकर मिथिलापुरी पधारे हैं, तब मैं तुरन्त अपने भांजेको देखनेके लिए यहाँ चला आया हूँ। महाराज दशरथने अपने नातेदार सालेको आया हुआ देख, उस सत्कार करने योग्य नातेदारका अच्छी तरह सत्कार किया और अपने राजकुमारों सहित रात्रिको सुखपूर्वक विश्राम किया। अगले दिन प्रातःकाल होते ही महाराज दशरथ नित्य कर्मकर, ऋषियों सहित यज्ञशालामें गए। विजय मुहूर्त्तमें वशिष्ठादि सब ऋषियों सहित सुन्दर वस्त्रों और आभूषणोंसे सुसज्जित भाइयों के साथ श्रीरामचन्द्रजीको विवाहके मंगलाचारकी रीति कराकर, वशिष्ठजी राजा जनकसे बोले—हे राजन्! महाराज दशरथ अपने राजकुमारोंसे आरम्भिक मंगल कृत्य करवा चुके। हे नरवर श्रेष्ठ! अब वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्योंकि दानदाता और दान लेनेवाला, जब दोनों तत्पर हों, तभी काम होता है। अतः आप भी वैवाहिक मंगल कार्य करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए। जब महात्मा वशिष्ठजीने परमदाता राजा जनकसे यह कहा, तब परम धर्मात्मा राजा जनकजी बोले—महाराज दशरथको क्या किसी मेरे दरवानने रोका है? महाराज किसकी परवानगीकी प्रतीक्षाकर रहे हैं? अपने घरके अन्दर आनेमें भी क्या कोई रुकावट होती है? हमारी तो सब कन्याएँ मंगलाचार किए हुए वेदीके समीप बैठी हुई हैं, वे सब अग्निशिखाके समान देदीप्यमान हैं। मैं स्वयं यहाँ वेदीके पास बैठा हुआ आप लोगोंकी बाट जोह रहा हूँ। सो अब विलम्ब किस बातका है? महाराजसे कहिए कि, सब कार्य अब शीघ्र निर्विघ्न होने

चाहिए। वशिष्ठजीके द्वारा राजा जनकका यह संदेशा पा, महाराज दशरथने राजकुमारों और ऋषियों सहित विवाहमण्डपमें प्रवेश किया। तदनन्तर राजा जनकने वशिष्ठजीसे कहा कि, हे ऋषे! आप अन्य ऋषियों सहित लोकाभिराम श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी विधि करवाइए। यह सुन और जनकजीसे "बहुत अच्छा कराते हैं" कहकर, भगवान् वशिष्ठजीने विश्वामित्र और धर्मात्मा शतानन्दको आगेकर, विवाह मण्डपके बीचमें अग्नि स्थापन करनेके लिए विधिवत् वेदी बनाई। फिर उस वेदीको चारों ओर गंध पुष्पादिसे सजाया और सुवर्ण शलाकाओंसे शुद्ध करवा एवं दूर्वाङ्कुरादिसे शोभित किया। दूर्वाङ्कुर, सहत और दूधसे भरकर बहुतसे पात्र रखे। अर्घ्यका सामान भरकर पात्र भी स्थापित किए। स्रुवादि वा अर्घ्यपात्र भी शंखाकार रखे। बहुतसे पात्रोंमें धानकी खीलें (लावा) और जलसे धुलाकर अक्षत भरवाकर रखाये और मंत्र पढ़कर विधिपूर्वक बराबर-बराबरके कुश बिछवाये। तदनन्तर विधिवत् और मंत्र पढ़कर, वेदीपर अग्नि स्थापन किया और महातेजस्वी भगवान् वशिष्ठ ऋषि, उस अग्निमें आहुति देने लगे। फिर सीताजीको सब गहने पहनाकर वेदीके निकट, श्रीरामचन्द्रजीके सामने बैठाया। राजा जनकने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—हे राम! यह मेरी कन्या सीता, आजसे आपकी सहधर्म चारिणी हुई। इसे आप लीजिए और अपने हाथसे इसका हाथ पकड़िए। यह महाभागा पतिव्रता सदा छायाकी तरह आपकी अनुगामिनी बनी रहेगी। आप दोनोंका मंगल हो। यह कहकर राजा जनकने मंत्रों द्वारा पवित्र किया हुआ जल दोनोंपर छिड़का। उस समय देवता और ब्रह्मर्षिगण "साधु-साधु" कहने लगे। देवताओंने नगाड़े बजाए और बड़ी भारी पुष्पोंकी वर्षा की। इस प्रकार सीताका श्रीरामचन्द्रजीके साथ विवाह करके राजा जनक अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—हे लक्ष्मण! तुम्हारा मंगल हो। तुम भी शीघ्र आकर मेरी पुत्री उर्मिलाको ग्रहण करो और अपने हाथसे इसका हाथ पकड़ो। विलम्ब मत करो। फिर राजा जनकने भरतसे कहा—हे भरत! तुम माण्डवीका पाणिग्रहण करो। तदनन्तर राजा जनकने शत्रुघ्नसे कहा—हे शत्रुघ्न! तुम श्रुतिकीर्तिका हाथ अपने हाथसे पकड़ो। तुम सबके सब जैसे सौम्य स्वभाव और

सुचरित्र हो, वैसे ही तुम्हें तुम्हारी पत्नियाँ भी मिली हैं। इन्हें अंगीकार करो, जिससे काल न वीत जाय। अर्थात् विवाहकी लग्न न निकल जाय। राजा जनकके इस प्रकार कहनेपर चारों राजकुमारोंने चारों राजकुमारियोंके हाथ पकड़े और वशिष्ठजीकी आज्ञासे पत्नियों सहित, अग्निवेदी पर राजा जनक ब्रह्मर्षियोंकी परम्परा करके विधिपूर्वक वैवाहिक कर्म किए। इस प्रकार चारों ककुत्स्थनन्दनों द्वारा उन राजकुमारियोंके सुन्दर हाथोंके पकड़े जानेपर अर्थात् पाणिग्रहण हो चुकनेपर, आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई। देवताओंने नगाड़े बजाए। अप्सरायें नार्ची और गन्धर्वोंने गीत गाए। दशरथनन्दनोंके विवाहमें ये विस्मयोत्पादक कौतुक देख पड़े। इस प्रकार वाद्य बजते हुए तीन-तीन बार तीनों अग्नियोंकी प्रदक्षिणा कर, राजकुमारोंने अपनी पत्नियोंको ग्रहण किया। तदनन्तर सब राजकुमार अपनी पत्नियों सहित जनवासेको सिधारे। महाराज जनक भी ऋषियों और बन्धु-बान्धवों सहित विवाह का कौतुक देखते हुए जनवासेको गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

जनकपुरसे बारात-विदाई और परशुरामसे श्रीरामचन्द्रकी वार्त्ता।

विवाह हो चुकनेपर अगले दिन सबेरा होते ही महर्षि विश्वामित्र दोनों राजाओंसे विदा माँग, हिमालयपर तप करने चले गए। विश्वामित्रने जाते समय राजकुमारोंको तथा महाराज दशरथको आशीर्वाद दिए। महर्षि विश्वामित्रके विदा होनेपर महाराज दशरथने मिथिलेश्वर राजाजनकसे विदा माँग अति शीघ्र अयोध्याको प्रथान किया। राजाजनक कुछ दूर तक महाराज दशरथके पीछे-पीछे उन्हें विदा करने गए। और दहेजके दैनदायजेमें मिथिलेश्वरने अयोध्यापतिको एक लाख गौयें दीं। बहुतसे बहुमूल्य दुशाले और एक करोड़ रेशमी वस्त्र दिए। अनेक सुन्दर और सजे-सजाये हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, दास और दासियाँ दिए। बहुतसी मोहरें और अशर्फियाँ, मोती, मूँगे दिए। इस प्रकार परम प्रसन्न हो और भी बहुतसा बहुमूल्य दायजा देकर, राजाजनक, महाराज दशरथसे आज्ञा माँग मिथिलेश्वर अपने मिथिलापुरी वाले राजभवनमें गए। महाराज दशरथभी राजकुमारोंको साथ लिए हुए तथा

ऋषियोंको आगेकर, सेना सहित चल दिए। महर्षियों और श्रीरामचन्द्रजीके साथ जाते हुए महाराज दशरथके मार्गमें चारों ओर भयंकर पक्षी बोलने लगे। हिरन दौड़कर रास्ता काटने लगे। इन अपशकुनोंको देख, महाराज दशरथने वसिष्ठजीसे पूछा कि यह सब और दुष्ट पक्षी बुरी तरह बोल रहे हैं और दूसरी ओर हिरन दाहिनी ओर से रास्ता काट रहे हैं। यह हृदय दहलनेवाला क्या उत्पात है ? इन अपशकुनोंको देख मेरा मन उदास हो गया है। महाराजके इन प्रश्नोंको सुन महर्षि वसिष्ठजीने मधुर वाणीसे उत्तर दिया कि, इनका फल सुनिए। पक्षी बोली बोलकर बतला रहे हैं कि, कोई बड़ा भारी भय उपस्थित होनेवाला है। परन्तु मृगोंके रास्ता काटनेसे अर्थात् बाईं ओरसे दाहिनी ओर जानेसे, उस भयका नाश प्रतीत होता है। अतः आप संतप्त न हों। यह बात हो ही रही थी कि, बड़े जोरको आँधी चली, जिससे पृथ्वी काँपने लगी, बड़े-बड़े वृक्ष गिरने लगे। धूलके कारण सूर्य छिप गए और अंधकार छा गया, दिशाओंका ज्ञान न रहा। इतनी धूल उड़ी कि सैनिकोंके छक्के छूट गए। वसिष्ठजी तथा अन्य ऋषियोंको, महाराज दशरथ तथा उनके राजकुमारोंको तो उस समय चेत रहा; और सब अचेत हो गए। क्योंकि उस घोर अन्धकारमें, सब सेना भस्माच्छादित हो रही थी अर्थात् धूलसे ढक गई थी। तदनन्तर महाराज दशरथने भयंकररूप धारण किए, जटा जूटधारी भृगुवंशी जमदग्निजीके पुत्र और राजाओंका मान मर्दन करनेवाले परशुरामको देखा; जो कैलाशकी तरह दुर्धर्ष, कालाग्निके समान दुस्सह, क्रोधसे जलते हुए अग्निके समान और पामरों द्वारा दुर्निरीक्ष्य थे। वे अपने कन्धेपर फरसा रखे हुए थे, बिजलीकी तरह चमचमाता धनुष और वाण लिए हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानों त्रिपुरासुरको मारनेके लिए शिवजी आए हों। तब दाहक अग्निके समान उन भयानकरूपधारी परशुरामजीको आते देख जपहोत्रपराण वसिष्ठ प्रमुख ऋषिगण परस्पर कहने लगे कि पिताके मारे जानेके कारण क्रोधमें भर, परशुरामजी क्षत्रियोंका नाश करनेको तो कहीं नहीं आए हैं ? क्षत्रियोंका नाशकर पहले तो इनका क्रोध शान्त हो गया है। अब क्या पुनः क्षत्रियोंका नाश करनेपर उद्यत हुए हैं ? इस प्रकार परस्पर वार्तालापकर

ऋषिगण अर्घ्यपाद्यसे उनके आगे गए और राम ! राम ! ऐसा मधुर वचन कहने लगे। प्रतापी परशुरामने ऋषियोंका वह आतिथ्य ग्रहण किया। फिर दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीसे परशुरामजी इस प्रकार वार्त्ता करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

हे वीर राम ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत सुनाई पड़ता है। जनकपुरमें तुमने जो धनुष तोड़ा है, उसका सारा वृतान्त मैंने सुना है। उस धनुषका तोड़ना विस्मयोत्पादक और ध्यानमें न आने योग्य बात है। उसीका वृतान्त सुन हम यहाँ आए हैं और दूसरा एक उत्तम धनुष लेते आए हैं। यह भयङ्कर विशाल धनुष जमदग्निजीका है। इसपर रोदा चढ़ाकर और बाण चढ़ाकर, आप अपना बल मुझे दिखलाइए। इस धनुषके चढ़ानेसे तुम्हारे बलको हम जान लेंगे और उसकी प्रशंसाकर, हम तुम्हारे साथ द्वन्द्व युद्ध करेंगे। परशुरामजीकी यह बातें सुन, महाराज दशरथ उदास हो गए और दीनता पूर्वक और हाथ जोड़कर, कहने लगे—हे परशुरामजी ! आपका जो क्षत्रियों पर कोप था, वह तो शान्त हो चुका है। क्योंकि आप तो बड़े यशस्वी ब्राह्मण हैं। इसलिए आप मेरे बालक पुत्रोंको अभयदान कीजिये। वेदपाठमें निरत भृगुवंशमें उत्पन्न आप तो इन्द्रके समक्ष प्रतिज्ञाकर सब शस्त्र त्याग चुके हैं और सारी पृथ्वीका राज्य कश्यपको दे, आप तो महेन्द्राचलके बनमें तप करने चले गए थे। पर हम देखते हैं कि, आप तो हमारा सर्वस्वही नष्ट करने के लिए आए हैं। पर आप यह भी जानलें कि, यदि कहीं हमारे अकेले राम ही मारे गए तो हममें से कोई भी जीता न बचेगा। तब महाराज दशरथकी इन बातों की अवहेलनाकर अर्थात् कुछभी उत्तर न दे, प्रतापी परशुराम, श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—हे राम ! ये दोनों धनुष अत्युत्तम हैं। ये बड़े दृढ़ हैं और इन्हें विश्वकर्माने बड़ी सावधानीसे बनाया है। इनमेंसे एक तो देवताओंने महादेवजीको युद्ध करनेके लिए दिया था, जिससे उन्होंने त्रिपुरासुरको मारा था और उसीको तुमने तोड़ डाला है। यह दूसरा भी, जो हमारे पास है, बड़ा ही दृढ़ है। इसे देवताओंने विष्णु भगवान् को दिया था। हे राम ! यह विष्णुका धनुष भी शत्रुओंके पुरको

जीतने वाला है और महादेवजीके धनुषके जोड़का है। एक बार सब देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछा कि, महादेवजी और विष्णु भगवान्के धनुषोंमें कौनसा बढ़कर है। तब देवताओंका अभिप्राय जानकर ब्रह्माजीने उन दोनोंमें बड़ा विरोध उत्पन्न कर दिया; जिसका यह परिणाम हुआ कि, उन दोनोंमें रोमाञ्चकारी घोर युद्ध हुआ। महादेव और विष्णु एक दूसरेको जय करनेकी इच्छा करने लगे। महादेवजीका बड़ाही दृढ़ धनुष ढीला पड़ गया। त्रिनेत्र महादेवजी विष्णुजीके एकही हुँकारमें स्तंभित हो गए। तब ऋषियों और चारणोंको साथ ले देवताओंने वहाँ पहुँचकर दोनोंसे प्रार्थनाकी और युद्ध बन्द कराया। तब विष्णुजीके पराक्रमसे शिवके धनुषको ढीला देख ऋषियों सहित देवताओंने विष्णुको (अथवा विष्णुके धनुषको) अधिक पराक्रमी (अथवा दृढ़) समझा। इससे क्रुद्ध हो महादेवजीने अपना धनुष देशके महायशस्वी राजर्षि देवरातके हाथमें बाण सहित दे दिया। हे राम! मेरे हाथमें जो धनुष है, यह विष्णुका है और यह भी शत्रुओंके पुरका नाशक है। पूर्वमें यह धनुष विष्णुजीने भृगुवंशी ऋचीकको दिया था, जिसे ऋचीकने अपने सहनशील पुत्र एवं हमारे पिता महात्मा जमदग्निको दिया और जब हमारे पिता, शस्त्रधारण करना त्याग, तप करने लगे तब राजा सहस्रबाहुने मेरे पिताको गँवारपन कर मार डाला। तब पिताके इस अयोग्य और अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक मारेजानेका हाल सुन, क्रोधमें भरकर, जैसे-जैसे क्षत्रिय उत्पन्न होते गए, वैसेही वैसे हमने कितनी ही बार उनको मारा और समस्त पृथ्वीका राज्य अपने हाथमें कर, हमने महात्मा कश्यपको, यज्ञान्तमें, उस पुण्य कर्मकी दक्षिणारूपमें दे दिया और मैं तबसे सुरसेवित महेन्द्राचल पर तप करते हुए बड़े सुखसे रहता हूँ। अब हे महाबली राम! तुम्हारे उत्तम पराक्रम द्वारा धनुषके तोड़े जानेका समाचार सुन, हम शीघ्रतासे यहाँ चले आए हैं। अब विष्णु प्रदत्त हमारे पुरखोंके इस उत्तम धनुषको क्षत्रिय धर्ममें स्थित हो ग्रहण करो। हे शत्रुओंके पुरको जीतनेवाले! इसे सज्जित कर इसपर बाण चढ़ाओ। काकुत्स्थ! यदि तुम इसपर बाण न चढ़ा दोगे तो परीक्षार्थ मैं तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका परशुरामजी के दिए धनुष पर रोंदा चढ़ा बाण चढ़ाकर उसे नष्ट कर देना। और मानभंग होनेसे परशुरामजीका महेन्द्र पर्वत पर चला जाना।

तब परशुरामजीके इन वचनोंको सुन श्रीरामचन्द्रजी अपने पिता महाराज दशरथके गौरवसे मन्दस्वरमें बोले—'हे परशुरामजी! आपने जो कार्य किए हैं, वे सब मैं सुन चुका हूँ। आपने जिस प्रकार अपने पिताके मारनेवालेसे बदला लिया—वह भी मुझे विदित है। किन्तु आप जो यह समझते हैं कि, हम वीर्यहीन हैं, हममें क्षात्रधर्मका अभाव है, अतः जो आप हमारे तेजका निरादर करते हैं, वह आप अब हमारा पराक्रम देखिए।' यह कहकर और क्रोधमें भरकर श्रीरामचन्द्रजीने परशुरामजीके हाथसे धनुष और बाण झट ले लिए और धनुषपर रोदा चढ़ाकर उसपर बाण चढ़ा, जगदग्निके पुत्र परशुरामसे श्रीरामचन्द्रजी क्रुद्धहो यों बोले कि—हे परशुरामजी, एक तो ब्राह्मण होनेके कारण आप मेरे पूज्य हैं, दूसरे आप विश्वामित्रजीके सम्बन्धी (विश्वामित्रजीकी बहिनके पौत्र) हैं। अतः इस बाणको आपके ऊपर छोड़कर, आपके प्राण लेना तो मैं नहीं चाहता; किन्तु इस बाणसे या तो आपकी गतिको (पैरोंको) या आकाशगमनादि आपकी शक्तिको अथवा तप द्वारा आपके लोकोंको मैं अवश्य नष्ट करूँगा। आपकी जो इच्छा हो वही करूँ। क्योंकि यह वैष्णव बाण है। यह आपकी शक्तिसे शत्रुके बल और अभिमान को नष्ट करने वाला है। यह बिना कुछ किए, अब तरकसमें लौटनेवाला नहीं। यह अमोघ है। तब श्रीरामचन्द्रजीको उस दिव्य धनुषपर बाण धारण किए हुए देख, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, किन्नर, यक्ष, राक्षस और नाग सब ब्रह्माजीके पीछे-पीछे इस अद्भुत व्यापारको देखनेके लिए वहाँ इकट्ठे हो गए। तीनों लोक स्तम्भित हो गए। परशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज तिरोहित हो गया, जिससे वे बड़े विस्मित हुए। श्रीरामचन्द्रजीके तेजसे परशुरामजी जड़के समान वीर्यहीन हो गए। तब वे कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे धीरे-धीरे कहने लगे—जब यज्ञान्तमें हमने समस्त पृथ्वी कश्यप मुनिको दे दी, तब उन्होंने हमसे कहा था कि, आजसे हमारी भूमि या राज्यमें न बसना। अतः हे काकुत्स्थ!

कश्यपजीके कथनानुसार उनकी आज्ञाको मान, मैं रातमें पृथ्वीपर नहीं रहता क्योंकि तबसे हमने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार यह पृथ्वी कश्यपहीको कर दी है। इसलिए हे राघव ! आप हमारी सर्वत्रकी गति नष्ट न कीजिए। जिससे वेगवती गति बनी रहे। मैं शीघ्र पवतोत्तम महेन्द्रपर पहुँच जाया करूँ। किन्तु हे राम ! हमने तप द्वारा जो लोक जीते हैं, उनको इस विशेष बाणसे हनन कीजिए और अब इसमें विलम्ब न कीजिए। हे परन्तप ! आपके द्वारा इस धनुषके ग्रहण किए जानेसे हमने अच्छी तरह जान लिया कि, आप अक्षय (अविनाशी), मधु दैत्यके मारनेवाले और सब देवताओंमें उत्तम विष्णु हैं। आपकी जय हो। ये सब देवगण आपके दर्शनार्थ आए हुए हैं। आप सब कामोंके करनेमें चतुर और समरमें अपने प्रतिद्वन्द्वीको नाश करने वाले हैं। हे राघव ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं। अतः यदि हम आपसे हार भी गए तो इसकी हमें लज्जा नहीं है। हे राम ! अब आप इस अद्वितीय बाणको छोड़िए। बाणके छूटतेही मैं पर्वतोत्तम महेन्द्राचलपर चला जाऊँगा। परशुरामजीके ऐसा कहनेपर दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने उस उत्तम बाणको छोड़ दिया। वह बाण परशुरामजीके तपसे अर्जित लोकों (फलों) को नष्ट करता हुआ चल पड़ा। यह देख परशुरामजी तुरन्त महेन्द्रपर्वतकी ओर चले गए। दिशाएँ और विदिशाएँ पूर्ववत् प्रकाशमान हो गईं। सारा अन्धकार दूर हो गया। ऋषि और देवता धनुष-बाण-धारी श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करने लगे। जमदग्नि-पुत्र परशुराम, दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसाकर तथा उनकी परिक्रमाकर अपने स्थानको चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

महाराज दशरथका अयोध्याकी ओर प्रस्थान। राजधानीमें नगरवासियोंका हर्षित होना। भरत और शत्रुघ्नका ननिहाल जाना। सीता-रामकी पारस्परिक स्नेह वृद्धि।

विगत क्रोध परशुरामजीके चले जानेके बाद दशरथनन्दन श्रीरामजीने अपने हाथका बाण सहित वह धनुष वरुणजीको धरोहरकी तरह सौंप दिया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठादि ऋषियोंको प्रणाम किया और महाराज दशरथको घबड़ाया हुआ देख, उनसे बोले—परशुरामजी चले गये। अ

आप अपनी चतुरंगिणी सेनाको अयोध्यापुरीकी ओर चलनेकी आज्ञा दीजिए। श्रीरामजीका यह वचन सुन, महाराज दशरथने अपने पुत्र श्रीरामचन्द्रजोको छातीसे लगा लिया और उनका माथा सूँघा। परशुरामका जाना सुन महाराज दशरथ परम प्रसन्न हुए और अपना तथा अपने पुत्रका पुनर्जन्म हुआ माना और सेनाको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। महाराज दशरथ बड़ी शीघ्र ध्वजा पताकाओंसे सुशोभित और जयघोषसे निनादित अयोध्यापुरीको गये। अयोध्यापुरीकी सड़कें जलसे छिड़की हुई थीं तथा उनपर पुष्प बिखरे हुए थे। वे बड़ी रम्य जान पड़ती थीं। महाराजके आगमनसे प्रसन्नमुख पुरवासी अनेक प्रकारके आशीर्वादात्मक वचन बोल रहे थे। ऐसी सजी हुई और वन्धु-बान्धवों से भरीपुरी अयोध्यापुरीमें महाराज दशरथने प्रवेश किया और नगरसे आगे बढ़, पुरवासी ब्राह्मणोंने उनकी अगमानी की। महायशा महाराज दशरथ, अपने राजकुमारों और बहुओं सहित अपने बर्फकी तरह सफेद रंगके प्रिय राजभवनमें गए। प्रसन्नचित्त हो राजभवनमें पहुँचनेपर, महलवासी नाते रिश्तेदारोंने महाराजका फूलमाला चन्दनादिसे भली-भाँति सत्कार किया। उधर कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी तथा अन्य रानियाँ बहुओंका परिछन करनेमें लगीं। रानियाँ महाभागा सीता, यशस्विनी उर्मिला और कुशध्वजकी दोनों बेटियोंको महलोंमें लिवा ले गईं और वहाँ उनके मंगल लेप अर्थात् ऐपन और कुङ्कुमादि लगाए। फिर उनके अच्छे-अच्छे रेशमी वस्त्रधारण करवा और तुरन्त देवमंदिरोंमें लेजाकर, उनसे देवताओंकी पूजा करवाई। तदन्तर सब बहुओं ने सासों तथा अन्य बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंको प्रणाम् किया। तदनन्तर वे सब अपने-अपने पतियोंके साथ राजभवनमें जा हर्षित हो निवास करने लगीं। उधर श्रीरामचन्द्रादि सब राजकुमार विवाहित हो तथा सब अस्त्र-शस्त्र चलाने और रोकनेकी विद्यामें निपुण एवं धनवान् हो, अपने इष्ट मित्रों सहित पिताकी सेवा करते हुए रहने लगे। कुछ दिनों बाद महाराजदशरथ अपने पुत्र कैकेयी नन्दन भरतजीसे बोले—यह तुम्हारे मामा युधाजित तुम्हें ले जानेके लिए आए हुए हैं। कैकेयीनन्दन भरतजी महाराज दशरथके यह वचन सुन शत्रुघ्न जीके साथ ननिहाल जानेको तैयार हो गए। तदनन्तर अपने वीरवर पिता और अति कारुणिक भाई श्रीरामचन्द्र तथा कौशल्यादि माताओंसे पूँछ, वे

शत्रुघ्नको साथ ले चल दिए। भरतजीके जानेपर, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्म अपने देव समान पिताकी सेवा करने और अपने पितासे पूँछ-पूँछकर पु वासियोंके प्रिय व हितकर सब कार्य करते थे। इतनाही नहीं, वे मायाकी भ सब काम बड़ी अच्छी तरह किया करते थे। वे गुरुओंकी भी सेवा समय- समयपर करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे व्यवहारसे क्या महाराजदशरथ क्य ब्राह्मण और क्या बनिए सभी सन्तुष्ट थे। श्रीरामचन्द्रजीके शीलस्वभावसे स ही पुरवासी सन्तुष्ट थे। राजकुमारोंमें सत्य पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीका नाम बहुत अधिक व्याप्त था। अर्थात् वे प्रसिद्ध हो गए थे। स्वयम्भू—ब्रह्माक तरह वे सब प्राणियोंसे बढ़कर गुणवान् समझे जाते थे। श्रीरामचन्द्रजीन बहुत वर्षों तक सीताजीके साथ विहार किया। श्रीरामचन्द्रजीको ब्राह्म विवा से प्राप्त जानकीजी अतिप्यारी थीं और वे उनपर आसक्त थे तथा उनको बहु चाहते थे। प्रीति, रूप, गुण और शीलके प्रभावसे जो सदा बढा करती है औ ये सब बातें सीताजीमें श्रीरामचन्द्रजीसे दूनी थीं। श्रीरामचन्द्रजीके मनकी बा बिना कहे ही जानकीजी जिनकी शोभा देवताओंके समान थी और ज साक्षात् देवी लक्ष्मीके तुल्य थीं, विशेषरूपसे जान लिया करती थीं। राजर्षि जनककी दुहिता जानकीके साथ श्रीरामचन्द्रजी उसी प्रकार शोभाको प्रा हुए, जिस प्रकार अमरेश्वर भगवान् आदि विष्णु लक्ष्मीजीके साथ सुशोभि होते हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा प्रथम बालकाण्ड का सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७॥

॥ यहाँ बालकाण्ड सम्पूर्ण हुआ ॥

श्रीगणेशायनमः

श्रीमद्वाल्मीकीय मुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—भाषा

अयोध्या-काण्डम्

पहला सर्ग

शत्रुघ्न सहित भरत मामाके घर तथा दशरथजी द्वारा राज-सभामें राम-राज्याभिषेकका विचार

तब मातुलकुलमें जाते समय भरतने अपने भाई शत्रुहन्ता शत्रुघ्नको भी प्रीतिपूर्वक अपने साथ ले लिया और वहाँ पहुँचकर अपने मामा अश्वपति (युधाजित) से पुत्रवत् स्नेह और प्यार पाकर अपने वृद्ध पिता राजा दशरथका स्मरण करते हुए स्वेच्छया स-सत्कार रहने लगे। राजा दशरथ भी मातुलकुलमें गए हुए उन इन्द्रवरुणोपम अपने भरत शत्रुघ्न नामक पुत्रोंको स्मरण करते रहे। उनके चारों पुत्र अपने शरीरसे निकले हुए हाथोंके ही समान प्रिय थे। उन चारों पुत्रोंमें महातेजस्वी राम पिताके अधिक थे। क्योंकि वे प्राणियोंमें ब्रह्माके समान अधिक गुणवान् थे। रावणवधेच्छुक देवताओंके द्वारा सनातन विष्णुवत् अभिलषित यही राम संसार अवतीर्ण थे। और जिस प्रकार अदिति इन्द्रको पाकर शोभित हुई थीं, वैसेही कौशल्या भी रामको पाकर शोभित हुईं। यह दशरथसुत राम रूपवान्, वीर्यवान्, पृथ्वीमें अनुपम गुणोंमें दशरथके ही समान थे और वे सर्वदा शान्त-आत्म, मृदुभाषी, कटुवाक्योंकी उत्तर न देनेवाले, एकही उपकारसे संतुष्ट हो जानेवाले अपकारीका अपकार स्मरण न रखनेवाले, अस्त्र अभ्याससे अवकाश मिलने पर सुशील, ज्ञानी, वयोवृद्ध पुरुषोंसे योग्य विषयोंमें वार्तालाप करनेवाले, बुद्धिमान, मधुरालापी, अन्यके भावको पहलेही कह देनेवाले, प्रियवंद, स्वयंवीर होकर वीरताका अभिमान न करनेवाले, सत्यवक्ता, विद्वान्, वृद्धोंके पूजक, प्रजाको प्यार करनेवाले, सदय, जितक्रोध, ब्राह्मणोंके पूजक, दीनोंपर कृपा करनेवाले, नित्यसंयमी और पवित्र थे। कुलानुसार वर्तावकारी, स्वक्षात्रधर्मको

बड़ा माननेवाले, परमकीर्ति द्वारा महान् स्वर्ग फलको जानने-माननेवाले, पर-
स्पर विरुद्ध कथाओंमें रुचि न करनेवाले, बृहस्पति तुल्य उत्तरोत्तर युक्तियोंके
वक्ता, नीरोग, तरुण, वाग्मी, वपुष्मान, देशकालके ज्ञाता, पुरुषोंके सार-ज्ञाता,
अद्वितीय साधु, श्रेष्ठ गुण-युक्त, अपने गुणोंके कारण बाहर रहनेवाले, प्राणके
समान प्रजाके प्यारे, समस्त विद्या और व्रतोंमें स्नात, अंगयुक्त वेद-ज्ञाता,
बाण और अस्त्र चलानेमें अपने पितासे भी श्रेष्ठ, कल्याणके जन्मस्थान,
सज्जन, अदीन, सत्यवादी, नम्र, धर्मार्थदर्शी, वृद्ध, द्विजोंसे सम्मानित, धर्मार्थ
कामके तत्वज्ञ, स्मृतिमान्, प्रतिभावान्, लौकिक समयाचारके कृतकल्प, चतुर,
विनीत, सम्भृताकार; गूढ़ मंत्रों द्वारा सहायवान्, निरर्थक क्रोध और हर्ष
रहित, ग्रहण और त्यागमें यथान्याय विचक्षण, अनुग्रहण-सत्संग्रही, निग्रहके
स्थानको जाननेवाले, आय एवं लाभ उपायको जाननेवाले, व्यय कर्मकेभी ज्ञाता,
शास्त्र समूहकी श्रेष्ठताको प्राप्त धर्मार्थसंग्रह करने, सुखको प्राप्त करनेवाले,
निरालसी, विहार संबंधी, शिल्प-प्रयोजक और विभागके ज्ञाता, हाथी-घोड़ोंकी
सवारी करनेमें चतुर, धनुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ, संसारके अतिथियोंमें सम्मा-
नित, सेना संबंधी नीतिमें चतुर, क्रुद्ध, सुर-असुरोंके द्वारा भी संग्राममें अप्र-
धिष्ठ, अनुसूचक, क्रोधको जीते हुए, गर्व और मत्सरता रहित थे। प्राणियोंसे
न जाननेवाले कालके वशमें न जानेवाले, श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त, क्षमा और गुणों-
से त्रैलोक्यसम्मत, बुद्धिमें बृहस्पति, बलमें इन्द्रके समान, समस्त प्रजाके
शोभित और प्रीति उत्पन्न करनेके लिए पितावत्, तथा गुणोंके विस्तारके
लिए सूर्यकी किरणोंके समान विस्तृत थे। ऐसे गुण-संपन्न पराक्रमी रामको
समस्त वसुधा अपना स्वामी बनानेको उत्सुक हुई। तब ऐसे बहुतसे अनुपम
गुणोंसे युक्त अपने पुत्र रामको देखकर परन्तप तथा वृद्ध राजा दशरथके
मनमें यह प्रीति उत्पन्न हुई कि अब मेरे जीते ही राम किस प्रकार राजा होंगे।
उनके हृदयमें यह भाव विद्यमान् था कि मैं अपने प्यारे पुत्रको कब अभिषेक
किया हुआ देखूँ। क्योंकि वे समझते थे कि राम संसारकी वृद्धिके इच्छुक
हैं। यह सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, संसारमें मुझसे भी अधिक प्रिय,
बादलोंके समान वृष्टिमान, पराक्रममें इन्द्र और यमके समान, बुद्धिमें बृहस्पति
के समान, धैर्यमें पृथ्वीके समान और मुझसे भी अधिक गुणवान् हैं। मैं इ

वृद्ध दशामें अपने पुत्र रामको समस्त पृथ्वीका स्वामी देखकर स्वर्गको प्राप्त होऊँ। इस प्रकार अन्य राजाओंसे दुर्लभ विविध गुणोंसे युक्त, अपरिमेय गुणोंसे युक्त, तथा राजामें होने योग्य गुणोंसे परिपूर्ण रामको देखकर राजा दशरथने मंत्रिमण्डलसे निश्चयकर उन्हें युवराज बनानेका विचार किया। साथही मेधावी दशरथने दिव्य अंतरिक्ष और पृथ्वीके होनेवाले उत्पातों भय तथा अपने शरीरकी वृद्धावस्थापर भी विचार किया। तदनन्तर धर्मात्मा दशरथने राम राज्याभिषेककी यह शुभ सूचना शीघ्रही घोषित की और अने नगरोंमें रहनेवाले तथा अनेक नृपतियोंको राजा दशरथने बुलाया। उनके आनेपर उन्होंने उन सबकी अनेक गृह तथा भूषणोंसे पूजा की तथा इन्द्रके समान अपनी अलंकृत प्रजाको राजा दशरथने देखा। परन्तु कैकेयराज तथा जल्दीके कारण राजा जनकको उन्होंने न बुलाया, सोचा ये लोग इस प्रिय समाचारको पीछे सुन लेंगे। दशरथजीके सभामें बैठ जानेपर लोक-संमत देशीय राजा भी आकर उनके समक्ष अपने-अपने आसनोंपर बैठे। उस समय विनयी नृपतियों तथा जनपदीय प्रधान पुरुषोंसे सम्मानित हो राजा दशरथ इन्द्रके समान शोभित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

दूसरा सर्ग

राम-राज्याभिषेक संबंधी राजा दशरथका राज्यपरिषदमें भाषण।

तब पृथ्वीपति दशरथने समस्तप्रजा आमंत्रितकर उनका हित सूचक विख्यात् वचन अपने गंभीर किन्तु सरस शब्दोंमें राजाओंको संबोधित कर कहना आरम्भकिया कि—आप लोगोंको विदित होगा कि, मेरे पूर्वजों का यह पुत्रवत् पालित उत्तम राज्य जिसप्रकार विद्यमान् है, मैं इस इक्ष्वाकु-वंशीय राजाओंसे प्रतिपालित संपूर्ण राज्यको कल्याणका भागी बनाना चाहता हूँ। मैंने भी अपने पूर्वजोंके ही आचरणका अनुकरण करते हुए सावधानीसे यथाशक्ति प्रजाकी रक्षाकी है। संसारका हित करनेके लिए मैंने इस शरीरसे अपना सारा जीवन इसी पाण्डुर-छत्र-छाया में जीर्ण कर दिया है। और दीर्घायुहोकर बहुतसी अवस्थाओं तक जीता रहा। अब इस जीर्ण शरीरको विश्रामदेना चाहता हूँ। संसारकी धर्मधुरीको उठाते हुए

थक गया हूँ । इसलिए मैं इन सब द्विजातियोंकी अनुमतिसे प्रजाके हिता
पुत्रको नियुक्त कर विश्राम चाहता हूँ। मेरा पुत्र रामचन्द्र सर्व गुण श्रे
इन्द्रके समान पराक्रमी, पर-पुर-विजय-समर्थ है । वह पुष्य नक्षत्रसे युक्त
चन्द्रमाके समान, धार्मिक, चूणामणि, और पुरुषोंमें श्रेष्ठ है । ऐसे रामको मैं
प्रातःकाल ही युवराजपद देना चाहता हूँ । लक्ष्मीवान् लक्ष्मणके भाईसे
सनाथ होनेसे तीनों लोक सनाथ हो जाएगा, वे तुम्हारे नाथ होने योग्य हैं
अतएव शीघ्रही श्रेयके लिए मैं पृथ्वीको अपने पुत्रसे युक्त करूँगा और मैं
उसे राजा बनाकर आवासरहित हो जाऊँगा। मैंने जो कुछ कहा है उस प
आपलोग अनुमतिदें । यदि मेरा प्रस्ताव अनुचित लगे, तो इनसे अधि
हितकर सम्मति कहिये । क्योंकि मध्यस्थोंके विचार उभय पक्षकी विवेचन
में विलक्षण होते हैं । तब राजा दशरथको इस प्रकार कहते हुए देख स
ऐसे प्रसन्न हुए जैसे नीले मेघको देखकर मोर प्रसन्न होते हैं । सब राजाओं
हर्षध्वनिकी । मानों इनके अनुनादसे पृथ्वी हिलने लगी । तब धर्मशास्त्र औ
अर्थशास्त्रके विद्वान् दशरथके भावको उपस्थित ब्राह्मण, सेनापति और पुरवा
सियोंने समझकर, परस्पर विचारकर वृद्ध राजादशरथसे कहा हे नरेश! आ
की बहुत वर्षोंकी आयु हो गई । आप वृद्ध हो गए हैं । अतः रामको रा
बना दीजिए । हम भी विशालबाहु महाबली रामचन्द्रको हाथीपर चढ़ा, त
उनके छत्रान्वित शिरको देखना चाहते हैं । तब उनके इस प्रकारके बचनों
सुन तथा उनके मानसिक भावोंको जानकर भी दशरथजी अनजानके सम
यह वचन बोले—हे राजाओं ! तुम रामचन्द्रको राजा बनाना चाहते हो, ऐ
मुझे सन्देह हुआ है । अतः इस विषयपर अपने विचार स्पष्टतया मुझसे कहो
क्योंकि मैं धर्मानुसार प्रजाका पालन करही रहा हूँ; अतः किस हेतुसे आ
रामको राजा बनाना चाहते हैं ? तब वे राजा आदि समस्त पुरुष दशरथ
बोले कि, आपके पुत्रमें राजाओंके कल्याणकारी अनेक गुण विद्यमान हैं
हे राजन् ! हम सब आपसे यह कहते हैं कि, बुद्धिमान् रामचन्द्रमें देववत् औ
सर्वानन्दप्रद सभी गुण विद्यमान हैं । रामचन्द्र दिव्य गुणोंमें इन्द्रके सम
सत्य-परायण, पराक्रमी इक्ष्वाकुवंशीय सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं । ये राम संसार

में सत्पुरुष सत्परायण साक्षात् लक्ष्मीके पुत्र, धर्म और अर्थको आश्रम दिए हुए हैं। जैसे चन्द्रमा सबको आह्लादित करते हैं, उसी प्रकार रामभी प्रजा-जनोंको सुख एवं आनन्द प्रदान करते हैं। वे धर्मज्ञ सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान्, देव-दृष्टि-रहित, क्षमाशील, दूसरोंको सान्त्वना देनेवाले, प्रिय वचन बोलनेवाले कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाववाले, स्थिर बुद्धि, कल्याणकारी तथा प्रियवादी होनेके साथ-साथ सत्यवादी भी हैं। देवता, असुर और मनुष्योंके सम्पूर्ण अस्त्रोंका उन्हें विशेषरूपसे ज्ञान है। वे साङ्गवेदके विद्वान् और सम्पूर्ण विद्याओं में निष्णात हैं। कल्याणकी तो वे जन्मभूमि ही हैं। प्रजाके घर उत्सव देखकर उन्हें पिताकी भाँति प्रसन्नता होती हैं। वे महान् धर्मधुरन्धर, वृद्ध पुरुषों के सेवक और हँसकर बात करनेवाले हैं। उन्होंने धर्मका पूर्णरूपसे आश्रय लिया है। उनकी भौहें सुन्दर, नेत्र विशाल और कुछ लालिमा लिए हुए हैं। वे साक्षात् विष्णुकी भाँति शोभायमान्, सम्पूर्ण लोकोंको आनन्दित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी शूरता-वीरता और पराक्रम आदिके द्वारा सदा प्रजाका पालन करनेमें लगे रहते हैं। इनकी इन्द्रियोंपर राग आदि दोषोंका प्रभाव नहीं पड़ता। इस पृथ्वीकी बात ही क्या है, वे त्रयलोक्यका भी राज्य करनेकी शक्ति रखते हैं। इनके क्रोध और प्रसाद कभी निरर्थक नहीं हो सकते। इसीलिए गुण-सम्पन्न, सत्यपराक्रमी, लोकपालोपम रामचन्द्रको बसुन्धरा अपना स्वामी बनाना चाहती है। हे दशरथ! जैसे बड़े भाग्यसे मरीचिने पुत्रके गुणोंसे युक्त कश्यपको पाया था, वैसेही आपनेभी बड़े भाग्यसे श्रेयके लिए इन रामचन्द्रको पाया है। सुर, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, उरगादि सब प्राणियोंमें रामका बल, आरोग्य और दीर्घजीवन विदित है। राज्यमें अयोध्यापुरीमें तथा गाँवोंमें और जितने भी मनुष्य रहते हैं, वे स्त्री हों या पुरुष—सभी राम बल, आरोग्य तथा आयुकी शुभ कामना करते हैं। इस पुरीकी वृद्ध और युवती स्त्रियाँ मनस्वी पुरुष रामके लिए समाहित चित्तसे देवताओंको प्रणाम करते हैं। हे देव! उनकी यह इच्छा आपके प्रसादसे बढ़े। हे राजन्! आपके पुत्र शत्रु विनाशक, इन्दीवर-श्याम राजोत्तम रामको युवराज बना हुआ हम देखना चाहते हैं। हे वरद! अब आपसे यह प्रार्थना है कि देवोपम, सर्वलोक हितकारी, उदार और गुण-सम्पन्न अपने पुत्र रामचन्द्रको शीघ्र युवराज बनाइए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

(राम-राज्याभिषेक का निश्चय, रचना, रामका राज्यपरिषद में आगमन, दशरथ द्वारा स्वागत, उपदेश और कौशल्या सहित जनता का हर्षित होना)

जब इस प्रकार सभासदोने हाथ जोड़कर महाराजके प्रस्तावका समर्थन किया, तब उसे सुनकर राजा दशरथ उन सबसे प्रिय और हितकारी यह वचन बोले—अहो । मैं परम प्रसन्न हूँ मेरा प्रभाव अतुल है, जो आप मेरे ज्येष्ठ प्रिय पुत्रको यौवराज्य दिया चाहते हैं । तब दशरथने सत्कृत वसिष्ठ और वाम देवादि ब्राह्मणोंसे कहा कि, इस समय पुण्यमय श्रीयुक्त चैत्र मास उपस्थित है, समस्त वन पुष्पित है, ऐसे शुभ अवसर पर रामके यौवराज्यके लिए सब सामग्री एकत्र कीजिए । दशरथजीके ऐसा कहनेपर महान् जयघोष हुआ । तब उसके शान्त होने पर दशरथने मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठसे कहा—हे भगवन् ! राम राज्याभिषेकके लिए जो कार्य एवम् सामग्री चाहिए वह सब आप इस समय कहने में समर्थ हैं । इस पर वशिष्ठजी, मन्त्रियोंसे जो हाथ जोड़े खड़े थे, इस प्रकार कहने लगे । तुमलोग सुवर्णादि धातुरत्न, सर्वौषधि, उज्वल माला, खील, शहद, घृत, नवीनवस्त्र, रथ, सब हथियार, चतुर्वर्गीय सेना, शुभ लक्षणवान् हाथी, चमर, पंखा, ध्वजा, पाण्डुर वर्णका छत्र, एकसौ सुवर्ण-घट, सींगोंमें सुवर्ण मढ़े बैल, समग्र व्याघ्रचर्म और जो पदार्थ इष्ट हो वह सब एकत्रकर प्रातःकाल तक राजाके अग्न्यागार में रख दो । साथही साथ अन्तःपुर और नगरके सब द्वारोंको चन्दन माला और सुगन्धित धूपसे चर्चित कर दो और जो एक लाख ब्राह्मणोंके लिए प्रर्याप्त हो, ऐसा श्रेष्ठ गुणवान् दही दूधसे सिञ्चित अन्न बनाकर और घृत, दधि, खील तथा पुष्कल दक्षिणाभी कल प्रातःकाल दे देना कल प्रातःकाल होते ही स्वास्तिवाचन होगा । तुम अभीसे ब्राह्मणोंको न्योत उनके लिए आसन बनाओ । स्थान-स्थानपर झण्डियाँ बाँध दो और राज-मार्गमें छिड़काव करा दो । सभी गवैये और वेश्यायें सजधजकर राज-भवनकी दूसरी कक्षा आकर टिकें । देवालयों और चैत्योंमें भोज्य-पदार्थ, मालादि योग्य पदार्थ पृथक्—पृथक् भेजी जाय । अस्त्रधारी वीर भी अपनी पोशाकें पहन महाराजके आँगन में प्रवेश करें । इस प्रकार सेवकों को आवश्यक का

बताकर वसिष्ठ और वामदेवजीने शेष कार्य राजासे पूछकर स्वयं किया और उसे पूरा करके महाराजको सूचना दी कि सबकार्य सम्पन्न हो गया। तदनन्तर राजाने अपने द्युतिमान मन्त्री सुमन्त्रसे कहा कि, 'आप शीघ्र कृतात्मा रामको बुला लावें सुमन्त्र 'तथास्तु' कहकर राजाज्ञासे रामको रथ में बैठाकर उनके पास लाया। वहाँ उन्होंने दशरथको बैठे देखा जिनके चारों ओर राजा, आर्य, म्लेच्छ, वनी और पर्वतीय आदि सब राजे इस प्रकार उपासना कर रहे थे, जैसे देवता इन्द्रकी उपासना करते हैं और उनके मध्य में राजर्षि देवों में इन्द्रके समान शोभित थे। तब मञ्चस्थ शोभित दशरथने उन अतीव प्रियदर्शन रामको जो आते हुए देखा, तो उन गन्धर्व राजवत् सुन्दर, विख्यातपौरुष, दीर्घबाहु, मत्तमतङ्गगामी, चन्द्रानन और मनुष्योंकी दृष्टि और चित्तको हरने वाले, धार्मिक तथा प्रजाको प्रसन्न करनेवाले रामको देख तृप्त न होते थे। राम बद्धाञ्जलि हो रथसे उतर पिताके समीप चले। उनके पीछे लगा सुमन्त्र गया। राम कैलासश्रृङ्गवत् प्रकाशित मंच में बैठे हुए राजाकी ओर बढ़े और पिताके समीप जा, हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए बोले—'मैं राम आपके दोनों चरणों को प्रणाम करता हूँ।' दशरथजीने उनके हाथ पकड़ छातीसे लगाया। फिर मणिकांचनभूषित मनोहर उत्तम आसन पर बैठने को कहा। उसपर बैठ राम प्रकाशित होने लगे, तब जैसे-सूर्योदयसे सुमेरुपर्वत स्वयमेव शोभित हो जाता है, वैसेही रामचन्द्रके आगमनसे सभा स्वयमेव शोभित हो गई। राजसभाको शोभित देख दशरथजी उनसे सन्तुष्ट हुए। इस प्रकार पुत्रवानों में श्रेष्ठ राजा दशरथ रामसे प्रसन्न हो उनसे वैसेही बोले जैसे कश्यप इन्द्रसे बोलता है। 'तुम मेरी ज्येष्ठ पत्नीके अनुरूप ही मेरे पुत्र हो। तुमने समस्त प्रजाको अपने गुणोंसे प्रसन्न कर लिया है। तुम प्रकृति ही से गुणवान् हो। अतः पुष्य-नक्षत्रके योगमें यौवराज्य ग्रहण करो। हे पुत्र! तुम गुणज्ञ हो इस लिए स्नेहवश तुम्हारे लिए हितकर वचनोंको कहता हूँ। तुम पुनः विनयी, और जितेन्द्रियहो, काम-क्रोधसे उत्पन्न हुए व्यसनोंको त्याग दो और परोक्ष दूतादि द्वारा ज्ञान होने पर भी प्रत्यक्ष-वृत्तिसे सभामें उनपर अभियोगके नियमानुसार न्याय करो। अमात्य-प्रभृति समस्त प्रजा-रंजन करते हुए,

कोषागार-धनागारमें बहुत कुछ संचय करो। जो इस प्रकार अपने इष्टमें अनुरक्तहो प्रकृति, पृथ्वीका पालन करता है उसके मित्र ऐसे ही प्रसन्न होते हैं जैसे देवता अमृतको पाकर। इसलिए तुम नियमित होकर कार्यकारी बनो। यह सुनतेही रामके प्रियकांक्षी सुहृद्‌गण शीघ्रही कौसल्याके पास जा उक्त शुभ वृत्तको सुनाने लगे। उसे सुन् कौशल्याने गौ, सुवर्ण और विविध रत्न उन समाचार लानेवालेको दिये। तदनन्तर रामचन्द्र दशरथको प्रणामकर तथा जनसमाजसे पूजितहोकर रथमें सवार हो अपने सुन्दर भवनकी ओर गये। पुरवासीभी अपने-अपने घरमें आ देवताओंकी पूजा करनेलगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग

रामचन्द्रकी कौशल्या तथा लक्ष्मणसे वार्तालाप।

पुरवासियोंके चले जानेपर राजा दशरथने मन्त्रियोंसे विचारकर निश्चय किया कि, कल पुष्यनक्षत्र है। अतः कलही मुझे अपने पुत्र कमललोचन रामको राज्याभिषेककर युवराज बना देना चाहिए। इसके पश्चात् राजा दशरथने अन्तःपुरमें प्रवेशकर सूतको बुलाकर कहा कि, रामको पुनः यहाँ बुलाओ तब उनके वचनोंको सुनकर सूत लौटा और रामको ले आनेके लिए उनके घर चला। ड्योढ़ीवानोंने सूतके आनेकी सूचना रामको दी। सूतका आगमन सुन राम शंकित हो गए। सूतके प्रवेश करते ही रामने कहा कि 'तुम अपने आनेका कारण शीघ्र कहो।' रामके ऐसा कहनेपर सूत बोला—'राजा आपको देखना चाहते हैं, अतः जो उचित हो, वह कीजिए।' सूतका यह वचन सुनतेही राम शीघ्रही नरेश्वरके पुनः दर्शनके लिए राजभवनकी ओर गए। तब रामका आगमन सुनकर उनसे कुछ कहनेके लिए दशरथजी अपने भवनमें गए। रामने पिताके भवनमें प्रवेश करते ही; दूरसेही राजाको देखकर हाथ जोड़ प्रणाम किया। तब रामको प्रणाम करते देख, दशरथने उन्हें गले लगाया। फिर आसन देकर कहा कि, हे राम! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। दीर्घायु हो मैंने यथोचित भोग भोगे। यथेष्ट अन्न और बहुत-सी दक्षिणावाले अनेक यज्ञ किए। हे नरश्रेष्ठ! तुम जैसे पुत्रको पाकर मेरा दान और स्वाध्यायदि सार्थक हुआ। हे वीर! मैंने पूर्ण सुखानुभाव किया।

देवर्षि विप्र और आत्म-ऋणसे मुक्त हुआ। अब तुम्हें युवराज बनानेके अतिरिक्त मेरा और कोई कर्त्तव्य नहीं। अतः जो मैं तुमसे कहूँ, वही करो। इस समय समस्त भूत तुम्हें राजा बनाना चाहते हैं। अतः हे पुत्र! तुमको मैं अभिषिक्त करूँगा। हे पुत्र! यद्यपि मैं अशुभ स्वप्न उल्कापातादि देखता हूँ और दैवज्ञ लोग सूर्य, मंगल और राहु-प्रभृति क्रूर ग्रहोंसे मेरे नक्षत्रको आवेष्ठित बतलाते हैं। प्रायः ऐसे निमित्तोंसे राज-मृत्यु और घोर आपत्ति होती है। मनुष्योंकी बुद्धिभी चंचल होती है। अतः हे राघव! जब-तक मेरा चित्त मोहको प्राप्त नहीं होता, उससे पहले ही तुम राज्यभार ग्रहण करलो। ज्योतिषी कहते हैं, आज पुनर्वसु है। कल पुष्य नक्षत्र होगा। मेरी प्रबल उत्कण्ठा तुम्हें राज्याभिषेक देनेकी है। हे परन्तप! मैं तुम्हें कल युवराजमें अभिषिक्त करूँगा। इसलिए आज तुम्हें संयमी बनकर पत्थरके बिछौनेपर दाभ बिछाकर सोना चाहिए। तुम्हारे सब मित्र सावधान हो तुम्हारी रक्षा करें। क्योंकि ऐसे कार्योंमें विविध विघ्न हो जाते हैं। मेरा विचार है कि, मातुल-गृहमें स्थित भरतके आनेसे पूर्वही तुम्हारा अभिषेक हो जावेगा। यद्यपि मैं जानता हूँ कि, भरत तुम्हारा प्रेमी धर्मात्मा, सज्जन और जितेन्द्रिय है, परन्तु मेरा मत है कि धर्मात्मा और सज्जनोंका भी चित्त चंचल हो जाता है। अतः हे वत्स! कलको होनेवाले अभिषेकका तुम्हें स्मरण रहे। अब तुम अपने भवनको जाओ। यह सुन राम अपने भवन को गए। परन्तु वहाँसे तत्क्षणही मातृ-भवनकी ओर लौटे। उस समय कौशल्या रेशमी वस्त्र पहने देवालयमें श्रेय-कामना कर रही थीं। यह रामने देखा। रामाभिषेकका उत्सव सुन वहाँ पहलेहीसे सुमित्रा, लक्ष्मण और सीता आ गई थीं और कौशल्या नेत्र बन्द किए लक्ष्मण, सुमित्रा और सीता सहित ध्यानमग्न थीं। पुष्य नक्षत्रमें पुत्रका यौवराज्याभिषेक सुन प्राणायाम द्वारा जनार्दन पुरुषका ध्यान कर रही थीं। इसी समय रामने नियमानुसार माताके पास जा प्रणामकर हर्षित हो यह कहा कि, हे माता! पिता मुझे प्रजापालनमें नियुक्त करते हैं। उनकी आज्ञासे कल मेरा अभिषेक होगा। सीताको भी इस रात मेरे साथ व्रत करना चाहिए। उपाध्यायोंका कथन है। पिताने भी मुझसे ऐसाही कहा है। यहाँ कल होने-

वालेअभिषेक-योग्य जो भी माङ्गलिक कृत्य हों, सब मुझसे और सीतासे करवाओ। ऐसा सुन कौशल्याने हर्षित हो, रामसे चिरकाल-कांचित, यह वचन कहा। प्रिय राम! चिरञ्जीवी होओ। तुम्हारे मार्गावरोध नष्ट हों। तुम राज्यश्रीसे युक्त हो हमारे और सुमित्राके जातिवालोंको आनन्दित करो। हे पुत्र! तुम शुभ नक्षत्रमें मुझसे उत्पन्न हुए हो। तुमने अपने गुणोंसे पिताको प्रसन्न किया है। मेरे पुण्यकर्म अब सफल हुए, जब तुममें इक्ष्वाकुवंशकी श्री आ विराजी। माताके ऐसा कह चुकनेपर, रामने हाथ जोड़ विनीत भावसे खड़े हो लक्ष्मणकी ओर देख मुस्कराते हुए कहा—'हे लक्ष्मण! तुम मेरे साथ पृथ्वीका पालन करो। तुम मेरे द्वितीय अन्तरात्माके समान हो। यह राज्यश्री उपस्थित है। हे सुमित्रापुत्र लक्ष्मण! तुम इष्ट भोगों सहित राज्य-फल भोगो। मैं इस जीवनमें तुम्हारे ही लिए राज्य चाहता हूँ। इस प्रकार लक्ष्मणको कह कर, दोनों माताओंका अभिवादनकर और सीताके जानेके बिषयमें अनुज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्र अपने निवास-स्थानको चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

पाँचवाँ सर्ग

वशिष्ठजी द्वारा राम और सीताको रात्रिका उपवास कराना और अयोध्याकी सजावट।

इधर रामको वैसा सन्देश दे राजाने पुरोहित वशिष्ठजीको बुलाकर कहा कि, 'हे तपोधन! श्रेय और राज्य-लाभके लिए रामसे सपत्नीक उपवास करनेको कह आइए।' वशिष्ठने राजासे "तथास्तु" कहकर स्वयं राम-भवनकी ओर प्रस्थान किया। मन्त्रज्ञानी वशिष्ठ वीरवर रामको उपवास करानेके लिए ब्राह्मणोंके योग्य रथमें बैठकर गए। पाण्डुरवर्णके मेघवत् शोभित राज-भवनमें जाकर, भवनकी तीनों कक्षाओंमें रथ-सहित प्रवेश किया। राम माननीय वशिष्ठको आते देख आदरार्थ शीघ्र संभ्रम हो घरसे निकले। वशिष्ठजीने कहा—राम! आइए। इतनेमें राम शीघ्रही वशिष्ठके रथके निकट जा पहुँचे और उन्हें स्वयं रथसे उतारा। वशिष्ठ रामके ऐसे सद्व्यवहारसे सन्तुष्ट हो गए। उन्होंने सम्भाषणपूर्वक उनको हर्षित करते हुए कहा—तुम्हारे पिता प्रसन्न हैं कि, तुम कल राज्य पाओगे। उसके निमित्त आज सपत्नीक उपवास करो।

जैसे नहुषने ययातिको राज्याभिषिक्त किया था, वैसे ही कल प्रातःकाल तुम्हारे पिता तुमको अभिषिक्त करेंगे। ऐसा कहकर वशिष्ठने सपत्नीक रामको मन्त्रवत् उपवास करवाया। तदन्तर रामने गुरुवशिष्ठकी यथोचित पूजा की। इस प्रकार समझा-बुझाकर वशिष्ठ राम-भवनसे लौटे। राम भी अपने प्रियभाषी मित्रोंको उक्त वार्ता सुनाकर अपने भवनमें प्रवेश किया। इधर रामका वह भवन नर-नारियोंसे ऐसा युक्त हो गया था, जैसे—सुन्दर कमलों युक्त सर मत्त पक्षियोंसे शोभित हो जाता है। वशिष्ठ राम-भवनसे निकल दशरथ-भवनकी ओर चले। मार्गमें जन-समूह देखा। सब राजमार्गोंमें पुरुषोंकी भीड़ थी। स्थान-स्थानपर कौतुक हो रहे थे। जनसमूहके संघर्ष तथा हर्षातिरेकसे राजमार्ग में समुद्रके समान कलरव हो रहा था। अयोध्याके समस्त मार्गोंमें छिड़काव और शुद्धता हो रही थी। नगरीके समस्त द्वार मालाओंसे सज्जित थे। प्रत्येक गृहमें झण्डियाँ लगी थीं। उस समय प्रत्येक गृहके बालक, स्त्री पुरुष राज्याभिषेकसे उत्सुक हो सूर्योदयका मार्ग देख रहे थे। अलङ्कार भूत-प्रजाके प्रत्येक मनुष्यको आनन्दवर्द्धक अयोध्याके महोत्सवको देखनेकी इच्छा थी। वशिष्ठ जी इस प्रकारके जन-समूहसे होते हुए कठिनतासे आगे बढ़े और शनैः शनैः राज-भवनमें जा फँसे। श्वेत अभ्रक-शिखाके तुल्य प्रासादमें चढ़ दशरथसे मिले। उस समय वशिष्ठजी ऐसे शोभित हुए। वशिष्ठको आया देख, दशरथ अपना आसन छोड़ खड़े हो गए। उनसे अपना इष्ट-वृत पूछा। वशिष्ठने सिद्धिकी सूचना दी। तब गुरु द्वारा समाचार जाना, राजा दशरथने सभामण्डल त्याग अन्तःपुरमें प्रवेश किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

छठवाँ सर्ग

रामचन्द्र और सीताका व्रत-पालन तथा जनताका हर्षातिरेक।

पुरोहित वशिष्ठके चले जानेपर रामने स्नानकर विशालाक्षी सीता सहित ईश्वरका ध्यान किया। इस प्रकार भगवान्‌को प्रणामकर घृत-पात्र ले महा देवताको हवनकर, फिर यज्ञ-शेषका भक्षणकर नारायणका ध्यान करते हुए सुन्दर कुशके बिछौनेमें सीता सहित संयमी होकर विष्णोपासनागृहमें शयन किया। फिर एक प्रहर रात रहे उठ, अपने गृहको सम्यकरूपसे सजवाया।

फिर सुत मागध वन्दिजनोंके सुखकर वचनोंको सुनते हुए उन्होंने प्रातःकाल की संध्याकी और मधुसूदनको प्रसन्न और प्रणाम किया तथा निर्मल रेशमी वस्त्र पहनकर ब्राह्मणोंसे पाठ कराने लगे। ब्राह्मणोंके पुण्याहवाचनके गंभीर एवं मधुर स्वर तथा तूर्यघोषसे अयोध्या गूँजने लगी। सपत्नीक रामचन्द्रको उपवासी सुनकर समस्त अयोध्यावासी प्रसन्न हुए। पुरवासीगण प्रातःकालहीसे रामाभिषेकको सुनकर नगरको सजाने लगे। श्वेताभ्रशिखर सब देवालयों, चौराहों, बड़ो-बड़ी दूकानों, धनवानोंके गृहोंपर और सभा-भवनों तथा वृक्षोंपर ध्यजापताका फहराने लगीं। नटों, नर्तकों तथा गायकोंकी मन एवं कथाको सुखी करनेवाली बाणी जनता सुनने लगी। सभी रामाभिषेचनकी कथाको चत्वार तथा गृहोंमें परस्प कहते थे। बालकोंके समुदायभी अपने आँगनोंमें खेलते हुए रामभिषेचनहीकी कथा कर रहे थे। पुरवासियोंने रामाभिषेकार्थ धूपादि सुगन्धि एवं पुष्पमाल्यादिसे राजमार्गको सजा दिया। रात्रिमें प्रकाश के लिए स्थान-स्थानपर वृक्षाकार दीप-स्तम्भ बना दिये। इस प्रकार पुरको सजाकर पुरवासीगण रामके यौवराज्याभिषेचनकी इच्छा कर रहे थे। सभी सब स्थानोंमें एकत्र हो महाराज दशरथकी प्रशंसा कर रहे थे। वे कहते थे कि, ऐसे धर्मात्मा निष्पाप दशरथ चिरंजीवि हों। क्योंकि उनकी हम सबपर यह बड़ा भारी अनुग्रह है कि वे इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ हमारे लिए राम को राजा बनावेंगे। गर्वहीन रामचन्द्रजी चिरकाल तक हमारे राजा रहें। क्योंकि राम इष्ठ बनानेवाले, विद्वान्, धार्मिक, भ्रातृवत्सल और स्वभ्रातृवत् हम सबको प्रेम करनेवाले हैं। जब पुरवासियोंकी ऐसी वार्त्ता अन्य देशवासियोंने सुनी, तो विदेशीय जनभी आने लगे। रामभिषेकके दर्शनार्थ विदेशीय पुरुषोंके आगमनसे पुरी पूर्णतया भर गई। पूर्णिमाके समुद्र-नादके समान मनुष्योंका कलरव होने लगा। अयोध्या इन्द्रपुरीके समान शोभित होने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६॥

सातवाँ सर्ग

मन्थराका अट्टालिकापर चढ़ नगर-दर्शन और कैकेयीको उसका संवाद सुनाना।

रानी कैकेयीकी चिरकाल-पालिता एक मन्थरा नामकी दासी थी। वह स्वेच्छया उस चन्द्रसम प्रासादपर चढ़ी। वहाँसे उसने अयोध्याके राजमार्गोंको

जलसे सिक्त और कमलपत्रादिसे सज्जित देखा। सभी मार्ग ध्वजा-पताकाओं से युक्त हैं। अपूर्व शोभा हो रही है। देवमन्दिरोंके द्वार (चूने आदिसे लीप-पोतकर) श्वेत एवं सुन्दर बनाये गए हैं। सभी प्रकारकी वाद्य-ध्वनि हो रही है। अत्यन्त हर्षमें भरे हुए मनुष्योंसे सारा नगर पूर्णपूर्ण है और चतुर्दिक् वेद-ध्वनि गूँज रही है। अयोध्याकी ऐसी शोभा देख मन्थराको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने समीपहीमें पाण्डुर वर्णके रेशमी वस्त्र पहने हुए एक प्रसन्नवदना दाईको मन्थराने देखा तो, पूछा कि, आज राम-माता सती कौशल्या प्रसन्न होकर इतना धन दान क्यों कर रही हैं? महाराज दशरथ कौन-सा ऐसा कार्य करेंगे, जिससे कि, लोग इतने हर्षित हैं? तब मन्थराके पूछनेपर उस धात्रीने अति प्रसन्न हो कहा कि, रामचन्द्र राज्य-श्रीयुक्त होंगे और कल पुष्य नक्षत्रमें जितक्रोध निष्पाप रामको राजा दशरथ राज्यसे अभिषिक्त करेंगे। तब धात्रीके इन वचनों को सुनकर उस कैलाश शिखरोपम प्रासादसे कुबड़ी मन्थरा शीघ्रही नीचे उतरी और क्रोधसे जलती हुई वह पापिनी कैकेयीके शयनागारमें जाकर उससे बोली—'हे मूर्खे! उठ, मत सो। तुम्हारे लिए भय उपस्थित है। दुःखका प्रबल भार तुम्हें पीड़ित कर रहा है। क्या तुम अपना हित नहीं जानती। हे अनिष्टे! हे सुभगाकारे! तुम्हारा सौभाग्य ग्रीष्म ऋतुकी नदीके समान सूख रहा है। तब रुष्ट मन्थराके ऐसे कठोर वचनोंको सुनकर कैकेयी खिन्न हुई और बोली—'हे मन्थरे! मैं देख रही हूँ कि, तेरा मुख दुःखी है। क्या कोई अमङ्गल कार्य हो गया है? तब कैकेयीके इन मधुर बचनोंको सुन वाक्यविशारदा मन्थराने अधिक शोकका भाव दिखा एवम् कैकेयीकी हितैषिणी बन रामको पृथक करनेके लिए क्रोध पूर्वक कहा—हे देवि! तुम्हारा घोर अनिष्ट उपस्थित है। राजा दशरथ रामको राज्यसे अभिषिक्त करेंगे। मैं तुम्हारे हितके लिए भयभीत हो, अग्निमें जली हुई-सी शोकान्वित होकर यहाँ आई हूँ। क्योंकि तुम्हारे दुःखमें ही मेरा दुःख है। तुम्हारी वृद्धि में ही मेरी वृद्धि है। इसमें सन्देह नहीं। हे देवि! तुम नृप-कुलोत्पन्ना एवम् नृपकी ही पत्नी होकर, क्या नहीं जानती कि राजधर्म कितना उग्र है? तुम्हारे पति धर्मवादी होकरभी शठ एवम् प्रियवादी होते हुए भी दारुण हैं। परन्तु तुम जानती हो कि, वे सरल स्वभाव के हैं।

इसीसे तुमपर यह विपत्ति आई है। तुम्हारे पति तो तुमपर व्यर्थ ही सान्त्वना
प्रयोगकर कौशल्याको धन-सम्पन्न करने जा रहे हैं। वह तो बड़े ही दु
हृदयके हैं जो भरतको मामाके घर भेज रामको राज्य देनेके लिए प्रस्तुत है
सर्पके विषका ध्यान न कर, हित-कामनया उसे मातृवत् पालन करती हु
स्त्रीके समान ही तुमने पतिको धारण किया है। परन्तु समय पाकर श
सर्प जैसा व्यवहार करता है, वैसा ही व्यवहार आज राजा दशरथने तुमसे कि
है। उस पापीने मिथ्या सान्त्वना से तुम्हें मुग्धकर आज रामको राजा बन
कर तुम्हें स्वजनों सहित मार डाला है। ऐसे अवसरपर तुम शीघ्रही अपना हि
करो और अपने पुत्र तथा मुझकोभी बचाओ। मन्थराके ऐसे वचनोंको सु
कैकेयी शरदृऋतुके चन्द्रवत् हर्षित हो गई और शय्यासे उठकर अतीव सन्तु
तथा विस्मित हो कुबड़ीको दिव्य आभूषण दिए और प्रसन्न हो मन्थरा
कहा कि—"हेमन्थरे! यह जो तुमने मुझसे परम प्रिय हर्ष-समाचार कह
अब इसके बदले मैं तेरा क्या उपकार करूँ? मैं तो राम और भरतको विशे
भेदसे नहीं देखती। इसलिए राजाके रामकोही राज्य देनेमें सन्तुष्ट हूँ।
मन्थरे! यह जो तूने अमृतसमान वचन कहा है, उससे अधिक प्रिय मु
कुछ भी नहीं है। इसलिए इस प्रिय वार्त्ता-कथनके लिए मैं तुझे यह आभू
दे रही हूँ जिसे तू ले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

आठवाँ सर्ग

कैकेयीसे मंथराकी कुचक्र-रचना।

तब मंथराने उस आभूषणको फेंकते हुए दुःखसे पीड़ित होकर कहा—
मूढ़े! शोकसागरके मध्यमें अपनेको जानकर तुम असमय हर्षको किस
करती हो? हे दुःखयुक्ता देवि! तुम इस शोचनीय विषयमें भी, इस प्रकार प्र
हो; इससे मैं तमपर मनही मन हँसती हूँ। अरे! सौतके पुत्रकी वृद्धि जो म
के समान है, उसे जानकर कौन बुद्धिमती स्त्री प्रसन्न होगी? अतः मैं तुम्हा
दुर्बुद्धि पर शोक करती हूँ। भरतके द्वारा रामके साधारण राज्यसेभी भय
ऐसा जानकरही खिन्न हूँ। क्योंकि भीतसेही भय होता है। महाबाहु लक्
रामके आज्ञाकारी हैं, ऐसेही शत्रुघ्न और भरतभी हैं। भरतकाही राज्य

उत्पत्तिक्रमसे नियत है। ऐसी शंका लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे नहीं है। आर्षधर्म के विद्वान् रामकी राज्य-प्राप्तिके भयसे तुम्हारे पुत्रके लिए मुझे चिन्ता हो गई है। अवश्यही कौशल्या भाग्यवती हैं, क्योंकि उसका पुत्र कलको पुष्यनक्षत्र में युवराज बनेगा। रामको राज्य मिलनेपर तुम कौशल्याकी दासीवत् हाथ जोड़ खड़ी रहा करोगी। इस प्रकार मुझ जैसी तुमभी दासी बनोगी और तुम्हारा पुत्रभी दास हो जाएगा। इसपर रामका परिवारगण प्रसन्न होगा और भरतका नाश होनेपर तुम्हारी बहुयें अप्रसन्न होंगी। मंथराके इन वचनोंको सुनकर कैकेयीने कहा—राम धर्मज्ञ, गुणवान्, शान्त, कृतज्ञ, सत्यग्राही और नृपका जेष्ठ पुत्र है। अतः वही युवराज बन सकता है। वह भाई और भृत्योंको प्रजावत् पालेगा। उनके अभिषेकसे तू क्यों सन्तापित हो। हे मन्थरे! इस शुभ अवसर पर तू क्यों जल रही है? जैसा मेरे लिए भरत है, वैसाही राम भी है। क्योंकि वह मेरी शुश्रूषा कौशल्यासे भी अधिक करता है। यदि रामका राज्याभिषेक हो गया तो भरतका भी हो गया। क्योंकि वह अपनेही समान भाइयोंको समझता है। कैकेयीकी ऐसी बातें सुन मंथरा अत्यन्त दुःखी हुई और लम्बी स्वाँस ले कहने लगी—तुम अनर्थदर्शिनी हो। अब राम राजा होंगे, पीछे उनका पुत्र राजा बनेगा। इस प्रकार भरतके वंशका सर्वनाश होगा। हे भामिनि! राजाके सब पुत्र युवराज नहीं बनाए जाते। क्योंकि ऐसा करनेपर महान् अन्याय होता है। अतः राजा लोग अपने ज्येष्ठ पुत्रको राजगद्दी देते हैं। इससे सिद्ध है कि तुम्हारा पुत्र राजवंश और सुखोंसे अनाथवत् हो जाएगा। बाल्यावस्थासेही तुमने भरतको मातृकुलमें भेज दिया है इससे उनमें पूर्ण स्नेह नहीं है। शत्रुघ्नभी अपने भाईके साथ गये हैं। लक्ष्मणकी दृष्टिमें जैसे राम हैं, वैसेही भरतभी हैं। राम लक्ष्मणकी रक्षा करेगा। क्योंकि उन दोनोंमें अश्विनी कुमारोंके समान प्रीति सुनी जाती है। अतः लक्ष्मणके साथ राम कपट न करेगा परन्तु भरत के साथ अवश्यही कपट व्यवहार करेगा। अतः राम वनको चला जावे और भरत धर्मवत् राज्य पा लेवें। भरत तुम्हार सुखार्थ हैं, परन्तु राम तो स्वभावसेही वैसे हैं, अतः समृद्ध होनेके अनन्तर निर्धन हुआ पुरुष कैसे

जीवित रह सकता है ? स्वसौभाग्यके गर्वसे तुमने पहले कौशल्याव
अपमान किया था। अब वे उस बैरको क्यों न निकालेंगी ? कारण कि व
तुम्हारी सौत हैं। जब राम समुद्र और पर्वतोंसे युक्त पृथ्वी पालेंगे, त
तुम भरत सहित दीनता और पराभवको प्राप्त हो भोगोगी। ज्यों ही रा
पृथ्वी के राजा होंगे, त्यों ही भरत नष्ट हो जायेंगे। अतएव अपने पुत्र
लिए तुम राज्य तथा रामके लिए देशसे निकालेका प्रबंध करो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

नवाँ सर्ग

कैकेयीका कोप-भवन।

मंथराके इन वचनोंको सुनकर कैकेयी कहने लगी—अब मैं शीघ्रहि
रामको वन भेजूँगी और भरतको युवराजपदपर अभिषिक्त करूँगी। ऐस
सुन पापदर्शिनी मंथरा रामके लिए हँसती हुई बोली—हे कैकेयी ! तुम्हार
पुत्र जिस प्रकार राज्य पा सकता है उसका उपाय मैं तुमसे कहती हूँ—ज
बात तुमने मुझसे पहले कहा था, क्या उसे भूल गई ? यदि हाँ, तो मुझ
सुनो और सुनकर उसका अनुष्ठान करो। ऐसा सुन कैकेयी विस्तरेसे उ
बोली। हे मन्थरे ! मुझसे कोई ऐसा उपाय कहो जिससे भरत राज्य पा सकें
और राम राज्य न पा सकें। ऐसा सुन पापदर्शिनी मंथरा रामहितका हिंसन
करती बोली कि, हे कैकेयी ! पहले देवासुर संग्राममें राजर्षियोंके सहित तुम्हा
पति तुम्हें साथ लेकर इन्द्रकी सहायतार्थ गये थे। दक्षिण दिशाके दण्डकारण्
स्थानमें जो वैजयन्त नामका नगर है, वहाँ तिमिध्वज नामका राजा था। वह
के शंबर नामक मायावी महासुरसे इन्द्रका युद्ध हुआ था। उस महासंग्राममें
सोते हुए घायल पुरुषोंको रात्रिके समय राक्षस लोग मारे जाते थे। वह
महाराज दशरथने घोर युद्ध किया था और असुरोंके शस्त्रोंसे महाराज घायल
हो गए थे। तब तुमने शस्त्रोंसे मूर्छित राजाको संग्रामसे बाहर ले जाकर
उनकी रक्षा की थी। उन्होंने तुमसे प्रसन्न होकर, तुम्हें दो वर दिए थे, त
तुमने कहा था कि, "जब चाहूँगी तब माँग लूँगी।" उस समय राजा
"तथास्तु" कहकर तुम्हारे वचनका अनुमोदन किया था। इस कथाको मैं न

जानती थी सो तुम्हींने मुझसे कहा था। इस कथाका रामाभिषेचनमें प्रयोग करो। इन दोनों वरोंको इस प्रकार करो कि, प्रथम भरत राज्य पावे, द्वितीय रामको चौदह वर्षका बनवास हो। इससे प्रजाका दृढ़ स्नेह भरत पर हो जाएगा और उनका राज्य भी निश्चल हो जाएगा। अब तुम अभी मलिन वस्त्र पहनकर क्रोधमें कोप भवनमें लेट जाओ। तुम न तो किसीको ओर ध्यान देना और न तो कुछ बोलनाही। राजाको देखकर केवल रोती रहना। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि, तुम पतिकी प्यारी हो और राजा तुम्हारे लि अग्निमें भी प्रवेशकर सकते हैं। वे तुम्हें क्रोधित न देख सकेंगे। तुम्हारे प्रियके लिए प्राण देनेको भी प्रस्तुत हो जाएँगे। अतएव सरल स्वभावसे ही अपने सौभाग्यके बलको जाँचकर देखो। राजा जिन-जिन विविध रत्नोंको देंगे, उनमें मनको न लगाना। जो दो वर तुमको देवासुरोंके युद्धमें दिए थे, उन्हींका स्मरण कराना। इससे तुम्हारे पुत्रकी जड़ जम जाएगी और भविष्य में भी स्थिर रह सकेगा। जिस समय राम वनसे लौटकर आवेंगे, उस समय तक भरतको-बाहर-भीतर जड़ जम जाएगी। क्योंकि संगृहीत मनुष्य मित्रोंके साथ आत्मवान् हो जाता है। अतः नि यतासे राजाको रामाभिषेचनके संकल्प को रोक दो। इस अनर्थको अर्थ रूपसे ग्रहण करना चाहिए। तब प्रसन्नहो कैकेयी बोली—हे श्रेष्ठे! तू उत्तम मंत्रणा देनेवाली है, इसे मैं नहीं जानती थी। तू अच्छी बुद्धिवाली और मेरी हितचिन्तक है। हे कुब्जे! मैं राजाकी इच्छा सम्यक्तम न जान सकी। संसारमें सबही वक्र लोग परम पापी हैं। तू वायुसे पद्मपुष्पके समान झुकी हुई प्रियदर्शना है। तेरी छाती कन्धों तक पहुँची हुई है! नीचे सुन्दर नाभिवान् उदर ऐसा प्रतीत होता है कि, मानों छातीकी ऊँचाई देख वह शर्माकर पतला हो गया है। तेरी जाँघें स्तन भरे हुए और मोटे हैं। तेरा मुख चन्द्रवत् प्रकाशित सघनवालों सहित, कमर भूषण से शोभित है। तेरी जाँघें उत्तम और भरी होनेसे मानों एकमें एक मिली हैं। तेरी पीठ सक्थियोंसे चौड़ी हो गई है। जब तू मेरे आगे-आगे चलती है, तब तू अतीव शोभित होती है। तेरा हृदय शंबरासुरके समान अनन्तमायाका विश्राम है। तुझमें सब प्रकारकी बुद्धि, राजनीति और माया विद्यमान् है,

तुझे मैं सोनेकी माला दूँगी। भरतको राज्य और रामको वन चले जाने
तुझे सुगंधि और सुवर्णसे सजा दूँगी। तू दिव्य वस्त्रोंको पहन देवताओं
समान विचरने लगेगी। जिस प्रकार तू मेरे चरणोंपर गिरती है, वैसेही तु
सर्वाभरण भूषिता देख अन्य कुबड़ियाँ तेरे पाँव पड़ेगी। मंथरा इस प्रक
सराही जानेपर अग्निशिखाके समान शुभ्रशय्यामें सोनेवाली कैकेयीसे मन्थ
कहा कि, उठो, अपना कल्याण करो और राजाको अपना परिचय दो। इसप्रक
प्रोत्साहित होकर मन्थराके साथ कैकेयी क्रोधागारमें गई। तब कुबड़ी द्वा
बहकाई हुई हेमोपमा कैकेयी भूमिमें लेटकर मन्थरासे कहने लगी कि,
यहाँ या तो प्राणोंका त्याग करूँगी या रामको बनवास और भरतको रा
दिला कर छोड़ूँगी। मुझे सुवर्ण और रत्न आदि कुछसे भी कोई प्रयोज
नहीं है। यदि रामको राज्य दिया जाएगा तो मेरे जीवनका अन्त
जाएगा। इसपर मन्थराने गूढ़ वाक्योंमें कहा—यदि राम राज्य पा लेगा
अवश्यही तुम दुःखी होओगी। अतएव जिस प्रकारभी हो सके भरत
राज्य दिलाओ। इन वचन वाणोंसे छेदित कैकेयी बोली—हे कुब्जे!
तो तू रामको वनमें गया हुआ और भरतको राज्य मिला हुआ देखेगी
मेरी मृत्युका वर्णन करेगी। ऐसा कह भूमिमें सब दिव्याभरणोंको फ
किन्नरीके समान विना बिछौनेके भूमिशायिनी हो गई। उसका मुख
क्रोधसे पूर्ण, भूषणविहीन और अंधेरी रात्रिवत् उसकी दशा हो गई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

दसवाँ सर्ग

कैकेयीके कोष-भवन में दशरथकी दुःखद अवस्था।

पापदर्शिनी मन्थरा द्वारा बहकी कैकेयी किन्नरीवत् भूमिमें लेट गई
शनैः शनैः कहने लगी। साथ ही उसके वाक्योंसे मोहित होकर नागकन्
समान लम्बी साँस ले, आत्मसुखावह मार्गको सोचती रही। इधर अ
प्रयोगकी सिद्धि जान मंथरा अत्यन्त प्रसन्न हुई। तथा क्रोधित रानीके भ
भाँति निश्चयकर, भौहोंको तान, विचित्र माला, दिव्य आभूषणोंको, स
इतस्ततः फेंके हुए दिव्य आभूषणोंसे, पृथ्वी नक्षत्रवान् आकाशके स

शोभित होने लगी। इधर महाराज दशरथने रामाभिषेचनकी सबको शुभ सूचना देकर, सभासदोंकी सम्मतिसे रनवासमें यह शुभ सूचना स्वयं अपनी प्रिया रानियोंको सुनानेके लिए प्रथम कैकेयीके श्रेष्ठभवनमें प्रवेश किया। जब राहुग्रसित चन्द्रमावत् पाण्डुराभ्रके समान शुभ्र, शुक सरिक क्रौंच हंसादि पक्षियोंसे कूजित, विचित्र वाद्योंसे शब्दायमान, लताचित्र, चम्पक पुष्पादिसे शोभित हाथी दाँत, चाँदी-सोनेके बने उत्तम आसनोंसे युक्त, विविध अन्न पान भक्ष भोज्योंसे, उत्पन्न रत्न भूषणादि इन्द्रपुरीके समान समृद्धिवान् अपने अं: पुरमें प्रवेश कर, कामी राजा दशरथने उत्तम शयन पर कैकेयीको न देखा, तब कैकेयीके विषयमें अनुसन्धान करने लगे। राजाको ऐसे ही पूछने लगे, जैसे पुरको न जानकर स्वार्थ लिप्सु अपंडितोंका भाषण होता है, वैसेही राजा का भाषण था। इसी बीच द्वारपालने आकर हाथ जोड़कर कहा। श्रीमान्! रानी बहुत क्रुद्ध हैं, अभी क्रोधागारमें गई हैं। द्वारपालके ऐसे बचनोंको सुन, राजा बहुत खिन्न चित्त हुए और पुनः व्याकुलेन्द्रिय हो सोचने लगे। कोपभवनमें कैकेयीको भूमिनें पड़ी और अनुचित ढंगसे लेटी देख दुःखसे राजा संतापित हुए। क्यों न हो, वृद्धकी युव. भार्या प्राणोंसे भी प्यारी होती है। वहाँ निष्पाप राजाने पापसंकल्पा रानी को लताके समान विच्छिन्न, देवता तुल्य पतित, अप्सरावत् च्युत, मायाके समान परिभ्रष्ट और जालमें फँसी तथा वनमें व्याधद्वारा विदग्ध तीरसे विधी हुई हथिनीके समान देखकर राजा स्नेहके वश मनमें महागजके समान दुःखी हुए तथा कमल नयनी कैकेयीको दोनों हाथोंसे उठाकर कहा। हे देवि! मैं तेरे क्रोधित होनेका उपाय नहीं जानता। किसने तुम्हारा अपमान किया है? जो तुम धूलमें लेटी हो। हे मेरी कल्याणचेतसि! तुम भूमिमें क्यों पड़ी हो? तू भूतोपहतचेतसके समान मेरे चित्त को क्यों नचा रही हो? मेरे यहाँ कुशल वैद्य हैं। अपने रोगको कहो—वे तुम्हें सुखी करेंगे। तू किसका भला करना चाहती है और किसने तेरा अपमान किया है? तुम मत रोवो और न अपनेको दुःखित करो। कहो, किस धनीको दरिद्र तथा किस दरिद्रको धनवान् बना दूँ। मैं और मेरे सब वशवर्ती तेरे वशानुग हैं। अहः मैं तुम्हारे किसी अभिप्रायको नष्ट नहीं करसकता।

मैं तुम्हारे लिए अपने प्राणदान भी कर सकता हूँ। क्योंकि तुम तो मेरे व को जानती हो। तुम मुझसे भय न करो, जो तुम्हारे मनमें हो वह कहो मैं अपने पुत्रोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे प्रसन्न होनेका का करूँगा। जहाँ तक सूर्य प्रकाशता है। वहाँ तक मेरा राज्य है। हे शोभने तुम ऐसा कष्ट क्यों सहन कर रही हो? केकयी! उठो। जिस प्रकार सूर्य अं कारको नष्ट करता है, वैसेही मैं तुम्हारे भयको नष्ट करूँगा! पतिके इ प्रकार आश्वासन देनेपर कैकेयी पुनः पतिको दुःखित करनेवाले वच कहने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका दशवाँ सर्ग समाप्त॥ १०॥

ग्यारहवाँ सर्ग

कैकेयीका निजाशय-प्रकाश तथा राजासे दो वरदान याँचना।

दशरथसे कैकेयीने कहा—हे देव! न मुझसे किसीने विरोध किया और न अपमान ही किया है। मेरा जो अभिप्राय है, उसे आपसे करान चाहती हूँ। यदि उसे करना चाहो तो पहले प्रतिज्ञा करो। तब दशरथ कहा—प्रिये! क्या तुम नहीं जानती हो कि, रामको छोड़कर मेरे लिए तुम अधिक कोई प्यारा संसार भरमें नहीं है? उस रामकी शपथ खाकर कहत हूँ कि तेरे कथनको करूँगा। अपनोंमें तथा अपने पुत्रोंमें जिस मनुज-श्रे रामको श्रेष्ठ समझता हूँ; उसकी शपथ खाता हूँ कि, तेरे कथनको करूँगा उक्त वाक्योंसे संतुष्ट कैकेयी अपने अभीष्टको सिद्ध हुई जान बोली—जिस प्रका तुम शपथ कर रहो और "तुझे वर दिया" ऐसा कहते हो, उसे तेंतीस इन्द्र प्रमुख देवता सुनें। तथा चन्द्र, सूर्य, आकाश, ग्रह, रात्रि, दिन, दिशाए जगत, पृथ्वी, गंधर्व, राक्षस, निशाचर, महाभूत, गृहदेवता भी तुम्हारे उ कथनको जान लें। सुन लें। ऐसा कह और दीर्घ निःश्वास लेकर कैकेयी काम-मोहित राजासे कहाकि, 'हे राजन्! पुराने वृत्तका स्मरण करो, ज देवासुर संग्राममें शत्रुओंने तुम्हारे जीवनपर आपत्तिकर दी थी। वहाँ मैंने तुम्हारी रक्षा की थी। तुमने सचेत होकर मुझे दो वर दिए थे। उन्हीं वरोंको आज तुमसे चाहती हूँ। यदि उन दो वरोंको इस समय धर्म-प्रतिज्ञ करके भी मुझे न दोगे, तो इस प्रकार तुमसे अपमानित होकर मैं अभी प्रा

त्याग दूँगी।' फिर तो कैकेयीके वशीभूत होकर अपने विनाशार्थ उसके वाक्य-जालमें फँस गए। फिर वरदाता काममोहित राजासे कैकेयीने कहा—हे देव! उन दो वरोंको तुम्हें देना चाहिए, जिन्हें मैं तुमसे कहती हूँ, सुनिए। आपने जो रामाभिषेकका समारंभ किया है, इसी समारंभमें मेरे पुत्रको अभिसिक्त कीजिए। द्वितीय वर जो तुमने उस देवासुर युद्धमें मुझे सप्रेम दिया है, उसका भी यही समय है। चौदह वर्ष पर्यन्त राम जटा, चर्म, धारणकर तपस्वी वेशसे दण्डकारण्यमें रहें और आज ही से भरत अकण्टक यौवराज्य सेवन करें। मैं यही चाहती हूँ। मैं आजही रामको वन जाता हुआ देखूँ। हे राजेश्वर! सत्यवादी बन, अपने कुल, शील और जन्मकी रक्षा करो। क्योंकि लोक-परलोकमें सत्यकीही प्रशंसा है और सत्यही मनुष्योंका हित करनेवाला है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

बारहवाँ सर्ग

कैकेयीकी भीषण माँग सुन दशरथकी मूर्छा और उसे समझानेकी चेष्टा।

कैकेयीके इन कठोर वचनोंको सुनकर राजा चिन्तित हो गए। फिर इसी प्रकार बोले कि, क्या यह मैं दिनहीमें स्वप्न देख रहा हूँ? क्या चित्तविभ्रम हो गया है? क्या मुझे भूत चिपट गया है? क्या यह मेरेही मनका विचार है? ऐसा सोचते हुए राजाको सुख न मिला। वे ज्योंही सचेत होते तो त्योंही कैकेयीके वाक्योंका स्मरणकर दुःखित हो जाते। तब जिस प्रकार बाघिनीको देखकर मृग व्यथित हो जाता है, उसी प्रकार दशरथभी व्यथित और दुःखित हो दीर्घ-निःश्वास लेते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। जैसे मन्त्र-बाधित सर्पकी दशा हो जाती है; उनकी वैसीही दशा हो गई। वह प्रलाप करते हुए बोले-'अहो धिक्कार है'। वे पुनः शोकाकुल हो मूर्छित हो गये। जब बहुत देरमें सचेत हुए, तब अग्निके समान जलते हुए तेजसे क्रोधपूर्वक कैकेयीसे कहने लगे, अयि नृशंसे! दुष्टचरिते! इस कुलको नाश करनेवाली! रामने तेरा क्या बिगाड़ा? राम तो माताके समान ही तेरी सेवा करता है। उसीके अनर्थके लिए तू क्यों उद्यत हुई है? इससे तो ज्ञात होता है कि, तू मेरे ही विनाशके लिए इस गृहमें प्रविष्ट हुई है। तू महा विषवाली सर्पिणीके समान

नृपसुता है। भला जिस रामका सारा संसार गुणगान करता है, उस अपने पुत्रको किस अपराधसे त्याग दूँ ? मैं, कौशल्या, सुमित्रा और राजलक्ष्मीको भी त्याग सकता हूँ। परन्तु पितृवत्सल रामके बिना तो मैं जीवित ही नहीं रह सकता। जब मैं अपने ज्येष्ठ पुत्रको देखता हूँ तो उसमें मेरी परम प्रीति हो जाती है। रामको देखे बिना तो मेरी चेतना ही नष्ट हो जाती है। चाहे समस्त संसार बिना सूर्यके रह जाय, चाहे बिना जलके ही अन्न उत्पन्न हो जाय, परन्तु रामके बिना मेरा जीना नहीं हो सकता। हे पापनिश्चये! इस निश्चयको अभी त्याग दे, मैं तेरे पाँवोंमें सिर धरता हूँ, तू मुझसे प्रसन्न हो। हे पापिनी! तूने इस दारुण विचारको कैसे सोचा? अब जो तू भरतके प्रियाप्रियके लिए मुझे जाँचती है, तो तूने जो रामके प्रति कहा था कि—"वह मेरा ही ज्येष्ठ पुत्र है और धर्मसे भी राम ज्येष्ठ है।" यह सब तेरा कथन तेरी ही सेवाके लिये कहा होगा। अब उसे सुन तू शोकसन्तप्ता हो मुझे क्यों सता रही है। इस शून्य घरमें तू मुझे भूतबाधा हुई। यह कह कि, तू किसीके बहकावेमें तो नहीं आ गई? इक्ष्वाकु वंशियोंमें यह महान् अन्याय प्राप्त हुआ है। न्याय-सम्मत कार्यमें यह अन्याय उपस्थित है कि, तेरी मति विपरीत हो गई। हे विशालाक्षि! तूने आज तक कोई अयुक्त या अप्रिय कार्य मेरे आगे नहीं किया, जिससे कि मैं तुझसे श्रद्धा न करूँगा। परन्तु तेरे लिए भरतके समान ही महात्मा राम भी है। तुमने उसके विषयमें बहुतसी प्रशंसाएँ कही हैं। फिर इस समय रामको चौदह वर्षका बनवास क्यों दिलाना चाहती है? इस धर्मात्मा अत्यन्त सुकुमार रामका बास भयानक वनमें क्यों चाहती है? हे शुभलोचने! वह तो तेरा सेवक है। फिर ऐसे अभिराम रामको तू बन देना क्यों चाहती है? वह भरतसे भी अधिक तेरी सेवा करता है। इसपर भी तू भरतसे अधिक रामको नहीं देखती। नर-श्रेष्ठ रामसे बढ़कर गुरुजनोंकी सेवा करनेवाला, उनका गौरव प्रदान करनेवाला, उनकी बातोंपर विश्वास करनेवाला और वे जो भी आज्ञा दें, उसका तुरन्त पालन करनेवाला दूसरा कौन है? मेर हजारों स्त्रियाँ हैं और बहुतसे भृत्यजन हैं, परन्तु किसके मुँहसे रामचन्द्रके सम्बन्धमें सच्ची या झूठी किसी प्रकारकी निन्दा नहीं सुनी जाती। सत्य,

दान, तप, त्याग, मैत्री, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरु-सुश्रुषा ये सभी गुण राममें स्थिर रूपसे रहते हैं। महर्षियोंके समान तेजस्वी उन सीधे-सादे देवतुल्य उन रामका तू क्यों अनिष्ट करना चाहती है? राम सबसे प्रिय बोलते हैं। उन्होंने कभी किसीको अप्रिय वचन कहा हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता। तब ऐसे लोक-प्रिय रामको मैं तेरे लिए अप्रिय बात कैसे सुनाऊँगा? जिनमें क्षमा, सत्य-परायणता, धर्म, कृतज्ञता और समस्त जीवोंके प्रति रक्षा भरी हुई है, उनके बिना मेरी क्या गति होगी? हे कैकेयी! मैं वृद्ध हूँ, मृत्युके तटपर बैठा हूँ और दीनभावसे तुमसे कहता हूँ, मुझपर दयनीय दयाकर। समुद्र पर्यन्त शरीरपर जो कुछ मिल सकता है, वह सब मैं तुझे दे दूँगा, किन्तु तू मुझे मृत्युके मुखमें न डाल। मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ और तू रामको अपनी शरण में ले ले, जिससे मुझे अधर्म न लगे। इस प्रकार महाराज दशरथ दुःखसे सन्तप्त हो विलापकर रहे थे। उनकी चेतना बार-बार लुप्त हो जाती थी। उनके मस्तिष्कमें बार-बार चक्कर आ रहा था और वे शोकसागरमें डूबकर उससे पार होनेके लिए उससे बारम्बार अनुनय विनय कर रहे थे। किन्तु कैकेयी का हृदय नहीं पिघला। वह और भी भीषण रूप धारण करके अत्यन्त कठोर वचन कहने लगी, 'राजन्! यदि दो वरदान देकर आप फिर उनके लिए पश्चाताप करते हैं तो इस भूमण्डलपर अपनी धार्मिकताका ढिंढोरा कैसे पीट सकेंगे? जब बहुतसे राजर्षि एकत्रित होकर मेरे वरदानके सम्बन्ध में आपसे वार्त्ता करेंगे, उस समय आप उन्हें क्या उत्तर देंगे? यही कहेंगे न कि, जिस कैकेयीके प्रसादसे मैं युद्धमें जीता रहा, जिसने वहाँ युद्धमें मेरी रक्षा की, आज मैंने उसे वर देकर न दिया। हे राजन्! पहिले वर देकर पीछे और बातें करते हो। नरेन्द्रोंके मध्यमें यह पाप करते हो। देखो, शैव्यने सत्यसे बँधकर कबूतरकी रक्षार्थ स्वमांसको दिया। अलर्कने अपने नेत्रोंको देकर उत्तम गति पाई थी। सागरभी समयकी नियति कर अपनी गतिको नहीं पलता। अब पूर्वकी बात समझकर बोलिए। परन्तु आप तो धर्मको तिलांजलि देकर रामको राज्यपर अभिषिक्त करके सर्वदाके लिए कौशल्याके साथ मौज उड़ाना चाहते हैं। अब धर्म हो या अधर्म—

आपने जिस बातके लिए मुझसे प्रतिज्ञा कर ली है, इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि रामका राज्याभिषेक होगा, तो मैं आपके समक्ष आपके देखते ही देखते आजही विष-पानकर प्राण त्याग दूँगी। मैं अपनी और भरतकी शपथ खाकर कहती हूँ कि रामको वनमें भेजनेके सिवा, दूसरे किसी वरसे मुझे सन्तोष नहीं हो सकता। इतना कहकर कैकेयी चुप हो गई और राजाके विलापपर उसने कुछ भी ध्यान न दिया। कैकेयीके इन बातोंसे राजाने समझ लिया कि, यह अवश्य ही रामका वनवास और भरतका राज्याभिषेक चाहती है। तब थोड़ी देरतक दशरथजी मौन रहे और उस अप्रियवादिनी प्रियाकी ओर निमेषपर्यन्त देखते रहे। उसकी वज्रके समान दुःख शोकमयी अप्रियवाणीको सुनकर राजा फिर बड़े दुःखी हुए। उस देवी के व्यवसाय और शपथोंको तथा रामको समझकर कटे वृक्षके समान गिर पड़े! उनकी दशा नष्टचित्त उन्मत्तके समान या विकारवान् रोगीके समान अथवा नष्ट-तेज सर्पके समान हो गई। तब वे दीन और आतुर स्वरसे पुनः कैकेयीसे कहने लगे—'तुझे इस अनर्थका अर्थरूप उपदेश किसने दिया? भूतोपहत चित्तके समान मुझसे बोलती हुई लज्जा नहीं करती? मैं तेरे ऐसे शीलको पहले नहीं जानता था। मैं देखता हूँ तेरा बालस्वभाव इस समय विपरीत हो गया है। किस भयसे तू ऐसा वर माँगती है? तू जो राष्ट्रमें भरतको बैठा और रामको वन भेजना चाहती है। तू अपने इस भावको यहीं रोक ले। मैं सोचता हूँ कि तूने मुझसे यह बातें झूठ-मूठमें कही है। हे नृसंशे, पापसंकल्पे! यदि तू अपने पतिका, भरतका और संसारका भला चाहती है तो देख क्या मुझे और रामको इससे कम दुःख है? जब बहुतसे गुणवान पुरुष रामके विषयमें पूछेंगे, तब मैं क्या कहूँगा? यही न कि कैकेयी के कहनेपर मैंने रामको वन भेज दिया? यदि सत्य भी कहूँगा तो भी उनके समक्ष यह असत्य ही होगा। रामको वन देनेपर कौशल्या मुझसे क्या कहेगी? मैं उसका अप्रिय कर फिर उससे क्या कहूँगा? कौशल्या जब-जब मिलती है वह प्रियपुत्रा, प्रियंवदा मेरा सदैव भला चाहती है। हे कैकेयी! मैंने जबसे तुझे सत्कारपूर्वक माना है, तबसे उसका सत्कार नहीं किया है। तेरे साथ भलाई

करनेका मुझे यही फल मिला है, जैसे रोगीको अपथ्य। रामका विरोध औरवन निकाला देखकर भयभीत हो सुमित्राभी मुझमें क्या विश्वास करेगी? अब तो मुझे पंचत्व और रामको वनवास ये दोनों अशुभ संवाद सीता शीघ्र सुनेगी। और वह हिमवान् पर्वतपर किन्नरीके समान शोक करती हुई वह वैदेही मृत्युको प्राप्त होगी। रामको बनवास और सीता का विलाप मुझे चिरकाल पर्यन्त जीवित नहीं रख सकेगा और तू विधवा होकर पुत्रको राज्य करायेगी। हे देवि! रामके वन चले जानेपर मैं जीता नहीं रह सकता। जैसे पुरुष मदिराको पहले मोहिनी मानता और पीछे विषय-संयुक्ता समझता है, वैसेही मैं भी अब तक तुझे सती मानता रहा, परतु अब मैंने समझा कि तू सती रूपा असती है। जैसे व्याध मृगको गीतसे रिझाकर मारता है, वैसे ही तू ने मुझे मिथ्या सान्त्वनासे रिझाया और अब मेरी सुरापी ब्राह्मण के समान मार्गमें निन्दा होगी। हा, महा दुःख और कष्ट है कि वर देकर मैं तेरे कटु बचनोंको सुनता हूँ। मेरे पूर्व पाप! मुझ पापीने तुझ पापिनीको चिरकाल तक वैसे ही पाला,जैसे कोई मूर्खतावश अपने गलेमें रस्सेका फन्दा डालता है। जैसे बालक हाथसे काले सर्पको ग्रहण करता है, वैसेही मैंने तेरा साथकर मृत्युको नहीं देखा। यदि संसारने मेरी निन्दा की तो बुरा नहीं। क्योंकि मुझ दुरात्माने महात्मा रामका पैतृक राज्य छुड़ाया। जनता कहेगी कि राजा दशरथ बड़ा कामी है, वह स्त्रीके कहने पर प्रिय पुत्रको वन देगा। राम तो व्रत, ब्रह्मचर्य और गुरु सेवा से पहलेहीसे दुर्बल है, जिसे अब सुख के समय वन भेजा जायगा। मैं भली भाँति जानता हूँ कि रामसे "वन जाओ" ऐसा कहतेही वह "बहुत अच्छा" कह देगा। क्योंकि उससे दोबारा कहने की आवश्यकता नहीं होती। यदि मेरे कहने पर राम बन न जाता तो अच्छा था। पर वह वैसा क्यों करेगा? रामको बन मिलतेही सारा संसार मुझे धिक्कार देगा। अदमनीय मृत्यु मुझे अवश्यही यमके द्वारे पहुँचा देगी। मेरे मरजाने और रामके बनजानेपर तू मेरे प्रिय पुरुषों पर कौनसी विपत्ति न डालेगी? यदि कौसल्या मुझको और रामको तथा सुमित्रा के दो पुत्रोंको भी न देखेगी, तो वह दुःखोंको सहन न कर सकनेसे मेरे समानही मृत्युको प्राप्त होगी। हे कैकेयी! मुझे, कौसल्या; सुमित्रा और

तीनों पुत्रोंके साथ नरक में डालकर तू सुखी हो। क्योंकि अब मैंने और रामने इक्ष्वाकुवंशको त्याग दिया, यह जान। अब तूही इसका पालन करेगी। यदि भरतको रामका बनवास अच्छा लगे, तो वह मेरा मृतक-संस्कार न करे। अरी अनार्ये कैकेयी ! मेरे मर जाने और रामके वन चले जानेपर तू सकामा हो जा। हे राजपुत्री ! अब तू भाग्यसे मेरे घर विधवा होकर बैठ पुत्र सहित राज्य करावेगी ! संसारमें अवज्ञा तो मेरी होगी। हा, सर्वदा हाथी घोड़े और रथमें जानेवाला राम किस प्रकार घने बनमें पैदल चलेगा ? जिनका चिरकालसे सुखमें ही समय बीता है, वे राम गेरुए वस्त्र पहनकर वन में कैसे रह सकेंगे ? रामचन्द्रको संकटमें पड़े देखकर तो पिता पुत्रको त्याग देंगे और अनुरागिनी स्त्रियाँ भी अपने पतियोंका परित्याग कर देंगी। इस प्रकार समस्त जगत्का व्यवहार ही विपरीत हो जायगा। देवकुमारसे कमनीय रूपवाले अपने पुत्र रामको जब वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर सामने आते देखता हूँ तो इन नेत्रोंसे उनकी शोभा निहारकरनिहाल हो जाता हूँ। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो मैं फिर युवा हो गया। कदाचित् सूर्यके विना भी संसारका काम चल जाय, इन्द्रके वर्षा न करनेपर भी प्राणियोंका जीवन सुरक्षित रह जाय; किन्तु रामको यहाँसे वनकी ओर जाते देखकर कोई भी जीवित नहीं रह सकता—मेरी ऐसी ही धारणा है। हे क्रूरे कैकेयी ! यह तू संकटमें पड़े हुए पर प्रहार कर रही है। अरी ! जब तू दुराग्रहपूर्वक ऐसी कठोर बातें मुँहसे निकालती है, उस समय तेरे दाँतोंके हजारों टुकड़े होकर गिर क्यों नहीं पड़ते ? रामचन्द्रने तो अभीतक अकल्याणकारी एवं अप्रियवाणी मुँहसे नहीं निकाली है और सचमुच वह कठोर शब्द तो बोलना ही नहीं जानता। ऐसी दशामें तू रामको दोषपूर्ण कैसे बतलाती है ? तू भले ही अग्निमें जल मरे, आत्महत्या करे अथवा सहस्रों टुकड़े हो पृथ्वीमें मिल जावे। अरी केकयराजवंशको कलंकित करनेवाली ! तूने तो यह बड़ा ही भीषण-भाषण किया है, जिसकी ओर मैं ध्यान नहीं देना चाहता और तुझे उस्तरेकी ही उपमा शोभती है,। तू सदैव अप्रिय किंतु मिथ्या ही बोलती है। तेरी बुद्धि बड़ी ही दुष्ट है और तू अपने कुलको नष्ट करनेवाली है। तू मेरे जीते ही मेरे हृदयमें जलन, पीड़ा तथा वेदना उत्पन्न करना

चाहती है। तू मेरे हृदयको दहलानेवाली है। इसलिए मैं तुझे जीवित तक देखना नहीं चाहता। यदि राम वनमें चला जाय, तो मेरी मृत्यु अवश्यंभावी है। प्राण निकल जानेपर सुखकी बात ही क्या हो सकती है? आत्मवान् पुरुष बिना पुत्रके सुख कैसे पा सकते हैं? इसलिए हे देवि! तू मेरा अहित या अकल्याण मत कर। मैं तेरे पैर छूनेको तैयार हूँ। तू मुझपर दया कर। इस प्रकार महाराज दशरथ उस हठीली स्त्रीके वशमें पड़कर अनाथकी भाँति विलाप करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१२॥

तेरहवाँ सर्ग

शोकाकुल और क्रुद्ध राजा दशरथका विलाप तथा कैकेयीको उनके समझानेकी असफलता और दीनता वर्णन।

तब जिस प्रकार पुण्य-क्षीण होने पर राजा ययाति देवलोकसे गिर पड़े थे, वैसेही राजा दशरथ भी अपूजनीय कैकेयीके चरणोंमें गिर पड़े। परन्तु इसपर भी अनर्थरूपा कैकेयी स्वकार्य सिद्ध होते न देखकर उन्हीं वरोंके लिए निर्भय हो राजाको भय दिखाने लगी और बोली—इसीपर तुम अपनेको सत्यवादी कहते हो, जब कि मेरे दिए हुए वरोंको धारण कर रहे हो। कैकेयी के ऐसा कहने पर राजा दशरथ एक मुहूर्त्त तक विह्वल पड़े रहे। फिर बोले—अरी मेरी शत्रुणी अनार्ये! मेरे मरजाने और पुरुषोत्तम रामके वन चले जाने पर तू सकामा सुखिनी होना। परन्तु मुझे दुःख है कि जब स्वर्गमें देवता मुझसे रामकी कुशल पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगा? क्या यही न कि कैकेयीकी प्रसन्नताके लिए मैंने रामको वनमें भेज दिया। किन्तु इस सत्यको भी वे असत्य समझेंगे। मुझ पुत्र-हीनको तो बड़े कठिन परिश्रमसे राम-सा वीर पुत्र मिला है जिसे मैं कैसे त्याग करूँगा? मेरा राम शूरवीर, विद्वान्, जितक्रोध, क्षमापरायण और कमलनयन है। मैं उसे कैसे देशसे निकाल दूँ? कैसे उस इन्दीवरश्याम, दीर्घ-बाहु रामको दण्डकवन में भेजूँ? यदि इस दुःखको न सहते हुए मेरा संक्रमण हो जाय तो रामके सच्चे सुखको पाऊँ। हे नृशंसे! पाप-संकल्पे कैकेयी! तू सत्यपराक्रम रामको मेरे विप्रियके लिए क्यों नियुक्त करती है? इससे मेरा इस

संसारमें अतुल अपयश और पराभव निश्चित है। इस प्रकार परिश्रान्त-चित्त राजाको विलाप करते हुए सूर्यास्त हो गया और रजनी आकर वर्तमान हो गई। यद्यपि वह रात्रि चन्द्रमण्डल से शोभित थी; तथापि वह विलपते राजाको शांतिदायक न हुई। राजा उसी प्रकार उष्ण निःश्वास लेते हुए, आकाशकी ओर देख, आर्तवत् दुःखसे कहने लगे—हे चन्द्रमण्डलमण्डित रात्रि! मैं तेरे प्रभातको नहीं चाहता। हे भद्रे! मुझपर दयाकर! मैं हाथ जोड़ता हूँ। अथवा शीघ्रही चली जा। मैं इस निर्घृणा कैकेयीको नहीं देखना चाहता, जिसके कारण यह महान् दुःख उपस्थित है। तब ऐसा कह चुकने पर राजाने पुनः कैकेयीको प्रसन्नकर हाथजोड़ कहना आरंभ किया कि, हे भद्रे! मैं दीन हो तुम्हारे वश हूँ। तू इस गतायुष राजा पर अब तो कुछ कृपा कर। हे सुश्रोणि! हे बाले! यदि तू सहृदया है, तो मैंने जो कुछ कहा है, उसपर ध्यान देना, मुझपर कुछ तो कृपा कर। हे देवि! तू प्रसन्न हो। रामभी तेरे दिये राज्यको भोगे। इससे तू परम यशभागिनी होगी। साथही मुझे तथा रामको भी प्रसन्नता होगी। इसलिए हे चारुमुखे! तू ऐसा ही करे। इस प्रकार रोते-रोते जिसके आँखोंके आँसूतक लाल रंगके होगए थे और जिसका मन शुद्ध था, ऐसे उस अपने पतिका भाँति-भाँति के बिलखना सुन, जिसे सुनते ही दया उत्पन्न होती थी, उसे सुनकरभी कैकेयीने ध्यान न दिया। क्योंकि उसकी बुद्धिमें तो क्रूरता और पाप समाया हुआ था। तब तो नरेश फिरसे मूर्च्छित हो गए और जब कुछ क्षण पश्चात् फिर होश में आए तो उस प्रतिकूल वचन कहनेवाली अपनी प्रिय पत्नीकी ओर देखने लगे। परन्तु इसपर भी जब उसने अपने प्रिय पुत्रको वन भेजनेका हठ नहीं छोड़ा, तब इसका ध्यानकर राजा दुःखी तथा बेसुध हो पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार दुःखी राजा पड़े हुए दीर्घश्वास ले रहे थे। उनका दीर्घनिःश्वास लेना सुनकर मन भयभीत हो जाता था। इसी प्रकार सारी रात व्यतीत हो गई और चारणगण माङ्गलिक श्लोक आदि पढ़कर उनके जगानेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु महान् नरेश ने उन्हें मना कर दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवां सर्ग

कोप-भवनमें शोकाकुल नरेशके निकट' वशिष्ठ और सुमन्त्रका प्रवेश

तब पुत्र-शोक-पीड़ित राजाको इस प्रकार मूर्छित तथा पृथ्वीमें पड़े हुए निश्चेष्ट दशामें देखकर पापिन कैकेयी बोली—महाराज ! तुम वरदानरूपी भयानक पापकर दीन-भावसे पृथ्वीपर क्यों पड़े हो ? तुम्हें अपनी सत्य प्रतिज्ञा पर अटल रहना चाहिए। धर्मज्ञ पुरुष सत्यकोही परधर्म कहते हैं। मैंने आपको सत्यपरही ठहराकर इसमें प्रवृत्त किया है। सत्यही प्रणवरूप शब्द-ब्रह्म है, सत्यमें ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अविनाशीवेद है और सत्यसे ही परब्रह्मकी प्राप्ति होती है। इसलिए यदि आपकी बुद्धिमें धर्म स्थित हो तो सत्यका अनुसरण कीजिये। आपने मुझे वरदान दिया है। मेरा यह वर सफल हो। धर्म, अर्थ और कामकी वृद्धिके लिए तथा मेरी प्रेरणासे रामको वन भेजिए। मैं यह केवल तीन बार कहती हूँ। यदि इस समय मेरा कथन न पूर्ण करोगे तो मैं तुम्हारे समक्ष ही अपने जीवनका अन्त कर दूँगी। कैकेयीके इस निर्भीक कथनसे राजा प्राणनाशक पाशसे ऐसे बँध गए जैसे बलि इन्द्रके कृत्यसे बँधा था। उस समय राजाके मनमें उच्चाट हो गया। चित्त चक्कर खाने लगा। उनके विह्वल नेत्रोंमें अन्धकार छा गया। वे बड़े कष्टसे धैर्य धारणकर कैकेयीसे बोले—मैंने जो अग्निके समक्ष मन्त्र पढ़ते हुए तेरा पाणिग्रहण किया था, वह आज तेरे पुत्र सहित तुझे त्यागता हूँ। अब रात्रि व्यतीत हो रही है और प्रभात हुआ ही चाहता है। मुझसे मनुष्य अभि-षेककी शीघ्रता करायेंगे। परन्तु अब ,तो राज्याभिषेकके लिए जो कुछ सामग्री एकत्र हुई है, उससे राम द्वारा मेरा प्रेत-कर्म ही होगा। क्योंकि तू इस शुभ-समाचारकी नाशिका है। इसलिए तू पुत्र सहित मेरी क्रियामें भाग न लेना। इस प्रकार महात्मा राजाके कहते हुए चन्द्र-नक्षत्र-शोभिता रात्रि व्यतीत हुई और प्रातःकाल हो आया। फिर भी पापिनी कैकेयीने राजासे इस प्रकार दारुण वचन कहा कि, हे राजन् ! तुम विषयाशूल-पीड़ित पुरुषके समान यह क्या कह रहे हो ? तुम शीघ्र ही रामको बुलवालो। मेरे पुत्र भरतको राज्य दे, रामको बन भेजो और मुझे सौत-रहित बना सुखी हो

जाओ। कैकेयीके इस कथनको सुन राजा चाबुक खाये हुए घोड़ेके समान मर्माहत हो कैकेयीसे बोले—मैं धर्मबन्धनसे बँधा हूँ। मेरी चेतना नष्ट हो गई है। मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र रामको देखना चाहता हूँ। इतनेमें प्रातःकाल सूर्योदय होते ही तथा पुष्य नक्षत्रयोग और मुहूर्तके आते ही अपने शिष्यों सहित वशिष्ठजी राजधानीमें प्रवेश किए, जहाँ देखा कि मार्ग जलसे सिक्त और उत्तम पताकाओंसे युक्त तथा प्रसन्न पुरुषोंसे सम्पन्न है। छोटी बड़ी दूकानोंसे भरा-पूरा है। सभी पुरुष रामाभिषेकके इच्छुक हैं। सर्वत्र चन्दन और अतर आदिके धूमकी सुगन्धि आ रही है। इस प्रकार ध्वजापताकादि से शोभित पुरीको देखते हुए इन्द्रपुरीके तुल्य उस राज्यभवनमें वशिष्ठजी अन्तःपुरकी ओर जाने लगे। उनके साथमें सुवर्ण कलशोंमें गङ्गाजल और अभिषेचनार्थ गूलरकाष्ठका आसन भी था तथा सब प्रकारके बीज, गंध, विविध रत्न, दधि, घृत, खील, कुशा, दूध, आठ रूपवती कुमारियाँ, मत्त हाथी, चार घोड़ोंका रथ, उत्तम धनुष, पालकी, चन्द्रमाके समान छत्र, सफेद पंखा, सोनेका शृङ्गार (पात्र विशेष), स्वर्णमण्डित श्वेत बैल, चार दाँतवाला महाबली सिंह, सिंहासन व्याघ्रचर्म, समिधाएँ, अग्नि, सब प्रकारके बाजे, वेश्याएँ, अलंकृत स्त्रियाँ, आचार्य, ब्राह्मण, गाय, सुन्दर मृगपक्षी नगरनिवासी, स्वगणों सहित वेदपाठी तथा अन्य भी बहुतसे प्रिय पदार्थ एवं प्रिय पुरुष भी रामाभिषेकके लिए उपस्थित हैं। महाराजसे शीघ्रता करवाइये, जिससे इस शुभ दिन पुष्य नक्षत्रमें रामको राज्य प्राप्त हो जाय। वशिष्ठजीके इस कथनको सुन सुमन्त्र स्तुति करते हुए अन्तःपुरमें गये। तब राजाके हितेच्छु सुमन्त्रको भीतर जाते हुए किसी द्वारपालने नहीं रोका। सुमन्त्र राजाकी दशा देखकर उनको प्रसन्न करनेके लिए बहुत सी बातें कहने लगे। हाथजोड़े पूर्वकी समान वे नृपको प्रसन्न करनेको उद्यत हुए। सुमन्त्रने कहा—हे महाराज! जैसे सूर्योदयसे समुद्र आनन्दित होता है, उसी प्रकार आप प्रसन्नतासे उठकर हमें आनन्दित करें। जिसप्रकार इन्द्रको मातलिने प्रसन्न किया था और उसने सदैव दानवोंको विजय किया था, उसीप्रकार मैं आपको जगाता हूँ। षडङ्गवेद तथा सकल विद्याओंको बोध जैसा ब्रह्माको था, वैसाही मैं आपको जगाता हूँ। जिसप्रकार सूर्य, चन्द्रमा समस्त संसारको

जगाते हैं, वैसेही मैं आपको जगाता हूँ। हे महाराज! मङ्गलाचरण कर उठिए। जिस प्रकार मेरुपर्वतसे सूर्योदय होता है, उसी प्रकार अपने शरीरसे विराजमान होइए। रामाभिषेचनार्थ नागरिक जनसमूह भी हाथ जोड़कर उपस्थित है। यह भगवान् वशिष्ठ ब्राह्मणों सहित उपस्थित हैं। हे राजन्! रामाभिषेकको शीघ्र आज्ञा दीजिए। जैसे बिना ग्वालेके पशु, बिना नायकके सेना, बिना चन्द्रके रात्रि, बिना वृषसे गायोंका समूह होता है, वैसाही वह राष्ट्र हो जाता है कि जहाँ राजा नहीं दीखता। इसप्रकार सुमन्त्रके मनोहर अर्थवान् वाक्योंको सुनकर, महाराज पुनः शोकमें गिर गए और सूतसे रामचन्द्र संबन्धी दुःखके कारण शोकसे लालनेत्र किए हुए कहने लगे कि तुम्हारे स्तुतिका वाक्य मुझे कष्टप्रद हुए हैं। तब राजाकी वाणी सुनकर हाथ जोड़े सुमंत्र वहाँसे कुछ दूर जा खड़े हुए और जब अपनी ऐसी दीन दीनताके कारण राजा स्वयं सुमन्त्रसे कुछ न कह सके, तब स्वयं कैकेयी कहने लगी कि, हे सुमन्त! महाराज रामाभिषेकके हर्षसे सारी रात जगे हैं। अब थककर निद्रावश हो गये हैं। अतः हे सूत! तुम शीघ्रही यशस्वी रामको यहाँ बुलालाओ और इसपर कुछ विचार न करो। यह सुनकर मन्त्रीने कहा कि, हे देवि! बिना राजाज्ञाके कैसे जाऊँ? तब मन्त्रीके वाक्य सुनकर राजा बोले कि, हे सुमन्त्र! मैं सुन्दर रामको शीघ्र देखना चाहता हूँ। तब जो आज्ञा, ऐसा कहकर सुमन्त्र प्रसन्न हो सप्रेम शीघ्र चले, परन्तु कैकेयीकी शीघ्रतासे कुछ चिंतित भी हुए। परन्तु यह विचारकर कि, धर्मराट् रामाभिषेकार्थ बाहर आयेंगे ही, फिर महान् हर्षयुक्त महातेजस्वी रामके देखनेके लिए गए। राजद्वार पुरुषोंसे भरा था। सुमन्त्र सहसा सबको देखते हुए बाहर निकले, जहाँ उन्होंने अनेक नगर निवासियों तथा धनिक पुरुषोंको आया हुआ देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त॥ १४॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

कैकेयी भवनसे सुमन्त्र रामकी ओर।

इधर रात्रि व्यतीत होनेपर वेदपाठी ब्राह्मणजन राजपुरोहितों सहित संध्या वन्दनादि कृत्य करने लगे। वेदादि शास्त्रोंमें मुख्य पुरुष रामाभिषेकार्थ अपने-अपने कार्योंमें युक्त हुए। विमल सूर्यके उदय होनेपर पुष्यनक्षत्रके आजाने पर, कर्कट लग्नके प्राप्त होनेपर तथा रामके जन्मलग्नकी सुस्थिति होनेपर, रामा-

भिषेकार्थ द्विजेन्द्रों द्वारा सुवर्णके घटों तथा अलंकृत भद्रपीठकी स्थापना हु
व्याघ्रचर्मसे सुसज्जित रथ, गंगायमुनाके पुण्य सङ्गमका जल, अन्य ताल
बावड़ी, कुवें, समुद्र आदि सब उर्ध्वगामी, अधोगामी तथा तिर्यग्गामी पु
स्रोतोंका जल वहाँ लाया गया। मधु, दधि, घृत, कुशा, दूध, आठ सु
कुमारियाँ, मत्तहाथी और दूधवाले वृक्षोंके पत्तोंसे सुसज्जित सजलसुवर्णघट उ
स्थित हुए। रामके लिए उत्तम छोटा पंखा, चन्द्रमण्डलके समान प्रकाशि
पाण्डुरवर्णका छत्र, पाण्डुरवर्णके बैल और घोड़े भी अभिषेकार्थ उपस्थित थे। इ
प्रकार इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंके अभिषेकार्थ जितनी सामग्रियाँ होती हैं, स
उपस्थित थीं। सब लोग परस्पर कह रहे थे कि, हमारे आगमनका समाच
राजाको कौन देवे? सूर्योदय हो चुका, पर हम महाराजको नहीं देख रहे हैं अ
यहाँ रामाभिषेककी सब तयारी हो गई है। नृपतिगण इस प्रकारकी बातें कर
रहे थे कि सुमन्त्रने आकर कहा कि, मैं महाराजकी आज्ञासे रामको बुल
जारहा हूँ। आप सबकी महाराज विशेषकर रामकी पूजा करेंगे। मैं आपव
आज्ञानुसार उनसे कुशलवृत्त पूछूँगा तथा राजासे न आनेका कारण भी पूछूँगा
इतना कहकर सुमन्त्र अन्तःपुरकी ओर गए। वे सर्वदा अन्तःपुरमें प्रवेश
सकते थे। वहाँ जाकर सुमन्त्रने उनके वंशकी प्रशंसा करनेका प्रयत्न किया
पर सिरहानेके पास नृप-पत्नीको देखकर पर्देके ओटमें ही रुक गये। फि
उनके पास जा, इसप्रकार गुणयुक्त आशीर्वादसे उन्हें इसप्रकार प्रसन्न करने ल
कि—हे महाराज। चन्द्र, सूर्य, शिव, कुबेर, वरुण, अग्नि और इन्द्र आपव
विजय देवें। भगवती रात्रि व्यतीत हुई, कल्याणकारी दिन उपस्थित है।
नृपशार्दूल! उठिए, अपने कार्यमें युक्त होइए। वेदपाठी ब्राह्मण और सेनाप
आदि उपस्थित हो गए हैं वे सब आपका दर्शन चाहते हैं। अतः हे रघुवं
महाराज! जागिए। तब मन्त्रज्ञ सुमन्तके इस प्रकार स्तुति करनेपर राजा ज
कर कहने लगे कि, तुम रामको यहाँ बुला लाओ जैसा कि, मैंने तुमसे प
कहा है। यह क्या कारण है कि, मेरी आज्ञाका उल्लंघन करते हो? मैं सो
हुआ नहीं हूँ, रामको शीघ्रही लावो। इसप्रकर राजाके वचनोंको सुनकर सुम
उन्हें शिरसे प्रमाणकर नृपभवनसे बाहर निकला। राजमार्गध्वजापताकादि
शोभित था। मार्गमें रामकीही कथा सुनाई पड़ती थी। सर्वलोक प्रसन्न

रामाभिषेककी ही वार्त्ता थी। तदनन्तर कैलास शिखरोपम इन्द्र-भवनके समान उस प्रकाशित राम-भवनको सुमन्त्रने देखा जिसके अग्रभागमें सुवर्णकी प्रतिमायें शोभित थीं। वाह्यद्वार मणियों और मूँगोंसे सज्जित था। स्वर्ण-माल्योंसे जिनके बीच-बीचमें बहुमूल्य मणियाँ पिरोयी गयी थीं। इसप्रकार वह भवन बड़ाही सुशोभित था। वहाँ मोती और मणियोंका भण्डार भरा था। चन्दन और अगरकी सुगन्धि व्याप्त थी। वहाँ पहुँचकर सुमन्त्रने महलकी स्वर्गीय शोभासे युक्त कई ड्योड़ियोंको पारकर, रामाज्ञाकारी बहुतेरे श्रेष्ठ मनुष्योंको बीचमें छोड़ते हुए अन्तःपुरके द्वारपर पदार्पण किया। वहाँ शत्रुंजय नामक रामकी सवारीका वह हाथी बँधा था जो बहुत बड़ा, बड़े-बड़े मेघोंसे युक्त पर्वत जैसा और उन्मत्त था तथा जो हाथीवान् के अंकुशको भी न माननेवाला था। सारथि सुमन्त्रने उच्च अलंकारोंसे विभूषित और घोड़ों, रथों तथा हाथियोंपर चढ़े प्रमुख मंत्रियों एवं रामचन्द्रके प्रिय लोगोंको वहीं छोड़ सम्मृद्धिशाली अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वहाँ उन्हें किसीने नहीं रोका।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

सोलहवाँ सर्ग

सुमन्तका रामसे दशरथ और कैकेयीका आमन्त्रण-कथन तथा रामचन्द्रका सीतासे कहकर लक्ष्मण सहित दशरथको ओर गमन।

तब पुराणवित् सुमन्त्र मनुष्योंसे पूर्ण अन्तःपुरके द्वारको लाँघकर भीतर भवनमें जा पहुँचे। वहाँ कुण्डलधारी विश्वासपात्र पुरुष धनुष धारण किए खड़ेथे। गेरुआवस्त्र पहने हुए अनेकों वृद्ध पुरुष बेंतकी छड़ी लिए अन्तःपुरके द्वारपर सावधान होकर बैठे थे। सभी स्त्रियोंके रक्षक थे। वे सब रामके शुभाकांक्षी सुमन्त्रको आया हुआ देख सहसा खड़े हो गए। तब सूतपुत्रने उनसे भाव से कहा कि—आपलोग रामको शीघ्र सूचित करदें कि सुमन्त्र द्वारपर उपस्थित है। यह सुनकर स्वामीके उन शुभाकांक्षियोंने शीघ्रही सहपत्नीक रामको सूचना दी। तब रामने सुमन्त्रको पिताका भेजा हुआ जानकर सम्प्रीतिकामनया शीघ्रही उसे अपने पास बुला लिया। वहाँ जाकर सुमन्त्रने देखा कि परन्तप राम सोनेके पलंगपर बैठे हैं। बगलमें चन्द्रवत् छोटा पंखा हाथमें लिए सीता भी बैठी हैं। सूर्यवत् उनका तेज प्रकाशित है। तब उन्हें इस प्रकार सुखशय्या

पर विद्यमान देख विनयज्ञ वन्दी सुमन्त्रने हाथ जोड़ रामसे कहा कि,-
कौशल्याके सुपुत्र राम ! आपके पिता और कैकेयी आपको देखना चाहते
अतः शीघ्र चलिए। तब यह सुनकर तेजस्वी नरसिंह रामने स-सम्मान सी
से कहा—हे देवि ! मेरे पिता तथा कैकेयी अवश्यही अभिषेकके लिए कु
बातें करते हैं और सुचतुरा प्रियकामा कैकेयी राजाके अभिप्रायको जान
मेरे लिए कुछ शीघ्रता करवाती हैं। क्योंकि वे प्रसन्नतया महाराजके हि
लगी मेरा भला चाहनेवाली हैं। भाग्यहीसे महाराज और कैकेयीने मेरे शुभ
लिए सुमन्त्रको यहाँ भेजा है। निश्चयही आज महाराज मुझे युवराज
पदपर अभिषिक्त करेंगे। अतः मैं शीघ्रही जाकर महीपतिके दर्शन करूँगा
तुम सपरिवार यहाँ सुखसे रहो। यह सुन पतिसम्मानिता सीता पति
मङ्गलार्थ द्वार तक आईं और कहा कि, जैसे ब्रह्माने इन्द्रको अभिषिक्त कि
था, वैसेही महाराजभी आपको द्विजातियोंसे युक्त यौवराज्याभिषिक्त क
देवें। मेरी प्रतिपल यही कामना है कि आप शीघ्रही अभिषिक्त हों। जाइ
इन्द्र पूर्वकी ओरसे, यम दक्षिणकी ओरसे, वरुण पश्चिमकी ओरसे त
कुवेर उत्तरकी ओरसे आपकी रक्षा करें। इस प्रकार सीताके लङ्गलाचर
करनेके उपरान्त राम सुमन्त्रके साथ अपने गृहसे बाहर निकले। देखा
द्वारमें हाथ जोड़ लक्ष्मण उपस्थित हैं। मध्यकक्षामें सुहृद्गण उपस्थित हैं
उनका सम्मानकर नरोत्तम राम व्याघ्रचर्म-वेष्टित प्रकाशमान रथमें सव
हुए। साथही हाथमें चँवर लिए उनके छोटे भाई लक्ष्मणभी रथमें बैठ ग
और पीछेसे उनकी रक्षा करने लगे। इस रथके वेगसे उसका शब्द बहुत ब
होगया। साथही पर्वताकार सैकड़ों हाथी, घोड़े, सहस्रों मनुष्योंका समूह
उनके पीछे चला। बहुतसे बन्दीजन और चन्दन अगरुसे शोभित खड्ग औ
धनुषधारी शूरवीरभी आगे चले। बन्दीगणोंकी स्तुतियोंसे मार्गमें सिंहना
सा शब्द सुनाई देता था। सज्जित अट्टालिकाओंके झरोखोंमें बैठी स्त्रि
रामचन्द्रपर फूल बरसाने लगीं। अयोध्यामें आये हुए दूर-दूरके लोग अत
हर्षसे भरकर रामचन्द्रजीके सम्बन्धमें तरह-तरहकी बातें करते थे, जो उन
कानोंमें पड़ रही थीं। वे कहते थे—'इस समय रामचन्द्रजी महाराज दश
की कृपासे बहुत बड़ी सम्पत्ति के अधिकारी होने जारहे हैं। अब हम सव

समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी, क्योंकि राम हमारे राजा होंगे। यदि यह समस्त राज्य बहुत दिनोंके लिए इनके हाथमें आजाय तो जगत्के सभी लोगोंका महान् लाभ होगा। इनके राजा होनेपर कभी किसीका अप्रिय नहीं होगा। कोई दुःखी न होगा।' इस प्रकार लोग आपसमें वार्त्तालाप कर रहे थे। तरह-तरहके बाजे एवं डंका बजाते हुए घोड़ों तथा हाथियोंके साथ विजय-ध्वनि करते कुवेरवत् रामचन्द्रजी चले जा रहे थे। उन्होंने देखा कि विविध रत्नोंसे पूर्ण लोगोंकी ठसाठस भीड़ राजमार्गमें भरी पड़ी है। हाथी, हथिनी, घोड़े तथा रथोंसे भरे हुए मैदान और आँगन स्वच्छ और सुधारे हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ सर्ग

इसप्रकार रामचन्द्रजी अपने सुहृदोंको आनन्द प्रदान करते हुए रथपर बैठे राजमार्गके मध्यसे चले जा रहे थे। सारा नगर ध्वजापताकाओंसे समलंकृत और शोभित था। चारों ओर अतरकी सुगन्धि छा रही थी। नगरमें असंख्योंकी भीड़ थी। श्वेतबादल सदृश गृहोंसे शोभा हो रही थी, सभी अगरुधूपित थे। मुख्य चंदन, अगरु एवं अन्य उत्तम गन्ध-कोश तथा रेशमी वस्त्रोंसे शोभित था। नवीन मोतियों और उत्तम स्फटिक मणियोंसे सुशोभित था। ऐसे उत्तम राज-मार्गमें राम गए। उस मार्गमें ऊँची-नीची अनेक दूकानें भोजनकी समाग्रियोंसे युक्त थीं। रामचन्द्रजीने ऐसे राजपथको आकाशमें देव-पथ-सा देखा। मित्रोंके दिए आशीर्वादको सुनते, सबको यथायोग्य पूजते राज-पथके ऐसे चौराहे पार किए जो दही, चावल, हवि, खीलें, धूप, अगरु-चंदन, पुष्पोंकी सुगन्धिसे सर्वदा पूर्ण थे। रामके हितैषी कहते थे—'आज अभिशिक्त हुए आप पितामह-प्रपितामहोंसे आचरित प्रसिद्ध मार्गको पाकर प्रजाका वैसेही पालन कीजिए कि जिसमें राम राजाके होनेपर हम और भी सुखसे बसें। आज हमारे भोज और परमार्थ साधन पूर्ण है। राज्य-प्रतिष्ठित रामको हम ऐसेही निकलते हुए देखें। हमको वैसा कुछ भी प्रिय नहीं होगा जैसा कि सुमित तेजस्वी रामका राज्याभिषेक होना। इसप्रकार वे तथा अन्य जनको हर्षदायक मित्रोंकी शुभ-कथा सुनते हुए उदासीन राम विशालमार्गसे

चले गए। उस समय ऐसा कोई न रहा जिसने रामको और रामने जिसे देखा हो। उसका संसार-वास निन्दित है। उसकी अन्तरात्मा भी उसक निन्दा करता है। क्योंकि उनकी चारों वर्णों और चारों अवस्थाओंपर दय है। इसकारण ये सभी उनके अनुगामी थे। राजपुत्र राम देवालय-मार्ग यज्ञ-मार्ग और सभाओंको दाहिनी ओर करते हुए गए। कुछही समयमें इन्द्र भवनोपम् पिताके उस भवनमें जा पहुँचे जिसके गवाक्ष रत्नोंसे विभूषित थे जिसमें अनेक प्रासाद-शिखर थे। नर-श्रेष्ठ राम धनुर्द्धरोंसे रक्षित तीन ड्योढ़ि योंको घोड़ेके साथ पार किए और अन्य दो ड्योढ़ियोंको पैदल चले गए राज-पुत्रने सब ड्योढ़ियोंको पार किया। सब मनुष्योंको लौटाया। फिर रनि वासमें पिताके पास पहुँचे। उन्हें देखते ही वहाँ सब हर्षित हो गए। चन्द्रो दयकी सागर-समान, रामके पुनरागमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

अट्ठारहवाँ सर्ग

पिताको दुःखी देख रामका कैकेयीसे उनका कारण पूछना और कैकेयीको अपने वर कहना दशरथके मनोगत भाव। कैकेयीके दो माँगोंसे रामका किंचित दुःखी न होना और दशरथ-विलाप वर्णन।

उधर राज-भवनमें पहुँच रामने देखा कि, शुष्कमुख पिता कैकेयी सहि एक शुभासनपर बैठे हैं। तब विनीत भावसे पहले पिताके चरणोंकी वन्दन कर रामने फिर कैकेयीके चरणोंकी वन्दना की। उस समय दयनीय अवस्था पड़े हुए राजा दशरथ एकबार 'राम' ऐसा कहकर चुप हो गए। इससे आ उनसे बोला न गया। आँखोंमें आँसू भर आनेके कारण न तो वे राम ओर देख सके और न कोई बात ही कह सके। राजाका वह अभूतपूर्व भ कर रूप देखकर रामको भी भय हो गया। उनकी इन्द्रियाँ प्रसन्न नहीं थीं वे शोक और सन्तापसे दुर्बल हो रहे थे। बार-बार लम्बी साँस भरते थे उनके चित्तमें बड़ी व्यथा और व्याकुलता थी और वे राहुसे ग्रस्त सूर्य भाँति श्रीहीन दिखाई देते थे। तब पिताकी यह अवस्था देख उनके हि तत्पर रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'आ ही ऐसी क्या बात हुई कि महाराज मुझसे प्रसन्न होकर नहीं बोलते हैं। अ

दिन तो ये क्रोध में रहने पर भी मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाते थे। आज मेरी ओर दृष्टिपात करके इतने क्लेशित क्यों हो रहे हैं?' ऐसा विचारकर राम बहुत दुःखी हुए। उन्होंने प्रणाम करके कैकेयीसे ही पूछा—माँ! मुझसे अनजाने में कोई अपराध तो नहीं हो गया, जिससे पिताजी मुझपर नाराज हो गये हैं? मुझे तो ये सदाही प्यार करते थे। आज क्यों अप्रसन्न हो गये? देखता हूँ तो ये आज मुझसे बोलते तक नहीं हैं। इनका चेहरा उतरा हुआ है। ये अत्यन्त दीन हो रहे हैं। कोई शारीरिक व्याधि अथवा मानसिक चिन्ता तो इन्हें पीड़ित नहीं कर रही है? प्रियदर्शन कुमार भरत, महाबली शत्रुघ्न अथवा माताओं का तो कोई अनिष्ट नहीं हुआ है? महाराजको असन्तुष्ट करके अथवा इनकी आज्ञा न मानकर, इन्हें कुपित कर देने पर भी मैं एक मुहूर्त्त भी जीवित रहना नहीं चाहता। मनुष्य जिसके कारण अपना प्रादुर्भाव देखता है, उस प्रत्यक्ष देवता पिताके जीते-जी, वह उसके अनुकूल बर्त्ताव क्यों न करेगा? कहीं आपने तो अभिमान या रोष में आकर पिताजी से कोई कठोर बात न कह डाली हो, जिससे इनका मन दुःखी हो रहा है। हे देवि! मुझ पूछनेवाले से कोई इसका तत्त्व कहिए कि, किसलिए राजामें यह अपूर्व विकार है। महात्मा रामके इसप्रकार कहे जाने पर निर्लज्ज कैकेयी अपने को हितकारी धृष्ट वचन बोलने लगी—'हे राम! राजा कुपित नहीं हैं और न इनको कोई दुःख है। इनका कोई मनोगत है जिसे तुम्हारे भयसे नहीं कहते हैं। तुम प्रियसे अप्रिय कहने को इनकी वाणी नहीं चलती। परन्तु तुम्हें तो वही करना चाहिए, जो इन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा कर दिया है। इन्होंने पहले तो सत्कारपूर्वक मुझे वरदान दे दिया और अब ये दूसरे गँवार मनुष्यों की भाँति उसके लिए पश्चाताप कर रहे हैं। हे राम! इस धर्ममूलक जगतमें सत्पुरुषोंको सत्य से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। इसलिए तुम ऐसाही करो कि जिसमें तुम्हारे लिए मुझपर कुपित होकर राजा कहीं सत्य को न छोड़ दें। शुभ हो या अशुभ, राजा जो कुछ कहें, यदि तुम वह करो तो मैं तुमसे कहूँ। यदि ये न कहेंगे तो राजा द्वारा जो प्रतिज्ञात है, और वह तुमपर विफल न हो जावे, तो मैं कहूँगी। तब कैकेयीकी ऐसी बात सुनकर रामको

बड़ी व्यथा हुई । उन्होंने राजाके समक्ष ही उससे कहा—अहो देवि! धिक्
तुम्हें मुझसे ऐसा वचन कहना योग्य नहीं । मैं राजाके वचन से अग्नि में भी
गिर सकता हूँ । तीक्ष्ण विषको पी सकता हूँ और समुद्रमें भी डूब सकता
हूँ । हितैषी राजा, गुरु और पिता द्वारा जो नियुक्त होगा, मैं उसे करूँगा ।
हे देवि ! उस वचनको कहो । राजाका क्या अभीष्ट है ? राजासे तुमने क्या
चाहा था ? मैं प्रतिज्ञा करता हूँ; करूँगा । राम दो बार नहीं कहता । तब
सरल-स्वभाव युक्त उन सत्यवादी रामसे अनार्या कैकेयी यह दारुण वचन
बोली कि, हे राम ! पहले देवासुर-संग्राममें जब इन्हें शल्य लग गया था, तो
उस शल्यको निकालकर मैंने तुम्हारे पिताकी रक्षाकी थी । उससे प्रसन्न होकर
मुझसे रक्षित तुम्हारे पिताने मुझे दो वर दिए थे । हे राम ! उनमेंसे मैंने
राजासे भरतका अभिषेक और तुम्हारा आजही दण्डकारण्यको जाना माँगा
है । हे नरश्रेष्ठ ! यदि तुम पिताको और अपनेको सत्य प्रतिज्ञावाला करना
चाहते हो तो मेरे इस वाक्यको सुनो । तुम पिताकी आज्ञामें स्थित रहो
जैसी कि इन्होंने प्रतिज्ञाकी है । तदनुसार तुम्हें चौदह वर्षके लिए वन को
जाना चाहिये। हे राम ! इधर तुम्हारे लिए राजाने अभिषेककी यह समस्त
सामग्री प्रस्तुत कराई है। अब इन सबसे भरत अभिषिक्त होवें । तुम
दण्डकारण्यके आश्रित इस अभिषेक को त्यागकर मृगचर्म धारण कर चौदह
वर्ष के लिए वहाँ जा बसो और घोड़ों, रथों, हाथियों और नानारत्नों संयुक्त
इस पृथ्वीको अयोध्यामें बैठ भरत शासित करें । इन्हीं दो वरों को देने
राजाका मुख मलिन हो गया है और दयावश ये तुम्हें देखने में असमर्थ हैं
हे राम ! राजाके इस वचनको पूरा करो । हे राम ! इस महान् सत्य
नरेश्वरका उद्धार करो । कैकेयीके इस कठोर वचनको सुनकर भी राम
हृदयमें तो दुःख नहीं हुआ; परन्तु महानुभाव राजा पुत्र-वियोगके संकट
बड़े ही दुःखित हुये ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

रामका कैकेयी के वचनोंसे वन जानेकी सन्नद्धता परन्तु पितृ-आज्ञाकी प्रतीक्षा, पुनः शोकाकुल दशरथ की मूर्च्छा तथा लक्ष्मणका क्रोध और राम का माता कौशल्याकी ओर गमन ।

शत्रुहन्ता राम इस मरण सम अप्रिय वचन को भी सुनकर

व्यथित नहीं हुए और कैकेयी से बोले—ऐसा ही हो। मैं यहाँ से जटा और मृगचर्म धारण करके राज-प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिए वनको चला जाऊँगा। किन्तु मैं यह अवश्य जानना चाहूँगा कि शत्रुनाशक दुर्धर्ष राजा प्रसन्न क्यों नहीं हैं? हे देवि! क्रोध न करो। मैं तुम्हारे समक्ष कहता हूँ कि, तुम प्रसन्न होवो। मैं जटा, चीर धारण कर वन-गमन करता हूँ। हितकारी, कृतज्ञ, पिता, गुरु और राजासे आज्ञा दिया गया विश्वासपात्र मैं इनका क्या प्रिय नहीं कर सकता हूँ? परन्तु वह एक ही अप्रिय मेरे हृदयको दहन कर रहा है कि, स्वयं राजाने मुझे भरत-अभिषेककी बात क्यों नहीं बतलाई? मैं तो केवल तुम्हारे कहनेही से अपने भाई भरतके लिए सीताको, राज्यको, अपने प्रिय प्राणोंको तथा सारी सम्पत्तिकोभी प्रसन्नतापूर्वक दे सकता हूँ। फिर यदि स्वयं महाराज—मेरे पिताजी आज्ञा दें और वह भी तुम्हारा प्रिय करनेके लिए तो, मैं प्रतिज्ञाका पालन करते हुए उस कार्यको क्यों नहीं करूँगा? इसलिए तू राजको समझा। क्या कारणहै कि, राजा नीचे पृथ्वीकी ओर नेत्र किए हुए रुदन कर रहे हैं? राजाज्ञा ले दूत शीघ्रगामी घोड़ोंको लेकर अभी जावें और आजही भरतको मामाके यहाँसे बुला लावें। मैं अभी शीघ्रही यहाँ से विना विचारे ही पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षके लिए बनवासको जाता हूँ। रामकी यह बात सुन कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा—राम! तुम ठीक कहते हो, ऐसा ही चाहिये। भरतको मामाके यहाँसे बुलानेके लिए शीघ्र-गामी घोड़ोंपर सवार होकर दूत तो जायेंगे ही, किन्तु तुम बनमें जानेके लिए विशेष उत्सुक जान पड़ते हो। अतः तुम्हारा विलम्ब करना मैं ठीक नहीं समझती। हे राम! तू शीघ्र ही बनको चला जा। राजा लज्जासे तुझसे नहीं बोलते हैं। हे नरश्रेष्ठ! यह क्रोधका कारण नहीं समझना चाहिये। हे राम! जबतक तुम इस नगरसे शीघ्र बन-गमन न करोगे; तबतक तुम्हारे पिता न स्नान करेंगे और न भोजन। कैकेयीको ऐसी बात सुनकर राजा दीर्घ-श्वांस लेकर बोले—'धिक्कार है! हा बड़ा कष्ट हुआ।' इतना कहकर वे शोकमग्न हो, मूर्छित हो सुवर्ण-शय्यापर गिर गये। कैकेयीसे आज्ञा दिये गए रामने राजाको उठाया और कोड़ोंसे मारे हुए घोड़ोंके समान बन जानेकी शीघ्रता की। तब उस दुष्टा कैकेयीके कठोर वचन सुनकर बिना क्लेश ही

राम कैकेयीसे यह वचन बोले—हे देवि! मैं धनकी इच्छासे इस लोकमें निवास करने नहीं आया हूँ; किन्तु तू मुझे केवल धर्ममें स्थित ऋषियोंके समान जान। मैं अपने प्राण-त्यागकर भी तुम्हारे प्रिय योग्य कार्योंको करूँगा। इस धर्माचरणसे अधिक और है ही क्या कि, पिताकी सेवा और उनके वचनोंका पालन किया जावे। मैं पिताके बिना कहे ही चौदह वर्ष निर्जन वनमें व्यतीत करूँगा। हे कैकेयी! तुझ समर्थवाणीसे राजाने मेरी जो कुछ भी प्रशंसा की है, निश्चय ही उस प्रशंसाके योग्य मुझमें कोई गुण नहीं। किन्तु तबतक मैं मातासे पूछ लूँ और सीताको प्रसन्न करलूँ। फिर आज ही महान् दण्डकारण्यको चला जाऊँगा। फिर भरत जैसे राज्यका पालन और पिताकी सेवा करे, वैसे ही तुझे भी करना चाहिए—यही प्राचीन धर्म है। रामके ये वचन सुनकर पिता दशरथ दुःखसे हत शोक हो अश्रुपात करते हुए बड़े जोरसे रोने लगे। महातेजा राम संज्ञा-शून्य पिताके चरणोंकी वन्दनाकर दुष्टा कैकेयीके चरणोंपर गिर पड़े। पश्चात् राम पिता और कैकेयीकी प्रदक्षिणाकर अंतःपुरसे निकलकर स्वयं मित्रोंसे मिले। सुमित्रानन्दनवर्द्धन लक्ष्मण अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे, अतिक्रुध हुए, पीछे-पीछे चले। राम अभिषेक-भाण्डकी प्रदक्षिणाकर इच्छा सहित और स्थिर-दृष्टिसे सहज ही चले। रामकी लोकप्रिय महती शोभाको राज्य-नाश नष्ट न कर सका। वे वन जानेको तैयार थे और समस्त पृथ्वीका राज्य त्याग रहे थे; फिर भी उनके चित्तमें लोकातीत जीवन्मुक्त महात्माकी भाँति कोई विकार नहीं देखा गया। श्रीरामको छत्र लगानेवालोंको मनाकर दिया, चवँर डुलानेवालोंको भी रोक दिया, रथको लौटा दिया और परिजनों तथा पुरवासी मनुष्योंको भी विदा कर दिया। फिर अपने मनको स्थिरकर माताको यह अप्रिय समाचार सुनानेके लिये महलमें प्रवेश किया। जो लोग सत्यवादी रामके निकट रहा करते थे, उन्होंने भी उनके मुखपर किसी प्रकारके विकारका चिह्न नहीं देखा। रामने अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता न त्यागी। रामके समान गुणवाले लक्ष्मण भी उनके पीछे-पीछे गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

बीसवाँ सर्ग

राम-वनवास से रनिवासका विलाप, रामको व्रतस्थ कौशल्याका स्वागत और आशीर्वाद, पुनः कौशल्याकी मूर्च्छना और शोक वर्णन।

उधर नरश्रेष्ठ राम ज्योंही कैकेयीके महलसे बाहर निकले, अन्तःपुरमें

रहनेवाली राजमहिलाओंका महान् आर्तनाद सुनाई पड़ने लगा। वे कह रही थीं, हाय ! जो पितासे पूछे बिना भी अन्तः पुरके सब कार्योंका प्रबन्ध स्वतः करते थे, जो हम लोगोंके सहायक और रक्षक थे, वे ही राम आज वनको चले जायेंगे। उनका बाल्यकालसे ही अपनी माता कौशल्याके प्रति जैसा व्यवहार था, वैसाही हमारे साथ भी था। महाराजकी बुद्धि मारी गई है। वे इस समय सम्पूर्ण संसारका विनाश करनेपर तुले हुए हैं; तभी तो सबके जीवनधार रामका परित्याग कर रहे हैं ? इस प्रकार समस्त रानियाँ बिना बछड़ेकी गौओंके समान अपने पति राज्यकी बड़े ऊँचे स्वरसे निन्दाकर रोने लगीं। अन्तःपुरका यह भयंकर हाहाकार सुनकर महाराज दशरथका शोक-संताप औरभी बढ़गया और वे मुँहके बल बिछौनेपर पड़गये। इधर श्रीरामने भाई लक्ष्मणके साथ माताके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वे पहली ड्योढ़ी लाँघकर जब दूसरीमें पहुँचे तो यहाँ उन्हें राजाके द्वारा सम्मानित बहुतसे वेदज्ञ ब्राह्मण दिखाई दिये। तब उन्हें प्रणाम कर तीसरी ड्योढ़ीमें प्रवेश करनेपर रामने बाल और वृद्ध अवस्थाकी स्त्रियोंको देखा, जो अन्तःपुरके द्वारकी रखवाली करती थीं। उन सबने श्रीरामको आशीर्वाद दे उनकी माताको उनके आगे मनका प्रिय समाचार सुनाया। उस दिन देवी कौशल्या पुत्रकी मंगल-कामनासे एकाग्रचित्र हो प्रातःकालसे ही भगवान् विष्णुकी पूजामें लगी थीं और माङ्गलिक कार्य पूरा करके मन्त्रयुक्त अग्निहोत्र कर रही थीं। रामने माताके अन्तःपुरमें प्रवेश करके देखा कि, वे जलसे देवताका तर्पण करती ऋत्विजोंके द्वारा अग्निमें होम करा रही हैं। तब अपने आनन्दवर्द्धक पुत्रको बहुत देरके बाद सामने उपस्थित देखकर माता कौशल्या झपटकर उनकी ओर चली। रामने निकट हुई माताके चरणों में प्रणाम किया और माताने उन्हे दोनों भुजाओंसे उठाकर कसकर छातीसे लगा लिया तथा बड़े प्यारसे उनका स्मतक सूँघा। फिर वे स्नेहवश प्रिय एवं हितकर बात कहने लगी—'हे राम ! तुम धर्मात्मा वृद्ध महात्माओं और राजर्षियों की आयु, कीर्ति और धर्मको प्राप्त करो। हे राघव ! सत्य-प्रतिज्ञ और धर्मात्मा राजा अपने पिता को देख, जो आज तुम्हें राज्याभिषिक्त करेंगे। यह कहकर माताने उन्हें बैठने के लिये उत्तम आसन दिया और भोजन करनेके लिए कहा। श्रीरामचन्द्रजी

स्वभाव ही से विनीत थे। उन्होंने माताका गौरव रखनेके लिए उनके हाथ
उस आसनको ले लिया और कहा—हे देवि ! मैं नहीं जानता हूँ। एक बड़
भय प्राप्त हुआ है। वह तेरे और सीताके दुःखके लिए होगा और लक्ष्मणके
भी। मैं तो दण्डकारण्यको जाऊँगा। इस आसन से मुझे क्या ? दर्भासन योग
मुझे यह काल प्राप्त हुआ है। अब मैं चौदह वर्ष निर्जन बनमें निवास करूँगा।
मुनियोंके समान मांसादि छोड़कर लघु, मूल और फलोंसे जीवन व्यतीत करत
हुआ दण्डकारण्यको भेजा गया हूँ। क्या आप यह सब जानती हैं? महाराज
पिता भरतको राज्य देंगे और मुझ तापसको दण्डकारण्य में निवास करायेंगे
वहाँ बनमें उत्पन्न फल फूल खाकर चौदह वर्ष में वनमें निवास करूँगा।
यह सुनते ही कौशल्या कटे शालकी लकड़ीके समान सहसा वैसे ही गि
पड़ी, जैसे स्वर्गसे अप्सरा गिरती है। रामने दुःखके अयोग्य कदली वृक्ष-सी
गिरी दीन माताको संज्ञा-शून्य दशामें उठाया। तब जैसे जुती घोड़ी खोलने
पर श्रम दूर करनेके लिए लोटपोट होकर उठती है, वैसे ही कौशल्याके देह
धूल लग गई थी, जिसे रामने अपने हाथोंसे पोंछा। मूर्च्छासे जागने प
उन्होंने रामको अपने पास बैठा देखा। वे सकल सुख-योग्य और दुःखके
अयोग्य थे। तब लक्ष्मणके समक्ष ही वह बोली—हे राघव ! यदि तुम मेरे
शोकके लिए न होते, तो दुःख बार-बार न होता और मैं प्रजारहित वन्ध्या
होती। बन्ध्याको एक यही मानसिक शोक होता है कि, मैं सन्तानहीन हूँ
उसे दूसरा शोक नहीं होता। वैसे तो पहले भी पति पौरुषका कल्याण थ
सुख नहीं देखा। यह समझा था कि पुत्रसे वह सुख प्राप्त करूँगी। अ
सती होने पर भी मैं असतियोंके बहुत कठोर और अप्रिय हृदय-बेधक बचनों
सुनूँगी। इससे अधिक दुःख स्त्रियोंको और क्या होगा ? मेरे शोक औ
विपद्का अन्त नहीं, तुम्हारे समीप होनेपरभी मैं दुःख अनुमान करती हूँ। औ
पुत्र ! तुम्हारे जानेपर तो निश्चयही मेरा मरण होगा। निश्चय हो मैं पति-नि
दरित हूँ। इसीलिए तो कैकेयी मुझे अपनी दासीके समान अथवा उससेभी तु
समझती है। मेरे नित्यके सेवक या आज्ञाकारी पुरुष भी कैकेयीपुत्र भरतको दे
मुझसे नहीं बोलते हैं। पुत्र ! नित्यक्रोधित कैकेयीके कठोर बोलनेवाले मुख

दुर्गतिको प्राप्त हुई, मैं कैसे जी सकूँगी ? अभी सतरह वर्षतक तुम्हें द्विज बने हुएके दुःख नाशको चाहती हुई मैं स्थित रही। परन्तु हे राघव ! अब इस अक्षयदुःखको तो मैं नहीं सह सकता कि जो दुःख समस्त वृद्ध स्त्रियोंको असह्य है। अब तुम्हारे इस चन्द्रवत् मुखको न देखे बिना मैं इस जीवनको कैसे सहन करूँगी। हा, मेरी बड़ी दुर्गति हुई। उपवासोंसे, योग से और बहुत परिश्रमोंसे अब मैं इस बढ़े हुए दुःखको व्यतात करूँगी। इसलिए निश्चय ही जानो कि मेरा हृदय कठोर है; जो फट नहीं जाता। मैं समझती हूँ कि मुझे यमके घरमें भी स्थान नहीं प्राप्त होता। क्यों वह वह मुझे ले नहीं जाता है ? इसलिए मैं अमर हूँ। वास्तवमें मेरा हृदय लोहे का बना हुआ है। क्योंकि यह इतना कठोर है कि, इस अवसरपर भी यह फट नहीं जाता है और इस प्रकारके दुःखसे यह सारा शरीर व्याप्त है। फिर भी यह फटकर भूमिपर गिरता है। इससे यह निश्चय होता है कि असमयमें मौत किसीको भी उठा ले जाती है। यह बड़े ही दुःखकी बात है कि पुत्र-प्राप्तिकी आशासे मैंने कुछ भी व्रत, दान और नियम धर्म कर लिये थे। परन्तु वे निष्फल हुए। बंजर-भूमिमें बोए बीजोंके समान अत्यन्त ही फल-रहित हुए। हे चन्द्रसम सुन्दर मुखवाले ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन निरर्थक है। इसीलिए बहुत थकावटके होते हुए भी प्रीतिवश जिस प्रकार गौ बछड़के पीछे-पीछे वन चली जाती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे बनको चली जाऊँगी। क्योंकि मैंने अबतक ऐसे तीव्र दुःख नहीं सहन किए हैं और अब सौतके कारण अधिकाधिक दुःख भोगना पड़ेगा। ऐसा देखलेनेपर तथा रामचन्द्रजी को सत्यवचनसे बद्ध देखकर दुःखिनी किन्नरीके समान कौशल्या बहुत विलाप करने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त॥ २०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण द्वारा भरत और कैकेयीकी निन्दा तथा कौशल्याको सान्त्वना। कौशल्याकी रामको वन-गमनकी आज्ञा। रामका कौशल्या और लक्ष्मणको प्रबोधन।

तब इसप्रकार विलाप करती हुई राम-माता कौशल्यासे समयानुसार वचन लक्ष्मणने कहा—'आर्ये ! मुझको यह अच्छा नहीं लगता है कि, स्त्रीके

वचनोंके वशमें होकर और राज्यश्रीको त्यागकर राम वनको जावें । वृद्ध राजा तो विपरीत विषयोंसे अनादरित हैं, कामके वश हो गये हैं । फिर वे ऐसा क्यों न कहेंगे ? परन्तु मैं तो रामका ऐसा कोई अपराध नहीं देखता हूँ कि जिस दोषके कारण ये वनवासको निकाले जावें । मैं इस लोकमें ऐसे किसी पुरुषको भी नहीं देखता हूँ जो इनको दूषित या अपराधी कहे । भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जो देवताके समान सरल स्वभाव, दानी, शत्रुओंको भी प्रिय, धर्मदर्शी और धर्मात्मा अपने पुत्रको त्यागे ? राजाके बालकों जैसे इस वचनको भला ऐसा कौन पुत्र अपने हृदयमें रख सकता है कि जो राजधर्म अवगत हो ? आप इस सम्बन्धमें मुझसे एकान्तमें परामर्श लें और इस अर्थको कोई जानने न पावे । भला ऐसा कौन पुरुष है जो यमके समान युद्ध धनुषधारीसे रक्षित आपपर अधिकार करे ? हे राघव ! यदि आपके कोईभी प्रतिकूल होगा तो मैं इस अयोध्याको तीक्ष्ण बाणोंसे मनुष्य रहित कर दूँगा। भरतके सभी पक्षपातियों और हितैषियोंको मैं मार डालूँगा । क्योंकि मृदु पुरुषकाही अनादर हुआ करता है । हमारा दुष्ट पिता तो कैकेयीसेही उत्साह मानता है इसलिए हमें अमित्र होकर उसे बाँधकर मारना चाहिए । यदि गुरु भी कुमार्गी हो जावे और कार्याकार्यका विचार न करे तो उत्पथगामी गुरुको भी उपदेश करना योग्य है । हे पुरुषोत्तम ! राजा किस बल और किस कारणसे आपका स्थित राज्य कैकेयीको देनेकी इच्छा करते हैं ? हम और आप भलेही लड़ें; परन्तु हे शत्रुहन्ता राम ! उसकी क्या शक्ति है जो भरतको राज्य दे सके ? हे देवि ! बड़े भैयाके साथ मेरी सच्ची प्रीति है । मैं अपने सत्य धनुष, दान और इष्टसे तथा आपकी कसम खाता हूँ कि, यदि राम जलती हुई अग्निमें या वनमें जावेंगे तो आप मुझे इनसे पहिले गया हुआ समझिए। मैं अपने बलसे आपका दुःख वैसेही दूर करूँगा, जैसे सूर्य अन्धकारको नाश करता है । हे देवि ! अब आप और राम मेरे पराक्रमको देखें । मैं उस वृद्ध पिताको मारूँगा, जो कैकेयीमें मन लगाए हुए दीन और कैकेयीमें मनसे आसक्त और इस वृद्धावस्थामें गर्हित कर्म करनेपर उद्यत है । महात्मा लक्ष्मणके ऐसे वचन सुनकर कौशल्या रोती हुई रामसे कहने लगी—हे पुत्र ! तुमने अपने भाई लक्ष्मणका कथन सुना ? इसके पश्चात् तुम्हें जो अच्छा

लगे, वह तू कर। मुझ सपत्न्याके अधर्मयुक्त वचनोंको सुनकर मुझ शोकतप्ताको त्याग यहाँसे तू न जा। हे धर्मज्ञ! यदि धर्मात्मा बनकर तू धर्म करनेका इच्छुक है तो यहाँ रहकर अत्युत्तम धर्मसे मेरी सेवा कर। कश्यपका तपस्वी पुत्र गृहस्थमें रहता हुआ ही अपनी माताकी सेवासे स्वर्गका भागी हुआ। जैसे राजा तेरे पूज्य हैं, वृद्धभावसे वैसेही मैं भी हूँ। मैं तुझको वन जानेकी आज्ञा कभी नहीं दे सकती हूँ। तेरे वियोगसे मेरा जीवन और सुख वृथा है। तेरे साथ मुझको तृण खाकर रहना भी श्रेष्ठ है। मुझ शोकसे तपती हुईको तूँ छोड़कर वनको चला जावेगा, तो मैं अनशन व्रतसे जीवनको त्याग दूँगी। पुत्र! तू तो लोकविख्यात नरकको प्राप्त होगा। जैसे ब्रह्म-हत्यासे समुद्र प्राप्त हुआ है। विलाप करती हुई दीन माता कौशिल्यासे धर्मात्मा राम धर्म सहित यह वचन बोले—मेरी शक्ति नहीं है कि मैं पिताके वचनोंका उल्लंघन करूँ। मैं तुमको शिरसे दण्डवत करता हूँ और वनको जाता हूँ। व्रतचारी ऋषिने पिताके वचनोंका पालन किया और धर्मको जानते हुए बुद्धिमान् कण्डुने गौको मारा। हमारे कुलमें तो पिता सगरकी आज्ञासे भूमि खोदते हुए सगर पुत्रोंने मृत्युको प्राप्त किया था। स्वयं पिताके वचन पालन करनेवाले जमदग्नि परशुरामने वनमें फरसेसे स्वयं अपनी माताको काट डाला था। देवि! इस तरह देवसमान बहुत पुरुषोंने किया है। हम भी अपने पिताके वचनोंको सफल करेंगे, मैंने ही केवल यह पिताके वचन पालन नहीं किए हैं, जिनको मैंने तेरेसे कहा है। मैं ही तेरे प्रतिकूल अपूर्व धर्मको नहीं करता हूँ; किन्तु जो पूर्व आर्य पुरुषोंका मार्ग है, उसीपर मैं भी जा रहा हूँ! जो मैं कार्य करता हूँ वह पृथ्वीमें अन्यथा नहीं है। पिताकी आज्ञा पालन करता हुआ कोई भी हानिको प्राप्त नहीं हुआ है। सर्व धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, बोलनेमें चतुर राम मातासे यह कह फिर बोले—लक्ष्मण! मैं जानता हूँ मुझमें तेरी बड़ी प्रीति है, पराक्रम और तेज तो अति दुरासह है। सत्यका और शान्तिका अभिप्राय जानकर शुभ लक्ष्मण! मेरी माताको बहुत दुःख है। इस लोकमें परम पदार्थ धर्म ही है। धर्ममें ही सत्य स्थित है और धर्मको लेकर ही मैं पिताके वचनों का पालन करता हूँ। हे वीर! धर्ममें स्थित होते हुए माता-पिता, ब्राह्मणोंके वचनोंको सुनकर वृथा नहीं करना

चाहिए। इसलिए मैं पिताकी आज्ञाका उलंघन नहीं कर सकता हूँ। पिताकी अनुमतिसे कैकेयीने हमको आज्ञा दी है। तामसी धर्मका आ न कर; मेरी बुद्धिका अनुयायी हो। लक्ष्मणसे यह कहकर राम कौशल्या शिर झुकाकर कहने लगे, देवि ! मुझको वन जानेकी आज्ञा दें, तुमको प्राणोंकी कसम है। तुम मेरे लिये स्वस्तिवाचनादिक कर। मैं अपनी प्रति को पूरी करके फिर अयोध्याको आऊँगा। जैसे राजर्षि ययाति फिर स को चला गया था। हे माता ! शोक न करो, पिताके वचनोंका पाल करके वनवाससे फिर आउँगा। तुम्हें, मुझे, सीता, लक्ष्मण और सुमि इन सबको पिताकी आज्ञामें रहना चाहिए, यह प्राचीन आर्यधर्म है। माता ! दुःख को मनसे हटाकर पूजाकी सामग्रीको इकट्ठा करो और व वासमें लगी मेरी बुद्धि के अनुकूल होवो। तब उनका वह निर्भीक धैर्यपूर्ण अत्यन्त धर्मानुकूल अभिभाषण सुनकर रामचन्द्रजीकी माता, जो मूर्छित गयी थीं, कुछ सावधान हो, रामचन्द्रजीसे कहने लगीं—"हे मेरे प्यारे पु जैसे तुम्हारे पूज्य पिताजी तुम्हें पूजनीय हैं, उसी प्रकार मैं भी स्वधर्म स्नेह का विचार करते हुए तुम्हें जाने की आज्ञा नहीं देती हूँ और बड़े दुःखमें मुझे छोड़कर निकल जाना तुम्हें भी उचित नहीं है। तुम्हारा वि हो जानेपर मुझे जीवनसे, संसारसे, दूसरे देवताओंकी पूजासे या मुक्तिसे सरोकार रखना है ? एक क्षणके लिए भी तुम्हारे समीप रहना मुझे स संसारसे अधिक हित कारक है"। इस भाँति माताजीका दुःख मय विल सुनकर रामचन्द्रजी हाथोंमें जलते हुए दीये लेकर लोग जब किसी हाथीको हकालाते हैं तब जैसे वह अंधेरेमें घुसकर व्यथित-चित्त होता उसी तरह बड़े दुःखी हुए और वे अपनी मातासे, जो लगभग बे-सुध-सी गयी थीं एवं अत्यन्त आगबबूले होकर बैठे हुए लक्ष्मणसे भी धर्मानु ढंगसे कहने लगे। क्योंकि वे स्वयं धर्मपर अटल हुए थे। उस समय वे ही तरह बोलनेमें सुयोग्य हुए थे। हे लक्ष्मण ! मुझे सर्वदा तुम्हारी भक्ति तुम्हारे शौर्यकी जानकारी रहती है पर; तुम मेरे आशयको न समझकर जी के साथ दुःखी होते हो; किन्तु ऐसे दुःखी न बनो। पिछले जन्ममें हुए पुण्यका फल जब प्राप्त होता है, तब इस संसारमें मनु आदि पुरु

जिसे धर्म अर्थ काम रूपी पुरुषार्थोंके परिणाम-स्वरूप माना है, वह सभी, यदि धर्म अक्षुण्ण बना रहे तो निश्चित रूपसे मनुष्यको सुतरां प्राप्त होता है। मुझे तो इस बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं है। संक्षेपमें यदि कहूँ तो जैसे, अनुकूल प्रिय और पुत्र युक्त पत्नीके कारण धर्म, अर्थ और काममें यथेष्ट सफलता मिलती है, वैसे ही यदि हम एक धर्मको सुरक्षित रखें, तो वह दूसरे क्षेत्रोंमें भी अच्छी सफलता प्रदान करता है। अतः धर्म ही प्रमुख है और उसीकी रक्षा करना चाहिये। जिन कर्मोंमें (धर्म अर्थ कामका कुछ भी परस्पर सम्बन्ध नहीं) उन कार्योंका प्रारम्भ ही न करना चाहिए। जिससे धर्म-की प्राप्ति हो वही आरंभ करना ठीक है। क्योंकि धर्मकी ओर ध्यान न देकर जो व्यक्ति अर्थ इकट्ठा करनेमें तल्लीन होता है, वह जनताका द्वेष-भाजन बनता है और धर्मको पैरों तले रौंदकर निरी विषय—लालसामें लिप्त रहना तो अत्यन्त जघन्य है। अतः गुरु, राजा, पिता तथा वृद्ध पदसे उन्होंने जो कुछ भी करनेके लिए कहा है उसे, भले ही वह क्रोध, हर्ष या विषय लालसा-से कहा गया हो, कौन धर्मको अक्षुण्ण रखनेके भावसे प्रभावित पुत्र अस्वीकृत एवं अमान्य करेगा ? इसलिए पिताजीकी इस प्रतिज्ञाको पूरी तरह निभाये बिना मुझसे रहा नहीं जायगा। क्योंकि हे लक्ष्मण ! वह हमारे गुरुके समान हैं और हमें आज्ञा देनेके लिए पूर्णतया अधिकारी हैं तथा पति की हैसियतसे माताजीके भी वे ही अवलम्बन और धर्म हैं। (पतिके रहते नारीको पुत्रपर निर्भर रहना कदापि भी ठीक नहीं) इसलिए उस धर्मराजके अस्तित्व कालमें जबकि वे अपने मार्गपर चल रहे हैं, भला माताजी किसी एक पतिहीना नारीके समान मेरे साथ वनके लिए कैसे चल सकती हैं? अतः हे देवि ! मैं वनको जा रहा हूँ, मेरा समर्थन करो और ऐसे कार्य करो कि, जिनसे वनमें रहते हुए मुझे सुख प्राप्त हो। जैसे सत्यके बलसे राजा विराट फिर स्वर्ग चले गये, वैसे ही मैं वनवासकी अवधि पूरी होनेपर यहाँ लौट आऊँगा। भविष्यकी सफलता और यशके सम्बन्ध में मैं कभी उदासीन नहीं रह सकता। हे देवि ! यह निश्चित है कि, मनुष्यका जीवन बहुत काल तक टिकने वाला नहीं है। इसलिए इस नगण्य भूमिको मैं अधर्मके बलपर प्राप्त नहीं किया चाहता। इस प्रकार माताको समझा बुझाकर पुरुषोत्तम राम

पराक्रम पूर्वक दण्डकारण्यमें जानेके लिए तैय्यार हुए। लक्ष्मणको अपने हृदयका भाव ठीक तरह समझाये और माताकी प्रदक्षिणाकर वन चले जानेका निश्चय किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

बाईसवाँ सर्ग

क्रुद्ध लक्ष्मणको रामका समझाना और यह कहना कि दैव ही सब कुछ है, इसलिए कैकेयी को दोषी न कहना चाहिए

इसके पश्चात दुःखसे दीन अत्यन्त क्रोधित सर्पके समान श्वास ले और क्रोधसे नेत्र खोले हुए लक्ष्मणके पास जाकर रामने कहा——हे लक्ष्मण इस समय केवल धैर्यको ग्रहण कर, इस अपमानको त्यागकर प्रसन्नतासे स्थि होवो और जो कुछ मेरे अभिषेकके लिए सामग्री संचितकी हैं, इन सबक त्याग करो और धर्म-कार्यका अवलम्बन करो। हे लक्ष्मण! जो मे अभिषकके लिये सामग्री है, वह मेरे वनवासके लिए काम आवे। जिस मात का मन मेरे अभिषेकके लिए तपता है, उसको जिस तरह सन्तोष हो वै करो। हे लक्ष्मण! जिसके दुःखको मैं एक मुहूर्त्त भी नहीं सह सकता और उसके दुःखको हटानेके लिए मैं कभी भी उपेक्षा नहीं कर सकता, य माता-पिता कोई कार्य अप्रिय या अविचारसे करते तो मैं कभी भी उसक स्मरण नहीं करता। सत्यवादी, सत्यसन्ध और सत्यपराक्रमी परलोकके भ से भीत मेरे पिता निर्भय होवें! राजाको भी इस अभिषेकके निवृत्त न हो पर वरदान सत्य न हुआ यह मनमें ताप न होवे, अन्यथा यह ताप मुझे दहन कर देगा। अभिषेक विधानको एक ओर करके अर्थात् युवराजपद त्यागकर इस नगरसे हे लक्ष्मण! मैं शीघ्र ही वनको जाना चाहता हूँ औ मेरे जानेपर कैकेयी अपने पुत्रका अभिषेक करावेगी और जब मैं चीर, ज मृगचर्मादि धारण करके वनको चला जाऊँगा तो कैकेयी आनन्द विभोर उठेगी। मैं किसीको दुख देना नहीं चाहता और शीघ्र ही वनको जाऊँग हे लक्ष्मण! मेरे वन चले जाने में, तथा इस विस्तार वाले राज्यके सम्ब में दैवका ही संबन्ध देखना चाहिए और लौट आनेमें भी यही भाव दैव कारण है। प्रारब्धने न पैदा किया होता तो कैकेयीकी बुद्धि मेरे दुःख दे

न होती। सौम्य ! तुम जानते हो मैं माताओंमें कभी अन्तर नहीं देखता हूँ। कैकेयीका भी भाव भरतमें और मेरेमें भेदवाला नहीं हुआ सो अभिषेक की निवृतिके लिए और वनवासकी प्राप्तिके लिए कैकेयीके यह कठोर दुर्वचन मैं अपने प्रारब्धसे ही मानता हूँ। अन्यथा किस तरह साधु स्वभाव वाली सद्-गुणवाली, राजपुत्री साधारण स्त्रियोंके समान श्रेष्ठ पतिके समक्ष मेरे दुःखके लिए ऐसे वचन बोले ? हे लक्ष्मण ! कोई प्रारब्धसे भी लड़ सकता है ? जिसका ग्रहण कर्मसे भिन्न कुछ नहीं देख सकते हैं। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, भय-क्रोध जन्म-मरण और जो कुछ भी है, यह सब दैव वश होता है। उग्र तप करने वाले ऋषि भी दैवसे पीड़ित होकर तीव्र नियमों को छोड़कर काम क्रोधसे भ्रष्ट हो जाते हैं। जो कुछ विना इच्छाके अकस्मात् यहाँ प्राप्त होता है; निवृत्ति आरम्भादिक यह सब दैवके कारणसे होते हैं। इस सत्य बुद्धिसे आत्मासे आत्माको रोककर मैं विचारता हूँ कि अभिषेकके निवृत्त होनेपर भी मुझको कुछ शोक नहीं। इसलिए तापर हित होकर तथा मेरे अनुयायी होकर अभिषेककी सामग्री लौटा ले जाओ। इससे तुम भी इस विषयमें परिताप अभिषेक सामग्रीसे मुझको अलग रक्खो, इस विषयमें मुझे कष्ट मत दो। जो यह तमाम घड़े अभिषेकके लिए इकट्ठे किए गए हैं लक्ष्मण ! इन सबसे मेरा तापस व्रत स्नान होगा। अथवा इन राजद्रव्योंसे क्या ? मेरा लाया हुआ जल व्रत करावेगा। लक्ष्मण ! विपरीत भाव न होने से सन्ताप न कर, राज्य या वनोंमें निवास दोनों ही समान है, इन दोनोंमें वनवास ही महान् फल है। हे लक्ष्मण ! इस राज्याभिषेकमें कैकेयीने विघ्न किया, ऐसा न मानो। क्योंकि माता-पिता दोनों दैवाधीन हो गये हैं और तू दैवका सामर्थ्य भी जानता है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

तेइसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका रोष तथा राम-सम्बोधन

इसप्रकार रामके कहने पर हर्ष शोकान्वित लक्ष्मण नत शिर किए वहीं स्थित हो गये। किन्तु इनकी भृकुटि चढ़गई। वे विलमें स्थित सर्पके समान दीर्घ निःश्वास लेने लगे। उनका भृकुटिबद्ध मुख क्रुद्ध सिंहके समान

दिखाई पड़ा ! तब हस्तीके शुंडके समान वह अपना हाथ इधर-उधर फेंकते तथा तिरछी ग्रीवा किए और वंक नेत्रोंसे देखते हुए भ्रातासे बोले—धर्मदोषसे आपको यह भ्रम हुआ है, जो अयुक्त है दुर्वल दैवको आप जैसे निश्चय चित्तवाले वीर पुरुष कभी स्वीकार नहीं करते। फिर आप क्यों ऐसे असमर्थ और कृपण दैवकी प्रशंसा करते हैं ? क्यों उन दोनों (कैकेयी दशरथ) में शङ्का नहीं उत्पन्न होती ? हे धर्मात्मन् ! धर्मके वहानेसे कपट धर्माचरणसे निज दोष को छिपाने वालोंको क्या आष नहीं जानते हैं ? मूर्खतासे उन दोनों हत्यारोंके स्वार्थ चरित्रको आप क्यों नहीं जानते कि, जिन्होंने वरदान देनेका पहले ही निश्चय कर लिया था। उसे अभिषेकके पहले ही देना योग्य था। फिर लोकमतके विरुद्ध, आपसे पहले ही अन्यका यह अभिषेक तो न होता। मैं इसे कदापि सहन नहीं कर सकता। हे महामते ! जिस वरके कारण आपकी यह द्विविध बुद्धि हुई है, वह धर्म द्वेष करने ही योग्य है। जब पिताजी कैकेयीके वशवर्ती कर्ममें ही आसक्त हैं, तव आप उनके ऐसे अधर्मयुक्त और निन्दायोग्य वचनोंको क्यों करेंगे ? यदि क्लेशके कारण ही आप इसे नहीं जानते हैं तो मुझे इस निन्दनीय धर्मसे बड़ा दुःख होगा। आपका यह धर्म-संग तो लोकमें निन्दाके योग्य है। ऐसे कामी माता-पिता तो नाममात्रके ही हैं। क्योंकि ये आपके अहित शत्रु हैं। फिर किसप्रकार आप इनकी इच्छा करते हैं ? यदि उन दोनोंके कार्यमें आपकी दैवी बुद्धि ही स्वीकार है, तो भी आपको यह बुद्धि त्याग देनी चाहिए। क्योंकि यह मुझको अच्छी नहीं लगती है। कातर और निर्वल ही दैवका आश्रय करते हैं। वीर और आत्मवान् पुरुष दैवको कभी नहीं मानते। पुरुषार्थी तो दैवको बाँधकर काम करते हैं। ऐसे मनुष्य कभी दैवी विपत्तियोंमें नहीं फँसते और दुःख नहीं पाते। आज मैं दैव और पुरुष-पुरुषार्थको देखूँगा। दैव और मनुष्यकी आज व्यक्ति प्रकट होगी। आज मेरे पुरुषार्थसे उस हरे गए दैवको मनुष्य देखेंगे कि जिस दैवने आपके अभिषेकका हरण किया है। आज मैं अपने पुरुषार्थसे उस दैवको निवृत्त करूँगा जो बलगर्वित हाथीके समान अंकुशकी मारको नहीं मानता। परन्तु जब आपके राज्याभिषेकको समस्त लोकपाल और तीनोंलोकके निबासी नहीं रोक सकते तब अकेले पिताकी क्या सामर्

है ? हे राजन्! जिन लोगोंने आपके वन-गमनका समर्थन किया है, अब वही लोग चौदह वर्षके लिए वनमें जाकर रहेंगे। अब मैं उस पिता और माताकी इस आशापर जो उन्होंने आपको राज्य न देकर भरतको देना चाहती है, पानी फेर दूँगा। अब मेरे बलके जो लोग विरुद्ध हैं उनको दैवबल उतना दुःखदायी न होगा, जितना कि मेरा उग्र पौरुष दुःख देनेवाला होगा। हजार वर्ष राज्य करनेके अनन्तर आप वन जाना। तब आपके पुत्र राज्य करेंगे। यदि आपको वनमें रहना है तो हमारे पूर्वज राजा लोग जिस प्रकार वृद्धावस्थामें वनवास करते थे, उस प्रकार आप भी वनवास कीजिये। पूर्ववर्त्ती राजा लोग (वृद्धावस्था में) प्रजाको पुत्रके समान पालन करनेका भार अपने पुत्रोंको सौंप, आप वनमें जा, जप तप किया करते थे। हे आर्य! यदि आप समझते हों कि महाराजकी आज्ञाके विरुद्ध राज्य लेनेमें गड़बड़ी मच जानेकी शंका है और इसलिए आप राज्य लेना नहीं चाहते, तो मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मुझे वीरगति प्राप्त न हो। मैं तुम्हारे राज्यकी रक्षा उसी प्रकार करूँगा, जिसप्रकार समुद्र तटकी भूमि, समुद्रमें पृथ्वीकी रक्षा करती है। अब आप मङ्गलाचार पूर्वक अपना राज्यभिषेक करवानेकी ओर मन लगाइए। मैं अकेला ही उन सब राजाओंको जो इस कार्यमें बाधा डालनमें अग्रसर होंगे, अपने पराक्रमसे हटानेको पर्याप्त हूँ। मेरी ये दोनों बाहें शरीरकी शोभा बढ़ानेके लिए नहीं हैं और न मेरा यह धनुष शृंगार करनेके लिए कोई आभूषण ही है न खड्ग केवल लटकानेके लिए है और न बाण केवल तरकसमें पड़े रहनेके लिए है। मेरी ये चारो चीजें तो शत्रुका दमन करनेके लिए हैं जो मेरा शत्रु बनकर रहना चाहता है उसका अस्तित्व मुझे पसन्द नहीं। (राजाओंकी तो बात ही क्या) मैं अपनी तेज धारवाली और बिजलीकी तरह चमचमाती तलवारसे यदि इन्द्र भी शत्रु बनकर आवे, तो उनके भी टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। इस तलवारके वारसे काटे हुए हाथी घोड़े और मनुष्योंके हाथों पैरों और सिरोंके ढेर लगा दूँगा, जिससे आने-जाने तकका रास्ता न रहेगा। अर्थात् रणभूमिको मुर्दोंसे भरकर बड़ा भयंकर बना दूँगा। मेरी तलवारसे कटे प्रदीप्त पर्वतकी तरह शत्रु लोग उसप्रकार गिरेंगे, जिस प्रकार बिजली सहित मेघ गिरते हैं। जब मैं गोहकी खालके

बने दस्ताने पहिन हाथमें धनुष लूँगा, तब मैं देखूँगा कि वह कौन-सा शूराभिमानी वीर है, जो मेरा सामना करता है। मैं बहुतसे बाण चलाकर एक शत्रुको एक ही बाणसे अनेक शत्रुओंको विनाशकर, सैनिकों घोड़ों और हाथियोंके मर्मस्थानोंको भेद डालूँगा। आज महाराजकी प्रभुता मिटाने और आपकी प्रभुता जमानेमें मेरे अस्त्रोंके महात्म्यका प्रताप भी प्रकट हो जायगा। हे राम! आज मेरी ये दोनों बाहें जो चन्दन लेप, आभूषण धारण और द्रव्य दान देने तथा शत्रुओंसे हितैषियोंकी रक्षा करने योग्य हैं वे तुम्हारे अभिषेकमें विघ्न डालनेवालोंके निवारणमें अपने अनुरूप काम करेंगी। हे रामचन्द्र! मैं तुम्हारा दास हूँ। मुझे तुम अपने शत्रुको बतलाओ और आज्ञा दो, जिससे मैं अभी उसके प्राण यश और हितैषियोंसे अलग कर दूँ और इस पृथ्वीका राज्य तुम्हारे हस्तगत हो जाय। रघुकुलके बढ़ानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणकी इन बातोंको सुन और उनके आँसू पोंछ बारम्बार उनको समझाने लगे और कहने लगे—हे सौम्य! मुझे तो तुम पिताकी आज्ञा माननेमें अटल सत्पथगामी समझो। अथवा मैं पिताकी आज्ञा मानूँगा, क्योंकि पिताकी आज्ञा मानना मानों सत्पथपर चलना है अर्थात् सत्यपुरुषोंके लिए भी यही करणीय भी है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का तेइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

चौबीसवां सर्ग

तदन्तर जब कौशिल्याजीने देखा कि, धार्मिक श्रीरामचन्द्र पिताकी आज्ञा माननेके लिए तत्पर हैं, तब वे आँखोंमें आँसू भर गद्गद् कण्ठसे बोलीं हे राम! जिसने कभी दुःख नहीं सहा और जो सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाला एवं सबसे प्रिय वचन बोलने वाला है और जो महाराज दशरथके औरस मेरे गर्भमें उत्पन्न हुआ है वह बनमें किस प्रकार ऋषिवृत्तिसे निर्वाहकर सकेगा। जिसके नौकर चाकर मिठाई खाया करते हैं, वह मेरा राम किसप्रकार बनमें कन्दमूल फल खायगा? महाराज दशरथ अपने गुणवान् प्यारे पुत्रको देश निकाला दे रहे हैं, यह बात सुनकर, इसपर कौन विश्वास करेगा और इसपर किसको भय न होगा? (जो कोई यह बात सुनेगा वही अपने पिता की ओरसे भयभीत हो जायगा कि जब महाराज जैसे श्रेष्ठजनने अपने

निरपराध गुणी प्यारे पुत्रको निकाल दिया, तब हमारे पिता तो हमें क्यों घरमें रहने देंगे) जब सब लोगोंके प्यारे तुम (श्रीरामचन्द्र) वनको जाओगे तब सुख दुःखके नियमन-कर्त्ता दैव ही को निःस्सन्देह सबसे बड़ा मानना पड़ेगा। हे वत्स ! मेरे मनकी यह शोकरूपी आँच, जो तुम्हारे अदर्शन रूपी वायुसे प्रज्वलित और विलाप एवं दुःखी रूपी ईंधन तथा आँसू रूपी घीके पड़नेसे धधकेगी और जिससे चिन्तारूपी धूँआ निकलेगा—वह मुझे सुखाकर उसी प्रकार भस्मकर डालेगी, जिस प्रकार हेमन्त ऋतुके बीतनेपर, दावानल वनके घास-फूस और लतागुल्मोंको भस्मकर डालता है। हे वत्स ! जैसे गाय अपने बछड़ेके पास दौड़कर जाती है उसी प्रकार मैं भी तेरे पीछे-पीछे जहाँ कहीं तूँ जायगा—वहीं चलूँगी। जब कौसल्याने श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहा, तब श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त दुःखिनी अपनी मातासे यह कहा—हे माता ! महाराजको कैकेयीने धोखा देकर, अत्यन्त क्लेशितकर दिया है, मैं भी इस समय महाराजसे बिछुड़कर वन जा रहा हूँ, तिसपर यदि तुम भी मेरे साथ चल दी तो महाराज कभी जीवित न बचेंगे। स्त्रीके लिए सबसे बढ़कर निष्ठुर कार्य केवल पति-परित्याग ही है, सो ऐसे निन्द्य कार्यकी कल्पना भी तुझे अपने मनमें न करनी चाहिए। जब तक मेरे पिता महाराज दशरथ जीवित हैं, तब तक तुम उनकी सेवा करो। तुम्हारे लिए यही सनातन धर्म है। बड़ेसे बड़े कार्यको सहजमें करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार समझानेपर धर्मबुद्धि वाली महारानी कौसल्या मान गयीं और प्रसन्न होकर बोलीं (वत्स !) तुम ठीक कहते हो। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी, माताकी स्वीकारोक्ति सुन अपनी अत्यन्त दुःखिनी मातासे फिर बोले। हे देवि ! मुझे और तुम्हें पिताकी आज्ञा अवश्य माननी चाहिए। क्योंकि महाराज एक तो तुम्हारे पति हैं, दूसरे मेरे गुरु हैं, तीसरे पिता हैं और चौथे सबके पालन-पोषण करने वाले स्वामी हैं। मैं चौदह वर्ष हँसी-खुशीमें बिता तुरन्त लौटकर आता हूँ। तब तू जो कहेगी वही मैं करूँगा। प्रिय पुत्रकी इन बातोंको सुन, छल-छल बहने वाले आँसुओंसे भरे नेत्रों वाली और सर्व प्रकारके दुःखों को सहनेमें असमर्थ महारानी कौसल्या श्रीरामचन्द्रसे बोलीं। हे काकुत्स्थ ! मैं यहाँ सौतोंके बीचमें रहनेमें असमर्थ हूँ। अतः यदि तुमने पिताकी आज्ञासे,

वन जाने हीका निश्चयकर लिया है तो मुझे भी वनैली हिरनीकी तरह अपने साथ ही लेता चल। इस प्रकार विलाप करती हुई मातासे श्रीरामचन्द्रजी रोकर कहने लगे। जब तक स्त्री जिए तब-तक उसे उचित है, कि वह अपने पति हीको अपना देवता और मालिक माने। अतः इस समय आपके और मेरे मालिक श्रीमहाराज ही हैं। लोकनाथ और बुद्धिमान् महाराजके रहते हम लोग अनाथ नहीं हो सकते (कौसल्याने जो कहा कि मैं सौतके साथ नहीं रह सकूँगी इस बातके उत्तरमें श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं) भरत भी धर्मात्मा हैं और सबसे प्रिय बोलनेवाले सज्जन हैं। वे सब प्रकार तुम्हारा मन रक्खेंगे और तुम जो कहोगी वही वे करेंगे। मेरे वन जानेपर, मेरे वियोगमें, जिससे महाराजको जरा भी कष्ट न हो, वह काम बड़ी सावधानीसे करती रहना। इस दारुण शोकसे वे मरने न पावें। महाराजकी अब वृद्धावस्था है, अतः बड़ी सावधानीसे उनके हितमें तत्पर रहना। क्योंकि जो परमोत्तम स्त्री व्रतोपवास किया करती है; किन्तु अपने पतीकी सेवा नहीं करती, वह पापियोंकी गतिको प्राप्त होती है अर्थात् नरकमें डाली जाती है और जो स्त्री अपने पतिकी सेवा करती है उसे स्वर्ग मिलता है। भले ही वह स्त्री किसी देवी देवताकी पूजा न करे, किन्तु यदि वह पतिकी सेवा करे तो उसे निश्चय ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है। स्त्रियोंके लिए पति-सेवा ही प्राचीन लोकाचार-सिद्ध वेद और स्मृत्यनुकूल धर्म है। हे देवि ! शान्तिक पौष्टिक कर्म करके पुष्पादिसे देवताओंका पूजन और सुव्रती ब्राह्मणोंका सत्कार, मेरे मङ्गलके लिए करती रहना और यह अनुष्ठान करती हुई मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करना। स्नानादिकर और मधु मांसादि छोड़कर, शुद्धाहार कर, तू महाराजकी सेवा करना। मेरे लौटने तक यदि महाराज जीवित रहें तो तेरा बड़ा मनोरथ पूर्ण होगा। जब श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार (महाराजकी सेवा करनेको अयोध्या ही में रहनेके लिए) समझाया तब आँखोंमें आँसू ला, पुत्र वियोगके शोकसे आर्त कौसल्याजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा। हे वत्स! जब तू वन जानेकी अपने मनमें ठान ही चुका; तब मुझमें शक्ति नहीं कि तुझे मैं रोक सकूँ। हे वीर ! सचमुच काल दुर्लंघ्य है। अर्थात् भावीको कोई नहीं रोक सकता। अतः हे पुत्र ! तूँ एकाग्र मनसे सावधानता पूर्वक

बन जा। तेरा सदा कल्याण हो। तेरे लौट आनेपर ही मेरा क्लेश दूर होगा। हे महाभाग! जब तू लौट आवेगा, जब तेरा यह व्रत पूरा हो जायगा और जब तू पिताकी इस ऋणसे उऋण हो जायगा, तब मुझे बड़ा आनन्द होगा। इस संसारमें भाग्यकी गति कभी समझ नहीं पड़ती। क्योंकि यह भाग्य ही की गति है, जो मेरे कथनके प्रतिकूल तुमको प्रेरणा कर रही है। हे राघव! तुम अब जाओ और कुशल पूर्वक लौटकर आ जाओ और शुद्ध चित्तसे मुझे हर्षित करो। हे वत्स! मैं तो चाहती हूँ कि वह समय शीघ्र आवे, जब मैं तुम्हें वनसे लौटे हुए और जटा वल्कल धारण किए हुए देखूँ। उस समय महारानी कौसल्याजी श्रीरामचन्द्रजीको परम आदर पूर्वक वन जानेके लिए निश्चय किए हुए जान, स्वस्तिवाचन करनेकी इच्छासे, उनसे शुभ वचन बोलीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ सर्ग

शोकको त्याग कौशल्याजीने जलसे आचमन किया और पवित्र हो वे श्रीरामचन्द्रजीके मङ्गलके लिए मङ्गलाचार, करने लगीं। हे रघुवंशियोंमेंउत्तम! मैं अब तुमको नहीं रोक सकती। अब तू जा और शीघ्र ही वहाँसे लौट-कर सज्जनोंके मार्गका अनुसरणकर। हे राघव शार्दूल! जिस धर्मको तुम धैर्य और नियमित रूपसे पाल रहे हो, वही धर्म तेरी रक्षा करे। जिन देव-ताओंको तूँ चौराहों और मन्दिरोंमें प्रणाम किया करता है वे महर्षियों सहित वनमें तेरी रक्षा करें। बुद्धिभावसे विश्वामित्रजीने तुझे जितने अस्त्र दिये हैं, वे सब गुण युक्त अस्त्र तेरी रक्षा करें। हे महाबाहो! पिताकी सेवा (के फल-से) से रक्षित तुम बहुत दिनों तक जिओ। हे नरोत्तम्। समिधा, कुश, कुशकी बनी पवित्री, वेदियाँ, देवमन्दिर, चित्र-विचित्र देवपूजास्थल, पवत, छोटे-बड़े वृक्ष, जलाशय, पक्षी, सर्प और सिंह तेरी रक्षा करें। साध्यगण, विश्वेदेवा, उनचास पवन, सब महर्षि तेरा मङ्गल करें। धाता, विधाता, पूषा, आर्यमा, इन्द्रादि लोकपाल तेरा मङ्गल करें। छः ऋतुएँ, दोनों पक्ष, बारहो मास, सब संवत्सर, रात-दिन तथा मुहुर्त्त तेरी रक्षा करें। हे वत्स! ध्यान.

एकाग्रता और श्रुतिस्मृति-उक्त धर्म सर्वत्र तेरी रक्षा करें। भगवान् सनत्कुमार, उमा सहित श्रीमहादेवजी, बृहस्पति सप्तर्षि और नारदजी सदैव तेरी रक्षा करें। जो और सिद्ध लोग और सब दिशाओंके स्वामी हैं, हे पुत्र! उन सबकी मैं स्तुति करती हूँ कि, वे सब नित्य तेरी रक्षा करें। सब पर्वत, सब समुद्र, राजा वरुण, आकाश अन्तरिक्ष, पृथ्वी, सब नदी, सब नक्षत्र, देवताओं सहित सब ग्रह, दिन-रात और दोनों संध्यायें वनमें तुम्हारी रक्षा करें। छःहों ऋतुएँ, बारहों मास, सब संवत्सर कला काष्ठा सुख दें। बुद्धिमान् एवं मुनिवेश धारण कर वनमें विचरते हुए तुम्हारे लिए आदित्यादि, देवता, और दैत्य सदा सुखदायी हों। राक्षस, पिशाच तथा भयङ्कर एवं क्रूर कर्म करने वाले जितने जीव हैं, और जितने मांसभक्षी जीव हैं, उन सबसे तुम्हें भय न हो। वानर, बीछी, ढाँस, मच्छर, पहाड़ी सर्प, कीड़े ये भी तुझे वनमें दुःखदायी न हों। मतवाले हाथी, सिंह, बाघ, रीछ, आदि भयङ्कर दाँतोंवाले जानवर, जंगली भैंसे, जिनके सींग बड़े भयङ्कर हैं, हे पुत्र! तुझसे द्रोह न करें। अन्यायी क्रूर जन्तु, जो मनुष्य माँस भक्षी और भयङ्कर हैं, उन सबकी मैं यहाँ आराधना करती हूँ कि, वनमें वे तेरी हानि न करें। तेरा मार्ग मंगल रूप हो और तेरा पराक्रम सिद्ध हो। हे पुत्र! वनके फल मूलादि तुझे मिलते रहें और तूँ निर्विघ्न वनमें विचरता रहे। आकाश और पृथ्वीके पदार्थोंसे बार-बार तेरी रक्षा हो। सब देवताओंसे तथा उन सबसे जो तेरे शत्रु हों इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, कुवेर और यम ये सब तुझसे पूजित होकर, दण्डक वनमें तेरी रक्षा करें। अग्नि, वायु, धूप और ऋषियोंके बतलाये मन्त्र, हे रघुनन्दन! अछूतोंके छूते समय तेरी रक्षा करें। सब लोकोंके स्वामी ब्रह्मा प्राणि-मात्रका पालन करनेवाले भगवान् विष्णु, ऋषि, तथा अन्य देवता, जो मुझसे छूट गये हों, वे सब वनमें तेरी रक्षा करें। इस प्रकार यशस्विनी माता कौसल्याने फूल चन्दनसे देवताओंकी पूजा और उनकी यथायोग्य स्तुतिकी। तदन्तर अग्नि प्रज्वलित करवा, विधि विधान जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके मङ्गलके लिए विधि पूर्वक हवन करवाया। घी, सफेद फूल, समिधा और सफेद सरसों आदि हवनका सामान कौसल्याजीने एकत्रकर, वेदीके पास रख दिया। तब हवन

करने वाले ब्राह्मणने, सर्वोपद्रप शान्तिके लिए तथा श्रीरामचन्द्रजीकी आरोग्यताके उद्देश्यसे हवन किया। तदन्तर हवनसे बचे हुए साकल्यसे होमस्थानसे बाहिर स्थलपर लोकपालोंको बलि दी और शहत, दही, अक्षत, घी द्वारा ब्राह्मणोंसे वनमें श्रीरामचन्द्रजीके मंगलके लिए, स्वस्तिवाचन कर्म करवाया। तदन्तर इस कर्म करवाने वालोंमें मुख्य जो ब्राह्मण था, उसको श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी माता कौसल्याजीने मुँहमागी दक्षिणा दी और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा। हे राम! जैसा मङ्गल सब देवताओंसे नमस्कृत इन्द्रका वृत्रासुरके नाशके समय हुआ था वैसा ही मङ्गल तेरा हो। जैसा मङ्गल पूर्वकालमें विनतीकी प्रार्थनासे गरुड़जीका जब वे अमृत लेने गए थे, हुआ था, वैसा ही मङ्गल तेरा हो। समुद्रसे अमृत निकालनेके समय वज्रधारी इन्द्र; जब दैत्योंको मारनेके लिए प्रवृत्त हुए, तब उनकी माता अदितिने उनका जैसा मङ्गल किया था, वैसा ही तेरा भी हो। अतुल तेजधारी त्रिविक्रम भगवान्‌का, जो तीन पादसे तीनों लोक नाप रहे थे, जैसा मङ्गल हुआ था, हे राम! वैसा ही मङ्गल तेरा हो। ऋतुएँ समुद्र, द्वीप, वेद, लोक और दिशायें तेरा, हे महाबाहो! शुभ मङ्गल करें। इस प्रकार मङ्गलपाठ पढ़ पुत्रके मस्तकपर कौसल्याजीने अक्षत चढ़ाये और फिर विशालाक्षी कौसल्याने श्रीरामचन्द्रजीकी रक्षाके लिए मन्त्र जपे। यद्यपि श्रीराममाता उस समय दुःखी थीं, फिर भी वह हर्षित हो बोलीं। किन्तु बोलते ही मारे-प्रेमसे कौसल्याकी वाणी गद्‌गद् हो गयी। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाकर, उनका सिर सूँघा और बोलीं—हे बेटा! अब जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ चला जा और तू रोग रहित शरीरसे पिताकी आज्ञाका पालन करके अयोध्याको लौट आ। हे वत्स! जब तू राजा होगा और जब मैं तुझे देखूँगी, तब मुझे आनन्द होगा। उस समय मेरे मनकी सब चिन्तायें मिट जायँगी। मेरे मनकी उमङ्ग पूरी होगी। वनसे लौटकर आए हुए और पूर्णमासीके पूर्ण चन्द्रमाकी तरह उदित और भद्रासनपर बैठे हुए तेरे मङ्गल रूपको देख मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। हे पुत्र! जब मैं देखूँगी कि, तू पिताकी आज्ञा पालनकर चुका है और वनसे लौटकर राजोचित वस्त्र तथा आभूषण धारण किए

हुए है। हे राघव ! अब तू गमनकर और सीताके तथा मेरे मनोरथ को पूर्ण कर। हे राघव मैंने जिन शिवादि देवताओंकी, महर्षियोंकी, भूतगणकी और दिव्य सर्पोंकी आज तक पूजाकी है, वे सब तथा सब दिग्पाल, चिरकाल पर्यन्त, वनयात्रामें तेरा मङ्गल करते रहें। इसप्रकार आशीर्वाद दे, कौसल्या-जीने स्वस्तिवाचन कर यथा विधिपूरा किया और आँखोंमें आँसू भर, श्रीरामचन्द्रकी प्रदक्षिणाकी और उनको बार-बार हृदयसे लगा उनका मुख निहारती रहीं। जब देवी कौसल्या बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणाकर चुकी तब श्रीरामचन्द्रजीने भी बार-बार उनके चरण छुए। फिर महायशस्वी श्रीरामचन्द्र स्वतः—सिद्ध शोभासे दीप्तिमान सीताके घर चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पच्चीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

स्वस्तिवाचन हो जानेपर, अतिशय धर्ममें स्थित धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी माताके चरणोंको प्रणामकर वन जानेको तैय्यार हुए। श्रीरामचन्द्रजी लोगों से भरे हुए राजमार्गको सुशोभित करते एवं अपने गुणोंके प्रभावसे सब लोगों के मनोंको मथन करते हुए, चले जाने लगे। अभी तक यह सारा वृत्तान्त तपस्विनी सीताजीने नहीं सुना था। उनके मनमें उस समय उनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी ही बात थी। अतः उस समय स्वयं देवपूजादि कर्म समाप्तकर, राजचिन्होंको जानने वाली सीताजी अभिषिक्त हुए श्रीराम-चन्द्रजीकी अभ्यर्थना करनेके लिए प्रसन्न हो प्रतीक्षाकर रही थीं। इतने ही में श्रीरामचन्द्रजी लज्जासे मुख नीचे किए हुए भलीभाँति सजे हुए और प्रसन्न मनुष्योंसे भरे हुए अपने घरमें गए। सीताजी शोक और चिन्तासे विकल श्रीरामचन्द्रजीको देख; काँपती हुई आसनसे उठ खड़ी हुई। धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीताको देख अपने मानसिक शोकके वेगको न रोक सके। पतिका उतरा चेहरा उनको प्रस्वेद युक्त और अत्यन्त शोकान्वित देख स्वयं दुःख सन्तप्त होकर, सीताजीने श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा—हे प्रभो ! यह क्या हुआ ? आज तो चन्द्रमाके सहित पुष्य नक्षत्रका योग है और लग्नमें वृहस्पतिजी बैठे हुए हैं। विद्वान् ज्योतिर्विद ब्राह्मणोंके मतानुसार आजका

दिन राज्याभिषेकके लिए अच्छा है सो तुम ऐसे उदास क्यों हो रहे हो ? सौ कीलियोंका बना हुआ जलफेनके समान सफेद छत्र तुम्हारे ऊपर तना हुआ मैं नहीं देखती। और क्या कारण है जो चन्द्रमा और हंसके समान श्वेत चँवर तुम्हारे चेहरेपर नहीं ढुर रहे हैं। हे नरश्रेष्ठ ! आज वाग्मी बन्दी लोग तुम्हारी स्तुति नहीं करते और बन्दी ही मागध ही मंगलपाठ करते हैं। राज्याभिषिक्त तुम्हारे शिरपर वेदज्ञ ब्राह्मणोंने शहत और दही यथाविधि क्यों नहीं छिड़का ? फिर मन्त्री, पुरवासी, राज्य-निवासी तथा दरबारी लोग अनेक प्रकारके बढ़िया कपड़े और गहने पहिनकर क्यों आपके पीछे चलना नहीं चाहते। आज बड़े वेगवाले और सोनेके आभूषणोंसे सजे हुए चार उत्तम घोड़ोंसे युक्त उत्सव-रथ तुम्हारे आगे क्यों नहीं चलता। सुलक्षणोंसे युक्त काले मेघके समान रङ्गवाला और पर्वतके समान ऊँची हाथी तुम्हारे प्रयाणमें क्यों नहीं देख पड़ता। हे वीर ! आज सोनेका बना हुआ और अति सुन्दर तुम्हारा भद्रासन, जिसे नौकर आगे लेकर चलता था, वह क्यों नहीं दिखाई पड़ता ? जबकि अभिषेककी सभी तैय्यारियाँ हो चुकी हैं। तब फिर आपके चेहरेका रङ्ग ऐसा अपूर्व क्यों हो रहा है ? चेहरे पर प्रसन्नताके रेख तक नहीं दिखाई पड़ते हैं। सीताजीके ऐसे दुःख भरे वचन सुन श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे सीते ! पूज्य पिताजीने मुझे वन जानेकी आज्ञा दी है। हे बड़े कुलमें उत्पन्न, धर्म जानने वाली और धर्म करनेवाली जानकी। सुन, किसप्रकार मुझे यह वनवासकी आज्ञा मिली है, उसे बतलाता हूँ ! सत्यप्रतिज्ञ मेरे पिता महाराज दशरथने, मेरी माता कैकेयीको पूर्वकालमें दो वर दिये थे। सो कैकेयीने, महाराजको मेरा राज्याभिषेक करनेमें उद्यत देख उस समयके वरोंकी बात उठाकर, सत्य द्वारा महाराजको अपने वशमें कर लिया। मुझको चौदह वर्षोंतक दण्डकवनमें रहना पड़ेगा और भरतका युवराजपदपर अभिषेक होगा। तुझे देखनेके लिए मैं अब यहाँ आया हूँ। क्योंकि मैं तो अब बन जा रहा हूँ। देखना भरतके सामने मेरी प्रशन्सा मत करना। क्योंकि समृद्धिवान् पुरुषोंको दूसरोंकी प्रशन्सा सह्य नहीं होती। अतः तू भरतके सामने मेरी बड़ाई न करना। नहीं तो भरत विशेष रूपसे मेरा भरण पोषण न करेंगे। यदि तू भरतजी इच्छाके अनुकूल चली तो तेरा

यहाँ निर्वाह हो सकेगा। भरतको महाराजने सनातन यौवराजपद दिया है अतः तुझको उचित है कि; इस तरह रहना जिससे वे तुझपर प्रसन्न रहें क्योंकि राजाको प्रसन्न रखना ही चाहिए। अब मैं पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए वन जाता हूँ। सो हे मनस्वी! तू स्थिर चित्त होकर रह। हे अनघे! जब मैं मुनिवेशधारी हो वनको चला जाऊँ, तब तू व्रतोपवास करना अर्थात् जब मैं वनमें मुनि-वेष धारणकर रहूँगा; तब मुझे भी यह शृंगारादिसे कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रातःकाल उठ देवताओंका यथाविधि पूजन करना। फिर मेरे पिता महाराज दशरथीजीको प्रणाम करना। मेरी माता कौशल्या एक तो वृद्धा है, दूसरे मेरे वन जानेके सन्तापसे पीड़ित है अतः उनका सम्मान करना तू अपना धर्म समझना। शेष जो मेरी माताएँ हैं उनको भी नित्य प्रणाम करना! क्योंकि मुझमें उनकी प्रीति और उनका सौहार्द्र वैसाही है जैसा माता कौसल्याका और उन्होंने भी मेरा पालन-पोषण वैसे ही किया है जैसे कि माता कौसल्याने। अतः वे माता कौसल्यासे मेरी दृष्टिमें किसीप्रकार कम पूज्य नहीं हैं। भाई भरत और शत्रुघ्नको, जो मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं, अपने भाई और पुत्रकी तरह देखना। अर्थात् भरतको जो बड़े भाईकी तरह और शत्रुघ्नको जो तुमसे छोटे हैं पुत्रवत् मानना। भरतके साथ कभी विगाड़ मत करना—क्योंकि वे देशके राजा और कुलके मालिक हैं। देखो शीलसे अकुटिल भावसे सेवा करने तथा प्रयत्न पूर्वक सेवन करनेसे राजा लोग प्रसन्न होते हैं और इसके प्रतिकूल करनेसे वे क्रुद्ध होते हैं। राजा लोग अहित करनेवाले अपने औरस पुत्रोंको भी त्याग देते हैं और हित करने वाले लोगोंको, भले ही वह दूसरे लोग क्यों न हों ग्रहण करते हैं। हे कल्याणि! तू राजा भरतकी आज्ञामें रहकर तथा उनकी हितैषिणी बनकर एवं अमोघव्रत धारणकर यहीं रह। हे भामिनी! मैं तो वन जाता हूँ। तुझको यहीं रहना चाहिए। मेरी तुझको यही शिक्षा है कि, ऐसा वर्त्ताव करना, जिससे तुझसे कोई बुरा न माने।

इति श्री वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥१२॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

प्रिय बोलने वाली और प्रीतिकी पात्र वैदेहीसे जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा

तब जानकीजी प्रीतियुक्त क्रोधप्रदर्शितकर श्रीरामजीसे बोलीं । हे राम ! तुम यह कैसी हल्की बात कहते हो ? इसे सुनकर तो हे राजकुमार ! मुझे हँसी आती है । हे आर्य पुत्र ! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्र-वधू—ये सब अपने-अपने पुण्योंको भोगते हुए, अपने-अपने भाग्यके भरोसे रहते हैं। किन्तु स्त्री अपने पतिके भाग्यका फल भोगती है । इसलिए मुझे भी महा-राजकी आज्ञा वन जानेकी हो चुकी । स्त्रीके मरनेपर परलोकमें उसके पतिको छोड़; पिता, पुत्र, भाई-बन्धु, माता, सखी सहेलियोंमें से कोई भी उसके काम नहीं आता । स्त्रीके लिए इस लोकमें और क्या परलोकमें पति ही सब कुछ है । यदि तुम वनको जारहे हो तो मैं तुम्हारे आगे-आगे कुश और काटो-को हटा, रास्ता साफ करती पैदल ही चलूँगी हे वीर ! ईर्ष्या और रोषको त्यागकर निःशंक हो अपने साथ मुझे ले चलो । क्योंकि मुझमें कोई पाप नहीं है जो मेरे यहाँ छोड़ जानेके लिए पर्याप्त कारण कहा जा सके । चक्रवर्ती राजाओंके महलोंमें वास करनेसे अथवा आठो प्रकारके अणिमादि ऐश्वर्यों-को प्राप्तिसे जो सुख प्राप्त होता है, उससे कहीं अधिक सुख स्त्रीको पतिकी सेवा करनेमें प्राप्त होता है । स्त्रीको अपने पतिके साथ किसप्रकारसे व्यवहार करना चाहिए—यह बात मुझे मेरे माता-पिताने अनेक प्रकारसे समझा दिया है । अतः इस विषयमें मुझे अधिक बतलानेकी आवश्यकता नहीं है । मैं निश्चय ही तुम्हारे साथ उस निर्जन वनमें चलूँगी जो नाना भाँतिके बनैले जीवोंसे पूर्ण और शार्दूल एवं वृकादिसे सेवित हैं । हे स्वामिन ! मैं वनमें बड़े सुखसे वैसी ही रहूँगी, जैसे मैं अपने पिताके घरमें सुखसे रहती थी । वहाँ मुझे केवल पति-सेवा ही की चिन्ता रहेगी, मैं तीनों लोकोंके सुखकी कभी कल्पना भी अपने मनमें उदय न होने दूँगी । हे वीर ! मैं नित्य नियमपूर्वक, काम-भोग-विवर्जिता हो आपके साथ उन मधुर गन्धयुक्त बनोंमें विचरूगी । हे प्राणनाथ ! जब तुम वनमें असंख्य मनुष्योंके भरण पोषणका भार उठा सकते हो, तब क्या आप मुझ अकेलीकी रक्षा न कर सकोगे ? हे महाभाग ! मैं भी आज अवश्य तुम्हारे साथ वन चलूँगी । तुम मेरे इस उत्साहको भंग नहीं कर सकते । अथवा अब तुम विषाद न करो । मैं वनमें उत्पन्न फल-फूलों ही से नित्य अपना निर्वाहकर तुम्हारे साथ वनमें रहूँगी और तुमको

कष्ट न दूँगी। मैं तुम जैसे बुद्धिमान् प्राणनाथसे रक्षिता होकर झीलों, पहाड़ तालावों, और बनको निःशङ्क हो देखना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि तु जैसे वीरके साथ हंस और कारण्डव पक्षियोंसे सेवित और सुन्दर फूली हु कमलनियोंसे युक्त तड़ागोंको सुख पूर्वक देखूँ। हे विशालाक्ष! उनमें नित्य तुम्हारे साथ स्नान करूँगी और परम आनन्दके साथ जल क्रीड़ा भ करूँगी। इसप्रकार तुम्हारे साथ चाहे हजारों वर्ष व्यतीत हों लेकिन मु न जान पड़ेगा। तुम्हारे साथ रहनेपर मुझे स्वर्ग सुख भी स्वीकार नहीं है हे राघव! यदि तुम्हारे बिना मुझे स्वर्गमें रहना पड़े, तो हे नरव्याघ्र! मु वह भी स्वीकार नहीं है! मैं तो तुम्हारे साथ उस दुर्गम बनमें चलूँग जो हिरनोंसे युक्त तथा बन्दरोंसे सेवित है। तुम्हारी चरण-सेवा करती हु मैं वहाँ उसीप्रकार सुखपूर्वक रहूंगी, जिसप्रकार मैं अपने घरमें सुख पूर्व रहती थी। मैं तुमको छोड़ अन्य किसीको नहीं जानती। मेरा मन तुम्हीं अनुरक्त है। अतः यदि तुमसे विछोह हुआ, तो मैं अपने प्राण त्यागने तैय्यार हूँ। हे नाथ! मेरी प्रार्थना स्वीकार करके मुझे अपने साथ ले चलि मेरा भार तुमको न उठाना पड़ेगा। सीताजीके इसप्रकार अनुनय विन प्रार्थना करनेपर भी सीताजीको कष्टित देखनेमें असमर्थ श्रीरामचन्द्र जानकीजीको अपने साथ बनमें ले जानेको राजी न हुए। प्रत्युत वनवा के अनेक कष्टोंका वर्णनकर, जिससे जानकीजी बन जानेका विचार छो दें, बोले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

धर्मज्ञ और धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी वनके कष्टोंको स्मरण क सीताजीके कहनेपर भी उनको अपने साथ वन ले जानेको स्वीकार न कि और रोती हुई जानकीको उन्होंने फिर समझाया और धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र ने वन न जानेके लिए सीतासे यह कहा—हे सीते! तू बड़े कुलीन घर पुत्री है और सदा धर्म पालनमें निरत रही है। अतः यहीं रह धर्माचरण कर जिससे मेरा मन सुखी हो। हे अबले सीते! मैं जो कहता तू वही कर। वनवासमें बड़े-बड़े कष्ट होते हैं! मैं बतलाता हूँ। तू उन्हें सुन

हे सीते! तू वन जानेके विचारको त्याग दे। क्योंकि वनमें बड़े-बड़े कष्ट होते हैं। वनको कान्तार इसीलिए कहते हैं कि वह जाने योग्य नहीं है। मैं तेरी भलाईके लिए कहता हूँ। वनमें कभी सुख नहीं है। वनमें सदा कष्ट-ही-कष्ट है। पर्वतोंकी नदियोंको पार करना महाकष्टदायी है, फिर पहाड़ोंकी गुफाओंमें रहनेवाले सिंहोंकी दहाड़ सुननेमें बड़ा कष्ट होता है। अतः वनमें कष्ट-ही-कष्ट है। हे सीते! निर्जन वनमें निःशङ्क हो क्रीड़ा करनेवाले अनेक वनजन्तु, मनुष्यको मार डालनेके लिए आक्रमण करते हैं। अतः बनवास बड़ा कष्टदायी है। फिर नदियोंमें मगर घड़ियाल रहते हैं और उनमें दलदल रहनेसे उनको पार करना भी बड़ा कठिन है। इन दलदलोंमें यदि फँस जाँय तो हाथीका भी निकलना असम्भव है। फिर वनमें बड़े-बड़े मत्त गज घूमा करते हैं। अतः वनवास बड़ा कष्टदायी है प्रायः वनोंके मार्ग पैरमें लिपट जानेवाली बेलों और पैरमें चुभ जानेवाले काँटोंसे पूर्ण रहते हैं और वहाँ वन-कुक्कुट बोला करते हैं। रास्तोंमें दूरतक जल पीनेको नहीं मिलता है। वनके रास्ते बड़े भयंकर होते हैं। अतः वनमें बड़े क्लेश होते हैं। दिनभरके थके माँदे वनवासीको रात्रिके समय सोनेके लिए कोमल गद्दे तकिये नहीं, किन्तु अपने आप सूखकर गिरी हुई पत्तियाँ बिछाकर उनपर सोना पड़ता है। अतएव वनवास बड़ा कष्टप्रद है। हे सीते! भोजनकी अन्य वस्तुओंपर मन न चला, सायं प्रातः वृक्षोंसे गिरे हुए फल खाकर ही सन्तोष करना पड़ता है। अतः वनमें कष्ट-ही-कष्ट है। हे मैथिली! वनमें यथाशक्ति उपवास करना पड़ता है और वृक्षकी छाल वस्त्रोंकी जगह पहननी पड़ती है। वहाँ देवताओं और पितरों तथा समयपर आए हुए अतिथियोंका यथाशक्ति पूजन करना पड़ता है। नियमपूर्वक रहनेवालेको नित्य समय-समयपर तीन बार स्नान करना पड़ता है अतः वनमें बड़ा क्लेश है। हे बाले! वनमें अपने ही हाथसे फूल तोड़कर ऋषियोंकी बताई हुई विधिसे वेदीकी पूजा करनी पड़ती है। इसलिए वनमें क्लेश-ही-क्लेश हैं। वनवासीको जो कुछ और जितना भोजनके लिए मिले उसे उतने ही नित्य नियत आहार से उसको सन्तोष करना पड़ता है। अतः वनवास बड़ा कष्टदायी है। वनोंमें

बड़ी आँधी चला करती है, अँधेरा भी छा जाता है। भूख भी अधिक लग[illegible] है। वनमें अनेक भयके कारण उपस्थित रहते हैं। अतः वनवास बड़ा कष्टदा[illegible] है। हे भामिनी! वनमें बड़े मोटे-मोटे साँप या अजगर बड़े दर्पके साथ घू[illegible] करते हैं। अतः वनवास बड़ा कष्टदायी है। वहाँ नदियोंमें रहनेवाले सर्प [illegible] नदीकी तरह टेढ़ी-मेढ़ी चाल चला करते हैं, मार्ग रोककर सामने खड़े [illegible] जाते हैं। अतएव वनवास बड़ा दुःखदायी है। हे अबले! वहाँ फतंगें, बिच्छ[illegible] कीड़े, बनैले, मक्खियाँ, मच्छर आदि नित्य ही सताया करते हैं, अत[illegible] वनवास बड़ा कष्टदायक है। हे भामिनी! कांटे और कुशकाशकी त[illegible] पत्तों और बनैले वृक्षोंसे सारा वन भरा हुआ है। अतः वनवास बड़ा क[illegible] कारक है। फिर वनमें रहनेसे अनेक शारीरिक क्लेश होते हैं और ना[illegible] प्रकारके भय उत्पन्न हुआ करते हैं। अतएव वनवास बड़ा दुःखदायी है। सीते! वनमें क्रोध और लोभको त्यागकर तपमें मन लगाना पड़ता ह[illegible] डरने योग्य वस्तुओंसे डरना नहीं होता। अतः वनवास दुःखप्रद है। अ[illegible] तू वन जानेकी इच्छा मत कर। क्योंकि तेरे बसने योग्य वन नहीं है। [illegible] जब विचार करता हूँ तो वनमें कष्ट-ही-कष्ट दिखाई पड़ता है। इस प्रक[illegible] जब सीताजीको श्री रामचन्द्रजीने वनमें न लेजाना चाहा, तब सीताजी उन[illegible] इस बातको न मानकर और अत्यन्त दुःखी हो यह बोलीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ सर्ग

राम और सीताका संवाद तथा सीताके वन-गमनका निश्चय

श्री रामचन्द्रजीके इस प्रकारके वचन सुन सीताजी दुःखी हुई [illegible] धीरे-धीरे कहने लगीं। हे राम! वनवासके जो दोष तुमने बतलाए, वे [illegible] तुम्हारे स्नेहके सामने मुझे गुण दिखलाई पड़ते हैं। मृग, सिंह, ग[illegible] शार्दूल, शरभ पक्षी और नीलगाएँ तथा अन्य वनमें रहनेवाले जीव-जन्[illegible] स्वयं ही, हे राघव! तुम्हारे इस अपूर्व रूपको देख और भयभीत हो भ[illegible] जायँगे क्योंकि तुमसे तो सब ही डरते हैं। मुझको बड़े लोगोंका [illegible] आदेश है कि मुझे सदा तुम्हारे साथ अवश्य चलना चाहिए। नहीं तो मु[illegible]

तुम्हारे वियोगमें प्राण त्याग देना पड़ेगा। जबकि मैं तुम्हारे साथ रहूँगी, तब देवताओंके स्वामी इन्द्र भी अपने पराक्रमसे मेरा कुछ नहीं कर सकते। हे राम! तुम्हींने तो यह बात बतलाई है कि पतिव्रता स्त्री; पति विना नहीं जी सकती। हे महाप्राज्ञ! पिताके घर रहते समय ज्योतिषी ब्राह्मणोंसे मैंने यह बात सुनी थी कि मुझे वनमें रहना पड़ेगा। हे महाबलवान्। सामुद्रिक जाननेवाले ब्राह्मणोंको कहते हुए, मैं पहलेही यह सुन चुकी हूँ। अतः वन जाने का मेरा उत्साह तभीसे है। सो वनवासकी आज्ञा मुझे अवश्य लेनी चाहिए। अतः हे प्रिय! मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। इसके विपरीत नहीं हो सकता। तुम्हारे साथ वन जाने हीसे मैं गुरुजनोंकी आज्ञा पालन करनेवाली हो सकूँगी। ब्राह्मणोंकी भविष्यद्वाणीके सत्य होनेका यह समय भी उपस्थित हो गया है। हे वीर! यह मुझे मालूम है कि वनवासमें बड़े-बड़े कष्ट होते हैं; किन्तु ये दुःख होते हैं उन्हींको जो अजितेन्द्रिय हैं। जब मैं पिताके घर थी, तब मैंने एक साधुवृत्ति वाली तपस्विनीके मुखसे; माताके सामने अपने इस वनवासकी बात सुनी थी। हे प्रभो! कई बार वन-क्रीड़ाके लिए मैं तुमसे प्रार्थना भी कर चुकी हूँ सो अब वह अवसर आया है; अतः मेरी प्रार्थना मान; मुझे अपने साथ वन ले चलिए। हे राघव! तुम्हारा मंगल हो। मुझे तुम्हारे साथ वन जानेका अवसर प्राप्त हुआ है और वनवासमें तुम्हारी सेवा भी करना मुझे बहुत रुचता है। हे ईर्ष्यादि रहित स्वामिन! अपने प्रीतियुक्त स्वभावसे तुम्हारे पीछे गमन करती हुई, मैं पापरहित हो जाऊँगी। क्योंकि यह प्रसिद्ध बात है कि मेरे लिए तुम ही मेरे देवता हो। परलोकमें भी मैं तुम्हारे ही साथ रहकर, शोभाको प्राप्त होऊँगी, यह बात मैंने यशस्वी पवित्र ब्राह्मणोंके मुखसे सुनी हैं। इस लोकमें विवाहोंकी विधिके अनुसार पिता जिस स्त्रीको जिस पुरुषको दे देता है परलोकमें भी वही स्त्री उस पुरुषकी होती है। अतः अपनी सदाचारिणी पतिव्रता स्त्री मुझको अपने साथ ले चलना आपको क्यों नहीं रुचता? इसका क्या कारण है? हे काकुत्स्थ! तुममें पूर्ण भक्ति रखनेवाली, दीन, सुख-दुःखमें समान रहनेवाली और तुम्हारे सुखमें सुखी तथा तुम्हारे दुःखसे दुःखी मुझको तुम अपने साथ

ले चलो। यदि तुम मुझ दुखिःनीको अपने साथ वन न ले चलोगे, तो मैं विष खाकर या अग्निमें जलकर अथवा जलमें डूबकर प्राण त्याग दूँगी इस प्रकार श्री रामचन्द्रजीके साथ वन जानेके लिये सीताजी बहुत प्रार्थना करती थी, परन्तु श्री रामचन्द्रजी उनको अपने साथ विजन वनमें ले जानेको राजी नहीं होते थे। तब सीताजी श्री रामचन्द्रजीको असम्मत देख, अत्यन्त चिन्तित हुईं और उनके नेत्रोंसे निकली हुई गरम-गरम अश्रुधारा पृथ्वीको तर करने लगी—अर्थात् उनके आँसुओंसे वहाँकी भूमि तर हो गई। सीताजी को चिन्तित देख और मारे क्रोधके लाल-लाल ओंठ मिंचे ने देख श्री रामचन्द्रजीने सीताजीको बहुत समझाया, जिससे वे उनके साथ वन न जाँय।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

तीसवाँ सर्ग

(रामके साथ वनके लिए सीताका हठ और रामकी स्वीकृति)

वन साथ न चलनेके लिये सीताको श्री रामचन्द्रजीने बहुत समझाया किन्तु सीताजीने उनके साथ वन जानेके लिये फिर अपने पतिसे यह कहा हे राम! यदि मेरे पिता मिथिलेश यह जानते कि तुम आकार मात्र पुरुष हो, व्यवहारमें स्त्री हो, तो वे कभी मेरा विवाह तुम्हारे साथ न तुमको कभी अपना दामाद न बनाते। खेदकी बात है। लोग अज्ञानवश कहने लगे कि, राम सूर्यके समान तेजस्वी देख पड़ते हैं, किन्तु इनमें वास्तवमें तेज है नहीं। हे राम! तुम किसलिये उदास हो रहे हो अथवा तुम किस बातके लिये इतने डर रहे हो कि, जो मुझ जैसी अपनी अनन्य भक्ताको यहाँ छोड़कर वन जाना चाहते हो। वीरवर राजा द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवानमें सावित्रीके तुल्य मुझे भी अपने वशमें जानो। जिस प्रकार द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवानके पीछे सावित्री वनको गई थी, उसी प्रकार मैं भी आपके साथ पीछे चलूँगी। हे अनघ! मैंने तुमको छोड़ परपुरुषको देखने की कभी भी मनमें कल्पना नहीं की। जैसी कि कुलकलङ्किनी स्त्रियाँ परपुरुषरता होती हैं, वैसी मैं नहीं हूँ। अतः मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। हे रा

बहुत दिनोंसे तुम्हारे पास रहनेवाली, कौमारावस्थाहीमें तुम्हारे साथ विवाहित, मुझ सती पतिव्रताको नटकी तरह भिन्न पुरुषके पास छोड़ना क्यों चाहते हो? हे अनघ! आपको माता कैकेयीके कारण राज्याभिषेक में बाधा पड़ी है, आप उसके अज्ञाकारी बनकर मुझे आज्ञानुवर्तिनी रूपमें रखना चाहते हैं मुझे सह्य नहीं है। इसलिए मुझे साथ ही वनमें ले चलें। क्योंकि मेरा धर्म आपके तप, बनवास या स्वर्गवासके साथ ही है। आपके साथ मार्गमें चलनेमे कुछ भी परिश्रम न होगा। जैसे आपके साथ बागोंमें रमण करनेसे सुख होता रहा है। वैसे ही पीछे-पीछे चलनेसे मुझे सुख प्राप्त होगा। वनके, कुशकाश सरपत, मूँज तथा अन्य कँटीले वृक्ष आपके साथ रास्ता चलनेसे मुझे रूई या मृगचर्मकी भाँति स्पर्शित होंगे। तथा आँधीसे शरीरपर पड़े हुए धूल भी आपके संसर्गसे चंदन सदृश्य होंगे। बनके हरी-हरी तृणोंसे सज्जित शय्या मुझे पलँगकी भाँति आनन्दप्रदायिनी होगी। जो कुछ, शाक फल मुझे प्राप्त होगा, वह मुझे अमृतकी भाँति स्वादिष्ट होगा। बनमें ऋतु-फलों और ऋतु पुष्पोंका उपभोग करती हुई मैं माता, पिता या घरकी याद न करूँगी। मेरे कारण आपको क्लेश या बाधा कुछ भी नहीं होगी। और न आपको मेरे खाने पीनेकी चिन्ता ही करनी पड़ेगी। बहुत कहाँ तक कहूँ, आपके साथ रहनेसे मुझे स्वर्गतुल्य सुख प्राप्त होगा। अन्यथा आपके बिना नरकके समान दुःख है। इसी निष्कर्षपर मुझे प्रसन्नता पूर्वक सहगामिनी कीजिए। आपको वनमें मेरे द्वारा किसीप्रकारका भय नहीं है। अपने साथ ले चलनेके लिए राजी न हुए तो मैं आपके सामने ही विष पीकर प्राण त्याग दूँगी। किन्तु मैं वैरियोंकी होकर नहीं रहूँगी। आपके जानेके बाद भी तो दुःखसे मुझे मरना ही है। आपके द्वारा त्यागी गयी, मुझ जैसी स्त्रीको मरना ही अच्छा है। मैं आपके वियोगके शोकको मुहूर्त भर भी नहीं सह सकती। तब चौदह वर्षके वियोगजन्य रात्रिको कैसे सह सकूँगी? सीताजी शोक विह्वल होकर रामका आलिङ्गन करके रुदन करने लगीं। उस समय श्रीरामचन्द्रजी-के वचन मुझे बाणकी तरह लगे और नेत्रसे आँसू वैसेही प्रकट हुए, जैसे अरणीसे आग प्रकट होती है। जानकीके नेत्रोंसे सफेद आँसूकी बूँदें ऐसी मालूम हुई जैसे कमलोंसे पानीकी बूदें टपकती हैं। उस समय शोक रूपी

अग्निसे पूर्णिमाके चन्द्रके समान चमचमाता हुआ सीताका मुखमण्डल, जल से निकाले हुए कमलकी तरह मुरझा गया। ऐसी दशामें श्रीरामचन्द्रजीने मूर्छित प्राय और शोक विकल जानकीजीको अपनी दोनों भुजाओंसे आलिङ्गनकर, उनको विश्वास दिलाते हुए कहा। हे देवि! तुझे कष्ट देकर मुझे स्वर्गकी भी चाहना नहीं है। मैं ब्रह्माकी तरह निर्भय हूँ। मैं सब भाँतिसे तेरी रक्षा कर सकता हूँ। किन्तु मुझे तेरे मनका अभिप्राय ज्ञात नहीं था, इसलिए मुझे तेरा वनमें रहना स्वीकार नहीं था। यदि तुम्हारे भाग्यमें मेरे साथ वनवास ही लिखा है तो मैं तुझे छोड़कर वैसे नहीं जा सकता जैसे सज्जन लोग धर्माचरणकर चुके हैं, उसीका अनुसरण मैं भी करूँगा और तुम्हें भी करना चाहिए। जैसे सुवर्चला देवी सूर्य भगवान्का अनुसरण करती हैं वैसे ही तू भी मेरा अनुसरणकर। हे जनकनन्दिनी! मैं अपनी इच्छासे बन नहीं जा रहा हूँ किन्तु सत्यके पाशमें बधे हुए पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए मुझे बन जाना पड़ रहा है। हे सुश्रोणि! माता और पिताका कहना मानना ही पुत्रका धर्म है। माता और पिताकी आज्ञाका उलंघनकर मैं जीना नहीं चाहता हूँ। जो दैव प्रत्यक्ष नहीं है उसके उपर कोई भरोसा कैसेकर सकता है। किन्तु माता-पिता और गुरु तो प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं। अतः इनकी आज्ञाका उलंघन करना सर्वथा अनुचित है। जिनकी आराधना करने से, अर्थ, धर्म, और काम—इन तीनों लोकोंकी प्राप्ति होती हैं और जिनकी आराधना करनेसे तीनों लोकोंकी आराधनासे बढ़कर इस पृथ्वीपर कोई दूसरा पवित्र कार्य नहीं है। इसलिए मैं उनकी आराधना करता हूँ। हे सीते! सत्य, दान मान और दक्षिणा, सहित यज्ञ, परलोक प्राप्तिके लिए उतने नहीं हैं जितनी कि माता, पिता और गुरुजनोंकी सेवा है। जो लोग माता, पिता, गुरुजनोंकी सेवा किया करते हैं उनके लिए, केवल स्वर्गादि, लोक, धन धान्य, विद्या, सन्तानादिके सुख ही नहीं, किन्तु उनको कोई भी वस्तु दुलर्भ नहीं है। जो महात्मा लोग माता पिताकी सेवा किया करते हैं उनको देवलोक, गन्धर्वलोक, गोलोक तथा अन्य लोकोंकी भी प्राप्ति होती है। अतः सत्य मार्गमें स्थित मेरे पिता मुझे जो आज्ञा दें मुझे तदनुसार ही करना चाहिए, यही सनातन धर्म है। हे सीते! पहले तो तेरे मनका

अभिप्राय न जाननेके कारण मेरी इच्छा तुम्हें अपने साथ वनमें ले चलनेकी न थी। किन्तु तुम्हारी दृढ़ताको देखकर बनमें ले चलने का निश्चयकर लिया है। क्योंकि जब तुम बन जानेके लिए बनाई गई हो तब तुम मेरे साथ बनमें चलकर मेरे धर्मानुष्ठान में योग दो। हे सीते! तुमने जो मेरे साथ वन में चलना विचारा है सो यह बहुत ही अच्छी बात है। और तुम्हारा मेरे साथ चलना मेरे और मेरे कुलके सर्वथा अनुरूप कार्य है। अब वनमें चलने की तैयारी करो। इस समय तुम्हारे विना स्वर्ग भी नहीं प्रिय लग रहा है। इसलिए ब्राह्मणोंको सब रत्न दान और भिक्षुकोंको भोजन देकर चलनेकी जल्दी तैयारी करो, देर न हो। मेरे सब आभूषणादि जो देनेसे बचें उसे, नौकरों चाकरोंको दे दो। श्रीरामचन्द्रजीको अपने अनुकूल देख और उनके साथ अपना बन-गमन निश्चय जान सीता प्रसन्न हुईं और सब वस्तुएँ देने लगीं। यशस्विनी सीता पतिको अपने अनुकूल देखकर प्रसन्न और निश्चित हो गईं और ब्राह्मणोंको धन रत्नादि अपनी सब वस्तुएँ दान करने लगीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीकी इसप्रकार परस्पर वार्ता आरम्भ होने के पूर्व ही लक्ष्मणजी वहाँ पहुँच गए थे। तब इस वार्ताको सुन, मारे दुःखके लक्ष्मण की आँखोंसे अश्रुकी धाराएँ बहने लगीं। वे इस समय शोकके वेगको रोकनेमें असमर्थ थे। लक्ष्मणने भाईके चरणोंमें प्रणामकर, महायशस्विनी जानकीजी और महाव्रतधारी श्रीरामचन्द्रजीसे कहा। यदि मृगों और गजोंसे भरे हुए वनमें जानेका आप निश्चयकर चुके हैं, तो मैं आपके आगे धनुष बाण चढ़ाए चलूँगा। मेरे साथ आप उन रमणीय बनोंमें, जिनमें पक्षी और हिरनोंके झुन्ड चारों ओर नाना प्रकारके शब्द किया करते हैं विचरेंगे। हे श्रीरामचन्द्र! आपको छोड़कर न तो मुझे देवलोककी, न अमरत्वकी और न अन्य लोकोंके ऐश्वर्यकी चाहना है। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके वचनको सुन वन जानेको उद्यत देखकर बहुत प्रकारसे समझाया और वनमें चलनेको मना किया। तब लक्ष्मणजी फिर बोले—पहले आपने मुझे बन जानेकी आज्ञा दे

दी है, अब आप अपने साथ मुझे ले चलनेके लिए माना क्यों करते हैं? जिस कारणसे आप मुझे वन जानेसे रोकते हैं, हे अनघ! वह मैं जानना चाहता हूँ। क्योंकि इस निषेधको सुनकर मेरे मनमें बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया है। तब हाथ जोड़कर बन जानेके लिए याचना करते हुए और पहले यात्रा करनेके लिए सामने तैयार खड़े हुए लक्ष्मणके इन वचनोंको सुनकर, महा तेजस्वी श्रीरामचन्द्र बोले—हे लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्ममें रत, शूर, सदैव सन्मार्गपर चलनेवाले, प्राणके समान प्रिय, मेरे दास, छोटे भाई और मित्र भी हो। यदि आज तुम मेरे साथ वन चलदिए, तो माता कौसल्या और सुमित्राकी देखभाल कौन करेगा? देखो, जो महा तेजस्वी महाराज, सबके मनोरथोंको उसी प्रकार पूर्ण करते थे, जिसप्रकार मेघ पृथ्वीके सब मनोरथोंको पूर्ण करते हैं, वे तो काम वश हो रहे हैं। अश्वपतिकी बेटी कैकेयी जब राजमाता होगी, तब वह अपनी दुःखिनी सौतोंके प्रति अच्छा वर्ताव न करेगी। वह न तो कौसल्याका और न सुमित्रा हीका ध्यान करगी। भरत राज्य पाकर, कैकेयी ही के कथनानुसार कार्य करेगें। अतः हे लक्ष्मण! तुम यहीं रहकर, स्वयं अथवा राजाके अनुग्रहको प्राप्तकर अथवा जैसे हो वैसे, कौसल्यादिका भरण पोषण करो। यह मेरा उचित कथन तुमको पूरा करना चाहिए। हे धर्मज्ञ! इसप्रकार कार्य करनेसे, मेरे में तुम्हारी परम भक्ति प्रदर्शित होगी और साथ ही माताओंकी सेवासे तुमको बड़ा भारी पुण्य भी प्राप्त होगा। हे लक्ष्मण! मेरा कहना मानकर तुम ऐसा ही करो; क्योंकि हम दोनोंके यहाँ न रहनेपर, हमारी माताएँ सुखी न रह सकेंगी। इस प्रकार श्रीराम के वचनको सुनकर वाक्य विशारद, लक्ष्मणजीने यह उत्तर दिया। हे वीर! आपके प्रतापसे भरतजी कौसल्या और सुमित्राका प्रतिपालन करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे वीर! यदि दुष्ट भरत इस उत्तम राज्यको पाकर, दुष्टतासे और विशेष गर्वसे, माताओंकी रक्षा न करेंगे तो मैं उस नीच और नृशंसको मार डालूँगा—इसमें भी सन्देह नहीं है। उसकी सहायता में भले ही तीनों लोक ही क्यों न खड़े हों—मैं उसके सब पक्षपातियोंका संहार करूँगा। हे आर्य! माता कौसल्या तो मुझ जैसे हजारोंका स्वयं भरण पोषणकर सकती हैं। क्योंकि जिसके नेमी सदस्यों गावोंके मालिक हैं

वह यशस्विनी माता कौशल्या अवश्य ही अपना और मेरी माताका अथवा मुझ जैसे हजारोंका पालन भली भाँति कर सकती है। अतएव तुम मुझे अपना अनुचर बनाओ। मेरे बन चलनेमें कुछ भी अधर्म न होगा, प्रत्युत मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और तुम्हारा भी काम निकलेगा। मैं तीरों सहित धनुष, खंता और बाँसकी बनी फल-फूल रखनेकी कड़ी लिए हुए, तुम्हारे आगे-आगे मार्ग बतलाता हुआ चलूँगा। और कन्दमूल तथा फल, और तपस्वियोंके भोजन करने योग्य वनमें उत्पन्न होनेवाले शाक, फलादि तथा अन्य वस्तुएँ भी नित्य ला दिया करूँगा। आप वैदेही सहित पर्वतोंके शिखरोंपर बिहार कीजिएगा। मैं सोते-जागते हरसमय आपके सब कामोंको कर दिया करूँगा। श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मणके इन वचनोंको सुन, अति प्रसन्न हो उनसे बोले—हे लक्ष्मण! तुम माता सुमित्रा और अपने सब सुहृद्जनों से मेरे साथ बन चलनेकी आज्ञा ले आओ और वरुण देवने स्वयं राजर्षि जनकके, उनके महायज्ञमें जो रौद्ररूप दो धनुष, अमोघ कवच और दिव्य दो अक्षय तरकस और सूर्यकी तरह चमचमाती हुई और सुनहले कामकी दोनों तलवारें भी थीं, जो वशिष्ठजीके घरमें बड़ी चौकसीके साथ रखे हैं, लक्ष्मण! तुम उन सब आयुधोंको लेकर जल्दी यहाँ चल आओ। अपना बन जाना निश्चित हुआ जान, लक्ष्मणने सुहृज्जनोंसे विदा माँगी और वशिष्ठजीके घरसे, उन उत्तम आयुधोंको ले आए, जो बड़े यत्नसे रखे हुए थे और जो पुष्पोंसे भूषित थे। उन सब आयुधोंको वहाँसे लक्ष्मणने लाकर, श्रीरामचंद्र-को दिखलाया। तब श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे प्रसन्न होकर, कहा—हे सौम्य! तुम ठीक समयपर आगए। हे भाई! मेरे पास जो कुछ धन है—उसे मैं ब्राह्मणों और तपस्पियोंको देना चाहता हूँ। सो तुम इस कार्यमें मुझे सहायता दो। इस नगरमें जो ब्राह्मणोत्तम गुरूमें हर भक्ति रखने वाले बसते हैं उन सबको और अपने नौकरों चाकरोंको धन देना उचित है। वसिष्ठजी के पुत्र सुयज्ञको जो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं, तुम जाकर, शीघ्र बुला लाओ। मैं उनका तथा अन्य शिष्ट ब्राह्मणोंका सत्कारकर चुकनेके बाद बन, चलूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ सर्ग

इसप्रकार श्रीरामचन्द्रकी आज्ञा पानेपर लक्ष्मण सुयज्ञके घर गए और यज्ञशालामें बैठे हुए सुयज्ञको प्रणामकर बोले—हे मित्र ! श्रीरामचन्द्र राज छोड़कर बन जा रहे हैं; सो आप घर चलिए और देखिए कि, वे कैसा दुष्कर कर्मकर रहे हैं। लक्ष्मणके ये वचन सुन, सुयज्ञने सन्ध्योपासन शीघ्र समाप्त किया और वे लक्ष्मणजीके साथ सुशोभित रमणीक भवनमें पहुँचे। वेदविद् और अग्निके समान तेजस्वी सुयज्ञको आते देख सीता सहित श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़े उठ खड़े हुए और अच्छे-अच्छे सोनेके गहने, सुन्दर, कुण्डल, सुवर्णसूत्रमें गुथी मणियोंकी माला, केयूर, कंकण तथा अन्य भूषणों तथा बहुतसे रत्नोंसे श्रीरामचन्द्रजीने उनका सत्कार किया। तदनन्तर सीताकी प्रेरणासे श्रीरामचन्द्र सुयज्ञसे बोले। हे सौम्य ! यह हार और यह सोनेकी गुंज लो। हे सखे! सीता ये तुम्हारी स्त्रीके लिए देना चाहती हैं। इनके अतिरिक्त ये बढ़िया बाजूबंदकी जोड़ी तथा ये दिव्य केयूर, मेरे साथ बनको जाने वाली सीता, तुम्हारी स्त्रीको देती हैं। इस पलंगको भी जो कोमल बिछौनोंसे युक्त है और जिसमें तरह-तरहके रत्न जड़े हुए हैं, वैदेही तुम्हींको देना चाहती हैं। यह शत्रुञ्जय नामक हाथी, जो मुझे अपने मामासे मिला है, हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हें हजार निष्क दक्षिणा सहित देता हूँ। श्रीरामचन्द्रके इसप्रकार कहकर दिये पदार्थोंको ले, सुयज्ञने श्रीराम लक्ष्मण और सीताको शुभाशीर्वाद दिया। तदनन्तर जिसप्रकार प्रजापति ब्रह्माजी इन्द्रसे बोलते हैं, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रने अव्यग्र और प्रिय वचन बोलनेवाले प्यारे लक्ष्मणसे कहा। हे लक्ष्मण! अगस्त्य और विश्वामित्रके पुत्रोंको भी बुलालो, और इन दोनों उत्तम ब्राह्मणोंको भी उसी प्रकारसे रत्नोंसे सत्कारित करो, जिसप्रकार अनाजका खेत जलसे सींचा जाता है। दोनोंको एक-एक हजार गौएँ और बहुमूल्य सोने चाँदीके भारसे जटित आभूषण तथा बहुत-सा धन देकर तृप्त करो। तैत्तरीय शाखाके आचार्य उस ब्राह्मणको, जो कौसल्या और सुमित्राको नित्य बड़ी भक्तिके साथ आशीर्वाद दिया करते हैं और सब वेद वेदान्तके ज्ञाता हैं और सब प्रकारसे योग्य हैं; सवारी, दासियाँ और रेशमी वस्त्र दो, जिससे

वह ब्राह्मण सन्तुष्ट हो। यह श्रेष्ठ चित्ररथ नामका पुरुष, जो मेरा मंत्री है और बहुत दिनोंसे मेरे यहाँ रहता है, इसको बहुमूल्य रत्न, वस्त्र और धन देकर सन्तुष्ट करो। मेरे ये जो कठ और कलाप शाखाध्यायी और सदा पलाश-का दंड धारण करनेवाले बहुतसे ब्रह्मचारी हैं, इनको दस-दस हजार गौएँ और अन्य बहुतसे पशु दो। क्योंकि वे सदा वेद पढ़ा करते हैं और कोई दूसरा काम नहीं करते। वे भित्तावृत्ति करनेमें आलसी तो हैं; किन्तु स्वादिष्ट पदार्थोंके खानेकी बड़ी इच्छा रखते हैं, किन्तु हैं वे बड़े सदाचारी। अतः इनको रत्नोंसे भरे अस्सी ऊँट; शालिनामक अन्नसे भरे एक हजार बोरे तथा खेतीके कामके योग्य दो सौ बैल दो। दही, घी, दूध खानेके लिए इनको अनेक गौएँ भी दे दो। देखो, मेखला धारण किए हुए ब्रह्मचारियोंकी जो भीड़ माता कौसल्याके पास उपस्थित है, उसमेंसे प्रत्येकको सहस्र गौएँ और सहस्र-सहस्र सोनेकी मोहरें दे दो। उनको देकर, हे लक्ष्मण! उन सब ब्राह्मणोंका सत्कार करो। श्रीरामचन्द्रजीके इन बचनोंको सुन, पुरुषश्रेष्ठ श्रीलक्ष्मणजीने स्वयं वह समस्त धन कुवेरकी तरह उन ब्राह्मणोंको दे दिया जैसा कि श्रीरामचन्द्रने देनेको कहा था। तदनन्तर उन उपजीवियोंमें से, जो खड़े-खड़े रो रहे थे। प्रत्येकको जीविकाके लिये बहुत-सा द्रव्य देकर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—जब-तक मैं बनसे लौटकर न आऊँ, तब-तक लक्ष्मणका और मेरा घर खाली न रहने पावे और आप लोग एक-एक कर जैसी कि मेरे सामने रखवाली करते हैं, वैसी ही मेरे पीछे भी किया करना। सब नौकरों चाकरोंको दुःखी देख श्रीरामचन्द्रजीने खजांचीसे कहा, धन ले आओ। यह आज्ञा पाते ही नौकरोंने लाकर धनका ढेर लगा दिया। उस समय उस धनके ढेरकी शोभा देखते ही बनता था। तदनन्तर लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रने वह धन ब्राह्मणों बृद्धों और दीनों दुखियोंको बँटवा दिया। वहाँ पर गर्गगोत्री एक ब्राह्मण था, जिसका नाम त्रिजट था (जिसका चिन्ताके मारे) शरीर पीला पड़ गया था। जो उञ्छवृत्तिसे निर्वाह करता था, जो नित्य फावड़ा, कुदाल तथा हल ले बन जाता और फल-मूल जो कुछ वहाँ मिलते उनसे अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करता था, उस बूढ़ेकी युवती स्त्री जो दरिद्रतासे पीड़ित थी, छोटे-छोटे बालकोंको लाकर

ब्राह्मणसे बोली—अब इन फावड़ा कुल्हाड़ीको तो पटक दो और मैं जो कुछ कहूँ उसे करो। यदि तुम अभी धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीके पास जाओगे तो तुम्हें कुछ न कुछ अवश्य मिल जायगा। स्त्रीका बचन सुन, ब्राह्मण पुराने फटे चीथड़ेसे किसीप्रकार शरीर ढककर श्रीरामचन्द्रजीके घरकी ओर चल दिया। उस त्रिजटका तेज भृगु और अंगिराके समान था। यद्यपि वह ब्राह्मण चिथड़ा लपेटे हुए था, तथापि वह ऋषियोंके समान सदाचारी होनेके कारण बड़ा तेजस्वी था—अतः वह विना रोक टोक रामभवनकी पाँचवीं ड्योढ़ी लाँघ, भीतर पहुँचा, जहाँ लोगोंकी भीड़ लगी थी। वहाँ जा त्रिजटने राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—हे यशस्वी राजकुमार! मैं निर्धन हूँ, तिस पर मेरे वहुतसे लड़के वाले भी हैं। मैं वनमें जा, उञ्छवृत्तिसे जो कुछ पाता हूँ, उसीसे निर्वाह करता हूँ। मेरी ओर भी दयादृष्टि होनी चाहिए। यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने उससे परिहास पूर्वक कहा—मेरे पास हजारों गौएँ हैं जिनको अब तक मैंने नहीं दिया है। तुम अपनी लाठी फेंको, जितनी दूर तुम्हारी लाठी जाकर गिरेगी, उतने वीचमें जितनी गौएँ खड़ी हो सकेंगी उतनी गौएँ मैं तुम्हें दूँगा। श्रीरामचन्द्रजीकी वात सुन त्रिजटने वह चिथड़ा कसकर तुरन्त कमरमें लपेटा। और लाठी घुमाकर तथा अपना सारा बल लगाकर उसे फेंका। वह लाठी सरयू नदीके उस पार जहाँ हजारों गायें और बैलोंका झुण्ड था, जा गिरी। उस समय श्रीरामचन्द्रजीने उस ब्राह्मणको अपने गले से लगाया और वहाँ से सरयू पार तक जितनी गौऐं आ सकती थीं, उन सबको त्रिजट के आश्रम पर दिला और उन गर्ग गोत्री ब्राह्मणको सान्त्वना देते हुए श्रीरामचन्द्र उससे वोले—हे ब्राह्मण! क्रोध मत करना। क्योंकि मैंने जो कहा था वह विनोदार्थ कहा था। तुम्हारे अतिशय शारीरिक बलकी परीक्षा करनेके लिए ही मैंने यह बात तुमसे कही थी। उतनी गौएँ तो आपके स्थानपर पहुँच गईं—अब उन गौओंके अतिरिक्त और जो कुछ आप चाहते हो सो कहिए। मैं सत्य कहता हूँ कि, आपके लिए किसी वस्तुके देनेमें किसी प्रकारकी रोक टोक नहीं है। क्योंकि मेरा समस्त धन ब्राह्मणों ही के लिए तो है। यदि मैं अपनी पैदाकी हुई धन सम्पत्ति आप सरीखे

ब्राह्मणको दे दूँ, तो मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हो और मुझे यश भी मिले। तब द्विजश्रेष्ठ त्रिजट, अपनी स्त्री सहित प्रमुदित मनसे और भी असंख्य गौ ले, तथा बल, यश, प्रीति और सुखकी वृद्धिके लिए श्रीरामचन्द्रको अनेक आशीर्वाद देता हुआ चला गया। श्रीरामचन्द्रजीने अपनी शुद्ध और गाढ़ी कमाईके धनको बड़े आदरके साथ अपने सुहृदोंको बाँट दिया। उस समय ऐसा कोई ब्राह्मण, सुहृद, नौकर, निर्धन और भिक्षुक न था, जिसका यथायोग्य दान मानसे सत्कार श्रीरामचन्द्रने न किया हो और जो सन्तुष्ट न हुआ हो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ सर्ग

सीता और श्रीरामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सीता मिलनेके लिए महाराज दशरथके पास गये। सीताजी द्वारा फूल चन्दनादिसे सजाये हुए आयुध जिन्हें नौकर लोग लिए हुए थे। और जो श्रीरामचन्द्रके पीछे जा रहे थे, शोभित हो रहे थे। उस समय पुरवासी लोग देवताओंके मन्दिरोंसे, धनाढ्योंके भवनों और सतखने मकानोंकी अटारियोंपर चढ़ बड़ी उत्सुकतासे उनको देखते थे। क्योंकि उस समय मार्गोंपर लोगोंको ऐसी अपार भीड़ थी कि, लोग निकल पैठ नहीं सकते थे। अतः लोग ऊँचे मकानोंको छतोंपर बैठ और दुःखी हो, श्रीरामचन्द्रको देखते थे? उस समय श्रीरामचन्द्रको पैदल और छत्ररहित जाते देख लोग अत्यन्त दुःखी थे और अनेक प्रकारकी बातें कर रहे थे। कोई कहता—देखो, जिसके पीछे यात्रा करते समय चतुरङ्गिणी सेना चलती थी, उसके पीछे आज केवल सीता और लक्ष्मण ही हैं। कोई कहता—जो श्रीरामचन्द्र सब ऐश्वर्योंके सुखोंका अनुभव करनेवाले और अर्थार्थियोंको यथेच्छित धन देनेवाले हैं; वे ही आज अपने कर्त्तव्य-पालनके अनुरोधसे पिताके वचनोंको मिथ्या करना नहीं चाहते। कोई कहता जिन सीताको पहले आकाशचारी प्राणी भी नहीं देख सकते उन्हीं सीताजीको आज राह चलते लोग देख रहे हैं। कोई कहता—चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओंके लगाने योग्य जानकी वनमें वर्षा शीत गरमीसे अपनेको विवर्ण अर्थात शरीरका रङ्ग और-का-और

कर देंगी। कोई कहता निश्चय ही महाराज दशरथके सिरपर पिशाच सवार है, नहीं तो ऐसे प्यारे पुत्रको भी घरसे नहीं निकालते। फिर रामचन्द्रने तो अपने सदाचरणसे यह लोक जीत लिया है अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी तो संसारमें एक प्रसिद्ध सदाचारी हैं। कोई कहता—केवल सदाचार ही के लिए नहीं-प्रत्युत अहिंसा दया यथाविधि शास्त्राध्ययन, सत्स्वभाव, इन्द्रियोंका निग्रह, मनका निग्रह, इन छः गुणोंसे युक्त ऐसे गुणी पुत्र श्री रामचन्द्रजाके वन जाने से लोगोंको वैसा ही महाकष्ट हो रहा है, जैसा कि ग्रीष्मकालमें जलके अभाव-से जल-जन्तुओंको होता है। कोई कहता—जगत्पति श्रीरामचन्द्रजीके कष्टसे सारा संसार कष्ट पा रहा है। जैसे जड़को काटनेसे फला फूला, हरा भरा वृक्ष सूख जाता है, अत्यन्त कान्तिवाले और धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी (वृक्षके) जड़ समान हैं और अन्य लोग (उस वृक्षके) पुष्प, फल, पत्र, शाखा आदि हैं। अतएव हम लोग भी लक्ष्मणकी तरह अपनी स्त्रियोंको साथ ले, अपने परिवार सहित, श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे शीघ्र जायँगे। कोई कहता, हम लोग बाग-बगीचा, खेती-बारी और घर-द्वार छोड़, बराबर सुख-दुःख सहते हुए, धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रकेजी पीछे जायँगे। जिन घरोंको हम त्याग देंगे उनमें धन नहीं रह जायगा. उनके आँगन टूट फूट जायँगे, उनमें अन्न और धन न रहने पावेगा, उनकी रमणीयता नष्ट हो जायगी, धूल गर्दा भर जायगी, गृह-देवता घरोंसे चल देंगे, मूसे दौड़ लगाया करेंगे, घर भरमें बिल ही बिल देख पड़ेंगे, उनमें जलकी बूंदें भी न देख पड़ेंगी, लिपाई-पुताई न होनेसे मकान धुमैला और स्वच्छता रहित हो जायगा, उनमें बलिवैश्वदेव होम जप होना बंद हो जायगा। उसमें टूटे बर्त्तन देख पड़ेंगे। मानों राजा और देवके कोपसे वे दुर्दशाग्रस्त हो रहे हों—ऐसे घरोंसे युक्त अयोध्याका राज्य सुख कैकेयी भोगे। कोई कहता हमारी तो ईश्वरसे यह प्रार्थना है कि, जिस वनमें श्रीरामचन्द्रजी जायँ तो नगर बस जायँ और हमारी छोड़ी हुई यह अयोध्यापुरी वन हो जाय। अर्थात् वन बसे, अयोध्या उजड़े और हमारे भयसे भीत हो सर्पादि अपने बिलोंको और मृग और पक्षी पर्वत शृङ्गोंको तथा हाथी एवं सिंह वनोंको त्याग इस अयोध्यापुरीमें आकर बसें। हमारी छोड़ी हुई इस प्रकारकी पुरीमें, जिसमें केवल घास-फूस, माँस और फल मिल सकेंगे और

जो साँपों मृगों और पक्षियोंसे भरी होगी—कैकेयी अपने भाई वन्दों सहित राज-सुख भोगे और हम सब श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनमें सुख पूर्वक वास करें। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारकी विविध बातें अनेक लोगोंके मुखों से सुनते जाते थे, तथापि उनकी इन बातोंको सुनसेसे उनके मनमें जरा सा भी विकार उत्पन्न नहीं होता था। धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र धीरे-धीरे मतवाले हाथीकी तरह विक्रम प्रदर्शित करनेवाली चालसे, कैसालशृङ्गके समान एव शोभित पिताजीके भवनकी ओर जानेलगे। राज महलके द्वार पर सब लोग विनीत भावसे खड़े थे। श्रीरामचन्द्रजी उनके पाससे आगे बढ़े और थोड़ी ही दूर पर उदास मनसे सुमन्त्रको देखा। वहाँके लोग जो श्रीरामचन्द्रजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे, सबके सब शोकाकुल होनेके नाते खिन्न थे। उनको देख और मुसक्या श्रीरामचन्द्र पिताको देखने और उनकी आज्ञाका विधिवत पालन करने चले जाते थे। निश्चित राम-वियोग—जनित दुःखसे महाराज दशरथके समीप जानेके पूर्व ऐक्ष्वाकुसुत महात्मा श्रीरामचन्द्रने बड़े बूढ़े सुमन्त्रको द्वारपर अपने आगमनकी सूचना महाराजको देनेके लिए खड़ा हुआ देखा। धर्मवत्सल पिताकी आज्ञाको पूरी करनेके हेतु और वन जानेके हेतु और वन जानेका निश्चय किये हुए श्रीरामचन्द्र सुमन्त्रको खड़ा देख, उनसे बोलेकि, महाराजको हमारे आनेकी सूचना देदो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ सर्ग

कमल पत्रके समान नेत्रवाले, श्याम अंग, उपमा रहित श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रसे कहा कि हमारे आनेकी सूचना महाराजको दो। श्रीरामचन्द्रके भेजे हुए सुमन्त्रने तुरन्त भीतर जाकर वहाँ देखा कि महाराज दशरथ शोकसे विकल साँसे ले रहे हैं। उस समय सुमन्त्रने महाराजको राहुग्रस्त सूर्यकी तरह अथवा भस्माच्छादित अग्निकी तरह अथवा जल-रहित तड़ागकी तरह देखा। महापण्डित सुमन्त्रने श्रीरामचन्द्रजीको चिन्तासे विकल और अत्यन्त घबड़ाये हुए महाराज दशरथजीको देख, हाथ जोड़कर कहा। सुमन्त्रने प्रथम तो राजो-चित अभिवादन किया, तदुपरान्त महाराजकी जय हो, कहकर आशीर्वाद

दिया। फिर डरते-डरते धीमें स्वरसे यह मधुर वचन बोले, हे महाराज! ये पु
सिंह आपके पुत्र द्वारपर खड़े हैं। ब्राह्मणों और अपने नौकरों चाकरों
धन और समान दे और सब सुहृज्जनोंसे विदा हो, सत्य पराक्रम श्रीरामच
आपके दर्शन करनेके लिए आए हुए हैं। जिस प्रकार सूर्य भगवान् अप
किरणोंसे सुशोभित होते हैं, वैसे ही श्रीरामचन्द्र भी विविध प्रकारसे राजो
गुणोंसे शोभित हैं। वे अब शीघ्रही दण्डक वनको जायँगे। सो हे पृ
नाथ! आप उनको दर्शन दीजिए। सुमन्त्रके ये वचन सुन सत्यवादी धर्मा
गंभीरतामें समुद्रके समान और आकाशकी तरह निर्मल महाराज दशर
कहा—हे सुमन्त्र! इस घरमें मेरी जितनी भी स्त्रियाँ हैं उनको पहले बुला
मैं सबके सहित श्रीरामको देखना चाहता हूँ। यह सुन सुमन्त्र भीतर गये
स्त्रियोंसे बोले कि, महाराज आपको बुलाते हैं, शीघ्र आइए। जब सुमन्
उन सब स्त्रियोंको इस प्रकार महाराजकी आज्ञा सुनाई, तब अपने पति
आज्ञासे वे महाराजके पास जानेको तैय्यार हुई। साढ़े तीन सौ स्त्रियाँ जि
नेत्र श्रीरामचन्द्रजीके वियोग जन्य दुःखके कारण रोते-रोते लाल हो गये
कौशल्याको घेरकर धीरे-धीरे महाराजके पास गई। जब महाराजने देखा
सब स्त्रियाँ आगईं। तब उन्होंने सुमन्त्र को आज्ञा दी कि, हे सुमन्त्र! मेरे
को ले आओ। तब सुमन्त्रजी श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीता
साथ ले शीघ्र महाराजके निकट चले। उस समय महाराज दूर ही से हाथ ज
हुए श्रीरामचन्द्रजीको आते देख उनकी ओर बड़े वेगसे दौड़े, किंतु श्रीराम
जीके पास पहुँच बीच ही में दुःखी होनेके कारण मूर्च्छित हो धरणी
गिर पड़े। यह देख श्रीरामचन्द्रको और लक्ष्मणने बड़ी तेजीसे दौड़कर
और शोकसे चेष्टाशून्य-से हुए महाराजको उठा लिया। उस समय वह
भवन सहस्रों स्त्रियोंके विलापसे भर गया और उनके आभूषणोंकी झन
का स्वर उस रोने पीटनेके कोलाहलमें दब गया। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्म
दोनों भुजाओंको पकड़कर सीता सहित रोते-रोते महाराजको ले ज
पलंगपर बैठाया। जब एक मुहूर्त बाद महाराज सचेत हुए, तब श्रीरामचन्
शोक समुद्रमें डूबे हुए महाराज दशरथसे हाथ जोड़कर बोले। महार
मैं आपसे विदा होने आया हूँ। आप हम सबके स्वामी हैं। अब मैं द

वनको प्रस्थान करता हूँ। अब आप मेरी ओर एक बार कृपादृष्टिसे देख तो लें। लक्ष्मण और सीताको भी मेरे साथ वनजानेकी आज्ञा दीजिए। क्योंकि मैंने अनेक कारण बतला इन दोनोंको ही मना किया; परन्तु ये दोनो तो यहाँ रहनेको राजी ही नहीं होते, तो हे महाराज! शोकको परित्यागकर हम सबको वैसे ही आज्ञा दीजिए जैसे प्रजापति अपनी प्रजाको आज्ञा देते हैं। तब महाराज दशरथ अपनी व्यग्रता रहित अपने पुत्रको वन जानेकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते जान उनकी ओर कृपापूर्ण दृष्टिसे बोले—हे रामचंद्र! मुझे कैकेयीने वरदान द्वारा धोखा दिया है। सो तुम मुझे बाँधकर बलपूर्वक अयोध्याके राजा बनो। महाराजके ये वचन सुन धर्मधुरन्धर और बात चीत करनेमें पटु श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर, पितासे बोले—हे महाराज! आप आगे और भी हजारों वर्षोंकी आयु पाकर पृथ्वीका पालन करते रहें। मैं आपको मिथ्यावादी बनाना नहीं चाहता। मैं अवश्य वनमें वास करूँगा। हे महाराज! वनमें चौदह वर्ष बिता और अपनी प्रतिज्ञा पूरीकर, पुनः आपके दोनों चरणोंको पकड़ूँगा। अथवा प्रणाम करूँगा। सत्यरूपी पाशमें बँधे और संकेतसे कैकेयी द्वारा प्रेरित हो महाराज आर्त हो और रोदन करते हुए श्रीरामचन्द्रजीसे बोले। हे वत्स! पारलौकिक सुख और इस लोकके यश आदि फलकी प्राप्ति तथा फिर यहाँ लौट आनेके लिए तुम अव्यग्र मनसे वन जाओ। मार्गमें तुम्हारा कल्याण हो और तुम्हें किसी भी वनैले जीव जन्तु का भय न हो। हे रामचन्द्र! तुम सत्यके पालनेमें तत्पर्य और धर्म-कार्य करनेमें दत्तचित हो, अतः तुमको इनसे हटाकर दूसरे मार्गपर चलनेकी बुद्धि किसी में नहीं है। परन्तु आजकी राततो किसी तरह रह जाओ। भला एक दिनतो तुम्हारे साथ रहनेका सुख भोग लूँ। मेरी ओर अपनी माताकी ओर देखो और आजकी रात यहीं रह जाओ। रातमें अपनी साध पूरी कर लूँगा, तब तुम सवेरा होते ही वनको चले जाना। हे वत्स! तुम ऐसा दुष्कर कामकर रहे हो जैसा और कोई नहीं किया होगा। हमारा परलोक बनानेके लिए तुम भोग अपने सब प्यारे जनोंको छोड़, बिजन बनको जाते हो। हे वत्स! मैं सत्यकी शपथ खाके कहता हूँ कि मुझे तुम्हारा वनजाना कभी अभिमत नहीं है। पर क्या करूँ—इस कैकेयीको जो भस्ममें छिपी हुई आगकी तरह (भयंकर) है।

इसकी छल भरी चालमें मैं फँस गया। मैं कुलकलङ्किनी कैकेयीके जिस छलजाल
कस गया हूँ उसे तुम इसके कहनेमें आर पार करना चाहते हो। अर्थात् मैं
इसकी बातों में फँसा ही हूँ, तुम क्यों फँसते हो या मैं तो इसके धोखेमें आ
चुका, तुम इसके धोखेमें क्यों आते हो? हे वत्स! इसमें आश्चर्यकी कोई बा
नहीं कि तुम मेरे ज्येष्ठपुत्र हो, अतः तुम अपने पिताको सत्यवादी ठहरा
चाहते हो। इस प्रकार अति दुखी पिताके बचन सुन, लक्ष्मण सहित श्रीरामच
जी दीन हो बोले, हे पिता! (यदि मै आपके कथनानुसार रह भी जाऊँ तो
आज मुझे राजोचित पदार्थ मिल जायगा, परन्तु कल मुझे ये पदार्थ कौन देगा
अतः मैं अब सबके बदले आपसे तुरन्त वन जानेकी आज्ञा माँगता हूँ। अ
आप मेरी छोड़ी हुई धन धान्य और मनुष्योंसे भरी सी और विविध रा
से घिरी पृथ्वी भरतको दे दीजिए। क्योंकि मैंने वनजानेके विषयमें जो निश्च
किया है, वह टल नहीं सकता। वरद! आपने सन्तुष्ट हो ऐसा वर कैके
को दिया है। अतः हे पृथ्वीनाथ! आप मुझे आज्ञा दीजिए और आ
सम्पूर्णतः सत्यप्रतिज्ञ हूजिए। आपने जैसी आज्ञा दी है, तदनुसार मैं उस
पालन करूँगा। मैं तपस्वियोंके साथ चौदह वर्षों तक वन में रहूँगा। आ
भरत को राज्य देनेका विचार मत पलटिये। क्योंकि आपकी आज्ञा
प्रतिपालन करनेके समान मुझे न तो राज्यकी चाहना है और न मेरे
में किसी सुखकी ही चाहना है। आप रुदन न कीजिए और दुःखी
हूजिए। भला नदियोंका स्वामी दुर्धर्ष समुद्र भी कहीं क्षुब्ध होता है
हे महाराज! अधिक तो मैं क्या कहूँ! मैं राज्य-सुख जानकी भोग-स्वर्ग य
तक कि मैं अपना जीवन भी नहीं चाहता; किन्तु हे पुरुषोत्तम! मैं मि
भाषणसे छुड़ा आपको सत्यवादी करना चाहता हूँ। आप देवता है
आपके सामने मैं अपने सुकृत और सत्यकी शपथ खाकर ये बातें कह र
हूँ। मेरे इस कथनमें कुछ भी बनावट झूठ नहीं है। हे तात! हे प्रभो
(रात भरकी क्या चलाई) मैं अब एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। (मे
आपसे प्रार्थना है कि,) आप मेरे लिए अधीर न हों। क्योंकि बन-या
सम्बन्धी मेरे संकल्पमें अब तिल भर भी अन्तर नहीं पड़ सकता। ज
कैकेयीने मुझसे कहा कि रामचन्द्र तुम बन जाओ, तब मैंने कहा कि अ

मैं बन जाता हूँ। अतएव अपने इस कथनके सत्यका भी पालन करना मेरे लिए अनिवार्य है। हे देव ! आप जरा भी न घबड़ायें। मैं ऐसे बनमें रहूँगा जहाँ शान्त चित्त हिरन विचरते हैं और अनेक प्रकार के पक्षियोंकी बोलियाँ सुनाई पड़ती हैं। हे तात! पिता देवताओंके भी देवता होते हैं। अतः आपको परम देवता समझ मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। हे नरसत्तम! जब चौदह वर्ष पूरे हो जायँगे, तब मैं फिर यहाँ आ ही जाऊँगा। अतः आप मेरे लिए अब दुःखी न हों ! इस समय आपको उचित है कि, इन लोगोंको जो रुदनकर रहे हैं, समझा-बुझाकर शान्त करें। सो हे पुरुषसिंह ! आप (इस समय) स्वयं दुःखी क्यों हो रहे हैं? (अर्थात् आपका कर्त्तव्य है कि आप इन लोगोंको समझावें न कि स्वयं रुदन करें) मैं अयोध्यापुरी और पृथ्वीको छोड़कर जाता हूं। आप इसे भरतको दे दीजिए। मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ, बहुतकाल तक वनवास करनेके लिए जाऊँगा। पर्वतों और वनोंसे शोभायमान नगर और ग्रामोंसे भरी पूरी और राजकल्याणकारिणी इस पृथ्वीका भरतजी वंशमर्यादाके अनुसार केवल शासन करें, यह इस लिए कि जिससे आपने जैसा कहा है वैसा ही हो। अर्थात् आपका दिया हुआ वरदान सत्य हो। (इससे यह ध्वनि निकली है कि, श्रीरामचन्द्रजी राज्य पर अपना स्वत्व नहीं छोड़ रहे, किन्तु पिताकी आज्ञा पालन करनेको अस्थाई रूपसे भरतको शासन भार मात्र दे रहे हैं। इसीके अनुसार भरतजीने भी नन्दिग्राममें रहकर, प्रतिनिधि रूपसे चौदह वर्षों तक राज्य किया था)। हे राजन्! मुझे अच्छी-अच्छी भोगकी व सुखकर वस्तुओंकी रुचि नहीं है। न मुझे किसी प्रीतिकर वस्तुकी चाहना है। मुझे तो केवल सज्जनोंकी सराही हुई आपकी आज्ञाका पालन करना (सबसे बढ़कर) रुचिकर है। अतः मेरे लिए आपको जो दुःख हो रहा है, उसे त्यागिए। हे राजन् ! आपको मिथ्या-वादी सिद्ध करना, तो अक्षय्य राज्य, न अतुलनीय सुखसम्पत्ति, न पृथिवी न जानकी और न अपना जीवन ही मुझे अपेक्षित है; किन्तु मैं तो यह चाहता हूँ कि, आपका सत्यव्रत पूरा हो। अर्थात् आप संसारके आगे सत्य-वादी कहलाते रहें। मैं फलों मूलोंको खा, और पर्वतों नदियों और सरोवरोंको देखता हुआ भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे परिपूर्ण बनमें जा सुखी होऊँगा। आप

प्रसन्न हुजिए। यह सुन महाराज दशरथ क्लेशित एवं शोक तथा दुःख
सन्तप्त हो, श्रीराचन्द्रको हृदयसे लगा मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पड़े। उ
समय उनको कुछ भी होश न रहा। वे मोहको प्राप्त हुए कैकेयीको छोड़ व
और जितनी रानियाँ थीं, वे सबकी सब विलापकर रोने लगीं। बूढ़े सुमन्त्र भ
मूर्च्छित हो गए। राजभवनमें सर्वत्र हाहाकार मच गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका चौतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

सुमन्त्रका कैकेयीको कड़े शब्दोंमें समझाना

मूर्च्छा व्यतीत होनेपर सुमन्त्र क्रोधसे अधीर हो बारम्बार लम्बी साँ
लेने, दाँत किटकिटाने; हाथ मलने और सिर पीटने लगे। मारे क्रोधके उनक
दोनों आँखें लाल हो गयीं। शरीरका रंग बदल गया। सहसा क्रोधके वशवर्त
हो वे बहुत दुखी हुये। तब यह देखकर कि, महाराज दशरथके मनमें कैकेयीक
अब कुछ भी आदर नहीं रहा—सुमन्त्र कैकेयीके समान तीक्ष्ण वचनों
कैकेयीके हृदयको छेदकर मानों कँपाने लगे। जिस प्रकार तेज वाण शरीर
पैठ शरीरके मर्मस्थलोंको चीरकक खोल देता है, उसीप्रकार सुमन्त्रने वचनरू
वाणोंके कैकेयीके वे दोष प्रकट किए, जो बड़े मर्मस्पर्शी थे अर्थात् कैकेयी
मनमें चुभते थे। सुमन्त्रने कहा,–हे देवि! तूने अपने पति महाराज दश
ही को जो चराचर जगत्के पालन-पोषण करनेवाले हैं, त्याग दिया। तब
लिए (संसार में) और कौन सा अब करना काम करनेको बाकी रह
इसीसे मैं तुझे न केवल पतिकी हत्या करनेवाली; प्रत्युत कुलका नाश कर
वाली भी मानता हूँ। जो महाराज दशरथ, इन्द्रके समान अजेय और पर्व
की तरह कभी क्षोभको प्राप्त न होनेवाले हैं; उनको तू अपनी करतूत
सन्ताप कर रही है। कैकेयी! तू ऐसे वर देने वाले अपने स्वामी महार
दशरथका अपमान मतकर। क्योंकि करोंड़ पुत्रोंके स्नेहसे भी बढ़कर स्त्री
लिए अपने पतिकी इच्छानुसार चलना है। देख, राजाके मरनेपर राज्य
मालिक (अवस्थानुसार) ज्येष्ठ पुत्र होता है। इस प्राचीन (इक्ष्वाकुकुलके
प्रथाको इक्ष्वाकुलके स्वामी महाराज दशरथके जीवित रहते ही तू (भरत

ाज्य दिलाकर) मेंट देना चाहती है ? अच्छी बात है! तेरा पुत्र भरत राज्य
रे। हम लोग तो वहीं जाँयगे, जहाँ श्रीरामचन्द्र जाँयगे। तेरे पुत्रके राज्य-
ं कोई भी भला आदमी न रह जायगा। क्योंकि तू अमर्यादाका काम करने
र उतारू है। मुझे बड़ा आश्चर्य है कि, तेरे इस दुष्टाचरणको देख पृथ्वी
ाग्रही क्यों नहीं फटजाती। जब तू श्रीरामचन्द्रको वनवास देनेके लिए
द्यत हुई है, तब वशिष्ठादि महर्षियोंका तीव्र और भयंकर धिक्काररूप वाक्-
ण्ड (शाप) तुझे नष्ट क्यों नहीं कर डालता ! कौन ऐसा (मूर्ख) मनुष्य
ोगा, जो मधुर फल देनेवाले आमवृक्षको कुल्हाड़ीसे काट, उस कड़ुने नीम
े वृक्षको सीचेगा जो दूधसे सींचनेपर भी कभी मीठे फल नहीं दे सकता।
ोग जो कहा करते हैं कि नीमके वृक्षसे मधु नहीं चूता, सो इसे मैं भी
ानता हूँ। यही कारण है कि, जैसी तेरी माता थी वैसी ही तूँ भी निकली।
ेरी माताका पाप-कर्म मुझे ज्ञात है। मैं पहले उसे ज्योंका त्यों सुन चुका हूं।
किसी वरदान देने वाले योगी गन्धर्वने तेरे पिताको एक यह उत्तम वर दिया
ा कि, तुम सब जीवोंकी बोली समझ लिया करोगे। इस वरके प्रभावसे तेरे
पिता पक्षियोंकी भी बोली समझने लगे। तेरे पिता एकबार लेटते समय
अत्यन्त चमकदार (अर्थात्) सुनहरे रंगकी एक चींटीका बात सु.। और
उसका आशय समझ वहुत हँसे। इस पर तेरी माता बहुत क्रुद्ध हुई और
अपनी जान दे देनेकी धमकी देती हुई बोली—हे राजन् मैं तुम्हारे हँसनेका
कारण जानना चाहती हूँ। इसपर राजाने कहा, हे देवि! यदि मैं अपने
हँसनेका कारण कहूँ तो मैं तुरन्त मर जाऊँगा। इसमें सन्देह नहीं है। यह
सुन तेरी माता अपने पति राजा केकयसे बोली—तुम चाहे जीओ, चाहे मरो;
किन्तु अपने हँसनेका कारण मुझे बतलाओ। क्योंकि (यदि तुम मर भी
गए तो) आगे फिर तो मेरा उपहास न करोगे। तब प्रिय रानीके इसप्रकार
कहनेपर (हठ करते) राजा केकयने वह सारा हाल जाकर वर देने वाले
योगीसे कहा। तब उस वर देनेवाले साधूने राजासे कहा—हे राजन्! तेरी
रानी भले ही मर जाय, या अपने पिताके घर चली जाय, पर तू ऐसा कभी
न करना। यह सुन राजा केकयने प्रसन्न मनसे तेरी माताका परित्याग कर
दिया और स्वयं कुबेरकी तरह विहार करने लगा। हे पापिष्ठे! इसीप्रकार

तू भी दुर्जनोंका-सा चरित्रकर महाराजको धोखा देकर उनसे अनुचित का
करवाती है। लोग सत्यही कहते हैं कि, पुत्र अपने पिताके स्वभावके औ
पुत्रियाँ अपनी माताके स्वभावकी होती हैं। देख, तू अपनी माता जैसी म
बन और महाराजका कहना मान। अपने पतिकी इच्छानुसार चलकर
हम लोगोंकी रक्षाकर। तू पापोंसे प्रोत्साहित होकर, इन्द्रके समान मनुष्यों
राजा, अपने पतिसे यह अधर्म कार्य मत करा। महाराज तुझसेकी गई अपन
प्रतिज्ञा मिथ्या न करेंगे। हे देवि ! राजीव लोचन महाराज दशरथसे तू क
कि, ज्येष्ठ, उदार, कर्मठ, अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले और प्राणिमा
के रक्षक श्रीरामचन्द्रका ही अभिषेक करवाना चाहिये। यदि श्रीरामचन्द्र व
को चले गए तो संसार में तेरी बड़ी निन्दा होगी। इसलिए तू अपने मनक
क्षोभ छोड़कर श्रीरामचन्द्रको राज्य करने दे। क्योंकि रामको छोड़ अन
किसीके अयोध्यामें रह राज्य करनेसे तेरा कल्याण न होगा। श्रीरामचन्द्र
युवराजपद प्राप्त होते ही, पूर्वजोंकी प्रथानुसार राजा दशरथ स्वयं ही वन
चले जायँगे। इसप्रकार सुमन्त्रने सबके समक्ष ही हाथ जोड़े हुए अपने क
वचनोंसे कैकेयीको बार-बार क्षुब्ध किया। किन्तु उसपर कुछ भी प्रभाव
पड़ा यहाँ तक कि उसके चेहरेके रंगमें भी फर्क नहीं पड़ा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥१२॥

छत्तीसवाँ सर्ग

(दशरथ कैकेयी संवाद, सिद्धार्थका कैकेयीको समझाना और असमञ्जसोपाख्यान)

तब राजा दशरथने सुमन्त्रसे कहा—'सूत ! तुम शीघ्र ही रत्नों
सुसज्जित चतुरङ्गिणी सेनाको रामके पीछे-पीछे जानेकी आज्ञा दो। राम निर्ज
बनमें निवास करनेके लिए जा रहें हैं, इसलिए मेरा कोष और अन्न-भण्ड
इनके साथ जाना चाहिये। ये बनके पावन प्रदेशमें ऋषियोंसे मिलकर य
करेंगे और पर्याप्त दक्षिणा देते हुए वहाँ सुखपूर्वक रहेंगे। राजाकी यह वा
सुनकर कैकेयीको बड़ा विषाद हुआ। उसका मुँह सूख गया और व
अत्यन्त उदास होकर राजाकी ओर देखती हुई बोली—महाराज ! इस धनही
और सूने राज्यको भरत नहीं लेंगे। आपके ही वंशमें महाराज सगर हुए थे
जिन्होंने अपने जेष्ठ पुत्र असमञ्जसके लिए राज्यका द्वार सर्वदाके लि

वन्दकर दिया था। इसी प्रकार रामको भी निकल जाना चाहिये, उसके ऐसा कहनेपर राजा दशरथने कहा—'धिक्कार है।' यहाँ जितने लोग बैठे थे, सभी लज्जासे गड़ गये; किन्तु कैकेयी अपने कथनके औचित्यको नहीं समझ सकी। उस समय यहाँ राजाके प्रधान और वयोवृद्ध मन्त्री सिद्धार्थ बैठे थे। वे बड़े ही शुद्ध स्वभाववाले और राजाके आदरणीय थे। उन्होंने कैकेयीसे कहा—देवि! असमञ्जस बड़ा दुष्ट था! वह मार्गपर खेलते हुए बालकोंको पकड़कर सरयूकी धारमें फेंक देता था। तब उसके ऐसे दुष्ट कर्मोंको देख नगर-निवासियोंने क्रुद्ध हो महाराज सगरसे पूछा—हे राष्ट्रवर्द्धन महाराज! आप केवल असमञ्जसको ही पुरीमें रखना चाहते हैं या हम सबको भी। तब सगरने प्रजाओंसे उनके इस भयका कारण ज्ञात किया। राजकुमार उस असमञ्जसकी मूर्खता और क्रूरताका पता चल गया। बालकोंको पकड़ सरयूमें डुबानेकी सब उसकी विक्षिप्तता ज्ञात हुई। तब प्रजाओंसे इस बातका पता लगाकर और उन्हें प्रसन्न करनेके लिए महाराज सगरने अपने उस अहित-कारी पुत्रका त्यागकर दिया। महाराजकी आज्ञासे वह तुरन्त ही अपनी स्त्री और कपड़े आदि आवश्यक सामग्रियों सहित रथपर बिठाया गया और नगरमें यह राजाज्ञा घोषित करदी गई कि, यह सदाके लिए निकाला जाता है। फिरतो वह फावड़े और खंती ले पर्वतोंपर और वनोंमें चारों ओर मारा-मारा फिरने लगा। उसे उसके कर्माकर्मका फल मिला। इस प्रकार पापी होनेके कारण परम धार्मिक राजा सगरने असमञ्जसको राज्यसे बाहर किया था। परन्तु रामने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिसके कारण इनके लिये राज-द्वार बन्दकर दिया जाय? हमें तो इसमें कोई दोष नहीं दिखाई देता। तुम्हें इनका कोई दोष हो तो बताओ, फिर इन्हें भी निकाल दिया जायगा। जिसमें कोई दुष्टता नहीं है, जो सन्मार्गमें स्थित है—ऐसे पुरुषका त्याग धर्म-विरुद्ध है। ऐसा धर्म-विरुद्ध कर्म तो इन्द्रके भी तेजको दग्ध कर देता है; अतः तुम रामके राज्याभिषेकमें विघ्न न डालो। तुम्हें लोकापवादसे भी बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये। सिद्धार्थकी बातें सुनकर राजा दशरथ अत्यंत करुणिक स्वरसे शोकाकुल वाणीमें बोले—पापिनी! क्या यह बात तुझे नहीं रुची? मेरे या अपने हितका तुझे किंचित् भी ज्ञान नहीं है। तू खोटे मार्गका

आश्रय लेकर ऐसी कुचेष्टा कर रही है। तेरा सारा प्रयत्न सत्पुरुषोंके मार्गके विरुद्ध है। अब मैं भी यह राज्य, सुख और धन छोड़कर श्रीरामचन्द्रके पीछे चला जाऊँगा। ये सब लोग भी श्रीरामकाही साथ देंगे, तू अकेली राजा भरतके साथ चिरकाल तक सुख पूर्वक राज्य कर।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का छत्तिसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

कैकेयीका श्रीरामचन्द्रको वनवासोपयोगी चीर, बल्कलादि देना। स्त्रियोंका विलाप तथा कैकेयी को वशिष्ठजी की फटकार और धिक्कार।

महामंत्री सिद्धार्थके तथा महाराज दशरथके बचन सुन, सुशील श्रीरामचन्द्रने विनम्रतासे राजा दशरथसे कहा—राजन्! मैं भोगोंका परित्याग कर चुका हूँ। वनके फल फूलों पर जीवन-यापन करूँगा। मेरे साथ धन संपत्ति और सेना आदि इन सब वस्तुओंकी क्या आवश्यकता है? जो मनुष्य हाथी तो दे डाले; किन्तु अंबारी कसनेकी रस्सी देनेमें मोह करे, तो हाथी जैसे इस दानदाताको उस रस्सीकी ममतासे क्या लाभ? हे सज्जन श्रेठ! ठीक यही बात मेरे सम्बन्धमें भी है? हे नरनाथ! मैं अपने साथ सेना ले जाकर क्या करूँगा? आप जो कुछ मुझे देना चाहते हैं, उन सबको मैं भरतजीको देता हूँ। मेरे लिए तो वल्कल वस्त्र मँगवाइये। मेरा चौदह वर्षका वनवास है। कन्दमूल फल खोदने और काटनेके लिए एक खन्ता और रस्सी मँगवा दीजिए। बस, मैं शीघ्रही वन-यात्रा करूँ। कैकेयी लज्जा और संकोच छोड़ चुकी थी। वह सब लोगोंके समक्षसे उठी और जाकर चीर वल्कल ले आई और रामचन्द्रसे बोली—लो इन्हें पहन लो। रामचन्द्रने कैकेयीसे वे वल्कलवस्त्र ले लिये। उन्हें धारणकर महीन बहुमूल्य वस्त्रोंको उतार दिये। पिताके समक्ष ही मुनियोंकेसे वल्कल वस्त्र पहन लिये। पश्चात् रेशमीवस्त्र पहनने और धर्मपर दृष्टि रखनेवाली सुलक्षणा सीता अपने पहननेके लिए कैकेयीके हाथसे वल्कलवस्त्र ले लज्जित-सी होकर अपने स्वामीसे बोलीं—नाथ! वनबासी मुनिलोग चीर कैसे बाँधते हैं? यह कहकर वे उसे धारण करनेमें कुशल न होनेके कारण, एक वल्कल गलेमें डाल, दूसरा हाथमें लेकर चुपचाप खड़ी रहीं। धर्मात्माओंमें

श्रेष्ठ श्रीराम जल्दीसे उनके पास आकर स्वयं अपने हाथोंसे उनके रेशमी वस्त्र के ऊपर वल्कलवस्त्र पहनाने लगे। यह देखकर रनिवासकी स्त्रियाँ नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई अत्यन्त खिन्न होकर रामसे बोलीं—हे वत्स! तुम्हारे पिताने इस मनस्विनी जानकीको वनवासकी आज्ञा नहीं दी है। जब-तक तुम पिताकी-आज्ञासे निर्जन वनमें रहोगे, तब-तक हमें इसीको देखकर अपना जीवन सफल बनाने दो। माताओंकी ये बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सीताको वल्कल वस्त्र पहना दिये। तब सीताको चीर धारण किए देख, महाराज गुरु वशिष्ठजीने सीताको चीर वस्त्र धारण करनेके लिए मनाकर, कैकेयीसे कहा—रे कुलकलङ्किनी! तू धर्ममर्यादाका उलंघन करके पापके पथपर बढ़ती है। रे मूर्ख कैकेयी! राजाको देखकर अब तू सीमाके भीतर नहीं रहना चाहती। अरी! सीता देवी वनमें नहीं जायँगी। और यदि जायेंगी तो हम भी इनके साथ चले जायँगे। अपनी पत्नीके साथ श्रीरामचन्द्रजी जहाँ निवास करेंगे, वहीं अन्तःपुरके रक्षक तथा राज्य और नगरके लोगभी अपनी धन-दौलत और आवश्यक समान लेकर चले जायँगे। भरत और शत्रुघ्न भी वल्कल वस्त्र धारण करके वनमें रहेंगे और वहाँ अपने बड़े भाई रामकी सेवा करेंगे। फिर तू वृक्षोंके साथ अकेली रहकर इस सूनी पृथ्वीका राज्य करना। राम जहाँके राजा न होंगे, वह राज्य राज्य नहीं रह जायगा। यदि भरत राजा दशरथके पुत्र हैं तो पितासे न्यायतः प्राप्त हुए विना वे इस राज्यको कदापि लेना नहीं चाहेंगे तथा तेरे साथ पुत्रवत् व्यवहार करनेके लिए यहाँ बैठे नहीं रहेंगे। तू पृथ्वी छोड़कर आसमानमें उड़ जाय, तो भी अपने पितृवंशके आचार-व्यवहारको जाननेवाले भरत कुलाचारके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेंगे। तूने पुत्रका हित करनेकी इच्छासे वास्तवमें उसका अहित किया है। संसारमें कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है,जो श्रीरामका भक्त न हो। यह देवी सीता तेरी पुत्र-वधू है। इसके शरीरसे वल्कल वस्त्र हटाकर इसे उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण पहननेको दे। तूने अकेले रामके ही वनवासका वर माँगा है। वर माँगते समय सीताकी चर्चा नहीं की थी। इसलिए यह राजकुमारी वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर मुख्य-मुख्य सेवकों तथा सवारियोंकेसाथ वनको जाय और वनमें भी सदा वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर रामचन्द्रके साथ रहे!

अमित प्रभावशाली ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ एवं राजगुरु वशिष्ठजीके इतना कहनेपर भी, सीताने उस चीरको न उतारा। उतारती क्यों, वह तो अपने पतिकी तरह वनमें रहना चाहती थी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

सीताके वल्कल-वस्त्र धारण पर लोगोंकी तथा दशरथजीकी आपत्ति और पिता दशरथसे माता कौसल्याके प्रति सहानुभूतिके वाक्य।

तब इस प्रकार सीताको अवस्थाके समान चीर पहनते देख उपस्थित जन चिल्लाए और राजा दशरथको धिक्कारने लगे। इस महाकोलाहलको सुन महाराज दशरथ दुःखित हुए और अपने जीवनमें उन्होंने जो धर्म और यश कमाया था, उन्होंने त्याग दिया। उन्होंने उसाँसें लेकर कैकेयीसे कहा—हे कैकेयी, कुश चीर धारणकर सीता न जायगी। गुरुजी ठीक कहते हैं। सीता बन जाने योग्य नहीं है। जानकी अपने चीर-वस्त्र उतार डालो। मैंने इसे किसीभी रूपमें वन भेजनेकी प्रतिज्ञा नहीं की है। यह सब प्रकारके रत्नोंको साथ लेकर सुखपूर्वक जा सकती है। मैं जीवित रहने योग्य नहीं हूँ। मैंने तेर वचनोंमें बँधकर एकतो योंही बड़ी क्रूर प्रतिज्ञा करडाली, दूसरे तूने अपनी मूर्खतावश सीताको चीर पहनाना आरंभ कर दिया। जिस प्रकार बाँसका फूल बाँसको सुखा डालता है, उसी प्रकार तेरीकी हुई प्रतिज्ञा मुझको भस्म किये डालती है। पापिनी! तूने रामको वनवास देकर ही पूरा पाप कमा लिया है। फिर न जाने अधिक दुष्ट कर्मोंको करनेसे तेरी क्या गति होगी! जब अभिषेकार्थ रामचन्द्र यहाँ आए थे, तब तूने इनसे यही न कहा था कि, तुम अपना अभिषेक न कराकर और चीरजटा धारणकर वन जाओ। तेरी यह बातें सुन, हमने उसे स्वीकार किया। अब तू उस बातको त्यागकर नरकमें जाना चाहती है। तभी तो तू सीताको मुनियों जैसे चीर पहना वनमें भेजती है। राजा दशरथ शिर नीचा किए, इस प्रकार कह रहे थे, कि, उसी समय वनकी ओर जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—'धर्मात्मन्। मेरी वृद्ध माता कौशल्या बड़ी उदार हैं, ये कभी आपकी निन्दा नहीं करतीं, इनके ऊपर कभी कोई भारी संकट भी नहीं पड़ा है। हे नाथ! मेरे न रहनेसे ये शोक-समुद्रमें डूब

जायँगी। अतः आप सदा इनका सम्मान करते रहें। ये निरन्तर अपनेसे पृथक हुए पुत्रको देखनेके लिए उत्सुक रहेंगी। कहीं ऐसा न हो कि; मेरे वनवासके समय माता क्लेश या शोकसे दुःखी होकर अपने प्राण गवाँ बैठें। हे इन्द्रके समान ऐश्वर्यशाली महाराज ! आप, पुत्रवत्सला मेरी मातापर सर्वदा ध्यान रखिएगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ सर्ग

दशरथ-विलाप,दशरथ आज्ञासे सुमन्त्र का रथलाना, कोठारीका सीताको वस्त्राभूषण देना, कौशल्यादि सासोंका सीताको धर्मोपदेश, सीताका अनुमोदन और रामचन्द्रजीका वन-गमनके लिए माताओंकी आज्ञा लेना

श्रीरामचन्द्रजीके इन वचनोंको सुनकर और उन्हें मुनिवेष धारण किये देख महाराज अपनी रानियों सहित चेतना-रहित हो गये। दुःखसे सन्तप्त, खिन्न-मन महाराज न तो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख सकते थे और न उनकी ओर देखकर उनसे बोल ही सकते। एक मुहूर्त तक अचेत पड़े रहे। जब चैतन्य हुए, तब श्रीरामचन्द्रका स्मरण कर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे। हम मानते हैं कि, हमने निःसन्देह पूर्व जन्ममें बहुत-सी गौओंका उनके बछड़ों से विछोह कराया है, अथवा अनेकों प्राणियोंकी हिंसाकी है, इसीसे आज मेरे ऊपर यह विपत्ति आ पड़ी है। समय पूरा हुए विना किसीके शरीरसे प्राण नहीं निकलते, तभीतो कैकेयीके द्वारा इतना क्लेश पानेपर भी मेरी मृत्यु नहीं होती। हा, अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको महीनवस्त्र त्यागकर तपस्वियों के से वल्कल-वस्त्र धारण किये सामने खड़ा देख रहा हूँ, अकेली कैकेयीकी करतूतसे इतने लोग दुःख पा रहे हैं। हा, स्वार्थ-साधनके लिए इसका यह शोक-प्रयत्न ? ऐसा कहते हुए, नेत्रोंमें आँसू भरे महाराजने एक बार "राम" कहा और इसके आगे कुछ न बोल सके। जब तक मुहूर्त पश्चात् राजाको चेत हुआ तो नेत्रोंमें आँसू भरे हुए उन्होंने सुमन्त्रसे कहा—तुम सवारीके योग्य एक रथ उत्तम घोड़े जोतकर यहाँ ले आओ और रामको उसपर बिठाकर इस नगरसे वाहर पहुँचा दो। अब हम समझे कि गुणी पुरुषोंकी गुणज्ञता का यही फल है कि,ऐसे साधु और वीर पुत्र, पिता-माता द्वारा वनमें निकाले

जाते हैं। महाराजकी आज्ञा पाकर सुमन्त्र शीघ्रही घोड़े जोतकर भलीभाँति सज्जित एक रथ ले आये और कुमारके समक्ष खड़ाकर हाथ जोड़कर उनसे कहा कि; रथ तैयार है। उसी समय महाराजने अपने कोषाध्यक्षको बुलाया और कहा कि उत्तमोत्तम वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण जो चौदह वर्षको जानकीके लिए पर्याप्त हों, शीघ्र जाकर ले आओ। कोषाध्यक्ष कोषागारमें जाकर जिन वस्तुओंको लानेकी महाराजकी आज्ञा थी, सब लाकर सीताजीको दे दिया। सीताजीने उन भूषणों और वस्त्रोंसे अपना शरीर सजाया। जानकीने उस समय वस्त्राभूषण धारणकर उस गृहको वैसेही सुशोभित किया जैसे प्रातः कालीन सूर्यकी उदय कालमें प्रकाशित किरणें आकाशको भूषित करती हैं। तब कौशल्याजीने उत्तम आचरणवाली मैथिलीको हृदयसे लगा उनका मस्तक सूँघा और कहा—पुत्री! जो स्त्रियाँ अपने पतिके द्वारा सम्मानित होनेपर भी संकटमें पड़नेपर उसका अपमान करती हैं, वे संसारमें असतीके नामसे पुकारी जाती हैं। दुष्ट स्त्रियोंका यह सब पाप होता है कि, पहले तो वे पतिके द्वारा यथेष्ठ सुख भोगती हैं, परन्तु जब वह थोड़ी-सी भी विपत्तिमें पड़ता है तो उसपर अनेकों प्रकारके दोषरोपण करने लगती हैं। इसके विपरीत जो सत्य सदाचार; शास्त्रोंकी आज्ञा और कुलोचित धर्ममें स्थित रहती हैं, इन साध्वी स्त्रियोंके लिय एकमात्र पति ही पवित्र एवं श्रेष्ठ देवता है। इसलिए तुम मेरे पुत्र रामका, जिन्हें वनवासकी आज्ञा मिली है, कभी अनादर न करना। वे निर्धन हों या धनी, तुम्हारे लिए देवताके समान हैं। तब सीता सासके धर्म और अर्थयुक्त बचनोंका अभिप्राय समझ, सासके समक्ष जा और हाथ जोड़कर बोलीं—आर्ये! आप मेरे लिए जो कुछ उपदेश दे रहीं हैं, मैं उसका पूर्णरूपसे पालन करूँगी। स्वामीके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये—इस बातको मैं पहले भी सुन चुकी हूँ, इसकी मुझे पूरी जानकारी है। जैसे चन्द्रमासे उसकी प्रभा दूर नहीं होती, उसी प्रकार मैं भी धर्मसे विचलित नहीं हो सकती। पिता भ्राता और पुत्र—ये परिमित सुख प्रदान करते हैं; किन्तु पति अपरिमित सुखका दाता है—उसकी सेवासे इहलोक और परलोक दोनोंमें कल्याण होता है। अतः ऐसी कौन स्त्री होगी, जो आदर न करेगी। मैंने अपने श्रेष्ठ स्त्रियों माता आदिके मुखसे नारीके सामान्य और विशेष धर्मोंका भलीभाँति श्रवण

किया है। पातिव्रत्यका महत्व जानकरभी क्या मैं पतिका अपमान करूँगी? मैं जानती हूँ, स्त्रीका देवता केवल पति ही है। सीताके मनोहर वचन सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाली माता कौशल्या, जो श्रीरामचन्द्रके वन-गमनसे दुःखी हो, आँसू गिरा रही थीं, सहसा प्रसन्न वदन होगईं। तब परम धर्मात्मा राम सब माताओंमें अधिक पूज्य कौशल्याकी परिक्रमाकर हाथजोड़ बोले–'हे अम्ब! तुम दुःखी हो मेरे पिताकी ओर न देखना। बनवासी अवधि तो शीघ्रहीं पूर्ण हो जायगी। ये चौदह वर्ष तुम्हारे ऐसे ही व्यतीत हो जायँगे जैसे सोनेमें एक रात्रि व्यतीत हो जाती है। पिताकी आज्ञा पालनकर सुहृदों सहित तुम मुझे यहाँ आया हुआ देखोगी। अपनी माता कौशल्यासे इस प्रकार कह, श्रीरामचन्द्रने अपनी तीन सौ पचास माताओंसे कुछ कहना चाहा। वे सब मातायें भी कौशल्याकी ही भाँति शोकाकुल होरही थीं। तब उन्होंने हाथ जोड़कर उन सबसे कहा—माताओं! सदा एक साथ रहनेके कारण मैंने जो कुछ कठोर वचन कह दिये हों अथवा अनजानमें भी मुझसे जो अपराध बनगये हों–आज उनके लिये क्षमा करें। मैं आप लोगोंसे विदा लेता हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३६॥

चालीसवाँ सर्ग

श्री रामचन्द्रजीका पिता-मातासे मिलकर वनको प्रस्थान

अब दीन दुःखी श्रीरामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मण सहित हाथ जोड़कर दीन भावसे राजा दशरथके चरणोंका स्पर्श करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर सीता सहित धर्मज्ञ रामने अपनी शोक-विह्वला माता कौशल्याजीको प्रणाम किया। रामके पश्चात् लक्ष्मणने भी पहले कौशल्याको मस्तक झुकाया और फिर अपनी माता सुमित्राके दोनों चरण छुये। उस समय सुमित्राने महाबाहु लक्ष्मणका मस्तक सूँघकर कहा–हे बेटा! तुम अपने सुहृद श्रीरामके परम अनुरागी हो। इसलिए मैं तुम्हें बनवासके लिए बिदा करती हूँ। तुम्हारे बड़े भाई वनको जाते हैं, तुम उनकी सेवामें प्रमाद न करना। वे संकटमें हों अथवा समृद्धिमें, वे ही तुम्हारी परमगति हैं। संसारमें सत्पुरुषोंका यही धर्म है कि, सर्वदा अपने बड़े भाईकी आज्ञाके अधीन रहे। दान देना, यज्ञमें दीक्षा ग्रहण करना और युद्धमें शरीर त्यागना–यही इस

वंशका उचित एवं सनातन आचार है। सुमित्राने लक्ष्मणसे इसप्रकार कहा और उसको वन जानेके लिए तत्पर देख और उन्हें रामका प्रियजान बारम्बार कहने लगीं—हे बेटा! देर मत करो। शीघ्रही रामचन्द्रके साथ वनको जाओ। हे वत्स! तुम रामचन्द्रको अपने पिता राजा दशरथ, जनक-दुलारी सीताको ही माता सुमित्रा और वनको ही अयोध्या समझना। तद-न्तर सुमन्त्र हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रसे उसी प्रकार बोले,जैसे मातलि इन्द्रसे बोलता है। हे महा यशस्वी राजपुत्र! आप इस रथपर बैठे। मैं जहाँ आपकी इच्छा हो, वहीं आपको पहुँचा दूँ। आपको चौदह वर्ष वनमें वास करना है। उसे कैकेयीकी प्रेरणानुसार आजही से उसका आरंभ कीजिये। तब सुन्दरी सीता उत्तम अलङ्कार धारण करके प्रसन्न चित्तसे उस सूर्यके समान देदीप्यमान रथपर जा बैठीं। राजा दशरथने दोनों भाइयोंके लिए बहुत-से अस्त्र-शस्त्र और कवच प्रदान किये। वे सब रथके पृष्ठ भागमें रख दिये गये। फिर तो राम और लक्ष्मण शीघ्रतासे उस स्वर्ण-मण्डित रथपर सवार हो गये। तब तीनोंको रथपर बैठे देख सारथि सुमन्त्रने घोड़ोंको हाँका। जब श्रीरामचन्द्रजी दीर्घकालके लिए उस महावनकी ओर जाने लगे, तो उस समय समस्त पुरवा-सियों, सैनिकों तथा दर्शकरूपमें आये हुये बाहरी लोगोंको भी मूर्छा आ गयी। अयोध्यापुरीके आबाल-वृद्ध सभीलोग अत्यन्त पीड़ित होकर श्रीरामके ही पीछे दौड़े। उनमेंसे कुछ रथके पीछे और अगल बगलमें लटक गये। सभी रामके लिए उत्कंठित थे। सबके मुँह आँसुओंसे भीगे थे। वे सभी उच्चस्वरसे कहने लगे—'सूत! घोड़ोंकी लगाम खींचो। अब हमारे लिए इनका दर्शन दुर्लभ हो जायगा'। इसी समय दयनीय दशाको प्राप्त हुई अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए राजा दशरथ दीन होकर, 'मैं अपने प्यारे पुत्र रामको देखूँगा' ऐसा कहते हुए महलसे बाहर निकल आये। यह देख अचिन्त्य-स्वरूप भगवान् श्रीरामने सुमन्त्रसे कहा—'आप रथको तीव्रतासे चलाइये। एक ओर श्रीरामचन्द्र रथ हाँकनेको कहते थे और दूसरी ओर सारा जनसमु-दाय रोकनेकी प्रेरणा कर रहा था। इसप्रकार दुविधामें पड़कर सारथि दोनोंसे कुछ न कर सका—न तो रथको रोक सका और न उसे तेजही चला सका। श्रीरामचन्द्रजीके प्रस्थान करते समय सारा नगर अत्यन्त पीड़ित हो गया।

ब रोने और आँसू बहाने लगे। तब सभी हाहाकार करते-करते अचेतसे हो
गये। राजा दशरथ समस्त अयोध्यापुरीको रामके लिए समान भावसे व्याकुल
देख अत्यन्त दुःखके कारण जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े।
राजाको पृथ्वीपर गिरे देख लोगोंने बड़ा विलाप किया। बड़ा हाहाकार मचा।
कोई राम और कोई राममाताका नाम ले रोते थे। रामने भी अयोध्याकी
ओर दृष्टि करके देखा कि लोग बड़े जोरसे रोते गिरते-पड़ते मातापिता चले
आ रहे हैं। इस दुःखको वे सह न सके। किन्तु धर्म-फाँसमें बँधे होनेके
कारण फिर दृष्टि फेर ली और सुमन्त्रसे रथको शीघ्रतासे बढ़ाने के लिए
कहा। राम किसी प्रकार मातापिताका दुःख वैसेही न सह सके, जैसे मतवाला
हाथी अंकुशको नहीं सह सकता। कौशल्या रामको देखने के लिए ऐसी
दौड़ीं जैसे संध्या समय चरकर आई हुई गौ रम्भाती हुई छोटे बच्चेके लिए
दौड़ती है। हा राम! हा सीता लक्ष्मण! कहती हुई वह उनकी ओर दौड़ीं।
श्रीराम वार-वार अपनी माताको देखते जाते थे। वे तीनों व्यक्तियोंके लिए
रुदन करती गिरती-पड़ती चली आती थीं। महाराज दशरथ सुमन्त्रसे रथ
खड़ा करनेको और राम रथ हाँकनेको कहते थे। इससे सुमन्त्रको कुछ भी
करते नहीं वनता था। तब रामने कहा, यदि राजा तुमसे कड़ककर पूछें, तो
कहना कि रथके चलनेके शब्दसे आपका कहना नहीं सुना। यह इसलिए कहते
हैं कि, दुःखको वहुत काल रखना पापका मूल होता है। रामके ऐसे वचन
सुन, सुमन्त्रने घोड़ोंको अति शीघ्रतासे हाँका। अब अन्य लोगोंने राजाके
पास पहुँचकर उन्हें फेर लिया और कहा कि, यदि रामको लौटानेकी इच्छा हो
तो दूर न जाइये। वह सुनकर खिन्नवदन हुए सर्वगुण सम्पन्न राजा दशरथ
भार्याओं सहित पुत्रोंकी ओर देखने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ सर्ग

राम वन––गमनके समय अयोध्याकी विकलता

नरश्रेष्ठ रामके महलसे बाहर होते ही अन्तःपुरमें महान कोलाहल
हुआ। लोग कहने लगे जो राम हम अनाथजनोंके नाथ और सबके शरण
थे वे कहाँ जाते हैं? जो राम दुर्वचन कहनेपर क्रोध नहीं करते, न क्रोधोत्पा-

दक शब्द ही कहते, सुख-दुःखमें समान रहते हैं, वे कहाँ जाते हैं ? जो मह
त्माराम अपनी माता कौशल्याके समान हम लोगोंको भी समझते थे, वे रा
अब कहाँ जाते हैं ? कैकेयीके कहनेसे रामको वनवास दिया। राम सब संसार
रक्षा करनेवाले थे, अब कहाँ जाते हैं? बड़े आश्चर्यकी बात है, जो सर्वस्वाम
परम धार्मिक, सत्यप्रतिज्ञ; राम जैसे पुत्रको राजा वनवास देते हैं। राजा
सब रानियाँ बिना बछड़ेकी गायके समान यह कहती हुई बड़े वेगसे रो
लगीं। महलकी स्त्रियोंका ऐसा दुःखित शब्द सुन पुत्र-शोकसे सन्तापित रा
बड़ेही दुःखित हुये। रामके जानेके समय अग्नि आहुतिको ग्रहण नहीं करत
थी। बादलके कारण सूर्य मानों अस्त होगए थे। हाथियोंने ग्रास खाना छो
दिया। गायोंने बच्चोंको दूध पिलाना छोड़ दिया। त्रिशंकु, मङ्गल, बुध
बृहस्पति और शनैश्चरादि क्रूर पापग्रह राशिको बक्रीहो चन्द्रमाके निकट आ
थरथर काँपने लगे। नक्षत्रोंकी दीप्ति जाती रही। सब ग्रहोंका तेज जात
रहा। विशाखादि नक्षत्रभी निस्तेज होगये। प्रलयकालके समान प्रचंड पव
चलने लगी, समुद्रमें भी तरंगें उठने लगीं, अयोध्यापुरी थरथर काँपने लगी
सब दिशाओंमें अँधियारी छा गई। ग्रह और नक्षत्र किसीका प्रका
आकाशमें न रहा। अकस्मात् सब अयोध्यावासियोंका चित्त उदासीन होगया
आहार व विहारादि करनेको किसीका मन नहीं चलता था। सब अयोध्यावा
शोकसे सन्तप्त हो उर्ध्व श्वाँस ले राजा दशरथके ऊपर क्रोध करने लगे
राजमार्गमें चलनेवाले सब मनुष्योंके नेत्रोंमें आँसू बह रहे थे। कोई हँ
नहीं था। सभी शोकमग्न दीखते थे। त्रिविध वायु नहीं बहता था। चन्द्र
का दर्शनभी अच्छा नहीं लगता था और सूर्यका प्रकाश मन्द पड़ गया थ
इस प्रकार समस्त संसार महाशोकग्रस्त होगया था। मातापिता संतानक
भर्त्ता स्त्रीको, भाई भाईको त्यागकर रामका चिन्तन करते थे। रामके सु
चेतनाशून्य होगये। दुःखके कारण किसीको नींद न आती थी। जैसा इन्
रहित पर्वतों सहित पृथ्वी कापने लगती हैं, उसी प्रकार राम-रहित अयो
वासी वीर, हाथी, अश्वों सहित भय तथा शोकसे दीप्त होकर आर्त
करने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्विविय अयोध्याकाण्डका इकतालिसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ सर्ग

राम वियोगसे दशरथका शोक

रामके रथकी उड़ती हुई धूलि जब-तक देख पड़ी तब-तक दशरथ एकटक खड़े अपने पुत्रको देखते रहे और तब-तक मानों उनका शरीर पृथ्वीपर बढ़ता रहा। जब उनके रथकी धूलिभी न देख पड़ी, तब राजा पीड़ित और दुःखी हो गिर पड़े। राजाका दाहिना हाथ कौशिल्या-तथा बायाँ कैकेयीने पकड़कर उठाया। तब कैकेयीको अपना हाथ पकड़े देखतेही नम्र, विनय और नितियुक्त राजा बोले ! हे पापिनी कैकेयी ! तेरे विचार पाप-पूर्ण हैं, तू मेरे अङ्गोंमें हाथ न लगा। मैं तुम्हें देखना नहीं चाहता। तू न तो मेरी स्त्री है और न संगिनी ही। तूने धनमें आसक्त होकर धर्मको त्यागा है। अतएव मैं तेरा परित्याग करता हूँ। तेरा पुत्र भरत भी यदि इस विघ्न बाधासे रहित राज्यको पाकर प्रसन्न हो तो वह मेरे लिए श्राद्धमें जो कुछ पिण्ड या जल आदि दान करे, वह मुझे न प्राप्त हो। तू अपनी कामना सफल कर और विधवा होकर राज्य भोग। मैं नरश्रेष्ठ रामके बिना जीवित नहीं रह सकता। इस प्रकार विलाप करते हुए राजा दशरथ मनुष्योंकी भारी भीड़से फिरकर महलकी ओर चले। उन्होंने देखा—नगरके प्रत्येक घरका बाहरी चबूतरा और भीतरी भागभी सूना हो रहा है। (क्योंकि उन घरोंके सबलोग रामके पीछे चले जाते थे। बाजार, हाट, बन्द हैं, जो लोग नगरमें हैं, वे भी अत्यन्त क्लान्त, दुर्बल और दुःखी हैं। बड़ी-बड़ी सड़कों पर भी लोग आते-जाते दिखाई नहीं देते हैं। नगरकी यह अवस्था देखकर रामके लिए ही चिन्ता और विलाप करते हुए महाराजने महलमें प्रवेश किया। उस समय उनका गला भर आया। उन्होंने द्वारपालोंसे कहा—'मुझे राम-माता कौश-ल्याके महलमें पहुँचा दो। मेरे शोक-सन्तप्त हृदयको और कहीं शान्ति नहीं मिल सकती।' उनसे ऐसा कहने पर द्वारपालोंन बड़ी विनयके साथ उन्हें रानी कौशल्याके महलमें पहुँचाया और पलँगपर सुला दिया। दोनों पुत्र और पुत्र-बधू सीतासे रहित वह भवन राजाको चन्द्रहीन आकाशकी तरह श्रीहीन दिखाई देने लगा। वह रात उन्हें कालरात्रिके समान जान पड़ती थी। जब आधी रात्रि व्यतीत हुई तो राजा कौशल्यासे बोले—हे प्रिये !

मैं तुमको देख नहीं पाता हूँ। इससे तुम मुझे हाथसे स्पर्श करो! मेरी दृष्टि रामके पीछे चली गई है। तब रामका ही चिंतन करके, दीर्घ निःश्वास करने वाले दशरथको शैयापर पड़े देख कौशल्या उनके पास आकर बैठी और पहले सेभी अधिक दुःखिनी होकर विलाप करने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

तेंतालीसवाँ सर्ग

राम-वियोगिनी कौशल्याका शोक।

जब शैय्यापर बैठे राजाको पुत्र-शोकसे व्याकुल देखा, तो शोक विह्वला कौशल्या बोलीं—हे राजन्! कुटिलचरित्रा कैकेयी सर्पिणीके समान विष उगलकर स्वतंत्रतापूर्वक अब इधर-उधर विचरण करेगी। रामको निकलवाकर सफल-मनोरथ हो, अब मुझको भी अधिक दुःख दिलावेगी। आप मेरे पुत्रको गृहमें ही रहने देते। चाहे यहाँ भिक्षावृत्तिसे अथवा दास-भावको प्राप्त रह कुछ काम करते। यथेष्ट स्थानसे रामको कैकेयीने ऐसा गिरा दिया जैसे अग्निहोत्री लोग जलकर पात्रमें लगी खीरको राक्षसोंका भाग जानकर निकाल देते हैं। अब तो हाथमें धनुष बाण धारण किए सीता लक्ष्मण सहित राम अजगरकी भाँति वनमें प्रवेश करते होंगे। हा! कैकेयीकी सलाहसे आपने मेरे ऐसे पुत्रोंको, जिन्होंने कभी वनका दुःख न देखा था, वनवास दिया। अब उन बेचारोंकी बनवासके कष्ट भोगनेके सिवा और क्या अवस्था होगी? क्या अब फिर मेरे शोकको नष्ट करनेवाली वह शुभ घड़ी आयेगी, जब मैं सीता और लक्ष्मणके साथ वनसे लौटे हुए रामको देखूँगी? नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मणको पुनः बनसे आये देखकर यह अयोध्यापुरी पूर्णिमाके उमड़ते हुए समुद्रकी भाँति कब हर्षोल्लाससे पूर्ण होगी? सीताको रथपर आगे बैठाए राम कब अयोध्यामें प्रवेश करेंगे? कब अयोध्यामें प्रवेश करते मेरे पुत्रोंके ऊपर सहस्रों प्राणी अक्षतादि अपने महलोंपरसे छोड़ेंगे? शुभ कुण्डल धारण किए, आयुधोंको ऊपर उठाए राम अयोध्यामें कब प्रवेश करेंगे? ब्राह्मणादिकोंकी कन्यायें हर्षित हो फल दे-दे कब अयोध्यामें प्रवेश किए दोनों वीरोंकी प्रदक्षिणा करेंगी? कब राम बालकके समान मेरी बुद्धिको दुलरानेके लिए प्रेरित करेंगे? हे वीर! निश्चयही मैंने पूर्वजन्ममें बछड़ों

पीते समय गौओंके थन काट डाले थे, इसी हेतु पुत्र-वत्सला गायके समान मुझको कैकेयीने बछड़ेसे हीन कर दिया। अब मैं सर्वगुण-युक्त, सकल शास्त्र-वित् एक पुत्र राम विना नहीं जी सकती। परम पुत्र राम लक्ष्मणको देखे विना मुझे जीनेकी कुछभी सामर्थ्य नहीं है। ग्रीष्म ऋतुमें प्रचंड सूर्यके समान, यह पुत्र-शोक-जनित, महासर्पसे भी तीक्ष्ण अग्नि मुझे जला रहा है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का तैतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ सर्ग

सुमित्रा द्वारा कौशल्या-प्रबोधन।

कौशल्याको इसप्रकार विलाप करते देख धर्ममें अति दृढ़ सुमित्रा बोलीं—कौशल्या! तुम्हारे पुत्र राममें सब सद्गुण हैं, क्योंकि वे पुरुषोत्तम हैं। उनके लिए विलाप करने और दीनतासे रोनेका क्या प्रयोजन हैं? तुम्हारे पुत्र राज्य छोड़ जो वनमें गए हैं सो केवल अपने पिताके वचन मानकर उन्हें सत्यवादी करनेको गए हैं। पिताकी आज्ञा मानना उत्तम पुत्रोंका धर्म है। रामने वही किया है। राम धर्ममें स्थित हैं। उनके लिए शोक करना उचित नहीं। लक्ष्मण भी उत्तम वृत्तिमें स्थित और दयालु हैं और इसीमें उनका लाभ भी है। वैदेहीभी रामकी सेवाके आगे वनमें दुःखोंको कुछ नहीं समझती। राम अपनी यह कीर्ति-पताका त्रैलोक्यमें घुमा रहे हैं। उस धार्मिक और सत्यव्रतीने क्या नहीं पाया है? रामके शौच, उत्तम माहात्म्य और सर्व श्रेष्ठ गुणोंको देखकर सूर्यकी किरणें उन्हें सन्तापित न करेंगी। उन्हें देखतेही, वायु वनोंसे निकल अपने शीतल, मंद, सुगन्ध त्रिविध उपचारोंसे, उष्णादि सहित सब कालोंमें रामका कल्याणदाता सेवक होगा। जब रात्रिमें राम सोने लगेंगे तो चन्द्रमा अपनी किरणोंसे उन्हें आनन्द देगा। श्रीरामचन्द्रजी महान तेजस्वी हैं। उन्होंने युद्धमें तिमिध्वजके पुत्र दानवराज सुबाहुका वध किया था। यह देखकर उस समय ब्रह्माजीने उन्हे अनेकों दिव्य अस्त्र दिये थे। नरश्रेष्ठ राम बड़ेही शूरवीर हैं। वे अपने बाहुबलके भरोसेही वनमें भी महलके की भाँति निर्भय होकर रहेंगे। हे देवि! राम सूर्यके भी सूर्य और अग्निके भी अग्नि हैं। वे प्रभुके प्रभु, लक्ष्मीकी लक्ष्मी, कीर्तिकी कीर्ति, क्षमाकी क्षमा और देवताओंके भी देवता हैं। रामही सम्पूर्ण भूतोंको सत्ता प्रदान करनेवाले

परमेश्वर हैं। वे वनमें रहें या नगरमें, उनका क्या अमङ्गल हो सकता है? किसीसे भी परास्त न होनेवाले वल्कल वस्त्रधारी वीरवर रामके पीछे सीताके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी गई हुई हैं; अतः उन्हें कौनसी वस्तु दुर्लभ हो सकती हैं? जिनके आगे धनुष, बाण और तलवार धारण किये और धनुर्धरोंमें श्रे लक्ष्मण जा रहें हैं, उनको किस बातकी कमी हो सकती है? बनवासकी अवधि समाप्त होनेपर राम यहाँ फिर आयेंगे और तुम उन्हें देखोगी—यह बात मैं तुमसे सत्य-सत्य कहती हूँ; इसलिए तुम शोक और मोह छोड़ दो। रामका अमङ्गल होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। तुम शीघ्रही सीता और लक्ष्मणके साथ लौटे हुए अपने पुत्रको देखोगी। देवि! तुम्हें तो इन सबको धैर्य बँधाना चाहिए। फिर स्वयंही इससमय अपने हृदयको इतना व्याकुल क्यों कर रहीहो! तुम रामचन्द्र जैसे पुत्रकी माता हो, तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। रामसे बढ़ कर सन्मार्गमें स्थित रहनेवाला मनुष्य संसारमें दूसरा कोई नहीं है। तुम शीघ्रही रामको प्रणाम करते हुए देख आनन्दाश्रु छोड़ोगी। तुम्हा पुत्र शीघ्रही अयोध्यामें आ अपने कोमल व मोटे हाथोंसे तुम्हारे चर चापेंगे। तुम उन्हें प्रणामकर सब सुहृदोंके संग बैठे हुए पुत्रके ऊपर आनन्द आँसू बहाओगी। इसप्रकार संवाद-कुशल, निर्दोष और मनोहर राजपत्नी सुमित्रा विविध रीतिसे राम-माता कौशल्याको आश्वासन दे स्तब्ध हो गईं रानी सुमित्राका संभाषण सुनकर शरद ऋतुके मेघके समान राजपत्नी कौश ल्याका शोक नष्ट हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

(पुरवासी ब्राह्मणोंका बनके मार्गमें रामसे लौटनेकी प्रार्थना करना)

महात्मा रामके पीछे-पीछे सब अयोध्यावासी भी बनको चल दिये। व कठिनतासे सुहृदोंका धर्म मान दशरथजी तो लौट भी आए, पर अयोध्या वासी न लौटे। क्योंकि अयोध्यावासियोंको सर्वगुणसम्पन्न होनेके का राम पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान प्रिय थे। यद्यपि प्रजाने रामको लौट आ के लिए बड़ी प्रार्थनाकी, पर राम पिताको सत्य-प्रतिज्ञ करनेके लिए बन चले गये। चलते समय पुत्रकी भाँति सब प्रजाओंको प्रिय दृष्टिसे देख उ

ने सस्नेह कहा—हे अयोध्यावासियों ! जैसी प्रीति और जैसा मान मेरा करते हैं, वैसेही मेरे प्रियके लिए भरतमें करना । कल्याणात्मा कैकेयीके आनन्द-दायक भरत भी तुम लोगोंका हित और प्रिय करेंगे । यद्यपि वे बालक हैं, पर ज्ञानमें बड़े वृद्ध हैं । पराक्रमोचित गुणोंसे युक्त होनेपर भी उनका हृदय कोमल है । वे तुम लोगोंका पालन बहुत अच्छी रीतिसे करेंगे । भरतमें राजाओंके सब गुण विद्यमान हैं । मैंने भी उत्तमोत्तम गुण उनको सिखाए हैं । इससे तुम लोगोंको चाहिए कि, उनकी आज्ञाका यथावत पालन करो । मेरा प्रिय करनेके लिए वह कार्य करना जिससे मेरे पीछे पिताजीको कोई कष्ट न होने पाये । राम जैसे-जैसे धर्मकी बातें सिखलाते जाते थे, वैसे-वैसे लोग उन्हींको अपना राजा होनेकी आकांक्षा करते थे । इसप्रकार लक्ष्मण सहित रामने अपने गुणोंसे पुरवासियोंके मनको बाँधकर ऐसा खींचा कि सबके सब रोने लगे । उनमें बहुतसे ब्राह्मण थे, जो ज्ञान, अवस्था और तपोबल—तीनों ही दृष्टियोंसे वृद्ध थे । वृद्धावस्थाके कारण कितनोंके ही सिर काँप रहे थे । वे दूरसे ही बोले—'अरे ओ तीव्रगामी घोड़ों ! तुम जातिसे ही तुरङ्गम (शीघ्रगामी) हो ! यद्यपि कान सभी प्राणियोंके होते हैं तथापि तुम्हारे कान विशेषतः बड़े हैं; तुम हमारी याचना सुनकर लौट पड़ो । तुम्हारे स्वामी राम विशुद्धात्मा वीर और उत्तम व्रतका दृढ़तासे पालन करनेवाले हैं; अतः इनकी सवारीमें रहना यद्यपि तुम्हारा कर्त्तव्य है, तो भी इन्हें नगरसे वनमें नहीं ले जाना चाहिये, वृद्ध ब्राह्मणोंको इसप्रकार आर्त्त भावसे प्रलाप करते देख श्रीरामचन्द्रजी सहसा रथसे नीचे उतर पड़े और लक्ष्मण तथा सीता सहित धीरे-धीरे पैदल ही वनकी ओर चलने लगे । भगवान् श्रीरामके चरित्रमें वात्सल्य गुणकी प्रधानता थी । उनकी दृष्टिमें दया भरी हुई थी । इसलिए वे उन पैदल चलनेवाले ब्राह्मणोंको पीछे छोड़कर रथके द्वारा आगे न जा सके । परन्तु उन्हें अब भी वनकी ओर ही जाते देख, ब्राह्मण मन ही मन घबरा उठे और अत्यन्त सन्तप्त होकर बोले—वत्स ! तुम ब्राह्मण जातिके हितैषी हो, इसीसे यह सारा ब्राह्मण समाज तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा है । इन ब्राह्मणों-के कन्धोंपर चढ़कर अग्निदेवभी तुम्हारा अनुसरण कर रहे हैं । हमारी जो बुद्धि सर्वज्ञ वेद-मन्त्रोंके पीछे चलती थी—इन्हींके चिन्तनमें लगी रहती थी,

वही तुम्हारे लिए वनवासका निश्चय करचुकी है। वेद जो हमारे परमध हैं, हमारे हृदयोंमें स्थित हैं। हमारी स्त्रियाँ अपने चरित्रबलसे सुरक्षित होक घरोंमें ही रहेंगी। अब हमें अपने कर्तव्यके विषयमें पुनः कुछ निश्चय नह करना है। हमने तुम्हारे साथ जानेका विचार स्थिर करलिया है। तो भी ह इतना अवश्य करना है कि, जब तुम्हीं धर्मकी ओरसे निरपेक्ष हो जाओ तो दूसरे किसकी धर्म मार्गपर स्थिति रह सकेगी? यहाँ आये हुए ब्राह्मणों बहुतसे ऐसे हैं, जिन्होंने यज्ञ आरंभ कर दिया है। अब इनके यज्ञोंकी समा तुम्हारे लौटनेपर ही निर्भर है। संसारके स्थावर और जंगम सभी प्रा तुम्हारे प्रति भक्ति रखते हैं। वे सब तुमसे लौट चलनेकी प्रार्थनाकर रहे है इन भक्तोंपर तुम अपना स्नेह दिखाओ। ये वृक्ष अपनी जड़ोंके कारण ग हीन हैं, इसीसे तुम्हारे पीछे नहीं चल सकते। परन्तु वायुके वेगसे जो इन सनसनाहट पैदा होती है उससे मानो ये तुम्हें पुकार रहे हैं। पक्षी भी स प्रकारकी चेष्टा छोड़ चुके हैं, वे चारा चुगनेके लिए भी कहीं नहीं जाते। रीतिसे ब्राह्मणवर्ग विलाप करते हुए चले आते थे कि तमसा नदी देख प मानो रामको आगे जानेसे रोकती है। तब सुमन्त्रने श्रांत घोड़ोंको र अलग किया और उनको पानी पिलाकर और धोकर उन्हें घास खिलाय

इति श्रीमद्वाल्मीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ सर्ग

(श्रीरामका पुरवासियोंको तमसाके तटपर सोते छोड़कर जाना)

तमसाके रमणीक तटपर पहुँचकर श्रीरामचन्द्र, सीता व लक्ष्मण देखकर बोले—लक्ष्मण! आज यह वनवासकी पहली रात्रि है। आज ह चौदह वर्ष धर्मतः वनमें रहना होगा, इससे अब घरके सुखोंकी उत्कंठा करना। पशु, पक्षी अपने-अपने स्थानोंको जा रहे हैं, इससे वन ऐसा श जान पड़ता है, मानों रोया चाहता है। इस समय मुझे पिता और यशस्वि माताके लिए बड़ा शोक हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि, वे बिस्तरपर रहनेके कारण अन्धे हो जायँ। किन्तु भरत बड़े धर्मात्मा हैं। मुझे विश है कि वे धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके अनुकूल वचनोंसे पिताजीको मेरी माताको सान्त्वना देंगे। भरतके कोमल स्वभावका बारम्बार स्मरण क

मुझे पिता-माताके लिए अधिक चिन्ता नहीं होती। नरश्रेष्ठ! तुमने मेरे साथ आकर बड़ाही महत्वपूर्ण कार्य किया है; क्योंकि तुम न आते तो, मुझे विदेहकुमारी सीताकी रक्षाके लिये कोई सहायक ढूँढ़ना पड़ता। लक्ष्मण! यद्यपि यहाँ नाना प्रकारके जंगली फल-मूल मिल सकते हैं, तथापि आजकी रात मैं केवल जल पीकर ही बिताऊँगा; यही मुझे अच्छा जान पड़ता है। लक्ष्मणसे ऐसा कहकर वे सुमन्त्रसे बोले कि, हे सुमन्त्र! आज सावधान हो अच्छी तरह घोड़ोंकी सेवा करना। यह सुन सुमन्त्रने सूर्यास्तके समय घोड़ोंको लाकर बाँध दिया और उनके आगे बहुत-सा चारा डालकर वे श्रीरामके पास आ गये। फिर कल्याणमयी संध्योपासनासे निवृत्त हो रात्रि होती देखकर लक्ष्मण सहित सुमन्त्रने श्रीरामचन्द्रजीके सोने योग्य स्थान और आसन बनाया। तमसा-तटपर पत्रादिकी शय्याको देख लक्ष्मण व जानकी सहित रामचन्द्र बैठे। जब दिन भरकी थकानसे राम व जानकी सो गये, तब लक्ष्मण सुमन्त्रसे रामके विविध भाँतिके गुण कहने लगे। लक्ष्मण और सुमन्त्र दोनोंके जगते-जगते और रामके गुण कहते ही कहते, प्रातःकाल हो गया। गौवोंके वृन्दके समीप तमसा-तटसे कुछ ही दूरपर राम उस रात्रिमें सोये। रामने शयनसे उठकर देखा तो सब अयोध्यावासी सो रहे हैं। तब यह देखकर वह लक्ष्मणसे बोले—हे लक्ष्मण! इन अयोध्यावासियोंको देखो जो मुझमें चित्त लगाए अपने गृह, पुत्रादिकोंकी कांक्षा नहीं रखते और श्रमित हुए अभीतक वृक्षके नीचे सोते ही हैं। ये पुरवासी मेरे लौटानेके लिए यत्न कर रहे हैं, विना लौटाये प्राण त्याग देंगे। इससे जब-तक ये सोते हैं, तब तक हम सब रथपर चढ़कर चल दें। राजकुमारोंको चाहिए कि, अपने सुखके लिए प्रजाको दुःख न दें। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपने दुःखसे अयोध्यावासियोंको दुःखित न करूँ। लक्ष्मण बोले—हे धर्ममूर्ति! यह बात मुझे भी अच्छी लगती है। आप बहुत शीघ्र रथपर बैठिए। यह सुन रामने सुमन्त्रको रथ तैयार करनेकी आज्ञा दी और कहा कि, मैं इसी समय वनको चलूँगा। सुमन्त्रने शीघ्र ही रथमें घोड़ोको जोत, हाथ जोड़ रामसे कहा कि, हे राम! रथ तैयार है। लक्ष्मण जानकी सहित शीघ्र सवार होइये। यह सुन सामग्री सहित राम रथपर चढ़े और अति वेगवती भयंकर भँवरवाली

तमसा नदीको उतर गये। कुछ दूर चलकर कराटकादि रहित सुन्दर मा मिल गया। तब पुरवासियोंके मोहनार्थ रामने सुमन्त्रसे कहा कि, रथ उत्त की ओर हाँको और एक मुहूर्त्त तक उस ओर लेजाकर फिर लौट आ जिसप्रकार पुरवासी मुझे न जान सकें, वह करो। यह सुन सुमन्त्रने वैसा किया और रथ पुनः लौटाकर रामके समीप स्थापितकर दिया। तब रा सीता लक्ष्मण सहित उसपर सवार हुए और सुमन्त्रने रथको वनकी ओ हाँका। तब दशरथ-पुत्र रामचन्द्रजी जो स्वयं ही महारथ थे, उस रथपर च कर वनको चले गये और यात्राके लिए उत्तर दिशामें शुभ शकुन होने कारण उसका फल प्राप्त हो, इस कारण पहले रथको उत्तरकी ओर मु घुमाकर खड़ा किया। फिर उसपर चढ़ दक्षिण दिशाकी ओर मुँह फेर वनमें चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

(पुरवासियोंका निराश होकर लौटना)

प्रातः प्रजागण रामको न देख अति व्याकुल हो शोकाश्रु गिराने त इधर-उधर देखने लगे। परन्तु किसी ओर रथकी लीक न देख बड़े दुःखित हुये। सबके मुख विषादसे उदास होगये। वे अतिदीन हो क वचन बोलने लगे—"इस निद्राको धिक्कार है जिसके कारण हमलोग चेत होगए और जिससे अब हम श्रीरामको नहीं देखते हैं। राम भी अ भक्त हमलोगोंको छोड़कर कैसे चले गये। क्या उन्हें ऐसा करना उ था? जो राम आजतक अपने औरसपुत्रके समान हमलोगोंका पा करते थे, वे हमें यहाँ छोड़ वनको कैसे चले गये? हम या तो इसी स्थान मर जायँगे, या महापथ नाम स्थानपर गल जायँगे। राम बिना हमारे ज से क्या? अथवा यह जो बहुत-सा सूखा काष्ठ यहाँ है, इसकी चिता जल मरेंगे। हमसब अयोध्यामें जा यह कैसे कहेंगे कि, निन्दारहित वादी रामको वनमें भेज आये।" जब रामके बिना अयोध्यावासी हमलोगों देखेंगे तो आबालवृद्ध सब दुःखी हो जायँगे। हमलोग रामके साथ यहाँ आए, पर अब उनके बिना पुरीको कैसे जायँगे? इसप्रकार भुजा उठा

कर नानाप्रकारके वचन कहते और रोदन करते थे, जैसे बिना बछड़ेकी गायें। जिस मार्गसे रथ गया था, उसके पीछे कुछ दूर गए, पर आगे रथका भी मार्ग न देख अति व्याकुल हुये। फिर उसी मार्गसे लौटकर कहने लगे हि "हा हमसब बड़े हतभाग्य हैं।" रामके मिलनेकी आशा न रही, तो जिस मार्गसे आए थे, उसीसे चल शोकाकुल मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्याको लौट आये। यहाँ पुरीको अत्यन्त ही व्याकुल देख और भी शोकित हो रुदन करने लगे। अब तो रामके बिना यह नगरी ऐसी ही शोभित नहीं होती जैसे गरुड़से हरे हुए सर्पके बिना कुण्ड शोभा नहीं पाता। जैसे बिना चन्द्रमाका आकाश और जल बिना समुद्र अच्छा नहीं लगता, वैसे ही निरानन्द नगरीको देख सब मनुष्य विकल हो गये, हर्षके अभावमें बड़े दुःखी हुए। वे लोग बड़ी कठिनाईसे अपने बड़े-बड़े मूल्यवान् घरोंमें प्रवेश करते समय यह भी न जान सके कि, यह घर, अपना है या पराया। वे विक्षिप्तोंकी भाँति वहाँके लोगोंको देखने पर भी पहचान न सके कि उनके ही हैं या औरों के।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

(रामके न लौटनेपर अयोध्यावासियोंकी स्त्रियोंका विलाप)

जब इसप्रकार अयोध्यावासी रामको विदाकर लौटे तो वे बड़े ही उदासीन, महादुःखी, मरणकी इच्छा लिए, शोक पीड़ित हो गए--मानों उनके प्राण निकलना चाहते थे। वे अपने घरोंमें आ, अपनी-अपनी स्त्री पुत्रादिकोंसे मिलकर रुदन करने लगे। न तो कोई हर्षित होता और न बनिएलोग दुकानें खोलते। सारा बाजार शोभाहीन हो गया। गृहस्थोंके घरोंमें भोजन भी नहीं बनाया गया! अयोध्यावासी खोई वस्तु तथा बहुत धन पाकर भी हर्षित नहीं होते थे और पहले बार पुत्रका जन्म होने पर भी स्त्री को हर्ष नहीं होता था। गृहमें आए हुए भर्त्ताओंका आदर स्त्रियाँ नहीं करती थीं, वरन् कडुवे वचनोंसे उन्हें पीड़ित करती थीं। सब पुरवासी कहते कि—"जब हमलोग रामहीको नहीं देखते, तो गृह, स्त्री, पुत्र, धन, सुखादि से क्या प्रयोजन? संसारमें एक लक्ष्मण ही सत्पुरुष हैं जो जानकी सहित

वन जाते हुए रामकी सेवा करनेके लिए वनमें गए हैं। उन नदियों, कमलों से शोभायमान बावलियों तथा सरोवरोंने अवश्य बड़ा पुण्य पाया है, जिनके पवित्र जलमें स्नान करके श्रीरामचन्द्रजी आगे बढ़ेंगे। दशरथनन्दन श्रीराम शूरवीर हैं। वे जहाँ रहेंगे वहाँ कोई भय नहीं रह सकता और न किसीके द्वारा पराभव ही हो सकता है। अतः जबतक वे हमलोगोंसे बहुत दूर निकल नहीं जाते, हमें उनके पास पहुँचकर पीछे लग जाना चाहिये। उनके जैसे महात्माके चरणोंकी छायामें रहनेमें ही सुख है। वे ही हमारे स्वामी, गति और परम आश्रय हैं। हम सीताकी सेवा करेंगे और तुम सब श्रीरामचन्द्रजीको शुश्रूषामें लगे रहना। यदि इस राज्यपर कैकेयीका अधिकार हुआ तो यह अनाथ-सा हो जायगा। इसमें धर्मकी मार्यादा न रहने पायेगी। ऐसे राज्यमें तो हमें जीवित रहनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। फिर पुत्र और धनसे प्रयोजन ही क्या है? हम अपने पुत्रोंकी शपथ खाकर कहती हैं—जबतक कैकेयी जीवित रहेगी, तबतक हम जीतेजी कभी उसके राज्यमें न रहेंगी। जिस कैकेयीने रामहीको वनको निकाल दिया, तो हम अधर्मिणी कैकेयी को पाकर कौन सुख भोगेगा? इस कैकेयीहीके कारण, यह राज्य बिना स्वामीका होकर कुछ दिनमें नष्ट हो जायगा। रामको न लौटा सुनकर राजा मृतक हो जायँगे और उनके मरनेपर राज्यका लोप हो जायगा। अब क्षीणायुष्य हमसबको या तो विष पीना चाहिए या रामके पीछे-पीछे जाना चाहिए। राजाने लक्ष्मण जानकी सहित रामको नाहक वनको निकालकर हमलोगोंको भरतको सौंपा जैसे कोई कसाईको गाय सौंप दे। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख, शत्रुहन्ता, कमलनयन, लक्ष्मणके ज्येष्ठ भाई, मधुर मूर्ति, सत्यवादी, महाबली, सबके प्रियदर्शन, पुरुसिंह, महारथ राम अब वनमें विचरेंगे। इसप्रकार अपने-अपने गृहमें अयोध्यावासियोंकी-स्त्रियाँ विलाप करती हुई उच्चस्वरसे रोने लगीं। इतनेमें रात्रि हो गई। उदासीके कारण न तो कहीं अग्नि जलाई गई, न दीपादि और न कहीं कथा-वार्ता ही होती थी। बनियों की दुकानोंपर कहीं मनुष्यका शब्द नहीं होता। सबका हर्ष जाता रहा। अयोध्या तारा-रहित आकाशवत् दिखाई पड़ती थी। पुरवासिनी स्त्रियाँ भी रामके लिए आतुर होकर रो रही थीं। वे उन्हें अपने पुत्रोंसे भी बढ़कर

प्रिय थे। संक्षेपतः यह कि, अयोध्यानगरीमें गायन, उत्सव, नृत्य तथा वाद्य सभीका अत्यन्त अभाव हो गया। प्रसन्नता लुप्त हो गई। इसप्रकारअयोध्या नगरी जनशून्य महासागरके समान सूनी हो गई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ सर्ग

वनकी ओर बढ़ते हुए रामका गोमती पार करना तथा ग्रामवासियों द्वारा दशरथ कैकेयीको कोसना।

उधर राम उस शेष रात्रिमें राजाज्ञाका स्मरण करते हुए दूर निकल गये। जाते-जाते रात्रि व्यतीत हो गई। रामने सन्ध्योपासन किया। फिर अनेक देशोंसे होता हुआ रथ आगे-आगे चला। मार्गमें नानाप्रकारके ग्राम, पुष्पित वन देखते हुए द्रुतगामी रथपर चढ़े राम चले जाते थे। कहीं-कहीं ग्राम-निवासी कहते थे कि, कामी राजा दशरथको धिक्कार है। कैकेयी बड़ी निर्लज्ज, पापिनी और मर्यादाका नाश करनेवाली है, जो ऐसे धार्मिक, बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय पुत्रको वनमें भिजवाती है। दशरथभी पुत्रोंसे स्नेह नहीं करते। क्योंकि उन्होंने अकारण ही रामको निकाल दिया। ग्रामवासियोंके ऐसे वचन सुनते हुए राम अयोध्याके राज्यके परे चले जाते थे। चलते-चलते अति निर्मल जलसे पूर्ण वेदश्रुति नामक नदीको उतरकर दक्षिणको चले। आगे गोमती नदी पड़ी। उसे भी उतरकर उस पार गये। फिर रथपर चढ़कर जो चले तो श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीको राजा मनुसे महाराज इक्ष्वाकुको दी हुई पृथ्वी दिखलाई। फिर राम सुमन्त्रसे बोले—हे सूत! हम अब कब सरयूके तीर पुष्पित वनमें शिकार खेलेंगे और अपने माता पिताको मिलेंगे? यद्य हमको शिकार खेलना प्रिय नहीं है, पर राजर्षि गण पहलेसे खेलते आए हैं, इसीसे हमारी भी इच्छा है इसप्रकार राम जो-जो प्रयोजन देखते उसी प्रयोजनकी बात सुमन्त्रसे मधुर वाणीसे कहते चले जाते थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

पचासवाँ सर्ग

कोशल देशसे बाहर रामचन्द्रजीका गंगाके तटपर इंगुदी वृक्षके नीचे गुहसे उनकी भेंट और केवल जल पीकर ही वह रात्रि व्यतीत करना।

इस रीतिसे विशाल कोशल राज्यको देखते चले जाते रामने लौटकर

अयोध्याकी ओर मुख किए हुए हाथ जोड़ कहा—हे काकुत्स्थवंश पालित अयोध्या ! तथा तुममें जो देवता रहते हैं और जो तुम्हारे पालक हों, सबसे मेरी प्रार्थना है कि आप ऐसी दया कीजिए, जिसमें महाराजसे उऋण हो वनवाससे कुशलपूर्वक लौटकर पिता-माता सहित तुमको फिर देखूँ । पुरीसे इतना कह राम नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए दाहिना हाथ ऊपरको उठाकर सब देश निवासियोंसे बोले—"आपलोगोंने हमारे ऊपर बड़ी दया तथा बड़ा स्नेह किया, पर अब हमारे साथ चलकर दुःख न सहिये ।" यह सुन उन मनुष्योंने महात्मा श्रीरामको प्रणाम किया, उनकी प्रदक्षिणाकी ओर वे जहाँ-तहाँ खड़े होकर जोर-जोरसे विलाप करने लगे । मार्गमें उन्हें देव नदी गंगाका दर्शन हुआ, जो स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—तीनों लोकोंके पथपर प्रवाहित होती हैं जिनका जल अत्यन्त शीतल है और जिनके तटके पासही बने हुए अनेकों ऋषियोंके सुन्दर आश्रम जिनकी शोभा बढ़ाते रहते हैं । भगवान् विष्णुके चरणोंसे जिनका आविर्भाव हुआ है, जिनमें पापका लेश भी नहीं है और जो सबके पापोंका नाश करनेवाली हैं तथा सगर-कुलमें उत्पन्न राजा भगीरथकी तपस्या द्वारा जिनका शंकरजीके जटा-जूटसे भूमिपर अवतरण हुआ था । उन भगवती भागीरथीके तटपर जाकर महाबाहु श्रीराम शृङ्गबेरपुरमें पहुँच गये । वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रसे कहा—'सारथे ! गङ्गाजीके समीप यह जो सघन पत्तों और फूलोंसे सुशोभित महान् इङ्गुदीका वृक्ष दिखाई देता है, इसीके नीचे आज रातमें हम निवास करेंगे ।' लक्ष्मण और सुमन्त्रने भी उनके कथनका समर्थन किया और घोड़ोंको हाँककर उस वृक्षके पास ले गये । तदनन्तर सीता और लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजी रथसे उतर गये । फिर सुमन्त्रने भी रथसे उतरकर घोड़ोंको खोल दिया और वृक्षके नीचे बैठे हुए श्रीरामके पास जाकर वे हाथ जोड़कर खड़े होगये । उस देशका राजा निषादोंका पति गुह नामका था । वह रामका परम मित्र, रामको अपने देशमें आया हुआ जानकर मन्त्रियोंको साथले रामके निकट आया । तब दूरहीसे निषाद रामको आते देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ आगे बढ़कर गले मिले । इस प्रकार मिल भेंटकर बड़ी दीनतासे गुह बोला—हे राम ! इस पुरको भी अपनी अयोध्याके समान जानें

इससे जो आज्ञा हो, वह किया जाय। क्योंकि ऐसे अतिथि कहाँ मिलेंगे? ऐसा कह भाँति-भाँतिके भोजन, अर्घ्य, पाद्यके निमित्त गंगा-जल मँगा हाथ जोड़ बोला है कि 'हे महाराज! आप अच्छी तरह तो आए? यह सब पृथ्वी आपहीको है। हम लोगतो आपके आज्ञाकारी हैं। आप हमारे स्वामी हैं। ये भोज्य और पेय पदार्थ स्थित हैं, ग्रहण कीजिये। शयन करनेके लिए शय्यादि और घोड़ोंको घास; दाना आदि उपस्थित है।' गुहके ऐसा कहने पर रामबोले—हम तुम्हारे पैदल आने, स्नेह, दर्शन तथा तुम्हारी पूजासे बहुत प्रसन्न हुये। इतना कह उन्होंने गुहको आलिङ्गन कर लिया और कहाकि तुम्हें सपरिवार आरोग्य देखकर मैं प्रसन्न हुआ। तुम्हारे राज्य, मित्रवर्ग तथा धनमें कुशल तो है? तुम यह सब प्रीति पूर्वक लाए हो, यह सब मैंने जाना पर इसे ग्रहण नहीं कर सकता। क्योंकि मैं कुश, चीर और मृगचर्म धारण किए हूं। इस समय फल फूलादि ही भोजन करता हूँ। मुझे एक वनवासी तपस्वी ही समझो। केवल घोड़ोंके खानेकी सामग्रीही मुझे चाहिए। तुम्हारी इतनी ही वस्तुओंसे मैं पूजित हो जाऊँगा। ये घोड़े हमारे पिता दशरथको अति प्यारे हैं। इनको अच्छा भोजन मिल गया तो मैं सब कुछ पा गया। यह सुन गुहने घोड़ोंके लिए अच्छा भोजन लानेके लिए अपने सेवकोंको आज्ञा दी। राम वस्त्र उतार संध्योपासन करने लगे। शयनके समय लक्ष्मण अपने हाथसे गंगाजल लाये। वही रामने पान किया। जब पृथ्वीपर लेटे तब लक्ष्मणने उनके और जानकीके भी चरण धोये। वे भी सो गईं। तब लक्ष्मण वहाँसे थोड़ी दूर हटकर एक वृक्षके नीचे जा बैठे और गुह तथा सुमन्त्रसे बातें करते हुए धनुष-बाण धारण किए सावधानीसे रातभर जागते रहे। इस प्रकार सो जानेपर भी यशस्वी और मनस्वी दशरथ-पुत्र महात्मा रामको वह रात्रि पहले कभी दुःखकी अनुभूति न होनेसे और अच्छी नींद न आनेसे, बहुत थोड़ी जान पड़ी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इक्यावनवां सर्ग

(रात्रि जागरण करते लक्ष्मणसे रामके वन निकाले जानेपर गुहकी वार्ता)

तब लक्ष्मणको अपने भाईके लिए स्वाभाविक अनुरागसे जागते देख

दुःखित हो गुह उनसे बोला—हे राजकुमार ! आपके लिए यह प्रमुख शय्या बनाई गई है, अतः आप इसपर शयन कीजिये। क्योंकि क्लेश सहनेके योग्य हमीं लोग हैं। आपतो सुख भोगनेके योग्य हैं। रक्षाके लिए रात्रि भर हम जागरण करेंगे। मैं आपकी सौगंध खाकर सत्य ही कहता हूँ कि, पृथ्वीपर रामसे अधिक मुझको अन्य कोई प्रिय नहीं है। इन्हींके प्रसादसे मैं इसलोक तथा परलोकमें परम यश, बड़ाधर्म, अति अर्थ और कामकी वांछा करता हूँ। इसलिए मैं अपने प्रिय सखा रामकी अपनी जातिके लोगोंके साथ रक्षा करता रहूँगा। इस वनमें हम सदा रहते हैं और ऐसा कोई नहीं जिसे हम न जानते हों। यहाँ यदि किसीकी चतुरङ्गिणी सेना भी आवे, तो हम उसे जीत लेंगे। यह सुन लक्ष्मण बोले—अवश्य ही आप धर्म रीति से देखने वाले हैं और आपकी रक्षासे यहाँ हमलोगोंको किसीका भय नहीं है। परन्तु जब राम सीता भूमिपर शयन करते हैं, तो मैं कैसे सो तथा भोजन आदि कर सकता हूँ। जिन रामचन्द्रके तेजके आगे संग्राममें देवता और दैत्यादि कोई नहीं ठहर सकते, वे ही सीता सहित सुख पूर्वक तृणोंपर सो रहे हैं। जिन रामको दशरथने नाना प्रकारके मन्त्र,यन्त्र पराक्रम और तपस्या करनेसे पाया है और जिनके ही लक्षणोंके समान लक्षण उन्हींमें है, इनके यहाँ चले आनेसे वे दशरथ बहुत दिन न जीयेंगे। रामके इस ओर चलते समय स्त्रियाँ हा राम ! हा राम ! कहकर रो रही थीं। परन्तु अबतो राजमन्दिरमें एक शब्द भी न होता होगा। यदि कौशल्या, राजा तथा हमारी माता इस रात्रिमें जीती हो, तो मैं उन लोगोंके धैर्यकी प्रशंसा करूँगा। कदाचित हमारी माता शत्रुघ्न को देखकर जीती भी रहेगी, किन्तु परमवीर पुत्रको उत्पन्न करनेवाली कौशल्या तो अवश्यही मर जायगी। अयोध्या तो राममें अनुरक्त रहती है। दशरथ का मरण देख वह भी नष्ट हो जायगी। महात्मा राजा ज्येष्ठ पुत्रको देखे बिना कैसे जी सकेंगे ? और राजा के मरने पर कौशल्या अवश्य ही मर जायँगी। फिर हमारी माताभी मर जायँगी। क्योंकि राम-राज्याभिषेकके सबके मनोरथ नष्ट हो गए हैं, अतः स्नेहके कारण हमारे पिता अवश्य ही मृतक हो जायँगे। उस समय मनोरथ तो उन्हीं लोगोंके सिद्ध होंगे कि, जो मरण समय वहाँ रहेंगे, तथा सब कार्योंमें पिताके सब संस्कार होंगे। किन्तु

राजा जीवित रहेंगे तो वनवाससे लौटनेपर हमलोग भी रमणीय चौराहों, राजमार्गों श्रेष्ठ-मन्दिरोंपर तथा वेश्याओंसे शोभित, रथों, हाथियों और घोड़ों से पूर्ण, अनेकबाजोंके बजते हुए, सब कल्याणोंसे पूर्ण, प्रसन्न वातावरणमें लोगोंके बीच, बगीचों तथा वाटिकाओंसे शोभायमान सुखपूर्वक अपने पिता-की राजधानीमें विचरण करेंगे तथा परम प्रतापी अपने पिताको देखेंगे। यह क्याही अच्छी बात हो, जब हम इन सत्यप्रतिज्ञ रामके साथ कुशलपूर्वक वनसे फिर अयोध्यामें आकर प्रवेश करेंगे। इसप्रकार अत्यन्त दुःखित और रोते-रोते लक्ष्मणने बैठेही बैठे रात्रि व्यतीत कर दी। राजपुत्र लक्ष्मणके इस भाषण तथा रामपर अतीव प्रेम होनेसे गुहको अत्यन्तही दुःख हुआ। वह ज्वरातर और अस्वस्थ गजके समान आँसू बहाने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

बावनवाँ सर्ग

रामका गंगा पारकर सुमन्त्रको लौटाना

प्रभात होतेही राम लक्ष्मणसे बोले—हे तात! रात्रि व्यतीत हो गई, सूर्योदयका समय आया। क्योंकि यह कोकिल पक्षी कूज रहा है। वनमें मयूरोंका शब्दभी सुनाई पड़ रहा है। इससे अब हमलोग शीघ्रही गंगाके पार उतरें। तब लक्ष्मण, निषादराज और सुमन्त्र रामकी यह आज्ञा सुन उनके आगे जा खड़े हुए और गुह अपंने मन्त्रियोंसे बोला—रामके चढ़ने योग्य अच्छे खेवटके खम्भ खड़ाकर बड़ीही सुन्दर दृढ़ नौका घाटपर शीघ्रपहुँचाओ। यह सुन मन्त्री गया और घाटपर उसीप्रकारकी नाव पहुँचाकर निषादराजको सूचना दी। तब गुहने हाथ जोड़कर कहा कि, महाराज! नौका तय्यार है। गंगा उतरनेके लिए नाव आ गई। अब शीघ्र चढ़िए। राम यह सुन गुहसे बोले—आपने यह बहुत काम किया। अब खेनेवालेसे कहिए कि, वह तैयार होवे। यह कह राम और लक्ष्मण धनुषबाण और तरकस ले कवचादि धारण कर सीता सहित गंगा-तटपर चले। तब रामके निकट जा हाथ जोड़ सुमन्त्रने कहा—अब मुझे क्या आज्ञा है? यह सुन रामने अपने दाहिने हाथसे सुमन्त्रका दाहिना हाथ पकड़कर कहा कि, आप शीघ्र रथ ले राजाके समीप जाओ। यहीं तक रथपर आनेका प्रयोजन था, अब लौट जाइए, अब पैदल

ही बनको जायँगे। यह आज्ञा सुनतेही सुमन्त्र व्याकुल हो रामसे बोले-हे राम! जैसा आपने स्त्री और भाईके साथ बनवास अंगीकार किया है, ऐसा किसी पुरुषने नहीं किया है। यदि आप दोनों वनवासका कष्ट समझ वनको न आते, तो मैं आपलोगोंके ब्रह्मचर्य और वेद पढ़नेका फल न समझता। हे राघव! आप सीता और लक्ष्मण सहित वनवासकर त्रैलोक्य-विजयकी गतिको प्राप्त होंगे। किन्तु आपसे छले हुए हमलोग तो पापिनी कैकेयीके वशमें पड़ दुःखही उठावेंगे। यह कह रामको दूर होते विचार सुमन्त्र महादुःखीहो रोने लगे। जब आँसू रुक गये तो सुमन्त्रने अपना मुँह धोया। तब राम बोले-"सुमन्त्र! इक्ष्वाकुवंशियों में मैं तुम्हारे समान सुहृद और किसी को नहीं देखता, इससे वही करना चाहिए जिसमें राजा मेरा शोक न करें। ऐसा मैं इसलिए कहता हूँ कि राजा मेरे शोकसे हतचित्त तथा अतिवृद्ध हैं, जिनपर राज्यका सारा भार है। कैकेयीके निमित्त महाराजकी जो आज्ञा हो उसे आप तुरन्त कीजिएगा। किसी कार्यके करनेसे उनका मन न हटने पावे, इसीलिए राजा लोग राज्य-शासन करते हैं। इसलिए हे सुमन्त्र! महाराजका चित्त उदास और शोकित न होने पाये, आप वही कीजिएगा। आप वृद्धता प्राप्त, अतिश्रेष्ठ और जितेन्द्रिय मेरे पितासे, मेरा यह वचन कहिएगा कि; अयोध्या छूट जाने और वनवास प्राप्त होनेसे मुझे और लक्ष्मण को कुछ भी कष्ट नहीं है। चौदह वर्ष व्यतीत होने पर सीता और लक्ष्मण सहित शीघ्रही आप मुझे देखेंगे। यही बात हमारी ओर से राजा, हमारी माता तथा कैकेयी सहित अन्य सब देवियों से भी बार-बार कहिएगा और मेरी मातासे कहिएगा कि मैं लक्ष्मण और सीता सहित आरोग्य और सब कुशलसे हैं। महाराजसे यह भी कहिएगा कि, भरतको शीघ्र बुलाकर इन्हें युवराजपद पर नियुक्त करें। ऐसा करनेसे हमारे वियोगका दुःख आपको न होगा। भरतसे भी कहिएगा कि, जैसे वे राजाकी आज्ञाका पालन करेंगे, वैसेही सब माताओं की भी समान से सेवा करेंगे। क्योंकि जैसे तुम्हारी माता सुमित्रा व कैकेयी हैं, वैसेही मेरी माता कौशल्या हैं। पिताकी प्रिय कामनासे हे भरत! तुम युवराज अङ्गीकार करो, परन्तु तुम्हें चाहिए कि दोनों लोकों को सुख दो।" जब रामने इसप्रकार समझाकर सुमन्त्रसे लौटने को कहा, तो वे सब वचन सुन सस्नेह रामसे

ोले—"हे राम ! यदि स्नेहवश मुझसे उचित वाक्य न कहे जायँ
ो आप भक्तिमान् उसे क्षमा करेंगे। हे तात ! तुम्हारे विना
ुम्हारे वियोग में क्षुब्ध हो उस पुरी में कैसे जायँ ? सभी मनुष्यों
े तो आप सहित रथ पर आते हुए देखा था। अब आप सहित
 कैसे जीवेंगे ! रथको शून्य देख अयोध्या अवश्य ही दीन हो जायगी। अब
ाली रथ देखकर वे लोग अन्न जल न खायेंगे ! आपके वनवासके समय
जा कैसी शोकाकुल थी, वह आपने भी देखा है। अयोध्यावासियोंने कैसाआर्त-
ाद किया था। अब रथको सूना देखकर, उससे सौगुना अधिक शोक करेंगे।
ें आपकी मातासे कहूँगा कि आपके पुत्रको ननिहालमें भेज आया अतः
ोक न कीजिये ! मुझसे तो यह असत्य वचन न कहा जायगा और यह
अप्रिय सत्य भी कि 'वन भेज आए' न कहा जयगा। ये घोड़े भी आप
ोगोंके न होनेपर रथ कैसे खींचेंगे ? इससे आपको साथ ले चले विना मैं
अयोध्या नहीं जाऊँगा। मुझे भी वनवासकी आज्ञा मिले। यदि मेरे इस
आग्रहपरभी मुझे त्याग दीजियेगा, तो मैं रथ सहित अग्निमें प्रवेश कर
ाऊँगा। हे राघव ! वनमें तपस्यामें जो विघ्नकारक पदार्थ होंगे, उन्हें मैं
इस रथसे रोकता रहूँगा और इस प्रकार मैं आपके निकट रह आपके निमित्त
ही वनवासका सुख भोगना चाहता हूँ। आप आज्ञा दें। हे वीर ! ये अश्व भी
आपकी सेवासे परमगति पायेंगे। अब मेरा यही मनोरथ है कि वनवासका
समय व्यतीत होनेपर मैं इसी रथपर चढ़ाकर आपको अयोध्या ले चलूँ। ये
ौदह वर्ष तो आपके साथ रहनेसे एक क्षणके समान बीत जाँयगे और वही
आपके विना सैकड़ों वर्षके समान हो जायँगे। हे भृत्यवत्सल ! स्वामि-पुत्र
ाम ! आप मुझे त्यागने योग्य नहीं हैं।' इस प्रकार बारम्बार कहते हुए;
ुमन्त्रसे राम बोले—'हे स्वामिवत्सल ! मैं तुम्हारी परम भक्तिको जानता हूँ।
रन्तु जिसलिए तुम्हें पुरी भेजता हूँ, वह सुनो। आपके जानेसे कैकेयीको
निश्चय हो जायगा कि, राम वनको चला गया। इससे उन्हें सन्तुष्टता होगी
ौर राजाको मिथ्यावादी न समझेंगी। मेरा यह प्रथम संकल्प है कि, मेरी
ोटी माता कैकेयी भरतसे रक्षित राज्य पावें। हे सुमन्त्र ! तुम मेरे और राज्य
े प्रियके लिए जाओ और जो-जो सन्देश मैंने तुमसे कहे हैं, वह सब कहो।

सुमन्त्र से यह कहकर राम गुहसे बोले—हे निषादराज ! इस समय मैं उन्हीं नियमोंको धारण कर रहना चाहता हूँ जो तपस्वीजनोंको शोभा देते हैं। अतः सीता और लक्ष्मणकी अनुमति, पिताका हित करनेकी इच्छासे,अपने केशोंको जटाका रूप देकर यहाँसे जाऊँगा, इसके लिए तुम बड़का दूध ला दो।' गुहने तुरन्त ही बड़का दूध लाकर राजकुमार श्रीरामको दे दिया। रामने उसके द्वारा अपनी तथा लक्ष्मणकी जटाएँ बनायीं। उस समय वे दोनों भाई वल्कल-वस्त्र और जटा धारण करके ऋषियोंके समान शोभा पानेलगे। तदनन्तर वानप्रस्थका आश्रय लेकर लक्ष्मण सहित रामने ब्रह्मचर्यव्रतके पालन का निश्चय किया और अपने सहायक गुहसे कहा—'निषादराज ! तुम सेना सजाकर किला और राज्यके विषयमें सदा सावधान रहना। क्योंकि राजरक्षाका कार्य बड़ा कठिन माना गया है।' गुहको इस प्रकार आज्ञा देकर इक्ष्वाकुनन्दन राम पत्नी और लक्ष्मण सहित तुरन्तही वहाँसे चल दिये। इस समय उनके चित्तमें तनिकभी उद्वेग नहीं था। फिर नदीके तटपर लगी हुई नौकाको देखकर गङ्गाके पार जानेकी इच्छासे उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'नरव्याघ्र ! यह सामने नौका खड़ी है। इसपर धीरेसे चढ़ जाओ।' भाईका आदेश सुनकर लक्ष्मणने पहले मिथिलेशकुमारी सीताको नावपर बिठाया, फिर स्वयं उसपर आरूढ़ हुये। फिर महातेजस्वी राम, नौकारूढ़ हो, ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें जय-योग्य 'दैवीं नचम्' इत्यादि वेदोक्त मंत्रका जप करने लगे। फिर शास्त्रविधिके अनुसार आचमन करके सीता और महारथी लक्ष्मणके साथ उन्होंने प्रसन्न चित्त होकर गङ्गाजीको प्रणाम किया। इसके बाद श्रीरामने सुमन्त्रको,और सेना सहित गुहको जानेकी आज्ञादी। मल्लाहोंको नाव चलानेका आदेश दिया। आज्ञा पाकर मल्लाहोंने नाव चलायी। उसका कर्णधार बड़ा सावधान था। वेगसे नाव चलानेके कारण वह नाव बड़ी तेजीसे पानीपर बढ़ने लगी। बीचधारमें पहुँचनेपर साध्वी सीताने हाथजोड़कर गङ्गाजीसे यह प्रार्थनाकी—'भगवती गङ्गे' ! ये महाराज दशरथके पुत्र आपके द्वारा सुरक्षित होकर अपने पिताकी आज्ञाका पालन करें। चौदह वर्षोंतक वनमें रहकर जब ये मुझे और भाई लक्ष्मणको लेकर पुनः इसी मार्गसे लौटेंगे, उस समय सबके साथ कुशलपूर्वक आकर मैं बड़ी प्रसन्नतासे आपकी पूजा करूँगी तथा आपके

किनारे जो-जो देवता, तीर्थ मन्दिर हैं; उन सबका पूजन करूँगी।' इस प्रकार गङ्गाजीसे प्रार्थना करती हुई श्रीसीताजी बातकी बातमें दक्षिण तटपर जा पहुँची। किनारे पहुँचकर लक्ष्मण और सीताके सहित श्रीरामने नाव छोड़ दी और आगेको प्रस्थान किया। उस समय महाबाहु श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—सुमित्रानन्दन! सीताके रक्षाके लिए सावधानहो जाओ। तुम आगे-आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे चलें और मैं तुम दोनोंकी रक्षा करता हुआ सबसे पीछे चलूँगा।' यह सुनकर लक्ष्मण आगे बढ़े। उनके पीछे सीता चलने लगीं। सबके पीछे राम थे। श्रीरामचन्द्रजी गङ्गाजीके उस पार पहुँचकर भी जबतक दिखाई दिये, तबतक सुमन्त्र निरन्तर उन्हींकी ओर दृष्टि लगाए देखते रहे। जब बहुत दूर निकलजानेके कारण वे दृष्टिसे ओझल होगये, तो सुमन्त्रके हृदयमें बड़ा कष्ट हुआ और उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। महात्माराम वरदायिनी गङ्गाके पार धनधान्ययुक्त वत्स देशमें पहुँचे और एक वृक्षके नीचे जा बैठे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ सर्ग

पहली रातमें वट-वृक्ष के नीचे बैठे राम--लक्ष्मणकी वार्ता

उस वृक्षके नीचे बैठे सायं संध्याकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले—आज यह अपने देशसे बाहर निकलनेपर पहली रात्रि पड़ी है। आज सुमन्त्र भी नहीं है। इससे अयोध्याके सुखोंकी उत्कंठा न करना। आजसे जबतक वनमें रहना हो, हमको तुमको चाहिए कि रात्रिभर जागते रहें, सीताकी रक्षा करते रहें। यह रात्रि किसी प्रकारसे अपने हाथसे कुश पत्रादि ला भूमिमें बिछाकर बितानी है। राम भूमिपर बैठ लक्ष्मणसे बोले—हे लक्ष्मण! मैं यह निश्चय करके कहता हूँ कि, महाराज दुःखसे हतचेतन हो सोगये होंगे और कामा कैकेयी अब सन्तुष्ट हुई होंगी। कैकेयी भरतके आनेपर राज्यके कारण कहीं महाराजका प्राण न नष्ट करा दें। वह एकतो अनाथ, दूसरे वृद्ध, तीसरे हम यहाँ चले आये, चौथे कामी फिर कैकेयीके वश, ऐसी अवस्थामें राजा क्या करेंगे? अब ऐसे दुःखमें पड़े महाराजको चाहिए कि, अर्थ, धर्मसे

कामहीको बड़ा मान काम करें। लक्ष्मण! कोई मूर्ख भी ऐसा न करेगा कि
स्त्रीके कहनेसे आज्ञाकारी पुत्रको त्याग दे। अब भरत स्त्री सहित सुखी होंगे
क्योंकि अयोध्याका राज्य महाराजाओंकी भाँति अकेले भोगेंगे। अब भरतको
सारे राज्यका सुख होगा। क्योंकि राजाकी तो अवस्थाही और हो रही है
और मैं वनको चला आया। जोभी अर्थ, धर्मको छोड़ केवल कामहीके वशी-
भूत होगा, वह राजा दशरथकी तरह गिरेगा। हे सौम्य! कैकेयी राजाके प्राण
लेनेके लिए ही मुझे वनवास देने तथा भरतको राज्य दिलाने हीके लिए यहाँ
आई। इस समय कैकेयी सौभाग्यसे मोहित हो कौशल्या और सुमित्राको
मेरे लिए पीड़ित करती होगी। हमारे ही हेतु कौशल्या, सुमित्रा दुःख उठाती
होंगी, अतः प्रातः होतेही तुम यहाँसे अयोध्याको जाओ। मैं अकेलाही सीताके
साथ वनको जाऊँगा। तुम वहाँ जाकर कौशल्याको सनाथ करो! क्योंकि
कैकेयीका बड़ाही ओछा स्वभाव है। वह हमारे वैरभावसे अन्यायकर दोनों
माताओंको विष दे देगी। पूर्वके किसी ऐसेही पापसे हमारी माताको यह पुत्र
वियोग मिला है। मुझे धिक्कार है कि मैं जिस माताने बड़े दुःख से पालनकर
पुष्ट किया, अब उसमें फल मिलने का समय आया, तो मैंने उनको छोड़
दिया। कोईभी भाग्यवती स्त्री मुझ जैसे पुत्रको न उत्पन्न करे। देखो, माताको
हम कैसा अपार दुःख देते हैं। हा, मैंने अपनी माताका कुछ भी उपकार न
किया। मुझ जैसे पुत्रसे तो वे बिना पुत्रकी ही अच्छी थीं। माता कौशल्या
बड़ी अल्पभाग्य हैं जो मेरे बिना शोक सागरमें डूबी हुई सो रही हैं। क्रोध
करनेपर मैं अकेलेही अयोध्या व समस्त पृथ्वीको अपने बाणोंसे जीत लूँ
किन्तु हे लक्ष्मण! केवल अधर्म और परलोकके भयसे मैंने इस समय राज्य
नहीं लिया। इस प्रकार उस निर्जन वनमें अज्ञान पूर्वक रुदन करते हुए राम
रात्रिजान मौन बैठ रहे। जब राम चुप होगए; तब उन्हें निर्वेग शान्त हुआ
देख लक्ष्मण समझाने लगे—हे युद्धकर्ताओंमें श्रेष्ठ! यह तो निश्चय है कि
अयोध्या आपके बिना निष्प्रभा होगई। पर हे राम! आपको ऐसा परिताप
करना योग्य नहीं। क्योंकि इससे मुझे और सीताको दुःख होता है। मैं और
सीता आपके बिना एक मुहूर्त्त भी ऐसे नहीं जी सकते, जैसे जल बिना मछली।
मैं आपके बिना दशरथ, शत्रुघ्न, सुमित्रा तथा स्वर्गको भी देखना नहीं चाहता।

यह सुन उस वटवृक्षके नीचे तृणोंकी शय्यापर दोनों शयन करने लगे। लक्ष्मण का यह उच्चकोटिका अभिभाषण सुन श्रीरामचन्द्रजीने निर्धार किया कि, दीर्घकाल तक वनवास धर्मका पालन स्वयंही किया जाय और शत्रुहन्ता लक्ष्मणको पूरे वर्षोंतक वनवासके लिए आज्ञा दे डाली। फिरतो सिंहके समान वलिष्ट राम लक्ष्मण उस निर्जन बनमें पहाड़ोंकी चोटियोंपर निर्भय होकर विहार करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ सर्ग

(सीता सहित राम, लक्ष्मणका भरद्वाज आश्रम में रात्रिका निवास)

उस वट-वृक्षके नीचे रात्रि व्यतीतकर जब सूर्योदय हुआ तो तीनोंव्यक्ति वहाँसे आगे चले। तब उस महावनको पारकर वे उस देशको चले जहाँ गंगा-जमुनाका संगम है। मार्गमें नानाप्रकारके भूभाग तथा देश देखते चले जाते थे जिसे पहले न देखे थे। जब दिन थोड़ा रह गया तो राम लक्ष्मणसे बोले— हे लक्ष्मण! देखो, यही प्रयाग तीर्थ हैं, क्योंकि इसके चारों ओर उत्तम धुआँ दिखाई देता है। निश्चय है कि हम गंगा यमुनाके संगमपर आगये। क्योंकि नदियोंके मिलनेका शब्द सुन पड़ता है। इस प्रकार सूर्यास्त होते-होते धनुष-वाण धारी दोनों भाई भरद्वाज मुनिके आश्रम पर पहुँचे। तब वहाँसे मुनिके दर्शनकी इच्छासे जानकोको आगे लिए दोनों कुछ दूरपर खड़े होगये। फिर आश्रममें घुसकर देखा तो महात्मा भरद्वाज शिष्योंके सङ्ग बैठे हुए तपकर रहे हैं और अग्निमें आहुति दे रहे हैं। उसी समय लक्ष्मण और सीता सहित रामने प्रणाम किया। पश्चात् अपना परिचय दिया कि, हम दोनों महाराज दशरथके पुत्र हैं और राम, लक्ष्मण हमारा नाम है। यह मेरी स्त्री है। मेरे वनको चलने पर वे भी पीछे-पीछे चली आई। जब पिताने मुझे बनवास दिया तो भाई लक्ष्मणभी स्नेहके कारण साथ चले आये। अब सबको पिताकी आज्ञा ही समझिये। हम तपोवनको आए हैं, इसलिए यहाँ कन्द, मूल, फल ही भोजन करते हैं। तब रामके ऐसे वचन सुन मुनिराजने कुशल पूछ अर्घ्यपाद्यके लिए जल दिया। फिर नाना अन्न, फल, मूलादि उन तीनोंको भोजनके लिए मँगाया। फिर रहनेके लिए उत्तम स्थान दिया। तदनन्तर मुनियों, मृगों, और

पक्षियों सहित वहाँ बैठे हुए भरद्वाज मुनिने कुशल पूछी और पूजाकर रामसे कहा कि—हमने आपके बनवासीकी कथा पहलेही सुन रक्खी थी इससे बहुत दिनसे आपके आनेकी राह देखते थे। गंगा—यमुनाके बीच यह स्थान पुण्य-दायक और रमणीय है, इससे यहीं सुखपूर्वक निवास करो। तब भरद्वाजजीसे ऐसा सुनकर रामबोले—"हे भगवन्! यहाँके-निकट निवासी मनुष्य मेरे रूप को सुन मुझे और सीताको देखने आयेंगे, अतः यहाँका रहना अच्छा नहीं। कोई एकान्त स्थान बताइये, जहाँ जानकी सुखपूर्वक रहें।" रामके ऐसे वचन सुन मुनिराज बोले—हे तात! इस स्थानसे दश कोशकी दूरीपर एक पर्वत है जो तुम्हारे बसने योग्य है। उस पर्वतपर ऋषि रहते हैं, जिसका नाम चित्रकूट है और जो गन्धमादनके समान है। मनुष्य जबतक चित्रकूटके कँगूरे देखता है तब-तक कल्याणही बिचारता है। इस पर्वतपर तपस्याकर कितनेही महादेवके स्वर्ग चले गए हैं। मेरी समझसे आपका वहाँ रहना बहुत अच्छा होगा। फिर आपको तो बनवासही करना है। इससे मेरे साथ यहीं निवास कीजिये। इस प्रकार रात्रिभर भरद्वाजने राम, लक्ष्मण और सीताजीकी सब पदार्थोंसे सेवाकी जिससे यह रात्रि हर्षसे कटी और नानाप्रकारकी कथाओंमें तीनों जनोंने बड़े सुखसे वह रात्रि व्यतीत की। प्रातः होनेपर रामने तपसे देदीप्यमान मुनिवरसे कहा—भगवन्! यह रात्रितो आपके आश्रम पर बीती। अब जो स्थान आपने रहनेको बताया है, वहाँ जानेकी आज्ञा दीजिये। तब भरद्वाजजीने कहा—बहुत अच्छा, चित्रकूटपर आप जाकर निवास कीजिये। वहाँका बास आपके लिए सर्वथा योग्य है। नाना नागयुक्त तथा गन्धर्व, सर्पोंसे पितृदेव वहाँ बसते हैं। मधूरादि पक्षी सदा बोला करते हैं, हाथियोंके झुण्ड घूमा करते हैं। वह स्थान पुण्यदायक और रमणीय है तथा फल, फूल, मृग और हाथियोंसे पूर्ण है। हे राघव! उस पर्वतपर नदी, प्रस्रवण, कन्दराओं तथा झरनोंको देखते हुए विचरिये। सीता सहित विहार करते हुए वहाँपर आपका मन प्रसन्न होगा। इस प्रकार प्रमुदित हुए टिट्टिभ और कोकिलोंके गानसे चित्तानंदकारक मृगों तथा हाथियोंसे सुरम्य हुए चित्रकूट पर्वतपर आप जाकर निवास कीजिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥५४॥

पचपनवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका सीता, लक्ष्मण सहित यमुना पार करना

इस प्रकार रात्रिभर प्रयागमें निवासकर भरद्वाजको प्रणामकर दोनों भाई चित्रकूटको चले। मुनिने उनके चलनेपर स्वस्तिवाचनादि पाठ किया। तदनन्तर भरद्वाज राम लक्ष्मणसे बोले—"राम! आप जहाँ गङ्गा-यमुनाका संगम है, वहाँसे पश्चिम मुख हो यमुनाके किनारे जाइये। वहाँ अनेक तीर्थ देख, बेड़ा आदि पर चढ़ यमुनाको उतरिये। उसके पार कुछ दूरपर एक वटका वृक्ष है, जिसके चारों ओर बहुतसे वृक्ष लगे हैं और जिसमें कुछ श्यामता भी पाई जाती है। सिद्धलोग उसके नीचे बैठे तप कर रहे हैं। उस वृक्षके नीचे जा, हाथ जोड़कर सीता आशीर्वाद माँगे कि, हे वृक्षराज! पति व देवर मेरे साथ कुशलपूर्वक बनसे लौटें। उस वृक्षके नीचे पहुँच, चाहे उस दिन वहीं रहना, चाहे चले जाना। वहाँसे एक कोसपर नीलवर्णके वृक्षोंका वन पड़ेगा, जिसमें पलाश, बेर और बाँस आदि वृक्ष लगे हैं। उसी बनसे होकर चित्रकूटका मार्ग है। उस रमणीय मार्गसे जानेमें किसी प्रकारका क्लेश नहीं होता। इस प्रकार रामको मार्ग बताकर भरद्वाज लौटे। भरद्वाज मुनिके लौट जाने पर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले—हे लक्ष्मण! हम सब बड़े पुण्यात्मा हैं। क्योंकि मुनिराजने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है। यह कह सीताको आगे कर यमुना-तटपर पहुँचे। परन्तु उसमें नाव न थी। तब विचारकर जैसा भरद्वाजजीने कहा था, सूखे बाँस आदि इकट्ठाकर बेड़ा बनाया। उसमें वनकी सूखी लकड़ियाँ लगाईं, गाड़रकी जड़ कूट-कूटकर उसके छिद्र बन्द किए। बेतादिकी शाखाएँ काटकर लक्ष्मणने सीताके बैठनेके लिए उस तृण-मयी नौकापर रख दीं। पश्चात् रामने सीताको जो कुछ लजा रही थीं, उठा-कर नावपर चढ़ाया और उनके निकटही वस्त्र-भूषणादि रख दिये। फिर सब बाँस डाँड आदि उसपर रख स्वयं दोनों भाई उसपर चढ़े और नौका खेने लगे। जब नौका बीच धारमें पहुँची तब सीताने यमुनाको प्रणामकर कहा, हे देवि! यदि कल्याणपूर्वक मेरे पति पिताकी और अपनी प्रतिज्ञा पूर्णकर लौटेंगे और मेरा पतिव्रत धर्म अच्छी तरह निभ जायेगा तो तुम्हारे तटपर सहस्र गोदान करूँगी और देवदुर्लभ पदार्थोंसे तुम्हारी पूजा करूँगी। यह सब तब करूँगी जब

आनन्दपूर्वक राम अयोध्यामें राजा होंगे। इस प्रकार सीताने यमुनासे हाथ जोड़कर याचना की। प्रणाम करती सीता उस कृत्रिम नाव द्वारा कालिंदीके दक्षिण तटपर पहुँचीं। यद्यपि यमुना ऐसी नावके द्वारा उतरने योग्य न थी तबभी इसी रीतिसे तीनों जनोंने पार किया। फिर नाव छोड़ यमुना-वनसे आगे चले। चलते-चलते भरद्वाजके बताये बरगदके नीचे पहुँचे। वैदेहीने उस बरगदको प्रणाम किया, और कहा—"हे वट! जो मेरे पति हमलोगों सहित अपना व्रत पूर्णकर अयोध्यामें आ यशश्विनी कौशल्या व सुमित्राको देखेंगे तो मैं आपकी फिर पूजा करूँगी।" यह कह सीताने उस बरगदको हाथ जोड़ प्रदक्षिणा की। तब सीताको याचना करते देख राम लक्ष्मणसे बोले, हे भरतानुज! सीताको ले तुम आगे चलो। मैं शस्त्रास्त्र धारण किए पीछे-पीछे चलूँगा। जो फल, पुष्प सीता चाहें और जिसमें मन रमे वह-वह इसे लाकर देना। जिस किसी अपूर्व पादप तथा लतादिको सीता देखतीं, उसको अद्भुत रूपसे देख रामसे पूछती थीं। जो कुछ सीता माँगतीं, लक्ष्मण तुरन्त ला देते थे। इसी बीचमें सीताने चित्र-विचित्र बालुकायुक्त हंस-सारसादि बैठे हुए यमुनातटपर अनेक वृक्ष, पुष्प, बेल आदि अनेक वस्तुएँ देखीं और आनंद प्राप्त किया। फिर रामने एक कोस आगे बढ़कर कई मृग मारे। फिर शीघ्रतासे नदी तटपर आ अपने आश्रमको चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ सर्ग

(चित्रकूट-दर्शन, वाल्मीकि-मुनि दर्शन)

रात्रि व्यतीत होनेपर रघुपुङ्गव श्रीरामचन्द्रजीने शनैः शनैः लक्ष्मणको जगाया कि, हे लक्ष्मण! वनमें पक्षी मधुर शब्द बोल रहे हैं। अब चलनेका समय आया। उठो, यहाँ से चलो। श्रीरामचन्द्रजीके जगानेपर लक्ष्मणजी निरालस्य हो गये। मार्गका श्रम दूर हो गया। सबलोग उठ जमुनाजीके जलसे मुख धो मुनिके बताये मार्गसे चित्रकूट चले। तब रामजी सीताजीसे कहने लगे—हे वैदेहि! देखो, यह बसन्त ऋतु है। इसमें किंशुक (पलास) कैसे फूले हैं। मानों अपने फूलोंकी माला धारण किए हैं। फिर अन्य वृक्ष बेलोंको देखो कि जिनके नीचे बड़ा ही दुर्गम होनेसे निर्जन है। फल पुष्प-

भारसे झुके पड़े हैं। हे लक्ष्मण ! देखो, सभी वृक्षोंमें शहदके छत्ते लटक रहे हैं, जिनमें सहस्रों मधु-मक्खियाँ चिपट रही हैं। कोकिल कैसी बोल रही है। उसके पीछे-पीछे मोर भी बोलता है । यह बड़ा ही रमणीय वन है । नाना प्रकार पुष्पित है। झुण्डके झुण्ड हाथी घूम रहे हैं। वह देखो, नानाप्रकारके पुष्पों और वृक्षोंसे पुष्पित और भूषित चित्रकूट है। हम तो चित्रकूटके नीचे जो वह रमणीय वृक्षोंका वन है, जिसकी भूमि सर्वत्र समतल है वहाँ रहकर कुछ दिन वास करेंगे। ऐसा कहते हुए पैदल चलते-चलते वड़े ही मनोहर उस चित्रकूटपर जा पहुँचे जो अनेक प्रकारके पक्षियोंसे भरा था। जहाँ स्थान-स्थानमें मधुर जल विद्यमान था। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा--हे सौम्य ! इस पर्वतपर हमलोगोंको इन अनेक वृक्षोंसे इतने फल मूलादि प्राप्त होंगे कि, यहाँ हमलोगोंका भलीभाँति निर्वाह हो जायगा । हे तात् ! यहाँ बहुतसे मुनि-गण भी निवास करते हैं । यहाँ रहने ही योग्य है। हम भी अब यहीं रहेंगे। लक्ष्मण और जानकी सहित राम यह कहते-कहते वाल्मीकि मुनिके आश्रम पर जा पहुँचे । वहाँ पहुँचते ही उन्होंने मुनिको प्रणाम किया । उत्तम धर्मज्ञ मुनिने उनकी पूजाकर सस्वागत विठाया। तब मुनिसे अपने वन आनेका सब कारण वर्णन करते हुए श्रीलक्ष्मणजीसे श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे लक्ष्मण ! खूब दृढ़ और अच्छे काष्ठ लाकर निवास योग्य एक स्थान बनाओ, यहाँ रहनेको हमारा चित्त चाहता है। यह सुन लक्ष्मण विविध भाँतिके वृक्षोंसे छोटी-छोटी डालें काट लाये और सुन्दर पर्णशाला बना दी । उस सुन्दर कुटीरको देख श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा कि, हम मृगमांस लाकर इस पर्णशालाकी वास्तुशान्ती करेंगे । क्योंकि जो लोग चिरकाल तक रहना चाहते हों उन्हें वास्तुशान्ती अवश्य पूर्ण करनी चाहिए। इसलिए हे लक्ष्मण ! तुम शीघ्रही एक हिरन मार ले आओ—यह शास्त्र सम्मत भी है । तब भाईकी यह बात सुनकर शत्रुहन्ता लक्ष्मणने सब कुछ वैसाही कर डाला । उस काले हिरनके मांसको धधकते हुए अग्निमें फेंककर लक्ष्मणने खूब पकाया । फिर रामसे कहा कि, हे देवतारूपी राम ! अब आप देवताओंके नामसे भाग कीजिए। क्योंकि ऐसे यागकर्ममें आपही कुशल हैं । तब जपजापादि कार्योंमें गुण-युक्त तथा जितेन्द्रिय रामचन्द्रने स्नान किया और यागकी पूर्णताके लिए

सम्पूर्ण मन्त्रोंसे वास्तुशान्ति की । इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंका यजनकर शुचिभूत हो श्रीरामचन्द्रजीने उस कुटीमें प्रवेश किया । उस समय उन परम तेजस्वी रामके मनमें बड़ा आनन्द हुआ । फिर वास्तुदोषको हटानेके लिए ब्राह्मणोंसे सूक्त आदिका पाठ करनेको कहकर श्रीरामचन्द्रजीने नदीमें यथोचित ढंगसे स्नान किया और ठीक तरह जप करके पापसमनार्थ विश्वेदेव, रुद्र एवं विष्णुदेवोंके लिए बलि दिया । फिर आश्रमके अनुरूप देवालय, आदिको भी इन्होंने बलि-प्रदान किए । इस प्रकार उन सबने उस सुन्दर मनोहर पर्णकुटीमें वैसेही प्रवेश किया जैसे देवता सुधर्मा सभामें प्रवेश करते हैं। अति रमणीय चित्रकूटपर जिसके तटपर माल्यवती नदी बहती है और जहां मृग, पत्ती हर्षित हो कलरव करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी वहाँ सुखपूर्वक जाकर बस गये ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

(सुमन्त्र का अयोध्या लौटना और पुरवासियों आदि का शोक)

इधर जब राम गंगा के दक्षिण तटपर आ गए तब सुमन्त्रको समझा उसे साथ ले गुह घरको चला गया । राम प्रयागमें भरद्वाजाश्रम पर हो चित्रकूट पहुँचे । तब-तक सुमन्त्र निषाद के यहाँ रहा । तत्पश्चात् गुह से आज्ञा ले सुमन्त्र रथमें घोड़ोंको जोत अत्यंत ही उदास होकर अयोध्याको चला । मार्ग में आने से सुगन्धित बन, नदी, सरोवर, गाँव और नगरों को देखते हुए वे दूसरे दिन संध्या के समय अयोध्या पहुँचे । सुमन्त्रको देखकर सैकड़ों और हजारों पुरवासी 'राम कहाँ हैं ?' यह पूछते हुए उनकी ओर दौड़े । उस समय सुमन्त्र ने उन लोगोंसे कहा—भाइयों ! मैं गङ्गा के तट तक उनके साथ गया था । वहाँ से उन धर्मनिष्ठ महात्माने मुझे लौटनेकी आज्ञा दी । अतः मैं उनसे विदा लेकर यहाँ लौट आया हूँ । वे सब गङ्गाके उस पार चले गये, यह जानकर सबके नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं तथा 'अहो, हमें धिक्कार है' ऐसा कहकर वे लम्बी साँसें खींचते और 'हा राम !' की पुकार मचाते हुए जोर-जोर से विलाप करने लगे । सुमन्त्रने उनकी बातें सुनीं । वे झुंडके झुंड खड़े होकर कह रहे थे—'हाय, हमलोग

मारे गये। अब यहाँ हम लोग यज्ञ विवाह तथा बड़े समाजों के बीच में बैठे हुए राम को कभी न देख पायेंगे। जिस राम ने इस नगर का पिता के समान पालन किया था, उनके बिना इस पुरीमें यहाँ के निवासी जनोंका प्रयोजन अब कौन पालेगा ? तदनन्तर झरोखों से झाँकती हुई स्त्रियों के रुदन शब्द जो 'राम' कहकर रुदन कर रही थीं, सुमन्त्र सुनते हुए चले जाते थे। तब वस्त्र से मुँह ढँके हुए राज-मार्ग से चलकर सुमन्त्र वहाँ पहुँचे कि जिस मन्दिरमें दशरथजी विद्यमान थे। फाटक पर पहुँच रथसे उतर सुमन्त्र राज महल में प्रवेश कर गये और सात फाटक लाँघकर जब वहाँ पहुँचे तो उन्हें आया सुन कोटों विमानों तथा धरहरों पर चढ़ी राम के वियोग से क्षुषित स्त्रियाँ रामको न देखा तो हाहाकार करने लगीं। सबकी सब नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई परस्पर देखने लगीं। दशरथकी स्त्रियोंका मन्द-मन्द रोदन धरहरोंसे सुनाई पड़ा। वे सब कहती थीं कि, सुमन्त्र बिना रामके ही यहाँ आ गये। भला रोदन करती हुई कौशल्या से वे क्या कहेंगे ? जितना जीना दुःखजनक है, उतना मरण नहीं। देखो, रामके बन जाने पर भी कौशल्या जीती रहीं। रानियोंके ऐसे बचन सुनते हुए सुमन्त्र शोकसे जलते हुए राजमन्दिरमें प्रविष्ट हुये। तब आठवें फाटकके भीतर वाले चन्द्र॰ समान मन्दिरमें राजा दशरथको देखा, जो पुत्र शोकसे व्याकुल हो शय्यापर पड़े थे। तब राजाके सम्मुख जा, प्रणामकर सुमन्त्रने रामके वचन यथावत् कहे। यह सुनकर राजा चुप रहे। फिर घबड़ाकर मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े। फिर तो भीतर की रहने वाली रानी और दास दासी आदि ऊपर को हाथ उठाकर रोने लगीं। सुमित्रा और कौशल्याने राजाका हाथ पकड़ उठाया और कहा—'हे महाराज! ये सुमन्त्र जी दुष्कर कर्म करनेवाले राम के दूत होकर—उनका सन्देश लेकर वनवाससे आये हैं, आप इनसे बात क्यों नहीं करते?' इतना कहते-कहते कौशल्याका गला भर आया। आँसुओंके कारण उनसे बोला नहीं गया और वे शोकसे व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़ीं। इस प्रकार विलपती हुई कौशल्याको भूमिपर पड़ी देख तथा अपने पतिकी मूर्च्छित दशापर दृष्टिपात करके सभी रानियाँ उन्हें चारों ओरसे घेर कर रोने लगीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

सूत और दशरथ-प्रश्नोत्तर

जब मूर्छा व्यतीत होनेपर राजाको चेत हुआ, तो उन्होंने रामका वृतांत सुननेके लिए सूतको बुलाया। सुमन्त्र हाथ जोड़ राजाके निकट आये। राजा रामहीका शोक कर रहे थे। उस समय वृद्ध, शोकसे सन्तापित राजाकी दशा उस हाथीके समान हो गयी थी जो तुरन्त बनसे पकड़ आया हो और अपने साथियोंमें ध्यान लगानेके कारण व्याकुल हो रहा हो। राजाने देखा तो सुमन्त्रके सब अङ्गोंमें धूल लगी थी। आँसुओंकी धारा वह रही थी। यह देख राजाको बड़ा दुख हुआ। उन्होंने पूछा—हे सूत! अब रामचन्द्र वृक्ष के नीचे बसते हुए क्योंकर सुख पाते होंगे? और क्या भोजन करेंगे? सुमन्त्र! वे तो दुःख भोगने योग्य न थे। किन्तु सुख शय्यापर ही सोने योग्य थे। तब महाराजधिराजके पुत्र हो वे अनाथोंके समान भूमिपर कैसे सोते होंगे? जब कभी घरके बाहर निकलते थे तो उनके पीछे-पीछे पदल और रथ; घोड़े, हाथी आदि चलते थे। अब वे राम निर्जन वनमें कैसे बसेंगे? वन में तो बड़े-बड़े अजगर आदि नाग और अनेकों बनके जीव रहते हैं। उसमें सुकुमार राम, लक्ष्मण, बैदेही कैसे बसते होंगे? सुमन्त्र! तपस्विनी सीता सहित दोनों राजकुमार रथसे उतर कर वनमें पैदल कैसे गये? हे सूत! तुम्हारे सब कार्य सिद्ध हो गये। क्योंकि वनमें प्रविष्ट होते हुए मेरे पुत्रोंको तुमने देखा। हे सुमन्त्र! राम, लक्ष्मण, सीताने क्या कहा? हे सूत! रामके आसन, शयन और भोजनादिका समाचार कहो, जिसे सुन मैं ययातिके समान सुखी हो जाऊँ। राजाके ऐसे पूछनेपर सारथिने गद्गद वाणीमें कहा—महाराज! श्री रामचन्द्रजीने धर्मका पालन करते हुए दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर कहा है—सूत! तुम मेरी ओरसे पूज्य पिताजीके चरणोंमें प्रणाम करना तथा अन्तःपुरमें सभी माताओंको मेरे आरोग्यका समाचार देते हुए उनसे मेरा सादर नमस्कार निवेदन करना। इसके बाद माता कौशल्यासे मेरा प्रणाम कह कर बताना कि मैं कुशल हूँ और धर्म पालनमें सावधान रहता हूँ। उनको मेरा यह सन्देश सुनाना कि; मां! तुम सर्वदा धर्ममें तत्पर रहकर ठीक समयसे अग्निहोत्र करती रहना। पिताजीके

देवताके समान मानकर उनके चरणोंकी सेवा करना। अभिमान और मानको त्यागकर सभी माताओंके साथ हिल-मिलकर रहना। आर्या कैकेयीके प्रति महाराजका स्नेह और सद्भाव बढ़ानेका प्रयास करना। कुमार भरतके साथ राजोचित व्यवहार करना। राजा छोटी उम्रके हों तो भी वे आदरणीय ही होते हैं, इस राजधर्मको स्मरण रखना।' कुमार भरतसे भी मेरी कुशल सुना कर कहना—तुम सभी माताओंके साथ न्यायोचित व्यवहार करते रहना। युवराज पदपर अभिषिक्त होनेके बाद भी पिताजीकी रक्षा और सेवापर ध्यान देना। कुमार! महाराजकी अवस्था बहुत हो गयी है। उनका कभी विरोध न करना। उनकी आशा भंग न होने देना! पिताजीकी आज्ञाके अधीन रह कर ही युवराज पदका उपभोग करो तथा मेरी पुत्रवत्सला माताको अपनी ही माताके समान समझना।' इतना कहकर वे अपने नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। इसके पश्चात् कुमार लक्ष्मणने अत्यंत क्रोधमें भरकर दीर्घ श्वाँस लेते हुए कहा—'राजकुमार श्रीरामको किस अपराधसे बनवास दिया गया है? राजा ने कैकेयीका आदेश सुनकर तत्क्षण ही उसे पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली। उनका यह कार्य उचित हो या अनुचित, परन्तु हम लोगोंको तो बनवासका कष्ट भोगना ही पड़ता है। श्रीरामको बनवास देना कैकेयीके लोभका कारण हुआ हो अथवा राजाके दिये हुए वरदानके कारण, मेरी दृष्टिमें यह कार्य सर्वथा अनुचित हुआ है। यदि ईश्वरके करानेमें उन्होंने ऐसा किया तो भी रामके परित्यागमें ठीक नहीं होता। राजाने इस दुःखके परिणामको नहीं विचारा। यह उनकी बुद्धि स्वल्पता है। मैं माता, पिता आदिके वियोगको न सहकर अयोध्या जानेके लिए नहीं कहता हूँ। क्योंकि मेरे तो पिता, भाई; बन्धु; स्वामी सभी राम हैं। सर्वलोक-हितैषी रामको उन्होंने बनवास दिया। तब इनके ये कर्म सबको क्या अच्छे लगेंगे? प्रजाभिराम रामको बन-वास दे, सब लोक-विरुद्ध दशरथ स्वयं ही कैसे राजा होंगे? परम तपस्विनी सीता बड़ी हतचेतिनी हो, खड़ी-खड़ी दीर्घ-श्वासें लेती रही। उस यशस्विनी राजपुत्रीने कभी दुःख नहीं देखा था? अतः वह उस दुःखसे दुखी हो रही थी। उसने मुझसे कुछ नहीं कहा। कभी रामकी ओर कभी मेरी ओर देख-देख नेत्रोंसे अश्रु बरसा देती। मानों उसी रूपमें वह अपने सारे कथन कह

दी। वह उस राजरथकी ओर और मेरी ओर देख रही थी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ सर्ग

(सूतके समक्ष रामके लिए राजा दशरथका विलाप)

रामके वनमें प्रवेश करते ही घोड़े हिनहिनाकर गरम-गरम आँसुओंको छोड़ते हुए उन्हींकी ओर बनको जाने लगे। राम लक्ष्मणके चलते समय मैं हाथ जोड़ उनका दुःख हृदयमें धारणकर चला आया। वहाँसे आ कई दिन गुहके यहाँ रहा कि, कदाचित राम मुझे फिर न बुलायें। हे महाराज! राम-वनवास के दुःखसे भयसे देशके वृक्ष भी कुँभला गये हैं। नदी, ताल और तलैयोंका जल गर्म हो गया है तथा उपवनोंके पत्ते सूख गए हैं। न सर्प रेंगते और न जीव चलते थे। उनके शोकसे वनमें शब्द ही नहीं होता था। नदियोंका जल दूषित हो गया। उनमें कमलोंके सड़ेगले पत्ते बहते हैं। अयोध्याकी समस्त वाटिकाएँ शून्य पक्षी-रहितहो गई हैं। कोई वाटिकादि मनको प्रफुल्लित करनेवाला दिखाई नहीं देता। पुरीमें प्रविष्ट करनेपर किसीने भी सत्कार नहीं किया। रामके बिना सभी बारबार साँस ले रहे हैं। राम-रहित राजरथको राजमार्गमें देख सभी रोने लगे। कोठों, विमानों और अट्टालिकाओंपर चढ़ी स्त्रियाँ राम-हीन रथ देख हाहाकार करने लगीं। मुझे अयोध्यामें मित्र, शत्रु या उदासीन ऐसा कोई न दिखाई पड़ा जो दुःखित न हो। यहाँ भी सब निरानन्दही दीखते हैं। रामके बन जानेसे सभी दुःखी हैं। कौशल्याके समान ही अयोध्या नगर दुःखी है। सुमन्त्रके ऐसे वचन सुन दशरथ दुःखित हो अश्रुपात करतेहुए बोले—इस पापिनी कैकेयीके कहनेसे मैंने रामको वनवास दिया। अपने मन्त्रियोंसे भी परामर्श न किया। न सुहृदोंसे, न महाजनोंसे कुछ पूछा, केवल स्त्रीके निमित्त मोहसे अति शीघ्रतामें यह काम कर डाला। हे सूत! भावीवश यह बड़ा कष्ट मैंने इस कुलके नाशके लिये प्राप्त किया। हे सुमन्त्र! यदि मेरा कुछ भी सत्कृत हो तो उसके प्रभावसे तुम मुझे रामके पास पहुँचाओ, अब मेरे प्राण निकलनेको हैं। यदि अबभी मेरी आज्ञा मानी जाती हो तो उसे मान, कोई रामको लौटा लाये। यदि राम दूर चले गए हों और इस समय नहीं आ सकते हों तो मुझे ही रथपर चढ़ा

कर रामको दिखा दो। महाधनुर्धर राम कहाँ हैं? यदि उनको इस समय सीता के साथ देखता तो जी जाता। यदि अबभी रामको न देखा तो इससे अधिक दुःख और क्या होगा? हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीते! मेरी वेदनाको तुम नहीं जानते कि, मैं तुम्हारे दुःखसे एक अनाथके समान प्राण-विसर्जन करता हूँ। इस प्रकार संज्ञा शून्य हो प्राणोंसे शोकमग्न हो कहने लगे—हा! दुष्टा कैकेयीको दिये हुए वरके कारण शोकरूपी अथाह सागरमें रामके बिना मैं डूब रहा हूँ। हे कौशल्ये! इस शोक-सागरसे मेरा जीना कठिन है। आज एक बड़ा भारी पाप मेरे समक्ष मुँह बाये खड़ा है। तभी तो लक्ष्मण सहित मैं रामचन्द्रको नहीं देखपाता हूँ। यद्यपि मेरे मनमें उन्हें देखनेकी प्रबल उत्कंठा व्याप्त है। इसप्रकार विलपते हुए परम यशस्वी राजा दशरथ मूर्च्छित हो सहसा शय्यापर गिर पड़े। उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी। तब संज्ञा-शून्य पड़े हुए नरेशके उस अति करुणाजनक भाषणको सुनकर राम-माता कौशल्या देवीका मन दूना भयभीत हो गया। उन्होंने सोचा, क्या इस दुःखमें अब पतिके बिछोहसे उत्पन्न पीड़ाभी आकर जुट जायगी?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका उनसठसवाँ सर्ग समाप्त ॥५६॥

साठवाँ सर्ग

(शोक-ग्रस्त कौशल्याका भी कहना कि मुझे भी दण्डकारण्यमें ले चलो तथा पुनः शोक)

कौशल्याका शरीर थर्थर काँपने लगा। वह पृथ्वीपर गिर पड़ीं। फिर सँभलकर सुमन्त्रसे बोलीं—"हे सूत! जहाँ राम, सीता और लक्ष्मण हैं, वहाँ मुझे ले चलो। उनके बिना मैं क्षणभर भी नहीं जी सकती। शीघ्रही रथको लौटा मुझे दण्डक वनको ले चलो। यह सुन कौशल्याको गद्गद वाणीमें सम-झाते हुए सुमन्त्र हाथ जोड़कर बोले—अब आप तो इस शोक-दुःखभ्रमको त्याग दें। राम वनमें भी सुखी रहेंगे। लक्ष्मण भी वनमें रामके चरणोंकी सेवा करते हुए परलोकको आराध्य करेंगे। रातमें चित्त लगाये सीताभी वनमें घरके ही समान रहती हैं। सीताका कोई भी कार्य मैंने दीनता युक्त नहीं देखा। वह जैसे फुलवाड़ियोंमें बिहरती थीं, वैसेही वनोंमें भी विहरती हैं। सीताका मन राममें लगा हुआ है। इससे उनका जीवनभी उन्हींके अधीन है। सीताके लिए रामके बिना यह पुरी बनवत् है। सीता ग्राम, नगर, नदी आदिको देख

राम व लक्ष्मणसे पूछती थीं और उसका वृतान्त सुन प्रसन्न होती थीं। कैकेयीके विषयमें भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। इसी प्रकारकी बातें कह सुमन्त्रने कौशल्याके प्रमादको ध्वस्तकर दिया और फिर कहने लगे कि, मार्गकी थकावट से वायु-वेग तथा संभ्रम और धूपसे सीताकी चन्द्र समान प्रभा नहीं जाती। कमलवत् शोभित देदीप्यमान सीताका मुखमण्डल वनवासके कष्टसे कम्पित नहीं होता। जब विना महावरही सीताके चरण सुन्दरतासे शोभित होते हैं। चरणोंमें भूषण नहीं, किन्तु ऐसी प्रसन्नतासे चलती हैं मानों घुँघरू पहने चली जाती हैं। सीता वनमें वाघ, सिंह, हाथीको देख कुछ भयभीत नहीं होतीं। आप सीता, राम व लक्ष्मणका शोक न करें। इस रामचरितको होने दीजिए। सृष्टि पर्यन्त यह स्थित रहेगा। शोक-रहित आनन्द-वृत्तिसे वे तीनों महर्षि-आचरित उत्तम मार्ग पर चल रहे हैं। वनमें उनका मन रमता है और वन-फल खाकर वे पिताकी आज्ञाका परिपालन कर रहे हैं। इसप्रकार सुयोग्य वक्ता सुमन्त्र "शोक मत कीजिये" ऐसा कहते थे, तो भी पुत्र-शोकसे कृश कौशल्या 'हे प्रिय पुत्र, राम !' ऐसा शोक कररही थीं।

इति श्रीमद्वाल्मीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥६०॥

इकसठवाँ सर्ग

(पुत्र-शोकसे क्रुद्ध कौशल्या-दशरथ-संवाद)

राम वन-गममके कष्टसे पीड़ित कौशल्या रोती हुई अपने पति महाराज दशरथसे बोलीं—राजन्! यद्यपि आपका यश त्रयलोक्य व्याप्त है कि आप बड़े ही दयालु, दानी और प्रियवादी हैं, अतः यह तो कहिए कि सीता और अपने दोनों पुत्र वनके दुःख कैसे सहन करेंगे? सुकुमारी सीता वनकी गर्मी जाड़ा कैसे सहेगी? यहाँ और जनकपुरमें अनेक प्रकारके भोजन करकेवनके खट्टे और तीखे फल और मुनियोंके निःस्वाद भोजन कैसे करेगी? यहाँ नाना गान वाद्यकी ध्वनि सुन अब सिंहादिकोंके भयङ्कर शब्द कैसे सुनेगी? सबको उत्सव करानेवाले राम भूषणरहित परिघवत् भुजाका तकिया बनाए कहीं शयन करते होंगे? कमलाकार सुन्दर दाढ़ी मूँछ संयुक्त कमलनयन रामका मुख अब फिर कब देखूँगी। प्रियदर्शन रामको बिना देखे हृदयके सहस्रों टूक क्यों नहीं हो जाते? इससे ज्ञात होता है कि

हृदय वज्रसारवत् कठोर है। आपने दयाभाव छोड़ राम, सीता, लक्ष्मणको निकाल दिया। अब वे कृपणोंके समान वनमें इधर-उधर फिरते हैं। यदि चौदह वर्ष बाद राम वनसे लौटे भी तो भी भरत राज्य-कोषादि न छोड़ेंगे। फिर भरतके भोगे हुए राज्यको राम अंगीकार भी क्या करेंगे? वह तो ब्राह्मणोंके भोजनके अवच्छिष्ठ अन्नके समान हो जायगा। जैसे प्रथम बारकी पंगतिके बाद प्रतिष्ठित ब्राह्मण अवशिष्ट अन्न नहीं खाते। जैसे व्याघ्र अन्य जीवका लाया मांसादि खानेकी इच्छा नहीं करता, ऐसेही नरव्याघ्र राम भरत के जूठे राज्यको स्वीकार न करेंगे। यज्ञसे बची हुई सामग्री फिर दूसरे यज्ञके योग्य नहीं रह जाती। सारांश निकाला अमृत ग्रहण योग्य नहीं रह जाता। अतः वनसे लौटनेपर जिस राज्यको राम पावेंगे भी तो न ग्रहण करेंगे। ऐसे अपमानको राम न सह सकेंगे। बलवान सिंह पूँछ छू लेनेके अपमानको नहीं सहता। राज्य न लेनेपर भी उसकी अप्रतिष्ठा नहीं हो सकती। महाबली राम अपने सुवर्णके बाणोंसे प्राणियों व समुद्रोंको ऐसे भस्म कर सकते हैं जैसे प्रलयके समय सब भस्म होते हैं। ऐसे सिंहवत् बलीवृषभस्कन्ध रामको पिता होकर आपहीने मार डाला। हा, ऐसे धर्मात्मा पुत्रको आपने वन-निकाल के नष्ट कर दिया। राजन्! स्त्रीकी गति तो एक पतिही है और दूसरी पुत्र तथा तीसरी जातिके लोग हैं, चौथी और कोई गति नहीं। इनके अभावमें उनका धर्म नहीं ठहरता। तब पहली गति जो पति है, वह तो मूर्च्छितही पड़े हैं, दूसरी गति पुत्र वह वनको चले गये, तीसरी गति परिवार वह भी रामके वियोगसे मरेही हैं। आपके यहाँ रहनेसे मैं वनमें जाना नहीं चाहती। अतः सर्वथा तुमने मुझे मारही डाला। आपके द्वारा राज्य सहित राष्ट्र, मन्त्रिजन, सब स्त्रियोंका पुत्रों सहित मेरा और प्रजाजनोंका घात हुआ है। केवल आपका पुत्र भरत और कैकेयी प्रहृष्ट हुई है। यह उपर्युक्त कठोर भाषण सुनकर राजा दशरथको और भी दुःख हुआ। तब 'हे राम' ऐसा पुकारकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो गये। पुनः शोकाकुल हो अपने दुष्कृत्यका स्मरण करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकांडका इकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६१॥

बासठवाँ सर्ग

(कौशल्याके कठोर वचनोंसे दशरथकी मूर्च्छा और दोनोंका शोक)

शोकित कौशल्याके ऐसे कठोर वचनोंको सुन राजा दुःखित हो चिन्ता करने लगे और जो उनकी एक दीर्घ-मूर्च्छा उचटी तो वे बहुत देरतक वैसेही पड़े रहे। परन्तु जब उनकी मूर्च्छा जगी तब दीर्घ गर्म साँस लेते हुए बगलमें बैठी हुई कौशल्याको देख फिर चिन्ता करने लगे। उसी समय उन्हें शब्दवेधी बाण द्वारा श्रवणको मारने और शाप प्राप्त होनेका स्मरण हो आया जिससे महाराज रामके शोकसे और भी अति पीड़ित हो गये। तब दोनों शोकोंसे भस्म होते महाराज काँपते हुए हाथ जोड़ कौशल्यासे बोले—हे प्रिये! जिससे तुम शत्रुओंपर भी दया करती हो और प्रसन्न रहती हो, वह मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ। हे देवि! धर्मवती स्त्रियोंके लिए पति ही धर्म है, चाहे वह सुशीलहो या कुशील, गुणी हो या निर्गुणी, कुलीन हो या अकुलीन। तुम धर्मनिष्टोंको देखती हुई मुझ दुःखितको कष्ट न पहुँचाओ। तब अतिदीन हुए राजाके एसे करुणपूर्ण वचनोंको सुन कौशल्याके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। वह हाथ जोड़ चरणोंपर शिर धर रुदन करती हुई कौशल्या बड़ी नम्रता से बोली—"देव! प्रसन्न होइये। मैं आपके आगे भूमिपर शिरसे प्रणाम करती हूँ। मैं तो पुत्रशोकसे योंही मरी बैठी हूँ। अब आप मेरे कड़े वचनोंसे अप्रसन्न हो मुझे न मारिये। इस लोकमें या परलोकमें बड़ाईके योग्य वह स्त्री अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है, जिसका पति उसे मनाये। मैं स्त्री-धर्मको भलीभाँति जानती हूँ कि उनके प्रत्येक कार्य पतिकी प्रसन्नतार्थ होते हैं और यहभी जानती हूँ कि आप सत्यवादी हैं। जो कुछ मैंने कटुवचन कहे हैं वे पुत्रशोकसे ही कहे हैं। शोक धैर्य और श्रुतका नाश कर देता है। शोक जैसा कोई शत्रु नहीं। शत्रुका भीषण प्रहार तो सहा जा सकता है, पर शोकका नहीं। इसको रोकना दुष्कर है। रामके वनबासकी बीती हुई पाँच रात्रियाँ मुझे पाँच वर्षके तुल्य बीती हैं। चिन्तासे बढ़ते हुए नदीके वेगके समान शोकसे मैं बड़ी दुःखित हूँ।" कौशल्याके ऐसा कहते रात्रि हो गई और राजा फिर शोकातुर हो गये। कौशल्याके वचनोंसे कुछ प्रसन्न भी हुए थे, किन्तु शोकने फिर अधिकार जमा लिया और वह निद्राके वशीभूत हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

दशरथ द्वारा श्रवण-वधकी कथा

एक मुहूर्तके बाद राजा जागे तो शोकसे व्याकुल चित्त हो चिन्ता करने लगे। राम लक्ष्मणके बनवासके उपद्रव बढ़े शोकने दशरथको ऐसा घेरा जैसे राहु सूर्यको। सपत्नीक राम-बनवास पर अपने किये हुए पापको यादकर दशरथ कौशल्यासे कुछ कहने लगे। वनबासके पीछे आज छठीं रात्रिको अर्ध रात्रिके समय राजाने अपने किये पापका स्मरण किया। तब दुःखित हो कौशल्यासे कहने लगे—हे भद्रे! पुरुष संसारमें शुभ-अशुभ जो भी कर्म करता है, उससे उत्पन्न फलको वह स्वयंही पाता है। जब प्राणी कर्म करने लगे और उसकी गुरुता, लघुता, दुःख आदिको पहले ही जान ले, तो वह बड़ा मूर्ख कहलाता है। यदि पलाश-वृक्षके लाल-लाल सुन्दर फूल देख वह अनुमान करे कि इसके फल भी अच्छे होंगे और इसी विचारको लेकर वह आमके पुष्पोंको सुन्दर न जान काट दे तो वह पीछे पश्चातापही करता है। ऐसे ही कार्य करते समय जो जन उस कर्मके परिणामको नहीं सोचता वह फलके समयमें ऐसे ही पछताता है जैसे पलासको सेवनेवाला। अतः मेरी भी वही दशा हुई है कि आमका वन काट ढाकको सींचा है और जब फल पानेका समय आया तब रामको वन भेज अपनी दुष्ट बुद्धिको सोचता हूँ। हे कौशल्ये! कुमारावस्थामें एक समय मैं आखेट करने गया और सोचा कि लोग मेरे विषयमें कहें कि 'यह बड़ा शब्दवेधी है' अतएव यह पाप किया। हे देवि! वही किया हुआ पापरूपी दुःख मुझको प्राप्त हुआ है। हे देवि! यह वृत्त तबका है, जब कि तुम्हारा विवाह नहीं हुआ था और मैं युवराज था। वर्षा ऋतुका सुहावन समय था। मैं धनुष बाण ले रथपर सवार हो शिकार खेलने के लिए सरयू नदीके तटपर गया। मेरा बिचार था कि रातमें पानी पीनेके घाटपर भैंसा, हाथी या सिंह कोई जीव आवे तो उसे मारूँ। उसी समय वर्षाकी अँधेरीमें कोई जल भरने आया। जब घड़ा पानीमें डुबाने लगा, तो उसका ऐसा शब्द हुआ मानो हाथी है। अतः मैंने यह समझकर कि हाथीही मेरे बाणका लक्ष्य बनेगा, एक विष बुझा बाण निकाला और उस शब्दको

लक्ष्य करके चला दिया। उस समय रात बीत चली थी। मुझे पानीमें गिरते हुए किसी वनवासीका हाहाकार सुनायी पड़ा। मेरे वाणसे उसके मर्ममें बड़ी चोट पहुँची थी। तत्क्षण ही यह मानवी शब्द कर्ण गोचर हुआ—'आह मेरे जैसे तपस्वी पर शस्त्रका प्रहार कैसे हुआ ? मैं तो सरिताके एकान्त तट पर जल लेने आया था। किसने मुझे यह तीर मारा ? मैं वनमें रहता और वनके फल मूलोंसे ही जीविका चलाता था, मुझ जैसे निरपराधका शस्त्रसे बध क्यों किया गया ? मैं वल्कल और मृगचर्म पहननेवाला जटाधारी तपस्वी हूँ। मुझे मारनेसे किसने अपना लाभ सोचा ? मैंने मारनेवालेका क्या अपराध किया था ? मेरी हत्याका प्रयत्न व्यर्थही किया गया—इससे किसीको कुछ लाभ नहीं होगा, केवल अनर्थ ही हाथ लगेगा। मुझे अपने जीवनके नष्ट होनेकी उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी मेरे मृत्युसे मेरे माता-पिताको कष्ट होगा। इसीके लिए मुझे अधिक शोक हो रहा है। उन दोनों वृद्धोंका मैंने बहुत समयसे पालन-पोषण किया है। अब मेरे शरीरके न रहनेपर वे किस प्रकार जीवन-निर्वाह करेंगे! घातकने एकही वाणसे मुझे और मरे वृद्ध माता पिताको भी मार डाला।' उसके ये करुणावचन सुन मेरे हाथसे धनुष वाण छूट भूमिपर गिर पड़े और मेरा शरीर काँपने लगा। मैं शोकके आवेगसे व्याकुल हो गया, मुझे मूर्च्छा आ गयी। अति दुर्मना हो उस स्थानपर पहुँचकर देखा तो सरयू तटपर वाणसे मरा हुआ, जटा धारण किए, जल भरा घड़ा हाथमें पकड़े, एक तपस्वी पड़ा है जिसके अंगोंमें लोहूकी सनी धूलि लगी है और जो वाण-पीड़ासे व्यथित भूमिमें पड़ा है। फिर तो वह मुझे व्यग्र-सा देख, अपने तेजसे मुझे भस्म-सा करता हुआ बोला—राजन्! इस वनमें रहकर मैंने तुम्हारा कौन अपकार किया ? मैं तो स्वमाता-पिताके लिए जल लेने आया था, तुमने मुझे मार डाला। वाण द्वारा मेरा मर्मस्थल बेध तुमने और भी दो वृद्ध अन्धोंको जो मेरे माता पिता प्यासके मारे मेरा मार्ग देखते होंगे—मारा है, बड़ी देरसे प्याससे होनेसे बड़े दुःखी होंगे। मेरी यह दशा उन्हें किसी प्रकार ज्ञात नहीं हो सकती। न तपसे न शस्त्र-बलसे। पिता क्या जानें कि मैं वाणसे हत पृथ्वीपर सोता हूँ। वे जानकरभी क्या कर सकते हैं? क्योंकि वह अपराक्रमी और अशक्त हैं। मेरे माता पिता अन्धे और पंगु होनेसे असमर्थ

मथ हैं। सो हे राजन् ! तुम्हीं मेरे माता पिताके पास जाकर कहो; नहीं तो तुमको पिता भस्म कर देंगे। जहाँ मेरे पिताका स्थान है, वहाँ तक यह छोटी पगडण्डी चली गई है। वहाँ जाकर मेरे पिताको प्रसादित करो, जिससे वे तुमको शाप न दे दें। मेरे मर्मस्थानमें लगे वाणको भी निकाल दो। क्योंकि यह मुझे पीड़ा दे रहा है।' यह सुन मैंने सोचा कि वाण निकालतेही इसके प्राणभी निकल जायेंगे। अतएव चिन्तासे व्याकुल हो वाणको निकाल सका। तब वह मुनि-पुत्र मेरी दशाको समझ मुझसे बड़ी कृपायुक्त बोला—यद्यपि उसमें बोलनेकी शक्ति न थी; क्योंकि उसके सब अंग काँप रहे थे, प्राण निकलाही चाहते थे। तबभी दयाकर बड़े धैर्यसे स्थिर-चित्त हो कहने लगा—'राजन् ! ब्रह्महत्यासे डरते हो इससे वाण नहीं निकालते। न डरिए, क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, आप संकोच न करें। मैं शूद्रा स्त्रीमें वैश्यसे उत्पन्न हूँ।' बाण निकालनेके समय वह छटपटाने लगा, पर मैंने बाण निकाल दिया। बाण निकालतेही, मेरी ओर देखते हुए भयभीत हो उसने प्राण त्याग दिए। तब जलसे भींगा हुआ तथा वाण-व्रणजनित दुःखसे विलाप करते मरे उस तपस्वीको देख, हे कौशल्या ! मैं बड़ा ही दुःखित हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका तिरसंठवाँ सर्ग समाप्त ॥६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

मुनिकुमार वधका प्रसङ्ग सुनाकर राजा दशरथका प्राण त्याग

इसप्रकार ऋषि-पुत्रका अनुचित बध दशरथ रो-रोकर कहते हुए कौशल्यासे बोले—'हे प्रिये ! अज्ञानमें यह पाप कर व्याकुल चित्त मैं उस शून्य स्थानमें यह सोचने लगा कि, अब इसके बधका पाप कैसे मिटेगा ? बहुत सोचकर उस घड़ेमें सरयू जल भर ऋषिपुत्रकी बताई हुई उस पगडंडीसे उसके स्थानपर गया। देखातो वहाँ अति दुर्बल अन्धे वृद्ध उसके माता-पिता पंख कटे पक्षियोंके समान बैठे हुए पुत्रकी बाट देख रहे हैं। उसी समय शोकसे व्यचित्त और भयभीत मैं उस आश्रमपर पहुँचा। मेरे पैरोंकी आहट सुनके मुनि बोले—"पुत्र ! अब विलम्ब क्यों करते हो ? शीघ्रही हमको जल लाओ। जलमें बहुत जल-क्रीड़ा करते रहे, इससे तुम्हारी माँ बड़े यादमें स्मरण करती है, शीघ्रही स्थानमें प्रवेश करो। पुत्र ! तुम्हारी माताने और

मैंने जो अपराध किया हो, तुम उसपर ध्यान न देना। इन असमर्थ अन्धों
पालक तुम्हींमें हमारे प्राण लगे हैं, तुम क्यों नहीं बोलते ?' वृद्धताके कारण
बहुत धीरे-धीरे बोलते थे। स्पष्ट शब्द सुनाई नहीं देता था। तब मैं डरते
डरते उनसे बोला और धीरेसे उनके कष्टका हाल कहनेमें लगा—'मुनिराज!
दशरथ नाम क्षत्रिय हूँ। आपका पुत्र अब नहीं है। आप बड़े सज्जन हैं
पर नहीं ज्ञात आपने यह दुःख क्यों पाया है ? भगवन् ! मैं धनुर्बाण ले पनघ
पर हाथी, सिंह आदि जङ्गली जीव मारनेके लिए सरयू तटपर गया, व
जलमें घड़ा डूबनेका शब्द सुन और यह जान कि हाथी पानी पी रहा है, बा
चलाया। फिर मैं सरयू-तटपर जाकर जो देखा तो उसी बाणसे छिन्नहृद
प्राणनिकलते एक तपस्वी पृथ्वीपर पड़ा है। मैं बाण नहीं निकालना चाह
था, पर उसीके कहनेसे निकाल दिया जिससे वह आप लोगोंका शोक कर
हुए स्वर्ग-यात्राकी। इसप्रकार अनजानमें मैंने तुम्हारे पुत्रको मारा। अ
आप मुझपर कृपा कीजिये। जब स्वमुखसे मैंने अपना अपराध मुनिसे क
तो उसे सुन मुनिसे कुछ बोला न गया। वे केवल आँसू भरकर शोकसे मूर्छि
हो हाथ जोड़ खड़े हुए मुझसे बोले—'राजन् ! यदि आप अपने इस कि
हुए अशुभ कर्मको मुझसे न कहते, तो तुम्हारा सिर फटकर असंख्य टूक
जाता। क्षत्रिय होकर जो तपस्वीका जानबूझकर वध करता है तो चाहे
इन्द्रही क्यों न हो पतित हो जाता है। फिर ब्रह्मवादी तपस्वीका जानबूझ
वध तो उसके शिरके टुकड़े-टुकड़े ही कर देता है। परन्तु तुमने तो अज्ञान
में मेरा वध किया है, इसीसे जीवित हो; अन्यथा जानबूझकर करनेसे तो र
वंशही न रहता। हे राजन् ! हम अपने पुत्रको देखना चाहते हैं, हमें वहीं
चलो, क्योंकि अब उसके अन्तिम दर्शन हैं। उसके अङ्गोंमें लोहू लगा होग
मृगचर्म अलग पड़ा होगा, मूर्छित भूमिमें सोता होगा और उसके प्रा
यमराजके समीप पहुँच गये होंगे।' फिरतो मैंने उन दोनोंको कन्धेपर च
लिया और उनके पुत्रको स्पर्श करा दिया। वे दोनों अपने पुत्रको टटो
उसीके देहपर गिर पड़े। फिर उसका पिता बोला—'हे वत्स ! आज हमें प्रण
नहीं करते। हमसे बोलते नहीं हो ? पृथ्वीपर सो रहे हो, क्या हमसे रुष्ट
गये हो ? यदि मैं तुमको अप्रिय हूँ तो अपनी धर्मिणी माताको देखो, स

नहीं उठकर आलिङ्गन करते। अब हम अर्द्धरात्रिके पश्चात् शास्त्र आदि पढ़ते हुए किसके मनोहर बचन सुनेंगे? अब स्नान सन्ध्या समाप्त करके पुत्र-शोकसे दुःखित हमारी सेवा कौन करेगा, अब कन्दमूल लाकर ऐसे अनाथको कौन भोजन करावेगा? अब हम इस वृद्धा अन्धी तुम्हारी माताको कैसे पालन पोषण करेंगे? क्योंकि यह रात-दिन पुत्रकी ही आकांक्षा किया करेंगी। हे पुत्र! अभी ठहरो, यमराजके स्थानको न जाओ। प्रातः मेरे और अपनी माताके साथ चलना। क्योंकि हम दोनों भी तो तुम्हारे बिना शीघ्रही यमालय जायेंगे। वहाँ चलकर हम यमराजसे कहेंगे कि हमने जो अपराध किया हो उसे क्षमा करें और हमारे पुत्रको हमलोगोंके पालनकी आज्ञा दो। हमें आज्ञा दो। हमारे ऐसा कहनेपर वे धर्मराज हमें यह अक्षयदक्षिणा देंगे। हे पुत्र! तुम तो पापी नहीं हो, पर कोई तो पूर्वजन्मका पाप था, जिससे मारे गये। परन्तु इस जन्ममें तुमने कोई पाप नहीं किया। इसी सत्यमें तुम वीरोंके लोकको जाओ। तुम्हें वह गति प्राप्त हो जो सन्मुख मरे हुए लोगोंको प्राप्त होती है। हे पुत्र! राजा सगर, शैब्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष और धुन्धुमारने जिस गतिको प्राप्त किया, वही तुम्हेंभी मिले। स्वाध्याय और तपस्यासे जो गति प्राप्त होती है, भूमिदाता, अग्निहोत्री, एक पत्नीव्रतका पालन करनेवाले, एक हजार गौ देने वाला, गुरुकी सेवा तथा पालन-पोषण करनेवाले पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हेंभी प्राप्त होवे। इसप्रकार वे दीनभावसे बारंबार विलाप करने लगे। इसी समय वे धर्मवेत्ता मुनिकुमार पुण्यकर्मोंके प्रभावसे दिव्यरूप धारण करके इन्द्रके साथ स्वर्ग जाने लगे। तब उन्होंने अपने वृद्ध माता-पिताको आश्वासन देकर कहा—मैं आप दोनोंकी सेवासे उत्तम स्थानको प्राप्त हुआ हूँ। आपलोग भी शीघ्रही मेरे स्थानको प्राप्त होंगे।' इस प्रकार मुनिसे कह मुनिपुत्र विमान पर चढ़ा। पश्चात् स्त्री सहित वह मुनि पुत्रको तिलोदक दे हाथ जोड़ खड़ा हो मुझ से बोला—राजन्! तुमने हमारे पुत्र-को मारा, अब हमको भी मारडालो। हमें मरने में कुछ दुःख नहीं हैं। तुमने अज्ञानवश हमारे पुत्रको मारा है, तथापि हम तुमको शाप देते हैं कि तुम्हें भी अति दारुण कष्ट प्राप्त होगा। हे राजन्! जैसे हमको इस समय यह पुत्रका शोक है और जिससे हम शीघ्र ही मरेंगे, वैसे ही तुम भी पुत्र-शोक-

से प्राण छोड़ोगे। तुमने अनजान से हमारे पुत्रको मारा है, इसीसे तुमको ब्रह्महत्या नहीं हुई। पर तुम भी बहुत शीघ्र इसी पुत्र-शोक की दशा में मरोगे।' इसप्रकार मुझे शापितकर काष्ठकी चिता बना अग्नि लगा वे दोनों जलकर स्वर्गको प्राप्त हुये। हे देवि! चिन्ता करते हुए मुझे इस पापका स्मरण हो आया। यह उसी पापका फल है जो मैंने अज्ञानसे शब्दवेधी बाण द्वारा किया है। जैसे अपथ्य से व्याधि होती है ऐसे ही उस महात्मा ऋषिके वचन आज मुझे प्राप्त हुये। यह कह रुदन करते राजा कौशल्या से बोले—अब मैं पुत्र-शोक से मरता हूँ। अब मुझे दीख नहीं पड़ता! तुम मुझे पकड़े रहो। यमपुर जानेवालोंको कोई दिखाई नहीं पड़ता। हाय! यदि राम आकर मुझको स्पर्श करें और पीछेसे कुछ सहारा करें तो अवश्य मैं जी सकता हूँ। पर रामके साथ मैंने जो कर्म किये वह मुझे नहीं करना चाहिए था। किन्तु उनके योग्य जो था वह तो उन्होंने किया। पुत्र दुराचारीभी हो तोभी विचारवान् पुरुष उसे नहीं त्यागते। ऐसा कोई पुत्र न होगा जिसे पिताने घरसे निकाल दिया हो; परन्तु वह कुछ न कहे। हे प्रिये! अब मैं तुम्हें नहीं देख पाता। स्मरण भी जाता रहा। अब कोई भी बात स्मरण नहीं आती। हे प्रिये! यमदूत आगे आकर खड़े हैं। मुझे शीघ्र ले जाना चाहते हैं। कहते हैं, जल्दी करो। भला इससे भी अधिक कष्ट क्या होगा कि, मरते समय मैं रामको नहीं देखता? वे लोग धन्य हैं जो पन्द्रह वर्ष बाद रामके चन्द्रमुख अवलोकन करेंगे। जो मदनसमरूप रामके कमलवत् सुगन्धित मुख देखेंगे। हे प्रिये! अब चित्त-मोहसे मन बहुत व्याकुल है। हे कौशल्ये! अब मेरे हृदय से उठा शोक अचेतन अनाथकी भाँति मुझको वेगसे वैसे ही गिराये देता है, जैसे नदीकी धारा उसके तटों को गिराती है। हा महाबाहो राघव! हा पिताके प्यारे पुत्र! हा कौशल्ये! तुम दिखाई नहीं पड़ती। हा तपस्विनी सुमित्रा! तुम्हें मैं देख नहीं पाता। हा नृशंसिनी, सुमित्रा, कुलपांसिनी कैकेयी! यह कहते-कहते दशरथ कौशल्या और सुमित्राके समक्ष रोने लगे और इसीप्रकार सोचते हुए जीवनकी अन्तिम गतिको प्राप्त हुये। अर्द्धरात्रिका समय था, प्रिय पुत्रको बनमें निकाल देनेसे आतुर, दीन तथा दुःखसे अति पीड़ित हुए दशरथ पंचतत्वको प्राप्त हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ सर्ग

(दशरथ की मृत्यु पर उनकी स्त्रियों का शोक)

रात्रि व्यतीत होनेपर जब प्रातःकाल हुआ तो सब बन्दीगण राज-
न्दिर के द्वारपर पहुँचे। सूतलोगभी अच्छे वस्त्रादि धारण किये तथा
ङ्गलपाठ बोलनेवाले और गायक लोग आ-आकर अलग-अलग बैठ गये।
लोग उच्च स्वरसे राजाको आशीर्वाद देने और उनकी स्तुति करने लगे।
नका शब्द राजा जिस धवरहर पर पड़े थे, वहाँ तक पहुँचा। जब वे लोग
तुति करने लगे, तब तालियाँ बजानेवाले लोग तालो बजाकर राजवंशकी
रम्परा आदि गाने लगे। उस शब्दको सुन राजाके यहाँ पालित पक्षी जो
पिञ्जरोंमें रहते थे और जो वृक्षोंकी शाखोंपर रहते थे जाग उठे और बोलियाँ
ोलने लगे। इन सबके शब्दों और वीणा आदि शब्दों तथा आशीर्वादोंको
वनिसे वह मन्दिर गूँज उठा। सेवाकर्ममें निपुण सदाचारी लोग तथा स्त्रियाँ
ौर नपुंसक गण यथापूर्व स्तुति करने लगे। चन्दनमिश्रित जल स्वर्ण-
लशोंमें भरकर स्नान करानेमें चतुरलोग अपने समयपर लाये। मंगलदायक
ोजन करने, चखने, देखने आदिकी शुभ वस्तुएँ, कुमारिकाएँ और जिनमें
अधिक स्त्रियाँ थीं आकर एकत्र हुईं। जितनी भी वस्तुएँ आईं सभी लक्षण-
सम्पन्न सविधि पूजित एवं लक्ष्मीयुक्त थीं। सूर्योदय नहीं होने तक राजाके
आगमनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। परन्तु जब राजा न ीं आये तो शङ्का करने
गे। उधर अन्तः पुरकी वे स्त्रियाँ जो राजासे कुछ हो अन्तरपर थीं और
ात्रिमें महाराजकी स्वर्गयात्रा नहीं जानती थीं, वे आकर जगाने लगीं।
न्होंने सबप्रकार विनय और नम्रतासे तथा वस्त्रादि हटाकर राजाको जगाने-
ी चेष्टाकी, पर सफल मनोरथ न हो सकीं। तब उन्हें राजाके प्राणोंकी
ंका हुई। राजाकी इस दशाको देख सब सन्देहसे काँपने लगीं। राजाको
ो कुछ पाप उनके मनमें आया था, अब उसका उनको निश्चय हो गया
ौर कौशल्या, सुमित्रा तो पुत्रोंके शोकसे अत्यन्त ही विह्वल हो रही थीं।
तः वे ऐसी सोईं कि, उन्होंने राजाका मरमा जाना ही नहीं। वे शोकसे
भाहीन हो गई थीं। राजाके समीप बैठी हुई कौशल्या, सुमित्रा वैसे ही

शोभित नहीं होती थीं जैसे मेघाच्छन्न नक्षत्र शोभित नहीं होते। अन्य स्त्रियाँ भी शोकसे आश्रुपात करती हुई नहीं शोभती थीं। उन सब स्त्रियोंने उसी स्थानपर सोती कौशल्या और सुमित्राको तथा राजाको देखा। उन्होंने यह जाना कि ये तीनों ही मर गये। अतएव शोकसे दीन हो सबकी सब उच्चस्वरसे रुदन करने लगीं। तब इन सबका रोना सुन सहसा चैतन्यशील हो कौशल्या तथा सुमित्रा भी जाग उठीं और झटपट दोनों राजाको देख तथा उनके अङ्ग टटोल "हा भर्त्ता" कह पृथ्वीमें गिर पड़ीं और लोटने लगीं। धूल-धूसरित उनका शरीर शोभाहीन हो गया। तब राजाके मृतक होने और कौशल्याके भूमिमें गिर पड़नेसे सब स्त्रियाँ मरी हुई नाग-वधूके समान कौशल्याको देखने लगीं। कैकेयी आदि सब रानियाँ शोकसन्तप्त तथा चेतनाहीन हो रोने लगीं जिनके रुदनसे बड़ाभारी शब्द हुआ। सारा घर गूँज गया। देखनेवाले भयभीत और व्याकुल हो गये। सभी ओरसे दुःख-पीड़ित बन्धुवर्गोंके रोनेका शब्द हो रहा था। जहाँ देखो, दीनता ही दृष्टि आती थी। सारा राजमन्दिर भाग्यहीन हो गया। यशस्वी महाराजको मृत देख सबलोग और रानियाँ दुःख सहित राजाकी बाहें पकड़-पकड़ विलाप करने लगीं॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का पैंसठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

(स्त्रियोंका शोक तथा दशरथके शवको तैल-कड़ाह में रखना)

तब जैसे अग्नि शान्त हो या जल-रहित सागर शान्त हो, ऐसे ही राजाको स्वर्गस्थ देख, नेत्रोंसे अश्रु बहाती हुई कौशल्या राजाको गोद में रखकर कैकेयीसे बोलीं—कैकेयी! अब तू सकामा हो और अकण्टक राज्य भोग। राम वनको चले गये, पति भी स्वर्गको चला गया, अब मैं नहीं जी सकती। ऐसी अवस्था में तुझ कैकेयीके सिवा कौन-सी स्त्री जीना अच्छा समझेगी? जैसे लोभी मनुष्य दोषोंको नहीं देखता, ऐसे ही कैकेयीने भी इस लोभमें फँस कुलका अन्त कर दिया। राजा जनक जब यह सुनेंगे कि कैकेयीके कहनेसे राजाने रामको बनवास दे दिया, तो वह भी परिताप करेंगे। इस समय धर्मात्मा रामको भी क्या ज्ञात होगा कि, मैं विधवा और अनाथ

गई हूँ और राजा जनककी कन्या भी यह नहीं जानती है। वह तो इस समय बनमें दुःख पा व्याकुल होगी। जनक एक तो वृद्ध, दूसरे पुत्र भी उनके नहीं, केवल यही कन्या है जो जानकीके बनवासको सुन शोकसे प्राण त्याग देंगे। मैं तो पतिव्रता हूँ, इसलिए महाराजके शरीरके साथ मैं भी अग्निमें प्रवेश करूँगी। तब इसप्रकार कौशल्याको विलाप करते देख सब दासी आदिकोंने उन्हें राजाके शबसे पृथक किया और मन्त्रियोंने एक तेल भरे द्रोणमें राजाका शरीर रख दिया। उस समय राजाका कोई भी पुत्र वहाँ न था। बहुदर्शी अमात्योंने बिना पुत्र दाहादि क्रिया न की। राजाका शरीर तेलमें रखे जानेपर स्त्रियाँ फिर रुदन करने लगीं। वे अत्यंत दुःखसे नेत्रों-से आसुओंकी धारा बहाती शोक-सन्तप्त हो विलाप करतीं और कहतीं कि, हा राजन्! रामसे रहित हमको क्यों त्यागते हो? हम रामके और आप-के बिना इस दुष्ट कैकेयीके पास विधवा हो कैसे रहेंगे? राम तो सबके सब कुछ कर्त्ता स्वामी थे। वे राज्य-भी त्याग बनमें चले गये। हे राजन्! अब आप और रामके बिना कैकेयीसे सन्तापित हम कैसे रह सकेंगे। कैकेयीने राजा, राम, लक्ष्मण और सीताको त्याग दिया। अब और किसको न छोड़ेगी? ऐसे बड़े शोकसे दुःखित स्त्रियाँ अश्रुधार बहाती हुई निश्चेष्ट हो गईं। दशरथ बिना अयोध्या शोभा-हीन हो गई। जहाँ देखो आँसू बहाते हुए मनुष्य खड़े थे, स्त्रियाँ हाहाकार मचा रही थीं। पुत्र-वियोगजन्य शोक-के मारे नरेशके स्वर्ग-गमनसे और राजमहिलाओंके भूमिपर पड़े रहनेपर सहसा अपना भ्रमण समाप्तकर सूर्य आँखोंसे ओझल हो गया, तथा रात्रिका समय उपस्थित हो अंधकार विस्तृत होने लगा। अयोध्याकी सड़कों और चौराहोंपर भीड़ जमा होने लगी जिनके कंठ आँसुओंकी झड़ीके कारण रुँधसे गये थे। झुण्डके झुण्ड स्त्री-पुरुषोंसे राजमहल भर गया। लोग दुःख-पूर्ण हृदयसे कैकेयीको उलाहना देते हुए सुख-स्थानमें दुःख-धारसे दब गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ सर्ग

(वशिष्ठ ऋषिके साथ मन्त्रियोंकी मन्त्रणा और अराजकता वर्णन)

इस प्रकार रुदन करते निरानन्द अयोध्यामें वह रात्रि येनकेन प्रकारेण व्यतीत हुई। सूर्योदय होतेही राजकाज करनेवाले द्विजातिगण राज-सभामें

आये । मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन और जावालि ये ब्राह्मण अपने-अपने अनुचरों सहित आकर राज-पुरोहित वशिष्ठके आगे बैठकर अपना अभिप्राय प्रकट करने लगे । वे बोले—महाराज तो स्वर्गमें जाबैठे और श्रीराम वनमें जा बसे, लक्ष्मण भी उन्हींके साथ चले गये और भरत शत्रुघ्न भी अपने ननिहालमें विराजमान हैं । इसलिए इक्ष्वाकुवंशियोंमें से किसीको आजही राजा बनाना चाहिये, क्योंकि बिना राजाके यह राज्य नष्ट हो जायगा । अराजक देशमें गर्जते मेघ पृथ्वीपर जलकी वर्षा नहीं करते । अराजक देशमें किसान लोग बीजकी मुट्ठी बोनेके लिए नहीं खोलते, न पुत्र पिताकी आज्ञा मानता और न स्त्री पतिके वशमें रहती। द्रव्य भी नहीं रहता । फिर अराजक देशमें सत्यादि धर्म कैसे रहेंगे ? अराजक देशमें धर्मादि-निर्णयकी लोग सभा नहीं करते और न प्रसन्न हो फूलवाड़ी और वाटिकादि ही लगाते । अराजक देशमें यज्ञ करानेवाले यज्ञ नहीं कराते और न जितेन्द्रिय ब्राह्मण यज्ञ कराते हैं । राजरहित देशमें ब्राह्मणलोग भी यज्ञ नहीं करते और शास्त्रविहित दक्षिणा भी नहीं देते। राजासे शून्य देश नट-नर्त्तकोंसे रहित हो जाता है और अनेक विषयोंके समाज नहीं रह जाते। उद्यमी लोग कोई व्यवहार नहीं करते और न ब्राह्मणोंको बुला कथा ही सुनते । राजरहित देशमें कुमारी कन्यायें वाटिकादिमें खेलने नहीं जातीं। धनवान अरक्षित हो जाते हैं और न खेती करनेवाले तथा पशुपालकगण निर्भय सोने पाते हैं । ऐसे ही दूर देशमें जाकर व्यापार करनेवाले, बेचनेकी वस्तुएँ लेकर कुशलपूर्वक मार्ग-यात्रा नहीं कर सकते । अराजकता होनेपर अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षा नहीं हो पाती । राजाके न रहनेपर सेना भी शत्रुओंका सामना नहीं कर सकती । जैसे पानीके बिना नदी, घासके बिना वन और ग्वालके बिना गौओंकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार राजाके बिना राज्य शोभा नहीं पाता । अराजक देशमें कोई भी मनुष्य किसी वस्तुको अपनी नहीं कह सकता । मछलियोंकी समान सब एक दूसरेका भक्षण करने लगते हैं । जैसे दृष्टि सर्वत्र शरीरके हितमें तत्पर रहती है । उसी प्रकार राजा राज्यके भीतर सत्य और धर्मका प्रवर्त्तक होता है । राजा ही सत्य है राजा ही धर्म है और राजा ही कुलवानोंका कुल है। मनुष्योंका माता-पिता

और हितकारी भी राजा ही है। अपने उदार चरित्रके कारण राजा यम, कुबेर, इन्द्र और वरुणसे भी बढ़ जाता है। यदि लोकमें साधु और असाधु का विभाग करनेवाला राजा न हो तो सारा संसार अन्धकाराच्छन्न-सा हो जाय और कुछ भी सूझ न पड़े। हमलोग महाराजके जीते हुए भी आपके वचन अतिक्रमण नहीं करते थे। इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ वशिष्ठ मुने! आप हमारा वचन सुनिये और आज ही इक्ष्वाकु-कुलका राजपुत्र या अन्य किसी को अभिषेक कीजिये। क्योंकि राजाके बिना यह राज्य अरण्य-वास हो गया है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

(वसिष्ठजीकी आज्ञासे भरतका ननिहालसे बुलाया जाना)

तब उन लोगोंके ऐसे वचन सुन वशिष्ठ मुनि बोले—जो भरत और शत्रुघ्न सुखपूर्वक अपने मामाके यहाँ हैं, उन दोनों भाइयोंको लानेके लिए दूत शीघ्रगामी अश्वोंपर चढ़कर जायँ। सब मुनियोंने कहा, बहुत अच्छा। दूत जायँ। यह सुन वशिष्ठ मुनि बोले—हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त और अशोकनन्दन! तुम सुनो! शीघ्रगामी अश्वोंपर सवार हो राजा केकयके यहाँ जाओ। वहाँ पहुँचकर सब शोक छोड़ भरतसे कहना कि, तुम्हारे कुल-पुरोहित वशिष्ठ तथा सब आमात्योंने आपकी कुशल पूछी है और बुलाया है, शीघ्र चलिये। तुम रामका वनवास और राजाका मरण उनसे न कहना। अच्छे-अच्छे भूषण वस्त्र भरतके लिये लेते जाओ। अब विलम्ब न करो, शीघ्र जाओ। इतना सुन और मार्गके लिए भोजन ले वे सब दूत अपने-अपने घरोंको गये और वहाँसे घोड़ोंपर चढ़ केकय देशको चले गये। तब वशिष्ठजीकी आज्ञानुसार चलते हुए वे दूत अमरताल देशके दक्षिण और प्रलम्बदिशके उत्तरसे और मालिनी नदीके तटसे पश्चिम दिशाको बड़ी शीघ्रतासे चले। फिर हस्तिनापुरके पास गङ्गाको पारकर पांचाल देश तथा कुरुजांगल देशके मध्यमें पहुँचे। मार्गमें उन्होंने अनेक तालाब और नदियाँ देखीं, परन्तु शीघ्र जानेका प्रयोजन था, अतः बढ़े ही चले गये और उस शरादण्ड नामक नदीके तटपर जा पहुँचे कि जिसके तटपर एक वर-दायक

वृक्ष था। वे उसके नीचे जा प्रणाम किये और वहाँसे आगे बढ़ते हुए कुलिंगनगरीमें जा पहुँचे। वहाँसे आगे बढ़ तेजाभिभवन नामक ग्राम मिला। फिर अभिकाल नामक नगर मिला, जहाँसे इक्षुमती नदी उतर वे वाह्लीक देशमें पहुँचे जिसके बीचमें सुदामामान पर्वत भी उन्हें मिला। फिर विशापा नदी, फिर शाल्मली नदी और बहुतसी नदियाँ, वापी आदि देखते वे दूत चले गये। चलते-चलते उनके अश्व थक गये जिससे वे गिरिव्रज नामक नगरमें जाकर कुछ देर आराम किये और फिर चल दिये। इस प्रकार अपने स्वामीके प्रिय तथा रघुकुलके रक्षार्थ अनादर रहित सब दूत रातको नगरमें पहुँचे।

इति श्रीमद्वाल्मीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

भरतको दुःस्वप्न दर्शन

जिस रातको वे दूत उस नगरीमें पहुँचे उसी रातको भरतने बड़ा भयावह स्वप्न देखा। जब प्रातः हुआ तो भरतने बड़ा परिताप किया। तब उनको दुःखित देख, उनके मित्रगण प्रियवचन कह खेद मिटानेकी रोचक कथाएँ कहने लगे। कोई विषाद मिटानेके लिए बाजा बजाने लगे, कोई शान्ति पढ़ने, कोई नृत्य करने और कोई हास्यको बातें करने लगे। सभी मित्रोंने अपनी-अपनी युक्तिसे भरतका बोध किया। उससे सभा हँसी, पर भरत प्रसन्न न हुये। तब जो भरतका एक बड़ा ही मित्र था वह भरतसे बोला—हे सखे! हमलोगोंने बड़ी चेष्टा की पर आप प्रसन्न क्यों नहीं होते? तब भरत उससे बोले—हे मित्र! मेरे विषादका कारण न सुनो! आज रातको स्वप्नमें मलिन वस्त्र धारे बाल खुले पिताको मैले गोबरके कुण्डमें गिरते हुए देखा; जिसमें वे तैरते, तेल पीते और तिलयुक्त भात भोजन करते थे। मैंने सर्वाङ्गमें तेल लगाया था और मेरे पिता तैलमें ही डुबकी लगा रहे थे। मैंने स्वप्नमें देखा कि, सागर सूख गया है, चन्द्र पृथ्वीमें गिर पड़ा है और जगत् अन्धकाराच्छन्न है। उनके सवारीके हाथीके दाँत टूट गए हैं। प्रज्वलित अग्नि शान्त हो गया है। नाना प्रकारके वृक्ष सूखे हैं, पर्वत टूट-फूट गए हैं और लोहेकी चौकीपर बैठे कृष्णवस्त्रधारी मेरे पिताको

काले-पीले वस्त्र पहनी हुई स्त्रियाँ मार रही हैं और पिता लाल वस्त्र धारे गदहोंके रथपर चढ़े दक्षिण दिशाको चले जा रहे हैं और एक राक्षसी विकराल मुख किये राजाको खींचे लिये जा रही है। इस प्रकार यह भयावह स्वप्न देखा है। इसका परिणाम यह होगा कि, मैं, नरेश, राम, लक्ष्मणमें से कोई मृत्युको प्राप्त होगा। क्योंकि स्वप्नमें गदहे जुते रथपर जो प्राणी चढ़ कर जाता है वह शीघ्र ही पञ्चतत्वको प्राप्त होता है। इसी कारण मैं बहुत दुःखी हूँ, मेरा कण्ठ सूखा जाता है और मन स्थिर नहीं है, यद्यपि मैं इसका कोई कारण नहीं देखता तथापि भय प्राप्त हूँ, जिससे मेरा स्वर भी कुछ विचलित हो गया है। यद्यपि मैं अपनी केवल निन्दा ही करता हूँ; तथापि भय निवृत्त नहीं होता है। स्वप्नकी ऐसी गति सुनी तो है, पर उस र कभी विचार नहीं किया। इस दुःस्वप्नसे मुझे महाराजके लिए बड़ा भय हो रहा है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥६६॥

सत्तरवाँ सर्ग

(केकयराजके घर दूतोंसे भरतकी वार्त्ता और भरतका वहाँसे प्रस्थान)

भरतजी स्वप्नकी बात कह ही रहे थे कि घोड़ोंपर सवार दूत राजगृह नामक उस पुरमें आ पहुँचे। उन्होंने राजासे मिल राजपुत्र द्वारा सत्कारित हो भरतसे कहा—वशिष्ठजी तथा आमात्यगणोंने कुशल पूछी है और आपको शीघ्र बुलाया है। यदि देर करेंगे तो कार्य भ्रष्ट हो जायगा। हे विशालाक्ष! ये बहुमूल्य वस्त्रभूषण लेकर अपने मामाको दो। इनमें बीस करोड़ तुम्हारे नानाके लिए है और दश करोड़ तुम्हारे मामाके लिए है। तब न वस्त्रभूषणादि सुहृदोंको दे और दूतोंको सत्कारित कर भरतजी उनसे बोले—पिता दशरथजी कुशलपूर्वक तो हैं? राम लक्ष्मण आरोग्य हैं? धर्मवादिनी श्रीराम-माता कौशल्या आरोग्य हैं? लक्ष्मण और वीर शत्रुघ्नकी माता सुमित्रा आरोग्य हैं? आत्मकामा, सदाचण्डी तथा अपनेको पण्डित मानने वाली मेरा माता कैकेयी तो निरोग हैं? उन्होंने कुछ कहा है? महात्मा भरतके ऐसा कहनेपर वे दूत बड़ी नम्रतासे बोले—हे नरश्रेष्ठ! सब कुशल

हैं। आप शीघ्र रथ तैयार कराइये और चलिये। भरतने दूतोंसे कहा कि अपने नानासे पूछ लूँ कि, चलनेके लिये शीघ्रता कराते हैं! दूतोंसे ऐसा कह भरत अपने नानाके पास जाकर बोले कि, हे राजन्! अब दूतोंकी प्रेरणासे मैं पिताके समीप जाऊँगा। जब फिर स्मरण कीजिएगा तो आ जाऊँगा। तब भरतके ऐसा कहनेपर उनके नाना उनका शिर सूँघ बोले-तात! जाओ तुमको पाकर कैकेयी सुपुत्रवती है। अपने माता पितासे यहाँकी कुशल कह देना। अपने पुरोहित तथा अन्य द्विजोत्तमोंसे और अपने भाई राम लक्ष्मणसे भी कुशल कहना। राजाने भरतको एक उत्तम हाथी और उत्तम चित्र, बहुमूल्य शाल दुशाले, नाना मृगचर्म और बहुत-सा धन दे विदा किया। जो कुत्ते बहुत दिनोंसे रनवासमें बँधे रहते थे और जो बलमें व्याघ्रके समान थे, राजाने गमन करते समय उन्हें दिये। साथ ही दो सहस्र सुवर्णके निष्क, एक सौ सोलह उत्तम घोड़े दिये। साथके लिए बहुत-से विश्वासी मन्त्री आदि कर दिये। पर भरतने गमनकी शीघ्रतामें इन दी हुई वस्तुओंमेंसे कोई भी स्वीकार न किये और दूतोंकी शीघ्रता और स्वप्नके कारण भरतको बड़ी चिन्ता हो रही थी। तब भरतके साथ जानेवाले मनुष्य घोड़े इत्यादि सब सड़कपर खड़े किये। भरत रनवासमें मिलने गये। वहाँसे शीघ्र विदा हो बाहर नानासे पूछ झटपट रथपर चढ़कर चलदिये। जब भरत चले गये तो जो भृत्यगण साथ जानेको उद्यत थे, उनके पीछे-पीछे चले। तब इन्द्रलोकसे निकलनेवाले सिंहके समान ही, स-सचिव, सैन्य-रक्षित, शत्रु-रहित महात्मा भरत शत्रुघ्नको साथ लिए अपने नानाके गृहसे बाहर निकल पड़े।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७०॥

इकहत्तरवाँ सर्ग

(मामाके घरसे वापस आये भरतका सूनी अयोध्याका दर्शन और पिताके मन्दिरमें प्रवेश)

भरत राजगृहसे पूर्वकी ओर चले। वहाँसे चलकर उन्होंने सुदामा नदी देखी। तदुपरान्त ह्लादिनी और दूरपारा नदी पाकर शतद्रू नदीपर पहुँचे। फिर ऐलधान नगरके पास उन्हें एक अति वेगवती नदी मिली जिसे उतरकर आगे बढ़नेपर आग्नेय और शल्यकर्षण नामक दो गाँव उन्हें मिले। फिर शीलावहा नदी मिली जिसे उतरकर चैत्ररथ नामक वन और उसके आगे

सरस्वती नदी, उसके आगे गंगा और उसके आगे भारुण्ड नामक वन होकर वे चले। तदनन्तर वेगिनी, कुलिङ्गा, ह्लादिनी नदी उतर आगे चलकर यमुना मिली जिसे उतरकर सबने विश्राम किया, क्योंकि दूरसे चले आनेके कारण वे थक गये थे, सबने भलीप्रकार जलपान किया। फिर रथपर चढ़ आगे चले। आगे बढ़ गंगा मिली जिसको पार करना कठिन देख वे अंशधा नामक नगरको चले गये जो प्राग्वटेश्वर नामक नगरके पास था। प्राग्वटेश्वर के पास उन्होंने गंगाको पार किया। फिर कुटिकोष्ठिका नदीके तटपर पहुँच, वहाँसे धर्मवर्धन नामक गाँवमें और वहाँसे तोरण नामक ग्रामके दक्षिण हो जम्बूप्रस्थ ग्राममें पहुँच वरूथ ग्राममें प्रवेश किया। फिर वहाँसे पूर्वकी ओर चले। वहाँ भरतने सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा दी और उसे वहीं छोड़, स्वयं चल दिये। आगे सर्वतीर्थ नामक ग्राममें एक रात्रि बसे। वहाँसे बढ़े तो उत्तानिका नदी तथा अन्य भी नदियाँ मिलीं जिनको पहाड़ी [illegible]ड़ोंपर सवार हो उतर कुछ दूर चल हस्तिपृष्टक ग्राम मिला और उसके आगे कुटिका नदी मिली। फिर लोहित्य ग्रामके निकट कपीवती नदी और उसके आगे स्थाणु-मती मिली। और उसके आगे विनत ग्रामके पास गोमतीको पार किया। वहाँसे आगे बढ़नेपर घोड़े हाथी आदि जो साथ रह गये थे, थक गये। फिर मार्गके शालवनको पारकर रात्रि व्यतीत होतेही भरतने अयोध्या देखी। केकय देशसे चल बीचमें सात रात बसनेपर जब उन्होंने अयोध्याको देखा तो सारथिसे कहा—हे सारथे! यह अयोध्यापुर जिसमें पुष्पवाटिकादि विराजमान थीं, वह उत्साहहीन होनेकेकारण पीली-पीली लगती है। इसमें सुदूरपूर्वसे बड़े-बड़े ब्राह्मण यज्ञ किया करते थे और राजर्षिगण नानाप्रकारसे इसका पालन किया करते थे। जहाँ देखो, धनधान्ययुक्त लोग आया जाया करते थे, जिससे अयोध्यामें कोलाहल सुनाई दिया करता था, जो इस समय नहीं सुन पड़ता। इसके उद्यानोंमें संध्या समय जो मनुष्य क्रीड़ा करने आते थे वे आज इन वाटिकाओंमें कोई दिखाई नहीं पड़ते और मनुष्योंके संयोगसे इसके उद्यानादि जो हर्षित ज्ञात होते थे, अब नहीं होते। वे पुष्पवाटिकाएँ आज आनन्दरहित देख पड़ती हैं। मार्गोंमें जगह-जगह पत्ते पड़े हैं। समीप पहुँचनेपर मत्त मृगों और पक्षियोंके शब्द अब सुनाई नहीं पड़ते हैं और चन्दनसे मिला तथा

अन्य सुगन्धसे धूपित शोभित वायु भी पहले-सा नहीं बहता। बाजोंकी ध्वनि जो दूरसे ही सुनाई दिया करती थी, वह अब बन्द क्यों है? सब प्रकार अनिष्टकारक निमित्त दीखते हैं। इससे मेरा हृदय काँपता है। हे सूत! ज्ञात होता है कि, मेरे प्यारे भाई बन्धुओंमें कुछ अमंगल ही है। इससे मेरा मन काँपता है। एवं उदासीन मन व्याकुल शरीर और क्षुब्धेन्द्रिय भरतने अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। फिर वैजयन्त नामक फाटकपर पहुँच थके हुए वाहनोंपर चढ़े द्वारपालगण उन्हें देख उठ खड़े हुए और उन्हींके संग चले। पर चित्त अस्वस्थ होनेसे भरतने उनसे कुशल पूछ लौट जानेकी आज्ञा दी और सारथिसे बोले कि, मेरे इतने शीघ्र बुलाए जानेका कुछ कारण अवश्य है। क्योंकि हृदय बार-बार कम्पित है। हे सूत! राजाओंके मरनेपर पुर-समाजादिके जो आकार होते हैं, वह सब आकार मैं देखता हूँ। सभी फाटक बिना झाड़े हुए पड़े हैं, किवाड़ ठीक नहीं हैं, सब कुछ अस्त-व्यस्त है। मन्दिरोंके द्वारपर पूजाकी सामग्री दिखाई नहीं देती है। धूप, दीपका नाम ही नहीं, सभी जन प्रभाहीन हो गये हैं। सब भवन श्रीरहित हो गये हैं। माल्यादि किसीके द्वारपर नहीं दीख पड़ती, किसीके द्वार बुहारे नहीं गये हैं। वेदमन्दिर मानों सब शून्य हो गये हैं, यज्ञशालाओंकी भी यही दशा है। वणिकगण जैसे उत्साहसे अपनी दुकानें खोलते थे, वैसी आज नहीं खोली है। वे जहाँके तहाँ संकोच किए बैठे हैं। देवालयादिमें भी पक्षी नहीं बोलते। जहाँ देखो स्त्री-पुरुष सबके सब मलिन वस्त्र धारे अति दीनमन दुर्बल हो रहे हैं। इस प्रकार अशुभ अयोध्यामें देखते, सूतसे कहते, उदासीन हो भरतने राजमन्दिरमें प्रवेश किया। इन सभी अशुभ दृश्योंको देख भरतके हृदयमें दुःख उमड़ पड़ा। तब पहले कभी न देखे हुए अप्रिय ढंग जब उस नगरीमें भरतके आँखोंके आगे होने लगा तो उन्होंने अपना शिर झुका लिया और मनमें बड़ा दुखी होकर वह महात्मा अपने पिताके भवनमें बड़ी अप्रसन्नताके साथ प्रविष्ट हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

बहत्तरवाँ सर्ग

कैकेयी द्वारा राजाकी मृत्यु, राम-वनवास आदिका वृत्त-कथन और भरतको राज्य स्वीकार करनेका उपदेश

वहाँ जाकर भरत अपने पिताको न देख माताको देखनेके लिए

माताके मन्दिरमें पहुँचे। तब अपने पुत्र भरतको आया हुआ देख कैकेयी आसनको त्याग उठ खड़ी हुई। भरतने अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया। कैकेयी भरतको हृदयसे लगा गोदमें ले स्वपिता और भाई आदिके समाचार पूछने लगी कि तुमको नानाके मन्दिरसे चले कितनी रातें हुई। शीघ्रताके कारण मार्गमें बड़ा परिश्रम पड़ा होगा। तुम्हारे नाना और मामा कुशल पूर्वक तो हैं? हे पुत्र! उन लोगों और अपने सुखका वृत्तांत कहो? तब माता के पूछने पर भरत कहने लगे—आज आपके पिता के गृह से चले सातवीं रात है। मेरे नाना और मामा कुशलसे हैं। राजा ने मुझे जो कुछ दिया था उस सबको थकावटके कारण मार्ग में छोड़ आया हूँ। मुझे बड़ी शीघ्रता थी। क्योंकि महाराजका सन्देश ले जो दूत यहाँसे गये थे, वे बड़ी शीघ्रता करते थे। उसका क्या कारण था, वह बताइये, आपका स्वर्णभूषित पर्यङ्क शून्य क्यों है। इक्ष्वाकुवंशियोंमें कोई आनन्द नहीं विदित होता है। मैं समझता था कि पिताजी यदि अपने मन्दिर में नहीं हैं तो माताके मन्दिर में अवश्य होंगे। पर यहाँ भी उन्हें नहीं देखता। मैं पिताजी के चरणोंकी वन्दना किया चाहता हूँ, शीघ्र बताइये कहाँ हैं? यह सुन कैकेयी अति अप्रिय और कटुवचन बोली—तुम्हारे पिता उस गति को प्राप्त हुए जिसको अन्त में सब प्राणी प्राप्त होते हैं। यह सुन भरत शोकसे मूर्च्छित हो गिर पड़े और कहने लगे—हा! मैं मारा गया। पिताके मरणसे भरत ऐसा रोये कि उनकी सब इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गई। अनेक प्रलाप करने लगे। प्रलाप करते-करते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। उन्होंने विह्वल हो वस्त्रसे मुँह ढँक लिया। तब कटेवृक्षकी समान पृथ्वी पर पड़े देख कैकेयीने भरतको उठा अपनी जाँघकर बैठा लिया और कहा—"राजन्! उठो, ऐसे क्यों रोते हो? तुम्हारे समान पण्डितलोग शोक नहीं करते। तुम्हारी बुद्धि दानयज्ञकी अधिकारिणी और वेद तथा तपकी अनुगामिनी है।" इस प्रकार माताने बहुत समुझाया पर रुदन करते, पृथ्वीपर लोटते भरत फिर मातासे बोले—मैं समझता था कि राजा रामका अभिषेक किया चाहते हैं, इसलिए मैंने यहाँ आनेकी विदा माँगी थी। पर यहाँ तो उसके विपरीतही देखता हूँ, जिससे मेरा हृदय फटा जाता है। हे मातः! यह बताओ कि पिताको ऐसी

कौन व्याधि हुई है जिससे वे इतने शीघ्र बिना आएही इस लोकको त्याग चले गये ? अब महाराज नहीं जानते कि, मैं नानाके यहाँसे आया हूँ; क्यों नहीं मेरा शिर सूघँते ? अब स्पर्श करतेहो सुखद पिताका वह कहाँ है ? और जो मेरे भ्राता पिता बन्धु राम हैं, वे कहाँ हैं, शीघ्र मेरा आना उनसे कहो। ज्येष्ठ भ्राता पिताहीके समान हैं, इससे उनकेही चरणोंको ग्रहण करूँ। महाराजाधिराज चलनेके समय रामसे क्या कह गये थे ? पिताजी चलनेके समय कुछ मुझे भी आज्ञा दे गये हों, तो उनका सन्देश सुनाओ। भरतके इस भाँति पूछने पर कैकेयी बोली कि, राम सीता व लक्ष्मणके लिए विलाप करते हुए महाराज परलोकको चले गये। काल–धर्मके वशात् मरते समय तुम्हारे पिताने यही कहा और यह भी कहा कि, लक्ष्मण, सीता व रामको पुनः लौटा हुआ देखने वाले जन सिद्धार्थ हो जायँगे। माताका दूसरा यह अप्रिय वचन सुन भरतने फिर पूछा कि, कौशल्याको सुखदाई राम, सीता व लक्ष्मण इस समय कहाँ हैं ? तब ऐसा पूछनेपर कैकेयी सब अप्रिय कथाके तुल्य सुनाने लगी कि, हे पुत्र ! राम, लक्ष्मण और सीताके साथ चीर वल्कल पहनकर वनको चले गये। यह सुन भरत अत्यन्त भयभीत हो गये। किन्तु धैर्य धारणकर पूछने लगे कि न तो रामने किसी ब्राह्मणका धनही हरा, न किसीका बिना पापके वध किया, न किसी पराई स्त्रीका रामने गमन किया ? फिर किस कारण रामको दण्डकारण्यका वास दिया गया ? भरतकी यह बात सुन, कैकेयीने जो कुछ किया था, वर्णन करने लगी और पण्डितमानिनि कैकेयी बोली कि रामने न किसीका धनही लिया, न किसीका बध किया। राम पराई स्त्री को तो नेत्रों से देखते भी न थे। हे पुत्र ! मैंने रामका अभिषेक सुन तुम्हारे पितासे तुम्हारे लिए राज्य और रामके लिए बनवास माँगा जिसे सुन राजाने लक्ष्मण और सीता सहित रामको वनमें भेज दिया। पर पुत्रशोकसे उन्होंने शरीर त्याग दिया। अब तुम राज्यको स्वीकार करो। तुम्हारेही वास्ते ऐसा किया गया। अब तुम सन्तापको त्याग धैर्य धारण करो और जो तुम्हारे अधीन यह पुरी और राज्य है उसे हे पुत्र ! द्विजेन्द्रोंको बुला शीघ्रही इस पृथ्वीके राजा बनो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७२॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

भरत द्वारा कैकेयीकी निन्दा और शोक

यह वृत्तान्त सुन भरत रामके बनवाससे सन्तप्त हो कहने लगे कि पिता
ौर रामके विना इस राज्यसे क्या प्रयोजन ? अरे दुष्टे ! तूने मुझे दुःखमें
ारा दुःख दिया। तूने राजाको मार रामको तपस्वी बनाकर बनको भेज
ा ? इसकुलको नाश करनेके लिए तू कालरात्रिके समान हुई। हा अंगार-
! तुझे पाकर पिता स्वर्गको चले गये। पापदर्शिनी ! तूने पिताको मार
ाला और कुलभरका नाश किया। सत्यसन्ध मेरे वृद्ध पिता तुझीको पाकर
। उन्हें तूनेही मार डाला। रामको उन्होंने क्यों निकाला और वे बनको
ों गये ? यदि कौशल्या और सुमित्रा पुत्र-शोकसे पीड़ित तुझ दुष्टाको
कर जीवित हों तो बड़ा दुष्कर कार्य है। राम तो धर्मात्मा और गुरु-सेवाके
ाता हैं। वे जैसा भाव अपनी मातामें रखते थे, उससे उत्तम भाव तुझमें
ते थे और इसीप्रकार बहुदर्शिनी माता कौशल्याभी तुझमें बहिनकाही भाव
ती थीं, हे पापिनी ! उस कौशल्या-पुत्र रामको बनको भेज तू क्यों नहीं
खित होती ? यशस्वी रामको चीर पहनकर तूने बनवास दे दिया, क्या
का कारण नहीं जानती ? मैं जानता हूँ कि, तू बड़ी लोलुप है, इसीसे यह
ा अन्याय तूने किया। मैं राम व लक्ष्मणको विना देखे कैसे राज्य-रक्षाकर
ूँगा ? उन्हीं पराक्रमी रामके सहारेसे तो पिताजीभी राज्यकी रक्षा करते
। अतः यह राज्य-भार अकेले कैसे उठा सकूँगा ? यदि शक्तिहो भी, तोभी
दुष्टा माताको सकाम न करूँगा, यदि रामकी तुझमें निज मातृवत् भक्ति
होती तो मैं तुझ पापिनीको मैं त्याग देता। साधु-समाज निन्दक यह
द्धि तेरे कसे उत्पन्न हुई ? इस कुलमें तो यह रीति सदासे चली आई है कि
भाईही राजा होता है। हे नृशंसे ! तू राजधर्म और राजवृत्तकी गति
ीं जानती। राजाओंके यहाँ यही रीति है कि ज्येष्ठ पुत्र राजा हो। धर्मरक्षक
कुलाचार युक्त राजाओंका जो धर्म था, वह तुझे पाकर नष्ट हो गया।
उच्च राजकुलमें तेरा जन्म हुआ, फिर यह मोह तुझे कैसे प्राप्त हुआ ?
ापनिश्चये ! मैं तेरा मनोरथ न करूँगा। तूने ऐसा कार्य किया कि मेरे
संकटमें पड़ गये। मैं तेरा अप्रिय करनेके लिए अभी जा श्रीरामको

वनसे लौटा लाऊँगा और वनसे लौटाकर उनका दास बना रहूँगा। इ
प्रकार अप्रिय वचनोंसे कैकेयीको दुःखद वचन कहकर शोकाकुल भरत सिंह
समान गर्जन करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकांडका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७३॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

भरत द्वारा कैकेयीकी निन्दा

माताकी ऐसी निन्दा सुन भरत बड़े क्रोधमें भरकर फिर बोले—नृशंसे! दुष्टाचारिणी! राज्यसे तू भ्रष्ट हुई ही, क्योंकि धर्मने तु पारित्यक्तकर दिया, अतः तू मेरे लिए भी रोवेगी। रामने तथा राजाने ते क्या बिगाड़ा था? जिससे राजाको मार तूने रामको वनवास दिया। कैकेयी! इस कुलके विनाशसे तुझे भ्रूणहत्याका पाप लगेगा जिससे तू नर को प्राप्त हो पिताके लोकको नहीं जा सकती। क्योंकि तूने रामको वनवा दिया है। इससे मुझे बड़ा भय प्राप्त हुआ है। हा! तेरे ही हेतु पिता मृत्यु प्राप्त हुये और राम वनमें बसते हैं। अतः तेरे कारण लोकमें मेरा अपयश हुआ। तू माताके रूपमें शत्रु है। क्योंकि निर्ल्लज हो राज्य चाहती है, हे पतिघातिनी! अब मुझसे राज्यके लिए न कहना। हा कौशल्या और सुमित्रा आदि तुझ कुलपांसिनिको पाकर महा दुःखित हैं। धर्मराज केकयराजकी कन्या नहीं है। मेरे पिताके कुलको नाश करनेके लि उनके घर में राक्षसी उत्पन्न हुई है। तूने परम-धार्मिक रामको वनवास दि जिससे पिता स्वर्ग चले गये। जैसी तू राक्षसी थी वैसा ही कर्म किया। मु पिता और भाइयोंसे रहित कर सब लोकोंमें मुझ और आपको अ किया। कौशल्याको पुत्र-रहितकर इस घोर पापसे न जाने तू किस लोकको प्र होगी। क्रूरे! परमबन्धु ज्येष्ठ भ्राता कौशल्यानन्दन रामको क्या तू न जानती? पुत्र माताके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और हृदयमें उत्पन्न होता है, इस माताको पुत्र प्रियबान्धवोंसे भी अधिक प्रिय होता है। मैं श्रीरामको व बुला स्वयं वनको चला जाऊँगा हे पाप-सङ्कल्पे! तेरा किया पाप मैं धारण कर सकता। क्योंकि पुरवासियोंको रामके वियोग में रुदन करते मु न देखा जायगा। तू इस पापके प्रायश्चित्तके लिए अग्नि में प्रवेश कर

वनमें जा बसे या फाँसी लगाकर मर जाय। परन्तु मैं रामको लौटा स्वयं वनको जा निष्कलङ्क होऊँगा। ऐसा कहते हुए भरत भूमि पर गिर पड़े और सर्पके तुल्य फुंकार करने लगे। भूमि पर गिरे हुए भरतके नेत्र रक्त वर्णके हो गये, वस्त्र ढीले हो गये और उनके सब अलंकार अस्तव्यस्त हो गये तथा जैसे उत्सवसमाप्तिके समय नीचे गिरा इन्द्रध्वजके समान दीखने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

बहुत देर बाद वीर्यवान् भरतको चेतना प्राप्त हुई तो वे उठे और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अपनी दीन माताको देख मन्त्रियोंके मध्यमें बैठ फिर माताको धिक्कारने लगे कि, मैं न तो राज्यकी कांक्षा रखता हूँ, न अपनी मातासे कुछ सम्मति ही लेना चाहता। राजाने अभिषेककी तैयारीकी थी, इसकाभी मुझे ज्ञान नहीं, क्योंकि शत्रुघ्न सहित बहुत दूर अपने नानाके यहाँ था। मुझे राम लक्ष्मण तथा सीताके बनवासके विषयमें भी कुछ भी ज्ञान नहीं है। इसप्रकार रोतेहुए भरतका बोलना सुन कौशल्या सुमित्रासे बोली कि कैकेयीके पुत्र भरत आये हैं। मैंने बहुत दिनोंसे नहीं देखा, उनको देखना चाहती हूँ। ऐसा कह अति दुर्बल काँपती हुई कौशल्या भरतके पास चली। भरतभी शत्रुघ्नको साथले कौशल्याके मन्दिर को चले। कौशल्याको देख भरत शत्रुघ्नको बड़ा दुःख हुआ। कौशल्याभी उन्हें देख मूर्च्छित होगईं। फिर रोते हुए उन दोनों भाइयोंसे रुदन करती करती कौशल्या भरतसे बोली—"कैकेयीने बड़ा क्रूर कर्मकर यह राज्य, राज्याकांक्षी तुम्हारे लिए प्राप्त किया। तुम्हें अब निष्कंटक राज्य मिल गया है। क्रूरकर्मा कैकेयी मेरे पुत्रको चीर वल्कल पहनकर बनवास देनेमें भला कौन लाभ देखती है? मेरे परम यशस्वी पुत्र राम जहाँ हैं, वहीं कैकेयी मुझेभी शीघ्र भेज दे; अन्यथा राजाकी दाह-क्रिया हो जानेपर मैं स्वयं सुमित्राको साथले रामके पास चली जाऊँगी। अन्यथा तुम्हीं मुझको श्रीरामके पास पहुँचा दो। यह धनधान्ययुक्त राज्य तुमको सौंपती हूँ, वह भोगो।" इस प्रकार बड़े ही क्रूर वचन कौशल्याने भरतसे कहे जिन्हें सुन भरत अति दुःखित हुए। भरत शोकातुर हो कौशल्याके पैरोंपर गिर पड़े और भ्रान्तचित्त हो रोते-रोते मूर्च्छित

हो गये। फिर चैतन्य हो रोती हुई माता कौशल्यासे हाथ जोड़कर बोले—आर्ये! रामसे मेरी कैसी अधिक प्रीति है, वह तुम अच्छी प्रकार जानती हो। मैं इस विषयमें अनजान और निष्पाप हूँ। फिर मेरी निन्दा क्यों करती हो? सत्यसंध श्रीराम जिसकी अनुमतिसे वन गये हों, वह शास्त्रभी पढ़े तो उसको न आये। जिसकी सम्मतिसे श्रीराम बन गये हों, वह नीच पापी आदिकोंका सेवक हो और सूर्यके सम्मुख हो पूर्व दिशामें मूत्र त्याग करे या सोती हुई गौको लात मारे, जिसके मतसे श्रीराम वन गये हों। उसको यह पाप हो जो कि बड़ा काम करालेनेपर भी सेवकोंको नौकरी न देनेसे होता है। जिसके मतसे श्रीराम वन गये हों, उसको वह पाप हो जो राजाको प्रजाओंके घातसे होता है। जिसकी अनुमतिसे श्रीराम वन गये हों, उसको वह पाप होवे जो प्रजासे बलिषड् भाग ग्रहण करके उनकी रक्षा न करनेवाले राजाको होता है। वनमें कष्ट सहनेवाले ऋषियोंको दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञा करके पीछे इन्कार करनेवाले लोगोंको जिस पापका भागी होना पड़ता है तथा हाथी, घोड़े और रथोंसे भरे एवं अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षासे व्याप्त संग्राममें सत्पुरुषोंके धर्मका पालन न करनेवाले योद्धाओंको जो पाप लगता है, वह सारा पाप उसे प्राप्तहो जिसकी अनुमतिसे आर्य श्रीराम वनको गये हों। जिस दुष्टात्माने आर्यके वनवासमें परामर्श दिया हो, उसे बुद्धिमान् गुरुके द्वारा यत्नपूर्वक प्राप्त हुआ, शास्त्रके सूक्ष्म-विषयक उपदेश भूल जावें। राजा, स्त्री, बालक और वृद्धोंका बध करने तथा भृत्योंको त्याग देनेसे जो पाप होता है, वही श्रीरामके बन जानेमें सम्मति देनेवालेको भी लगे। जिसके परामर्शसे आर्यको वनमें जाना पड़ा है, वह सायंकाल और प्रातःकालमें नींद लेनेवाले पापका भागी हो। आग लगानेवाले गुरु-स्त्रीगामी और मित्रद्रोही पुरुषको जिस पापकी प्राप्ति होती है, वही उसेभी प्राप्त हो। वह सज्जनोंके लोकसे, सज्जनोंकी कीर्तिसे तथा सज्जनोंके द्वारा सेवित आचरणसे भी भ्रष्ट हो जाय। जो जलको भ्रष्ट करता है, अन्धोंको विष देता है और जो मार्गमें खड़ा होकर लड़ते हुए मनुष्योंका झगड़ा देखा करता है—उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा नहीं करता, ऐसे पुरुषको जो-जो पाप लगते हैं, वे सभी पाप उसको भी लगें जिसकी सम्मतिसे आर्य श्रीरामको बनमें भेजा गया हो। इसप्रकार पति और पुत्रसे वियोगिनी कौशल्याको शपथ द्वारा

आश्वासन देते हुए राजकुमार भरत दुःखसे आतुर होकर गिर पड़े। तब उनकी ऐसी दशा देखकर कौशल्याने कहा—'बेटा ! तुमने शपथ खाकर मेरे निकलते हुए प्राणोंको रोक दिया। तुम्हारा चित्त धर्मसे विचलित नहीं हुआ। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो। इसलिए तुम्हें सत्पुरुषोंके लोक प्राप्त होंगे। यह कहकर कौशल्याने भ्रातृभक्त भरतको गोदमें उठा लिया और उन्हें गलेसे लगाकर वे बिलख-बिलखकर रोने लगीं। महात्मा भरतभी दुःखसे आर्त होकर विलाप कररहे थे। उनका मन अत्यन्त शोकाकुल होगया था और वे बारम्बार दीर्घ निःश्वास ले रहे थे। इसप्रकार बड़े कष्टसे उनकी वह रात व्यतीत हुई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ सर्ग

दशरथका अन्त्यसंस्कार

तदनन्तर शोकसंतप्त कैकेयी कुमार भरतसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठने कहा—'राजकुमार! शोक छोड़ो और समयोचित कर्तव्यपर ध्यान दो। अब राजा दशरथके शवको दाह-संस्कारके लिए ले चलनेका यथोचित प्रबन्ध करो।' वशिष्ठकी बात सुन पृथ्वीमें पड़े भरतने उठकर प्रेतकार्य करनेके लिए आज्ञा दी। राजाका शरीर तेलसे निकालकर भूमिमें रक्खा गया। उस समय राजाका शरीर पीला होगया था। तब रत्नजटित पलँगपर उत्तम बिछौने बिछा उसपर राजाको लिटा दुःखित हो भरत विलाप करने लगे—राजन्! मैं परदेशमें था। आपके पास पहुँचनेभी न पाया था कि बीचहीमें आपने राम लक्ष्मणको बनवास दे दिया। हे पुरुषसिंह! अलौकिककर्मा रामसे रहित मुझे दुःखित छोड़ आप कहाँ जाते हैं? हे तात ! तुमतो स्वर्गको चले, राम बनको चले गये। अब इस पुरीमें योगक्षेम कौन करेगा ? राजन्! तुम बिना यह वसुन्धरा विधवा हो गई। यह नगरी चन्द्ररहित रात्रिके समान शोभाशून्य ज्ञात होती है। इसप्रकार दीन और रोते हुए भरतसे वशिष्ठ फिर बोले—महा-बाहो! अब महाराजके जो-जो प्रेतकार्य हैं, उनको बिना बिचार जैसे मैं बताऊँ करो। वशिष्ठकी बात सुन भरतने पितृमेधके लिए ऋत्विज आदिको बहुत शीघ्र बुलवाया। ऋत्विजसे अग्निको प्रज्वलित करवा उसमें आहुतियाँ कर-वाई। पश्चात् राजाके शवको पालकीमें रख रोदन करते परिचारकोंने उठाया।

आगे-आगे चाँदी, सोना और नाना उत्तमवस्त्र लुटाते हुए हजारों मनुष्य चले। फिर सरयूके तटपर पहुँचे चन्दन, अगरु, गुग्गुल आदि उत्तम काष्ठ लाकर चिता बनाई। उस चितामें अन्य नाना सुगन्धित वस्तु डाल ऋत्विजोंने राजाको उठाकर उसपर लिटाया। फिर भरतसे चितामें अग्नि लगवाकर ऋत्विज मन्त्र पढ़ने लगे, सामवेदी साम गाने लगे। तदनन्तर सवारियोंपर सवार दशरथकी रानियाँ वृद्धजनोंके साथ नगरसे निकलीं जो वहाँ आ चिताग्नि में प्राप्त राजाकी प्रदक्षिणा भरत व कौशल्यादिके साथ ऋत्विजोंने की। उस समय महाराजकी कौशल्यादि सहस्रों स्त्रियोंका रुदन चिल्लाती हुई कुररी क्रौञ्जियोंके समान सुनाई देता था। इसप्रकार रुदन करती हुई महाराजकी स्त्रियाँ सरयूके समीप आईं। यहाँ उन्होंने भरत और पुरोहितके साथ राजाको जलाञ्जलि दी तथा पुरोहित राजमहिषी और ऋत्विजों सहित सब लोग नगरको लौट आये और दश दिनतक दुःखित हो ब्रह्मचर्यादि नियम से व्यतीत किये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

दश दिन बीतजानेपर राजकुमार भरतने ग्यारहवें दिन आत्मबुद्धिके लिए एकादशाह-श्राद्धका अनुष्ठान किया। फिर बारहवें दिन द्वादशाह-श्राद्धकी विधि पूर्णकी। उसमें उन्होंने ब्राह्मणोंको धन, रत्न, पर्याप्त अन्न और बहुत सी गौवें दानकी। राजाके परलोक हितके लिये उन्होंने अनेकों प्रकारकी सवारियाँ तथा बड़े-बड़े घर ब्राह्मणोंको अर्पण किये तदनन्तर तेरहवें दिन प्रातःकाल महाबाहु भरत शत्रुघ्नको साथ लेकर पिताका अस्थि-संचय करनेके लिये चिताके पास आये और बहुत दुःखी होकर विलाप करने लगे। "तात! आपने हमें जिन भाई रामको सौंपा था, वेतो वनको चले गये। अब हमारा रक्षक कोई नहीं रहा। तात! कौशल्या-पुत्र रामको वन भेज कौशल्याको अनाथकर आप कहाँ चले गये?" ऐसा कह जहाँ दशरथके हाड़ जले थे, श्वेत भस्म पड़ी थी, पिताकी यादकर रोते-रोते वहीं बैठ गये तथा रोते-रोते मूर्च्छित हो भूमिमें गिर पड़े। भरतके मंत्री आदि शोकातुर हो गये। शत्रुघ्न भी भरतको शोकमें डूबा देख राजाको स्मरणकर गिर पड़े और अत्यंत ही

दुःखित हो वे उन्मत्तोंके समान विलाप करने लगे। मन्थराकी उक्तिसे उत्पन्न शोकसागर; जिसमें कैकेयीके वचन ही घड़ियाल और राज्यका बरदानही अथाह जल ऐसे सागरमें रोते-रोते शत्रुघ्नने भरतादिकोंको डुबा दिया। वे बोले—हे तात! अति सुकुमार भरतको रोते छोड़ आप किधर चले गये? अबतक तो आप हम सबको भोजन वस्त्र भूषणादिके लिए प्रेरणा किया करते थे, वह अब कौन करेगा? हा! आप ऐसे धर्मज्ञ और महात्मा राजाके बिना यह पृथ्वी फट नहीं गई। पिता स्वर्गको चले गये। अब हमें जीनेसे क्या प्रयोजन? यह पुरी अब बिना राजाकी पड़ी है। इसमें अब न जीकर हम तपोवनको चले जायँगे। तब दोनों भाइयोंका ऐसा विलाप देखकर सब मन्त्रियों और पौरोहित्यादिकोंको बहुत दुःख हुआ। भरत शत्रुघ्न दोनों विह्वल हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उनकी इस दशाको देख वशिष्ठजीने अपने हाथोंसे भरतको उठाया और कहा—हे तात! तुम्हारे पिताके दाहका यह तेरहवाँ दिन है और अभीतक अस्थिसञ्चयन शेष है। अतः इसके करनेमें क्यों विलम्ब करते हो? संसारमें तीन द्वन्द्व हैं। पहला भूख-प्यास, दूसरा शोक-मोह और तीसरा जरा-मृत्यु। ये व्यापक द्वन्द्व हैं। इसीमें जन्म, मरण, लाभ, उपलाभ और सुख दुःख है। ये बातें सभी प्राकृत नरोंको होती हैं। परन्तु तुम्हारे जैसे लोगोंको इनमें न फँसना चाहिए। ऐसा कह वशिष्ठ भरतको और सुमन्त्रने शत्रुघ्नको समझाया। समझानेसे भरत शत्रुघ्न उठ बैठे। दोनोंने अपने आँसू पोंछे और जो कुछ क्रिया करनेको शेष थी, शीघ्रतासे करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७७॥

अठहत्तरवाँ सर्ग

भरतके पास मन्थराका आना और शत्रुघ्नका मंथराको बाँधना

अब शत्रुघ्न भरतसे उस रामके विकट यात्राके विषयमें कहने लगे कि जो राम सब प्राणियोंके शरणदाता थे, वे वनको भेजे गये। वीर्य-सम्पन्न लक्ष्मणने भी रामको वनवाससे न छुड़ाया। इस अन्यायको देख राजाको उन्होंने क्यों न रोक दिया? शत्रुघ्नकी ऐसी बातें हो ही रही थीं कि, उत्तम भूषण पहने मन्थरा पूर्वके द्वारपर दिखाई दी। वह चन्दन लगाये रानियोंके योग्य वस्त्र पहनकर भूषणोंसे भूषित जड़ाऊ कमरपट्टी बाँधे, उत्तम आभूषण

पहने बड़ी शोभती थी। तब उसको ऐसी बनीठनी देख तथा महापाप करनेवाली जान द्वारपालने शत्रुघ्नसे कहा—हे कुमार! जिसके कारण राम बनको गये, वह यही निर्ल्लज्ज पापिनी है। यह सुन शत्रुघ्न बहुत दुःखी हुये। वे सब लोगोंसे बोले कि—"इस दुष्टाने हमारे भाइयोंको और पिताको कठोर दुःख दिया है। अतः यह अपने कियेको भोगे।" ऐसा कह शत्रुघ्नने उसे बलपूर्वक खींच लिया। मन्थराकी सब सखियाँ शत्रुघ्नको क्रोधित जान जहाँ-तहाँ भाग गईं और एकान्तमें एकत्र हो कहने लगीं कि, शत्रुघ्न हमें भी मारेंगे। अतः हम सब दयावती कौशल्याकी शरणमें चलें। शत्रुघ्न क्रोधित हो चिंघाड़ती हुई मन्थराको घसीटने लगे। मन्थराके घसीटतेही उसके आभूषण पृथ्वीपर गिर पड़े। उन बिखरे आभूषणोंसे वह मन्दिर बड़ा शोभित हुआ। कैकेयी यह देख मन्थराको छुड़ाने आईं, पर शत्रुघ्नने उसे हटाकर अति कठोर वाक्य कहे। उन कठोर वचनोंको सुन कैकेयी बड़ी दुःखी हुई और भरतके पास गई। तब शत्रुघ्नसे भरतने कहा—हे शत्रुघ्न! स्त्रियाँ अवध्य हैं, अतः अब क्षमा करो। यदि मुझे यह ज्ञात होता कि राम मुझको मातृघात समझ मेरी निन्दा न करेंगे तो इस पापिनी कैकेयीको मैं मार डालता। इस मन्थराको मारा सुन राम निश्चयही मुझसे बात भी न करेंगे। तब भरतके ऐसे वचन सुन शत्रुघ्नने मन्थराको मूर्च्छित अवस्थामें छोड़ दिया। मन्थरा कैकेयीके चरणोंपर गिर विलाप करने लगी। शत्रुघ्नसे भयभीत मन्थराको कैकेयीने सान्त्वना दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अठहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७८ ॥

उन्यासीवाँ सर्ग

चौदहवें दिन भरतसे राज्यग्रहणके लिए मन्त्रियोंका आग्रह और शत्रुघ्नका यह कथन कि 'रामही राजा होंगे।'

अब चौदहवें दिन प्रातः समस्त राज्य-कर्मचारी एकत्रित हो भरतसे बोले कि, राम लक्ष्मणको वनमें भेज राजा दशरथ स्वर्ग चले गये। अब यह राज्य राजारहित है। इसलिए आप हमलोगोंके राजा होंवे। हे राजपुत्र! अभिषेककी सामग्री लिए ये मन्त्री पुरोहितादि खड़े हैं। अतः हे भरत! अपना अभिषेक कराइये और हम सबकी रक्षा करिये। तब यह सुन परम व्रतधारी भरत बोले—हमारे कुलमें आजतक ज्येष्ठही राजा होता आया है, इससे आपलोग

ऐसा न कहें। हममें ज्येष्ठ श्रीराम हैं, वही राजा होंगे। अतएव सेना तैयार करो, मैं ज्येष्ठ भाईको वनसे बुला लाऊँगा। रामाभिषेकके लिए सब सामग्री भी साथही ले चलें। वहीं श्रीरामका अभिषेक करके उन्हे यहाँ लावेंगे। कैकेयीकी इच्छाके विरुद्ध रामही राजा होंगे और मैं वनमें निवास करूँगा। बेलदार आदि लोग मार्गका सामान करें। बड़े चतुर लोग मार्ग-रक्षार्थ जायें। तब भरतके ऐसा कहनेपर सबलोग यों बोले कि, जिससे आप रामको यह राज्य देनेका विचार करते हैं, इससे आपको लक्ष्मी और शोभा प्राप्त हो। भरतके वचन सुन सब प्रसन्न हो आनन्दाश्रु छोड़ने लगे। भरतके भाषणने अमात्योंको आनन्दित कर दिया। वे कहने लगे—हे पुरुषोत्तम! तुम्हारी आज्ञानुसार मार्ग बनानेवालों और रक्षकोंको आज्ञा दे दी है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका उन्यासींवाँ सर्ग समाप्त ॥७६॥

अस्सीवाँ सर्ग

मार्ग-वर्णन

अब भूमि-प्रदेशज्ञ सूत्रकर्म-विशारद तथा नदी आदिके तरनेके लिए शीघ्र नाव आदि यन्त्र प्रस्तुत करनेवाले लोग चले। श्रमजीवी, यन्त्रकोविद, मार्गरक्षक और वृक्षतक्षक लोग चले। सूपकार, सुधाकार, बाँसके बकल छीलनेवाले तथा उन मार्गोंमें कभी न कभी जानेवाले लोग प्रस्थानित हुए। उनके झुण्डका वेग ऐसी शोभा देता था जैसे पूर्णमासीके दिन समुद्र। वे लोग अपनी-अपनी जातिके झुण्डोंको और सामग्री ले आगे चले और मार्ग-अवरोधक जितने लता, वल्ली, झाऊ और वृक्षादि थे, उन सबको काट-काट मार्ग ठीक करने लगे। किन्हींने अवृक्षक देशोंमें नये वृक्ष लगा दिए, कहीं वृक्षकी बड़ी शाखाओंको छाँट डाला, कोई-कोई बलवान् ठूँठोंको उखाड़कर फेंक दिया और विषम स्थलोंको बराबर कर दिया। मार्ग-अवरोधक कुओं और गड्ढोंको मिट्टी आदिसे पाटकर समानकर दिया। नदियों आदिमें पुल बाँध दिया। ईंट और कङ्कणोंको अलग फेंक दिया। जल आनेके अवरोध हटा दिए। अल्पकालहीमें अनेक धाँरावाली नदीकी धाराको एकही स्थानमें लाकर पुल बाँधकर समुद्रोंके आकारवत कर दिया, जहाँ जल नहीं थे वहाँ वापी कूपादि खोदकर सुन्दर घाट आदिका निर्माण कर दिए। बहुतसे

पुष्पित वृक्षोंको भी युक्तिसे लगा दिए। स्थान-स्थानपर पताकायें बाँध दीं। सड़कपर जलका छिड़काव करा दिया और सेनाके जानेका मार्ग तो ऐसाशोभित हुआ जैसे अमरावतीका मार्ग हो। उन्होंने सुन्दर रमणीक देशोंमें फलवाले वृक्ष लगा दिए। जैसा अभीष्ट था वैसाही उन लोगोंने बनाया। पश्चात् एक उत्तम मुहूर्त्त एवं नक्षत्र देखकर उन्होंने महात्मा भरतजीके डेरोंको सब स्थानोंमें खड़ा किया। उन शिविरोंके चारों ओर खाँइयोंके साथ बँधे हुए दुर्ग जो इन्द्रनील पर्वतके समान ऊँचे-ऊँचे थे वे सुहावने सड़कोंके कारण सुन्दर दिखाई पड़ते थे। मिट्टीके अगणित गोले एकके ऊपर एक रखकर इनका निर्माण हुआ था। ये सभी शिविर महलोंके झुरमुटसे युक्त थे, राज प्रासाद-आकार-पूर्ण और पताकाओंसे शोभित थे। प्रवेशका मार्ग बड़ाही सुन्दर था। बड़ाही अच्छा बना था। कपोत-गृहोंसे युक्त एवं आकाश-वेदिकाओंकी समान दृष्टिगोचर होनेवाले सतमंजिले वे शिविर इन्द्र-नगरियोंके समान दृष्टि आते थे। शीतल एवं निर्मल जलसे पूर्ण, जलमें विचरनेवाले बड़े-बड़े जन्तुओंसे संकुलित एवं विविध वृक्ष-वनोंसे समृद्ध जह्नुकन्या गंगाके ऊपरसे भी चला गया और आगे-आगे तो अधिक सुहावना ज्ञात होनेवाला वह राजपथ जिसे कुशल कारीगरोंने निर्मित किया था ठीक उसी भाँति शोभित होने लगा जैसे रात्रिमें तारागणोंसे विभूषित निर्मल आकाश शोभित होता है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अस्सीवाँ सर्ग समाप्त ॥८०॥

इक्यासीवाँ सर्ग

राम-वनवाससे भरतका शोक, वशिष्ठागमन और वार्त्तालाप

इधर अयोध्यामें वह रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातः बन्दीजनोंने नाना स्तोत्रोंसे भरतकी स्तुति आरम्भकी। सुवर्णके दण्डसे दुन्दुभि और अनेक शंखादि वाद्योंकी ध्वनि हुई जिनका शब्द आकाशमें व्याप्त हो गया। उन शब्दोंको सुन शोक-सन्तप्त भरत और भी व्यथित हो गये। वे उन शब्दोंको सुन जाग उठे और बजते हुए बाजोंको बन्द करवाकर उन्होंने कहा कि, 'मैं राजा नहीं हूँ।' यह कह शत्रुघ्नसे बोले—हे शत्रुघ्न! देखो, कैकेयीने संसारका बड़ा अपकृत किया। राजा दशरथ मुझे दुःखमें डाल स्वर्ग चले गये। अब उस महात्मा धर्मराजकी राज्यश्री समुद्रमें बिना केवटकी नौका तुल्य इधर-उधर

भ्रमण कर रही है। हा! राजाकी तो यह दशा हुई और रामको कैकेयीने वनमें भेज दिया। भरतको इसप्रकार रोदन करते देख सब स्त्रियाँ दुःखित हो रोने लगीं। इसप्रकार भरत विलाप करही रहे थे कि वशिष्ठजी अपने साथियों सहित उस रमणीय सभामें आ अपने गोलाकार स्वर्णमय स्थानपर आ बैठे और दूतोंको आज्ञा देने लगे कि, बहुतही शीघ्र ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और अन्य आमात्योंको बुलाओ तथा भरत, शत्रुघ्न उनके मामा युधाजित और सुमन्त्रादि सब सभासदोंको बुलाओ। ततः रथ घोड़े हाथी आदि पर चढ़कर आते हुए लोगोंका शब्द सुनाई पड़ा। उसी समय भरत भी आये। राजा दशरथके समानही भरतको देख सभासदोंमें आनन्द छा गया। दशरथ-पुत्र भरतसे वह सभा उनके पिताके समानही शोभित होने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका इक्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८१॥

बयासीवाँ सर्ग

भरतने देखा कि वह सभा पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान ही शोभित है। इस सभामें जितनेभी जन आये थे, उन सबके वस्त्राभरण चन्दनाद्यानुलेपनोंसे सुशोभित हो रहे थे। विद्वज्जनोंसे पूर्ण वह सभा शरदृतुकी पूर्णमासीकी रात्रि जैसे शोभा दे रही थी। तब वहाँ सब मन्त्री आदिकोंको देख परम मंत्र वशिष्ठ भरतसे बोले—"हे तात! महाराज दशरथ इस पृथ्वीको तुम्हें दे स्वर्गको चले गए और उसके पूर्व उन्होंने रामको जो आज्ञा दी थी, धर्मात्मा रामने पिताकी उस आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया। अतः यह राज्य तुमको तुम्हारे पिता और ज्येष्ठ भ्राता रामने भी दिया है। अब तुम शीघ्र अभिषेक कराकर इसे भोगो। उत्तर, पश्चिम और दक्षिणके समुद्र तक और स्वर्ग पातालादिके मध्यके निवासी, देशके करोड़ों मनुष्य, देवता और समुद्रादि सब तुम्हें उत्तम रत्न देंगे।" तब गुरुका यह वचन सुन भरत शोक में निमग्न हो मनसे रामके समीप जा पहुँचे और सभा-मध्यमें विलाप करते तथा गुरुकी कुछ निन्दा करते हुए बोले कि—'ऐसा कौन है जो बुद्धिमान् धर्मात्मा रामका राज्य हरण करले। मैं दशरथसे उत्पन्न राज्याहारी कैसे होऊँ? यह राज्य रामका है। वे सब भाइयों में ज्येष्ठ दिलीप और नहुषके समान हैं जिससे वेही राज्य पानेके योग्य हैं। यदि यह नरकदायी कर्म करें तो

इक्ष्वाकुवंशके दूषक हों। कैकेयीने जो पाप किया वह मुझे नहीं रुचता। मैं रामके पीछे जाऊँगा। पुरुषोत्तम राम ही राज्य भोगने योग्य हैं।' भरत इतना कह समीप स्थित सुमन्त्रसे बोले—'हे सुमन्त्र! शीघ्र यहाँसे जाओ और सबसे रामके पास चलनेकी बात कहो।' सुमन्त्रने जाकर सबको भरतकी आज्ञा सुनाई। तब रामको लौटानेकी आज्ञा सुन सब आनन्दित हुये। सब योद्धाओंकी स्त्रियाँ घर-घर में सब मनुष्यों को यात्राके लिए जल्दी कराने लगीं। सब योद्धा लोग बैलों, घोड़ों और रथों पर चढ़, सब सेनाको आज्ञा देने लगे। जब सब लोग तैयार हो गये, तब भरतने सुमन्त्रको रथ सजानेकी आज्ञा दी। भरतकी आज्ञा पा परम हर्षित हो सुमन्त्र रथ में घोड़ोंको जोत लाया। अन्य सब मन्त्री आदिकोंके भी रथ वाहन सजे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका बयासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८२ ॥

तिरासीवाँ सर्ग

(रामको वापस लानेके लिए भरतका प्रस्थान और शृंगवेर पुर पहुँचना)

प्रातः काल भरत रथपर चढ़ रामके दर्शनार्थ शीघ्रही चले। भरतके आगे मंत्री पुरोहितगण उत्तमोत्तम रथों पर चढ़कर चले। भरतके साथ नौ हजार हाथी, साठहजार रथ, असंख्य धनुर्धर तथा एक लाख सवार पीछे-पीछे चले। रामागमनसे संतुष्ट कैकेयी, सुमित्रा और कौशल्या पालकियों में बैठकर चलीं। जब इस प्रकारका वह श्रेष्ठ समुदाय रामको बुलानेके लिए चला तो प्रसन्न सबलोग राम–विषयक विविध वार्ता करते जाते थे। सब यही कहते थे कि महाबाहु महापराक्रमी और दृढ़वती रामको कब देखेंगे? रामके देखते ही हमारा शोक दूर हो जायगा। इसप्रकार सब प्रसन्नता में रामकी कथा कहते सुनते अयोध्यावासी जाते थे, वणिकजन्भी जिन्हें आज्ञा थी और जिन्हें नहीं भी थी वे सब तथा प्रजाजन हृष्टमनसे रामको देखनेके लिए चले। मणिकार खरीददार, कुंभकार और सूत्रकर्म विशेषज्ञ और शास्त्रोपजीवी सब चले। पक्षी पकड़नेवाले, क्राकचिक, विशोचक, सुधाकार, गन्धी, स्वर्णकार कम्बलकार, स्नापक, ऊष्णोदक, धूपक तथा मद्यकार सब चले। धोबी, दर्जी ग्रामके वृद्ध, नट तथा कैवर्त्तक आदि अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथले चले एवं सहस्रों वेदवक्ता ब्राह्मण रथों पर चढ़ भरतके पीछे चले। सहस्र

योध्यावासी पालकी रथादि वाहनों पर चढ़ भरतके पीछे चले। भ्रातृवत्सल रतके पीछे-पीछे प्रहृष्ट मुदिता सेना चल रही थी। इसप्रकार सब घोड़े रथ ौर हाथी आदि वाहनों पर चढ़े शृंङ्गवेरपुर के पास गङ्गा पर जा पहुँचे। हाँ रामका मित्र निषाद गुह राज्य करता था। गङ्गातटपर पहुँच भरतकी ना स्थित हुई। जब सेना गंगा तट पर जा रुकी तो भरत मंत्रियोंसे बोले ‘आज सब सेना यहीं ठहरे, प्रातः इस नदी को पार करेंगे। क्योंकि यहाँ म स्वर्गवासी महाराजको जलदान करना चाहते हैं, प्रातः तर्पण करेंगे।’ रतका ऐसा वचन सुन सबलोग उतरने लगे। तब यहाँ नदी गंगातट र उतरनेका प्रयत्न कर भरत महात्मा रामके लौटानेके विषयमें न्तामग्न हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका तिरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८३ ॥

चौरासीवाँ सर्ग

(भरतके प्रति निषादका सन्देह, पुनः भेंट होने पर शंका-निवृत्ति)

तब गङ्गा-तटपर भरतकी सेनाको स्थित देख गुहने स्वजातियोंसे कहा , यह जो इतनी विशाल सेना लेकर दुर्बुद्धि भरत यहाँ आये हैं इसका तो ी अर्थ है कि, यह रामसे वैरभाव रखते हुए, निर्वासित रामको मार, ष्कण्टक राज्य करना चाहते हैं। मैं समझता हूँ भरत अपने पिताका राज्य मको मारकर भोगना चाहते हैं। पर राम मेरे स्वामी और सखा हैं। के प्रयोजनार्थ तुमलोग अपने-अपने आयुध ले गङ्गाकी तलहटीमें बैठो। सबलोग गंगाघाट पर स्थित रहो। पाँच सौ नावें यहाँ लगाओ। और येक में सौ-सौ ज्वान उसमें बैठे सन्नद्ध रहो जो युद्धमें कुशल हों। यदि भरत मसे सन्तुष्ट होंगे तो यह उनकी सेना सकुशल गङ्गाके पार उतर जायगी, ना कह भरतकी भेंटके लिये वनकी वस्तुएँ ले गुह चला। तब उसे आते सुमन्त्र नम्रतासे भरतसे बोले कि “यह जो ज्ञातियों सहित आता है, डकारण्यनिवासी यहाँका राजा है और रामका सखा है। यह निश्चय ही, हाँ राम लक्ष्मण होंगे, जानता होगा।” सुमन्त्रकी बात सुन भरतने आज्ञा कि—“गुहको आने दो।” यह सुन स्वजातियों सहित हाथ जोड़े गुह मने आ भरत से बोला—आपने निजागमनसे सावधान न कर मुझे छला

है, तथापि इस दासके गृह पर निवास कीजिये। ये निषादगण मूल फला और शुष्क, आर्द्र मांस तथा वनके अन्य पदार्थ लाये हैं, ग्रहण कीजिये। इ प्रकार उत्तम भोजनकर इस रात्रि आप यहीं रहिये और कल मेरी पूजा स्वीका कर ससैन्य आगे चलियेगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका चौरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८४॥

पचासीवाँ सर्ग

(भरत भारद्वाज ऋषिके मार्गकी ओर तथा भरत-गुह-संवाद)

गुहकी ऐसी बात सुन भरत उससे बोले—'तुम मेरे परम गुरु रामकी से करही चुके हो और अब मेरी सेनाको निमन्त्रण दे रहे हो, इससे मानों तु सब कर चुके।' ऐसा कह भरत गुहसे फिर बोले—-यहाँ से किस मार्ग भारद्वाज आश्रमपर पहुँचेंगे ? क्योंकि यह गंगा-तट बड़ा दुरत्य ज्ञात होत है।' भरतके ऐसे वचन सुन गुह हाथ जोड़कर बोला—-'इस देशके वृत्तान्तक जाननेवाले मनुष्य और हम आपके पीछे-पीछे चलेंगे। पर आपकी यह विशा सेना देख मेरे चित्तमें बड़ी शंका होती है कि आप रामके अनिष्टार्थ तो न यात्रा कर रहे हैं ?" तब ऐसा कहते हुए गुहसे भरतजी मधुर वाणीमें बो कि—-'ऐसा दुष्ट समय न आये कि तुम ऐसी शंका करो। श्रीरामचन्द्र मे ज्येष्ठ भ्राता हैं। श्रीरामचन्द्रजीको मैं वनसे लौटानेके लिए जाता हूँ, अन बुद्धिसे नहीं।' भरतके ऐसे वचन सुन गुहको बड़ा आनन्द हुआ। व बोला—हे भरतजी ! आप धन्य हैं। क्योंकि बिना यत्न राज्यको पाकरभ त्यागना चाहते हैं। यह आपकी अक्षय कीर्ति है। आप वनमें रामको लौटा को जाते हैं। इस प्रकार भरत-गुह वार्ता होही रही थी कि रजनी आ गई। गुह सब सेनाका सत्कार किया। सब सन्तुष्ट हो ठौर-ठौर सोने लगे। भरत शत्रु एक आसनपर स्थित हुये। उस समय भरत श्रीराम-विषयक चिन्तामें पड़ गये अन्तःकरणका शोकाग्नि जलाने लगा। शोकसन्तप्त भरतके सब अङ्गों पसीना निकलने लगा। भरत ऐसे शोकरूपी पर्वतसे दबाये गये जिसमें ध्यान शिला, मोहही अनन्त जीव, शोकही सन्ताप और औषधिही बाँस है। चिन्त कुल, अत्यन्तखिन्न और अतिशय मूर्च्छित होकर दुःखसे निःश्वास लेनेवा पुरुषश्रेष्ठ भरतको वैसेही चैन न पड़ा, जैसे यूथभ्रष्ट वृषभको चैन नहीं पड़ता

सपरिवार एकाग्रचित्त भरतसे गुहकी भेंट हो गई। गुहभी रामके विषयमें अत्यन्तही खिन्न हुआ। उसने भरतको बड़ी सान्त्वना दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका पचासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८५॥

छियासीवाँ सर्ग

गुहका भरतको रामकी ओर जानेका मार्ग बताना

भरतको व्याकुल देख गुह महात्मा लक्ष्मणका रामकी ओर सद्भाव बखानने लगा। हे भरत! जब श्रीरामजी शयनकर रहे और लक्ष्मण भाईकी रक्षा करनेके लिए बैठे थे, तब मैंने उनसे कहा कि, हे तात! यह सुख-शय्या तुम्हारेही लिए बिछाई गई है, अतः इसपर सोइये। आप सदा सुखके योग्य हैं। रामजीकी रक्षा हमलोग निरन्तर जगकर करेंगे। रामसे प्रिय निश्चयही इस संसार में हमारा कोई नहीं है। आपके समक्ष यह मैं सत्य ही कहरहा हूँ। रामजीके प्रसादसे ही मैं इस लोक से धर्म, अर्थ तथा काम चाहता हूँ। रामजी सोयें, मैं उनकी रक्षा धनुष बाण लेकर अपने सब जातियों सहित करता रहूँगा। हम इस प्रत्येक बनके चोर और अन्यान्यजीवोंसे परिचित हैं। यदि चतुरङ्गिणी सेनाभी आये तो हम उसका भी सामना करने में समर्थ हैं। तब मेरे ऐसा कहने पर लक्ष्मणने धर्मकी ही बात कहकर मुझे शिक्षा दी कि—'सीता सहित राम भूमि में शयन करते हैं तो मुझको नींद कैसे आवेगी? हे गुह! जिस रामके आगे संग्राममें देवता दैत्यादि कोई खड़े नहीं हो सकते, वे आज तृणोंकी शय्या पर सोते हैं। दशरथजीने बड़ी तपस्या से इन सर्व शुभलक्षण सम्पन्नपुत्र रामको पाया है। इनके इधर चले आनेके पीछे महाराज बहुत दिनों तक न जीवेंगे। सब स्त्रियाँ जोर-जोरसे रो-रोकर वहाँ चुप हो गई थीं। किसी में अधिक रोनेकी सामर्थ्य न रह गई थी। उस राजमन्दिर में आज सन्नाटा होगा। कौशल्या, राजा व मेरी माता तीनों इस रात्रिमें अवश्य मृतक हो गये होंगे। कदाचित शत्रुघ्नकी आज्ञासे मेरी माता जीतीभी रहे, पर राम-माता कौशल्या तो किसी तरह जीती न रहेंगी। दुःखकी बात है कि राज्यपर रामको विना बैठाये पिता जल्दीही में मर जायेंगे। वे लोग धन्य हैं जो मरनेके समय पिताके निकट होंगे, या उनका संस्कार करेंगे। जब राम वनसे लौटेंगे तो सड़कों पर जल

छिड़काव होगा। धवरहरापर नाना रत्न—विभूषित हाथी घोड़े रथादिकोंका विचरण, स्थान-स्थानमें वाद्योंके शब्द युक्त हृष्ट-पुष्ट-जनोंसे आपूर्ण, पुष्पवाटिकायें और उपवनादि संयुक्त नाना समाजोंसे शोभित सुखित हो अयोध्यामें विचरण करेंगे। रामके साथ आकर अपने पिताकी राजधानीमें प्रवेश करेंगे। इसप्रकारकी वार्त्ता करते तथा रोते हुए लक्ष्मणकी वह रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातः दोनों भाइयोंने गंगा-तटपर जटा बनाई। फिर उनको सुखपूर्वक नावपर चढ़ाकर मैंने उन्हें पार उतार दिया। तब जटाधारी, वल्कल परिधान किये, महागजके समान शक्तिमान धर्नुद्धर दोनों राम लक्ष्मण, प्रत्यागमनकी आशासे सीता सहित चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका छियासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८६॥

सत्तासीवाँ सर्ग

गुह द्वारा राम—लक्ष्मणका विशेष वर्णन

भरत गुहके ऐसे वचन सुन उसी स्थानपर बैठे हुए रामका ध्यान करने लगे। महापराक्रमी, आजानबाहु, कमलाक्ष, प्रियदर्शन रामका ध्यानकर मुहूर्त भर दीर्घ निःश्वास लेते हुए भरतके ध्यान करत रहे। फिर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। भरतको मूर्च्छित देख गुह अति विवर्णमुख हो काँपने लगा। भरतकी ऐसी दशा देख समीपस्थ शत्रुघ्न रुदन करने लगे और शोकसे मूर्च्छित हो गिर पड़े। तब भरतकी सब माताएँ जो उपवास करनेसे दीन हो गई थीं, उनके निकट आईं। कौशल्याने पास पहुँच भरतको उठा हृदयसे लगा लिया। तपस्विनी कौशल्या शोकसे व्याकुल हो भरतसे पूछने लगीं। पुत्र! इस समय तुम्हारे शरीर में कोई रोग तो उत्पन्न नहीं हुआ है? ऐसा न हो। क्योंकि इस कुलके जीवन तुम्हीं हो। हे पुत्र! भाई सहित राम तो वनको चले गये तथा राजा स्वर्गको गये। अब तुम्हीं हमारे नाथ हो। पुत्र! लक्ष्मणके विषयमें तो कोई अप्रिय बात नहीं सुना। अथवा रामके विषयमें तो कोई अप्रिय वचन नहीं सुना? भरत मुहूर्त भर तक तो निसंज्ञ रहे, पुनः सावधान हो कौशल्या को समझाकर गुहसे बोले कि 'उस रातको राम, लक्ष्मण तथा सीता कहाँ ठहरीं थी, ये सब किस स्थान पर सोये थे तथा उन्होंने क्या-क्या भोजन किया था?' यह सुन हर्षित हो गुहने रामके सा

जैसा कुछ व्यवहार किया था, कहने लगा कि रामके भोजनके लिए नाना पदार्थ मैं लाया था, पर रामने क्षत्रियोंका धर्म विचार कर कुछ न लिया और कहा कि हे मित्र ! हम लोग सदा सबको कुछ देते हैं पर किसी का दान नहीं लेते। केवल लक्ष्मण अपने हाथोंसे गंगाजल भर लाये, वही रामने पान किया। आप व सीता दोनों उपवास करके ही रह गये। शेष जलपान कर लक्ष्मण भी रह गये। इसी स्थान पर तीनोंने संध्योपासन किया। तदनु लक्ष्मण अपने हाथसे कुश लाये और सुन्दर आसन बना दिया। उसके ऊपर राम सीता सहित बैठे। लक्ष्मण दोनोंके पैर धो वहाँ से चले आये। इस इंगुदी वृक्षके नीचे यह जो तृण पड़ा है इसी पर राम जानकी सहित सोये थे। जब वे शयन करने लगे तो लक्ष्मण धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाये रात्रि भर चारों ओर घूमते रहे। तब जहाँ लक्ष्मण थे वहाँ जाकर उत्तम बाण और धनुष लेकर मैं भी खड़ा रहा और मेरे रक्षण कार्य में दक्ष ज्ञातियों सहित उस इन्द्रतुल्य रामका रक्षण करता रहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सत्तासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८७॥

अट्ठासीवाँ सर्ग

(श्रीरामचन्द्रजीके दरिद्रसे चकित भरत का भाषण)

भरत अपने मन्त्रियोंके साथ उस इंगुदी वृक्षके नीचे जा रामकी शय्याको देखने लगे और माताओंसे बोले कि, यहाँ पर श्रीरामने उस रात्रिको शयन किया था। ये कुश उन्हींके आसनके हैं। महाराजधिराज दशरथके पुत्र हो ऐसे आसनपर शयन करने योग्य नहीं। अत्यन्त कोमल शय्यापर शयनकर अब इस भूमिपर पुरुषसिंह राम कैसे सोते हैं? जो राम धवरहरोंके ऊपर, विमानोंपर तथा कुलागारोंपर जहाँ कि पलंगादि नाना उत्तम शय्या लगाई जाती थी, उसपर शयन करते थे, जिनके ऊपर पुष्प चुन दिये जाते थे, चन्दनादि सुगन्धित वस्तुएँ धरी जाती थीं और शुक सारिकादि पक्षी बोलते थे, श्रेष्ठ धवरहरोंपर जहाँ शीतल सुगन्धित वस्तु धरी जाती थी, उनमें शयन करते थे। जहाँ नानाप्रकारका उत्तम ज्ञान और भूषणोंका शब्द सुनकर जो जागते थे, प्रातः सूत मागध वन्दी गण बन्दना तथा स्तुति करते थे, उस रामका इस तृणमय आसनपर शयन करना मुझे सत्य प्रतीत नहीं होता।

मेरा यह मोह तो नहीं है अथवा यह स्वप्नकी बात तो नहीं है ? निश्चय ही कालसे बलवत्तर कोई नहीं है जिसके वश हो रामजी भूमिमें सोये। जिस कालकी गतिमें पड़ जनकपुत्री दशरथकी पतोहू सीताभी भूमिमें सोई। यह शय्या मेरे भाईकी है। देखो, जैसे-जैसे करवटें उन्होंने ली है, विदित होता है कि इस शय्यापर सीता सब भूषण पहनेही सो गई हैं। उनके भूषणोंसे सुवर्णविन्दु ठौर-ठौर गिर पड़े हैं। इस स्थानपर सीताने अपनी साड़ी रख दी थी, क्योंकि उसीके रेशमी डोरे कुशोंमें लगे हुए दीख पड़ते हैं। स्यात् उनके पतिको यह शय्या सुखकर लगी हो, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो सुकुमारी तपस्विनी सीता दुःखोंको विचार इसपर शयन न करती। हा! मैं बड़ा निर्लज्ज हूँ जिसके लिए स्त्री सहित राम अनाथके समान ऐसी शय्यापर सोये। हा! सार्व-भौम कुलमें उत्पन्न हो, सबके प्रिय, उत्तम और प्रिय राज्य त्यागकर अरुण-मय, प्रियदर्शन दुःखके अयोग्य राम भूमिमें सोते हैं। महाभाग लक्ष्मण धन्य हैं जो ऐसे कुसमयमें श्रीरामके पीछे-पीछे जाते हैं। पतिकी अनुगामिनी सीताके भी सब कार्य सिद्ध हो गये। राजाके स्वर्ग जाने तथा रामके वन जानेसे यह पृथ्वी बिना केवटकी नौका हो गई। हममें कोईभी इस पृथ्वीपर मनसेसोनेकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि यह रामहीके पराक्रमसे रक्षित थी। अयोध्या अब सूनी पड़ी है, जिसका रक्षक अब कोई नहीं है और फाटकोंकाभी कोई रक्षक नहीं है। सब लोग अनवस्थित चित्त हैं। इसीसे कोई बाह्य रक्षक नहीं हैं। अब आजसे मैं फल मूलही खाऊँगा, जटा चीरादि धारण करूँगा तथा भूमिमें तृणही बिछाकर शयन करूँगा। चौदह वर्ष वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा जो भाईने की है, उसको पूर्ण करनेके लिए मैं चौदह वर्ष तक वनमें रहूँगा और जब-तक मैं बनमें रहूँगा, तब-तक शत्रुघ्न मेरे साथ रहेंगे और लक्ष्मण सहित राम अयोध्याका शासन करेंगे। ब्राह्मणगण अयोध्यामें रामका अभिषेक करेंगे। मैं देवताओंसे यही माँगता हूँ कि, मेरे इस अभिप्रायको पूर्ण करें! मैं रामके चरणोंपर अपना मस्तक रखकर उनसे बनसे लौटनेकी प्रार्थना करूँगा। इसपर यदि उन्होंने मेरी प्रार्थना न सुना तो वनमें संचार करनेवाले उन राघवके साथ मैं भी चिरकाल तक बनमें ही रहूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अट्ठासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८८ ॥

नवासीवाँ सर्ग

भरत-प्रयाग-गमन

शृङ्गवेरपुरमें गंगातटपर रात्रि व्यतीत करके भरत प्रातःकाल उठे और शत्रुघ्नसे बोले—'सुमित्रानन्दन ! उठो, निषादराज गुहको शीघ्र बुलाओ, वे हमारी सेनाको गंगाके पार उतारें ।' शत्रुघ्नने कहा—'भैया ! मैं तो जाग रहा हूँ, आर्य श्रीरामका ही चिन्तन कर रहा था ।' उन दोनों बन्धुओंसे इस प्रकार वार्त्ता हो रही थी कि, इतनेमें ही गुह समयपर आ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला 'रघुनन्दन ! इस नदीके तटपर आपकी रात सुखसे बीती है न ?' गुहके उस स्नेहपूर्ण वचनको सुनकर भरतने कहा—'निषादराज ! हम सब लोगोंकी रात बड़े सुखसे बीती है, तुमने हमारा बड़ा सत्कार किया । अब अपने जनोंसे कह दो, वे बहुत-सी नौकाएँ लाकर हमें गङ्गाके पार उतार दें ।' भरतका यह आदेश सुनकर गुह तुरन्त अपने नगरमें आया और भाई बन्धुओंसे बोला—'उठो, जागो; तुम्हारा कल्याण हो ! नावें घाट पर लाओ, सेनाको पार उतारूँगा ।' तब राजाकी आज्ञा पाकर सभी मल्लाह शीघ्रही उठ खड़े हुए और चारों ओरसे इकट्ठी करके पाँच सौ नावें लाये । इन सबके अतिरिक्त कुछ स्वस्तिक नामसे प्रसिद्ध नौकाएँ थीं ! जिनपर स्वस्तिकके चिह्न बने हुए थे । उन्हीं चिह्नोंसे वे पहचानी जाती थीं । उन्हींमें से एक नाव गुह स्वयं लेकर आया, जिसमें सुन्दर बिछौने बिछे थे और माङ्गलिक शब्द हो रहा था । उसपर सबसे पहले पुरोहित, गुरु और ब्राह्मण बैठे । तत्पश्चात् भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा तथा दशरथकी अन्य रानियाँ सवार हुईं । तदनन्तर राजपरिवारकी अन्य स्त्रियाँ बैठीं । गाड़ियाँ तथा अन्य सामग्रियाँ दूसरी-दूसरी नावोंपर चढ़ाई गईं । सभी नावोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं । सबके ऊपर खेनेवाले कई-कई मल्लाह थे । वे सब नावें चढ़े हुए मनुष्योंको तीव्र गतिसे पार ले जाने लगीं । बहुत-सी नौकाएँ केवल स्त्रियोंसे भरी थीं । कुछ नावोंपर घोड़े थे और कुछपर बहुमूल्य रत्न लाये गये थे । कितने ही मनुष्य नावोंपर बैठे थे और कितने ही बाँस और तिनकोंसे बने हुए बेड़ोंपर सवार थे । कुछ लोग घड़ोंके सहारे पार हो रहे थे और कुछ अपनी

बाहुओंसे तैर रहे थे। इस प्रकार केवटोंकी सहायतासे सारी सेना गङ्गाके पार प्रयाग—वनके लिए प्रस्थित हुई। वहाँ पहुँचकर महात्मा भरत सेनाको विश्रामके लिए आज्ञा दे स्वयं ऋत्विजों तथा राज-सभाके सदस्योंके साथ मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजका दर्शन करनेके लिए गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का नवासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८९ ॥

नब्बेवाँ सर्ग

भरतका भरद्वाजाश्रममें पहुँच ऋषिका दर्शन करना

नरश्रेष्ठ भरतने अपनी समस्त सेनाको आश्रमसे एक कोस इधर ही ठहराया और स्वयं अस्त्र-शस्त्र तथा राजोचित वस्त्र उतार वहीं रख, केवल दो रेशमी वस्त्र पहने, मन्त्री और पुरोहितके साथ, उन्हें आगे कर स्वयं उनके पीछे-पीछे भरद्वाजाश्रममें प्रवेश किया। तब भरद्वाजजी वशिष्ठको आते देख अर्घ्यके लिए जल लानेका आदेश कर स्वयं आगे मिलने गये। आगे जाकर वशिष्ठसे परस्पर अभिवादन किया। भरतने प्रणाम किया। भरद्वाजने जाना कि यह दशरथपुत्र हैं। उन्होंने सबको अर्घ्यादिके लिए जल दिया। तब पहले वशिष्ठसे फिर भरतसे कुशल पूछी। फिर अयोध्यामें सेना, कोष मित्र, बान्धव आदि सबकी कुशल पूछी। वशिष्ठ और भरतने भी मुनिके शरीर, अग्नि तथा कुटीके मृग पक्षियोंकी कुशल पूछी। तदनन्तर भरद्वाजजी रामके स्नेह हेतु भरतसे बोले—'हे भरत! तुमको तो सुना था कि राजा हो गये, फिर राज्यको छोड़ यहाँ आनेका क्या अभिप्राय है? शत्रुनाशक कौशल्यानन्दन राम तो लक्ष्मणके साथ वनको भेजे गये। उनके भेजनेमें केवल स्त्री ही कारण है। अतः वे राम अब चौदह वर्ष तक बनमें रहेंगे। तुम उन रामके साथ कुछ पाप तो नहीं किया चाहते अथवा लक्ष्मणके साथ तो पाप नहीं किया चाहते?' यह सुन भरतके नेत्रोंमें अश्रु भर आये। वह भरद्वाजसे बोले—'यदि आप मुझे ऐसा जानते हैं, तो मेरा मरण हुआ, मुझसे रामकी ओर कभी पाप न होगा। मेरे पीछे जो मेरी माताने वाक्य कहे हैं, वे मुझे अभीष्ट न थे और न मैं उनसे सन्तुष्टही हूँ। मैं तो श्रीरामकी प्रसन्नता चाहता हूँ और अयोध्याको लिवा जानेकी इच्छासे आया हूँ। अतः यह जानकर आप प्रसन्न होइये और बताइये कि इस समय राम कहाँ हैं?'

तव यह सुन वशिष्ठादि ऋषियोंने भरतके निरपराध होनेकी बात कही। तव भरद्वाज बोले—'हे पुरुषसिंह ! रघुवंशमें उत्पन्न होनेवाले आपको यह उचित ही है। गुरु-सेवा, शत्रुदमन तथा साधुओंका अनुयायी होना आदि गुण तुममें विद्यमान हैं। मुझे ज्ञात है कि तुम्हारे मनमें यही है, पर उसे पुष्ट करनेके लिए मैंने पूछा। मैं राम लक्ष्मण को भी जानता हूँ कि चित्रकूट-पर्वत पर रहते हैं। वहाँ प्रातः जाना। आज इस कुटीर पर रहिये।' यह सुनकर भरतने कहा, वहुत अच्छा। फिर सब सेना सहित मुनिके आश्रममें ठहर जाना निश्चय किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का नब्वेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ सर्ग

(भरद्वाजाश्रम में भरतादिकों का अपूर्व आतिथ्य)

उस रात्रिको वहीं आश्रममें ही ठहरनेका निश्चय किये हुए भरतको भरद्वाज मुनिवर ने आदर सत्कार करनेके लिए भोजनका न्योता दिया और जब भरतने कहा कि वनमें जो अर्घ्य एवं पैर धोनेका जल वगैरह मिल सकता है- उसके आधारसे आपने मेरी आवभगतकर डाली है। तब मुस्करा कर मुनिने कहा 'मैं जानता हूँ कि मुझ पर तुम्हारा प्रेम है इसलिए तुम किसी भी ढंगकी सेवा की जाये अवश्य प्रसन्न रहेगा इस सम्बन्धमें मुझको सन्देह नहीं; लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी इस सेनाका प्रबन्ध मैं करदूँ। अतः मेरी इच्छाका अनुमोदन तुम्हें करना ही होगा ! तुम मानवों में श्रेष्ठ हो। भला तू किसलिए सेनाओंको दूर रख कर इधर आ पहुँचा है। साथमें सेना चली आती तो क्या बिगड़ता ? ऐसा पूछनेपर हाथ जोड़कर तपरूपी धन रखने वाले मुनिसे भरत बोले, हे भगवन् ! आपके आश्रमको कष्ट न पहुँचे, इस आशंकाके मारे मैं अपने साथ सेना लेकर यहाँ नहीं आया; क्योंकि नरेश तथा राजकुमारको चाहिए कि वह अपने देशमें निवास करने वाले तपस्वीजनको पीड़ा न हो, इसलिए सचेष्ट रहें। मुनिवर ! बढ़िया घोड़े, मानव तथा मतवाले हाथी बड़े भारी भू-भागको व्यास करके मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे हैं। इस कारण वे कहीं पेड़, जल, भूविभाग तथा आश्रममें मौजूद पर्ण-कुटियोंका विध्वंस न करने लगे, इसलिये उन्हें उधर ही रोक कर

अकेला ही मैं इधर आ पहुँचा।' जब महर्षिने आज्ञा दे डाली कि 'सेनाको इधर ले आ, तुरन्त भरतने सारी सेनाको उधर बुला लिया। पश्चात् अग्नि-शालामें घुसकर हाथ धोनेके साथही आचमन करके भरद्वाजजीने अतिथि सत्कारका प्रबन्ध करनेके लिए विश्वकर्माजीको पुकारा—'मैं चाहता कि इस सैन्यका ठीक सत्कार मुझसे हो जाये, इसलिए मैं विश्वकर्मा तथा त्वष्टासे इधर पधारनेके लिए कहता हूँ, इस आतिथ्यकी पूरी तयारी मैं कर सकूँ वैसेही यम वरुण कुबेर तीनों दिक्पाल और इन्द्र जैसे देवोंको मैं बुलाता हूँ; सेनाका अतिथि सत्कार करनेकी इच्छा होती है; इसलिए मैं उसकी अच्छी तय्यारी करलूँ, ऐसी व्यवस्था हो। इस भूमण्डलपर तथा द्युलोकमें भी उत्तरकी ओर बहनेवाली और पूरबकी तरफ जानेवाली जो कोई भी नदियाँ हों वे इधर पधारें। उनमेंसे कोई नदियाँ मौरेय नामक मद्य बहना शुरू करदें तो कोई भली प्रकारको हुई सुराका बहना प्रारम्भ करदें और नदियाँ गन्नेके रसकी भाँति मिठास भरा एवं ठन्डा जल बहना शुरू करदें। देव-गन्धर्वों तथा उनके साथ रहने वाली सभी अप्सराओंको मैं पुकारता हूँ। ऊपर लिखे नामवाली अप्सराओं और पहाड़पर रहनेवाली शोभासे तथा इन्द्र एवं ब्रह्मदेवकी सेवा करने वाली अलंकृत देवांगनाओंसे मैं कहता हूँ कि वे तुम्बरु के साथ इधर चली आयें। उत्तर कुरुदेश में बसा हुआ कुबेरका वह दिव्य शाश्वत चैत्ररथ बन जहाँ पर वस्त्र तथा भूषण पेड़के पत्ते बन जाते हैं, दिव्य महिलायें फल बन जाती हैं, इधर उपस्थित हों। भाँति-भाँतिका बढ़िया प्रचुर अन्न जैसे भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, सुरा-सदृश पेय और तरह-तरहके मांसान्न भगवान् सोम तैयार कर लें तथा पेड़ों पर स्वयमेव अनूठे फूल खिलने लगें। इस भाँति अद्वितीय तेजसे पूर्ण और समाधि लगाये बैठे व्रतानुचरण ठीक तरह करनेवाले भरद्वाजजीने शिक्षामें कहे ढंग परसे वर्णोच्चार सम्पन्न निमन्त्रण किया। जबकि वे मुनि हाथ जोड़े हुए पूरबकी ओर मुँह करके मनमें ध्यानविष्ट हो चुके, तो वे सभी देवता एकके पीछे एक उनके निकट आने लगे। मलय तथा दर्दुर नामक चन्दन युक्त पहाड़ोंको छूकर पसीना हटानेवाला हितकारक तथा मनको खूब प्रसन्न करनेवाला पवन उचित प्रकारसे सुखदायक हो बहने लगा। मेघोंसे दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी

और सभी दिशाओंमें दुन्दुभिनाद सुनाई देने लगा। दूसरे भी बढ़िया पवनके झकोरे वहने लगे, अप्सराओंके झुण्ड नाचने लगे, देव एवं गन्धर्व गाने लगे और वीनकी सुमधुर ध्वनि उठने लगी। मधुर, सम और लय युक्त वाद्यध्वनि स्वर्ग, भूमि एवं प्राणिमात्रके कानोंमें गूँजने लगी एक ओर तो मानवके कानोंको सुखद प्रतीत होनेवाला दिव्य शब्द जारी था तो दूसरी ओर भरतको सेना विश्वकर्माकी वह तैय्यारी देखने लगी। लगभग पाँच योजनों तक भूमि साफ सुथरी दीख पड़ी तथा वह नीलम एवं वैडूर्य रत्नोंके तुल्य घाससे ढक गई। उस भू भागमें बिल्व कपित्थ पनस बीज पूरक आँवला और आम्रवृक्ष फलोंसे लदे सुहाने लगे। ऐसा दीख पड़ा कि उत्तर कुरु प्रान्तसे मानों दिव्य और योग्य चीजोंसे भरा हुआ वन उधर आया हो तथा तट पर विभिन्न पेड़ोंसे युक्त सौम्य नदीका दर्शन हुआ। श्वेत रंगवाले चार कमरोंसे युक्त मकान हाथी और घोड़ोंके अस्तबल महल तथा बड़ी अट्टालिका एवं शुभ तोरण अस्तित्वमें आ गये। उस जगह एक राजमहल पैदा हुआ जो शुभ्र मेघकी नाईं गर्जन करने और जगमगाने लगा; जिसपर बढ़ियाँ तोरण लगाये थे और जो सफेद पुष्पोंसे सजाया गया था तथा जिसमें दिव्य चन्दन और जलका छिड़काव किया गया था। वह चतुष्कोण शान्त विस्तर आसन एवं वाहनोंसे युक्त था। उसमें सब तरहके दिव्य रस मौजूद थे और दिव्य-वस्तु एवं कपड़ोंका भी अभाव न था। हर तरहका अन्न उधर तैयार था, भीतर धोये हुए साफ-सुथरे वर्तन थे, हर किस्मके आसन तैयार थे। तब और भी सुहाना लगा जब उसमें उत्कृष्ट बिछौने बिछाये गये। तब इस प्रकारके उस रत्नपूर्ण महलमें पराक्रमी भरत ऋषि भरद्वाजकी आज्ञासे प्रविष्ट हुये। पुरोहितों सहित सचिवभी उनके पीछे चले। उस गृहको देख सब बड़े प्रसन्न हुये। वहाँ पर राजाके लिए उचित दिव्य सिंहासन और छत्र चामर विद्यमान था जिसकी भरतने अपने मन्त्रिमण्डल सहित प्रदक्षिणा की। तब यह तो प्रभु श्रीराम-चन्द्रजीका ही है, इस धारणासे रामके प्रणामके पश्चात् सिंहासनकी पूजाकर सचिवोंके लिए तैयार किए आसनपर ही भरतजी हाथमें चँवर लेकर बैठे। फिर योग्यतानुसार सब मंत्री और पुरोहितभी वहाँ बैठ गये और पुनः सेना-पति और संरक्षकभी वहीं आ बैठे। एक मुहूर्त्त पश्चात् भरद्वाजकी आज्ञासे

पायसरूप कीचड़से पूर्ण नदियाँ भरतके समक्ष आईं, जिसके उभय तटपर ब्राह्मण भरद्वाजके प्रसादसे उत्पन्न दिव्य तथा रम्य निवासस्थल विद्यमान थे जिनपर चूनागरी हुई थी। उसी क्षण ब्रह्मदेवकी भेजी हुई, दिव्य आभूषण धारिणी बीस सहस्र स्त्रियाँ उधर आ पहुँचीं। तब कुबेरकी भी भेजी हुई बीस हजार उन सुवर्ण, रत्न, मोती, मूँगा धारणकर सुहाती हुई ऐसी अप्सराओंके संघसे जो नन्दन-वनसे आई थीं जिनके चंगुलमें फँस जानेपर पुरुषको उन्माद सा प्रतीत होता है—होने लगा और भरतके सम्मुख सूर्यतुल्य कान्तिसे प्रदीप्त गन्धर्वराज नारद तुंबरु एवं गोप गाने लगे। भरद्वाजकी आज्ञासे चार अप्पसराएँ भरतके समक्ष नृत्य करने लगीं। देवताओं सहित चैत्ररथ वनमें खिलनेवाले पुष्प भरद्वाजके तप-सामर्थ्यसे प्रयागमें दिखाई पड़े। यही नहीं; भरद्वाजके तपःप्रभावसे बिल्ववृक्ष मृदंग बजाने, बिभीतक वृक्ष ताल भरने और अश्वत्थ वृक्ष नाचने लगे। इसी समय देवदारु, तमालक इत्यादि वृक्षभी प्रसन्नतासे बौने और कुबड़ेके रूपमें यहाँ आ गिरे। शिंशपा, आँवला, जंबू तथा अन्यभी कुछ वनकी लताएँ नारीरूप धारणकर भरद्वाजाश्रममें आकर निवास करने और यह कहने लगीं कि—'सुरापान करनेवाले सुरापान करलें, भूखे खीर खाना आरंभ करें और मांसाहारके आदी हों तो अच्छे पवित्र मांस खा लें।' अभिप्राय यह कि जिसकी जैसी इच्छा हो, वे वैसीही भोजन-पानकी सामग्री ले लें। सरिताके सुन्दर तटपर एक-एक पुरुषको सात-सात और कभी आठ-आठ युवतियाँ दोपहर तक तेल लगाकर स्नान कराने लगीं। भव्य नेत्रवाली महिलाएँ पुरुषोंके पैर दबानेके लिए आईं और वे संभ्रान्त महिलाएँ स्नानसे आर्द्र शरीरोंको वस्त्रादिसे विभूषितकर एक दूसरेको मद्य आदि पिलाने लगीं। वाहनोंकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त पुरुष घोड़ों, हाथियों, गदहों, ऊँटों तथा बैलोंको उत्तम चारा देने लगे। इक्ष्वाकुओंको उच्चकोटिके योद्धाओंके वाहनोंको खिलानेके लिए हाँकते हुए बलिष्ट संरक्षक उन्हें गन्ने तथा भुने दाने खिलाने लगे। अश्वरक्षक और हाथीके पीलवानने हाथीकी सुध भुला दी। इस प्रकार सबकी सब इच्छाएँ पूर्णकर अप्सराओंने सबको चंदनका लेप किया और उन झुण्डकी झुण्ड अप्सराओंसे सैनिक कहने लगे 'हम न तो अयोध्याही जायँगे और न दण्डकवनमें

प्रवेश करेंगे; भरत कुशलसे रहें तथा रामचन्द्रजीभी सुखी रहें।' इसप्रकार पदाती, घुड़सवार, पीलवान तथा अश्वरक्षक आवभगतके इस ढङ्गको देखकर मानों स्वतंत्र होकरही वैसे कहने लगे। भरतके पीछे चलनेवाले वे सहस्रों प्रसन्नतामें गर्ज-गर्जकर कहने लगे—यही स्वर्गधाम है। पुष्पमाल विभूषित सहस्रों सैनिक नाचते, हँसते और गाते-गाते चारों ओर दौड़ने लगे। इस अमृत जैसे अन्नको खाकर लोग तृप्त होकर भी उस दिव्य आहार पर पुनः भोजन करनेकी दृष्टि डालते। स्त्री-पुरुष सभी नवीन वस्त्र धारणकर बड़े ही प्रसन्न हुये। हाथी, गदहे, ऊँट, बैल, घोड़े, मृग एवं पक्षी सभी इस स्थानपर इतना भक्षण करने लगे मानों मुनिके दिए अन्नके अतिरिक्त कुछभी भोजनकी रुचि उनमें न रही। उनमें कोई एक भी ऐसा पुरुष न दिखाई पड़ा जो कि श्वेत वस्त्रधारी न हो। न कोई भूखा रहा, न मैला कुचैला। सबके शिरके बालोंकी गर्द निकल गई। वनमृग और सुअरके मांसयुक्त बढ़िया मसाला डाले हुए, फलोंके रसोंसे तैयार हुए तथा मिठास, रससे भरपूर भरे हुए दाल तथा भातके चारों ओर और ऊपर पुष्प रखे हुए सुवर्णादि पात्रोंको सैनिकगण आश्चर्यसे देखने लगे। वे कहते, देखो न, जंगलमें भी कैसा मंगल हुआ। खीरसे भरे हुए कुएँ, दुधारू गौवें; रस चूनेवाले वृक्ष सब पूर्णरूपसे जितनी आवश्यकता हो वहाँ उत्पन्न हुये मैरेय नामक मद्यसे भरी बावड़ियाँ दृष्टि आईं जो तप्त तवेपर भूनकर तैयार किए गए मृग, मयूर एवं मुर्गोंके लच्छेदार मांसोंके भारसे आवृत्त थीं। भारसे भरी सुनहली पत्तलें, भाजी एवं रायतेसे पूर्ण सुवर्णकी बनाई लुटियाँ और सुनहली करोड़ों थालियाँ दीख पड़ीं। पीले रंगवाले तथा सुगन्धितपूर्ण तत्कालके छाछ एवं मट्ठेसे भरे और पूर्ण सज्जित पात्र, जल-पात्र और दधि-पात्र थे। जल पीनेके प्यालेभी विद्यमान थे। जीरा पड़े हुए मट्ठेके झील, श्वेत दधि-सरोवर, दूधके झरने और चीनीके भण्डार भी थे। सब वस्तुओं और पात्रोंकी रक्षामें रक्षक नदियों और तीर्थोंपर खड़े थे। शुभ तथा नुकीले दतौनके झुण्ड और निर्मल गन्ध-वृक्ष थे। स्वच्छ दर्पण, वस्त्रोंके थान, हजारों जूते, काजलके डिब्बे, कंघियाँ, बुरुश; छाते, अनूठे बस्तर-विस्तार, आसन सब कुछ थे। जलके झील दिखाई पड़ते थे, जहाँ गदहे, ऊँट हाथी और घोड़े घुसकर सुगमतासे जा सकते थे। सभी

सरोवर निर्मल जलसे पूर्ण और सुखपूर्वक स्नान करनेही योग्य थे । पशुओंके खानेके लिए नीलवैदूर्य रत्नतुल्य सहस्रों कोमल गठरे घासके पड़े थे। इस प्रकारकी अद्भुत आवभगत जिसे स्वप्नवत् भरद्वाजजीने बनाई थी—उसे देख लोग दाँतों तले उँगली दबाने लगे । भरद्वाजके समीप आश्रममें मानों नन्दन वनमें विहार करते हुए वे देवोपम रात्रि व्यतीत करने लगे। फिर मुनिकी आज्ञा ले सभी गन्धर्व, दिव्य ललनाएँ लौट गयीं और दिव्य चंदनचर्चित मतवाले स्त्री पुरुष और यत्र-तत्र उड़ती हुई तथा लोगोंसे कुचली जाकर भाँति-भाँतिकी पुष्पमालाएँ जैसीकी तैसी अपने-अपने स्थानमेंही रह गयीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायन-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का इक्यानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९१ ॥

बानबेवाँ सर्ग

(भरद्वाज-भरत-संवाद और भरत-प्रस्थान वर्णन)

इसप्रकार भरतजीने मुनिका आतिथ्य ग्रहणकर अपने परिवार सहित आश्रममेंही रात्रि व्यतीत की । फिर जानेकी आज्ञा लेनेके लिए प्रातः होतेही महर्षिके पास गये । तब उन्हें हाथ जोड़े अपने पास आया देख भरद्वाजजी अग्निहोत्रका कार्य पूर्ण करके बोले—'कहो मेरे आश्रम पर तुम्हारी यह रात्रि सुखसे तो व्यतीत हुई ? तुम्हारे सब साथी आतिथ्यसे प्रसन्न तो हैं ? पर्णकुटीसे निकले हुए मुनिको देख भरत बोले, 'हे भगवन् ! आपने साथियों सहित मेरा आतिथ्य किया, इससे मैं सेना सहित बड़े सुखसे आपके आश्रम पर रहा । मार्ग आदिसे जो कष्ट हुआ था अच्छा भोजन और सुवास पा मैं साथियों सहित बड़ा सुखी रहा । अब आपसे अपने भाईके पास जानेकी आज्ञा माँगता हूँ । हे धर्मज्ञ ! उन महात्मा रामका आश्रम बताइये । यहाँसे वहाँ को कौन मार्ग गया है ? रामदर्शनाकांक्षी भरतसे भरद्वाज प्रसन्न हो बोले, 'हे भरत ! यहाँसे ढाई योजनपर चित्रकूट नाम गिरि है, जिसपर सुन्दर झरने तथा वन हैं । उस गिरिके उत्तर पार्श्वपर मन्दाकिनी नदी है, जिसके दोनों ओर पुष्पित वृक्ष आदि सघन लगे हैं । उस नदीसे मिला चित्रकूट है, उसीपर पर्णकुटी बना वे रहते हैं । यहाँसे यमुनाके दक्षिण किनारे थोड़ी दूर जाइये । फिर यमुनाके उत्तर दक्षिण पश्चिम कोणसे जाइये। ऐसे जानेमें रामको जल्दी ही देखोगे ।' भरत व भरद्वाजकी बातचीत सुन

राजस्त्रियोंने जाना कि यात्रा होगी। यद्यपि दशरथरानियाँ पैदल नहीं चलती थीं, तो भी पैदल ही भरद्वाजके चरण छुए, कैकेयीने भी लज्जासे ऋषिकी प्रदक्षिणाकर उनके चरण छुए। उस समय भरद्वाज भरतसे बोले—'हे राघव! मैं तुम्हारी माताओंका विशेष वृत्तान्त जानना चाहता हूँ। तब वाक्यकोविद भरत हाथ जोड़ बोले—हे भगवन्! जो यह बहुत दीन, शोक और उपवासोंसे दुर्बल हो गई हैं, पिताकी सबसे बड़ी पटरानी हैं। पुरुषसिंह रामको इन्हीं कौशल्याने जन्म दिया है और उनकी बाँयी भुजामें लिपटी जो उदास चित्त खड़ी हैं, ये सुमित्रा राजाकी मझली रानी हैं। इन्हींके सत्यसे पराक्रमी रूपवान् लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न दो पुत्र हैं और जिसके कारण राम लक्ष्मण वनको गये व पुत्रसे हीन हो राजा स्वर्गवासी हुए, जो सर्वदा क्रोधिनी, निर्बुद्धि, अहंकारभरी अपनेको सदा सुभगा माननेवाली तथा ऐश्वर्यकी इच्छुक है, इसका नाम कैकेयी है। इस पापनिश्चया और निर्लज्जाको मेरी माता जानिये। ऐसा कहते हुए भरतसे तपोधन भरद्वाज बोले—'हे भरत! कैकेयीको दोष न दो। रामका बनवास बड़े सुखका कारण होगा। राम-वनवाससे देवताओं, मुनियों और ऋषियोंका कल्याण होगा। यह सुन भरत भरद्वाजका अभिवादन और प्रदक्षिणा कर आज्ञा ले चले तथा सेनाको चलनेकी आज्ञा दी। यह सुन रथादिकोंसे घोड़े जोत लोग चले। राजकन्या और स्वर्ण भूषण धारण किये पर्वताकार हाथी आगे-आगे चले। नाना सवारियों पर आरूढ़ हो आरोहीगण प्रस्थित हुए, पदाति गण पैदल चले। तदनु राम-दर्शनाकांक्षी कौशल्यादि राजस्त्रियाँ शिविकाओंमें बैठकर चलीं। देदीप्यमान शुभ शिविकापर बैठ अनुचरों सहित भरत भी चले। हाथी-घोड़ा युक्त सेना वहाँसे दक्षिण दिशाको प्रस्थित हुई। और वनको पारकर गंगा-यमुनाके उस पार जा पहुँची कि जहाँ मध्यसे दक्षिण दिशाको प्रस्थित हुई और वनको पारकर गंगा, यमुनाके उस पार जा पहुँची कि जहाँ मध्यमें पर्वत और बहुत-सी नदियाँ आकर मिली थीं। उस महावनमें प्रवेश करते समय पशु-पक्षि समुदायोंको घबड़ानेवाली भरतकी वह सेना बहुत ही क्षोभित हो रही थी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का बानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९२ ॥

तिरानबेवाँ सर्ग

भरतका चित्रकूट के समीप पहुँच मन्दाकिनी नदी पर उतर सैनिकोंको वहाँ ठहरा देना तथा रामचन्द्रजीकी कुटीके धुवेंके अनुसंधानसे उस ओर गमन।

भरतकी उस सेनाके गमनसे बनके समस्त जीव व्याकुल और दुःखी हो भाग निकले, ऋक्ष, पृषत् और रुरु आदि जीव चारों ओर से वनों, पर्वतों तथा नदियोंके तटोंपर भागने लगे। एवं उस चतुरंगिणी सेनाके साथ प्रसन्न मन भरत चले। भरतकी प्रस्थित सेनाने पृथ्वीको आच्छादित कर दिया। घोड़ों और हाथियोंके समूहोंसे पूर्ण वह सेना उस बनमें बहुत विलम्ब तक दर्शित न हुई। इस प्रकार सैनिकों सहित भरत बहुत दूर तक चले गये। जब सब वाहन थक गये, तब वशिष्ठजीसे बोले कि, जैसा यह देश दर्शि होता है तथा जैसा मैंने सुना था निश्चय यह वही देश है। निश्चय यह चित्रकूट गिरि तथा यही मन्दाकिनी नदी है और यह दिखाई देनेवाला व भी नीलगिरि है, जिस चित्रकूट गिरिके रमणीक शृङ्गोंको हमारे हाथी तो रहे हैं जिससे वृक्षों द्वारा पर्वतके शिखरोंपर पुष्प-वर्षा-सी हो रही है। शत्रुघ्न! देखो, इस पर्वतपर और उसके चारों ओरसे घोड़े चले जाते हैं भागते हुए मृगोंकी ऐसी शोभा हो रही है जैसे शरद् ऋतुमें बादल। हमा सैनिकगण शिविरोंपर सुगन्धित काले पुष्पोंके गुच्छे ऐसे रखे हैं, जैं दाक्षिणत्य मेघोंके समान नीली ढालें शिरपर रखते हैं। यह वन-पक्षी औं मृगोंके शब्दोंसे रहित ऐसा भयावह ज्ञात होता है मानों आज-कल अयोध्या ही है। अश्वादि पशुओंके खुरोंसे उठी धूलि आकाशको आच्छा दित कर रही है। हे शत्रुघ्न! घोड़े जुते इन रथोंको देखो कि ये बनमें कै चले जाते हैं। इन सताये प्रिय-दर्शन मोरोंको देखो कि ये भयसे कैसे उड़े जा हैं। यह देश तपोबन होनेसे मुझे स्वर्गके समान प्रिय और सुन्दर प्रती होता है। कितनेही मृग मृगियोंके साथ चले जा रहे हैं जिनपर विन्दु होनें कारण वे ऐसे जान पड़ते हैं। मानों फलोंसे ही चित्रित हैं। अब सैनि बनमें घूम-घूमकर ढूँढ़ें जिससे राम लक्ष्मण मिल जायँ। भरतके ऐसे व सुन शस्त्रधारी पुरुष वनमें प्रवेश कर गये। उन्हें आगे धुँवा उठता दिख दिया। वे लोगे धुवाँ उठता देख लौट आये और भरतसे बोले कि वि

नुष्यके धुवाँ नहीं हो सकता। इससे निश्चय है कि राम लक्ष्मण वहीं हैं। दि राजपुत्र दोनों भाई यहाँ न होंगे तो उनके समान कोई और ही तपस्वी हते होंगे।' उन लोगोंके ऐसे वचन सुन भरत बोले कि—'तुमलोग यहीं हरो, मैं सुमन्त्रके साथ अकेला ही जाऊँगा। भरत जहाँ धुआँ दिखाई ड़ता था उसीकी ओर चले। भरतके द्वारा रोकी गई सेना निवासका स्थान रने लगी तथा अब रामसे भरतकी शीघ्र भेंट होगी—यह जानकर सभी नन्दित हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका तिरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९३ ॥

चौरानबेवाँ सर्ग

चित्रकूट-वासी राम-सीता संवाद

इधर श्रीरामचन्द्रजी बहुत दिनोंसे चित्रकूट पर्वतपर निवासकर रहे थे। क दिन अपने मनोरंजन और सीताकी प्रसन्नताके लिए वे उन्हें वहाँकी चित्र शोभा दिखाने लगे। कल्याणी! किंचित् इस पर्वतपर दृष्टि तो डालो । बड़ा ही रमणीय जान पड़ता है। इसे देखते ही समस्त चिन्ता विलीन । जाती है। मन प्रसन्न हो जाता है। नाना प्रकारके पक्षी यहाँ कलरव कर हे हैं। आम, जामुन, असन, लोध्र, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, निश, बेल, तिन्दुक, बाँस, काश्मीर, अरिष्ट (नीम), महुआ, तिलक, बेर, वला, कदम्ब, बेत, धन्वन और बीजक (अनार) आदि घनी छायावाले क्षोंसे जो फल और फूलोंके कारण भले प्रतीत होते हैं इस पर्वतकी बड़ी ोभा हो रही है। इसके ऊपर कहींसे झरने गिर रहे हैं, कहीं पृथ्वीके भीतरसे ले निकल रहे हैं और कहीं लघु-स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। इन सबके कारण हाँ मेरा मन बहुत लगता है। इस वनवाससे मुझे दो लाभ हुए हैं एकतो र्मानुसार उनका आज्ञारूप ऋण चुक गया और दूसरा भरतका प्रिय हुआ। देहकुमारी! क्या चित्रकूट पर्वतपर मेरे साथ मन, वाणी और शरीरको प्रिय-गनेवाले भाँति-भाँतिके पदार्थोंको देखनेके लिये तुम्हें सुख मिलता है। रानी! रे प्रपितामह राजर्षि मनु आदिने नियमपूर्वक वनवास करनेको ही अमृत तलाया है। इससे शरीर त्यागके पश्चात् परम कल्याणकी प्राप्ति होती है। हुतसे फूल-फल और जलसे सम्पन्न यह चित्रकूट पर्वत कुबेरकी नगरी

अलका, इन्द्रपुरी अमरावती और उत्तर कुरुको भी अपनी शोभासे मात
रहा है। सीते ! अपने अन्य नियमोंका पालन करते हुए, सत्पुरुषोंके मार्ग
स्थिर रहकर यदि मैं तुम्हारे और लक्ष्मणके साथ इन चौदह वर्षोंको सु
पूर्वक व्यतीत कर सका तो मुझे वह सुख प्राप्त होगा कि जो कुल धर्म
बढ़ानेवाला है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा बालकाण्डका चौरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ सर्ग

(मन्दाकिनीकी शोभा वर्णन और सीताको कष्ट देनेवाले कौवेका अङ्ग छेदन)

इसप्रकार पर्वतकी शोभा दिखा अब रामचन्द्र मैथिली सीताको अ
रमणीक मन्दाकिनी दिखाने लगे। राजीवलोचन राम चारुचन्द्रमुखी सीत
कहने लगे—हे प्रिये ! अति रमणीय हंस, सारसोंसे सेवित, पुरुषोंसे युक्त
मन्दाकिनी नदीको तो देखो कि जो नाना फल फूल वृक्ष युक्त कुवेरपुर
सौगन्धित सरोवरके समान शोभा दे रही है। मृगोंके झुण्डोंके पीनेसे इस
जल कलुषित हो गया है, पर घाट अति रमणीय है। हे प्रिये ! प्रातः ही
मन्दाकिनी नदीमें वृक्षोंके वल्कल पहिने ऋषिगण स्नान करते हैं। हे वि
लाक्षि ! वे लोग शास्त्रोक्त नियमोंके पालनके लिये भुजाको ऊपर उठाये सूर्य
स्थान करते हैं। इस नदीके दोनों तटोंपर लगे वृक्षोंके पवनसे कम्पित
ज्ञात होता है मानों यह गिरि नृत्य करनेका आरंभ ही कर रहा है,
मन्दाकिनीको देखो। वायु द्वारा वृक्षोंसे गिरे पुष्पोंके ढेर पड़े हैं।
कल्याणी ! अत्यन्त ही प्रिय और मधुरभाषी पक्षिगण कैसी सुन्दर बो
बोलते हैं। मैं चित्रकूट-इस नदी तथा तुमको देख अयोध्यावासियोंसे अ
सुख मानता हूँ। इस निष्पाप, नित्य चलायमान मन्दाकिनीमें तुम मेरे
स्नान करो। हे सीते ! कमलोंको जलमें डुबाती हुई सखीके तुल्य इस न
में स्नान करो। अयोध्यावासियोंको तो यहाँके व्यालोंके तुल्य और अयो
के तुल्य इस गिरिको तथा सरयूवत् इस नदीको जानो। सर्वदा अनु
धर्मात्मा लक्ष्मण और प्रिय तुम्हारे साथ स्नान करते मधु और फल
खाते मुझे अयोध्या तथा राज्यकी इच्छा नहीं है। गज, सिंह और वा
ने इसका सेवन किया है। हाथियों द्वारा इसका जल क्षुब्ध किया गया है

पुण्य युक्ता नदीमें स्नानकर भला कौन पुरुष सुखी न होगा ? इस प्रकार रूप चित्रसे युक्त रघुवंशवर्धक रामचन्द्र मन्दाकिनी नदीके सम्बन्धमें ग करते हुए, कज्जलतुल्य, नीलवर्ण और रम्य चित्रकूट पर्वतपर रने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का पंचानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९५ ॥

छियानबेवाँ सर्ग

दूरसेही भरतकी सेना देख राम–लक्ष्मण संवाद और लक्ष्मणका कोप

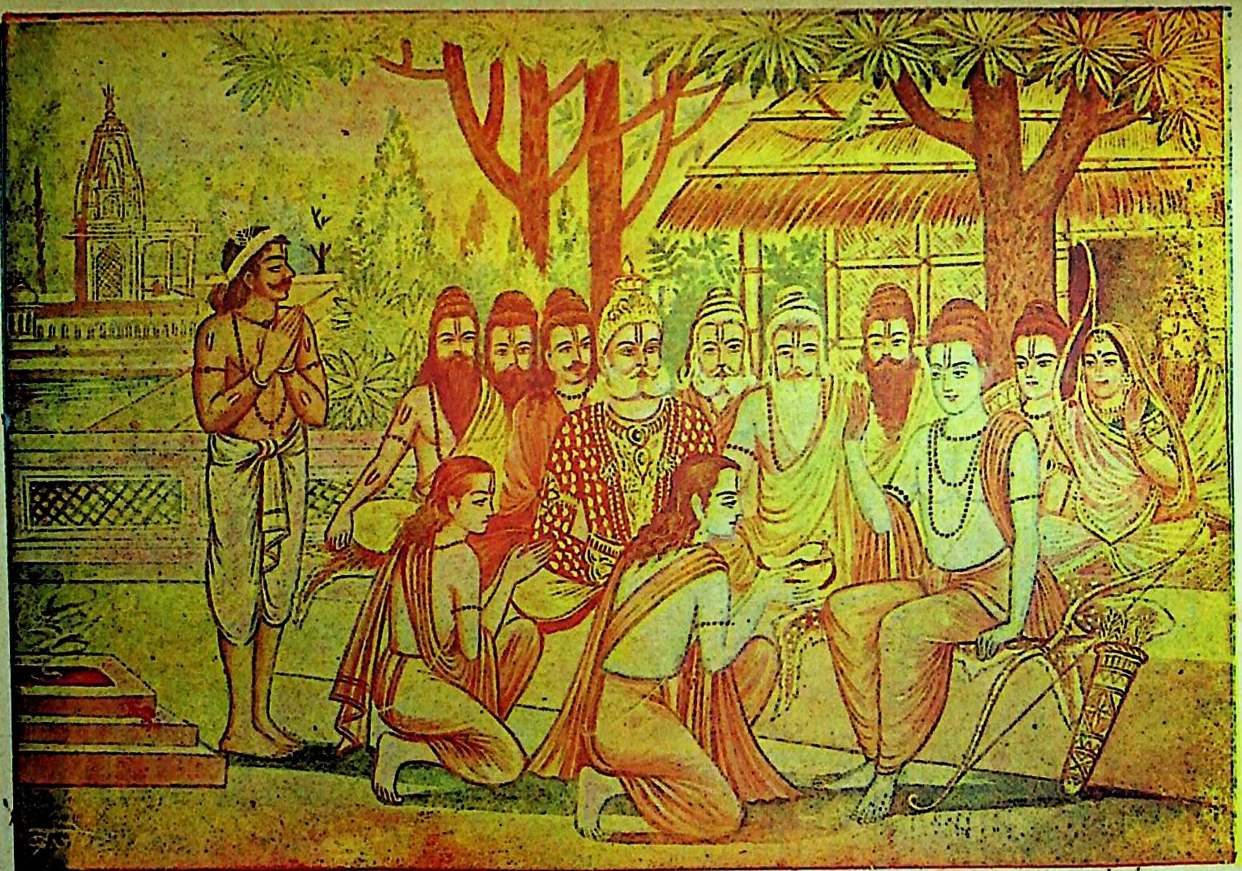
इस प्रकार सीताको चित्रकूट पर्वत और रमणीय नदीका दर्शन करा नेपर श्रीरामचन्द्रजीने चित्रकूटकी तलहटीमें विद्यमान एक ऐसी गुफाको देख- ा कि जो रम्य होती हुई चट्टानों तथा धातुओं और सुखद मकरन्द चूने- एवं पुष्पभारसे लदे वृक्षोंसे आपूर्ण थी। वह गुफा इतने एकान्त मेंं वनी थी जहाँ यथेष्ट मतवाले पक्षी विद्यमान रहा करते थे। तव ऐसे और दृष्टिको अकर्षित करनेवाले उस वन-विभागको देखकर रामचन्द्रजी र्यमें आगये। उन्होंने सीतासे कहा—हे वैदेही ! क्या इस पर्वत-कन्दरा- तुम्हारी दृष्टि पड़ी है ? यदि पड़ीहो तो किंचित् श्रम दूर करनेके लिये यहाँ जाओ। देखो यह कोमल और अखंड चट्टान तुम्हारेही लिए यहाँ पड़ी सके एक ओर परागपूर्ण ये वृक्ष पुष्पित हैं। श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे नपर सरलमति सीताने प्रेमके कारण अधिक रसयुक्त और प्रचुर मिष्ठपूर्ण से यों कहा कि—हे राम ! यदि आप रघुकुलके प्रसन्न करने वाले आपका यह कथन मुझे अवश्यही मानना चाहिये। आज यही र तो वार—बार आपके हृदयमें उथल–पुथल मचाये हैं। ऐसा कह प अङ्गवाली सीता उस चट्टानकी ओर बढ़ीं जो मनबहलावका स्थान उद्देश्य था। सीताका यह उत्तर सुनतेही श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा— ते ! इस रमणीय वनको जो तुम देख रही हो, वह प्रचुर वन्य सामग्री पुष्पोंके भारसे बोझिल वृक्षोंके कारण ही परिपूर्ण है। इन वृक्षोंकी ी भी कितनी चित्ताकर्षक है, यह पर्वत चेतोहर पुष्पोंसे व्याप्त है जिनपर हाथी दातोंके आघात दर्शित हो रहे हैं और जिनसे लासे टपक

रहे हैं। इस अवलीको भी तुम अवश्यही देख लो, जिसके चतुर्दिक ये लघु
कीट-समूह दीर्घ शब्द निकाल रहे हैं; जिनसे ऐसा साक्षात् होता है कि मानों
यह पर्वत वैसा ही विलख रहा है, जैसे कुछ समय पूर्व मेरी माता मुझको
मधुर एवं करुणपूर्ण शब्दमें 'पुत्र-पुत्र' कहकर पुकारती थीं, ठीक वैसे
यह पक्षी भी अपने शिशुसे प्यार करता हुआ उसे पुत्र-पुत्र कहकर टेरता है।
साल वृक्षके ऊपरी भागपर या धड़पर बैठकर यह भ्रमरराज संभवतः गानके
लिए ही कोयलके साथ कूजता रहता है। मेरी समझसे यह पक्षी कोयलका
अभी शिशुही है। देखो न, यह उन्हींकी समान कुछ सम्बद्ध असम्बद्ध शब्द
बोलता है। हे देवि ! जैसे श्रमित होनेपर तुम मेरे आश्रित हो जाती हो
वैसे हो ये पुष्पभार ले झुकीं हुई लता फलफूलसे पूर्ण हो वास्तवमें इस वृक्ष
से मानों पूर्णतया लिपटी हुई दर्शित होती हैं। श्रीरामचन्द्रजीके इस कथनको
सुनकर प्रियवादिनी और शान्तमयी सीता अति आवेगसे प्रियतमके अङ्क
बैठने चलीं। देवकन्यातुल्य सीता जब इस भाँति श्रीरामचन्द्रजीके अंग
दृढ़तापूर्वक बैठने चलीं, उस समय रामके मानसमें अधिक कामोद्रेक हुआ
और अधिक प्रसन्नता होने लगी। तब उस उच्च मनःशिलापर रामचन्द्र
अपनी उँगली घिसकर सीताके माथे या ललाटपर टीका या सुन्दर रोली लगा
दी। उस तिलकके लगा लेनेपर सीता ठीक वैसे ही सुहाने लगीं जैसी रात्रि
जिसमें सायंकालीन मेघ दीख पड़ते हैं, जगमगाने लगती है। क्योंकि वह
तिलक उदीयमान सूर्यकी आभाकी भाँति तेजस्वी था। पश्चात् चम्पक फूलोंको
हाथोंसे तोड़कर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हो सीताके जूड़ेमें लगाने लगे। इस
प्रकार उस स्थानमें विहारकर श्रीरामचन्द्रजी शून्य स्थानमें चले गये और
सीताभी पीछे-पीछे चलीं। तब विविध मृगोंसे आकीर्ण (भरे हुए) उस वनमें
विचरते समय सीताने एक विशाल बन्दरको देखा जो कई बानर-समूहोंका
प्रधान था। उसे देखते ही वह भयके मारे विशालबाहु रामचन्द्रसे लिपट गईं।
रामचन्द्रने उन्हें कण्ठसे लगा उस बन्दरको झिड़की दे सीताको सान्त्वना दी।
इस अस्तव्यस्ततामें सीताके ललाटका रक्तित तिलक श्रीरामचन्द्रजीके वक्षमें
चिपका दिखाई पड़ा, और जब बन्दर दूर चला गया तब मनःशिलाके मस्तक
टेढ़ा बना हुआ एवं उस तिलकको पतिके अवयवपर देखकर सीता खिलखिला

कर हँस पड़ीं। उसी समय सीताने एक अशोक-वन देखा जिसमें बड़े ही सुन्दर पुष्पोंके गुलदस्ते जैसे फूल खिले थे और जिनसे वह वन और ही शोभित हो रहा था। सीताने अशोकके उन पुष्पोंको लेना चाहा और रामचन्द्रसे कहा—चलिए, उधर चलें। श्रीरामचन्द्रजी तो उनको सर्वदा प्रसन्न रखनेमेंही तल्लीन रहते थे, इसलिए प्रसन्नचेता बने देवरूपिणी और दिव्य संपदाशाली सीताको साथ लिए उस अशोक-वनकी झुरमुटमें वैसेही प्रवेश कर गये जैसे शिवजी पार्वतीके साथ हिमालय पर्वतपर विचरते थे। फिर तो सीता सहित श्रीरामचन्द्रजी उस वनमें संचार करने लगे। तब लालिमा और नीलिमा युक्त सीता और रामचन्द्रजी अशोकके पुष्पोंसे जिनमें पत्तियाँ भी थीं, एक दूसरेको सँवारने लगे। वनमालाओं कर्णभूषणों और शिरोभूषणोंसे स्वयं अलंकृत होकर उन दम्पतियोंने उस पर्वतको और ही रम्य बना दिया। इस प्रकार वह प्रिय सीताको भाँति-भाँति भूभाग दर्शाकर अति निकट विद्यमान और पूर्ण सज्जित अपने आश्रममें चले आये। तब भाई लक्ष्मण जो गुरुजनोंके प्रिय थे और कई धर्म यथार्थ कार्यान्वित करते थे और जो सब कार्यों को विवृत्त दर्शाते हुए थे, समक्ष आ खड़े हुए। श्रीरामचन्द्रने देखा उनके निर्मल वाणोंसे मारे हुए दस हिरन और राशिरूपमें रखे यत्रतत्र सुखाये जानेवाले मृगभी पड़े हैं। भ्राता लक्ष्मणका यह कार्य देखकर रामचन्द्रजी बहुत सन्तुष्ट हुए और सीतासे बोले—'अच्छा, अब बलि तो कीजिएगा!' तब सुन्दर सीताने पहले भूतोंको उसका कुछ भाग देकर फिर दोनों भाइयोंको वह मधु एवं मांस यथेष्ठरूपमें परोसा। शुचिभूत दोनों भाइयोंके तृप्त होनेपर सीताने भी शरीरमें प्राण-रक्षार्थ स्वल्प भाग ग्रहण किया। फिर जो साधारण श्रेणीके मांस सुखाकर रखनेके लिए थे, उसे वह रामचन्द्रजीके कथनानुसार कौवोंसे बचाने लगीं। उसी समय एक कौवा उन्हें सताने लगा। यह दृश्य रामचन्द्रने देखा। वह कौवा स्वतंत्रतासे संचारक सीताके कंठहारके बीच छटपटाने लगा। मानों वह उन्हें निगलना ही चाहता है, यह देख पति-प्रेम गर्विष्ठ सीताको बड़ा क्रोध आया और निर्दोष अङ्गोंवाली सीता बहुतही सहम गईं। तथापि इधर-उधर हलकाते समय सीताको उस कौएने चोंच तथा नखोंसे और क्रोधित किया। तब कम्पित ओष्ठों और भृकुटिपुर-सूचिता सीताका क्रोधाविष्ट-मुख

देखकर रामचन्द्रजी उस कौएको हटाने लगे। तथापि उसने धृष्टता की ओर रामका निषेध न सुना और वह सीतापर और ही झपटा। इससे काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्रजीका मुख क्रोधसे लाल हो गया। उन्होंने एक तिनका अस्त्रसे मन्त्रित करके कौएपर छोड़ दिया। कौआ भाग चला। वह अस्त्र उसका पीछा करने लगा। वह दुष्ट पक्षी समस्त त्रिलोकीमें दरदरमें घूमा। देववर-दानसे कंठहारके भीतर भ्रमनेवाला वह पक्षी जिधरही जाता उधरही वह अस्त्र पिशाचके समान उसके पीछे लगा रहता। तब यह देखकर वह फिर रामचन्द्रजीके समीप चला आया और सीताके देखते ही वह माथा टेककर महात्मा रामके समक्ष पृथ्वीपर गिर पड़ा और मनुष्यकी वाणीमें बोला—हे राम! कृपाकर मेरी प्राण-रक्षा कीजिए। इस अस्त्रके मारे मुझे कहीं भी त्राण नहीं मिल रहा है। तब इस भाँति चरणोंपर अधोमुख पड़े कौए से दयालु श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त अर्थयुक्त यह वाणी बोले कि—'सीताका प्रिय और हित हो—इसी इच्छासे कि तुम्हारा वध हो, मैंने इस अस्त्रका प्रयोग किया है। यह आमंत्रण इसीलिये किया है। किन्तु अब तू जीवदानके लिये मेरे चरणोंपर आ पड़ा है, अतः मुझे तेरी ओर ध्यान देना पड़ा। क्योंकि शरणागतकी रक्षा होनी ही चाहिये। तू अपने एक अंगका त्याग कर दे। इससे यह अस्त्र निष्फल हो जायगा। अच्छा तो कह कि इस अस्त्रसे तेरा कौन-सा अंग भंग हो। रे पक्षी! मैं तेरा इतना ही हितकर सकता हूँ। देख, किसी अंगसे भग्न रह जीवित रहना मरनेसे तो अच्छा ही है। कौएने सोच-विचारकर एक नेत्रका त्याग करनाही अच्छा समझा। उसने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि, मैं एक नेत्रका त्याग करनेको प्रस्तुत हूँ। एक आँखसे मैं जीवित तो रहूँगा। फिर तो रामचन्द्रजीकी आज्ञा होते ही वह अस्त्र उस कौएकी एक आँख पर जा गिरा। इस प्रकार वह कौआ एक नेत्रसे रहित हो गया! यह देख सीता आश्चर्यित हो गयीं। कौआ रामचन्द्रका अभिवादन कर जिधरसे आया था उधर चला गया। भाई लक्ष्मण सहित रामने अपना अग्रिम कार्यक्रम चलाया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका छानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९६ ॥



भरत जी का चित्रकूट में श्रीरामजी का चरण पादुका लेना।

सत्तानबेवाँ सर्ग

(भरतके ससैन्य चित्रकूट पहुँचने पर उसका आभास पा राम-लक्ष्मण संवाद)

इस प्रकार धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ बातें कर रहे थे, इतने में भरतके साथ आनेवाले सेनाकी धूल आकाशमें उड़ती दिखाई दी तथा सैनिकोंका तुमुल कोलाहल आकाश मण्डलमें व्याप्त हो गया। उस शब्द से भयभीत होकर कितनेही हाथियोंके यूथपति अपने-अपने यूथके साथ सब दिशाओंमें भाग गये। श्रीरामचन्द्रजी उन हाथियोंको चिंघाड़ते और भागते देख लक्ष्मणसे बोलें—'हे लक्ष्मण ! मेघोंकी गर्जनके तुल्य अति भयङ्कर शब्द कहाँसे आ रहा है ? क्या सिंहोंके भयसे वन्य जीव तो दौड़ते हुए नहीं आते हैं ? या कोई राजा या राजपुत्र वनमें आखेट करता हुआ तो नहीं आ रहा है ? हे लक्ष्मण ! इसका वृतान्त ज्ञात करो। यहाँ पर पक्षीभी कठिनतासे उड़ सकते हैं। अतः इसका यथातथ्य वृतान्त ज्ञात करना चाहिये। यह सुन लक्ष्मण एक वृक्ष पर चढ़कर देखने लगे। जब प्रथम पूर्वकी ओर, फिर उत्तरकी ओर देखा तो एक विशाल सेना दर्शित हुई। तब उस अश्व, रथ पताकाओंसे युक्त सेनाको रामको बताते हुए लक्ष्मण यह वचन बोले कि 'आप इस सेनाको नष्ट करें, सीताको किसी कन्दरामें बिठा धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाइये।' राम यह सुन लक्ष्मणसे बोले—'सोचो तो यह किसकी वाहिनी है।' रामके ऐसा कहने पर क्रोधसे लक्ष्मण बोले कि निष्कण्टक राज्येच्छासे हम दोनोंको मारनेके लिये भरत आते हैं। कोविदार वृक्षके समान पताका लगाये रथ पर चढ़े हुए हैं। देखिये, ये लोग शीघ्रगामी अश्वों तथा हाथियोंपर आरूढ़ हैं। इसलिए हम दोनों या तो धनुषवाणादि लेकर इस पर्वतपर बैठें या इसी स्थान पर बैठे रहें। भरत युद्धमें हमारे वशमें हो पड़ेंगे ही कि जिसके कारण आपने, मैंने और सीताने महान् कष्ट वहन किया तथा जिसके कारण आप राज्यच्युत हुए हैं। हे वीर ! वही हमारे शत्रु भरत आये हैं। मैं भरतके मारनेमें कुछ दोष नहीं पाता। क्योंकि अपकारीके मारनेवालेको पाप नहीं होता। भरतके मारे जाने पर राज्यका आप भोग करें। आज केकयी अपने पुत्रको मारा हुआ हाथीसे तोड़े हुए

वृक्षके समान देखें। आज महापापसे यह संसार मुक्त होवे। आज यह बहुत दिनोंका अपमान शत्रुकी सेना पर छोड़ता हूँ। आजही इस चित्रकूटके वनको पैने बाणोंसे शत्रुओंके शरीर काट-काट रुधिरसे सींचूँगा। हमारे मारे हुए मनुष्योंको कुत्ते घसीटेंगे। इस महावनमें शरों और धनुषसे मैं ससैन्य भरतको मारकर उऋण होऊँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सत्तानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवाँ सर्ग

भरतका रामाश्रमके पास पैदल गमन

इसप्रकार श्रीलक्ष्मण भरतके प्रति क्रोधसे पूर्ण हो गये। तब उन्हें श्रीरामचन्द्रजीने समझाकर शान्त किया और कहने लगे—हे लक्ष्मण! महान् उत्साही भरत जब यहाँ स्वयंही आ रहे हैं तो हमें धनुष, तलवार, ढालका क्या प्रयोजन है? हे लक्ष्मण! पितासे वनमें रहनेकी प्रतिज्ञाकर अब भरतको युद्धमें मार सापवाद राज्य ले क्या करेंगे? जो द्रव्य बन्धुओं तथा मित्रोंके क्षय होनेसे प्राप्त हो, मैं उसे ग्रहण नहीं करसकता। हे लक्ष्मण! धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी इन सबकी तुम्हीं लोगोंके अर्थ मैं कामना करता हूँ। मैं सत्य ही कहता हूँ कि सब भाइयोंके संग्रह तथा उनके सुखके ही लिए राज्यकी इच्छा किया करता हूँ। हे सौम्य! सागरांबरा यह पृथ्वी मुझको दुर्लभ नहीं है, पर अधर्मसे मैं इनपर भी अधिकार नहीं चाहता। जो सुख मुझको भरत, तुम्हारे तथा शत्रुघ्नके बिना प्राप्त हो, उसे अग्नि नष्ट कर डाले। मैं जानता हूँ कि, भ्रातृभक्त भरत जब अयोध्यामें आये होंगे और यह सुन कि जटा चीरधारी मैं, जानकी और तुम्हारे सहित वनको चला गया, तो शोकसे व्याकुलेन्द्रिय हो वे मुझे देखनेको आये हैं, अन्य किसी अभिप्रायसे नहीं। अपनी मातासे क्रोधकर तथा उसे अप्रिय वचन कह मुझको राज्य देनेके लिए आए हैं। हम लोगोंको देखनेके लिए भरत आए हैं। इसलिए वे हमारे साथ मनसे भी अप्रिय न करेंगे। क्या कभी भरतने तुम्हारे साथ कोई विप्रिय किया है। जिससे तुमको ऐसा भय है। अब भरतको कुछ कठोर बात न कहना। किसी अपवादके समयभी पुत्र प्रिय पिताको तथा भाई भाईको न मारेगा। यदि

राज्यके कारण तुम भरतको ऐसा कहते हो तो भरतसे मिले कह दूँगा कि राज्य लक्ष्मणको दे दो। हे लक्ष्मण ! मेरे कहते ही कि, 'राज्य इनको दे दो; तो वे तुरन्त ही मेरा वचन मान लेंगे।' जब धर्मज्ञ श्रीरामने ऐसे वचन कहे तो लक्ष्मण लज्जासे सिकुड़ अपनेही अंगोंमें लीनसे हो गये। तब रामके ऐसे वचन सुन लक्ष्मणको लज्जित देख राम बोले कि, 'यह मैं भी मानता हूँ कि ये हमको देखनेको आए हैं। अथवा हम दोनोंको सुखोचित समझ घरको लौटा ले जायँगे। या इसी सुखसेविनी सीताको वनसे घरको लौटा ले जायँगे। दोनों भाई भरत शत्रुघ्न अति चञ्चल अश्वोंपर आरूढ़ चले आते हैं। यह पिताका शत्रुञ्जय हाथीभी सेनाके आगे-आगे चला आता है। पिताजीका छत्र नहीं दीख पड़ता, इससे बड़ी शङ्का होती है।' यह सुन राम सौमित्रिसे बोले— 'हे लक्ष्मण ! अब वृक्षसे नीचे उतर आओ।' लक्ष्मण उस वृक्षसे नीचे उतर आये और हाथ जोड़ श्रीरामके पास आ खड़े हुए। उधर भरतने यह विचार-कर कि इस पर्वतका संमर्दन न होवे सेनाको ठहरनेकी आज्ञा दी। हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों से युक्त वह सेना छः कोश तक उस पर्वतके किनारे-किनारे ठहर गई। तब अपने धर्म पर ध्यान देकर नीतिमान् भरत रामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये वहाँसे पैदल ही पैदल आगे बढ़े और वह सेना चित्रकूट पर्वत पर शोभायमान हुई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका अट्ठानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९८ ॥

निन्यानबेवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रको कुशासन पर पृथ्वी पर बैठे देख भरत का विलाप।

इसप्रकार संचारशील प्राणियोंमें अत्यंत श्रेष्ठ प्रभु भरतजीने सेनाको उधरही ठहराकर गुरु-सुश्रूषा में तत्पर तथा काकुत्स्थकुल भूषण श्रीरामचन्द्रजी के निकट शीघ्र पहुँचनेकी इच्छा की। तब इच्छानुकूल सैन्य-प्रबन्ध होतेही वे भाई शत्रुघ्नसे विनय पूर्वक बोले—हे सौम्य ! बहुतसे मनुष्योंके झुंड और गुहके इन निषादोंको साथ लेकर तुम बहुतही शीघ्र इस वनमें जाओ और चारों ओर आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी खोज करो। निषादराज गुह भी धनुष बाण और तलवार लिये अपने हजारों बन्धु-बान्धवोंके साथ श्रीराम और लक्ष्मणकी खोज करें। मैं भी मन्त्री, पुरवासी, गुरु, और ब्राह्मणोंको

साथ ले पैदलही सम्पूर्ण वनमें घूमूँगा। जब-तक महाबली लक्ष्मणको, सौभाग्यशालिनी सीताको तथा अपने पूज्य भ्राता श्रीरामके कमलदलवत विशाल लोचनोंवाले मुखचन्द्रको न देख लूँगा, मुझे शान्ति न मिलेगी। जब-तक भ्राताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम न करूँगा, जबतक राज्यके सच्चे अधिकारी श्रीरामचन्द्र अभिषेक-जलसे सिञ्चित हो अपने पिता पितामहोंके साम्राज्यपर प्रतिष्ठित न हो जायँगे, तबतक मेरे मनको शान्ति न मिलेगी। विदेहराजकुमारी सीताकाही जीवन सुफल है जो अपने समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी पतिदेवका अनुसरण कर रही हैं। यह चित्रकूट पर्वत जिस पर स्वयं श्रीरामचन्द्रजी निवास करते हैं, गिरिराज हिमालयके समान शोभा पा रहा है। यह दुर्गम वनभी आज धन्य-सा हो गया; जिसे महाराज श्रीरामने अपना आश्रम बनाया है। ऐसा कहकर महातेजस्वी भरत पैदलही उस सघन वनमें प्रवेश कर गये। आगे जाकर अति तीव्रतासे एक शाल वृक्ष पर चढ़ गये जिसपर चढ़ते ही उन्हें श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें विद्यमान अग्निका उच्च धूम्र भरतको दृष्टि आया। उस धुएँको देखते ही भरतको भाई सहित बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें निश्चय हो गया कि धर्मात्माओंसे पूर्ण श्रीरामचन्द्र जी का यही आश्रम है। फिरतो महात्मा भरतने खोजके लिए भेजी हुई सेना को उधर ही ठहराकर गुहके साथ शीघ्रही उस ओर चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका निन्यानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९९ ॥

सौवाँ सर्ग

भरतको विवर्ण देख रामका उन्हें अपनी गोदमें बैठाकर संभाषण करना।

सेनाके ठहर जानेपर भरत भाईको देखनेके लिए उत्कण्ठित होकर शत्रुघ्नको आश्रमके चिह्न दिखाते हुए उसकी ओर चले। ऋषि वशिष्ठको माताओंको लानेकी आज्ञा दे गुरुवत्सल भरत शीघ्रतासे आगे बढ़े। सुमन्त्र भी शत्रुघ्नके पीछे ही चले जाते थे। क्योंकि उनको भी राम-दर्शनोंकी बड़ी अभिलाषा थी। एवं जाते हुए भरतने तपस्वियोंके स्थानोंके बीचमें रामकी पर्णशाला देखी। पर्णकुटीके आगे तोड़ी हुई समिधा तथा पुष्प एकत्रित देखे। फिर रामको लक्ष्मण सहित कहीं निकटहीसे आया हुआ शालामें

प्रवेश करते देखा। पर्णकुटीके आगे हरिणों, भैंसोंके सूखे गोबरका ढेर लग रहा था। चलते ही चलते श्रीमान् भरतजी हर्षित हो शत्रुघ्न व मन्त्रियोंसे बोले--'मैं समझता हूँ कि हमलोग भरद्वाजके बताये स्थानपर आ गये, क्योंकि मन्दाकिनी नदी अब निकट ही है। ये जो वृक्षकी शाखाओंमें वस्त्र बँधे हैं लक्ष्मणने विकालमें जाने-आनेके कारण बाँधे हैं। यह बड़े-बड़े दन्त-वाले शीघ्रगामी हाथियोंके गमनका मार्ग है। यह उसी अग्निका धुआँ है जिसे तपस्वीगण सर्वदा वनमें रखना चाहते हैं। आज यहाँ पुरुष सिंह, पिता की आज्ञाका अनुवर्त्तन करनेवाले श्रीरामको देखेंगे।' चित्रकूट पहुँचनेके एक मुहूर्त बाद मन्दाकिनीके निकट पहुँच सब लोगोंसे भरत बोले--'पुरुषसिंह श्रीराम निर्जन वनमें बैठे हैं, इससे हमारे जीनेको धिक्कार है। लोकनाथ राम आज मेरे ही कारण इस निर्जन वनमें आकर धरतीके ऊपर वीरासनसे बैठते हैं। आज मैं श्रीरामके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न करूँगा! सीता और लक्ष्मणके भी पैरोंपर पड़ूँगा।' इस प्रकार विलाप करते हुए दशरथ कुमार भरतने एक बहुत बड़ी पर्णशाला देखी, जो बड़ी पवित्र और चित्ता-कर्षक थी। वह शाल, ताल और अश्वकर्ण नामक वृक्षोंके पत्तोंसे छायी हुई थी। वहाँ इन्द्रधनुषके समान अनेक धनुष रखे थे, जिनके पृष्ठ भाग सुवर्ण-मण्डित थे और जो बहुत ही भारी दृढ़ तथा शत्रुओंको पीड़ा पहुँचानेवाले थे। इन धनुषोंके सिवा वहाँ कई तरकसोंमें बहुतसे बाण भरे थे, जो सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले और भयंकर थे। सुवर्णके म्यानोंमें रखी हुई दो तलवारें तथा स्वर्णमय विन्दुओंसे विभूषित दो ढालें भी उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रही थीं। गोहके चमड़ेसे बने कई स्वर्ण जटित दस्ताने वहाँ रखे थे। भरतने देखा, आश्रमके सामने एक विशाल वेदिका बनी है, जो ईशानकोणकी ओर कुछ नीची है। उस पवित्र वेदिकापर अग्नि प्रदीप्त है। फिर आश्रममें दृष्टि डालनेपर उन्हें भगवान् श्रीराम बैठे दिखायी दिये, जो कृष्णमृगचर्म और वल्कल वस्त्र धारण किये हुए थे। उनके मस्तकपर जटाएँ शोभा पा रही थीं। उनके सिंहके समान कन्धे, विशाल भुजायें और कमलवत नेत्र थे। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी एवं धर्मपरायण

राम एक चबूतरेपर, जिसके ऊपर कुश बिछे थे, सीता और लक्ष्मणके साथ विराजमान थे। उन्हें इस अवस्थामें देख धर्मात्मा भरत शोक और मोहमें निमग्न हो गये तथा श्रीरामचन्द्रजीकी ओर बड़े बेगसे दौड़े। भाईकी ओर दृष्टि पड़ते ही वे आर्तभावसे विलाप करने लगे और आँसू बहाते हुए गद्-गद् वाणीसे बोले—'हाय! जो राजसभामें बैठकर प्रजा और मन्त्रिवर्गके द्वारा सम्मान पानेके योग्य हैं, वे ही मेरे ज्येष्ठ भ्राता यहाँ वन्य-पशुओंसे आवृत्त हुए बैठे हैं। जो महात्मा पूर्वमें कई सहस्र वस्त्रोंका उपयोग करते थे, वे आज धर्माचरण करते हुए केवल दो मृगचर्म धारण किये दृष्टि आते हैं। जिनके लिए शास्त्रोक्त यज्ञोंके अनुष्ठान द्वारा धर्मका अनुसन्धान कर रहे हैं। हाय! जो सर्वथा सुखके योग्य हैं, वे राम मेरे ही कारण इतना दुःख उठा रहे हैं। ओफ! मैं कितना क्रूर हूँ। मेरे इस लोकनिन्दित जीवनको धिक्कार है।' इस प्रकार विलाप करते भरतने खिन्नमुख हो रामके चरण छूनेको हाथ बढ़ाया, पर मूर्छित हो गिर पड़े। महाबली राजकुमार भरतने दुखसे दीन हो 'हे आर्य!' यह तो कहा, फिर कुछ न बोल सके। शत्रुघ्नने भी रोते हुए रामके चरणोंमें प्रणाम किया। दोनोंको आलिंगन कर श्रीरामने भी अश्रुपात किया तथा उसी प्रकार श्रीराम व लक्ष्मण सुमन्त्र और गुह से ऐसे मिले जैसे सूर्य चन्द्र, गगनमें शुक्र और बृहस्पति मिलेहों। उस समय उन राजकुमारोंको वहाँ उस महावनमें एकत्रित हुए देखकर वहाँके वनवासियों ने भी हर्ष त्यागकर अश्रुपात किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका सौवाँ सर्ग समाप्त ॥१००॥

एक सौ एकका सर्ग

(श्रीरामका भरतको कुशल-प्रश्नके बहाने राजनीतिका उपदेश)

जटाधारी चीरवस्त्र पहने प्राञ्जलि हो भूमिमें पड़े भरतको युगान्तसूर्यके तुल्य रामने देखा। शोक विवर्णयुक्त भरतको रामने कठिनतासे पहचाना और भरतको हाथोंसे ग्रहण किया और मस्तक सूँघ छाती से लगा गोदमें बिठा आदरसे राम पूछने लगे—हे तात! तुम्हारे पिता कहाँ गये जो तुम वनको आये? हे तात! ननिहाल चले जानेके कारण बहुत दिनोंके पीछे तुम्हें देखा

इससे बड़ा हर्ष हुआ। इस वनमें तुम कैसे आये? हे तात! क्या राजा जीवित हैं, जो उनको छोड़ यहाँ चले आये? या राजा स्वर्गको सिधार गये? हे तात! माता कौशल्या व सुमित्रा तथा परम श्रेष्ठ कैकेयी आनन्दित तो हैं? नियमसम्पन्न, सुकुलमें उत्पन्न, वेदज्ञ, सत्कर्मनिपुण वशिष्ठके पुत्र पुरोहितका आदर तो करतेहो? अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें तुमने मतिमान ऋत्विजोंको नियत किया है, वे समयपर अग्निहोत्र तो करते हैं। हे तात! देवता, पितर, मन्त्री, सेवक, महान गुरु, वैष्णव व ब्राह्मणोंकी तुम संभावना तो करते रहते हो? हे तात! वाणविद्या तथा अन्य शस्त्रास्त्रोंमें अति निपुण सुधन्वा नामक उपाध्यायका सत्कार तो करते हो? तुमने अपने तुल्य वेदज्ञ जितेन्द्रिय मन्त्री तो नियत किये हैं? हे राघव! राजाओंको मन्त्रही विजयका मूल होता है, इससे राजाको चाहिये कि श्रेष्ठ मन्त्रीसे सदा सलाह लिया करें। कभी संध्यादि काल में सोते तो नहींहो, समयपर जागते तो हो, प्रहरभर रात्रि रहे उठकरप्रयोजन सिद्धिक विचार तो करते हो? मन्त्र एकही साथ बैठकर करते हो कि नहीं? हे भरत! अल्प व्ययसे बड़ा कार्य पूरे होनेका निश्चयकर शीघ्र प्रारंभ तो करदेते हो? तुम्हारे कृतके भावी कार्यको तुम्हारे आधीन राजालोग जान तो नहीं लेते? हे तात! तुम्हारे विना कहे अन्य लोग तुम्हारे अभिप्रायको तो नहीं जानलेते, तुम दूसरेकी मन्त्रणाको युक्तिसे जान तो लेते हो? क्या तुम सहस्रों मूर्खोंसे एक पण्डितकी तो विशेष इच्छा करते रहते हो? कठिन समस्याको पण्डित ही सुलझा सकता है? राजा यदि सहस्रों मूर्खोंको भी अपने पास रक्खे तो भी उनसे कोई सहायता नहीं मिल सकती। शूर विचक्षण और दक्ष एकही मन्त्री राजाको महान् श्री प्राप्त करता है। हे तात! क्या तुम बड़े कार्यके लिए कर्मण्य सेवक नियत करते हो? सुपरीक्षित पुराने और निष्कपट आमात्योंको श्रेष्ठ कार्यों में नियुक्त करते हो? क्या अल्प अपराधमें अति कठोर दण्ड देकर प्रजाओंको दुःखी तो नहीं करते? तुमको यज्ञ करानेवाले ऋषिगण पतित तो नहीं समझते? सन्दूषणमें रतवैद्य या मंत्रीको राजा मार नहीं डालता वह आप मार डाला जाता है? क्या तुमने शूर, धर्यवान्, कुलीन और स्वामिभक्त सेनापति नियत किया है, या नहीं? क्या बलवानोंको जो सब प्रकार युद्धमें

प्रवीण हैं, प्रियवचनोंसे तथा वस्त्र भूषणादि दे तुमने प्रसन्न रक्खा है। क्या सैनिकोंका समुचित नियत वेतन और भत्ता तुम समयपर दे देते हो न? देने में विलम्ब तो नहीं करते? यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामीपर बहुत असन्तुष्ट रहते हैं और इसके कारण बड़ा अनर्थ होता है। क्या तुम्हारे कुलके प्रधान—प्रधान पुरुष तुमसे प्रेम रखते है? क्या वे तुम्हारे लिए सावधानीके साथ अपने प्राण लगा देनेको उद्यत रहते हैं? तुमने जिसे राजदूतके पदपर नियुक्त किया है, वह पुरुष अपनेही देशका निवासी, विद्वान्, कुशल और प्रभावशाली तो है? जो बात उससे कहीजाय, उसको यथार्थरूपसे दूसरोंके समक्ष उपस्थित करनेवाला और पण्डित तो है न? जिन शत्रुओंको तुमने राज्यसे निकाल दिया है, वे यदि फिर लौटकर नहीं आते हैं तो तुम उन्हें दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते? तुम कभी नास्तिक ब्राह्मणोंका संग तो नहीं करते? क्योंकि वे बुद्धिको परमार्थकी ओरसे विचलित करनेमें कुशल होते हैं तथा वास्तवमें अज्ञानी होते हुए भी अपनेको बहुत बड़ा पण्डित समझते हैं। उनका ज्ञान वेदके विरुद्ध होनेके कारण दूषित होता है और वे प्राणभूत प्रधान-प्रधान धर्मशास्त्रोंके होते हुए भी चोरी, तर्किक बुद्धिका आश्रय लेकर व्यर्थ बकवाद किया करते हैं। हे भरत! क्या हमारे पूर्वजोंकी भोगी हुई दृढ़ द्वारवाली, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने—अपने कर्मोंके करनेमें लगे रहते हैं, जिसमें अनेक प्रकारके मन्दिर हैं, वैद्योंके गृह हैं, ऐसी अयोध्यापुरीकी रक्षा करते हो? हे भरत! क्या यज्ञशालाओं, देवालय, गौशाला, तालाबोंसे शोभित, मनुष्योंसे भरापूरा, उत्सवोंसे शोभित, उत्तम पशुओं से सेवित, अनेक नदी, तड़ागोंसे संयुक्त, अतिरमणीय, सब भयोंसे हीन, खानोंसे पूर्ण, पापी मनुष्योंसे हीन, हमारे पूर्वजोंसे रक्षित, धन-धान्यमय कौसल देश सुख से बसता तो है न? क्या कृशक, गोपालक, वणिक्गण सब सानन्द तो बसते हैं? और अपना-अपना कार्य करके लाभ उठाते हैं? क्या व्यवसायियोंकी रक्षा तस्कर चोरादिकोंसे करते हो? उनका भरण-पोषण होता जाता है? क्या अपनी स्त्रियोंको समझाते रहते हो, उनकी बातोंका विश्वास तो नहीं मानते और

मनकी गुप्त बात तो उनसे नहीं कह डालते ? क्या जिस वनमें हाथी रहते हैं, उसकी रक्षा करते हो ? गाय, बैल इत्यादि तो रक्षित हैं ? क्या उत्तमोत्तम आभूषण और वस्त्र पहनकर दोपहरके पूर्व घूमते हो ? क्या सब कार्यभारी निःशंक होकर तुम्हारे पास तो नहीं चले आते ? या भयसे अति दूर तो नहीं रहते ? क्या तुम्हारे दुर्ग अन्न, जल, शस्त्र, यन्त्र और धनुर्धारी आदिकों से पूर्ण तो है न ? क्या तुम्हारी आयसे व्यय न्यून तो नहीं है ? क्या देवता, पितर, ब्राह्मण, अतिथि, सेना और मन्त्रीके लिए व्यय होता है या नहीं ? क्या शुद्धात्मा, पवित्र, श्रेष्ठ गुणयुक्त लोगोंको लोभमें या बन्धनमें तो नहीं डालते ? क्या चोरकी चोरी प्रमाणित हो जाने पर धनके लोभसे बिना दण्ड दिये तो नहीं छोड़ देते ? क्या धनाढ्य या रङ्क पर कष्ट पड़ने पर तुम्हारे न्यायाधीशादि निर्लोभ हो उनका प्रयोजन देखते हैं ? निरपराधी लोगोंको जब दण्ड दिया जाता है, तो दण्ड देनेवाले राजा और राजसेवकके पुत्रादि नष्ट हो जाते हैं। क्या वृद्ध, बालक, वैद्य और मुखिया लोगोंको दान मानसे आदरित करतेहो ? क्या गुरु,वृद्ध,तपस्वी और देवता आदिको अभिवादन करते हो ? क्या कभी अर्थसे धर्म और धर्मसे अर्थ और अर्थ धर्म दोनोंको लोभ और कामसे तो नहीं रोक देते ? क्या अर्थ,काम और धर्म अपने-अपने समय पर सेवन करते हो ? क्या पुर और देशमें बसनेवाले विप्रगण तुम्हारा कल्याण चाहते हैं ? क्या नास्तिकता, मिथ्या क्रोध, अहङ्कार, आलस्य, इन्द्रियोंके वशीभूत होना, अकेले ही विचार करना, और अज्ञानी लोगोंसे सलाह लेना, गुप्त मन्त्र को प्रकट कर देना, नवारंभमें मङ्गलाचरण न करना, सब प्रकारके नीच और लघुजनोंको भी देख उठ खड़े होना, क्या राजाओंके इन दोषोंको तुम निवारण करते हो ? हे भरत ! क्या १० वर्ग, ५ वर्ग, ४ वर्ग, ७ वर्ग, ८ वर्ग, ३ वर्ग और तीनों विद्या, इन्द्रियोंका जीतना ६ वर्ग, देवता और मनुष्योंसे दुःख, राजकृत्य २० वर्ग, ५ प्रकृति, १२ मंडल यात्रा-विधान मिलाप करना व विरोध करना इनके कर्तव्याकर्तव्यका विचार करते हो ? हे भरत ! क्या शास्त्रानुसार मन्त्रियोंके साथ बैठकर मन्त्रणा करते हो ? हे भरत ! क्या तुम्हारा वेद-पाठ और क्रिया सफल है ? क्या तुम्हारी स्त्री

और विद्या सफल हुई है ? हे भरत ! क्या आयुवर्धन, यशस्कर और धर्मका-
मानुसारी तुम्हारी बुद्धि है ? पिता तथा अपने पूर्वजोंका पात्र जैसा था, क्या
उसी सत्पथसे तुम जाते हो ? पकाया हुआ अन्न अकेला न खाकर उसकी
इच्छा करनेवाले मित्रोंको देकर ही खाते हो ? जो राजा धर्मसे प्रजापालन
करता है वह पृथ्वी भरका राज्य भोगता है और अन्तमें स्वर्गको प्राप्त
होता है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ एक सर्ग समाप्त ॥ १०१ ॥

एक सौ दूसरा सर्ग

भरत-राम-संवाद

श्रीरामचन्द्रजी अपने गुरु-भक्त भाई भरतको पूर्णतया समझाकर, उन्हें अपना अनुगत जानकर उनसे पुनः इसप्रकार पूछने लगे कि–'हे भाई ! मैं तुम्हारे मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ कि तुम किस कारणसे राज्य छोड़कर वल्कल, कृष्णमृग-चर्म और जटा धारण करके इस देशमें आये हो ? तुम्हारे आनेका जो कुछ उद्देश्य हो, वह सब मुझसे कहो।' इस भाँति महात्मा ककुत्स्थकुलभूषण रामचन्द्रजीने यह प्रश्न उनके समक्ष उपस्थित किया, तब बड़ी कठिनतासे पुनः उमड़ते हुए दुःखभारको मनमें ही रोककर तथा हाथ भी जोड़कर भरत उनसे कहने लगे—"हे आर्य, हे तात ! क्या कहूँ ? मेरी माता कैकेयी उनकी पत्नी बन गई थीं जिसकी प्रेरणासे पिताजीने ऐसा कठोर कार्य कर डाला जो अन्यके लिए अत्यन्त दुष्कर है। परन्तु फिर वे पुत्र-शोकसे पीड़ित हो, हमलोगोंको त्यागकर स्वर्गगामी हुए। कैकेयीने अपने सुयशको नष्ट करनेवाला बड़ा भारी पाप किया है; अतः इसे राज्य-रूपी फल भी न मिलेगा और शोकसे क्षीण होकर वैधव्य-जीवन व्यतीत करती हुई वह अंतमें भयंकर नरकमें पड़ेगी। यह सारी प्रजा और सब विधवा माताएँ आपके पास आई हैं। आप इन सबपर कृपा करें। ज्येष्ठ होनेके नाते, परंपरागत प्रथाके अनुसार आप ही नरेश बननेकी क्षमता रखते हैं तथा आपका ही राजगद्दीपर बैठकर अभिषिक्त होना सवथैव उचित है। इसलिए भी आप राज्य अंगीकारकर अपने मित्रोंकी कामना पूर्ण कीजिये।

जिस प्रकार शरदृऋतुकी रात्रि निष्कलंक चन्द्रमाके कारण सनाथ-सी प्रतीत होती है, ठीक वैसे ही यहसारी पृथ्वी आप जैसे पतिदेवको पाकर सनाथ बने। इन सचिवों सहित मैं आपके चरणोंपर माथा टेककर प्रार्थी हूँ कि इस बन्धुपर, शिष्यपर तथा दासपर भी दयापूर्ण दृष्टिसे देखिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! परंपरासे चले आये एवं पूर्वजों से सम्मानित इस पृथ्वी मण्डल का अतिक्रमण करना आपको उचित नहीं है।" इस प्रकार अश्रुपूर्ण नेत्रों से महापराक्रमी भरत ने प्रार्थना की और पुनः श्री रामचन्द्रजी के चरणोंमें गिर पड़े। तब मतवाले हाथीकी तरह बारम्बार साँस लेते हुए भाई भरतसे उन्हें गले लगाकर वे बोले—'कुलीन, सात्विक गुणवाली, तेजस्वी एवं व्रतधारी मुझ जैसा पुरुष भला राज्यके लिए पाप कैसे करे? हे शत्रुओंके विध्वंसक भरत! गत घटना के सम्बन्ध में तुम्हें दोष लगाने का किंचित भी कारण दृष्टि नहीं आता। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि बाल्यावस्थाके कारण ही तुम अपनी माताकी निंदाकर रहे हो, वैसा न करो। हे निरागत और महाप्राज्ञ भाई भरत! अपने समझे गये पुत्रों तथा पत्नियों पर चाहे जैसी आज्ञा लादना गुरुजनोंका शाश्वताधिकार है। सज्जनोंकी सम्मति है कि संसारमें पत्नी, पुत्र एवं शिष्यकी गणना उन लोगोंमें करनी चाहिये जिन्हें गुरु या पिता मनचाही आज्ञा करते हैं। स्वर्गवासी दशरथ नरेशसे भी हमारा यही सम्बन्ध है, यह बात तुम्हें कभी न भूलनी चाहिये। महाराज दशरथको पूर्ण अधिकार है कि वे मुझे वल्कल और काले मृगका चर्म पहनाकर बनमें भिजवा दें या राजगद्दीपर बिठला दें। हे धर्मनिष्ठोंमें श्रेष्ठ एवं धर्मज्ञ भाई भरत! जनताके लिए माननीय पिताके समान ही माता को भी गौरव प्रदान करना उचित है। जब दोनों ही धर्मशील माता पिताओं ने मुझको 'वनमें जाओ' यह आज्ञा दे दी है तब, हे रघुवंशभूषण भरत! मैं भला किस प्रकार विपरीत आचरण करूँ? अयोध्यामें जनतानुमोदित राज्य शासनाभार तुम्हें वहन करना होगा और मुझे वल्कल पहनकर दण्डक वनमें रहना चाहिये, ऐसा समझ जनताके समक्ष कहकर तथा वैसे ही व्यवहार रखनेकी आज्ञा देकर राजा दशरथ स्वर्ग सिधारे। वही जनताका गुरु

धर्मनिष्ठ नरेश तुम्हारे लिये प्रमाण है। इसलिये पिताजीके किये विभागानुसार प्राप्त राज्यका उपभोग तुम्हें करना चाहिये और जो सब मानवोंके मान्य बने देवेन्द्रतुल्य मेरे पिताने जो मुझसे कहा है, मेरा उसीमें सर्वोपरि कल्याण है; न कि अटूट स्वर्गलोकके राज्यमें—ऐसी मेरी सम्मति है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ दूसरा सर्ग समाप्त ॥ १०२ ॥

एक सौ तीसरा सर्ग

भरत-वाक्य वर्णन

रामके वचन सुनकर भरत बोले कि 'धर्महीन मेरे राजधर्मसे क्या सिद्ध होगा ?' यह सर्वदासे धर्म चला आता है कि ज्येष्ठ पुत्रके स्थितत्वमें छोटा पुत्र राजा नहीं होता। इसलिए अब आप मेरे साथ अयोध्या चलें और मेरे तथा इस कुलके कल्याणार्थ अभिषेक करा राजा बनें। क्योंकि जिन राजाके सब कर्म धर्म अर्थ सहित देव-समान थे, वे मेरे पिता स्वर्गवासी हो गये। मैं कैकेय देशमें था और आप यहाँ। इसी मध्यमें राजा दशरथ स्वर्गगामी हुये। सीता और लक्ष्मण सहित आपके वनमें चले आनेपर शोकसे दुःखित हो राजा स्वर्ग सिधारे। इसलिए हे पुरुषसिंह! चलिये, पिताको जलदान कीजिये। मैं तथा शत्रुघ्न पूर्व ही जलदान कर चुके हैं। धर्मशास्त्रमें कहा गया है कि जो जलादि कोई प्रिय देता है, वह पितर लोकमें सर्वदा रहता है। आपके वियोगजनित शोकसे जर्जरित तथा दुःखी होकर आपका स्मरण करते-करते ही पिताजी स्वर्गको चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ तीसरा सर्ग समाप्त ॥१०३॥

एक सौ चौथा सर्ग

रामका पिता के लिए जल तथा पिंडदान देना

पिताके मरणकी बात भरतके मुखसे सुनकर राम मूर्च्छित हो गये। युद्धमें इन्द्रके छोड़े हुए वज्रके तुल्य कठोर भरतका वाक्य सुनकर दोनों हाथ सिरपर रख कुल्हाड़ीसे कटे वृक्षके समान राम भूमिमें गिर पड़े। परिश्रांत हाथीके समान रामको भूमिपर मूर्च्छित हो गिरा देख तीनों भाई और सीता शोकमूर्च्छित रामके ऊपर जल छिड़कने लगीं। जब रामकी मूर्च्छा जगी तो

वे करुणासे भरे वचन कहने लगे । राजाको स्वर्गगत सुन राम धर्म संयुक्त वचन भरतसे बोले कि 'पिता तो मरणधर्मको प्राप्त हुये, हम अयोध्यामें जाकर क्या करेंगे ? श्री दशरथके बिना अयोध्याका पालन कौन करेगा ? उन महात्मा राजाका कौन काम मुझ ऐसे कुपूत से होगा कि उनकी प्रेत क्रिया भी मैंने न की । हे भरत ! तुम सिद्धार्थ हो गये जो पिताके सब प्रेत कार्य तुमने किये ! मैं तो वनवास समाप्त होनेपर भी अब अनाथ अयोध्या को नहीं जाना चाहता । वनवास समाप्त कर अयोध्या जानेपर पिता बिना अब मुझे कौन सिखलावेगा ! पिता मुझको जो बातें कहते थे जिनको सुनते ही कानोंको सुख होता था, अब मैं किससे सुनूँगा । भरतसे ऐसा कह राम शोक सन्तप्त हो जानकीसे यह कहने लगे कि 'हे सीता ! तुम्हारे श्वसुर मृतक हो गये । हे लक्ष्मण ! तू पिताहीन हो गये ।' रामके ऐसा कहने पर तीनों भाई रुदन करने लगे, सब भाइयोंने रामको समझा कर कहा कि अब आप पिताको जलाञ्जलि देवें ।' सीता महाराज दशरथको स्वर्गवासी सुन आँसू भरे नेत्रोंसे रामको न देख सकी । तब जानकीको समझाकर राम करुण स्वरमें लक्ष्मणसे बोले कि—हे लक्ष्मण ! इंगुदीके फलोंका गूदा और पहिननेके लिए दूसरा चीर वस्त्र लाओ, पिताको जलदान करनेको चलेंगे ।' आगे-आगे सीता, उनके पीछे-पीछे तुम तथा तुम्हारे पीछे मैं चलूँ । रामके ये वचन सुन बड़े विख्यात; महाबुद्धिमान्, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय तथा राममें अतिभक्ति करनेवाले सुमन्तने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों राजपुत्रों सहित समझाया तथा रामका हाथ पकड़ मन्दाकिनी नदीके घाटपर जलमें उतारा । लोग मन्दाकिनी नदीके तटपर जिसके किनारे वन पुष्पित और जो बड़े वेगसे बह रही थी, पहुँच राजाको इस प्रकार जलाञ्जलि देने लगे कि—हे तात ! यह जल तुमको प्राप्त हो ।'—यह कहकर राम जलाञ्जलि उठा दक्षिण मुख हो रोते हुए कहने लगे कि—'हे राजश्रेष्ठ ! मेरा दिया हुआ यह विमल जल आपको प्राप्त हो ।' तदनु थोड़ी ही दूरपर सब भाइयोंके साथ रामने अपने हाथोंसे पिताके लिए पिण्डदान किया । इंगुदी व बेरके फलोंके गूदेसे पिंड बना कुशके ऊपर धर रोते हुए राम बोले—'हे महाराज ! प्रीति सहित इसको ग्रहण करो ।' एवं पिंडदान कर

अति रमणीय चित्रकूटपर राम आये। पर्णकुटीके द्वारपर आ एक हाथसे भरत दूसरेसे लक्ष्मणको पकड़ जोरसे विलाप करने लगे। इनको रोते देख सीता भी रोने लगीं। यह विलाप-ध्वनि पर्वतपर सिंहनादवत् गूँज उठी।इस प्रकार तिलांजलि देनेके पश्चात् वे वलिष्ठ भाई विलखने लगे, जिस शब्दको सुनकर भरतके सैनिक त्रस्त हो उठे और कहने लगे अवश्य ही रामसे भरतका मिलन हुआ। क्योंकि स्वर्गस्थ एक पिताके कारण शोक-प्रदर्शन करनेवाले भाइयोंका ही इतना गंभीर शब्द सुनाई देरहा है। पश्चात् वाहनोंको त्यागकर वे सभी सैनिक जिधरसे वह ध्वनि सुनाई देरही थी उधर, मुँह मोड़कर एक स्वरसे उधरही दौड़ पड़े। कुछ लोग घोड़ोंपर बैठकर जाने लगे तो कई हाथियों पर सवार होकर निकल पड़े, जो बहुत कोमल स्वभावके थे, ऐसे कई पुरुष भली-भाँति सँवारे हुए रथोंपर आरूढ़ जाने लगे तो कई ऐसेभी थे जो पदयात्रा कर रहे थे। यद्यपि रामचन्द्रजीको वनवास गये बहुत दिन नहीं बीते थे; तथापि मानों बहुतदिनसे वे वनमें गये हों, ऐसा समझकर सभी लोग उन्हें देखनेकी इच्छासे एकही समय आश्रमकी ओर चल पड़े। खुरों और पहियोंसे भरे भाँति-भाँतिके यानोंमें चढ़कर बन्धुओंका मिलन देखनेको वे शीघ्रही उधर को गये। उस समय, मेघोंके एकत्र होनेपर जैसे आकाशमें सम्मिश्र गड़गड़ाहट आरंभ होती है, वैसेही कई यानों, वाहनों एवं रथोंके चक्रोंसे प्रताड़ित भूमिसे गंभीर गर्जन सुनाई पड़ा। हथिनीसे घिरे हाथी उससे व्याकुल हो गये और अपने मत्तपनसे उत्पन्न जलधार-सौरभसे दिशाओंको सुगन्धित करते हुए वे उधरसे अन्य वन-भूमिमें प्रवेशकर गये। सुवर, मृग, सिंह, भैंसे, शृगाल व्याघ्र, गोकर्ण, गवय, पृषत्भी अन्य वनमें चले गये। चकवा, हंस, जल-मुर्ग, प्लवंग नामक बगले, कारंडव, कोयल, क्रौंच जैसे पक्षी भी सुध-बुध भूलकर सब दिशाओंमें भागने लगे। उस शब्दसे सहमे हुए पक्षियोंसे पूर्णगगन-मंडल तथा मानवोंसे व्याप्त भूमि दोनों सुहावने लगे। पश्चात् निष्पाप एवं यशस्वी श्री रामचन्द्रजी जो पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे एक चट्टानपर बैठे हुए सहसा उन लोगों को दर्शित हुए। तब मंथराके साथ रहनेवाली कैकेयीकी निन्दा करती हुई जनताके नेत्रोंमें, रामके समीप पहुँच जानेपर, आँसू उमँड़ पड़े। तब उन

श्रुपूर्ण नेत्रोंवाले लोगोंको जो महत् संकटापन्न थे, देखकर धर्मज्ञ रामचन्द्रजी
ाता-पिताके तुल्य उन्हें गले लगाने लगे। कइयोंको उन्होंने वहाँ आलिंगन
िया तो कुछ उन्हें प्रणाम करने लगे। योग्यतानुसार ही राजपुत्र रामचंद्रजी
नसे मिले और उनके मित्र एवं बान्धव बन गये। पश्चात् बिलखते हुए उन
हान् पुरुषोंकी इस ध्वनिसे भूमि, आकाश एवं पर्वत गुफाएँ सभी गूँज उठीं
ौर ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों शतत मृदंग-वाद्य बजता हो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ चौथा सर्ग समाप्त ॥१०४॥

एक सौ पाँचवाँ सर्ग

वशिष्ठजीके साथ माताओंका आगमन

वशिष्ठजी भी महाराज दशरथकी कौशल्यादि स्त्रियोंको आगे करके
ीरामचन्द्रजीको देखनेकी इच्छासे उनके आश्रमकी ओर चले। राजरानियाँ
न्दगतिसे चलती हुई जब मन्दाकिनीके तटपर पहुँचीं तो उन्होंने श्री राम
ौर लक्ष्मणके स्नान करनेका घाट भी देखा। उसे देख उदास मुख कौशल्या
न्य स्त्रियोंसे बोलीं कि 'मेरे अनाथ बनवासी राम सीता और लक्ष्मणके
नान करनेका यह घाट है। हे सुमित्रे! इसी घाटसे रामके लिए लक्ष्मण
वयं जल भरकर ले जाते हैं। यद्यपि लक्ष्मण यह कर्म करते कष्ट पाते हैं,
र आज उनका यह कर्म छूटेगा।' फिर वहींपर बिछे हुए कुशों पर पिताके
िए दिये हुए पिंडोंको देख कौशल्या अन्य स्त्रियोंसे कहने लगीं—'देखो
हाराज दशरथके लिए रामने यथाविधि ये पिण्ड दिये हैं। मैं उन महात्मा
हाराज दशरथके लिए ये पिण्डोपयोगी भोजन नहीं समझती। समस्त पृथ्वी
ो इन्द्रवत् भोगकर अब वही राजा इंगुदीके पिण्ड कैसे भोग करेंगे? राम
े इंगुदीके फलका पिंड अपने पिताको दिया है, इससे बढ़कर मुझको अन्य कष्ट
या होगा? इस इंगुदीके चूर्णका पिण्डदान देख दुःखसे मेरा हृदय सहस्र टूक
यों नहीं हो जाता? यह जो कहावत है कि जो जिस वस्तुका भोग लगाता
ै उसके देवता वही खाते हैं, सत्य ही है। तब इस प्रकार विलाप करती हुई
ौशल्याको समझाती हुई सब स्त्रियोंने रामको बैठे देखा। रामको बैठे देख
ोकसे पीड़ित सब माताएँ अश्रुपात करती हुई उच्च-स्वरसे पुकारने लगीं।

रामने उठ सब माताओंके चरण छुए। जब राम चरणोंपर गिरे तो वे सब इनकी पीठकी धूलि झाड़ने लगीं। लक्ष्मणने भी दुःखित हो रामके पीछे सबको प्रणाम किया। माताओंने रामकी भाँति लक्ष्मणके साथ भी यही आचरण किया। सीता भी अपनी सासुओंके चरण पकड़ बहुत दुःखित हुई और रुदन करने लगीं। तब उसको कन्याके तुल्य छातीसे लगा कौशल्या बोलीं—जनकराजदुलारी महाराज दशरथकी पुत्रवधू तथा रामकी पत्नी! बनमें तुमने कैसे दुःख पाये। हे सीते! धूपसे सन्तप्त कमल, धूल लगे सुवर्ण तथा मेघोंसे आवृत्त चन्द्रमाके समान उदास तुम्हारा मुख देख शोकाग्नि मेरे मनको भस्म किये देती है।' कौशल्या ऐसी कहती ही थीं कि रामने वशिष्ठ के चरण छुए। तब देवराज इन्द्र जैसे बृहस्पतिके चरण पकड़ लेता है, वैसे ही अत्यन्त प्रचुर तेजसे युक्त अग्नि-तुल्य पुरोहित वशिष्ठके चरण पकड़ रघुवंशोत्पन्न श्रीरामचन्द्रजी साथ ही बैठ गये। पश्चात् अपने सचिवों, प्रमुख नागरिकों, सैनिकों तथा अत्यन्त धर्मनिष्ठजनोंके साथ भरत भी ज्येष्ठ भ्राता के पीछे समीपहीमें बैठ गये। आभापूर्ण होनेके कारण जगमगाते हुए रामचंद्र जी को देखकर शुचिर्भूत होकर जैसे इन्द्र ब्रह्माजीके समीप बैठता है, वैसे ही प्रबल पराक्रमी भरत हाथ जोड़कर उनके पास बैठे। यह देख वहाँ पर एकत्रित सज्जनोंके मनमें वस्तुतः बड़ी उत्कण्ठा जाग्रत रही कि भला, अब भरत सत्कारपूर्वक तथा प्रणाम भी करके श्री रामचन्द्रजीसे कौन-सा उत्तम भाषण करेंगे? तब सदस्योंके साथ तीन अग्नि जैसे यज्ञ-भूमिमें शोभित होते हैं वैसे ही मित्रजनोंसे आवृत्त तीनों ही अर्थात् सत्यनिष्ठ राम, महापराक्रमी लक्ष्मण और धर्मनिष्ठ भरत अत्यन्त ही शोभित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ पाँचवाँ सर्ग समाप्त॥ १०५॥

एक सौ छठवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रका भरतको समझाना

तब अपने सुहृदोंके साथ बैठे हुए पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम आदि चारों भाइयों की वह रात्रि शोक करते हुए ही व्यतीत हुई। प्रातःकाल होने पर सब भाई मन्दाकिनीमें स्नान, होम एवं जप आदि करके पुनः श्रीरामके पास लौट आये। सबके सब मौन थे, कोई कुछ न कहता था। तब भरत रामसे

बोले—हे आर्य ! आपने मेरी माताका सन्तोष किया तथा मुझको राज्य-दिया, पर अब मैं वह आपहीको लौटाये देता हूँ। आपके त्यागे हुए इस राज्यका भार आपके विना मैं नहीं सँभाल सकता, एवं मैं आपकी गतिको नहीं पहुँच सकता। हे राम ! जिस राजाकी सेवा अन्य लोग करते हैं उनका जीना अच्छा होता है और जो राजा अन्योंहीकी सेवा करके जीता है, उसका जीना दुःखयुक्त है, सुखद नहीं। जैसे किसीने वृक्षारोपण किया और वह बड़ा हुआ तो छोटे डीलवाला मनुष्य उसपर नहीं चढ़ सकता और जब यह पुष्पित हो फलता नहीं है तो वह प्रीतिभाजन नहीं। तब जिसके लिए वह आरोपित किया गया हे महाबाहो ! इस उपमाको आप अपने राज्यके लिये समझिये और हम लघुजनोंके स्वामी बन सिखलाइये। हे महाराज ! सिंहासन पर बैठ सूर्यवत् तपते हुए आपको प्रजाजन देखें। आपके अयोध्या चलनेमें अन्तःपुरमें सब स्त्रियाँ एकत्र हो आनन्दित होंगी। रामसे ऐसी प्रार्थना करते भरतके ये वचन सुन सब अयोध्यावासी प्रसन्न हुए। तब भरतको ऐसा विलाप करते देख राम समझाने लगे कि, 'हे भरत ! यह जीव स्वेच्छाचारी नहीं है। इसको इसलोकसे उस लोकमें तथा उस लोकसे इस लोकमें काल खींचा करता है। संग्रहीत वस्तुएँ क्षयान्तक, संयोग वियोगान्तक तथा जीवन मरणान्तक होती हैं। जीवित मनुष्यको मृत्युके अतिरिक्त अन्य भय नहीं। महाबली सुन्दर पुरुष भी बुढ़ापा आनेपर मर जाते हैं। जो रात्रि व्यतीत हो जाती है, वह फिर नहीं आती। जल जो समुद्रमें चला जाता है, वह फिर नदियोंमें लौट नहीं आता। ये जो रात्रि दिन हुआ करते हैं इन्हीं से सब प्राणियोंकी आयु नाश हो जाती है। तुम कालका विचार करो, अन्योंका क्या करते हो ? यह मृत्यु जीवके संग ही आती और संगही सदा बनी रहती है। जब सब बाल पक गये, बुढ़ापाके कारण काया जर्जर हो गई, तब ऐसा पुरुष क्या कर सकेगा ? मनुष्य सूर्यके उदय अस्तसे प्रसन्न होते हैं, पर यह नहीं जानते कि यही उदयास्त हमारी आयुको नष्ट कर रहा है। फिर वसन्तादि ऋतुओंको देख मनुष्य प्रसन्न होते हैं, पर यह नहीं जानते कि यह ऋतुओंका परिवर्तन आयुको क्षीण कर रहा है। जैसे समुद्रमें दो नावें साथही छोड़ी जावें तो कुछ समय तक एक साथ रह फिर कोई कहीं

और कोई कहीं पहुँच जाती हैं एवं संसारमें स्त्री पुत्र भाई बन्धु आदि एकत्र होकर जहाँके तहाँ चले जाते हैं और सर्वदा साथ नहीं रहते हैं। संसार में सुख-दुःखादिकों को कोईभी प्राणी मिटा नहीं सकता। जैसे कोई मनुष्य जा रहा हो और कोई मार्गस्थित मनुष्य कहे कि चलो, पीछे हमभी आवेंगे। एवं पूर्वज चलेगये, उस मार्गमें चलेजानेका कौन शोक, उसमें तो एक दिन जाना ही पड़ेगा! 'जैसे नदि आदिका जल वहकर लौट नहीं आता उसीप्रकार मनुष्यकी गत आयुभी नहीं लौटती और पिताका तो कभी शोक न करना चाहिए। शोक विलाप बुद्धिमान् तथा धीर पुरुषको न करना चाहिये। इससे शोकका परित्यागकर स्वस्थ चित्तहो अयोध्या जा वास करो, पिताकी आज्ञाका उल्लंघन उचित नहीं। मुझकोभी पिताने जहाँ निवासकी आज्ञा दी है, वहाँ रह आज्ञाका पालन करूँगा। हमतुम दोनोंको पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करना उचित नहीं है। हे भरत! इससे मैं वनमें रह पिताके वचन पूर्ण करूँगा। हे भरत! परलोकी इच्छा करनेवाला पुरुष धार्मिक; सज्जन और सद्वर्तनी होना चाहिये। पिताजी सद्गतिको प्राप्त हुये हैं, यह जानकर तुम अपने हितका विचार करो।' इसप्रकार पिताकी आज्ञाका पालन करने के लिए कनिष्ट भाईके साथ भाषण करके महात्मा राम मौन होगये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकांडका एकसौ छठवाँ सर्ग समाप्त ॥१०६॥

एकसौ सातवाँ सर्ग

राम-प्रति भरतके वाक्य

जब ऐसा कह रामचन्द्र मौन हो रहे तो मन्दाकिनीके तटपर स्थित रामसे भरत कहने लगे—"हे राम! आपके समान इस लोकमें ऐसा कौन है? आपको न दुःख है, न प्रीति, न हर्ष। आपकी बुद्धि मृत, जीवित वर्त्तमान और अव त्तनके राग-द्वेग नहीं करती। हे राजन्! आप जैसे तत्वज्ञ दुःख प्राप्त होनेपर विवाद नहीं करते। हे राम! आप पराक्रमी, महात्मा, सत्यसङ्कल्प, सर्वदर्शी और बुद्धिमान् हैं। आपको संसारमें प्रवृत्ति निवृत्तिका ज्ञान है जिसे आपको दुःख होनाही नहीं चाहिये। मेरी क्षुद्र स्वभावकी माताने मेरेही लिए पाप किया उसको भुलाकर आप मुझपर प्रसन्न होइये। धर्मवद्ध होनेसे मैं इस अपनी पाप करनेवाली माताको दण्ड नहीं दे सकता। राजा दशरथसे उत्पन्न धर्मको जा

बूझकर मैं ऐसा अधर्म कैसे करूँ ? क्रियाशील वृद्धावस्थाको प्राप्त स्वर्गवासी पिताकी सभाके मध्य निन्दा करूँगा। हे धर्मज्ञ ! स्त्रीका प्रिय करनेकी इच्छा से ऐसा कौन धर्मज्ञ है जो इसप्रकार पाप करे ? मरण-समय मनुष्यकी बुद्धि मोहितहो जाती है, वह राजाने प्रत्यक्षकर दिखाई। पिताने जो कैकेयीके कोप मोहसे आपका अभिषेक नहीं होने दिया वह क्षमा कीजिये। पिताके अविचार कोभी जो श्रेष्ठ समझता है संसारमें पुत्र वही है। इससे आप पिताके अपराध-की ओर दृष्टि न दें। कैकेयी, मेरी, पिता, बन्धुओंकी और पुरवासी देशवा-सियोंकी आप क्षमा करें। कहाँतो वनवास कहाँ क्षात्रधर्म, कहाँ जटा और कहाँ प्रजापालन, इन बिपरीतकार्योंको आप न कीजिये। क्षत्रियका पहला कार्य है कि वह प्रजा-पालन करे। ऐसा कौन होगा कि जो प्रत्यक्ष सर्वसुखद कार्यको त्याग अनिश्चित कार्यको करेगा ? आपतो क्लेशसे उत्पन्न हुए धर्मको करनेकी इच्छा कर रहे हैं, इससे चारों वर्णोंका पालनकर क्लेश सहन कीजिये, सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। आप इसके त्यागेच्छुक क्यों हैं ? मैं आपसे विद्या और अवस्थामें छोटा होनेसे आपके होते पृथ्वी-पालन कैसे करूँगा ? मैं आपके बिना जीवनकीभी इच्छा नहीं करता। फिर मुझसे प्रजा-पालन कैसे होगा ? आप बन्धु बान्धवों सहित पिताके राज्यका धर्मपूर्वक पालन कीजिये, यहीं वशिष्ट सहित पुरोहित और ऋत्विजगण आपका अभिषेक कर दें। यहाँसे अभिषिक्त होकर ही हमलोगों सहित आप अयोध्याका पालन करने चलिये। शत्रु-नाश और सुहृद-पालन करते मुझको सेवक बनाकर राज्य कीजिये। आज आपके अभिषेकसे मित्रगण आनन्दित तथा शत्रुजन भय-भीत हों। हे पुरुष-श्रेष्ठ। मेरी माताकी निन्दाको दूर कीजिये तथा पिता-की भी पापसे रक्षा कीजिये। मैं आपके चरणोंपर शिर रखकर यह माँगता हूँ कि मुझपर दया कीजिये। यदि मेरी प्रार्थनाको न मान आप बनको चले जायेंगे तो मैं भी आपके पीछे चलूँगा।' इसप्रकार भरतकी प्रार्थना सुनकर भी आज्ञा मानकर अयोध्या लौटजाना रामने मनमेंभी नहीं सोचा। तब राम-चन्द्रका वह अलौकिक धैर्य देखकर वहाँ स्थित दुःखी जनोंकोभी हर्ष हुआ। तब ऋत्विजजनों और नागरिकोंके प्रधानों और दुःखी माताओंने भरतकी प्रशंसा की और अयोध्या लौटनेके लिए प्रणाम पूर्वक रामकी प्रार्थना की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एकसौसातवाँ सर्ग समाप्त ॥१०७॥

एकसौ आठवाँ सर्ग

जब भरतने उपर्युक्त बातें कहीं तो कुटुम्बी जनोंद्वारा सम्भावित श्रीरामने उन्हें इसप्रकार उत्तर दिया—'भाई ! तुम नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथसे उत्पन्न हुए हो तथा केकयराजकी कन्या कैकेयीके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ है, अतः तुमने जो ऐसे उत्तम वचन कहे हैं, सर्वथा तुम्हारे योग्य हैं, क्योंकि जब पिता तुम्हारी माताको व्याहने गये थे, तब तुम्हारे नानासे यह प्रतिज्ञाकर आये थे कि, तुम्हारी कन्यासे जो पुत्र होगा उसीको मैं राज्य दूँगा। राजाने प्रसन्न हो देवासुर संग्राममें तुम्हारी माताको दो वरदान देनेको कहे थे। इसीसे तुम्हारी माताने महाराजसे वर माँगे थे। एक वरसे तुमको राज्य मिलना और दूसरे से हमको वनमें रहना माँगा। उसीसे पिताने मुझको चौदह वर्षका वनवास दिया। इससे मैं पिताके वचन सत्य करनेको इस निर्जन वनमें आया हूँ। अब तुमभी राज्याभिषेक करा पिताको सत्यवादी करो। राजा होकर इस ऋणसे पिताको उद्धार करो और माताकोभी आनन्दित करो। हे भरत! राजा अपने गयामें जाकर पितरोंसे जो यशस्विनी श्रुति कही है वह इसप्रकार है कि जिससे पुन्नाम नरकसे पुत्र पिताकी रक्षा करता है और इसीसे वह पुत्र कहलाता है। इसीसे बहुतसे गुणी बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न करना चाहिये जिससे उनमेंसे कोई तो गयामें जा श्राद्ध करेगा। इस बातपर सब राजाओंने विश्वास किया है। इसलिए तुम नरकसे पिताकी रक्षा करो। तुम शत्रुघ्न सहित अयोध्या जाकर प्रजाका पालन करो। और मैं भी सीता लक्ष्मण सहित शीघ्रही दण्डकवन जाऊँगा। हे भरत ! वह सूर्य किरणोंको निवारण करनेवाला छत्र तुम्हारे सिरपर शीतल छाया करे और मैं भी वन वृक्षोंकी सघन छायाका आश्रय करता हूँ। महामति शत्रुघ्न तुम्हारा मित्र है और सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण मेरा मित्र है। हे भरत ! हम चारों पुत्र मिलकर महाराज दथरथकी प्रतिज्ञा सफल करेंगे। तुम दुःखी न होओ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०८ ॥

एकसौ नवाँ सर्ग

जाबालि ब्राह्मका रामचन्द्रसे अयोध्या जा राज्य करने को कहना।

जब धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी भरतको इसप्रकार समझा रहे थे, उसी समय

ावालि नामके एक ब्राह्मणने उनसे धर्म-विरुद्ध यह वचन कहना आरम्भ
िया कि—"हे रघुनन्दन ! आपकी बुद्धि श्रेष्ठ है, आप तपस्वी हैं, अतः
ापको गँवार मनुष्यके समान ऐसा निरर्थक विचार मनमें नहीं लाना
ाहिये। देखिए, प्राणी एक ही तो उत्पन्न होता, फिर अकेले ही चला भी
ाता है। तब किसने किसको कौन सी वस्तु दी ! इसलिए यह सब निर-
्क व्यवहार हैं। हे राम! यह मेरी माता, यह मेरा पिता है—ऐसा मानकर
ो संसारमें फँसता है, वह विक्षिप्त है। जैसे कोई यात्री कहींके लिए चले
ौर बीचमें ही किसी स्थानमें टिक जाये और प्रातःकाल उस स्थानको छोड़
र आगेको चलाजावे, ऐसे ही मनुष्योंके पिता, माता, गृह, धन आदि एक-
ग निवासके स्थानमात्र हैं। हे नरोत्तम ! आप पिताका राज्य त्याग दुःखद
नवासके योग्य नहीं हैं। जाकर अयोध्यामें अपना अभिषेक कराइये। क्यों-
ि समस्त अयोध्या आपकी प्रतीक्षामें है। बहुमूल्य भोगोंको भोगते हुए
ाप अयोध्यामें विहार करें। न तो दशरथ तुम्हारे कोई हैं और न तुम
शरथके ही कोई हो। राजा तो कोई और हैं। तुम और हो। इसलिए मैं
ो कहता हूँ वह करो। देखो, प्राणीके उत्पन्न होनेके विषयमें पिता बीज-
ात्र है। राजाको जहाँ जाना था वहाँ चले गये। इसलिए व्यर्थ ही दुःख
रते हैं। मुझे तो उनका भी बड़ा दुःख है जो अर्थ, धर्म संग्रहमें परिश्रम कर
हे हैं। जो लोग श्राद्धादि करना आवश्यक समझते हैं, वह तो मानो
न्नको नष्ट करते हैं। क्योंकि मरजानेपर कौन भोजन करता है। यदि
न्य का किया हुआ भोजन अन्यको प्राप्त होता तो विदेश जानेवालोंको
ाद्धद्वारा अन्न पहुँचाना चाहिये। उन्हें अन्न पकानेकी आवश्यकता नहीं।
ो ऐसे वचन लिखे हैं कि यज्ञ करो, दान दो, गृहमें अन्नादि भरकर संकल्प
रो, देवपूजन तथा तप करो—यह तो बुद्धिमान्जनोंने धन प्राप्तिके लिए
ना लिये हैं। इसलिए हे रामचन्द्र ! तुम इस बुद्धिको त्याग प्रत्यक्ष-सुखद-
ाज्य ग्रहण करो। सर्वलोकनिदर्शिनो अर्थात् सब लोकोंको दिखलानेवाली
ण्डितोंकी बुद्धिको आगेकर भरतकी विनती मान राज्य स्वीकार करो!

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितिय अयोध्याकाण्डका एकसौ नवाँ सर्ग समाप्त ॥१०९॥

एक सौ दशवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रका जाबालिकी नागरिकता की बातों का उत्तर

जाबालिके ऐसे वचन सुन राम वेदानुकूल वाक्य बोले कि, आपने जो प्रेमसे ऐसा कहा है, वे सब अकर्त्तव्य होनेपर भी कर्तव्य तथा अपथ्य होने पर भी पथ्य प्रतीत होते हैं। मर्यादा रहित पुरुष सज्जनोंसे समादर नहीं प्राप्त कर सकता। कुलीन, अकुलीन, वीर, डरपोक, पवित्र तथा अपवित्र पुरुष अपने आचारणसे ही जान पड़ता है। वेदानुकूल न चलनेपर अनार्य अच्छे मनुष्य, अशौच, पवित्र लक्षणहीन लक्षणवाले तथा दुःशील, शीलवान् कहलावेंगे, यदि शुभक्रियाको त्याग वेदवर्जित क्रियाको मैं करूँ। जब दूषित दुराचार करूँगा तो कौन पुरुष मुझको श्रेष्ठ मानेगा। यदि मैं इस प्रतिज्ञाहीन वृत्तिमें वर्त्तमान हुआ तो फिर किससे अपना समाचार कहूँगा, तथा स्वर्गको कैसे जाऊँगा। जो मैं स्वेच्छया कार्य करूँ तो मेरी देखादेखी यह संसार अपना मनमाना करने लगे। सत्य क्रूर नहीं कहलाता, तथा सत्यही सनातन राज्य है और सत्य ही परलोक स्थित है। देवर्षिगण भी सत्य ही को स्वीकार करते आये हैं। सत्यवादी पुरुष ही अक्षयलोकको पाता है। मिथ्याभाषी मनुष्यसे लोग सर्पके समान भय करते हैं। संसारका मूल सत्यपर ही आधारित है। लोकमें सत्य ही ईश्वर है तथा सत्यमें ही सदा धर्मका वास है। सत्य ही सबकी मूल है, सत्यसे बढ़कर और कुछ नहीं है,। दान, इष्ट होम, तप तथा वेद सब सत्यही में स्थित हैं। एक ही लोककी और एकही कुलकी रक्षा करता है, एक ही नरकमें डूबता है और अकेलाही स्वर्ग-पूजित होता है। फिर मैं सत्य-प्रतिज्ञ पिताकी आज्ञा क्यों न पालन करूँगा? मैं लोभ, मोह तथा क्रोधसे सत्यका सेतु न तोड़ूँगा। मिथ्याभाषीका दिया हुआ कव्यादि देवता तथा पितृगण नहीं लेते। सत्यरूप इस धर्मको मैं सब प्रकार निश्चित रूपसे जानता हूँ। क्षात्रधर्म तो वास्तवमें असत्य रूप है, मैं इसको त्यागता हूँ। लोकमें कायिक, मानसिक तथा वाचिक यही तीन प्रकारके पाप होते हैं। सत्यभाषीकी भूमि, कीर्ति, यश, लक्ष्मी आदि सभी उनकी प्रार्थना करते हैं और आपने जो यह कहा कि राज्य करो, इसका करना ही श्रेष्ठ है—यह तो अनार्योंका-सा वाक्य है। मैं पिताके आगे जो प्रतिज्ञा कर चुका

हूँ, उसका तिरस्कारकर भरतकी बात कैसे मानूँ ? जब मैंने पिताके आगे दृढ़ प्रतिज्ञाकी थी तब कैकेयी भी बहुत प्रसन्न हुई थी। अतएव वनमें वास कर पवित्रचित्त रह पुष्प फलादि खाकर देवता पितरोंको तर्पण करता हुआ निष्कपट भावसे गुरुवचनमें श्रद्धा रखता हुआ पिताकी आज्ञाका पालन करता रहूँगा। इस कर्म-भूमिको प्राप्त होकर इसमें शुभही कर्म करना चाहिये। देखो, सौ अश्वमेध यज्ञ करनेसे इन्द्र स्वर्गके राजा बन सके तथा कठोर तप-कर ऋषिगण स्वर्गको प्राप्त हुये। नास्तिक भावसे परिपूर्ण भाषण करनेवाले जाबालिकी यह वक्तृता सुनकर उग्रतेजा श्रीरामचन्द्रजीको वह सहन करना असंभव हुआ और उस कथनका खंडन करते हुए वे कहने लगे—देखो भाई ! साधुसज्जन एवं सन्तोंका कथन है कि सत्य, धर्म, पराक्रम, भूतदया, प्रियवादिता, एवं ब्राह्मण, देव तथा अतिथिकी पूजासे ही स्वर्ग-पथका सृजन होता है। इस सन्तजन-प्रतिपादनके अनुसार मुख्य फलप्रद धर्मके स्वरूपको यथावत् जानकर निश्चयपूर्वक एवं ध्यानपूर्वक उस धर्मका भली प्रकार आच-रण करनेवाले विप्र उत्कृष्ट लोक पहुँचनेकी इच्छा रखते हैं। नहीं ज्ञात कि किसप्रकार मेरे पिताने आप जैसे पूर्ण नास्तिक, धर्म-वेद-विरुद्ध रहने वालेको याजक क्यों नियुक्तकर लिया। यह तो मेरी सम्मति में बड़ा निन्दनीय कर्म था। जैसे चोर होते हैं वैसे ही बौद्ध मतवाले होते हैं। ऐसा समझना उचित है और तथागतको नास्तिक मानना उचित है। इसकारण विद्वान्‌को उचित है कि वह नास्तिकको कड़ेसे कड़ा दण्ड दिलवाये और ऐसा न हो सके तो वैसे नास्तिकके समक्ष खड़ा तक न रहे। आप ध्यानमें रखिएगा कि आपसे भी अपेक्षाकृत अधिक ही श्रेष्ठ जनोंने और द्विजोंने ऐहिक तथा पारलौकिक की कांक्षा न रखते हुए अनेक शुभकर्म किये हैं। इसीलिए वेद प्रामाण्य मानकर जो द्विज सत्य, अहिंसा, स्तेय आदि तप, दान, परोपकार जैसे यज्ञमें लगे रहते हैं, वे धर्मनिष्ठ, दानशूर, अहिंसक, निष्कलंक तथा सज्जनोंके सहवासमें रहनेवाले, उच्चकोटिके मुनिजन ही जनतामें सम्माननीय पदारूढ़ होते हैं, आप जैसे नास्तिक नहीं। जब इस भाँति उदार महात्मा श्रीरामचंद्र-जी जाबालिसे कुत्सामय भाषण कर रहे थे, तब वह ब्राह्मण जाबालि फिर एक बार उत्तम अर्थयुक्त आस्तिकमय इसप्रकार सत्य भाषण करने लगा

कि—'मैं नास्तिकोंकी भाषा बोलनेवाला नहीं हूँ और मैं कोई नास्तिक थोड़े ही हूँ। मेरी ऐसी सम्मति नहीं है कि परलोक जैसे कोई चीज है ही नहीं। अवसर देखकर मैं फिरसे आस्तिक बन गया हूँ और वैसा कोई दूसरा अवसर आ जावेगा तो पुनः नास्तिक बन जाऊँगा। शनैः शनैः वैसा समय आ चुका था, इसलिए मैंने तुम्हें वनवाससे लौटकर नगरीमें जानेको प्रवृत्त करनेके हेतु नास्तिकमय भाषण दिया और अब तुम्हें प्रसन्न करनेके लिए मैं इस भाँति कहता हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का एकसौ दशवाँ सर्ग समाप्त ॥११०॥

एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग

वशिष्ठजीका दशरथजीकी वंशावलि कहकर रामसे तिलककरा राज्य करनेको कहना

रामको क्रुद्ध हुआ जान कुलगुरु वशिष्ठ बोले—हे राम! जाबालिभी लोककी गति जानते हैं। आपको लौटानेके लिये इन्होंने ऐसी बातें कही हैं। अब लोककी उत्पत्ति सुनिये कि सर्व प्रथम जलही था जिसपर पृथ्वी निर्मित की गई। तब देवताओंके साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुये। तदनु विष्णु वराहका रूप धरकर जलके मध्यसे पृथ्वीको निकाल लाये और तब ब्रह्माने सब संसारकी रचना की! ब्रह्माकी उत्पत्ति आकाशसे है। ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपके विवस्वान्, विवस्वान्से वैवस्तमनु, उनके सबसे बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे। इनको मनुने समस्त पृथ्वी दे दी, इसीसे यही अयोध्याके प्रथम राजा हुये। इक्ष्वाकुके कुक्षि, उनके विकुक्षि, विकुक्षिके बाण और बाणके अनरण्य उत्पन्न हुए। इनके राज्यमें दुर्भिक्ष कभी नहीं पड़ा और चोरकाभी नाम नहीं सुनाई देता था। अनरण्यके पुत्र पृथु तथा पृथुके त्रिशङ्कु हुये। ये राजा अपने वचनका पालन करनेके लिये सशरीर स्वर्गगामी हुये। इनके धुन्धुमार, धुन्धुमारके युवनाश्व, और युवनाश्वके मान्धाता हुये। मान्धाताके सुसन्धि तथा सुसन्धिके ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित दो पुत्र उत्पन्न हुये। ध्रुवसन्धिके भरत और भरतके आसित, उनके हैहय, तालजंघ त्तर तथा शशविन्दु इन जातियोंके राजा बैरी हुये। जिन सब राजाओंके साथ राजाने भी युद्ध किया, पर हारकर हिमालयमें जाकर तप करने लगे। इनके दो स्त्रियाँ थीं। दोनों गर्भवती हुईं। एकने च्यवन ऋषिको अभिवाद-

कर उनसे उत्तम पुत्र माँगा । दूसरी सौतने उनके पुत्रको विष पिला दिया । एक दिन जब च्यवन मुनि वहाँ आये तो कालिन्दीने जो मुनिको प्रणाम किया तो उस पुत्रेच्छुक रानीसे मुनिने कहाकि—'हे देवि ! तेरे ऐसा लोकविख्यात पुत्र होगा कि जो धार्मिक तथा वंशकर्त्ताभी होगा।' यह सुन रानीने मुनिका बड़ा आदर किया और गृहमें आकर ब्रह्माके तुल्य पुत्रको जन्म दिया। तब सौतके गरल अर्थात् जहर देनेके कारण वह बालक गर सहित उत्पन्न हुआ जिससे उसका नाम सगर पड़ा । सगरने अपने यज्ञका अश्व ढूँढ़नेके लिए अपने पुत्रोंसे सागर खुदवाया । सगरके असमंजस नामक पुत्र हुआ । यह अयोध्यावासियोंके सन्तानोंको सरयू में डुबा देता था । इससे पिताने उसे घरसे निकाल दिया । असमंजसके अंशुमान्, उनके दिलीप, उनके भगीरथ, भगीरथके ककुत्स्थ, ककुत्स्थके रघु हुए । रघुके नामपर इस वंशके लोग राघव कहलाने लगे । रघुके पुत्र प्रवृद्ध, पुरुषादक, कल्माषपाद, सौदास और कल्माषपादके शंखण हुए जो पिता द्वारा सैन्य सहित नष्ट हो गए । फिर शंखके सुदर्शन, सुदर्शनके अग्निवर्ण, उनके शीघ्रग, उनके मरु, मरुके पशुश्रुव, उनके अम्बरीष हुए । अम्बरीषके नहुष, नहुषके नाभाग, उनके अज और सुव्रत ये दो पुत्र हुए । इन्हीं अजके महाराज दशरथ हुए । हे राम ! उनके सबसे बड़े पुत्र आप हैं । इससे अपना अभिषेक कराके राज्य स्वीकार कीजिए । इक्ष्वाकुवंशियोंमें सबसे बड़ाही पुत्र राजा होता चला आया है । आपके होते हुए छोटा पुत्र राजगद्दीपर कैसे बैठ जाय ? इसलिए हे महामति राम ! रघुवंशका सनातन धर्म नष्ट न करते हुए रत्नों और राष्ट्रोंसे सम्पन्न पृथ्वीका तुम पालन करो ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १११ ॥

एकसौ बारहवाँ सर्ग

वशिष्ठको रामका उत्तर और भरतका धरना देना तथा उसपर रामका उत्तर

इसप्रकार कहकर राजपुरोहित वशिष्ठजो श्रीरामचन्द्रजीसे फिर यह वचन कहने लगे—'हे राम ! पुरुषके माता, पिता तथा आचार्य ये तीन गुरु होते हैं। माता पिता, तो उसे जन्म देते हैं और आचार्य ज्ञान देता है, इसीसे ये गुरु कहाते हैं। मैं तुम्हारे पिताका आचार्य हूँ, इससे तुम्हारा भी हूँ। मेरे वचन

मान तुम सन्मार्गका अतिक्रमण न करोगे। इन प्रजाओं, भाई-बन्धुओं तथा सब छोटे-छोटे राजाओंका पालन करो। अपनी वृद्ध माताका तिरस्कार न करो और इनकी आज्ञा मानो। हे राम ! ये भरत प्रार्थना कर रहे हैं, इनकी प्रार्थनाभी माननी चाहिए।' जब महाराज वशिष्ठने इसप्रकार कहा, तो श्रीरामचन्द्रजीने यों उत्तर दिया—माता, पिता पुत्रकी जो भलाई करते हैं, उसके प्रत्युपकारमें यदि पुत्र कुछ किया चाहे तो नहीं कर सकता। क्योंकि वे यथाशक्ति पुत्रको उत्तम-उत्तम भोजन देते, सर्वदा प्रिय वचन कह स्नेह करते, उसकी वृद्धि और जीवनके नाना प्रयत्न करते हैं। महाराज दशरथ मेरे पिता हैं, जो कुछ मुझे आज्ञा दे गए हैं, वह किसीप्रकार अन्यथा नहीं हो सकती।' श्रीरामके ऐसा कहनेपर भरतका मन बहुत उदास हो गया। वे सुमन्त्रसे बोले—'आप इस वेदीपर शीघ्रही कुछ बिछा दीजिए। जबतक आर्य मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक यहीं इनके सामने धरना दूँगा। बिना खाए-पीए कुटीके आगे पड़ा रहूँगा।' सुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीका मुँह ताकने लगे। यह देखकर भरतके मनमें बड़ा दुःख हुआ और वे स्वयंही कुशकी चटाई बिछाकर पृथ्वीपर बैठ गए। तब राजर्षियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीरामने कहा—'तात भरत ! मैं तुम्हारी क्या बुराई करता हूँ, जो मेरे आगे धरना दे रहे हो ? ब्राह्मण एक करवटसे सोकर—धरना देकर मनुष्योंको अन्यायसे रोकता है। परन्तु राजतिलक ग्रहण करनेवाले क्षत्रियोंके लिए इसप्रकार धरना देनेका विधान नहीं है, अतः इस कठोर व्रतका परित्याग करके उठो और शीघ्रही अयोध्यापुरीको जाओ। यह सुन भरत पुरवासियों और देशवासियोंकी ओर देखकर वहीं बैठे बोले कि 'आपलोग श्रीरामको क्यों नहीं समझाते ? यह सुन वे सब भरतसे कहने लगे कि 'हम जानते हैं कि आप जो कुछ कह रहे हैं उचित है। पर राम अपने पिता राजा दशरथके वचनोंपर दृढ़ हैं, इससे नहीं लौट सकते। उनके ऐसे वचन सुन राम भरतसे बोले कि, 'हे भाई ! इनके वचन सुनो, कैसे विचारके साथ बोलते हैं। इन लोगोंका तथा मेरा कहा, दोनोंका सुनकर विचारपूर्वक देखो।' यह सुन उठकर जल स्पर्शकर भरत बोले कि 'प्रजा मन्त्री व अन्य सबलोग, सुनो। न तो मैं पिताका राज्य चाहता हूँ, न माताहीको कुछ सिखाऊँगा, न श्रीरामको वनसे लौटाता हूँ। यदि इनको

पिताका वचन अवश्यही करना है, तो चौदह वर्ष तक मैं भी वनमें रहूँगा। श्रीराम भाईके ऐसे वचन सुन आश्चर्यमें भर गए और बोले—'अपने जीतेजी पिताने जो वस्तु बेच डाली, किसीके यहाँ धरोहर रखी या कोई वस्तु मोल ले ली है, तो मैं भरत उसका लोप नहीं कर सकते। कैकेयीने मुझको वनके योग्यही समझके वनवास दिलाया, तथा पिताने दिया है, सो मैं स्वयं वनको जाऊँगा। अपना प्रतिनिधि भरतको न भेजूँगा। मैं भरतको जानता हूँ ये बड़े क्षमाशील हैं। वनसे लौटकर इन्हीं धर्मशील अपने भाईके साथ राज्यको ग्रहण करूँगा। कैकेयीका वचन मान मैंने पिताको असत्यसे छुड़ाया, अब भरतभी अयोध्याका राज्यकर पिताको असत्यसे छुड़ायें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एकसौ बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११२॥

एकसौ तेरहवाँ सर्ग

दृढ़ प्रतिज्ञ रामका भरतको अपनी चरण पादुका दे लौटाना

उन दोनों अतुलित तपस्वी भ्राताओंका वह रोमाञ्चकारी समागम देखकर वहाँ आये हुए महर्षि बहुत विस्मित हुये। अन्तरिक्षमें अदृश्य भावसे खड़े हुए मुनि तथा वहाँ प्रत्यक्षमें बैठे हुए महर्षि उन सौभाग्यशाली बन्धुओं की इसप्रकार प्रशंसा करने लगेकि—'ये दोनों राजकुमार अति श्रेष्ठ व धर्मज्ञ हैं।' इसी समय रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले ऋषियोंने सम्मिलित होकर भरतसे कहा—'महाप्राज्ञ'! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा आचरण बहुत उत्तम और यश महान् है। यदि तुम अपने पिताकी ओर देखो—उन्हें सुख पहुँचाना चाहो तो रामके वचन स्वीकार करो। हमलोग इन रामको पितासे सर्वदा उऋण समझते हैं, क्योंकि कैकेयीसे उऋणही होनेके कारण दशरथ स्वर्गको गये।' ऐसे वचन कहकर गन्धर्व, ऋषि, राजादिगण सब चलते बने। तब उनके ऐसे वचन सुन राम उन ऋषियोंकी प्रशंसा करने लगे जिसे सुन भरत काँपने लगे और हाथ जोड़ रामसे बोले—'हे राम! इक्ष्वाकुकुलमें सर्वदा ज्येष्ठ पुत्रकोही राज्य मिलता है। यह कुलधर्म विचार राज्य कीजिए। मैं अकेला इतने बड़े राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हूँ। ये भाई बन्धु सुहृद् सब आपकाही मार्ग देख रहे हैं। राम! इस राज्यको स्वीकार कर किसीको राजा बनाइये। ऐसे कह भरत अपने भाईके चरणोंपर गिर पड़े। तब भरतको उठा गोदमें बैठा राम कहने लगे—'हे तात! तुमको

यह विनय करनेवाली बुद्धि अपनेहीसे आगई है। तुमतो पृथ्वीको रक्षा अपनी इस बुद्धिसे कर सकतेहो। अमात्य, सुहृदों और मन्त्रिजनोंकी मन्त्रणासे बड़े-बड़े कार्य साधितकर लेना। चाहे चन्द्र शोभाको, हिमालय हिमको और समुद्र मर्यादाको त्याग दे, पर मैं पिताकी आज्ञा नहीं टाल सकता। काम या लोभसे जो कैकेयीने यह कार्य किया है, उसको मनमें न लाना और सर्वदा उसका आदर करना।' जब रामने ऐसा कहा, तब उनसे भरत बोले—'हे आर्य! आप इन स्वर्ण-मण्डित पादुकाओंपर दोनों चरण रखिये। इन चरणोंके प्रभावसे इनमें इतनी शक्ति हो जायगी कि सब लोकका योगक्षेमकर सकेंगी।' यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने वे पादुकाएँ पैरोंके नीचे रखकर फिर हटादी और उन्हें महात्मा भरतको दे दिया। उन खड़ाऊओंको प्रणामकर भरत रामसे बोले कि—'चौदह वर्षतक जटाचीर धारणकर, फल मूल खाते, तुम्हारे आगमनका मार्ग देखते हुए नगरके बाहर कहीं स्थिर रहूँगा, तथा तुम्हारी पादुकाओंपर राज्यका भार रख जिसदिन चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होगा, उसी दिन आपको न देखूँगा तो अग्नि दीप्तकर उसमें प्रवेश कर जाऊँगा। 'जब रामने कहा—बहुत अच्छा मैं उस दिन आऊँगा।' फिर राम बोले—'हे शत्रुघ्न! कैकेयीकी रक्षा किये रहना, उनपर क्रोध न करना! मैं अपनी तथा सीताकी तुमको शपथ दिलाता हूँ।' ऐसा कह भाइयोंको बिदा किया। तब बहुत उज्वल एवं भली-भाँति सज्जित उन पादुकाओंको लेकर धर्मज्ञ भरतने रामकी प्रदक्षिणाकी और उन खड़ाऊओं को एक उत्तम हाथीके सिरपर रख दीं। तदुपरान्त स्वधर्मके पालनमें हिमालय की भाँति अचल रहनेवाले रामचन्द्रजीने क्रमशः उन सकलजनों, गुरुजनों, सचिव-मंडल, प्रजा-गण एवं लघुभ्राता भरत-शत्रुघ्नको भी रीत्यानुसार सम्पन्न करके विदा किया। इस समय दुःखावेगके मारे आँसुओंसे कंठावरुद्ध माताएँ उनसे कुछभी पूछनेमें अक्षम हुई। तब ऐसी दशामें श्रीरामचन्द्रजी सबको दण्डवत् कर चुकने पर बिलखते-बिलखते अपनी कुटीमें प्रवेश किये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एकसौ तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥११३॥

एकसौ चौदहवाँ सर्ग

भरतजीका लौटकर भरद्वाजजीसे मिलना

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीकी दोनों चरणपादुकाओंको अपने मस्तकपर धारण किए भरतजी शत्रुघ्नके साथ रथपर बैठे। वशिष्ठ, बामदेव, जाबालि

आदि मुनिगण तथा अमात्यगण आगे-आगे चले। वे सब मन्दाकिनी नदी तथा चित्रकूटकी प्रदक्षिणा करते चले। भरत नाना सुन्दर-सुन्दर धातु देखते हुए सैन्यसहित चले। भरतने चित्रकूटहीके निकटसे भरद्वाज आश्रम देख और वहाँ पहुँच रथसे उतर भरद्वाजके चरणोंको प्रणाम किया। तब भरद्वाज बोले— 'हे तात! क्या रामको ले आये?' जब भरद्वाजने ऐसे पूछा तो भरत उनसे बोले कि 'मैंने और गुरु वशिष्ठने अनेक प्रकारसे कहा। परन्तु राम इन पुरोहित वशिष्ठसे बोले कि, मेरे चौदह वर्ष वनवासकी जो मेरे पिताकी प्रतिज्ञा है, मैं उसीका यथावत् पालन करूँगा।' इसपर वाक्यकोविद वशिष्ठ-जीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि—अपने हेम भूषित खड़ाऊँ दे अयोध्याभरका योग क्षेम कीजिये। जब इन कुलगुरुने ऐसा कहा तो रामने प्राङ्मुख हो राज्य करनेके लिए अपनी पादुका दी। मैं रामकी आज्ञासे लौट पादुका लिए अयोध्याको जा रहा हूँ। तब भरतकी यह बात सुन भरद्वाज बोले—'हे पुरुषसिंह! तुममें जो श्रेष्ठता है यह आश्चर्यकी बात नहीं है। जिस महा-बाहु दशरथके धर्मवत्सल पुत्र तुम हो वे तुम्हारे पिता उऋण हो गये।' भरद्वाजके ऐसे वचन सुन भरत हाथ जोड़ चलनेके लिए विदा माँगने लगे। भरद्वाजकी प्रदक्षिणाकर अमात्यों सहित भरत अयोध्याको प्रस्थित हुये। उनके पीछे-पीछे भरतकी सेना चली। वे यमुनानदीको पार कर अति निर्मल जलवादी गंगानदीको उतरे। भरतने गंगाको उतर, शृङ्गवेरपुरसे चल अयोध्या नगरी देखी। परन्तु पिता दशरथ और भ्राता रामसे रहित हुई वह अयोध्या भरतके लिए अत्यंत ही दुःखद हुई जिससे संतप्त हो सारथीसे बोले—'हे सारथे! उध्वस्त हुई यह अयोध्या नगरी अब नहीं प्रकाशती है। यह दीन अयोध्यापुरी दीन, अलंकारहीन और आनन्दरहित होकर कोलाहल शून्य हो गई है।'

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एकसौ चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥११४॥

एकसौ पन्द्रहवाँ सर्ग

(भरतका अयोध्या आगमन तथा राजासे रहित अयोध्याको देख भरतका अश्रुपात)

इसके पश्चात् गंभीर घोष करते हुए रथपर सवार भरत अयोध्यामें पहुँचे जो विलाव और उल्लू आदि जीवोंसे व्याप्त काली रात्रिके तुल्य अप्रकाशित

थी। जैसे रोहिणी ग्रहणमें राहुसे ग्रसित चन्द्रके पीड़ित होनेसे शोभाहीन हो जाती है, वैसे ही वह पुरी थी। जैसे धूपसे जल गर्म हो जानेपर नदी व्याकुल हो जाती है, वही अवस्था तब उस नगरीकी थी। जैसे प्रथम अग्नि देदीप्यमान हो फिर ज्वाला-रहित हो जानेसे अच्छा न लगे, यही अवस्था अयोध्याकी थी। जैसे वीरोंके मारे जानेसे वाहिनी अप्रकाशित लगे, वैसे ही वह नगरी थी। रथपर बैठे हुए भरत सारथि सुमन्त्रसे फिर कहने लगे—यह पुरी तो वैसे ही शान्त हो गई है जैसे पवन चलनेके बाद सागर शान्त हो गया हो। जैसे याचकोंसे शून्य यज्ञवेदी शोभा नहीं देती, वैसे ही यह नगरी शोभाहीन हो गई है। गोष्ठ में स्थित, वृषभहीन गौके तुल्य यह नगरी जान पड़ती है। उत्तम मणियोंसे हीन गजमुक्ताके तुल्य यह नगरी शोभा नहीं देती। आकाशसे गिरे हुए तारेके समान ही यह नगरी दीप्तिहीन हो रही है। जैसे पुष्प-शोभित मत्त भ्रमर-गुंजारित लता दावानलसे जल जावे, वैसेही यह नगरी है। यह नगरी चन्द्ररहित मेघाच्छन्न रात्रिके समान दीख पड़ती है। मदिराके टूटे-फूटे पात्र पड़े हैं, मानों मदिरा पीनेवाले जन नहीं रहे। सब कहीं टूटे-फूटे पात्र पड़े थे। प्याससे व्याकुल जनयुक्त प्रजाके तुल्य वह पुरी लगती थी। वाणोंसे टूटी हुई धनुषसे अलग पड़ी प्रत्यञ्चाके तुल्य नगरी जान पड़ती थी। वह पुरी मानों युद्धकुशल अश्वारोहीकी घोड़ी है, जिसको शत्रुने मार डाला है। भरतने ऐसी नगरीमें रथपर चढ़ प्रवेश किया और सारथी सुमन्त्रसे बोले कि, पहलेकी तरह आज अयोध्यामें गाने-बजानेकी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। मदिरा, फूल, चन्दन, अगुर, आदि सुगन्धित वस्तुओंकी सुगन्ध भी नहीं आती। यानोंका शब्द, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंका चिघाड़ना भी नहीं सुनाई पड़ता। चन्दन, अगर, तगर तथा मालाओंकी गंध भी नहीं जान पड़ती। रामके वन चले जानेसे युवा पुरुष फूलोंकी माला आदि शृङ्गारकी वस्तुयें नहीं भोगते। रामके शोकसे व्यथित इस नगरीमें कोई भी उत्सव नहीं दिखाई देते। यह अयोध्यापुरी अच्छी नहीं लगती। राम आकर अयोध्यामें कब हर्ष उत्पन्न करेंगे? ऊँची-ऊँची सवारियोंपर चढ़े, भूषण, वस्त्र धरे मनुष्योंसे अयोध्यामें राज-मार्ग शोभित नहीं होते। एवं कहते अति व्यथित भरत अयोध्यामें प्रविष्ट हो अपने पिताके

मन्दिरमें गये, जो महाराज दशरथसे रहित सिंह हीन गुफाके समान दीख पड़ता था। उसकी दशा देखकर भरत धैर्यवान् होने पर भी अत्यन्त दुःखी होकर आँसू बहाने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११५ ॥

एकसौ सोलहवाँ सर्ग

पश्चात् सब माताओंको अयोध्यामें रखकर दृढ़ प्रतिज्ञ भरतने शोकसे संतप्त हो गुरुजनोंसे कहा—अब मैं नन्दिग्रामको जाऊँगा, इसके लिये आप सबकी आज्ञा चाहता हूँ। महाराज स्वर्गवासी हो गये और मेरे परमपूज्य भगवान् श्रीरामचन्द्र बनमें निवास करते हैं, अतः मैं भी नन्दिग्राममें रहकर राज्य के लिये श्रीरामचन्द्रजीकी ही प्रतीक्षा करूँगा, क्योंकि महायशस्वी श्रीराम ही हमलोगोंके राजा हैं। भरतके ऐसे वचन सुन मंत्री तथा वशिष्ठ बोले—हे भरत ! तुमने जो कहा ठीक है। तुम्हारा वचन भाईके प्रेमके योग्य है। ऐसा कौन पुरुष है जो भाईके मिलनेकी लालसामें लालायित हो तुम्हारी बात न माने ? मन्त्रियोंके ऐसे प्रियवाक्य सुन भरत सारथिसे बोले कि, रथ तैयार करो। यह कह सब माताओंसे विदाहो शत्रुघ्न सहित रथपर चढ़ दोनों भाई प्रसन्न हो मंत्री व पुरोहितोंके साथ विदा हुये। आगे-आगे वशिष्ठादि ब्राह्मण पूर्व दक्षिणकी ओर नन्द्रिग्रामको चले। सब सेना और पुरवासी भरतके पीछे-पीछे चले। भ्रातृवत्सल भरत अपने सिरपर रामकी पादुका रख नन्दिग्रामको चले। वहाँ पहुँच रथसे उतर गुरुजनोंसे बोले कि, भाईने अपना राज्य मुझको धरोहरके रूपमें सौंपा है और इसकी रक्षा करनेके लिये अपने पादुका भी दिये हैं। यह कह खड़ाऊँ सिरपर रख दुखी हो प्रजाओंसे बोले-इन खड़ाऊँओंको भाईके चरणारविन्द समझ धज लगाओ। भाईने ये खड़ाऊँ मुझको धरोहर रखनेको दी है। जब तक राम नहीं आते, तब तक मैं इनका पालन करूँगा। रामके आनेपर इनको उनके आगे रखूँगा और राज्यकाज सब उनको दे अपने गुरु रामकी सेवा करने लगूँगा, तथा ये खड़ाऊँ और अयोध्याका राज्य रामको दे पापसे मुक्तहो जाऊँगा। यह कह चीर वल्कल व जटा धारण कर सेना सहित भरत नन्दिग्राममें स्थित हुये। सब कार्य पादुकाओंको निवेदन करते हुए भरत उनकी आज्ञासे ही वहाँ रहे।

भरतने रामकी पादुकाओंका अभिषेक किया और उनके आधीन हो रा
करने लगे। जब कोई राज्यकार्य उपस्थित होता या कोई बड़ी भेंट अ
करता था, तब भरत उस विषयमें पादुकाओंसे कहकर पीछे भरतजी उस
यथावत् प्रबन्ध करते थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥११६॥

एकसौ सत्रहवाँ सर्ग

भरतके लौट आनेपर श्रीरामचन्द्रजी पहलेकी भाँति वनमें निवास क
लगे। उस समय बहुत-से ऋषि अपना-अपना आश्रम छोड़कर अन्यत्र च
गये। श्रीरामचन्द्रजीने इसपर विचार किया तो उन्हें बहुत-से ऐसे का
ज्ञात हुए, जिनसे उन्होंने स्वयं भी वहाँ रहना उचित न समझा। अतः दू
स्थान पर जानेकी बात सोचकर वे सीता और लक्ष्मणके साथ वहाँसे च
दिये। चलते समय रामने उन सबके स्वामी ऋषिराजसे कहा—हे भगव
मुझसे कोई ऐसा दूषित कर्म नहीं हुआ है, जिससे ये तपस्वी मुझसे डरें
फिर लक्ष्मणने भी कोई ऐसा दुष्कर्म नहीं किया जिसे देख ये डरते हैं
सीता भी आप लोगोंकी सदा सेवा ही किया करती है। ऋषिराज यह सु
रामसे बोले कि, कल्याणहीमें प्रीति करनेवाली सीता तपस्वियोंका
अपकार करेंगी? ये लोग राक्षसोंसे अति दुःखी हैं। इसीसे आपसमें बा
चीत करते हैं। वहाँ रावणका छोटा भाई खर जनस्थान निवासी
तपस्वियोंको पीड़ा देता है। वह बड़ा दुष्ट है। अन्य पुरुषोंको भी खाया कर
है, आपको भी कष्ट पहुँचाना चाहता है। हे तात! जबसे आप यहाँ
हैं, तबसे राक्षस और भी कष्ट देते हैं। नानाप्रकारसे तपस्वियोंको
दिखाते हैं, जिससे वे लोग बड़े-बड़े दुःख पाते हैं। तपस्वियोंके आगे
बड़े दूषित तथा जघन्य काम करके उनको मारते हैं। आश्रमों पर आ
राक्षस उन बेचारे ऋषियोंके साथ घूमते व उनको मार भी डालते हैं
ऋषियोंके होम करनेके समय ये दुष्ट अग्निमें पानी डाल देते हैं। क
उठा-उठाकर फोड़ डालते हैं। उनसे पीड़ित यहाँसे दूसरे देशमें चलनेके लि
ऋषिगण मुझसे कहते हैं। बहुत दिनोंसे ये दुष्ट ऋषियोंको मारते चले
हैं। इससे अब इस आश्रमको हम छोड़ देंगे। यहाँसे थोड़ी ही दूर

अश्वनाभ ऋषिका आश्रम है। वहीं परिवार सहित चले जायेंगे। हे राम! इच्छा हो तो आप भी हमारे साथ चलिये, क्योंकि वह खर तुम्हारे साथ भी अनुचित कर्म करेगा। यद्यपि आप समर्थ भी हैं, तो भी नारी समेत यहाँके रहनेमें संदेह ही है। मुनिराजके वचन सुन राम उनके जानेका निषेध न कर सके! सो रामकी प्रशंसाकर उस आश्रमको छोड़ साथियोंको साथ ले मुनि-राज चले गये। उस ऋषिसंघको साथ ले रामचन्द्रजी उस भू-भागके उस पार चले तथा उन आश्रमाधिपति ऋषियोंको प्रयास कर चुकने पर प्रसन्न होकर उन ऋषियोंको लौट जानेकी आज्ञा दे दी, तथा कहा कि, राम वहाँ पर न रहें; तब रामचन्द्रजी अपने पुनीत निवासस्थानमें लौट आये। आश्रम से जब ऋषिगण चले गये, तब प्रभु रामने सीताके संरक्षणार्थ क्षणभर भी उसको छोड़ बाहर चले जाना त्याग दिया। और ऋषितुल्य बर्ताव रखनेवाले रामचन्द्रजी अपनी रक्षा करनेकी क्षमता रखते हैं, ऐसा सोचकर कुछ तपस्वी आश्रमका त्याग न कर सके और वहीं रामके साथ रहने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का एकसौ सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११७ ॥

एकसौ अट्ठारहवाँ सर्ग

जब बहुत-से ऋषिगण अपना-अपना आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये, तब श्रीरामचन्द्रजीने इसपर विचार किया तो उन्हें बहुत-से ऐसे कारण ज्ञात हुए, जिससे उन्होंने स्वयं भी वहाँ रहना उचित न समझा। यद्यपि यह कहने लगे कि, यहाँपर मैंने भरत, माताओं आदिको [illegible]खा है, इससे उनका स्मरण बार-बार होता है। भरतकी सेनाके घोड़े और हाथियोंके [illegible]द की दुर्गन्ध भी आती है। इससे अब यहाँसे अलग ही चले जाना उचित है। यह सोच वहाँसे चल दिये। वहाँसे चल अत्रिके आश्रममें पहुँचे। अत्रिजीने रामको पुत्रवत् समझा। जो कुछ उचित आ[illegible] सब रामका किया। फिर अपनी अतिवृद्धा भार्या अनुसूयाको बुलाया व सत्कारसे समझाया कि, हे भाग्यवती, धर्मचारिणी अनुसूया! सीताका स्वागत करो। ऐसा कहकर रामसे अत्रि बोले कि, तुम इन धर्मचारिणी अनुसूयाको जानते हो। एक समय दश वर्ष तक जल नहीं बरसा था, तब उन्होंने मूलफूल उत्पन्न किये तथा अपनी उग्र तपस्यासे गंगाको अपने पास बुलाया। इन्होंने दश हजार

वर्ष तक तपस्या भी की है, इसीसे इनका नाम अनुसूया पड़ा है। इसी तपस्विनी अनुसूयाके व्रतोंके सामर्थ्यसे ऋषियोंके तपश्चर्यामें आनेवाले विघ्न नष्ट हो गये हैं। देव-कार्यके निमित्त इसी अनुसूयाने त्वरा करके दस रात्रियोंकी एक ही रात्रिको यह तुम्हे माताके समान हैं। इससे परम तपस्विनी सीता इनको प्रणाम करें। यह सुन राम जानकीसे बोले—हे राजपुत्रि! अब अपने कल्याणके लिये अतिशीघ्र इन तपस्विनी अनुसूयाकी सेवा करो। जिन्होंने अपने शुभ कर्मोंसे अनुसूया नाम पाया है। उनकी सेवा कर धर्मकी बातें पूछो। सीताने रामकी बात सुन अनुसूयाकी प्रदक्षिणा की। अनुसूया अति शिथिल-शरीरकी थीं, सब अंगोंकी खाल सिकुड़ गई थी। चलनेमें पवन-प्रेरित केलाके तुल्य काँपती थीं। सीताने अनुसूयाके पास जा अपना नाम कह अभिवादन किया और हाथ जोड़कर कुशल पूछने लगीं। सीता को देख महावृद्धा अनुसूया बोलीं कि, हे सीता! जो तुम मान व सत्कार छोड़ वनवासी रामके पीछे-पीछे फिरती हो सो ठीक है। नगरवासी, वनवासी, अनुकूल व प्रतिकूल पति जिन स्त्रियोंको प्रिय है उनका लोकमें महोदय होता है। दुश्शील, कामी, निर्धन, पतिको भी आर्य-स्वभाव नारियाँ देवता-तुल्य मानती हैं। हे सीते! स्त्रियोंका पतिसे अधिक कोई भी बन्धु नहीं है। कामासक्त व पतियोंकी स्वामिनी दुष्ट स्त्रियाँ, गुण-दोषका ध्यान नहीं करतीं। ऐसी स्त्रियाँ लोकमें कीर्ति नहीं पातीं। तुम्हारे तुल्य इस-उस लोककी गति जाननेवाली नारियाँ स्वर्गमें विहार करती हैं। इसलिए पतिको देवत् मानकर सदाचारणी और पतिकी सेवा करनेमें तत्पर तू अपने पतिकी सहधर्मचारिणी है। इससे तुम्हें धर्म और सुयश दोनोंकी प्राप्ति होगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एकसौ अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११८॥

एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग

अनुसूयाके ऐसा कहनेपर असूया-दोषसे रहित विदेह कुमारी सीताने उनके वचनोंकी प्रशंसाकी और धीरे-धीरे इसप्रकार कहा—हे देवि! आपका उपदेश कि, स्त्रियोंका पतिही गुरु है, कुछ आश्चर्य नहीं है, मैं भी इस बातको जानती हूँ। पति धनहीन हो, चाहे उसका आचरण कैसाही क्यों न हो, पर उसके प्रति दया युक्त व्यवहार करना मुझ समान नारियोंका आवश्यकीय

कर्तव्य है। किन्तु जब पति जितेन्द्रिय हो, अपनेसे अधिक स्नेह करता हो, माता-पिताके समान प्रियकारी, सुगुणधारी सुन्दर हो, तो उनके प्रति नारी उचित व्यवहार करेंगी इसमें आश्चर्यकी कौन बात है? मेरे महाबली पति अपनी माता कौशल्याके साथ जिस तरहका बर्ताव करते हैं, उसीप्रकारका बर्ताव अन्य राजमहर्षियोंमें भी करते हैं। जिस नारीको महाराजने एकबारभी प्रियाकी दृष्टिसे देखा है, राम उस स्त्रीसेभी तो मातृवत् वर्त्तते हैं। जबमैं घरसे वनको चली थी, तब आपके तुल्य मेरी सासुने जो उपदेश किया था, वह मेरे हृदयपर अंकित है। विवाहके समय अग्निके समक्ष मेरी माताने जो उपदेश किया था वहभी मेरे हृदयमें विराज रहा है। धर्मचारिणी! पति-सेवाके सिवाय स्त्रीको और कोई सेवा नहीं करनी चाहिए। यह जो उपदेश मेरे बान्धवोंने मुझे दिये हैं मैं उनको तनिकभी नहीं भूली। सावित्री पति-सेवासे स्वर्गमें निवास करती हैं, आपभी सावित्रीके तुल्य पतिसेवासे सर्व सिद्धियोंको प्राप्त हो स्वर्गको जाओगी। नारी श्रेष्ठ रोहिणी मुहूर्त भरके लिएभी अपने पति चन्द्रमासे अलग नहीं पाई जाती। एवं अरुन्धती आदि श्रेष्ठ नारियाँ पति सेवारूप पुण्यकर्मके प्रभावसे स्वर्गमें वास करती हैं। सीताके ऐसा कहनेपर अनुसूया अति हर्षितहो सीताका सिर सूँघ बोलीं—हे जनकनन्दिनी! मैंने अनुष्ठानों द्वारा जो तपोबल एकत्र किया है उसमें मैं तुमको वर दिया चाहती हूँ, कोई वर मांगो। हे सीते! तुम्हारा कथन युक्ति संगत और पवित्र है, जिससे मैं संतुष्ट हुई हूँ। अतः कहो मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? अनुसूयाका वाक्य सुन सीता उनसे बोली कि, आपके अनुग्रहसे मेरी सब कामना पूर्णहो गई। यह सुन और प्रसन्नहो अनुसूया कहने लगी कि, हे सीते! तुमको देख मुझे बहुतही आनन्द हुआ है। इसलिए कोई उचित वरदे। मैं अपने आनन्दको सफल करूँगी। हे मैथिली! यह दिव्य माला, श्रेष्ठ वस्त्राभूषण, केशर कपूरमिश्रित चन्दन और बहुमूल्य उबटन तुम्हें देती हूँ। इनसब वस्तुओंके व्यवहारसे तुम्हारे शरीरकी शोभा निरन्तर बनी रहेगी। हे सीते! यह केशर आदि मिश्रित अंगराग है। इसको लगा लक्ष्मी जैसे विष्णुकी, वैसे तुम रामकी शोभा बढ़ाओगी'। अतः सीताने अनुसूया द्वारा प्रीतिप्रदत्त वह वस्त्राभूषण अंगराग व माला ग्रहण की। एवं सीता उक्त

वस्तुएँ ग्रहणकर अंजलिबाँध धीर भावसे अनुसूयाकी उपासना करने लगीं। सीताको देख अनुसूया कोई प्रियवार्ता सुननेकी इच्छासे पूछने लगीं—हे सीते! मैंने सुना कि, यशस्वी रामने तुमको स्वयंवरमें प्राप्त किया है। सो मैं तुम्हारे स्वयंवरका हाल विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूँ। यह सुन सीता अनुसूयासे बोली—'मैं कहती हूँ, आप सुनिए। मिथिलापुरीके शासक जो महावीर जनक राजा हैं, वह धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करते हैं, यज्ञके लिए हल ग्रहणकर जब वह खेत जोतने लगे तो मैं पृथ्वी विदीर्णकर हलके आगे प्रकट हुई। मेरा समस्त शरीर धूलसे धूसरित था। पृथ्वीमें बीज बोते हुए महाराज मुझे देख अचम्भा करने लगे। उनके कोई सन्तान न थी, इसलिए मुझे वह पुत्री समझ बड़ा प्यार करने लगे। उसीसमय यह आकाशवाणी हुई कि, हे राजन्! यह कन्या तुम्हारे क्षेत्रमें उत्पन्न होनेसे यह तुम्हारी पुत्री है। धर्मात्मा जनक यह आकाशवाणी सुन बड़े आनन्दको प्राप्त हुए। तदनन्तर उन्होंने मुझे अपनी पटरानीको सौंप दिया जो मेरा मातृवत् लालन-पालन करने लगीं। जब मेरी विवाह योग्य अवस्था हुई तो पिता व्याकुल चित्तहो चिन्ता करने लगे। क्योंकि इन्द्रसमानभी कन्याका पिता वरके पक्षवालोंसे अनादरको प्राप्त होताही है। उस असम्मानके होनेमें कुछ देरी न देख पिता जनक चिन्ता सागरमें निमग्न होगये। मुझको आयोजित देख अनेक प्रयत्न करने परभी मेरे समान वह योग्य वर न प्राप्तकर सके। अतः वह सदा चिन्तातुर रहते थे। तदन्तर उन्होंने सोचाकि धर्मानुसार कन्याका स्वयंवर रचना चाहिये। पुराकालमें वरुणने जनकके पूर्वज देवरातको दक्षके यज्ञमें धनुष और अक्षय बाणोंसे पूर्ण दो तरकस दिये थे। यह धनुष इतना भारी था कि देवतासे लेकर मनुष्यतक कोई भी उसे चलायमान नहीं कर सकता था। मेरे पिता राजा जनकने वह धनुष पा राजाओंको निमंत्रित किया और उन सबके आगे बोले—आप लोगोंमेंसे जो भी इस धनुषको उठा इसमें प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसीकी भार्या बनेगी। राजागण उस धनुषरत्नको देख उसके उठानेमें उद्यत हुये पर सफलन हो धनुषको प्रणामकर चले गये। बहुत समयके पीछे श्रीराम विश्वामित्र ऋषिके साथ राजा जनकका यज्ञ देखनेको वहाँ आये। महाराज जनकने भाई लक्ष्मण सहित समागत राम और विश्वामित्रकी बड़ी पूजाकी।

तब विश्वामित्रने महाराजसे कहा कि राजा दशरथके पुत्र यह राम और लक्ष्मण आपका धनुष देखना चाहते हैं। महर्षिके ऐसा कहनेपर राजाने वह धनुष सैकड़ों वीरोंसे उठवा रामको दिखलाया। महाबली रामने क्षणभरमें उस धनुषको झुका उसपर प्रत्यन्चा चढ़ा दिया। बड़े बलसे प्रत्यञ्चा चढ़ानेसे वह टूटकर दो टूक होगया। उसी समय सत्य प्रतिज्ञ पिता जनकने मुझे रामके हाथोंमें सौंपनेकी तैयारीकी। यह रामने अपने पिता अयोध्याधिपति दशरथकी आज्ञाबिना मुझे ग्रहण करना न चाहा। इसपर मेरे पिताने वृद्ध महाराज दशरथको अयोध्यासे बुला, उनकी अनुमतिसे रामके हाथोंमें मुझे सौंप दिया और मेरी छोटी बहन उर्मिलाको लक्ष्मणकी पत्नी बनानेको दिया। जबसे मेरे पिताने मुझे रामके हाथोंमें सौंपा है। तबसे मैं धर्मानुसार पति-सेवामें अनुरक्त रहती हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्ड का एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥११६॥

एकसौ बीसवाँ सर्ग

अनुसूयासे विदाहो सीताका रामके पास आना तथा राम-लक्ष्मण और ऋषियोंका संवाद, सीता सहित रामका राक्षसमय वनमें प्रवेश।

सीताके वचन सुन धर्मज्ञ अनुसूयाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सीताका मस्तक सूँघा और हृदयसे लगाकर उनका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—विदेहनन्दिन! मैंने अनेकों प्रकारका नियम पालन करके बहुत बड़ी तपस्याकी है, उसी का आश्रय लेकर मैं तुमसे कहती हूँ। तुमने बहुत ही युक्तियुक्त और उत्तम वचन कहा है जिसे सुनकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है; अतः बताओ मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? उनका कथन सुनकर सीताको आश्चर्य हुआ। वे तपोबल सम्पन्न अनुसूयासे कुछ मुसकराकर बोलीं—'आपने अपने वचनों द्वाराही मेरा प्रिय कर दिया, अब और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है।' यह सुनकर धर्मको जाननेवाली अनुसूया देवीकी प्रसन्नता और भी बढ़ गई और उन्होंने कहा—'सीते! (तुम्हें आवश्यकता हो या न हो) तुम्हारी निर्लोभतासे जो मुझे विशेष हर्ष हुआ है, उसे मैं अवश्य सफल करूँगी। ये दिव्य हार, वस्त्र; आभूषण, अङ्गराग और उत्तम अनुलेपन मैं तुम्हें देती हूँ। इनसे तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा होगी। ये सब तुम्हारे योग्य है और नित्य उपयोगमें त्यागनेपर भी इनमें

कोई विकार नहीं आयेगा। जानकी! इस दिव्य अङ्गरागको अङ्गोंमें लगाकर तुम अपने पतिको उसी प्रकार सुशोभित करोगी, जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी शोभा बढ़ाती हैं।' अनुसूयाकी आज्ञासे सीताने वस्त्र, अङ्गराग आभूषण और हारको उनकी प्रसन्नताका उत्तम उपहार समझकर ले लिया। तत्पश्चात् अनुसूयाने कहा, सीते! अब रात हो गई, आकाशमें उदित हुए चन्द्रमा दिखाई दे रहे हैं, अतः अब मैं तुम्हें जानेकी आज्ञा देती हूँ। जाओ श्रीरामकी सेवा करो। हे वत्से! पहले मेरे सामने ही इन दिव्य वस्त्र और आभूषणोंको धारण करलो और इनसे सुशोभित होकर मुझे प्रसन्न करो। तब देवकन्याकी उपमावाली सीताने उन वस्त्रादिकों से अपनेको अलंकृत किया और पुनः शिर झुका अनुसूयाको प्रणामकर रामके निकट गमन किया। वक्ताओं में श्रेष्ठ रामने सीताको अलंकृत देख अनुसूयाके प्रीतिदानसे आनन्द-लाभ किया। अनुसूयाने सप्रेम जो वस्त्र और भूषण माता सीताको दी थी वह सब सीताने रामसे निवेदन किया। सीताका वह मनुष्य-दुर्लभ सत्कार देख राम लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुये। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने तपस्वियों द्वारा सत्कृत हो उस आश्रमपर ही वह पुण्यमयी रात्रि व्यतीतकी। प्रातः जब सभी वनवासी मुनि अग्निहोत्रसे निवृत्त हो गये, तो नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणने उन वनवासी तपस्वियोंसे अपने योग्य सेवा पूछी। तब धर्मचारी वनवासी तपस्वी उनसे बोले कि, इस वनमें राक्षसोंका बड़ा उपद्रव होता है। इस वनमें नर-भक्षी राक्षसगण अनेकरूप धारण किए और मांसांशी जीव रहते हैं। जो तपस्वी और ब्रह्मचारी अपवित्र और असावधान होते हैं, उन्हें वे राक्षस और हिन्सक जन्तु इस बनमें खा जाते हैं। इसलिए—हे रघुनन्दन! आप उनकी बाधा दूर करें। यही मार्ग है जिससे महर्षिगण बनके भीतर फल-मूल लेने जाते हैं। इसीसे होकर आपको भी इस दुर्गम बन में प्रवेश करना चाहिए।' तपस्वियोंने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे ये बातें कहीं। तब उन तापस द्विजोंके ऐसा निवेदन करनेपर शत्रुको तपानेवाले रामने लक्ष्मण और भार्या सहित मेघमण्डलमें सूर्य सदृश उस बनमें प्रवेश किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा द्वितीय अयोध्याकाण्डका एक सौ बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२० ॥

यहाँ अयोध्याकाण्ड समाप्त हुआ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्वाल्मीकीय मुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—भाषा

अरण्य-काण्डम्

पहला सर्ग

श्रीरामका दण्डकारण्य-प्रवेश और ऋषियों द्वारा स्वागत ।

आत्मवान् किसीसे भी तिरस्कृत न होनेवाले रामने दण्डक वनमें प्रवेश-कर तपस्वियोंके उस आश्रम मण्डलको देखा जो कुशा तथा वल्कलके वस्त्रोंसे व्याप्त, ब्रह्मतेजकी कान्तिसे सम्पन्न और आकाशमण्डलमें प्रतीप्त सूर्यमण्डलके समान और देखनेमें कठिन थे । जहाँ सब प्राणियोंकी रक्षा होती, जो सदा निर्मल आँगनवाले, बहुतसे मृगोंसे आकीर्ण (भरे हुये), पक्षि-समूहमें समा-वृत, नित्य अप्सराओंके नृत्यसे युक्त और सत्कृत थे। जहाँ बड़े-बड़े अग्नि-होत्रके गृह थे और जो स्रुवादि यज्ञपात्रों, मृगछालाओं, कुशों, समिधाओं, जलसे पूर्ण कलशों, पुष्पों, मूलों, वनके विशाल वृक्षों और स्वादिष्ट फलोंसे युक्त, भूतवलि और वैस्वदेवादि होमसे सत्कृत था, जिनमें वेदके शब्द गूँज रहे थे और जो पूजार्थ लाये गए वनके पुष्पों और कमलसहित तड़ागोंसे व्याप्त, फल मूलोंके खानेवाले, दमनशील, छाल और मृगशालाके वस्त्रधारी, सूर्य तथा अग्निके समान कान्तिवाले और वृद्ध मुनियोंसे युक्त थे । जिनमें बड़ेही पवित्र और अल्पाहारी महर्षि शोभित हो रहे थे और जो (आश्रम) वेदमन्त्रोंके शब्दसे घोषित रहा करते थे तथा जो परब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंसे अलंकृत और ब्रह्मलोकके तुल्य थे । महातेजस्वी श्रीमान् रामचन्द्रजी तप-स्वियोंकी उस मण्डलीको देखकर धनुषसे प्रत्यञ्चा उतारकर उनके समीप गये । तब उन दिव्यज्ञान-सम्पन्न महर्षियोंने जो राम और यशश्विनी सीताको देखा तो बड़ेही प्रसन्न हुए और उनके सम्मुख आए । धर्मात्मा महर्षियोंने उदित चन्द्रमाके समान राम, लक्ष्मण और यशस्विनी सीताको देखतेही उन्हें आशी-

र्वाद देना आरम्भ किया और इसप्रकार उन अटल व्रतधारी मुनियोंने उन्हें स्वीकार किया। तदनन्तर वे सब बनवासी श्रीरामचन्द्रजीके शरीरकी दृढ़ता, सुकुमारता और सुन्दरताको देखकर बड़ेही विस्मित हुए और न मुँदते हुए नेत्रोंसे एकटक देखने लगे। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले उन महाभाग महर्षियोंने अपने प्रिय अतिथि भगवान् श्रीरामको पर्णशालामें लेजाकर ठहराया और सविधि सत्कारकर उन्हें जल लाकर दिया। तत्पश्चात् अग्नितुल्य तेजस्वी महाभाग ऋषियोंने रामका सविधि सत्यकारकर उन्हें जल दिया और वे धर्मात्मा मङ्गल वचनोंसे प्रयुक्त करते हुए बड़े प्रफुल्लित हुए। फिर उन धर्मात्मा ऋषियोंने महात्मा रामको वनोत्पन्न मूल, पुष्प, फल और आश्रम निवेदनकर हाथ जोड़कर कहा कि—"हे राम! आपही सब वर्णाश्रम-धर्मोंके पालक, मुनियोंके रक्षक, यशस्वी, पूजनीय और सत्कार करनेके योग्य हैं। क्योंकि राजा दण्डके धारण करनेवाला होनेसे सबका गुरु होता है। हे राम! राजा इन्द्रका चतुर्थांश होता है, प्रजाकी रक्षा करता है और सब उत्तम भागोंका भोक्ता है, अतएव लोक-नमस्कृत होता है। इसलिए आपके देशवासी होनेसे हमारी आपको रक्षा करनी चाहिए। आप नगरमें रहें या वनमें हमारे राजा आपही हैं। हे राजन्! हमने क्रोध तथा इन्द्रियोंको जीत लेनेके कारण दण्ड लेना त्याग दिया है—अतएव ऐसे प्रजातुल्य हम तपस्वियोंकी आपको रक्षा करनी चाहिए।" ऐसा कहकर उन मुनियोंने वनके फल, मूल, पुष्प तथा अन्य विविध प्रकारके भोजनोंसे लक्ष्मण सहित रामका सत्कार किया। इसीप्रकार श्रेष्ठाचारी, अग्नितुल्य तेजस्वी अन्य तपस्वियों तथा सिद्ध पुरुषोंने भी स्तुत्यादिसे रामकी यथोचित पूजा की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥१॥

दूसरा सर्ग

रामका विराधको देखना और उसकी भयंकरता तथा बिराधका सीताको उठा ले चलना और लक्ष्मणके वाक्य

इसप्रकारसे रात्रिमें उन महर्षियोंका आतिथ्य ग्रहण कर प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर सब मुनियोंसे आज्ञा ले श्रीरामचन्द्रजी वनमें विचरने लगे। चलते-चलते वनमें उनकी दृष्टि एक ऐसे स्थानपर पड़ी जो अनेक प्रकारके

मृगोंसे भरा हुआ, सिंह, व्याघ्रादि हिंसक पशुओंसे युक्त, टूटे-फूटे वृक्षों, वेलों और गुल्मोंसे कठिन-दुर्दर्शनीय, सरोवर युक्त था तथा जिसमें विना वोलते हुए अनेक प्रकारके पक्षी थे और जो झींगुरोंके शब्दसे झंकृत होरहा था। सीता सहित रामने उस भयङ्कर मृगवाले वनमें पर्वतके शिखर तुल्य, नर-भक्षी और घोर शब्द करते हुए एक राक्षसको देखा, जिसकी आँखें गहरी, मुँह वहुत बड़ा, आकार विकट और विशाल उदर था। वह देखनेमें बड़ाही डरावना था। वह छोटे-बड़े अङ्गोंवाला, बड़ा लम्बायमान, विकारयुक्त और घोरदर्शन था। वह चरबीसे गीली और रुधिरसे भीगी हुई व्याघ्रकी खाल ओढ़े हुए, सब प्राणियोंको भयप्रद, यमराजके समान मुख फाड़े हुए था और जो तीन सिंह, चार व्याघ्र, दो भेड़िये, दश चीतल मृग, दाँतों-सहित चरबीसे लिपटे हाथीके बड़े शिरको लौह-शूलमें वेधकर लिये हुए भयंकर शब्द कररहा था। वह राम, लक्ष्मण और जनकनन्दिनी सीताको देखतेही कुपितहो ऐसा दौड़ा जैसा कि प्रलयकालमें प्रभाके सम्मुख यमराज दौड़ता है। वह घोर शब्दकर पृथ्वीको कंपित करता हुआ सीताको गोदमें ले और कन्धोंपर चढ़ा श्रीरामचन्द्रजीसे बोला—'तुमलोग जटा और वल्कल वस्त्र धारणकरके हाथमें धनुष-बाण और तलवार लिये दण्डकारण्यमें आये हो। तुम दोनों तो तपस्वी जान पड़ते हो, फिर तुम्हारा युवती स्त्रीके साथ रहना कैसे सम्भव हुआ? मैं विराध नामक राक्षस हूँ और प्रतिदिन मुनियोंका मांस भक्षण करता, अस्त्र लिये इस दुर्गम वनमें विचरता हूँ। यह स्त्री बड़ी सुन्दरी है। यह तो मेरी भार्या बनेगी और तुमदोनों पापियोंका मैं रुधिरपान करूँगा।' इसप्रकार कुवाक्य कहते हुए उस दुष्टात्मा विराधके इस साभिमान वचनको सुनकर जनकपुत्री सीता भयसे ऐसे कम्पित हुई जैसे प्रचण्डवायुसे कदली। सीताको विराधके पंजेमें पड़ी देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले—'हे! सौम्य वह देखो, राजा जनककी कन्या, शुद्धाचरण करनेवाली मेरी भार्या विराधके चंगुलमें फँस गई है। हे लक्ष्मण! कैकेयीका हमारे विषयमें कपटकेवर माँगनेका जो अभिप्राय था, वह अभी फलीभूत होगया। दूरदर्शिनी, पुत्रके लिये राज्यसे अतृप्त, किन्तु जिसने प्राणिमात्रके हितमें रत मुझे वनमें भिजवा दिया; उस मेरी बिचली माताका मनोरथ आज पूर्ण होगया। हे लक्ष्मण! सीताका अन्यसे स्पर्श होनेका

जैसा अति दुःख मुझे है, वैसा पिताके वियोग और राज्य हरणका नहीं। तब शोकाश्रुपूर्ण रामके ऐसा कहनेपर, मन्त्र द्वारा अवरुद्ध सर्पके समान श्वास लेते हुए कुपित लक्ष्मण बोले—"हे भानुत्स्थ ! इन्द्रके समान भूतोंके स्वामी मुझ सेवकके होते आप अनाथवत् क्या विलाप करते हैं? मेरे क्रुद्ध बाणसे इस विराध राक्षसके रुधिरको यह भूमि पान करेगी। राज्याकांक्षी भरतपर मेराजो क्रोध था अब उसे इस विराधपर वैसेही छोड़ूँगा जैसे इन्द्र पर्वतके ऊपर वज्र छोड़ता है। अब मेरी भुजाओंके बल-वेगसे वेगित बाण इसके विशाल वक्षस्थलपर पड़ेगा, जिससे इसका प्राण इसके शरीरसे दूर हो जायेगा और तदनन्तर यह मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिर पड़ेगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी द्वारा विराधके प्रश्नोंका उत्तर एवं अपना वृत्तान्त सुनाना, विराध-परिचय और विराधसे रामका युद्ध

तब विराधने पुनः उस वनको गुञ्जायमान करता हुआ बोला—'ओ मैं पूछता हूँ, तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे ?' उसके ऐसा कहने प्रज्वलित मुखवाले और पूछते हुए उस राक्षससे अपना इक्ष्वाकु-कुल ब[ता]ते हुए बड़े तेजस्वी राम बोले—'हमलोग सदाचारका पालन करनेवाले क्षत्रिय हैं और हम तुझसे यह पूछना चाहते हैं कि तू कौन है जो दण्डक वनमें विचरता है ?' विराधने कहा—मैं तुझसे अपना वृत्तान्त कहता हूँ हे राघव ! तू मुझसे उसे विदित कर। मैं 'जव' नामक राक्षसका पुत्र हूँ मेरी माताका नाम शतह्रदा है और पृथ्वीपर सब राक्षस मुझे विराध नाम पुकारते हैं। मेरे तप और ब्रह्माके वरसे न कोई मुझे शस्त्रसे मार सकता न काट सकता है और न भेदन कर सकता है। अतः तुम इस स्त्रीको छोड़ कर और इसकी इच्छा न करते हुए जैसे आये हो शीघ्र चले जा अन्यथा जीवित नहीं रह सकते।" यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं और वे उस विकट आकारवाले पापी राक्षससे बोले—'रे नीच ! तुझे धिक्कार है। निश्चय ही तू अपनी मृत्यु ढूँढ़ रहा है और

तुझे युद्धमें प्राप्त होगी । खड़ा रह, मुझसे तू जीवित रह नहीं जा सकता।" तदनन्तर रामने धनुषपर रोंदा चढ़ाकर बड़ी शीघ्रतासे बड़े तीदण बाणोंको उस राक्षसपर छोड़ा। तब रोंदा चढ़े धनुषसे स्वर्णपंखयुक्त गरुण और वायु-वेगवाले बड़े ही तेजस्वी बाण उन्होंने छोड़े। फिर तो मयूर-पुंखके समान विचित्र वर्ण, अग्नितुल्य तेजस्वी वे बाण विराधके शरीरको बेधते हुए रुधिर से लिप्त हो पृथ्वीमें जा गिरे। बाण-विद्ध होनेपर विराधने सीताको बैठा दिया और शूल उठाकर, कुपित हो, राम और लक्ष्मणके सम्मुख दौड़ा। वह बड़ा भयंकर शब्दकर इन्द्र-ध्वजके समान शूलको ग्रहणकर मुँह फाड़े हुए यमराज-सा शोभित हुआ। अब दोनों भाई राम, लक्ष्मणने प्रलय-कालमें यमके तुल्य उस विराध राक्षसपर बड़े प्रचण्ड बाणोंकी वर्षा की। उस भयंकर वर्षासे राक्षसने हँसकर खड़ा हो जँभाई ली। जिससे उसके शरीरसे वे तीव्रगामी बाण बाहर निकल पड़े और वरदानके सम्बन्धसे उस राक्षसने अपने प्राणोंको रोक लिया तथा शूल उठा वह रामचन्द्रके सम्मुख दौड़ा। शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ रामने आकाशमें जलते हुए वज्रतुल्य उस शूलको अपने दो बाणोंसे काट दिया। रामके बाणसे कटा हुआ वह शूल उसके हाथसे इसी प्रकार गिर गया जैसे वज्रसे सुमेरु पर्वतकी शिला कट गई हो। फिर तो राम और लक्ष्मण काले सर्पके समान बड़े सुन्दर दो खड्ग शीघ्र ही उठाकर वेगसे आते हुए उस राक्षसपर प्रहार करने लगे। परन्तु अत्यन्त घायल हो जानेपर भी उसने अपनी दोनों भुजाओंसे राम-लक्ष्मणको पकड़ कहीं दूर ले जानेकी इच्छा की! तब उसके इस अभिप्रायको जानकर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले कि—"अच्छा हो, यह राक्षस इसी मार्गसे हमें ले जावे। हे लक्ष्मण! यह राक्षस जो चाहता है उसी मार्गसे ले जाये, क्योंकि यही तो हमारे जानेका मार्ग है।" उसने अपने बल-वीर्यसे महाबली राम-लक्ष्मणको बालकोंके समान उठाकर कन्धेपर बैठा लिया और घोर शब्द करता हुआ सम्मुखके उस वनमें चल दिया जो अनेक प्रकारके विशाल-विशाल वृक्षोंसे युक्त, विविध प्रकारके पक्षियोंसे मनोहर और शृगाली तथा दुष्ट मृगोंसे भरा हुआ था—वह उसमें प्रवेश कर गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥३॥

चौथा सर्ग

विराध द्वारा राम-लक्ष्मणके पकड़े जानेपर सीताका रो पड़ना जिसे देख राम-लक्ष्मणका उसके हाथ तोड़ देना जिससे विराधका मूर्च्छित हो गिर पड़ना और मरजाने पर रामका उसे गड्ढेमें गाड़ देना।

तब रघुकुल-श्रेष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मणको राक्षस लिये जा रहा है—यह देखकर सीता भुजा पकड़कर उच्च-स्वरसे चिल्लाने लगीं। "यह भयानकरूप राक्षस, सत्य-वक्ता, उत्तम स्वभाव और शुद्धाचरणवाले राम लक्ष्मणको हरण किये जा रहा है। मुझको यहाँ चीते, सिंह और व्याघ्र भक्षण कर लेंगे। हे राक्षसोत्तम! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ। राम-लक्ष्मण-को छोड़ दे और मुझे हरण करले जा।" तब वैदेहीके ऐसे वचन सुनकर राम-लक्ष्मणने उस दुरात्मा, राक्षसका बध करनेमें बड़ी शीघ्रताकी और लक्ष्मणने उस भयंकररूप राक्षसकी बाईं भुजा तोड़ दी और रामचन्द्रने दहिनी भुजा बड़े वेगसे उखाड़ ली। भुजाओंके खंडित होजानेसे वह राक्षस व्याकुल हो गया और मूर्च्छित होकर वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिरतो राम-लक्ष्मण उस विराधको दोनों भुजाओं, मुष्टिकों, घुटनों और पाँवोंसे मारने लगे तथा उसे उठा-उठाकर पटकने और धरतीपर रगड़ने लगे। इतनेपर भी उसकी मृत्यु नहीं हुई। यह देखकर भयके समय अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'नरश्रेष्ठ! यह राक्षस तपस्या से (वर पाकर) अवध्य हो गया है, इसे शस्त्र-द्वारा नहीं जीता जा सकता, अतः इसे पृथ्वीमें गाड़ देना चाहिये। हे लक्ष्मण! दुष्ट हस्तीके समान घोरा-कार और अति पराक्रमी इस राक्षसके लिये बनमें एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदो।' लक्ष्मणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजो एक पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े हो गये। उनकी बात सुनकर विराधने विनीत भावसे कहा—"पुरुषोत्तम! मैं आपके इन्द्रवत् पराक्रमसे मारा गया। मैंने पहले अज्ञानसे यह नहीं जाना कि आप पुरुषोत्तम हैं। हे राम! कौशल्या सुपुत्रवती है। हे तात! मैंने जान लिया कि आप राम हैं, यह महाभागा सीता है और ये बड़े यशस्वी लक्ष्मण हैं। मुझे शापसे यह घोर राक्षसी देह मिला था। मैं तुम्बरु नामक गन्धर्व हूँ जिसे कुवेरने शाप दिया है। जब मैंने श्रीकुबेरको प्रसन्न

किया तो उन्होंने मुझसे कहा कि जब दशरथपुत्र राम तुमको संग्राममें मारेंगे तब तू अपना गन्धर्वरूप प्राप्तकर स्वर्गको जायगा। हे निष्पाप! रम्भा अप्सरामें आसक्त होनेके कारण कुवेरने मुझे शापित किया था। अब मैं आपकी इस प्रसन्नतासे इस घोर शापसे मुक्त हो अपने स्वर्गलोकको जाऊँगा। हे परन्तप! आपका कल्याण हो। हे तात! यहाँसे छः कोसकी दूरीपर धर्मात्मा, प्रतापी और सूर्यसे तेजस्वी महर्षि शरभङ्ग रहते हैं। आप शीघ्र उनके समीप जाइये, वे आपका शुभ करेंगे। हे राम! आप मुझको इस गड्ढेमें गाड़कर सकुशल प्रस्थान कीजिये। मृतक राक्षसोंका यही सनातन धर्म है कि जो राक्षस मृतक हों वे गढ़ेमें डाल दिये जायँ तो उन्हें उत्तम लोक की प्राप्ति होती है।" बाँणोंसे पीड़ित विराध रामसे ऐसा कहकर उस बलशाली देहको त्याग स्वर्गवासी हुआ। तब उसके इन वचनोंको सुनकर रामने लक्ष्मणको गड्ढा खोदनेका आदेश दिया। लक्ष्मणने फावड़ा लेकर विशालकाय विराधके समीपही एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर तैयार किया। तब रामने उसके कण्ठसे पाँव हटा गधेके समान कानवाले, भयंकर शब्द करते हुए उस विराधको गढेमें डाल दिया और ऊपरसे पत्थर डालकर उसे पाट दिया। इसप्रकार तीक्ष्ण शस्त्रोंसे उसका बध न देखकर नीतिनिपुण उन दोनों राम-लक्ष्मणने उसे बिलमें डालकरही उसका बध किया। विराधको राम द्वाराही अपना बध ईप्सित था और इसीसे उस वनचारीने स्वयंही रामसे निवेदन किया था कि मेरा बध शस्त्रोंसे नहीं हो सकता। इसीसे रामने उसे बिलमें पाटनेका विचार किया। रामके द्वारा बिलमें प्रवेश कराये जानेपर उस बली राक्षसने अपनी घोर चिंग्घाड़से बिल और वन दोनोंको गुञ्जायमान कर दिया। विराधको पृथ्वीमें गाड़ रोमाञ्चित राम-लक्ष्मण सानन्द आकाशस्थित सूर्य-चन्द्रमाके समान वनमें निर्भय विचरने लगे।

इति श्रीमद्‌वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम आदिका शरभङ्गके आश्रमपर जाना, वहाँ इन्द्रागमन और शरभङ्गका रामको सुतीक्ष्ण मुनिसे मिलनेको कहना तथा शरभङ्गका देहत्याग

श्रीरामचन्द्रजी महाबली विराध राक्षसको मार सीताको प्रेमसे आलिङ्गन

कर समझाकर तेजस्वी लक्ष्मणसे बोले—"यह वनतो बड़ाही कष्टप्रद और दुर्गम है। हमने कभी वन देखा न था। अतएव शीघ्रही तपोधन महात्मा शरभङ्गके समीप चलो।" लक्ष्मणसे ऐसा कह श्रीरामचन्द्रजी देवतुल्य प्रभावशाली, तपसे शुद्धान्तःकरण महात्मा शरभङ्गके आश्रमको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक बड़ाही आश्चर्यजनक यह दृश्य देखा कि शरीरसे देदीप्यमान, सूर्य और अग्निके समान कान्तिवाले देवराज इन्द्र आये हैं और जो रथसे उतरकरभी पृथ्वीको नहीं स्पर्श किये हैं और जिनके साथ अन्य देवताभी पीछे-पीछे आ रहे हैं। वे इन्द्र उत्तम कान्तिवाले आभूषण और उज्वल वस्त्र धारण किये थे और स्वसदृशही अलंकृत तथा अन्य महात्माओं से भी पूजित थे और जिनके समीपही वेगवान अश्वोंसे युक्त, सूर्यके समान कान्तिमान रथ आकाशमें ठहरा हुआ था। उनपर श्वेत मेघोंके समान, चन्द्र मण्डल-सदृश, विचित्र वर्णकी माल्योंसे शोभित श्वेत वर्णका छत्र लगा हुआ था। जिनके सिरपर वहुमूल्य स्वर्णदण्डवाले चमर और वीजनाओंको उत्तम अङ्गनाएँ घुमा रही थीं। देवता, सिद्ध, गन्धर्व और बहुतसे महर्षि आकाशमें स्थित इन्द्रकी उत्तम वाणियोंसे स्तुति कर रहे थे। इसप्रकार महात्मा शरभङ्गके साथ इन्द्रको वार्तालाप करते देखकर श्रीरामचन्द्रजी रथकी ओर संकेतकर लक्ष्मणको दिखलाते हुए बोले—हे लक्ष्मण! इस कान्तिमान, शोभायुक्त, आकाशमें स्थित अद्भुत रथको देखो, गिरते हुए सूर्यके समान प्रतीत होता है। जो अश्व बड़े यज्ञ कर्त्ता इन्द्रके हमने सुने थे, वे आकाशमें आये हैं और जो बड़ेही दिव्य हैं, निस्सन्देह ये वेही अश्व हैं और जो ये कुण्डलधारी पुरुषश्रेष्ठ, हाथमें तलवार लिये हैं तथा सैकड़ों युवापुरुष जिनके रथके चारोंओर खड़े हैं जिनके वक्षस्थल और विशालस्कन्ध हैं, वज्र-तुल्य भुजा है, रक्त वर्णके अस्त्रधारी और सिंहके समान जो अगम्य हैं उन सबके वक्षस्थलोंमें अग्नितुल्य हार पड़े हैं, हे लक्ष्मण! ये सभी पचीस वर्ष की अवस्था जैसे रूपधारी हैं। इससे यह निस्सन्देह है कि ऐसी ही नित्य तरुणवस्था देवताओं की हुआ करती है। ये पुरुषोत्तम! ऐसे ही सर्वदा प्रियदर्शन दीखते हैं। हे लक्ष्मण! जबतक मैं यह ज्ञात करूँ कि रथमें यह कान्तिमान् पुरुष कौन हैं, तब तक तुम सीता सहित यहीं ठहरो।

क्ष्मणसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी शरभङ्गके आश्रम के समीप चले गये। ब रामको अपने समीपमें आते देखकर इन्द्र शरभङ्गके समीपमें जाकर, कान्तमें यह बोले कि—राम मेरे समीप आते हैं। जब तक ये मुझसे संभाषण न कर पावें, तब तक अन्यत्र चलो, क्योंकि ये पहले अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करें, फिर मुझे देखें। जब ये राक्षस गणको जीत कृतार्थ होंगे तभी मैं इनके अचिरकालमें ही दर्शन करूँगा। क्योंकि इन्हें यह कर्म करना है जो औरोंके लिए अति दुष्कर है।" इस प्रकार इन्द्र तपस्वी शरभंगका सत्कार कर और उनसे आज्ञा ले अश्व जुड़े रथसे स्वर्गको चले गये। इन्द्रके चले जाने पर लक्ष्मण और सीताके सहित राम अग्निहोत्रमें बैठे हुए शरभंगजीके समीपमें आये। राम, लक्ष्मण और सीता शरभंगजीके चरण पकड़, उनसे उनकी आज्ञा पा, आसनले और भोजनार्थ नियन्त्रित हो बैठ गये। तदन्तर रामने इन्द्रके वहाँ आनेका वृतान्त पूछा और शरभङ्गने उन्हें सब सुनाया कि,—"हे राम! ये वरदाता इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक ले जाना चाहते थे, जिसे मैंने अपने उग्र तपसे जीत लिया है और जो अजितेन्द्रिय पुरुषोंको मिलना दुर्लभ है। परन्तु हे नरश्रेष्ठ! मैंने आपको समीपमें आगे जानकर और आपसे प्रिय अतिथिके प्रिय, दर्शन किये वहाँ जानेकी इच्छा न की। हे पुरुषसिंह! मैं आप धार्मिक महात्माके साथ मिलकर ही देव सेवित ब्रह्मलोकको जाऊँगा। हे नरोत्तम! मैंने चिरस्थायी सब शुभ लोकोंको जीत लिया है, अतः आप मेरे ब्रह्मलोक तथा स्वर्गादि सब लोकोंको ग्रहण कीजिये। ऋषि शरभङ्गके ऐसा कहने पर नरश्रेष्ठ, सब शास्त्रोंमें निपुण राम यह वचन बोले—"हे महामुने! यदि आप कहें तो मैं यहीं उन सब लोकोंको प्राप्त कर लूँ। क्योंकि मैं इस वनमें आपके बतलाये स्थानमें निवास करना चाहता हूँ, सो आप बतलाइये!" इन्द्र तुल्य पराक्रमी रामके ऐसा कहने पर बुद्धिमान् शरभङ्ग फिर यह बोले—"हे राम! यहाँ से थोड़ी ही दूर पर वनमें बड़े तपस्वी सुतीक्ष्ण नामके धर्मात्मा रहते हैं, वे आपका कल्याण करेंगे। हे राम! पश्चितम वाहिनी, नौका-सदृश पुष्पोंवाली इस मन्दाकिनी नदीके पाससे जाइये, आप वहीं पहुँच जायँगे। हे नरश्रेष्ठ! वहाँ जानेका यह मार्ग है, परन्तु हे तात! आप मुझे एक मुहूर्त्तमान देखते रहिये, जबतक कि मैं

सर्पकी पुरानी केंचुलीके समान अपने शरीरको छोड़ूँ ।" तदनन्तर मन्त्रवेत्ता महात्मा शरभंगने काष्ठादिसे अग्नि चिन, घृतकी आहुति दे उसमें प्रवेश किया । अग्निने उस महात्माके रोम, दाढ़ी-मूछ, जीर्ण त्वचा, हड्डी, मांस और रुधिरको भस्मीभूत कर दिया । तदन्तर शरभंग उस अग्निके ढेरसे अग्नितुल्य तेजस्वी बालकके रूपसे निकलकर बड़े दीप्तिमान हो ब्रह्मलोकको चले गये । पुण्यकर्मा द्विजोत्तम शरभङ्गने अपने भुवनमें सेवकों सहित बैठे हुए ब्रह्माको देखा । ब्रह्मा भी उस ब्राह्मणको देखकर बड़े प्रसन्न हुये और यह बोले कि आप बहुत अच्छे आये ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५॥

छठवाँ सर्ग

ऋषियोंका रामसे राजधर्मानुसार प्रजा-रक्षणकी बात कह राक्षसों द्वारा मारे हुए ऋषियोंके अस्थिपंजर दिखाना तथा अपनी रक्षा करनेकी प्रार्थना करना तथा मुनि रक्षणके लिए रामकी प्रतिज्ञा करना

शरभङ्ग मुनिके स्वर्ग चले जानेपर बहुतसे मुनि अग्निके समान तेजस्वी रामके पास आये । उनमें वखानस (ऋषियोंका वह समुदाय जो ब्रह्माजीके नखोंसे उत्पन्न हुआ), बालखिल्य (ब्रह्माजीके बाल अर्थात् रोमसे उत्पन्न), संप्रक्षाल (भगवान्के बाद प्रक्षालन जलसे उत्पन्न हुए), मरीचिपा (सूर्य अथवा चन्द्रमाकी किरणोंका पात्र करके रहनेवाले), अश्मकुट्ट (कच्चे अन्नको पत्थरोंसे कूटकर भोजन करनेवाले), पत्ताहार (पत्तोंका आहर करनेवाले), दन्तोलूखली (दाँतही जिनकी ओखली थी), उन्मर्जक (कण्ठ तक जलमें डूबकर तपस्या करनेवाले), गात्रशय्य (पृथ्वीपर कुछ न बिछाकर शयन करनेवाले), अशय्य (शय्या-साधन-रहित), अनवकाशिक (निरन्तर सत्कर्म में लगे रहने पर जिन्हें अवकाश न रहे), सालिलाहार (जल पीकर रहने वाले), वायुभक्षी (वायु पीकर जीवन निर्वाह करनेवाले), आकासनिलय (खुले मैदानमें रहने वाले), स्थण्डिलशायी (वेदी पर सोनेवाले), ऊर्ध्ववासी (पर्वत शिखर आदि ऊँचे स्थानमें निवास करनेवाले), दान्त (मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले), आर्द्रपटवासा (सर्वदा जल भींगे वस्त्रधारी), सजप (जप परायण), तपोनिष्ठ (सर्वदा तपके अनुष्ठानमें स्थित रहने

वाले) और पञ्चाग्निसेवी (ग्रीष्म ऋतुमें पाँच अग्नियोंके मध्यमें रहनेवाले) ब्रह्मतेज-युक्त, दृढ़ योगी और सावधान-चित्त ऐसे सब तपस्विगण शरभङ्गाश्रम में रामचन्द्रजीके समीप आये और धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ परमधर्मज्ञ रामके समक्ष बोले-हे रघुनन्दन ! आप इक्ष्वाकुकुलमें प्रधान महारथी और वीर हैं। जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप मनुष्यलोकके रक्षक हैं। आप अपने यश और पराक्रमसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। आपमें भक्ति सत्य और पूर्ण धर्म विद्यमान है। हे नाथ ! आप महात्मा, धर्मके ज्ञाता तथा धर्मानुरागी हैं। हम आपके पास आकर अर्थी होकर कुछ निवेदन करना चाहते हैं। अतः आप क्षमा करें। हे तात ! जो राजा प्रजासे छँठा भाग-रूप वाले लेकर उसका पुत्रवत पालन नहीं करता उसे बड़ा अधर्म लगता है। और जो राजा अपने सब देशवासियोंकी अपने प्राणों और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय पुत्रोंके समान रक्षा करनेमें नित्य लगा रहता है, वह इस लोक-में चिरस्थायिनी कीर्तिको प्राप्त होता है और पुनः ब्रह्मलोकको पाकर वहाँभी पूजित होता है। मुनि फल-मूलका भोजन करते हुए जिस उत्तम धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसका चौथा भाग धर्मके अनुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाको प्राप्त होता है। इस वनमें निवास करनेवाला वानप्रस्थी महात्माओं-का यह समूह जिसमें ब्राह्मणोंकी ही संख्या अधिक है तथा जिसके रक्षक आप ही हैं, राक्षसोंके द्वारा अनाथकी तरह मारा जा रहा है—इसका बहुत अधिक मात्रामें संहार हो रहा है। आप आइये और वनमें परमात्माके ध्यानमें निष्ठ असंख्य उन मुनियोंके मृत शरीरोंको देखिए, जो घोर राक्षसोंके द्वारा मारे गये हैं। पम्पा नदी, मन्दाकिनी नदी और चित्रकूट पर्वतके निवासी ऋषियोंका महान् बध किया जाता है। भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंसे इसप्रकार किया जाता हुआ मुनियोंका तिरस्कार या नाश हमसे नहीं सहा जाता। इसलिए हम सब आप शरणागत-रक्षकके शरण आये हैं। हे राम ! राक्षसोंसे मारे जाकर, हमारी रक्षा कीजिये। हे वीर ! आपके सिवा संसारमें हमारी कोई अन्य रक्षा करनेवाला नहीं है। अतएव आप राक्षसोंसे हमारा पालन कीजिये। तपस्वी ऋषियोंकी ये बातें सुनकर धर्मात्मा रामचन्द्रजीने उनसे कहा—हे मुनिवरों। आप मुझसे ऐसे प्रार्थनायुक्त वचन न कहें; क्योंकि

मैं तपस्वियोंका आज्ञाकारी हूँ। मैंने केवल अपने ही कार्यसे राक्षसोंसे आपलोगोंके तिरस्कारको दूर करनेके लिए ही वनमें प्रवेश किया है। पिता-की आज्ञा पालन करनेके बहानेसे आप लोगोंकी अर्थ-सिद्धिके लिए ही दैवगतिसे मैंने वनमें प्रवेश किया है। मैं तो स्वयं ही तपस्वियोंसे शत्रुता रखनेवाले राक्षसोंका युद्धमें संहार करना चाहता हूँ। इस प्रकार उन तपोधनों को वर देकर धर्ममें मन लगानेवाले श्रीरामचन्द्रजी वीर लक्ष्मणके साथ सुतीक्ष्णके आश्रमकी ओर गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥६॥

सातवाँ सर्ग

राम-सुतीक्ष्ण-समागम

शत्रुओंको सन्तापित करनेवाले राम, लक्ष्मण, तथा उन ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमकी ओर चले। थोड़े ही मार्गमें अगाध जलसे भरी हुई मन्दाकिनी नदीको पारकर मेघके समान ऊँचा एक महान् पर्वत देखा। तदनन्तर इक्ष्वाकु वंशमें श्रेष्ठ राम—लक्ष्मणने सीता सहित अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त उस वनमें प्रवेश किया जो बहुतसे पुष्प फलवाले वृक्षोंसे युक्त उस भयङ्कर वनमें प्रवेशकर रामने एकान्तमें वल्कल-पंक्तियोंसे अलंकृत एक आश्रम देखा जिसमें मल तथा कीचड़युक्त जटा धारण किये हुए तपोवृद्ध सुतीक्ष्ण नामके तपस्वी बैठे थे। वे (रामचन्द्र) उन तपस्वीके समीप जाकर सविधि बोले—"हे भगवन्! मैं राम हूँ, आपके दर्शनार्थ आया हूँ। हे धर्मज्ञ! हे महर्षे, सत्यविक्रम! आप हमसे संभाषण कीजिये।" तब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ और वीर रामको देखकर भुजाओंसे अलंकृत कर बोले—"हे वीर! हे धर्म-धारियोंमें श्रेष्ठ राम! आप अच्छे आये। आपके चरण पधारनेसे अब यह आश्रम सनाथ और कृतार्थ हो गया। हे यशस्विन! आपके आगमनकी प्रतीक्षामें ही मैं भूमण्डलमें इसशरीरको त्याग देवलोक न गया। क्योंकि मैंने सुनाथा कि राज्यसे भ्रष्ट होकर आपचित्रकूट पर आये हैं। हे राम! देवराज इन्द्र यहाँ आये थे। उन्होंने आकर मुझसे कहा था कि 'आपने अपने पुण्य कर्मोंसे सब लोकोंको जीत लिया है, अतः आप वहीं चलिये। इसलिये हे राम! मेरे द्वारा तपसे जीते हुए उन लोकोंमें कि जिसमें देवता और तपस्वी

रहते हैं, मेरी प्रसन्नतासे आप लक्ष्मण और सीता सहित विहार कीजिये।" तब उन उग्रतपा और सत्यवक्ता महर्षिसे रामचन्द्र बोले—"हे महामुने! मैं स्वयंही उन लोगोंको प्राप्त कर लूँगा। अभीतो मैं इस वनमें हीं, जहाँ आप बतलादें, किसी स्थानमें रहना चाहता हूँ। आप बड़े निपुण, प्राणिमात्रके हितमें रत हैं, यह मुझे गौतमवंशीय महात्मा शरभङ्ग बतला गये हैं।" रामके ऐसा कहने पर जगद्विख्यात महर्षि सुतीक्ष्ण बड़े प्रफुल्लितहो यह मधुर वचन बोले—"हे राम! यही आश्रम बड़ा उत्तम है, आप यहीं निवास कीजिये। क्योंकि यहाँ बहुतसे मृग इस आश्रममें आकर यत्र-तत्र विचरते हुए तथा अन्य मुनिजनोंको लुभाते हुए निःशङ्क लौट जाते हैं। बस, मृगोंके अतिरिक्त यहाँ और कोई दोष आप न समझेंगे।" मुनिके यह वचन सुन बड़े वीर रामने वाणसहित धनुष खींचकर कहा—हे महाभाग! मैं यहाँ उन मृगोंको अपने इन तीक्ष्ण धारवाले वज्रतुल्य वाणोंसे तो अवश्यही मारूँ, परन्तु ऐसा करनेसे आपके वैमनस्य होनेकी संभावना है जिसके समान और क्या कष्ट होगा? इसलिए मैं यहाँ अधिक दिनतक नहीं रह सकता।" ऋषिसे ऐसा कह रामचन्द्रजी संध्योपासनके लिये चले गये। फिर रातभर सीता और लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण आश्रममें ही निवास किया। रात्रिमें महात्मा सुतीक्ष्णने खाने योग्य पवित्र अन्न उन दोनों राम, लक्ष्मण को बड़े सत्कारसे स्वयंही आकर अर्पण किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥७॥

आठवाँ सर्ग

सुतीक्ष्ण आश्रममें एक रात्रि व्यतीतकर प्रातः स्नान कर सूर्योदयके पश्चात् रामचन्द्रजीका वनमें आगे प्रवेश।

सुतीक्ष्णसे सत्कारित रामचन्द्र वहाँ रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल होने पर जाग उठे। फिर सीता लक्ष्मण सहित वहाँके कमल पुष्पोंकी सुगन्धित वाले शीतल जलसे स्नानकर तपस्वियोंसे सेवित कालानुकूल उस वनमें अग्नि और देवताओंकी पूजाकी, सूर्य-दर्शन किया। फिर निर्मलस्वरूप हो सुतीक्ष्ण मुनिके सम्मुख जा मधुर वचनोंमें बोले—'हे भगवन्! आप पूज्यसे सत्कारित हो हम बड़े सुखसे रहे। अब आपसे आगे जानेकी आज्ञा माँगते हैं।

मुनि लोग हमसे चलनेके लिये शीघ्रता कराते हैं और दण्डकारण्यके पुण्यशील ऋषियों, सब आश्रमोंको देखनेकी हमकोभी शीघ्रता है, जहाँ हम इन तेजस्वी, धर्म-तत्पर, तपोयुक्त और इन्द्रियजित मुनियोंके साथही जाना चाहते हैं। सूर्यका तेज जब-तक असह्य नहीं होता, तब-तक हम जाना चाहते हैं।" ऐसा कहकर लक्ष्मण और सीता सहित रामने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। चरण छूते ही वे मुनि राम-लक्ष्मणको उठा हृदयसे लगा लिये और बोले—"हे राम! लक्ष्मण और छायाके समान आचरण कराने वाली इस सीताके साथ आप प्रस्थान कीजिये। मार्गमें आपका कल्याण हो। हे वीर! दण्डकारण्यके तपस्वियोंके रमणीय आश्रमोंको आप अवश्य देखें। वहाँ जाते हुए आपको मार्गमें बड़े-बड़े फल, मूल तथा पुष्पों वाले वन श्रेष्ठ मृगोंके समूह, शान्त भाववाले पक्षिगण, विकसित कमलों वाले जल-युक्त और जलमुर्ग आदि पक्षियोंसे भरे हुए सरोवर तथा नदियाँ मिलेंगी जो बड़े ही प्रियदर्शन पर्वतों, झरनों, और रमणीय वनोंसे युक्त होंगे और जहाँ मयूरों के कर्णप्रिय शब्द आपको सुनाई देंगे। हे वत्स! लक्ष्मण! जाओ, हे राम! आप भी जाइये, परन्तु हे तात! फिर मेरे आश्रममें आइयेगा।" तब "ऐसा ही होगा" यह कहकर लक्ष्मण सहित रामने मुनिकी परिक्रमा की और चलने को उद्यत हुये। विशालाक्षी सीताने उन दोनों भाइयोंको शोभायमान तरकश तथा धनुष और फिर निर्मल खड्ग दिये। राम-लक्ष्मण उन शुभ तरकसोंको बाँधकर और शब्द वाले धनुषोंको लेकर सीता सहित आश्रमसे चल पड़े।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥८॥

नवाँ सर्ग

राक्षस-वधके लिए सीताका विरोध, असत्य-भाषण, पर-स्त्री सेवन तथा बिना शत्रुताके क्रूरताका निषेध

सुतीक्ष्णसे आज्ञा पा, वनकी ओर चलते हुए अपने स्वामी श्रीरघुनाथ जीसे सीताने स्नेह भरी मनोहर वाणीमें कहा—"आर्यपुत्र! यह महान् मुनि-धर्म, धर्मकर्म द्वाराही बड़े सूक्ष्म मार्गसे प्राप्त होता है। इसे इस वनमें इच्छा-कृत व्यसनोंसे निवृत्त होकर आप पालन कीजिये। लोकमें तीन प्रकारके कामज व्यसन होते हैं। प्रथम तो मिथ्या बोलना, दूसरा इससे भारी परदार

भिगमन और तीसरा विना वैरके ईर्ष्या। हे राघव! आपने कभी मिथ्या वाक्य नहीं कहा और न कहेंगे, फिर भला धर्म-नाशक अन्योंकी स्त्रीकी अभिलाषा तो होगी ही क्या? हे नरेन्द्र! आपमें परदाराभिलाष नहीं है और न कभी हुआ है। हे राम! यह कभी मनमें भी नहीं उत्पन्न होता है! हे नृपात्मज! आप सर्वदा अपनीही भूमिमें रत हैं। क्योंकि आप धर्मनिष्ठ, सत्य-प्रतिज्ञ और पिताकी आज्ञाके पालक हैं। हे महाभाग! हे श्रीमन् लक्ष्मणाग्रज! आपमें सत्य और धर्म स्थित तथा सब कुछ आपमें प्रतिष्ठित है। हे महाबाहो! आपकी इन्द्रियवशता को मैं जानती हूँ। आप जितेन्द्रियों द्वारा धारण योग्य और सर्व-प्रकारण धर्मिष्ठ हैं। परन्तु यह जो तीसरा अन्योंके प्राणोंकी हिंसारूप रौद्रव्यसन है जो मोहसे निर्वैर किया जाता है, वह आपमें प्राप्त है। आप इसे करने पर उद्यत हैं। हे वीर! आपने दण्डकारण्यवासी मुनियोंको रक्षार्थ संग्राममें राक्षसोंके बधकी प्रतिज्ञाकी है और इसीलिए धनुर्वतधारी भाई सहित आपने दण्डक नामक प्रसिद्ध वनके प्रति प्रस्थान किया है। तब आप जैसे सत्य-प्रतिज्ञके वृत्त विचारको जानकर आपके सुख तथा कल्याणका चिन्तन करते हुये मेरा मन व्याकुल हो रहा है जिससे हे वीर! दण्डक वनमें जाना मुझे अच्छा नहीं लगता है। इसलिए जो मैं कहती हूँ, वह सुनिये। हाथमें धनुष लिये भाई सहित इस वनमें सब राक्षसोंको देखकर आप कहीं न कहीं बाण अवश्य छोड़ेंगे। क्षत्रियके हाथमें रक्षा धनुष है जो रूप बलको वैसे ही बढ़ाता है जैसे अग्निके समीपमें स्थित ईंधन अग्निको बढ़ाता है, हे महाबाहो! पहिले मृग तथा पक्षियोंसे युक्त किसी पवित्र वनमें पवित्र आचारी, सत्यवक्ता एक तपस्वी रहता था। उसका तपभंग करने के लिए शचीपति इन्द्र योद्धारूप हाथमें तलवार लिए उसके आश्रममें आये और मुनिको वह उत्तम तेज धारवाला खड्ग धरोहर रूपसे दे दिया। मुनि अपने विश्वास पर रखे हुए उस खड्गकी रक्षा करता हुआ वनमें विचरने लगा। धरोहरकी रक्षामें तत्पर मुनि वनमें फल मूल लेने जहाँ कहीं जाता उस खड्गके विना न जाता अर्थात् खड्ग साथही ले जाता। इस क्रमसे युक्त बुद्धि धारण करली और हिंसाकर्ममें आसक्त हो गये। निदान शस्त्र-सहवासके कारण वह नरकगामी हुआ। शस्त्र संयोगसे उत्पन्न यह प्राचीन

वृतान्त है। अस्त्र-संयोगके समान है। आप मेरा बड़ा आदर करते हैं। इस कारण स्नेहसे मैं आपको यह स्मरण दिलाती और शिक्षा करती हूँ। हे धनुर्धारी ! आपको किसी प्रकार भी दण्डकारण्यमें रहनेवाले राक्षसोंको विना वैर मारनेको ऐसा विचार नहीं करना चाहिये। हे वीर ! निरपराधी प्राणियोंको मारना मैं अच्छा नहीं समझती। वीर क्षत्रियोंको वनके आर्त्त प्राणियोंका रक्षणमात्र ही धनुष द्वारा कर्तव्य-कर्म है, हिंसा नहीं। देखिये, कहाँ शस्त्र, कहाँ वन और कहाँ क्षात्रधर्म तथा कहाँ तप, ये सभी एक दूसरेके विरुद्ध हैं। हमें तो यहाँ तपोवनमें धर्महो करना चाहिये। हे आर्य ! शस्त्र-सेवनसे बुद्धि कलुषित हो जाती है। अयोध्यामें जाकर फिर क्षात्र धर्मको धारण कीजियेगा। यदि आपकी बुद्धि अकलुषित रहेगी, यदि आप मुनिधर्मा रहेंगे तो मेरे सास-ससुरकी प्रीतिभी तुममें अधिक होगी, क्योंकि उन्होंने इसी प्रकार की आज्ञा दी है कि राज्य त्यागकर मुनि होकर वनको जाओ। धर्मसे अर्थ, अर्थसे सुख और धर्मसे सब कुछ प्राप्त होता है। यह जगत् धर्मका सार है, विद्वान् मनुष्य प्रयत्नसे नियमों द्वारा शरीर संयमित करके ही धर्मकी प्राप्ति करते हैं। सुखसे सुख नहीं प्राप्त होता। हे सौम्य ! शुद्ध-बुद्धि होकर इस तपोवनमें नित्य धर्माचरण कीजिये। त्रिलोकीमें होनेवाले सब कार्योंको आप तत्त्वतः जानते हैं। हे स्वामिन ! स्त्री-स्वभावके चञ्चल होनेके कारण यह मैंने आपसे कहा है। आपको धर्मोपदेश करनेको कौन समर्थ है ? कोई नहीं। लक्ष्मण सहित आपको जो अच्छा लगे वह बुद्धिसे विचारकर कीजिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकांडका नवाँ सर्ग समाप्त ॥९॥

दशवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका सीतासे यह कहना कि राक्षस ऋषियोंको कष्ट देते और मार डालते हैं, मैं ऋषियोंसे उनकी रक्षाके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हूँ, राक्षसोंमें कौन अच्छा है और कौन बुरा—इसका भेद-भाव करना अशक्य है अतः राक्षसोंका वध करना ही उचित है।

पतिव्रता सीताके इन वचनोंको सुनकर धर्मनिष्ठ श्रीरामचन्द्रजी जानकी से बोले—हे धर्मज्ञे, जनकात्मजे ! तुमने मेरे मोहवश जो यह वचन कहा है इससे तुमने अपना महाकुलीनत्व प्रकट किया है और तुम्हारे ये वाक्य बड़े हितकारी हैं। परन्तु हे देवि ! मैं जो कहता हूँ, वह भी तुम सुनो। यह

तुम्हारा ही कहना है कि ज्ञानियोंको इसलिए धनुष धारण करना चाहिए कि, आर्त्तजनोंका शब्द न सुनाई दे। हे सीते! दण्डकारण्यके निवासी; कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनिजन बहुत दुःखी हैं। ये क्रूर-कर्म करनेवाले राक्षसोंके कारण कहीं सुखसे नहीं रहने पाते। भयानक राक्षस इन्हें मारकर खा जाते हैं। वनवासी व्रतनिष्ठ मुनि दुःखी हो स्वयं ही मेरी शरण आये। उन द्विजोत्तमोंने मुझसे स्वयं यह कहा कि 'आप हमपर अनुग्रह कीजिये।' मैंने उन मुनियोंकी चरण-सेवाकर उन्हें उनकी रक्षाका वचन दिया। फिर यह बड़े लज्जाकी बात होगी कि ऐसे सेवा-योग्य ऋषि, मुनि जब मुझसे प्रार्थना करें और मैं कहूँ कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ और जब वे अपना कष्ट कहकर राक्षसोंसे अपनी रक्षा माँगें तब मैं क्या कहूँ? हे निष्कलङ्क! मुनियोंने मुझसे कहा कि "हम तपस्वियोंके अब आप ही परम रक्षक हैं। हे राम! यद्यपि तपके प्रभावसे हम राक्षसोंको मारनेमें समर्थ हैं, परन्तु दीर्घकाल से संचित तपको हम खण्डित नहीं करना चाहते। हे राघव! तप नित्य है और कठिनतासे किया जाता है और बहुत विघ्नवाला होता है जिससे राक्षसोंसे भक्ष्यमाण भी हम शाप नहीं दे सकते। इसलिए भाई सहित आप दण्डकारण्यमें रहनेवाले राक्षसोंसे पीड़ित हमारी रक्षा करो। क्योंकि वनमें आप ही हमारे नाथ हैं।" हे जनकात्मजे! ऋषियोंके यह वचन सुनकर मैंने उनके पालनकी प्रतिज्ञा की है। मुनियोंके मध्यमें की हुई प्रतिज्ञाको भङ्ग करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि सत्य ही मेरा सदा प्रिय है। हे सीते! लक्ष्मण सहित तुझको और अपने प्राणोंको भी मैं त्याग सकता हूँ, किन्तु प्रतिज्ञाको नहीं त्याग सकता। विशेषकर ब्राह्मणोंसे की हुई प्रतिज्ञाको तो कदापि नहीं त्यागूँगा। हे वैदेहि! ऋषियोंके कहनेपर भी उनका प्रतिपालन अवश्य करने योग्य है, प्रतिज्ञा करनेपर तो कहना ही क्या है? हे अनघे! तुमने तो मेरे स्नेहसे तथा मुझमें तुम्हारी प्रीति होनेसे तुमने यह कहा है। "हे सीते! मैं प्रसन्न हूँ, क्योंकि कोई भी अप्रिय पुरुष इस प्रकार शिक्षा नहीं देता है। यह कथन तुम्हारे और तुम्हारे कुलके योग्य है। क्यों न हो; तुम मेरी प्राणप्रिय सहधर्मिणी हो।" धनुर्धर महात्मा राम मिथिलाधिपतिकी पुत्री प्यारी सीतासे इस प्रकार कहकर लक्ष्मण सहित रमणीय तपोवनोंको चल दिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका दशवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

रामका तपोवन-दर्शन, वनमें दश वर्षकी पूर्ति, अगस्त्याश्रमवर्णन, आतापि-वातापि-विनाश, अगस्त्यमुनिके प्रतापसे दक्षिण दिशाकी निर्भयता।

आगे-आगे श्रीरामचन्द्रजी, बीचमें सुन्दरी सीता और सबसे पीछे लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये चलरहे थे। सीताके सहित दोनों भाई भाँति-भाँतिके पर्वतीय शिखरों, बनों तथा अनेक रमणीय नदियोंको देखते हुए जारहे थे जिनके किनारेपर विचरनेवाले सारस, चक्रवाकों और जलपक्षियोंसे युक्त तथा कोकिलों से पूर्ण लताओंको उन्होंने देखा। इसप्रकार इकट्ठे हुए विन्दुमृगों, मदोन्मत्त सींगवाले भैंसे, सूअरों और द्रुमवैरी हाथियोंको देखते हुए चलरहे थे। उन्होंने बहुत-सा मार्ग चलकर सूर्यास्त होनेपर कमलों तथा सर्पोंसे व्याप्त, जलचारी सारस पक्षियों, राजहंसों और कमलहंसोंसे पूर्ण और गजयूथोंसे शोभित एक योजन लम्बा चौड़ा तालाब देखा जिस रमणीय तालाबमें उन्होंने चीतों और बाघोंका शब्द सुना, किन्तु वहाँ कोई दिखाई न दिया। महाबली राम लक्ष्मण आश्चर्यित हो साथमें आए मुनियोंसे धर्मवृत्त पूछने लगे कि, हे महामुनि! यह अद्भुत् अश्रय सुनकर तो हम सबके मनमें बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ है, सो यह क्या है, यथार्थ कहिये।" रामचन्द्रके इसप्रकार पूछनेपर धर्मात्मा मुनि उस सरोवरका सब कारण कहने लगे—"हे राम! सर्वदा रहनेवाला यह पञ्चाप्सर नामक, एकतड़ाग है जिसका मुनि माण्डकर्णिने अपने तपद्वारा निर्माण किया था। महामुनि माण्डकर्णि जलाश्रित पवन भोजी एक ऐसे थेकि जिन्होंने यहाँ दस हजारवर्ष घोरतप किया था और जिनके तपसे व्यथितहो अग्न्यादि सब देवता एकत्रहो परस्पर यह कहने लगे थे कि—"यह मुनि हम लोगोंमेंसे किसीका स्थान चाहता है।" इस विचारसे देवताओंको उद्विग्नता हुई। उन्होंने उस तपोवनके तपको नष्ट करनेके लिए विद्युत समान आभावाली पाँच मुख्य अप्सरायें नियुक्तकीं, जिन्होंने देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिए पारावारदर्शी अर्थात् परमात्मा तथा जीवके स्वरूप जाननेवाले उस ऋषिको कामके वशमें कर दिया। वे पाँचों अप्सरा मुनिकी भार्या हुईं और मुनिने मध्य-तड़ागमें उनका गृह निर्मित किया। वे पाँचों अप्सरायें उसमें रहने लगीं। तपोबलसे यौवनावस्था प्राप्त वे उस माण्डकर्णि मुनिको आनन्दित करने लगीं। यह क्रीड़ा

करती हुई उनके आभूषणोंके शब्द-युक्तही वाद्यों और गीतोंका मनोहर शब्द सुनाई पड़ता है। लक्ष्मण सहित महा यशस्वी राम बड़े आश्चर्यसे उस मुनिका यह कथन सुनरहे थे। इतनेमें श्रीरामचन्द्रजीको कुशाओं तथा चीरोंसे व्याप्त और ब्राह्मण सम्बन्धिनी लक्ष्मीसे पूर्ण वह आश्रममण्डल दिखाई दिया जिसमें प्रवेशकर सर्व-मुनि-संपूज्य वे राम, सीता तथा लक्ष्मण सहित वहाँ जारहे। इस प्रकार वे उस आश्रममें कुछ काल तक वहाँ रह महर्षियोंसे पूजित हुये। फिर वे महान अस्त्रोंके ज्ञाता राम उन तपस्वियोंके आश्रमों पर चले गये, जिनके पास पूर्वमें रहे थे। इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी किसी आश्रममें दश महीने, किसीमें एकवर्ष, किसीमें चार महीने, किसीमें पाँच किसीमें छः और कहीं सात मास, कहीं सवा महीना, कहीं डेढ़ महीना, कहीं तीन और कहीं आठ महीना तक वहाँ सुखसे निवास किये। ऋषियोंकी अनुकूलतासे सदैव मुनियोंके आश्रमोंमें विहार करते हुए रामके दश वर्ष व्यतीत हुए। इसप्रकार वे धर्मज्ञ सीता सहित सब आश्रमोंकी परिक्रमा करते हुए पुनः सुतीक्ष्णके आश्रमपर आये। वहाँभी ऋषियोंने उनकी पूजा की। शत्रुहन्ता राम वहाँ भी कुछ दिन निवास किये। एकदिन उन्होंने सुतीक्ष्ण महर्षिसे विनयपूर्वक कहा कि—"हे भगवान! मैंने मुनियोंसे यह सुना है कि मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य इसी वनमें रहते हैं। किन्तु यह बहुत बड़ा वन है, इस कारण मैं उस स्थानको नहीं जानता हूँ। उन बुद्धिमान महर्षिका पवित्र आश्रम कहाँ है? आपकी प्रसन्नतासे, लक्ष्मण तथा सीता सहित, मैं अगस्त्य मुनिका अभिवादन करनेके लिए उस स्थानको जाना चाहता हूँ। मेरे हृदयमें यह एक महान् मनोरथ है कि मैं स्वयं उन मुनिकी सेवा करूँ। मुनि सुतीक्ष्ण धर्मात्मा रामके इस वचनको सुनकर प्रसन्न हुये और दशरथपुत्र रामके प्रति बोले कि--हे राघव! मैंभी लक्ष्मण सहित तुमसे ही कहने को था कि सीता सहित तुम अगस्त्यके पास जाओ। दैवयोग से अब तुमने स्वयंही इस विषयमें मुझसे कहा है। एतदर्थ हे वत्स! मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि जहाँ अगस्त्यमुनि निवास करते हैं। इस आश्रमसे दक्षिण मार्ग से चार योजन जाओ, जहाँ अगस्त्यके भाईका बड़ा शोभायमान आश्रम मिलेगा जो पिप्पलीके वनसे शोभित, बढ़ाही पुष्पित, विस्तीर्ण, विविध पक्षियों के शब्दोंसे युक्त और रमणीक वनमें है। जहाँ हंस तथा कारण्डव नामक

पक्षियोंका निवास स्थान और जो चक्रवाकोंसे शोभित, स्वच्छ जलसे शुभ विविध सरोवर हैं। राम ! वहाँ एकरात बसकर प्रभात कालमें दक्षिण दिशाको लक्ष्यमें रखकर वनखंडके समीपसे जाना। जब एक योजन चले जाओगे तो वहाँ बहुत वृक्षोंसे व्याप्त वनके रमणीय स्थानमें अगस्त्यका आश्रमस्थान है। वहाँ सीता लक्ष्मण सहित बिहार करना; क्योंकि वह वन बड़ाही रमणीय है। यदि उस महामुनिके दर्शनोंकी इच्छा है तो हे महायशस्विन् ! आजही गमन करो। मुनिके इस कथनको सुनकर लक्ष्मण सहित राम उनका अभिवादन कर सीता तथा लक्ष्मण सहित अगस्त्यको लक्ष्यमें रखकर चल दिये। जब मार्गमें रामचन्द्रने रमणीक वन, मेघोंके तुल्य पर्वतों और तड़ागों तथा मार्गमें आई नदियोंको देखा तो उन्हें सुतीक्ष्णका बतलाया मार्ग बड़ाही सुन्दर जान पड़ा। उन्होंने आनन्दित हो लक्ष्मणसे कहा कि—"निश्चयही यह आश्रम महात्मा अगस्त्यके पवित्रकर्मा भाईका दीखता है। क्योंकि जैसे चिह्न इसके सुने थे, वैसे ही इस वनके मार्गमें मैं पुष्प तथा फलोंके भारसे झुके हुए सहस्रों वृक्ष देखता हूँ। देखो, पके हुए पिप्पलीके फलोंकी कटुरसवाली तथा पवन द्वारा सहसा उठाई यह गन्ध इस वनमें आती है। यत्र-तत्र काष्ठ समूह पड़े हैं। मार्गमें वैदूर्य मणिके हरे-हरे कटे हुए दर्भ (कुशा) भी दीख पड़ते हैं। यह देखो वनके बीचमें आश्रमको अग्निके धुएँका अग्रभाग काले-काले मेघोंके शिखरवत् दिखलाई पड़ रहा है। देखो, पवित्र तीर्थोंके जलमें स्नानकर ये द्विजाति लोग स्वयं एकत्र हुए पुष्पों द्वारा इष्टदेवताके प्रति पुष्पावलि दे रहे हैं। हे सौम्य ! सुतीक्ष्णका जैसा कथन है तदनुसार निश्चय यह अगस्त्यके भाईका ही आश्रम है। जिनके भाई अगस्त्यने लोगोंके हितकी इच्छासे अपने बल के द्वारा मात-पिताको मार इस पवित्र-कर्मा दक्षिण दिशाको सबके निवास योग्य बना दिया है। एक समय यहाँ ब्राह्मणोंके हन्ता महा असुर भाई वातापि तथा इल्वल दो भाई रहते थे। इल्वल ब्राह्मणका रूप धरकर संस्कृत भाषा बोलता और श्राद्ध बताकर सब ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करता। तदनन्तर मेषरूपी अपने भाईको संस्कृत करके शास्त्र-विधिसे उनद्विजोंको भोजन कराता। जब ब्राह्मण भोजन करलेते तब इल्वल कहता कि—'हे वातापे बड़े स्वरसे बोलता हुआ निकल।' तदनन्तर वातापि भाईके वचन सुनकर

मेघकी नाईं शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीरोंका भेदन करता हुआ निकल पड़ता। इसप्रकार वे कामरूपी मांस भक्षक नित्य ही सहस्रों ब्राह्मणोंको नष्ट कर देते थे। तब देवताओंने महर्षि अगस्त्यकी प्रार्थनाकी तो उन्होंने उस असुरके श्राद्धमें जाकर उनदोनों महा असुरोंका भक्षण कर लिया—यह प्रसिद्ध बात है। तब जब कि श्राद्धकी समाप्ति हुई और इल्वलने हाथ धुलाकर 'निकल जाओ' जोरसे इसप्रकार भाईको कहा तब प्रियघाती भाई इल्वलके इसप्रकार कहते हुए देख महामुनि धीमान् अगस्त्यजी हँसते हुए बोले—अरे! मैंने पचालिया, अब वह यमालयको चला गया, अब मेषरूपी तेरे भाईको निकलनेकी शक्ति कहाँ है? तब मुनिसे भाईका मरणात्मक वचन सुन वह क्रोधित हो अगस्त्यजीको मारनेको उद्यत हुआ। वह मुनिके ऊपर दौड़ा, परन्तु तेजस्वी मुनिद्वारा उनके नेत्रसे निर्दग्ध हो मृत्युको प्राप्त हो गया। यह तड़ाग और वनसे शोभित उनके भाईका वही आश्रम है कि जिन्होंने ब्राह्मणोंपर दयाकर यह महान् दुष्कर कर्म किया था। लक्ष्मणसे राम ऐसा कहही रहे थे कि सूर्यास्त हो गया और संध्याका समय हो गया। तब भाईके साथ रामने सविधि सायंकालकी संध्याकी और उस आश्रममें प्रवेशकर अगस्त्य ऋषिका अभिवादन किया। मुनिने भी रामका पूर्णतया स्वागत किया। वे फल मूलोंको खाकर एक रात्रि वहाँ रहे। रात्रि व्यतीत होनेपर जब सूर्यमण्डल स्वच्छ हुआ तब रामचन्द्रने अगस्त्यके भाईसे निवेदन किया—"हे भगवन्! हम आपको प्रणाम करते हैं, सुखपूर्वक हमने यहाँ रात्रि व्यतीतकी है। अब हम आपसे आज्ञा माँगते हैं; क्योंकि आपके ज्येष्ठ भ्राता अगस्त्यजीको हम देखने जाते हैं।" तब 'जाइये' इसप्रकार उन ऋषिसे आज्ञापित हो रामचंन्द्र सुतीक्ष्ण द्वारा बतलाये मार्गसे उस वनको देखते हुए चल दिये। रामचन्द्रने वहाँपर फूले हुए तथा फूलोंसे लदी हुई बेलोंसे वेष्टित जलकदम्ब, पनस, तिनिश, अमलतास, महुआ, बेल और तिन्दुक नामके सैकड़ों वनवृक्ष देखे जो कि हाथियोंकी सूँड़ोंसे भग्न, वानरोंसे शोभित और सैकड़ों मस्त पक्षियोंके समूहसे गुंजति थे। तब कमलनेत्र राम अपने समीप स्थित पीछे चलते हुए, पराक्रमी और लक्ष्मिबर्द्धन वीर लक्ष्मणसे बोले—

जिसकारण सरस पत्तोंवाले वृक्ष तथा मृग और पक्षिगण शान्त दिखाई देते हैं। इससे अनुमान होता है कि, उन शुद्धात्मा महर्षिका आश्रम बहुत दूर नहीं है जो संसारमें अपने ही कर्मोंसे 'अगस्त्य' नामसे प्रसिद्ध हैं, उनका श्रमित प्राणियोंका श्रम निवारणकर्त्ता आश्रम यह दिखाई दे रहा है। जो बहुतसे धूमसे व्याप्त, चीर-पक्तियोंसे शोभित और शान्त है तथा जिसमें मृगोंका युत्थ और विविध पक्षियोंका शब्द हो रहा है। उन पवित्रकर्माने लोकोंके हितकामनासे अपने बलद्वारा वातापिको मारकर दक्षिण दिशाको शरणदायक निर्भय बना दिया है। और जिनके प्रभावसे राक्षस इस दक्षिण दिशाको दुःखसे देख सकते हैं और पहले जैसा इसमें नहीं विचरते, उन महर्षिका यही आश्रम है। इन पवित्रकर्मा महर्षि द्वारा जबसे यह दिशा इनके अधिकारमें आई है, तबसे राक्षस निर्वैर और शान्त हो गये हैं। इसलिए ऐश्वर्यशाली उसके नामसे दुष्टकर्मियोंसे दुस्सह्य यह दक्षिण दिशा 'अगस्त्य दिशा' के नाम से त्रयलोक्य विख्यात हुई है और जिनकी आज्ञाका पालन करता हुआ वह पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य जो सूर्यका मार्ग अवरोधक था, आगे नहीं बढ़ता। जगत प्रसिद्धकर्मवाले दीर्घायु इन अगस्त्यजीका मनुष्योंसे सेवित शोभायमान यही श्रेष्ठ आश्रम है। लोक पूजित यह महर्षि, साधु और श्रेष्ठ मनुष्योंके हितमें नित्य रत हैं। हमारा यहाँ आना कल्याणदायक है। यहाँ रहकर मैं उन महा मुनि अगस्त्यकी आराधना करूँगा और वनवासके शेष दिन यहीं व्यतीत करूँगा। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण नियमित आहार करते हुए सदा अगस्त्यजीकी उपासना करते हैं। वे ऐसे प्रभावशाली महात्मा हैं कि उनके आश्रममें कोई मिथ्यावादी, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। उनके पास धर्मकी आराधना करनेके लिए देवता, यक्ष, नाग और पक्षी नियमित आहार करते हुए निवास करते हैं। इस आश्रमपर शरीर त्यागकर अनेकों सिद्ध महात्मा नूतन शरीर धारण करके सूर्यके समान तेजस्वी विमानों द्वारा स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। अब हमलोग आश्रमपर आ पहुँचे। तुम आगे जाकर महर्षिको सीता सहित मेरे आगमनकी सूचना दो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकांड का ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११॥

बारहवाँ सर्ग

अगस्त्याश्रममें रामका ऋषि द्वारा सत्कार और अगस्त्य द्वारा रामको शक्ति प्रदान।

लक्ष्मणने आश्रममें प्रवेशकर अगस्त्यजीके शिष्यसे भेंट की और उनसे कहा—"मुने! राजा दशरथके ज्येष्ठ-पुत्र महाबली रामचन्द्रजी अपनी पत्नी सीताके साथ महर्षिका दर्शन करने आये हैं। मैं उनका छोटा भाई, हितैषी और अनुगत भक्त हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है। सम्भव है यह नाम कभी आपके कर्णगोचर हुआ हो। हमलोग पिताकी आज्ञासे अत्युग्र वनमें प्रविष्ट हुए हैं और हमसब भगवान् मुनिको देखना चाहते हैं। आप उनसे यह समाचार निवेदन कीजिये।" लक्ष्मणकी बात सुनकर उस तपस्वीने 'बहुत अच्छा' कहकर महर्षिको समाचार देनेके लिए अग्निशालामें प्रवेश किया और लक्ष्मणकी कही हुई बातें अगस्त्यजीसे कह सुनायीं। भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और महाभागा विदेहनन्दिनी सीताके आगमनका समाचार पाकर महर्षिने शिष्यसे कहा—'मैं तो बहुत दिनोंसे उनका दर्शन करना चाहता था। सौभाग्यकी बात है कि आज श्रीरामचन्द्रजी स्वयं ही मुझको देखने आये हैं। शीघ्र जाओ और सत्कारयुक्त लक्ष्मण सहित तथा सीता सहित रामको मेरे समीप लाओ। अबतक उन्हें प्रवेश क्यों नहीं कराया?' धर्मज्ञ महात्मा मुनिके इस प्रकार कहनेपर वह शिष्य प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कह वहाँसे निकल संभ्रान्तकी नाईं आकर लक्ष्मणसे बोला कि 'वह राम कहाँ हैं स्वयं मुनिको देखनेके लिए प्रवेश करें।' तदनन्तर शिष्य सहित लक्ष्मणने आश्रमके बाहर आकर रामचन्द्र सहित जनकपुत्री सीताको दिखाया। जैसा अगस्त्य मुनिने कहा था शिष्यने यथायोग्य सत्कार योग्य रामको प्रवेश कराया। तब सीता और लक्ष्मण सहित रामने शान्त मृगोंसे व्याप्त आश्रमको देखते हुए प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने ब्रह्मा, अग्नि, विष्णु, महेन्द्र, विवस्वान्, चन्द्र, भाग नामक देवता, कुबेर, धाता, विधाता, वायु, नागराज, महात्मा अनन्त (शेषजी), गायत्री, वसुओं, महात्मा पाशहस्त वरुण, कार्तिकेय तथा धर्मराजके पृथक-पृथक स्थानोंको देखा। इसी समय मुनिवर अगस्त्य भी शिष्यों

से परिवृत्त अग्निशालासे बाहर निकले। रामचन्द्रने परम तेजस्वी मुनिवर अगस्त्यको देखा जो सब मुनियोंके आगे स्थित थे। तब पराक्रमी रामने शोभावर्द्धन लक्ष्मणसे कहा कि 'हे लक्ष्मण! यह ऐश्वर्यशाली अगस्त्यजी यज्ञशालासे निकले हैं, अब हमलोग उदारतासे इन तपोनिधिके पास चलेंगे। यों कहकर वे सीता और लक्ष्मणके साथ महर्षिके चरणोंमें जाकर प्रणाम किये और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। महर्षिने रामको अतिथित्व न स्वीकार किया और अर्घ्य, पाद्य, आसनादिसे उनकी पूजा करके तथा कुशल-प्रश्न कहकर बैठाया। उनके बैठ जानेपर मुनि बलिवैश्वदेव करके, अर्घ्य देकर और उन अतिथियोंका पूजन करके वानप्रस्थ-धर्म द्वारा उनको भोजन दिया। पश्चात् धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी पहले स्वयं बैठकर बैठे हुए, हाथ जोड़े धर्मज्ञ रामसे बोले—'हे काकुत्स्थ! पहले बलिवैश्यदेव करके तथा अर्घ्य देकर अतिथिकी पूजा करे। यह निश्चय है कि जो तपस्वी अन्यथा प्रकार से आचरण करता है वह झूठी गवाही देनेवालेके समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करता है। आप तो राजा, धर्मचारी, महारथी, सबके पूज्य तथा मान्य हैं जो प्रिय अतिथि होकर यहाँ पधारे हैं।' ऐसा कहकर अगस्त्यजी फल, मूल, पुष्प और अन्य सत्कार योग्य द्रव्योंसे यथेष्ट रामकी पूजा करके फिर बोले—'हे पुरुषश्रेष्ठ! यह सुवर्ण तथा रत्नोंसे भूषित, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित बड़ा दिव्य वैष्णवधनुष है और ब्रह्माका दिया हुआ, अमोघ और सूर्यके तेज तुल्य यह बड़ा उत्तम शर (तीर) है तथा प्रदीप्त अग्निके तुल्य निशित बाणोंसे पूर्ण अक्षय तीरवाले ये दोनों तरकस मुझे महेन्द्रने दिये थे। सुवर्ण भूषित और सुवर्णकोश (म्यान) वाली यह खड्ग (तलवार) है। हे राम! पुराकालमें विष्णुने इसी धनुष आदिसे बड़े भारी असुरोंको नष्ट करके देवताओंको दीप्तिमती सम्पत्ति दी थी। हे मानद! वह धनुष, दोनों तरकस, बाण और खड्ग (तलवार) को विजयके लिए तुम वैसे ही ग्रहण करो, जैसे इन्द्रने वज्रको ग्रहण किया था।' ऐसा कहकर महान् तेजस्वी भगवान् अगस्त्यने वे सभी श्रेष्ठ आयुध श्रीरामचन्द्रजीको सौंप दिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त॥ १२॥

तेरहवाँ सर्ग

अगस्त्यजीका रामचन्द्रको पंचवटीमें वास करनेके लिये कहना।

इसके पश्चात् अगस्त्यजीने फिर कहा—'हे राम ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, हे लक्ष्मण ! तुमपर भी प्रसन्न हुआ हूँ। क्योंकि सीता सहित तुम मुझे अभिवादन करनेके लिए आये। मैं देखता हूँ कि मार्गके श्रमसे तुम अधिक खेदितहो और जनकात्मजा सीताभी विश्रामकी इच्छा करती है। यह सुकुमारी है। इसपर कभी दुःख नहीं पड़े हैं और पतिस्नेहसे प्रेरितहो यह इस बड़े दोषोंवाले वनमें आयी है। हे राम ! जैसे यह सीता यहाँ बिहारकरे वैसा कीजिये। क्योंकि वनमें तुम्हारे पीछे चलते हुए यह बड़ाही कठिन धर्म करती है। हे रघुनन्दन ! सृष्टिके आरंभसेही स्त्रियोंकी यह प्रकृति चली आती है कि अच्छी दशामेंतो यह पतिकी अनुगामिनी होती हैं और दुर्दशासे युक्तहो त्याग देती हैं। स्त्रियाँ विजलीकी नाईं चंचलता, शस्त्रोंकी नाईं तीक्ष्णता और गरुड़ तथा वायुकी नाईं शीघ्रताका अनुकरण करती हैं। किन्तु यह आपकी भार्या तो इन सब दोषोंसे रहित है, श्लाघनीय है। यह देवी अरुन्धतीके ही समान पतिव्रताओंमें अग्रगण्य है। हे शत्रुहन्ता राम ! वह स्थान बड़ा अलंकृत होगा जहाँ तुम लक्ष्मण और इस वैदेहीके सहित निवास करोगे।' मुनिके ऐसा कहनेपर भी रामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विनीत भावसे कहा—'हे मुनिवर्य-पत्नी और भाई सहित मेरे गुणोंसे आप-जैसे गुरुजनकोजो विशेष सन्तोष हुआ, इसके लिये मैं अपनेको धन्य और अनुगृहीत मानता हूँ। अब आप मुझे कोई ऐसा स्थान बताइये जहाँ मैं आश्रम बनाकर निरन्तर रह सकूँ।' तब रामके उस कथनको सुनकर धैर्य सम्पन्न धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी कुछ देर ध्यान करके बहुत निश्चित शब्दोंमें बोले कि—हे तात ! यहाँसे दो योजन अर्थात् आठ कोसपर बहुत फल फूलों तथा जलाशयोंसे युक्त, शोभायमान, बहुतसे मृगोंसे युक्त पञ्चवटी नामका प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ जाकर आश्रम-स्थान (कुटी) बनाकर लक्ष्मण तथा इस सीता सहित रहो और हे शत्रुनाशक राम ! पिताके कथनको यथार्थ पालन करते हुए वहाँ रमण करो। मैंने अपने तपसे आपका अभिप्राय जान लिया है। आप इस तपोवनमें मेरे साथ रहनेकी प्रतिज्ञा करके अर्थात् मेरे कथनानुसार पंचवटीही जाओगे। हे रघुनन्दन !

इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम पंचवटीको जाओ। क्योंकि वह वनोद्देश रमणीय है जहाँ सीता सुखसे रहेंगी। वह दूर नहीं है। गोदावरीके समीप है। वहाँ सीताका मन पूर्ण लगेगा। आप सदाचारी हैं और ऋषियोंकी रक्षा करनेकी शक्ति रखते हैं, अतः वहाँ रहकर तपस्वी मुनियोंका पालन कीजियेगा। हे वीरवर! यह सामने महुआका बहुत बड़ा वन दिखाई देता है। इसके उत्तर से होकर जाना। आगे जानेपर एक वट-वृक्ष मिलेगा, जिसके आगे कुछ दूर तक ऊँचा मैदान है। उसे पार करनेके बाद एक पर्वत दिखाई देगा। जिस पर्वतसे थोड़ीही दूरपर पंचवटी नामक प्रसिद्ध सुन्दर वन है। महर्षि अगस्त्यके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण सहित श्रीरामने सत्यवाद ऋषिको प्रदक्षिणा और अभिवादनसे सत्कृत करके आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलनेपर दोनों भाई मुनिको प्रणामकर धनुष और बाणोंसे भरे तरकस लिये सीताके साथ पंचवटीकी ओर प्रस्थित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥१३॥

चौदहवाँ सर्ग

राम-जटायु मिलन, जटायु-वृतान्त, कश्यपकी सन्तानें, राम पंचवटीकी ओर।

इसके अनन्तर पंचवटी जाते समय बीचमें श्रीरामचन्द्रजीको एक महाकाय गृध्र मिला जो बड़ाही पराक्रमी था। उसे वटके वृक्षपर बैठा देखकर महाभाग श्रीराम और लक्ष्मणने पक्षीके रूपमें राक्षसही समझा और पूछा—आप कौन हैं? पक्षीने बड़ी मधुर एवं कोमलवाणीमें उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—'हे वत्स! मुझे अपने पिताका मित्र समझो।' पिताका मित्र जानकर रामचन्द्रने उसकी पूजाकी और उसका पवित्र कुल तथा नाम पूछा। तब उस पक्षीने अपना नाम और कुशल इसप्रकार बतलाया—ह महाबाहो! पूर्व समयमें जो प्रजापति हुए हैं, उन सबको मैं आदिसे कहता हूँ सबको सुनिये। उनमें प्रथम कर्दम ऋषि प्रजापति हुये। उसके बाद विश्रुत, शेष, संश्रय, पराक्रमी वहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि महाबली क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान् और अरिष्टनेमि—ये हुये और उनमें सबसे पिछले महातेजस्वी कश्यपजी प्रजापति हुये। हे महायशस्विन् राम! प्रजापति दक्षके यशस्विनी साठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनमें सुन्दर अदिति,

दिति, दनु, कालिका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अमला इन आठोंको कश्यपने ग्रहण किया और जिनसे विवाह होनेपर वे उन आठों दक्षसुताओंसे बोले कि—'तुम मेरे ही तुल्य त्रिलोकीके स्वामी पुत्रोंको उत्पन्न करो।' हे राम! हे महाबाहो! उनमेंसे अदिति, दिति, मनु और कालिका तो तन्मना अर्थात् कश्यपकी आज्ञाकारिणी हुई और शेषोंने उसके कथनपर ध्यान नहीं दिया। हे शत्रुनाशक! अदिति में तैंतीस देवता उत्पन्न हुये। जो १२ आदित्य, ८ वसु, ११ रुद्र और दो अश्विनीकुमार नामसे प्रसिद्ध हुये। हे तात! दितिने बड़े यशस्वी पुत्र दैत्योंको उत्पन्न किया, पुराकालमें जिनके अधिकारमें वन तथा समुद्रों सहित समस्त पृथ्वी थी। हे शत्रुओंको दमन करनेवाले! दनुने अश्वग्रीव नामक पुत्रको उत्पन्न किया और कालिकाने भी नरक, कालक नामके दो पुत्र उत्पन्न किये। ताम्राने संसार-प्रसिद्ध क्रौंची, भासी, धृतराष्ट्री तथा शुकी नामकी पाँच कन्याएँ उत्पन्नकी, जिनमें क्रौंचीने उलूक (उल्लू) और भासीने भास उत्पन्न किये। भामिनी धृतराष्ट्रीने सब हंस, कलहंस और चक्रवाकोंको उत्पन्न किया। शुकीने नताको उत्पन्न किया जिसकी पुत्री विनता हुई। हे राम! क्रोधवशाने दश पुत्रियाँ उत्पन्न-कीं जिनके नाम ये हैं। मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, औह कद्रुका। ये सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त थीं। हे नरश्रेष्ठ! इसप्रकार सब मृग तो मृगीकी सन्तान हैं और मृगमन्दाके ऋक्ष, सृमर (नीले रंगके लम्बे बालोंवाले मृग विशेष) और चामर नामक मृग हुये। हरीकी सन्तानें बड़े वेगवाले सिंह तथा वानर हुए और भद्रमदाने इरावती नामक कन्याको उत्पन्न किया जिसका पुत्र लोकनाथ महागज ऐरावत हुआ। ऐसे ही शार्दूलीने बड़ी-बड़ी लम्बी पूँछवाले मर्कट जाति विशेष अर्थात् लंगूर और व्याघ्रोंको उत्पन्न किया और मातंगीकी सन्तान मातंग (हाथी) हुये! हे काकुस्थ! श्वेताने भी दिशागज नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया। हे राम! सुरसाने बहुत फलवाले नाग और कद्रुने केवल सर्पोंको जन्म दिया। हे राम! मनुने मनुष्य नामक यशस्वी पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको उत्पन्न किया। मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय जंघाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र हुए, ऐसी श्रुति है। अनलाने सुन्दर फल-

वाले सब वृत्तोंको उत्पन्न किया और शुकी-पौत्री बिनता और सुरसाकी बहिन कद्रू थी जिनमें कद्रूने पृथ्वीके धारक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। विनताके गरुण तथा अरुण नामके दो पुत्र हुये। उस अरुणसे मैं उत्पन्न हुआ। सम्पाति मेरा अग्रज है। हे शत्रुदमन! श्येनीका पुत्र मुझे जटायु जानो। यदि आप चाहें तो मैं आपके वासस्थानका सहायक हो सकता हूँ। क्योंकि पत्तियों तथा राक्षसोंसे सेवित यह वन बड़ा दुर्गम है। लक्ष्मण सहित आपके कहीं चले जानेपर मैं सीताकी रक्षा करूँगा। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने जटायुका सम्मान किया और प्रसन्नतापूर्वक उसको गले लगाकर बड़ी नम्रता दिखायी। फिर पिताके साथ जिसप्रकार उसकी मित्रता हुई थी, वह प्रसंग उन्होंने जटायुके मुँहसे बारम्बार सुना। तत्पश्चात् वे सीताको साथ लेकर लक्ष्मण और महाबली पत्ती जटायुके साथ पञ्चवटीकी ओर चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त॥ १४॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

रामका पंचवटी पहुँचनेपर लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटीका बनाया जाना और रामादिकोंका उसमें वास करना

तदनन्तर विविध दुष्ट सर्पों तथा पत्तियोंसे युक्त पञ्चवटीमें पहुँचकर रामने दीप्त तेजवाले भाई लक्ष्मसे कहा—'हे सौम्य! मुनिवर अगस्त्यने हमें जिस स्थानका परिचय दिया था, वहाँ हमलोग आ गये। यही पञ्चवटी नामक स्थान है। तुम इस वनमें चारोंओर दृष्टि फैलाकर देखो कि कौन-से स्थानमें हमारा इच्छित आश्रम बन सकता है; क्योंकि तुम इस कार्यमें निपुण हो। जहाँपर वैदेही तथा तुम और म अच्छे प्रकार रह सकें और जिसके पास ही जलाशय हो—ऐसा स्थान देखो, जहाँपर वन रमणीय और स्थान सुन्दर हो तथा जो समीपमें हो और जिसमें समिधा, कुशा, फूल और जल हों।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्! मैं तो आपके अधीन हूँ। इसलिए आप ही रुचिर देश देखकर 'आश्रम बनाओ' मुझे ऐसी आज्ञा दीजिये।" लक्ष्मणके इस वाक्यसे अत्यन्त तेजस्वी भगवान् श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने स्वयं ही सोच-विचारकर एक स्थान पसन्द किया, जो सब प्रकारके गुणोंसे युक्त था

आश्रमके उपयुक्त था। उस सुन्दर स्थानपर जाकर श्रीरामने लक्ष्मणका हाथ पकड़कर कहा—सुमित्रानन्दन! यह स्थान समतल और सुन्दर है; यहाँ तुम्हें आश्रम बनाना चाहिये। पवित्रात्मा मुनि अगस्त्यने जिसके विषयमें कहा था, वह पुष्पित वृक्षोंसे सुशोभित परम रमणीय गोदावरी नदी यही है। वे ऊँचे-ऊँचे पर्वत दिखाई दे रहे हैं, जिनमें अनेकों सुन्दर गुफाएँ हैं। इन पर्वतोंपर साल, ताड़, तमाल, खजूर, कटहल, आम, अशोक, तिलक, केवड़ा, चम्पा, स्यन्द, चन्दन, कदम्ब, लकुच, धव अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश और गुलाब आदि अनेकों वृक्ष शोभा पा रहे हैं। यह बहुत ही पवित्र और बड़ा ही रमणीय स्थान है। सर्वदा लोग यहीं निवास करें। राम द्वारा इसप्रकार बोधित, शत्रुओंके वीरोंको नष्ट करनेवाले महाबली लक्ष्मणने बहुत शीघ्रही भ्राताके लिये शीघ्र ही आश्रम बनाकर तैयार कर दिया। वह पर्णशाला बहुत ही विस्तृत थी। उन्होंने पहले मिट्टी एकत्रित करके दीवार खड़ीकी। फिर उसमें सुन्दर एवं सुदृढ़ खंभे लगाये। खंभोंके ऊपर बड़े-बड़े बाँस तिरछे करके रक्खे। बाँसोंके ऊपर शमी वृक्षकी शाखाएँ फैलादीं और उन्हें दृढ़ रस्सियोंसे कसकर बाँध दिया। इसके बाद ऊपरसे कुश-काश, सरकंडे और पत्ते बिछाकर उसे भलीभाँति छा दिया तथा नीचेकी भूमिको समतल करके महाबली लक्ष्मणने बड़ी रमणीय कुटी बना दी। भगवान् श्रीरामके लिये बना हुआ वह निवासस्थान अत्यन्त सुन्दर और देखने ही योग्य था। उसे तैयार करके लक्ष्मणने गोदावरीमें स्नान किया और कमलके फूल लाकर देवताओं-के लिये पुष्पोंकी बलिदी। फिर शास्त्रीय विधिके अनुसार वास्तु-शान्ति करके उन्होंने अपना बनाया हुआ आश्रम श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया। भगवान् श्रीराम सीताके साथ उस सुन्दर आश्रमको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ कालतक उन्होंने सबके साथ वहीं निवास किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥१५॥

सोलहवाँ सर्ग

हेमन्त-वर्णन

धर्मात्मा रामचन्द्र आनन्दपूर्वक पंचवटीमें रहने लगे। शरद ऋतु व्यतीत हो गई और प्रिय हेमन्त ऋतु आ गई। एक दिन प्रातःकाल राम-

चन्द्र स्नान करनेकी इच्छासे लक्ष्मण और सीता सहित पवित्र गोदावरी नदीके तट पर गए। लक्ष्मणजीने कहा—स्वामिन्! आपकी परम प्रिय हेमन्त ऋतु आ गई। इससे अलंकृत हो संवत्सर मनोहर हो जाता है। सर्दीके कारण शरीरमें रूखापन है, पृथ्वी अन्नसे परिपूर्ण है, जलमें शीतलता आ गई है, प्राणिमात्र अग्निसे प्रेम करने लगे हैं। अब लोग नवीन अन्न द्वारा देव और पितरोंकी पूजा करेंगे। यही ऋतु सबकी कामनाओंको पूर्ण करने वाली है। दही, दूध, और घी की अधिकता रहती है, राजा लोग प्रजाकी हित-कामनासे उनकी रक्षाको विजयके हेतु इसी ऋतुमें प्रस्थान करते हैं। आज कल भगवान् भुवनभास्करके दक्षिण दिशाकी ओर हो जानेसे उत्तर दिशा विना सिन्दूरकी सुन्दरीके समान हो गई है। हिमालय पर्वत वर्फकी खान है, इस ऋतुमें सूर्यके दूर हो जानेपर वह भी अपना नाम सार्थक कर रहा है। दोपहरको घूमना भला मालूम होता है, क्योंकि उस समय धूप रहती है। इस ऋतुमें वृक्षोंकी छाया और पानी प्रिय नहीं लगता। सर्दीके अधिक होनेसे धूप अत्यन्त प्यारी मालूम होती है। आज कल शीतके कारण कोई आश्रमके बाहर शयन नहीं कर सकता। गर्मियोंमें जितना प्रेम लोग चन्द्रमासे करते हैं, जाड़ेमें उतना ही प्रेम सूर्यसे करने लगते हैं। सर्दीके कारण सूर्य-मंडल उसी प्रकार धुँधला प्रतीत होता है, जैसे मुखकी भाफसे दर्पण धुँधला हो जाता है। आज कलकी रातें बड़ी और दिन छोटा हो जाता है। प्रभो, इस शीत कालमें महात्मा भरत भी राज्यके सुखोंको त्याग वनवासियोंके समान जीवन बिता रहे होंगे। महात्मा भरत सदा सुखमें पले हैं। उनसे ये कठोर नियम किस प्रकार निभते होंगे? वह सदा राजसी ठाटसे रहनेवाले किसप्रकार वल्कल वसन धारणकर पृथ्वीपर शयन करते होंगे। मुझे तो आश्चर्य मालूम होता है कि महाराज दशरथके समान यशस्वी और धर्मात्मा रामकी पत्नी और श्रीमान् कमलके समान नेत्रोंवाले, शान्तस्वरूप, सत्यवादी धर्मात्मा, जितेन्द्रिय आजानुबाहु, मृदुभाषी, शत्रुसन्तापी महात्मा भरतकी माता होते हुए भी माता कैकेई इतनी क्रूरहृदया क्यों हो गई? यद्यपि यह बात लक्ष्मणजीने साधारण ही रूपमें कहा—तथापि महाराज रामचन्द्र अपने मझली माताकी निन्दा सहन नहीं कर सके। उन्होंने कहा—भाई! तुम्हें

मझली माँकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जैसा तुम समझते हो वैसा वह नहीं हैं। यह तो समय और भाग्यका फेर जो उन्होंने हमलोगों के वनवास जानेका वरदान माँगा। उनका हृदय अब भी वैसा ही सरल और उदार है, वह पछता रही होंगी। यद्यपि मैं पिताके आज्ञानुसार बनवास करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हूँ तथापि भाई भरतका सच्चा प्रेम अपूर्व अनुराग और महान् भक्ति कभी २ मेरे हृदयको विचलित कर देती है। उसकी मधुर, प्रिय और मनको प्रसन्न करने वाली अमृतमयी वाणी क्या मुझे कभी भूल सकती है! वारम्बार यही इच्छा उठती है कि शत्रुनाशन शत्रुघ्न और महात्मा भरतसे कब भेंट होगी। हाय! क्या वह दिन कभी आवेगा; जब हम चारों भाई फिर एक साथ रहकर जीवन-यापन करेंगे। इस प्रकार कहते हुए महाराज रामचन्द्र शोक-संतप्त हृदययुक्त गोदावरीके किनारे पहुँचे। और स्नान पूजाकर यथाविधि देवताओं और पितरोंको बलि इत्यादि दे करके वन्दनाकी और पर्णशालामें आकर उसी प्रकार शोभायमान हुए जिस प्रकार नन्दी सहित शंकर और पार्वती शोभायमान होते हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥१६॥

सत्रहवाँ सर्ग

पंचवटी में सूर्पनखा का आगमन

गोदावरी स्नान कर लौटनेके बाद रामचन्द्रने प्रथम कालकी सन्ध्या करके पर्णशाला में प्रवेश किया। अपनी धर्मपत्नी देवी सीताके साथ रामचन्द्र वैसेही शोभायमान हुए, जिस प्रकार चित्रा देवीके साथ चन्द्रदेव सुशोभित होते हैं। एकबार महाराज रामचन्द्र अपनी पर्णकुटीमें देवी सीता और लक्ष्मण समेत बैठे हुए थे। रामचन्द्र लक्ष्मणको कोई पौराणिक कथा सुना रहे थे। उसी समय अत्यन्त बलवान् और दुष्ट स्वभाव वाली सूर्पनखा नाम्नी राक्षसी जो लंकाके राजा रावणकी बहिनथी वहाँ पर आई और श्यामल गौर शरीर वाले राम और लक्ष्मणकी अलौकिक शोभाको देख कामके वशीभूत हो उनके पास गई। यदि रामचन्द्रके नेत्र कमलके समान थे एवं बड़े २ थे, तो उसके नेत्र अत्यन्त ही छोटे २ और शोभाहीन थे। रामचन्द्रका मुखारविन्द सुन्दर और उसका भयंकर था। रामचन्द्र पतली कमर वाले थे तो वह ऊँचे

पेट वाली थी, रामचन्द्रके बाल काले घुँघराले और सुन्दर थे तो उसके बाल रूखे उलझे और ताम्बेके समान रंग वाले थे। रामचन्द्र देखनेमें प्रिय थे, वह अप्रिय थी। रामचन्द्रका कण्ठ-स्वर कोमल था तो उसका कठोर था। रामचन्द्र युवा अवस्था वाले थे तो वह बृद्धा थी। महाराज रामचन्द्रके आचरण शुद्ध और उसके अशुद्ध थे। कामके वशीभूतहो उस भयानक राक्षसीने रामचन्द्रसे कहा—मस्तक पर जटा धारण कर तपस्वियोंका वेष बनाए एवं धनुष और बाणको धारण किए तुम कौन हो ? और यहाँ राक्षसों के स्थानमें स्त्रीको साथ लेकर क्यों घूम रहे हो ? तुम्हारी क्या इच्छा है, साफ २ मुझसे कहो ? रामचन्द्रने राक्षसीकी बात सुन उससे कहा—सुन्दरी ! मैं महाराज दशरथका सबसे बड़ा पुत्र राम हूँ, यह मेरी स्त्री सीता एवं यह छोटे भाई लक्ष्मण हैं ! देवी ! मैं अपने पूज्य पिताजीकी आज्ञासे बनवास करनेके लिए आया हूँ और धर्माचरण करता हुआ यहाँ निवास कर रहा हूँ। तुम कौन हो ? और यहाँ भयंकर बनमें अकेली क्यों फिर रही हो ? तुम्हारा भेष-भूषण बतला रहा है कि तुम राक्षसी हो। तब भी मैं तुम्हारे मूँहसे पूर्ण परिचय चाहता हूँ। काम-पीड़ित वह राक्षसी रामचन्द्रकी बातें सुन उनसे कहने लगी—हे राम ! मैं तुमको अपना सच्चा २ परिचय बताती हूँ, सुनो। तुम्हारा यह कहना सत्य है कि मैं राक्षसी हूँ और लंकाके राजा रावणकी बहिन हूँ। मेरा नाम सूर्पनखा है। लंकाके राजा रावणका नाम तूने सुना होगा। मेरा मझला भाई कुम्भकर्ण है जो महा बलवान् और अधिक सोनेवाला है। छोटा भाई विभीषण धर्मात्मा और ईश्वर-भक्त है। खर और दूषण भी मेरे भाई हैं जो यहीं दण्डकारण्यमें ही निवास करते हैं। अपने इन सभी भाइयोंसे मैं बड़ी हूँ और तुम्हें देखते ही तुम पर आसक्त हो गई हूँ ! और तुम्हें अपना पति बनानेकी इच्छा को लेकर यहाँ आई हूँ। मेरे शरीरमें अपार बल है और अपार माया है। मैं अपने मायाबलसे ही सर्वत्र विचरण करती हूँ। अस्तु; तुम सीता को त्याग दो और मुझे स्वीकार करो। यह सीता नितान्त कुरूपा है, इसमें तुम्हारी पत्नी होनेकी योग्यता नहीं। मैं इससे कहीं अधिक सुन्दरी हूँ; अस्तु तुम मुझे अपनी पत्नी बना लो। मैं तुम्हारी पत्नी सीता को एकही ग्रास में भक्षण कर जाऊँगी। तब तुम्हें बाध्य होकर मुझे स्वीकार करना ही होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

अट्ठारहवाँ सर्ग

लक्ष्मण द्वारा सूर्पनखाके नाक कान काटे जाना

कामातुरा राक्षसी सूर्पनखाका उपहास करते हुए रामचन्द्र मुस्कराते हुए बोले—देवि ! यह तो तुम जानही गई हो कि मेरा विवाह हो गया है। प्रमाण-स्वरूप यह देवी पत्नी रूपमें मेरे साथ हैं। मैं यह भी कह सकता हूँ कि तुम्हारी श्रेणीकी स्त्रियाँ सौतोंके साथ कदापि निर्वाह नहीं कर सकतीं। मेरा छोटा भाई लक्ष्मण कुँआरा ही नहीं सुन्दर भी है। लक्ष्मण अत्यन्त पराक्रमी और शीलवान तथा बाल-ब्रह्मचारी है। हे कमल के समान नेत्रों वाली सुन्दरी ! क्याही अच्छा हो यदि तुम उसे पतिरूपमें प्राप्त करलो ! रामचन्द्रकी सम्मति उत्तम जान कामातुरा राक्षसी वीरवर लक्ष्मणके समीप जाकर बोली—हे राजपुत्र ! जैसे तुम सुन्दर हो वैसी मैं सुन्दरी हूँ, अस्तु तुम्हारी मेरी जोड़ी विधाताने ही अपने हाथसे बनाई है। तुम मुझे अपनी भार्या बनालो और आनन्द-पूर्वक इस दण्डकारण्यमें विहार करो। राक्षसीकी ऐसी वाणी सुन सदाचारी लक्ष्मणने भी हँसकर कहा—देवी ! तुम कैसी बातें करती हो ? मैं महाराज रामचन्द्रका सेवक हूँ, क्या सेवककी स्त्री बनना अच्छा है। कभी नहीं। मेरी स्त्री बनकर तुम्हें उसी प्रकार देवी सीताकी सेवा करनी होगी जिस प्रकार मैं रामचन्द्रकी सेवा करता हूँ। मेरी स्त्री बननेके स्थानमें तुम्हें रामचन्द्रकी उपपत्नी बनना चाहिए। वह अयोध्याके राजा हैं। राजाओंके अनेकों स्त्रियाँ होती ही हैं। महात्मा लक्ष्मणके विनोद-पूर्ण उपहास को उस दुष्टाने सच समझा और कामातुरा होनेके कारण पर्णशालामें जहाँ राम और सीता बैठे हुए थे जाकर कहने लगी—राम ! तुम्हें मेरी आज्ञा माननी ही होगी, तुम्हें इस कुरूपा और चाण्डालिनी स्त्रीको त्याग मेरे साथ विवाह करना ही होगा। यदि तुम इस डाइनके ख्यालसे ही मेरे साथ विवाह नहीं करते तो देखो इसे मैं अभी मारकर खाए जाती हूँ। इस प्रकार वह दुष्टा देवी सीताकी ओर झपटी। राक्षसी को सीता पर आक्रमणमें तत्पर देखा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—भाई ! असभ्यों और दुष्टोंसे हँसी करना भी निरर्थक है। देखो इस हँसीका परिणाम देवी सीता पर संकटका कारण बना। हे वीरवर ! इस बड़े पेटवाली कुरूपा राक्षसीको और भी कुरूप कर दो। महाराज रामचन्द्र

की आज्ञा पाते ही वीरवर लक्ष्मणने तत्काल तलवार निकाल उस दुष्टा कामोन्मत्ताकी नाक और कान काट ली। नाक कान काटते ही दुष्टाने भयानक चिग्घाड़ मारी और रोती हुई उसी ओर भागी जिस ओरसे आई थी। लोहूसे लथपथ राक्षसी बादलोंके समान घनघोर शब्द करती हुई दोनों हाथोंसे नाक और कानको टटोलती हुई अपने भाई खरके पास गई, जो अपनी सेना सहित जन-स्थानमें निवास करता था। रोती हुई सूर्पनखा वहाँ पहुँच दुःखसे व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्ड-का अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

खरको समाचार बताना

अपनी बहिन सूर्पनखाकी वह दशा देख पराक्रमी खर उसके समीप गया और बोला—तुम्हारी यह दशा किसनेकी, किसके सर पर काल सवार हुआ है और कौन यमपुर जाना चाहता है? बताओ, जल्दी बताओ। आश्चर्य का विषय है कि तुम स्वयं बलवान् बुद्धिमान और मायाविनी हो, इच्छानुसार रूप धारण कर सर्वत्र विचरण करनेमें समर्थ हो, फिर भी तुम्हारी यह दशा किसने बना दी? बताओ! बताओ! देवता, दैत्य, किन्नर, गन्धर्व कौन है जिसने इस प्रकारका साहस किया? क्योंकि इस लोकमें तो मेरी बराबरी करनेवाला कोई है ही नहीं। स्वर्ग-लोकका रहने वाला देवराजइन्द्र भी यह साहस नहीं कर सकता, तब कौन दुष्ट है जिसने तुम्हारी यह गति बनाई? उठो और जल्दी बताओ। मेरा मन उस दुष्टको मारनेके लिए चंचल हो रहा है। बताओ यह पृथ्वी आज किसके रक्तसे लाल होना चाहती है? किसका कलेजा मेरे बाणोंसे विदीर्ण होने वाला है! बहिन! क्रोधमें आकर मैं जिसके बध करनेका निश्चय कर लूँ उसको देवता, दानव और गन्धर्व कौन बचा सकता है? इसलिए तुम उठो और मुझे बताओ कि कौन पराक्रमी पुरुष इस दण्डकारण्यमें आया है और वह कहाँ है? अपने भाई खरकी ऐसी बातें सुन सूर्पनखा उठकर रोती हुई बोली—भाई! अयोध्याके राजा दशरथके दो बेटे जो देखनेमें तो जटाधारी मुनियोंका बेष बनाये हैं। वल्कल-वसन और मृगचर्म धारण किए हैं, फल, मूल एवं कंद खाकर बनमें रहते हैं, वे

जितेन्द्रिय, सत्यवादी और बलधाम हैं। उनके साथमें एक युवती स्त्री भी है जो अत्यन्त ही सुन्दर और वस्त्राभूषणोंसे युक्त है। उसी दुष्टा स्त्रीके कारण उन मूर्खोंने मेरा अपमान किया और मेरी नाक और कान काट लिये। भाई! यदि तुम मुझपर कुछ भी स्नेह करते हो तो मैं उन तीनोंका गर्म २ लहूपान करना चाहती हूँ। यदि संग्राम-भूमिमें मैंने उन दुष्टोंका रक्त-पान न किया तो कुछ न किया। सूर्पखनाकी ऐसी वाणी सुन बलवान् खरने अपने चौदह चुने हुए वीरोंको बुलाकर कहा-मित्रो! दण्डकारण्यमें कोई दो राजकुमार और एक स्त्री आए हैं। उन राजकुमारोंने बहिनका अपमान किया है, बहिन उनका गर्म २ लोहू पीना चाहती है, तुम लोग जाओ, ढूँढ़ कर उन्हें बहिनके सुपुर्द कर दो। यह उनका खून पानकर प्रसन्न होगी। खरकी आज्ञा पाते ही चौदहों बलवान् राक्षस वायु वेगसे सूर्पनखा के साथ चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥१९॥

बीसवाँ सर्ग

खरके राक्षसोंका रामके पास जाना और मारा जाना

सूर्पनखा चौदहों राक्षसोंके साथ महाराज रामचन्द्रकी पर्णकुटी पर आई और इशारे ही से उनसे पर्णशालामें बैठे हुए राम, लक्ष्मण और सीताको उन्हें दिखा दिया। राक्षसोंने देखा कि रामचन्द्र सीता सहित पर्णशालाके मध्यमें विराजमान हैं और लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहे हैं। आते हुए सूर्पनखाके साथ उन बलवान् राक्षसोंको रामचन्द्रने भी देखा और लक्ष्मणसे कहा—भाई! सावधान हो जाओ। देखो, दुष्ट सूर्पनखा अपने समर्थक राक्षसोंके साथ इधर ही आ रही है। कोई चिन्ता नहीं; आने दो तुम यहीं रहकर देवी सीताकी रक्षा करो, मैं इन दुष्टोंको अभी ठिकाने लगाए देता हूँ। उसप्रकार कहकर महर्षि अगस्त्यका दिया हुआ दिव्य धनुष उठा उसकी प्रत्यंचा चढ़ाई और अक्षय-त्रोण कन्धेपर डाल पर्णशालाके बाहर आए और उन राक्षसोंको सम्बोधनकर कहा मेरा नाम राम है, मैं अयोध्याके राजा दशरथका पुत्र हूँ। अपने भाई लक्ष्मण और स्त्री सीता सहित इस दण्डकारण्यमें आकर निवासकर रहा हूँ। मैं यहाँ जितेन्द्रि, सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ ऋषियोंका जीवन व्यतीत कररहा हूँ। आपलोग मुझे क्यों छेड़रहे हैं? यद्यपि हम

यहाँपर तपस्वी जीवन बितानेकी इच्छासे ही आयेथे तथापि यहाँके ऋषियों मुनियों और तपस्वियोंकी रक्षाके हेतु हमें धनुषबाण धारण करना पड़ा। अब हमलोग उन दुष्ट राक्षसोंका संहारभी करेंगेजो वृथाही दीनोंको सताते हैं। अस्तु यदि आपलोग इस दुष्टकी समर्थनमें हमलोगोंसे युद्ध करने आए हैं तो खड़े रहो और यदि तुमलोगोंको अपने प्राण प्यारे हैं तो भागकर उनकी रक्षा करो। तेजस्वी रामकी ऐसी बाणी सुन उन राक्षसोंने कहा—तुमने हमारे स्वामी खरको असन्तुष्ट किया है, अस्तु उनकी आज्ञासे आज हमलोग अवश्यही तुमलोगोंका बध करेंगे। तुम हम लोगोंका कुछभी नहीं करसकते, हमलोग तुम्हें बातकी बातमें मार डालेंगे। इसप्रकार चौदहों राक्षसोंने एक साथही अपने प्रचण्ड देव-दानव-संहारकारी त्रिशूलको चला दिया। महाराज रामचन्द्रने अग्निके समान आते हुए त्रिशूलोंको देखतेही धनुषपर बाण चढ़ा उन त्रिशूलोंको टुकड़े २ करदिया और फिर त्रोणसे प्रखर तीरोंको निकाल क्रोधपूर्वक धनुषपर धारण किया और अभिमंत्रितकर चलादिया। वे दिव्य बाण वज्रके समान उनके वक्षोंको विदीर्णकर रक्तसे परिपूर्णहो पृथ्वीमें समा गए। चौदहों राक्षसोंने कटेहुए वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। यह कौतुक देख सूर्पनखा क्रोध और क्षोभसे अधीरहो वहाँसे भागी और खरके पास जा पुनः मूर्छितहो पृथ्वीपर गिर पड़ी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा तृतीय अरण्यकाण्ड का उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त॥ १६॥

इक्कीसवाँ सर्ग

सूर्पनखाका पुनः खरके पास जाना

पराक्रमी खरने सूर्पनखाको पृथ्वीपर पुनः पड़ी देख क्रुद्ध होकर कहा—बहिन जब मैंने तुम्हारा कार्य करनेके लिए अपने चौदह बहादुरोंको नियुक्तकर दिया तब तुम क्यों अधीर हो रही हो? तुम निश्चित रहो मेरे योधा महाबलवान मायावी और मेरे भक्त हैं, वे शीघ्रही उन दुष्टोंको पकड़ लावेंगे। युद्धमें उनको जीतनेवाला कोई नहीं है। इससे तुम उठो और रोना कल्पना छोड़ो। खरकी ऐसी वाणी सुन राक्षस-कुल-संहारकारिणी सूर्पनखा उठी और खरसे बोली भाई! मैं तुमसे पहिलेही बता चुकी हूँ कि, वे राजकुमार अत्यन्त पराक्रमी और शूरवीर हैं, उनको जीतलेना हँसीखेल नहीं है। उन बाहुदुरोंने तुम्हा

पराक्रमी और बलवान् योधाओंको संग्राम-भूमिमें बातकी बातमें मार डाला। अब तुम्हें अपनी बहादुरी, अपना महत्व, अपनी भलाई, मेरी बदनामी और अपने चौदहों योधाओंसे तनिकभी सहानुभूति है तो तुम्हारा सर्वप्रथम कर्तव्य है कि तुम अपनी समस्त सेना सुसज्जितकर जब स्थानसे बाहर निकलकर राक्षस-कुल-संहारकारी उन राजकुमारोंको ढूँढ़कर संग्राम-भूमिमें उनका बध करो, नहीं तो इस दण्डकारण्यकाभी सभी स्थानोंसे तुम्हारा आधिपत्य जाता रहेगा। मैं जानती हूँ कि वे राजकुमार जितनेही कोमल और सुकुमार हैं उतनेही शूरवीर और बहादुर हैं। तुम स्वयं सोच सकतेहो जिन्होंने तुम्हारे चौदह चुनेहुए बहादुरोंको क्षणमात्रमें मार डाला तो उनके पराक्रमको साधारण कह लेना भ्रम है। मुझेतो इस बातमेंभी सन्देह हैकि तुम अपनी समस्त सेना लेकरभी युद्धमें विजयीहो सकोगे या नहीं। जबतक तुम्हें कोई शूरवीर लड़ने वाला नहीं मिला तबतक तुम बहादुर बने रहे। परन्तु अब तुमभी भयभीत होरहे हो। तभीतो आनाकानी कररहे हो। राम और लक्ष्मण मनुष्य जातिके हैं। जब तुम मनुष्योंपर विजय न प्राप्त कर सकोगे तब देव और दानवोंसे क्या लड़ सकोगे? राम अत्यन्तही पराक्रमी हैं, मेरी नाककान काट मुझे कुरूप बनाने वाला उसका छोटा भाई लक्ष्मण भी कम पराक्रमी नहीं; बल्कि वह भी बड़ा शूर-वीर है। एक माँदमें दो सिंह कभी नहीं रह सकते। इस दण्डकारण्यमें यदि रामने तुमपर विजय पाई तो उसीका अधिकार होगा और यदि तुमने उन्हें मार डाला तो तुम्हारी कीर्ति अचल हो जायगी। इस प्रकार कहती हुई ऊँचे और बड़े पेटवाली सूर्पनखा फिर पृथ्वी पर गिरकर रोने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

बाईसवाँ सर्ग

रामचन्द्रपर खरकी चढ़ाई

जब दुष्टा राक्षसी सूर्पनखाने खरका इस प्रकार तिरस्कार किया, तब खर क्रोधसे परिपूर्ण हो गया और अत्यन्त कठोर स्वरमें राक्षसीसे बोला— हे सूर्पनखे! तुम्हारे नाक और कान काटकर उन लोगोंने तुम्हारा अपमान नहीं वरन् मेरा अपमान किया है। जिसे मैं कदापि बर्दास्त नहीं कर सकता। मैं अपने पराक्रमके सामने त्रैलोक्यको तुच्छ समझता हूँ। तब वह

अल्प-जीवी मनुष्य किस बिसातमें हैं। उनको मैं अपने हाथसे बध करूँगा। यमराज उन लोगोंकी राह देख रहे हैं। अपने मूर्ख भाईके ऐसे वचन सुनते ही सूर्पनखा प्रसन्न हो गई और खरके बल और पौरुषकी प्रशंसा करने लगी। इस दुष्टाने पहिले खरको क्रोधित किया और उत्साहित करके राम पर चढ़ाई करवा दी। खरने अपने भाई और सेनापति दूषणको बुलाकर आज्ञा दी कि त्रैलोक्यके प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले, कभी रणसे पीछे न हटनेवाले, शस्त्र-विद्यामें निपुण, मायावी, वायुवेगसे चलनेवाले मेरे चौदह-सहस्र योधाओंको इसी समय सुसज्जित करो और मेरा रथ भी तैयार कर अस्त्र और शस्त्रोंसे परिपूर्ण कर शीघ्रतापूर्वक लाओ। आज्ञा पाते ही दूषण एक स्वर्ण-मण्डित और रत्न-जटित रथ जिसमें चितकबरे घोड़े जुते हुए थे, अस्त्र और शस्त्रोंसे परिपूर्ण कर ला उपस्थित किया। क्रोधित हो खर रथारूढ़ हुआ। दूषणने भी अपनी विशाल-वाहिनी राक्षसी सेनाको सुसज्जित कर दिया। राक्षसी सेनाको तैयार देख खरने उसे चलनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही वह भयंकर राक्षसी सेना अस्त्र और शस्त्रोंको नचाती हुई और मेघोंके समान घोर गर्जना करती हुई दण्डकारण्यकी ओर चल पड़ी। महारथियोंके रथ पर मुग्दर, शूल, पट्टिश, परस्वध, चक्र और तोमरादि रक्खे हुए थे। पैदल सेना अपने हाथोंमें शक्ति, परिघ, पट्टिश, धनुष, गदा, तलवार और शूल इत्यादि २ लिए हुए थी। खरकी आज्ञा पाते ही चौदहो सहस्र बलवान् राक्षस शूरवीर जनस्थानसे दण्डकारण्यकी ओर चले। शत्रु को संहार करनेकी इच्छा रखते हुए महाशूरवीर खर कुपित यमराजके समान पत्थर बरसानेवाले मेघोंके समान घोर गर्जना करता हुआ आगे २ चला।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

तेईसवाँ सर्ग

खरकी यात्राके समय अपशकुन

खरकी सेना जिस समय गरजती हुई जन-स्थानसे बाहर निकली, उसी समय आकाश गधेके धूसररंगोंवाले बादलोंसे आच्छादित हो गया। भयंकर गर्जना करनेके बाद रक्त-मिश्रित जलकी वर्षा होने लगी। खरके रथके घोड़े समतल भूमिमें अकस्मात् गिर गए। सूर्य भगवान्के चारों ओर अङ्गार-चक्र

के समान काले और लाल रंगका मंडल हो गया। खरके स्वर्णमंडित ध्वजा पर गिद्ध बैठ गया। जनस्थानके चारों ओर हिंसक पक्षी भयंकर शब्द करने लगे। श्वान और शृगाल रोने लगे, आकाश बादलोंसे छा गया, चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य हो गया। युद्धमें अमङ्गलकी सूचना देनेवाले, काक, कंक, स्वान और शृगाल रोने लगे। सूर्यका प्रकाश मन्द हो गया। वायु तीव्र वेगके साथ चलने लगी। दिनमें ही तारे दिखाई पड़ने लगे। जल-जन्तु जलमें छिप गये। कमल सूख गये, वृक्षोंने अपने फल फूल और पत्तों को गिरा दिया। बिना आँधीके ही आकाश गर्दसे भर गया। घरवालीमैना भी अपनी स्वाभाविक बोलीको त्याग अण्डबण्ड बोलने लगी। रथ पर बैठे हुए खरके चारों ओरकी वस्तुयें हिलने लगीं। अनायास ही उल्कापात और भयंकर शब्द होने लगे। खरके अशुभ अङ्ग फड़कने लगे। इतने भयंकर अपशकुनों और उत्पातोंको देखकर भी बहादुर खर निःशङ्क था। उसकी सेना बराबर दण्डकारण्यकी ओर बढ़ रही थी। अपशकुनोंको देखकर वह कहने लगा—भाइयों! मुझे ये अमङ्गल-सूचक कार्य भयभीत नहीं कर सकते। मुझे इन अपशकुनोंकी रंचमात्र परवाह नहीं, मैं अपने तीखे बाणों से आकाशके नक्षत्रोंको भी बेधकर गिरा सकता हूँ। क्रोध आनेपर मैं कालको भी पराजित कर सकता हूँ। यह बिचारा राम मेरे सम्मुख कब ठहर सकता है। मेरी जिस बहिनको उन दुष्टोंने अपमानित कर कुरूप किया है आज मैं उसे उनका गर्म गर्म रक्त पिलाऊँगा। वीरो! तुम जानते हो कि मैं झूठ नहीं बोलता, अबतक कभी युद्धमें हारा भी नहीं, ऐरावत हाथीपर सवार वज्रधारी इन्द्रको भी मैं कुछ नहीं समझता। तब यह बिचारा मनुष्य रूपधारी राम मेरा क्या बिगाड़ सकता है? खरकी ऐसी वाणी सुन कालके वशीभूत सभी राक्षस प्रसन्न होकर उछलने लगे। आजके भयंकर युद्धको देखनेके लिए सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ऋषि, मुनि और तपस्वीगण वहाँ एकत्र हो गये। उन सब ऋषियोंने आपसमें बातचीत कर महाराज रामचन्द्र के विजयकी कामना करने लगे। देवलोग भी अपने अपने विमानोंपर सवार आकाश-मण्डलमें उपस्थित हो मृत्यु मुखमें जाती हुई खरकी सेनाको देख रहे थे। पराक्रमी खरका दिव्य रथ सबके आगे आगे चल रहा था

और उस रथको घेरे हुए शेनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, परवीराक्ष, परुष, काल, कार्मुक, हंसमाली, महामाली, सर्पास्य, और रुधिरासन इत्यादि चल रहे थे। वीरवर महाकपाल, स्थूलकाय, प्रमाथ और त्रिसिरा ये चारों वीर सेनाकी बगलमें दूषणके पीछे-पीछे चल रहे थे। ग्रहोंसे घिरे सूर्यके समान बलवानोंसे घिरा हुआ खर गमन कर रहा था। अब वह भयंकर राक्षसोंकी सेना राम और लक्ष्मणके आश्रमके समीप जा पहुँची।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका तेइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ सर्ग

महाराज रामचन्द्र और खरकी सेनाका सामना

जिस समय राक्षसी सेना रामचन्द्रके आश्रमके समीप पहुँच रही थी। उस समयके होनेवाले उत्पातोंको देखकर रामचन्द्रने अपने भाई लक्ष्मणसे कहा—भाई, आकस्मिक होनेवाले ये उत्पात प्रजाके अमंगलकी सूचना दे रहे हैं। ज्ञात होता है कि हमलोगों पर कोई आपत्ति आनेवाली है, उसीका यह संकेत है। देखो आकाशमें उठनेवाले यह धुमैले रंगके बादल जो रक्त बरसा रहे हैं, यह भी हमें युद्धकी सूचना दे रहे हैं। देखो, मेरे बाणोंसे धुआं निकल रहा है इससे भी ज्ञात हो रहा है कि निकट भविष्यमें भीषण युद्ध होनेवाला है। मेरा दाहिना हाथ फड़क रहा है जो मेरी विजयकी सूचना देता है। तुम्हारा प्रसन्न मुख-मण्डल भी विजयका सूचक है। शीघ्रही राक्षसोंका संहार होगा। भाई! जरा ध्यान देकर सुनो, क्रूर कर्मोंके करनेवाले राक्षसोंका गर्जन तर्जन और उनकी बजाई हुई रणभेरी साफ सुनाई पड़ रही है। भाई! आपत्ति आनेके पहिलेही उपाय करना चाहिए। भाई! आपत्ति आ गई! अस्तु तुम शीघ्रतापूर्वक अपना धनुष और बाण ले देवी सीता सहित पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ और उसका द्वार वृक्षोंकी डालियों और लताओं से बन्द कर लेना। भाई! तुम्हें मेरे चरणोंकी सौगन्ध है, इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, शीघ्रही मेरी आज्ञाका पालन करो। मैं जानता हूँ कि तुम स्वयं बलवान् हो और इन दुष्ट राक्षसोंको अकेलेही मार सकते हो, परन्तु नहीं, इन्हें आज मैं ही संहार करना चाहता हूँ। रामचन्द्रकी आज्ञानुसार वीरवर लक्ष्मण धनुष और बाण उठा देवी सीताको लेकर एक अत्यन्त गुप्त गुफामें

भीतर चले गए। लक्ष्मण और सीताके जाते ही वीरवर रामचन्द्रने अपने दिव्य कवचको धारणकर निर्गुण धनुषको गुण-युक्त किया और शत्रुओंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। महाराज रामचन्द्र उस समय अन्धकारमें प्रज्वलित अग्निके समान प्रज्वलित हो रहे थे। युद्ध देखनेके हेतु देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, ऋषि, महर्षि और तपस्वी गण एकत्रित हो आपसमें कहने लगे—लोकोंका कल्याण चाहनेवालेका कल्याण हो। इस भयङ्कर राक्षसी सेनाका रामचन्द्र उसी प्रकार संहार कर डालें जिस प्रकार विष्णु भगवान्ने राक्षसोंका संहार किया था। इसप्रकार कहते हुए वे लोग विचार करने लगे कि, इधर महाराज रामचन्द्र अकेले हैं और उधर राक्षसोंकी गणना चौदह सहस्र है। यह युद्ध किस प्रकार और कैसा होगा? इन विचारोंने उस समय सभीको स्तम्भित और चकित कर दिया। महापराक्रमी और तेजस्वी रामको युद्धके लिए अकेला खड़ा देख प्राणीमात्र भयभीत हो गया। महाराज रामचन्द्र संग्राम-भूमिमें खड़े हुए रुद्रके समान भयंकर दिखाई पड़ रहे थे। जिस समय दर्शक गण इसप्रकारका विचार-विमर्श कर रहे थे उसी समय घोर गर्जन तर्जन करता हुआ राक्षस-दल वहाँ आ पहुँचा। राक्षस-गण धनुष-टंकार करते और जंभाइयाँ लेते हुए आगे बढ़ रहे थे। उनके कठोर और भयंकर शब्दोंसे सारा वन-प्रदेश गुंजरित हो उठा। बनमें निवास करने वाले पशु एवं पक्षी-गण इधर-उधर भागने लगे। अब राक्षसी सेना रामचन्द्रके और भी समीप आ गई, क्रोधसे भरे हुए महाराजने आगे बढ़कर उसे देखा। उस समय उनका रूप अत्यन्त प्रदीप्त हो रहा था। संग्राम-भूमिमें खड़े हुए क्रुद्ध महाराज राम संग्राम-भूमिमें घिरे हुए राक्षसोंके बीच यज्ञ-विध्वंसकारी वीरभद्रके समान प्रतीत हो रहे थ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२४॥

पच्चीसवाँ सर्ग

रामका खरसे युद्ध

आश्रममें पहुँच वीरवर खरने क्रोधमें भरे हुए रामको धनुष और बाण लिए खड़े प्रतीक्षा करते हुए देखा। अस्तु उसने भी क्रोधित हो अपना धनुप उठाया और सारथीसे कहा कि मेरे रथको रामके सन्मुख ले चलो।

आज्ञानुसार सारथीने रथको रामचन्द्रकी ओर बढ़ाया। खरको रामकी ओर बढ़ते देख उसके बारह शरीर-रक्षक योधाओंने शीघ्रता पूर्वक उसी ओर बढ़ खरको चारों ओरसे घेर लिया। अपने रक्षकोंसे घिरा हुआ खर रथ में बैठा हुआ वैसा ही प्रतीत हो रहा था जैसे नक्षत्रोंके बीचमें उदय हुआ अमंगल ग्रह। पराक्रमी खरने राम पर एक हजार बाण चलाए, खर को देखा देखी अन्यान्य राक्षसोंने भी रामचन्द्रके ऊपर अनेकानेक शस्त्रोंकी वर्षा की। मुद्गर, शूल, प्रास, खड्ग, पट्टीश, इत्यादि २ अनेकों अस्त्र अकेले रामपर खड़े हुए। रामचन्द्र पर सबने एक साथ ही प्रहार किया। महाभयंकर राक्षस काले मेघोंके समान गरजते हुए रामचन्द्र पर एक साथ ही टूट पड़े। पर्वताकार हाथियों पर सवार दुष्ट राक्षसोंने रामचन्द्रको मार डालनेकी इच्छा करके अनवरत बाण-वृष्टि आरम्भ कर दी। उस समय राक्षसोंसे घिरे हुए रामचन्द्र प्रदोषतिथिमें गणोंसे घिरे भगवान् शंकरके समान प्रतीत हो रहे थे। समस्त राक्षसों द्वारा चलाए हुए अस्त्र शस्त्रोंको रामचन्द्रने अपने बाणोंसे उसी प्रकार रोक दिया जिसप्रकार नदीके प्रवाह को सागर रोक देता है। यद्यपि राक्षसों द्वारा प्रहार किए हुए अस्त्र शस्त्रोंसे रामचन्द्रका शरीर क्षतविक्षत हो रहा था तथापि उनका मुखमण्डल प्रसन्न था। खूनमें लथ-पथ राम उस समय मेघोंसे घिरे सन्ध्याकालीन सूर्यके समान प्रतीत हो रहे थे। सहस्रों राक्षसों से घिरे हुए और आहत रामचन्द्र को देखकर देव, पितृ और सिद्धचारण गण दुःखी हो गये। लोगोंको दुःखी, भयभीत और त्रस्त देख भगवान् राम ने भी क्रोधित हो कोदंड सँभाला और कालपाशके समान कभी न रुकनेवाले सहस्रों बाणोंका प्रहार किया। रामचन्द्रके दिव्य बाणोंने राक्षसोंको अंग-भंग और छिन्न-भिन्नकर पृथ्वीमें गिरा दिया। वे दिव्य बाण आकाश-मण्डलमें अग्निके समान प्रज्वलित दिखाई पड़ने लगे। उन तीक्ष्ण बाणोंने राक्षसोंकी ध्वजा-पताका एवं शरीरोंको काट-काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया। रामचन्द्रके विकट बाणोंसे हाथी, घोड़े, इत्यादि जूझ-जूझकर पृथ्वीमें गिर पड़े। रामचन्द्र के नालीक, नाराच और विकीर्ण नामके बाणोंके प्रहारसे सहस्रों राक्षसोंका संहार हो गया। इन दिव्य बाणों द्वारा राक्षसी सेनाका उसी प्रकार संहार हो रहा था जिस प्रकार दावाग्निसे सूखा हुआ वन। खरके बहादुर वीरोंने आगे

बढ़कर रामचन्द्रजीके ऊपर अनेकों अस्त्र और शस्त्रोंका प्रहार किया, परन्तु रामचन्द्रने अपने तीखे तीरोंसे समस्त अस्त्रोंका टुकड़ेकर उन योद्धाओंको भी मार डाला। राक्षसी सेना अविराम संहार होने लगी। भयभीत राक्षसोंने भाग कर खरके पीछे शरण ली। अपनी सेनाको त्रस्त और भयभीत देख दूषणने उत्साहित किया और क्रोधावेशमें रामचन्द्रकी ओर अत्यन्त प्रबल वेगसे झपटा। दूषणको तेजीके साथ रामचन्द्रकी ओर जाते देख हजारों राक्षस अपने-अपने हथियार संभालकर एक साथ ही रामचन्द्रपर टूट पड़े। अबकी बारका युद्ध अत्यन्त ही भीषण और भयंकर हुआ, कारण पराक्रमी और बलवान राक्षसोंने एक बार ही धावा बोलकर फिर रामचन्द्रको चारों ओरसे राक्षसोंने बाण-वृष्टिकर मुझे अपने बाणोंसे तोपही दिया। जिस ओर देखते उसी ओर अन्धकार दिखाई पड़ रहा था। अपनी दयनीय दशापर रामचंद्रको क्रोध हो आया और उन्होंने अत्यन्त तीव्र और तेजमय गंन्धर्वास्त्रको त्रोणसे बाहरकर सन्धान किया। यह बाण निकालतेही एक चढ़ाते २ सौ होगए और निकालते २ हजारोंकी संख्यामें हो राक्षसोंके चलाए हुए समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको छिन्न भिन्नकर दिये। इस समय रामचन्द्रकी तेजी और फुर्ती देखने ही योग्य थी। वह कब बाण निकालते हैं और कब चढ़ाते हैं यह कोई नहीं देख सकता था। वहाँ तो बाणोंके चलनेका सर्राटा सुनाई पड़ता था और राक्षसी सेनाका संहार दिखाई पड़ता था। रामचन्द्र द्वारा चलाए गए बाणोंने सूर्यमण्डलको ढँक दिया और चारों ओर अन्धकारही अन्धकार होगया। रामचन्द्रने वह युद्ध कौशल दिखाया कि राक्षसी-सेनाका अनवरत संहार होने लगा। सहस्रों राक्षस मरे हुए, कटे हुए एवं बाणोंसे विधे हुए संग्रामभूमिमें पड़े दिखाई दिए। वह मस्तक जिनपर कभी छत्र शोभयमान होता था एवं वे भुजाएँ जो आभूषणोंसे संयुक्त रहती थीं इस समय रक्तसे लथपथ संग्राम-भूमिमें इधर उधर पड़े दिखाई देते हैं। रामचन्द्रके बाणोंसे मरे हुए राक्षसों, हाथियों और घोड़ों तथा टूटे हुए स्यन्दनोंसे संग्रामभूमि पट गई। इस समयका दृश्य अत्यन्त भयंकर और वीभत्स था। राक्षस भयभीत और त्रस्त थे। उन्हें रामचन्द्रसे युद्ध करनेका साहस न रहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

राम और दूषणका संग्राम

तब अपनी सेनाका रामचन्द्र द्वारा इसप्रकार संहार होते देख दूषणको क्रोध आगया। अस्तु उसने अपने पाँच हजार उन चुने हुए योद्धाओंको रामचंद्र पर आक्रमण करनेकी आज्ञादी, जो कभीभी युद्ध में हारे नहीं थे। वे सब योद्धा एक साथही रामचन्द्रपर हथियारोंकी वर्षा करनेलगे, तेजस्वी रामने शत्रुओंके समस्त अस्त्रोंको अपने तीखे बाणसे काट डाला और फिर उनको मारनेकी इच्छासे अविराम बाणवर्षा करने लगे। अपनी सेनाको रामके बाणों द्वारा ढकी देख दूषण अत्यन्त क्रोधित हुआ और धनुष सन्धानकर तीक्ष्ण-बाणों की वर्षा करने लगा। दूषणने अपने बाणोंसे रामचन्द्रको तोप दिया। शत्रुके बाणों द्वारा ढके हुए रामचन्द्रने क्रोध करके अपने पैने बाणोंसे दूषणके धनुष को काट दिया, उसके रथके चारो घोड़ोंको मार दिया। दूषणका धनुष टूट गया, घोड़े और सारथी मारेगए और वह घोड़ोंको मार दिया। तब उसे अत्यन्त क्रोध आया और वह स्वर्ण-मण्डित पर्वताकार देवताकोभी प्रकाशित करनेवाला परिघ हाथमें लिया। वह परिघ लोहेके काँटोंसे संयुक्त और चरबीमें सना हुआ था। काल-चक्रके समान भयंकर परिघको लेकर दूषण रामचन्द्रकी ओर झपटा, द्रुत-वेगसे परिघधारी दूषणको अपनी ओर आता देख रामचन्द्रने अपने बाणों द्वारा आभूषणोंसे युक्त उसकी दोनों भुजाएँ काट दी। परिघ समेत भुजाएँ पृथ्वीपर गिर पड़ीं। साथही दाँत टूटे हुए हाथीके समान दूषणभी पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह दृश्य देख सबलोग रामचन्द्रकी प्रशंसा करने लगे। दूषणको मरते देख स्थूलाक्ष, महाकपाल और महाबली नामके तीन राक्षस काल-ग्रास समान रामचन्द्रकी ओर झपटे। इन तीनोंने अपने अपने अभ्यस्त अस्त्र, शूल, पट्टिश और परिघ द्वारा रामचन्द्रपर आक्रमण किया। पराक्रमी रामचन्द्रने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा इनका समुचित सत्कार किया। महाकपालका मस्तक काट दिया गया। प्रमाथीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न होगए और स्थूलाक्षको अन्धा कर दिया। इसप्रकार ये तीनों सेनापति मारे गए। रामचन्द्रके विकट बाणोंसे दूषणकी पाँच हजार सेनाओंका संहार होगया। पराक्रमी रामचन्द्रके दिव्य बाणोंने राक्षसोंकी ध्वजा

पताकाएँ, धनुष, हाथ, पाँव और मस्तकोंको काट डाला। लम्बे २ बालोंवाले राक्षसोंके खूनसे लथपथ मस्तकों द्वारा पृथ्वी कुशाच्छादित यज्ञवेदीके समान दिखाई पड़ती थी, चारों ओर मांस और चरबी एवं रक्तका कीचड़ हो गया। रामचन्द्रने क्षणमात्रमेंही अपने विषम बाणोंसे चौदह सहस्र राक्षसी सेनाका वध कर डाला। राक्षसी सेनामें केवल दोही वीर शेष रहे, पराक्रमी खर और त्रिसिरा। तब अपनी चौदह सहस्र सेनाका रामचन्द्र द्वारा वध देख महापराक्रमी खर रथारूढ़ हो अत्यन्त वेगसे रामचन्द्रपर झपटा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२६॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

त्रिसिरा राम संग्राम

अपने राजा खरको क्रोध-पूर्ण मुद्रासे रामचन्द्रकी ओर झपटते देख सेनापति त्रिसिराने अपने रथको आगे बढ़ाया और हाथ जोड़कर खरसे कहा—राजन्! अभी तो मैं मौजूद हूँ, आपको युद्धमें जानेकी आवश्यकता नहीं। आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं अभी बातकी बातमें इस दुष्टको मार डालता हूँ। आप खड़े-खड़े मेरा और रामका भयङ्कर युद्ध देखिये। त्रिसिरा की ऐसी बातें सुन खर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही त्रिसिरा अपने वेगवान रथपर सवार होकर रामचन्द्रकी ओर झपटा। तीन मुण्डोंवाला वह राक्षस संग्राम-भूमिमें तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान आगे बढ़कर रामचन्द्रपर अनवरत बाण-वर्षा करने लगा। त्रिसिराको अपनी ओर बढ़ते देख रामचन्द्रने भी अपना धनुष संभाला और बढ़ने लगे। जिस प्रकार मस्त गजराज और मृग-राजका युद्ध होता है, उसी प्रकार रामके साथ त्रिसिराका युद्ध होने लगा। त्रिसिराने अपने प्रखर तीन बाणों द्वारा रामचन्द्रके मस्तकपर आघात किया। यद्यपि बाणोंने भीषण यन्त्रणा दी; तथापि रामचन्द्रने इस आघातको सहन कर लिया और कहा—मुझको संग्राममें जीतनेकी इच्छा रखनेवाले राक्षस सेनापति! क्या तुम में इतना ही पौरुष है? तुम्हारे बाणोंका आघात मुझे फूलके समान ही प्रतीत हुए हैं। अब मेरे आघातोंको सहन कर। इस प्रकारके वचन कह रामचन्द्रने अपने चौदह बाणों द्वारा उसकी छाती विदीर्ण कर दी। चार

बाणोंसे रथके चारों घोड़े और आठ बाणोंसे सारथीको मार डाला और उसकी ध्वजा काटकर उसके रथको भी तोड़ दिया। रथसे नीचे उतरते हुए त्रिसिराके वक्षको रामचन्द्रने पुनः आहत किया। त्रिसिरा निश्चेष्ट खड़ा रहा। तब रामचन्द्रने तीन बाणों द्वारा उसके तीनों मस्तकोंको काट डाला। मस्तक कटनेपर राक्षसका कबन्ध पृथ्वीपर गिर पड़ा। जिस प्रकार व्याधके डरसे मृग भागते हैं उसी प्रकार बचे हुए राक्षस भी भाग चले। परन्तु बलवान खरने उन राक्षसोंको लौटाया और स्वयं अपना रथ आगे बढ़ाया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकांडका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

खरका बल-प्रदर्शन

महा पराक्रमी दूषण और त्रिसिरा सहित समस्त राक्षसी-सेनाका रामचन्द्र द्वारा अत्यन्त अल्प समयमें वध देख राक्षसोंका राजा मनही मन भयभीत हुआ। अपने योद्धाओंका विनाश देख उसे महान् कष्ट हुआ। साथ ही साथ क्रोध भी चढ़ आया और वह अपना धनुष सँभाल रामचन्द्रका उसी प्रकार सामना किया जिस प्रकार नमुचिने इन्द्रका सामना किया था। खरने रामचन्द्रपर अपने भीषण बाणोंका प्रहार आरम्भ किया। उसके धनुषपर बाण चढ़ानेकी दृढ़ता और हस्त लाघवता देखने ही योग्य थी। क्षणमात्रमें खरके बाणोंसे पृथ्वी एवं आकाश दोनों ही भर गए। खरका अद्भुत पराक्रम देख रामचन्द्रने भी अपना धनुप सँभाला और वह भी अनवरत बाण-वृष्टि करने लगे। एक दूसरेपर विजय-कामना रखनेवाले दोनों वीरोंके चलाए हुए बाणोंसे आकश-मण्डल भर गये, सूर्य भगवान् ढक गए। उस समय रथपर बैठा हुआ खर साक्षात् यमराजके समान प्रतीत हो रहा था। उसका अनुमान था कि पराक्रमी राम युद्ध करते करते थक गये होंगे। इस अवस्थामें इनका मार लेना कठिन काम नहीं, परन्तु सिंहके समान पराक्रमी खरके भयङ्कर आक्रमणको देखकर भी रामचन्द्र उसी प्रकार निःशंक थे जिस प्रकार गीदड़को देखकर सिंह। रथारूढ़ खर उसी प्रकार रामचन्द्रके पास गया जिस प्रकार पतिंगा दीपकके पास जाता है। पराक्रमी खरने अपने तीखे बाणोंसे रामचन्द्रके धनुषको काट डाला। फिर वज्रके समान सात बाणों द्वारा राम-

न्द्रके मर्म-स्थानोंपर आघात किया। पुनः एक हजार बाणों द्वारा आघात करता हुआ खर घोर गर्जन करने लगा। उन बाणोंने सूर्य समान चमकने वाले रामचन्द्रके कवचको विदीर्ण कर दिया। उस समय बाण-विद्ध एवं रक्त-रंजित राम बिना धुएँकी अग्निके समान ही प्रतीत हो रहे थे। अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए रामचन्द्रने खरके मार डालनेकी इच्छासे अपना दूसरा वैष्णव नामक धनुष उठाया। और सोनेके पंखवाले बाणोंसे खरके रथकी ध्वजाको काटकर गिरा दिया। ध्वजाके कटनेपर खरने चार बाण पुनः रामचन्द्रके मर्म-स्थानोंमें मारा। उन बाणोंसे छिदा हुआ रामचन्द्रका शरीर रक्तसे लथ-पथ हो गया। बाणोंसे व्यथित होनेपर रामचन्द्रको अत्यन्त क्रोध चढ़ आया और खरपर बाणोंका संधान किया। एक बाण ललाटपर दो दोनों भुजाओं पर तथा चार बाणोंसे उसका वक्ष विदीर्ण कर दिया। उसे सँभलनेका मौका दिए बिना ही तेरह बाणोंसे पुनः प्रहार किया जो खरके शरीरमें समा गए। चार बाणोंसे रथके घोड़े, एक बाणसे पहिए और छः बाणोंसे सारथीको मार डाला। तीन बाणोंसे वंस, दो से धूरा और बारह बाणोंसे रथका धनुष काट डाला। इस प्रकार अपना सब कुछ नष्ट भ्रष्ट देख खर अत्यन्त क्रोधकर अपनी गदा ले रामचन्द्रपर झपटा। आकाश मण्डलसे युद्ध देखनेवाले देवताओंने महाराज रामकी जय-जयकार की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२८॥

उन्तीसवाँ सर्ग

घोर संग्राम

खरको गदा लेकर युद्धके लिए उद्यत देख महाराज रामचन्द्रने कहा-राक्षसराज! जिस समय तुम्हारे पास हाथीघोड़े रथ इत्यादि समेत विशाल सेना थी उससमय तुमने महान् निन्दित और क्रूरकर्म किए हैं। परन्तु यह नहीं सोचा कि तीनों लोकोंका अधिपतिभी दया-रहित होकर पापकर्म करनेसे जीवित नहीं रह सकता। तुम्हारी क्या स्थिति है। कुकर्म करनेवाले निन्दित मनुष्यको उसके परिवारवालेही समाप्तकर देते हैं। अनजानमें अथवा जानमें जो प्रसन्नता पूर्वकपाप कार्य करता है और उसका पश्चातापतक नहीं करता वह पापी अवश्यही नष्ट हो जाता है। दण्डकवनके अनेक तपस्वियोंको तुमने

अकारणही मारा है, क्या उसका फल तुम्हें नहीं मिलेगा ? संसारमें निन्दित कर्मोंका करनेवाला ऐश्वर्यवान् एवं श्रीमान्‌भी एक दिन नष्ट हो जाता है। पापी मनुष्यको समय आनेपर पापोंका फल अवश्य मिलता है। जिसप्रकार ऋतु आनेपर फल और फूल आते हैं उसीप्रकार समय आनेपर पापोंका फलभी उदय होता है। अभिमानी राक्षस ! आज मेरे स्वर्णमण्डित बाणोंकी विकट मार से तुम्हारा नाश होगा। जो गति तुमने दण्डकारण्य-निवासी मनुष्योंकी बनाई है वही दुर्गति तुम्हारीभी होगी। तुम्हारे हाथों मारे गये पवित्र ऋषियोंकी आत्माएँ आज आकाश-मण्डलसे तुम्हारी दुर्गति देखकर प्रसन्न होंगी। सुनो राक्षसराज ! इससमय तुम अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे अपने सभी भयंकर अस्त्रोंका प्रहार मुझपरकर डालो, कुछ कसर बाकी न रक्खो; क्योंकि आज मैं तुम्हारे मस्तकको तालफलके समान फोड़ डालूँगा। रामकी ऐसी वाणी सुनकर अत्यन्त क्रोधकर खर बोला—राम ! अभी तुमने संग्राम-भूमिमें साधारण राक्षसों काही वध किया है, परन्तु फूले नहीं समा रहे हो। अपने मुँहसे अपनी बड़ाई करना बीरों का काम नहीं। शूरवीर तेरी समान अपनी प्रशंसा नहीं कर सकता। तूने अपने मुख अपनी प्रशंसाकर अपनी नीचताहीका परिचय दिया है। मैं अचल पर्वतके समान हाथमें गदा लिएहुए तेरे सम्मुख खड़ा हूँ, फिरभी तू इस प्रकारका निरर्थक बकवाद कररहा है। क्या तू मेरे पराक्रमको नहीं जानता ? मैं तेरे सहित तीनों लोकोंका संहार करनेकी सामर्थ्य रखता हूँ। यद्यपि मैं तुझे और भी कुछ कहना चाहता था परन्तु नहीं सूर्यास्त अब समीपही है। अकारण ही युद्धमें विघ्न डालना ठीक नहीं। आज मैं समस्त मारे गये राक्षसोंका बदला तुझसे लूँगा। इसप्रकार कहकर खरने अपनी भीषण गदा रामचन्द्रपर फेंकी। वह भयंकर गदा वृक्षों और लताओंको छिन्न भिन्न करती हुई रामचन्द्रकी ओर चली। रामचन्द्रने भीषण गदाको अपनी ओर आते देख अपने बाणोंसे उसे खण्ड २ कर पृथ्वीपर गिरा दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२९॥

तीसवाँ सर्ग

खर-वध वर्णन

धर्मात्मा रामने खरकी गदाको काटकर हँसते हुए कहा—मूर्ख राक्षस ! क्या यही तुम्हारी शक्ति है ? तुम झूठे, कायर और पराक्रम-हीन हो, व्यर्थ ही

बड़ी बड़ी बातें करता है। हे राक्षसराज! अब मैं तेरे प्राणोंका नाश उसी प्रकारकर डालूँगा जिसप्रकार गरुड़ने अमृत छीन लिया था। मेरे बाणों द्वारा तेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग कट २ कर पृथ्वीपर गिरेंगे और तेरा यह अभिमानी शरीर पृथ्वीपर लोटेगा। हे पापात्मा, जिस समय मैं अपने प्रखर बाण द्वारा जनस्थानके पापियोंका संहार कर डालूँगा, उस समय यहाँके रहनेवाले ऋषि मुनि और तपस्वीगण प्रसन्न हो जायँगे और अपने महान् शत्रु राक्षसों के नाशहो जानेसे सुखपूर्वक यहाँ विचरण करेंगे। तेरे मरने पर पापमें रत तेरी दुष्ट स्त्रियाँ भी यह बन छोड़ भाग जायँगी। क्रोधित रामचन्द्रकी ऐसी वाणी सुन बलवान् खर भी क्रोध-पूर्ण वाणीमें रामचन्द्रसे कहा—दुष्ट! तू बड़ा अभिमानी है। तेरा काल तेरे शिरपर सवार है। परन्तु फिरभी तू निर्भय खड़ा इसप्रकार प्रलाप कर रहा है। ठीक है, मरनेवाले प्राणीके उचित और अनुचित ज्ञानका नाश हो जाता है। क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ शक्ति-हीन हो जाती हैं। इसप्रकार कहकर गरजते हुए खरने एक शालवृक्ष उखाड़ रामचन्द्रपर फेंका। रामचन्द्रने अपने बाणोंसे शाल वृक्षको छिन्न भिन्नकर खरके मारनेकी इच्छासे एक सहस्र बाणोंका सन्धान किया। बाणों के लगनेसे उस राक्षसके शरीरसे उसी प्रकार खून बहने लगा मानों पर्वतपर से उसके झरने झर रहे हैं। रामचन्द्रके बाणोंके आघातसे बलवान खर व्याकुल हुआ। परन्तु रुधिर-गन्ध नाकमें जाते ही वह उन्मत्त हो गया और भीषण गर्जना करता हुआ रामचन्द्रपर झपटा। राक्षसको अत्यन्त प्रबल वेगसे अपनी ओर आते देख राम कुछ पीछे हट गए और बातकी बातमें सजग हो राक्षसको मार डालनेकी इच्छासे विकट बाणोंका सन्धान किया। देवराज इन्द्रसे प्राप्त बाणको रामचन्द्रने खरको मार डालनेकी इच्छासे धनुष पर चढ़ाया। भयंकर गर्जना करता हुआ वह तीक्ष्ण बाण वज्रके समान ही राक्षसके वक्षमें घुस गया और महा पराक्रमी खर पृथ्वीपर गिर पड़ा। खरके मरते ही देवताओंने भगवान् राम पर पुष्पोंकी वर्षाकी और दुंदुभी बजा प्रसन्नता प्रकट करने लगे। देवताओंके बाद ऋषि, महर्षि और तपस्वी मुनियोंकी बारी आई। अगस्त्य इत्यादि महर्षियोंने रामचन्द्रकी यथोचित पूजाकर कहा—हे राम! देवराज इन्द्र महर्षि शरभङ्गके आश्रममें इसीलिए

आए थे और हम लोगोंका कार्य पूर्ण हुआ। अब हम लोग यहाँ सुखपूर्वक निवास कर सकेंगे। ऋषि लोग इस प्रकार कह ही रहे थे कि वीरवर लक्ष्मण देवी सीता सहित गुफाओंसे बाहर निकल रामचन्द्र के समीप आये। वीरवर लक्ष्मणने प्रणामकर रामचन्द्रकी विधिवत् पूजाकी। रामने लक्ष्मण और सीता दोनोंका आलिङ्गन किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतिय अरण्यकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

अकम्पनका रावणके पास जाना और रावणका क्रोध करना

खरदूषण इत्यादि महा पराक्रमी राक्षसोंके चौदह-सहस्र सेना सहित मारे जानेके बाद अकम्पन नामका एक राक्षस जो बच गया था, भागकर लंका-के राजा रावणके पास गया और हाथ जोड़कर कहा—महाराज ! जनस्थानका समस्त राक्षस समुदाय मय खर और दूषण के संहार हो गये। मैं ही एक बचा हूँ जो समाचार लेकर यहाँ तक आया। इतना सुनते ही रावणके नेत्र लाल हो गए, मुखमंडल तमतमा उठा। आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने-लगीं। अत्यन्त क्रोधमें भरकर रावणने कहा—अकम्पन ! किसके सिर मृत्यु सवार हुई है ? कौन संसारमें जीवित नहीं रहना चाहता ? किस नीचने जनस्थानके राक्षसोंको मारा ? तुम जानते हो कि मुझसे शत्रुताकर इन्द्र, वरुण, कुबेर और विष्णु भी सुखसे नहीं जी सकते। मैं अपने पराक्रमसे अग्निको भी भस्मकर सकता हूँ। जलको सुखा सकता हूँ, वायुके वेगको रोक सकता हूँ, काल और मृत्युको भी जीत सकता हूँ। महाराज रावणको अत्यन्त क्रोधित देख अकम्पनने हाथ जोड़कर अभयदानकी भिक्षा माँगी। अभय वचन पाकर उसने युद्धका ठीक २ वर्णन करना आरम्भ किया। महाराज ! अयोध्या-पति महाराज दशरथके पुत्र राम नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके शरीरका गठन सिंहके समान, कन्धे ऊँचे, भुजाएँ लम्बी एवं गोल और सुडौल हैं। रंग श्याम, महा तेजस्वी, और बलवान् हैं, उन्हींने जनस्थानके राक्षसोंका संहारकर डाला। अकम्पनकी ऐसी वाणी सुन राक्षसोंका राजा रावण लम्बी सांस लेता हुआ बोला—अकम्पन ! बताओ क्या उस दुष्ट रामने इन्द्रादि देवताओंके साथ जनस्थानपर आक्रमण किया है ? अकम्पनने कहा-राजन् !

पराक्रमी राममें अतुलित तेजोबल है, वह श्रेष्ठ धनुर्धारी और समस्त अस्त्र शस्त्रोंके ज्ञाता और पण्डित हैं। उनके साथ उनका छोटा भाई लक्ष्मण है, जिसके नेत्र लाल मुख-मण्डल चन्द्रमाके समान गम्भीर है। अग्निके साथ रहने वाली वायुके समान ही उन लोगोंने जनस्थानके राक्षसोंको भस्म कर डाला। न तो उनके साथ कोई देव था और न कोई दानव, केवल अकेले रामने अपने सुवर्ण-मण्डित बाणों द्वारा राक्षसोंको मार डाला। रावणने कहा, तब मैं रामको मारनेके लिए जनस्थानमें जाऊँगा और देखूँगा कि राममें कितना पराक्रम है। अकम्पनने कहा—प्रभो! वह राम अतुलबल, तेज और शक्तिवाला है उसके क्रोधित हो संग्राम-भूमिमें आनेपर कोई जीत नहीं सकता। वह अपने बाणोंसे वेगवती नदीकी धाराको रोक सकते हैं, रुकी हुई धाराको पुनः प्रवाहित कर सकते हैं, आकाश-मण्डलके तारागणोंको पृथ्वी पर गिरा सकते हैं, और दीन दुखी पृथ्वीके समस्त दुखोंको नष्टकर सकते हैं। वह अपने बाणोंसे सागर और वायुके वेगको रोक सकते हैं, वह अपने बाणों से संसारका नाशकर सकते हैं, और संसारको पुनः जिला सकते हैं। मेरा तो विचार है कि आप समस्त राक्षसी सेना लेकर भी उन्हें नहीं जीत सकते। समस्त देवता और दैत्य मिलकर भी उनसे विजय नहीं प्राप्तकर सकते। उनके मारनेकी युक्ति मैं आपको बताता हूँ सुनिए—रामके साथ उनकी परम सुन्दरी स्त्री सीता भी है जिसके समान सुन्दरी स्त्री त्रैलोक्यमें भी नहीं है। यदि आप किसी प्रकार उस सुन्दरीका हरण कर सकें तो राम उसके वियोगमें आपही मर जायँगे। अकम्पनकी यह बात सुन, रावण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बोला—तुमने ठीक कहा, मैं ऐसा ही करूँगा। अकम्पनसे इस प्रकार कह अपने दिव्य रथपर सवार हो दिशाओंको प्रदीप्त करता हुआ रावण जनस्थानकी ओर चला। आकाश-मण्डलमें चलता हुआ रावणका रथ बादलोंसे घिरे चन्द्रमाके समान प्रतीत हो रहा था। चलते २ रावण ताड़काके पुत्र मारीचके आश्रमपर पहुँचा। महाराज रावणको इसप्रकार आया हुआ देख मारीचने उसका समुचित सत्कार कर पूछा—राजन्! आप अपने परिवार समेत कुशलसे तो हैं? मुझे सन्देह हो रहा है; क्योंकि आप अकेले इसप्रकार यहाँ पधारे हैं, आपका मुख-मण्डल

भी चिन्तित प्रतीत होता है। रावण मारीचकी ऐसी वाणी सुन कहने लगा—प्रिय, दुष्टात्मा रामने जनस्थाके राक्षसोंका संहार कर डाला है। अतु में उस रामकी सुन्दरी स्त्रीका हरण करूँगा। इस काममें मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ। महाराज रावणके वचन सुन मारीचने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक कहा—राक्षसेन्द्र! सीताको हरण करनेकी सलाह आपको किस दुष्टने दी? इसप्रकारकी सलाह देनेवाला कौन मूर्ख है? निश्चय यह दुष्ट आपका गौरव नष्ट करना चाहता है। सीता-हरण करनेके लिए उत्साहित करनेवाला व्यक्ति आपका मित्र नहीं शत्रु है। इसमें सन्देह नहीं कि उस दुष्टने सर्पके दाँत उखाड़नेकी तुम्हें सलाह दी है। बतलाइये तो किस दुष्टने आपके साथ इसप्रकारकी शत्रुता की है। कहिए, आपको कुमार्गपर चलनेका उपदेश देनेवाला कौन है? राजन्! वह राम मतवाले हाथीसेभी भीषण है, संग्राम-भूमि में उसके सामने कोई नहीं ठहर सकता। उसका उत्तम वंश गजशुण्ड है, प्रताप उसका मद है, और उसके दोनों हाथही गजदन्त हैं। वन मनुष्य रूपी सिंह है संग्राम-भूमिकी उपस्थितिही उसकी सन्धि है। वह रणस्थलमें रण-कुशल राक्षस रूपी मृगोंको मारनेवाला है। तलवार उसके दल हैं, बाण उसके अङ्ग हैं ऐसे पुरुष सिंहको सोतेसे जगाना उचित नहीं। अस्तु आप चुपचाप अपनी राजधानी लंकाको लौट जाओ और वहाँ अपनी सुन्दरी स्त्रियोंके साथ भोग विलास करो। रामको उसकी स्त्री सीताके साथ दण्डकारण्यमें विचरने दो। मारीचकी धार्मिक वाणी सुन रावण चुपचाप लंकाको लौट गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

सूर्पणखाका रावणके पास जाना

अत्यन्त पराक्रमी चौदह सहस्र राक्षसोंका संहार अकेले रामचन्द्र द्वारा इतने अल्प समयमें होता देख सूर्पणखा अत्यन्त दुःखीहो गर्जना करती हुई लंकाके राजा रावणकी ओर भागी। देवताओंसे घिरे इन्द्रके समान राक्षसों और मन्त्रियोंसे घिरे अपने भाईको सूर्पणखाने देखा। उससमय सूर्यके समान प्रकाशमान रावण अपने स्वर्ण-सिंहासनपर आसीन था। वह साक्षात् यमराज के समानही मालूम पड़ रहा था। उसे युद्धमें जीतनेकी शक्ति देव दानव और

गन्धर्व किसीमें न थी। उसके बीस भुजाएँ और दश शिर थे। वह उत्तम वस्त्रोंको धारण किएहुए राज-चिन्होंसे सुशोभित था। उसके शरीरका रंग वैदूर्य मणिके समान और दाँतोंका रंग श्वेत था, भुजाएँ सुडौल और सुन्दर थीं। मुख बड़ा, शरीर पर्वताकार था। वह विष्णुसे युद्धकर अनेकों बार उनके चक्रद्वारा पीड़ित हुआ था। वह देवताओंके सभी अस्त्र शस्त्रोंकी मारको सहन कर चुका था, संग्रामभूमिमें वह सदा अचल रहने वाला था। वह समुद्रोंको भी चलायमानकर देता था, पर्वतोंको छिन्नभिन्न कर सकता था। वह सदा अधर्म-मार्गपर चलकर परस्त्री-गामी था। वह समस्त अस्त्रोंके प्रयोग भली-भाँति जानता था। उसने भोगवतीमें जाकर वासुकीको परास्तकर तक्षककी प्यारी स्त्रीको हरण कर लाया। कुबेरको जीतकर इच्छानुसार चलनेवाला विमान पुष्पक छीन लिया था। रावण कुबेरके चैत्ररथ नामी सुन्दरवन और अलका-पुरी एवं देवराजके नन्दन काननको नष्ट भ्रष्ट कर सकता था। सूर्य और चन्द्र को अपने इच्छानुसार चलाता था। भगवान् शंकरकी तपस्या करते हुए दश हजार वर्ष पर्यन्त अपने मस्तकोंको काट २ हवन करता था। उसे ब्रह्माका वरदान था कि देव, दानव, गंधर्व, किन्नर, यक्ष किसीके हाथसे मारा न जाए। हाँ मनुष्यसे उसे नहीं लड़ना चाहिए। द्विजकर्म करनेवाले श्रेष्ठ-जन वेद-मंत्रों द्वारा सदा उसकी स्तुति करते थे। यह महाबली यज्ञमें जिससमय सोम तैयार होता था उससमय वह सोमको नष्ट करदेता था। क्रूर-कर्मी रावण अनायास ही ब्राह्मणोंको मार डालता था। वह दयारहित, कठोरहृदय, प्रजाका अमंगल करनेवाला, एवं सबको भयभीत करनेवाला था। ऐसे प्रबल पराक्रमी अपने भाईको दिव्य वस्त्राभूषणोंसे युक्त बैठे हुए सूर्पणखाने देखा। रामचन्द्रके भयसे भयभीत सूर्पणखा अपने भाईके समीप गई और अपना नाककान रहित कुरूप मुख उसको दिखाती हुई क्रोधपूर्वक बोली।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ सर्ग

सूर्पणखाका रावणको धिक्कारना

संसारको भयभीत और त्रस्तकर रुलानेवाले महाबली रावणको मंत्रियों के बीच बैठा देख सूर्पणखा अत्यन्त क्रोधकर कठोर शब्दोंको उच्चारण करती

हुई बोली—भाई ! तुम अपने इच्छानुसार सदा कामके वशीभूत हो भो
विलास किया करते हो। परन्तु तुम्हें नहीं ज्ञात कि तुम्हारे और तुम्ह
यश के प्रति महान् भारी संकट उत्पन्न हो गया है। प्रजा कामके वशीभू
राजाका उसी प्रकार आदर नहीं करती जिस प्रकार लोग स्मशानकी आग
आदर नहीं करते। समयानुसार नीतिसे न चलनेवाला राजा भय अपनी प्र
के नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार हाथी कीचड़को त्याग देता है उसी प्रका
प्रजा कामी एवं प्रजासे न मिलनेवाले, तथा गुप्तचरोंसे रहित राजाको त्या
देती हैं। अपने राज्यकी रक्षा न करनेवाले राजाकी कभी उन्नति नहीं होती
तुम स्त्रियोंमें अनुरक्त चंचल स्वभाववाले हो। तुम्हारे पास गुप्तचर भी नहीं हैं
साथही साथ इन्द्रियोंको दमन करनेवाले देवता तथा दैत्य अनेकों तुम्हा
दुश्मन हैं। बताओ इन लोगोंसे बचकर तुम किस प्रकार रह सकते हो
तुम्हारा स्वभाव नितान्त बालकोंका-सा है, तुम जानने योग्य बातोंसे भी अन
जान हो। तब फिर किस प्रकार राज्यकर सकते हो ? जिस राजाके पास गुप्तच
न हों और कोष भी उसके आधीन न हो उसको राजा कहना भ्रम है। इ
से वे दूरदर्शी कहे जाते हैं। तुम्हारे साथ बैठनेवाले यह समस्त मंत्रीभी मू
हैं, यही कारण है कि तुम्हें कोई समाचार नहीं प्राप्त होता। तुम्हारे भाई औ
जनस्थान नष्ट भ्रष्ट हो गया और तुमको इसकी सूचना भी नहीं। महापराक्रमी
खर और दूषण अपनी चौदह सहस्र सेना सहित एक तुच्छ मनुष्य रामचन्
द्वारा मार डाले गए। दण्डकारण्यको निष्कंटक बना रामने ऋषियों मुनियों
और तपस्वियोंको अभय कर दिया और तुम कानमें तेल डाले बैठे हो। का
तुम कामी, क्रोधी, लोभी और स्त्रियोंमें आसक्त हो, तुम्हें अपने सरपर आ
हुए संकटका ध्यान भी नहीं। भाई ! प्रजा उस राजाका आपत्ति के समय क
साथ नहीं देती जो क्रूर स्वभाववाला, कंजूस और छिपकर बुराई करनेवा
होता है। किसीकी बात न माननेवाला, अभिमानी, अपनेको सर्वोपरि सम
वाले असावधान राजाको उसके कुटुम्बी ही मार डालते हैं। सदा निर्भय र
वाला अपने कर्त्तव्यसे च्युत राजा अवश्य नष्ट हो जाता है। सूखी लक
और मिट्टी तो किसी न किसी समय काम आ जाती है; परन्तु अपने राज्य
च्युत राजा किसी अर्थका नहीं रह जाता। वह मसली हुई माला एवं उत

हुए वस्त्रके समानही निरर्थक हो जाता है और जो राजा आलस्य रहित ज्ञान
से उन्नति करनेवाला एवं अपने धर्मका पालन करनेवाला होता है वह
अवश्यही दीर्घकाल तक राज्य करता है। जिस राजाके क्रोध एवं प्रसन्नता
व्यर्थ नहीं होते, जो सोता हुआ भी नीतिरूपी नेत्रोंसे देखता रहता है; वह
अवश्यही लोकोंमें पूजनीय होता है। परन्तु भाई! तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई
है तुम्हारे पास इन साधनोंमेंसे एक भी नहीं है। तभी तो तुम जनस्थानके
समाचारोंको नहीं जानते। तुम दूसरोंको अपमानित कर भोग और विलासों
के चक्करमें पड़े रहते हो। तुममें देश और कालके विचारनेकी विचार-
शक्ति नहीं है। तुम गुण और दोषोंके जाननेमें बुद्धिका प्रयोग नहीं कर
सकते। अस्तु तुम शीघ्रही विपत्तिमें पड़ोगे और अपने साथ राज्यको भी ले
डूबोगे। सूर्पणखा द्वारा अपनी कठोर समालोचना सुनकर धन और दर्पसे
पूर्ण रावण चुपचाप बैठा रहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

रामका बल-वर्णन

मंत्रियोंके साथ बैठे हुए अभिमानी रावणने सूर्पणखाकी की हुई
अपनी नीतिकी कठोर आलोचना सुनी और क्रुद्ध स्वरमें कहा—राम कौन
है? उसका रंग रूप कैसा है? उसमें कितना पराक्रम है? और वह दण्डका-
रण्यमें क्यों आया है? वह कौन सा अस्त्र है जिससे उसने राक्षसोंको मारा
है। और क्या खरदूषण और त्रिसिराको उसने सन्मुख युद्ध करके मारा है?
साथ ही साथ तुम्हारे कान और नाक काट तुम्हें कुरूप किसने बनाया है?
रावणके इस प्रकारके एक साथ ही कई प्रश्नोंके उत्तरमें सूर्पनखाने कहना
आरम्भ किया। रामको आँखें बड़ी २ और सुन्दर हैं, भुजाएँ लम्बी गोल
और सुडौल हैं, काला मृग-चर्म है परिधान उनका, उनके पिताका नाम दश-
रथ है। वह कामदेवके समान सुन्दर हैं और वह विष्णुके समान सोनेके
धनुषको धारण करते हैं। उसी धनुष द्वारा वह अनेकों प्रखर अस्त्रोंका प्रयोग
करते हैं, उनमें आश्चर्यकी हस्तलाघवता है। उनको वाण निकालते और
चढ़ाते कोई नहीं देख पाता। केवल उनके वाणोंसे मृतक और आहत

सैनिक ही दिखाई पड़ते हैं। जिस प्रकार बादल पत्थर वर्षा कर खेतीको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार पराक्रमी राम बाणोंकी वर्षा कर शत्रुओंका संहारकर डालते हैं। चौदह सहस्र महाबली राक्षसोंको केवल तीन घड़ीमें ही रामचन्द्रने मार डाला और इस प्रकार दण्डकारण्यको राक्षसोंसे हीनकर ऋषियों और मुनियोंको अभय किया। स्त्री-बधके पापभयसे ही मुझे नहीं मारा और नहीं तो मेरा नाक कान कटवाके मुझे कुरूपा बनवा दिया। उसका छोटा भाई लक्ष्मण भी उसीके समान तेज गुण और बलवाला है। रामकी स्त्रीका नाम सीता है। वह अत्यन्त ही रूपवती और सुन्दरी है। सीताका अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुन्दर है। देखनेमें वह दूसरी लक्ष्मी ही प्रतीत होती है। वह तपाए हुए कुन्दन के समान ही दमकती है। सच तो यह है कि देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर इत्यादि २ किसीभी वर्गमें ऐसी सुन्दरी स्त्री आज तक देखी नहीं गई। वह सीता निःसन्देह ही तुम्हारी स्त्री होनेके योग्य हैं, मैं यही इच्छा लेकर उसे लेने गई थी; परन्तु कृतकार्य न हो सकी, उल्टे नीच लक्ष्मणने मेरे नाक-कान काट मुझे कुरूप कर दिया। यदि तुम स्वयम् वहाँ जाकर किसी प्रकार उस अनुपम सुन्दरीको प्राप्त कर सको तो निःसन्देह ही धन्य हो जाओ। यदि तुम सुन्दरी सीताको अपनी प्यारी स्त्री बनाना चाहते हो तो तुम्हें शीघ्रातिशीघ्र रामको मार उसे छीन लेना चहिए। परन्तु यह भी स्मरण रहे कि राम महापराक्रमी और वीर हैं। खर, दूषण और त्रिसिराके मारनेका हाल तुम मुझसे सुनही चुके हो। अब जो उचित समझो सो करो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्ड का चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

रावणका पञ्चवटीकी ओर प्रस्थान

सूर्पणखा द्वारा वर्णित रोमांच-कारी कथानकको सुन रावणने अपने मंत्रियोंसे मंत्रणा कर उन्हें बिदा किया और फिर अपने कर्तव्याकर्तव्यका विचारकर अपने बलाबलका भी विचाकर क्या करना चाहिए इसका निश्चय कर गुप्तरूपसे रथशालामें गया और सारथीको रथ तैयार करनेके लिए कहा। आज्ञाकारी सारथीने तुरंत ही एक दिव्य रथ तैयार कर दिया। उस रथमें सोनेके गहने पहने हुए भयानक मुखवाले गधे जुते थे। उसी अपने रथ

र सवार हो लंकाका राजा रावण वहाँसे चला। उसका रंग वैदूर्य-मणिके मान था, छत्र और चँवर श्वेत रंगके थे, उसके दस शिर और बीस भुजाएँ । इस प्रकारके रंग और रूपवाला कुबेरका छोटा भाई देवताओंको पीड़ित रनेवाला एवं ऋषियों मुनियोंको मारनेवाला दस शिखरवाले भीषण पर्वतके मान मालूम होता था। इच्छानुसार चलनेवाले रथपर बैठा हुआ रावण आकाश-मार्गसे विजलीवाले मेघके समान गरजता और कौन्धता हुआ चला। नेकों पर्वत, बन, सागर और वृक्ष एवं तालावोंको लाँघता हुआ एवं मार्ग दृश्योंको देखता हुआ वह आगे बढ़ा। मार्गमें केले, नारियल, फूले हुए ल तमाल एवं साल वृक्षोंको जाते हुए रावणने देखा। ऋषियों, नागों कन्नरों, और गन्धर्वोंके स्थानोंको भी उसने देखा। दिव्य वस्त्रा-भूषणोंको ारण किए हुए क्रीड़ा करती हुई अप्सराओंको भी रावणने देखा। इसप्रकार नुपम शोभाओंका अवलोकन करते हुए रावणने समुद्रके किमारे एक महा शाल वट-वृक्षको देखा जिसकी डालें चार सौ कोस तक फैली हुई थीं। एक ार एक वहुत वड़े हाथी और कछुएको पकड़ पक्षिराज गरुड़ उस वृक्षकी एक ाल पर वैठ गए, गरुड़के बोझको वह डाल न सँभाल सकी और टूट गई और णसमेत नीचे चली। गरुड़ने देखा नीचे अनेकों ऋषि-महर्षि इत्यादि२अनेक२ ार्यमें रत हैं। डाल गिरनेसे अवश्य ही ये सब मर जायँगे। यह सोच पक्षिराज य हाथ, कछुवा और डालके वहांसे फिर उड़े, और दूसरे स्थानमें जा हाथी ौर कछुएको खा गए, और डालको निषादोंके देशमें छोड़ दिया जिससे नका नाश हो गया। इस प्रकार ऋषियोंकी रक्षाकर गरुड़ बहुत प्रसन्न ए और देवराज इन्द्रके घरमें घुस अमृतका घड़ा उठा लाए और उसी वट- क्षपर वैठकर पान किया। आकाश-मार्गमें जाते हुए रावणने उस सुभद्र ामक वट-वृक्षको देखा और समुद्र पार जाकर एक सुन्दर आश्रमके पास उसने अपने रथको रोका। उस आश्रममें नियमोंका पालन करने वाला रीच नामका राक्षस रहता था। रावणने रथसे उतर आश्रममें प्रवेश किया, रीचने राक्षसराजको आया देख विधिवत् पूजा कर स्वागत किया और हा—कहिए महाराज! आपकी लंकामें सब कुशल तो है? इतने शीघ्र

आपने यहाँ फिर क्यों आनेका कष्ट किया ? मारीचकी ऐसी वाणी सुनकर रावण कहने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ सर्ग

रावणका मारीचसे सहायता माँगना

अत्यन्त वाक्पटु रावणने मारीचकी बात सुन कहा—हे बुद्धिमान् मारीच! ध्यान-पूर्वक मेरी बातें सुनो, मैं तुमसे सहायता माँगने आयाहूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि, तुम्हारी सहायतासे मेरा कार्य सिद्ध हो जायगा। जनस्थानका सभी मार्ग तुम जानते हो, वहाँ पर मेरे भाई खर और दूषण त्रिशिर इत्यादि चौदह सहस्र राक्षसों एवं बहिन सूर्पणखाके साथ मेरी ही आज्ञासे रहते थे। खरने अपने समस्त वीरोंके साथ राम पर चढ़ाईकी और भयंकर युद्ध किया। परन्तु रामचन्द्रने अत्यन्त शान्तिके साथ उन सबको मार डाला। इसप्रकार उस दुष्ट रामने जनस्थानको एकदम निष्कंटक बना दिया है। इस रामको इसके किसी कार्यसे रुष्ट हो इसके पिता दशरथने घरसे निकाल दिया है, अस्तु वह आश्रय-हीन और निर्बल है। परन्तु उस दुष्ट अजितेन्द्रिय; क्षत्रिय-कुल-कलंक रामने राक्षसी सेनाका संहार किया है। उस अधर्मीने अपने क्षत्रिय धर्मकोभी त्याग दिया है और बिना किसी अपराधके ही अपने बलके गर्वसेही राक्षसी सेनाका संहार किया है। इतनाही नहीं; बहिन सूर्पणखाके नाक और कानकाट उसेभी कुरूपकर दिया है। मैंने उसका प्रतिकार करनेके लिए उसकी परम सुन्दरी स्त्री सीताको हरण करनेका विचार किया है। इसी काममें मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ और तुम मेरी सहायता कर सकते हो। यदि तुम और मेरे सभी भाई मेरी सहायता करें तो मैं देवराज इन्द्रको कुछ नहीं समझता, फिर इस रामकी क्या बिसात है ? मैं जानता हूँ कि तुम अत्यन्तही बलवान् और मायावी हो और मेरी सहायता भली प्रकार कर सकते हो। मैं तुमसे जिस प्रकारकी सहायता चाहता हूँ वहभी सुनो! तुम माया-मृगका रूप धारण करो, कैसा हो वह मृग ? सुवर्णके रङ्गवाला एवं रत्न-जटित। इस प्रकारके सुन्दर मृग बनकर तुम सीताके सामने विचरो। सीता सुन्दर मृग देख निःसन्देह ही राम और लक्ष्मणसे तुम्हें पकड़ने या मारनेके

याचना करेगी और वे दोनों उसके कहे अनुसार तुम्हें पकड़ने जायँगे। तब तुम उनको धोखा देते हुए दूर ले जाना। मैं सूने आश्रममें जाकर उसी प्रकार सीताका हरण कर लूँगा, जिस प्रकार राहु चन्द्रमाको हरणकर लेता है। फिर तो स्त्री-वियोगसे दुःखी रामपर मैं मनमाने प्रहार कर उसे समाप्त ही कर दूँगा। लंकाके राजा रावणके ऐसे विचार सुन मारीच भयके मारे काँप उठा, उसका मुख सूख गया और वह अपने होठोंको बारम्बार चाटता हुआ अत्यन्त दीन भावसे रावणकी ओर देखने लगा; क्योंकि वह रामचन्द्रके बलविक्रमको भली भाँति जानता था। अस्तु; हाथ जोड़कर रावणके हित की बातें कहने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

मारीचका रावणको समझाना

रावणका प्रस्ताव सुन बुद्धिमान मारीचने कहा—अहितकारी परन्तु चिकनी चुपड़ी बातें तो सभी लोग कहा करते हैं, परन्तु हितकारी एवं अप्रिय कहने वाले शुभ-चिन्तक विरले ही मिलते हैं। इस समय न तो तुम्हारी बुद्धि ही स्थिर है और न तुम्हारे पास कोई गुप्तचर और योग्य मन्त्री ही है, तभी तुम इन्द्र और वरुणसे भी अधिक शक्तिशाली रामके बलका थाह पानेमें असमर्थ हो। तुम्हें राक्षसोंका कल्याण देखना चाहिए। परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सीता मानो तुम्हारी मृत्युके ही रूपमें अवतरित हुई है। क्योंकि इसके कारण राक्षस जाति कष्टोंकी ओर अग्रसर हो रही है। तुम्हारी स्वेच्छा-चारिता और निरंकुशता लंकाके राज्यको नष्ट कर देगी। स्वेच्छाचारी और दुःशील राजा अपने साथ २ अपने परिवार और प्रजाको भी नष्ट कर देता है। न तो रामचन्द्रको उनके पिताने घरसे निकाला है, और न वह मर्यादा-हीन और दुःशील ही हैं। क्षत्रियकुलकलंक, अधर्मी और निर्गुण भी वह नहीं हैं। वह तो अपनी माता कौशल्याको आनन्दित करने वाले तथा संसारका हित करने वाले सबके प्यारे हैं। सत्यवादी दशरथको धोखा देकर उनकी छोटी स्त्री कैकईने वरदान प्राप्त कर लिया था। वही अपने माता पिताकी सत्यताकी रक्षा करनेके हेतु रामचन्द्र स्वेच्छासे वनवासी हुए हैं। वह

माता कैकेईकी आज्ञा और पिताकी धर्म-रक्षा-हेतु ही वनवासी हुए हैं। वह न तो कठोर स्वभाव वाले हैं, नहीं अजितेन्द्रिय और गुण-हीन ही हैं। उनके विषयका यह तुम्हारा कथन मिथ्या है। रामचन्द्र धर्मकी शरीरधारी मूर्ति हैं। सज्जन, सत्यवादी, पराक्रमी और इन्द्रके समान ऐश्वर्यवान् हैं। वह त्रैलोकके पालक त्रिलोकीनाथ हैं। रामचन्द्र द्वारा रक्षाकी जाने वाली सीता सूर्यकी किरणोंके समान उनके साथ रहती हैं, उनको तुम बलपूर्वक हरण नहीं कर सकते। राक्षसेन्द्र! राम प्रज्वलित अग्नि हैं। उनके बाण अग्नि-शिखा हैं, धनुष उसकी आहुति और समिधा हैं। इस भयंकर अग्निमें प्रवेश करना नितान्त भूल है। राम साक्षात् यमराज हैं, उनका धनुष यमराज का मुख है और बाण उनका तेज है। धनुर्धारी राम अत्यन्त पराक्रमी शत्रु सेनाको संहार करनेकी शक्ति रखने वाले हैं। मैं नहीं समझ पा रहा कि तुम अपने अभीष्ट-सुखोंको ठुकराकर उनसे भिड़नेका विचार क्यों कर रहे हो? रामचंद्र द्वारा रक्षित सीताका हरण करना तुम्हारे लिए नितान्त असम्भव है। सिंहके समान चौड़े वक्ष वाले नर-व्याघ्र रामकी प्राणप्यारी धर्म पत्नी सीता अपने पति पर भक्ति रखने वाली पतिव्रता है। उस प्रज्वलित अग्निके समान प्रचण्ड ज्वालामयी पतिव्रता सीताको हरण करना भी तुम्हारे सामर्थ्य से बाहरकी बात है। अस्तु विभीषणादि मंत्रियोंसे जाकर मंत्रणा करो, अपने और रामचन्द्रके बलाबलका विचार करो और इस प्रकारके दुष्कर्मसे बचो। तुम लंकामें जाकर सुख पूर्वक राज्य करो और राक्षस-कुलका नाश होनेसे बचाओ। मेरी समझमें रामचन्द्रसे विरोध करनेका तुम्हारा विचार ठीक नहीं। मुझे आशा ही नहीं भरोसा है कि तुम मेरी उचित प्रार्थनाको स्वीकार करोगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

मारीचकी आप बीती कथा

मारीच ने कहा—राक्षसेन्द्र। तुम जानते हो कि मेरे शरीरमें एक सहस्र हाथीका बल था और मैं पर्वताकार गर्वमें चूर सोनेके किरीट और कुण्डल धारण किए अपना परिघ हाथमें ले ऋषियों मुनियोंको भयभीत करता,

मारता एवं भक्षण करता हुआ घूमा करता था; वहाँके रहने वाले धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्र मुझसे बहुत भयभीत हो गए थे। मुझसे पीड़ित होकर विश्वामित्र अयोध्यामें महाराज दशरथके समीप गए। राजाने महर्षिका स्वागत और पूजनकर कष्टकरनेका कारण पूछा। विश्वामित्रने सब समाचार बतलाकर उनसे कहा कि "मैं अपनी यज्ञ-रक्षाके हेतु आपके ज्येष्ठ पुत्र रामको चाहता हूँ।" राजा महर्षिकी बात सुन सन्नाटेमें आ गए और कहा कि अभी रामचंद्रकी अवस्था अत्यन्त ही कम है, उन्हें युद्धका अनुभवभी नहीं, इसलिए आप रामको न लेजाकर मुझको मेरी चतुरंगिणीसेना सहित ले चलिए, मैं उन दुष्ट राक्षसोंका बधकर आपके यज्ञकी रक्षा करूँगा। राजाकीबातसुन महर्षिने मुस्कराते हुए कहा—राजन्! आपका पराक्रम देवासुर-संग्राममें प्रदर्शितहो चुका है। आप शूर-वीर योधा हैं, परन्तु नहीं,यह काम रामचन्द्रकेही भागका है। यद्यपि वह अभी बालक हैं, तथापि उन दुष्टोंको बध करनेकी सामर्थ्य है। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करके प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रको मेरे साथ जाने दीजिए। इससे आपकी अक्षयकीर्ति और इनका कल्याण होगा। बहुत कुछ अस्वोकारके पश्चात् विश्वामित्र रामको लेकर अपने आश्रमपर आए। आतेही उन्होंने यज्ञकी दीक्षा ली और रक्षाके हेतु रामचन्द्र धनुष और बाण लेकर खड़े हुए। उससमय दण्डकारण्यकी शोभा बढ़ानेवाले धनुर्धारी-राम द्वितीयाके चन्द्रमाके समान शोभितहो रहे थे। मैं भी ब्रह्माके वरसे बलवान था, यज्ञधूम देखतेही यज्ञ-वेदीकी ओर बढ़ा। साथही रामने धनुषका टंकारकर मुझे सावधान किया और एकही बाण द्वारा मुझे चारसौ कोस दूर सागरमें फेंक दिया और मेरे समस्त साथियोंको मारडाला। वह मुझेभी मार सकते थे। परन्तु न मालूम क्यों मारा नहीं। होश आनेपर मैं लंकापुरीमें चला गया। उस समय राम बालक थे। अब तो वह सयाने और परम शक्तिशाली हैं। मैं तुम्हें रामचन्द्रसे शत्रुता करनेके लिए मना करता हूँ। यदि तुम मेरा कहना नहीं मानोगे तो घोर संकटमें पड़ोगे। साथही साथ राक्षस-कुलकाभी नाश करोगे। महाराज! यदि तुम सीता-हरणकर रामचन्द्रको कुपित करोगे तो इसमें सन्देह नहीं कि सुख और समृद्धसे भरी हुई सोनेकी लंका

को नाशकर दोगे। तुम्हारे घरमें अनेकों सुन्दरी स्त्रियाँ हैं, तब तुम पर-स्त्री हरण ऐसे कुमार्गमें क्यों पड़ते हो? राजन्! मेरा कहना मानकर तुम चुपचाप घर जावो। क्योंकि रामचन्द्रसे शत्रुता करनेमें तुम्हारा कल्याण नहीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३८॥

उन्तालीसवाँ सर्ग

मारीचका रावणसे रामका पराक्रम बतलाना

मारीचने फिर कहा—राजन्! यद्यपि मुझे रामचन्द्रने महर्षिकी यज्ञमें जीवित छोड़ दिया तथापि मैं उन्हें पहचान नहीं सका और फिर ऋषियोंमुनियों को मारता खाता संसारमें घूमने लगा। नित्यप्रति मेरा यही काम था कि नदी के किनारों, बनके खोहों, कन्दराओं और मुनियोंकी यज्ञवेदियोंमें जाना और ऋषियों, मुनियों और तपस्वियोंका गर्म २ मज्जा रक्त पीना, उनका मांस खाना और हड्डियाँ चबाना। इसीप्रकारके व्यापारमें मस्त मैं दण्डकारण्यमें घूम २ उत्पात करता रहता था। एकदिन दैवयोगसे अपने साथियों सहित मृगरूपमें मैं महात्मा रामके आश्रममें जा पहुँचा। वहाँपर नियमित आहार बिहार करने वाले वीरवर लक्ष्मण और सौभाग्यवती सीताभी थी। मैं रामके प्रबल पराक्रम को भूलगया और उन्हें एक तपस्वीमात्र समझा। पिछली बातें स्मरणकर मुझे क्रोधहो आया और मेरी इच्छा रामको लक्ष्मण और सीता समेत मार डालनेकी हुई। अपने मनमें उनके मारनेका संकल्पकर अपनी प्रखर सींगोंको हिलाता और चमकाता हुआ मैं पराक्रमी रामकी ओर झपटा। वीरवर रामने मेरा अभिप्राय जान लिया और मुझे अपनी ओर आते देख अपने दिव्य धनुषपर तीनबाण चढ़ाए। उनके बाणोंको देखते ही मेरे हृदयमें भय उत्पन्नहो गया और मैं वहाँसे अविलंब भाग निकला। इसप्रकार दोबाराभी मैं बच गया। परन्तु मेरे दोनों साथी जानसे मारे गए। राक्षसराज! तबसे मैं जहाँ देखता हूँ, वहाँ वही धनुषधारी राम दिखाई पड़ते हैं। सोते जागते उठते बैठते मुझे प्रत्येक स्थानमें धनुष धारण किए हुए रामकी बिकराल मूर्ति दिखाई पड़ती है। हे राजन्! रामने मुझे इतना भयभीत किया है कि, मैं कह नहीं सकता। समस्त पृथ्वी, आकाश, एवं समस्त दिशाएँ मुझे रामसे परिपूर्ण दिखाई पड़ती हैं। मैं रामके बल और पराक्रमको भली प्रकार जानता हूँ। वह नमुचि और

वालिकोभी मार सकते हैं। अस्तु आप रामसे शत्रुता करने का विचार त्याग दें और यदि तुम ऐसा न कर सको तो तुम्हारी इच्छा। परन्तु कृपाकर मेरे सम्मुख रामका नाम न लो, नहीं तो मैं बेमौत ही मर जाऊँगा। बड़े बड़े धर्मात्मा और पराक्रमीजन भी अपने मित्रोंके किए हुए पापोंसे नष्ट हो गए हैं। परन्तु मैं तुम्हारे कारण मरना नहीं चाहता। तुम्हारी जो इच्छा हो वह कर सकते हो; परन्तु मैं इस कार्यमें तुम्हारी किसी प्रकारकी सहायता नहीं कर सकता। राजन्! राम अपने तेज एवं पराक्रम द्वारा समस्त संसारके राक्षसोंको मार सकते हैं। तुम सूर्पनखाके उभाड़नेसे शत्रुता करने जा रहे हो, सोचो तो इसमें रामका क्या अपराध है? इसका निर्णय तुम्हीं करो! सूर्पनखाने उन्हें छेड़ा, उन्होंने उसकी नाक काट ली, उसने खरदूषणको उभाड़ कर उनपर चढ़ाई कराई, उन्होंने तीन घड़ीके भीतर ही चौदह सहस्र बलवान् राक्षसों सहित खर, दूषण और त्रिशिराको भी मार डाला। अब यदि सूर्पनखाके उपदेशानुसार तुम भी काम करोगे तो तुम्हारा भी दर्प चूर्ण होगा और महाबाहु रामके तीक्ष्ण बाणों द्वारा तुम्हारा भी नाश होगा!

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा तृतीय अरण्यकाण्ड का उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ सर्ग

रावणका मारीचको डाँटना

मारीच द्वारा कही गई कल्याणकारी बातोंको रावणने उसी प्रकार नहीं सुना, जिस प्रकार मरनेवाला रोगी वैद्यका सत्परामर्श नहीं सुनता। बल्कि क्रोधित हो रावण कहने लगा—रे नीच-कुलोत्पन्न-मारीच! तेरा यह उपदेश ऊसरमें बीज बोनेके सिवा और कुछ नहीं। मैं तुम्हारे कहनेसे अपने विचारों को बदल नहीं सकता। जो पुरुष एक स्त्रीके कहनेसे वन-वन घूमता फिरता है, वह क्या कर सकता है? तेरे ही सामने मैं उसकी प्राणप्यारी पत्नी का हरण करूँगा। मेरे इस दृढ़ निश्चयको बदलनेकी सामर्थ्य तुम क्या; इन्द्रादि देवताओंमें भी नहीं। तू मुझे उपदेश देता है? तेरी इतनी क्षमता! परन्तु तूने विचार नहीं किया। मैं तेरे पास सलाह या उपदेश सुनने नहीं आया, वरन् अपने आज्ञानुसार तुझसे काम लेने आया हूँ। चतुर मन्त्रीगण राजाके पूछने ही पर उसे किसी प्रकारकी सलाह दे सकते हैं, बिना पूछे

नहीं। बुद्धिमान वही है जो राजाका रुख देखकर उसी प्रकारकी कोमल वाणीको बोले—जिस प्रकारकी राजा सुनना चाहता हो। राजा सर्वदा अपना सम्मान चाहता है। वह हितकारीके भी अनादरको सहन करनेमें असमर्थ होता है। पराक्रमी राजा पाँच रूपोंमें परिणत हुआ करते हैं। वह अग्निके समान गर्म, इन्द्रके समान तेजवान्, चन्द्रमाके समान शीतल, यमके समान घातक और वरुणके समान प्रसन्नचित्त हुआ करते हैं। यही कारण है कि राजा सदैव ही पूजाके योग्य होता है। तुम मायावी हो सकते हो, परन्तु नीति और धर्मको मुझसे अधिक नहीं जान सकते। मैं तुम्हारे घर आया हूँ। तुमने यद्यपि मेरा सत्कार किया है, तथापि कठोर वचन भी कहे हैं, जो सर्वथा अनुचित हैं। तुम स्वयं सोच सकते हो कि, मैं तुमसे हारजीतका निर्णय कराने नहीं आया; बल्कि तुमसे अपने कार्यमें सहायक होनेके लिए आज्ञा देने आया हूँ। मैं तुमसे क्या चाहता हूँ सुनो—तुम स्वर्ण-मृग बनो जिसमें चाँदीके छींटे पड़ें हों। फिर तुम उस स्थानपर जा जनक-नन्दिनी सीताको अपनी ओर आकर्षित करो। सीता तुम्हारी सुन्दरतापर मुग्ध हो रामको तुम्हें पकड़नेके लिए भेजेगी, तब तुम छलबल करके रामको आश्रमसे दूर ले जाओ और रामके स्वरमें ही 'हा सीते' ! 'हा लक्ष्मण' ! ऐसे शब्द कह अन्तर्धान हो जाओ। तुम्हारे मुखसे निकले हुए आर्त-शब्दोंको सुनकर सीता लक्ष्मणको रामकी सहायताको भेजेगी, उसी समय सूने आश्रममें जा मैं उसका हरण कर लूँगा। इस कार्यके पुरस्कारमें तुम्हें मेरा आधा राज्य मिलेगा। तुम स्वर्ण-मृग बनकर चलो। मैं भी रथारूढ़ हो तुम्हारे साथ चलता हूँ। इस प्रकार युद्धके बिना ही छल द्वारा मैं अपना कार्य सिद्धकर सीता सहित तुम्हारे साथ आनन्दपूर्वक लङ्का लौट चलूँगा। तुम जानते हो कि मैं राजा हूँ, और कैसा राजा हूँ। मेरा विरोध करनेमें तुम्हारा कल्याण नहीं। तुम्हें मेरा यह कार्य करना ही होगा। यदि तुम इनकार करोगे तो मैं तुम्हें इसी क्षण मार डालूँगा। मैं तुम्हारी प्रार्थना करने नहीं आया; किन्तु अपना कार्य तुमसे करानेके लिया आया हूँ। तुम चाहे जिस प्रकार करोगे तुम्हें मेरा कार्य करना ही होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४०॥

इकतालीसवाँ सर्ग

रावणको मारीचका सदुपदेश

जब रावणने मारीचको इस प्रकार आज्ञा दी, तब मारीचने भी निर्भीकता पूर्वक कहा–राजन्! किस दुष्टने परिवार सहित तुम्हें नष्ट होनेका यह मार्ग बताया है? वह कौन दुष्ट है जो तुम्हें सुखी नहीं देख सकता? वह कौन नीच है जिसने तुम्हें मृत्युकी ओर अग्रसर किया है। मुझे मालूम पड़ता है कि तुम्हारे बुद्धिमान् शत्रु तुम्हें किसी बलवान्से लड़ाकर तुम्हारा सर्व नाश करना चाहते हैं। तुम्हारे शत्रु तुम्हारे पापों द्वारा ही तुम्हारा विनाश देखना चाहते हैं। जिन लोगोंने तुम्हे यह सलाह दी है तुम्हें उन दुष्टोंको मार डालना चाहिए। राजन्! स्वेच्छासे पाप करनेवाले राजाको मंत्री युक्ति पूर्वक रोकते हैं, परन्तु मैं देखता हूँ कि तुम्हारे मूर्ख मंत्री ऐसा करनेमें असमर्थ हैं। राजाके कल्याणसे ही मंत्री एवं प्रजा वर्गको धर्म, अर्थ, काम और यशकी प्राप्ति होती है, और राजाके कष्टमें होनेसे सभी लोग कष्टमें हो जाते हैं। बिना राजाकी प्रसन्नता सभी कुछ व्यर्थ होता है, इसलिए सभीको राजाकी रक्षा करना ही उचित है। प्रजाके विरुद्ध कार्य कर उग्र स्वभाववाला राजाभी राज्य करनेमें असमर्थ होता है। तीक्ष्ण स्वभाववाले मंत्रीभी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार ऊँची नीची भूमिपर रथको दौड़ानेवाला सारथी मय अपने स्वामीके नष्ट हो जाता है। कितने ही धर्मात्मा और योगाभ्यासी अपने मित्रों द्वारा किए हुए पापोंसे नष्ट हो गए हैं। राजन्! जिस प्रकार मृगोंके खानेवाले शृगाल की रक्षामें मृगोंका कल्याण नहीं हो सकता, उसी प्रकार विरोधाचरण करने वाले राजाके द्वारा प्रजाका कल्याण नहीं हो सकता। राजन्! तुम उग्रस्वभाव वाले, नीच प्रकृति और कामी हो। तुम्हारे ही कारण सम्पूर्ण राक्षसोंका नाश होगा। मेरी भी व्यर्थही मृत्यु होगी। महाराज! मैं तो मर ही जाऊँगा, परन्तु नहीं तुम भी अपनी सेना सहित मारे जावोगे, मुझे इसी बातका दुःख है। मैं तो अपने पुराने शत्रु राम द्वारा मारे जानेपर प्रसन्न ही हूँगा। परन्तु इसके बाद ही तुम भी अपने मित्रों, मंत्रियों और परिवारवालों समेत रामचन्द्र द्वारा मार डाले जावोगे। मैं यह सब बातें तुम्हारे कल्याण ही के निमित्त

कह रहा हूँ, परन्तु तुम्हें मरना है, तुम्हारे मस्तक पर काल सवार है, तुम मेरी बातें कब मान सकते हो ?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

मारीचका माया-मृग बनना

राक्षसोंके राजा रावणके प्रति इस प्रकार कठोर वचनोंको कहता हुआ मारीच रावणके भयसे भयभीत हो गया और कहने लगा—चलिए! मैं आपकी आज्ञानुसार कार्य करनेके लिए तैयार हूँ। मुझे मारनेके लिए रामचन्द्र धनुष-बाण लिए हुए प्रतीक्षा कर रहें होंगे। उनपर आक्रमण करनेवालेकी मृत्यु आने वाली है। तुम्हारे ऊपर यमराज कुपित हैं। तुम्हारा साथी होनेके कारण मुझेभी मरना पड़ेगा। तुम घोर पाप-कर्म करने जा रहे हो। मैं तुम्हें रोकभी नहीं सकता, अस्तु मरनेके लिए तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। मारीचकी यह बात सुन रावणने प्रोत्साहन देते हुए उसे छातीसे लगा लिया और कहा—अब तुमने वीरोचित बातें की हैं। आओ मेरे साथ मेरे दिव्य-रथपर बैठ जाओ। तुम केवल सीताको अपनी ओर आकर्षितकर जिधर चाहना उधर भाग जाना। आगेका काम मैं अपने आप ही बना लूँगा। रावणकी आज्ञानुसार मारीच रावणके साथ रथमें बैठा। रथ द्रुत-वेगसे जंगलों, पर्वतों, गावों और नदियोंको लाँघता हुआ आगे बढ़ा। मार्गके दृश्योंको देखते हुए ये लोग दण्डकारण्यमें पहुँचे। रामचन्द्रके आश्रमसे कुछ दूरीपर रथ पृथ्वीपर उतारा गया। रथसे उतर रावण प्रेम-पूर्वक मारीचका हाथ पकड़ कहने लगा। मित्रवर! रामचन्दका आश्रम समीप ही कहीं है, कदाचित् उन केलेके वृक्षोंके बीच ही हो। अस्तु अब अविलम्ब हम लोगोंको कार्य साधनमें लग जाना चाहिए। रावणकी यह बात सुन मारीचने अपने आपको मृगके रूपमें कर दिया। वह अत्यन्तही विचित्र रंग रूपवाले सुन्दर और सुहावने मृगका रूप धारणकर आश्रमके इधर-उधर घूमने लगा। उस समय माया-मृगकी सींगे इन्द्र नील-मणिके समान थीं, उसके रक्त कमलके समान मुख-मंडलपर श्वेत और श्याम रंगकी बुन्दकियाँ अत्यन्तही भली मालूम हो रही थीं। नील कमलके समान सुन्दर कान, ऊँची गर्दन, तथा पेट भी इन्द्र नील-मणिके समान एवं दोनों

र्ण महुएके फूलके समान थे। उसका रंग कमलकी परागके समान, जाँघें
ली, खुर वैदूर्य-मणि सरीखे और उठी पूँछ इन्द्र-धनुषके समानही मालूम
ती थीं। गठन मनोहर, अङ्ग प्रत्यङ्गपर रत्नोंके समान चमक दमकवाले थे।
यावी मारीच निमेष मात्रमें सुन्दर माया-मृग बनकर वन-प्रदेशको आलो-
त करने लगा। वह अनेकों धातुओंसे बना हुआ प्रतीत होनेवाला मृग
नक-नन्दिनीको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए इधर-उधर चौकड़ी
ने लगा और हरी २ घासको चरनेका नाट्य भी करने लगा। चाँदीके
ान अनेकों बुन्दियोंसे युक्त वह सुन्दर मृग वृक्षोंकी पत्तियाँ खाता हुआ
र-उधर घूमने लगा। इधर-उधरका चक्कर काटता हुआ वह मृग सीताको
ानेकी गरजसे उनके आश्रममें गया और उनके सामने घूमने लगा। कभी
चौकड़ियाँ भरता हुआ मृगोंके झुण्डोंमें जाकर लोप हो जाता, कभी कहीं
जाता और कभी इधर-उधर घूमने लगता। इसप्रकार वह मृग नानाप्रकार
क्रीड़ा करने लगा। अन्य मृग भी उसके पास जाकर उसे सूँघकर न
ूम क्यों दूर भाग जाते थे। देवी सीता उस समय फूल चुन रही थीं,
ायक उनकी दृष्टि उस रत्न-जटित मृगपर पड़ी और वह स्तम्भित और
ित हो उस माया-मृगकी ओर देखने लगीं। मृग भी मन्थर गतिसे इधर
र घूमने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४२॥

ततालीसवाँ सर्ग

माया मृगपर सीताका मुग्ध होना

फूल तोड़ती हुई सुन्दरी सीता उस सुन्दर माया-मृगको देखकर बड़ी
न हुई। और राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको पुकारा—आर्यपुत्र!
आइये, वीरवर लक्ष्मण शीघ्र आओ, इसप्रकार कहती हुई वह बारम्बार
विचित्र मृगको देखने लगीं। सीता देवीके बुलानेपर दोनों भाई शीघ्रता-
े वहाँ गए और माया-मृगको देखा। उसको देखतेही लक्ष्मणने कहा—
! मेरी जानमें तो यह मृग मायावी मारीचही है। कपटरूप धारण करनेमें
ण यह मायावी नहीं ज्ञात कितने लोगोंको मार चुका है। हे पुरुषोत्तम!
प्रकारका सुन्दर और मनोहर मृग हो सकता है? ऐसा ध्यानमें नहीं

आता। निःसन्देह यह राक्षसी माया है। वीरवर लक्ष्मणकी बातको बीचहीमें रोककर राक्षसकी मायामें मोहित देवी सीता विचित्र मुसकानके साथ प्रसन्न होती हुई बोलीं—आर्यपुत्र! आप इस विचित्र मृगको पकड़ लाइये, मैं इसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गई हूँ और इसके साथ खेलना चाहती हूँ। प्रभो! यद्यपि हमारे आश्रमपर अनेकों प्रकारके सुन्दर पशु, पक्षी, और मृग हैं, परन्तु इस मृगके समान सुन्दर तेजवान् और दिव्य मृग मेरे देखनेमें अभी तक नहीं आया। इसका शरीर अनेकों रत्नों द्वारा चित्रित है जो चन्द्रमाके समान सुन्दर जान पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह समस्त वन-प्रदेशको आलोकित कर रहा है। भगवान्! इसकी शोभा एवं वाणीकी मिठास मेरे मनको हरण कर रही है। यदि आप इसे जीवित पकड़ लें तो मैं ही नहीं, वरन् समस्त आश्रमवासी बड़े आनन्दित हों। अपने वनवासकी अवधि समाप्त कर मैं इसे अयोध्या ले जाऊँगी। वहाँ महात्मा भरत और माताएँ भी इसे देख प्रसन्न होंगी। वहाँ यह मेरे रनिवासकी शोभा बढ़ायेगा। परन्तु यदि वह जीवित पकड़ा न जा सके तो मारकर इसका चर्मही लाइये, वहभी बड़ा ही दिव्य होगा। स्वामिन्! यद्यपि स्त्रीको अपने पतिसे किसी इच्छित कार्यके लिए अधिक अनुरोध न करना चाहिए, परन्तु इस मृगको देखकर मैं इसपर अत्यन्त अधिक मोहित हो गई हूँ। अस्तु उचित अनुचितका विचार किए बिनाही न जाने क्यों मेरी इच्छा इसके प्राप्त करनेके लिए प्रबल हो रही है। आह सोनेके खुर, नीलमणिकी सींग, उदित सूर्यके समान सुन्दर तेजोमय शरीरका रंग, नक्षत्रोंके समान रत्नोंसे चित्रित उस माया मृगको देख और देवी सीताकी वाणी सुनकर रामचन्द्रजी स्तम्भित और चकित हो गए, और लक्ष्मणसे बोले-—भाई! सीता इस मृगको देखकर मोहित हो गई हैं। इसलिए ज्ञात होता है कि इस मृगकी जीवन-लीला समाप्त हो चुकी है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा सुन्दर मृग नन्दनकानन और चैत्ररथवनमें भी मैंने नहीं देखा फिर पृथ्वीपर ऐसा मृग कहाँसे आ गया? इसके सीधे और टेढ़े बाल कितने सुन्दर हैं। यह स्वर्ण मृग इस प्रकार घूम रहा है मानों बादलोंके बीचमें बिजली। इसके मुँह खोलनेपर अग्नि—शिखासी प्रज्वलित हो उठती है क्योंकि इसका मुख इन्द्र नीलमणिके समान बने हुए सुरा-पात्रके समान

सुन्दर है। इसके पेटका श्वेत रंग शंख और मोतीके समान चमक रहा है। तुम्हीं बताओ ऐसी अनुपम सुन्दरता देखकर कौन मोहित न होगा ? राजा लोग शिकार खेलने वनमें आते हैं तो केवल मांस और विनोदकी ही इच्छा रखते हैं, परन्तु अब तो उनका कोष भी इसप्रकार मृगों द्वारा भर जायगा। इस सुनहरे मृगचर्मपर देवी सीता मेरे साथ बैठना चाहती हैं; क्योंकि इस मृगका चर्म अत्यन्त ही सुन्दर और कोमल है। आकाशका मृगशीर्ष और पृथ्वीका यह मृग दोनोंही सुन्दर हैं, परन्तु तुम्हारा कहना है कि यह मायावी मारीच है तो भी चिन्ता करनेका विषय नहीं; क्योंकि उसे भी मुझे मारना ही है। भाई ! मैं वातापि नाम राक्षसकी कथा तुमको सुना चुका हूँ, जिसे महर्षि अगस्त्यने खाकर पचा डाला। उसी प्रकार यदि यह मारीच है तो अवश्यही आज अपनी करनीका फल पावेगा। अस्तु अब तुम अपना कवच धारणकर सीताकी रक्षा करो और मैं इस मृगके मारनेके लिए जाता हूँ। भाई ! सीताको प्रसन्न रखते हुए उनकी रक्षा करना ही हमलोगोंका धर्म है। मृगके लिए सीता व्याकुल हो रहीं हैं। अस्तु पहिले तो मैं इसे पकड़ ही लूँगा; नहीं तो मार ही डालूँगा। अब तुम सावधानीके साथ सीताकी रक्षा करो। मैं शीघ्रही इसे मारकर लाऊँगा। तुम बलवान् जटायुके साथ यहाँ सतर्क रहो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ सर्ग

मारीच-वध

भाई लक्ष्मणको इसप्रकार समझा कर तेजस्वी रामचन्द्रने सोनेकी मूठवाली दिव्य तलवार और तीन स्थानोंसे झुके हुए धनुषको धारण किया। मारीचने देख लिया कि रामचन्द्र मुझे मारनेकी तैयारी कर रहे हैं और वह मुझे अवश्य ही मार डालेंगे। इस भयसे भयभीत हो वह जंगलमें छिप गया। रामचन्द्रनेभी सुसज्जितहो मृगका पीछा किया। आगे २ मृग अपनी दिव्य ज्योतिसे वन-प्रदेशको प्रकाशित करता हुआ भाग रहा था और तेजस्वी राम धनुषपर बाण चढ़ाए उसके पीछे २ दौड़ रहे थे। मृग कभी तो बिल्कुलही उनके समीप आ जाता था और कभी एकदम अन्तर्धानहो जाता था। भगवान् रामके भयसे

भयभीत मृग कभी इधर, कभी उधर, कभी आगे और कभी पीछे दिखाई पड़ता था। क्षणमात्रभी वह एक स्थानपर नहीं रुकता था। इस प्रकार छलबल करता हुआ मारीच रामचन्द्रको आश्रमसे बहुत दूर निकाल ले गया। तब उस छली राक्षसपर रामचन्द्रको बड़ा क्रोध आया और वह दौड़ते २ थककर एक पेड़की छाँहमें हरी २ घासपर बैठकर सुस्ताने लगे। रामचन्द्र माया-मृग के चक्करमें पड़ चकृत हो रहे थे। क्योंकि इस समय वह उन्हें दिखाई नहीं पड़ रहा था। एकाएक वह मृगोंके झुण्डोंमें फिर दिखाई पड़ा। उसे देखतेही रामचन्द्र उसे पकड़नेके लिए झपटे, परन्तु इन्हें अपनी ओर आता देख वह पुनः छिप गया। अत्यन्त व्यग्रहो रामचन्द्रने उसके पकड़नेका विचार त्याग उसको मार डालनाही ठीक समझा और उसके मार डालनेका निश्चयकर सूर्य किरणके समान दिव्य और प्रभायुक्त बाण धनुषपर चढ़ाया और बल-पूर्वक खींचकर चला दिया। वह अग्निके समान तेजवान ब्रह्मशस्त्र मायावी मारीचके वक्षमें प्रवेशकर गया। बाण लगतेही मारीच ताल वृक्षकी ऊँचाई तक उछलकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। वह मरणासन्न हो घोर गर्जनाकर अपने कपट वेशको त्याग दिया। परन्तु मरते-मरते उसे अपने राजा रावणकी बात स्मरण हो आई और वह सोचने लगा कि, अब मुझे क्या करंना चाहिए जिसमें लक्ष्मण सीताको अकेली छोड़ वहाँसे हटें और रावण सीतका हरण करे। सोच विचार कर उसने रामचन्द्रके कण्ठ-स्वरमें ही कहा—"हा लक्ष्मण" "हा सीते"। इस प्रकार कहकर वह दुष्ट रक्तमें लथपथ हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। राक्षसको अपने रूपमें देख रामचन्द्रको लक्ष्मणकी बात याद आई और उन्होंने कहा—लक्ष्मणका विचार ठीक निकला। परन्तु राक्षसके अन्तिम वाक्य तक अवश्य पहुँच गए होंगे। इन्हें सुनकर लक्ष्मण और सीता अवश्यही घबरायेंगे। इस विचारसे रामचन्द्र चिन्तित हुए और एक दूसरा मृग मारकर आश्रमकी ओर चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

मारीचके शब्दोंको सुनकर सीताका घबराना

महाराज रामचन्द्रके कण्ठ स्वरसे मिलता हुआ दुष्ट मारीचका आर्तनाद देवी सीताने सुना और अत्यन्तही व्याकुलहो लक्ष्मणजीसे कहा—सौम्य! तुम्हारे

भाई संकटमें घिरे हुए मालूम पड़रहे हैं, तभी उन्होंने तुम्हारा और मेरा नाम लेकर पुकारा है। जाओ और उनकी रक्षा करो। देवी सीताकी बात सुनकरभी लक्ष्मणको भाईकी आज्ञा भंग करनेका साहस नहीं हुआ, वह चुपचाप खड़े रहे। लक्ष्मणकी यह दशा देख जनक-नन्दिनीकी त्योरियाँ तनगईं और उन्होंने क्रुद्ध स्वरमें कहा—क्या तुम अभी खड़े हो ? भाईकी सहायता करनेके लिए जानेकी इच्छा नहीं। क्या सचमुचही तुम्हारा भ्रातृप्रेम केवल धोखा मात्र है ? निश्चय यही बात है। तुम मित्रके रूपमें छिपे हुए शत्रुहो। तभी तुम इस संकट कालमें भाईकी सहायतासे मुख मोड़ रहे हो। क्या तुम्हारी दृष्टिभी पापमयी है ! क्या तुम यह आशा करतेहो कि तुम्हारे भाईके न रहनेपर मैं तुम्हारे अधिकार में हो जाऊँगी ? निःसन्देह तुम्हारा यही विचार है, तभी तुम भाई की रक्षा के हेत नहीं जा रहे हो। परन्तु यह तुम्हारा भ्रम है। मैं आर्य-पुत्रके सिवा किसीकी ओर दृष्टि-पात भी नहीं कर सकती। तुम कहते हो कि, तुमको मेरी रक्षाका भार सौंपा गया है। परन्तु सोचो तो आर्य-पुत्रकी रक्षा न करके मेरी रक्षासे क्या लाभ ? तुम यह जानते हो कि आर्य-पुत्र ही मेरे सर्वस्व हैं। जब वही न रहे, तब मेरी रक्षा बेकार है। आँखोंसे आँसू बहाती हुई भयभीत सीताकी इस प्रकारकी वाणी सुन लक्ष्मणने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—देवी ! तुम्हारे पति रामचन्द्र अत्यन्त पराक्रमी हैं। उन्हें देव, दानव, सर्प, गन्धर्व, असुर और राक्षस कोई भी नहीं जीत सकता है। इसमें तुमको रंच भी सन्देह नहीं करना चाहिए। आपको इस प्रकारकी बातें कहना शोभा नहीं देता, यह ध्रुव निश्चय है कि बिना भाई के आए मैं तुम्हें यहाँ अकेला नहीं छोड़ सकता; क्योंकि मुझे ऐसी आज्ञा है। बलवान्से बलवान् भी उन्हें जीत नहीं सकता। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण और कुबेर भी उनको जीतने में असमर्थ हैं। अस्तु आप शोक को त्याग शान्त होवें, भाई अभी मृग को मार कर शीघ्र ही आ जाते हैं। जो आर्त-नाद आपने सुना है, यह भाईका नहीं वरन् उसी दुष्ट मारीचका है। देवी ! तुम्हारी रक्षाका भार भाईने मुझे सौंपा है, मैं तुम्हें अकेली कदापि नहीं छोड़ सकता। खरदूषणादिके मारे जानेसे राक्षसोंसे हमारी शत्रुता हो गई है, वे लोग सदैव ही ध्यान लगाये रहते हैं। वीरवर लक्ष्मणकी ऐसी बातें सुन

देवी सीता की आँखें क्रोधसे लाल होगईं और वह लक्ष्मण पर वाक्यवाणों का प्रहार करने लगीं—लक्ष्मण! तुम कुविचारी और अपने कुलमें कलङ्क हो, मैं जानती हूँ कि तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हारे समान छिपा हुआ शत्रु एवं आस्तीनका सांप सब कुछ कर सकता है। निश्चयही तुम्हारे विचार पहिलेहीसे घृणित हैं। तुम रामचन्द्रके साथ बनमें उनकी भलाईकी इच्छा करके नहीं आए वरन् मौका देख मुझे प्राप्त करनेकी इच्छाही से आए हो। अथवा दुर्बुद्धि भरतने ही तुम्हें गुप्त घातक बनाकर भेजा है। परन्तु तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि मैं तुम्हारी और भरतकी कोईभी दुरभिसंधि पूर्ण न होने दूँगी। मैं परम पराक्रमी रामकी पत्नी होकर किसी दूसरे की पत्नी होना कभी नहीं स्वीकार कर सकती। लक्ष्मण! मैं तुम्हारे देखते ही देखते अभी अपने प्राणोंका विसर्जन करती हूँ। क्योंकि बिना आर्यपुत्रके मैं क्षण भर भी जीना पसन्द नहीं करती। देवी सीताकी इस प्रकार मर्मभेदी और कठोर वाणी सुन वीरवर लक्ष्मण हाथ जोड़कर कहने लगे—देवी! यद्यपि आपने मुझे अत्यन्तही व्यथित कर दिया है तथापि आप मेरी पूज्या हैं; अस्तु मैं तुम्हें कोई कठोर उत्तर नहीं देना चाहता। क्योंकि तुमने जिस प्रकार मुझे न कहने योग्य बातें कही हैं, यह स्त्रियोंके लिए कोई असम्भव व्यापार नहीं। क्योंकि उनका स्वभाव ही क्रूर होता है। साथही साथ वह चंचला, अधर्मिणी और आपसमें भेदभावको उत्पन्न करनेवाली होती हैं। यद्यपि मैं शान्त रहने का प्रयास कर रहा हूँ। तथापि आपके वाक्य तपाए हुए वाणोंके समान कर्ण-कुहरों द्वारा शरीरमें प्रवेशकर मुझे पीड़ित कर रहे हैं। समस्त वनदेव आपकी यह कठोर और अनुचित वाणीको सुन रहे हैं, मैंने आपसे नितान्त यथार्थ और सत्य बातही कही हैं; तथापि आपने मुझे ऐसे कठोर वचन कहकर लांछन लगाए हैं, जो आपके समान विदुषीके लिए अत्यन्त निन्दनीय है। मुझे ज्ञात होता है कि तुम्हारा भविष्य अच्छा नहीं है। निःसन्देह तुम्हें कष्ट होगा। क्योंकि तुमने मुझ निर्दोषपर महान् दोष लगाया है और अब मुझे भाईकी आज्ञा भङ्ग करनेको वाध्य कर रही हैं, इसके भीतर अवश्यही कुछ विधिका विधान है। देवि! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे अनुचित दबावसेही मैं भाईकी आज्ञाको भङ्ग कर रहा हूँ। समस्त वनदेव इसके साक्षी हैं। अब मैं भाईके

ास जा रहा हूँ। ओह! कैसे भयानक अशकुन हो रहे हैं। हे वनदेव! देवी ीताकी रक्षा करना। न मालूम क्यों मेरी आत्मा दबी जा रही है। मेरे हृदयमें ारंवार यही विचार उठता है कि, भाईके साथ लौटनेपर सीताके दर्शन न कर ूँगा। वीरवर लक्ष्मणकी ऐसी कातर-वाणी सुन सीताने कहा—लक्ष्मण! आर्यपुत्रके न रहनेपर मैं गोदावरीमें डूबकर अपने प्राण त्याग दूँगी, फाँसी ागा लूँगी या पहाड़परसे कूद पड़ूँगी। विषपान कर लूँगी अथवा अग्नि-वेशकर अपने प्राणोंको विसर्जन कर दूँगी, परन्तु आर्यपुत्रके सिवा कि ओर दृष्टि-पात भी न करूँगी। इस प्रकारके वचन कहते हुए शोकातुरा सीता ाती पीट-पीटकर रोने लगीं। रोती हुई सीताको सान्त्वना दे और प्रणामकर ाक्ष्मण उसी ओर चले जिस ओर राचचन्द्रजी मृगके पीछे २ गए थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकांडका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

रामके सूने आश्रममें रावणका आना

लक्ष्मणके आश्रमके बाहर जातेही संन्यासी वेषधारी रावणने आश्रममें ्रवेश किया। उसके वस्त्र गेरुए रंगमें रंगे हुए थे। मस्तकपर जटा, हाथमें कमण्डल और वह दण्ड धारण किए हुए था। सूने आश्रममें अकेली सीताको ेख रावण निर्भय हो उनके समीप गया। उसने देवी सीतापर उसी प्रकार अधि-कार करना चाहा जिसप्रकार सूर्य और चन्द्रसे हीन सन्ध्यापर अन्धकार अपना अधिकार जमा लेता है। उसने सीतापर उसी प्रकार दृष्टि-पात किया जिस ्रकार चन्द्रहीन रोहिणीपर शनि और मंगल देखते हैं। महा पराक्रमी और तेजस्वी रावणके वहाँ प्रवेश करतेही वायुका वेग रुक गया, वृक्षोंका हिलना डुलना बन्द हो गया, गोदावरीका तीव्र प्रवाह मन्द हो गया, रावण भिखारी के वेषमें देवी सीताके समीप गया। वह भगवती सीता को देखने लगा जो उस समय पति-वियोगसे दुःखी अपनी पर्णकुटीमें बैठी थीं। रावणने प्रसन्नता-पूर्वक पास खड़े होकर देवी सीताका अवलोकन किया और कामसे व्यथित होकर वेद मंत्रोंका उच्चारण करने लगा और सीताकी प्रशंसा करते हुए कहा—ुन्दरी! तुम्हारे शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान सुन्दर है, जिस पर तुम्हारा पीताम्बर और भी गजब ढा रहा है। सुन्दरी! तुम लक्ष्मी, कीर्ति देवी या

अप्सरा कौन हो? वरानने! क्या तुम अणिमादिक सिद्धि हो? या साक्षात् रति हो? क्या तुम स्वेच्छासे ही वन-विहार कर रही हो? तुम्हारी दन्त-पंक्ति एकदम स्वच्छ श्वेत और समान है। तुम्हारे नेत्रोंके कोने गुलाबी डोरों से संयुक्त एवं पुतलियाँ काली हैं। हे सुलोचने! तुम्हारा जघन विशाल एवं जंघा गज-शुण्डके समान है एवं वक्षस्थल ऊँचा, मोटा एवं सुचिक्कण एवं ताल-फलके समान सुन्दर है, तिसपर तुम श्वेत मणियोंको माला धारण किए हुए हो। सुन्दरि! तुम्हारी मुस्कान, दन्त-पंक्ति और कमलनेत्र मेरे मनको उसी प्रकार हरण कर रहे हैं जिस प्रकार नदीका वेग अपने किनारों का। तुम्हारे बाल कारे, सटकारे और कोमल हैं, कमर और आपसमें सटे हुए और ऊँचे उरोज अत्यन्त ही मनोहारी हैं। सच तो यह है कि तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री मैंने देव, दानव, यक्ष और गन्धर्वोंमें भी नहीं देखी। तुम्हारे समान रूप और यौवन सम्पन्न सुन्दरी इसप्रकार भयङ्कर वनमें अकेली घूमे यही आश्चर्यका विषय है। हे वरानने! तुम इस भयङ्कर वनमें रहने योग्य नहीं हो, क्योंकि वन स्वेच्छाचारी राक्षसोंका निवासस्थान है। तुम्हें तो नगरके उपवनोंमें विहार करना चाहिए जहाँपर उत्तम और सुगन्धित वस्तुएँ उपस्थित हों। हे विशालाक्षि! तुम्हें उत्तम-उत्तम मालाएँ, सुन्दर गन्धयुक्त वस्त्र और योग्य पति चाहिए! देवि! बताओ, तुम रुद्र, मरुद्गण, अथवा वसुओंमेंसे किसकी भार्या हो? मुझे तो तुम कोई देवी ही प्रतीत होती हो, परन्तु यहाँ तो देवताओं और गन्धर्वोंका निवास नहीं, यहाँ तो स्वेच्छाचारी, मांसाहारी और सज्जनोंको पीड़ित करनेवाले राक्षसगण निवास करते हैं। इस वनमें अनेकों हिंसक जीव, बाघ, सिंह इत्यादि-इत्यादि घूमा करते हैं। क्या तुम उन्हें देखकर भयभीत नहीं होती? देवि! तुम यहाँ किस प्रकार आई हो? इस वनमें महा भयङ्कर हाथी और रीछ हैं, परन्तु मैं देखता हूँ तुम्हें इनकी तनिक भी शंका नहीं है और तुम एकदम निर्भय हो, हे कल्याणि! बताओ, तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? कहाँसे आई हो? और इस भयंकर दण्डकारण्यमें अकेली क्यों बैठी हो? संन्यासी रूपधारी रावणने इस प्रकार देवी सीताकी प्रशंसाके वचन कहे। तब देवी सीताने उसकी ओर देखा और उसे अतिथि समझ सत्कार किया। बैठनेके लिए

आसन और पैर धोनेके लिए जल एवं खानेके लिए कन्द, मूल और फल दिए। हाथमें कमण्डल और मस्तकमें खौर देख सीताने उसे ब्राह्मण चिह्नोंसे भूषित देखा। यही कारण है कि वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकीं। उन्होंने कहा—महात्मन्! आप पैर धोकर आसन ग्रहण कीजिए और यह वनमें उत्पन्न होनेवाले फलोंका भोजन कीजिये। जनक-नन्दिनी सीता द्वारा निमन्त्रित राक्षसराज रावणने सीताकी ओर देखकर उसके हरण करनेका दृढ़ संकल्प किया। उसकी भाव-भंगी और मुखाकृतिने उसके मनोभावोंको बुद्धिमती सीतापर भी प्रकट कर दिया और वह शिकारको गए भगवान् राम लक्ष्मणकी प्रतीक्षा करती हुई बारम्बार उसी ओर देखने लगीं जिस ओर वे लोग गए थे; परन्तु कहीं कोई दिखाई नहीं दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

रावणको सीताकी फटकार

यद्यपि सीता देवीको रावणपर सन्देह हो गया तथापि उसे साधु-वेश में देख और ब्राह्मण समझ उसके प्रश्नोंका उत्तर न देना अनुचित समझ बोलीं—महात्मन्! मैं मिथिला-नरेश महाराज जनककी पुत्री और रघुकुल-भूषण महाराज रामचन्द्रकी पत्नी हूँ, मेरा नाम सीता है। मेरे पति अपने पिताकी आज्ञा मान अपने भाई वीरवर लक्ष्मण और मुझे साथ ले दण्ड-कारण्यमें निवास कर रहे हैं। मेरे पति और देवर अत्यन्त पराक्रमी, शुद्धाचरण, सत्यवादी और धर्मात्मा हैं। वह प्राणीमात्रके हितकारी हैं। वह शिकारके लिए गए हैं, आप थोड़ी देर ठहरकर विश्राम करें, वह लोग अभी आए जाते हैं। वह अपने साथ फल, मूल और कन्द एवं अनेक वन्य पशुओंको लायेंगे। क्या मैं जान सकती हूँ कि श्रीमान् किस कुल और वंशके भूषण हैं? श्रीमान्‌का गोत्र क्या है? और इस दण्डकारण्यमें किस अभिप्रायसे विचरण कर रहे हैं? देवी सीताकी ऐसी वाणी सुन रावणने अत्यन्त ही कठोर स्वरमें कहा—सुन्दरी! जिसके भयसे देव, दानव, गन्धर्व, इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि, जल, वायु और यम भी भयभीत रहते हैं, मैं वही लंकाका राजा रावण हूँ। हे चन्द्रानने! जिस समयसे मैंने तुम्हारा स्वरूप

देखा है, उसी समयसे मुझे अपनी समस्त रानियाँ तुच्छ प्रतीत होती हैं। मेरे महल में बलपूर्वक हरणकी हुई सहस्रों रानियाँ हैं। अब तुम चलकर उन सबकी स्वामिनी और मेरी महारानी बनो। समुद्रके मध्यमें सुमेरु पर्वतके ऊपर स्वर्ण-निर्मित मेरी राजधानी लंकापुरी है, तुम वहीं चलकर मेरे साथ वहाँके उपवनोंमें विहार करो। यह दण्डकारण्य तुम्हारे योग्य नहीं। हे वरानने! यदि तुम मेरी भार्या बन जाओ तो तुम्हारा सर्वाङ्ग आभूषणोंसे संयुक्तहो जाय। रावणकी ऐसीवाणी सुन देवी सीता क्रोधितहो निःशंक भावसे बोली। हे रावण! पर्वतराजके समान स्थिर, सागरके समान गंभीर, इन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी, महाराज रामचन्द्रकी मैं धर्मपत्नी हूँ। मेरे पति शुभ लक्षणोंसे संयुक्त वट वृक्षके समान अपने आश्रितों को सुख देनेवाले, सत्यवादी और धर्मात्मा हैं। वह आजानु बाहु और चौड़े एवं पुष्ट वक्षस्थल वाले हैं। वह पूर्ण चन्द्रके समान प्रफुल्ल, यशस्वी, तेजवान् और महात्मा हैं। ऐसे महान् पुरुषकी धर्मपत्नी होकर कभी तुम्हारे समान गीदड़की पत्नी हो सकती हूँ? सोचो तो जो कमल सूर्यके प्रकाशसे खिलते हैं क्या कभी जुगनूकी चमकसे खिल सकते हैं। सिंहकी पत्नी क्या कभी स्यार की पत्नी हो सकती है? मालूम होता है कि तुम्हारी मृत्यु अब निकट है; तभी तुम एक पराक्रमी और तेजवान् पति वाली स्त्रीकी कामनाकर रहे हो। मूर्ख राक्षस! सूर्यकी प्रभाके समानही तुम मुझे कदापि नहीं छू सकते। तुम मूर्खता वस भूखे सिंह और चुटीले सर्पके मुखमें हाथ दे रहे हो। तुम महा भयंकर विषको पान करके भी जीवित रहना चाहते हो। हे दुष्ट! तुम्हारा यह विचार कि, तुम महाराज रामचन्द्रकी पत्नीको हरणकर ले; तुम्हारे जानका घातक है। तुम्हारा यह विचार कपड़ोंमें अग्निको बाँधनेके समान है। यदि तुम पराक्रमी रामकी पत्नीको हरण करना चाहते हो तो, मानों लोहे के भयंकर और तीक्ष्ण शूलपर चलना चाहते हो। हे दुष्टात्मन! तुममें और रामचन्द्रमें उतनाही अन्तर है जितना सियार और सिंहमें, क्षुद्र नदी और सागरमें, अमृत और क़ाँजी इत्यादि २ में, अथवा इतना अन्तर है जितना सोना और लोहा, हाथी और चींटी, चन्दन और बबुल, गरुण और कौआ एवं मयूर और जलकुक्कुट तथा राजहंस और गीध इत्यादि २ में। सुनो रावण! रामचन्द्रकी अनुपस्थितिमें यदि तुम मुझे बलपूर्वक हरण भी कर लो

तबभी छिपी हुई मक्खीके समान ही तुम मुझे मना नहीं सकते। इस प्रकारके शब्द रावणको कहकर सीता भयसे काँपने लगी। यह दशा देख रावण सीताको और भयभीत करनेके लिए अपना पौरुष कहने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४७॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

रावण द्वारा सीताको प्रलोभन

देवी सीताकी रोषपूर्ण वाणी सुन रावण अत्यन्त क्रोधकर भौंहें चढ़ी आखें लाल २ निकालकर बोला—देवी सीते! तुम्हारा कल्याण हो। मैं कुबेरका भाई हूँ मेरा नाम दशानन है, मेराबल और विक्रम महान् है। देव, दनुज, किन्नर, गंधर्व, यम, कुबेर, इन्द्र, वरुण इत्यादि २ देवता मेरे भयसे थर-थर काँपते हैं। मने अपने भाई कुबेरको संग्राम भूमिमें परास्तकर उनकी सोनेकी लंका और पुष्पक विमानको छीन लिया है, उसी पुष्पक विमानपर अब मैं भ्रमण करता हूँ। मेरा क्रोधसे भरा हुआ मुख-मण्डल देखतेही तीनों लोक थर्रा उठता है। मेरे सामने वायुका वेग मन्द हो जाता है, वृक्षोंके पत्ते नहीं खड़खड़ाते। सर्पभी चन्द्रमाके समान शीतल बन जाते और नदियोंके प्रवाहभी रुक जाते हैं। हे वरानने! मेरी लंकापुरी इन्द्रके अमरावतीसे भी अधिक सुन्दर और मनोहर है। वह समुद्रके मध्यमें श्वेत दीवारके घेरेमें बसी हुई है। उसके मकान सोनेके और फाटक वैदूर्यमणिके बने हैं। वहाँके उद्यानोंमें हर ऋतुमें फूलने एवं फलनेवाले वृक्ष लगे हैं। हाथी घोड़े और रथोंसे परिपूर्ण उस लंकापुरीमें सदैव यंत्र बजते रहते हैं। हे सुन्दरी! तुम वहाँ लंकापुरीमें मेरे साथ रहनेके पश्चात् मनुष्योंके पास रहनेकी इच्छाको भूल जाओगी। वहाँपर तुम मनुष्यों, देवों, दानवों, गन्धर्वों और किन्नरों इत्यादि २ के समस्त भोगोंको भोगती हुई रामचन्द्रको एकदम भूल जाओगी। महाराज दशरथने अपने बड़े पुत्रको अयोग्य समझकर बनमें निकाल दिया है और अपने श्रेष्ठ और विद्वान् पुत्र भरतको योग्य समझकरही राज्य दिया है। हे मृगनयनी! राम भ्रष्ट-राज्य और नष्ट-बुद्धि है, तभी वन-वनकी खाक छान रहा है, उसके साथ रहकर तुम क्या करोगी? तुम्हारे सुन्दर स्वरूप पर मोहित हो काम पीड़ित लङ्काका राजा रावण स्वयंभू तुम्हारे पास आकर प्रणयकी भिक्षा माँगता है। तुमको मेरी बात मानना और मेरा सत्कार

करना चाहिए। यदि तुम मेरा कहना न मानोगी तो तुम्हें उसी प्रकार पछताना पड़ेगा, जैसे पुरूरवाको लात मारकर उर्वशी पछताई थी। सुन्दरी! तुम्हारे भाग्यसे ही मैं तुमसे प्रणयकी भिक्षा माँगता हूँ। राम मनुष्य है। वह मेरी एक उँगलीके भी समान नहीं। रावणकी ऐसी वाणी सुन सीताको महान् क्रोध चढ़ आया और लाल-लाल नेत्र निकाल रावणसे कहने लगीं- तुम कुबेरके भाई हो जिन्हें सब देवता नमस्कार करते हैं और तुम्हारे ऐसे नीच विचारको धिक्कार है। तुम अजितेन्द्रिय, और बुद्धिहीन हो, परन्तु स्मरण रहे कि इन्द्रकी स्त्री शचीका हरणकर शायद तुम जीवित बच जाओ, परन्तु रामचन्द्रकी स्त्री मुझ सीताको हरणकर तुम अमृत पीकर भी जीवित नहीं रह सकते।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ४८॥

उनचासवाँ सर्ग

सीता-हरण

सीताके कठोर वचन सुनकर प्रतापी रावण क्रोधित हो अपने हाथ मलने लगा। इस समय उसका शरीर भारी और भयङ्कर हो गया। वाक्पटु रावणने सीतासे पुनः कहना आरम्भ किया—सीता! तुम आवेशसे उन्मत्त हो उठी हो और शायद तुमने मेरे बल एवं पराक्रमकी कहानियाँ नहीं सुनी। सुन्दरी! मैं आकाशमें निराधार खड़ा हो सकता हूँ। पृथ्वीको गेंदके समान उठा सकता हूँ। समुद्रके पानीको सुखा सकता हूँ, संग्राम भूमिमें मृत्युको भी पछाड़ सकता हूँ। हे उन्मादिनी! मैं अपने प्रखर बाणोंसे सूर्य मण्डलको पीड़ित कर सकता हूँ। पृथ्वीको खण्ड कर चूर्ण कर सकता हूँ। मैं अपनी इच्छानुसार स्वरूप धारण कर सकता हूँ, जरा तुम मेरी ओर देखो तो। इतना कहते-कहते रावणको अधिक क्रोध चढ़ आया और उसकी आँखें मोरपंखके समान हो गईं, वह अपना छद्मवेश त्याग महा भयङ्कर काल रूप हो गया। सुन्दर स्वर्णाभूषणोंसे युक्त रावणका शरीर काले मेघके समान दिखाई पड़ने लगा। उसके दस सिर और बीस भुजा हो गईं। रक्तके समान लाल वस्त्रोंको धारण किए हुए राक्षसोंका राजा रावणने क्रोध भरी दृष्टिसे सीताको देखा। सुन्दर और काले काले बालोंवाली सूर्यकी प्रभाके समान

तेजोमय वस्त्राभूषणोंसे संयुक्त सीतासे रावण कहने लगा—हे वरानने! यदि तुम त्रैलोक्य विजयी वीरकी पत्नी होना चाहती हो, तो तुम्हें मुझे स्वीकार करना चाहिए; क्योंकि तुम्हारा पति बननेके योग्य मेरे सिवा और कोई नहीं है। मैं सदैव ही तुम्हारा प्रिय करता रहूँगा—शोक! तुम एक तुच्छ मनुष्यकी स्त्री बनकर प्रसन्न हो और अपनेको बुद्धिमान समझती हो। तुमने राजच्युत, अल्पायु राममें कौन-सा गुण देख पाया है जो उसपर इस प्रकार मर रही हो। प्रिये! तुम उसे त्यागकर मुझसे प्रेम करो। राम भीरु और कायर है। तभी कैकेयीके कहनेसे राज्य और परिजनोंको छोड़ हिंसक जन्तुओंसे परिपूर्ण वनमें भटकता फिर रहा है। जो सीता सदैवसे प्रिय वचनोंको बोलती और सुनती थीं उन्होंने रावणके कठोर और अपमान सूचक शब्दोंको सुना। साथ ही साथ उस कामान्ध रावणने झपटकर सीताको उसी प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार रोहिणीको बुध पकड़ लेता है। उसने बाँए हाथसे सीताके बाल और दाहिने हाथसे जंघाओंको पकड़ लिया। रावणका भयंकर रूप देख वन देवता भी भाग गए। उसी समय मायासे रचा हुआ रावणका दिव्य रथ वहाँ आ उपस्थित हुआ। अत्यन्त भयंकर घनघोर शब्दोंको करता हुआ रावणने सीता को अपनी गोदमें उठा रथपर डाल दिया। उस समय सीता अत्यन्त व्याकुल हो 'हा आर्यपुत्र', 'हा लक्ष्मण' ऐसे शब्द उच्चारण करती हुई इधर-उधर देखने लगीं। कामान्ध रावण रथको आकाश मार्ग द्वारा लंकाकी ओर ले चला। इस प्रकार बल पूर्वक हरण की हुई सीता दुःखसे व्यथित हो रावणके बाहु-पाशमें फँसी सर्पिणीके समान छटपटाने लगीं। रोती हुई सीताने अत्यन्त तीव्र स्वरमें चिल्लाकर कहा—हा गुरुजनोंको प्रसन्न रखनेवाले महावाहो लक्ष्मण! देखो, यह दुष्ट मुझे हरण किए लिए जा रहा है। परन्तु तुम्हें इसकी खबर नहीं। आर्यपुत्र! आप तो धर्मका पालन करनेके लिए राज्य, धन, धाम और अपने प्राण भी विसर्जन कर सकते हैं, परन्तु यह दुष्ट राक्षस मुझे जबर्दस्ती हरण किए लिए जा रहा है। परन्तु आप इसको दण्ड नहीं देते। प्रभो, आपने तो अपने धार्मिक उपदेशों से बड़े २ पापियोंको पाप कर्मसे बचा लिया है, इस दुष्ट रावणको क्यों नहीं शिक्षा देते। नहीं २ मैं भूलती हूँ, पापोंका फल तत्काल नहीं मिलता। जिस

प्रकार चावलको भात बनानेमें समय लगता है, उसीप्रकारके फल मिलनेमें भी विलम्ब होता है। रावण ! निःसन्देहही तुम्हारा बुरा समय आ गया है। तू मृत्युके आधीन होकर ही इसप्रकारके क्रूर कर्ममें रत हुआ है। दुष्ट ! तुझे आर्य-पुत्रके हाथसे मरनाही पड़ेगा। परन्तु कैकेयी और भरतकी अभिलाषा पूर्ण हुई; क्योंकि रघुवंशी क्षत्रियोंकी स्त्रीको यह दुष्ट रावण हरण किए जा रहा है। हे वनके वृक्षों और फूले हुए कनेरों ! आर्यपुत्रके आनेपर उन्हें मेरा सन्देश सुना देना कि तुम्हारी पत्नीको रावण नामका एक दुष्ट राक्षस हरण कर ले गया है। हंस और पारावत एवं सारसों द्वारा शोभाको प्राप्त गोदावरी ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि आर्यपुत्रके आते ही मेरे हरणका समाचार उन्हें दे देना। हे दण्डकारण्य निवासी देवी, देवता और वृक्ष इत्यादि २ ! मैं तुम सभीको प्रणाम करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि आर्यपुत्रके आनेही उनसे कह देना कि तुम्हारी सीताको रावण हरणकर ले गया है। इस दण्डकारण्य निवासी पशु और पक्षियों सभीसे मेरी प्रार्थना है कि आर्यपुत्रके आतेही मेरा सन्देशा उनसे कह दें। मुझे विश्वास ही नहीं; वरन् भरोसा है कि मुझको हरण करनेवाले यमराजको भी अपने पराक्रमसे जीतकर आर्य पुत्र मुझे ले आवेंगे। यह रावण तो उनके सामने नितान्त तुच्छ है। इसप्रकार बिलाप करती हुई सीताने गीधराजको वृक्षपर बैठे हुए देखा और भयभीत सीताने अत्यन्तही कातर स्वरमें गीधराजसे कहा—हे आर्यजटायु! यह दुष्ट रावण मुझे जबर्दस्ती पकड़े लिए जा रहा है, परन्तु इसके हाथमें शस्त्र है और तुम वृद्ध हो, अतएव इसे रोकनेमें असमर्थ हो। अस्तु आर्य पुत्र और वीर लक्ष्मणसे कह देना कि रावण जबरदस्ती मुझे उठा ले गया है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्ड का उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥४९॥

पचासवाँ सर्ग

रावणके प्रति जटायुकी ललकार

सीताके आर्तनादसे जटायुकी निद्रा भंग हुई। उसने आँख खोलकर रावणके रथपर बैठी हुई सीताको देखा। साथही साथ उस प्रखर चोंचवाले पर्वताकार जटायुने रावणसे ललकारकर कहा। रावण! तुम ब्राह्मण कुल भूषण, सत्यवादी और धर्मात्मा हो, तुम्हें यह काम शोभा नहीं देता। तुमको जान

लेना चाहिए कि दशरथ-नन्दन राम इन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी, तेज-वान और लोकोंके स्वामी हैं और सीता प्राणिमात्रका कल्याण चाहनेवाले महाराज रामचन्द्रकी भार्या हैं। मैं तुमको फिर सचेत करता हूँ कि तुम धर्म और नीतिके जाननेवाले हो। तब परस्त्री हरणका पाप किसप्रकार कर रहे हो?राज-रानियोंकी रक्षा तो होनीही चाहिए। तुम जिसप्रकार अपनी स्त्री की रक्षा करते हो; उसी प्रकार पर स्त्रीकी भी रक्षा तुम्हें करनी चाहिए। हे राक्षस कुल भूषण रावण! धर्म और नीतिके विरुद्ध कार्य करना सर्वदा निन्दनीय है। हे राक्षसराज! राजाही धर्म है, राजाही धन है; राजाही काम है और राजा ही मोक्ष है। परन्तु तुम घोर पापी और चंचल स्वभाववाले हो। आश्चर्य तो यह है कि तुम जैसे पापीको इतना ऐश्वर्य किसप्रकार मिल गया। तुम्हारा या तुम्हारे राज्यका धर्मात्मा रामने क्या अनिष्ट किया है? जब उन्होंने कोई तुम्हारा अनिष्ट नहीं किया तब फिर तुम ऐसा क्रूर कर्म क्यों कर रहे हो? तुम्हारी बहिन सूर्पणखाने उनको छेड़ा; परन्तु स्त्री-बध धर्म विरुद्ध समझ उसकी नाक कान काट दिए। वह दुष्टा खर-दूषणको उत्तेजितकर उनके ऊपर चढ़ा लाई। पराक्रमी रामचन्द्रने उसका सेना सहित संहार किया,इसमें उनका क्या दोष था? जिसके लिए तुम उनकी स्त्रीको हरण करनेका घृणित कार्य करने जा रहे हो। हे रावण! पराक्रमी रामकी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखनेके पहिले ही तुम्हारा यहाँसे चला जाना कल्याणकारी है, नहीं तो तुम्हारी वही दशा होगी जो इन्द्रने वृत्रासुरकी की थी। हे दशानन। तुमने सीताको हरणकर भयंकर भूलकी है। तुम्हारा यह कार्य विषधर सर्पको छेड़ना या अपने गलेमें अपने हाथों फाँसी लगानेके समान है। बोझा उतना ही उठाना चाहिए जितनी शक्ति हो। भोजन उतना ही करना चाहिये जितना पचाया जा सके। जिस कार्यके करनेमें यश, कीर्ति और धनका नाश हो, उसे कभी न करना चाहिए। मेरी आयु साठ हजार वर्षकी है और अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ और तुम जवान हो तिस पर भी शस्त्र-धारी और रथारूढ़ भी हो; नहीं तो तुम्हारी शक्ति नहीं थी कि मेरे सन्मुख सीताका हरण कर ले जाते। इतना होने पर भी तुम सीताको मेरे सामने उसी प्रकार नहीं हरण कर सकते जिसप्रकार वेदोंको हेतुओंके द्वारा कोई व्यर्थ नहीं बना सकता। यदि तुम्हें अपने वीरत्वका अभिमान है,

तो ठहरो रामचन्द्रको आने दो, उनसे युद्ध करो। इसमें सन्देह नहीं किजिसप्रकार खर और दूषण मारे गए हैं उसी प्रकार तुम भी मार डाले जाओगे। इस समय वह दोनो भाई यहाँ हैं नहीं। मैं कुछ करनेमें असमर्थ हूँ और तुम भागे जा रहे हो, अगर तुम वीर हो तो ठहरो ! भागो नहीं; क्या नहीं ठहरोगे ? और मेरे सामनेही तुम पुत्री सीताका हरण करोगे? यह नहीं हो सकता। तुममेरे रहते हुए ऐसा नहीं कर सकते। मैं अपने मित्र दशरथकी पुत्र-बधूकी रक्षा हेतु अवश्य अपने प्राण विसर्जन करूँगा ? हे दशानन ! ठहरो। मैं तुम्हें उसी प्रकार रथसे नीचे गिराता हूँ जिसप्रकार पक्षी फलोंको वृक्षसे गिरा देते हैं। रावण ! मैं अपनी शक्तिके अनुसार अपने चोंच और पंजोंसे संग्राम भूमिमें तुम्हारा सत्कार करूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ सर्ग

रावण और जटायुका युद्ध

वीर जटायुकी दर्पपूर्ण वाणी सुन रावण जटायुकी ओर झपटा। जटायु भी क्रोधित हो रावणकी ओर झपटा और दोनोंका ऐसा भयंकर युद्ध छिड़ा कि मानो आकाशमें वायु द्वारा उड़ाए हुए दो बादलोंके टुकड़े टकरा रहे हों अथवा पुष्प एवं पंख युक्त दो पर्वत आपसमें गुथ रहे हों। रावणने जटायु पर नाराच, विकर्णि और नालीकादि नाना अस्त्रोंका प्रयोग किया। परन्तु वीर जटायूने उन सभी अस्त्रोंको रोका और अपने प्रखर नख वाले पंजोंसे रावणके शरीरको क्षत विक्षत कर दिया। नखों और चोंचों की मारसे व्यथित और क्रोधित रावण शत्रुके संहार हेतु दस दिव्य वाणों को चलाया जो जटायुके शरीरमें प्रवेशकर गये। परन्तु रावणके रथ पर बैठी हुई सीताका रोता मुखमण्डल देख वीर जटायु आहत होकर भी रावण पर झपटा और अपने पंजों और चोंच द्वारा उसके स्वर्ण और मणियुक्त जटित दिव्य धनुषको तोड़ डाला। रावणने दूसरा धनुष धारणकर सहस्र वाणों द्वारा जटायुको तोप दिया। उस समय वीर जटायु अपने खोतेमें बैठे पक्षीके समान प्रतीत हुआ और अपने पखनोंसे रावणके वाणोंको ठेल झपटकर रावणके दूसरे धनुषको भी तोड़ डाला और अग्निके समान

चमकने वाले दिव्य कवचको छिन्न-भिन्न कर दिया। रथमें जुते हुए खच्चरों को भी जटायुने मार डाला और इच्छानुसार चलने वाले उसके दिव्य रथ को भी उसने तोड़ दिया। हाथमें छत्र और चँवर लिए खड़े हुए राक्षसोंको रथसे नीचे गिरा दिया और सारथीका मस्तक अपनी चोंचसे काट डाला, धनुष टूट गया, रथके खच्चर मारे गए। सारथी मारा गया और रथ भी टूट गया। तब रावण सीता सहित पृथ्वी पर गिरा। यह कौतुक देख चारों ओर से धन्य २ का शब्द होने लगा और सभी लोग जटायुके बलकी प्रशंसा करने लगे। रावण बिना अस्त्र और बिना रथका हो गया। रावणने देखा कि वृद्ध जटायु थक गया है। अस्तु, अच्छा अवसर देख सीताको गोदमें उठा आकाश मार्गकी ओर उड़ा। रावणको सीताको लेकर जाता देख जटायु अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुनः अत्यन्त प्रबल वेगसे आक्रमण किया और कहने लगा—ओ मूर्ख राक्षस! रामचन्द्रके वज्रसमान बाणोंकी तुझे सुध नहीं है। तू राक्षस कुलको संहार कराना चाहता है, तभी यह पाप कार्य कर रहा है। दुष्ट! जिसप्रकार प्यासा मनुष्य विषपानकर मृत्युको निमंत्रण देता है, उसी प्रकार तू भी विषपान कर रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि, अब शीघ्र ही तू नष्ट हो जायगा। जिस प्रकार लालचमेंपड़कर मछली बंशीमें फँस जाती है, उसी प्रकार तू भी फँस रहा है। तूने आश्रमका अपमान किया है। पराक्रमी राम और लक्ष्मण इसको कभी नहीं सहन कर सकते। ऐ बलवान् बननेवाले रावण! तेरा यह कार्य वीरोंका कार्य नहीं है, किन्तु चोरोंका कार्य है। यदि तू वीर है तो मुझसे युद्ध कर और जरा देर ठहर, रामचन्द्र अभी आते हैं, उनके आते ही तू भी अपने भाई खरकी तरह मरा हुआ दिखाई पड़ेगा। तेरा यह पाप अवश्य ही तुझे मृत्युकी ओर ले जायगा। रे मूर्ख! पाप कार्य करके देवराज इन्द्रऔर स्वयं भगवान् भी नहीं ठहर सकते, फिर तेरी क्या गणना है। इस प्रकारकी नीति और धर्मयुक्त वाणी बोलता हुआ जटायु रावणकी पीठ पर टूट पड़ा और जिस प्रकार हाथीवान अंकुश द्वारा हाथीको पीड़ित कर देता है उसी प्रकार जटायुने रावणको व्यथित किया। चोंच, पंख और नख ही जिसके अस्त्र हैं उस जटायुने रावणकी देहको फाड़ डाला, मांस नोच लिया और सर के बालोंको उखाड़ लिया। वृद्ध जटायुकी भीषण मारसे रावण घबड़ा गया।

परन्तु धैर्य धारणकर सीताको गोदमें लिए ही लिए जटायुपर खड्ग प्रहार किया। परन्तु जटायु पीछे हटकर वारको खाली कर दिया और रावणके हाथों को बल पूर्वक उखाड़ लिया। जिस प्रकार बिलसे साँप निकलते हैं, उसीप्रकार रावणके हाथोंके उखड़ते ही नवीन भुजाएँ निकल आईं। तब रावणने सीता को गोदीसे उतार घूसों, लातों और तमाचोंसे जटायुको खूब ही मारा। बड़ी देर तक दोनोंका घमासान युद्ध हुआ। तब रावणने क्रोधित हो खड्ग प्रहार कर जटायुके पखने काट डाले। पखने कट जानेसे जटायु खूनसे लथपथ हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। जटायुकी यह दशा देख सीता रोती हुई उसकी ओर दौड़ी और जटायुसे लपटकर रोने लगी। रावणने नील जलदके समान पंखहीन जटायुको खूनसे लथपथ पृथ्वीपर पड़ा हुआ प्रसन्नता पूर्वक देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

बावनवाँ सर्ग

सीताके लिए सबकी समवेदना

रावण द्वारा जटायुके मरनेके पश्चात् देवी सीता अत्यन्त दुःखित हुई और विलाप करती हुई कहने लगी—जिस समय कुछ अनिष्ट होनेवाला होता है उस समय पशु और पत्ती भी अपने कार्यों द्वारा अमंगल सूचक कार्य करने लगते हैं, ठीक वही दशा इस समय मेरी हो रही है। वनके समस्त पत्ती भयभीत हैं। आर्य जटायु मेरी रत्ता करनेको आए, इनको भी इस दुष्टने मार डाला। हे आर्यपुत्र! आप इस समय मेरे दुःखोंका अनुभव नहीं कर रहे हैं। हे रघुकुलभूषण! मेरी रत्ता करो। रावण द्वारा हरी हुई सीता अपनी सहायतार्थ लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके हेतु उच्च स्वरसे विलाप करने लगीं। अत्यन्त दीन और अनाथके समान बिलखती हुई सीताके वस्त्र और आभूषण अस्त-व्यस्त हो गए। उसी समय दुष्ट रावण उनकी ओर झपटा। भयसे विह्वल सीता रावणको अपनी ओर आते देख दौड़कर एक वृत्तसे लिपट गई। परन्तु रावण शीघ्र ही उनके पास जा पहुँचा और हा आर्यपुत्र! हा आर्यपुत्र! पुकारती हुई दुःखिनी सीताके बालोंको दुष्टरावणने पकड़ लिया। रावण द्वारा सीता पर होता हुआ अत्याचार देखकर समस्त पशु-पत्ती व्याकुल हो उठे, महान् अन्धकार का साम्राज्य हो गया। वायु

स्तम्भित हो गया। सूर्यका तेज क्षीण हो गया। रावण द्वारा सीताका हरण प्रजापति ब्रह्माने अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा देखा और कहा—ठीक, अब कार्य सिद्ध हो गया। महर्षियोंने दुःख एवं सुखको समान ही मान किया। ऋषियों ने दण्डकारण्यमें होनेवाले इस नारी-अपमानको देखकर जान लिया कि अब रावणका नाश अत्यन्त शीघ्र होने वाला है। रोती हुई सीताको उठाकर रावण आकाशमें उड़ गया। देवी सीता तपाए हुए सुवर्णके समान दमक रही थीं। पीताम्बर धारण किए आकाश-मंडलमें वह बिजलीके समान चमक रही थीं। सीताका उड़ता हुआ पीताम्बर ऐसा प्रतीत होता था मानो अग्निसे आच्छादित पर्वत। अथवा सूर्यास्तके समयका लाल रंगवाला बादल। जिस प्रकार नाल रहित कमल मुर्झा जाता है, उसी प्रकार भगवान् रामके विना देवी सीताका मुख-मुण्डल कुम्हला गया था। देवी सीताका सुन्दर ललाट, काले और सुचिक्कन बाल, सुन्दर और स्वच्छ दन्तपंक्ति, विशाल नेत्र और कमलके समान सुन्दर चन्द्रमुख रावणके चंगुलमें पड़कर बादलोंमें छिपा हुआ चन्द्रमाके समान प्रतीत हो रहा था। सुन्दर नासिका, अधर आदिक और तपाए हुए सोनेके समान सीताका चन्द्रमुख रावणकी बाहुपाश में पड़ी होनेके कारण दिनमें दिखाई देनेवाले प्रभाहीन चन्द्रमाके समान ही प्रतीत हो रहा था। काले और भयंकर रावणके पाशमें पड़ी हुई सीता हाथीके गलेमें पड़ी हुई सोनेकी जंजीरके समान ही प्रतीत हो रही थी। देवी सीताका सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे संयुक्त शरीर आकाश मंडलमें कौंधती हुई बिजलीके ही समान प्रतीत हो रहा था। देवी सीताके बालोंमें गुँथे हुए फूल टूट २ कर पृथ्वीपर गिर रहे थे, जो रावणके तीव्र वेगके कारण आकाशमें चारों ओर उड़ से रहे थे। और उन उड़ते हुए फूलोंसे घिरा हुआ रावण नक्षत्रोंके घिरे हुए काले बादलके समान प्रतीत हो रहा था। देवी सीताके आभूषण एक २ करके पृथ्वीपर गिर रहे थे। बिजलीके समान प्रभावशाली भगवती सीताको रावण आकाश मार्ग द्वारा लेकर चला। देवी सीताके आभूषण नक्षत्रोंके दलोंके समान पृथ्वीपर गिर रहे थे। उनके गलेसे गिरता हुआ हार आकाशमें बहती हुई आकाशगंगाके समान ही दिखाई पड़ा। पत्तियोंसे परिपूर्ण वृक्षोंकी डालियाँ झुक २ कर देवी सीतासे कहने लगीं—"मत रोओ,"

जलमें खिले हुए कमल मुरझा गए। पक्षी और पशु डर गए। मानों अपनी सखी सीताके लिए शोक मना रहे हैं। जंगलके हिंसक पशु, व्याघ्रादि क्रोध-पूर्वक गर्जना करते हुए देवी सीताकी परछाईंके साथ दौड़ने लगे। संसार भरके प्राणियोंने दुःखित होकर कहा, आह! रावणने सीताको हर लिया। अब निश्चय ही धर्म, सत्य और दयाका नाश हो गया। जंगलमें रहने वाले पशु और पक्षी भी सीताका क्रन्दन सुन रोने लगे। वनदेव और वनदेवियोंकी अन्तरात्मा काँप उठी। उसी समय देवी सीता अत्यन्त करुण-स्वरसे 'हा आर्य पुत्र! हा वीर लक्ष्मण!' कह २ विलाप कर रही थीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

सीताका रावणको धिक्कारना

रावणके बाहुपाशमें आबद्ध सीता आकाश मार्गमें जाती हुई अत्यन्त भयभीत हुई, रोते २ उसके दोनों नेत्र लाल हो गए, और साथ ही साथ अपनी विवशतापर कुछ क्रोध भी हो आया और वह रावणसे कहने लगीं। दुष्ट, नीच, सूने आश्रमसे हरणकर भागते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? कायर, नपुंसक! तेरी शक्ति थी तो मायामृग बनाकर मेरे स्वामीको आश्रमसे हटाया क्यों? मेरे स्वसुरके मित्र वृद्ध और निर्जीव जटायुको मारकर तू पराक्रमी बनना चाहता है? तू मुझे कपट और छल ही द्वारा हरणकर रहा है, बल और पराक्रम द्वारा नहीं। शोक! स्त्रियों पर अत्याचार करते हुए तुझे लज्जा नहीं आ रही है। अपने बलका झूठा अभिमान करनेवाले चोर! तेरे इस नीच और घृणित कार्यका सारा संसार निन्दा करेगा, तेरा अपने मुख द्वारा वर्णन किया हुआ बल और तेज धिक्कारके योग्य है। यदि सचमुच तू वीर है तो थोड़ी देर ठहर जा, आर्य-पुत्र आते ही हैं। उनके आनेपर तू यहाँसे सकुशल लौटकर नहीं जा सकता। यदि तू अपनी समस्त राक्षसी सेना लेकर भी आर्य-पुत्रसे संग्राम करे तो भी जीवित नहीं रह सकता। वीरवर लक्ष्मणके तीखे बाणों की मारको तू उसी प्रकार नहीं सहन कर सकता जिस प्रकार वनमें लगी अग्निको पक्षी नहीं सह सकते। अब भी यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो मुझे यहीं छोड़कर भाग जा, नहीं तो आर्य-पुत्रके हाथों तेरा मरना निश्चय है। हे दुष्ट! जिस अभिप्रायसे तू मेरा हरण कर

रहा है वह कभी भी पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी अपने पतिको मैं त्यागकर कदापि जीवित नहीं रह सकती। तुझे अपने हित-अनहितका ज्ञान नहीं रहा। तभी तू इस प्रकारका कार्य कर रहा है, जो मुझे मृत्युके निकट पहुँचा देगा। तेरे मारनेके लिए यमराज अपना फाँसा तेरे गलेमें डाल चुके हैं। तेरी मृत्यु अब आ ही गई है। तभी तुझे पाप-कार्य भी अच्छा प्रतीत हो रहा है। शीघ्र ही तुझे नर्कके दर्शन होंगे, जहाँके वृक्षोंके पत्ते तलवारकी धारसे भी प्रखर हैं। रे नीच! तू मेरे स्वामीका अहित करके अब जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार विषपान करनेवाले अधिक देर तक नहीं जी सकते, उसी तरह तू भी अब जीवित नहीं रह सकता। तू यमराजकी घोर फाँसमें फँस चुका है। आर्य-पुत्रसे वैर करके कोई भी जीवित नहीं रह सकता। जिन पराक्रमी आर्य-पुत्रने केवल तीन घड़ीमें ही चौदह सहस्र बलवान् राक्षसों सहित खर और दूषणको मार डाला है, वह तुझे अब कब जीवित छोड़ सकते हैं? क्या तू समझता है कि अपनी स्त्रीका हरण सुनकर भी वह तुझे दण्ड न देंगे? रावणके बाहुपाशमें बँधी हुई यशस्विनी सीता इस प्रकारके कठोर वचनों को कहती हुई विलाप करने लगीं, परन्तु रावणपर इन वचनों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥५३॥

चौवनवां सर्ग

रावणका सीताको लेकर लंका पहुँचना

इस प्रकार आकाश-मण्डलके मार्गसे जाती हुई सीताको अपनी रक्षा करनेवाला कोई दिखाई नहीं दिया। चलते-चलते उसने देखा कि एक पर्वत-शिखरपर कुछ वानर बैठे हुए हैं। उनको देख और यह विचार कर कि कदाचित् आर्य-पुत्रको वह वानर ही मेरा समाचार दें। यह सोचते ही सीताने अपने कुछ आभूषण एक वस्त्रमें बाँध उन वानरों के सामने फेंक दिया। शीघ्रता के साथ जाते हुए रावणने इस बातको नहीं जान पाया। वनों, पर्वतों और पर्वत-शिखरों को लाँघता हुआ रावण अत्यन्त ही शीघ्रताके साथ लङ्काकी ओर जा रहा था। तीक्ष्ण दाँतों वाली भयंकर और विषैली सर्पिणीके समान अपनी

मृत्यु रूपी सीताको गोदमें लिए हुए तथा छूटे हुए बाणके समान तीव्र गति चला जा रहा था। अनेकों तालाबों और नदियों को लाँघता हुआ रावण समुद्रको भी लाँघ गया। रावणको जातेदेख समुद्रकी लहरें रुक गईं उसके अन्दर जीव-जन्तुओंने भी चलना-फिरना बन्द कर दिया। सीता का हरना देखकर सागर दुखी हो गया, सिद्ध और चारणोंने कहा, अब रावण की मृत्यु आ गई। रावण छटपटाती हुई अपनी मृत्युरूपिणी सीताको लेकर लंकापुरी में पहुँचा। वह लंकापुरी अत्यन्त ही सुन्दर और रमणीक सड़क और चौराहों से परिपूर्ण थी। सीताको लिए हुए रावण अन्तःपुरमें गया और सीताको अपनी गोदसे उतारकर उत्तम शय्यापर बैठा दिया, मानो मय-दानवने अपनी मायाको बिठला दिया। सीताको अन्तःपुरमें रख रावणने राक्षसियों को आज्ञा दी कि सीता जो कुछ माँगे उसे तत्काल दिया जाय। मेरी आज्ञाके बिना उसके पास कोई जाने न पावे। इस प्रकार आदेश देकर रावण बाहर आया और आठ बलवान् राक्षसों को बुलाकर आज्ञा दी कि, तुम लोग तुरन्त जन-स्थानमें जाओ, जहाँपर खर और दूषण रहते थे। उन वीरों को राम नामके एक दुष्टने मार डाला है। तुम उसपर गुप्तरूपसे दृष्टि रखो और अवसर मिले तो मार भी डालो; क्यों कि मैं उस बलवान् शत्रुका नाश चाहता हूँ। यदि तुमलोग खरके शत्रुको मार डालोगे तो मैं तुम लोगों से अत्यन्त प्रसन्न होऊँगा। तुम लोग शूर-वीर और युद्ध-निपुण हो। सावधानीके साथ रामकी गतिविधिका निरीक्षण करना। आठों राक्षस रावणको प्रणामकर जन-स्थानकी ओर चले गए। रावण सीताका हरणकर और रामचन्द्रसे वैर कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका चौवनवां सर्ग समाप्त ॥५४॥

पचपनवां सर्ग

रावणको सीताका अपना वैभव दिखाना

आठों राक्षसों को जनस्थानकी ओर भेजकर काम-पीड़ित रावण सीता को देखने के लिए अन्तःपुरमें गया। उस समय दुःखिनी सीता भयंकर राक्षसियों के बीच उसी प्रकार दिखाई पड़ रही थी, मानो कुतियों से घिरी हुई मृगी। रावण ने देवगृहके समान अपने दिव्य भवनको सीतासे देखने के लिए कहा।

अतिदीन रहते हुए भी विवश हो सीताको रावणके साथ उसका दिव्य महल देखना पड़ा। रावणने कहा, देखो यह मेरे सतमहल हैं। सहस्रों सुन्दरियाँ और सुन्दर २ पशु एवं पक्षी इसमें मिल सकते हैं। इसका मुख्यद्वार सोने का बना हुआ है जिसमें अनेकों बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। द्वारपर बजने वाला नगाड़ा देवताओं के समान शब्द करनेवाला है। इसप्रकार कहता हुआ रावण सीताको साथ लिये हुए सोने की सीढ़ियों द्वारा महलके ऊपर गया। इस महलकी खिड़कियाँ चाँदी और हाथी दाँतकी बनी हुई थीं जिनमें सोने की जालियाँ लगी थीं। फर्शमें सोना और रत्न जड़े हुए थे। शोकातुर सीताको रावणने सुन्दर सरोवर, उपवन और नाना प्रकारके वृक्ष दिखाए। इसप्रकार अपना महल और वैभव दिखाते हुए कामान्ध रावणने सीतासे कहा—वरानने! इस लंकापुरीमें बालक और वृद्धों को छोड़कर बत्तीस करोड़ राक्षस मिल सकते हैं। उन समस्त राक्षसों का राजा मैं हूँ। सुन्दरी! मेरा राज्य और मेरा सर्वस्व एवं मेरा जीवन अब सब तुम्हारे आधीन हैं। हे चन्द्रानने! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। अस्तु, तुम मुझे अपने पतिरूपमें स्वीकारकर मेरी काम-वासनाको तृप्त करो। मेरी यह सोनेकी लंका चार सौ कोस में बसी हुई है। इसके चारों ओर समुद्र भरा है, समस्त देवों और दानवों, यक्षों और गन्धर्वोंको साथ लेकर देवराज इन्द्र भी इसकी ओर देखनेका साहस नहीं कर सकते। फिर उस तुच्छ रामकी क्या डर है? चन्द्रानने! तुम उस राजच्युत दरिद्री निर्बल रामके साथ प्रेम करके क्या सुख पा सकती हो? हे जनकनन्दिनी! तुम्हारा पति होने योग्य एक मैं ही हूँ। अस्तु तुम मुझे स्वीकारकर इस विशाल लंकापुरीकी स्वामिनी बन आनन्द करो। तुम्हारा यह यौवन क्षणिक है, इसे व्यर्थ बरबाद न करो। मेरी स्त्री बन कर आनन्द करो। जिस प्रकार वायु वेगको कोई पकड़ नहीं सकता, अग्नि की लपटों को कोई स्पर्श नहीं कर सकता, अस्तु उस दुर्बल रामको पुनः देखने की आशा तुम त्याग दो। उसकी सामर्थ्य नहीं कि वह यहाँ आ सके। त्रैलोक्यमें ऐसा कौन है जो मुझे परास्त कर सके? सीते! मेरे साथ ही साथ तीनों लोक चर और अचर सभी तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करेंगे। इसलिए तुम इस विशाल लंकापुरीका राज्य ग्रहण करो। सुन्दरि! वनवास

करनेसे तुम्हारे पाप मुर्छित हो गए हैं और मेरे पुण्यों का उदय हो गया है
इसलिए तुम मेरी स्त्री बनकर स्वर्गके सुखोका उपभोग करो। मैंने अपने
भाई कुबेरको जीतकर मनकी गतिके तमान चलनेवाले पुष्पक विमानको छीन
लिया है। तुम उसपर बैठकर मेरे साथ बिहार करो। रावणकी इस प्रकार
पापमयी वाणी सुनकर सीता अंचलसे मुख मूँदकर रोने लगीं। अधिक
चिन्ताके कारण सीताका मुख मलिन हो रहा था। वह केवल रामचन्द्रका
ध्यान कर रही थीं। रावणने फिर कहा, जनकनन्दिनी ! भ्रमका नाश होगा
इसप्रकारके लज्जा-भ्रमको त्याग दो। लज्जा करनेकी आवश्यकता नहीं
यह कार्य ऋषियोंकी सम्मतिसे होगा। और शास्त्र भी इसकी आज्ञा देते हैं
देवी ! लंकाका राजा रावण कामसे पीड़ितहो तुम्हारे चरणोमें अपना कभी न
झुकनेवाला मस्तक डाल रहा है। तुम इसकी अवहेलना न करो। मुझपर
दया करो। देवि ! मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। तीनों लोकों में कोई भी ऐसा
नहीं जिसके सामने रावणका मस्तक नत हुआ है। वह एक तुम्हीं हो, इस
प्रकार विनीत प्रार्थना करता हुआ रावणने समझा कि बस अब मेरी विजय है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

छप्पनवां सर्ग

रावणका सीताको डराना

पतिके वियोगसे शोकातुर सीता अपने और रावणके बीचसे एक तिनके
की आड़कर निर्भीकतापूर्वक कहने लगीं। सुन राक्षस ! दुर्मते रावण ! धर्म
के सुदृढ़ सेतु सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ मेरे श्वसुर हैं। उनके पुत्र धर्मात्मा
आजानुबाहु, कमलनयन, तीनों लोकोंके स्वामी महात्मा राम मेरे पति हैं।
वह महायशस्वी और पराक्रमी हैं। अपने भाई वीरवर लक्ष्मणके साथ यहां
आकर अवश्य ही तुमको मार डालेंगे। यदि तुम उनकी उपस्थिति में बल
पूर्वक मेरा हरण करनेका प्रयास करते तो कभीके अपने भाई खरके समान
मार डाले गये होते। और तुम अपने जिन राक्षसोंके बल और पराक्रमकी
प्रशंसा कर रहे हो, वह उनके सामने वैसे ही हैं जैसे पक्षिराज गरुड़के सन्मुख
तुच्छ सर्प। जिस प्रकार नदियोंका वेग अपने किनारोंको नाश कर देता है
उसी प्रकार आर्यपुत्रके स्वर्ण जटित प्रखर बाण तुम्हारे राक्षसोंका नाश कर
देंगे। तुम देवों, दानवों, यक्षों, गन्धर्वों द्वारा भले ही न जीते जाओ, परन्तु

शत्रुता करके तुम उसी प्रकार मार डाले जाओगे जिस प्रकार यज्ञस्थल के खम्भ से बँधा हुआ बलि पशु। राक्षसेन्द्र! यदि मेरे स्वामी क्रोध भरी दृष्टि से तुम्हारी ओर ताकभी देंगे तो तुम उसी प्रकार भस्म हो जाओगे जिस प्रकार भगवान् शंकरके ताकनेसे कामदेव भस्म होगया था। राक्षसराज! जो अपने बाणोंसे सूर्य और चन्द्रमाको भी पृथ्वीपर गिरा सकता है, वह अपनी प्राणप्यारी स्त्री सीताको छुड़ानेके लिए यहाँ अवश्य आयेगा। जिन मेरे स्वामी के बाणोंमें सागरको सुखा देनेकी, वायुको रोकदेनेकी शक्ति है, उनमें तुम्हारे क्षुद्र राक्षसोंसे अपनी स्त्रीको छीन लेनेकीभी सामर्थ्य है। हे अधर्मी रावण! तुम अधर्मके कारण अवश्य मारे जाओगे। तुम्हारा ऐश्वर्य और लक्ष्मी भी नष्ट हो जायगी। राक्षसोंसे परिपूर्ण सौभाग्यवती लंकापुरी विधवा हो जायगी। तुमने मुझ पतिव्रता स्त्रीको बलपूर्वक मेरे पतिसे अलग कर दिया है। इस पाप के फलस्वरूप अवश्य ही तुम्हारा नाश होगा। मेरे तेजवान् पति और देवर अपने पराक्रमके ही भरोसे दण्डकारण्यमें निवास करते हैं। उनकी प्रबल बाण-वृष्टिसे समस्त राक्षसोंका नाश हो जायगा। तुम्हारा अभिमान और स्वेच्छा-चारिता नष्ट हो जायगी। जब किसीके अदिन आते हैं तब उसको भले और बुरेका ज्ञान नष्ट हो जाता है। तुमने मूर्खतावश मुझे हरणकर समस्त राक्षस और राक्षसियों सहित अपनी मृत्युको आमंत्रित किया है। जिस प्रकार एक चाण्डाल स्रव और यज्ञ सामग्रियोंसे भूषित ब्राह्मणों द्वारा अभिमंत्रित यज्ञ वेदीको नहीं छू सकता, उसी प्रकार तुमभी अपने पतिपर अटल भक्ति रखनेवाली मुझको भी नहीं छू सकते। कमल बनमें हंसके साथ निवास करनेवाली राज हंसी घासपर सोनेवाले जल कुक्कुटके संग कभी निवास नहीं कर सकती। शरीर जड़ है। इसका जन्म और मरण बराबर हुआ करता है, अस्तु तुम मेरे शरीरके टुकड़ेकर सकतेहो, मार सकतेहो और खा सकते हो; परन्तु मेरे सतीत्व की ओर आँख नहीं उठा सकते। मैं इस शरीर और जीवनको रखनाभी नहीं चाहती। संसारमें मैं प्रशंसित होकर जीना चाहती हूँ। अपमानित और कलंकित होकर नहीं। इस प्रकारके कठोर वचन कहकर जनक-नन्दिनी सीता चुप हो गई। देवी सीताकी ऐसी वाणी सुन उनको डरानेके अभिप्रायसे रावणने कहा—सुन्दरि! मैं तुम्हें एक वर्षकी अवधि देता हूँ। यदि तुम इस एक वर्षके

भीतर मेरे कहनेके अनुसार मेरी होगई तो कुछ कहना ही नहीं। नहीं तो मेरा आदर करनेवाली राक्षसियाँ तुम्हारे शरीरके टुकड़े२ करके फेंक देंगी। सीतासे इसप्रकार कह राक्षसियोंको आदेश दिया कि तुमलोग सीताको अशोक वाटिका में लेजाकर इनकी रक्षा करो। इसे डराकर धमकाकर फुसलाकर और कष्ट देकर जिस प्रकारसे भी सम्भव हो मेरी बात मनाओ। रावणकी आज्ञानुसार राक्षसियाँ सीताको अशोक वाटिकामें ले गईं। वह अशोक वाटिका अत्यन्त ही सुन्दर और फल-फूलसे संयुक्त वृक्षोंसे परिपूर्ण थी। भयानक राक्षसियोंके बीच घिरी, मृगीके समान राक्षसियों सहित सीता वहाँ गईं। राक्षसियोंकी गर्जना और उनका भयानक रूप देखकर सीता अत्यन्त भयभीत होकर मूर्च्छित होगईं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

मारीचको मारकर लौटते हुए रामसे लक्ष्मणकी भेंट

माया मृगरूपी दुष्ट मारीचको मारकर महाराज रामचन्द्र आश्रमकी ओर लौटे तो उनका चित्त न मालूम क्यों आप ही आप उद्विग्न हो गया? वह सोचने लगे कि दुष्ट राक्षस मरते समय मेरे कण्ठ-स्वरका अनुकरणकर 'हा लक्ष्मण! हा सीता!' क्यों कहा? इसके भीतर अवश्यही कुछ न कुछ रहस्य है। यदि लक्ष्मण और सीताने उन शब्दोंको सुना होगा तो अवश्यही विचलित हुए होंगे। कहीं लक्ष्मण मुझको संकटमें पड़ा जान सीताको आश्रममें अकेली छोड़ मेरी सहायताको न निकल पड़ें या देवी सीताही अनुरोध करके मेरी रक्षाके लिए उन्हें न भेज दें। इतनेही में पीछेसे अत्यन्त कर्कश स्वरसे सियार बोल उठा और बाईं आँखभी फड़क उठी। इन अपशकुनोंको देख महात्मा रामचन्द्र कुछ उदास हो गये। उनका हृदय बारम्बार किसी अशुभकी सूचना देने लगा। उन्होंने सोचा निश्चयही आज कुछ अनर्थ होगा। इसमें सन्देह नहीं कि दुष्ट मारीचने मेरे कण्ठस्वरसे जो अति नाद किया है वह किसी षडयंत्रका द्योतक है। क्या आश्रममें सीताको राक्षस लोग खा गए या और कोई बात है। दुष्ट मारीचका अति नाद अवश्यही आश्रम तक पहुँचा होगा जिसे सुन कर सीता और लक्ष्मणका विचलित होनाभी निश्चयही है। ज्ञात होता कि आज कोई अघटित घटना घटेगी क्योंकि बारम्बार होनेवाले अपशकुन

उसकी सूचना दे रहे हैं। जनस्थानके राक्षसोंसे शत्रुता हो जानेसे वह दुष्ट अवश्यही हर समय घातमें लगे रहते हैं तभी तो वह दुष्ट मारीच माया मृग बनकर मुझे आश्रमसे दूर हटा लाया और मरते समय मेरे कण्ठस्वरकी न्याई अति नाद किया। ईश्वरही कुशल करे। इसप्रकार नानाप्रकारकी बातें सोचते विचारते शंकित चित्त रामचन्द्रजी शीघ्रतापूर्वक आश्रमकी ओर चले। थोड़ाही आगे बढ़नेपर देखा कि वीरवर लक्ष्मण उदास मुखमण्डल लिए चले आ रहे हैं। लक्ष्मणने भी भाईके उतरे हुए मुख मण्डलको देखा और सहम गए। थोड़ी देर तक तो दोनोंही भाई एक दूसरेका मुँह ताकते रहे, किसी को कुछ कहने सुननेका साहस नहीं हुआ। तत्पश्चात दुखी हृदयसे भगवान् रामने लक्ष्मणसे कहा—भाई! तुम्हारा सीताको आश्रममें अकेली छोड़कर यहाँ आना ठीक नहीं हुआ। न मालूम क्यों मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आश्रममें चलकर अब सीतासे भेंट न होगी। अवश्यही या तो राक्षसलोग उसे खा गए या उठा ले गए या लिए जा रहे होंगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

रामका आश्रमपर जाना और सीताको न पाना

इस प्रकार कहते हुए उदास लक्ष्मणका मुखमण्डल देख अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक महाराज रामचन्द्र भाईसे कहने लगे—लक्ष्मण! मेरी प्राण प्यारी सीता कहाँ है? भाई! मैं राज्यच्युत और दीन हूँ, तभी इस दण्डकारण्यमें चुपचाप दिन काट रहा था। दुःखमें सहायता देनेवाली मेरी प्राणप्यारी सीताको तुमने कहाँ छोड़ दिया? हे सौम्य! देवकन्याके समान सुन्दरी प्राणप्यारी सीताके बिना क्या मैं जी सकता हूँ? नहीं, कदापि नहीं! प्राणेश्वरी सीताके बिना मैं कदापि जीवित नहीं रह सकता। सीताके बिना पृथ्वीतो क्या मुझे स्वर्ग लोकका राज्यभी सुखी नहीं बना सकता। भाई! सीता मुझे प्राणोंसेभी अधिक प्रिय है। क्या अब वह मुझे जीवित मिल सकेगी? क्या मेरी बनवासकी प्रतिज्ञा पूरी होगी? क्या सीताके मिलनेपर मेरी मृत्युके बाद अयोध्या जाओगे? क्या माता केकईकी अभिलाषा पूर्ण होगी? क्या सफल मनोरथ माता केकईकी सेवा मरे पुत्रकी माता कौशल्याको करनीही पड़ेगी? भाई! यदि सीता जीवित

होगी तभी मैं आश्रमपर चलूँ और यदि मर गई हो तो मेराभी मरना निश्चय है। आश्रमपर पहुँचतेही यदि हँसती हुई सीता मेरे स्वागतको न आई, तो मैं अवश्य मर जाऊँगा। बताओ सीता! मर गई या जीवित है? वीर! तुम्हारी असावधानीके कारण कहीं राक्षस उसे खा तो नहीं गए। सदा सुख भोगने वाली सुकुमारी सीता अभी नितान्त बालिका है। वह अवश्य मेरे वियोगसे दुःखी होगी? भाई! उस कपटी राक्षसके मेरे कण्ठस्वरका अनुकरणकर आर्तनाद करतेही मेरा माथा ठनका था। मैं समझ गया था। इस आर्तनादको सुनकर सीता अवश्य भयभीत होगी और तुमभी डर जाओगे। हुआभी वही। सीताने भयभीत हो मेरी रक्षा करनेके लिए तुम्हें भेजा ही। क्या तुम उसीकी आज्ञासे आए हो? परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ। मेरे शत्रु राक्षसोंको बदला लेनेका अवसर मिल गया। जबसे मैंने खरको मारा है तबसे राक्षस लोग बराबर घातमें लगे हैं। वह लोग अवश्यही सीताको मारकर खा गए होंगे। हे शत्रुञ्जय! इस समय मैं घोर विपत्तिके चक्करमें हूँ। मुझे शंका हो रही है, अब मैं क्या करूँ? मुझे नहीं सूझ रहा है। इसप्रकार बातचीत करते हुए वे लोग जनस्थानमें पहुँचे। परिश्रम और भूख प्यासके कारण रामचन्द्र उदास हो रहे थे, अस्तु वह पश्चाताप करते हुए शीघ्रतापूर्वक आश्रममें गए और आश्रममें सीताको नहीं देखा। तब देवी सीताके समस्त क्रीड़ास्थलोंका निरीक्षण किया। परन्तु वहाँपर भी वह नहीं मिलीं। शोकसंतप्त हृदयसे रामचन्द्रने कहा—हा! यही तो उसके रहनेका स्थान है। इतना कहतेही कहते वह व्याकुल हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५८॥

उनसठवाँ सर्ग

महाराज रामचन्द्रका लक्ष्मणसे कहना

शोक और दुःखसे व्याकुल रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—भाई! जब मैंने तुम्हें सीताकी रक्षाका भार सपोंकर आज्ञा दी थी कि बिना मेरे आए इस स्थानसे कहीं न जाना, तब तुम सीताको अकेली छोड़ यहाँसे क्यों गये? वीरवर! तमको अकेला अपनी ओर आते देखतेही मेरा मन शंकित हो गया, बाईं आँख और भुजा फड़क उठी। भाईकी इस प्रकार सकरुण वाणी सुन

लक्ष्मणने कहा—प्रभो! मैंने स्वेच्छासे देवी सीताको अकेली नहीं छोड़ा। देवी सीताने अत्यन्त कठोर वचनोंसे विवश करके ही मुझे आपके पास भेजा है। "हा लक्ष्मण!!" "हा सीता!" मेरी रक्षा करो, यह शब्द सर्वथा आपके कण्ठ स्वरके समान ही हम लोगोंने सुना—इन शब्दोंने देवी सीताको नितान्त ही भयभीत कर दिया। उन्होंने मुझसे आपके यहाँ जानेकी आज्ञा दी। परन्तु मैंने आपकी आज्ञाका उलंघन करना ठीक न समझ उनको समझाते हुए कहा—देवि! आपका भ्रम निरर्थक है। यह शब्द यद्यपि भाईके कण्ठस्वरसे मिलते हुए हैं, तथापि भाईके नहीं। क्योंकि वह इस प्रकारके दीन शब्दोंका उच्चारण कदापि नहीं कर सकते। फिर तुम यह भी जानती हो कि तीनों लोकोंमें देव, दनुज, यक्ष, गन्धर्व कोई भी ऐसा नहीं जो संग्राम भूमिमें उनका सामना कर सके। देवराज इन्द्र भी उनसे विजय पानेमें असमर्थ हैं। यह दीन शब्द किसी दुष्ट राक्षस द्वारा ही हम लोगोंको धोखा देनेके हेतु कहे गए हैं। आप शान्त होकर बैठिए। भाई शीघ्र ही उस दुष्टको मारकर आ जायँगे। आपको तुच्छ और निर्बुद्धि स्त्रियोंके समान चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भगवान्! मेरे इस प्रकारके वचन सुन आपके प्रेममें डूबी हुई देवी सीताने मुझे इस प्रकारके कठोर वचन कहे—मैं समझती थी कि तुम भाईके प्रेमवश वनमें उनके साथ आए हो; परन्तु नहीं, यह मेरा भ्रम था। अब मैं जान गई कि अवश्य ही तुम्हारे हृदयमें कोई पाप है, उसकी प्रेरणा से तुमने भ्रातृ-प्रेमका झूठा ढोंग रचा है। निःसन्देह तुम उस दुष्ट भरतकी आज्ञासे घरमें घात करनेके लिए ही हम लोगोंके साथ आए हो। तभी तुम भाईकी करुण पुकारकी अवहेलना कर रहे हो, तुम कुलांगार हो। अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे हो। परन्तु स्मरण रखो—मैं महाराज जनककी पुत्री हूँ। सिवा आर्यपुत्रके किसी और आँख उठाकर भी नहीं देख सकती और मुझे हस्तगत करनेकी तुम्हारी इच्छा कभी भी सफल नहीं हो सकती। भगवन्! उनके इन कठोर वचनोंने मेरे हृदयको कम्पित कर दिया। साथ ही साथ क्रोध भी हो आया। उसीके वशीभूत हो मैंने आपकी आज्ञा भङ्ग कर डाली।

लक्ष्मणके ऐसे वचन सुन रामचन्द्रने कहा—भाई! सीताको अकेली छोड़कर तुमने महान् भयङ्कर भूल की, क्योंकि तुम यह भली भाँति जानते हो

कि मैं इन समस्त राक्षसोंको क्षणमात्रमें नाश कर सकता हूँ। सब कुछ जानकर भी तुम सीताके कठोर वचनोंको न सहन कर सके और वह महा दुःखदाई कार्य हो ही गया जिसकी मुझे शंका थी। भाई! तुम्हारे कहे हुए वचनोंसे मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। तुमने सीताके कठोर वचनोंको न सहनकर उसे अकेली छोड़ दिया, यह नीतिके विरुद्ध कार्य हुआ। मैंने धोखा देकर ले जाने वाले दुष्ट राक्षस मारीचको मार डाला; किन्तु वह दुष्ट मरते मरते भी अपना काम कर गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा तृतीय अरण्यकाण्ड का उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

साठवाँ सर्ग

सीताके वियोगमें रामका विलाप

आश्रमके पास पहुँचते ही भगवान् रामचन्द्रके अशुभ अङ्गोंने फड़क कर अनिष्टकी सूचना दे दी और वह अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक चलकर आश्रम में पहुँचे और उसे सीतासे हीन पाया। तब आश्रममें सीताको न देख कर वह व्याकुल हो गए और आश्रमसे बाहर निकल उन-उन स्थानोंमें उनकी खोजकी, जहाँ पर उनके होनेकी सम्भावना हो सकती थी। परन्तु वह कहीं दिखाई न पड़ी। तब रामचन्द्र अत्यन्तही व्याकुल हो गए। सीताके विना उस आश्रमकी शोभा सर्वथाही नष्ट हो गई थी। वृक्षोंके पत्ते एवं फूल कुम्हला गए थे। वन देव एवं वन देवियोंने अपने २ स्थान त्याग दिए थे, पशु और पक्षी भी उदास और दुःखी दिखाई पड़ रहे थे। पर्णशालामें मृग चर्म और कुशासन इधर-उधर अस्त व्यस्त बिखरे हुए पड़े थे, प्रत्येक वस्तु अपने उचित स्थानसे हटी पड़ी थी। इस प्रकार अपनी उजड़ी हुई कुटियाको देख भगवान् राम रो पड़े। रोते २ उन्होंने कहा, इसमें सन्देह नहीं कि सीता आश्रममें नहीं है, नहीं ज्ञात वह कहाँ चली गई! शोकसे व्याकुल महाराज गोदावरीके तीर जा जोर २ से पुकार २ कर कहने लगे—प्राणप्रिये सीते! तुम कहाँ हो, शीघ्र आओ। लक्ष्मण! लक्ष्मण! भाई लक्ष्मण! प्यारी सीता कहीं वनमें कन्दमूल एवं फल लेनेको तो नहीं चली गई। इस प्रकार कहते हुए जहाँ २ पर देवी सीताके रहनेकी संभावना थी, वहाँ २ बड़े परिश्रमके साथ रामचन्द्रने उनकी खोजकी। परन्तु जब वह न मिलीं, तब

वह शोकसे व्याकुल हो गए। साथही क्रोधसे उनके नेत्रके कोए लाल हो गए और वह एक महा उन्मत्त हाथीके समान दिखाई पड़ने लगे। शोक और दुःखसे व्याकुल वह इधरसे उधर दौड़ते और उनमत्तोंके समान हा सीते! हा सीते! ऐसा शब्द उच्चारण करते हुए नदी पर्वत और गहन बनमें उन्हें खोजने लगे। शोकसे विह्वल राम वृक्षों, पशुओं और पक्षियोंसे सीता का समाचार पूछने लगे। वह कहने लगे—प्रिय क़दम्ब! तुम्हारे पुष्पोंसे अत्यन्त प्रेम करनेवाली मेरी प्राणप्यारी सीता कहाँ है? देव! तुम्हारे नवीन पत्रोंके समान कोमल और सुकुमारी मेरी सीता कहाँ है? हे विल्ववृक्ष! तुम्हारे फलोंके समान सुदृढ़ वृक्ष वाली मेरी प्यारी सीता कहाँ है? हे अर्जुन वृक्ष! तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रेम रखनेवाली जनकनन्दिनी सीता कहाँ है? हे ककुभ! तुम्हारे ही समान जंघावाली मेरी प्राण प्यारी सीता कहाँ है? पुष्प राज! तुम्हारे फल एवं फूल दोनों ही सुन्दर हैं, तुम्हारे ऊपर सदैव भँवरे गुञ्जार किया करते हैं; तुम समस्त पुष्पोंमें श्रेष्ठ हो। इसी प्रकार प्राणप्यारी सीता भी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ है। मित्रवर! बताओ, वह कहाँ चली गई है? प्रिय अशोक! तुम दूसरोंके शोकको हरण करनेवाले हो, अस्तु प्राणप्यारी सीताका समाचार दे मेरे शोकको क्यों नहीं हरते? हे ताल! हे तमाल! हे जामुनके वृक्ष! क्या तुमने मेरी प्राणप्यारी सीताको कहीं देखा है? प्रिय कर्णिकार! क्या तुम भी न बताओगे कि प्राणप्यारी सीता कहाँ है? महा यशस्वी महाराज रामचन्द्रने इसी प्रकार समस्त वनवृक्षोंसे देवी सीताका समाचार पूछा। इसी प्रकार वहाँ उपस्थित पशु और पक्षी कोई भी न बच सका जिससे शोकाकुल भगवान् रामने देवी सीताका समाचार न पूछा हो। व्याकुलता अब चरम सीमाको पार कर रही थी, वह कहने लगे—कमलनयनी! प्राण प्यारी सीता! अहा हा हा! मैंने तुम्हें देखही लिया, अब क्यों भाग रही हो? हैं नहीं सुनती? शोक! तुम्हें मेरे ऊपर तनिकभी दया नहीं आती? प्रिये! तुम्हारा स्वभाव तो ऐसा नहीं था। फिर आज ऐसा क्यों कर रही हो? प्राणप्यारी मैंने भागते हुए तुम्हारे पीताम्बरको देख लिया है। प्रिये! यदि तुम सचमुच मुझसे प्रेम करती हो तो अब न भागो। नहीं २ यह मेरा भ्रम है। तुम अब कहाँ? तुमको तो किसी नीचने मार डाला। यदि तुम जीवित होती, तो कदा

मेरा ऐसा तिरस्कार न करती। अवश्यही किसी मांसाहारी राक्षसने तुम्हें मार कर खा डाला। हाय प्राणप्यारी! जिस समय दुष्ट राक्षस तुम्हें पकड़कर मारता रहा होगा उस समय निःसन्देहही तुम्हारा चन्द्रानन कुम्हला गया होगा। हा! सुकुमारी सीताके चर्म और मांसको निर्दई मांसाहारियोंने खा डाला होगा। जिस प्रकार अपने बान्धवोंसे हीन मृगी सिंहों द्वारा भक्षण कर डाली जाती है, उसी प्रकार मेरी प्राणप्रिया सीताभी दुष्टोंद्वारा खाडाली गई होगी। भाई लक्ष्मण! क्या मेरी सीता तुम्हेंभी दिखाई पड़ती है? राम इस वनसे उस वन और इस पर्वत से उस पर्वत पर तीव्रताके साथ दौड़ २ देवी सीताकी खोज करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

एकसठवाँ सर्ग

राम लक्ष्मणसे वार्तालाप

बहुत परिश्रम करने और खोजनेपर जब देवी सीताका कहीं खोज न मिला, तब अत्यन्तही शोकमें विकल हो महाराज रामचन्द्र दोनों हाथ उठाकर सीता! सीता! पुकारते हुए लक्ष्मणसे बोले—भाई! सीता कहाँ चली गई? उसे कौन खा गया? उसे कौन उठा ले गया? सीता! सीता! प्यारी सीता! क्या तुम पेड़ोंके झुरमुटमें छिप मेरी हँसी कर रही हो? प्रिये! इस समय में अत्यन्त दुःखी हूँ, तुम हँसी न करो। आओ २ मेरे पास चली आओ। प्राणप्रिये! यह देखो, तुम्हारे साथ खेलनेवाले मृगछौने तुम्हें न देखकर कैसे उदास हो रहे हैं? लक्ष्मण! मैं सीताके बिना कदापि जीवित नहीं रह सकता। अस्तु; जब मैं मर कर स्वर्गमें जाऊँगा तब मुझसे पूज्य पिताजी पूछेंगे कि, बिना प्रतिज्ञा पूरी किए तू यहाँ क्यों आया? तूने सत्मार्गका त्याग कर दिया। अस्तु तू स्वेच्छाचारी और मिथ्यावादी है। हे आर्ये! हे प्रिये, हे सीते! मैं शोकाकुल, विवश और अपूर्ण मनोरथ दया करनेके योग्य हूँ। प्रिये! तुम मुझे कुटिल मनुष्यके समान त्यागकर कहाँ जाती हो? नहीं, नहीं, तुम मुझे मत त्यागो। क्योंकि तुम्हारे बिना मैं कदापि जी नहीं सकता। इस प्रकार नाना प्रकारके विलाप करते हुए महाराज रामचन्द्रने देवी सीताको देखनेकी इच्छा की। परन्तु वह उन्हें नहीं देख सके और दलदलमें फँसे गजेन्द्रके समान महान् दुःखी हुए। इनकी यह दशा देख वीरवर लक्ष्मणने कहा—हे धर्मज्ञ! आप शोकको त्याग

जिये और मेरे साथ चलकर सीताकी खोज कीजिए; क्योंकि उन्हें वनमें घूमना त्यन्त प्रिय है। सम्भव है, घूमते २ मार्ग भूल गई हों। प्रभो! या तो वह वहीं ती होंगी या कमलफूल लेने चली गई हों। भगवन्! वह अवश्यही विनोद ा कहीं छिप गई हैं, वह देखना चाहती होंगी कि हमलोग उनका पता किस कार लगाते हैं? आप शोकको त्यागिए और मेर साथ चलकर देवी सीता ी खोज कीजिए। दुःखसे व्याकुल महाराज रामचन्द्र लक्ष्मणके समझानेसे शान्त हुए और उनके साथ पर्वतों, नदियों और तालाबोंमें सीताको ढ़ने लगे। बहुत खोजनेपर भी जब देवी सीताका कुछ पता नहीं लगा, तब फिर लक्ष्मणसे कहने लगे—भाई! सीताका तो कहीं पता भी नहीं है। भाई ी बात सुन लक्ष्मणने कहा—प्रभो! जिस प्रकार बलिको बाँधकर वामन भग-वानने इस पृथ्वीको प्राप्त किया था, उसी प्रकार आपभी देवी सीताको प्राप्त ंगे। यद्यपि लक्ष्मणजीने बहुत समझाया; परन्तु महाराज रामचन्द्र शोक व्याकुल हो पृथ्वीपर लोटने और सीता! सीता! प्राण प्यारी सीता! कहाँ ? आओ, जल्दी आओ इत्यादि २ नाना प्रकारका विलाप करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६१॥

बासठवाँ सर्ग

रामचन्द्रका विलाप

शोकसे व्याकुल महाराज रामचन्द्र उन्मत्तोंके समानही विलाप कर रहे । यद्यपि सीता वहाँपर उपस्थित नहीं थीं, तथापि ऐसा प्रतीत होता था कि नों वह सीतासे ही वार्तालाप कर रहे हैं। उस समयकी उनकी दशा एकदम नासक्त संसारी मनुष्यके समानही प्रतीत हो रही थी। वह कह रहे थे, प्राण-! तुम्हें अशोकके पुष्पोंसे प्रेम था। निश्चयही तुम अशोकके पत्रोंमें छिपकर शोकको बढ़ा रही हो। अपनी कदलीके समान जंघाओंको तुम केलोंके ोंमें छिपा रही हो। परन्तु तुम अब ऐसा कर न सकोगी। नहीं! नहीं! तुम ी हुई कर्णिकारके वनमें चली गई हो। परन्तु क्या तुम नहीं जानती कि ारी यह हँसी मुझे कितना कष्ट दे रही है? हाँ, हाँ! तुम्हें हँसी करना अच्छा ूम होता है। परन्तु आश्रमके समीप वनमें छिपनेवाली हँसी अच्छी नहीं। सुलोचने! देखो तो तुम्हारे न रहनेसे यह पर्णशाला नितान्त सूनी हो गई है।

अब चली आओ, अधिक न सताओ। नहीं २ सीताको तो कोई उठा
गया या भक्षण ही कर गया। नहीं तो, वे अवश्यही आजातीं; क्योंकि वह
दुःखित नहीं देख सकतीं ?। भाई लक्ष्मण! देखो तो यह मृगसमूह भी
कर रहा है और कह रहा है, कि तुम्हारी सीताको राक्षस खा गए। हा सी
हा प्रिये, हा आर्ये! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गई? हाय मैं अपनी
सीताको अपने साथ लेकर चलता था, परन्तु अब वह न रही। अब मैं अयो
कैसे जा सकूँगा? आज माता कैकेयी सफल मनोरथ हो गई। क्योंकि ज
सीताके विना अयोध्या जाऊँगा, तब अयोध्या निवासी मुझे देखकर नि
निर्दय और कायर कहेंगे। हाय! जब महाराज जनक अपनी पुत्रीका समा
पूँछेगे तब मैं उनकी ओर किस प्रकार देख सकूँगा? और जब वह अ
पुत्रीका निधन सुनेंगे तब उनकी क्या दशा होगी? भाई लक्ष्मण! अ
अयोध्याको नहीं लौटूँगा। अस्तु तुम मुझे यहीं छोड़ अयोध्या चले जा
क्योंकि मैं विना सीताके जीवित नहीं रह सकता। तुम अयोध्या जा
भरतसे कहना कि रामचन्द्रने कहा है कि तुम प्रसन्नतापूर्वक राज्य करो। म
कौशल्या कैकेयी और सुमित्राकी यथोचित सेवा करना। भाई लक्ष्मण!
मेरे आज्ञाकारी हो, अस्तु माता कौशल्यासे सीताका निधन और मेरी मृत्
समाचार कह देना। देवी सीताके वियोगसे दुःखी भगवान् रामकी यह
देख लक्ष्मणजी भयभीत हो गए, साथही वह भी व्याकुल हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ सर्ग

पुनः विलाप

सीताके वियोग दुःखसे दुःखी महाराज रामचन्द्र विलाप करके
दुःखी होते हुए वीरवर लक्ष्मणको भी दुःखी करने लगे। वह शोकसे लम्
साँसे भरते हुए कहने लगे—हाय! मैं अधर्मी हूँ। यह मेरे पापोंका ही परि
है जो कष्टके पश्चात् कष्टही दिखाई पड़ते हैं। निःसन्देह मैंने पूर्व जन्ममें
भारी पाप किया है। तभी तो स्वजनोंसे बिछुड़कर वनवासी हुआ, इतने
विधाताको सन्तोष नहीं हुआ, पिताकी मृत्यु हुई। इन समस्त दुःखदाई
के साथ-साथ वनमें रहकर शारीरिक कष्ट उठानेपर भी मैं प्रिये सीताके

समें आनन्दित था, परन्तु हाय आज उसी प्रिया सीताके विना मैं अत्यन्त
ीन-हीन और दुःखी हो रहा हूँ। हाय! उस कोमलांगी सीताको दुष्ट राक्षस
ठाकर ले गए, ले जाते समय उसकी क्या दशा हुई होगी? जब दुष्ट राक्षसों
बलपूर्वक उसे पृथ्वीपर घसीटा होगा, तब उसके कोमल अङ्ग क्षत-विक्षत हो
ए होंगे। हाय! उसके सुहावने वस्त्र रक्तसे लाल हो गए होंगे। जिस सुन्दर
ोमल और सुडौल गलेमें वह मणियोंकी माला धारण करती रही, उस ग्रीवाको
िर्दय राक्षसोंने काट लिया होगा। हाय जिस समय प्यारी सीताको राक्षसोंने
कड़ लिया होगा, उस समय उसका मुख वैसाही मलिन हो गया होगा जैसा राहु
ारा ग्रसित चन्द्रमाका हुआ था। भाई लक्ष्मण! इसी शिलाखण्डपर बैठकर प्रिया
ीता कैसा हँस२कर तुमसे वार्तालाप कर रही थी, संभव है वह कमलके फूल लेने
ली गई हो या गोदावरीके तटकी ओर निकल गई हो। परन्तु नहीं, वह अकेले तो
भी नहीं जाती थी। हे भानुकुल भानु! सूर्यभगवान्! आप तो सर्वव्यापी हैं।
ापही कृपाकर बतलाइये कि मेरी प्राणप्यारी कहाँ है? हे पवनदेव! आप
भी स्थानोंमें जानेकी सामर्थ्य रखते हैं। तब क्यों नहीं बताते कि मेरी प्यारी
ीता कहाँ है? परन्तु जब वह रही ही नहीं, तब आप क्या बतलावेंगे?
नि:सन्देह वह मार डाली गई। नहीं २ अभी वह अवश्य जीवित है। यदि
ऐसा न होता, तो मैं कदापि जीवित न रहता। भगवान् रामचन्द्रका इसप्रकार
अनर्गल प्रलाप सुन बुद्धिमान् लक्ष्मणने समयानुसार बचन कहे। महाबाहो!
आप बुद्धिमान् और उत्साही होते हुए भी इसप्रकार हतोत्साह क्यों हो रहे
हैं? भगवन्! शोकको त्यागिए और उत्साहके साथ देवि सीताकी खोज
कीजिए। महाघोर विपत्तिके समय धैर्य धारण करना ही पांडित्य है। वीरवर
लक्ष्मणकी यह वाणी सुन रामचन्द्र और भी दुःखी हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

भगवान् रामका कोप

शोक और दुःखसे व्याकुल रामचन्द्रने कहा—भाई लक्ष्मण! जाओ देखो,
गोदावरीके तटपर सीता कहाँ पुष्प लेने गई होगी। उसे खोजकर लाओ। भाई
की आज्ञानुसार लक्ष्मण तत्कालही वहाँसे चलकर गोदावरी तट पर आए

और सब प्रकार भलीभाँति सीताका पता लगाया, परन्तु सीता वहाँ कहाँ
विवश होकर वह रामचन्द्रके पास आए और कहा—भगवन्! वहाँ पर देवी
कुछ भी पता नहीं है। भाईकी बात सुनकर रामचन्द्रजी स्वयम् सीताको खोजने
लिए चले और चिल्ला २ कर कहने लगे—प्यारी सीते! कहो? आओ
जल्दी आओ। देखो, तुम्हारे वियोगमें मेरी क्या दशा हो रही है। यद्यपि रा
चन्द्रके करुण क्रन्दनको पशु पक्षी वनमें वृक्ष और गोदावरी सबनेही सुना
परन्तु महा पराक्रमी रावणके भयसे किसीको कुछभी कहनेका साहस नहीं
सका। जब किसीसे कुछ उत्तर नहीं पाया, तब सीताके वियोग दुःखसे दुः
रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—भाई! देखो तो कोईभी देवी सीताका समाचार न
बतला रहा है, भला मैं महाराज मिथिलेशको क्या उत्तर दूँगा? हाय! रा
से च्युत होकर मैं बनवासी हुआ, परन्तु इस विपत्ति समयमें भी मेरी संकटों
हरण करनेवाली संकट नाशिनी देवी सीताने भी मेरा साथ छोड़ दिया। त
भला अब मैं किस प्रकार जिन्दा रह सकता हूँ? भाई! यदि सीता खोज
से मिल सकती है तो बताओ, मैं समस्त जनस्थानका कोना-कोना खो
डालूँगा। हाय! यह बड़े-बड़े मृगोंके झुण्ड ज्ञात होता है कि कुछ कहन
चाहते हैं, परन्तु कहते क्यों नहीं? बताओ २, भाई! बताओ, मेरी प्यारी सीत
कहाँ है? रामचन्द्रकी ऐसी वाणी सुन सभी मृग खड़े हो गए और रामचन्
की ओर एक बार देखकर आकाशकी ओर देखा और पृथ्वीकी ओर दे
दक्षिणकी ओर कूदते-फाँदते चले गए। बुद्धिमान लक्ष्मणने मृगोंके इस संके
को समझ लिया और रामचन्द्रजीसे कहा—महाबाहु! आपके प्रश्नका उत्त
इन चतुर मृगोंने दे दिया। प्रभो! ज्ञात होता है, देवि सीता दक्षिणकी ओ
ले जाई गई हैं। अस्तु हमें भी दक्षिणहीकी ओर बढ़ना चाहिए। कदाचि
देवि सीताका पता लग जाय। लक्ष्मणकी बात सुन, इधर-उधर देखते हु
रामचन्द्रजी दक्षिणकी ओर चले। थोड़ीही दूर जाने पर फूलोंकी माला प
उनकी दृष्टि पड़ी। उसे उठाकर कहने लगे—लक्ष्मण! देखो यह पुष्पाभर
मैंनेही प्यारी सीताको पहिनाए थे। निसन्देह यह देवी सीताकेही अङ्गमें विभू
षित थे। यह देखो, किसी राक्षसका पद चिह्न है और यह प्यारी सीताका है।
हाँ! यह स्वर्ण और स्वर्ण विन्दु भी देवी सीताकेही हैं। पर्वतराज! पर्व

राज! बताओ, मेरी सीता कहाँ है? जब तक मैं क्रोधावेश में भर
कर अपने धनुषकी प्रत्यञ्चा न चढ़ाऊँ, तभी तक कुशल है। बताओ,
शीघ्र बताओ, प्रिय सीताको कौन ले गया? यदि तुम नहीं बताते, तो बस
जान लो कि मेरे अग्निमय बाणों द्वारा तुम्हारे ऐश्वर्यका समुचित नाश हो
जायगा। मैं इस गोदावरी नदीको भी सुखा डालूँगा। इतना कहते २ महाराज
रामचन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गए। वह और कुछ कहना चाहते थे कि
उनकी दृष्टि टूटे हुए रत्न जटित धनुष और रथपर जा पड़ी। तब वह भाई
लक्ष्मणसे कहने लगे—भाई लक्ष्मण! देखो, इसी स्थानपर देवी सीताको
मारकर राक्षसोंने खाया है। मालूम होता है इसके लिए उन्हें आपसमें
लड़ना भी पड़ा है। देखो यह रत्नजटित धनुष सूर्यकी किरणोंमें कैसा चमक
रहा है, यह देव, दानव, अथवा गन्धर्व किसका है? यह दिव्य रथ जिसमें
वह भयङ्कर आकृतिवाले गदहे जुते थे, किसका है? इन्हें तथा इनके सारथी
को किसने मारा है? देखो यह दो तर्कस भी पड़े हुए हैं, जिनमें सोनेके फल
वाले महा प्रखर बाण भरे हुए हैं। भाई! यह पदचिह्न किसी राक्षसके ही
हैं। राक्षसोंसे हमसे घोर शत्रुता हो गई है, अब राक्षसोंका नाश तो होगा
ही। भाई! इसी स्थानपर किसी दुष्ट द्वारा प्यारी सीता हरी गई, एवं मारकर
खा ली गई है। सीताके न रहनेपर अब मेरा हित करनेवाला कोई भी
नहीं। प्रजापति ब्रह्मा और देवाधिदेव भगवान् शंकर भी यदि सीताका
हरण मौन होकर देखते रहे, तो मैं उनका भी तिरस्कार करता हूँ। भाई!
मेरा स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है, मैं सर्वदा ही लोकसेवामें लगा रहा हूँ।
लोग मुझे दयालु कहते हैं, परन्तु हाय! मैं प्राणप्यारी सीताकी रक्षा न कर
सका। अस्तु इन्द्रादि देवगण मुझे अवश्य निर्बल कहेंगे। मेरे समस्त गुण
आज अवगुणोंके रूपमें प्रगट हो रहे हैं। परन्तु नहीं, जिस प्रकार प्रलयके
समय चन्द्रमाकी शीतलताको नष्ट कर सूर्य भगवान् प्रचण्ड तेजोमय रूपसे
प्रगट होते हैं, उसी प्रकार इस संसारको नष्ट करनेके लिए मेरा महान् प्रचंड
तेज उत्पन्न होगा। भाई! देव, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, पशु, पक्षी कोई भी
अब सुखी न रहेगा। मैं अपने प्रचण्ड बाणोंसे आकाश-मंडलके समस्त
मार्गोंका अवरोध कर दूँगा। लक्ष्मण! तीक्ष्ण बाणों द्वारा आज मैं ग्रह

और नक्षत्रोंकी गतिको रोक दूँगा। चन्द्रमाका प्रकाश, अग्नि और सूर्यका तेज, वायुका वेग, इत्यादि समस्त शक्तियोंको नष्ट कर दूँगा। पर्वत, वृक्ष और वनोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा। नदी, तालाब और समुद्रोंको सुखा डालूँगा। भाई लक्ष्मण ! यदि इन्द्रादि देवताओंने मेरी प्यारी सीताको सकुशल लाकर मुझे न दे दिया तो तीनों लोकोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा। आज संसार मेरे पराक्रमको देखेगा। आकाश-मण्डल सर्वथाही शून्य हो जायगा। वहाँपर कोई भी आकाश-चारी जीव दिखाई नहीं पड़ेगा, सम्पूर्ण संसार तुम्हें अस्त-व्यस्त और व्याकुल दिखाई पड़ेगा। भाई लक्ष्मण ! देवी सीताके लिए समस्त राक्षसों और पिशाचोंकी सृष्टिको ही मैं नाश कर दूँगा। आज मेरे क्रोध करके चलाए गए बाणोंकी गतिको सारा संसार देखेगा। त्रैलोक्यमें एक भी प्राणी जीवित नहीं बचेगा। समस्त लोकोंको आज मैं प्रचण्ड बाणों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा। प्यारी सीता ! तुम्हारे लिए मैं वह अलौकिक कार्य करूँगा जिसे देखकर देवता भी चकरा जायेंगे। भाई लक्ष्मण ! सीता मारी गई हो अथवा हरी गई हो, मुझसे कुछ प्रयोजन नहीं। मुझे तो सीता चाहिए। यदि जगत्कर्ता ईश्वर विधाता या भगवान् शंकर उसे उचित रूपमें मुझे समर्पण नहीं करते तो अखिल ब्रह्माण्डका भी आज नाश कर दूँगा। जबतक प्यारी सीताको अपनी आँखोंसे नहीं देखूँगा, तब तक बराबर जगत्को प्रचण्ड बाणों द्वारा खण्डित करता रहूँगा। इस प्रकार के वचन कहते हुए महाराज रामचन्द्रने वल्कल वसनोंको ठीक किया और जटाको मस्तकपर बाँध लिया। इस समय उनके नेत्र क्रोधसे अङ्गारों के समान दहक रहे थे, होंठ फड़क रहे थे, रोंगटे खड़े थे, उस समय वे त्रिपुरासुरको मारते समय भगवान् शंकरके समान ही भयंकर प्रतीत होने लगे। उन्होंने अपना धनुष उठा भीषण बाणको उसपर चढ़ा कहने लगे—लक्ष्मण ! मेरे कुपित हो जाने पर मेरी गतिको कोई उसी प्रकार नहीं रोक सकता, जिस प्रकार कोई अपने भाग्य और मृत्युको नहीं रोक सकता। अस्तु सदैव हँसती रहनेवाली प्राणप्यारी सीता यदि उचित रूपसे मुझे समर्पित नहीं की जाती तो देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और मनुष्य कोई भी जीवित नहीं रह सकता।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ सर्ग

क्रोधित रामको लक्ष्मणका समझाना

सीताके वियोग दुःखसे पीड़ित, प्रलय कालकी अग्निके समान क्रोधसे सन्तप्त भगवान् राम समस्त ब्रह्माण्डको नाश करनेके लिए प्रस्तुत बारम्बार धनुष और बाणकी ओर देखते हुए साक्षात् रुद्रके समानही प्रतीत हुए। भगवन् रामकी क्रोधमयी आकृतिको देख वीरवर लक्ष्मणभी अत्यन्त भयभीत हुए। उनका मुख-मंडल उतर गया और वह अत्यन्त नम्रता पूर्वक कहने लगे—भगवान! आप अत्यन्त ही कोमल और सभीका हित करनेवाले हैं। इस प्रकार क्रोधकर अपनी विमल कीर्तिको नष्ट न कीजिए। प्रभो! चंद्रमामें शीतल, सूर्यमें तेज, वायुमें गति; पृथ्वीमें क्षमा प्रकृतिही विद्यमान है। उसी प्रकार आपमें विमल कीर्ति है। भगवन् एक के अपराधमें अनेकोंको दण्ड देना अन्याय होगा। यह टूटा हुआ धनुष और रथ किसका है? सारथी किसका है और यह मरे हुए खच्चर किसके हैं? मैं इन्हें कुछभी नहीं जानता। परन्तु इनके देखनेसे जान पड़ता है कि, अपराधी कोई एक ही है। क्योंकि यद्यपि यहाँ पर महा घनघोर युद्ध हुआ; तथापि इस स्थानपर पद-चिन्ह एक ही व्यक्तिका है। आप धर्मके ज्ञाता हैं। एकके अपराधमें ब्रह्माण्डका नाश मत करिए, राजा सदैव अपराधीको ही दण्डित करता है, वह निरपराधको कभी दण्ड नहीं देता। फिर आपतो सबके हित करनेवाले हैं। आपकी भार्याका हरण क्या किसीको सुखकर हो सकता है? कदापि नहीं! देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व इत्यादि २ किसीमें भी आपके अनिष्ट करनेकी शक्ति नहीं है। अब तो देवि सीताका हरण होगया है। हमें धैर्य धारणकर उन्हें खोजना चहिए। पृथ्वी, आकाश, पाताल, देवलोक, ब्रह्मलोक, इत्यादि तीनों लोकों और चौदहों भुवनोंको हम लोग खोज डालेंगे। यदि इस प्रकारके अनेकों बचनोंको कहकर वीरवर लक्ष्मणने भगवान् रामको शान्त किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

छाछठवाँ सर्ग

लक्ष्मणका रामचन्द्रको और समझाना

विरह व्यथा से व्याकुल भगवान् राम जिस समय क्रन्दन कर रहे थे, उन्हें धर्म और अधर्म कर्म और अकर्मका ज्ञान उस समय नहीं था। वीरवर लक्ष्मणने

विनय-पूर्वक उनके चरणोंको पकड़कर कहा—प्रभो ! हमारे पिता महाराज दशरथ ने बहुत भारी तप करके आपको उसी प्रकार प्राप्त किया है, जिस प्रकार देवराज इन्द्रने अमृत को। पिता आपके गुणोंपर सदैवही मुग्ध रहा करते थे। भरतजी ने बताया है कि उन्होंने आपके वियोग दुःखमें ही अपने प्राणोंको विसर्जन कर दिया। प्रभो ! यदि धैर्य-पूर्वक इन विपत्तियों एवं दुःखोंको सहन करनेमें आपही असमर्थता दिखायेंगे तो फिर इन्हें कौन सहनकर सकेगा ? प्रभो! विपत्ति अग्निके समान उग्ररूप धारणकर मनुष्योंको भ्रमाती है। परन्तु शीघ्रही त्याग भी देती है। यही संसारका नियम है। महाराज नहुषके पुत्र ययातिने अपने पुरुषार्थ द्वारा देवराज इन्द्रका पद प्राप्त किया। परन्तु अनाचारके कारण वह भी स्वर्गसे गिरा दिए गए। हमारे कुल प्रोहित महाराज वशिष्ठ के एक सौ पुत्र क्षणमात्रमें विश्वामित्र द्वारा नष्टकर दिए गए। प्राणिमात्र द्वारा पूजी जानेवाली पृथ्वीभी समयपर काँप उठती है। संसारको आलोकित करनेवाले सूर्य और चन्द्रकोभी समय पाकर राहु और केतु पीड़ित करते हैं। पृथ्वी, आकाश, पाताल, इत्यादि समस्त पंचभौतिक वस्तु सदैव ही विधाता के विधानके भीतर रहती हैं। भगवन् ! मैंने सुना है कि, देवराज इन्द्रको भी कर्मानुसार फलोंको भोगना पड़ता है। तब फिर दूसरेकी तो बातही क्या ? आप धैर्य धारण करें। संभव है कि देवी सीता किसी राक्षस द्वारा हरणकी गई या खा ही ली गईं। परन्तु इस प्रकारका शोक सन्ताप आपको शोभा नहीं देता। आप सर्वज्ञ हैं। आपके समान ज्ञानी पुरुषोंका इसप्रकार शोक सन्ताप सर्वथा निन्द-नीय है। आप अपनी विमल बुद्धि द्वारा उन उपायोंको सोच निकालें जो पूर्वकृत कर्म फलोंको नष्ट कर दें। प्रभो ! यह सब आपहीके कहे हुए उपदेश हैं जो समय समयपर आपने मुझको दिए हैं। नहीं भला मैं आपको क्या समझा सकता हूँ ? भगवन् ! आप इक्ष्वाकुके वंशमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अस्तु आप अपने पराक्रमको न भूलिए और उद्योग द्वारा अपने शत्रुका नाश कीजिए। परन्तु ब्रह्माण्डका नाश करना अन्याय होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्ड का छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥६६॥

सरसठवाँ सर्ग

रामकी जटायुसे भेंट

तत्त्वको ग्रहण करनेवाले भगवान् रामने भाई लक्ष्मणकी समयोचित

वाणीको सुना-और चढ़े हुए वाणको धनुषसे उतारकर कहा-भाई ! तब अब हमें क्या करना चाहिए? कहाँ चलना चाहिए? प्यारी सीताको हम किस प्रकार प्राप्त कर सकेंगे? भाईके प्रश्नके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा--प्रभो ! अभी इसी दण्डकारण्यमें ही सीताको खोजना चाहिए। यह वन अत्यन्त सघन, गुफाओं और कन्दरओंसे युक्त है। यहाँ पर देव, दानव और गन्धर्वोंके अत्यन्त दुर्गम स्थान हैं, जहाँ हिंसक जन्तु भरे पड़े हैं। आप मेरे साथ चलकर सब दुर्गम स्थानोंका निरीक्षण कीजिए, विपत्ति आनेपर धैर्यका न छोड़ना ही बुद्धिमानी है। प्रभो ! आँधियोंके वेग पर्वतोंको नहीं हिलाते। आँधीसे वृक्ष ही नष्ट होते हैं। वीरवर लक्ष्मणकी नीतिभरी वाणीने भगवान् रामके क्रोधको शान्त कर दिया और वह भाईके साथ सीताको खोजने लगे। सहसा उनकी दृष्टि पक्षिराज जटायुपर पड़ी जो खूनसे लथपथ पृथ्वीपर पड़े हुए मृत्युकी अन्तिम साँसें ले रहे थे। जटायुको देखते ही उन्होंने लक्ष्मणसे कहा-भाई ! मालूम होता है कि यह दुष्ट पक्षीही सज्जनके वेषमें कोई राक्षस है। इसीने मेरी प्यारी सीताको भक्षण कर लिया है। अस्तु इस अधमको मैं अपने तीक्ष्ण वाणों द्वारा मार डालूँगा। इसप्रकार कहते हुए भगवान् रामने क्रोधपूर्वक वाणका सन्धान किया और उसके पास गए। वह मुँहसे खून फेंक रहा था। उसने श्रीरामचन्द्रजीको देखा और कहा-वत्स राम! इतना परिश्रम करके तुम जिसको खोज रहे हो उसके साथ ही साथ मेरे प्राणोंको भी दुष्ट रावण हरणकर ले गया। तुम दोनों भाइयोंकी अनुपस्थितिमें वह दुष्ट छद्म वेषमें आकर पुत्री सीताको हरणकर ले गया, जिस समय वह बेचारी सीताको लिए हुए जा रहा था, मैंने उसे रोती और विलपती हुई देखा, साथ ही साथ उसके बचानेका प्रयत्नभी किया। मैंने संग्राम भूमिमें उसके धनुष और रथको तोड़ दिया, उसके रथके गदहों और सारथीको भी मार डाला। यथाशक्ति उस दुष्टको भी व्यथित और पीड़ित किया। परन्तु मैं वृद्ध और वह शक्ति सम्पन्न था। जब मैं थक गया, तब मेरे पंखोंको काट डाला। और तुम्हारी प्यारी सीताको लेकर आकश मार्गसे भाग गया। तुम्हारी आकृति बतला रही है, कि तुम मुझको दोषी समझ मारने का संकल्प कर रहेहो;परन्तु नहीं मुझे तो वह दुष्ट रावणही मार गया है। आपको कष्ट नहीं करना होगा। गृद्धराज जटायुकी यह वाणी सुन भगवान रामने

धनुष और बाणको दूर फेंक उसे अपनी गोदीमें उठा छातीसे लगा लिया। और आपसमें करुण स्वरमें रुदन करने लगे। उन्होंने रोते हुए लक्ष्मणसे कहा—भाई! मैं बड़ा अभागा हूँ। हाय मैं राज्यसे निकाला गया, बनवासी हुआ, सीता हरी गई। विधाताने इतनेपर तरस न खाया और इस पक्षीके प्राण लेनेको तैयार होगए। भाई! मुझ अभागेको देखकर सागर भी सूख जायगा। निसंदेह मुझसे अधिक अभागा कोई नहीं होगा। यह गृद्धोंके स्वामी जटायु मेरे पूज्य पिताजीके मित्र हैं। हाय! आज यहभी मेरेही अपराधके कारण खूनसे लथपथ पृथ्वीपर पड़े हैं। इसप्रकार कहकर रामचन्द्र मनुष्योंके समान विलाप करनेलगे। दोनों भाइयोंने गृद्धराजके शरीरकी धूल झाड़ी और कटे हुए पंखों समेत गोद में लेकर विलाप करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्य काण्डका सरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

जटायुकी शोचनीय और दयनीय दशा देखकर रामचन्द्रजी ने भाई लक्ष्मणसे कहा—भाई! यह पक्षी पक्षी होकर भी मनुष्योचित उपकार करते हुए अपने प्राण त्याग रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि यह देवी सीता की सहायता करते हुए ही इस प्रकार मर रहा है। इसकी आवाज धीमी हो गई है, आँखोंकी पुतलियाँ इधर-उधर नाच रही हैं। पक्षिराज! यदि आप बोल सकें तो कृपाकर देवी सीताके हरणका सम्पूर्ण वृत्तान्त अवश्य बता दें, जिससे हमलोग उनको खोज सकें! हे तात! कहिये; अपने हरणके समय देवी सीताने क्या सन्देश कहा है? उस समय उनकी क्या दशा थी? तुमने सीताको हरण करनेवाले राक्षसका नाम रावण बतलाया है। वह रावण कैसे रंग और रूपवाला है? वह कहाँ रहता है? कितना बलवाला है? जिस समय महाराज रामचन्द्र इस प्रकार प्रलाप कर रहे थे, उस समय जटायुका दम टूट रहा था। परन्तु रामचन्द्रकी वाणी निष्फल नहीं गई, क्योंकि टूटते हुए दमसे भी अत्यन्त परिश्रमकर जटायुने कहा—राजपुत्र! सम्पूर्ण राक्षसोंका स्वामी, लङ्काका राजा महापापी रावण है; वही देवी सीता के रोने बिलखनेकी कुछ भी परवाह न कर उन्हें हरणकर ले गया। प्रभो!

जिस समय उसने देवीका हरण किया, उस समय अपनी मायासे बड़े जोरकी आँधी चलाई और पानी भी बरसाया। मैंने अपनी शक्तिभर देवी सीताको बचानेका प्रयत्न किया। यहाँपर घोर संग्राम हुआ। मैंने उसके रथ, सारथी और धनुषको नष्ट कर उसे भी मरणासन्न कर दिया। परन्तु वह देवताओंका वरदानी अपार शक्तिवाला था और मैं बूढ़ा और शक्तिहीन। अन्तमें वह दुष्ट मुझे आक्रान्त कर देवी सीताको ले गया। प्रभो! अब मेरी वाक्य-शक्ति नष्ट हो रही है, दृष्टि-शक्ति भी क्षीण होती जा रही है। बनके वृक्ष स्वर्ण-मयी दिखाई दे रहे हैं। मेरी मृत्यु धीरे-धीरे मेरे पास आ रही है। परन्तु एक बात मैं और बतला देना चाहता हूँ, वह यह कि तुम्हें घबड़ाना नहीं चाहिए, क्योंकि सीता देवी आपको अवश्य ही मिल जायँगी। क्योंकि उनका हरण ऐसे मुहूर्तमें हुआ है जिसमें खोई हुई चीज अवश्य ही मिल जाती है, साथ ही साथ उस दुष्ट रावणका इस पाप-कर्मसे नाश भी उसी प्रकार होगा जिस प्रकार वंशीका मांस ग्रहण करनेसे मछलीका नाश हो जाता है। इतना कहते-कहते ही जटायु मुँहसे रक्त-वमन कर इस असार संसारसे विदा हो गया। महाराज रामचन्द्र उसकी मृत्युसे अत्यन्त दुःखी हुए। वह लक्ष्मणजीसे कहने लगे—भाई! यह पक्षिराज जटायु अत्यन्त दीर्घ-कालसे इस दण्डकारण्यमें राक्षसोंके बीच उनकी कुछ भी परवाह न कर रहते थे। परन्तु आज मर गए। भाई! देवी सीताकी रक्षा करते हुए जटायुने अपने प्राण देकर मेरे ऊपर बड़ा भारी उपकार किया है। भाई! साधु और धर्मात्मा प्रत्येक योनिमें होते हैं। देखो, पक्षी होकर इन्होंने हमें आभारी बनाया। भाई! इस समय मैं सीता हरणके शोकको भूल गया हूँ और वीर जटायुकी मृत्यु-दुःखसे दुःखी हो रहा हूँ। भाई! तुम सूखी-सूखी लकड़ियाँ एकत्रित करो, मैं इनका दाह-संस्कार अपने हाथोंसे करूँगा। हे परोपकारी पक्षि! तुम मेरी आज्ञासे उस परम गतिको प्राप्त करो जो ऋषियों, मुनियों और तपस्वियोंको भी दुर्लभ हैं। मैं अपने हाथोंसे तुम्हारा दाह-संस्कार कर रहा हूँ। अस्तु तुम समस्त दिव्य लोकोंके अधिकारी हो। यह कहते हुए दोनों भाइयोंने जटायुको लाशको चितापर रख दिया और मृगके मांसके पिण्ड बना शास्त्रोक्त रीतिसे उन्हें पिंडदान किया। फिर

गोदावरीमें स्नान कर जलदान दिया और देवी सीताको खोजनेके लिए आगे चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा तृतीय अरण्य काण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

रामकी कबन्धसे भेंट

जटायुको जल-दान कर दोनों भाई देवी सीताको खोजनेके लिए पश्चिम और दक्षिणके बीचके मार्गसे जाने लगे, वह वन लताओं गुल्मों और झाड़ियोंके कारण अत्यन्त ही सघन और भयङ्कर हो गया था। दण्डकारण्यको पार कर शीघ्रता पूर्वक दोनों भाइयोंने क्रौंच नामक वनमें प्रवेश किया। यह वन फूलों, फलों एवं पशु-पक्षियोंसे संयुक्त था। विरह-कातर भगवान् राम पागलोंके समान दौड़-दौड़कर देवी सीताको खोज रहे थे। धीरे-धीरे ये लोग क्रौंच वनको भी पारकर गए और पूरबकी ओर तीन कोस आगे बढ़ गए, तब उन्हें मतङ्ग ऋषिका आश्रम मिला। आश्रमके समीपका वन भयंकर और हिंसक जन्तुओंसे परिपूर्ण था। यहाँ दोनों भाइयों ने एक अत्यन्त ही गहरी और अन्धेरी गुफा देखो, जहाँ पर एक भयंकर राक्षसी खड़ी थी। इसका पेट लम्बा एवं दाँत बड़े २ और तीक्ष्ण थे। वह ऐसी कुरूपा एवं भयंकर आकारकी थी कि उसको देखते ही लोग डर जायँ। उस भयंकर राक्षसीने दोनों भाइयोंको देखा और भगवान् रामके पीछे२ चलने वाले वीरवर लक्ष्मणको उसने दौड़कर पकड़ लिया। और उन्हें छातीसे लगाकर कहने लगी। नाथ, तुम मुझे बड़े प्यारे लगते हो। मेरा नाम अयोमुखी है। तुम्हारा बड़ा भाग्य है, तभी मैंने तुम्हें प्यारकी दृष्टिसे देखा है। अब तुम मेरे साथ रहकर पर्वतकी कन्दराओं और नदियोंके कूलों पर रहकर आनन्द पूर्वक बिहार करो। उस राक्षसीकी ऐसी घृणित और लज्जा जनक बात सुन वीरवर लक्ष्मणने उसकी नाक कान और स्तनोंको तलवारसे काट डाला। तब यह राक्षसी जिधरसे आई थी. उधर ही की ओर भाग गई। तब दोनों भाइयोंने गहन बनमें प्रवेश किया। लक्ष्मणने रामचन्द्रसे कहा—भाई! न मालूम क्यों मेरा मन चंचल हो रहा है? अशुभ अङ्ग फड़कते हैं और चित्त कहता है कि कुछ अनिष्ट होगा। परन्तु यह सब मेरे ही लिए है। अ

छुपाकर सावधान रहें। देखिए, चुलक नाम पक्षी भी बोलकर बता रहा है कि यद्यपि जीत आपकीही होगी। परन्तु यहाँपर संग्राम होगा। अभी ये लोग इस प्रकारकी बातें कर ही रहे थे कि, एक महा भयंकर और घनघोर गर्जन का शब्द हुआ जिससे तमाम वन-प्रदेश कम्पायमान हो उठा। दोनों भाइयों ने इस भयंकर शब्द करनेवालेकी खोजमें इधर उधर दृष्टि डाली और जानना चाहा कि यह कौन है। इतनेहीमें एक अत्यन्त भयंकर राक्षसने सामनेसे आकर इनके मार्गको रोक दिया। इस राक्षसका डील डौल अत्यन्त विचित्र था। गर्दन और धड़का कहीं पताही न था। बहुत ध्यान करने पर ज्ञात हुआ कि उसका मुँह पेटके अन्दर घुसा हुआ है। उसके शरीरके बाल लम्बे २ कड़े और तीक्ष्ण थे। माथेमें प्रज्वलित अग्निके समान पीले-पीले बाल, आँखें छातीमें और मुँह पेटमें घुसा हुआ था। जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण और बड़े बड़े दाँत तथा लम्बी और खुर्दरी जिह्वा चमक रही थी। उसके हाथ चार-चार कोश लम्बे थे। जिनमें पकड़ २ कर वन पशुओंका वह भक्षण कर रहा था। अभी-अभी यह लोग देख ही रहे थे कि उसने अपनी लम्बो २ भुजाओंको फैला कर दोनों भाइयोंको दृढ़ताके साथ पकड़ लिया। इस प्रकार अपने लोगोंको बाहुपाशमें फँसा हुआ देख वीरवर लक्ष्मणने कहा—भाई! हम लोग बुरी तरह इस दुष्टके चंगुलमें फँस गए हैं। अस्तु कोई बात नहीं; मुझे इसके सुपुर्द कर आप अपनी रक्षा कीजिए। आपको आपकी प्यारी सीता देवी मिल जायँगी, उन्हें लेकर आप अयोध्या चले जाइयेगा। भाई की ऐसी बाणी सुन भगवान् रामने कहा—हे शत्रुनाशक! तुम इतना अधीर क्यों हो रहे हो?। इन लोगोंकी बातें सुन उस राक्षसने कहा तुम दोनों धनुष बाण एवं तलवार धारण किए हुए कौन हो? तुम लोगों के कन्धे बैलके कन्धोंकी तरह पुष्ट और सुन्दर हैं। साथ ही साथ तुम लोग बलवान् भी प्रतीत होते हो, परन्तु मेरे हाथसे आज तुम्हारे प्राण बचने दुर्लभ हैं; क्योंकि मैं अत्यन्त ही भूखा हूँ। अस्तु आज तुम्हारा सुस्वादु मांस खाकर मैं भी धन्य हो जाऊँगा। दुष्ट राक्षसकी यह बातें सुन भगवान् राम भी दुःखी हुए और इन्होंने लक्ष्मणसे कहा—भाई! काल की गति विचित्र होती है। देखो, इस समय हम लोग कैसे भारी संकटमें पड़

गए हैं। तुम इस दुष्ट राक्षसके विचार सुनही रहे हो। प्यारी सीता भी न मिली और हम लोग इस समय कालके गालमें पड़े हुए हैं। धन्य हो विधाता तुम और तुम्हारी गति। बड़े २ शूर वीर भी तुम्हारे चक्करमें पड़ भुनगेके समान नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार कहते हुए महाराज रामचन्द्रने अपनी विमल बुद्धिका स्मरण किया और कुछ सोचने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा ततीय अरण्य काण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥६९॥

सत्तरवाँ सर्ग

महाराज रामचन्द्रका कवन्धके हाथ काटना

कबन्धकी बाहुपाशमें फँसे हुए दोनों भाई कुछ सोच ही रहे थे कि कबन्धने कहा—हे क्षत्रिय कुल भूषण! क्या मुझे देखकर तुम लोग डर गए? निसन्देह तुम मन्दभागी मेरे चंगुलमें फँस गए हो। मैं बहुत भूखा हूँ। अब तुम किसी प्रकार बच नहीं सकते। राक्षसकी बात सुन वीरवर लक्ष्मण ने रामचन्द्रसे कहा—भाई! यह राक्षस अब हम लोगोंको खानेही वाला है। इसके पहिले ही हम लोगोंको पराक्रम प्रकाश करना चाहिए। क्यों न तलवारसे इसके हाथ काट दिए जाँय। यह दुष्ट राक्षस न मालूम कितने निरपराध जीवोंको पकड़ २ कर खा गया होगा। आज हम लोगोंको भी यह खाना चाहता है। राजधर्मानुसार इसका बध करना ही श्रेयस्कर है। लक्ष्मणकी यह बात सुन, वह दुष्ट अत्यन्तही क्रोधित हुआ और इन लोगोंको खानेके लिए अपना भीषण मुख फैलाया। इतनेहीमें दोनों भाइयोंने एक साथही अत्यन्त ही तेजी और फुर्तीसे उसकी दोनों भुजाओंको अपनी२ तेज तलवारोंसे काट डाला। हाथोंके कटतेही कबन्ध अत्यन्त घोर गर्जना करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी उस घोर गर्जनासे पृथ्वी हिल उठी। थोड़ी देर बाद वह उठकर बैठ गया और कहने लगा, तुम दोनों कौन हो? कबन्धके प्रश्नके उत्तरमें वीरवर लक्ष्मणने कहा—इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न महाराज दशरथके पुत्र हम लोगोंको जानो। यह मेरे बड़े भाई और राज्यके अधिकारी हैं। मेरा नाम लक्ष्मण है। हमलोग अपने पिताकी आज्ञानुसार देवी सीता सहित यहाँ दण्डकारण्यमें निवास कर रहे थे। एक दिन सूने आश्रमसे कोई दुष्ट राक्षस देवि सीताको हरणकर ले गया। हम लोग उन्हींको खोजते फिर रहे थे कि तुमने हमलोगों

को सहसाही पकड़ लिया है। मैं देखता हूँ कि तुम्हारे पैर टूट गए हैं, सर पेटमें घुसा हुआ है, तुम गेंदके समान यहाँ लुढकते फिरते हो, तुम कौन हो ?। वीरवर लक्ष्मणकी बातें सुन कबन्ध प्रगट हुआ। उसे सहसा इन्द्रकी कही हुई बातें स्मरण हो आईं। वह कहने लगा—पुरुषोत्तम! मैं तुम दोनों बलवानोंका प्रसन्नता पूर्वक स्वागत करता हूँ। यद्यपि आप लोगोंने मेरी दोनों भुजाएँ काट दी हैं तथापि मैं आप लोगोंके आगमनसे सन्तुष्ट हूँ। अब मैं अपना वृतान्त तुमको सुनाता हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्य कांडका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७०॥

इकहत्तरवाँ सर्ग

कबन्धके पूर्व जन्मका वृतान्त

कबन्धने कहा--प्रभो ! मैं पहिले अत्यन्तही रूपवान् था। मेरे स्वरूपकी प्रसिद्धि त्रैलोक्यमें विख्यात थी। क्योंकि मैं इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी था। परन्तु मैं बड़ा नटखट स्वभावका था। जहाँ कहीं ऋषियों मुनियों को देखता वहाँ राक्षसोंका भयंकर रूप धारणकर उन्हें डरा देता था। जब वह डरकर भागते, तब मैं उनका उपहास करता। एकबार अपने स्वभावके अनुसार स्थूलसिरा नामक मुनिको भयभीत करनेके लिए मैंने भयंकररूपधारण किया। परन्तु ऋषि मुझे पहिचान गए और क्रोध करके कहा, दुष्ट ! मैं जानता हूँ कि तू दनुका पुत्र है। मुझे डरानेके लिए यह रूप धारण किया है। अस्तु मैं श्राप देता हूँ कि अब तेरी रूप बदलनेकी शक्ति नष्ट हो जाय और तू सदैव ही इसी भयंकर रूपमें रहे। श्राप सुनतेही मेरा सारा दर्प चूर्ण हो गया। मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा-प्रभो! कृपाकर इस श्रापसे उद्धार होनेका मार्गभी बतलाइये। तब उन्होंने कहा, त्रेतायुगमें जब महाराज रामचन्द्र अपने भाईके साथ तेरे दोनों हाथोंको काट डालेंगे, तब तू इस श्रापसे मुक्त होगा। स्थूलशिरा ऋषि का श्राप सिरपर ले पितामह ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिए मैंने महान् तप किया। तब उन्होंने प्रसन्नहो मुझे दीर्घजीवि होनेका वरदान दिया। ब्रह्मासे वर पाकर मुझे और भी अभिमान होगया और मैं इन्द्रसे लड़नेके लिए गया। देवराजके साथ मेरा घोर संग्राम हुआ। देवराजने क्रोधितहो अपने वज्र द्वारा मेरा सर गर्दन और पैरोंको नष्टकर डाला। तब मैं अत्यन्त भयभीतहो

उनसे प्राणोंकी भिक्षा माँगने लगा। देवराजने मुझे प्राणदान दिया। तब मैंने उनसे कहा, भगवन्! आपके वज्रने मेरे सिरको पेटमें घुसेड़ दिया है और पैरोंको भी तोड़ दिया है। अब मैं संसारमें जीवित किस प्रकार रहूँगा? क्योंकि मेरे भरण पोषणका कोई उपाय नहीं है। मेरी यह वाणी सुन देवराजने मेरे पेटमें ही मुख बनाकर उसमें दाँतभी बना दिए और मेरी भुजाओंको चार कोस लम्बीकर दिया और कहा देखो, जब तुम्हारी इन लम्बी बाहुओंको महाराज रामचन्द्र काटेंगे और तुम्हें अग्निमें जला देंगे, तब तुम्हारी मुक्ति हो जायगी। प्रभो! तबसे मैं अपनी इन्हीं लम्बी बाहुओं द्वारा वनमें पशुओंको मार २ कर खा रहा हूँ और आपके आनेकी प्रतीक्षा करते २ उकता गया हूँ। परन्तु यह निश्चय था कि एक दिन आप लोग भी अवश्य ही मेरी इन लम्बी बाहुओंमें फँसेंगे। वह सौभाग्य आखिर आज आही गया। प्रभो! मैं आपके कायमें वचनों द्वारा सहायता करूँगा। कबन्धका सारा वृत्तांत सुन रामचन्द्र ने उससे कहा—भाई! जिस समय मैं और भाई लक्ष्मण दोनों ही आश्रममें नहीं थे उसी समय मेरी प्यारी स्त्री सीताको एक राक्षस हर ले गया है। मैं उसका नाम तो जानता हूँ; परन्तु यह नहीं जानता कि वह कहाँ रहता है? कितना प्रभावशाली है। और किस आकार प्रकार वाला है। यदि तुम मुझे उसका पता ठिकाना बता सको तो बताओ, मैं तुम्हारा आभारी हूँगा। रामचन्द्रकी ऐसी वाणी सुन कबन्धने कहा--प्रभो! आपके कारण मेरा दिव्य ज्ञान नष्ट हो गया है, वह मुझे तब तक न प्राप्त होगा, जब तक आप मेरा अग्नि संस्कार नहीं करेंगे। अस्तु आप संध्या होनेके पहिले ही मुझे भस्म कर दें, जिससे मैं आपको देवी सीताके मिलनेका उपाय बता सकूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्य काण्डका इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७१॥

बहत्तरवाँ सर्ग

कबन्ध द्वारा सुग्रीवका परिचय

कबन्धकी ऐसी वाणी सुन महाराज रामचन्द्रने भाईकी सहायतासे उसे उठाकर पर्वतके समीप एक खड्डमें डाल जंगलसे सूखी लकड़ियाँ एकत्र कर खड्डको लकड़ियोंसे ढक दिया। तब लक्ष्मणने चारों ओरसे उस चिता में आग लगा दी। धीरे २ वह राक्षस जलकर भस्म हो गया। उसके जल

जाने पर चिता हिलने लगी और तब वस्त्राभूषणोंसे युक्त एक सुन्दर युवा पुरुष उस चितासे बाहर निकल आया जिसके लिए हंसोंसे जुता हुआ दिव्य रथ स्वर्गसे आया। उसपर सवार हो अपनी ज्योतिसे समस्त दिशाओंको देदीप्यमान करता हुआ वह आकाश मार्गसे देवलोकको चला। चलते २ उसने महाराज रामचन्द्रसे कहा—हे इक्ष्वाकुकुलभूषण! अब मैं तुम्हें देवी सीताके मिलनेका उपाय कहता हूँ, सुनो। राजा लोग अपने कार्यकी सिद्धिके लिए सन्धि, विग्रह, मान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय ६ प्रकारकी नीति बरतते हैं। क्योंकि इनके बिना कार्यकी सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। भाग्यवश जब मनुष्य विपत्तियोंमें फँस जाता है, तब उसे महान् कष्ट भोगने पड़ते हैं। इस समय आप और आपके भाई लक्ष्मणभी उसी भाग्य-चक्रके फेरमें पड़े हुए हैं। तभी राज छूटा और नाना प्रकारके कष्ट उपस्थित हो रहे हैं। सीताका हरण भी भाग्य-चक्रका कार्य है। इस समय आपको यथाशीघ्र कोई उत्तम मित्र प्राप्त करना चाहिए; क्योंकि बिना मित्रके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी। अस्तु मैं आपको एक विश्वासपात्र मित्रका पता देता हूँ। उसको मित्र बनाकर आप अवश्य ही अपने कार्यमें सफल होंगे। वह बानरोंके राजा इन्द्रके पुत्र बालिका भाई सूर्यका पुत्र सुग्रीव नामका बानर है जिसे बालिने राज्यसे निकाल दिया है। वह अपने विश्वासी मंत्रियोंके साथ पम्पा सरोवरके पास ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करता है। बानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव अत्यन्त प्रभावशाली, बलवान्, बुद्धिमान्, तेजस्वी, विद्वान्, सत्यप्रतिज्ञ, धैर्यवान्, चतुर और पराक्रमी है। प्रभो! आप समस्त चिन्ताओंको त्याग सुग्रीवको अपना मित्र बनाइये। देवी सीताकी प्राप्तिमें वह आपकी पूरी सहायता करेगा। वह इच्छानुसार अपने रूपका परिवर्तन कर सकता है। उसके द्वारा निसन्देह आपका उपकार होगा। भगवान् विधिके विधानके प्रतिकूल कोई भी नहीं चल सकता। अस्तु आप अभी यहाँसे जाइये और युक्तिपूर्वक आज ही सुग्रीवको अपना मित्र बनाइये और ऐसी मित्रता कीजिए कि कभीभी न छूट सके। इसके लिए आप भी अग्निको साक्षी दीजिए और उससे भी अग्निको साक्षी लीजिए। हे इक्ष्वाकुकुलभूषण! आप कभी सुग्रीवका अपकार नहीं करना। क्योंकि वह अत्यन्त विनयी और कृतज्ञ है। उसकोभी इस समय एक

अच्छे सहायककी आवश्यकता है। आप दोनों भाई उसकी सहायता करनेके योग्य हैं। मित्रता करके उसका काम चाहे पहिले पूरा कर देना चाहे पीछे। परन्तु वह आपके कार्यमें पूरी सहायता करेगा। संसारके समस्त राक्षसोंके निवासस्थान और उनकी शक्तिका उसे पता है। सीताकी खोजमें सूर्योदय से सूर्यास्त तककी समस्त वसुन्धरा, आकाश एवं पाताल तक उसके दूत जाकर देवी सीताका पता लगावेंगे। उसके भेजे हुए बलवान् वानर रावणकी लङ्कामें भी जाकर खोज करेंगे। इसलिए आप जितना शीघ्र हो सके पम्पा-सरमें जाकर वहाँके सब वानरोंको अपना अनुयायी बनाइये। वानरराज सुग्रीव आपकी सीताको चाहे वह जहाँ भी होंगी, अवश्य ही खोज लावेगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्य काण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

पम्पा सरोवरका मार्ग बताना

इस प्रकार देवी सीताके मिलनेका उपाय बताकर कबन्धने कहा—भगवन्! यह जो मनोहर फलोंसे युक्त वन दिखाई पड़ रहा है, इसकी पश्चिम दिशाकी ओरसे ही पम्पा सरोवरके लिए सीधा मार्ग गया है। इस वनमें जामुन, प्रियाल, बड़, कटहल, पकड़ियाँ, तिन्दुक, पीपर, कर्णिकार, आम, धव, नाग, वृक्ष, तिलक, नक्तमाल, नील, अशोक, कदम्ब, अग्निमुख, रक्तचन्दन, पारिभद्र, इत्यादि अनेकों प्रकारके वृक्ष लगे हुए हैं। आप लोग सुस्वादु फलोंको खाते हुए पश्चिम दिशाकी ओर जाइये। इस वनको पारकर जानेपर तुम्हें और भी फलों और फूलसे भरा हुआ अत्यन्त ही घना वन मिलेगा। प्रभो! जिस प्रकार उत्तरकुरु, नन्दनवन, और चैत्ररथ इत्यादिमें हर समय, हर ऋतुके फल प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वहाँ भी हर ऋतुकी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। उसके आगे बढ़नेपर एक पर्वत मिलेगा। उसके बाद दूसरा और तीसरा पर्वत पारकर एक सुन्दर वन मिलेगा। उसके पार करनेके बाद आपलोग पम्पासर पहुँच जायेंगे। उस सरोवरका जल सेवार इत्यादिसे रहित है, अत्यन्त निर्मल और सुस्वादु है। वहाँकी भूमि धूल और कंकड़ोंसे रहित है। सरोवरके घाट अत्यन्त ही सुन्दर और मनोहर हैं, चारों ओर खिले हुए लाल एवं नीले कमल शोभायमान हैं। हंस और क्रौञ्च

आदि पक्षियोंकी सुन्दर और कोमल वाणी गुञ्जरित होती रहती है। उस पवित्र स्थानपर कभी कोई शिकार नहीं खेलता। यही कारण है कि वहाँके जलपक्षी मनुष्योंको देखकर भी नहीं डरते। सरोवरमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ भी हैं। वहीं पर्वतकी कन्दराओंमें बड़े-बड़े भीषण-काय बानर रहते हैं जो सायं प्रातः सरोवरपर आते हैं। हे रघुश्रेष्ठ! तुम उन पीत रंगवाले बानरों एवं सुन्दर और सुगन्धित फूलोंका उपभोग करना। क्योंकि उन फूलोंको उपभोग करनेवाला वहाँ कोई नहीं है। वहाँके फूल न तो सूखतेही हैं, न कुम्हलातेही हैं। कारण मतङ्ग ऋषिके शिष्य अपने गुरुके लिए कन्दमूल फल लेनेके लिए वनमें जाया करते हैं और वहाँसे बहुत-से फलोंको लेकर चलनेमें उन्हें परिश्रमके कारण पसीना हो जाया करता था। वह ऋषिका पसीना जहाँ-जहाँपर गिर जाता था, वहाँ वहाँ पुष्प मालाएँ उत्पन्न हो जाती थीं, जो कभी भी नष्ट नहीं होतीं। यद्यपि वह ऋषि-शिष्य अब वहाँपर नहीं हैं। परन्तु उनकी शवरी नामक एक सेविका वहीं रहती है जो अत्यन्त सज्जन और उदार एवं आपकी भक्त है। वह आपका दर्शन करके ही अपने शरीरको त्यागकर स्वर्ग लोकको चली जायगी। वहीं पासही एक गुप्त गुफा है जिसमें हाथियोंके झुण्ड-के-झुण्ड रहते हैं। परन्तु यह आश्रमके निवासियोंको किसी प्रकारका कष्ट नहीं देते किन्तु रक्षा करते हैं। उसीके पास ही पूर्व दिशामें ऋष्यमूक पर्वत है। किम्वदन्ती है कि इस पर्वतपर देखा हुआ स्वप्न जागनेपर नितान्त सत्य होता है। पम्पासरमें जलपान कर मतङ्ग वनमें घूमनेवाले मस्त हाथियों के शब्द वहाँपर आप सुनेंगे। कभी-कभी तो यह हाथी आपसमें ही लड़कर खूनसे लथपथ हो जाते हैं। हे रामचन्द्र! तुम वहाँ झुण्ड-केझुण्ड हाथियों को देखोगे। वहींपर आपको नीलमणिके समान चमकनेवाले बड़े-बड़े भालू, बाघ इत्यादि २ भी तुम्हें वहाँ दिखाई पड़ेंगे। हे नरोत्तम! वहाँके पर्वतोंकी गुफाएँ अत्यन्त ही रमणीक हैं। आप वहाँपर अपना शोच और दुःख सभी भूल जायँगे। वहाँपर फल फूल अधिक उत्पन्न होते हैं। उसके चारों ही ओर पर्वतमाला घूमी हुई है। उसी रमणीक स्थानपर वानरराज सुग्रीव अपने मन्त्रियों सहित निवास करते हैं। कभी-कभी वह पर्वत-शिखर पर भी आकर बैठते हैं। इस प्रकार कहकर कबन्ध चुप हो रहा। उसका दिव्य

विमान अकाश-मंडलको प्रज्वलित करता हुआ जाने लगा। रामचन्द्रने कहा—अच्छा भाई! अब तुम जाओ। जाते हुए कबन्धने भी कहा आप लोग भी शीघ्रता पूर्वक जाकर अपना कार्य सिद्ध कीजिए। रामचन्द्रकी आज्ञा पाकर कबन्ध प्रसन्नता पूर्वक अपने स्थानको गया। इधर ये लोगभी पम्पा-सर की ओर जानेकी तैयारी करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्य काण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

महाराज रामचन्द्रभाई लक्ष्मण सहित पम्पा सरोवर पहुँच बानर-राज सुग्रीवसे मिलनेकी इच्छा रखते हुए कबन्धके बताए हुए मार्गसे पश्चिमकी ओर चले। अनेकों बनों और पर्वतोंको देखते हुए ये लोग शवरीके आश्रम पर पहुँचे। समाचार पाते ही शवरी आकर इनसे मिली और अर्घपाद्यादि अर्पणकर इन लोगोंके चरणोंपर लोट गई। यह शवरी बड़ी तपस्विनी और सिद्ध थी; अस्तु इनसे दोनों भाइयोंका समुचित सत्कार किया। रामचन्द्र ने उसकी श्रद्धा और भक्ति देखकर उससे कहा—देवि! तुम्हारा तपोबल बढ़ रहा है? क्या तुमने अपने इन्द्रियोंको जीत लिया है? क्या तुम्हारे समस्त विघ्न नष्ट हो गए? और क्या तुम अपने कर्म और धर्मको पूर्णरूपसे पालन कर रही हो? क्या तुम्हारी गुरुसेवा सफल होगई? तुम्हारे हृदयपर किसी प्रकार की अशान्ति तो नहीं है? भगवान्‌की ऐसी वाणी सुन ऋषि मुनियों और सिद्धोंसे प्रशंसित शवरीने रामचन्द्रसे अपना समुचित वृतान्त कह सुनाया और कहा—हे नरोत्तम! आज आपके दर्शन कर कृतार्थ होगई। क्योंकि अब मुझे स्वर्गकी प्राप्ति होगी। भगवन् आज मैं आपके सुन्दर मुखारविंद और कमल नेत्रोंको देख अत्यन्त ही प्रसन्न हूँ। क्योंकि आपकी कृपासे ही मुझे स्वर्गकी प्राप्ति होगी। चित्रकूटमें आपका आगमन सुनकर बाट जोहते जोहते ही यहाँके तपस्वनी गुरुजन स्वर्गवासी हो गए। उन्हीं महात्माओंने मुझे विश्वास दिलाया था कि, यहाँ तेरे आश्रमपर भगवान् आएँगे और तू दोनों भाइयोंका अतिथि-सत्कार कर दिव्य-लोकको प्राप्त करेगी। भगवन्! उन तपस्वियोंके बचनोंपर विश्वास कर मैंने यहाँपर अच्छे २ सुस्वादु और मीठे-मीठे फलोंका ढेर इकट्ठा कर रक्खा है, इन्हें ग्रहण कीजिये। शवरीकी ऐसी बाणी सुन

रामचन्द्रने कहा—देवि ! मैं तुम्हारे गुरुजनों एवं तुम्हारे अतीत आत्म-गत ज्ञानका हाल इन्द्रके पुत्र द्वारा सुन चुका हूँ। उसे अब प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। रामचन्द्रकी ऐसी वाणी सुन शवरी उन्हें मतङ्ग बन दिखाने लगी। प्रभो ! मेरे गुरुओं एवं आचार्योंने यहाँपर वैदिक मंत्रों द्वारा बड़े-बड़े यज्ञ और हवन किए हैं। भगवन् ! यज्ञकार्यके परिश्रमसे क्लान्त वृद्धावस्थासे विवश और निवल मेरे गुरुजनोंने इसी प्रत्यक्षस्थली नामकी वेदीपर देवताओंको पुष्पाञ्जलियाँ अर्पणकी है। उनके तपोबलसे आज भी यह वटी सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशमान कर रही है। उपवास द्वारा क्लांत और दुर्बल मेरे गुरुजनोंके हेतु ही यह सातो समुद्र यहाँ पर पधारे हैं जिनमें स्नानकर अपने वल्कल बसनों को उन लोगोंने वृक्षोंमें सूखनेके लिए डाला है—देखिए, प्रभो ! वह आज तकभी नहीं सूखे। देव पूजामें उनके चढ़ाए हुए कमल-पुष्प आज भी ज्यों के त्यों हरे रक्खे हुए हैं। प्रभो ! आपकी आज्ञानुसार मैंने आपको सभी स्थान दिखा दिए। अब मैं अपना यह शरीर त्याग गुरुजनोंकी सेवाके लिए उनके समीप जाना चाहती हूँ, आज्ञा दीजिए। आश्रमको देख और ऋषियोंके चरित्र को सुन दोनों भाई प्रसन्न हुए और आश्चर्य करने लगे। और शवरीसे कहा—देवि! तुमने मेरी पूजाविधिपूर्वककी है। अस्तु तुम कृतार्थ होगई; अब जहाँ जानेकी इच्छा हो वहाँ जा सकती हो। भगवान्की आज्ञा पाकर शवरी अपने हाथोंसे चिता बना उसमें प्रवेशकर दग्ध हो गई। भस्म होनेके बाद उसका स्वरूप दिव्य हो गया और वह समस्त तपोवनको प्रकाशित करती हुई देवलोक को चली गयी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्य काण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ।।७४।।

पचहत्तरवाँ सर्ग

राम लक्ष्मणका पम्पासर पर पहुँचना

अपने तपोबलसे स्वर्ग लोक को जाती हुई शवरी के आचार्यों के बारे में आश्चर्य करते हुए रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—हे शत्रुनाशक ! दनु के पुत्रने जिन तपस्वियोंका हाल बताया था उनके इस आश्रमको देखकर मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है। मैंने सप्तसागरोंमें स्नान कर पितरोंको तर्पण किया है, अस्तु दुर्भाग्य का नाश हुआ। इस समय मेरा हृदय बहुत

प्रसन्न है। यह मंगल-सूचक है। अब हमें पम्पा सरोवर पर चलना चाहिए। ज्ञात होता है कि वहाँ कोई अच्छी बस्तुके दर्शन होंगे। उसी सरोवरके निकट सूर्यके पुत्र बानरराज सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते हैं। जिनके द्वारा देवी सीताका पता लगेगा जो हमारा मुख्य और आवश्यक कार्य है। सुग्रीव बालिसे भयभीत है। पहिले मुझे उसे अभय करना चाहिए। भाईकी बात सुन लक्ष्मणने भी कहा—मेराभी चित्त प्रसन्न है और शीघ्र चलनेके लिए प्रेरित कर रहा है। इसी प्रकार बातचीत करते हुए वनों और पर्वतोंको लाँघते हुए ये लोग पम्पासरमें पहुँच गए। यह स्थान तोता, मोर, टिड्डिभ इत्यादि पक्षियोंसे युक्त था और अत्यन्तही सुन्दर और मनोहर लताएँ मनको अपनी ओर आकर्षित करती थीं। रामचन्द्रने दूरहीसे निर्मल जलको देखा और मतंग नामक सरोवरपर स्नान किया। वहाँकी छटा देखकर रामचन्द्र विरह-व्यथासे व्यथित हो गए। सरोवरका घाट अनेकों उपवनोंसे युक्त था। सरोवरमें रंग विरंगी मछलियाँ और अनेकों प्रकारके जलजन्तु किलोलें कर रहे थे। इन्हीं वस्तुओंने विरही रामचन्द्रको व्यथित किया। उस पम्पासरके तटपर धातुओं के अनेकों पर्वत हैं। अतएव उस रमणीक स्थानको देखतेही रामचन्द्र विलाप करने लगे। इसी सुन्दर खानोंसे युक्त पर्वतका नामही ऋष्यमूक है। इसी पर बानरराज सुग्रीव निवास करते थे। रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा—भाई! तुम शीघ्रतापूर्वक सुग्रीवका पता लगाओ, क्योंकि मैं सीताके वियोगमें जीवित नहीं रह सकता। इसी प्रकारकी वार्ता करते हुए दोनों भाइयोंने पम्पा सरोवर का निर्मल जलपान किया। विरह-व्यथित रामचन्द्र सीताका स्मरणकर विलाप करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्य काण्ड का पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७५॥

॥ यहाँ अरण्यकाण्ड समाप्त हुआ ॥

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्वाल्मीकीय मुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—भाषा

चतुर्थ किष्किन्धा-काण्डम्

पहला सर्ग

सीताके लिए रामचन्द्रका विलाप

सीताके हरण किए जानेसे रामचन्द्र बहुत व्याकुल हुए। जब वे उस पम्पा सरोवरको देखते और उसमें खिले हुए कमल और जलमें कल्लोल करती हुई मछलियोंको देखते तो उनके शोकका और भी अन्त न रहता। उस परिस्थितिमें वे कभी प्रसन्न होते और कभी दुःखी। यद्यपि भाई लक्ष्मण उनके साथ थे तथापि वे कमलनेत्री सीताके लिए विलाप करने लगे। पम्पा सरोवरके देखतेही मारे हर्षके रामचन्द्रकी इन्द्रियाँ विचलित हो गईं। कमल आदिके देखनेसे उन्हें सीताके नेत्र आदिका स्मरण होता और वे समझते कि सीताही मेरे सामने हैं। उस समय रामचन्द्र कामके वश हुए, पर सीता कहाँ? वे सीताको देखनेकी प्रबल इच्छाके कारण उन्हें अनेक प्रकारसे ढूँढ़नेकी चेष्टा करने लगे। उस समय उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—हे भाई! देखो यह पम्पा कितनी सुन्दर है, इसमें अनेक प्रकारके कमल खिले हुए हैं, इसके चारों ओर घने वृक्षोंकी छाया कैसी सुन्दर मालूम होती है। इसका विमल जल वैदूर्यमणिके समान कैसा चमक रहा है। अहा! पम्पाका वन कितना सुन्दर है। यहाँके लम्बे-लम्बे वृक्ष मानों पर्वतके शिखरके समान सुशोभित हो रहे हैं। परन्तु मुझ दुःखीके लिए क्या; भाई भरतका दुःख और सुन्दरी सीताका हरण मुझे कैसी मानसिक पीड़ा दे रहा है। यद्यपि मैं शोकसे पीड़ित हूँ, दुःखी हूँ, तथापि इस पम्पा वनकी सुन्दरताके कारण कम प्रसन्न भी नहीं हूँ। इसमें अनेक प्रकारके फूल फूले हैं। इसका जल शीतल और स्वच्छ है। देखो, कमलोंने इसके जलको कैसे ढँक रखा है? इसमें सर्प तथा उस जातिके

अन्य जीवभी चलते हुए कैसे शोभायमान हो रहे हैं ? इसमें चारो ओर पशु पक्षी भी कैसे छाये हुए हैं ? इन सब कारणोंसे यह पम्पा सरोवर देखनेमें बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है। यहाँकी रंग-विरंगी घासभी मुझे बड़ी सुन्दर जान पड़ती है । यह घासभी क्या है, मानों पुष्पोंका ढेर है। यहाँकी वृक्ष-शाखायें और पत्तियाँ तक फूलोंसे लदी हुई हैं। जिनके किनारे अनेक लतायें चारों ओरसे लिपटी हुई हैं । हे लक्ष्मण ! यह सुख देनेवाली वायुभी कैसी मन्द-मन्द चल रही है कि जिससे बड़ा कामोत्तेजन होता है । क्यों न हो, चैत्रका महीना भी नवीन ऋतुका सूचक है । हे लक्ष्मण ! वृक्षोंमें फल-फूल लग गए हैं और देखो, पुष्पोंसे भरा हुआ यह वन कैसा शोभायमान हो रहा है। जिस तरह मेघ जलकी वर्षा करते हुए सुन्दर मालूम पड़ते हैं, उसी तरह ये वृक्षभी पुष्पोंकी वर्षा करते हुए शोभायमान हो रहे हैं। और वायु इसप्रकार चल रही है मानो वृक्षोंको हिलाने-डुलानेकी विद्या सिखला रही है । चन्दनमें टकराती हुई वह वायु कितनी सुन्दर लगती है जिससे कि थकावट दूर हो रही है। पर्वतोंपर फूलोंके वृक्ष कैसी शोभा बढ़ा रहे हैं, जैसे एक पहाड़ी दूसरोंसे मिलती हो। कर्णिकार नामक वृक्ष तो ऐसे मालूम होते हैं जैसे कि पर्वताकार के समान हों। हे भाई लक्ष्मण ! देखो, पक्षीगण किस तरह बोल रहे हैं! ऐसी अवस्थामें सीताका विरहकाल मेरा शोक और बढ़ा रहा है। इस समय काम तो ऐसा सता रहा है मानों मेरी इन्द्रियाँ अस्थिर हो रही हैं और कोकिल तो उसे बढ़ानेके लिए साहस दे रही है । इसप्रकार वनके तोते सब प्रसन्न हो बोल रहे हैं और मुझे दुखी बना रहे हैं। हे भाई लक्ष्मण ! मेरी प्रिया सीता ऐसे-ऐसे मीठे-मीठे शब्दोंको सुनकर मेरी ओर दृष्टिपात करती थी और अपनी ओर आकर्षित करती थीं । देखो तो नानाप्रकारके पक्षीगण अपने मीठे रागोंसे गाते हुए झुण्डके झुण्ड इस वृक्षपर आ रहे हैं। मादा पक्षी नर पक्षीके साथ मिलकर अत्यन्त आनन्दको प्राप्त कर रहे हैं। पम्पाके तीरपर कतार बाँधकर किसप्रकार पक्षीगण बैठे हैं। वृक्ष वायुसे टकराते हुए शब्द करते हैं, नये पत्तोंकी शोभाही जिसकी लपट है, वह तो मुझे शोकयुक्त अवश्य करेगी । जब तक मैं उस मृदुभाषिणी सीताको न देखूँगा, तब तक मेरा जीवन निर्जीवके समान है । सीताको बसन्तका समय बहुत प्रिय मालूम

होता था; क्योंकि इस समय वनकी शोभा देखने योग्य हो जाती है। इस समय कोकिलोंके शब्दसे सब वन गूँज जाता है। मैं सीताको कहीं भी नहीं देख रहा हूँ। केवल यह सुन्दर वन ही दीखता है। इस कारण मेरा शोक और भी बढ़ रहा है। यह बसन्त सामनेसे क्यों नहीं हटता जो कि थकावट दूर करता है। चिन्ताके कारण मैं इस समय अज्ञानी बन गया हूँ। हे लक्ष्मण! देखो तो किस प्रकार मयूर नाचकर हमें प्रसन्न करना चाहते हैं और इनके पंख जो वायुसे उड़ते हैं स्फटिककी खिड़कीके समान मालूम होते हैं। यह कठोर चैत्रकी वायु तो मुझे और भी सता रही है। एक तो मैं पहलेसे ही काम-पीड़ित बन रहा हूँ, दूसरे इन मयूरोंके दृश्यको देखनेमें मेरे हृदयमें और भी हलचल मच रही है। देखो, नाचते हुए मयूरोंके पास मयूरी जाकर नाचने लगी। मयूर भी प्रेमिकाके पास जानेकी इच्छा कर रहा है। मयूरकी स्त्रीको राक्षसने क्यों नहीं हरण किया, वह मयूर दोनों मिलकर अपने पंखको फैलाकर मेरा उपहास करते हैं। उसकी स्त्री तो हरी न गई, इस कारण वह इस वनमें अपनी प्रेमिकाके साथ नाच रहा है। बसन्त कालमें तो मेरा और सीताका रहना कठिन है। हे लक्ष्मण! देखो, पक्षियोंमें भी इतना अद्भुत प्रेम रहा है। मयूरी अपनी पतिका किस प्रकार आदर करती है। यदि मेरी प्यारी आज होती तो वह भी मुझसे प्यार तथा आदर भाव रखती हुई मेरे समीप आती। यह सारा वन फूलसे भरा है, परन्तु फूल मेरे लिए व्यर्थ हो रहे हैं। मुझे सीता बिना जरा भी अच्छा नहीं मालूम हो रहा है। पक्षीगण मधुर स्वरसे आपसमें एक दूसरेको अपनी ओर बुला रहे हैं। वह स्थान कैसा मालूम होता होगा, जिस स्थानपर सीता पराधीन होकर रहती होगी; और वह भी यही सोचती होगी जैसा कि मैं सोच रहा हूँ। सीता जहाँ होगी; वहाँ बसन्त न होगा; क्योंकि सीता बसन्तमें मेरे विना कैसे रह सकेगी? मेरे दिलमें तो यही शंका होती है कि वह श्यामा, मृदुभाषिणी, कमल नयनी मेरी प्यारी सीता बसन्त होनेसे अपना प्राण कहीं न छोड़ दे। यह तो निश्चयही है कि मेरे विरही होनेपर वह सीता भली-भाँति नहीं रह सकती। यह मंद वायु सीताको ढूँढ़नेके समय मुझे अग्निके समान मालूम हो रही है। यह सुखदायी तो तब मालूम होती, जब मेरी प्रेमिका

सीता इस समय साथ होती। यह काक पक्षी सीताके संयोगके समय बोलता था, वही पक्षी आज सीताके न रहनेपर वृक्षपर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक बोल रहा है। इसी पक्षीने सीताका हरण करवाया था और अब यही पक्षी मुझे सीताके पास पहुँचाएगा। अर्थात् सीता-हरणके पहले इसका अशुभ शब्द सुनाई पड़ा था और आज सीताकी प्राप्तिके लिए शुभ शब्द सुनाई देता है। हे लक्ष्मण! वनमें पक्षियोंके शब्द सुनो जिसके सुननेसे मेरा मन पागलके समान हो गया है। यह अशोकका वृक्ष, गृहस्थाश्रममें रहनेवाले पुरुषोंका शोक बढ़ानेवाला है। इसके गुच्छे जो कि पवनके झोंके लगनेसे बिखर गए हैं मानों मुझे धमकी दे रहे हैं। हे लक्ष्मण! यह आमके वृक्ष अपने फूलसे युक्त होकर कैसी शोभा रहे हैं, जैसे कोई अंगराग धारण किए हुए शृंगारी मनुष्य हो। देखो, इन किन्नरोंको जो कि पम्पाके विविध वनराजियों के इधर-उधर घूमते हैं। हे सखे! यह पम्पा सरोवरमें सुन्दर गंधवाले कमल सूर्यके समान दीख पड़ते हैं। इसमें सुगंधित कमल खिले हुए हैं और स्याही सुन्दर मालूम पड़ते हैं। पम्पाके जलमें तरुण सूर्य के समान कमलोंसे केसर सा फैल गया है। इस वनमें सुन्दर स्थान है। इस पम्पाके तीरपर हाथियों तथा हरिणोंके झुण्ड पानी पीने आया करते हैं। वायुके झोंके पम्पाके स्वच्छ जल में तरंगें उठाते हैं। कमल अपनी जगहोंसे इधर-उधर होते मालूम पड़ते हैं। और ऐसी दशामें बहुतही सुन्दर मालूम पड़ते हैं। कमलके समान नयन-वाली सीताको न देखनेसे मेरा जीवन तुच्छ मालूम होता है। कामकी कुटि-लता तो देखो, उस मधुर-भाषिणी सीताका स्मरण करा रहा है। यदि यह बसन्त इस समय न होता तो मैं कामको अतिथि समझकर साधारणकर लेता अर्थात् सीता-हरण बसन्त और भी असहनीय बना रहा है। सीताके रहने-पर जो-जो वस्तुएँ मुझे प्रिय मालूम होती थीं, आज वहीं वस्तुएँ मुझे अप्रिय मालूम होती हैं। सीताके नेत्रकोषके समय कमलकोष पत्तोंको देखनेकी इच्छा होती है। हे लक्ष्मण! उधर तो देखो. पम्पाके दक्षिण पहाड़के शिखरों पर कर्णराज वायुके लगनेसे जो नाना प्रकारकी धूल पैदा होती है, वह नाना प्रकारकी धातुओंसे विभूषित है। ये पम्पाके तीरके वृक्ष इसी सरोवरके जलसे सींचे गये जिससे बढ़े हुये और सुगंधित मालूम पड़ते हैं। मालती आदि

कमल और करवीरके फूलनेका समय है। मातुलिंग, कुन्द, गुल्म, केतकी, सिन्दुवार, और बासन्ती आदि भी चारों ओर खिले दृष्टि आ रहे हैं। अंकोल, चिरबिल्व, चूर्णक, मधूक, पारिभद्रक, वजुल, आम, बकुल, पाटली, चम्पक, नीला सोप, कोविदार तिलक, पद्मक और नागवृक्ष फूल रहे हैं। पहाड़ोंकी चोटी पर मुचकुन्द, अर्जुन, केतकी, उद्दालक, सिरीष, शिंशिपा ध्रुव, शाल्वली, किंशुक, नागवृक्ष, रक्त कुरवक, तिलक, तिनिस, हिन्ताल, नकमाल, स्यन्दन और चन्दन फूलते हुये लताओंसे परिवेष्टित हो रहे हैं। हे सौमित्रेय! वायुश्रेष्ठ स्त्रियोंके समान वृक्षोंका आदर करती है। इस वृक्ष से उस वृक्ष, इस पर्वतसे उस पर्वत पर अनेक रसोंसे आनन्द प्राप्त करते हुए वायु बह रही है। बहुत वृक्षोंमें कलियाँ लगी हुई हैं, जिससे हरा दीख पड़ता है। भँवरा पम्पाके तीरके वृक्षोंपर मंडरा रहा है। यह तीर पुष्पोंके गिरनेसे ढका हुआ है, जिससे यह पृथ्वी सुन्दर शय्याके समान हो गई है। जहाँ लाल पुष्प गिरे हुए हैं, वहाँ लाल और जहाँ पीले पुष्पोंका ढेर है वहाँ पीले पत्थरके चट्टान मालूम पड़ते हैं। हे लक्ष्मण! इस बसन्तमें परस्पर संघर्षसे कितने फूल उत्पन्न होते हैं। ये सब पर्वत ऐसे झुके मालूम पड़ते हैं जैसे कि एक पर्वत दूसरे पर्वतको बुला रहे हैं। इन वृक्षोंकी डालोंमें फूल ऐसे शोभा दे रहे हैं मानों टोपी पहने हुए हों। कारण्डवपक्षी इस पम्पाके जलमें स्नानकर अपनी प्रेमिकाके साथ विहार कर रहे हैं और मुझे सता रहे हैं। हे लक्ष्मण! यदि मैं सीताके साथ निवास करपाता तो हे सखे! मैं न इन्द्र पदकी और न अयोध्याके राज्यकी ही इच्छा करता। इस रमणीय मय भूमिके मैदानमें सीताके साथ विहार करते हुए न तो किसी बातकी चिन्ता, न इच्छाही होती। नानाप्रकारके वृक्ष नानाप्रकारके पुष्पोंके साथ सीताके बिना मुझे चिन्तायुक्त बनाए रहते हैं। हे सुमित्रे! शीतल जलवाले इस पम्पा सरोवरको देखो, जिसमें चारो तरफ कमल खिले हुए हैं। नाना प्रकारके पशु यहाँ रहते हैं, तीर भी पशु-पक्षीसे भरे हुए रहते हैं। और पक्षियोंके शब्दसे सरोवरकी शोभा और भी बढ़ जाती है। ये सब मेरी प्रेमिकाके बिछुड़ जानेसे मुझे सता रहे हैं। मृग तथा मृगियाँ किस प्रकार भ्रमण कर रही हैं। यह सब मुझे सीताके बिना देखनेकी इच्छा नहीं होती है। यदि मैं इन सब पर्वत शिखरों पर कहीं

अपनी प्रिया सीताको देख पाता तो मेरी तृप्ति जाती रहती। हे सौमित्रेय! यदि सीताके साथ मैं पम्पाकी इस मनोहर वायुका सेवन करता तो कितना अच्छा होता। जो ऋषि तथा मनुष्य इस सुगंध तथा थकावट दूर करनेवाली पम्पाकी इस वायुका सेवन करते हैं वह मनुष्य धन्य हैं। हे लक्ष्मण! कमल के समान नेत्रवाली मेरी प्यारी सीता मेरे बिना अपने प्राणोंको धारण किस प्रकार करती होगी? राजा जनक सभामें जब सीताकी कुशल मुझसे पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूँगा? जिसके पिताके द्वारा वन भेजे जानेपर भी मेरे ऐसे अभागेका त्याग न किया वह धर्म पालन करनेवाली सीता इस समय कहाँ होगी? हे भाई! उसके बिना मैं प्राण कैसे धारण करूँ! जिसने हमारा साथ दिया जो इतना महान् कष्ट पाते हुए भी कभी अकुलाई नहीं। सुन्दर कमल नेत्रवाली उस सीताका मुख देखे बिना मेरा ज्ञान नष्ट हो रहा है। हे लक्ष्मण! मैं उस सीताका मधुर वचन कब सुनूँगा, जिसमें अनेक गुणयुक्त हँसी भरी रहती है। यदि सीता मुझे इस समय देखती होती तो वह वनके दुःखोंको भूल जाती और प्रसन्नता प्रकट करती। हे राजपुत्र-लक्ष्मण! मैं माताजीसे क्या कहूँगा जब कि मुझसे पूछेंगी कि मेरी सुकुमारी पतोहू कहाँ है? हे लक्ष्मण! तुम लौटकर भ्रातृ-प्रेमी भरतको देखो। सीताके बिना मैं जी नहीं सकता। रामचन्द्रके इस प्रकार विलाप करनेपर लक्ष्मण यह मधुर वचन बोले—हे रामचन्द्रजी महाराज! अब अधिक शोक न कीजिए और अपनेको चेतनामें लाइये, संयोग ही वियोग. और वियोग ही दुःखदायी है। अब किञ्चिनमात्रमें भी आप शोक न कीजिए क्योंकि अधिक तेलके कारण बत्ती भी जल जाती है। हे भाई! यदि वह रावण पाताल तथा उससे भी दूरीपर हो तो वह निश्चय ही मारा जाएगा। उस रावणका केवल पता तो लग जाय, या वह सीता देगा या प्राण त्याग करेगा। यदि वह सीताको न लौटा देगा तो अपनी माँके गर्भमें फिर वास करे तो भी मैं उसे मारूँगा। आप धैर्य धारण करें। उपाय करें। उपाय से ही सफलता मिलती है जो पुरुष साहसी हैं वह अवश्य ही संसारकी सब वस्तुओंको पा सकते हैं। आप शोकको भूल जायँ। इस समय आप अपनी सीताको भूल गये हैं। लक्ष्मणके इस प्रकार समझानेपर श्रीरामचन्द्रने शो

दो दूर किया। मोहका त्याग किया और वहाँकी शोभाको वहीं छोड़कर वे आगे बढ़े। वे आगे देखते जाते थे कि कहीं सीता इन सब पत्तोंमें तो नहीं है। लक्ष्मणसे मार्गमें तरह-तरहकी बातोंको बताते हुए तथा धैर्य देते हुए चले जाते थे। इतनेमें सुग्रीवने राम और लक्ष्मणको जाते हुए ऋष्यमूक पर्वतके निकट भ्रमण करते हुए देखा और डरकर अपने मनमें बहुत दुःखी हुआ। पराक्रमी राम और लक्ष्मणको देखकर अन्य वानर लोग भी भयभीत होकर मतङ्ग आश्रममें शीघ्रताके साथ घुस गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका पहिला सर्ग समाप्त ॥१॥

दूसरा सर्ग

राम लक्ष्मण और सुग्रीव हनुमान्‌का परिचय होना

श्रीरामचन्द्रजी धनुष धारण किये हुए चारों ओर भ्रमण कर रहे थे। सुग्रीव तो घबड़ाया हुआ था ही, चारों ओर वह देखने लगा और अपने मनको स्थिर न कर सका। वानर-राज सुग्रीवने अपने मन्त्रियोंके साथ हानि-लाभका विचार किया कि इस आश्रममें रहना चाहिए या दूसरी जगह भाग जाना चाहिए। ऐसा विचार करते हुए वानरोंके साथ भयभीत हुए वानर-राजने अपने मन्त्रियोंसे कहा कि यह अवश्य ही बालिके भेजे हुए इस वनमें आये हैं। यह लोग अपनेको छिपानेके लिए मुनिके स्वरूपमें हैं। पश्चात् इन दोनों वीरोंको देखकर सुग्रीवके मन्त्रीगण इस पर्वतसे दूसरे पर्वत के शिखर पर चले गए। भयके कारण वानर सब सुग्रीवको घेरकर चारों ओरसे बैठ गए। वानरोंके इधर-उधर चलने तथा उछलने-कूदनेसे पर्वतके शिखर काँपने लगे और बहुतसे वृक्ष टूट गए। सुग्रीवके सब सचिव उनके निकट पहुँचकर और एकाग्रचित्त होकर हाथ जोड़कर बैठ गए और रामके बारेमें शंका दूर करते हुए सुग्रीवसे हनुमान् बोले कि आप लोग बालिके द्वारा अनिष्टकी आशङ्का छोड़ दें। मलय पर्वतपर बालिका भय नहीं है। जिसको देखकर आप भागे थे, उस क्रूर कर्म करनेवाले क्रूर बालिको मैं यहाँ नहीं देखता। आपको अपने पापी भाईके कारण जो भय है वह दुष्ट बालि यहाँ नहीं आ सकता अर्थात् आपको डरना न चाहिए। आश्चर्य होता है कि अज्ञानके कारण बुद्धि पूर्वक विचार नहीं कर रहे हो। अर्थात् व्यर्थ ही

डर रहे हो। बुद्धि विज्ञानसे युक्त होकर तुमको दूसरोंकी चेष्टाओंसे भाव समझकर रक्षार्थ उपाय करना चाहिए। जो राजा अपनी बुद्धिसे काम नहीं लेता वह अपनी प्रजापर शासन नहीं कर सकता है। तब हनुमान्‌के यह मधुर वचन सुनकर सुग्रीव इस प्रकार सुन्दर वचन बोले—हे हनुमान् धनुष-बाण धारण करनेवाले देव-पुत्रोंके समान उन दोनोंको देखकर किसको भय न होगा। मेरी तो अनुमति यही है कि इन दोनों श्रेष्ठोंको बालिने ही भेजा है, क्योंकि राजाओंके अनेक मित्र होते हैं और राजाओंका विश्वास ही क्या? उनके ऐसे ही दूत लोग भेष धारणकर चलते हैं और समय पाने पर आक्रमण करते हैं। अतः हम लोगोंको इन दोनोंसे सतर्क ही रहना उचित है। ऐसे लोगोंकी पहचान ही क्या है? बालि तो बुद्धिमान् है ही और योग्यतासे काम लेता है अर्थात् हम सबको उससे सावधान रहना ही उचित है। हे वानर! तुम्हें इन बातोंका पता लगाना चाहिये और उनसे संकेतसे ही काम लो। यदि तुमपर प्रसन्न हों तो मेरी प्रसन्नताके द्वारा अपने लोगोंके प्रति उनको विश्वास दिलाओ। और तुम उनसे मेरे ही समक्ष इस वनमें भ्रमण करनेका कारण पूछो। यदि तुम उन दोनोंको शुद्ध समझो तो उनसे भीतरी मनका हाल जाननेकी चेष्टा करो कि ये किस कारण इस वनमें आये हैं। वानर-राज हनुमान्‌ने यह वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हो ऋष्यमूकसे जहाँ राम-लक्ष्मण थे वहाँके लिए प्रस्थान किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २॥

तीसरा सर्ग

हनुमान् और राम लक्ष्मणसे बातें होना

अब हनुमान् अपने रूपको त्याग करके ब्राह्मण रूप धारणकर महाप्रभु रामचन्द्रके निकट हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये और अपने मधुर बाणीसे बोले—हे मनुष्योंमें उत्तमरूप धारण करनेवाले! आप इस प्रदेशमें क्यों पधारे हैं? आपके आनेके कारण यहाँके पशु और वनचारी अत्यन्त भय-भीत होरहे हैं, ये चीरवल्कल धारण करनेवाले और सोनेके समान शरीरवाले आपलोग कौन हैं? हे सुन्दर और विशाल भुजावाले! आप दुखित क्यों होते हैं? आप इस देशमें इन्द्रके सदृश धनुष धारणकर अपनेको सिंहके समान

दृष्टिपात करनेवाले! आप यहाँ क्यों आये हैं? आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। आपकी भुजा चक्रवर्ती के समान है। आप पराक्रमी पुरुष मालूम हो रहे हैं और राजकुमारोंके समान हैं और मुनिवेष धारणकर इस पथरीली भूमिमें अपने चरणों को क्यों ले आये हैं? आपकी पुतलियाँ कमलके समान हैं। आप दोनों देखनेमें समान मालूम पड़ते हैं। क्या आप देवलोकसे पधारे हैं? सूर्य-चन्द्रमा की ज्योति रखनेवाले हैं। आप क्या हैं? देवता हैं या और कोई? आप दोनोंके कन्धे सिंहके समान हैं। आपमें उत्साह कूट-कूटकर भरा है। आपकी भुजा गोल, सुडौल तथा लम्बी है। आप लोग अपने भूषणोंको क्या कहीं छोड़ आये हैं? क्या आप इस पृथ्वीके रक्षार्थ हितसे देवलोकसे पधारे हैं। आप दोनों तो पृथ्वीकी रक्षा कर सकते हैं। आप सुवर्ण आदिसे सुसज्जित धनुषको धारणकर इस वेषमें क्यों आये हैं? आपके बाणमें तीखापन अधिक है। ये आप दोनोंकी तलवारें बड़ी मोटी और सुवर्णसे भूषित सर्पकी केंचुल के समान हैं। आप लोगोंसे इतने प्रश्न किये गये पर आपलोग एकका भी उत्तर क्यों नहीं देते हैं। मैं वानरराजका सचिव हूँ। उन्होंने मुझे आपके समीप भेजा है। उनका नाम सुग्रीव है। वह भाई बालिके सताये हुए बन-बन में मारे फिरते हैं। वह आपसे मित्रता करना चाहते हैं। मैं वायुका पुत्र हूँ और मेरा नाम हनुमान् है। मैं ऋष्यमूक पर्वतसे आया हूँ। अपने राजाके कार्यको सिद्ध करनेके लिये इस वेषमें आया हूँ। मैं इच्छानुसार रूप धरकर जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकता हूँ। हनुमान् इसप्रकार पुरुषोत्तम राम और लक्ष्मण से कहकर चुप हो गये। श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्के मधुर बचनको सुनकर अपने प्रिय भाई लक्ष्मणसे कहा—हे भाई लक्ष्मण! यह भिक्षु सुग्रीवका सचिव है, उन्हींकी आज्ञानुसार आकर मुझसे ऐसे प्रश्न किये हैं। तुम इस वानरसे बातें करो। यह हम सबोंकी बातको समझनेवाले हैं। यह बली हैं, शत्रुका नाश करनेवाले हैं। इनसे स्नेह पूर्वक बातें करो। जिनको वेदोंका ज्ञान नहीं, वह ऐसी बातें नहीं कर सकता। यह अवश्यही विद्वान् हैं; क्योंकि इनके जितने वाक्य निकले हैं उनमें एकभी अशुद्धि नहीं है। इन्होंने मुझसे सब प्रश्न संक्षेपमेंही किया है। इनसे किसी बातका संदेह नहीं। इन्होंने मुझसे

अपना अभिप्राय कितने मीठे स्वरसे प्रकाशित किया है। ऐसे मीठे वचनों से किसका मन प्रसन्न न होगा? ऐसा शत्रुभी प्रसन्न हो सकता है, जिसके वध के लिये तलवार उठाई हो। जिस राज्यके ऐसे दूत होंगे अनेक कार्य इन दूतों के वचनोंही से सिद्ध हो जाते हैं। रामचन्द्रके इस प्रकार समझानेपर पवनपुत्र हनुमान्‌से चतुर लक्ष्मण अपने मधुर बचनोंसे बोले—हे पवनपुत्र! तुम्हारे महात्मा सुग्रीवके गुणको हमलोग भलीभाँति जानते हैं। हम सबभी सुग्रीव को ही ढूँढ रहे हैं। हे हनुमान्! जैसा कि तुमने हम लोगोंसे कहा है कि सुग्रीव हम दोनोंसे मैत्री करना चाहते हैं, उसी प्रकार हमभी उनसे मैत्री करना चाहते हैं। लक्ष्मणकी ऐसी मधुर वाणीको सुनकर पवनपुत्र अत्यन्त आनन्दको प्राप्त किये और महात्मा सुग्रीवकी कार्य-सिद्धिमें विश्वास करके हनुमान्‌ने उन दोनोंसे मैत्री करना निश्चय किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्ड का तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३॥

चौथा सर्ग

हनुमान्‌से वार्तालाप और हनुमान्‌का श्री रामचन्द्र तथा लक्ष्मणको अपने पीठ पर चढ़ा कर सुग्रीवके समीप जाना

इस प्रकार लक्ष्मणके मधुर वचन सुनकर हनुमान्‌ने अपने मन ही मन सोचा कि रामजीका भी कोई कार्य ऐसा है जिसके लिये सुग्रीवकी सहायता-की आवश्यकता है। ऐसी बात समझकर हनुमान्‌की प्रसन्नताका कोई अन्त न रहा। उन्होंने मन ही मन कहा कि सुग्रीवको राज्य अब अवश्य ही प्राप्त होगा। क्योंकि राम अपने कार्यके लिये सुग्रीवसे मिलना चाहते हैं। और उनका कार्य सुग्रीवके अधीन है। हृदयसे प्रसन्न होकर वानरश्रेष्ठ पवनपुत्र फिर रामचन्द्रसे बोले—हे मुनिवेष धारण करनेवाले! इस पम्पाके भयानक वनमें अपने लघु भाईके साथ क्यों आये हैं? इस वनमें नाना प्रकारके जन्तु रहते हैं, जो बड़े ही क्रूर होते हैं। श्री लक्ष्मणने हनुमान्‌के ऐसे वचनोंको सुनकर रामचन्द्रकी आज्ञानुसार बोले—हे पवनपुत्र! अयोध्याके राजा दशरथजी बड़े धर्मात्मा हैं। वह प्राणियोंमें पितामहके समान हैं। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंको धर्मके अनुसार पालन करते हैं। उनका इस पृथ्वीपर न कोई शत्रु है और न वही किसीसे शत्रुता रखते हैं।

उन्होंने अनेक यज्ञ किये हैं, जिनमें उन्होंने ब्राह्मणों आदिको अपनी इच्छानुसार दक्षिणा दी है। उन्होंने ऐसे-ऐसे यज्ञ किये हैं जो बहुत राजों महाराजाओंको दुर्लभ है। आप उन्हींके प्रथम पुत्र सब जीवधारियोंको शरण देनेवाले पुत्रोंमें सबसे गुणी, पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले हैं। आपका शुभ नाम श्रीरामचन्द्र है। राज्य सम्पत्तिसे युक्त, राज्य—लक्षणोंसे युक्त राज्य न मिलनेके कारण यहाँ इस वनमें अपनी धर्मपत्नी सीता जो मिथिलाके राजा जनककी पुत्री हे और मेरे साथ यहाँ आये हैं। मैं इनका छोटा भाई हूँ। मैं इनकी कृतज्ञता और गुणोंके कारण इनका दास हूँ और मेरा नाम लक्ष्मण है। सब वस्तुओंके अधिकारी सबसे पूजनेके योग्य सभीका दिल चाहने वाले श्रीरामचन्द्र दीन होकर वनमें रह रहे हैं। हम दोनोंके उपस्थित न होने पर सीताजीको कोई कामरूप धारण करनेवाले राक्षसने उनका हरण किया है, जिसका पता नहीं लग रहा है। 'दनु' नाम राक्षस जो दितिका पुत्र था जिसके शापसे राक्षस रूप धारण किया था, वह हम सबसे कहा है कि सीताका पता वानरराज सुग्रीव द्वारा ही लगेगा और इतना कहकर वह स्वर्गको चला गया। तुम्हारे प्रश्नोंके सभी उत्तर मैंने दे दिये। हम दोनों सुग्रीवकी शरण आये हैं। श्रीरामचन्द्रने बहुत साधन किया है। बहुत यश प्राप्त किये हैं। संसारके स्वामी हो चुके हैं। वही राम आज ईश्वरकी इच्छासे सुग्रीवकी शरण आये हैं। जिनके पिता धर्मके प्रेमी जो शरणमें जानवालोंकी रक्षा करते थे, जिनके सीता जैसी बहू थी, उन्हींके पुत्र आज इस दशामें वानरराज की शरण आये हैं। जिस राजा दशरथने बड़े-बड़े राजाओंको अपना सेवक बनाया और उनका जिन्होंने सर्वदा सम्मान किया, उन्हींके त्रिलोकीमें श्रेष्ठ पुत्र राम वानरराज सुग्रीवकी शरण आये हैं। जो शोकको अपने वशमें रखते थे वही राम आज शोकसे दुःखी हैं और सुग्रीवकी शरण आये हैं। वानरराजको अपन अनुचरोंके साथ इनपर प्रसन्न होना चाहिये। इसप्रकार दीन-हीनके समान तथा अश्रुपात पूर्वक लक्ष्मणके वचन सुनकर चतुर हनुमान् इस प्रकार बोले—हे नरश्रेष्ठों! ऐसे बुद्धिमान् क्रोध और इन्द्रियोंके आधीन रखने वालेका दर्शन सुग्रीवको दुर्लभ था। सो आपसे आप आगये हैं। सुग्रीव भी राज्यसे हटा दिया गया है; उसका भाई बालि उसका

शत्रु है। उसकी स्त्रीका नाम तारा है जिसे बालिने हर लिया है और भाईके भयसे सुग्रीव इधर-उधर भागा फिरता है। महात्मा सुग्रीव हम वानरोंके साथ सीताका पता लगानेमें आपकी अवश्य सहायता करेंगे। इस प्रकारके वचन बोलकर हनुमान्‌ने श्रीरामचन्द्रसे कहा—अब हम लोगोंको सुग्रीवके पास चलना चाहिये। हनुमान्‌के ऐसे मधुर वचन सुनकर लक्ष्मण अपने बड़े भाई रामसे कहने लगे—हे भाई! जैसा कि हनुमान् प्रसन्न होकर कह रहा है उससे ज्ञात होता है कि अब हम लोगोंका कार्य सिद्ध होगा और सुग्रीवको भी आपकी सहायताकी आवश्यकता है। इतना कह कर लक्ष्मणने हनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया। हनुमान् अपना इतना आदर पाते हुये उस भिक्षुरूपका त्यागकर बानररूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीको भाई सहित पीठ पर बैठाकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर चल पड़े। हनुमान् वेगके साथ चले जाते थे और मन ही मन प्रसन्न होते थे कि, महात्मा सुग्रीवका कार्य सिद्ध होगा। इस प्रकार रामचन्द्र सहित कपिश्रेष्ठ हनुमान् ऋष्यमूक पर्वतपर शीघ्र ही पहुँच गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥४॥

पाँचवाँ सर्ग

सुग्रीव और रामचन्द्रका अग्निको साक्षी देकर मैत्री करना

अब हनुमान् दोनों भाइयोंको ऋष्यमूक पर्वतपर रखकर मलय पर्वत पर सुग्रीवके पास गये। राम और लक्ष्मणका परिचय दिया। हे वानरराज सुग्रीव! अपने भाई लक्ष्मणके साथ रामजी आये हैं। यह अपने पिताकी आज्ञासे इस बनमें सत्य पालनके लिये आये हैं। यह इक्ष्वाकुकुलके राजा दशरथके पुत्र हैं, जिनके पिता राजा दशरथने राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंके द्वारा अग्निको प्रसन्न किया है और अनेकों गोदान दिये हैं, जिसने सत्यता तथा सावधानीसे पृथ्वीका पालन किया है उन्हींके पुत्र रामचन्द्रजी हैं। श्रीरामचन्द्रजी निर्भय होकर अपनी पत्नीके साथ बन-स्थानमें रहते थे। किसी राक्षसने उनकी स्त्री हर ली है। वह आपकी शरण आये हैं। आपसे राम और लक्ष्मण मित्रता करना चाहते हैं। आप उनके पास चलकर उनकी पूजा कीजिये। वह पूजाके योग्य हैं। हनुमान्‌के ऐसे सुन्दर बचन सुनकर सुग्रीवके

हृदयसे भयकी शंका हट गई जिससे कि वह भयभीत हुआ था कि बालिका भेजा हुआ कोई दूत है। तब अपना मनुष्यरूप धारणकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्र के पास आया और प्रेमपूर्वक बोला—"आपने धर्मकी शिक्षा पाई है। आप तपस्वी हैं, सबके प्यारे हैं। हनुमान्ने आपके सब गुण बतलाये हैं। यदि आप मुझ बानरसे मित्रता करना चाहते हैं तो इसमें मेरा सत्कार तथा लाभ है। यह मेरा हाथ आपके आगे फैला है। आप हमें स्पर्श कर लें, जिससे कभी न छूटने वाली मैत्री हो जावे। तब रामने सुग्रीवके यह वचन सुनकर प्रसन्न होकर उसका हाथ पकड़ लिया और आनन्दसे भर गये तथा श्रीराम ने आलिंगन किया। पश्चात्, हनुमान्ने भिक्षुरूप त्यागकर दो लकड़ियोंसे अग्नि प्रकटकर दोनोंके बीचमें रख दी। उस अग्निको उन दोनोंने आदर-पूर्वक फूलोंसे पूज्य किया। फिर राम और सुग्रीवने उस लहकती हुई आगकी प्रदक्षिणाकी। इस तरह दोनोंकी मित्रता हो गई और आनन्द विभोर हो पुनः वे दोनों एक दूसरेको एक टकसे देखने लगे। पर तब भी तृप्त न होते थे। तब इस प्रकार सुग्रीव बोले—आप मेरे प्रिय हैं, मेरे मित्र हैं। हम दोनोंका सुख-दुःख समान है। पश्चात् घने पत्तों और फूलों वाली शाखा तोड़कर उसपर रामचन्द्र और सुग्रीव बैठे। वायुपुत्र हनुमान्ने लक्ष्मणको बैठनेके लिये चन्दनकी शाखा ला दी, जिसमें फूल लगे थे। अनन्तर वे प्रसन्न होकर मधुर वाणीमें रामचन्द्रसे बोले—हे रामचन्द्र! मैं भयके मारे इधर-उधर घूमता हूँ। मुझे ठहरनेका कोई स्थान नहीं है। बालिने मेरी स्त्री हर ली है। मैं उसीके भयसे इस बनमें हूँ। वह मुझे राज्यसे निकाल दिया है। आप मुझे निर्भय बनावें। हे रामचन्द्र! आप ऐसा करें जिसमें मेरा भय चला जाय। तब धर्मके पालने वाले, धर्मज्ञ रामचन्द्र सुग्रीवकी बातें सुनकर इस प्रकार हँसते हुए बोले—मित्र! उपकारके फल मुझे मालूम हैं। मैं उस बालिको मारूँगा जिसने आपकी स्त्रीका हरण किया है। हे सुग्रीव! वह बालि मेरे इन बाणोंके घातोंको न सह सकेगा। मेरा बाण कभी खाली नहीं जाता है। वह क्रोधी सर्पके समान उसपर वज्राघात करेगा। उस बालिको तुम शीघ्र ही प्राण रहित इस पृथ्वीपर पाओगे। आप जरा भी चिन्ता न कीजिये। सुग्रीव रामचन्द्रजीके ऐसे वचनोंको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये

और प्रेमपूर्वक बोले—हे मेरे मित्र पुरुषोत्तम ! आपकी दयासे मैं अपनी हरी गई स्त्री तथा राज्यको पाऊँगा । हे नरदेव ! आप मेरे शत्रु भाई वालिको ऐसा बना दीजिये जिससे वह फिर मुझसे शत्रुता न करे । उसी कालमें सीता, बालि और राक्षसोंके वाम नेत्र फड़के अर्थात् सीताकी बाईं आँख फड़कना शुभ और बालि तथा राक्षसोंकी बाईं आँखका फड़कना अशुभ हुआ ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥४॥

छठवाँ सर्ग

सीताके गिरे हुये वस्त्र और आभूषण देखकर रामका विलाप करना

सुग्रीव प्रसन्न होकर रामचन्द्रसे फिर बोले—हे रामचन्द्रजी ! मेरे श्रेष्ठ सचिव हनुमान् जिस लिए इस वनमें आये हैं, कहाँ हैं ? भाईके सहित आप और किसी वनमें रहते थे । उसी समय बूढ़े जटायुको मारकर राक्षस आपकी धर्मपत्नी सीताको हर ले गया है । उस अवसरपर न आप और न आपके भाई लक्ष्मण ही वहाँ थे और उस रावण नामके राक्षसने आपके हृदयको कठिन क्लेश पहुँचाया है । आप अधिक चिन्ता न करें । आपका स्त्री-क्लेश शीघ्र ही दूर हो जायेगा । मैं राक्षसोंके द्वारा उस हरी गई धर्म-माताको वेद-वाणीके समान लौटा लाऊँगा, चाहे वह कहीं भी हों, आकाश-पाताल या पृथ्वीपर हों; अवश्य आपकी स्त्रीको लाऊँगा । हे प्रिय मित्र ! आप इस वचनको सत्य समझें । आपकी स्त्री दूसरोंके लिए अग्नि समान है, उसके निकट जाने ही से वह भस्म हो जाएगा । आप अब चिन्तित न होइये अर्थात् शोकको दूर करें । मैं उन्हें अवश्य लाऊँगा । मैं अनुमानसे अब समझता हूँ, वह सीता ही थीं । भयानक कर्म करनेवाला राक्षस रावण उन्हें हरकर लिए जाता था और वह सीता अपने टूटे हुए शब्दोंमें 'हा राम' 'हा लक्ष्मण' कहकर रोती हुई जाती थी । रावणकी गोदमें नागवधूके समान वह चमचमाती हुई मालूम हो रही थी । वह सीता चार मन्त्रियोंके साथ बैठे मुझे देखकर अपने वस्त्र तथा आभूषण गिराई थीं । हे राम ! वह वस्तुएँ सब मेरे पास रखी हुई हैं । मैं लाऊँ, आप उसे पहचान सकेंगे ! श्रीरामचन्द्रने प्रिय सन्देश देनेवाले सुग्रीवसे शीघ्रतापूर्वक कहा—हे मित्र !

लाओ, उसे शीघ्र लाओ। कुछ भी विलम्ब न करो। रामचन्द्रकी व्याकुलता भरे वचन सुनकर सुग्रीवने उन आभूषणोंको शीघ्र ही उस पर्वतकी गुफाओंसे निकालकर दिया और बोले—ये वस्त्र और आभूषण कितने उत्तम हैं। इसे पहचानिए, उन्हींके तो हैं। उन वस्त्र तथा आभूषणोंको देखकर रामचन्द्र वेगसे रोने लगे। उनके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बह चली, मानों उनके मुख को ढँक लिया। उस आँसूमें केवल स्नेह ही स्नेह भरा ज्ञात होता था। इस प्रकार वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े और उस समय वे धैर्य धारण न कर सके और क्रोधसे निःश्वास लेने लगे। उन वस्तुओंको बार-बार आलिङ्गन किया और लक्ष्मणको देखकर दीनके समान अधीर हो रोने लगे और लक्ष्मणसे कहने लगे—लक्ष्मण! देखो, सीताने हरणके समय यह वस्त्र और आभूषण फेंका है। रामके कहनेपर लक्ष्मण इस प्रकार बोले—हे परमप्रिय स्वामी! मैं हाथके तथा कानके आभूषणोंको नहीं पहचानता हूँ। फिर रामचन्द्रजी अपने मित्र सुग्रीवसे इस प्रकार बोले—हे मित्र! क्या आपने उस राक्षसको मेरी प्रियाको ले जाते देखा है? किधरको ले गया है? हे सुग्रीव! तुम जानते हो, वह राक्षस कहाँ रहता है? जिसने मुझे सताया है। मैं उसके कुलका नाश करूँगा। वह राक्षस अपने मृत्युके लिए मेरी प्यारी सीताका हरण किया है। जिसने छलसे मेरी प्रिया सीताको हरा है उसे विना नाश किये शान्ति नहीं पा सकता हूँ। हे वानराधिपति! उस शत्रुका पता बताओ। शीघ्र बताओ। मैं उसे अभी-अभी यमराजके पास भेजूँगा। सुग्रीव! क्यों नहीं शीघ्र बताते हो?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

सातवाँ सर्ग

सुग्रीवका रामचन्द्रको समझाना

रामको ऐसा विलाप करते हुए देखकर सुग्रीवकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे और रोते हुए सुग्रीवने रामचन्द्र से हाथ जोड़कर कहा—वह पापी राक्षस कहाँ रहता है? कहाँ उसका घर है? उसमें कितनी शक्ति है? कैसा है? और किस कुलका है मैं नहीं जानता हूँ। परन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उस सीताका पता मैं जिस प्रकार होगा अवश्य लगाऊँगा और आप अवश्य सीता

को पायेंगे। आप शोकका त्याग करें। मैं उस रावणको मारने और अपनी सेनाको संतुष्ट करनेके लिए शीघ्र ही उपाय करूँगा। हे रामचन्द्र! आप धैर्य धारण कीजिए। आपके जैसे महानुभावोंको यह बुद्धिहीनताका काम शोभता नहीं है। मुझेभी तो पत्नीका विरह हुआ है। मैं तो साधारण वानर जाति हूँ, सो मैं अपनी स्त्रीकी याद नहीं करता हूँ और न धैर्यकोही छोड़ता और आप तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। यह आँसू जो बिना रुके हुए बह रहे हैं, उसे धैर्यपूर्वक रोकें। वेदोंका कहा हुआ है, कष्टमें, दीनतामें, भयमें, संकटमें अपने धैर्यको न खोनेसे मनुष्य दुःखी नहीं होता। मूर्खके समान व्याकुल न होइए। हे मित्र रामचन्द्र! मैं विनयपूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि, आप उनको लानेका उपाय करें। अपना बल दिखलावें और अपनेको शोकमें न डूबने दें। शोक करनेसे सुख नहीं मिलता है। शोक करनेवालेका तेज नष्ट हो जाता है। आपको शोक न करना चाहिए। शोकमें पड़कर अपना जीवन नष्ट न कीजिए। मैंने आपको उपदेश नहीं दिया है। मैं भाईके लिए मित्रता के भावसे ऐसा कहता हूँ अर्थात् मित्रको सम्मानकी दृष्टिसे देखना चाहिए। मेरी बात तो ग्रहण कीजिए। रामचन्द्रके कपोलोंपर जो आँसू ढलक रहे थे उसे सुग्रीवके इस प्रकार समझानेपर श्रीरामचन्द्रने ठंढी साँस ली। सुग्रीवका आलिंगन किया और इस प्रकार बोले—हे सुग्रीव! मित्र तथा हितैषीको जो करना चाहिए वह आपने किया है। मेरा शोक अब चला गया। तुमने ऐसी अवस्थामें मेरी बहुत सहायता की है। हे मित्र! आप सीता तथा उस रावणका शीघ्र पता लगानेका उपाय कीजिए। अब क्या करना चाहिए, वह परामर्श मुझे विचार कर कहिए। मैंने अभिमानसे जो बातें कही हों, वह सत्य ही समझो। मैंने जन्म भर झूठ कभी नहीं बोला है, न बोलता हूँ, न बोलूँगा। मैं सत्य कहता हूँ। रामचन्द्रके वचन तथा प्रतिज्ञाको सुनकर सुग्रीव अपने अनुचरों सहित बहुत प्रसन्न हुआ। इस प्रकार कुछ काल तक श्री रामचन्द्र तथा सुग्रीव दोनोंने दुःख, सुखकी बातें की। श्रीरामचन्द्रका वचन सुनकर सुग्रीवने अपना कार्य सिद्ध समझा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त॥७॥

आठवाँ सर्ग

रामचन्द्रसे सुग्रीवका अपनी दुर्दशाका विलाप करना

हे रामचन्द्र ! आप तो सर्वगुणोंसे सम्पन्न हैं और अब आप मेरे मित्र ए, इस कारण मैं देवताओंके अनुग्रहका पात्र हूँ। मैं आपकी सहायतासे तो पना क्या देवताओंका भी राज्य पा सकता हूँ। और अब आपसे मित्रता नेपर तो बन्धुओं आदिसे भी पूजित होने योग्य हो गया हूँ। क्योंकि ग्नि साक्षिक मेरी और आपकी मित्रता हुई। मैं अपनी बड़ाई आपको क्या नाऊँ। आप धीरे-धीरे आपसे आप जान जायँगे। मेरी चीजें आपकी हैं। ौर आपकी चीजोंपर मेरा भी अधिकार है। मित्र-मित्रमें कोई भेद नहीं ता। मित्र-मित्रकी इच्छा एकही रहती है। मित्र-मित्रके लिए धन, सुख था देश आदि त्यागकर देते हैं। रामचन्द्रजी अपने प्रिय भाई लक्ष्मणके मने सुग्रीवसे इस प्रकार बोले—हे मित्र सुग्रीव! आप कुल ठीक कर रहे हैं। के पश्चात् सुग्रीवने उस स्थानसे अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई तो एक खरपर फूलसे लदे शाल वृक्षको देखकर अत्यन्त हर्षित होकर उठा और क सुन्दर शाखा तोड़ लाया। फिर आप और रामचन्द्र उसपर बैठे। इतना खकर पवनपुत्र हनुमान्‌ने भी एक डाल तोड़ लाई। और लक्ष्मणको ठने को दी। और आग्रहपूर्वक उन्हें उसपर बैठाया। जब सुग्रीव और राम क साथ पुष्प आसनपर बैठे, तो सुग्रीव प्रसन्न होकर रामचन्द्रसे प्रेमपूर्वक हने लगे। हे मित्र रामचन्द्र! दुष्ट भाई बालिने मुझे निकालकर मेरी स्त्री हर ी है। इस कारण मैं इस वनमें इधर-उधर मारा-मारा फिरता हूँ। मैं जितना खी हूँ, वह तो आप जानते हैं। भयके मारे मैं व्याकुल होकर इस वनमें पा रहता हूँ। बालि बीर है। इस कारण मैं उससे बहुत डरता हूँ। मेरा परम शत्रु है। आप सबके रक्षक हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए। मेरे र कृपा कीजिए। इतना सुनकर भक्तवत्सल तेजस्वी श्रीरामचन्द्र ने मुस्करा या और बोले—हे सुग्रीव! भला करना मित्रका काम है। बुराई शत्रुका म है। जिसने आपको कष्ट दिया है तथा स्त्री हर ली है, वह आज पुरको जाएगा। आप निश्चयही समझो। देखिए ये सोनेसे मढ़े हुए बाण ली न जायँगे। आप अभीसे उस दुष्ट बालिको मरा समझिए। सुग्रीव राम-

न्द्रका ऐसा कथन सुनकर अपने चार साथियोंके सहित अत्यन्त प्रसन्न हो
वाह-वाह करने लगे। और फिर इस प्रकार बोले—हे राम! मैं अत्यन्त
शोकसे दुःखित हूँ। आप दीनोंके सहायक हैं। रक्षा करनेवाले हैं।
आप तो मित्र भी हैं। आप मुझे प्राणोंसे बढ़कर प्रिय हैं। आपने अग्नि
साक्षी देकर मुझसे मैत्रीकी है। इसलिए मैं आपको अपने दुःखकी कहा
सुनाता हूँ। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ। आप मुझपर विश्वास रक्खें।
इतना कहनेपर सुग्रीवकी आँखमें आँसूकी बूँदें झलकने लगीं।
करुणासे कंठ भर आया। अधिक तेजीसे न बोल सके। और रामजी
सामने धैर्य्यसे अपने आए हुए आँसुओंको रोका। और धै
धारणकर फिर मुनिभेष धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रसे प्रेमसे बोले—
हे रामचन्द्र! बालिने मुझे बलपूर्वक राज्यसे निकाल दिया है। मु
असहनीय गालियाँ दीं और मेरा अपमान किया है। मेरी प्राणोंसे प्या
स्त्रीको हर लिया है। मेरे मित्रोंको कैद कर लिया है। मेरे सहायकोंको
कारागारमें डाल दिया। केवल यही चार वानर जहाँ हम जाते हैं, वहाँ मे
साथ देते हैं। वह शत्रु मेरा सर्वदा नाश ही चाहता है। उसने मुझे मरवाने
लिए वनमें भी बहुतसे वानरोंको भेजा था। परन्तु मैंने उन सबोंको मार डाला
इसी भयसे मैं आपके निकट भी न आया था। इतने कष्टमें भी मेरा प्रा
नष्ट न हुआ। हे राम! मैंने आपसे जितनी बातें कही हैं, सब संक्षेपमें
गया हूँ। यही हनुमान् आदि मेरे सहायक हैं। जहाँ जाते वहाँ जा
जहाँ रहते वहाँ रहते। पहले मेरे सुखके लिए प्रयत्न करते, फिर तब आ
भोजन करते। मेरा जीना तथा सुखसे रहना, उसी शत्रुके विनाशके अधी
है। हे राम! जब मुझे दुःख है तो आपको भी दुःख होना चाहिए। क्योंकि
अब आप मेरे मित्र हो चुके हैं। मैंने अपना शोक नष्ट करनेका उपाय आ
को बतला दिया। इतना वचन सुन दुःखित हो रामचन्द्र सुग्रीवसे बोले—
सुग्रीव! मैं यह नहीं जानता कि तुमसे और बालिसे क्यों बैर हुआ है? ज
तक दोनोंके बैरका कारण न मालूम होगा, तबतक मैं कुछ नहीं कर सक
हूँ। मुझे तुम्हारे तिरस्कारकी बात सुनकर मेरा क्रोध सर्पके फुफकार
समान बढ़ रहा है। जबतक मैं धनुषको चढ़ाता हूँ, तबतक सब कहिए

जब मेरा बाण सनसनाता हुआ चलेगा तो वह दुष्ट वालि कहीं भी न बच सकेगा। इतना रामचन्द्रका वचन सुनकर सुग्रीव अपने वानरोंके साथ प्रसन्न होकर शत्रुताका कारण कहने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

नवाँ सर्ग

सुग्रीवका रामचन्द्रसे बालि-वैरका वर्णन करना

हे रामचन्द्रजी ! वह शत्रु मेरा बड़ा भाई है। वह मेरा तथा मेरे पिता का बड़ा प्यारा था। पिताके मृत्युके पश्चात् राजनीतिके अनुसार उसे राज्य का अधिकार प्राप्त हुआ। और वालि राज करने लगा और मैं उसका सेवक बनकर रहने लगा। दुन्दुभी नामक राक्षसका बड़ा भाई मायावी बड़ा बलवान् है। उसकी स्त्रीके कारण बालिसे वैर हो गया। और रातको जब सब सोये हुए थे, तब वालिपर वह राक्षस किष्किन्धाके द्वारपर आकर गर्जने लगा। वालिके श्रवणोंने जब उस राक्षसके क्रोध भरे शब्द सुने तो वालिने शीघ्रतासे उस राक्षसको मारनेके लिए मेरे तथा स्त्रीके रोकनेपर भी न रुककर ललकारते हुए, उस राक्षसका पीछा किया। बड़े भाईके स्नेहके कारण मैंने भी उसका साथ दिया। वह राक्षस महाबली वालि तथा मुझको आता देखकर डरकर भाग गया। और हम दोनोंने उस राक्षसको डरते हुए देखकर और भी शीघ्रतासे पीछा किया। रातमें चाँदनी चमचमा रही थी। मार्गमें कोई भी कठिनाई न पड़ी और पीछा करते ही गए। दूर वनमें जाकर एक बिल था। जो बिल घाससे छिपा हुआ था। वह राक्षस उस बिलमें वेगसे घुस गया और हम दोनों वहीं आकर ठहर गए। उस राक्षसको बिलमें घुसता देखकर वालि बहुत क्रोधसे भर गया। और मुझसे बोला कि सुग्रीव ! तुम इस बिलपर सावधान होकर ठहरो। मैं इसके अन्दर जाकर शत्रुको मारूँगा। मैंने उसका यह वचन सुनकर उसके साथ चलनेकी प्रार्थना की। पर वह एक न माना। आप स्वयं बिलमें चला गया। उसके गए एक वर्ष बीत गए। और मैं वहीं सावधान खड़ा रहा। पर वालि तबतक नहीं लौटा। भाईके प्रेमके कारण मैं व्याकुल हो गया। और मुझे शंका होने लगी कि, क्या वालि मारा गया? कुछ दिनोंके पश्चात् उस बिलसे खूनकी धारा फेनके साथ वेगसे

निकलकर बहने लगी, जिससे मुझे और भी प्रतीत हुआ, कि कोई मारा गया और मैं अत्यन्त दुःखित हुआ। राक्षसोंके गर्जनेका शब्द तो मेरे कान तक पहुँचे, पर भाई बालिका एक भी शब्द मैं न सुन सका। इस कारण पूर्णरूपसे भाईका मारा जाना समझकर एक पत्थरके चट्टानसे उस बिलके द्वारको ढँक दिया। हे मित्र! मैं भाईको मरा जानकर अत्यन्त दुःखी हुआ। और तिलाञ्जलि देकर किष्किन्धा लौट आया। मैं किष्किन्धा आनेपर यथार्थ बात छिपाता रहा। परन्तु यह बात छिप न सकी। और सबने मिलकर मेरा अभिषेक किया और मैं न्यायपूर्वक राज्य करने लगा। कुछ काल बीतनेपर बालि शत्रुको मारकर वापस आया और मुझको राजा देखकर क्रोधसे आँखें लाल कर मेरे मन्त्रियोंको बाँधकर उनकी बुरी दुर्दशा की, मैं उस समय उस पापीको इस अन्यायका बदला दे सकता था। परन्तु भाईके सम्मान होनेके कारण मेरी इच्छा ही नहीं हुई। जब भाई बालिने नगरमें प्रवेश किया तो मैंने उसका सम्मान किया। और प्रणाम करके अपना मुकुट उसके चरणोंमें स्पर्श किया। परन्तु उसने अपना क्रोध शान्त न किया। किन्तु सर्वदाके लिए मेरा शत्रु हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्ध काण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥६॥

दशवाँ सर्ग

(बालिका वर विस्तारपूर्वक वर्णन)

हे रामचन्द्र! इस प्रकार मैंने उस क्रुद्ध भाई बालिको प्रसन्न करना चाहा। उससे कहा कि हे भाई। प्रसन्नताकी बात है कि आप राक्षसको मारकर कुशलपूर्वक लौट आए। मैं तो आपका सेवक हूँ। अब भी वैसा ही रहूँगा। हे भाई! छत्र और चँवर जो चन्द्रमाके समान शोभा पाती है, आप इसे धारण कीजिए। हे महाराज! मैं उस बिलपर एक वर्षसे अधिक तक रहा। परन्तु आपका कुछ भी पता न लगा, तो उस बिलको चट्टान से ढँककर किष्किन्धाको लौट आया। मैं वहाँसे दुःखित होकर आया था। क्योंकि उस बिलसे रुधिरकी धारा बह चली थी। मैं आपके स्नेहके कारण दुःखी था। पुरवासी ऐसी मेरी दशा देखकर समझ गए। तब राज्य-रक्षण के लिए मुझे मन्त्रियों और पुरवासियोंने राजसिंहासनपर बैठा दिया। मैंने

अपनी इच्छासे यह पद ग्रहण नहीं किया। आपका राज्य मैं शत्रुहीन प्रजा आदिसे मुक्त धरोहर रूपमें अबतक रखे था। अब आप इसे अपने हाथमें ले लीजिए। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ। आप क्रोध न करें। पुरवासियों तथा मन्त्रियोंने मुझे बलपूर्वक राजा बनाया है। परन्तु हे रामचन्द्र! इस तरह प्रेमपूर्वक बोलनेपर उसने मुझे धिक्कारते हुए कहा कि तुमको धिक्कार है—और मन्त्रियों सहित उसने मुझको बड़े कटु वचन कहे। मन्त्रियोंके मध्यमें अनेक तिरस्कार किए और मेरे मित्रोंसे कहा कि आप लोग तो जानते हैं कि मायावी नामक राक्षस एक रातको क्रोध करके मुझे युद्धके लिए ललकारा। उसकी गर्जना सुनकर मैं महलसे निकलकर उससे युद्ध करने गया कि यह मेरा भाई है, मेरा साथ दिया है। वह राक्षस दूसरे व्यक्तिके साथ आता देखकर वेगसे भाग चला। मैं उसका पीछा करता ही गया। वह एक घने वनमें जाकर एक बिलमें घुस गया। जब मैंने उस राक्षसको बिलके अन्दर घुसते देखा तो उस राक्षसको मारने चला गया। उस भयङ्कर बिलमें उस राक्षसको खोजते-खोजते एक वर्ष बीत गए। इसके पश्चात् मिलनेपर मैंने उसका बध किया। बध करनेपर वह राक्षस जोरोंकी गर्जना करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके मुखसे रुधिरकी धारा बहने लगी, जिससे समग्र बिल भर गया। जब मैं बिलके द्वारपर आया, तो देखा कि द्वार बन्द है। तब मैंने दो-तीनबार सुग्रीव-सुग्रीव पुकारा। परन्तु कोई उत्तर न मिलनेपर बादको लात मारकर उस पत्थरको हटाकर बाहर निकला। सुग्रीवको न देखकर मुझे बहुत क्रोध हुआ। स्वयं राज्य चाहनेवाला सुग्रीव मुझे वहाँ बन्द कर आया। राजा बननेके लिए लौट आया। हे रामचन्द्र! इस प्रकार बोलकर मुझे एक वस्त्र देकर निकाल दिया। उसने मेरी स्त्री हर ली। उसके भयसे मैं सारे पृथ्वीपर मारा-मारा फिरता हूँ। स्त्रीके हरणसे दुःखित होकर मैं इस पर्वत पर आया हूँ। क्योंकि बालि यहाँ आक्रमण नहीं कर सकता। बैरका कारण यही है। जो मैंने आपसे कहा है। हे मित्र! अब आपको इस अवस्थामें जो उचितहो वही उपाय कीजिये। हे राम! आप तो सबके भय दूर करनेवाले हैं। इसलिए मेरा भय जो बालिसे है, उसे दूर कीजिए। उसके अत्याचार मुझसे सहे नहीं जाते हैं। महात्मा सुग्रीवके ऐसे

वचन सुनकर धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्र धर्मयुक्त वचन मुस्काते हुये बोले—हे सुग्रीव ! मेरे तीखे बाण कभी भी निष्फल न जायेंगे। ये अपने वेगसे जाकर उस अत्याचारी वालिको वेध डालेगा। जब तक उस बाणको मैं नहीं छोड़ता तभीतक वह परस्त्रीको हरण करनेवाला जीता है। यह तुम निश्चयही जानो। जैसा मैं कठिन दुःखमें पड़ा हूँ, उसी प्रकार तुमभी मेरे समान कष्ट सह रहे हो। मैं उस पापीको मारकर तुमको छुटकारा दिलाऊँगा। तुम राज्य तथा अपनी प्यारी स्त्रीको शीघ्र पाओगे। इसप्रकार श्रीरामचन्द्रके वचनोंको सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उनकी पूजाकी और अनुराग युक्त वचन श्रीरामसे बोले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा कांडका दशवाँ सर्ग समाप्त ॥१०॥

ग्यारहवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव सम्वाद वर्णन

हे रामचन्द्र ! आपके बाण अवश्यही उस वालिको जलावेंगे। वालिमें क्या पुरुषार्थ, क्या बल है। क्या धर्म हैं ? वह आप ध्यानपूर्वक सुन लें। और जैसे उचित समझें वैसा करें। पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक, दक्षिणसे उत्तर समुद्र तक सूय उदयके पहले वह जाता और आता है और बड़े-बड़े पर्वतोंको वृक्ष सहित गेंदके समान फेंक देता है। तथा बृक्षोंको उखाड़ देता है। उसने अपने बलको अजमाते-अजमाते ही कितने पर्वतोंको उखाड़ डाला है। दुन्दुभी नामक राक्षस जो हजार हाथियोंका बल रखता था उसे परास्तकर डाला। अधिक बल होनेके कारण बरदानसे मोहित होकर उसने समुद्रमें घुसकर समुद्रसे युद्ध करनेके लिये कहा। तब समुद्रने उस राक्षसको कहा कि, मैं तुमसे युद्ध करने योग्य नहीं हूँ। तुमसे युद्ध करनेवालोंको मैं बतलाता हूँ। तुम जाकर उससे युद्ध करो। हिमावान् एक प्रसिद्ध पर्वराज है। वह शंकरजी के श्वसुर और पार्वतीके पिता हैं। वह तपस्वियोंको हृदयसे चाहते हैं। उनको शरण देते हैं। पर्वतके शिखरपर घने जंगलमें रहते हैं। वहाँसे बहुतसे नदियोंके सोते और झरने निकलते हैं। वही पर्वतराज युद्धके योग्य है। वह तुमसे युद्धकर तुम्हें प्रसन्न कर देगें। उस राक्षसने समुद्रको भययुक्त जानकर वहाँसे चलकर पर्वत-राज हिमावनके निकट स्थानमें जाकर महाघोर गर्जनकी और वृक्ष तथा पहाड़ों

को उखाड़कर फेंकने लगा। जब उस गर्जनकी आवाज पर्वतराज हिमवानको सुनाई दी, तब वह शिखरपर से प्रेम पूर्वक बोले—हे गर्जना करनेवाले! तुम कौन हो? दुन्दुभीने अपने कठोर शब्दोंमें कहा, मेरा नाम दुन्दुभी है। मैं तुमसे युद्ध करना चाहता हूँ। इसपर हिमवानने कहा, मैं युद्ध करना नहीं जानता हूँ। मेरे शरणमें केवल तपस्वी रहते हैं। राजा हिमवानकी यह बात सुनकर दुन्दुभी क्रोधसे आँखें लालकर बोला, हे हिमवान्! यदि तुम मुझसे युद्ध नहीं करोगे, तो कोई ऐसे पुरुषका नाम बताओ जो मुझसे युद्ध कर सकता है। उस राक्षसका कटु वचन सुनकर क्रोधसे हिमवान् बोले–हे राक्षस! जाओ, इन्द्रका पुत्र बालि बड़ा पराक्रमी बानर किष्किन्धामें वास करता है। उससे युद्ध करो। यदि तुम्हें युद्धकी लालसा है, तो शीघ्र उस पराक्रमी बानर से मिलो। वही तुम्हारी मनसा पूरी करेंगे। उन्होंने आजतक किसीकी लल-कार सहन नहीं किया है। वह राक्षस हिमवान्के क्रोधभरे वचनको सुनकर क्रोध करते हुए, किष्किन्धाकी ओर चल पड़ा। उस राक्षसका मुँह भैंसेके समान था। उसके बड़े-बड़े नुकीले सींग थे। भयानक चेहरा था। केवल बादलके समान जान पड़ता था। वह राक्षस किष्किन्धाके द्वारपर आकर अपने बड़े शब्दोंसे गर्जा और सींगसे पृथ्वी खोदने लगा। किष्किन्धाके द्वारको तोड़ने लगा। वह पर्वतों तथा वृक्षोंको उखाड़कर फेंकने लगा। तब उस राक्षसके आनेका और ऐसे उत्पातका शब्द जब बालिने सुना, तो वह अपनी पत्नी सहित चन्द्रमाकी उदयके समान सुशोभित राजमहलसे निकला और दूरसेही बोला—हे महाबली राक्षस! तुम मेरे नगरका द्वार रोककर क्यों गर्ज रहे हो? मैं तुमको तथा तुम्हारे पराक्रमको भलीभाँति जानता हूँ। मुझे अपने प्राणोंका भय नहीं है? अब तुम अपने प्राणोंकी रक्षा करो। वह राक्षस वानरराज बालिकी बात सुन क्रोधसे आँखें लालकर बोला—जाओ! जाओ! तुम अपनी स्त्रीके निकटहीसे केवल अपनी वीरताका परिचय दिया करो। क्यों नहीं मेरे निकट आते हो? अपनी वीरताका परिचय मुझे कराओ, तब मैं तुम्हें वीर समझूँगा। आज रात भरमें तुम्हें सब सुख भोगनेका अवसर देता हूँ। तुम अपने सचिवोंसे आलिंगन कर लो। पुरस्कारके रूपमें जिसको जो देना हो दे लो। नहीं तो फिर तुम्हें अवसर न मिलेगा। तुम वानरोंके राजा

हो। तुम्हें उचित कर्मके लिये समय देता हूँ। अपने मित्रोंसे जीवन भरके लिये मिल लो। अपने राज्य स्थानको सुख पूर्वक देख लो। किसीको किष्किन्धा का राजा बना दो। स्त्रीके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा कर लो। ताकि इन सबको करनेके लिये लालसा न हो। अर्थात् रातभरमें जो चाहो कर लो। क्योंकि तुम्हारा अभिमान दूर करनेके लिये उपस्थित हूँ। असावधान, अस्त्र-हीन, दुर्बल और नाशसे पागल तथा स्त्रीके साथ रहने वालेको जो मारता है, उसे भ्रूणहत्या का पाप ग्रसित करता है। इस प्रकारके राक्षसका वचन सुनकर अपनी तारा आदि स्त्रियोंको उसी स्थान पर छोड़कर हँसते हुए उस मूर्ख राक्षस को डराते हुए बालि बोला—अरे शठ! यदि तुम युद्धसे नहीं डरते हो तो मुझे कामी न समझो। क्रोध से भरा हुआ बालि अपने पिताकी दी हुई सोनेकी माला उतार कर युद्धके लिये राक्षसकी ओर लपका और उस राक्षसके निकट जाकर उसके सींगको पकड़कर गदाके समान घुमाने लगा और बार-बार पटकते हुये गर्जने लगा। दुन्दुभीके पृथ्वीपर गिरते ही उसके कानसे रुधिर बहने लगा। तब वह राक्षस क्रोधसे गर्जा और सँभलकर फिर भयानक युद्ध करने लगा। क्रोध के कारण दोनोंमें बहुत काल तक युद्ध होता रहा। बालि अपने पिता इन्द्रके समान राक्षसके साथ मुक्कों, पैरों, घुटने, वृक्षों और पत्थरों आदिसे युद्ध करने लगा, इसके अनन्तर राक्षसका बल घटने तथा बालिका बल बढ़ने लगा। और अवसर पाकर वानरराज बालिने उस दुन्दुभीको पृथ्वी पर पटक दिया और अपने पैरोंसे मसल दिया। पृथ्वीकी शरण लेते ही उस राक्षसने अपने प्राण छोड़ दिये। तब बालिने उसकी लाशको उठाकर बड़े वेग से एक योजनपर फेंक दिया। उसके मुँहसे निकलते हुये रक्त-बिन्दु वायुके झोंकेसे उड़कर मतंग मुनिके आश्रममें पड़े। रक्त-बिन्दुओंको देखकर मुनि क्रोध युक्तहो सोचने लगे ये रक्त-बिन्दु किसने मेरे आश्रमपर फेंके हैं। किस पापीने रक्तके बिन्दुसे मुझे अपवित्र किया है? यह कौन महापापी है? कौन मूर्ख, पागल, बुद्धि-रहित है? ऐसा कहते हुये मुनिने आश्रमसे निकलकर पर्वतके समान मृत और भूमिमें पड़े हुये दैत्यको देखा। मुनि अपने तपस्या के प्रभावसे समझ गये कि यह बालि नामक बानरका मारा हुआ है। उन्होंने

क्रोधमें आकर बालिको शाप दिया कि इस वनमें वह नहीं आ सकता। यदि आयेगा तो भस्म हो जायेगा। उसने मेरे रहने के स्थानको रक्त बिन्दुसे अपवित्र कर दिया, जिसने राक्षसके मृत्य शरीरको फेंककर इस वृक्षको तोड़ा है, वह यदि योजन तक जायेगा तो कभी भी न बचेगा। यदि कोई वानर उसके अनुसार इस वनमें होतो शीघ्र चला जाय? अन्यथा वह भी मेरे शापको प्राप्त होंगें। इस वनकी मैंने पुत्रके समान रक्षाकी है। इसके फल, फूल मूल पत्ते तथा अंकुरको यहाँ रह कर जो नाश करेगा, उसेभी शाप दूँगा। आजसे प्रलयकाल तक बालिके पक्षवाले जिस वानरको देखूँगा वह अनेकों वर्षोंके लिए पत्थर हो जायेगा। मुनिके दिये हुए शापको बालिके पक्षके वानर उस वनसे निकल गये। और बालिके यहाँ किष्किन्धासे लौट गये। उन सब बानरोंको देखकर बालि बोला—हे बानरके समूह! आपलोग मंतग वनको छोड़कर यहाँ क्यों आये हैं? क्या कोई आपत्ति आई है? वानरराज बालिसे मतंग वनमें रहनेवाले वानरोंने मुनिकी दी हुई आज्ञापा तथा सब कारण उनसे कहा! उन वानरोंके वचन सुनकर बालि मुनिके पास जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा। मुनि उनको विना देखे हुए अपने आश्रममें चले गए। बालि शापसे व्याकुल हो उठा। बालि इसी कारण इस ऋष्यमूक पर्वतपर नहीं आता है तथा न देखना ही चाहता है। वह दुष्ट यहाँ नहीं आ सकता है। इसी कारण मैं इस पर्वतपर निर्भय रहता हूँ। उस दुन्दुभीके हड्डियोंका यह ढेर है जो पर्वतके समान मालूम हो रहा है और मांस सहित इन हड्डियों को बालिने फेंका है। ये शाल वृक्षके पत्ते बालि हिलाकर गिरा सकता है। बालिमें ऐसा पराक्रम है जो मैंने संक्षेपमें सुनाया है। क्या आप ऐसे बालिको युद्धमें मार सकेंगे? सुग्रीवका ऐसा वचन सुनकर श्रीलक्ष्मणजी सूर्यवंशियोंमें श्रेष्ठ इस प्रकार हँसते हुए बोले—हे सुग्रीव! आपको किस तरह विश्वास होगा कि पुरुषोत्तम रामचन्द्र बालिको मार सकेंगे? सुग्रीवने विस्मित होते हुए लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! पहले इन शाल वृक्षोंमें एक-एक वृक्षको अनेक बार वानरराज बालिने बेधा है। यदि मेरे मित्र इनसे किसी एक वृक्षको एक से वेध दें तो मुझे विश्वास होगा कि रामचन्द्र अपने पराक्रमसे बालिका वध कर सकेंगे। यदि मृत दुन्दुभीकी हड्डीको एक पैरसे उठाकर दो सौकी

दूरी पर रामचन्द्र फेंक दें, तब मैं समझूँगा कि रामचन्द्र बालिका वध कर सकेंगे। इस प्रकारके वचन बोलकर सुग्रीवने विचार किया और पुनः अपने मित्र रामचन्द्रसे बोले-हे मित्र! बालि अपनेको बहुत बड़ा शूर समझता है। उसके भयसे सर्वदा हनुमान् आदि अपने श्रेष्ठ सचिवोंके साथ इस वनमें भ्रमण करता रहता हूँ। हे मित्र! अब आप जैसे मित्र मिल गये हैं। मैंने आपकी शरण ली है। किन्तु मैं उस दुष्ट बलवान् बड़े भाईका बल जानता हूँ। आपके बलका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। मैं आपके बलकी परीक्षा नहीं करता, म आपका तिरस्कारभी नहीं करता और न मैं आपको भयभीतही करता हूँ। किन्तु उस दुरात्मा बालिके भयंकर कर्मोंको देखकर मुझे शंका होती है। हे रामचन्द्र! आपकी वाणी, आपकी धीरता और आपके आकार में सब छिपे सूर्यके समान आपके तेजको देखता हूँ। सुग्रीवका ऐसा वचन सुनकर रामचन्द्र बोले—हे मित्र! यदि आप मेरा बल नहीं जानते हैं अथवा आपको हमारे पराक्रमका विश्वास नहीं होता है, तो युद्धमें मैं अपने बलका विश्वास करा दूँगा। ऐसा कहते हुए तथा सुग्रीवको धैर्य देते हुए रामचन्द्रने पैरके अँगूठेसे दुन्दुभीकी सूखी हड्डीको २०० योजनकी दूरी पर फेक दिया। ऐसा देखकर सुग्रीव पुनः अपने सचिवोंके सामने गर्वयुक्त वचन बोले—उस समय लक्ष्मणके आगे रामचन्द्र सूर्यके समान मालूम हो रहे थे। हे रामचन्द्र! दुष्ट बालिने युद्ध से थके रहनेपर मांस सहित राक्षसका शरीर फेंका था। उस समय गीला होने से भारी था और तत्कालही मृतक था। हे राम! आप तो इस समय प्रसन्न हैं, वह हड्डी मांस रहित हैं, अधिक दिन होनेसे सूखकर हल्की हो गई है जिसे आपने फेंकी है। इससे यह नहीं समझा जा सकता है कि आपमें या उसमें अधिक बलहै। हे राम! यदि आप एक शालवृक्षको भेद दें तो मुझे विश्वास हो जायेगा कि, आपमें बालिसे अधिक बल है। गजके शुंडके समान इस धनुष की डोरी चढ़ा कान तक खींचकर अपने बाणको छोड़िये। इसमें संदेह नहीं कि आपका छोड़ा हुआ बाण वृक्षको वेध देगा। अधिक विचार न कीजिये। हे मेरे प्रिय! यह आप अवश्य करें। आपको मैं अपनी शपथ देता हूँ, यह आप शीघ्र कीजिये। जिस प्रकार तेजोंमें सूर्य, पर्वतोंमें हिमवान्, पशुओंमें सिंह, जलमें समुद्र सर्व श्रेष्ठ है, वैसेही मनुष्योंमें आप सबसे अधिक बली हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११॥

बारहवाँ सर्ग

रामचन्द्रका शालवृक्ष वेधना तथा सुग्रीव बालि युद्ध

श्रीरामचन्द्रजीने अपने मित्र सुग्रीवका ऐसा वचन सुनकर तथा उनके विश्वासके लिये विशाल धनुष उठाकर एक बाणको चढ़ाकर लक्ष्यकर उस शाल वृक्षको एक बाण मारा। ज्यों ही श्रीरामका बाण धनुषसे छूटा कि उसका शब्द चारों दिशाओंमें गूंज उठा। सुवर्ण मंडित वह बाण उस वृक्षको वेधकर पृथ्वीको छेदते हुये पातालमें चला गया और वह बाण एक ही क्षण में उन सात शाल वृक्षों (तालों) में भेदकर श्रीरामके तरकशमें घुस गया। सुग्रीव यह सब होते न देख सका। इसके अनन्तर सात शाल वृक्षोंको रामचन्द्रके बाणसे फटे देखकर सुग्रीव आश्चर्यमें पड़ गया और प्रसन्नता पूर्वक रामचन्द्रको प्रणाम किया। तब सुग्रीव धर्मात्मा रामचन्द्रसे जो अस्त्र-शस्त्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ वीर थे प्रेमपूर्वक बोला—आप तो बालि क्या देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रको भी मार देंगे। जिसके एक बाणसे सात शाल एवं पृथ्वी फट गई तो उस बाणके सामने कौन ठहर सकता है? हे राम! आप तो महेन्द्र और वरुणके तुल्य मेरे मित्र मिले। आज मेरा सब शोक दूर हो गया। मैं बहुत ही आनन्दित हूँ। हे रामचन्द्र! मैं हाथ जोड़ता हूँ। मेरी प्रसन्नताके लिये मेरे शत्रुका आज ही आप वध करें। इसके अनन्तर सुग्रीव को रामचन्द्रने हृदयसे लगा लिया और लक्ष्मणकी ओर देखकर बोले—हमलोग शीघ्र यहाँसे शत्रु विनाशके लिये किष्किन्धा चलते हैं और आप आगे चलकर उस दुष्ट बालिको युद्धके लिये ललकारें। सब उस पर्वतसे प्रस्थानकर किष्किन्धा पहुँचकर पेड़की आड़में बैठे। सुग्रीव युद्धके लिये तैयार होकर किष्किन्धाके द्वार पर गर्जन करने लगा। उसकी उस घोर गर्जनासे किष्किन्धमें हलचल मच गई। बालि अपने भाई सुग्रीवका वचन सुनकर क्रोधसे आँखें लाल किये हुये युद्धके लिये प्रस्तुत हुआ। दोनों भाइयोंमें ऐसा युद्ध हो रहा था मानों आकाशमें बुध और मंगल ग्रहोंमें युद्ध हो रहा हो। दोनों भाई वज्रके समान हाथ, पैरों और मुक्कोंसे परस्पर करने लगे। श्रीरामचन्द्रने इन दोनोंको युद्ध करते देखा। दोनों समान वीर थे। उन दोनोंमें कुछ भी भेद न मालूम होता था कि कौन

सुग्रीव और कौन बालि है। इस कारण बाण न चला सके। इसी समय बालिने सुग्रीवको भगा दिया। सुग्रीव अपने मित्रको वहाँ न देखकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर दौड़ चले। वह थका हुआ था। उसका शरीर रक्त से भींगा था। उसके शरीरमें कितने आघात किये हुये थे। बालिने सुग्रीवका पीछा किया और सुग्रीव ऋष्यमूकके जंगलमें घुस गया। बालि शापके कारण उस पर्वतमें न जा सका और ऐसा कहता हुआ कि जाओ तुझे छोड़ दिया और वापस किष्किन्ध चला आया। रामचन्द्र भी लक्ष्मण तथा हनुमान् आदिके साथ उसी वनमें लौट आये, जहाँ सुग्रीव थे। श्रीरामचन्द्रको देखकर सुग्रीव लज्जाके कारण पृथ्वीकी ओर दृष्टिकर बोले—हे राम! आपने तो बालिको युद्धके लिये ललकारनेको कहा था और अपना पराक्रम भी दिखलाया था। फिर शत्रुसे आपने पिटवाया। महाराज! आपने यह क्या किया? यदि आप उसी समय कह देते कि मैं बालिको न मारूँगा, तो मैं न जाता, न मार खाता, न इतना क्लेश सहता। सुग्रीवके दीन वचन सुनकर रामचन्द्र पुनः बोले—हे मित्र सुग्रीव! क्रोध दूर करो। मैं इस कारण बाण न चला सका कि वेषसे, ऊँचाईसे तथा मुटाईसे दोनोंका शरीर मिलता था। शब्द, तेज, दृष्टि, वचन तुम दोनोंमें कुछभी भेद न मालूम पड़ता था। मैं यह न जान सका कि कौन सुग्रीव है और कौन बालि है? यदि मैं भूलसेही तुम्हींको मार देता तो क्या होता? हे वीर! मेरी वैसी हालतमें लड़कपन ही समझा जाता। जिसको अभय दिया जाय उसको वध करना भारी पाप है। लक्ष्मण तथा सीता तुम्हारे अधीन हैं। यहाँ तुम्हीं हम सबोंके रक्षक हो। तुम शंका न करो। फिरसे युद्धके लिये तैयार हो। इसी समय एक बाणसे बालिको मरा देखोगे। मेरे पहचाननेके लिये तुममें कुछ चिह्न होना चाहिये। रामजीने भाई लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! इनके गलेमें गज पुष्पकी लता पहना दो। आज्ञानुसार लक्ष्मणने वैसा ही किया। जिसको पहनकर सुग्रीव तो बहुत ही शोभित हुये और शरीरसे सुन्दर दिखलाई पड़ने लगे। रामचन्द्रके बचनोंको सुनकर फिर सुग्रीव युद्धके लिये हाथीके समान झूमते हुये किष्किन्धाकी ओर चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥

तेरहवाँ सर्ग

ऋष्यमूकसे किष्किन्धाके मार्गका वर्णन

पुरुषोत्तम रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वतसे सूर्यके समान चमकीले वाण तथा सुवर्ण मण्डित धनुष लेकर आगे-आगे आप और आपके पीछे सुग्रीव, लक्ष्मण और उनके पीछे, नल, नील तथा हनुमान और अन्य महाबली वानर चले। पुष्पोंसे लदे वृक्षों, समुद्र तक जाने वाली स्वच्छ जलसे पूर्ण नदियों, पर्वत, निर्भय गुहा, कन्दरायें, ऊँचे-ऊँचे शिखर, वैदूर्य्यके समान जल युक्त तालाबमें कमलकी कलियाँ सूर्यकी ओर झुके हुये देखते चले गये। वह लोग हंस सरिस, कारूपर, चकवा चकई आदि पक्षियोंके मीठे शब्द सुनते हुये तथा हरिणोंको कोमल घास खाते हुये बड़े-बड़े दाँत वाले हाथियोंको तालावके घाटोंको तोड़ते हुये वृक्षके शिखरको फोड़ते हुये वानरोंको और हरे पत्तेवाले बड़े-बड़े वृक्षोंको देखते हुये झूमते जाते थे। वे लोग उस वन में अनेक वनचरों तथा आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंको देखते हुये शीघ्रता पूर्वक चले जा रहे थे। क्योंकि सुग्रीवके आधीन थे और सुग्रीवको बड़ी जल्दी थी। शीघ्रतापूर्वक जाते हुये रामचन्द्र सुग्रीवसे प्रेम भरे शब्दोंमें बोले—हे सुग्रीव! आकाशमें वृक्षोंका समूह दिखलाई पड़ता है और इस पर वादल फैले हुये हैं और केलेके वृक्षोंसे यह चारो ओर से घिरा है। यह क्या है? मैं इनको जानना चाहता हूँ। मेरे अन्दर बहुत बड़ा कुतूहल मालूम हो रहा है, इस कुतूहलको शीघ्र दूर कीजिये। श्रीरामचन्द्रके ऐसे वचन सुनकर सुग्रीव चलते-चलते उस वनके बारेमें इस प्रकार कहने लगे—हे रामचन्द्र! यह थकावट दूर करने वाला आश्रम है। बहुत बड़ा और लम्बा चौड़ा है। इसके अन्दर मीठे-मीठे फल वाले वृक्ष और मीठे-मीठे जल वाला तालाब है। इसमें सात मुनि रहते थे। जो प्रसिद्ध व्रतधारी सप्तजन कहलाते थे, वे सब जलके नीचे सिर करके रहते थे। वे लोग सात रात बीतनेपर वायुका आहार करते थे और वे सात सौ वर्षोंके बाद स्वर्ग सिधारे। उन्हींके प्रभावसे यह आश्रम सुरक्षित है। इन्द्र आदि देवता भी इसपर आक्रमण नहीं कर सकते। इस आश्रमके अन्दर पक्षी तथा कोई भी वन-चारी प्रवश नहीं करते। यदि कोई मोहवश उसको देखनेकी इच्छासे जाता

है तो वह वापस नहीं आता। वह गाने बजानेका भी शब्द सुनाई देता है तरह-तरहकी गंध मालूम पड़ती है। अग्निहोत्रकी तीनों अग्नियाँ जल हैं। इन वृक्षोंके शिखर धूमसे भरे हैं। अतएव ये शिखर मेघोंसे वैदूर्य पर्व के समान मालूम पड़ते हैं। हे रामचन्द्र! आप लक्ष्मणके साथ हाथ जो कर उन ऋषियोंको प्रेमपूर्वक प्रणाम करो। जो ब्रह्म-ज्ञानी ऋषियोंको प्रणा करते हैं उनके शरीरका कोई अनिष्ट नहीं होता है। रामचन्द्रने भाईके सा प्रणाम किया और शीघ्रता पूर्वक चले। सप्तजन मुनिसे बड़ी दूर मार्ग त कर उन लोगोंने किष्किन्धाके निकट विश्राम किया। फिर सब लोग अप शरोंको लेकर शत्रुबधके लिये वीरताके साथ चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्र आदि किष्किन्धामें पहुँचकर वृक्षोंकी ओटमें अपनेको छिपाकर सबके सब बैठ गये। वनको चारों ओर देखते हुये सुग्रीवने बहुत अधिक क्रोध किया। अपने साथियोंके साथ गर्जन करके सुग्रीवने वालिको युद्धके लिये किष्किन्धाके द्वारपर से ललकारा! उस समय जिस प्रकार सुग्री गर्जता था मालूम हो रहा था कि आकाश फट रहा है। महामेघके समान गर्जता हुआ सिंहके समान चलने वाला, सूर्यके समान तेज वाल सुग्रीव रामचन्द्रसे बोला—हे रामचन्द्र तथा वीरगण! हम लोग किष्किन्ध में पहुँच गये हैं। आपने जो वालि-बधके लिये प्रतिज्ञाकी है उसे भूलिये नहीं। ऋतु जिसप्रकार फूलसे लदी लताओंको सफल करता है उसी प्रकार मु सफल कीजिये। सुग्रीवका इतना वचन सुनकर रामचंद्र उनसे प्रेमपूर्व बोले—हे सुग्रीव! इस माला द्वारा तुम चिन्हित कर दिये गये हो। हे वीर! जिस लताको लक्ष्मणने तुम्हारे गलेमें डाल दिये हैं उ लतासे तुम्हारा शरीर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। तुम्हारे वै वालिको मैं एक ही वाणसे नष्ट कर दूँगा। उस शत्रुको मुझे दिखाओ यह बालि शीघ्र ही पृथ्वी पर मरा हुआ दिखलाई देगा। अगर वह दु मेरे सामने आकर जीता लौट जायेगा तब आप मुझे दोषी समझेंगे त मेरी निन्दा करेंगे। मैंने आपके सामने आपके विश्वासके लिये शात शा

वृक्षको एकही बाणसे वेध डाला है। जिससे आप मुझे बालिको बध करने योग्य समझ सके हो। मैं कष्टके समय भी झूठ नहीं बोलता और धर्म रक्षाके ख्यालसे कभी भी मैं झूठ नहीं बोलूँगा। मैं जो कहता हूँ उसे अवश्य करके दिखला देता हूँ। आप अपने मनसे भय दूर करो। हे सुग्रीव! अपने भाई बालिको गर्ज कर बुलाओ जिसमें बालि चला आवे, वह तुम्हारा शब्द सुनकर अवश्य आवेगा, क्योंकि वह अपनेको विजयी समझता है उसने किसीसे अभी तक तथा तुमसे भी अभी तक हार नहीं खाई है और वह युद्धसे डरने वाला भी नहीं है अर्थात् वह शीघ्र ही आयेगा। अगर वह अपने को वीर समझता होगा तो शत्रुको कभी भी क्षमा न करेगा। स्त्री के निकट रहने पर अपने पराक्रमको जानने वाले शत्रुकी ललकारको नहीं सहते हैं। सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रकी आज्ञा पाकर घोर गर्जन किया। उस सुग्रीव की गर्जना सुनकर गौ व्याकुल हो गई जिस प्रकार पर पुरुषके आक्रमणसे कुल-स्त्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं, रणसे भागे हुये घोड़े हाथीके समान मृग भाग गये, पक्षी आकाशसे क्षीण पुण्य तारोंके समान आकाशसे गिर पड़े। रामचन्द्रका विश्वास करके सुग्रीव सिंहके समान शीघ्रता पूर्वक गरजा। उसकी वीरता बढ़ते हुये चंचल तरगों वाले समुद्रके समान दिखाई पड़ी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्ड का चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

बालिको ताराका समझाना और उसको न मानकर युद्धके लिये प्रस्थान करना

सुग्रीवकी गर्जना सुनकर क्रोधी बालिको बहुत क्रोध आया। उस बालि को सूर्यके समान मानो ग्रहण लग गया। उसके लम्बे दाँतोंसे उसका मुँह उस समय भयानक मालूम पड़ता था और उसकी आँखें लाल हो गई थीं। वह अपने भाई सुग्रीवका असहनीय शब्द सुनकर बड़े वेगसे निकला। उसके पैर पृथ्वीपर पड़नेसे मालूम होता था कि पृथ्वी दबी जा रही है। तारा भयग्रस्त हुई बालिका आलिंगन करके हितकारी वचन बोली—हे नाथ! आप बढ़े हुये नदीके वेगके समान क्रोध का त्याग कीजिये। जैसे रातकी भोगी हुई माला प्रातःकाल छोड़दी जाती है। हे वीर! कल प्रातःकाल आप युद्ध करें। यद्यपि युद्धमें कोई शत्रु आपसे अधिक वीर नहीं है तथापि इस समय आपका

जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। जिस कारण मैं आपको रोक रही हूँ वह आप ध्यानपूर्वक सुनें। सुग्रीव पहले क्रोध करके आया था और आपको युद्धके लिए ललकारा था, तब आपने उसे हराया और मारा जिस कारण वह भाग गया। इस कारण पराजित होनेपर पुनः उसका आना मुझे शंकित कर रहा है। देखिए, इसबार उसका अहङ्कार, उसका घोर युद्धके लिए उद्योग, उसका कड़े शब्दोंमें गर्जनका कोई कारण होना चाहिए। अबकी बार बिना किसीकी सहायतासे सुग्रीव यहाँ नहीं आया है। बिना सहायता के उसका इतना गर्जना नहीं होता। वह बहुत बड़ा बुद्धिमान् है। बिना बल की परीक्षा किए हुए उसने किसीसे मित्रता न की होगी। हे वीर! मैं यह बात अङ्गदसे सुन चुकी हूँ जो आपके कल्याणके लिए कहती हूँ। एक दिन अङ्गद वनमें गए थे, वहीं दूतोंने उनसे यह बात कही थी। महाराज दशरथके दो वीर पुत्र हैं, जिनका नाम राम और लक्ष्मण है। वे वनमें आए हैं। उस पराजित होनेके योग्य सुग्रीवको राम और लक्ष्मण सहायता देनेके लिए आए हैं। श्रीरामचन्द्र शत्रु-सेनाको नष्ट करनेके लिए अग्नि रूप हैं। वे साधुओंके आश्रयदाता तथा दुःखीके रक्षक हैं। वह पिताकी आज्ञा पालनेवाले हैं। रामचन्द्र गुणोंके भण्डार हैं, जिस प्रकार हिमवान् धातुओं का भण्डार है। अतः वैसे पुरुषोत्तमसे विरोध करना उचित नहीं है। युद्धमें अजय और यथार्थ रूप जाननेके योग्य रामचन्द्रसे आपका विरोध ठीक नहीं है। हे पतिदेव! मैं आपसे क्षमा कराना चाहती हूँ, आप क्षमा करें, मुझे एक बात कहनी है। कृपया आप क्रोध न करें। आपकी भलाईके लिए जो मैं कहती हूँ वह कीजिए। शीघ्र सुग्रीवको युवराज पद दीजिए। छोटे भाई से विरोध न कीजिए। आपको उन रामचन्द्रजीसे मित्रता करनी चाहिए। भाई-भाईका बैर हटाकर भाईसे प्रेम करना चाहिए। छोटे भाईका आदर करना चाहिए। वह कहीं भी रहे, परन्तु आपका तो भाई ही है। मैं तो उसके समान दूसरे भाईको नहीं देखती। जिस प्रकार हो आप तुरन्त उसे मिला लीजिए। उसके साथ विरोध छोड़ दीजिए। वह सुग्रीव आपका प्रिय भाई है। इस समय इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। यदि आप मेरा प्यार करना चाहते हों या मुझे हितकारिणी समझते हों तो मैं हाथ जोड़कर

ार्थना करती हूँ कि आप मेरी बातको मान लें। हे नाथ! प्रसन्न होकर मेरे हितकारी वचन सुनिए। अब क्रोध न कीजिए। सूर्यके समान तेजस्वी रामचन्द्रसे विरोध न कीजिए। ताराने इस प्रकारके हितकारी वचन समझाए; रन्तु जिस बालिको विनाशकाल उपस्थित था अर्थात् मृत्युकी छायासे ग्रसित हो चुका था, उसने कुछ नहीं माना।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥१५॥

सोलहवाँ सर्ग

सुग्रीव-बालि युद्ध और रामचन्द्रका बालिका वध

बालिने अपनी चन्द्रमुखी पत्नी ताराकी वे बातें सुनकर उसे फटकारा ौर बोला--तुमतो मुझे समझाने चली हो। गर्जते हुये छोटे भाईकी लल- ार किस प्रकार मैं सह सकता हूँ। मैं कभी पराजित नहीं हुआ, युद्धसे ीठेकी ओर मैंने कभी मुँह नहीं मोड़ा। मेरे लिये यह ललकार सुनना ृत्युके समान दुःख देने वाली है। उस सुग्रीवका गर्व और गर्जना यदि मुझसे ुद्ध करना चाहता है तोमैं क्या उसे सह सकता हूँ? रामचन्द्रकी ओर देख र ुम्हें डरना न चाहिये वे धर्मज्ञ, कृतज्ञ हैं, वे पाप क्यों करेंगे? तुम अपने हलोंमें चली जाओ। व्यर्थ मेरे पीछे आरही हो। तुमने मेरे साथ अपना ेम दिखलाया है। अपनी व्याकुलताको छोड़ दो। मैं सुग्रीवसे युद्ध करूँगा। ह मेरे मुष्टियों तथा वृक्षोंके प्रहारसे डरकर भाग जायेगा। प्रिय तारा! तुमने ुझे सहायता दी है और प्रेम दिखलाया है। मैं तुझे शपथ देता हूँ, तू लौट ा। भाई सुग्रीवको युद्धसे जीतकर मैं शीघ्रही आता हूँ। ताराने अपने पति ालिका आलिंगन करके रो-रोकर प्रदक्षिण की। बालिकी विजय चाहनेवाली ारा स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरको लौट गई। बालि अपनी पत्नीको स्त्रियोंके ाथ विदाकर महासर्पके समान सांस छोड़ता हुआ नगरसे निकला। बालि ्रोधके कारण चारों ओर देखता हुआ गर्जा। वह सुग्रीवको सोनेके समान ेखकर जलती हुई अग्निके समान मालूम पड़ता था। अपने भाई सुग्रीवको ्रम क्रोधी महाबली बालिने पासही में खड़ा देखकर अपने कपड़े सवाँरे। ालि वस्त्र समेटनेके बाद मुक्का तानकर सुग्रीवकी ओर चला और सुग्रीव ी अपने दुष्ट भाई बालिकी ओर मुष्टिक तानकर वेगके साथ चला। क्रोधसे

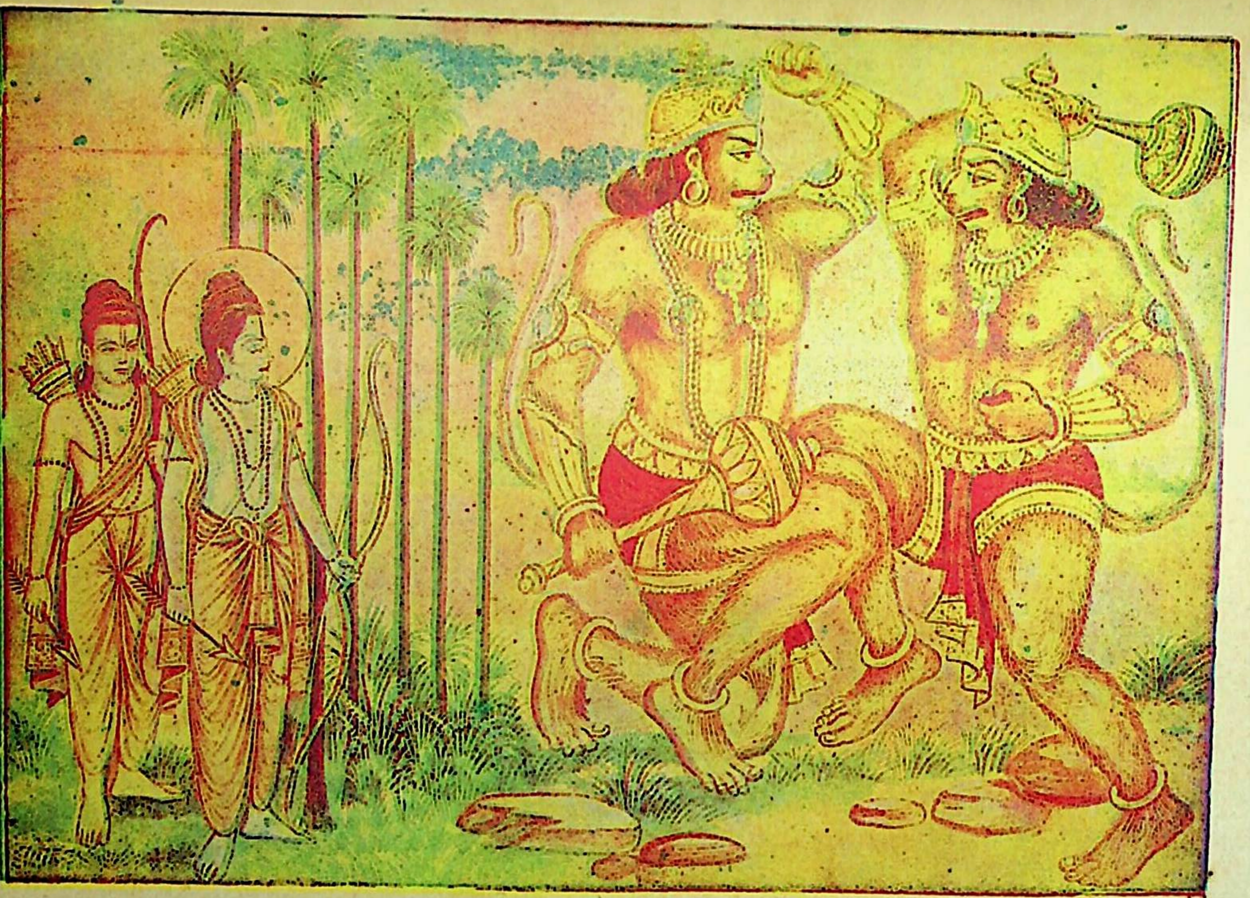
लाल आँखें किये सुग्रीवसे बालि यह बोला—इस मुष्टिकाकी ओर देखो। यह तुम्हारा प्राण लेकर ही लौटेगा। बालिने इतना कहकर सुग्रीवपर प्रहार किया। और सुग्रीवके प्रहारसे क्रोधित होकर वेग पूर्वक चला। उसके शरीर से रक्तकी धारा बह रही थी। सुग्रीव ने शाल वृक्ष को उखाड़ कर बालि के सर पर मारा, मानों पर्वतपर वज्रमारा गया है। उस वृक्षसे चोट लगने पर वह व्याकुल हो गया। दोनोंमें भयंकर बल था, गरुणके समान वेग था, शरीर भयंकर थे, घमसान युद्ध होने लगा। मानों सूर्य और चन्द्रमा आकाशमें युद्ध करते हों। दोनों अपने शत्रुको मार डालना चाहते थे। दोनों ही एक दूसरेकी कमजोरी ढूँढ़ रहे थे, पर बालि पराक्रममें अधिक निकला। सुग्रीवका गर्व बालिने चूर्ण कर दिया। वह शक्तिहीन होने लगा। बालिके प्रति सुग्रीवने क्रोध करके रामचन्द्रको अपनी हानि बतलाई। सुग्रीव कमजोर हो बार-बार इधर-उधर देखने लगा। श्रीराम-चन्द्र अपने मित्रको दुःखी देखकर बालिके बधके लिये अपना स्रोनेसे मण्डित बाण ढूँढ़ने लगे। नाग समान बाणको धनुषपर चढ़ाकर खींचा, जैसे यमराज काल चक्र चलाता है। धनुष्के कड़े शब्दोंसे डरकर पक्षीगण इधर-उधर भागने लगे और प्रलयकाल आया जानकर मृग भाग गये। वज्रके समान गर्जन करनेवाला अपना बाण बालिके कलेजेमें रामचन्द्रने मारा। उस बाण के लगते ही कपिराज बली बालि पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसका गला रुक गया और आर्त शब्द धीरेसे बोला। यह बाण प्रलयकालके समान सोने और चाँदीसे मढ़ा हुआ पुरुषोत्तम रामने चलाया। रुधिर और पसीनेसे बालिका शरीर पूर्ण रूपसे भींग गया था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥१६॥

सत्रहवाँ सर्ग

रामचन्द्रके प्रति बालिका कठोर वचन कहना

युद्ध में लड़ते बालि रामके बाण लगनेसे कटे वृक्षके समान धड़ामसे गिर पड़ा। बालिका शरीर सोनेसे विभूषित पृथ्वीपर पड़ा था। इन्द्रकी दी हुई सोनेकी माला, जो रत्न युक्त थी, बालिके प्राण, तेज, शोभा आदिकी रक्षा करती थी। बालिको पृथ्वीपर गिरनेपर भी माला, शरीर और अ



बालि-सुग्रीव की लड़ाई ।

बाणकी शोभा अलग-अलग हो रही थी। वह आज वीरका स्वर्ग ले जाने वाला हुआ। बालि देवलोकसे गिरे ययातिके समान मालूम पड़ते थे। प्रलय कालमें कालके द्वारा पृथ्वीपर गिराए सूर्यके समान, इन्द्रके समान पराजित होनेके अयोग्य सोनेकी माला धारण करनेवाले बालिको श्रीरामचन्द्रने देखा। उस समय मोटी आँखें, चमकीला मुँह, लम्बी बाँह और चौड़ी छातीवाले बालिको अपने भाई लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रने देखा और वे उसके समीप गए। वह बालि पृथ्वीपर गिरा हुआ अग्निके समान मालूम पड़ता था। राम और लक्ष्मणने उसकी ओर धीरेसे देखकर उसका आदर किया। बालिने श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणको देखकर धर्म-युक्त, विनय-युक्त और कठोर वचन कहे। अर्थात् बालिने रामचन्द्रसे अर्थ-युक्त वचन कहे—हे राम! आपने मुझे दूसरेसे युद्ध करते हुए कौन-सा अपराध करते हुए देखा जो छिपकर बाणसे मेरे प्राण हरे। आप तो कुलीन, बलवान्, चरित्रवान्; दुःखियोंका दुःख जाननेवाले, प्रजाके हितकारी, दयालु, उत्साही, उचितानुचित जाननेवाले और दृढ़-सङ्कल्प करनेवाले हैं। राजाओंके गुण—दाम, साम, क्षमा, धर्म, धृति, सत्व, पराक्रम और अपकारियोंको दण्ड देना भी है। मैं आपके श्रेष्ठ कुलको जानकर ताराके रोकनेपर भी अपने छोटे भाई सुग्रीवसे लड़ने आया। मुझे तो ऐसा विश्वास था कि दूसरोंसे युद्धमें लगे हुए आप नहीं मारेंगे। अब मैं आपको आत्महनन करनेवाले, अधार्मिक, पापी और धर्मका चिन्ह धारण न करनेवाला समझता हूँ। आप तृणसे ढँके कुएँके समान भयानक पुरुष हो। वेश तो आप सज्जनोंका धारण करनेवाले हैं पर हैं पापी, अग्निके सदृश हो। आपने अपनेको सिर्फ धर्मके चिन्हसे छिपाया है मैंने तो आपका कुछ बिगाड़ा नहीं, अपने राज्यमें कोई उपद्रव भी नहीं किया। आपका तिरस्कार भी नहीं किया, तब फिर आपने मुझ निरपराधीको क्यों मारा? मैं वानर हूँ, वनमें रहकर फल मूल खाता हूँ। मैंने आपसे युद्ध नहीं किया, दूसरेसे कर रहा था, फिर आपने मुझे क्यों मारा? आप राजपुत्र कहलाते हैं, सबके प्यारे हैं, धर्म-चिन्हसे युक्त हैं। क्षत्रिय कुलमें धर्म-चिन्ह धारण करनेवाला कौन ऐसा नीच कर्म कर सकता है? रघुवंशी कहलाते हो, धर्मात्मा कहे जाते हो, आप क्रूर हो और पृथ्वीमें सौम्य रूप

घूम रहे हो। ऐसा क्यों करते हो? हे राम! हम वनवासी पशु हैं। फल-मूल खाते हैं। हम वानरोंका यही स्वभाव है। परन्तु आप जो पुरुष हैं। शास्त्रमें पृथ्वी, सोना और रूप वधके कारण हैं। आपको इस वनमें किसका लोभ है? मेरे फलोंके लिए आपको क्यों लोभ होता है? आप तो अपनी इच्छानुसार काम करते हो। लोभी और चञ्चल हो। राज-धर्मका ज्ञान आपको नहीं है। आप तो धनुषके सहारे कूदते हो। धर्ममें तो आपकी थोड़ी भी श्रद्धा नहीं है। इन्द्रियोंके वशमें होकर काम करते हो। आप निरपराध मुझको मारकर सज्जनोंसे क्या कहोगे? क्या आपको सज्जनोंसे यह कहनेमें लज्जा न होगी कि निरपराध बालिको मैंने मारा? बड़े भाईके पहले व्याह करनेवाला, राजा, ब्राह्मण, चोर, प्राणि-वध करनेवाला और नास्तिक, ये सब नरकके भागी होते हैं तथा मित्रघाती, गुरु-स्त्री-गामी, लोभी, चुगल, पापियों के लोकमें जाते हैं। मेरा चर्म तो धर्मात्मा धारण नहीं करते। ताराने मुझे ठीक ही उपदेश दिया था। मैं उसकी बात न मानकर आज कालके गालमें जा पड़ा। हे काकुत्स्थ! यह पृथ्वी आपको स्वामी पाकर, विधर्मी पतिको पाकर शीलवती स्त्रीके समान सन्तोषित नहीं हुई। महाराज दशरथने छिप कर पाप करनेवाले, ओछे, अन्तःकरणपर अधिकार न रखनेवाले, आपके समान पापी पुत्रको उत्पन्न किया! आपने मुझे छिपकर युद्धमें मारा है। जैसे सोए हुए मनुष्यको साँप डँस लेता है और वह मर जाता है। हे राम! मेरे छोटे भाईके हितार्थ जो आपने मुझे मारा है यदि आप अपना अभिप्राय मुझसे पहले ही कह देते, तो मैं एक ही दिनमें आपकी प्यारीको ला देता। आपकी स्त्रीके हरण करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणको आपके सामने जीता ले आता। अगर जानकी समुद्रमें या पातालमें होती तो भी मैं ला देता। जैसे श्वेताम्बरकी श्रुति लाई गई थी। मेरे स्वर्ग जानेपर यह राज्य सुग्रीव पाएगा। यह तो उचित हुआ, परन्तु निरपराधको आपने वध किया, यह अनुचित हुआ। हमारे समान मनुष्यकी मृत्यु होती है। परन्तु छिपकर मारना आपके लिए अनुचित हुआ। आप इसका उत्तर सोचें तो? इसके अनन्तर इतना कहकर तेजस्वी रामको देखकर बालि चुप हो गया। बालि बाण लगनेसे व्याकुल हो रहा था। उसका मुँह कान्तिहीन हो रहा था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥१७॥

अट्ठारहवाँ सर्ग

रामचन्द्रका उस कठोर वचनका उत्तर देना और बालिका उस दुर्वचनोंके लिये क्षमा माँगना

श्रीरामचन्द्रने उस जलहीन मेघके समान बुझी अग्निके समान, बानरराजके धर्मायुक्त हितकारी और विनीत वचन सुनकर बालिसे इसप्रकार कहा—हे वानरराज बालि ! तुम मेरी क्यों निन्दा करते हो ? ज्ञानी आचार्य समस्त वृद्धोंसे बिना पूछे अपने वानरके स्वभावसे मुझे उपदेश देना चाहते हो ? तुमको धर्म, अर्थ काम और लौकिक आचारका ज्ञान नहीं है। यह पृथ्वी पर्वत आदि से युक्त इक्ष्वाकु वंशजोंकी है। अर्थात् उन्हें पशु-पक्षी तथा मनुष्यों पर दया और दण्ड देनेका अधिकार है। नम्रता, विनय, सत्य, शास्त्रानुकूल विक्रम, जिनमें हैं वही देश-काल धर्मात्मा, सत्यवादी और पृथ्वीका पालन करनेवाले राजा भरत हैं। हम तथा और दूसरे-दूसरे राजा लोग राजाके द्वारा धर्मको बढ़ानेके लिये, धार्मिक कृत्योंको बढ़ानेके लिये नियुक्त होकर समस्त पृथ्वीका भ्रमण करते हैं। धर्मवत्सल भरतके शासन-कालमें कौन धर्म-विरुद्ध कामकर सकता है ? हमलोग धर्म-विरुद्ध चलनेवालेका भरतकी आज्ञासे विधिपूर्वक विचार करते हैं। तुमने धर्मका नाश किया, तुम्हारा कर्मभी निन्दाके योग्य है। तुम कामी होकर अपना पुरुषार्थ समझते हो, राज-धर्मके अनुसार नहीं चलते। छोटा भाई, शिष्य और पुत्रके समान है और ज्येष्ठ भाई, माता, पिता और गुरुके समान है। हे वानर ! प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला आत्माही पाप पुण्य जान सकता है। तुम चपल बानर किसीके साथ बात करके धर्मकी बात क्या जान सकते हो ? तुमने मेरी निन्दा अपने केवल क्रोधवशकी और पराई स्त्रीका उपभोग करतेहो यही कारण है जिसके लिये मैंने तुम्हें अपने बाणोंसे मारा है। सुग्रीवके जीतेजी तुमने उसकी स्त्री और अपनी पतोहू रूपाके साथ पाप-कर्म किया है। भाईकी स्त्रीके उपभोगके लिये प्राण-दण्डकी आज्ञा है। मैं क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, मेरा यही कर्तव्य है। मैं तुम्हारे ऐसेका पापाचरण नहीं देख सकता। कन्या, बहिन, और छोटे भाईकी स्त्रीके साथ जो कामका व्यवहार करता है उसका दण्ड प्राणवध है। भरत राजा हैं, और हमलोग उनके आज्ञापालक हैं। तुमने धर्मकी मर्यादा तोड़ी है। तुम क्षमाके योग्य नहीं हो। जैसी मेरी और लक्ष्मणसे मैत्री है, सुग्रीव भी वैसाही है। सुग्रीव प्रतिज्ञाबद्ध

है। मैंने उनके सामने प्रतिज्ञाकी है। मैं प्रतिज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता। तुम्हें अपने कर्मका जैसा दण्ड मिलना चाहिये था, वैसाही मैंने दिया है। यह वेदोंका कहा है, तुम्हें भी मानना चाहिये। धर्मकी दृष्टिसे मैंने तुम्हें दण्ड दिया है। सुग्रीव मेरे मित्र हैं, मित्रका उपकार करनाभी धर्म है। यदि तुम धर्म पालनेवाले होते तो तुम्हेंभी ऐसी बात करनी पड़ती। मनुके चरित्र-रक्षार्थ दो-श्लोकोंको मानकर मैंने ऐसा किया है। मनुष्य पाप करके राजा द्वारा उसका दण्ड भोगकर पुण्यात्माओंके सदृश स्वर्ग जाते हैं। जैसा पाप तुमने किया है वैसा पाप करने पर मान्धाताने एक संन्यासीको कठोर दण्ड दिया था। प्रायश्चितभी करके उनके पापको दूर किया था। बानरराज! तुम अब पश्चाताप न करो। तुम्हारा बध धर्म रक्षार्थ हुआ है। तुम अब एक बात और सुनो जिसके सुननेसे तुम्हारा क्रोध दूर होगा। तुमको छिपकर जो मैंने मारा है मुझे इसके लिये पश्चाताप तथा कोई दुःख नहीं है। मनुष्य पक्षियोंको जाल, पाश तथा अनेक प्रकारसे छिपकरही मारते हैं। परन्तु उसमें कोई दोष नहीं माना जाता है। तुम मुझसे लड़ते थे या नहीं; तुमभी तो बानर यानी पशु हो। इसमें संदेह नहीं कि धन, जीवन और कल्याणके देनेवाले राजाही होते हैं। राजाओंकी हिंसा न करें, उनकी निन्दा न करे उनका तिरस्कार न करे, उनके प्रतिकूल न बोलो, क्योंकि राजा देवता हैं। मनुष्यरूप धरकर पृथ्वीमें विचरते हैं। तुम्हें तो धर्मका ज्ञान नहीं है। तुमतो क्रोधके वश होकर मेरा तिरस्कार करते हो। इस प्रकार के वचन सुनकर बालि बहुत व्याकुल होगया और वह समझ गया कि रामचन्द्र दोषी नहीं हैं। तब प्रेम पूर्वक बालि हाथ जोड़कर बोला—हे प्रभु! आपजो कह रहे हैं, सब ठीक है। मैं आपके आगे बोलने योग्य नहीं हूँ; क्योंकि आप नरश्रेष्ठ हैं और मैं छोटा हूँ। मैंने जो अज्ञानताके कारण आपको दुर्वचन कहे हैं, उसे क्षमा कीजिये। आपतो यथार्थ तत्वोंके ज्ञाता हैं। प्रजाके हितकारी हैं। कार्य कारणके जाननेमें आपकी बुद्धि निर्मल है। मैं धर्म त्यागी हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। इतना कहनेके पश्चात् बालिका गला रुक गया और कष्टसे रामकी ओर देखकर बोला—हे नाथ! मुझे अपने लिये, ताराके लिये, तथा बान्धवोंके लिए चिन्ता नहीं है; मुझे तो चिन्ता अंगदके लिए है, वह बाल्यावस्था से ही मेरे द्वारा

पालित हुआ है। वह मुझे न देखकर अवश्य दुःखित होगा ! वह अभी बालक है, उसमें बुद्धि नहीं है। वह ताराका प्रथम पुत्र है। आप उसकी रक्षा कीजियेगा। सुग्रीव और अंगदके विषयमें समान भाव रखियेगा। क्योंकि आप रक्षक हैं। कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान रखनेवाले हैं। हे राजन् ! जो भाव आपको भरत और लक्ष्मणमें हों वही भाव सुग्रीव और अंगदमें रखियेगा। मेरे दोषकी दोषिणी बेचारी ताराका सुग्रीव तिरस्कार न करे, इसकी व्यवस्था आप कीजियेगा। आपके द्वारा अपने वधकी इच्छासे ताराके रोकने परभी सुग्रीवसे युद्ध करनेके लिये मैं आया। बालि इतना कहकर चुप होगया। रामचन्द्रने उसे नीति द्वारा समझाया। तुम्हें हमें सब विषयोंके लिये चिन्तित न होना चाहिये तथा अपने लिये भी नहीं। तुम्हारे कथनानुसार मैं पहले से ही निश्चय कर चुका हूँ। जो राज्य दण्ड देता है तथा जो दण्ड पाता है, कार्यके सिद्ध होनेसे ही ये दोनों दुःखी नहीं होते। उस कारण दण्ड पानेसे तुम्हारा पाप दूर होगया और तुम धार्मिक गति पाओ। अब तुम मोह शोक तथा हृदयके भयका त्याग करो। ये सब भावी प्रारब्ध हैं। इसे कोई उलट नहीं सकता। हे वानरराज ! अंगद आपके साथ जैसा व्यवहार करता था, वैसाही व्यवहार मेरे तथा सुग्रीवके साथ करेगा। श्रीरामचन्द्रका ऐसा वचन सुनकर बालि उचित वचन बोला—मैंनेजो बातें शरके आदानके कारण कहीं हे प्रभो ! आप इन्द्रके तुल्य हैं। हे रामचन्द्रजी महाराज ! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उनके लिये इस पापोंको क्षमा करें। यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

(तारा और उनके वंशजोंका विलाप)

श्रीरामचन्द्रके वाणोंसे विधा हुआ बालि पृथ्वीमें पड़ा था। रामचन्द्रजीके हेतुक वचनोंका उत्तर पाकर फिर उस बालिने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसका शरीर वृक्षोंके आघातसे कुचला हुआ था। रामजीके वाणसे भिदा था। अतः वह मूर्छित हो गया। रामचन्द्रके वाणसे वानरराज और वीर बालि मारा गया, यह खबर चारों ओर फैल गयी और उसकी स्त्रीने भी यह कठोर वचन ग्रहण किये। तारा अपने भयंकर पतिका वध सुनकर पुत्रके

साथ कन्दरासे निकली। अंगद रक्षार्थं जो महाबली थे वे सब रामक
वाण सहित देखकर भाग गये। ताराने युद्धसे लौटे हुये वानरोंको देखा।
यूथपतिके मारे जाने पर मृगोंकी चालसे भागते हुये रानीके सम्मुख आये
उन वानरोंके समीप आने पर तारा दुःखसे बोली—हे वानरों! जिस राजा
आगे आप लोग चलते थे, उसे छोड़कर क्यों भागे जा रहे हो? यदि अ
भाईने अपने राजा बननेके लिये रामचन्द्रसे उस वीर वानरराजको मरव
डाला है, तो आप लोग इससे क्यों भागे जाते हैं? वालिकी प्रेमिका तार
की बात सुनकर वे सब वानर उससे ये वचन बोले—हे जीवितपुत्रो! लौ
चलो। अपने पुत्र अङ्गदकी रक्षा करो। रामका रूप धरकर यमराज बालिक
लेजा रहा है। श्रीरामचन्द्रके वाणने पत्थरोंको हटाकर वज्रके समान वालिक
गिरा दिया। हे माँ! हमारे वानरराजके मारे जाने पर इन्द्रके समान सभ
सेना हारकर तितर बितर हो गयी। वीरोंके द्वारा नगरकी रक्षा करो। हे
सुमुखि! यद्यपि आपको यह स्थान पसन्द है। पर सुग्रीवके पक्षवाले वान
हमारे किलेके अन्दर प्रवेश करेंगे। जो लोग राज्य चाहते थे और जिनक
हम सबोंने होने नहीं दिया था, अब उन सबसे हमें भय मालूम होता है।
तब तारा अपने पासके वानरोंसे इस प्रकार बोली—हे वानरों! कपिश्रेष्ठ पतिके
स्वर्ग जाने पर अब हमें पुत्र, राज्य और अपनेसे क्यों प्रयोजन है? मैं
उन्हींके चरणोंमें जाऊँगी जिनके वाणसे हमारे पति पृथ्वी पर पड़े हैं।
तारा इतना कह कर दुःखसे व्याकुल होकर छाती हाथोंसे
पीटती हुई, शोक-पीड़ित रोती हुई पतिकी ओर चली। ताराने रुधिरसे
भींगा हुआ दानवोंके हन्ता बालिको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखा।
जो बालि इन्द्रके समान वज्र फेंकता था, जो वायुके समान जोश रखता
था और मेघके समान गर्जन करता था, वही इन्द्रके समान पराक्रम
वानरोंमें श्रेष्ठ वीर रामचन्द्रके वाणसे मारा गया। जिसप्रकार मांसके
लालचसे मोटे ताजे मृगको वाघ मारता है, जैसे गरुड़ सर्पके लिये देवालय
को तोड़-फोड़ डालता है, उसी प्रकार रामने अपने वाणसे बालिके प्राण लि
हैं। तारा धनुष धारण करने वाले रामचन्द्र, लक्ष्मण तथा सुग्रीवको देखते
हुये अपने पतिके पास रणक्षेत्रमें पहुँची और अपने पतिको देखकर मूर्छित

भूमि पर गिर पड़ी। वह फिर संभलकर 'आर्य-पुत्र' कह कर मृत्युपाशमें फँसे पतिको देखकर रोने लगी। ताराको विलाप करते सुन और अंगदको आया हुआ देखकर सुग्रीव दुःखी हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

बीसवाँ सर्ग

विस्तार पूर्वक ताराका विलाप वर्णन

ताराने रोते हुये और आँखोंसे आँसू बहाते हुये अपने पतिका आलिंगन किया। वह रोती हुई इसप्रकार विलाप करने लगी—हे वानर-श्रेष्ठ वीर! युद्धमें घोर पराक्रम करनेवाले! आप आज मुझसे क्यों नहीं बोल रहे हैं? आप इस पृथ्वीसे उठिये और सुन्दर बिछौने पर सोइये। राजा पृथ्वीपर नहीं सोते हैं। हे नाथ! आपने धर्मपूर्वक युद्ध करके अपने लिए किष्किन्धासे भी बढ़कर स्वर्गमें नगर बना लिया है। आज आपने जो गंधियुक्त वनमें हम लोगोंके साथ विहार किया है, उसे क्यों त्याग रहे हैं? हे स्वामिन्! आपकी मृत्युसे मेरा समस्त आनन्द धूलिमें मिल गया है। मेरी आशाएँ व्यर्थ हो गई हैं। आपने मुझे शोक सागर में डुबा दिया है। जिससे मेरा हृदय अत्यन्त कठोर हो गया है और आपको पृथ्वीपर पड़ा देखकर भी नहीं फटता। हे नाथ! आपने छोटे भाईकी स्त्री हरली। छोटे भाईको निकाल दिया। इसीके फलसे आपका यह शरीर भूमिमें लोटता हुआ दिखाई देता है। मैंने आपको हितकारी बात कही अर्थात् युद्ध करनेको रोका। उसे मोहवश आपने न माना और युद्ध करनेके लिये चले आये। यह काल आपके लिये अवश्य ही मृत्युका काल था। दूसरेसे युद्ध करते हुये वालिको मार कर रामचन्द्र पश्चाताप नहीं करते? उन्होंने यह निन्दा योग्य कार्य किया है। परन्तु फिर भी पश्चाताप नहीं करते। आज तक मैंने दुःख नहीं देखा था, कष्ट नहीं सहे, अब मैं अनाथके समान दुःखदाई, वैधव्य के दुःखको किसप्रकार सहन कर सकूँगी? मैंने कुमार अंगदका बहुत लालन-पालन किया है। अब चाचाके क्रोधसे इसकी कैसी अवस्था होगी? हे पुत्र! तुम पिताको खूब देख लो। अब फिर तुम्हें इनके दर्शन नहीं होंगे। हे नाथ! आप पुत्रको आशीर्वाद दीजिये और मेरे लिये संदेश दीजिये। आप तो

प्रवासमें जा रहे हैं ? रामचन्द्रने जो प्रतिज्ञा सुग्रीवसे की थी वह उन्होंने आपको मार कर अपना ऋण चुका दिया । रामचन्द्रने यह बड़ा काम किया है । हे सुग्रीव ! अब तुम्हारा भाई तो मारा गया, स्वस्थ्य होकर राज्य भोग करो । राज्य तथा स्त्री अब तुम्हें मिल ही जायेगी । तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो गई । हे नाथ ! आप अपनी इस प्रियासे क्यों नहीं बोलते हैं ? हे वानरेश्वर ! आप सामने बैठी हुई मुझ दीनाको देखिये । तब इसप्रकार ताराके विलापको सुन अंगदको ले वहाँ सबके सब विलाप करने लगे । तारा बोली—हे नाथ ! आपतो वीरोंका हनन करने वाले थे । अपने पुत्र अंगद को छोड़कर इतना बड़ा प्रवास-कार्य किया ? पर ऐसे गुणवान् पुत्रको छोड़कर आपको जाना उचित नहीं है । हे नाथ ! मेर द्वारा किये गए अपराधोंके कारण, यदि आपने इतना बड़ा प्रवास किया हो, तो मुझे क्षमा करें । मैं अपना मस्तक आपके पैरोंपर डालती हूँ। ताराने वालिके निकट विलाप करते हुये वानरियां के साथ अनशन करके प्राण त्यागनेका निश्चय किया ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ।२०॥

इक्कीसवाँ सर्ग

वीर हनुमान्का ताराको समझाना

ताराको इस तरह विलाप करते देखकर श्री हनुमानजी उसे धीरे-धीरे इसप्रकार समझाने लगे । हे वानरेश्वरी ! मनुष्य अपने अच्छे तथा बुरे कर्मों का फल सुख तथा दुःख दूसरे लोकमें जाकर भोगता है । पाप के कामोंसे बढ़ी हुई तुम क्या दूसरोंके लिये शोक करोगी ? तुम तो स्वयं दुःखीहो, फिर किसी दुःखी पर तुम क्या दया करोगी ? तुम्हारा पुत्र जीवित है, तुम्हें उसका पालन करना चाहिये । तुम्हें उसीका विचार करना चाहिये । प्राणीका जीवन-मरण अनिश्चित है । तुम्हें शुभकर्म करना चाहिये । जो वीर हजारों वानरों-को अधीनमें रखते थे वही अपने समयको पूरा कर चुके । अपने किये हुये पुण्योंका फल भोगने गये हैं । नीतिके अनुसार जिसने राज्य-पालन किया है वह धर्मात्माओंके लोकमें गया है । जिसके लिये, तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये । यह श्रेष्ठ वानर अंगद तुम्हारे अधीन है । यह राज्य भी तुम्हारे आधीन है । तुम अनाथ नहीं हो । हे महारानी ! आप अपने शोक और

तापको धीरे धीरे कम कीजिये। अंगद पृथ्वीका पालन करे। जो राजा ालिके लिये इस समय उचित कार्य हो वही करना चाहिये। अर्थात् ानरराजका अंतिम संस्कार कीजिये। अंगदका अभिषेक कीजिये। अब ापके पुत्र राजगद्दीपर बैठेंगे तो आपको उन्हें देखकर शान्ति मिलेगी। ारा इतनी बातें सुनकर हनुमान्से इसप्रकार बोली—अंगदके समान सौ ुत्र हों तो भी मेरे लिये पतिका आलिंगन ही श्रेष्ठ है। मैं वानरराजका ाथ नहीं हो सकती तथा अङ्गद भी नहीं। इसके चाचा सब कामोंमें समर्थ ं और वे ही इसके योग्य भी हैं। हे वानरश्रेष्ठ हनुमान्! ऐसा अंगदके िषयमें न सोचना चाहिये कि पिता ही पुत्रका बन्धु है, माता नहीं। इस ोकमें मेरे लिए या परलोकमें जिस आसनपर यह वीर सोया है वही मेरे िये योग्य है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकांडका इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२१॥

बाईसवाँ सर्ग

वानरराज बालिका अंगद तथा सुग्रीवके प्रति कुछ कह कर शरीर-त्याग-वर्णन

श्रीरामचन्द्रके बाणसे बालि शिथिल हो गया था। वह धीरे-धीरे ्वांस ले रहा था और चारों ओर देख रहा था। उसने प्रथम अपने भाई ुग्रीवको देखकर कहा—हे सुग्रीव! मैंने जो भावीवश दुर्बुद्धिसे तुम्हारे ्रति व्यवहार किया है, तुम मुझे दोषी न समझना। हे भाई, हमारे और ुम्हारे एक साथ भ्रातृ-प्रेम और राज्य-सुख नहीं था, इस कारण ऐसी ्टना हुई। मैं आज तो यमपुर जा रहा हूँ और तुम आज ही वानरोंका ाज्य ग्रहण करो। मैं आज जीवन, संपति और आनन्दित यशको त्याग ्रता हूँ। हे वीर! मैं जो वचन इस समय कहूँगा तुम अवश्यही करना। ुखकी निद्रामें सोया हुआ, सुखसे पला हुआ, सुख पाने योग्य बालक भूमिमें ड़ा रो रहा है। इसको तुम पुत्रके समान समझना, इसकी इच्छा कभी ाली न जाय। तुम मेरे समान इसके दादा, भाई, पिता, रक्षक और भयके ्मय अभय देने वाले बनो। यह बालक तुम्हारे समान पराक्रमी है। युद्धके ्मय तुम्हारे आगे रहेगा। यह बालक अंगद मेरे समान युद्धमें काम करेगा, ्सकी माता यह तारा जो सुषेणकी कन्या है यह सूक्ष्म विषयोंके निर्णय

करने, उत्पात सूचक चिन्होंको जाननेमें निपुण है। जिस कार्यके लिये यह अच्छा कहेगी वह अवश्य ही अच्छा होगा। इसकी सम्मति कभी विपरीत नहीं होती। श्रीरामचन्द्रके कार्योंको भी तुम निःशंक होकर करना। नहीं करोगे तो पाप होगा और रामचन्द्र तुम्हें भी मार डालेंगे। हे सुग्रीव! यह पिता इन्द्र की दी हुई माला धारण करो, इसमें विजय लक्ष्मी वर्तमान है। मेरे मरने पर इसका महत्व नष्ट हो जायेगा, इसलिये यह तुम पहले ही लेलो। बालिने सुग्रीवसे ये सब बातें भ्रातृ-प्रेमसे कही। उसकी खुशी जाती रही। वह मलिन हो गया। बालिके स्नेहपूर्ण वचनोंको सुनकर सुग्रीवका वैर शान्त हो गया। उसने भाईकी आज्ञासे उस सोनेकी मालाको ले लिया और उचित कार्य करने लगा। इसके बाद बालिने खड़े अंगदसे कहा—हे पुत्र! देश-कालको समझो। समय पर सुख-दुःख सहो और सुग्रीवके अधीन रहो। जैसे मैंने तुम्हारा लालन-पालन किया है उस प्रकार रहनेसे सुग्रीव तुम्हारा आदर न करेगा। सुग्रीवके शत्रुओंसे मित्रता न करो। अपने शत्रुओंसे भी मित्रता न करो। जितेन्द्रिय बनो। बहुत प्रेम तथा बिलकुलका प्रेमका अभाव न करो क्योंकि इन दोनोंमें दोष है। इतना कहकर बालिने अपने मुँह और आँख को खोल दिये और उसके प्राण दुःखी शरीरको छोड़ निकल गये। बालिके मर जाने पर सभी बानर रोने लगे। वह तो स्वर्ग चले गये, पर किष्किन्धा सूना कर गये। बानरोंके समूह नाना प्रकारसे बोल-बोल कर रो रहे थे। तारा बोली—हाय! वह किष्किन्धाकी शोभा अपने साथ लेते गये। उन्होंने गंधर्वके साथ भीषण युद्ध किया। वह गोमल नामक गंधर्वके साथ १५ वर्ष तक युद्ध करते रहे। वह युद्ध कभी समाप्त न होता था। १६ वर्षमें उन्होंने उस गंधर्व को मार कर हम सबोंको अभय किया था। वह वीर कैसे मारे गये? दुखमें पड़ी हुई तारा पतिका मुँह देखकर उनसे आलिंगन करके तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२२॥

तेईसवाँ सर्ग

ताराका पुनः विलाप वर्णन

ताराने आँखसे आँसू बहाते हुए इस प्रकार कहा—हे पतिदेव! आ

मेरी बात न मानकर इस कड़ी भूमिमें सो रहे हो। यह पृथ्वी तुम्हें मुझसे अधिक प्रिय मालूम होती है। क्योंकि तुम मुझे छोड़कर इसपर सो रहे हो और तुम मुझसे बोलते भी नहीं हो। हे वीर! भाग्यने सुग्रीवका साथ दिया अर्थात् प्रभु श्रीरामचन्द्र उसके पक्षमें हुए। अतएव सुग्रीव ही इस समय पराक्रमी हुए। हे मेरे जीवनाधार! श्रेष्ठ भालु और वानरोंको दुःखी देख अंगद तथा मेरे इस विलापको सुनकरभी तुम क्यों नहीं उठते हो? यह वीरोंके सोनेकी शैया है; क्या इसलिये तुम इसपर सोए हो? हे मेरे प्रिय! हे दुःखी अंगदके पिता! जिस शय्यापर तुमने पहले अनेक शत्रुओंको सुलाया है आज उस शय्या पर स्वयं तुम सो रहे हो। मुझे अकेली छोड़कर तुम कहाँ चले गए? मेरा सत्कार नष्ट हो गया और मेरा सुख नष्ट हो गया। मैं शोक-सागरमें डूब रही हूँ। मेरा हृदय पत्थरके समान कठोर है, जो तुम्हें ऐसी दशामें देखकर टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता। आज वह संसार छोड़कर चला गया जो शत्रुओं पर प्रहार करता था। स्त्री भले ही पुत्रवती हो भले ही सम्पत्तिसे पूर्ण हो, परन्तु पति-हीन विधवा कहलाती है। तुम अपने खूनकी शय्या पर सोए हो। तुम्हारा शरीर धूलसे मिला हुआ है। मैं अपनी भुजासे तुम्हारा आलिंगन नहीं कर सकती। इस भयानक वैरमें सुग्रीव ही कृत-कृत्य हुआ। जिसके भयको रामके छोड़े एक बाणने दूर कर दिया, मैं तुम्हारे हृदयमें लगे बाणके कारण गात्रस्पर्शसे रोकी जाती हूँ। मैं कठोर हृदयसे तुम्हारी इस शवको देख रही हूँ पर गात्रस्पर्श नहीं कर सकती। उस समय नील नामक वानरने बालिके शरीरसे वह बाण निकाल लिया। निकालने पर उस बाणकी वैसी ही शोभा हुई, जैसी कि सूर्य छिपे गुफासे निकलते हैं। बाणके निकलनेसे और भी वेगसे रुधिरकी धारा निकलने लगी। जैसे पर्वतसे गेरुकी धारा निकलती हो। तब तारा रक्त तथा धूलको पोंछती हुई अपने आँसूसे पतिको तिलक करने लगी और पुत्रकी ओर देखकर बोली—पुत्र! पिताका इस भयानक अवस्थाकी मूर्ति देखो। पाप रूपी वैरका आज़ अन्त हो गया। देखो, आज प्रातःकालीन सूर्यके समान शरीर यमराजके यहाँ चला गया। हे पुत्र! अपने पिताको अंतिम प्रणाम करो। इस प्रकारके अपनी माँ के वचन सुनकर अंगदने पिताके चरण

पकड़ा और बोला—मैं अङ्गद हूँ, ऐसा कह कर प्रणाम किया। वह बोला—जब कभी अंगद आपको पहले प्रणाम किया करता था, तब आर्य-पुत्र ! दीर्घायु हो ऐसा कहते थे, आज वैसा क्यों नहीं कहते ? तुमने संग्रामयज्ञ किया। उसमें रामके अस्त्र रूपी जलसे मुझे छोड़ अकेले स्नान क्यों किया ? इन्द्रने युद्धमें प्रसन्न होकर तुम्हें जो सोनेकी माला दी थी, उसे मैं नहीं देख रहा हूँ। मरने पर भी तुम्हारा त्याग राजलक्ष्मी नहीं करती। तुमने मेरी माताका हितकारी वचन नहीं माना और माँ भी तुम्हें रोक न सकी। तुम्हारे मारे जानेसे मैं अंगद भी मारा गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका तेईसवाँ सर्ग समाप्त॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका विलाप करना, रामचन्द्रसे ताराकी प्रार्थना करना और रामचन्द्रका ताराको समझाना

ताराको वेगके साथ रोते हुए आते देखकर सुग्रीव भाईके वधसे दुःखित हुआ। वह रोता हुआ सुग्रीव ताराको अत्यन्त दुःखी देखकर अपने अनुचरोंके साथ धीरे-धीरे रामचन्द्रके निकट गया। श्रीरामचन्द्र धनुष-बाण धारण किए उस समय उन सबोंका विलाप सुनकर उदास होकर बैठे थे। उनसे सुग्रीव बोला—आपने जैसी मेरे साथ प्रतिज्ञा की थी, वैसेही पूरी कर दी। अर्थात् बालिको मारा और मुझे स्त्रीके साथ राज्य मिला। परन्तु हे रामचन्द्र ! आज इस निन्दा योग्य जीवनसे मेरा मन हट गया है। मेरा मन रानीके रोने से, प्रजाके विलापसे और अङ्गदके जीवन संशय उपस्थित होनेसे अब राज्यमें नहीं लगता। क्रोधके कारण पहले मैं इनका बध चाहता था। पर अब इनके मरनेपर मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है। आज मुझे वहीं पर्वतपर निवास करना अच्छा मालूम होता है। अब मुझे इनके मरनेसे शान्ति नहीं मिलती। इनका मेरे प्रति कैसा विचार था। जो इन्होंने युद्धके समय मुझसे वापस होनेके लिए कहा। और मैंने इनको आपके कठिन बाणोंसे आपके द्वारा मरवाया। यह मेरा कैसा नीच बुद्धिका काम हुआ। गौरवको कलङ्क लगनेके भयसे यह मुझे मारना नहीं चाहते थे। मैंने नीच बुद्धिके कारण इन्हें मरवाया। मैं पापी हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं प्राणी-घातक

हुआ। यह पाप मेरे किस प्रकार दूर होगा ? जब इसका प्रहार मेरे ऊपर वृक्षोंके डालसे हुआ था, तो मैं अत्यन्त दुःखी होकर आपकी ओर दृष्टिपात किए था। उस समय मेरे श्रेष्ठ भाईने मुझे समझाया था कि फिर तुम कभी भी युद्धके लिए न बुलाना। बालिने मेरे साथ उस समय भ्रातृ-प्रेम दिखलाया। और अपने धर्मकी रक्षा की थी। मैंने स्वार्थी बनकर राज्य चाहनेकी इच्छा से इनका प्राण हरा। यह पाप मेरे लिए उतना ही भयङ्कर है, जितना कि त्वष्टाके वधसे इन्द्रके लिए हुआ था। देवलोकके राजा इन्द्रके इस पापके भागी पृथ्वी, जल और स्त्रियाँ हुई थीं। लेकिन मेरे किए हुए इस पापके कौन भागी होंगे ? हे रामचन्द्र! मेरे राजा होनेपर कौन प्रजा सम्मान करेगा? मैंने सम्मान योग्य काम किया ही नहीं। धर्म-रहित कुल नाशवाला काम किया है। अब मुझे राजा होनेकी इच्छा नहीं है। अर्थात् मुझे राज्यकी आवश्यकता नहीं है। मेरा यह निन्दा योग्य काम लघुजनोंके समान हुआ है। यह महापाप मुझे अत्यन्त सता रहा है। हे नरेन्द्र ! ऐसे पापसे मेरे हृदयसे सज्जनता जा रही है। जैसे सोनेको आगमें तपानेसे उसकी मैल नष्ट हो जाती है। हे नरेन्द्र ! मेरे ही कारण बालिके मरनेके शोकमें डूबा हुआ अङ्गद आधे ही प्राणका समझने योग्य है। क्योंकि यह बालक है। इसका हृदय कोमल है। यह इस शोकको नहीं सह सकता है। पुत्र फिर मिल सकते हैं, परन्तु अङ्गदके समान पुत्र न मिलेंगे। मुझे सन्देह होता है कि संभवतः पिताके शोकसे अङ्गद न जीए। यदि यह न जीएगा तो इसकी माता रानी भी नहीं जी सकती है। यह तो ठीक ही है। अङ्गद यदि जीता रहेगा तो इसकी माता इसके पालनके लिए जी भी सकती है। इस प्रकार मैंने तो कुलका नाश किया न ? हे मित्र! अब मैं इस कठिन दुःखको सहन न करनेके लिए अग्निका साथ दूँगा अर्थात् मैं भी प्राण त्याग दूँगा। मेरे ये वीर वानर लोग आपकी स्त्री सीताका पता भ्रमण करके लगावेंगे। हे दशरथ-नन्दन ! आपके सारे कार्य सिद्ध होंगे। मुझे मरनेकी आज्ञा दें। मैं कुलका नाशक हूँ। मैं अपराधी हूँ। जीनेके योग्य नहीं हूँ। इस कारण मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। श्रीरामचन्द्र इस प्रकार मृत बालिके भाई सुग्रीवका वचन सुन कर दुःखित हुए अर्थात् उस बालिके लिए आप भी शोक करने लगे।

संसारके रक्षक श्रीरामचन्द्र विलाप करती हुई तथा कान्तिहीन ताराको बार-बार देखकर शोकित हुए। अपने मृत पतिकी छातीपर सिसकती हुई तारा पड़ी थी। प्रधान वानरोंने तब उसे वहाँसे हटाया। जिस समय वह हटाई जा रही थी, तो सिसकती हुई उसने श्रीरामचन्द्रकी ओर देखा। अपरिचित व्यक्तिको देखकर उसने अपने ज्ञानसे अनुमान किया कि यही रामचन्द्र हैं। उस समय ताराको देहकी सुधि न थी। वह चेतनाशून्य हो रही थी। वह चल न सकती थी। शक्तिहीन हो गई थी। तो भी किसीभाँति सूर्यके समान शोभित होनेवाले रामचन्द्रके समीप पहुँची और इस भाँति बोली—हे नरेन्द्र! आपको कोई संसारमें नहीं जीत सकता है। आप धर्मको पालनेवाले हैं। आपका गुण कभी भी छिपा नहीं रहता। आप निपुण हैं। आप उस प्रकार क्षमा करनेवाले हैं, जिस प्रकार पृथ्वी क्षमा करती है। आपके नेत्र कितने सुन्दर हैं। मानों रंगसे रँग लिए हों। आपके करमें सोनेसे मढ़े हुए धनुष और वेगसे चलनेवाले बाण अजीब शोभा दे रहे हैं। आपका शरीर सुडौल है। आप पराक्रमी हैं। आप बलवानोंमें बली हैं। आप न्यायी हैं। आप धर्म-वत्सल हैं। दुःखियोंके दुःख हरनेवाले हैं। आप मेरे दुःखको हर लीजिए। अर्थात् मुझे भी उसी बाणसे मारिए, जिस बाणसे मेरे प्राणनाथको मारा है। मेरे बिना वे प्रसन्न न रहेंगे। मैं भी मरकर उन्हींके पास जाना चाहती हूँ। वह स्वर्गमें सब अप्सराओंको देखेंगे। परन्तु मुझे न पाकर दुःखी होंगे। ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें उन्हें दुःख न हो, अर्थात् मुझे भी उनके पास पहुँचा दीजिए। वानर-राज बालि उस प्रकार मुझे वहाँ न पाकर दुःखी होगा। जिसप्रकार आप ऋष्यमूक पर्वतपर सीताके लिए दुःखी होते थे। युवा पुरुषको अपनी प्रिय प्रेमिकाके बिना कितना दुःख होता है। यह तो आप स्वयं अनुभव कर चुके हैं। इस प्रकार उनका दुःख जानकर मुझे अपने उस बाणके द्वारा उनके निकट पहुँचायें, जिस बाणसे उनको आपने वहाँ भेजे हैं। यदि आपके हृदयके अन्दर ऐसा ख्याल हो कि स्त्रीको वध करनेसे स्त्री-वधका पाप लगेगा, तो मुझे अथवा मेरी आत्माको बालिकी आत्मा समझकर उसी चमकीले बाणसे बेध डालिए, जिसको कि नील वानरने मेरे मृत पतिके हृदयसे निकाला है। ऐसा करनेसे आपको स्त्री-वध

पाप नहीं लगेगा। संसारमें स्त्रीदानसे बढ़कर और कोई दान नहीं है। आप तो धर्म-वत्सल कहलाते हो। यह कैसा धर्म है? किसीके दुःखको हरना? आप धर्म समझकर मुझे बालिको प्रदान कीजिए। आपको पाप न होगा। दुःखिनी हूँ। मेरा वध करके मेरा दुःख दूर कीजिए। संसार पालक, सोने-माला पहनने वाला और हाथीके समान चलने वाला वीर बालिके बिना किस प्रकार जीसकती हूँ। अर्थात् मैं प्राण धारण करनेमें असमर्थ हूँ। रामचन्द्रजीने ताराके ऐसे दीन बचन सुनकर और दुःखित होकर उनके तका उपदेश इस भाँति दिया। हे वीर अर्धाङ्गिनी! तुम अपनी मृत्युकी च्छा न करो। संसारमें जितने प्राणी हैं, सभी ब्रह्माने बनाए हैं। उनका ख और दुःख उनके साथ दिया है। अपनी इच्छानुसार कोई प्राणी कुछ हीं कर सकता। क्योंकि सभी उनके अधीन हैं। तुम धैर्य्य धारण करो। जितनी प्रसन्न जीवित बालिके समक्ष रहती थी, उतना ही फिर भी सन्न रहोगी। तुम्हारा पुत्र युवराज होगा। विधाताका तुम लोगोंके प्रति सा ही विधान है। जिस स्त्रीका स्वामी वीर रहा हो, उस स्त्रीको रोना न हिए। यदि उसकी स्त्री ऐसा करती है, तो उस वीरको वीर नहीं कहा सकता। इतना सुनकर वीर-पत्नि कहलानेके विचारसे ताराने विलाप रना छोड़ दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२

पच्चीसवाँ सर्ग

सुग्रीव तारा और अंगद आदिको रामचन्द्रका समझाना और बालिका मरना, क्रियाकर्म करना

श्रीरामचन्द्र अपने मधुर वचनसे ताराको शान्ति प्रदानकर और पुनः ीव तारा और अंगदको अपने प्रिय वचनोंसे समझाते हुए इस प्रकार े—हे सुग्रीव! हे तारा! हे अंगद! इस मृत व्यक्तिके हितार्थ शोक वा करना उचित नहीं है। अब तुम लोगोंको सांसारिक कर्त्तव्य करना हिये, जिससे इस मृत शरीरको शान्ति मिले। अब रोनेसे क्या हो ता है? यह रोना व्यर्थ है। रोनेसे कुछ लाभ नहीं। क्या वह अब लौटकर आवेगा? यह सब मायाका जाल है। इस मायाके जालको त्याग दो।

किसीको विधाताने स्वाधीनता नहीं दी। कोई किसीको काममें नहीं लग सकता है। मनुष्य स्वभावके आधीन है और स्वभाव कालके वशमें है भगवान अपनी बनाई व्यवस्थाके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता और का नष्ट नहीं होता। सब काम स्वभावके अनुसार होते हैं। उसके विपरीत कु नहीं होता। कालका न तो कोई शत्रु है और न मित्र है। कालके विरुद्ध को पराक्रम किसी कामके योग्य नहीं होता है। ईश्वर प्राणीके आधीन नहीं है कालके अनुसार धर्म अर्थ और काम होते हैं। अपने किये कर्मोंके उचि साधर्म करनेके कारण ही वानरराज बालि स्वर्गको गया। उसका स्वभा वही था। हे अङ्गद ! पिता बालिने अपने धर्मके कारण स्वर्गको आधीन लिया, अर्थात् प्राण त्यागकर स्वर्गको प्राप्त किया है। वह उसकी इच्छ निवृति थी। अब वैसे धर्मात्माके लिये शोक न करना चाहिये। इन अनन्तर श्रीलक्ष्मणजी वेसुध सुग्रीवसे इसप्रकार मधुर वचनमें बोले— सुग्रीव ! तारा, अङ्गद आदि बानरोंको साथ लेकर अपने भाईका अन्ति संस्कार कीजिये। बालिके दाहकर्म करनेके लिए चन्दन आदि वृक्षों सूखी लकड़ी लानेको अनुचरोंको आज्ञा दीजिए। बालक अङ्गद जो पिता मृत्युके शोक-सागरमें डूबा है, उसे समझाइए। इस नगरके अधिकारी आ ही हुए हैं। आप बुद्धिहीन न बनिये। अज्ञान मत कीजिए। क्या आ अपने ज्ञानको भूल गए ? इस समय आपका ऐसा ही करना उचित है अपनेको चैतन्य कीजिए। वस्त्र, फूल, तेल आदि जिन-जिन वस्तुओं आवश्यकता हो अङ्गदसे लानेके लिए कहिए। तार नामक बान पालकी लानेकी आज्ञा दीजिए। जितना शीघ्र हो सके, उतना यह सब कार्य कीजिए; क्योंकि मृतको अधिक समय तक रखना उचित न ऐसा बेदोंसे कहा है और शरीर प्राणसे रहित होनेसे उसमें दुर्ग आजाती है। इसलिए शीघ्रता करना ही अच्छा है। बलवान् बानरों मृतकको मशानमें ले जानेके लिए तैयार होनेको कहिए। सुग्रीवको प्रकार आज्ञा देकर अपने भाई श्रीरामचन्द्रके निकट आकर श्रीलक्ष्मणजी गए। श्रीरामचन्द्रके भाई लक्ष्मणजीका बचन सुनकर तार बानर कुछ पाल लाने योग्य बानरोंको साथ लेकर पालकी लाने चला गया। कुछही दे

पालकी लाकर लौट आया। रथके समान वह पालकी राजाके बैठने योग्य बिछावनोंसे सुसज्जित थी। उस पालकीपर चित्रकारोंने अपने चित्रोंद्वारा अपनी चतुराई दिखलाई थी। बढ़इयोंने उसके बनानेमें उनके पास जितनी चतुराई थी खर्च कर दी। मजबूतीभी उतनीही थी जितनी उसमें सुन्दरता थी। अर्थात् वह बहुत ही सुन्दर थी। इसके अनन्तर उसको नाना प्रकारके फूलोंसे सजाया गया। कमलके फूलोंकी माला उस पालकीके चारों ओर लटकाई गयी जो अत्यन्त शोभा बढ़ाती थी। पश्चात् परम पूज्य श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि बालिके शवको शीघ्र उठवाकर संस्कारके लिए भेजवाओ। पुनः श्रीलक्ष्मणजी सुग्रीवसे बोले—हे सुग्रीव! शीघ्र शवको ले जाइए और अन्तिम संस्कार कीजिए। इस प्रकार सुग्रीवने अंगदके हाथों हाथ उठाकर बालिकी शवको पालकीपर रखते हुए विलाप किया। अनेक वस्तुओंसे बालि का मृत शरीर शोभित किया गया। तब सुग्रीव रामचन्द्रजीकी आज्ञाको ग्रहणकर नदीके किनारेपर रत्न वस्त्र लुटाते हुए अपने परिवारके साथ चले। नदीके किनारे पर धूमधामसे वे लोग पहुँचे और राजाओंके योग्य चिता बनाकर अंगद आदिके सहित सुग्रीवने बालिका अन्तिम संस्कार करना आरम्भ किया। जातिके बानर तथा बानरी आदि बालिके साथ रोते हुए चल रहे थे। वे हा वीर! कहकर चिल्लाते थे। जिस समय वे लोग रोते हुए आ रहे थे; उस समय पशु-पक्षी कान्तिहीन मालूम होरहे थे। वे सबके सब दुःखी थे। ताराने नदीके किनारे अपने पतिके शवको गोदमें लेकर अधीर होकर इस तरह विलाप करना आरम्भ किया—हे मेरे प्रिय! हा! बानरराज! हाय नाथ! मेरी ओर क्यों नहीं देखते? हे प्राणोंके आधार! आपके प्राण इस शरीरसे निकल जाने परभी आपका मुख कान्तियुक्त मालूम हो रहा है। जिस प्रकार सूर्यके अस्त होते समय शोभा होती है। हे नाथ! काल रामका रूप धरकर आपको ले गया है और मुझे विधवा बना गया है। ये बानरियाँ जो कभी न चलती थीं, सो इतनी दूर चलकर आई हैं। ये सब आपको कितनी प्यारी थीं। इन सबोंकी ओर इस समय क्यों नहीं देखते? आज अपने भाई सुग्रीवको क्रोधके वचनोंसे क्यों नहीं टालते? अपने नेत्रको खोलिये और इन तार आदि बानरों को देखिये। ये किस प्रकार रो रहे हैं। हे प्यारे! पहले जिस भाँति इन्हें

आज्ञा देते थे उसी प्रकार इनको आज्ञा क्यों नहीं देते ? आइए, मैं और आप इस बनमें क्रीड़ा करें। तब बानरियोंने इस प्रकार रोती हुई ताराको उठाया। अङ्गद पिताको लम्बी यात्राके लिए प्रस्थित जानकर अत्यन्त बेचैन हुआ। मानों मछलियोंको जल नहीं मिलता। वह विधिपूर्वक अपने पिता बालिका संस्कार कर प्रेतको जल देनेके लिए नदीके दूसरे किनारेपर गए। वानरोंके समेत अङ्गद और तारा के आगे चलकर सुग्रीव तर्पण करने लगे। इसके अनन्तर सुग्रीव अपने भाई बालिका जो श्रीरामचन्द्रके बाणसे मारे गए थे जलाकर अपने परम मित्रके पास आया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका राज्याभिषेक

सुग्रीवने अपने सब वानरोंके साथ भींगे कपड़े पहने हुए, श्रीरामचन्द्रके समीप हाथ जोड़े हुए, ऋषि जिस प्रकार ब्रह्माके सम्मुख खड़े होते हैं, खड़े हो गए। इनके अनन्तर पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जी अधिक स्नेह और विनयसे बोले—हे परम पिता श्रीरामचन्द्र ! आपने बड़े-बड़े भुजावाले, नुकीले दाँतवाले तथा प्राचीन युगसे चलते हुए राज्यके अधिकारी बलशाली बालिको मार कर अपनी कृपासे यह राज महाराज सुग्रीवको दिया है। ये आपकी आज्ञानुसार अपने मित्र आदिके सब काम करेंगे। अब ये स्वच्छ होकर सुगन्धित औषधियोंसे विधिपूर्वक स्नान करेंगे। अनन्तर माला, सुन्दर रत्न तथा वस्तुओंसे आपकी पूजा करेंगे। आप सुग्रीवका राज्याभिषेक कर वानरोंको प्रसन्न करें। आप कृपाकर उस सुन्दर गुहामें चलिए। तब शत्रुको नाश करने वाले श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌के ऐसे वचन सुनकर इस प्रकार बोले—हे पवनपुत्र ! मैं पिताके आज्ञानुसार १४ वर्षों तक ग्राम या नगरमें नहीं वास करूँगा। श्रेष्ठ वानरोंके साथ सुग्रीव उस गुफामें प्रवेश करें और तुम लोग इनका अभिषेक करो। हनुमान्‌से ऐसा कहनेके पश्चात् राम सुग्रीवकी ओर दृष्टिपातकर इस प्रकार बोले—हे सुग्रीव ! तुम सांसारिक व्यवहार जानते हो। गुणवान् अङ्गद बलवान् है। यह तुम्हारे पराक्रमी भाई बालिका प्रथम पुत्र है। यह भी पराक्रमी है। यह उच्च विचारका है। यह युवराजके योग्य

है। आप इसे युवराज पदपर अभिषेक कीजिए। श्रावणका महीना है, वर्षा होनेका समय है, विलम्ब न कीजिए। आप घर जाइए। राज्याभिषेक कराकर वानरोंको प्रसन्न कीजिए। कार्तिकका महीना आरम्भ होनेपर रावण-वधके लिए उपाय और सीताका पता लगाइए। मैं भाई लक्ष्मणके साथ इस पर्वतपर जाता हूँ। वहीं निवास करूँगा। इसमें वायु भी प्रवेश करती है। जल आदि भी काफी है। श्रीरामचन्द्रकी आज्ञा पाकर वानरराज सुग्रीव बालिसे पायी हुई किष्किन्धा नगरीमें पहुँचे। वानरोंके झुण्ड उन्हें घेरकर खड़े हो गए और प्रजाके सहित वे सब वानर भूमिमें सिर रखकर उनको प्रणाम करने लगे। सुग्रीवने नीतिके अनुसार प्रजाओंसे कुशल पूछी। सुग्रीवके महलमें प्रवेश करनेपर मित्र लोग अभिषेक करने लगे। मानों इन्द्र देवताका अभिषेक किया जा रहा हो। सुवर्णयुक्त मुकुट उनको पहनाया गया। सुवर्णके मूठसे युक्त दो उजले चँवर, रंग-विरंगे वस्त्र, नाना प्रकारके फूल, कमलके फूलोंकी मालाएँ, चन्दन और अनेक प्रकारकी सुगन्धियाँ, वनस्पतियाँ, बाघ-छाला, सुन्दर जूते, गोरोचन, शहद, दही, घी आदि वस्तुएँ लाई गईं। सुन्दर-सुन्दर कुछ कन्याएँ आईं। वानर-राज सुग्रीवके अभिषेकपर वस्त्र तथा भोजन आदिसे ब्राह्मणों आदिको प्रसन्न किया गया। मन्त्र द्वारा लोग हवन करने लगे। आसन पर बैठे सुग्रीव वेदीमें हवन करने लगे। सुग्रीव विधपूर्वक रमणीय कोठेपर सोनेके पायेवाले आसनपर जो फूलों और सुन्दर बिछावनसे शोभित हो रहा था, पूर्वकी ओर मुँह करके बैठाए गए। सब तीर्थ-स्थानों तथा सब नदियोंके जल सुवर्णके घड़ोंमें भरे गए और शास्त्रके कहनेके अनुसार नल, नील, हनुमान्, जाम्बवन्त आदि वानर उस सुगन्धित जलसे वानरेन्द्र सुग्रीवका अभिषेक करने लगे। मानों आठ वसु इन्द्रका राज्याभिषेक कर रहे हों। सुग्रीवके अभिषेक होनेपर प्रजागण तथा वीर बली वानरों और प्रधान-प्रधान वानरोंने अपने किलकारोंसे नगरको प्रसन्न कर दिया। वानर-राज सुग्रीव राज्य-सिंहासनपर इस प्रकार शोभित होने लगे मानों इन्द्र ही किष्किन्धाके सिंहासनपर बैठे हुए अपनी शोभाको फैला रहे हों। मन्त्रोंको पढ़कर ब्राह्मण लोग अपनी-अपनी चतुराई दिखलाने लगे। सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रके आज्ञानुसार अपने बड़े भाईके परम श्रेष्ठ पुत्र गुणवान् वीर बली

अङ्गदको अपने हृदयसे आलिङ्गन कर युवराज पदपर नियुक्त किया। अङ्गद का युवराज पदपर अभिषेक होनेपर बालि-पक्षवाले वानर जो सुग्रीव तथा उनके अनुचरोंसे डरते थे, वे लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी प्रसन्नता "साधु ! साधु !" अथवा "वाह ! वाह !" करके दिखाने लगे। बालिकी प्यारी स्त्री, अङ्गदकी माँ और सुग्रीवकी भाभी तारा अङ्गदको युवराज पदपर देखकर वह सारे दुःख ऐसेही भूल गई जिसप्रकार गङ्गा नदी गन्दी तथा सुगंधित वस्तुएँ फेंकनेसे वह सबको सहकर क्षमा करती है और वह सब वस्तु बह कर कहाँसे कहाँ चली जाती है। इसके पश्चात् वानरोंने अपनी वानरियोंके साथ तथा बालिके मन्त्रियोंने अनेकों वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्र महाराज जो संसार-पालक, सब कर्त्ता-धर्त्ता हैं, उनकी प्रशंसा की और सुग्रीवकी भी हृदय से प्रशंसा की। तथा आशीर्वाद देने योग्य वानर आशीर्वाद देने लगे। उस समय किष्किन्धा नगरी अत्यन्त शोभायमान हो रही थी। हर जगह पताका आदि तथा मनुष्योंकी प्रसन्नतासे किष्किन्धाकी शोभा बढ़ गई थी। वानरेन्द्र सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रके निकट आकर प्रणाम कर सब बातें बतलाईं। जिस प्रकार अपनी प्रिय स्त्री और राज्यको पाया था, वह सब कहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीका प्रवर्षण पर्वतपर जाना और निवास करना

श्रीरामचन्द्रजी अभिषेक होनेके पश्चात् आये हुये सुग्रीवको विदाकर प्रवर्षण पर्वतपर बनके पशु-पक्षी पेड़, पौधे, पर्वत और सुन्दर-सुन्दर जलाशयों तथा रंग विरंगे मनहरने वाले मृगीके बच्चोंको देखते हुए आये। बड़े-बड़े वृक्षोंसे वह बन घना तथा भयंकर मालूम होता है। बाघ और मृगा आदि भयंकर शब्द करने वाले इधर-उधर भ्रमण करते हुए अपने शब्दोंमें बोलते थे। भालु आदि पशुभी वहाँ रहते थे। अनेक लताओंसे युक्त बहुतसे वृक्ष वहाँ अत्यन्त शोभा दे रहे थे। श्रीरामचन्द्रके जानेसे उस पर्वतकी शोभा और भी बढ़ गयी। श्रीरामचन्द्रजी महाराजने उस शोभा युक्त पर्वतके शिखरपर एक बड़ी गुफा लक्ष्मणके साथ रहनेके लिये नियत की। और दोनोंही एक ही स्थानपर बैठ गये। उस समय मन्द-मन्द जो आनन्द देनेवाली वायु अपनी

साधारण गतिसे बह रही थी। उस वायुके लगनेसे श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण दूरसे आये थे, उनकी थकावट दूर होने लगी। श्रीलक्ष्मणजी आगे बढ़ बड़े भाई रामचन्द्रके पैर धीरे-धीरे दबाने लगे। श्रीरामचन्द्रजी समयके अनुसार श्रीसौमित्रसे इसप्रकार मधुर बचनमें बोले—हे प्रिय सखे लक्ष्मण ! देखो तो, उस पर्वतकी गुहा कितनी सुन्दर है। कैसी मन्द-मन्द वायु बह रही है। इस वायुके शरीरमें लगनेसे मेरी तो नेत्र खोलनेकी इच्छा नहीं होती है। हे सखे! इस पर्वत पर कैसे उजले, काले, लाल पत्थर दिखलाई पड़ते हैं। नदीमें स्वच्छ जल और मेढ़क नजर आते हैं। नाना प्रकारके धातु भी हैं। वृक्षोंका झुण्ड काले बादल के समान है। सुन्दर लताएँ भी हैं। रंग बिरंगे पक्षी किसप्रकार बोल रहे हैं। उन पक्षियोंके कैसे सुन्दर वचन हैं। कोयल किस भाँति कुहक रही है। मोर मधुर-मधुर नाच रहे हैं, तथा अपने शब्दोंमें गा रहे हैं। पर्वतकी शोभा बढ़ानेवाली पुष्पोंयुक्त मालती कुन्द, गुल्म, कदम्ब, आदि वृक्ष हैं। तालाबमें कमल खिलते हैं। वह उस स्थानसे दूर नहीं हैं। हम दोनोंके लिये यह गुहा बड़ीही सुन्दर है। ईशान कोण में है। पीछेसे उँची है। इस कारण इसमें बरसातकी वायु नहीं आ सकती है। हे लक्ष्मण ! देखो तो, गुहाके द्वारपर काली और लाल शिलायें हैं, जो इस गुहाकी सुन्दरता बढ़ाती हैं। इस शिखरका उत्तरी भाग अधिक सुन्दर मालूम होता है तथा ऊँचा है। इसलिये काले मेघके समान मालूम पड़ता है। दक्षिण ओर सफेद वस्त्रके समान कैलाश शिखर अनेक धातुओंसे सुशोभित है। त्रिपथपर बहनेवाली गंगाके समान गुहाके उस ओर बहने वाली उस नदीको देखो। इसमें कितना सुन्दर जल है। इस नदीके तीरपर पुष्पयुक्त स्थूल, तमाल, सरस, बकुल, हिन्ताल, चन्दन, तिलक, अतियुक्तक, पद्मक, केवड़ा, अशोक, तिनिश, कदम्ब आदि किस प्रकार शोभा दे रहे हैं। मानों ये वृक्ष नदीकी रक्षाकर रहे हैं। उन वृक्षोंपर नाना-प्रकारके पक्षी अपने मीठे शब्दोंमें गा रहे हैं। यह नदीके अनेक रत्नोंसे युक्त है। कहीं-कहीं लाल कमल और कहीं कहीं उजले कमल खिले दिखाई पड़ते हैं। कहीं—कहीं उनमें सुन्दर पत्तेही शोभायमान हो रहे हैं। परिपल्व पक्षी जल पर किस भाँति चल रहे हैं। इस पर्वत पर मुनियोंका-समूह रहता है। चन्दनके वृक्ष किस प्रकार कतार बाँधे खड़े शोभा दे रहे हैं। आप से आप

ये सब पंक्तियाँ उत्पन्न हुई होगीं। हे लक्ष्मण! यहाँ हम लोगोंका मन रम जायेगा और खूब आनन्द पूर्वक रहेंगे। आनन्दसे समय कटेगा। अत्यन्त शोभा देने वाला बनभी यहाँसे दूर न होगा। बानर लोग मृदंग आदि बाजों से गाना बजाना कररहे हैं। कैसे सुन्दर शब्द सुनाई दे रहे हैं। सुग्रीव स्त्री-राज्य आदिको पाकर किस आनन्दसे रहे होंगे अर्थात् बहुतही मग्न होगा। इस तरह वार्तालाप करते हुये, भी उस पर्वतसे उन्हें अधिक प्रेम हुआ। प्रिया सीताके स्मरण करनेसे वह मूर्च्छित हो जाया करते थे और बहुधा चन्द्रमाके उदय होनेके समय और रात्रिमें बिछुड़ जाने पर उस रात्रि के बियोगने उन्हें इस प्रकार सताया था जैसे सूर्यके अस्त होनेपर कमल मुर्झा जाते हैं। तब उनके दुःखसे श्रीलक्ष्मणजी दुःखी हृदय भाई रामचन्द्रसे इस भाँति बोले—हे भाई! वीरोंका चित्तको चंचल करना अच्छा नहीं है। आप दूसरोंको शोक-सागरसे निकालते हैं। आपको शोक न करना चाहिए। आप तो सब जानने वाले हैं। शोकसे दुःख होता है। आप देवोंमें प्रेम रखते हैं। उद्योगी हैं, बिना उद्योग के आप राक्षसोंको नहीं मार सकते। वे राक्षस कपटी हैं। शोकको छोड़कर हम सबोंको उद्योग करना चाहिये। रावणको सपरिवार मारना है। बिना उद्योग के कैसे मारा जायेगा? आप तो पर्वतों, वृक्षों तथा समुद्र आदिके सहित पृथ्वी को उलट-पुलट कर सकते हैं। आपके लिये रावण क्या है? अर्थात् तृणके समान है। वर्षा ऋतुका आगमन है। पश्चात् शरद् ऋतुमें उसे राज्य और परिवार सहित मारिये। मैं आपको उस बातका स्मरण करा रहा हूँ जिसको आप शोकके कारण भूल गये हैं। लक्ष्मणने इस प्रकार जैसे भस्म छिपी आगको आहुति देकर जगाया जाता है, श्रीरामचन्द्रका उत्तेजन दिलाया। तब लक्ष्मणके मधुर वचन सुनकर सम्मान पूर्वक श्रीरामचन्द्र उनसे बोले—हे सखे! हितकारी और प्रियको जिस प्रकारकी बात कहनी चाहिये, वही तुमने मुझे कही है। अब मैं उस शोकको छोड़ रहा हूँ जो सारे कामको बिगाड़ने वाला है। मैं तुम्हारे कथनानुसार शरद् ऋतुकी बाट जोहता हूँ। सुग्रीवकी सहायतासे सब हो जा सकता है। जिसका मैंने उपकार किया वह मुझे उपकारहीसे बदला देगा। यदि

वह नहीं देना चाहेगा तो वह शास्त्र तथा वेदसे मानने वाला नहीं है। जो शास्त्र तथा वेदसे न माननें वाला है वह निरा पशुके समान है। श्रीलक्ष्मणजी इस तरहके वचन सुनकर उनकी प्रशंसा करने लगे और अपने ज्ञान द्वारा मधुर वचन उनसे बोले—"उस समय सुग्रीवको देखनेसे बहुत ही आनन्द आया था। हे संसार पालक ! आपके कहनेके अनुसार सुग्रीव सब मनोकामनाको अति शीघ्र पूरी करेगा। परन्तु वर्षा ऋतु तो बितानी ही पड़ेगी। अपने क्रोधका त्याग कीजिए और यह चार महीने किसी तरह बिताइये। इस सुन्दर पर्वत पर निवास कीजिए। आप तो क्षण मात्रमें शत्रुको मार सकते हैं। परन्तु धर्मकी रक्षा करना भी अत्यन्त आवश्यक है अर्थात् आप तो धर्मवत्सल हैं; धर्मको किस प्रकार त्याग सकते हैं ?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

वर्षा ऋतुका वर्णन

श्रीरामचन्द्रजी बालिको मार और सुग्रीवको राज्य तथा अंगदको युवराजपद देकर आप परिप्लव पर्वतपर निवास करते हुये श्रीलक्ष्मणजी से प्रेमपूर्वक इसप्रकार बोले—हे प्रिय बन्धु ! देखो, वर्षाऋतु तो आ ही गई। आकाशमें काले बादल किसप्रकार एकत्रित हो रहे हैं। पिछले नौ महीनोंसे आकाश समुद्रका जल सोखकर इस ऋतुमें रिम-झिम बरसता है। देखो, पूर्वकी ओर हरे, लाल, पीले और सोनेके समान रंगसे युक्त इन्द्रधनुष दीख पड़ता है। इस मूसलाधार बूँदोंके द्वारा ऊपर जाकर सूर्यकी इच्छा पूर्वक पूजा कर सकते हैं। समुद्र, आकाश, अन्त भागमें उजला और शेष भागमें लाल वस्त्रके समान मेघ घाव पर पट्टी बांधेके समान दिखलाई पड़ता है। धीरे-धीरे वायु चल रही है। धूपसे गर्म हुई पृथ्वी शोकसे सताई हुई सीताके समान वाष्प त्याग कर रही है। इस पर्वतपर अर्जुन तथा केतक फूल युक्त अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं। आकाश किसी कठिन पीड़ासे पीड़ित मालूम पड़ता है। नीले मेघमें चमकती हुई रावणके अङ्कमें चमकनेवाली दुखी सीताके समान मालूम हो रही है। बादलसे आकाश घिरे हैं। सूर्य, चन्द्रमा आदिका पता नहीं मालूम पड़ता है। सूर्यके पता न चलनेसे अज्ञानी

पुरुषको पूर्व और पश्चिमका पता नहीं लगता और न समय ही मालूम पड़ता है। इस कालमें कामियोंको अत्यन्त आनन्द मालूम पड़ता है। इस पर्वतकी चोटीपर फूले हुये फूल जो वर्षाके आगमनके लिए उत्सुक हो रहे हैं यह मेरे कामको बढ़ा रहे हैं। इन फुहारोंके पड़नेसे धूल शान्त हो जायेगी। कितनी ठंडी हवा वह रही है। इसमें गर्मी लेशमात्र भी नहीं मालूम पड़ती है। राजा लोग वर्षामें कहीं भी आते जाते नहीं। दूसरे देशमें रहने वाले अपने घर लौटने लगे। मानसरोवरोंमें चक्रवाक नामक पक्षी अपनी सुखकर स्त्रियोंके साथ उड़ चले। अधिक वर्षा होनेके कारण पगडण्डियाँ टूट गई होंगी, जिससे रथोंका चलना बन्द हो जायगा। आकाशमें बादल इधर-उधर हो रहे हैं जिससे कभी प्रकाश मिलता है। कभी नहीं मिलता है। नदियाँ इस समय कितनी वेगकी धारासे चल रही हैं और जल लालरंगका हो गया है। क्योंकि इस पर्वतकी लाल मिट्टी इनके द्वारा बह रही है। काले-काले जामुन भौंरेंके समान मालूम हो रहे हैं और रससे भरे हैं। पक्के फल-फूल पेड़ोंसे गिर रहे हैं। पके हुये आम पृथ्वी पर इसप्रकार गिर रहे हैं और चूर-चूर हो रहे हैं जैसे आकाशसे वर्फोंके टुकड़े गिर कर चूर हो रहे हैं। चमक पताकाके समान बगुलोंकी पंक्ति मालाके समान इनको शोभायमान बनाती है। ये बादल घोर गर्जन करनेवाले मतवाले हाथीके समान गर्जनकर बच्चोंको डरा रहे हैं। मूसलाधार वर्षासे हरी-हरी घास धुल गयी है। उस पर मयूर और मयूरी नाच रहे हैं। वह कितने सुन्दर मालूम होते हैं। यह गर्जते हुये बादल पर्वतोंके शिखरोंसे टकराकर इसप्रकार वर्षा करते हैं मानों आकाशसे देवगण फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं। इस ऋतुमें इस मंद-मंद वायुसे निद्रादेवी सबको सताती हैं, नदीका जल अपने तेज वेगसे समुद्रकी ओर लपक रहा है। बादलके निकट प्रसन्न हो वियोगी शोक सागरमें डूबे हैं। झरनेसे जल झर-झर कर गिर रहा है। बादलका गर्जन ऐसा हो रहा है मानों बालि और सुग्रीवमें युद्ध हो रहा है। सितारके समान भ्रमर बोल रहे हैं। मेढ़क अपने शब्दसे वर्षाको देखकर गाना गा रहे हैं। सोये हुए बानर मेघोंके गर्जनसे चकित होकर उठ बैठते हैं और प्रसन्नता पूर्वक किलकिला रहे हैं। मृग अपना

पराक्रम दिखलाना चाहते हैं। पर्वत शोभा दे रहे हैं। आकाश बादलसे ढक गया है। सूर्य, चन्द्रमा अदृश्य हैं। जलसे पृथ्वीकी प्यास बुझ गई है। दिशाएँ अंधकार सी प्रतीत हो रही हैं। इस वर्षा-कालमें बगुलोंके समूह उड़ जाते हैं। कामसे स्नेह रखने वाली स्त्री अपने प्राणोंके आधार प्रियके पास जाती है। कदम्बके पेड़ोंमें कदम्बके फूल लहलहा रहे हैं। नदी अपनी चंचलता दिखलाती है। वर्षा अपने रागोंमें गारही है। उन्मत्त हाथी खुशीसे किलकार रहे हैं। इन सबोंसे पृथ्वी शोभा पा रही है। प्रिया सुग्रीव अपनी स्त्रीके साथ सुखकर जीवन बिता रहा होगा। मेरी स्त्री हरी गई। हे सखे! टूटे हुए नदीके तीरके समान मैं दुःख पा रहा हूँ। मेरा शोक बढ़ा हुआ है और वर्षाके हटानेका कोई उपाय नहीं है। वह राक्षस बड़ा भारी शत्रु है, जिसने सीताको हरा है। वह मुझे अधिक दुःख दे रही है। मार्ग कठिन है, रास्ता चलनेका समय नहीं है। इस कारण सुग्रीवसे तत्कालके लिए मैंने कुछ नहीं कहा। सुग्रीवने बहुत कष्ट सहकर अपनी स्त्रीको पाया है। इस कारण मैं सुग्रीवसे कुछ कहना नहीं चाहता। सुगीव समय आनेपर अपने उपकारोंको स्मरणकर मेरा उपकार करनेके लिए तत्पर हो जायेगा। वीर पुरुष उपकारका बदला अवश्य देते हैं। सुग्रीव शास्त्रकी आज्ञा उलंघन नहीं करेगा। श्रीरामचन्द्रजीने वर्षाका वर्णनकर तथा सुग्रीवके बारेमें कुछ कहकर अपने सुन्दर मुखवाले ओष्ठको बन्दकर लिया तथा लक्ष्मण अपने भाईकी बातोंको सुनकर हाथ जोड़कर बोले—हे जगतपिता! आपकी कही बातें कभी असत्य नहीं होती हैं अर्थात् सुग्रीव अवश्य शीघ्रता करेंगे। अपने शत्रुको मारनेकी इच्छा करनेपर भी आपको शरद् कालकी प्रतीक्षा करते हुए वर्षा कालको निभाना ही होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्ड का अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ सर्ग

श्री वानरराज सुग्रीवको हनुमान्‌का समझाना और सुग्रीवको नील वानरको आज्ञा देना

बादलोंसे छिपा आकाश साफ हो गया है। बगुलोंकी पंक्तियाँ आकाश से पृथ्वीपर आ गई हैं। बिजलीका चमकना बन्द हो गया है। सूर्यका सुन्दर प्रकाश पृथ्वीपर फैल गया है। जो बुरे मनुष्यकी संगत करता है,

एकान्तमें जो रहना पसन्द करता है, जिसने बालिका बध किया है, जो राज्य तथा स्त्री पा चुका है, जिसकी सर्व मनोकामनाएँ सिद्ध हो गई हैं, जो स्त्रियोंका प्रेमी है, जो चौबीसों घण्टा आनन्द करता है, जो क्लेश-रहित है, जो क्रीड़ा करनेमें लीन रहता है; जिसने मंत्रियोंको राज्यके कार्योंको सौंप दिया है, जिसके राज्यमें अत्याचार होते हैं, समयको मूल्यवान् समझनेवाले श्री पवनसुत हनुमान् सत्य और उपकारी धर्म आदिसे पूर्ण विनयपूर्वक प्रेमसे उस बानरराज सुग्रीवसे बोले—हे बानराधिपति! आपने राज्य, स्त्री तथा कोष पाया है। कामके सभी कार्य सिद्ध हो गए हैं। परन्तु आपके मित्रका कार्य शेष है। आप उनके कार्यको करनेके लिए तत्पर होइये। हे राजा! जो मित्र अपने शरीर और सेना आदिको सम समझता है, उनका राज्य, यश और पराक्रम बढ़ता है। जो मित्र अपने मित्रका हित नहीं चाहता अर्थात् अपने सब कामोंको त्यागकर मित्रके कार्यके लिए आदर पूर्वक उपाय नहीं करता उसका साहस तथा ज्ञान नष्ट हो जाते हैं और अनर्थी कहलाता है। अवसर बीत जानेपर जो मित्र अपने मित्रका यदि बड़े से बड़े कार्य भी करता है तो वह कार्य कार्य-रूपमें नहीं समझा जाता है। हे किष्किन्धाधिपते! हम सब सबोंके मित्रके कार्यका समय भी बीत रहा है। श्रीरामचन्द्रजीकी धर्म पत्नि 'जानकी' का पता लगाना चाहिए। हम सबोंका यही कार्य है जिसके लिए समय बीत रहा है। श्रीरामचन्द्र सर्वगुणमें सर्वश्रेष्ठ हैं। उन्हें इस बातकी शीघ्रता भी है। परन्तु वे आपके वशमें हैं। समय बीतनेकी बात आपसे उन्होंने नहीं कही। वे आपकी कुल-वृद्धि चाहते हैं। आपके मित्र हैं, उनका प्रभाव किसीके समान योग्य नहीं। आप अब उनका कार्य शीघ्रता पूर्वक कीजिए। आपका कार्य वह पहले कर चुके हैं। हे बानरराज! उसी प्रकार हम सबोंको भी सीताका पता लगानेके लिए आकाश—पाताल एक कर देना चाहिए। हे राजन्! जो रामचन्द्र सुर, असुर, वायुगण, यक्ष, दानव, गन्धर्व आदिसे भयभीत नहीं हो सकते, तो क्या वे राक्षससे भयभीत होनेवाले हैं। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रने शक्तिमान् होकर प्रथम आपका उपकार किया है। तो क्या हमलोगोंको उनके उपकारके लिए तत्पर नहीं होना चाहिए? अतः हे बानरराज! आपको उनका सब प्रकारसे उपकार करनेके लिए तत्पर होना

चाहिए। हे कपि-श्रेष्ठ! आपका तथा हमारे वानरोंके समूहका मार्ग आकाशमें, पृथ्वीमें, जलमें और पातालमें भी रुक नहीं सकता। आपके अधीन करोड़ों वानरोंसे अधिक होंगे जो परास्त होने योग्य नहीं हैं। आप उनमेंसे योग्य वानरोंको 'सीता' का पता लगानेके लिए आज्ञा दीजिए। श्री सुग्रीवने अपने अनुसार पवनसुत हनुमान्‌का नीति-युक्त वचन सुनकर रामचन्द्रके लिए निश्चय कर नलको आज्ञा दी—हे नल! शीघ्र सेनाको एकत्र कीजिए। दो सप्ताहके भीतर जो वानर यहाँ उपस्थित नहीं होगा उसको प्राण दण्ड दूँगा। यह मेरी अंतिम आज्ञा है। उन्हें क्षमा नहीं किया जाएगा। अङ्गदके साथ आप स्वयं बड़े वानरोंके निकट जाँय और उन्हें मेरी आज्ञा सुनावें। नलको इसप्रकार आज्ञा देकर सुग्रीव अपने शीश हमलमें चला गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा कांडका उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२९॥

तीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रका विलाप, शरदऋतुका वर्णन और रामचन्द्रका सुग्रीवके विषयमें कुछ कहना

सुग्रीवकी सुधि न पाकर तथा बादलोंसे रहित आकाशको देखकर पर्वतपर चतुर्मास रहनेवाले श्रीरामचन्द्र जानकीको न पानेसे दुःख रूपी सागरमें गोते खाने लगे। शरद् ऋतुमें आकाश साफ हो गये। चन्द्रमाकी ज्योति संसारको सुन्दर बना रही है। सुग्रीव अपनी पत्नी आदि स्त्रियोंके प्रेममें लीन हो गया है। इन सब बातोंको स्मरण करते हुये सीताकी याद उन्हें आयी और मूर्छित हो गये। पश्चात् स्मरण आनेपर अपनी पत्नीकी चिंतामें लीन हो गये और बहुत जोरोंसे विलाप करने लगे। यह सब देखकर लक्ष्मण भी दुखित हुये। वह दुखित लक्ष्मण दुखी रामचन्द्रसे इस प्रकार बोले—हे स्वहन शक्ति रखनेवाले श्रीरामचन्द्र! अपने पराक्रमको भूलकर कामके अधीन हो आप क्यों रो रहे हैं? शोकसे चित्तकी एकाग्रता नष्ट हो जाती है। अतः धैर्य धारण कीजिये और प्रसन्न मन होकर उद्योग कीजिये। पराक्रम दिखलाकर शत्रुको मारिये और कीर्तिको बढ़ानेका उपाय कीजिये। हे जगतपिता! आपकी जानकी अथवा जगत्-माता दूसरेके अधीन नहीं हो सकती। वह दूसरोंके लिये आगके समान हैं। जो उनके पास बुरे विचारसे जायेगा वह भस्म हो जायेगा। उनके पास कोई कामी नहीं

जा सकता। ऐसा सुन लक्ष्मणजी से रामचन्द्र इस प्रकार बोले—हे लक्ष्मण! तुमने हितकारी, उचित और धर्मसे युक्त वचन कहे हैं। निःसंदेह शोक करने से लाभ नहीं होता है। उपाय करना चाहिये। हे लक्ष्मण! घनघोर गर्जन करनेवाले और तेज वायुके वेगसे चलनेवाले बादल जल बरसाकर शान्त हो गये। मानों गहरी निद्रामें सो गये। हे राजपुत्र! देखो तो, जिस समय आकाशमें बादल घिरे थे, उस समय किस तरह बादलोंकी गर्जन, हाथियों की चिंघारें, मयूरोंका नृत्य और झरनोंके शब्द होते थे। वर्षाके बन्द होने से शीघ्र ही सब शान्त हो गये। जो वृक्ष पुष्पोंसे लदे हुये हैं, जो सुन्दर गंध रखनेवाले हैं। पीले २ हैं, जो इस वन-भूमिको प्रकाशित कर रहे हैं। कमल सप्तच्छन्दके फूल सूँघने वाले तथा मदसे प्रेम करनेवाले हाथियोंका आना जाना बन्द हो गया है। आकाश ऐसा चमकीला हो गया है, जिस प्रकार छुरी सान पर चढ़ने पर चमकती है। हे भाई लक्ष्मण! देखो तो, सुग्रीव मेरे दुःखको न समझकर मेरे ऊपर कृपा नहीं करते। मैं पत्नी-रहित अनाथ हूँ। राज्यसे हटा दिया गया हूँ, मेरी प्रियाको हर कर रावणने मेरा तिरस्कार किया है। मैं दुःखी हृदय हूँ। मैं सुग्रीवकी शरणमें आया था, परन्तु सुग्रीव मेरी सारी बातें समझ कर मेरा तिरस्कार करना चाहता है। जब उसने किष्किन्धामें प्रवेश करनेके लिये हाथ जोड़ा था, तो उस समय उसने जानकीका पता लगानेके लिये समय नियत किया था, परन्तु अभी तक वह मुझसे मिला तक नहीं है। अब उस मूर्खका कार्य हो गया और मेरे कार्यपर ध्यान नहीं देता है। हे लक्ष्मण! तुम किष्किन्धामें जाकर वानराधिपति सुग्रीवको मेरे वचन कहो। वह मूर्ख स्त्रीके सुखमें सब भूल गया है। प्रथम उपकार करनेवालेको जो आशापूर्ण करनेका विश्वास दिलाकर कुछ ध्यान नहीं देता है, वह महानीच पुरुषके समान है। जो पुरुष अपनी बातपर अटल रहता है वही वीर कहलाता है। अपना कार्य करवा लेनेपर जो मूर्ख मित्रोंके कामको नहीं करता उस जीवको मरने पर कुत्ते तक नहीं खाते। क्या तुम उस बाणको देखना चाहते हो जिससे बालिका बध किया गया था? वह महा कठोर शब्द जो धनुष के खींचे जानेपर होता है, क्या तुम उसको फिर सुनना चाहते हो? तुम्हारे ऐसे सहायक तथा मेरे पराक्रमका ज्ञान सुग्रीव जान

चुका है। फिरभी वह निश्चिन्त क्यों है? क्या उसे मेरा भय नहीं है? जिसके लिए मैंने उस दुरात्मा सुग्रीवसे मैत्रीकी थी। वह उस कामको करना नहीं चाहता है। क्या अपना कार्य पूर्ण होनेपर क्या मेरा कार्य भूल गया? उसने वर्षा ऋतुके बीतनेपर सीताका पता लगानेकी प्रतिज्ञाकी थी। क्या वह मूर्ख अपनी स्त्रीको पानेसे इतने बड़े वर्षों बीते हुए समयको कुछ नहीं समझता है? वह मूर्ख अपने सचिवों अथवा स्त्रीके साथ मद्यपानकर क्रीड़ा करता होगा। हमलोग शोकित हैं! और वह दया नहीं करता। हे शत्रुविजयी लक्ष्मण! सुग्रीवसे मेरे क्रोधका फल बताओ। वह द्वार बन्द नहीं हुआ है जिस द्वारसे बालि मृतलोक गया था। सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे। बालिके मार्गको न भूले। मैंने सिर्फ बालिको मारा है। परन्तु प्रतिज्ञा त्याग करनेपर उसेभी भाईके साथ यमलोक पठाऊँगा। हे वीर लक्ष्मण, समयानुसार और जो उचितहो वह कहना और करना। इसमें जरा भी विलम्ब न हो, जिसमें सुन्दर समय न बीत जाय। तब अपने बड़े भाई, जो सर्वश्रेष्ठ पुरुषोतम थे, उनको इसप्रकार कुपित तथा दुःखित देखकर लक्ष्मणजीने सुग्रीवके प्रति तीव्र बुद्धि धारण करनेका निश्चय किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

श्रीलक्ष्मणजीका धनुष बाण युक्त किष्किन्धा नगरीमें आना

अपने प्रियाके हरे जानेसे दुःखित हृदय प्रियाको पानेके लिये व्याकुल [बड़े] भाई श्रीरामचन्द्रसे श्रीलक्ष्मण इस प्रकार बोले—हे जगतपिता! यह [वा]नर धर्मके मार्गपर स्थित रहनेवाला नहीं है। इसने हमसबोंके उपकारको [कु]छ नहीं समझा है। उसकी बुद्धि प्रेम पालन करने योग्य नहीं है। अपनी [ती]व्र बुद्धि के कारण स्त्री सुखमें मग्न होगया है। यह क्या उपकारका बदला [दे]गा? वहभी अब अपने भाई बालिके साथही रहना चाहता है। वह गुणहीन [है]। सो इसको राज्य नहीं देना चाहिये। मैं अपने क्रोधको रोक नहीं सकता। [अ]भी मैं जाकर इसका फल चखाता हूँ और युवराज अंगद अपने वीरबानरों [के] साथ जगत्माता जनकनन्दिनीका पता लगावें। इसप्रकार कहकर शीघ्रता [पू]र्वक श्रीलक्ष्मणजीने अपने बड़े भाईके चरण कमलोंको स्पर्श कर अपने

क्रोधसे क्रोधित होकर धनुष बाणको सँभालते हुये, युद्धके हेतु जानेके लिये ज्योंही दाहिना पैर उठाये कि त्योंहीं श्रीरामचन्द्रजी इन्हें अत्यन्त क्रोधमें देखकर नम्रता पूर्वक वचन इस प्रकार बोले—हे लक्ष्मण ! तुम इस तरह कोप करने योग्य नहीं हो अर्थात् जो ऐसा क्रोध प्रकट करता है, वह नीच कहलाता है। जो पुरुष कोपको शान्त करता है, वह वीर तथा पुरुषोत्तम कहलाता है। तुम धर्मवत्सल हो, साधु चरित्र वाले हो। तुमको सुग्रीवको मारनेकी बात नहीं कहनी चाहिए। उस समयको ध्यानमें लाओ, जिस समय मैंने मित्रता की थी। अपने कोमल वचनोंसे उसे लज्जित करना। वह स्वयं तुमसे विनयपूर्वक सब बातें बतायेंगे। शत्रुविजय श्री लक्ष्मणजी अपने भाईके इस वचनको ग्रहण कर अपने क्रोधको शान्त कर किष्किन्धापुरीको चले। कुछ समयके अनन्तर उस नगरीमें प्रवेश किया। किष्किन्धाके सब वानर लोग उनको देखकर कहने लगे—"वह कौन आ रहा है ? वह तो मन्दराचल पर्वतके समान धनुष-बाण लेकर आ रहा है।" श्रीलक्ष्मणजी अपने भाईकी आज्ञानुसार काम करनेवाले, क्या कहना होगा, इन सब बातोंको विचारते हुए जारहे थे। उस नगरीके पर्वतके बड़ी-बड़ी चट्टानोंको तथा वृक्षोंको इधर-उधर फेंकते, तोड़ते चले जा रहे थे। कितने ही वृक्षकी डालोंको तथा हाथीके समान अपने चरणोंसे पत्थरको तोड़ते-फोड़ते तथा दूर-दूर फेंकते और बड़े-बड़े पग बढ़ाए अपने प्रबल वेग में जा रहे थे। क्योंकि उन्हें शीघ्रता थी। नगरीके चारों ओर कोटके पहरे दार जितने थे वे सब ऐसे विशाल मनुष्यको देख डरकर वृक्षोंकी झाड़ियों तथा पहाड़की गुफाओंमें छिपने लगे। लक्ष्मणजीके ओठ सुग्रीवके प्रति क्रोधके कारण फड़क रहे थे और वीर वानरोंको अस्त्र धारण किए देखकर और भी लक्ष्मण आगबबूला हो उठे। जिस प्रकार अग्निसे घीकी आहुति देनेसे आग भड़क उठती है। अनेक वानर इस प्रकार यमराजके समान लक्ष्मणको देखकर चारों दिशाओंमें छिप गए। उनमेंसे कुछ वानर दौड़े दौड़े हाँफते हुए राजमहलमें गए। वहाँ सुग्रीव इन सबको व्याकुल देखकर बोले—हे वानरों ! तुम लोगों पर किस प्रकारकी विपत्ति आई है ? जो तुम लोग इस प्रकार व्याकुल हो ? उनमेंसे एक वानर बोला—हे महाराज। एक मनुष्य धनुष धारण किए मन्दराचल पर्वतके समान विशाल रूपवाला और

लाल-लाल करके बड़े वेगसे चला आ रहा है। सुग्रीव उस समय कामी बना हुआ था। वह ताराके साथसे हटना नहीं चाहता था। उसे सब बात अन-सुनी मालूम हुई और वह फिर अन्दर चला गया। परन्तु सचिवोंने समयको सोचकर वानरोंको आज्ञा दी। वे सब वानर पर्वतके समान प्रसन्नतापूर्वक बाहर निकले। उन सबके दाँत बड़े-बड़े और नख भी तलवारके समान थे। वे सब समयपर उन्हींसे अस्त्रको जगह काम लेते थे। उनमेंसे कुछ वानर तो दस हाथीके बलके बराबर अपना बल रखते, कुछ सौ हाथीके बलके बराबर थे और कुछ वानर हजार हाथियोंके बलवाले भी थे। वे लोग पर्वतकी बड़ी-बड़ी चट्टानें तथा पेड़ोंकी डालें लिए थे। उस समय श्रीरामचन्द्रकी आज्ञा-नुसार चलनेवाले श्रीलक्ष्मणजीने उन सबोंको देखा, उन्हें देखकर उनका क्रोध और भी भड़क उठा। वे सब वानर चहारदिवारी और खाईके बाहर निकलकर वीर वेशमें खड़े हो गए। श्रीलक्ष्मणजी सुग्रीवको तथा उनके सचिवोंको आसक्ति रहित जान और रामचन्द्रके कार्यको स्मरण कर और भी अपना क्रोध बढ़ाया। क्रोधके कारण लम्बी-लम्बी साँस लेने लगे। उनकी आँखें लाल हो गईं। हाथीके समान क्रोध करनेवाले लक्ष्मणके समीप डरकर किष्किन्धाका युवराज अङ्गद गया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। श्रीलक्ष्मणजी अङ्गदको इस प्रकार देखकर बोले—हे अङ्गद! अपने चाचा सुग्रीवसे जाकर कहो कि रामका छोटा भाई लक्ष्मण तुम्हारे पास आया है। भाईके दुःखसे दुःखी होकर द्वारपर खड़ा है। यदि इच्छा हो तो उसके वचनका सत्कार करो। बस, हे अङ्गद! केवल इतना ही कहकर तुम मेरे समीप वापस आओ। बालिसुत अङ्गद इस तरह लक्ष्मणजीके वचन सुनकर दुःखी होकर, महलमें आकर इस प्रकार कहने लगे—"मैं वीर लक्ष्मणके कठोर वचनको सुनकर घबड़ा गया हूँ।" वह उस समय कान्ति-हीन हो गया और बड़े वेगसे आकर उसने सुबानर-राज सुग्रीवका पैर पकड़ लिया। पश्चात् रूपाके चरणको स्पर्श किया। रूपा जागती थी। अङ्गदने उससे लक्ष्मणके कटु बचन कह सुनाए। परन्तु सुग्रीव तो चिन्ता रहित निद्रा देवीकी गोदमें पड़ा था और कामसे मोहित था, इस कारण वह नहीं उठा। इसके पश्चात् लक्ष्मणजीको क्रोधित देखकर प्रसन्न करनेके लिए भयभीत

हुए वानर अपनी किलकिलाहटसे बोलने लगे। वे वानर सब बिजलीकी तरह गर्जन करने लगे। उस गर्जनको सुनकर सुग्रीव उठा। उस समय मदसे अलसाई हुई आँखोंके समान उसकी आँखें लाल थीं। श्रेष्ठ वानरोंके कहनेसे प्लक्ष तथा प्रभाव नामक मन्त्री जो धर्म और अर्थ वानर-राजको समझानेवाले थे, वे बालिसुत अङ्गदके साथ ही आए थे। उन्होंने राजा सुग्रीवसे श्रीरामचन्द्रके भाईका आगमन कह सुनाया। तब सुग्रीव सँभलकर बैठे। उनके सामने दोनों मन्त्री भी बैठकर इस प्रकार बोले—हे किष्किन्धापति! सत्यके पालन करनेवाले राम और लक्ष्मण दोनों ईश्वरावतार हैं। इन्हीं लोगोंने आपको राज्य दिया है। उनमेंसे एक रामजीके छोटे भाई आपके द्वारपर खड़े हैं। इसी कारण वानर सब डरकर चिल्ला रहे हैं। रामचन्द्रकी आज्ञा ही इनका सारथी है, उपाय इनकी सवारी है। इस कारण मैं कहता हूँ कि यह अवश्य ही रामचन्द्रकी आज्ञासे आए हैं। युवराज अङ्गदको उन्होंने ही आपके पास शीघ्र भेजा है। वह क्रोधसे आँखें लाल किए खड़े हैं। हे महाराज! अति शीघ्र अपने बान्धवों तथा अङ्गदके साथ जाकर प्रणामकर उनका सत्कार कीजिए जिससे उनकी प्रदीप्ताग्नि शान्त हो। चलिए, आप अपने मीठे वचनोंसे उनका क्रोध शान्त कीजिए। जिस उद्योगसे रामचन्द्र प्रसन्न रहें, आपको वही करना चाहिए। हे राजन्! अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिए और सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले बनिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका पछताना और हनुमान्‌का वानरराजको समझाना

सुग्रीवने अपने मंत्रियोंके साथ अंगदके वचन सुनकर शय्याको त्याग दिया और मन्त्रियोंसे इसप्रकार बोले—हे मन्त्रियो! मैंने तो कोई बुरा कार्य नहीं किया और न कोई बुरी बात कही। फिर मेरे मित्र रामचन्द्रके भाई लक्ष्मण मेरे ऊपर क्यों क्रुद्ध हैं? आपलोग पहले उनके भाव बुद्धिके अनुसार निश्चय कीजिए कि वह क्यों क्रुद्ध हुए हैं और वह क्या चाहते हैं? रामजी और लक्ष्मणजीसे भय तो नहीं है; परन्तु उनका अकारण क्रुद्ध होना मुझमें व्यग्रता उत्पन्न कर रहा है। मित्रता करना सरल है, परन्तु निबाहना

कठिन है। क्योंकि मनुष्यका चित्त सर्वदा चंचल रहता है। थोड़े-थोड़े कारण पर भी प्रेम छूट जाता है। इस कारण मैं डरता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीने मेरा बड़ा उपकार किया है। मुझमें सामर्थ्य नहीं कि, मैं उनका बदला चुका सकूँ। वानराधिपतिके इस प्रकार मधुर वचन सुनकर मंत्री बोले—हे वानरराज! आप महात्मा हैं। महात्माके समान आपका स्वभाव भी है। इस कारण आप किए हुए उपकारोंको नहीं भूलते हैं। आपने सीताका पता लगानेके लिए शरद ऋतुका समय निश्चित किया था न? आप रामचन्द्रसे अपना उपकार कराके कानमें अँगुली देकर गहरी नींदमें सोये हैं। आप अपनी प्रतिज्ञा भूल गए हैं कि आपने क्या प्रतिज्ञा की थी। आपको कुछ स्मरण ही नहीं है। जिस प्रकार आप अपनी प्रिया बिना दुःखी थे, उसी प्रकार रामचन्द्र भी दुःखित हैं। उनकी सुन्दर बधू हरी गई है। वह कितने दिनोंसे कष्ट सह रहे हैं। आपको उस कठोर वचनको सहना चाहिए, जिसको रामचन्द्रने लक्ष्मणके द्वारा कहलवाया है। आपने कितना भारी अपराध किया है? उस अपराधको क्षमा करानेके लिए हाथ जोड़कर लक्ष्मणको प्रसन्न करना ही उत्तम उपाय है। आपके पूछनेपर मैं भय छोड़कर आपके हितके लिए उचित बात कहता हूँ। यदि क्रोधकर रामचन्द्र धनुषपर बाण चढ़ावें तो देवता गंधर्व आदि शीघ्रही वशमें हो जा सकते हैं। ऐसे पुरुषका क्रोध न होने देना चाहिए। आप उसके पास अपने पुत्र और मित्रोंके साथ जाकर हाथ जोड़ सिर झुका प्रणाम कीजिए और प्रतिज्ञा-पालन कीजिए। जिस प्रकार स्त्री अपने पतिके अधीन रहती है, उसी प्रकार आप उनके अधीन रहिए। हे महाराज! आप तो इन्द्रके तुल्य राम और लक्ष्मणके पराक्रमको जानते ही हैं। आपको तो उनका तिरस्कार किसी दशामें भी न करना चाहिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका भीतर जाकर बातचीत करना

रामचन्द्रजीकी आज्ञानुसार लक्ष्मण सुग्रीवका सन्देश पाकर उस नगरीमें

घुसे। लक्ष्मणको देखकर जो बड़े-बड़े बानर द्वारपाल थे। वे सब डरके मारे हाथ जोड़कर खड़े हो गए। राजकुमार लक्ष्मण लम्बी साँस ले रहे थे। क्रोधसे आँखें लाल-लाल हो गयी थीं। बहुतसे बानरोंने भयके कारण साथ न दिया। नगरीमें प्रवेश करनेपर लक्ष्मणने उस रमणीय गुफाको देखा जो रत्नोंसे परिपूर्ण थी। और फूल आदिसे वह बहुत ही शोभित था। दिव्य माला धारण करने वाले सुन्दर देवताओं, गन्धर्व-पुत्रों और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले बानरोंसे नगरी भरी थी। अगर चन्दन आदि फूलोंसे वह पर्वत सुगन्धित हो रहा था। बड़े-बड़े पर्वतके समान वहाँ राजाके महल थे। लक्ष्मणने निर्मल जल वाली नदियाँ देखी। जिस मार्गसे लक्ष्मण राजमहलमें जा रहे थे, उसी मार्गपर किष्किन्धाके बड़े-बड़े शूरवीर कहलाने वाले वानरों जैसे अंगद, मयन्द, हनुमान्, जाम्बवान, नील, द्विविद, नल, वीरवाहु, सुबाहु, सुषेण, कुमुद, शरभ, गवय, दधिमुख, गज, सुनेत्र, सुपाटल, गवाक्ष, तार, सम्पाति आदि के घर थे। उन लोगोंके गृह बड़ी मजबूतीसे बनाये गये थे। श्वेत पर्वतसे घिरे हुये, श्वेत बादलके समान सुगन्धित मालाओंसे युक्त प्रभूत धन-धान्य पूर्ण स्त्रियों और रत्नोंसे शोभित सुन्दर घर देखे। उसके घर सर्वदा फलने-फूलने वाले वृक्षोंसे युक्त थे। सुन्दर घरके द्वारपर वीरवर अस्त्र लेकर पहरा दे रहे थे। तारण सोनेका बना हुआ था। दिव्य मालायें लटकाई गयी थीं। उस घरमें वीर लक्ष्मणने प्रवेश किया, जिस प्रकार मेघ मालामें सूर्य प्रवेश करते हैं। सात खण्ड जानेपर लक्ष्मणने गुप्त और विशाल अंतःपुर देखा। वहाँ अनेक, चाँदी, सोनेके पलँग, बहुमूल्य आसन तथा बिछौना लक्ष्मणने देखा। लक्ष्मणने प्रवेश करते ही सितारके गानेसे मधुर शब्द सुना। सुग्रीवके भवनमें रूप यौवनसे युक्त सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ थीं। सुग्रीवके अनुचरोंको भी देखा। नूपुर आदि बाजोंका शब्द सुनकर काम-रहित लक्ष्मण लज्जित हुये। भूषणोंके शब्द सुनकर लक्ष्मणने धनुष टंकार किया जिससे चारों दिशायें गूँज गईं। वह स्त्रियोंके झुण्डमें न जाना चाह कर वहीं पर रुक गये और एक ओर एकान्त स्थानमें बैठ गये। इतनेमें अंगदके कहनेसे तथा

धनुषके शब्द द्वारा सुग्रीवको प्रतीत हुआ कि लक्ष्मण महलमें आ गये जिससे उसका (सुग्रीव) का मुख सूख गया और वह भयभीत हो तारासे कहने लगा, हे तारा ! लक्ष्मण तो हृदयसे ही कोमल स्वभावके हैं, फिर वह क्रोधमें कैसे आ गये ? क्या तुम इस सम्बन्धमें कुछ कह सकती हो ? हे तारा ! मेरे विचारसे यह उत्तम होगा कि लक्ष्मणसे मेरे मिलनेके पहले तुम्हीं उनके समीप जाओ और मधुर शब्दों द्वारा उन्हें प्रसन्न करो। तुम्हारे पहुँचनेपर वह क्रोध नहीं करेंगे, क्योंकि महात्मा लोग स्त्रीके प्रति क्रोध नहीं करते। जिस समय वह तुम्हारे शब्दोंसे प्रसन्न हो जायेंगे, उस समय मैं उनसे मिलूँगा। यह सुनकर तारा लक्ष्मणके समीप गई। वह उस समय मदके कारण मस्त हो रही थी। देखनेमें उसके नेत्र बड़े सुन्दर मालूम हो रहे थे। ताराको आते देखकर लक्ष्मण नीचे दृष्टि करके बैठ गये। उसके आ जानेसे उनके क्रोधका विनाश हो गया और ताराकीभी लज्जा छूट गई। क्योंकि प्रथम तो वह मद्य पीये हुये थी, दूसरे लक्ष्मणका क्रोध शान्त हो गया। अनन्तर तारा मधुर शब्दोंमें बोली—हे लक्ष्मण ! आपके क्रोधका क्या कारण है ? ऐसा कौन सा पुरुष है जो आपकी दी हुई आज्ञाका पालन नहीं करता ? ताराके ऐसे वचन सुन लक्ष्मण कहने लगे—हे तारा ! तुम्हारा पति कामके बाणोंका शिकार हो गया है। हम दुखियोंके विषयमें कुछ भी विचार नहीं करता है। न तो उसके मंत्री और न उसकी सभा ही याद करती है। सुग्रीवने जो समय दिया था वह हो चुका, फिर भी वह बिहार करनेमें लवलीन हो रहा है। कुछ विचार ही नहीं करता है। हे तारा! मद्यपानसे अर्थ, धर्म, कामका नाश होता है। किसीके द्वारा किये गये उपकारका बदला यदि नहीं दिया जाता है तो उस मनुष्यका धर्म नष्ट हो जाता है। गुणवान् मित्रके नाश होनेसे बड़ी हानि होती है। मित्रमें दो गुण होते हैं, एक तो मित्रके कार्यको अपना कार्य समझकर करना, दूसरे सत्य द्वारा धर्मका पालन करना। दोनों गुण वाले ही उत्तम मित्र कहलाते हैं। खेद है सुग्रीवमें इन दोनों गुणोंमेंसे एक भी नहीं पाया जाता। हे तारा ! अब हमें भविष्यका कार्य करना है। वह सुनकर तारा लक्ष्मणसे कहने लगी—हे राजपुत्र ! यह समय क्रोध करनेका नहीं है। सुग्रीवके अपराधको क्षमा करना चाहिये। क्योंकि वह आपका मित्र

और हितैषी है। हे लक्ष्मण! रामचन्द्रके क्रोधित होनेके कारणको मैं भली-प्रकार जानती हूँ; क्योंकि उनके कार्यमें विलम्ब हुआ है और आप लोगोंने जो कार्य हमारा किया है उसके विषयमें मैं भी भली प्रकार जानती हूँ और अपने कर्त्तव्यकोभी जानती हूँ, जो हमें करना चाहिए। मैं कामदेवके बलको भी जानती हूँ जिसके वशीभूत सुग्रीव हो गया है। मैं यह भी जानती हूँ कि अब सुग्रीव काम-रहित हो गया है। हे लक्ष्मण! आपने जो क्रोध किया है उससे यह प्रतीत होता है कि, आपको काम-शास्त्रका ज्ञान उसी प्रकार नहीं है, जिस प्रकार कामातुर मनुष्य समयका विचार नहीं करता और धर्म, कर्म, अर्थके विचारोंसे भी अलग हो जाता है। अतः कामासक्त सुग्रीवको भाई स्वरूप समझकर क्षमा करो। यद्यपि यह मैं जानती हूँ कि सुग्रीव कामके अधीन हो गया है। परन्तु आपके कार्यके लिए तो पहले ही सेनाको एकत्र करनेकी आज्ञा दे चुका है और हजारों वानर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले दूसरे पर्वतोंसे एकत्र किए गए हैं। हे लक्ष्मण! मेरे साथ आइए और मित्रको समझाइए; क्योंकि आप सदैव मर्यादाकी रक्षा करनेवाले हैं। इसलिए रनिबासमें आप मेरे साथ आइए। यह सुनकर लक्ष्मण उसके साथ महलोंमें गए। सुग्रीव सोनेके एक आसनपर बैठा हुआ था जिसपर सुन्दर-सुन्दर वस्त्र बिछे हुए थे, आभूषणोंसे सुसज्जित सुग्रीवको लक्ष्मणने और सुग्रीवने लक्ष्मण को देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका सुग्रीवको समझाना

लक्ष्मणको देखते ही सुग्रीवका प्राण सन्न हो गया। इनकी प्रमत्त इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गईं और वे स्वयं अपनी दशापर महान् दुःखित हुए। वे उसी क्षण सिंहासनसे उठ पड़े और उनके साथ ही रानियाँ और अन्य परिचारिकाएँ भी उठ खड़ी हुईं। लक्ष्मण तो पहले ही से महाक्रुद्ध हो रहे थे; परन्तु ताराके संभाषणोंसे थोड़े शान्त हो गए थे; किन्तु सुग्रीवके निकट पहुँच उन्हें इस रूपमें देख लाल-लाल नेत्र किए इधर-उधर टहलने लगे। तब सुग्रीव हाथ जोड़े हुए उनके समक्ष जा पहुँचे। लक्ष्मणने सुग्रीवसे कहा

हे सुग्रीव ! वेही राजा इस लोकमें यशको प्राप्त होते हैं जो बलवान्, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी होते हैं। इसके विपरीत जो अधर्मी होता है और जो मित्रोंसे झूठी प्रतिज्ञाएँ करता है, उससे बढ़कर इस लोकमें क्रूर और पापी दूसरा नहीं है। तुम पाप-पुण्यकी मर्यादाको नहीं जानते। हे सुग्रीव ! यह मैं नहीं कह रहा हूँ; बल्कि इसे ब्रह्माजीने कहा है और उन्होंने ही यह कहा है कि, जो अपने मित्र द्वारा अपना मनोरथ तो पूर्ण कराले और उसका प्रति उपकार न करे और कहे कि मैं विवश हूँ तो भला उससे बढ़कर कृतघ्नी और पापी इस संसारमें कौन होगा? अतः तुम अनार्य हो, कृतघ्न हो और मिथ्याभाषी हो। फिर भी हे वानरराज! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो गई। अस्तु अब तुम्हें सीताकी खोज अवश्य करनी चाहिए। परन्तु तुम स्त्रीके प्रेममें ऐसे लीन हो गए हो कि तुम्हें अपनी की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण नहीं रहा। तुम्हारे जैसे दुष्टात्माको रामचन्द्रने राज्यका अधिकारी बनाया, यह उनकी बड़ी भूल है। परन्तु मैं तुमसे कह देता हूँ कि यदि तुम अपनी प्रतिज्ञासे विमुख हुए तो निश्चयही बालिकी तरह वे तुम्हें भी अपने तीव्र बाणोंका शिकार बना डालेंगे। क्योंकि वे सर्वदा समर्थवान् और यशस्वी हैं। उनका मार्ग सदैवही प्रशस्त है। अस्तु ! तुम अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त।।३४।।

पैंतीसवाँ सर्ग

ताराका लक्ष्मणको समझाना

लक्ष्मणके ऐसे कठोर बचनोंको सुनकर तारा कहने लगी—हे लक्ष्मण ! यह तुम क्या करते हो ? सुग्रीव समस्त बानरोंके राजा हैं। ये शठ, क्रूर, छली और मिथ्या-भाषी कदापि नहीं हैं। रामचन्द्रने सुग्रीव पर जो महती कृपाकी है और एक मित्रके नाते उन्होंने सुग्रीवका जो उपकार किया है उसे ये भूल नहीं गए हैं। उनकी कृपासेही ये अपनी स्त्री रूपाको और मुझे प्राप्त कर सके हैं। अन्यथा इनके लिए यह असम्भव था। हे लक्ष्मण ! बिना सोचे समझे साधारण मनुष्योंकी तरह क्रोध कदापि नहीं करना चाहिए। क्योंकि आपके जैसे पराक्रमी मनुष्य बिना सोचे विचारे क्रोध कदापि नहीं

करते हैं। अस्तु मैं सुग्रीवके लिए आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ। आप इस क्रोधको त्यागकर प्रसन्न होइए। आप तो यह कहते हैं कि, सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना नहीं चाहते। परन्तु मैं कहती हूँ कि यह सुग्रीव रामचन्द्रके कार्यके लिए मेरा, अंगदका तथा राज-पाटकाभी त्यागकर सकते हैं। और इन सुग्रीवमें वह बलभी विद्यमान है कि, जिससे यह उस दुरात्मा रावणको मारकर सीताको ले आवेंगे। हे लक्ष्मण ! सीताको हरण करनेवाला रावण बड़ा बली है। उसे बिना सहायताके मारना कठिन है। उसके लिए सुग्रीवने अपनी वृहद् बानर-सेनाको एकत्र कराया है। आप क्रोध न कीजिए। जैसा प्रबन्ध सुग्रीवने किया है, उसके अनुसार समस्त बानर आज यहाँ एकत्र हो जायँगे। आपके क्रोधसे सुग्रीवकी सब रानियाँ वैसेही विकल हो रही हैं, जैसे बालिको देखकर ये विकल होती थीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका लक्ष्मणसे क्षमा-याँचना करना

ताराके इन मीठे बचनोंको सुनकर लक्ष्मणका क्रोध दूर हो गया। उसी समय सुग्रीवने अपने गलेमें पड़ी हुई पुष्पोंकी माला तोड़ डाली और अधिक सचेत होकर लक्ष्मणको प्रसन्न करते हुए बोले--हे लक्ष्मण ! यह राज्यकीर्ति तो सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी, परन्तु रामचन्द्रकी कृपासे यह दुबारा प्राप्त हुई है। भला इस पृथ्वीपर देव-तुल्य महात्मा रामचन्द्रके किए हुए उपकारोंका बदला चुकानेमें कौन समर्थ हो सकता है? यद्यपि वे महात्मा रामचन्द्र पापी रावणको मारकर सीताको लानेमें स्वयंही समर्थ हैं, तथापि मैं सहायताके रूपमें उनके साथ हूँ। यद्यपि उनको किसी सहायताकी आवश्यकता नहीं है, जब कि वे स्वयंही इतने प्रतापी हैं कि, उन्होंने अपने एकही बाणसे सात शाल वृक्षोंको बेध दिया। उनके बाण शालोंको बेधते हुए पृथ्वीको चीरकर पाताल में चले गए। भला जिस महापराक्रमी रामचन्द्रके धनुषकी टंकारसे पृथ्वी सहित आकाशभी कंपित हो उठता है, उन महापुरुषको किसी अन्यकी आवश्यकताही क्या हो सकती है? फिर भी जिस समय वे महात्मा रामचन्द्र दुष्ट रावणका संहार करने लिए आगे बढ़ेंगे उस समय मैं अपने प्रेमयुक्त उत्साहसे

उनके पीछे-पीछे अवश्य चलूँगा। यदि मुझ सेवकसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिए। लक्ष्मण बोले—हे सुग्रीव! मेरे भाई तुम सरीखे नाथको पाकर सनाथ बन गए हैं। तुम्हारा भाव शुद्ध और मन पवित्र है। तुम्हारे जैसे सहायकको पाकर महात्मा रामचन्द्र सबल हो गए हैं और वे अब निश्चयही रावणका बध करेंगे। अस्तु तुम मेरे साथ चलकर अपने दुःखी मित्र रामचन्द्रको समझाओ। क्योंकि वह सीताके वियोगमें महान् दुःखी हो रहे हैं और मैंने जो कुछ कठोर वचन तुम्हें कहे हैं, उसके लिए मुझे क्षमा करना तुम्हारा परम धर्म है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३६॥

सैंतीसवाँ सर्ग

सुग्रीव-हनुमान् वार्ता और द्रुतगामी दूतों द्वारा वानरी-सेनाका आह्वान

वीर लक्ष्मणके मधुर वचनोंसे सुग्रीवका शोक दूर हो गया। वे अपने समीप खड़े हनुमान्से बोले—हे पवनसुत! महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्याचल और कैलाश मन्दिरके श्वेत शिखर तथा चमकनेवाले पर्वत तथा रक्तवर्ण, उदयाचल, अस्ताचल तथा गुफाओंमें निवास करनेवाले समस्त बानरोंको शीघ्रही एकत्र कराओ। वानर-राज सुग्रीवकी यह आज्ञा सुनकर समस्त वानरोंको एकत्र करनेके लिए वे द्रुतगामी बानर आकाश-मार्गसे वायुके समान उड़ चले। राजाके भेजे हुए उन बानरोंने समुद्र, बन, पर्वत, तालावमें निवास करनेवाले वानरोंसे कहा—हे भाइयों! तुम्हें राजाने बुलाया है। राजाकी घोषणा सुनकर वे समस्त बानर प्राणोंका भय छोड़कर बड़े वेगसे चले। उस समय तीन करोड़ वानरोंने जो कज्जलके समान श्याम वर्णके थे, श्रीरामचन्द्रके पहुँचनेके लिए एक साथ ही प्रस्थान किया तथा अस्ताचल पर्वतसे दश करोड़ वानरोंने और एक दूसरे पर्वतसे हजार करोड़ वानर जो सिंहकेहरिके समान थे, इकट्ठे होकर रामचन्द्रके पास पहुँचनेके लिए शीघ्रतासे गमन किया। उसी समय हिमवान् पर्वतपर निवास करनेवाले एक हजार करोड़ बानरोंने और विन्ध्याचल पर्वतसे दश हजार करोड़ बानरोंने, जो देखनेमें बड़े ही भयानक थे और जिनके कार्य भी बड़े भयान थे, एक ही साथ श्रीरामचन्द्र के पास पहुँचनेके लिए अति शीघ्रता पूर्वक चल पड़े। पुनः क्षीर-समुद्रसे,

तमाल वनसे और अन्यान्य गुफाओंसे अगणित वानर एकत्र होकर चले। उधर जो वानर दूत शीघ्र बानरोंको एकत्र करनेके लिए भेजे गए थे, उन्होंने हिमवान् पर्वतपर एक विशाल वृक्षको देखा जो बड़ा ही अद्भुत था। इसी पर्वतपर एक समय महादेवजीने आकर यज्ञ किया था, जहाँ यह वृक्ष उत्पन्न हुआ था। उस यज्ञसे देवताओंमें बड़ी प्रसन्नता हुई थी और तत्पश्चात् वहाँ यह वृक्ष उत्पन्न हुआ जिसके अन्य अद्भुत गुणों और दृश्यके साथ-साथ उसके फल अमृतके समान अमरत्व प्रदान करनेवाले थे। सुग्रीवके बन्दरोंने उन फलोंको खूब खाया, जिसके खा लेनेसे महीनों भूख नहीं लगती थी क्योंकि वे बड़े ही दिव्य थे। पश्चात् बानरोंने उन दिव्य फलोंको लाकर सुग्रीवको दिया और आकर वह समाचार सुनाया कि महाराज! आपकी आज्ञासे समस्त बानर अपने साथियों और सहायकों सहित यहाँ आ रहे हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

अपनी सेना सहित सुग्रीवका श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना

इसके कुछ ही क्षण पश्चात् वहाँ बानरोंका समूह आने लगा। सबने आकर राजा सुग्रीवको शिर नवाकर प्रणाम किया और अपनी-अपनी भेंट दी। भेंट आदि लेकर सुग्रीवने उन्हें रामचन्द्रके पास जानेकी आज्ञा दी। एक-एक कर सभी बानर रामचन्द्रके स्थानकी ओर चले। तदनन्तर लक्ष्मण और सुग्रीव भी पालकी द्वारा रामचन्द्रके पास उतरे। सुग्रीवने रामचन्द्रके चरण स्पर्श कर दण्ड-प्रणाम किया। रामचन्द्रने उठकर सुग्रीवको हृदयसे लगाया। सुग्रीव हाथ जोड़कर खड़े हो गए। सुग्रीवको अपने पास बिठाकर उनकी ओर देखते हुए रामचन्द्र कहने लगे—हे राजन्! जो समयके अनुकूल अर्थ, धर्म, कामके अनुसार कर्त्तव्य करता है वही राजा माना जाता है। जो राजा अपने शत्रुओंका विनाश करते हुए मित्रोंको एकत्र करता है वही धर्म-युक्त होता है और वही उन तीनों पदार्थों (अर्थ, धर्म, काम) को पाकर सुखको प्राप्त होता है। हे राजन्! हमारे कार्य करनेका समय आ गया है। अतएव अब आप अपने मन्त्रियों सहित हमारे भावी कार्यके लिए विचार कीजिए। क्योंकि समय पाकर जो कार्य नहीं करता, उसका मनोरथ

कभी पूर्ण नहीं होता। महात्मा रामचन्द्रके इन वचनोंको सुनकर सुग्रीव कहने लगे—हे महाराज! मैं तो आपका सेवक हूँ। मुझे आप जो कुछ आज्ञा दीजिएगा मैं शिरोधार्य करूँगा। हे राघवेन्द्र! अब इस बानरी-राज्य में पहलेसे कहीं अधिक बल आ चुका है। और अब आज मैं इस योग्य हुआ हूँ कि उस दुष्ट रावणको यमलोक भेजकर सीताको उससे छीन लाऊँगा। किष्किन्धाकी बानरी-सेनाको आप साधारण न समझिएगा। इसका कोई अन्त नहीं है। जब वे सब-के-सब आ जायेंगे, तब मैं देखूँगा कि मेरे इन बानरोंके साथ वह दुरात्मा रावण कैसे विजयी होगा? हे रामचन्द्र! अब मैं अपने बुद्धिमान् मन्त्रियोंके साथ बैठकर यहाँ परामर्श करूँगा और रावणसे लड़नेके लिए तथा उसे मारकर सीताको लौटानेके लिए अपनी वृहद् योजना बनाऊँगा, जिससे निश्चय ही आपको सफलता मिलेगी। यह सुनकर रामचन्द्र सुग्रीवपर बहुत प्रसन्न हुए और उनका वह पहले का क्रोध जाता रहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रके पास सुग्रीवकी समस्त बानरी-सेनाका एकत्र होना।

महात्मा सुग्रीवके इन प्रिय वचनोंको सुनकर रामचन्द्रने उन्हें हृदयसे लगा लिया और बोले—हे बानरराज! मैं तुम्हारे तेज और बलको जानता था। तुम निश्चयही इन्द्रके समान पराक्रमी और सूर्यके समान तेजस्वी हो। तुम महान् हो, उपकारी हो। यदि तुम अपने मित्रका उपकार करो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? मैं तुम्हारे जैसे मित्र एवं सहायकको पाकर अवश्य ही शत्रुओंपर विजय प्राप्त करूँगा। अस्तु हे मित्र! तुम मेरी सहायता करो। रावणने सीताका हरण धोखेसे किया है। इस कारण मैं उसे धोखेमें अपने तीव्र बाणोंसे वैसे ही मारूँगा जिस प्रकार शचीके पिता पौलोमीको इन्द्रने मारा था। रामचन्द्र सुग्रीवसे ऐसा कह ही रहे थे कि सहसा आकाशमें ऐसी धूल छा गई कि जिससे सूर्य छिप गए, पृथ्वी कम्पित हो गई। सुग्रीवने कहा—मेरे और बानर आ रहे हैं। रामचन्द्रने देखा तो असंख्य सेनापतियोंकी सेनासे पृथ्वी भर गई। हिमवान पर्वतपर निवास करनेवाला युद्धबलि नामक

बानर अपने साथ दश करोड़ बानरोंको लिए आ पहुँचा। उसी समय तारा का पिता भी कई हजार बानरोंको अपने साथ लिए हुए आया तथा सुग्रीव का श्वसुर भी एक हजार करोड़ बानर लेकर आ पहुँचा। महावीर हनुमान के पिता भी कई हजार बानरोंको अपने साथ लेकर आए। सेनापति नील भी अपने साथ दश करोड़ बानरोंको लेकर रामचन्द्रके पास आए तथा सेनापति गवय अपने साथ पाँच करोड़, परीमुख हजार करोड़, द्विविद एक करोड़, मयन्द हजार करोड़, गजनायक तीन करोड़ बानर, जाम्बवन्त दश करोड़ वीर रीछ लेकर पहुँच गए। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे सुग्रीव! मैं क्या कहूँ? तुम स्वयं बुद्धिमान् हो, इन्हें जहाँ चाहो ठहराओ। ऐसी आज्ञा सुन सुग्रीवने सेनापतियोंको आज्ञा दी कि आप अपनी सेनाको जहाँ चाहें ठहरावें तथा सुखपूर्वक ठहरने और भोजन आदिका प्रबन्ध कर देवें। अब तक जो सेनापति या बानर न आए हों उन सबको भी पता लगाकार आप लोग एकत्र करा लें अथवा कोई प्रधान जाकर उन्हें लिवा लावें। आप लोग जानते हैं कि किसीकी भी अनुपस्थितिके लिए कड़े दण्ड की घोषणा मैं पहले ही कर चुका हूँ। मेरी उस घोषणामें किसी प्रकारका संशोधन नहीं होगा। यह आप अच्छी तरह जान लें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३९॥

चालीसवाँ सर्ग

कुछ बानरोंको पूर्व दिशाकी ओर भेजना

प्रत्येक सेनापतिका समुचित परिचय कराते हुए सुग्रीवने रामचन्द्रजीसे कहा—पुरुषोत्तम! यह समस्त बानर इच्छानुसार शरीर धारण करने वाले एवं जल-थल और आकाशमें प्रत्येक स्थानमें पहुँचनेकी शक्ति रखने वाले हैं। मैंने इन्हें उचित स्थान पर ठहरा दिया है। ये लोग युद्ध विद्या विशारद, परिश्रम, और कष्ट सहन करनेमें समर्थ हैं और यह सभी मेरी आज्ञानुसार आपकी सेवा करनेके लिए हैं। यह महापराक्रमी और शूर वीर हैं। अब आप इनसे जो भी काम लेना चाहे लें। बानराधीश सुग्रीवकी ऐसी वाणी सुन महाराज रामचन्द्रने उनसे कहा—मित्रवर! इसका भार तुम्हारेही ऊपर है। अस्तु पहिले तो यह ज्ञात होना चाहिये कि देवी सीता जीवित हैं या मर

गई-और यदि जीवित हैं तो कहाँ हैं? रावण कहाँ रहता है? इतना समाचार ज्ञात करनेके बाद विचार करना होगा कि अब हमें क्या करना चाहिए? इस कार्यको मुझसे अच्छा तुम्हीं कर सकते हो। महाराज रामचन्द्र की ऐसी वाणी सुन सुग्रीवने महा तेजस्वी विनत नाम सेनापतिको बुलाकर कहा-वीरवर! तुम उन बलवान् बानरोंके स्वामी हो जो सूर्य और चन्द्रके समान तेज वाले हैं। तुम देश और कालके जाननेवाले, एक लाख बानरोंके स्वामी हो। अस्तु तुम अपनी सेना सहित पूर्वकी ओर जाकर वहाँके वनों, पर्वतों, नदी, नालों, खोह और कन्दराओंमें देवी सीता और दुराचारी रावण का पता लगाओ। गंगा, सरयू, कौशिकी, सरस्वती, सोन, मही, कालमही, कालिन्दी, यमुना, ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशी, कौशल, मगध, महाग्राम, पुण्ड्र और अनंगादि समस्त स्थानोंमें देवी सीताका पता लगाओ। इसके बाद रेशमके कीड़ोंवाले स्थानोंमें चाँदी एवं सोनेकी खानोंमें, घूमकर महाराज रामचन्द्रकी प्यारी सीताका पता लगाओ। पर्वतों, वनों, समुद्रों एवं मंदराचल इत्यादि पर सीताकी खोज करो। होंठ तक लम्बे २ कानवाले, लोहके समान दृढ़ मुखवाले, एवं एक पैरसे चलनेवाले, बिना घरके ही रहनेवाले, मनुष्योंको खानेवाले, कठोर रोम एवं सोनेके समान पीले रंगवाले, द्वीपोंके निवासी कच्ची मछली खानेवाले, सुन्दर और स्वरूपवान् किरात जाति वालोंमें भी जाकर खोजो। नरव्याघ्र कहे जानेवाले दुष्ट राक्षसोंके यहाँ भी भली प्रकार खोज करना। जल एवं स्थलके सभी स्थानों, यव-द्वीप, सुवर्ण द्वीप एवं उसके आगे शिशिर नाम पर्वत परके समस्त कन्दराओं, खोहों और झरनोंमें सीताकी खोज करो। आगे समुद्र है और आगे शोण नामका नद है जिसका पानी रक्तवर्ण है, वहाँ पर सिद्ध और चारण निवास करते हैं, वहाँ पर बड़ी २ गुफाएँ और कन्दराएँ हैं। उन सभी स्थानोंमें यशस्विनी सीताका पता लगाओ। उसके आगे इक्षु नामक समुद्र जिसके किनारे बड़े २ दुर्दान्त राक्षस निवास करते हैं। उन्हें ब्रह्माका वरदान है कि, वह आकाश-मार्गमें उड़नेवाले पक्षियोंकी छाया पकड़ कर खींच लेते हैं, वहाँ सावधानीके साथ जाना। इसके आगे जाने पर तुम्हें रक्तवर्ण वाला महा भयंकर लोहित नामका सागर मिलेगा जिसके

आगे एक बड़ा भारी सेमलका पेड़ है, वहीं पर विश्वकर्माने पक्षिरा गरुड़के लिए घर बनाया है। वहाँ बड़े २ पर्वताकार राक्षस पर्वत शृङ्गों लटका करते हैं। जो सूर्योदय होते ही सूर्य भगवान्से भयंकर युद्ध करते और परास्त होकर जलमें गिर जाते हैं और पुनः जीवित हो अपने स्था पर लटक जाते हैं। वीरों! वहाँसे आगे बढ़ने पर तुम्हें क्षीर सागर मिले जिसकी लहरें मोतियोंके मालाके समान पुनीत होती हैं। इस समुद्र भीतर ऋषभ नामका पर्वत है जिस पर नाना प्रकारके सुगन्धित फूलों वृक्ष हैं और एक अत्यन्त मनोहर तालाब है जिसमें श्वेत कमल चाँदी समान दिखाई पड़ते हैं जिसमें सुवर्णके रंगकी पीली केशर अत्यन्त भ मालूम होती है। इस तालाबका नाम सुदर्शन है। इसमें हंस, सारस, चक्रवा देव, चारण और गन्धर्व गण निवास करते हैं। वीरों! वहाँसे आगे बढ़ने तुम्हें सम्पूर्ण प्राणियोंको दुःख देनेवाले जलोद नामका समुद्र मिलेगा, वहीं तुम्हें और्व नामके ब्रह्मर्षिके क्रोधसे उत्पन्न बड़वानल दिखाई पड़ेगा। प्रलयके समय चर और अचर समस्त प्राणियोंके संहारका कारण होगा। बड़वानलको देखकर जलजन्तु इतनी जोरसे रोते हैं कि उनका रोना दूर-दू तक सुनाई देता है। इस समुद्रके तेरह योजन आगे बढ़नेपर सोनेके वर्णवा कनक शिला नामका पर्वत तुम्हें मिलेगा। उसी स्थानपर तुम्हें कमलके समा नेत्र हैं जिनके और चन्द्रमाके समान तेजस्वी मुखमण्डल है जिनका, ऐ श्वेत वर्णवाले भगवान् शेषनाग जो पृथ्वीको अपने मस्तकपर उठाए दिख पड़ेंगे। सम्पूर्ण देवताओं द्वारा पूजित हजार मुखवाले नीलाम्बर धारण कि हुए अनन्त भगवान् आगे बैठे हुए मिलेंगे। उस पर्वत पर वेदीके अ वृक्षके आधारपर अगस्त्य भगवान्की तीन स्कन्दोंवाली ध्वजा लगी हुई है देवराज महाराज इन्द्रने उस वृक्षको पूर्वकी सीमाके रूपमें स्थापित किया है आगे बढ़नेपर सोनेका उदय पर्वत मिलेगा। चार २ सौ कोस ऊँचे गगनचुम्बी उसके शिखर हैं। उसके एक सिरेपर एक वेदी बनी है और उस स्थानमें ल हुए नाना प्रकारके पुष्पोंके वृक्ष सूर्यके समान प्रकाशवाले दिखाई पड़ते हैं। उ स्थानपर चार सौ कोस लम्बा एवं चालीस कोस ऊँचा सौमनस नामका पर्व है। वामन भगवान्ने जब पृथ्वीको नापा था, तब पहला पैर इसी सौमन

नामक पर्वतपर और दूसरा मेरुगुरु पर्वतपर पड़ा था। जम्बू द्वीपकी परिक्रमा करते हुए सूर्य भगवान् सर्वप्रथम उस पर्वतपर दर्शन देते हैं। उस पर्वतपर सूर्यकेही समान वैखानस और बालखिल्य नामके तपस्वी रहते हैं। उस पर्वत के समीपही सुदर्शन नामक द्वीप है। उसके शिखरपर सूर्यके आतेही संसारमें प्रकाश हो जाता है। हे वीरों! यहाँ भी तुमलोग यशश्विनी सीताकी खोज करो। सूर्योदयका सर्वप्रथम और मुख्यद्वार होनेके कारणही इस दिशाका नाम पूर्व है। यहाँसे आगे जाना असम्भव है, क्योंकि वहाँपर अन्धकारका साम्राज्य है। वीरों! मेरे बताए हुए इन स्थानोंके अतिरक्त यदि और कोई स्थान रह गया हो तो वहाँ भी तुमलोग देवी सीताका पता लगाना। बहादुरों! जहाँ तक तुमलोग जा सकते हो वहाँ तक मैंने बता दिया। अब तुमलोग जाकर रावण और सीताका पता लगाओ। एक महीनेके भीतर इन सभी स्थानोंमें खोजकर आ जाना चाहिए। जो बानर अवधि बिताकर सीताकी खोज किए बिना आएगा, वह मेरे हाथों मारा जायगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्ड का चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

एकतालीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका अंगद इत्यादि वीरोंको दक्षिण दिशाकी ओर भेजना

पूर्व दिशाकी ओर विशाल बानरी सेना भेज बुद्धिमान् सुग्रीवने अग्निपुत्र नील, नल, ब्रह्माके पुत्र पराक्रमी जाम्बवान्, सुहोत्र, शररिशर गुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, द्विविद, मयन्द, गन्धमादन, उल्कामुख, अनङ्ग, और अंगदादि बलवान् २ बानरोंको बुलाकर दक्षिण दिशाकी ओर भेजा। सुग्रीवने कहा—वीरों! मैं दक्षिण दिशाके भयंकर और कठिन स्थानों एवं पर्वतोंका परिचय तुम्हें कराता हूँ। सर्वप्रथम पहले तुम लोग विन्ध्य नामके पर्वतपर जाओ, जिसके आगे बढ़नेपर तुम्हें सर्पोंसे परिपूर्ण नर्मदा नामकी नदी मिलेगी। तत्पश्चात् गोदावरी, कृष्णा, महानदी इत्यादि नदियाँ मिलेंगी। आगे बढ़नेपर मैकला, उत्कल, दशार्णा देशोंके नगर और ग्राम मिलेंगे, इनमें पता लगाते हुए अवन्ती, विदर्भ, अष्टिक, माहिषक, इत्यादि प्रदेशोंमें पता लगाते हुए दण्डकारण्यमें पहुँच जाओगे। वहाँसे आगे बढ़कर अन्ध्रपुण्ड्य, चोल, पाण्ड्यदेश और गोदावरीनदीके किनारोंसे होते हुए अयोमुख नाम धातुओं

के पर्वतपर पहुँच जाओगे। इस पर्वतकी चोटियाँ विचित्र हैं। इसके आगे मलय गिरि नामका पर्वत है, जहाँपर चन्दनके वृक्षोंकी बहुतायत है। वहाँसे आगे बढ़नेपर कावेरी नदीके किनारे पहुँच जाओगे जिसके स्वच्छ जलमें विहार करनेको स्वर्गकी अप्सराएँ आती हैं। अब तुमको वहाँसे आगे चलनेपर महर्षि अगस्त्यका तप-स्थान मिलेगा। महर्षि अगस्त्यको प्रणामकर आगे बढ़नेपर तुमलोग ताम्रपर्णी नामक नदीके किनारेपर पहुँच जाओगे। इसको पारकर तुमलोग पाण्ड्यवंशी राजाओंके नगरमें पहुँच जाओगे। तत्पश्चात् तुम्हें समुद्रका किनारा मिलेगा। वहाँसे समुद्र लाँघनेका उपाय करना होगा। उस समुद्रमें महर्षि अगस्त्यने महेन्द्र नामके पर्वतको रख दिया है। उस रमणीक पर्वतपर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण इत्यादि-इत्यादि निवास करते हैं। उस पर्वतके आगे चार सौ कोसपर एक सुन्दर द्वीप है, जहाँ मनुष्य नहीं जा सकते। जहाँ तक मेरा ध्यान है, राक्षसोंका राजा रावण वहीं रहता है। अस्तु वहाँ तुमलोग सीता और रावणका पता लगाओ। इस द्वीपके मार्गमें अङ्गार नामकी एक छायाग्राही राक्षसी निवास करती है। अस्तु उससे सावधान रहना। सबलोग अपने-अपने संशयोंको त्यागकर देवी सीताका पता लगाओ। वहाँसे भी और चार सौ कोस आगे बढ़नेपर समुद्र के मध्यमें तुम्हें पुष्पितक नामका पर्वत मिलेगा, जो चन्द्र और सूर्यके समान प्रकाशमान दिखाई देगा। इसपर भी सिद्ध और चारणगण निवास करते हैं। दक्षिणायन सूर्य इस पर्वतके शिखरोंपर नित्य जाते हैं। यह नास्तिक और पापी मनुष्योंकी दृष्टिमें नहीं आता। इस पर्वतको प्रणामकर आगे बढ़नेपर तुम्हें सूर्यवान् नामका पर्वत मिलेगा। उसके आगे छप्पन कोसका दुष्कर मार्ग पार करने पर विद्युत नामका पर्वत मिलेगा। वहाँके स्वादिष्ट फलोंको खाकर मधु पीना तब आगको प्रस्थान करना। वहाँ तुम्हें अत्यन्त ही मनोहर कुञ्जर नामका पर्वत मिलेगा, जो चार कोस चौड़ा और चालीस कोस ऊँचा होगा। इसपर विश्वकर्माने महर्षि अगस्त्यके लिए एक घर बनाया था। समीप ही सर्पोंके रहनेकी भोगवती नामकी नगरी है, जो चारों ओरसे सुरक्षित है। उसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। वहाँ सर्पोंके राजा वासुकी की राजधानी है। वहाँ के सभी स्थानों को खोज कर

तुम लोग आगे बढ़ोगे तब ऋषभ नामका पर्वत मिलेगा जो हर प्रकारके रत्नोंकी खान है। वहाँ गोरोचन, हरिश्याम, पद्माख आदि चन्दनके वृक्ष होंगे। अग्निके समान वर्णवाले उन चन्दनोंको कोई छूता नहीं। तुमलोग भी उन्हें न छूना। उस वनकी रक्षा रोहित नामके गन्धर्व करते हैं। बस वहीं पृथ्वीका अन्त है। अस्तु तुमलोग वहीं तक जा सकते हो। मैंने दक्षिण दिशाका समस्त भूगोल तुम्हें समझा दिया। सम्भव है कुछ स्थान बच गए हों, परन्तु तुमलोग उन स्थानोंमेंभी देवी सीताको ढूँढ़ना। एक महीनेके भीतर सर्वप्रथम पहले पता देनेवालेको मेरे ही समान ऐश्वर्य प्राप्त होगा। इसके विपरीत अवधि बिताकर आगे खबर न लानेपर प्राणदण्ड दिया जायगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

सुषेण और आर्चिस्मान इत्यादि वानरोंको पश्चिम ओर भेजना

दक्षिण दिशाका प्रबोध करनेके बाद कपिराज सुग्रीवने ताराके पिता सुषेणसे हाथ जोड़कर सीताका पता लगानेके लिए कहा। तत्पश्चात् मारीच के प्रतापी पुत्र आर्चिस्मानसे भी कहा—आप अपने दो लाख वानरी सेनाके सहित वीरवर सुषेनके साथ पश्चिम दिशाकी ओर देवी सीताको खोजनेके लिए जायँ। आप लोग सौराष्ट्र, बाहुलीक, चन्द्रचित्त, पुन्नाग, वकुल एवं उद्दालकके वनों, पर्वतोंमें एवं कुक्षि तथा केतक नामके वनोंमें देवी सीता की खोज करें। नदियोंके किनारों, पर्वतोंकी कन्दराओं एवं तपस्वियोंके आश्रममें भली प्रकार देवी सीताका पता लगाओ। पर्वतके दुर्गम मार्गों को पार करनेके बाद तुम्हें पश्चिमी समुद्र मिलेगा। उसमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ एवं भीमकाय मगर दिखाई देंगे। एवं केतकी, तमाल और नारियलके सघन वन मिलेंगे। वहाँपर सर्वत्र घूम-घूमकर रावण और सीताका पता लगाना। वहाँसे आगे बढ़ मुरचीपट्टम और जटापुरकी ओर जाना। फिर आवन्ती इत्यादि नगरों और घोर वनों एवं पर्वतोंमें देवी सीताकी खोज करना। वहाँसे आगे बढ़ सिन्धु और सागरके सङ्गम पर सोमगिरि नामी विशाल पर्वतपर खोजना, इस पर्वतपर सिंह नामके पक्षी रहते हैं, जो बड़ी-बड़ी मछलियोंको पकड़ २ कर खा जाते हैं, वे पक्षी बड़ी२ हाथियोंको पकड़ लेते हैं।

आगे बढ़नेपर समुद्रके गर्भमें पर्यत्र नामका विशाल पर्वत मिलेगा। इसके विशाल शिखर चार २ सौ कोस ऊँचे हैं, अस्तु वहाँ जाना अत्यन्त दुस्तर है। इस पर्वतपर अग्निके समान तेजवान् महापापी चौबीस करोड़ गन्धर्व-गण निवास करते हैं। आप लोगोंको न तो वहाँ जानाही होगा, नहीं वहाँका फल इत्यादि खाना होगा। वहाँपर तुमलोगोंको केवल सीताका पता लगाना होगा। वहीं पर वैदूर्य-मणिके समान प्रकाश करने वाला एवं हीरेके समान कठोर वज्र नामका पर्वत है, जो चार सौ कोस लम्बा है, और उसमें नाना प्रकारके वृक्ष और लतायें हैं। वहाँपर बहुत सावधानीसे देवी सीताकी खोज करना। उस समुद्रके चतुर्थांशमें चकवा नाम वाला पर्वत है जिसपर विश्वकर्माने हजार आरों वाले चक्र निर्माण किए थे। उसी पर्वत पर जाकर भगवान् विष्णुने पंचजन्य और हयग्रीव नामक दानवोंको मारकर शंख और चक्र प्राप्त किया था। उस पर्वतकी कन्दराओंमें रावण और सीताका पता लगाना। उसी स्थान पर सोनेकी चोटियों वाला दो सौ छप्पन कोस लम्बा बराह नामका पर्वत है। उसपर दुष्टात्मा नरक नाम दैत्यकी राजधानी प्राग्ज्यो-तिषके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ परभी सावधानता पूर्वक स्नेहमयी देवी सीताका पता लगाना। इसके आगे तुम्हें सुवर्णके रंगवाला एक और पर्वत मिलेगा जिसमें अनेकों झरने झर रहे होंगे जिनके किनारे हाथी, सिंह और व्याघ्र इत्यदि हिंसक पशु स्वच्छन्दता पूर्वक घूम रहे होंगे। उसके आगे बढ़ने पर तुम्हें मेघनाद नामका पर्वत मिलेगा, जिसपर हरे घोड़ोंवाले देवताओंने देवराज-इन्द्रका अभिषेक किया था। उसके आगे बढ़नेपर तुम्हें साठ हजार सोनेके रंगवाले पर्वत मिलेंगे, जिनपर नानाप्रकारके वृक्ष और लताएँ लगी होंगी। उन्हींके मध्यमें पर्वतराज सुमेरुके तुम दर्शन करोगे। भगवान भुवन भास्करने सर्व प्रथम उन्हींको वरदान दिया था। उन्होंने कहा था— रात या दिनमें जो भी तुम्हारे ऊपर निवास करेगा, वह सोनेका हो जायगा। उसी पुनीत पर्वतपर विश्वावसु और मरुत-गण आकर भी भगवान् सूर्यकी आराधना करते हैं। देवताओंकी पूजा ग्रहणकर सूर्य भगवान् यहींसे अस्ता-चलको गमन कर जाते हैं। अस्ताचल पर्वत वहाँसे चार सौ कोसकी दूरी पर है। उस अस्ताचलपर विश्वकर्मा रचित अनेकों अटारियोंका बना एक

र है और अनेकों प्रकारके वृक्ष और लताएँ हैं, जिनपर नाना प्रकारके
क्षी कलरव करते हैं। पाश-धारी वरुणदेव यहीं रहते हैं। मेरु और अस्ता-
चलके मध्यमें एक सुवर्ण-मय ताल वृक्ष है, जिसमें बड़ी-बड़ी दस शाखाएँ हैं
और उसके नीचे एक विचित्र वेदी है। आप लोग वहाँके प्रत्येक स्थानकी
खोज भली-भाँति करना। उसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माके समान तेजस्वी मेघ
सावर्णी नामके ऋषी रहते हैं; तुमलोग उन्हें प्रणाम करना और सीताका पता
पूछना। वीरवरों! आप लोग यहीं तक पहुँच सकते हैं। आशा करता हूँ
कि आप लोग सीताका पता लगाकर एक महीनाके भीतर ही लौट आवेंगे।
आप लोगोंके साथ महापराक्रमी वीरवर सुषेन भी जा रहे हैं। आप लोग
सावधानता पूर्वक देवी सीताका पता लगाना और अवधिके भीतर पता
लगाकर लौट आना। अवधि बीतनेपर दण्ड अवश्य ही भोगना होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४२॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

शतबल आदि वानरोंको उत्तर दिशाकी ओर भेजना

पश्चिम दिशामें वानरोंको भेज महाराज सुग्रीवने शतबलि नामक वानर
को बुलाया, जो महाराज रामचन्द्र और सुग्रीवका हितचिन्तक था। उससे
सुग्रीवने कहा—वीरवर! तुम अपने ही समान बलवान् एक लाख वानर
सेना साथ ले महाराज रामचन्द्रके कार्य साधनके हेतु उत्तर दिशाकी ओर
जाओ और उनकी प्यारी स्त्री सीताका पता लगाओ। मैं उनके उपकारके
बोझसे दबा हुआ हूँ। अस्तु उपकारका बदला देना और सीताका पता
लगाना हमारा कर्तव्य है। आप लोग उत्तरकी ओर जाकर म्लेच्छ,पुलिन्द,
शूरसेन, प्रस्थल, भरत, कुरु, भद्रक, काम्बोज, यवन और शक आदि देशोंमें
खोजते हुए आप लोग हिमालय पर्वतपर जावें। और वहाँके सभी स्थानों
में देवी सीताका पता लगावें। पत्पश्चात लोध्र, पत्रक और पद्माख के बनों
में जाकर खोज करें। आगे चलनेपर देवताओं और गन्धर्वोंके रहनेका
स्थान सोम नामक पर्वत मिलेगा। उसके आगे देव सराय नामवाला पर्वत
मिलेगा, जिसपर अनेकों प्रकारके वृक्ष बने होंगे और नाना प्रकारके पक्षी
जहाँपर निवास कर रहे होंगे। उस पर्वतकी गुफाओं और कन्दराओंमें

रावण और सीताका पता लगाओ। आगे बढ़नेपर आप लोग उस मैदान में पहुँचेंगे, जिसका विस्तार चार सौ कोसका होगा और उसमें नदी, झरने, वृक्ष एवं पर्वत इत्यादि-इत्यादि कुछ भी न होंगे। और न वहाँ कोई जीव-जन्तु होंगे। उस भयानक मैदानको पार करनेके बाद श्वेत रंगका कैलाम नामका पर्वत मिलेगा, जिसको देखते ही आप लोग प्रसन्न हो जायँगे। इस पर्वतपर विश्वकर्माने कुबेरजीके लिए सुन्दर भवनका निर्माण किया है। समीप ही एक अत्यन्त ही रमणीक और मनोहर कमल पुष्पोंसे युक्त सरोवर है, जिसमें हंस, सारस और चन्द्रवाक तैरते हैं तथा अप्सराएँ विहार करती हैं। वहींपर देवताओंके भण्डारी कुबेर यक्षोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ जाकर आप लोग रावण और सीताका पता लगाइए। आगे बढ़नेपर आपको क्रौंच नामका पर्वत मिलेगा। वहाँपर आप लोगोंको सावधान रहना होगा। क्योंकि वहाँपर सूर्यके समान तेजवाले एक महात्मा निवास करते हैं। वहाँपर खोजकर आप लोग आगे बढ़ेंगे, तब आप लोगोंको मानस नामका पर्वत मिलेगा। वहाँपर भी हर जगह सीताका पता लगाना। आगे बढ़नेपर मयदानवका निवास स्थान मैनाक नामका पर्वत मिलेगा, जहाँपर घोड़के समान मुखवाली स्त्रियाँ रहती हैं। वहाँपर भी सीताका पता लगाना। आगे बढ़नेपर आप लोगोंको सिद्धाश्रम मिलेगा, जहाँ वैखानस, सिद्ध, चारण और बालखिल्यादि महातपस्वी और निष्पाप जन निवास करते हैं। उन लोगोंको प्रणामकर सीताका समाचार पूछना। समीप ही एक अत्यन्त ही मनोहर सरोवर है, जहाँपर कुबेरका हाथी अपनी हथिनियोंके साथ घूमा करता है। सारस, हंस, चकोर इत्यादि पक्षी विहार करते हैं। इसके आगे बढ़ना असम्भव है, क्योंकि वहाँपर सूय, चन्द्र और नक्षत्रोंसे आकाश शून्य है। वहाँ घोर अन्धकार है। यहींपर सिद्ध, चारण जन तपस्या करते हैं। वहाँपर उनको तपोबलका ही प्रकाश होता है। आगे बढ़नेपर शैलोदक नाम की नदी मिलेगी, जिसके किनारोंपर कीचक जातिके बाँसोंके वृक्ष बहुत होंगे। जो आपसमें एक दूसरेसे सटे होंगे। इन्हीं बासोंके द्वारा तपस्वी लोग नदी को पार करते हैं। उसी स्थानपर पुण्य भूमि कुरु देश है। वहाँके निवासी सुनहले कमलोंवाले तालाबोंका जल पीते हैं। क्योंकि यहाँपर बैदूर्य मणिके

समान स्वच्छ जल एवं सोनेके रंगोंवाले अनेकों कमलोंसे संयुक्त अनेक नदियाँ हैं। यहाँके प्रत्येक जलाशय मणियों और रत्नोंसे परिपूर्ण हैं। वहीं पर नीले कमलका वन भी है। वहाँके नदियोंके किनारे हीरा, मोती, मणि, माणिक इत्यादि रत्न और सुवर्णके ढेरोंसे परिपूर्ण हैं। क्योंकि उन्हीं नदियों के बीचमें रत्नों और मणियोंवाले पर्वत हैं, जो हर प्रकारकी भोगवान वस्तुओं को भी उत्पन्न करते हैं। वहाँके वृक्षोंसे सुन्दर पलङ्ग, और बिछौने मिलते हैं तथा अनेकों वृक्षोंसे भोजन करने एवं पीनेवाले पदार्थ भी प्राप्त होते हैं। वहाँपर गुणवती, सुन्दरी नवयौवना स्त्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं; जिन्हें सिद्ध, चारण, गन्धर्व और यक्ष स्मरण करते हैं। क्योंकि वहाँपर सभी पुण्यात्मा प्रियोंसे प्रेम करते हैं। वहाँपर सदैव ही हँसने एवं गाने-बजानेका शब्द सुनाई पड़ता है। वहाँके लोग कुकर्म नहीं करते, सुकर्म ही करनेवाले होते हैं। आगे बढ़नेपर तुम्हें एक समुद्र मिलेगा, जिसमेंसे सोमगिरि नामका पर्वत है। उसपर सूर्यका प्रकाश नहीं पड़ता, बल्कि वह अपने ही तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होता रहता है। वहाँपर विश्वनाथ, एकादश-रुद्र, भगवान् शंकर, एवं ब्रह्मर्षियोंके साथ ब्रह्माजी निवास करते हैं। उस स्थानके आगे कोई भी प्राणी नहीं जा सकता। अस्तु तुमलोग वहीं तक पता लगा कर शीघ्रतापूर्वक यहाँ आ जाओ। आप लोग अग्निके समान तेजवाले एवं वायुके समान वेगवाले हैं। आप लोगों द्वारा देवी सीताका पता पानेपर मैं और महाराज रामचन्द्र दोनों ही बहुत प्रसन्न होंगे। साथ ही साथ मैं आप लोगोंको भी मुँह माँगा इनाम देकर प्रसन्न करूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका तेंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

सबके बाद वीरवर हनुमान्‌को भी दक्षिण दिशामें भेजना

वानरराज सुग्रीवने यद्यपि चारों दिशाओंमें अपनी सेना रवानाकर दी परन्तु उनके हृदयमें कार्यसिद्धिका विश्वास नहीं हुआ। अस्तु उन्होंने पवन-पुत्र हनुमान्‌को बुलाकर कहा—हे कपिश्रेष्ठ हनुमान्! तुम पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष, जल एवं स्थलके समस्त स्थानोंमें पहुँचनेकी सामर्थ्य युक्त हो। स्वर्ग, मर्त्य, और पातालमें भी तुम्हारी एकसी गति है। देवता, दैत्य, दानव,

यक्ष और गन्धर्व सभीको तुम जानते हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि तुम्हारे समान बलवान्, तेजवान्, बुद्धिमान् इस संसारमें कोई नहीं है, अस्तु अब तुम देश और कालको जाननेवाले नीतिनिपुण और पंडित हो, अस्तु देवी-सीताका पता लगानेका कार्य आपको स्वयं करना चाहिए। कपिराज सुग्रीव के ऐसे बचन सुन चतुर रामचन्द्रने यह जान लिया कि यद्यपि कपिराजने वानर समूहको चारों ओर भेज दिया है, परन्तु उनका हृदय शान्त नहीं हुआ। यही कारण है कि यह योग्य पात्रके हाथमें ही सब कार्यको देना चाहते हैं। सुग्रीवको विश्वास है कि, इस कार्यकी सिद्धि पवनपुत्र द्वारा ही होगी। यही कारण है वह हनुमान्‌जीको कार्यभार बुलाकर उन्हींपर छोड़ना चाहते हैं। क्योंकि वह इनके बल और बुद्धिको जानते हैं। मुझेभी प्रतीत होता है कि हनुमान् ही इस कार्यको करेंगे; क्योंकि कपिराज सुग्रीव अत्यन्त ही दूरदर्शी हैं। इसके पहिलेभी वीर हनुमान्‌ने सुग्रीवके कार्योंको सिद्ध किया है। इससे महाराज रामचन्द्रको पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि पवनपुत्र द्वारा ही हमारा कार्य होगा। तब प्रसन्नता पूर्वक उन्होंने पवनतनयको अपने समीप बुलाया और अपने नामसे युक्त अंगूठी उन्हें देकर कहा—वीरवर! जब तुम यह अंगूठी देवी-सीताको दिखा दोगे, तब संकोच त्याग तुम्हें मेरे पाससे आया हुआ जान बात-चीत करेंगी। वीरवर! तुम्हारा उद्योग और शक्ति एवं कपिराजका आदेश मुझे विश्वास दिला रहे हैं कि, मेरा कार्य सिद्ध होगा। महाराज रामचन्द्रकी ऐसी बाणी सुन वीरवर हनुमान् प्रसन्नता पूर्वक अंगूठी लेकर उन्हें प्रणाम किया और चलनेके लिये उद्यत हुए। तब महाराज रामचन्द्रने पुनः कहा—वीरवर हनुमान्! इस समय मैं तुम्हारी ही शक्तिके अधीन हूँ; अस्तु जिस प्रकार भी सम्भव हो देवी सीताका पता लगाकर आओ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा कांडका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

वानरी सेनाकी मुस्कान

कपिराजने पुनः सबको सावधान करके कहा—वीरवर! सब लोग आज्ञानुसार कार्य करने और देवी सीताका पता लगानेके लिए प्रस्थान करो। आज्ञा पाते ही बानरी सेना टिड्डी दलके समान चारों ओर अग्रसर हुई।

महाराज रामचन्द्रने भाई सहित एक महीने तक और वहाँ रहनेका निश्चय किया। उत्तर दिशाकी ओर वीरवर शतबलिने प्रस्थान कर दिया। पूर्व दिशाकी ओर बानर सेनापति विनतने प्रस्थान किया, तार और अङ्गद इत्यादि २ महाबलवानोंके साथ वीरवर हनुमान् दक्षिण दिशाकी ओर चले। इसी प्रकार अपनी निर्धारित दिशाओंमें सभी बानर सेनापतियोंने प्रस्थान किया। कपिराज सुग्रीव भी बानरोंको भेजकर प्रसन्न हुए। स्वामीकी आज्ञासे बानरोंके सेनापतिगण अपनी-अपनी सेनाओंके साथ अत्यन्त ही शीघ्र गतिसे अपनी-अपनी निर्धारित दिशाओंमें प्रस्थानकर दिये। वे लोग आपसमें नानाप्रकारकी वार्तालाप करते थे। कोई कहता था—हम रावणको मारकर सीताको लावेंगे। कोई कहता, मैं अकेला ही पातालपुरीमें घुस जाऊँगा और दुष्ट रावणको मार देवी सीताको उठा लाऊँगा। कोई कहता; मैं पर्वतोंको उठाकर फोड़ दूँगा, वृक्षोंको तोड़ दूँगा, पृथ्वीको फाड़ दूँगा और समुद्रको व्याकुलकर दूँगा। कोई कहता था कि मैं चार सौ कोसतक कूद सकता हूँ। पृथ्वी, पाताल, समुद्र, वन, पर्वत और अन्धकारोंमें प्रवेश कर सकता हूँ। इस प्रकार सभी बानर दर्पपूर्ण वार्ता करते हुए चले जा रहे थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

रामचन्द्रका सुग्रीवसे सब भुवनोंकी जानकारीका कारण पूछना

सब बानरोंके चले जानेके बाद महाराज रामचन्द्रने सुग्रीवको अपने पास बुलाकर पूछा—मित्रवर! आपने समस्त पृथ्वीके भूगोलको किसप्रकार जाना है। सुग्रीवने कहा—प्रभो! इसका विवरण भी मैं आपको बताता हूँ, सुनिए—भगवन्! जब दुन्दुभी बालिसे हारकर भागा और बालिने उसका पीछा किया, तब मैं भी उसके पीछे-पीछे गया। जब वह गुफामें घुस अन्तर्ध्यान हो गया, तब बालि मुझे गुहाके द्वारपर रहनेका आदेश देकर स्वयं उस गुफामें घुस गया। मैं एक साल तक वहाँ रहा, जब गुफासे रक्तकी धारा निकली तब मैं गुहा द्वारको एक पत्थरसे बन्दकर किष्किन्धा लौट आया। यहाँ मन्त्रियोंने मुझे राजा बना दिया। मैं अपने मित्र और तारा एवं रुमाको साथले आनन्दपूर्वक रहने लगा। जब बालि दुन्दुभीको मारकर किष्किन्धा

आया तब, यद्यपि मैंने सम्मानपूर्वक उसका राज्य उसे लौटा दिया; तथापि वह सन्तुष्ट नहीं हुआ, बल्कि मेरे मारनेका प्रबन्ध करने लगा, अस्तु मैं भय-भीत होकर भागा और बालिभी मेरे पीछे लगा, उसी समय मैंने सारी पृथ्वी का भ्रमण करता हुआ नदियों पर्वतों और वनोंको देखता हुआ नानाप्रकारके दृश्य देखे। कहीं-कहींपर पृथ्वी दर्पणके समान स्वच्छ और कहीं २ चन्द्रके समान अलग दिखाई पड़ी। कहीं २ पर यह गायके खुरके समान छोटी और कहीं २ अत्यन्त प्रशस्त। सर्वप्रथम मैं पूर्वकी ओर भागा और अनेकों प्रकारके पर्वतों, वनों, झरनों और नदियोंको देखा। बालि बराबर ही मेरा पीछा करता रहा। मैंने अनेक धातुओंवाले उदयाचल एवं क्षीरोदसागरको भी देखा; किन्तु बालिने बराबर मेरा पीछा किया। यहाँसे मैं दक्षिण दिशाकी ओर भागा और विन्ध्याचलकी पर्वत श्रेणियों और चन्दनके बनोंको देखते हुए पश्चिम दिशाको गया, वहाँके पर्वतों वनों और नदियोंको देखा। अनेकों देशोंको देखता हुआ अस्ताचलपर गया; किन्तु बालिने वहाँ भी मेरा पीछा किया। तब उत्तर दिशाकी ओर हिमालय पर्वतकी गुफाओंको देखता हुआ समुद्र तक गया, किन्तु बालिने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। मेरे मंत्रि-गण भी मेरे साथ ही साथ भाग रहे थे। उसी समय वीरवर हनुमान्‌ने कहा—राजन्! आप वृथा कष्ट सहन करते हुए पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर रहे हो। मतङ्ग ऋषिके श्रापसे बालि मतङ्गाश्रममें जा ही नहीं सकता, वहाँ जानेसे उसका मस्तक आप ही आप टुकड़े-टुकड़े होकर फट जायगा, अस्तु आप क्यों न वहीं समीप रहकर अपने शत्रुकी गति विधिपर दृष्टि रक्खें। हे रघुवंश-भूषण! तभीसे मैं इस मतङ्गाश्रममें निवास करता हूँ और बालिने मेरा पीछा करना छोड़ दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

पूरब पश्चिम और उत्तर दिशाके बानरोंका लौटना

कपिराज सुग्रीवकी आज्ञानुसार सभी बानर सेनापति गण अपनी २ दिशाओंमें पर्वतों, वनों, झरनों, कन्दराओं एवं गुफाओं और नदियोंके किनारोंको खोजने लगे। बानरगण दिनमें तो इधर-उधर फैलकर घूमते-

फिरते और देवी सीताका पता लगाते। वनके फलोंको खाते और झरनोंका पानी पीते; किन्तु रातको एक निश्चित स्थानपर आकर सब लोग इकट्ठे हो जाते और अपनी-अपनी खोजका हाल एक दूसरेसे बतलाते थे। प्रवर्षण पर्वतसे चले हुए एक महीना पूरा हो गया। देवी सीताका कहीं कुछ भी पता नहीं लगा। तब सबके सब उदास होकर सुग्रीवके पास लौटे। बलवान् विनत पूर्व दिशामें कपिराजके बताए हुए स्थानोंको खोजकर लौट आये, किन्तु सीताका पता नहीं लगा। उत्तर दिशासे शतबलादि भी वापिस आ गए और भगवान् रामचन्द्रके पास बैठे हुए सुग्रीवको प्रणामकर कहा— राजन्! आपकी आज्ञानुसार हमलोगोंने समस्त पर्वतों वनों और नदियोंके किनारोंको खोज डाला, नानाप्रकारके दृश्योंको देखा और अनेकों भयंकर जीवोंको मार डाला। दुर्गमसे दुर्गम स्थानोंमें भी हमलोग गए; परन्तु देवी सीताका कहीं भी पता नहीं लगा। आप निश्चय जानिए कि इन दिशाओंकी ओर देवी सीता नहीं गईं। जिस दिशाओंमें वह गई हैं, उस दिशामें महावीर हनुमान्‌जी गए हैं, वही देवी सीताका पता लेकर आवेंगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय अरण्यकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

दुर्गम स्थानमें सीताकी खोज

पवनपुत्र हनुमान् युवराज अङ्गद और तार इत्यादि वानरोंके साथ दक्षिण दिशाकी ओर चले। बहुत दूर तक सबके साथ २ जाकर वीरवर हनुमान्‌ने विन्ध्य पर्वतकी कन्दराओं और खोहोंमें सीताकी खोज आरम्भ कर दी। पर्वतों, नदियों, तालाबों, दुर्गम वनों और बड़े २ वृक्षोंको खोजते हुए अनेकों प्रकार वनों पर्वतों और खोहोंको सावधानीके साथ खोजा; परन्तु जनकनन्दिनी सीताका कुछ भी पता नहीं पाया। किन्तु साहस नहीं हारे। वनके फलोंको खाते, झरनोंका पानी पीते और रातको वृक्षोंपर सोते हुए एवं सीताकी खोज करते हुए वे लोग सदा आगेकी ओर बढ़ रहे थे। किसीसे भी न हारनेवाले यह वानर साहस पूर्वक उन २ स्थानोंमें देवी सीता की खोजकी जो अत्यन्त ही दुर्गम और जलाशय एवं वृक्ष इत्यादिसे रहित थे। जिन स्थानोंमें प्रवेश करना अत्यन्त ही दुर्गम था वहाँ भी यह बलवान्

बानर गए। ज्यों २ आगे बढ़ते गए, बन भयंकर और दुर्गम होता गया। यह बनों, वृक्षों, जलाशयों एवं खाद्य पदार्थोंसे नितान्त हीन थे। नदियाँ जल रहित एवं वह बन जीव और जन्तुओंसे भी रहित था। ये लोग ऐसे ऐसे स्थानोंमें भी गए जहाँ कमल और भौरोंका अभाव था। वहाँ पर कण्डु नामके एक महा क्रोधी ऋषि रहा करते थे जो अत्यन्त ही सत्यवक्ता और कठोर तप करने वाले थे। वह कठोर नियमोंका पालन करते हुए तपश्चर्या करते थे। उनके एक पुत्र था जिसकी आयु दस वर्षकी थी, संयोगवश उनका वह पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हुआ। मुनिको उस बनपर क्रोध आया और वनको नाश करनेके लिये श्राप दे दिया। यह उन्हींके श्रापका प्रभाव था कि वह वन किसीके भी रहने योग्य नहीं था, वहाँके जीव जन्तु मृग और पक्षी सबके सभी भाग गये थे। इन बानरोंने उस बनके पर्वतों, कन्दराओं और खोहोंको भी खोजा। मगर न तो ये लोग रावणका ही पता लगा सके और न देवी सीताका ही। वहाँसे आगे बढ़ ये लोग एक लता कुञ्जमें पहुँचे। उसमें एक महा भयंकर और भयावना राक्षस बैठा था, जिसका शरीर बड़ा ही लम्बा चौड़ा और कठोर था। उसको देखते ही बानरगण सावधान हो गये। वह राक्षस भी उठकर खड़ा हो गया और अट्टहास कर बोला— आज मैं तुम सबको मारकर खा जाऊँगा। इस प्रकार कहते हुए वह राक्षस मुक्का तानकर बानरोंकी ओर दौड़ा। उसे अपनी ओर आता देख युवराज अंगदने समझा कि यही रावण है, अस्तु क्रोधमें भरकर उसे एक थप्पड़ जड़ दिया। बलवान् अंगदका थप्पड़ लगते ही राक्षस रक्त वमन करने लगा और कटे वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर सदाके लिये सो गया। उसके मरनेसे सभी बानर प्रसन्न हुए और निर्भय होकर सारे जंगलको खोजा। खोजते २ ये लोग एक दूसरी गुफामें प्रवेश कर गये, परन्तु देवी सीताका कुछ भी पता नहीं लगा। तब ये लोग दुःखी होते हुए बाहर निकले और एक वृक्षके नीचे बैठकर सोचने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धाकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ सर्ग

अंगदका प्रोत्साहन

युवराज अङ्गदने देखा कि सभी बानर थक गए हैं और सभी निरुत्साह

े हो रहे हैं अस्तु उन्हें उत्साहित करनेके लिए वे आश्वासन देने लगे। ीरों! यद्यपि हम लोगोंने सभी वनों, पर्वतों, खोहों और नदियोंके तटोंको खोज डाला, पर देवी सीताका पता अभी तक नहीं लगा और नहीं उस ीच रावणहीका कुछ पता ठिकाना लगा। महीना पूरा हो रहा है। कपिराज ुग्रीव अत्यन्त कठोर स्वभावके हैं। आप लोग मेरे कहनेसे एक बार पुनः यास करें। शोक, मोह और आलस्यको त्याग सीताको खोजा जाय तो निसन्देह ही वह मिलेंगी। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि कार्य-सिद्धि होनेके जो लक्षण विद्वानोंने कहे हैं, वह यही हैं। थकावटका न लगना, खेदका न होना एवं हतोत्साह न होना इत्यादि। अस्तु आप लोग उत्साह पूर्वक फिर सीताकी खोज आरम्भ कर दें। इसप्रकार मन मार कर बैठनेसे कुछ नहीं होगा, ाथ ही परिश्रमका फल बेकार नहीं जायगा। कपिराज और रामचन्द्रसे हमें दैव ही डरते रहना चाहिए। ये बातें मैं आप लोगोंके हितके लिए ही कह ्हा हूँ। इसके अतिरिक्त आप लोग जैसा उचित समझें, वैसा करें। साथही ाथ मुझे क्या करना चाहिए? मुझे भी उचित सलाह दें। युवराजके बचन सुन ूख और प्याससे क्षुभित गन्धमादन नामक बानर बोला-वीरवरो। युवराज ो कह रहे हैं, इनके यह बचन इन्हींके योग्य और हम सब लोगोंके लिए हितकर हैं। मैं आशा करता हूँ कि आपलोग युवराजके आदेशानुसार ठीक ार्य करेंगे। गन्धमादनकी बातसे सहमत हो सभी बानर पुनः सीताकी खोज लिए बनमें प्रवेश कर गए। अत्यन्त परिश्रमके साथ वे लोग सावधानीके ाथ पर्वतों और गुफाओंका निरीक्षण करते हुए चांदीके पर्वतों और लोध्रवन पहुँच गए। यद्यपि उन लोगोंने घोर परिश्रम किया; परन्तु देवी सीताका ता नहींही लगा। तब वे लोग थकावटसे चूर हो पर्वत शिखरसे उतर ृक्षोंकी छाँहमें बैठकर विश्राम करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

पचासवाँ सर्ग

अङ्गद हनुमानादिका ऋक्ष विवरमें प्रवेश

अङ्गद और हनुमान् इत्यादिने विन्ध्य पर्वतके कन्दराओं, खोहों, और ा दुर्गम स्थानोंको जहाँपर सिंह व्याघ्र इत्यादि हिंसक जीव निवास करते थे

राई रत्ती खोज डाला। परन्तु सीता देवी या रावण किसीका भी कुछ पता नहीं चला। खोजते २ ये लोग नैऋत्य कोणके एक पर्वतपर शिखरपर पहुँचे। इस समय सुग्रीवका निर्धारित किया हुआ समय बीत चुका था। वह पर्वत भी बड़ी २ गुफाओं और सघन बन होनेके कारण दुर्गम और कठिन था। परन्तु वीरवर हनुमान्ने उस पर्वतको राई-रत्ती ढूँढ़ डाला। एक दूसरेसे अलग हो गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, द्विविद, मयन्द और हनुमान एवं युवराज अङ्गद इत्यादि बानर पर्वतके दक्षिणी भागको खोजते हुए एक विचित्र विवरके पास पहुँचे। इस विवरका नाम ऋक्षविवर था। उस समय सभी बानर भूख और प्याससे दुःखी हो रहे थे; किन्तु कहीं पर फल-मूल एवं जलाशयका पता नहीं था। हाँ, उस विवरसे नाना प्रकारके पक्षी प्रसन्नता से भरे हुए निकल रहे थे, जो विवरमें जलाशय होनेका प्रमाण दे रहे थे। अस्तु जल मिलनेकी आशा करके बानरोंने उस विवरमें प्रविष्ट किया। वह विवर अत्यन्त ही भयंकर और हिंसक जन्तुओंसे परिपूर्ण था और दानवोंके रहनेके स्थानके समान प्रतीत हो रहा था, कुछ ही दूर चलने पर बानर घबड़ा गए। वानरोंको घबड़ाया हुआ देख हनुमान्ने कहा—वीरो! इस दक्षिण दिशाके बनों और पर्वतोंको राई-रत्ती खोजनेपर भी देवी सीताका पता हम लोग नहीं पा सके। इस समय प्याससे हम लोग पीड़ित हो रहे हैं। जल होनेकी आशा करके ही हम लोगोंने इस विवरमें प्रवेश किया है। परन्तु इतना शीघ्र घबड़ानेसे तो काम नहीं चलेगा। इसमें अब कुछ भी सन्देह नहीं है कि, इसके भीतर हम लोगोंको जल मिलेगा। क्योंकि इसमें जल होनेके प्रर्याप्त प्रमाण हैं। वीरवर हनुमान्के उत्साहित करनेपर बानरगण साहसकर उस अन्धकार पूर्ण विवरमें आगेकी ओर बढ़ने लगे। यद्यपि वह खोह महा भयंकर था। परन्तु वे निर्भीक बानर निर्भयता पूर्वक आगे बढ़ने लगे। वह सब अन्धकारमें भी देख रहे थे और वायु वेगसे आगे बढ़ते जाते थे। वे आगे बढ़ते गए और उन लोगोंको प्रकाश दिखाई पड़ा और उस प्रकाशमें नानाप्रकारके वृक्ष भी दिखाई पड़े। यह स्थान अत्यन्तही रमणीक और मनोहर था। यहाँके समस्त वृक्ष सोनेके थे और अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे। प्रत्येक वृक्ष फूल और फलोंसे संयुक्त थे। उन पर चढ़ी हुई लताएँ आभूषणोंके समान प्रतीत हो

रही थीं। वृक्षोंके नीचे वैदूर्यमणिकी स्वच्छ वेदियाँ बनी हुई थीं जो सूर्यके प्रकाशमें सूर्य ही के समान प्रतीत हो रही थीं। वहाँके सभी वृक्ष सोने और वैदूर्यमणिके बने हुए थे। निर्मल जल वाले विशाल सरोवर भी देखने ही योग्य थे। क्योंकि आगे सोनेके वर्णवाले कमल खिल रहे थे। समीप ही सोने, चाँदी और मणियोंसे बने हुए दिव्य भवन थे जिनमें सोनेकी खिड़की एवं मोतियोंकी जालियाँ लगी हुई थीं। वैदूर्यमणिसे युक्त सोने और चाँदीके घंटे टँगे हुए थे और आगे बढ़नेपर उन्हें भूमिके रंगवाले फल और फूलोंसे युक्त वृक्ष दिखाई पड़े। वहाँ पर सोनेके रंगके भँवरे और रत्नोंसे जड़े हुए पलंग थे। अगरु और चन्दनोंके ढेर लगे हुए थे। फल-मूल एवं स्वादिष्ट भोजनोंके ढेर एवं सवारियाँ इत्यादि भी वहाँ पर देखने ही योग्य थे। नाना प्रकारके वस्त्रा-भूषण और चित्रकारीसे युक्त नाना प्रकारके कमल देखा। आगे बढ़नेपर काली साड़ी पहने हुए एक तपस्विनी स्त्रीको देखा जो नियमित आहार करने-वाली अपने ही तेजसे प्रकाशमान हो रही थी। उसे देख वानरगण चकित हुए और उसके समीप जा चारों ओरसे घेर लिया। पर्वताकार पवनपुत्र हनुमान्‌ने प्रणामकर और हाथ जोड़ उस वृद्धा तपस्विनीसे पूछा—देवि ! आप कौन हैं और यहाँका स्वामी कौन है ?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्ड का पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ सर्ग

स्वयंप्रभा और हनुमान्‌से बातचीत

हाथ जोड़े हुए हनुमान्‌ने और भी कहा—देवि ! हमलोगोंने भूख और प्याससे व्यथित होकर इस विवरमें प्रवेश किया है। परन्तु यहाँके अद्भुत पदार्थ और अतुल्य ऐश्वर्य देख हमलोग आश्चर्य चकित हैं। महाभागे ! सूर्यके समान प्रकाशमान यह सोनेके भव्य और सुन्दर वृक्ष किसके हैं ? सन्मुख रखे हुए स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ और यह समस्त वैभव किसका है ? निर्मल जलमें खिले हुए यह स्वर्णकमल और सोनेकी मछलियाँ और कछुये क्या आपके तपोबलसे उत्पन्न हुए हैं। कृपाकर आप हमें यहाँका पूर्ण वृत्तान्त बतावें ? वीरवर हनुमान्‌की विनीत वाणी सुनकर प्राणिमात्रका हित चाहने वाली वह धर्मचारिणी बोली—वत्स ! यह स्थान मय नामक दानवका बनाया हुआ

है। कई हजार वर्ष तपकर दानवने पितामह ब्रह्माको प्रसन्नकर शिला कलाके पूर्ण ज्ञानका वर प्राप्त किया था। तभी उस दानवने इस स्थानको अपने रहने के लिए बनाया और यहीं रहता रहा। संयोग वश उसने हेमा नामकी अप्सरासे प्रेम कर लिया। परिणाम स्वरूप देवराजने अपने बज्रसे उसे मार डाला। उसके मरनेके बाद यह स्थान और यहाँकी सम्पूर्ण सामग्री हेमाकी हुई, अस्तु यह स्थान और यहाँकी सम्पूर्ण वस्तुएँ हेमाकी हैं। मैं मेरु सावर्णि की कन्या और हेमाकी सहेली हूँ। उसीके कहनेसे मैं इस स्थानमें रहकर तप करती हुई उसके स्थानकी रक्षा करती हूँ। तुम लोग यहाँ क्यों आए हो! तुम्हारा यहाँ क्या काम है? और तुमलोग बनमें ही क्यों घूम रहे हो! अच्छा पहिले तुमलोग यहाँके स्वादिष्ट फलोंको खाकर जलपान करो तब अपनी कथा सुनाओ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त॥ ५१॥

बावनवाँ सर्ग

बानरोंका अपना हाल कहना

बानरोंके जलपानकर लेनेके पश्चात् तपस्विनीने उनसे कहा--यदि तुमलोग जलपानकर स्वस्थ हो चुके हो और अपना हाल मुझे बतानेमें किसीप्रकारकी हानि न समझते हो तो अपनी राम कहानी सुना जावो। तपस्विनीकी ऐसी वाणी सुन बुद्धिमान् हनुमान्‌ने अपनी सच्ची २ हाल कहा—देवि! अयोध्याके राजा श्रीमान् दशरथके प्रतापी पुत्र महाराज रामचन्द्र अपने पिताकी आज्ञानुसार अपने भाई लक्ष्मण और स्त्री सीताके साथ बनमें निवास करने लिए आए थे। उनकी अनुपस्थितिमें रावण नामक किसी दुष्ट राक्षसने उनकी स्त्री सीताका हरणकर लिया है। हमलोग उन्हीं देवी सीता और रावणका पता लगानेके लिए घूम रहे हैं। ढूँढ़ते २ हमलोग भूख और प्याससे दुःखित हो गए, कहींपर जलका ठिकाना नहीं लगा। तब हमलोगोंने इस विवरमें प्रवेश किया और यहाँ आए। देवि! हमलोग भूख और प्याससे अत्यन्त व्याकुल होकर ही यहाँ आए हैं। आपने अमृत समान स्वादिष्ट फलोंसे हमारा सत्कार किया और हमलोगोंके प्राणोंकी रक्षा की। कहिए, इसके बदलेमें हम बानर गण आपकी क्या सेवा करें? हनुमान्‌के बचन सुन स्वयंप्रभा अत्यन्त

सन्न हुई और कहने लगी—बानरो ! मुझे किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं रन्तु मैं तुमलोगोंसे सन्तुष्ट हूँ। स्वयंप्रभाकी बात सुन वीरवर हनुमान्ने हा—देवि ! कपिराज सुग्रीवका दिया हुआ समय तो यहींपर समाप्त हो गया और अभी कार्य शेष ही है। कार्य पूरा न होनेपर कपिराज हमलोगोंको मार लेंगे। अस्तु आप अब दयाकर हमलोगोंको इस विवरसे बाहरकर हम लोगोंके प्राणोंकी रक्षा करिए। पवनपुत्र हनुमान्के वचन सुन स्वयंप्रभाने हा—इस स्थानमें आकर कोई जीवित बाहर नहीं जा सकता। परन्तु नहीं, मैं अपने तपोबलसे तुम्हें इसके बाहर कर दूँगी। अब तुमलोग अपनी-अपनी आँखें बन्द करो। क्योंकि बिना आँखें बन्द किए बाहर नहीं जा सकते। बानरोंने अपनी-अपनी आँखें अपने-अपने हाथोंसे बन्द की और विवरके बाहर हो गये। तपस्विनीने कहा, अब आँखें खोल दो। तुमलोग बाहर आ गये। जाओ तुम्हारा कल्याण होगा। अब मैं भी जाती हूँ। इतना कहकर वह अन्तर्ध्यान हो गई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

कार्य न होने और अवधि समाप्त होनेपर बानरोंकी विकलता

विवरसे बाहर होकर बानरोंने देखा कि सामने ही महाभयंकर समुद्र लहरें मार रहा है। सब बानर एक समतल स्थानमें बैठकर विचार विमर्श करने लगे—यद्यपि वहाँके सभी वृक्ष फल और फूलोंसे संयुक्त थे तथापि अवधि बीत जाने और सीताकी सुध न पानेसे बानरगण चिन्तित और व्याकुल थे। सब वानरोंको चिन्तित, व्यथित और व्याकुल देख युवराज अङ्गदने सम्मानपूर्वक सबसे कहा—मित्रो, कपिराजका दिया हुआ आश्विन मासका समय तो इस विचारके भीतरही बीत गया। अब हमलोगोंको क्या करना चाहिए ? हे नीतिमान बानरों। राजा तुमलोगों पर विश्वास करते हैं। सभी कामोंमें तुमलोगोंकी सलाह लेते हैं। मुझे आपलोगोंका अधिनायक बनाया है, किन्तु अभी तक कुछ भी कार्य नहीं हुआ है। कपिराजकी आज्ञानुसार कार्य न होनेसे सबका ही मरना निश्चित है। क्यों न अब हम सब लोग अन्न और जल त्याग अपने-अपने प्राणोंको विसर्जन कर दें ? क्योंकि आप

लोग जानते हैं कि कपिराज अत्यन्त क्रोधी हैं, हमलोग उनके आदेशानुसार कार्य नहीं कर सके। अस्तु उनके हाथों अब प्राण बचनेकी कोई आशा नहीं। कपिराज सुग्रीवके हाथ अपमान पूर्वक मरनेसे आत्महत्या करके मर जाना कहीं अच्छा है। आपलोग समझते हैं कि सुग्रीवने मुझे युवराज बनाया है। कदापि नहीं। मुझे युवराज बनाया है धर्मात्मा रामचन्द्रने। सुग्रीव तो सदासे ही मेरा शत्रु है। इस समय मुझे अपराधी पा वह कदापि जिन्दा न छोड़ेंगे। मेरे हितचिन्तक और मित्रगण भी इस मृत्युसे मुझे नहीं बचा सकते। अस्तु मैं तो यहीं पवित्र सागर तटपर अनशनकर प्राण त्याग करूँगा। युवराजकी ऐसी वाणी सुन, समस्त बानर दुःखी हुए और कहने लगे कि इसमें तो सन्देह नहीं कि सुग्रीव हमलोगोंको अवश्य मारेंगे। प्राण बचनेकी कुछ आशातो नहीं है, फिर भी रामचन्द्रकी दयासे सब ठीकही होगा। परन्तु इस समय वहभी तो सीताकी सुध न पानेसे दुःखी होंगे और कपिराजके कार्यमें वे भी बाधा न उत्पन्न करेंगे। अस्तु हमलोग भी अनशनकर प्राण त्याग करेंगे। बानरोंकी ऐसी वाणी सुन तार नामके बानरने कहा—भाइयो! मेरी बात मानो तो चलो, हमलोग उसी विवरमें चलकर रहें, जहाँसे अभी बाहर हुए हैं। वहाँ खाने-पीनेकी वस्तुओंकी कमी नहीं है। साथही वह खोह मायामय है। उसमें सुग्रीव और रामचन्द्रही नहीं; देवराज इन्द्रकीभी गति नहीं होगी। तारकी इस बातने सबको अपनी ओर आकर्षित किया और समस्त बानरोंने कहा, ठीक है, जिस बातको सबलोग निश्चय करें वही ठीक है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥५३॥

चौवनवाँ सर्ग

पवनपुत्र हनुमान् का अङ्गद को उपदेश

तारकी बातोंका प्रभाव बुद्धिमान् और विद्वान् अङ्गदपर पूर्णतया पड़ता हुआ देख दूरदर्शी हनुमान्ने विचार किया कि तारकी बातोंमें आकर युवराज राज्य सम्बन्धको तोड़ रहे हैं। परन्तु पवनपुत्र हनुमान् जानते थे कि, अङ्गद अष्टाङ्ग बुद्धि अर्थात् श्रवण, ग्रहण, सुश्रूषा, धारण, स्मर्ण, तर्क बितर्क और अर्थ विज्ञान तथा बारहों बल अर्थात् स्वयम् बल, उद्योग बल, बन्धु बल धन बल, आदि एवं चौदहों गुण अर्थात् देशकाल ज्ञान, कष्ट सहन; दृढ़ता

ज्ञता, दक्षता, उत्साह, गूढ़ मंत्रता, शूरता, एकही बात बोलना, भक्तिज्ञान, कृतज्ञता, शरणागतवत्सलता, अमर्षित्व, और अन्य चपलता इत्यादि विद्यमान हैं, साथही साथ उनका तेज और बल शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ रहा है। वह बृहस्पतिके समान विद्वान् और अपने पिता बालिके समान बलवान् हैं, परन्तु इस समय वह तारकी बातोंको उसी प्रकार सुन रहे थे जिस प्रकार भगवान् शुक्रकी बातको देवराज इन्द्र। तात्पर्य यह कि तारकी बातोंमें युवराजको आता हुआ देख पवनपुत्र हनुमान्‌ने सर्व प्रथम उन लोगोंमें भेद उत्पन्न कराया। भेद उत्पन्न हो जानेपर अङ्गदको धमकाते हुए कहा—युवराज! तुम युद्धमें अपने पिता बालिके समानही अजेय हो, साथही साथ उन्हींके समान बानरोंके स्वामी भी हो, परन्तु बानरों का स्वभावही चंचल होता है। ये सब बानर जो इस समय तुम्हें पट्टियां पढ़ा रहे हैं, अपनी स्त्री और पुत्रोंको त्यागकर कभी भी तुम्हारा साथ नहीं देंगे। मैं इन लोगोंके मुँह परही कह रहा हूँ कि, ये लोग तुम्हें धोखा दे रहे हैं। मैं तुमसे स्पष्टही कहता हूँ कि ये समस्त बानर सुग्रीवसे विरोधकर तुम्हारा साथ नहीं दे सकते। क्योंकि एक शक्तिशाली तो किसी निर्बल से शत्रुताकर जी सकता है। परन्तु एक निर्बल शक्तिशालीको शत्रु बना कदापि सुख से नहीं सो सकता। अस्तु निर्बलको बलवान्‌से शत्रुता नहीं करनी चाहिए। मूर्ख तार जिस विवरमें आप लोगोंको ले जाना चाहता है, वीरवर लक्ष्मणके लिए उसको छिन्न-भिन्नकर देना एक साधारण कार्य है। देवराज इन्द्रने तो अपने वज्रसे इसका कुछ अंशही ध्वंश किया है, परन्तु लक्ष्मण इसको सम्पूर्ण नष्टकर सकते हैं। युवराज! जिस समय तुम इस विवरमें निवास करोगे यह समस्त बानर तुम्हें छोड़ कर चले जायेंगे। जब यह मूर्ख प्याससे दुःखी और व्यथित होंगे तो कदापि आपके साथ न रहेंगे। उस समय आप अपने परिवार और मित्रोंसे रहित हो तिनकेसे भी हल्के हो जाओगे और रामचन्द्रके कामसे भी विरक्त होनेपर क्रोधसे व्याघ्र लक्ष्मणके तीखे बाण तुम्हें मारनेके लिए आगे बढ़ेंगे। साथही साथ यदि तुम हम लोगोंके साथ सुग्रीवके पास चलोगे तो निःसन्देहही एक दिन बानरोंके राजा होगे! युवराज! तुम्हारे चाचा सुग्रीव धर्मको जानते हैं और तुमपर अनुराग भी रखते हैं, वह तुम्हारा बध कदापि नहीं कर सकते।

पर तुम्हारी माता तारासे प्रेम करते हैं। किन्तु वह उसके आधीनही हैं। फिर सुग्रीवको और कोई सन्तान नहीं है। इसलिए तुम्हें मेरे कथनानुसार कपिराज के पास लौट चलना चाहिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ सर्ग

अङ्गदके आगमनका संकल्प

बुद्धिमान् पवनपुत्रकी समयानुसार और नीतियुक्त वाणीको सुनकर युवराज अङ्गदने कहा—वीरवर ! मेरे चाचा सुग्रीवमें स्थिरता, पवित्रता विभ्रम, दयालुता और धीरता कुछ भी नहीं है, कपिराज तो वह महाराज रामचन्द्र को दयासे ही हैं। आपही सोचिए, बड़े भाईकी स्त्री माताके समान होती है, उसी माताके समान स्त्रीको भाईके जीवित रहतेहो जो अपनी स्त्री बना लेता है, वह पातकी नहीं तब क्या है ? जो सुग्रीव भाईकी आज्ञानुसार गुफाके द्वारकी रक्षापर नियुक्त होकर उसके द्वारको बन्दकर भाग खड़ा होता है, क्या वह धर्मात्मा हो सकता है ? जो सुग्रीवने अग्निको साक्षी देकर महाराज रामचन्द्रसे मित्रता करके अपना काम पहिले करा उनके काम को भूल जाता है, क्या वह कृतघ्न नहीं है ? वीरवर सुग्रीवने धर्मके भयसे नहीं किन्तु वीर लक्ष्मणके वाणोंके भयसे सीताकी खोजकर रहा है। पवनपुत्र ! आप मुझे क्षमा करें। सुग्रीव महापापी, कृतघ्न और चंचल स्वभाव वाला है। वह शास्त्रोंकी मर्यादाको नहीं मानता। उसपर कोई भी बानर विश्वास नहीं करता। इस विवादसे प्रयोजन ही क्या ? सुग्रीव सुखी हो। आपका अनुग्रह हो। मैं तो उसके शत्रुकाही पुत्र हूँ। वह मुझे जीता नहीं छोड़ सकता। क्या उसे सन्तान ही न होगी ? पुत्र होने पर वह उसीको युवराज बनायेगा, मुझे कदापि नहीं बना सकता। अपने विचारों को प्रकटकर देने वाला मैं स्वयम् ही अपराधी हूँ। अब मैं किष्किन्धामें जाकर क्या करूँगा ? दयाहीन और कठोर हृदय सुग्रीव पहिले तो मुझे मारही डालेगा; नहीं बन्दी बना लेगा। उसके बन्दी खानेमें घुल-घुलकर मरने से तो अनशन करके मर जाना ही मुझे ठीक जान पड़ता है। आप लोग प्रेममें किष्किन्धा जाइये। परन्तु मुझे तो अनशनकर मरनेकी आज्ञा दीजिए। वीरवर हनुमान् ! आप लोगोंके सन्मुख मैं प्रतिज्ञा

करता हूँ कि बिना सीता की सुध लिए मैं किष्किन्धा नहीं जाऊँगा। आप लोग जाकर कपिराज, महाराज रामचन्द्र, महात्मा लक्ष्मण, माता तारा और चाची रूमासे मेरा प्रणाम कहिएगा। वीरवर पवनपुत्र ! मेरी माताका प्रेम मुझपर स्वाभाविक है। अस्तु उन्हें तुम भली प्रकार समझाना। मेरा मरना सुन वह अवश्यही मर जायगी। रोते हुए अङ्गदने पवनपुत्रसे इस प्रकार कहकर बड़े बूढ़े बानरोंको प्रणाम किया और पृथ्वीपर कुशा बिछाकर बैठ गए। युवराजको अनशनके लिए उद्यत देख सभी बानर रोते हुए बालिकी प्रशंसा और सुग्रीवका अपवाद करने लगे। वे लोग भी अङ्गदका अनुकरण करते हुए आचमनकर कुशासनपर बैठे। यह समस्त बानरगण सागरके उत्तरी तट पर अनशनकी इच्छासे बैठ गए। वह सब बैठे २ महाराज दशरथकी मृत्यु, रामचन्द्रका बनवास, जन-स्थानमें निवास, सीता-हरण, जटायु-मरण इत्यादि कथाएँ आपसमें कहने लगे। उसी समय उनको एक दूसरा भय भी उत्पन्न हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

सम्पातीसे भेंट

जहाँ पर यह बानर गण अनशनका विचारकर बैठेथे वहीं समीपहीमें महा बलवान् सम्पाति नामक गिद्धका स्थान था। यह गिद्धराज जटायुका बड़ा भाई था। बानरोंका कोलाहल सुन वह कन्दरासे बाहर निकला और ध्यान पूर्वक उन बानरोंकी बातें सुनी। साथही साथ वह सोचने लगा कि मेरे पूर्व जन्म के पुण्यसे ही आज इतना अधिक भोजन मिला है। ऐसा विचार कर सम्पातिने उच्च-स्वरसे कहा—ठीक है, जैसे २ तुम सब मरते जाओगे, वैसे २ मैं एक २ को खाता जाऊँगा। सम्पातिके ऐसे वचन सुन सत्य हृदय अंगदने कहा—देखो पवनतनय ! हम लोगोंको मारनेके लिए स्वयम् यमराज पक्षी रूप धारणकर आगए। सुग्रीवकी आज्ञानुसार हम लोग महाराज रामचन्द्रका कार्य नहीं कर सके। उल्टे विपत्ति में पड़ गए। वीरवरों ! आपलोगोंने सुना है कि पक्षिराज जटायु किस प्रकार महाराज रामचन्द्रका कार्य करते हुए स्वर्गवासी हुए। पक्षी होते हुए भी उन्होंने परोपकारमें अपने प्राणोंकी बलि दे दी। हम लोग

भी अनशन कर प्राण त्याग उसी दिव्य गतिको प्राप्त होंगे। जटायुने जैसे राक्षसराज रावणसे युद्धकर उसके हाथों प्राण त्यागा, उसी प्रकार हम लोग भी अनशनकर अपने प्राण त्याग देंगे। राम-वनवास, दशरथ मरण, सीताहरण और जटायुका मरणही हम लोगों पर संकटका कारण है। जटायुने उत्तम गति प्राप्तकी। उसको सुग्रीवके भयसे भयभीत नहीं होना पड़ा। सीता-हरण, जटायुमरण, राम-सुग्रीव मैत्री, बालि-बध तक कार्य तो सम्पूर्ण हो गया। अब राक्षसबध शेष है। उसे भी शीघ्र ही रामचन्द्र पूरा करेंगे। अंगद के मुख से इतनी कथा सुन चीत्कार करता हुआ सम्पाति बोला। जटायु मेरा प्राणोंसे अधिक प्यारा भाई है। उसका नाम लेकर कौन बातेंकर रहा है। बताओ, बताओ, जल्दी बताओ कि, जन-स्थानमें जटायुसे और रावणसे कैसे युद्ध हुआ? आज बहुत दिनोंके बाद भाई का समाचार मिला है। तुम लोग मुझे पर्वत से नीचे उतारो। मैं अपने गुणवान् छोटे भाई के गुणोंको सुनकर आनंदित होऊँगा। मेरा भाई जटायु जनस्थानमें रहता था। अयोध्यापति दशरथसे उससे मित्रता थी। मेरे पंख टूट गए हैं। मैं पर्वतके नीचे आना चाहता हूँ। मुझे नीचे उतारो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

अङ्गदका जटायुकी कथा सुनाना

गृद्धके कर्मोंको जानने वाले बानर गणोंने उसपर विश्वास करना ठीक नहीं समझा, क्योंकि उनको अपने प्राणोंका भय था। परन्तु यह सोचकर कि अन्ततः अनशन करके तो हम लोगोंको मरना ही है। यदि हम लोगोंको यह खाही लेगा तो हमारा कार्य और भी सरल हो जायगा। इन्हीं सब बातों को विचार कर अंगदने सम्पातिको पर्वतसे नीचे उतार दिया, और कहने लगे-गृद्धराज! सुनिए, ऋक्षराज नामके एक अत्यन्त ही तेजस्वी और प्रतापी बानर हो गए हैं। उनके बालि और सुग्रीव नामके दो प्रबल प्रतापी पुत्र हुए, उनमें भी बानराधीश बालि अधिक प्रसिद्ध हुए। मैं उन्हीं तेजस्वी बालिका पुत्र हूँ। मेरा नाम अंगद है। अब और सुनिए। इक्ष्वाकुवंशावतंश महाराज रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ अपने पिताकी आज्ञा पालन

करनेके लिए वनमें आकर जनस्थानमें निवास करते थे, वहाँ पर उनकी अनुपस्थितिमें उनकी स्त्री सीताको रावण नामका एक दुष्ट राक्षसने हरण किया। जब वह दुष्ट आकाश मार्ग द्वारा सीताको लिए हुए जा रहा था, तब रोती हुई सीताका करुण-क्रन्दन गृद्धराज जटायुके कानोंमें पड़ा, उन्होंने अपने मित्रकी पतोहूको पहचान लिया और क्रोध करके रावण पर आक्रमण कर उसके रथ और सारथिको मार डाला और सीताको उससे छीन लिया। रावण मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। होश आने पर वह राक्षस अत्यन्त क्रोधकर थके हुए जटायुके पंख काट डाले। खोजते हुए रामचन्द्रजी भी वहाँ पहुँचे और वीरवर जटायुकी दाह-क्रिया अपने हाथों को और सीताको खोजते हुए आगे चले। तब मेरे चाचा सुग्रीवसे उनकी भेंट हुई और दोनोंमें मित्रता भी हो गई। फल-स्वरूप बलवान् रामचन्द्रने मेरे पिताको मार चाचाको बानरों का राजा बनाया। हम लोग उन्हीं बानर-राजकी आज्ञासे देवी सीता और रावणका पता लगानेके लिए निकले हैं। परन्तु अभी तक हमलोग उनका कुछ भी पता नहीं पाए। एक बिवरमें घुसकर हमलोगोंने निर्धारित समयको भी समाप्त कर दिया है। अब हम बानर-राजके भयसे भयभीत हो अनशन कर प्राण त्यागनेका संकल्प करके यहाँ बैठे हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

सम्पाति द्वारा सीताका समाचार।

अङ्गद द्वारा जटायुकी कथा सुन सम्पाति अत्यन्त ही भीषण-रूपसे चिल्ला उठा और विलाप करने लगा। उसने कहा—बानरों! जटायु मेरा छोटा भाई था जो दुष्ट रावणके हाथों मारा गया। शोक! इस समय मैं बूढ़ा और पंगु हो गया हूँ और किसी भी प्रकार रावणसे बदला लेने में असमर्थ हूँ। किन्तु इस अपार दुःखको सहन कर लेता हूँ। जब इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, तब हम दोनों भाई इन्द्रसे लड़नेके लिए स्वर्ग जाने लगे। मार्गमें प्रथम सूर्य-भगवान् मिले जिनके तेजको न सह सकनेके कारण जटायु व्याकुल हो गया। मैंने भाईको व्याकुल देख अपने पैरोंके नीचे उसे छिपा लिया। फलस्वरूप मेरे दोनों पंख जल गए और मैं इसी स्थानमें गिर

पड़ा। तबसे आजही अपने भाईका समाचार सुना है। सम्पातिके ऐसे
बचन सुन अंगदने कहा—यदि सचमुच ही तुम गिद्धराजके भाई हो, तो
उनका हाल जो मैंने बताया उसे तुमने सुनही लिया, यदि तुम अपने भा
के शत्रु रावणसे बदला लेना चाहते हो, तो हम लोगोंको उस दु
राक्षस रावणका पता बताओ। उसका स्थान यहाँसे किस ओर औ
कितनी दूर है? दूर है या समीप? अंगदकी ऐसी वाणी सुन सम्पा
ने कहा—वानरो! प्रथम तो मैं बूढ़ा हो गया हूँ। दूसरे मेरे पंख भी नह
हैं, इसलिए मैं रामचन्द्रकी सहायता करनेसे नितान्त अयोग्य हूँ। तथा
वचनों द्वारा मैं उनकी सहायता अवश्यही करूँगा। वानरों! मैं वरुण लोक
त्रिविक्रम लोक, देवासुर-संग्राम और समुद्र-मंथनके दृश्योंको देख चुका है
परन्तु इस बृद्धताने मुझे नितान्त व्यर्थकर दिया है, नहीं तो रामचन्द्रके का
करनेवालोंमें प्रथम स्नान मेराही होता। मुझे स्मरण आ रहा है कि एक प
रूपवती युवतीको एक राक्षस आकाश मार्गसे लिए जा रहा था। वह
राम! राम! हा राम! ऐसा उच्चारण करती हुई अपने आभूषणोंको तोड़-तोड़
नीचे फेकती थी। उस सुन्दरीके रेशमीपीत वस्त्रोंसे ढका हुआ राक्षस चप
युक्त मेघके ही समान प्रतीत होता था, निःसन्देह वह सुन्दरी महाराज रामचन
की स्त्री सीता ही थीं। अब मैं तुम लोगोंको उस दुष्ट रावणका सम्पूर्ण सम
चार बताता हूँ, सुनो—रावण विश्रवा मुनिका पुत्र और वरुणदेवका छो
भाई है। उसकी राजधानी यहाँसे चार सौ कोस दूर समुद्रके मध्यमें हैं। लंक
पुरीका निर्माण विश्वकर्माने किया है। यह पुरी अत्यन्तही सुन्दर, सुदृढ़ औ
मनोहर है। यहाँके भवन सोनेके बने हुए हैं। लंकापुरीके चारों ओर सूर्य
समान प्रकाश करनेवाली चहारदीवारी बनी हुई है। उसी लंकापुरीमें पीत व
धारण किए हुए देवी सीता बैठी हुई हैं। राक्षसियाँ उनकी रक्षाकर रही हैं
वहाँ जाने पर तुम देवी सीताको देखोगे, मैं तो इस समय भी उन्हें देख रह
हूँ। आकाश में चलने वालोंके लिए पहिला मार्ग कबूतरोंके लिए, उस
ऊपर दूसरा मार्ग सुग्गों और कौवों के लिए, उसके ऊपर तीसरा मार्ग कु
क्रौंच और बटेर इत्यादिके लिए, उसके ऊपर चौथा मार्ग बाजोंके लिए औ
उसके ऊपर छठवाँ मार्ग सबसे ऊपर पक्षिराज गरुड़के लिए है। हम गृद्धों

उत्पत्ति गरुड़ही से है। अस्तु यही मार्ग हम लोगोंका भी है। रावणने सीताका हरण और जटायुका बध किया है, इसलिए भाईकी शत्रुताका प्रतिशोध मैं तुम्हीं लोगों द्वारा लूँगा। अब तुम लोग इस खारे समुद्रके उस पार जानेका विचार करो, उस पार पहुँचकर तुम लोग अवश्यही देवी सीताके दर्शन करोगे। अब मुझे सागरके तट पर ले चलो जिससे मैं भाईको जलदान दूँ। बानरोंने उसको सागर तटपर पहुँचाया, जहाँ उसने जटायुको विधिवत् जलदान किया। पश्चात् बानरोंने उसको उसके स्थान पर पहुँचा दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा तृतीय किष्किन्धा काण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५८॥

उनसठवाँ सर्ग

बानरोंको सम्पातिका आश्वासन

सम्पाति द्वारा देवी सीतका समाचार सुन अनशन कर प्राण त्यागनेको तत्पर बन्दर भी प्रसन्नता पूर्वक उछल पड़े। वे लोग नाना प्रकारके शब्द करते हुए उछलने-कूदने लगे। बूढ़े जाम्बवान्ने सम्पातिके पास जा नम्रता पूर्वक कहा—गृद्धराज! कृपाकर आप सीता-हरणका समाचार एवं राक्षसराज रावणका समाचार भली प्रकार मुझे समझाओ। किस प्रकार आपने देवी सीता के समाचारको जाना और वह दुष्ट रावण कहाँ रहता है? हम सब बानरोंका जीवन और मरण इसी विचार पर निर्भर है। जाम्बवान्की ऐसी वाणी सुन सम्पातिने जान लिया कि, यह बानर अब अनशन त्याग सीताका पता लगाना चाहते हैं, अस्तु इस प्रकार बतलाने लगा—बानरो! मैं इस स्थान पर बहुत दिनोंसे रहता हूँ, मेरा एक पुत्र भी है जिसका नाम सुपार्श्व है। वही मुझे भोजन पहुँचाता है। आप लोगोंको यह जान लेना चाहिए कि गन्धर्व कामासक्त, उग्र, क्रोधी, पशु, भयभीत और हम गृद्ध लोग सदाहो भूखे रहते हैं। एक दिन मैं भूखसे व्यथित था, अस्तु सुपार्श्व मांस लेनेके लिए गया, परन्तु जब सायंकाल वह खाली हाथ आया, तब मुझे बड़ा क्रोध आया, मुझे क्रोधित देख सुपार्श्वने कहा—पिताजी! पहिले सब सुन लीजिए, तब कुछ कहिये। मैं आपकी आज्ञानुसार मांस पाने की आकांक्षासे महेन्द्रगिरिके द्वार पर सागरकी ओर दृष्टि करके बैठ गया कि कोई जलजन्तु दिखाई पड़े तो लूँ, इतनेही में क्या देखता हूँ कि, आकाश-मार्गसे एक काला भयंकर

राक्षस एक अपूर्व सुन्दरी स्त्रीको पकड़े हुए आ रहा है, तुरंत ही मेरा विचार बदल गया। मैंने निश्चय किया कि इसीको आपके खानेके लिए पकड़ ले चलूँ। परन्तु नहीं; वह विचार ही रह गया। कारण वह काला राक्षस मेरे पास आ हाथ जोड़ मार्ग छोड़ देनेकी प्रार्थना करने लगा। ऐसी दशामें नीच से नीच प्राणी भी प्रहार नहीं कर सकता। मैंने उसको मार्ग दे दिया और वह चला गया। उसके चले जानेपर सिद्ध लोगोंने कहा—वत्स! बड़ाही अच्छा हुआ। देवि सीताके प्राण बच गए। हमलोग तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। पिताजी! मैं उसी पीतवस्त्र धारिणी सुन्दरी स्त्री जो राम-राम और लक्ष्मण ऐसा शब्द उच्चारण कर रही थी, उसीके देखने में लगा रह गया। बानरों! पुत्र सुपार्श्व द्वारा यह समाचार सुनकर भी मैं सीताकी सहायता करनेमें असमर्थ रहा। कारण प्रत्यक्ष है कि मैं बूढ़ा और असमर्थ हूँ। अब तुमलोग उद्योग करो। कृतकार्य होगे। सुग्रीवने तुम लोगोंको इधर भेजकर ठीक ही किया है। तुम सब बुद्धिमान् हो। रामचन्द्रके बाण तीनों लोकोंके नाश करनेमें समर्थ हैं। तद्यपि रावण शक्तिशाली और पराक्रमी है, परन्तु तुम लोगोंके सामने कोई वस्तु नहीं। अस्तु अब कार्य करनेका समय है। समुद्र लाँघने का विचार करो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥५९॥

साठवाँ सर्ग

सम्पातिका वृतान्त

सम्पातिकी इसप्रकारकी बातें सुन बानरोंने चारों ओरसे उसे घेर लिया और किलकारियाँ मारने लगे। सम्पातिने कहा—भाइयो! सुनो, मैं तुम्हें अपनी सम्पूर्ण कथा सुनाता हूँ। इससे तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि मैंने सीताका जो पता तुमको दिया है वह सर्वथाही सत्य है। जब मैं सूर्य भगवानके प्रचण्ड तेजसे जलकर पृथ्वीपर गिरा, तब मुझे पाँच छः दिन तक तो कुछ चेतही नहीं रहा। सातवें दिन आँखें खोलकर चारों ओर देखा और यह जाननेकी चेष्टाकी कि यह स्थान कौन है? उस समय मेरे पैरोंमें थोड़ीसी भी शक्ति नहीं थी। वहाँके तालाबों, नदियों, झरनों और कन्दराओंको देख शीघ्रही मैं उस स्थानको पहिचान गया कि, यह महामुनि चन्द्रमाका स्था

है। वानरो ! महर्षि चन्द्रमाको मरे और मुझे यहाँ रहते हुए साठ हजार वर्ष बीत गए। अस्तु जब मेरी चेतना शक्ति धीरे २ मुझे प्राप्त हुई, तब मैं पहाड़ की चोटीसे उतरकर पृथ्वीपर आया। मैं और जटायु दोनोंही मुनि से पहले भी मिल चुके थे। इसीसे उनसे मिलनेकी इच्छा करके मैं मुनिके आश्रमपर गया, उस समय मुनि आश्रममें नहीं थे। स्नान करने गए थे। थोड़ीही देर बाद वह आते हुए दिखाई दिए। अनेकों हिंसक और अहिंसक पशु पक्षी महर्षिके पीछे २ चल रहे थे जो उन्हें आश्रममें पहुँचा वनमें चले गए। महर्षिने मुझे देखा और मुस्कराते हुए आश्रममें चले गए और थोड़ी ही देर बाद बाहर आकर पूछा—कहो, क्या चाहते हो ? तुम्हारे पंख जल गए हैं। इस कारण पहिचान नहीं सका। इसके पहले मैं दो गृद्धोंको देख चुका हूँ। वे लोग वायुके वेगके समान चलनेवाले, बड़े पराक्रमी और इच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले थे। मैं समझता हूँ, उनमेंसे सम्पाति नामके गृद्धराज तुम्हीं हो। इसके पूर्व तुम दोनों भाई मनुष्य रूपमें मुझसे मिल चुके हो। तुम्हारी यह दशा किस प्रकार हुई, मुझे बताओ ?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका साठवाँ सर्ग सम.प्त ॥६०॥

एकसठवाँ सर्ग

सम्पातिकी कथा

हे वानरों ! ऋषिके प्रश्नके उत्तरमें मैंने पूर्व कथित सम्पूर्ण समाचार सुना दिया और कहा प्रभो ! मेरा अङ्ग प्रत्यङ्ग घावोंसे परिपूर्ण है. इन घावोंसे भी अधिक मुझे अपनी हारसे लज्जा आ रही है। भगवन् ! मं क्लाँत हूँ और मेरी समस्त इन्द्रियाँ व्यथित हो रही हैं। मैं अपना विस्तृत हाल कहनेमें भी असमर्थ हूँ। प्रभो ! हम लोगोंको अपने बलका बड़ा गर्व था। परस्पर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे हमलोग उड़ते हुए कैलाश पर्वत तक पहुँचे। वहीं पर प्रतिज्ञाकी कि हमलोग उदयाचलसे अस्ताचल तक सूर्यका पोछा करेंगे और किया भी। वहाँसे पृथ्वीपरकी चीजें एकदम छोटी २ दृष्टि आती थीं और समस्त पर्वत, वन और झरने वहाँसे दिखाई पड़ रहे थे। यद्यपि हमलोग थक गए थे, परन्तु तो भी उड़ते ही जाते थे। अन्ततः दोनोंही अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय हमलोग हतज्ञान हो रहे थे, भगवान् भुवनभास्कर

उग्ररूपसे तप रहे थे। जटायु मेरे पंखोंकी आड़में था। अस्तु वह तो बच गया परन्तु, मैं जल भुन गया और आकाशसे नीचेकी ओर चलने लगा। जटायु तो जनस्थानमें गिरा और मैं यहाँपर आकर गिरा। ऋषिवर! मेरा राज्य गया, भाई गया, शरीरका पराक्रमही नहीं, रूपभी कुछ नष्ट हो गया। अब मैं इसी पर्वतके नीचे प्राण त्याग करूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६१॥

बासठवाँ सर्ग

सम्पातिको महर्षिका आश्वासन

बानरों! इस प्रकार कहता हुआ मैं रोने लगा। मुझे रोता देख महर्षिने आश्वासन देते हुए कहा—दुःख न करो। वत्स! तुम्हारे पंखभी नवीन होंगे और तुम्हारी नेत्रोंकी ज्योति भी फिर आ जायगी। साथ ही साथ तुम्हारे शरीर में नवीन बलका भी संचार होगा। परन्तु समयकी प्रतीक्षा करनी होगी। इक्ष्वाकु कुलवंशावतंश महाराज रामचन्द्र अपने पिता दशरथकी आज्ञानुसार बनवासी हो जनस्थानमें निवास करेंगे। उनकी अनुपस्थितिमें राक्षसोंका राजा रावण छल करके उनकी स्त्री सीताको हर ले जायगा और अपनी राजधानी लंकामें उन्हें नाना प्रकारके प्रलोभन देगा, परन्तु पतिव्रता सीता उसकी एक भी बात न मानेंगी, वह रावणके यहाँका भोजन भी नहीं करेगी। तब पितामह ब्रह्माकी आज्ञासे देवराज इन्द्र देवताओंको भी दुर्लभ अमृतमय पायस बनाकर देवी सीताके पास ले जायँगे। उसे भली प्रकार निश्चयकर लेनेके बाद देवी सीता पायसका एक भाग पृथ्वीपर रख कहेंगी कि यदि मेरे प्राण-नाथ स्वामी और देवर लक्ष्मण जीवित हैं तो जीवितावस्थामें, और देव लोक वासी हो गए हों तो, जहाँपर वह हों वहाँपर उनको मिले; कहकर बाकी पायस को स्वयं खायेंगी। इसी स्थानपर देवी सीताको खोजते हुए महाराज रामचन्द्र के दूत आयेंगे, तुम उन्हें देवी सीता और रावणका पता बता देना। उनके दर्शनसे तुम्हारे नवीन पंख जमेंगे और तुम्हारी दृष्टि शक्तिभी वापिस आवेगी। महाराज रामचन्द्रके दर्शनोंकी इच्छा तो मेरी थी। किन्तु नहीं; मैं तब तक जीवित नहीं रहूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥६२॥

तिरसठवाँ सर्ग

सम्पातिको नवीन पंख

हे वानरो ! महर्षि चन्द्रमाके उपदेशसे मैंने प्राण त्यागनेके संकल्पको ागग दिया और वहाँसे चलकर इस स्थानपर आकर रहने लगा और तभी मैं आपलोगोंकी बाट जोह रहा हूँ । मित्रो ! तब से अबतक न जाने तने प्रकारके विचार उठे और विलीन हो गए; परन्तु मैं इस स्थानसे हटा हीं। इसप्रकारकी बातें होही रही थीं कि, बानरोंने देखा कि सचमुचही म्पातिके नवीन पंख निकल रहे हैं और वह प्रसन्नतासे किल्कारियाँ भरने गे। सम्पातिने देखा पंखही नहीं बरन् नवीन शक्ति भी उसके शरीरमें आ ही है और गई हुई दृष्टि शक्ति भी लौट रही है। महर्षि चन्द्रमाका आशीर्वाद क्षरशः सत्य हुआ। अस्तु उसने बानरोंको सम्बोधनकर पुनः कहा—मित्रों ! स प्रकार महाराज रामचन्द्रकी कृपासे मेरे नवीन पंख निकले हैं और रीरमें नई शक्तिका संचार हुआ,उसीप्रकार प्रयत्न करनेपर तुम्हारे भी कार्यकी द्धि होगी। इसप्रकार कहता हुआ सम्पाति अपने उड़न शक्तिकी परीक्षा के निमित्त पर्वतपरसे आकाश मण्डलमें उड़ गया। बानरगण सब कित हो देखने लगे। पश्चात् वह सम्पातिकी बताई हुई दिशामें समुद्रके नारे जा पहुँचे जहाँसे उन्हें समुद्रको लाँघना था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६३॥

चौसठवाँ सर्ग

समुद्र लाँघनेपर विचार

वानरोंने सम्पाति द्वारा देवि सीता और रावणका समाचारही नहीं पाया; न्तुयह भविष्यभी सुना कि रामचन्द्र द्वारा रावणका नाश होगा, तो प्रसन्नता ाच उठे और प्रसन्नता पूर्वक समुद्रके उत्तरी तटपर जाकर सो गए। यह द्र अत्यन्तही भयंकर था। नाना प्रकारके जीव-जन्तु और देव, दानव में निवास करते थे। पर्वतके समान ऊँची तरंगे देखनेवालोंके हृदयको देती थीं। आकाशके समान अन्त न होनेवाले सागर देखकर बानरगण ड़ाए और यह न स्थिर कर सके कि उनको क्या करना चाहिए। युव- अंगदने देखा कि समस्त बानर भयभीत हो गए हैं तो उन्हें धैर्य देते

हुए कहने लगे—मित्रो ! आप लोग दुःखी न हों, क्योंकि दुःखही प्राणियों
नाश करनेवाला होता है, दुःख करनेवाले मनुष्योंका कोई भी कार्य सि
नहीं होता। बानरोंके बीचमें बैठे हुए वीर अंगद देवताओंके बीच बैठे हु
इन्द्रके समान प्रतीत हो रहे थे। यह विशाल बानरी सेना अंगद या हनुमान
छोड़ किसीके भी संचालनमें नहीं रह सकती थी। अस्तु अंगद बूढ़े वानरों
साथही साथ अपने सभी मित्रोंका सत्कार करते हुए कहा—बानरो ! तुममें
कौन ऐसा वीर है, जो अपने राजा सुग्रीवकी प्रतिज्ञाके लिए, किंवा इ
समस्त बानरोंकी प्राण-रक्षाके हेतु इस चार सौ कोसवाले विशाल समुद्र
लाँघनेका साहस कर सकता है ? कौन ऐसा शूरवीर और योद्धा है जो दे
सीताका पता लगाकर हम लोगोंके प्राणोंकी रक्षा करेगा ? किसके पराक्रम
हम लोग अपने २ पारिवारिक लोगोंसे मिल सकेंगे ? वह कौन शक्तिशा
है, जो हम लोगोंको महाराज रामचन्द्र, वीरवर लक्ष्मण और वानराधीश
योग्य बनायेगा ? बहादुरो ! तुम लोगोंमें से जो बानर चार सौ कोस लम्
समुद्र लाँघ सके, वह हम लोगोंको अभय भिक्षा दे कृतार्थ करें। अंगद
इस प्रकारके वचनोंको सुनकरभी सब बानर चुपचाप बैठे रहे। किसीको कु
कहने या बोलनेका साहस नहीं हुआ। सबको चुप देख अङ्गदने कहा—मित्र
आप लोग बहादुर और शूरवीर हैं, उत्तम कुलोत्पन्न और अनेकों दुःसाहसि
कार्योंकी कीर्ति प्राप्त करनेवाले हैं। मुझे आशाही नहीं किन्तु विश्वास है कि
हम लोगोंमें वह महावीर और शक्तिशाली उपस्थित है जो इस सागरको पा
कर जाय। अब आप लोग अपनी २ शक्तिकी तौलकर बताइए कि कौ
कितना लाँघ सकता है ?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा कांडका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

बानरोंका अपनी-अपनी शक्तिका परिचय देना

बालिनन्दन अङ्गदकी ऐसी वाणी सुन सभी बानरोंने अपनी २ शक्ति
इस प्रकार बताया। गजने कहा—भाइयों ! मैं तो चालीस कोस तक लाँ
सकता हूँ। गवाक्षन कहा—म अस्सी कोस तक लाँघ सकता हूँ। शरभने
कहा—मैं एक सौ बीस कोस तक लाँघ सकता हूँ। ऋषभने कहा—मैं एक सौ सा

कोस तक लाँघ सकता हूँ। गन्धमादनने कहा—मैं दो सौ कोस तक जा सकता हूँ। मयन्दने कहा--मैं दो सौ चालीस कोस तक जा सता हूँ। द्विविदने दो सौ अस्सी, और सुषेण नामके बानरने तीन सौ कोस जानेके लिए कहा, इन सब लोगोंकी बातें सुन वृद्ध जाम्बवन्तने कहा, भाइयों! मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ। परन्तु कपिराज सुग्रीवकी आज्ञानुसार महाराज रामचन्द्रका कार्य करना अत्यन्तही आवश्यक है। अस्तु इस बुढ़ौतीमें भी मैं तीन सौ साठ कोस तक सागरको सरलता पूर्वक लाँघ सकता हूँ। एक समय था जब मैंने इस पृथ्वीकी सात प्रदक्षिणा केवल दो घड़ीके भीतरही कर डाली थी, किन्तु अब विवश हूँ कि इतनेसे अधिक लाँघनेकी शक्ति अपनेमें नहीं पाता और अब तो यह भी कठिन है। जाम्बवान्‌के ऐसे वचन सुन अङ्गदने कहा—आप वयोवृद्ध और हमारे पूज्य एवं सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। श्रीमान्! मैं इस सागरको अभी-अभी पार कर सकता हूँ। परन्तु लोटती बेरके लिए कुछ संशय है कि सकुशल आ सकूँगा या नहीं। युवराजको बात सुन उनका आदर करते एवं उत्साह बढ़ाते हुए जाम्बवान्‌ने कहा—युवराज! मैं आपकी शक्तिको जानता हूँ। आप इस सागरको एक बार नहीं, दो बार पारकर आ जा सकते हैं। परन्तु यह कार्य आपके योग्य नहीं। आप हम सब बानरोंके राजा हैं। हम लोगोंके रहते आपका यह दूतका कार्य करना नितान्त अनुपयुक्त है। जाम्बवान्‌की ऐसी वाणी सुन अंगदने कहा—तब फिर कार्य किस प्रकार पूरा होगा? क्योंकि विना चार सौ कोस सागरको लाँघे कार्यकी सिद्धि हो नहीं सकती। सर्व प्रथम तो आने-जाने में मुझे सन्देह है, दूसरे आप लोग मुझे जाने भी नहीं देते, तब आखिर कार्य किस प्रकार होगा? तब तो वही पहिला मार्ग चलना और अनशन करके प्राण देना होगा, क्योंकि कपिराज सुग्रीवसे दया की भिक्षा पाना अत्यन्तही असम्भव कार्य है। अंगदके ऐसे वचन सुन जाम्बने कहा—युवराज! आप घबड़ाते क्यों हैं? मैं उस बानरश्रेष्ठ शूरवीरको जानता हूँ, जो इस कार्यको सिद्ध करेगा, आप लोग धैर्य धारण कीजिए। मैं अभी २ इन्हीं बानरोंमेंसे उसको देखकर निकालता हूँ। यह कहकर एक दृष्टि सम्पूर्ण बानरोंपर डाली। उनकी दृष्टि वीर केशरी पवनपुत्र हनुमान् पर रुकी, जो एक ओर चुपचाप बैठे हुए समुद्रकी लहरोंको देख रहे थे। जाम्ब-

वान्ने मनही मन पवनपुत्रकोही इस कार्यके योग्य समझा और उनके पास जा उन्हें उत्साहित करते हुए बोले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

छाछठवाँ सर्ग

जाम्बवान्का वीरवर हनुमान्को उनकी शक्तिका स्मरण कराना।

वृद्ध जाम्बवान् आदर पूर्वक युक्ति भरे हुए वचनोंसे पवनपुत्र हनुमान्को उत्साहित करते हुए बोले—वीरवर हनुमान्। आप समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता बुद्धिमान्, विद्वान्, बलवान् और तेजवान् होते हुए भी मौन धारण किए हुए एकान्तमें क्यों बैठे हैं? इस समय हम लोगोंको क्या करना चाहिए? बतलाते क्यों नहीं? वीरवर हनुमान्! मैं जानता हूँ कि, तुम्हारा बल और विक्रम् महाराज रामचन्द्र और ब्रह्मचारी लक्ष्मणके ही समान है। तुम गुणोंमें कपिराज सुग्रीवसे किसीभी प्रकार कम नहीं हो, वीरवर! जिस प्रकार पक्षियोंमें बनिता नन्दन गरुड़ सर्वश्रेष्ठ और विख्यात हैं, उसी प्रकार वानरोंमें तुम हो। जितना बल और विक्रम बनिता नन्दनके पंखोंमें है, उससे कहीं अधिक आपकी भुजाओंमें है। मैं तो समझता हूँ, संसारका कोई भी प्राणी तुमसे अधिक बलवान् नहीं है, आपका जन्मही रामचन्द्रके कार्योंको पूरा करनेके लिए हुआ है। अब अपनी शक्तिको स्मरणकर हम लोगोंके संकटोंको हरण कीजिये। वीरवर! तुम अपनी उत्पत्ति और पराक्रमका हाल मुझसे सुनो। पुंजिकस्थला नामकी एक सर्वश्रेष्ठ अप्सरा थी जिसका दूसरा नाम अंजनी था। वह महा पराक्रमी केशरीकी स्त्री थी एवं कपिश्रेष्ठ कुंजरकी पुत्री थी। वीरवर अंजना देवी इतनी सुन्दरी थीं कि तीनों लोकोंमें उनकी प्रसिद्धि थी। इच्छानुसार शरीर धारण करनेकी उनमें क्षमता थी। एकबार देवी अंजनी ऋतु-स्नानकर सुन्दर २ वस्त्राभूषणोंको धारणकर साक्षात् रतिरूप बनकर वन-प्रदेशमें विचरण करती हुई मनुष्यरूप धारणकर पर्वतके शिखरोंको समुज्वल करती हुई इधरसे उधर विचर रही थीं। उसी समय उनकी अतीव सुन्दरताको देख पवनदेव कामासक्त हुए और धीरे २ युक्तिपूर्वक उनके वस्त्रोंको हटाकर उनके मीठे और सुन्दर जघन और कठोर और गोल २ वक्षस्थल एवं सुन्दर मुखको देखा एवं स्पर्श किया

और कामासक्त हुए और देवी अंजनीको बलपूर्वक आलिङ्गन किया। पतिव्रता अंजनी देवीने क्रोध करते हुए कहा—कौन दुष्ट है, जो मुझ पतिव्रता स्त्रीके धर्म नष्ट करने का विचार कर रहा है। देवी अंजनी की ऐसी वाणी सुन पवनदेवने कहा—देवि! डरो मत, तुम्हारा धर्म नष्ट नहीं होगा—क्योंकि मैं तुम्हारा आलिङ्गनकर संकल्प मात्रसे तुम्हारे गर्भमें प्रवेश कर रहा हूँ, तुम्हरे इस गर्भसे महापराक्रमी और बलवान् पुत्र उत्पन्न होगा। जिसकी गति पराक्रम, तेज, बल और बुद्धि समस्त ही मेरे समान होगी। हे वीर! पवनदेवको ऐसी वाणी सुन तुम्हारी माता अंजनी अत्यन्तही प्रसन्न हुई और समय आनेपर पर्वतकी एक गुफामें तुम्हारा जन्म हुआ। उस समय सूर्योदयका समय था। भगवान् भुवनभास्कर उदय होकर लाल वर्णके सुन्दर फलके समान प्रतीत हो रहे थे। तुमने उन्हें फल समझ छलांग मारी और एकही छलाँगमें बारह सौ कोस आकाश मण्डलपर पहुँच गए। तुम्हें तीव्र गतिसे सूर्यपर आते देख देवराज इन्द्रने वज्र द्वारा आघात किया। वह वज्र तुम्हारी ठोढ़ीमें लगा और तुम्हारी गर्दन कुछ टेढ़ी हो गई। तभीसे तुम्हारा नाम हनुमान् पड़ा। जब यह समाचार वायु देवताको मिला कि तुम्हारे पुत्र को इन्द्रने वज्र द्वारा मारा है, तब वायुने अपनी गतिका अवरोधकर लिया और समस्त विश्वमें हाहाकार मच गया। संकटका महान् समय देख देवताओंने पवन देवकी स्तुति करना आरम्भ किया। पवन देवके प्रसन्न होनेपर पितामह ब्रह्माने आशीर्वाद दिया कि तुमपर कोई भी शस्त्र प्रहार असर नहीं करेगा। इन्द्रने वरदान दिया कि तुम्हें इच्छानुसार मृत्यु प्राप्त होगी। केशरी नन्दन, पवनपुत्र हनुमान् तुम महान् पराक्रमी और तेजस्वी हो। आज हमसब वानर प्राण त्याग रहे हैं और तुम महापराक्रमी राजाके समान हमारे साथ हो तब क्यों नहीं हमलोगोंकी रक्षा करनेके लिए अग्रसर होते? वीरवर! तुमने हम सबोंकी शक्तिका हाल सुना ही है। हम सब लोग इस समय इस समुद्रके लाँघनेमें असमर्थ हैं। मैं अब वृद्ध हो गया हूँ। मैं भली प्रकार विचार कर इसी सिद्धान्तपर पहुँचा हूँ कि इस समय सब लोगोंकी प्राण-रक्षा, सुग्रीवकी प्रति-पूर्ति, महाराज रामचन्द्रजीका कार्य, रावण और सीताका पता और इस विस्तृत समुद्रका लाँघनेवाला यदि कोई है, तो वह तुम हो। वीरवर!

अपनी शक्तिका स्मरण कर, तुम इस सागरको लाँघो। वीरवर! ये वानर दुःखी हैं और तुम देरकर रहे हो? उठो जिस प्रकार भगवान् वामनने तीन पगमें समस्त पृथ्वीको नाप लिया था, उसी प्रकार तुमभी इस खारे समुद्रको एकही छलाँगमें लाँघ जाओ। वृद्ध जाम्बवान्की ऐसी वाणी सुन पवनपुत्र हनुमान्का हृदय उत्साहसे बढ़ गया और उनका शरीर बढ़कर पर्वताकार और विकराल हो गया। उस समयका उनका रूप अवर्णनीय था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥६६॥

सड़सठवाँ सर्ग

पवनपुत्र हनुमान्की लंकाकी तैयारी

पवनपुत्र हनुमान्का पर्वताकार शरीर देख समस्त बानरगण उसीप्रकार प्रसन्न हो उठे, जिसप्रकार वामन भगवान्के बढ़े भए शरीरको देखकर देवगण प्रसन्न हुए थे। बानरों द्वारा प्रशंसित हनुमान्जीका शरीर अत्यन्त विशाल और भयंकर हो गया था। परन्तु वह भयंकरता भी इससमय सुन्दरतामें ही परिणत हो रही थी। वह वीर गुफामें बैठे हुए सिंहके समानही बारम्बार जमुहाई ले लेकर अपनी विशाल पूँछको धीरे-धीरे हिला रहे थे। जमुहाई लेते समय उनका मुख अम्बरीषके समान एवं तेज अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। वह बानरी सेनाके मध्यमें खड़े हो वयोवृद्ध बानरोंको प्रणामकर बोले—बानरो! मैं उस पराक्रमी पवनका पुत्र हूँ जिसका मित्र पर्वतोंको पीड़ित करनेवाले अग्निदेव हैं। अपने पिताकेही समान वेग और पराक्रम वाला मैं हूँ। वीरो! आकाशचुम्बी मेरु पर्वतपर बिना कहीं रुके हजार बार आ जा सकता हूँ। अपनी भुजाओंके जोरसे इस विशाल समुद्रको मंथनकर सकता हूँ, पर्वतों. नदियों और झरनों सहित इस पृथ्वीको समुद्रमें डुबो सकता हूँ। जलजन्तुओंसे परिपूर्ण यह विशाल समुद्र मेरे जंघाओंसे अधिक न तो बल था मर्यादा ही रख सकता है। पक्षिराज गरुड़के साथ उनके समानही आकाशमें उड़ सकता हूँ। प्रचण्ड किरणोंसे युक्त सूर्यके साथ उदयाचलसे अस्ताचल तक जा सकता हूँ। आपलोग इस चार सौ कोस सागरसे घबड़ा रहे हैं। मैं इसे पारकर बिना पृथ्वीपर पैर रक्खे पुनः इस पार आ सकता हूँ।

आकाशमें उड़नेवाले प्राणियोंमें कोई भी मेरी गतिकी समानता नहीं कर सकता। मैं पर्वतोंको चूर्णकर सकता हूँ। मेरे आकाश मार्गपर वेगसे उड़नेपर वृक्षोंके फूल टूट-टूटकर मेरे साथ उड़ेंगे तब मेरा मार्ग स्वाती मार्ग समानही प्रतीत होगा। उस समय तुमलोग मुझे मेरुके समान कभी ऊँचे और कभी नीचे देखोगे। आकाश मार्ग ढक जायगा, बादल फैल जायँगे, पर्वत कम्पायमान हो उठेंगे। वीरो! अभी २ मैं आकाश मार्गमें बिजलीके समानही कड़ककर उड़ूँगा और बातकी बात में आगे बढ़ता हुआ विलीन हो जाऊँगा। उस समय पवनदेव और गरुड़ के सिवा कोई भी पीछा नहीं कर सकता। मेरे शरीर का आकार पृथ्वी नापनेवाले वामन भगवान् के समान ही हो जायगा। मैं बिना समझे हुए चालीस हजार कोस तक जाने की क्षमता रखता हूँ। समस्त वानरोंने आश्चर्य चकित दृष्टि से देखा कि पवनतनय हनुमान् प्रलयकाल के इन्द्र के समान सुशोभित हो रहे हैं। उन्होंने बानरों को सम्बोधन कर कहा, वीरो! न घबड़ाओ, मेरी बुद्धि बिमल है, शरीर में उत्साह हो रहा है, मैं अवश्य ही देवी सीता के दर्शन करूँगा। यदि आप लोग कहें तो वज्रधारी इन्द्र के हाथ से अमृत घट छीन लाऊँ, इस समय मैं कूदता हुआ लंका से भी आगे जा सकता हूँ। यदि कहो तो लङ्का को उखाड़ कर यहाँ लाऊँ। पवन तनय के ऐसे वचन सुन बानर प्रसन्नता से नाचने लगे। बूढ़े जाम्बवान् ने कहा— वायुनन्दन तुमने हम लोगों का शोक नष्ट कर दिया। हमलोग तुम्हारे कार्य सिद्धि के लिए मंगल कामनाएँ करेंगे। तुम ऋषियों की कृपा, गुरुजी के प्रताप और वृद्धों के आशीर्वाद से अपने कार्य को सिद्ध करो। जब तक तुम लौट कर नहीं आओगे, हम लोग एक पैर से यहाँ पर खड़े २ तुम्हारी मंगलकामना करेंगे। समस्त बानरों का जीवन तुम्हारे समुद्र लाँघने के कार्य पर निर्भर है। हनुमान् ने कहा, जाम्बवान् जी! मेरे कूदने के वेग को कौन सहन करेगा? क्या यह महेन्द्र पर्वत उस वेगको सहन कर सकेगा? हाँ कर सकता है, अच्छा अब मैं इसी पर्वत पर से समुद्र में कूदूँगा। ऐसा कह कर वायुनन्दन हनुमान् उस विशाल महेन्द्र नामक पर्वत पर वायुवेगसे चढ़ गये। पर्वत सदैव फूलने और फलने वाले वृक्षों से परिपूर्ण था। अनेकों प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे। वायु मन्द और सुगन्धों से युक्त बह रही थी।

अनेकों प्रकार के झरने झर रहे थे। उस विशाल पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढ़कर महा बलवान् हनुमान् ने समुद्र लाँघने का विचार कर उसे दृढ़ता से पकड़ कर हिलाया तो महान् भयंकर शब्द होने लगा। उसमें रहनेवाले सिंह व्याघ्र, मतवाले हाथी चिल्ला २ कर भागने लगे, उन जन्तुओं की चिल्लाहट पर्वत के रुदन समान प्रतीत हुई। पत्थर की चट्टानें खण्ड २ हो गईं। वृक्ष टूट २ कर गिर पड़े। उस पर निवास करनेवाले गन्धर्व, विद्याधर गण जो अपनी २ स्त्रियों के साथ मद्यपान कर मतवाले हो रहे थे, उड़ २ कर आकाश मण्डल पर चले गये और आश्चर्य-चकित दृष्टिसे पर्वत की ओर देखने लगे। बड़े २ भयंकर और विषधर सर्प बिलोंसे निकल २ कर इधर-उधर भागने लगे। अपने बिलोंमें बैठे हुए सर्प बिलोंसे मुख निकाल इधर-उधर देख रहे थे, जिससे वह पर्वत पाताकाओं वाला सा प्रतीत हो रहा था। उस पर्वतके प्रवासी, ऋषि और मुनिगण भी पर्वत को त्याग कर भाग खड़े हुए। इस प्रकार बड़े भारी प्रभाव वाले, महान् तेज वाले, मनस्वी, बाल ब्रह्मचारी, बानरोंमें श्रेष्ठ, शत्रुओंका संहार करने वाले महानुभाव पवन तनय हनुमान्ने सावधानी पूर्वक लंका की ओर प्रस्थान किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा चतुर्थ किष्किन्धा काण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

॥ यहाँ किष्किन्धाकाण्ड समाप्त हुआ ॥

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्वाल्मीकीय मुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—भाषा

पञ्चम् सुन्दर-काण्डम्

पहला सर्ग

महावीर हनुमान्‌का समुद्र लाँघना

अब महाबली हनुमान् रावण द्वारा हरी गई सीताके स्थान-अन्वेषणकी ओर चले। इन्होंने दुष्कर कर्म करनेकी इच्छाकी। फिरतो वे उन्नत शिखरसे वृषभके समान प्रकटित हुए और वैदूर्य मणिकी सलिलोपम घासोंपर यथासुख विचरने लगे। उन्हें देखकर वहाँके पक्षिगण भयभीत हो गये। कपीश्वर हनुमान् अपनी छातीसे वृक्षोंको धराशायी करते हुए वहाँ सिंहवत् प्रतीत हुए। तब जो पर्वत स्वयम् सिद्ध धातुओंसे सम्पन्न नीला, लाल और मजीठके रंगोंवाला और काले पत्तोंसे भूषित, कई खंडोंवाला, देवताओंके तुल्य इच्छाचारी, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों और पन्नगोंसे पूर्ण था—उसमें वे कपि-श्रेष्ठ, श्रेष्ठ नागों युक्त हृदमें स्थित महानागके समान प्रकट हुये। उन्होंने सूर्य, महेन्द्र, वायुदेव, स्वयंभू और अन्य प्राणियोंको करबद्ध प्रणाम किया और उनसे गमन करने को कहा। फिर पूर्वकी ओर मुख कर हनुमान् अपने कारणरूप पवनदेवको हाथ जोड़ वहाँसे दक्षिण दिशाको चलनेके लिये उद्यत हुए। सभी श्रेष्ठ वानर उनकी ओर देख रहे थे। हनुमान् इतनाही चाहते थे। फिरतो जैसे पर्वकालमें समुद्र बढ़ता है, हनुमान् वैसेही रामके कार्य से बढ़ने लगे। उनके शरीरका कोई प्रमाण नहीं रहा। अब उन्होंने समुद्र-लंघनकी इच्छा की। हनुमान् ने अपनी विशाल बाहुओंको उठा लङ्काके सम्मुखकी ओर किए और पैरोंसे पर्वतको पीड़ित करने लगे। फिर तो कपि द्वारा वह अचल पर्वतभी चलायमान होगया और उसके पुष्पित वृक्षोंके समस्त पुष्प झड़ गये। सब ओरसे पुष्प-समूहोंसे आवृत वह पर्वत ऐसा प्रकाशित होने लगा, मानों वह पुष्पोंका ही बना हुआ है। श्रेष्ठ-पराक्रमी कपिसे पीड़ित वह

पर्वत ऐसेही लार टपकाने लगा जैसे मत्त हाथी मद टपकाते हैं। मैनसिल सहित उसकी विशाल शिलाएँ भी गिरने लगीं। हनुमान् द्वारा उस पर्वतके पीड़ित होनेसे वहाँके समस्त जीव गुफाओंमें प्रवेशकर सर्वत्रसे भयंकर स्वरमें चिघाड़ने लगे। पर्वतकी पीड़ासे उसके बड़े-बड़े जीवोंने जो गर्जन की तो उससे पृथ्वी सहित वन और दिशाएँ पूर्ण होगईं। स्वस्तिक लक्षणके बड़े-बड़े सर्प तीव्र अग्नि उगलते हुये शिलाओंको डँसने लगे। उनके कुपित विषैले डंकोंसे मारी गई वे शिलाएँ अग्निवत् प्रदीप्त हो जलने लगीं तथा उनके खंड-खंड होगये। यद्यपि पर्वतपर विषके दूर करनेवाले औषधियोंके समूह थे; तथापि वे सर्पोंके विषको शान्त न कर सके। तब यह पर्वत प्राणियों द्वारा भेदित होगया-ऐसा मानकर उसके निवासी तपस्विगण वहाँसे चल दिये। विद्याधरोंने भी भयभीत होकर आसव-पान करते हुए अपने पात्रोंको वहीं रखकर स्त्रियों सहित वहाँ से अन्तरिक्षको प्रस्थानकर दिया। हार, बिछुये, बाजू और कड़े पहने हुई अपने पतियों सहित मुस्कानयुक्त स्त्रियाँ आकाशमें स्थित होगईं। श्रेष्ठ विद्याधर अपनी महाविद्या प्रकट करते हुए प्रकाशमें स्थित हो उस पर्वतको देखने लगे। आत्मज्ञानी ऋषियों, चारणों और सिद्धोंने बड़ा शब्द किया। तब सबने यह कहा कि ये पर्वतके समान विशालकाय, महावेगशाली मारुति मगर आदिकोंके स्थान समुद्रको पार करना चाहते हैं। यद्यपि यह बड़ाही दुष्कर कार्य है; तथापि श्रीराम और बानरोंकी कार्यसिद्धिके लिये, ये समुद्रके दूसरे तटपर पहुँचना चाहते हैं। उनकी इस बातको सुनकर विद्याधरोंने देखा कि अप्रमेय हनुमान् पर्वतपर स्थित हैं। इसी समय पर्वताकार हनुमान्ने अपने रोमोंको फुला और शरीरको कम्पितकर बड़े मेघके समान एक भयंकर गर्जना की। फिर ऊपर उछलनेके लिए उन्होंने रोमोंसे पूर्ण अपनी पूँछको, जो क्रमसे गोल थी, उसे ऐसा घुमाया, जैसे गरुड़ सर्पको घुमाते हैं। फिर उन्होंने अपनी परिघ समान भुजाओंको पर्वतपर जमाया, फिर पीठकी ओर खींचकर भुजाओं और ग्रीवाको सिकोड़ लिया। इस प्रकार श्रीमान् मारुतिने अपनेमें तेज, पराक्रम और शक्तिमें संचय किया और ऊपरकी ओर दृष्टिकर मार्गकी ओर देखा। फिर आकाशकी ओर देखते हुए हनुमान्ने अपने प्राणोंको हृदयमें रोका। फिर उन महाबली श्रेष्ठ हनुमान्ने पैरोंको दृढ़ और स्थितकर कानोंको सिको-

कर गमन करनेकी इच्छा की। फिर सब बानरोंसे कहा कि—'जिस प्रकार राघवसे छोड़ा हुआ बाण वायु-वेगसे चलता है, उसी प्रकार मैं रावण द्वारा लङ्काको जाऊँगा। यदि मैं लङ्कामें सीताको नहीं देखूँगा तो इसी वेगसे स्वर्गलोकमें चला जाऊँगा और यदि स्वर्गमें भी सीताको न देखूँगा तो समझूँगा कि मेरा श्रम निष्फल हुआ और तब मैं राक्षसाधिप रावणकोही बाँधकर ले आऊँगा। अथवा रावण सहित लङ्काकोही उखाड़कर ले आऊँगा।' वानरोंसे ऐसा कहकर बानरोत्तम हनुमान् उड़ चले और उन कपिश्रेष्ठने अपनेको गरुड़के समान समझा। वीर हनुमान्‌के इसप्रकार सवेग चलनेपर पर्वतीय वृक्ष शाखाओंको संकुचित कर सर्वत्रसे ऊपर उछलने लगे। कितनेही पुष्पित लघु वृक्षोंको उस वेगसे ले जाते हुए हनुमान् विमल आकाशमें चल दिये। उनके महान् वेगसे झँकोरे हुए साल तथा अन्यान्य वृक्ष इसप्रकार उनके पीछे चले जैसे राजाके पीछे सेना जाती है। उस समय पर्वताकार हनुमान् अद्‌भुत दर्शनीय होगये। उनके वेगसे उड़नेवाले वृक्ष अपने फूलोंको बरसाते हुए इस प्रकार समुद्रके जलमें डूब जाते थे, जैसे मित्रगण अपने बन्धुको बिदाकर लौट जाते हैं। हनुमान्‌के वेगसे झड़े हुए पुष्पोंसे समुद्रका जल रमणीय तारोंसे खचित आकाशके समान दिखाई पड़ता था। आकाशमें फैली हुई हनुमान्‌की भुजाएँ पर्वत-शिखरसे निकले हुए पाँच मुखवाले सर्पोंके समान दिखाई पड़ती थीं। हनुमान् लहरोंकी समूहसे युक्त महासागरको पान करते हुए से प्रकाशित हुये। वायु-मार्गानुगामी उनके विद्युत-प्रभाके समान नेत्र पर्वतस्थ अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे। वानरोंमें मुख्य हनुमान्‌के पिङ्गल वर्णके विशाल मण्डलाकार नेत्र उदित चन्द्रमा तथा सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। जैसे संध्यायुक्त सन्ध्याके सूर्य मण्डलमें प्रकाशित होते हैं, वैसेही उस समय हनुमान्‌का मुख और ताम्रवर्णवाली नासिका प्रकाशित हो रही थी। उस समय महाप्राज्ञ हनुमान् ऐसे ही प्रकाशित हुये जैसे मण्डलाकार सूर्य प्रकाशित होते हैं। जिस समय वानरश्रेष्ठ हनुमान् समुद्रको लाँघ रहे थे, उस समय उनके पार्श्व-मध्यमें प्राप्त वायु मेघके समान गर्जन करता-सा प्रतीत होता था। पर्वतसे कूदते समय उनकी फैली हुई पूँछ आकाशमें ऐसी जान पड़ती थी जैसे इन्द्रकी ध्वजा

हो। अपने उर्ध्वगत शरीर तथा प्रगाढ़ छायायुक्त हनुमान् समुद्रमें वायुयुक्त नौकाके समान दिखाई पड़ रहे थे। वह महाकपि समुद्रके जिस-जिस भागपर जाते, वह भाग उनके उरु-वेगसे उन्मत्तके सदृश दिखाई पड़ता। फिर तो वह महाकपि समुद्रकी पर्वताकार लहरि-समूहोंको अपनी छातीसे हनन करते हुए कूदने लगे। उनके वेगसे विस्तृत वायु भयंकर शब्द करते हुए समुद्रको अत्यंत कम्पित करने लगा और कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसमें उत्पन्न बड़ी-बड़ी लहरियोंके समूहोंको खींचते हुए स्वर्ग तथा पृथ्वीका भेदन करते हुए उसपर छलाँग मारने लगे। उस समय हनुमान्‌के वेगसे उठा हुआ समुद्रका जल विशाल मेघ-सा प्रकाशित हुआ। तब उन कूदते हुएको देखकर समुद्र-निवासी सर्प आकशमें उन्हें गरुड़ समझने लगे। उस समय जलमें हनुमान्‌की छाया दश योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी दिखाई पड़ी। वे दीर्घ-काय महातेजस्वी कपि निरालम्ब आकाशमें सपक्ष पर्वतके समान जान पड़ते थे। वे कपिश्रेष्ठ अपने वेगसे जिस मार्गसे जाते उस मार्गमें समुद्र उनके लिए मार्ग प्रशस्त कर देता। फिर तो वे पक्षि समूहोंके मार्गमें गरुड़की भाँति बढ़ते हुए वायुके समान मेघमालाको अपनी ओर खींचने लगे। उनके खींचे हुए रंग-विरंगे मेघ बड़ेही सुन्दर प्रतीत होते थे। तब उन कपि-श्रेष्ठको इसप्रकार बढ़ते हुए देखकर आकाशवासी देवता गन्धर्व और दानव उनपर पुष्प-वृष्टि करने लगे। रामके कार्यकी सिद्धिके लिए वायुने उनकी सेवाकी तथा छलांग मारते हुए कपिश्रेष्ठको सूर्यने भी नहीं तपाया। ऋषि उनकी स्तुति करने लगे तथा देवगन्धर्व गाने लगे। नागों, यक्षों, राक्षसों, देवताओं और पक्षि आदिकोंने कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌की बड़ी स्तुतिकी। तब कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌के इसप्रकार कूदनेपर इक्ष्वाकु-कुलका सम्मान चाहनेवाले समुद्रने विचार किया—'मुझे इक्ष्वाकुनाथ सागरने बढ़ाया। ये ऐक्ष्वाकु-सचिव कदापि दुःख पाने योग्य नहीं हैं। मुझे वैसा ही करना योग्य है जिसमें ये श्रम-रहित हों। मुझमें विश्राम पाकर ये शेष मार्गको सुखसे कूद सकेंगे। यदि मैंने इन वानरेन्द्र हनुमान्‌की सहायता न की तो मेरी सबलोग निन्दा करेंगे।' ऐसी उत्तम बुद्धि करके जलमें गुप्त सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाकसे समुद्र बोला—हे पर्वतोंमें श्रेष्ठ मैनाक! तुम यहाँ देवराज इन्द्रकी आज्ञासे

ही असुरोंका द्वार रोके पड़े हो। परन्तु तुममें इतनी शक्ति विद्यमान है कि तुम अगल-बगल, नीचे और ऊपर भी बढ़ सकते हो। इसलिए तुम मेरी बात मानो और उठो। ये पराक्रमी हनुमान् तुम्हारे ऊपर आ रहे हैं, जो रामचन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिए अत्यन्त ही कठोर साहसकर आकाशमें उड़ रहे हैं। ये हनुमान् तुमपर विश्रामकर अपना शेष मार्ग पार करेंगे। यह सुन मैनाक शीघ्र ही जलसे बाहर उठा और ऊपर बड़े-बड़े वृक्षों और लताओंसे अच्छादित हो गया। मानों मेघको देख सूर्य निकल आया हो। उसने शीघ्र ही अपने शृंग प्रकट किये। उन स्वर्ण-शृंगोंपर बड़े-बड़ेसर्प और किन्नरों का वास था। उन स्वर्ण-शृंगोंने नीले आकाशको भी वहाँ अपना रूप दे दिया। स्वर्ण-सा आकाश हो गया। वे शृङ्ग आकाशको स्पर्श कर रहे थे। उस सोनेके पर्वतशिखरों पर सैकड़ों सूर्य-सी शोभा होने लगी। तब उस पर्वतको अपने आगे खड़ा हुआ देख हनुमान्‌ने समझा कि यह कोई विघ्न आ गया है। इससे उन्होंने उस पर्वतको अपने छातीसे जो हनुमान्‌ने धरकर दबाया, तो वह उनके पराक्रमको समझ बड़ा ही हर्षित हुआ और गर्जन करने लगा। फिर हर्षित होकर मनुष्य शरीर धारण कर समुद्रने हनुमान्‌से कहा—हे वानरोत्तम! तुम यह बड़ा ही दुष्कर कर्म कर रहे हो इसलिए थोड़ीदेरके लिए मेरे शिखरोंपर विश्राम कर लो। फिर अपने शेष मार्गको तय करो। हे कपिपुङ्गव! मुझपर विश्राम करके तब यात्रा करो। यहाँ पर सुगन्धित कन्दमूल आदि खाकर और विश्रामकर तब जाना। हे कपिश्रेष्ठ हम तुम्हारे सम्बन्धके हैं। तुमभी गुणियोंमें उत्तम त्रयलोक्य-प्रसिद्ध हो। हे मारुतात्मक! रामचन्द्रके पूर्व पुरुषोंने समुद्रको उत्पन्न किया है। वही समुद्र तुम रामकार्य करने वालोंको पूजा करता है। प्रत्युपकार सनातन धर्म है। तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। तुम्हारे आदर का यह कार्य-भार मुझे दिया गया है। मैं सच कहता हूँ कि तुम्हीं सब वानरोंमें श्रेष्ठ हो। धर्मात्मा और ज्ञानीके लिए साधारणभी अतिथि पूजनीय होता है। फिर तुम्हारे समान अतिथिकी तो बातही क्या है? हे वानरोत्तम! आप महात्मा वायुदेवके पुत्र हो और उन्हींके समान वेगवान हैं। आपकी पूजा करनेसे वायुकी पूजा हो जाती है। हे वायुनन्दन! आपसे मेरे और भी सम्बन्ध हैं। सतयुगमें

पर्वतोंको पंख होते थें, जिससे वे उड़ा करते थे, परन्तु जब कभी वे गिर पड़ते थे तो उनसे देवता, ऋषि, मनुष्य आदि भयभीत हो जाते थे। इससे इन्द्रने कुपित होकर वज्रसे हजारों पर्वतों के पंख काट डाले। वे क्रुद्ध होकर मुझपर भी आये, परन्तु उसी क्षण महात्मा वायुने मुझे उठाकर फेंक दिया जिससे मैं लवण-सागरमें गिर पड़ा और मेरे पंख बच गये। इस प्रकार आपके पिता द्वारा मेरी रक्षा हुई है। इसलिए मैं आपका सम्मान करता हूँ। हे वायुपुत्र! आप मेरे सम्माननीय हैं। यही आपसे मेरा सम्बन्ध है। आज यह सुयोग उपस्थित है कि, इस प्रकार आप मुझपर और समुद्रपर कृपाकर सकते हैं। इसलिए यह कीजिए और अपना श्रम निवारणकर मेरी यह पूजा स्वीकार कीजिए। आपके दर्शनसे आज मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।' तब पर्वतके ऐसा कहने पर हनुमान्‌जी बोले—'मैं प्रसन्न हूँ। मुझे बड़ी शीघ्रता है, समय बीत रहा है। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि कहीं मार्गमें ठहरूँ नहीं।' ऐसा कह और पर्वतको अपने हाथसे स्पर्श करते हुए बलवान् हनुमान् हँसते हुए आकाशमें प्रवेशकर चल दिए। पर्वत और समुद्र देखते ही रह गए। इस प्रकार उनसे पूजित हो हनुमान् सुदूर आकाशमें गमन करने लगे। अब पर्वत और समुद्र उनसे बहुत दूर हो गया। कपिश्रेष्ठ हनुमान् उससे भी ऊँचे उड़ते हुए जाने लगे जिनके इस दुष्कर कर्मको देखकर देवताओं, सिद्धों और ऋषियोंने उनकी बड़ी प्रशंसा की। उसी समय प्रसन्नतासे गद्‌गद होकर बुद्धिमान् इन्द्र मैनाकसे बोले—'मैनाक! तुम्हारे इस कार्यसे मैं प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें अभय करता हूँ। अब तुम जहाँ चाहो जा सकते हो। हनुमान्‌की इस सौ योजनकी यात्रामें जो तुमने उनके विश्राममें सहायता की, यह तुम्हारा कार्य उत्तम है'। क्योंकि यह वानर दशरथपुत्र रामके कल्याणार्थ गमनकर रहा है। इन्द्रकी इस प्रसन्नतासे मैनाकको भी प्रसन्नता हुई। फिर तो वह पर्वत समुद्रमें समा गया। उधर हनुमान् शीघ्रतासे समुद्र-लंघन करने लगे। उसी समय देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों और ऋषियोंने नागमाता सुरसासे कहा कि वायु-पुत्र हनुमान्‌के मार्गमें विघ्न करो। हमलोग यह देखना चाहते हैं कि, इनमें इतना ही बल है या और भी है। यह किसी उपाय द्वारा तुम्हें जीत भी पाता है या नहीं ? फिर तो देवताओंसे सत्कारित सुरसा विशाल-

राक्षसी रूपसे समुद्रके मध्यमें उठ खड़ी हुई, जिसके विकृत रूपको देखकर सब भयभीत होने लगे। वह समुद्रको पार करते हुए हनुमान्‌से बोली—मैं तुम्हारा भक्षण करूँगी। देवताओं द्वारा तुम मेरे भक्ष्य नियुक्त हुए हो। तुम मेरे इस मुखमें प्रवेश करो। ब्रह्माका भी मुझे यह पूर्व वर प्राप्त है। ऐसा कह उसने अपना विशाल मुँह फैला दिया और हनुमान्‌के समक्ष जाकर खड़ी हो गई। सुरसाके इस कथनसे हनुमान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—दशरथपुत्र राम अपने भाई लक्ष्मण और भार्या सीताके साथ दण्डक वनमें आए हैं। वहाँसे राक्षसोंने उनकी यशस्विनी भार्या सीताको हर लिया है। मैं रामकी आज्ञासे उन्हीं सीताके पास दूत होकर जा रहा हूँ। तुम भी तो रामके राज्यमें रहती हो। अतएव इस कार्य्यमें मेरी सहायता करने योग्य हो। यदि नहीं; तो सीता और रामको देखकर मैं तुम्हारे मुखमें आकर प्रवेश करूँगा। यह मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। सुरसाने कहा—मुझे कोई डाँककर नहीं जा सकता ऐसा मुझे वर है। तब हनुमान्‌को जाते देखकर उनके पराक्रमका थाह लेनेके लिए सुरसा बोली—हे वानरोत्तम! यदि तुम जाना ही चाहते हो तो मेरे मुँहमें प्रवेश करके जाओ। ऐसा कहकर वह अपना विशाल मुँह फैलाकर हनुमान्‌के आगे खड़ी हो गई। तब हनुमान् उससे बोले—अच्छा, तुम अपना मुँह और फैलाओ और मुझे निगलो। यह कहकर हनुमान्‌ने अपना शरीर दस योजनका कर लिया। क्योंकि सुरसाने दश योजनका मुँह फैलाया था। परन्तु जब यह देखा कि हनुमान् भी दश योजनका हो गया तो उसने अपने मुँहको बीस योजनका विस्तृत कर दिया। तब उसके भयंकर नरकके समानसे सुरसाके मुखको देखकर हनुमान्‌ने अपने शरीरको और भी लघु कर लिया और तत्क्षण मेघके समान अङ्गुष्ठ-प्रमाणके हो गए और सुरसाके मुखमें प्रवेशकर बाहर निकल आकाशमें जाकर उससे बोले—अरी दाक्षायणि! अब मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। तेरे मुखमें प्रवेशकर, उससे बाहर निकल अब मैं सीताके पास जाता हूँ। अब तो तेरा प्राप्त वर सत्य हुआ? तब सुरसाने अपना असली रूप धारणकर कहा—हे सौम्य! अब तुम अपनी कार्य्यसिद्धिके लिए जाओ और सीताको रामसे मिलाओ। तब हनुमान्‌के इस तीसरे कार्यको भी देखकर सब प्राणियोंने उनकी प्रशंसा

की, उस समय हनुमान् उस अलंघ्य सागरके समीपसे आकर गरुड़वेगसे आकाशमें प्रवेशकर उस मार्गसे गमन करने लगे कि, जिस मार्गसे जलधारा प्रवाहित होती है। वहाँ परीक्षण भी निवास करते हैं, विद्याधरोका भी जहाँ निवास है, और जहाँ ऐरावत भी रहता है। इस प्रकार हनुमान् फिर अगरुके समान काले तथा लाल पीले और सफेद मेघोंको वायुके समान खींचते हुए आगे चले। उनको जाते देखकर सिंहिका नामकी राक्षसीने अपने मनमें विचार किया कि, आज तो मेरा बहुत दिनोंके लिए पेट भर जायगा। यह एक विशाल प्राणी बहुत दिनों बाद मेरे हाथ आया है। ऐसा मनमें सोचकर उसने हनुमान्‌की छाया पकड़ ली छाया के पकड़े जानेपर हनुमान्‌को ऐसा ज्ञात हुआ कि जैसे किसीने उन्हें पकड़ लिया हो इतनेहीमें उनकी दृष्टि समुद्रमें जलके ऊपर आए हुए एक विशालकाय प्राणीपर पड़ी। उस विकराल-वदना राक्षसीको देखकर वे सोचने लगे—कपिराज सुग्रीवने जिस महापराक्रमी छाया ग्राही अद्भुत जीवकी बात कही थी, वह निःसन्देह यही है। तब बुद्धिमान् हनुमान्‌ने उनके कार्योंसे उसे यथातथ्य जानकर अपने शरीरको मेघके समान बढ़ा लिया। हनुमान्‌को बढ़ते देख उस राक्षसीने पातालसे आकाश तक मुँह फैलाया और मेघवत् गरजती हुई वह उस वानरकी ओर दौड़ी। हनुमान्‌ने देखा उसका मुँह बड़ा विशाल और विरूप है। फिर तो वज्रके समान गठीले हनुमान् अपना एक छोटा-सा रूपकर उसके वीभत्स मुखोंमें जा गिरे। हनुमान्‌ने अपने तीखे नखोंसे उसके मर्मस्थानोंको फाड़डाले। पुनः वे मनके समान वेगसे ऊपर उठे और चतुराईसे पुनः वेगसे आगे चले। फिर तो वह राक्षसी हनुमान्‌के वेगसे ताड़ित और दुःखी हो जलमें गिर पड़ी। ब्रह्माने हनुमान् द्वारा उसका वध होना निश्चित किया था। तब हनुमान् द्वारा उस सिंहिका नामक राक्षसीका गिराया जाना देखकर आकाशमें रहनेवाले प्राणी हनुमान्‌से बोले—'तुमने यह बड़ा भयंकर कर्म किया। जाओ अपना मनोरथ सिद्ध करो। तुम्हारा कल्याण हो। हे वानरेन्द्र! धैर्य, दृष्टि (सूक्ष्म), बुद्धि, और कुशलता, ये चार जिसके पास होते हैं, वह किसी भी कार्यमें असफल नहीं होता।' इस प्रकार उन प्राणियोंसे आशीर्वाद पाकर हनुमान् आकाश मार्गमें गरुड़के समान चले। तब समुद्रके समीप

उस पार उन्हें सौ योजनके आगे वन दिखाई पड़ा। चलते-चलते हनुमान्ने अनेक वृक्षोंसे युक्त एक द्वीप देखा। फिर मलयचन्दन युक्त बाग, समुद्रका तट और समुद्रसे संगम करने वाली नदियोंका वह स्थल देखा, साथ ही उन संयमी हनुमान्को अपना वह विशाल शरीर भी दिखाई पड़ा जो आकाश तक विस्तृत था। उसे देखकर हनुमान्ने यह सोचा कि मेरे इस विशाल शरीर को देखकर राक्षस विस्मित होंगे, इससे उन्होंने अपने उस पर्वताकार शरीर को छोटा बना लिया। अपना छोटा रूप करके हनुमान् सीताको ढूँढ़नेका उपाय करते और अपनी कार्य सिद्धिमें पूर्ण विश्वास रखते हुए समुद्रके उस पार फल-पुष्प युक्त लम्ब नामक पर्वत-शिखर पर जा पहुँचे। वहाँसे उन्होंने समुद्र-तट पर पर्वत-शिखर पर बसी हुई लंकाको देखा जो अमरावतीके समान थी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दरकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

दूसरा सर्ग

लंका-वर्णन

इस प्रकार अन्योंके द्वारा पार करनेके अयोग्य सागरको पार करके हनुमान्ने त्रिकूट पर्वत पर बैठकर बड़ी सावधानीसे लंकाको देखा। उस समय पुष्पोंके भारसे लिपटे हनुमान् पुष्पमय ज्ञात होते थे, और उन श्रेष्ठ पराक्रमी हनुमान्में सौ योजन लाँघनेपर भी किंचित शैथिल्य न आया और उन्होंने साँस भी न ली। उन्होंने अपने मनमें सोचा कि कई सौ योजन तो मैं कूदकर जा सकता हूँ, फिर गिनतीके सौ योजनवाले इस समुद्रके पार आना मेरे लिए कौन-सी बात है? ऐसा सोचते ही बलियोंमें श्रेष्ठ हनुमान् वहाँसे कूद कर लंकाकी ओर चले। मार्गमें कोमल घासोंसे भरे हुए अतएव नीले वनको देखते हुए हनुमान्ने आगे जाकर पुष्पित वृक्षोंसे आच्छादित, पर्वतपर बसी हुई लंकाको देखा जिसमें सरल, कर्णिकार, खजूर, चिरौंजी, जम्वीर कुटक, केतक, पियंगु, कदम्ब, सप्तच्छद; असन, कोविदार और करवीर के सब वृक्ष लगे थे और जो फूलोंसे लदे हुए थे तथा जिनमें कोढ़ियाँ लगी हुई थीं। इनपर बहुतसे पक्षी बसे हुए थे और हवासे इनकी शिखाएँ हिल रही थीं। वहाँकी वापीमें हंस और कारण्डव नामक पक्षी थे तथा भाँति-भाँतिके कमल

खिले हुए थे। क्रीड़ाके अनेक छोटे-छोटे पर्वत और जलाशय बने हुए थे और सर्वदा फलनेवाले और बहुतसे वृक्ष वहाँके रमणीय बागोंमें लगे थे जिन्हें हनुमान्ने देखा। लंकाके चारों ओर खाँई बनी थी, जिसके जलमें सब प्रकारके कमल खिले हुए थे। सीताको हर ले जानेके कारण रावणने लंकाकी रक्षाका प्रबन्ध किया था। उसके चारों ओर वीर धनुर्धारी राक्षस घूम रहे थे तथा वह महानगरी सोनेकी चारदिवारीसे घिरी थी, जिसके मध्यमें पर्वताकार ऊँचे शरतकालीन मेघोंके समान स्वच्छ घर लंकामें बने हुए थे। वहाँकी सड़कें पीली और ऊँची बनी हुई थीं। सैकड़ों अटारियाँ, ध्वजा और पताकाओंसे शोभित थीं, जिनके बारजोंपर स्वर्णमण्डित बेल-बूटे बने थे। तब जिसप्रकार इन्द्र अमरावतीको देखते हैं, उसीप्रकार बिना किसी क्षोभके हनुमान्ने सुशोभित गगनचुम्बी लंकाको देखी, जिसका पालन राक्षसराज रावणकर रहा था और जिसे विश्वकर्माने बनाया था। हनुमान्ने उस नगरीको आकाशमें उड़ती हुईके समान देखा, जिसकी चार दिवारियाँ और बारजे उस लंका सुन्दरीके जघनके समान थे। समुद्र और वन वस्त्रके समान और शूल नामके अस्त्र केशके समान, अटारियाँ कर्णभूषणके समान तथा जिसका निर्माण विश्वकर्माने केवल मानसिक इच्छासे किया था। हनुमान् लंकाके उत्तर द्वारपर पहुँचे। लंकाका उत्तर द्वार आकाशको स्पर्श कर रहा था, उसे देख हनुमान् विचार करने लगे—'अहो ! यह तो कैलाश स्थित अलकाके द्वारके समान है। उसके उत्तम भवन मानों आकाशको रोके खड़े हैं। जैसे विषधर सर्पोंसे कोई गुहा भरी हो वैसे ही भयानक राक्षसोंसे लंका भरी थी। इस नगरीका यह प्रबन्ध है। इधर समुद्र और उधर भयानक शत्रु रावण'। तब यह देखकर हनुमान्को मनही मन विचार हुआ कि, यहाँ आकर भी वानर निरर्थक ही रहेंगे। कारण कि लङ्काको युद्धके द्वारा तो देवता भी नहीं विजय कर सकते। इसका पालक रावण है। यह परम दुर्गम है। यहाँ प्राप्त होकर भी सुबाहु राघव क्या करेंगे ? राक्षसोंके साथ साम, दाम, भेद और युद्ध भी नहीं चल सकता। लंकामें तो वेगवान् अंगद, नील, मैं और सुग्रीवये ही चार वानर प्रवेश कर सकते हैं। चलो, तब-तक सीताका ही पता लगाऊँ कि वे जीवित हैं या नहीं। यह जानकर ही मैं वैसा निश्चय करूँगा। फिर तो क्षण-

भर उसी पर्वतपर बैठे हुए हनुमान्‌ने सीताके पता लगानेके उपायपर विचार किया। उन्होंने विचार किया कि इसके लिए मुझे राक्षसोंको धोखा देना पड़ेगा। क्योंकि ये राक्षस बड़े बलवान् पराक्रमी और योद्धा हैं। अतः इस कार्यके लिए मैं कोई छोटा-सा रूप बनाकर रात्रिमें लंकामें प्रवेश करूँ और मेरा वह स्वरूप हो कि मैं कभी दिखाई पड़ूँ और छिप सकूँ। इस प्रकार देवताओं और असुरोंके द्वारा प्रवेश करनेके अयोग्य वैसी लंकापुरीको देख-कर हनुमान् दीर्घ श्वास लेते हुए विचार करने लगे कि मैं किस युक्तिसे सीताको देखूँगा, जिसमें दुरात्मा रावण मुझे न देख सके। यदि मैं एकान्तमें जनक-तनयासे मिल जाता तो श्रीरामचन्द्रजीका कार्य नष्ट नहीं होता। निश्चित कार्य भी, अविवेकी दूतके द्वारा देशकालके विरुद्ध होनेसे नष्ट हो जाता है। यदि मैं थोड़ा भी अविवेक करूँगा तो मेरा यह समुद्र-लंघन व्यर्थ हो जायगा और रावण-वधके इच्छुक विदितात्मा रामका भी कार्य व्यर्थ हो जायगा। इधर यहाँके राक्षस ऐसे हैं कि जिनसे लंकामें कुछ भी रूप बना कर कोई क्यों न आवे—राक्षस उसे ज्ञात कर लेंगे। यदि मैं छिपकर भी रहूँ तो भी मार दिया जाऊँगा और तब स्वामीका कार्य नष्ट हो जायगा। फिर भी मैं रात्रिमें रावणकी नगरीमें प्रवेश करूँ और यहाँके समस्त भवनोंमें प्रवेशकर सीताका पता लगाऊँ। ऐसा विचारकर सीताके दर्शनेच्छुक हनुमान् सन्ध्या-कालकी प्रतीक्षा करने लगे। सूर्यास्त होनेपर रात्रिमें हनुमान्‌ने अपना संक्षिप्त रूप किया और एक अद्भुत रूपमें बिल्लीके समान हो गए। प्रदोष-काल (सन्ध्या समय) में हनुमान् कूदकर लंकापुरीमें प्रवेश किये। विमल चौड़ी सड़कें, अटारियोंकी कतारें, सुवर्णके स्तम्भ और सुवर्णकी जालियाँ बनी हुई थीं और वह नगरी गन्धर्व नगरीके सदृश ज्ञात होती थी, जिसमें सतमहले और अठमहले भवन हनुमान्‌ने देखे। सभी राक्षसोंके घर मैदानोंसे सुशोभित हो रहे थे, जो स्फटिकके बने और कामदायक स्वर्ण-मण्डित थे। राक्षसोंके गृहके द्वार, बारजे सोनेके और भाँति-भाँतिके कारी-गरीसे युक्त थे, जिनसे चतुर्दिक लंकाकी और ही शोभा थी। सीताको देखने के इच्छुक हनुमान् ऐसी अद्भुत और अचिन्तनीय लंकाको देखकर चिन्तित भी हुए और प्रसन्न भी। पीले सतमहले भवन ऐसे सटे हुए थे, जो मालाके

समान प्रतीत होते थे। उनमें बहुमूल्य सोनेकी खिड़कियाँ लगी हुई थीं, जिनकी बड़े बली राक्षसोंके द्वारा रक्षा होती थी और सर्वोपरि रावणका शासन था। उसी समय चन्द्रमा भी मानों हनुमान्‌की सहायताके लिए तारागणों सहित आकाशके मध्यमें आकर शोभित हुआ। वह अपनी कई सहस्र किरणों सहित संसारको प्रकाशितकर उदित हुआ। हनुमान्‌ने देखा कि वह चन्द्रमा शंख, क्षीर और मृणालके सदृश श्वेत और ऐसा सुशोभित है, मानों तालाबके मध्यमें हंस तैर रहा हो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दरकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

लंकामें प्रवेश करते समय शरीरधारिणी लंकाकी हनुमान्‌को घूँसा मारना

इस प्रकार त्रिकूट पर्वके उस महामेघवत् उच्च शिखरपर स्थित हनुमान्‌ने धैर्य धारणकर रात्रिमें उस रावण-पालित लंकामें प्रवेश किया जो रमणीय वनों और जन्तुओंसे सुशोभित थी। उसमें शरद्‌के मेघोंके समान श्वेत भवनोंकी शोभा हो रही थी। उसमें समुद्रके समान शब्द उत्पन्न हो रहा था। समुद्रका वायु उसकी सेवा करता था। वह नगरी बलवान् सेनाओंसे ऐसी सुशोभित थी जैसे अलकापुरी। भवनोंके बहिर्द्वार पर सुन्दर चबूतरे बने हुए थे। द्वारोंपर श्वेत तोरण लगे थे। जैसे सर्पोंकी नगरी भोगवतीमें सर्प आते जाते रहते हैं, वैसेही लंकामेंभी सर्पोंका आना-जाना लगा रहता था। यह नगरी बिजली मेघ और नक्षत्रोंसे युक्त रहती थी। प्रचंड वायु सर्वदा गर्जन किया करता था। इसप्रकार की लंकापुरीको सब ओरसे देखकर हनुमान्‌को बड़ा विस्मय हुआ। यह नगरी सोनेकी चारदिवारीसे घिरी हुई थी। घरोंमें जहाँ-तहाँ लगी हुई पताकाओं की घंटियोंका शब्द होरहा था। उस नगरीके समीप जाकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए और कूदकर चारदिवारीपर चढ़ गये। उसके द्वार सोनेके बने थे और वैदूर्य मणिकी वेदियाँ बनी हुई थीं। स्फटिक और मोतियोंकी भी वेदिकायें बनी थीं। मणियोंके चौतरे बने हुए थे। निकासपर सोनेके चबूतरे बने हुए थे जो चाँदीके योगसे श्वेत जान पड़ते थे। वैदूर्यमणिकी सीढ़ियाँ थीं तथा भवनोंके भीतरी भाग स्फटिकके बने हुए थे। जगह-जगह क्रौंच और मयूरों का शब्द होरहा था, राजहंस बिचर रहे थे तथा बाजों और आभूषणोंके शब्द

से वह सारी नगरी मुखरित होरही थी। अलकापुरीके समान वह आकाशमें टँगी हुई-सी जान पड़ती थी। उस नगरीको देखकर कपिवर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुये और मनही मन सोचने लगे—'रावणके सैनिक हाथमें हथियार लिये इस पुरोकी रक्षा करते हैं। अतः बलपूर्वकतो इसे कोई जीत नहीं सकता। हाँ कुमुद, अङ्गद, सुषेण, मयन्द, द्विविद, सुग्रीव, कुशपर्वा, जाम्बवान् और मेरा प्रवेश तो इसमें हो ही सकता है।' फिर महाबाहु श्रीराम और लक्ष्मणके पराक्रमका विचार करके उन्हें और भी प्रसन्नता हुई। इतनेहीमें अपने अधि-देवरूपसे लंकापुरीने हनुमानको प्रवेश करते देखा। अतः वह उनके समक्ष आकर खड़ी होगई। उसका मुँह देखनेमें बड़ा भयानक था। उसने एक घोर गर्जनाके साथ कहा—बानर! तू कौन है और यहाँ किस कामसे आया है? देख, रावणकी सेना सब ओरसे इस पुरीकी रक्षा करती है। अतः तू इसमें प्रवेश नहीं कर सकता।' तब अपने आगे खड़ी हुई लंकासे हनुमान्‌ने कहा—कुटिले! तू कौन है जो इस नगरके द्वारपर रहती है? तेरी आँखें बड़ी हैं। तू इस प्रकार क्रोध करके मुझे क्यों डाँटरही है? हनुमान्‌की ऐसी बात सुनकर स्वेच्छया रूपधारिणीलंका बहुत कुपित हुई और वह कठोरता पूर्वक बोली—मैं राक्षसराज रावणकी आज्ञामें रहती हुई इस पुरीकी रक्षा करती हूँ। मुझे कोई जीत नहीं सकता। मेरा तिरस्कार करके इस नगरमें जानेका साहस कोई नहीं कर सकता। बानर! मैं स्वयं लंकापुरी हूँ और मैंही सब ओरसे इसकी रक्षा करती हूँ।' हनुमान् बोले—लंके! मैं तो यहाँके बन, उववन, कानन और प्रधान-प्रधान भवनोंको देखनेके लिए आया हूँ। इन्हें देखनेका मुझे बड़ा कुतूहल होरहा है। उनकी यह बात सुनकर कामरूपिणी लङ्काने फिर बड़ी कठोरतासे कहा—'अरे दुर्बुद्धि बानराधम! राक्षसराज रावण मेरा पालन करते हैं। मुझे परास्त किए बिना तू इस पुरीको नहीं देख सकता।' ऐसा कहकर उसने भयंयर गर्जनाकी और बड़े जोरसे सिंहनाद किया। तब हनुमान्‌ने अपने बायें हाथकी मुट्ठी बाँधकर उसे बड़े क्रोधसे एक घूँसा जमा दिया। इससे वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर गई और बड़ी दीनता पूर्वक उनसे गद्‌गद वाणीमें बोली—'महाबाहो! कपिवर! प्रसन्न होइये और मेरी रक्षा कीजिये। मैं स्वयं लंकापुरी हूँ। आपने अपने पराक्रमसे मुझे परास्तकर दिया। मैं

आपसे एक सच्ची बात कहती हूँ। पहले स्वयं ब्रह्माजीने मुझे यह वरदान दिया था कि जिस समय कोई बानर तुझे अपने पराक्रमसे परास्तकर दे, उस समय यह समझ लेना कि अब राक्षसोंके लिए विपत्तिका समय आगया है। सौम्य! आपका दर्शन पाकर आज मेरे समक्ष वह घड़ी उपस्थित है। ब्रह्माने जिस सत्यका निश्चय कर दिया है, उसमें कोई उलट-फेर नहीं हो सकता। अब सीताके कारण दुरात्मा रावण और सभी राक्षसोंके लिए विनाशका समय उपस्थित है। अतः इस रावण-पालित पुरीमें प्रवेश कीजिए और यहाँ जो-जो काम करना चाहते हों, वे सब पूर्ण कीजिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पचम सुन्दर काण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग

हनुमान्‌का लंकाके चौकमें पहुँच वहाँका दृश्य देखना

कपिसत्तम महातेजस्वी हनुमान्‌ने कामरूपिणी लङ्काको जीतकर प्रवेश द्वारको छोड़कर चारदिवारी कूदकर लंका नगरीमें प्रवेश किया। सुग्रीवका हित करनेवाले हनुमान्‌ने रात्रिके समय लंकामें प्रवेशकर शत्रुओंके मस्तकपर अपना बाँया पैर रखा। जिस मार्गसे वे आगे बढ़े उसपर फूल बिखरे पड़े थे। उस समय राक्षसोंके रमणीय भवनोंसे समस्त लंकापुरी जगमगा रही थी। उसमें कई भवन श्वेत मेघोंके समान थे और कई रंगविरंगे थे। हनुमान्‌ने एक घरसे दूसरे घरपर जाकर कई प्रकारके भवन देखे तथा हृदय, कंठ और मूर्धा—इन तीन स्थानोंसे निकलनेवाले मन्द, मध्य और उच्च स्वरसे विभूषित मनोहर गीत सुने। राक्षसोंके घरोंमें बहुतोंको तो उन्होंने मन्त्र जपते हुए सुना और अनेकों राक्षसोंको स्वाध्यायमें तत्पर देखा। कई राक्षसोंको उन्होंने रावणकी स्तुतिके साथ गर्जना करते और राक्षसोंकी एक बड़ी भीड़को राजमर्ग रोककर खड़ी देखा। नगरके मध्यभागमें उन्हें रावणके बहुत से गुप्तचर दिखाई दिए; जिनमें कोई योगकी दीक्षा लिए हुए, कोई जटा बढ़ाए, कोई मूँड़ मुड़ाए, कोई गोचर्म या मृगचर्म धारण किए और कोई नंग-धड़ंग थे। कोइ मुट्ठीभर कुशोंको ही अस्त्ररूपसे धारण किए हुए थे, किन्हींका अग्नि-कुण्डही आयुध था; किन्हींके हाथमें कूट या मुद्गर था, कोई डंडा लिए थे, किन्हींके पास धनुष, खड्ग, शतघ्नी या मूसल था, कोई बढ़िया परिघ लिए थे

और कोई विचित्र कवचोंसे जगमगा रहे थे। कोई बड़े कुरूप थे, कोई अनेक प्रकारके रूप धारणकर सकते थे; किन्हींका रूप सुन्दर था; कोई बड़े तेजस्वी थे तथा किन्हींके पास ध्वजा, पताका और तरह-तरहके आयुध थे। कोई शक्ति और वृत्तरूप आयुध धारण किए थे तथा किन्हींके पास पट्टिश, वज्र और गुलेल थे। किन्हींके गलेमें फूलोंके हार थे; कोई बहुमूल्य आभूषणोंसे सजे हुए थे; कोई अनेक प्रकारके वेष धारण करनेवाले थे और कोई स्वेच्छानुसार विचरते रहते थे। ऐसे एक लाख राक्षसोंको उन्होंने सावधान होकर नगरके मध्यभागकी रक्षामें नियुक्त देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दरकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त॥ ४॥

पाँचवाँ सर्ग

चन्द्रोदय और अन्तःपुरका वर्णन

इसके पश्चात् हनुमान्‌ने देखा कि जिसप्रकार गौओंके झुण्डमें मतवाला साँड़ विचरता है, उसीप्रकार पृथ्वीके ऊपर अपनी चन्द्रिकाका विस्तार करते हुए चन्द्रदेव ताराओंके मध्यमें विचर रहे हैं तथा उनके कारण महासागरमें ज्वार आ रहा है। उस समय राक्षस लोग मतवालोंकी तरह प्रलाप कर रहे थे। वे एक दूसरेपर आक्षेप करते थे और उन्मत्तसे होकर परस्पर दुर्वचन कहते हुए अपनी मोटी भुजाएँ हिला रहे थे। वे मतवाले होकर अपनी छाती भी कूटते थे। अपनी स्त्रीके शरीरपर अपना शरीर रख देते थे। सुन्दर चित्र बनाते थे। और धनुष चढ़ाते थे। कई स्त्रियाँ अपने शरीरमें अंगराग लगा रही थीं। कई स्त्रियाँ सो रही थीं। उनमें कई राक्षस बुद्धिमान् थे; जिनकी बातचीत सुन्दर थी और वे श्रद्धालु थे तथा राक्षस जगत्‌में वे प्रधान माने जाते थे। इस प्रकार उस पुरीमें उन्होंने अनेक तरहके सुन्दर-सुन्दर नामोंवाले राक्षस भी देखे जो सुन्दर स्वरूप और अनेक गुण-सम्पन्न थे और वे गुणोंके अनुसारही आचरण करनेवाले, तेजस्वी एवं अनेकों कुरूप राक्षसोंको देखकर हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए। राक्षसोंकी बहुत-सी स्त्रियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण किए थीं और जिनका अन्तःकरणभी शुद्ध था, प्रभावभी बहुत बढ़ाचढ़ा था और स्वभावसे भी वे उदार थीं जिन्हें अपने प्रियतम और मद्यपानसे बड़ा प्रेम था। वे ताराओंके समान तेजस्विनी थीं। इस प्रकार

हनुमान्ने अनेकों मनोहारिणी और सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं। परन्तु परम सुन्दरी, प्रफुल्लित लताके समान सुकुमारी अयोनिजा राजकुमारी सीताके उन्हें दर्शन नहीं हुए। वे पातिव्रत्य रूप सनातन मार्गमें स्थित रहनेवाली, श्रीरामचन्द्रके ध्यानमें तत्पर, पतिके निर्मल मनमें निवास करनेवाली, अन्य सब स्त्रियोंसे श्रेष्ठ और श्रीरामकी धर्मपत्नी थीं, तब उन्हें वहाँ न देखकर हनुमान् बहुत दुःखी हुए और शिथिल हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५॥

छठवाँ सर्ग

रावणका भवन

इसके पश्चात् इच्छानुसार रूप धारणकर हनुमान् शीघ्रता पूर्वक लंकाके सतमहले मकानोंमें विचरने लगे। अब क्रमशः वे राक्षसेन्द्र रावणके महलमें जा पहुँचे जो चारों ओर सूर्यके समान चमचमाती हुई दीवारोंसे घिरा था और जिसकी रक्षा अनेकों भयानक राक्षस कर रहे थे। उस भवनको देखकर हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए। वह महल चाँदीसे मण्डित, चित्रों, स्वर्णद्वारों और बड़े अद्भुत अन्तर्द्वारोंसे सुशोभित था, जिसमें हाथी दाँत और सोने चाँदीके कामसे सुशोभित रथ घुमाए जा रहे थे तथा जिसमें अनेक प्रकारके रत्न भी जड़े थे। वह महल विश्वासपात्र राक्षसोंसे सुरक्षित तथा सब ओर प्रधान-प्रधान रमणी-रत्नोंसे आकीर्ण था। वे रमणियाँ खूब प्रसन्न थीं तथा उनके आभूषणोंका प्रचुर शब्द हो रहा था। वह भवन राजोचित सामग्रीसे पूर्ण था, उसमें बहुमूल्य रत्नोंकी बाहुल्यता थी तथा सब ओर हाथी घोड़े और रथ खड़े थे। हनुमान्जीने उस भवनको लंकाका आभूषणही समझा और वे उसके आसपास विचरने लगे। इसप्रकार वे एक घरसे दूसरे घरपर तथा राक्षसोंके बगीचोंको देखते हुए निर्भय होकर अटारियोंपर विचर रहे थे। वे बड़े पराक्रमी थे; बड़े वेगसे प्रहस्तके प्रासादसे उतरकर महापार्श्वके महलपर चढ़ गये। पश्चात् वे मेघके समान कुम्भकर्णके महलपर और फिर विभीषणके भवनपर जा कूदे। इसीप्रकार वे महोदर, विरूपाक्ष, विद्युजिह्व, विद्युमाली, बहुदंष्ट्र, शुक, सारण, इन्द्रजित, जम्बुमालि, सुमालि, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकायके महलोंपर भी गए। फिर क्रमशः धूम्राक्ष, सम्पाती, विद्युद्रूप,

महाभयानक घन और विघन, शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, ह्रस्वदंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल और शोणिताक्ष आदिके महलोंपर भी भ्रमण किया। महाकपि हनुमान्‌ने उन वैभवशाली भवनोंमें ऐश्वर्यवान् राक्षसोंकी विपुल सम्पत्ति देखी। अन्तमें उन सब भवनोंको लाँघकर वे फिर राक्षस-राज रावणके महलपर आ गए। वहाँ उन्होंने घूमते हुए रावणके पलँगकी रक्षा करनेवाली उन राक्षसियोंको देखा जिनके नेत्र विकृत थे। वे शूल, मुद्गर, शक्ति और तोमर धारण करनेवाली थीं। इनके अतिरिक्त उन्हें शस्त्रोंसे सज्जित अनेकों विशालकाय राक्षसभी दृष्टि आए। साथ ही रावण के गृहमें उन्हें विविध शिविकायें, लतागृह, चित्रशालाएँ, क्रीड़ाभवन, क्रीड़ा-पर्वत, विलासभवन और दिनके बिहारगृह भी दिखाई पड़े। रावणका महल मन्दराचलके समान ऊँचा और चमकीला ध्वजायुक्त, अनन्त रत्नोंका भण्डार और खजानोंसे भरा था। उसमें और पुरुषोंने विधिरक्षाके उपयुक्त कार्याङ्गोंका अनुष्ठान किया था तथा वह साक्षात् कुबेरके भवनके समान ज्ञात होता था, उसमें यत्र-तत्र पालतू मयूरोंके रहनेके स्थान बने हुए थे। रत्नोंकी किरणों तथा रावणके तेजसे वह घर सूर्यकी किरणों-सा सुशोभित हो रहा था। हनुमान्‌ने वहाँ पलँग, चौकी तथा पात्र सब सुवर्णके देखे। मद्यासवकृत क्लेद (मदिरा) मणिके भाजनोंमें भरा था। नूपुरोंके घोष, करधनीके स्वर मृदंगके शब्द तथा अन्य वाद्योंके शब्दोंसे वह कुवेरभवन सा मुखरित हो रहा था। उसमें अनेक अटारियाँ और सैकड़ों स्त्रियाँ थीं, जिसमें विशाल कक्ष निर्मित थे। हनुमान्‌ने उस विशाल गृहमें प्रवेश किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर कांडका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥६॥

सातवाँ सर्ग

रावणके राजभवनका वर्णन

इस प्रकार बलवान् हनुमान्‌ने रावणका भवन देखा, जिसकी सोनेकी खिड़कियोंमें वैदूर्यमणियाँ लगी हुई थीं और जहाँ पक्षियोंका समूह था। उसमें उत्तम जातिके शंख, शस्त्रास्त्र और धनुषोंकी शालाएँ थीं। उस पर्वत सदृश भवनमें अनेकों मनोहर और विशाल चौबारे थे और विभिन्न

सम्पत्तियोंसे सुशोभित उसमें अनेकों भवन थे, जिनकी देवता और असुर सभी प्रशंसक थे। बड़े प्रयत्नसे वे भवन बनाए गये थे। मयदानवने उसकी रचनाकी थी। गुणमें वे पृथ्वीपर सर्वश्रेष्ठ थे। अनन्तर मेघके समान उन्नतशील, सुन्दर सुवर्णके समान चमकीला, रावणके बलके अनुरूप उस श्रेष्ठ गृहको हनुमान्‌ने देखा, जिसके समान अन्य गृह कहीं नहीं है। अनेक रत्नोंसे युक्त, अति शोभित वह गृह पृथ्वीपर अवतीर्ण स्वर्गोपम ज्ञात होता था। वह गृह श्रेष्ठ स्त्रियोंसे प्रदीप्त हो रहा था। उसी समय हनुमान्‌ने एक सुन्दर रचित विमानको आकाशमें देखा, जिसे श्रेष्ठ हंस खींच रहे थे। जैसे पर्वतका शिखर अनेक धातुओंसे चित्र-विचित्र होता है, जैसे आकाश-ग्रह चन्द्रमा आदिके कारण चित्रित होता है, वैसेही अनेक रत्नोंसे चित्रित, जिसमें युक्तिसे मेघका सुन्दर चित्र बना हुआ था—ऐसे विमानको हनुमान्‌ने देखा। उस विमानकी भूमिपर जो पर्वत बने हुए थे, उन पर्वतोंपर वृक्षराजि लगी हुई थी और उनमें पुष्प, पुष्पकेसर और पत्ते परिपूर्ण थे। उस विमान में पीतवर्णके गृह निर्मित थे तथा पुष्पों युक्त छोटे-छोटे तालाब थे जिनमें कमल केसर निर्मित थे। उसमें सुन्दर बन और बनमें तालाबभी बने थे तथा रत्नोंकी प्रभासे पूर्णतः प्रतीप्त हो रहा था। ऐसे श्रेष्ठ पुष्पक नामके महाविमानको महाकपि हनुमान्‌ने देखा। उस विमानमें वैदूर्यमणि, चाँदी और मूँगेके पक्षी बने हुए थे तथा कामदायक अन्य भी सामग्रियाँ सज्जित थीं। वहाँ विमानमें पद्मयुक्त तालाबमें हाथी बनाये गए थे जिनकी सूँड़में केसरयुक्त कमल शोभित हो रहे थे। साथही हाथमें कमल लिये हुई और सुन्दर हाथोंवाली लक्ष्मी भी वहाँ बनायी गयी थीं। इस प्रकार बसंतके आगमके समय परम सुगन्धित और सुन्दर कोटरवाले वृक्ष-सा दर्शनीय उस गृहमें जाकर हनुमान् आश्चर्यमें पड़ गये। क्योंकि रावण द्वारा पालित अति प्रशंसनीय उस लंकापुरीमें जाकर भी, पतिके गुणोंके स्मरणसे चंचल अतएव दुःखिनी सीताको उन्होंने वहाँ न देखा। इससे वे सुन्दर नीतिमान, शिक्षित अन्तःकरणवाले, अनेक भावनाओंके ज्ञाता और निर्णय करनेमें समर्थ हनुमानका मन बड़ा खिन्न हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥७॥

आठवाँ सर्ग

पुष्पक विमानका वर्णन

हनुमान्‌ने मणिरत्नोंसे चित्रित सुवर्णकी खिड़कियोंसे युक्त रावणके उक्त गृहमें रक्खे हुए एक बहुत बड़े विमानको देखा जो अनुपम चित्रकारियों से युक्त था तथा जिसकी स्वयं विश्वकर्माने प्रशंसाकी थी। जब वह विमान आकाशमें जाता था तब सूर्यमार्गके सदृश ज्ञात होता था। उसमें ऐसी कोई रचना न थी जो विशेषतायुक्त न हो और जिसमें बहुमूल्य रत्नोंका प्रयोग न किया गया हो। वह विमान स्वामीकी इच्छाके अनुसार मन्द या तीव्र चलने वाला था। वह अन्योंके लिए अप्राप्य और वायुके समान वेगशाली था। उसमें परम यशस्वी इन्द्र आदि महात्माओंके आवास गृहके समान गृह निर्मित था। वह विशेष जाति प्राप्त करके वायुमें स्थित, चित्रित अनेक शिखरोंयुक्त, शरदचन्द्र-सा निष्प्रभ और पर्वत-शिखर-सा वह ज्ञात होता था। उसे सहस्रों भूतोंका समूह ले चलता था। कुण्डलधारी उन भूतोंका मुखमण्डल बड़ा ही शोभायमान होता था। वे भूत रातमें चलनेवाले, बहुत खानेवाले औ बड़े वेगवान् हैं. जिनकी बड़ी आँखें गोली और कुछ टेढ़ी-सी हैं। बसन्तके पुष्प समूहसे वह विमान बसन्त ऋतुसे भी और अधिक सुन्दर हो गया था। ऐसे उत्तम पुष्पक नामक विमान्‌को कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥८॥

नवाँ सर्ग

हनुमान्‌जीका रावणके महलमें जा वहाँ पुष्पक विमान देखना तथा उसका वर्णन

उस विमानको विश्वकर्माने ब्रह्माजीके लिए बनाया था। कुबेरने बड़ी तपस्या करके इसे ब्रह्माजीसे प्राप्त किया और फिर कुबेरको परास्त करके इसे रावणने अपने हस्तगत किया। इस विमानमें सुमेरु और मन्दराचलके समान ऊँचे अनेकों गुप्तगृह और मांगलिक भवन बने थे, जो अपनी ऊँचाईमें मानों आकाशको स्पर्श कर रहे थे, जिनका प्रकाश अग्नि और सूर्यके समान था। विश्वकर्माने इसमें सोनेकी सीढ़ियाँ बनाई थीं, सोने और स्फटिककी जालियाँ और खिड़कियाँ लगायी थीं तथा इन्द्रनील और महानील मणियोंकी वेदियाँ रची थीं। इसका फर्श मूँगे, महा मूल्यमणि और बेजोड़ मोतियोंसे सुशोभित

था। सुवर्णके समान लाल रंगके सुगन्धित चन्दनसे बना होनेके कारण यह बाल सूर्यके समान जान पड़ता था। महाकपि हनुमान् उस दिव्य पुष्पक विमानपर चढ़ गए। वहाँ बैठकर वे सब ओरसे प्रसरित नाना प्रकारके पेय, भक्ष्य और अन्नकी गन्ध सूँघने लगे। पवनके संयोगसे आगम यह गन्ध अतिही दिव्य ज्ञात होती थी। फिर उस विमानसे उतरकर उन्होंने एक सुन्दर और विशाल भवन देखा जो रावणको परम प्रिय था। उसमें मणियोंके सोपान और सुवर्णकी जालियाँ सुशोभित थीं। उसमें स्फटिकका फर्श था, जिसके जोड़ोंमें हाथी-दाँत जड़ा था। अनेकों मणिमय खंभोंसे सीधे, चिकने और बहुत ऊँचे थे, उसकी बड़ी शोभा हो रही थी, जिनमें मोती, हीरे, मूँगे, चाँदी और सोनेका काम किया हुआ था। उस कमरेमें बहुमूल्य शय्या लगी हुई थी तथा स्वयं राक्षसराज रावण उसमें निवास करता था। उसे देखकर हनुमान् ने तो यही समझा कि यह स्वर्ग है, देवलोक है, इन्द्रकी पुरी है, अथवा स्वयं ब्रह्मलोकही है। दीपकोंके प्रकाश, रावणके तेज और आभूषणोंकी कान्तिसे वह सम्पूर्ण कक्ष आलोकित हो रहा था। इसके पश्चात् हनुमान्ने सुन्दर विस्तृत शय्यापर बैठी हुई सहस्रों सुन्दरी स्त्रियाँ देखी जो रंग-बिरंगे वस्त्र और पुष्पहार पहने तथा अनेक प्रकारकी वेष-भूषाओंसे सुसज्जित थीं। आधीरात होनेपर क्रीड़ा समाप्त हुई, तब वे सब स्त्रियाँ मद्यके नशेमें विह्वल होकर सो गयीं। उन स्त्रियोंके कारण वह कक्ष बड़ाही सुन्दर जान पड़ता था, मानों तारोंसे सुशोभित शरद्-ऋतुका आकाश ही हो। उन स्त्रियोंके मध्यमें राक्षसराज रावण तारोंसे घिरे चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था और स्त्रियोंमेंसे किन्हीं-किन्हींके केश, फूलोंके मोटे-मोटे गजरे और मनोहर आभूषण अस्त-व्यस्त हो गए थे। मद्यपान और नृत्यादि-जनित परिश्रमके कारण इस समय वे निद्रासे अचेत हो रही थीं। अनेकों राजर्षियों, ब्राह्मणों, दैत्यों और गन्धर्वोंकी कन्याएँ कामासक्त होकर रावणकी स्त्रियाँ बन गई थीं। उन स्त्रियोंको युद्धाभिलाषी रावण हर लाया था तथा कोई-कोई तो कामातुर होकर स्वयं ही उसके पास चली आई थीं। वहाँ ऐसी कोई स्त्री नहीं थी, जिसे रावण उसकी इच्छाके विरुद्ध बलात्कारसे न लाया हो। उनमें कोई भी स्त्री

अकुलीन, कुरूप, अकुशल, आभूषणादिसे रहित अथवा अपने प्रियतमको अप्रिय हो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दर काण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥९॥

दशवाँ सर्ग

हनुमानजीका रावणके महलमें पहुँच उसे और वहाँके दृश्य देखना।

उस शालामें इधर-उधर दृष्टि डालते हुए हनुमानने स्फटिककी बनी हुई रत्नोंसे भूषित एक पलङ्ग देखा जिसके एक ओर उन्होंने दिव्य मालाओंसे सुशोभित एक श्वेत छत्र देखा, जो साक्षात् चन्द्रमाके समान जान पड़ता था। अनेकों स्त्रियाँ छोटी-छोटी चँवरी लिए रावणको हवा कर रही थीं। वह अनेक सुगन्धित पदार्थ लेप किए था और सुन्दर धूप वहाँ जल रही थी। रावण उस पलङ्गपर सोया था, जो भेड़के चमड़ेसे मढ़ा था। वह नीले मेघके समान श्याम-वर्णका था। उसके कानोंमें चमकीले कुण्डल शोभा दे रहे थे। उसके नेत्र लाल और बाहु विशाल थीं तथा वह सुनहले वस्त्र पहने था। उसके शरीरमें सुगन्धित लाल चन्दन लगा हुआ था। अङ्ग-प्रत्यङ्गमें दिव्य आभूषण थे, देखनेमें वह बड़ा स्वरूपवान् था और इच्छानुसार रूप धारण कर सकता था। पलङ्गपर सोया हुआ रावण हाथीकी भाँति उच्च श्वाँस ले रहा था। हनुमान् उसके निकट तक गए, किन्तु वे उद्विग्न और भयभीत-से होकर लौट आए। फिर वे सीढ़ियोंके द्वारा एक ऊँचे चबूतरेपर चढ़ गए और वहींसे उस मदोन्मत्त राक्षसको देखने लगे। राक्षसराजके विशाल मुँहसे जो साँस निकलती थी, वह उस समस्त भवनमें भर जाती थी, जिसमें आम, मौलसिरी, उत्तम अन्न और मदिराकी गन्ध मिश्रित थी। उसके मस्तकपर सोनेका मुकुट शोभायमान था, जिसपर भाँति-भाँतिके मोती और मणियाँ जड़ी थीं और जो उसके (रावणके) शयनके कारण किञ्चित हट गया था। उसका मुँह कुण्डलोंकी कान्तिसे झिलमिला रहा था तथा उसका विशाल वक्षःस्थल लाल चन्दन और हारसे शोभित हो रहा था। वह बहुमूल्य पीत वर्णकी चद्दर ओढ़े था। उसके उस कक्षमें सुवर्णके चार दीपकोंसे सब ओर प्रकाश हो रहा था, जिससे उसका सारा शरीर स्पष्ट दृष्टि आता था। हनुमानने रावणके पैरोंके पास उसकी कुछ स्त्रियोंको पड़े हुए देखा, जिनके मुख

चन्द्रमाके समान चमक रहे थे तथा जिनकी मालाएँ कभी मुरझाती नहीं थीं और जिनके कानोंमें वैदूर्यमणिसे जटित स्वर्ण-कुण्डल शोभित हो रहे थे तथा कानोंके समीप ही उनके बाजूबन्द दृष्टि आ रहे थे। उन स्त्रियोंसे पृथक् एक अन्य सुन्दर पलङ्गपर हनुमान्‌ने एक अति सुन्दरी स्त्रीको सोते हुए देखा जो मोती और मणियोंसे जटित आभूषणोंसे अलंकृत अपनी कान्तिसे मानों उस उत्तम भवनको भी विभूषित कर रही थी, जिसका शरीर स्वर्णके सदृश गौर वर्णका था। वह अन्तःपुरकी स्वामिनी एवं रावणकी प्रेयसी भार्या मन्दोदरी थी। वायुनन्दन हनुमान्‌ने उस सज्जित स्त्री मन्दोदरीके सौन्दर्य और यौवनको देखकर उसे सीता समझा। फिर तो वे प्रसन्न हो बड़े उत्साहित हुए। उस हर्षमें वे पूँछ पटकने, खेलने, गाने, चलने, खम्भोंपर चढ़ने-उतरने, घूमने और आनन्दित होने लगे। इस प्रकार वे बानरी लीला दिखाने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दर काण्डका दशवाँ सर्ग समाप्त ॥१०॥

ग्यारहवाँ सर्ग

हनुमान्‌का रावणके महलमें सीताको ढूँढ़ना

परन्तु उसी क्षण हनुमान् उस विचारको त्याग प्रभूतस्थ हुए और पुनः सीताके विषयमें अन्य प्रकारकी चिन्ता करने लगे। (उन्होंने सोचा) 'रामसे पृथक् हुई सीता सो नहीं सकती, भोग नहीं कर सकती, अलंकार धारण नहीं कर सकती और मदिरा-पान नहीं कर सकती। वह पर-पुरुषके साथ नहीं जा सकती, चाहे वह देवताओंका राजा इन्द्र ही क्यों न हो; क्योंकि रामके समान देवलोकमें भी, कोई नहीं है। यह कोई दूसरी स्त्री है।' ऐसा निश्चय करके सीताको देखनेके लिए उत्सुक कपि-श्रेष्ठ पुनः उस हेम-भवन मद्यशालामें भ्रमण करने लगे। वहाँ उन्होंने महात्मा रावणके भवनमें उसकी उस पानभूमिको सब सामग्रियोंसे पूर्ण देखा, जिसमें हरिण; भैंसा और सुअरका मांस अलग-अलग रक्खा हुआ देखा और सुवर्णके थालोंमें मोर और मुर्गेका बिना जूठा मांस रक्खा हुआ देखा। इसप्रकार अनेक पशु पक्षियोंके मांस, मछलीके टुकड़े, विविध प्रकारकी चटनियाँ, नमक खटाई मिश्रित पक्वान्न उन्होंने देखे। वहाँ बिखरे हुए बहुमूल्य नूपुरों और केयूरों, लुढ़काये हुए प्यालों, विभिन्न फलों,

अत्युतम बिछाए हुए सुन्दर बिछौनों तथा पुष्पोंसे सज्जित वह स्थान अधिक शोभित होता था। वह पानभूमि अग्निके बिनाही चमकती हुई दीख पड़ती थी। उस श्रेष्ठ पानभूमिमें सुवर्णके घड़ोंमें भरी हुई मदिरा वहाँ देखी। मदिरा-पूर्ण प्यालियाँ देखी। उनमेंसे कुछ आधी बची हुई और कुछ सर्वथाही रहित थीं। इसीप्रकार हनुमान्‌ने वहाँ राक्षसराजके भवनमें मदिरासे नेत्र-विह्वला और मूर्छित सोई हुई जो बहुत-सी स्त्रियाँ देखा उनमें कोई स्त्री साँवली, कोई गोरी, कोई काली और कोई स्वर्ण वर्णकी थी। इसप्रकार हनुमान्‌ने रावणके गृहका कोना-कोना देख डाला परन्तु उन्हें जानकी कहीं दिखाई न दीं। तब उन स्त्रियोंको देखते-देखते हनुमान्‌जीके मनमें धर्मभयसे बड़ी शंका हुई। वे सोचने लगे—'हरप्रकार अन्तःपुरमें सोई हुई परायी स्त्रियोंको देखना तो मेरे धर्मको सर्वथाही नष्ट कर देगा। किन्तु इन परिस्थियोंको मैंने काम-बुद्धिसे नहीं देखा है। मैंने रावणकी स्त्रियोंको देखा अवश्य है; किन्तु इससे मेरे मनमें किञ्चित भी विकार नहीं हुआ। समस्त इन्द्रियोंकी शुभाशुभ क्रियाओंमें प्रवृत्तिका कारण मनही है और मेरा मन निर्विकार है। इसके अतिरिक्त मैं सीताको अन्यत्र ढूँढ़भी नहीं सकता। स्त्रियोंको ढूँढ़ते समय स्त्रियोंकेही मध्यमें ढूँढ़ाजा सकता है। मैंने शुद्ध हृदयसे रावणका सारा अन्तःपुर छान डाला। यहाँ मैंने देवता, गन्धर्व और नागोंकी कन्याएँ तो देखीं, परन्तु जानकी कहीं न दिखाई पड़ी।' अन्तमें सीताको वहाँ न देखकर हनुमान् उन्हें अन्य स्थानमें ढूँढ़नेके लिए चल पड़े।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दरकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११॥

बारहवाँ सर्ग

हनुमान्‌का अन्य स्थानमें सीताको ढूँढ़ना

रावणके उस गृहमें जाकर सीताको देखनेके इच्छुक हनुमान्‌ने लतागृह, चित्रगृह और निशागृहोंमें सीताकी खोजकी। परन्तु वहाँ भी वे चारुदर्शना सीताको न देख सके। तब हनुमान् मन ही मन विचार करने लगे कि अवश्यही सीता अब बर्तमान नहीं हैं। यदि वह होतीं तो ढूँढ़नपर अवश्य मिलतीं। परन्तु सीताको देखे और समुद्र-लंघनके पुरुषार्थका फल पाए बिना अब सुग्रीवके पास जानेवाली कोई उपाय नहीं है; क्योंकि बानरोंके साथ

अधिक समय तक घूमते रहकर उनकी निश्चित्की हुई अवधिको भी हमने व्यतीत कर दिया है और वानरराज सुग्रीव बड़े ही बलवान् एवं कठोर दण्ड देनेवाले हैं। इधर मैंने रावणके समस्त अन्तःपुरको देख डाला, उसकी सभी स्त्रियाँ देख लीं; किन्तु साध्वी सीता कहीं दिखाई न दी। मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। अब यदि मैं लौटकर जाता हूँ तो सारे वानर मुझे क्या कहेंगे ? वे जब मुझसे सीताको पूछेंगे तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा। अब तो समय व्यतीत हो जानेके कारण मुझे मरणान्त उपवास ही करना पड़ेगा। वृद्ध जाम्बवान्, अङ्गद तथा अन्य वानर मुझे क्या कहेंगे ? किन्तु मुझे हताश नहीं होना है। यही सफलताका मूल है और यही परम सुख है। उत्साहही मनुष्यको सर्वदा सब प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त करता है और वही उसे उसके कार्योंमें सफलता देता है। अतः मैं निरुत्साह न होकर अभी और प्रयत्न करता हूँ। रावणसे सुरक्षित जिन स्थानोंको अभी मैंने नहीं देखा है, उन्हें भी देख लूँ। पानशाला, पुष्पगृह, चित्रशाला और क्रीड़ागृह–इन सबको तो मैं देख चुका। ऐसा सोचकर उन्होंने फिर खोजना आरम्भ किया। वे तहखाने, मण्डप और एकान्तमें निर्मित कुटियोंमें सीताकी खोजकी। वे किसी गृहके ऊपर चढ़ जाते, किसीके नीचे उतर जाते, किसीके आगे खड़े होते, किसीको चलते ही चलते देख लेते, किसी किवाड़को खोलते, किसीका द्वार बन्दकर उसके भीतर प्रवेशकर देखते। परन्तु सीता उन्हें कहीं भी दिखाई न दीं। उन्हें और तो बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ दिखाई पड़ीं; परन्तु सीताको न देखकर वे बहुत उदास हो गए। अन्य वानरोंका उद्योग और अपना समुद्रपार आना उन्हें व्यर्थ ज्ञात हुआ। इसलिए वायुनन्दन पुनः चिन्तित हुए। शोकवश उनकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गईं। वे विमानसे उतरकर फिर चिन्ता करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२ ॥

तेरहवाँ सर्ग

चिन्तित हनुमान्का अशोकवाटिका जाकर सीताको खोजना

तब हनुमान् विमानसे उतरकर चारदिवारीपर आए। जैसे मेघोंमें बिजली चलती है, वैसेही वे वेगसे चलते थे। रावणके सभी घरोंमें घूमनेपर

भी जब उन्हें सीता न मिलीं तो वे मन ही मन कहने लगे—'मैंने श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिए कई बार लंका छान डाली। तालाब, पोखरे, सरोवर, नदियाँ, नद, जलके आसपासके बन तथा दुर्गम पहाड़—इसप्रकार सारी पृथ्वी खोज डाली; किन्तु सीता मुझे कहीं भी नहीं मिलीं। गृद्धराज सम्पातिने तो उन्हें यहाँ रावणके महलमें ही बताया था, फिर भी वे न जाने दिखाई क्यों नहीं देतीं। मैं तो समझता हूँ कि रावणके प्रबल वेग और उसकी भुजाओंके दृढ़ बन्धसे पीड़ित होकर विशालाक्षि साध्वी सीताने प्राण दे दिए हैं। ऐसा न हुआ हो कि जिस समय रावण उन्हें समुद्रके ऊपरसे होकर लाया हो, वे छटपटाकर समुद्रमें गिर गई हों। अथवा अपने धर्मकी रक्षा करनेवाली उस बन्धुहीन तपस्विनीको नीच रावण ही तो नहीं खा गया ? अथवा राक्षसराज रावणकी इन दुष्ट हृदया पत्नियोंने ही तो उस साध्वीको नहीं खा लिया ? अथवा रावणके ही किसी गुप्त गृहमें रखकर उनका विशेष प्यार तो नहीं किया जा रहा है ? किन्तु कमल नयनी सीता रावणके वशमें तो कैसे आ सकती है ? वे या तो मारी गयीं या मर गयीं ? परन्तु श्रीराम तो अपनी पत्नीको बहुत प्यार करते हैं, उनसे यह बात कैसे कही जा सकती है ? फिर हनुमान् यह सोचने लगे कि 'ऐसी अनिश्चित अवस्थामें क्या करना चाहिए ? यदि मैं सीताको देखे बिनाही लौट जाता हूँ तो मेरा पुरुषार्थ ही क्या हुआ ? फिर किष्किन्धा पहुँचनेपर मुझसे मिलकर सुग्रीव, अन्य वानर तथा दशरथकुमार भी क्या कहेंगे ? इसलिए मैं यहाँसे किष्किन्धापुरीको तो नहीं जाऊँगा। सीतासे मिले बिना मैं सुग्रीवका भी दर्शन नहीं करूँगा। सीताके न मिलनेपर मैं वानप्रस्थ हो जाऊँगा और वृक्षोंके नीचे निवास करूँगा। यदि सीता मुझे न मिलीं तो मैं जल समाधि ले लूँगा। इसप्रकार मेरा यह प्राण-त्याग तो ऋषियोंकी दृष्टिमें भी उत्तम ही होगा। अथवा मैं वृक्षके नीचे रहनेवाला तपस्वी हो जाऊँगा। जो कुछ भी हो सीताको देखे बिना तो मैं यहाँसे जाऊँगा ही नहीं। फिर मनमें अनेकों दोष हैं। जीवित रहनेपर तो कभी न कभी मनुष्य अच्छे दिन देख ही लेता है। इसलिए मैं अवश्य प्राण धारण करूँगा। जीवित रहनेपर एक न एक दिन सीतासे अवश्य भेंट हो सकती है। इसप्रकार हनुमान बहुत दुःखी हुए। उन्हें शोकका कोई

अन्त न दिखाई पड़ा। किन्तु धीर-वीर मारुतिके मनमें फिर उत्साहका उदय हुआ। उन्होंने बार-बार लङ्काको ढूँढ़ना ही उचित समझा। अब वे अशोक-वाटिकामें जा पहुँचे, जिसके वृक्ष बहुत बड़े-बड़े थे। वहाँ पहुँचकर वे मनही मन सोचने लगे—मैंने श्रीरामका कार्य करनेके लिए और रावणकी दृष्टिसे बचनेके लिये अपना शरीर छोटा बना लिया है। समस्त देवता और ऋषि-गण मुझे इस कार्यमें सफलता दें। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा तथा अन्य समस्त देवगण, तपोनिष्ठ महर्षि, अग्निदेव, वायु, इन्द्र, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, अश्विनीकुमार, समस्त मरुद्गण, सब भूत और भूतोंके स्वामी मुझे सफलता दें। यह क्षुद्र नीच और निर्दयी रावण बेचारी अबला सीताको हर लाया है। मैं किस प्रकार उन्हें देखूँगा ?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दरकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवाँ सर्ग

अशोकवाटिका-वर्णन

हनुमान् थोड़ी देर तक इसी प्रकार विचार करते रहे। पश्चात् रावणके महलसे उतरकर अशोकवाटिकाकी चहारदिवारी पर चढ़ गये और वहींसे बैठे-बैठे वे उसके पुष्पित सभी वृक्षोंपर दृष्टि दौड़ाने लगे। उन्होंने सभी वृक्षोंको देख डाला। वे वाटिकाके एक छोरसे दूसरे छोर तक चले गये। वाटिकमें सभी प्रकारके पक्षी बोल रहे थे तथा अनेक वृक्ष फूले-फले थे। वहाँ बहुतसे मृग विचर रहे थे तथा मोर बोलते और सभी प्रकारके पक्षी शोभा दे रहे थे। वहाँ की भूमि मणि, चाँदी और सोनेकी थी, जिसमें अनेक आकारकी बावलियाँ बनी थीं और जिनमें सुनहले कमल खिले हुए थे। वहाँ हनुमान्ने एक मेघके समान उन्नत शिखरका पर्वत देखा जिसमें अन्य शिखरोंके साथ यत्र-तत्र गुफाएँ थीं और अनेकों वृक्ष उगे हुए थे। यह पर्वत संसार भरमें रमणीय था जिससे एक नदी गिर रही थी। उसके समीप ही एक और सरोवर भी था जिसके तटोंपर अनेक प्रकारके पक्षी रहते थे तथा उसके अतिरिक्त वहीं समीपहीमें एक और कृत्रिम तालाब भी हनुमान्ने देखा जिसमें शीतल जल भरा हुआ था और जिसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी थीं और किनारोंपर मोतीकी रेत थी। इस वाटिकामें विश्वकर्माके बनाए हुए

बड़े बड़े महल सुशोभित थे जिससे वह और भी सुसज्जित था तथा जिनके आगे वेदियाँ बनी थी। यह सब देखकर हनुमान्को वहाँ एक अशोकका वृक्ष दिखा जो अनेक लताओंसे आवेष्टित था। हनुमान्जी छलांग लगाकर उस अशोक वृक्षपर चढ़ गये और सोचने लगे—दुरात्मा रावणकी यह अशोकवाटिका बड़ी रमणीय है जो चन्दन; चम्पा और मौलसिरीके वृक्षोंसे सुशोभित है। वह पक्षियोंसे सुशोभित सरोवरभी बड़ाही मनोहर है। यहाँ राजा रानी और सीता अवश्य आती होगी। सीताके लिए वह अशोक वाटिका सब प्रकार अनुकूलही है। यह सब सोचकर हनुमान् उस अशोक वृक्षके सघन पत्तोंमें छिप गये और सीताकी प्रतीक्षा करते हुए समस्त वाटिकापर दृष्टि दौड़ाने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दर काण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

अशोकवाटिकामें हनुमान्को सीताका दर्शन

इस प्रकार सिंसपा वृक्षपर बैठे-बैठे और वहाँकी चतुर्दिक शोभा देखते-देखते हनुमान्की दृष्टि एक ऐसे महलपर पड़ी जो गोलाकार और बड़ाही उन्नत तथा कैलासोपम श्वेतवर्णका था, जिसमें सहस्रों स्तंभ, मूँगेके सोपान और सुवर्णकी वेदिकाएँ निर्मित थीं। वह निर्मल प्रासाद स्वयं शोभासे प्रतीप्त होरहा था, तथा उसके कँगूरे आकाशको स्पर्श कररहे थे। इतनेहीमें उनकी दृष्टि राक्षसियोंसे घिरी हुई एक मलिन-वसना सुन्दरीपर जा पड़ी जो उपवासके कारण बहुत दुर्बल और दीन होरही थी। वह बार-बार ठंढी साँस लेती थी और उसके शरीरपर केवल एक पीला वस्त्रही था। उसका मुँह अश्रुपूर्ण था तथा वह निरन्तर शोक-चिन्तामग्न थी। उसके सिरपर काले नागके समान एकही वेणी कमर तक लटक रही थी। उस अत्यन्त मलिन बिशालनेत्री सुन्दरीको देखकर हनुमान्ने निश्चय किया कि सीताजी यही हैं। स्वेच्छयारूपधारी राक्षसराज रावण जिस स्त्रीको हर ले जारहा था और उसका जैसा रूप उस समय देखा गया था, वैसाही इस देवीका भी रूप है। उसका मुख पूर्णमासीकी चन्द्रमाके समान था तथा वह अपनी कान्तिसे सब दिशाओंको देदीप्यमान कररही थी। वही संयमशीला तपस्विनीके समान यहाँ पृथ्वीपर बैठी है। जैसे

व्याकरणके नियमोंसे रहित होनेपर वाक्योंका अर्थ दुर्बोध होजाता है, उसी प्रकार शरीरकी सजावटसे रहित सीताको उन्होंने बड़ी कठिनतासे पहचाना। श्रीरामने सीताके अङ्गोंमें जिन-जिन आभूषणोंकी चर्चाकी थी, वे सब उन्हींने देखे। सभी अपने-अपने स्थानोंमें सुशोभित होरहे थे जो बहुत दिनोंसे पहने हुए होनेके कारण काले पड़गये थे। उन्हें देखकर हनुमान्ने सोचा कि और सब तो विद्यमान हैं किन्तु वे ही आभूषण नहीं दिखाई देरहे हैं, जो इन्होंने ऋष्यमूकपर्वतपर गिरा दिए थे और जो बचे हैं वे वही हैं जिनका परिचय श्रीरामने मुझे दिया है। इसी मलिन पीले वस्त्रमें से फाड़कर इन्होंने ऋष्यमूकपर गिराया था। अतः यह सुवर्णकेसे वर्णोंवाली देवी अवश्यही श्रीरामकी प्रिया सीता हैं जो उनकी रूप-माधुरीके तुल्य हैं। ये अवश्य उन्हींकी अर्द्धाङ्गिनी हैं। इस प्रकार सीताको देखकर हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए और मनही मन श्रीरामके समीप पहुँच उनकी प्रशंसा करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

सोलहवाँ सर्ग

सीताके दुःखसे हनुमान्का दुःखी होना

परिपुंगव हनुमान् प्रशंसनीय सीताकी प्रशंसा करके और गुणाभिराम रामका स्मरण करके पुनः चिन्ताग्रस्त हो गये। थोड़ी देर विचार करके सीताके लिए विलाप करने लगे। उनके नेत्र आँसुओंसे भींग गये। सीताकी उस दुःखद दशाको देख कहने लगे—कालकी गतिको कोई पलट नहीं सकता। जिस विशाललोचनाके लिए श्रीरामने बालिको मारा तथा रावण-सा पराक्रमी कबन्धका संहार किया, भयंकर पराक्रमी विराध, भीषणकर्मा चौदह हजार राक्षसों सहित खर-दूषण और त्रिशिराको युद्धमें मारकर उनका संहार कर दिया, वही शोभामयी सीता आज इतने कष्टमें हैं। यदि त्रिलोकीके राज्य-सुखसे सीताकी तुलना कीजिये, तो सीताकी एक कलाके भी समान नहीं है। ये धर्मशील मिथिलाधिपति महात्मा जनककी कन्या और पातिव्रत्यधर्ममें परम दृढ़ हैं, जो हल जोतते समय पृथ्वी फोड़कर कमल-केसरके समान खेतकी धूलमें लिपटी हुई प्रकट हुई थीं और केवल पति-प्रेमसे सब भोगोंको त्याग वनमें चली आयीं। यहाँ वनमें फल-मूलोंपर ही सन्तुष्ट

रह पतिकी सेवामें वैसेही तत्पर रहती थीं जैसे राजमहलोंमें। यह सीता वास्तव में सुख पाने ही योग्य हैं। इन्हें दुखी देखकर मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है। अहो! जो पृथ्वीके समान क्षमाशीला और कमलसे नेत्रोंवाली हैं तथा श्रीराम और लक्ष्मण जिनकी सर्वदा रक्षा करते हैं, आज ये वृक्षके नीचे विकट नेत्रोंवाली राक्षसियाँ इन्हें घेरे बैठी हैं। उस वृक्षपर बैठे हनुमान् ऐसा विचार करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥१६॥

सत्रहवाँ सर्ग

सीताकी रखवाली राक्षसियाँ और कुछ सीताका वर्णन।

अनन्तर श्वेतकमलके समान निर्मलोदय चंद्रमा उज्वल आकाशमें ऊपर चढ़ आये, जैसे नीले जलमें हंस। उस समय पूर्ण चन्द्रानना सीताको हनुमान्ने शोकसागरसे पीड़ित, जलमें भँवरसे झुकी हुई नौकाके समान देखा। उनके समीप ही, उन्हें वे भयंकर राक्षसियाँभी दृष्टि आईं जिनमें से कोई एकाक्षी, कोई एक कर्णवाली, किसीके कर्ण, ललाट, उदर, स्तन, ओठ, मुँह और घुटने लम्बे थे। कोई नाटी, कोई लम्बी, कोई कुबड़ी, कोई टेढ़ी, कोई बौनी, कोई कठोर, कोई टेढ़े मुँहवाली, कोई पीले नेत्रोंवाली और कोई विकट मुँहवाली थी। कोई शूकरी-मुखवाली, किसीका मुख मृग, सिंह, भैंस, बकरी या लोमड़ीका-सा था, तथा किसीके पैर हाथी, ऊँट या घोड़ेके पैरोंके समान थे। किन्हींके हाथोंमें त्रिशूल या मुद्गर था। कोई अति क्रोधिन, कलही और कोई निरन्तर मद्यपेयी थी, जिनके शरीरोंमें मांस और रुधिर लिपटे हुए थे तथा वही जिनका मुख्य आहार था तथा जिनके देखते ही रोमाञ्च हो जाता था। ऐसी राक्षसियोंको हनुमान्ने सीताकी रखवाली करते हुए देखा। वे उन्हें घेरे हुए बैठी थीं और विशाल शाखाओं वाले वृक्षके नीचे ही अनिन्दिता राजकन्या सीता नतमुख बैठी थीं। वे अशोक वाटिकामें विराजमान शोकसागरमें निमग्न हो रही थीं, जिन्हें अपने पतिदेवका दर्शन दुर्लभ हो गया था। उन्हें पुष्पहीन लताके समान ही देखकर हनुमान्के नेत्रोंसे प्रेमाश्रु टपक पड़े। उन्होंने मन ही मन राम और लक्ष्मणको नमस्कार किया और वहीं छिपकर स्थिर हो बैठे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥१७॥

अट्ठारहवाँ सर्ग

अशोक-वाटिकामें रावण

इस प्रकार उस पुष्पित वनको देखने और वैदेहीकी खोजमें लगे हुए हनुमान्‌ने समस्त रात्रि व्यतीत कर दी और अब थोड़ी ही रात्रि शेष रह गई। उसी समय वहाँ षडङ्ग वेदोंके ज्ञाता और याज्ञिक ब्रह्मराक्षसोंकी वेद-ध्वनि हनुमान्‌को सुनाई पड़ी। इतनेहीमें मंगल-वाद्यों और श्रुतिके मनोहर शब्दोंसे महाबली महाभुज रावण जाग उठा। उठते ही उसने सीताका चिन्तन किया। फिर सब प्रकारके आभूषण धारणकर, अति शोभा-सम्पन्न हो वह अशोक-वाटिकामें आया, जहाँ सब प्रकारके फल-फूल-सम्पन्न वृक्ष शोभित थे। चलते समय सैकड़ों स्त्रियाँ उसके साथ हुईं, जिनमें किन्हींने सोनेकी मशालें, किन्हींने चँवर, किन्हींने पंखे लिए, कोई आगे-आगे सुवर्णकी झारियोंमें जल लेकर चलीं और कोई गोलाकार समेटे हुए आसन लेकर पीछे-पीछे चलीं तथा कोई श्वेत प्रकाशमात्र छत्र लिए थीं। इसी समय हनुमान्‌जीको स्त्रियोंकी किंकीणी और नूपुरोंकी झनकार सुनाई दी और उन्होंने देखा कि वह अशोक-वाटिकाके द्वारपर आ गया है। ऐसे ही जब वह और भी समीप आ गया, तब हनुमान् पत्तोंकी ओटमें छिपकर उसे पहचानने लगे। रावण उन रमणियोंसे घिरा था। हनुमान् इसीको वहाँ उसके भवनमें सोया हुआ देखे थे। अब वह कुछ उचककर ऊँचे चढ़ गए और पत्तोंकी ओटमें छिप गए। अति तेजस्वी हनुमान् भी रावणका तेज सह न सके। पश्चात् रावण श्याम नेत्र और केशोंवाली सुश्रोणी और संहस्तनी सीताको देखनेके लिए लौटा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा पचम् सुन्दर काण्ड का अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त॥ १८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

रावणको देख सीताकी दशाका वर्णन

उधर जब अनिन्दिता राजपुत्री सीताने आभूषणोंसे भूषित रावणको वहाँ आते देखा, तब वायुवेगसे कम्पित केलेके वृक्षके समान काँपने लगीं। उन्होंने अपनी जाँघोंसे पेट और दोनों भुजाओंसे अपनेको समेट लिया और रोने लगीं। वे परमदीना, बिना बिछौनेके खुली भूमिपर बैठी हुई कठोर

व्रतोंका पालन कर रही थीं। रावणने देखा कि उनके समस्त अङ्गोंमें आभूषणोंके स्थानसे मैल जम गया है। वे निरन्तर सूखती जा रही हैं, अकेली पड़ी-पड़ी रोती रहती हैं। शोकाकुल होकर श्रीरामका ही ध्यान करती रहती हैं, केवल श्रीराममें ही उनका अनुराग है और यहाँ उन्हें अपने दुःखका अन्त दिखलाई नहीं देता है। वे दुःखसे शिथिल हुई कीर्ति, तिरस्कृत श्रद्धा, क्षीण प्रज्ञा, नष्ट हुई आशा, उपेक्षित आज्ञा, विधिहीन पूजा, विध्वस्त पद्मिनी अन्धकाराच्छादित प्रभा और निर्जल सरिता-सी ज्ञात हो रही हैं। उपवास, शोक, ध्यान और भयसे वे अत्यन्त क्षीण हो रही हैं, जिनका आहार अति अल्प रह गया है, तप ही सर्वस्व है तथा वे दुःखातुरा देवीके सदृश मन ही मन श्रीरामके द्वारा रावणके पराजयकी प्रार्थना कर रही हैं। उस समय सुन्दर पलकोंवाली सीताके विशाल नेत्र लाल और श्वेत हो गए हैं। तब उस राममें मन रखनेवाली रोती हुई अनिन्दिता सीताको रावण ठगने लगा। वह ऐसा अपने वधके लिए कर रहा था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त।।१९।।

बीसवाँ सर्ग

सीताको रावणका अनेक प्रकार लुभाना

तब राक्षसियोंसे परिवृत आनन्दहीन दीना तपस्विनी सीतासे रावण मधुर, अभिप्राययुक्त बोला—हे हाथीकी सुण्डके समान जाँघोंवाली! मुझे देखकर तुम अपनेको क्यों छिपा रही हो? ऐसा भयकर मानो तुम अपनेको लुप्त कर देना चाहती हो। किन्तु विशालाक्षि! मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ, तुम भी मेरा आदर करो। तुम्हें मुझसे जो भय है, वह दूर करो। हे भीरु! परस्त्रियोंको बलात्कारसे हर लाना और उनसे सहवास करना यह तो राक्षसोंका धर्म है। तथापि तुम्हारी इच्छाके बिना मैं तुम्हारा स्पर्श न करूँगा। इसलिए तुम मुझसे भय न करो, मुझपर विश्वास करो, अपना अनुचर समझकर मुझसे प्रेम करो और किसी प्रकारका शोक न करो। ऐसा मलिन वेश रखना तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम तो मुझे पाकर दिव्य वस्त्राभूषण, बहुमूल्य पेय, शय्या, आसन, गान-वाद्य एवं नृत्यका उपभोग करो। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम्हारी रचना करके सौन्दर्यकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माने

भी इस कार्यसे मुक्ति ले ली है। हे सुन्दरि! तुम्हारे रूपकी कोई तुलना नहीं है। मैथिली! तुम यह रामका मोह त्याग दो। मेरी अनेकों सुन्दरी भार्याएँ हैं, उन सबके ऊपर तुम मेरी पटरानी बनो। मैं लोक-लोकान्तरोंसे जो रत्न छीनकर लाया हूँ वह सब और यह सारा राज्य मैं तुम्हें समर्पण करता हूँ। अनेक शूरोंसे पूर्ण इस समस्त पृथ्वीको जीतकर मैं तुम्हारे लिए जनकको दे दूँगा। संसारमें ऐसा कोई नहीं जो मेरा सामना कर सके। तुम युद्धमें मेरा अत्यन्त महान् और बेजोड़ पराक्रम देखना। रामके विजयी होनेकी अब कोई संभावना नहीं रह गई, उसकी शोभाका अन्त हो गया, अब वह एक साधारण बनवासी है। वह तो व्रत करता रहता है और पृथ्वीपर सोता है। मुझे तो सन्देह है कि वह जीवित भी है या नहीं। अब रामको तुम्हारा दर्शन भी दुर्लभ है। देखो, तुमने यह मलिन रेशमी वस्त्र पहन रक्खा है, तुम बहुत कृश हो गई हो, कोई अलंकार भी नहीं धारण करती हो तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे अपनी रमणियोंके साथ भी कोई सुख नहीं मिलता। तुम मेरी सब सर्व-गुण सम्पन्न रमणियों को आज्ञा दो, वे सब तुम्हारी वैसेही सेवा करेंगी जैसे अप्सराएँ लक्ष्मीकी। कुबेरके समस्त ऐश्वर्यका तुम मेरे साथ सानन्द भोग करो। राम तो तपस्वी है। बल, पराक्रम, धन, तेज और यश किसीमें मेरी समानता नहीं कर सकता। इसलिए तुम मुझसेही प्रेम करो। समुद्र-तटके बन जिनमें भ्रमर गूँजते हैं, वृक्षोंकी कतारें पुष्पित हैं। हे भीरु! उन बनोंसे सुवर्णका उज्वल हार पहनकर तुम मेरे साथ विहार करो।

॥ इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ सर्ग

सीताका रावणको उत्तर

इस समय सीता दुःखातुर होकर रो रही थीं। उनकी कँपकँपी बँधी थी और वे निरान्तर अपने पतिदेवका ध्यानकर रही थीं। उस भयानक राक्षसकी यह बात सुनकर उनका कण्ठ भर आया। तब वे तृणकी ओर और उसकी ओर पीठ करके कहने लगीं—'मैं सती हूँ। मैं तुम्हारी बनने योग्य नहीं। तुम यह समझो कि धर्मही श्रेष्ठ है। तुम सज्जनोंका आचरण ग्रहण करो। तुम

मेरी ओरसे अपना मन हटा अपनी स्त्रियोंमेंही लगाओ। पापी पुरुष जिस प्रकार सिद्धिके लिए प्रार्थना करनेका अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार तुम मेरी याँचना करनेके योग्य नहीं हो। मुझ पतिव्रतासे कोई लोक-निन्दित कार्यकी आशा न करो। मैं उच्च कुलोत्पन्न पवित्र कुलसे सम्बन्धित हूँ।' यशस्विनी सीताने ऐसा कहकर फिर कहा कि, हे रावण! मैं परायी स्त्री न्यायानुसार तुम्हारी भार्या नहीं हो सकती। हे राक्षसराज! जिस प्रकार तुम अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करते हो, उसी प्रकार तुम्हें अन्योंकी स्त्रियोंकाभी ध्यान रखना चाहिए। जो चंचल चित्त पुरुष अपनीही स्त्रियोंसे सन्तुष्ट नहीं रहता, उस पापात्माको पराई स्त्रियाँ बड़ा कष्ट देती हैं। यहाँका कोई सत्पुरुष है ही नहीं, या तुम्हीं सत्पुरुषोंके आचरणका अनुसरण नहीं करते, जिससे कि तुम्हारी बुद्धि सदाचार शून्य होकर ऐसी विपरीत हो गयी है? अथवा राक्षसों के विनाशके लिए तुम उनकी बात सुननाही नहीं चाहते। दुष्ट बुद्धि और अन्यायी राजाके हाथमें पड़कर तो बड़े-बड़े समृद्ध राज्य और नगर नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार यह समृद्धशाली रत्नोंसे पूर्ण लंकापुरी अब अकेलेही तुम्हारे अपराधसे अति शीघ्र नष्ट हो जायगी। जैसे पापियोंके मरनेपर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं, वैसेही जिनको तुमने कष्ट पहुँचाया है वे तुम्हें पापी कहेंगे और तुम्हारे मारे जानेपर हर्षित होंगे। हे रावण! जैसे सूर्यसे प्रभा विलग नहीं होती, वैसेही श्रीरामसे मैं अभिन्न हूँ। ऐश्वर्य या धनके द्वारा तुम मुझे लुभा नहीं सकते। लोकनाथ रामकी भुजापर सिर रखकर अब मैं किसी अन्य पुरुषकी भुजापर सिर कैसे रख सकती हूँ। जिस प्रकार वेद-विद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मणकी ही सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं केवल राजा रामकी स्त्री हूँ। हे रावण! तुम्हारे लिए अच्छा यही होगा कि, तुम मुझ दुखियाको श्रीरामके पास पहुँचा दो। लंकाकी रक्षाके लिए तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम पुरुषश्रेष्ठ रामसे मित्रता कर लो। राम सब धर्मोंके ज्ञाता प्रसिद्ध शरणागत वत्सल हैं। यदि तुम जीना चाहो तो उनसे मैत्री कर लो। इसलिए तुम रामको प्रसन्न करो और सावधान होकर तुम मुझे रामचन्द्रको सौंप दो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। यदि इसके विपरीत कुछ भी करोगे तो विपत्तिमें फँसोगे। तुम्हारे जैसेको चलाया हुआ वज्र भी छोड़

सकता है, यमराज भी छोड़ सकता है, पर लोकनाथ राम क्रोध करने पर तुम्हें नहीं छोड़ सकते। अब तुम इन्द्रके छोड़े हुए वज्रके समान श्रीरामके धनुषका शब्द सुनोगे। अब यहाँ अंगार उगलते हुए, सर्प-सा गठीले और राम-लक्ष्मणके नामसे अंकित बाण शीघ्र ही गिरेंगे, जिससे निस्सन्देह इस नगरीके राक्षस मारे जायँगे तथा यहाँ अविच्छिन्न बाणोंकी धारा प्रवाहित होगी और जिस प्रकार दीप्यमान लक्ष्मीको विष्णु तीन पैर रखकर राक्षसोंसे ले गये थे, वैसेही शत्रुहन्ता मेरे पति शीघ्रही मुझे तुम्हारे यहाँसे ले जायँगे। जनस्थानसे राक्षसोंकी सेना मारे जानेसे ही उसके प्रतिशोधरूपमें तुमने यह पर-स्त्रीहरणरूप निन्दित कार्य किया और नरव्याघ्र राम लक्ष्मणके शून्य आश्रममें प्रवेशकर तुमने यह निन्दित कार्य किया। हे अधम! उस समय वे दोनों भाई बनमें गये हुए थे। परन्तु जैसे बाघोंके समक्ष कुत्ता नहीं ठहर सकता, वैसेही तू उनकी गन्ध पाकरभी उनके समक्ष नहीं ठहर सकता। राम-लक्ष्मणसे युद्ध होनेपर उसमें तेरा विजय पाना असंभव है। तू भलेही कुबेर के कैलास पर्वतपर चला जा, अथवा वरुणकी सभामें जाकर छिपे; पर अब दशरथनन्दन श्रीरामके हाथों तुझे अपने प्राण त्यागनेही पड़ेंगे; क्योंकि कालने तुझे ग्रस लिया है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका इकीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

बाईसवाँ सर्ग

रावणका सीताको कठोर वचन कहना तथा सीताका रावणको कठोर उत्तर और रावणका सीताको दो मासकी अवधि देकर प्रस्थान करना

सीताके कठोर वचन सुनकर राक्षसेश्वर रावण प्रियदर्शना सीतासे यह अप्रिय वचन बोला—'प्रिय-वक्ता मनुष्य स्त्रियोंसे जैसे-जैसे प्रिय वचन बोलता है, वैसे-वैसे स्त्रियाँ उसके वशमें हो जाती हैं। परन्तु मैं तुमसे जैसे-जैसे प्रिय वचन बोलता हूँ, वैसे-वैसे तुम मेरा तिरस्कार करती हो। तुम मुझसे जैसी-जैसी कठोर बातें कहतीहो, उनके कारण तो तुम्हें कठोर प्राणदण्ड देनाही उचित है। अतः स्मरण रक्खो—'यदि दो महीनेमें मुझे अपना पति बनाना स्वीकार नहीं करोगी तो मेरे भोजन बनानेवाले रसोईये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।' सीता के प्रति राक्षसराज रावणकी इस धमकीसे देवताओं और गन्धर्वोंको बड़ा

दुःख हुआ। उन्होंने सीताके होठों, नेत्रों और मुँहके द्वारा उन्हें संतोष बँधाया। उनके धैर्य बँधानेपर सीताने कहा—'निश्चयही इस नगरमें तेरा हितैषी कोई नहीं है, नहीं तो वह तुझे इस निन्दनीय कर्मसे रोकता। परन्तु तू यह समझे कि शची जैसे इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं, वैसेही मैं धर्मात्मा श्रीरामकी भार्या हूँ। त्रिलोकीमें तेरे अतिरिक्त ऐसा कौन है जो मनसेभी मेरी कामना करसके। राक्षसाधम! तुमने जो मुझसे ऐसी बात कही है,उससे कहाँ जाकर युक्त होगा? अरे! इक्ष्वाकुनाथ श्रीरामका तिरस्कार करते हुए तुझे लज्जाभी नहीं आती। अनार्य! मुझपर दृष्टि डालते हुए तेरी ये क्रूर आँखें पृथ्वीपर क्यों नहीं गिर जातीं! तेरी जिह्वा मुझसे ऐसी बातें करती क्यों नहीं गिर पड़तीं? अपने तप-रक्षण और श्रीरामकी आज्ञा न मिलनेके ही कारण तू अबतक जीता है; अन्यथा मेरा तेजही तुझे भस्म करनेके लिए पर्याप्त है। मुझे हरनेकी तुझमें सामर्थ्य नहीं थी, किन्तु तेरे वधके लिएही विधाताने यह विधान किया है।' सीताकी इन बातोंको सुनकर राक्षसेन्द्र रावण उनकी ओर नेत्र तरेरकर देखने लगा। क्रोधसे उसके नेत्र लाल होगये। उसने सर्पकी समान फुंकार करते हुए कहा—'सीते! तू व्यर्थ ही अन्यायी और निस्सार रामके पीछे पड़ी है। परन्तु समझ ले कि जैसे सूर्य अपने तेजसे अन्धकारका नाश कर देता है, वैसेही आज मैं तुझे नष्ट करडालूँगा।' शत्रुओंको रुलानेवाला रावण सीतासे ऐसा कहकर वहाँ स्थित भयंकर रूपवाली राक्षसियोंसे उनकी ओर देखकर बोला—'राक्षसियों! अब तुम ऐसा यत्न करो कि जिसमें सीता शीघ्र मेरे वशमें हो जावे। प्रतिकूल अथवा अनुकूल व्यवहारसे तथा साम, दान, भेद और दण्ड—सभी नीतियोंका प्रयोग करके तुम इस विदेहपुत्रीको मार्ग पर लाओ।' राक्षसियोंको बार-बार आज्ञा देकर काम-क्रोधाभिभूत रावणने सीताकी ओर देखकर मेघवत् गर्जन किया और वह पुनः हँसता—हँसता पृथ्वीको कम्पित करता हुआ राजप्रसादको चला गया। उसके साथ आई हुई देवता और गन्धर्वोंकी कन्याओंनेभी रावणके महलमें प्रवेश किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२२॥

तेईसवाँ सर्ग

राक्षसियोंका सीताको धमकाना

शत्रुओंको रुलानेवाला रावण राक्षसियोंको ऐसा संदेश देकर वहाँसे

चला गया। उसके चले जानेपर वे भयानक राक्षसियाँ सीताके पास गयीं। अब वे इनसे और कठोर वचन बोलने लगीं। एकजटा नामकी राक्षसी रावणके कुल सहित उसकी प्रशंसा करती हुई बोली कि पुलस्त्य छः प्रजापतियोंमें चौथे प्रजापति हैं जिनके मानस-पुत्र तेजस्वी विश्रवा प्रजापतिके तुल्य हैं, उन्हींके पुत्र शत्रुओंको रुलानेवाले रावण जिसने तैंतिस देवताओं और इन्द्रको जीत लिया है—उन बली और पराक्रमी रावणकी स्त्री होना तुम क्यों स्वीकार नहीं करती? वह अपनी सर्वश्रेष्ठ स्त्रीसे भी प्रेम त्यागकर तुम्हें चाहता है।' हरिजटानेभी यही कहा। फिर विकटा नामकी अन्य राक्षसीनेभी कहा कि-रावण बड़ा पराक्रमी है। उसने किन्नरों, नागों, गन्धर्वों और दानवोंको जीता है, वह तुम्हारे पास आया। रे नीच! उसे तू क्यों नहीं पसन्द करती? फिर दुमुखी नामक रक्षासी बोली—जिसके भयसे सूर्य नहीं तपता, वायु नहीं चलता, हे विशालाक्षि! तू उसके यहाँ क्यों नहीं रहती? उसके भयसे वृक्ष पुष्पोंकी वृष्टि करते हैं, पर्वत जल चुआते हैं और जब वह जल चाहता है, तब मेघ जल बरसते हैं। तुम उस राजराजेश्वर रावणकी स्त्री होना क्यों नहीं पसन्द करती? हे देवि! यह सत्य-सत्य और हितकारी बचन हम तुमसे कहती हैं। हे सुस्मिते! तुम मेरी बात मानो; अन्यथा भविष्यको न देख सकोगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका तेईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२३॥

चौबीसवाँ सर्ग

राक्षसियोंका सीताको धमकाना

अनन्तर विकृतमुखी वे सब राक्षसियाँ सीतासे कठोर और अप्रिय वचन बोलीं—'हे सीते! रावणके महलमें जो सुन्दर मूल्यवान् पलँग बिछे हुए हैं, वहाँ रहना तुम क्यों पसन्द नहीं करती? तुम मानुषी हो और मनुष्यकी स्त्री रहना ही अधिक पसन्द करती हो, पर तुम रामकी ओर से अपना मन हटा लो, नहीं तो तुम कभी बच नहीं सकती। रावण त्रिलोकके धनका उपभोग करता है। वह राक्षसोंका राजा है। उसको पति बनाकर सुखपूर्वक विहार करो। हे मानुषी! राज्यभ्रष्ट मनुष्य रामको ही तुम क्यों चाहती हो? वह तो अपने मनोरथोंकी पूर्तिके लिए लालायित रहता है और

दुखी है ।' राक्षसियोंकी इन बातोंको सुनकर कमलनयनी सीताके नेत्रोंमें आँसू भर आए । वे उनसे बोलीं—तुम सब मिलकर मुझसे जो लोक विरुद्ध बातें कर रही हो, मेरे हृदयमें वे तनिक भी नहीं ठहरतीं । तुम लोग भले ही मुझे खा जाओ तो भी मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती। मेरे पति दीन हैं या राज्यहीन; मेरे उपास्य तो वे ही हैं। मेरा अनुराग तो सर्वदा उन्हींमें रहेगा । जिस प्रकार सुवर्चला सूर्यकी, शची शक्रकी, अरुन्धती वशिष्ठकी, रोहिणी चन्द्रमाकी,सावित्री सत्यवानकी,श्री महाकपिलकी,मदयन्ती सौदासकी, केशिनी सगरकी और दमयन्ती नलकी अनुरागिणी है, उसीप्रकार मैं इक्ष्वाकु-प्रवर पति श्रीरामकी अनुरागिणी हूँ ।' सीताके वचन सुनकर राक्षसियोंको बड़ा क्रोध आया । वे रावणकी आज्ञानुसार उन्हें कठोर वचन कहकर धमकाने लगीं । सीता भयसे काँप रही थी; उनपर राक्षसियाँ कुपित होकर सब ओरसे टूट पड़ीं और अपने करसे उठाकर कहने लगीं—'यह तो राक्षसेश्वर रावणके योग्य है ही नही ।' इसप्रकार राक्षसियाँ उन्हें धमकाने लगीं । वह अशोक वृक्षके और तले आ गईं और अधिक शोकमें पड़ गयीं । विकटा नामकी एक राक्षसीने क्रोधसे मुष्टिक तानकर कहा—सीते ! तुम बड़ी मूर्ख हो । हमने अपने कोमल स्वभावसे तुम्हारी सब अनुचित बातें सह ली है। तुम समुद्रके इसपार आ गई हो । अब यहाँसे तुम्हें कोई ले नहीं जा सकता। फिर भी तुम हमारी समयोचित और हितकी बातोंपर ध्यान नहीं देतो हो ? तुम रावणके गृहमें कैद हो और हम तुम्हारी रखवाली कर रही हैं। इसलिए तुम्हारे हितकी कहती हूँ, तुम उसे मान लो । तुम राक्षसराजके साथ रमणीय बाटिका और पर्वतीय उपवनोंमें विचरो । सहस्रों स्त्रियाँ तुम्हारे अधीन रहेंगी । महाराज रावण सम्पूर्ण राक्षसोंके स्वामी हैं । तुम उन्हें अपना पति बना लो । यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगी तो तुम्हारा कलेजा निकालकर खा जाऊँगी । पश्चात् प्रघसा नामक राक्षसीने कहा—मैं ऐसा विवाद नहीं देख सकती । आ, आ, इसे काट-काटकर परस्पर बाँट लें। शीघ्रही मद्य लाओ तथा तरह-तरहकी मालाएँ भी ले आओ। फिर शूर्पणखा नामकी राक्षसी बोली—अजामुखीने जो कहा है वह मुझे भी अच्छा लगा है। सर्व शोकनाशक सुरा

शीघ्र लाओ। मनुष्यका माँस पाकर हमलोग निकुंभिला देवीके समीप नाचेंगे। राक्षसियों द्वारा इस प्रकार धमकाए जानेपर देवकन्या तुल्य सीता अधीर हो रोने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ सर्ग

सीताका विलाप

राक्षसियोंके ऐसा कहनेपर मनस्विनी सीता परम त्रस्त हो गयीं और वे रोती हुई गद्गद वचन बोलीं—'मानुषी राक्षसकी स्त्री नहीं हो सकती। चाहे तुमलोग मुझे खा ही डालो, किन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी। ऐसा कह वे अशोककी पुष्पित शाखा पकड़कर थके मनसे अपने पतिकी चिंता करने लगीं। उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधार चल रही थी। बहुत सोचते हुए भी वह अपना शोक दूर न कर सकीं। राक्षसियोंके भयसे वह कदली वृक्षके समान काँप रही थीं और उनका मुख पीला पड़ गया था। वह शोक और क्रोधसे अधीर हो गयीं और दुःखसे पीड़ित होकर कहने लगीं—हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी सास कौशल्या! हा सुमित्रा! पण्डितोंकी यह किंवदन्ती सत्य है कि अकालमें पुरुष या स्त्रीकी मृत्यु नहीं होती। तभी तो इन क्रूर राक्षसियोंसे पीड़ित होकर भी रामके बिना एक मुहूर्त्त भी जी रही हूँ। रामसे हीन होकर तीक्ष्ण विषपान करनेवालेके सदृशही मेरा जीवन है। न जाने मेरे कैसे पूर्व पाप हैं कि जिससे यह भयानक दुःख उठा रही हूँ। अब तो इस महान् शोकसे मैं जीना नहीं चाहती। इन राक्षसियोंके हाथमें पड़ी हुई अब राम मुझे नहीं पा सकते। ऐसे मनुष्य जन्मकी इस परतन्त्रताको धिक्कार है कि स्वेच्छासे प्राण भी त्याग नहीं किया जा सकता।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ सर्ग

सीताका विलाप

इस प्रकार बोलती हुई सीताके आँसू बहने लगे। वह नीचे मुँह करके इस प्रकार विलाप करने लगीं—कामरूपी राक्षस! मारीचके पास श्रीराम पहुँचेभी नहीं थे कि रावण उनकी रोती हुई स्त्रीको बलपूर्वक हर लाया। मैं

राक्षसियोंके अधीन हूँ। मुझे इनकी धमकी सहनी पड़ती है। अब दुःखित होकर रामकी चिन्ता कर रही हूँ। अब मैं जीना नहीं चाहती। रामके विना यदि मुझे राक्षसियोंके मध्यमेंही रहना है तो मेरे इस जीवनसे क्या प्रयोजन और धन तथा भूषण आदिसे क्या लाभ? यह मेरा हृदय पत्थरका है या अजर अमर है जो इस दुःखसे भी नहीं फटता। उन रामचन्द्रसे अलग रह कर दुःखमय घृणित जीवन मैं नहीं चाहती। पतिसे विरहित और निर्जीवके समान मुझको धिक्कार है। बायें पैरसे भी मैं राक्षसको छू नहीं सकती। फिर उसको चाह कैसे सकती हूँ। क्रूर राक्षस मेरे निषेध वाक्योंका अर्थ समझताही नहीं है और न वह स्वयंको जानता है, न स्वकुलको। मुझे छेदो, काटो, आगमें पकाओ या जला दो, मैं रावणको स्वीकार नहीं करूँगी। तुम लोगोंका बकना व्यर्थ है। श्रीराम प्रसिद्ध विद्वान्, कृतज्ञ, दयालु और सदाचारी हैं। यह मेरी अभाग्य है जो मुझपर दयाहीन हो गए हैं। जिन्होंने जन-स्थानमें चौदह हजार राक्षसोंको हराया था, वे क्या मेरे पास न आवेंगे? भलेही यह लंका समुद्रके बीचमें होनेसे औरोंके आक्रमण योग्य न हो; किन्तु श्रीरामके बाणोंकी गति तो रुक नहीं सकती। नहीं ज्ञात कि प्रसिद्ध पराक्रमी राम राक्षसके द्वारा हरी गई अपनी प्यारी पत्नीकी खोज क्यों नहीं लेते? संभव है कि लक्ष्मणके बड़े भाई मेरा यहाँका रहना न जानते हों? क्योंकि जाननेपर वे इस तिरस्कारको कैसे सहते? जो गृद्धराज श्रीरामको मेरे हरे जानेका समाचार देते, उन्हें रावणने रणमें मार डाला। जटायु वृद्ध थे, तोभी मुझपर अनुग्रह करके रावणका वध करनेके लिए उन्होंने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया। यदि रामको मेरे यहाँ रहनेका पता चल जाता, तो वे कुपित होकर आज सारे संसारको राक्षसहीन कर डालते। वे लङ्कापुरीको जला डालते, समुद्रको भस्म कर देते और इस नीच रावणके नाम और यशका नाश कर देते। फिर तो अपने पतियोंका संहार हो जानेसे घर-घरमें राक्षसियोंका इसी प्रकार क्रन्दन होता, जैसे आज मैं रो रही हूँ। श्रीराम और लक्ष्मण लंकाका पता लगाकर निश्चयही राक्षसोंका संहार करेंगे और फिर लंका स्मशानके समान हो जायगी। इसका मार्ग धुएँसे भर जायगा और मेरा मनोरथ शीघ्रही सफल होगा। तुम सबकी बुद्धि विपरीत है। अब श्रीरामके बाणोंसे दग्ध हो

जानेके कारण लंकाकी प्रभा नष्ट हो जायगी, इसमें अन्धकार छा जायगा और इसके सभी प्रधान-प्रधान राक्षस मारे जायँगे। मुझमें कोई दुर्गुण है अथवा मेरा भाग्य फूट गया है जो आज मैं प्रियतम श्रीरामसे बिछुड़ गई हूँ। ज्ञात होता है कि मेरेही शोकसे वे वीर लक्ष्मण देह त्यागकर स्वर्गगामी हुए। वे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण धन्य हैं जो मेरे कमलनयन श्रीरामका दर्शन पा रहे हैं। उन महात्माओंको नमस्कार है। मैं तो मन्द भागिनी हूँ जो रामसे बिछुड़कर पापी रावणके चंगुलमें आ फँसी हूँ। इससे अब इन प्राणोंको त्याग दूँगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

त्रिजटका स्वप्न-वर्णन

सीताके ऐसे कठोर वचन सुनकर राक्षसियोंका धैर्य छूट गया। उनमेंसे कई रावणके पास यह वृत्तान्त देने दौड़ गयीं। अन्य भयानक आकार-वाली राक्षसियाँ सीताके समीप जा एक स्वरसे स्व-कल्याण-नाशक इसप्रकार का वाक्य बोलीं—आज इसी क्षण हम सब राक्षसियाँ तुम्हारा मांस भक्षण करेंगे। तब उन अनार्य राक्षसियोंके द्वारा सीताका यह तर्जन देखकर एक वृद्ध त्रिजटा नामक समझदार राक्षसीने कहा कि अरे पापिनियों! तुम अपने को भक्षण करो, जनककी प्रिय पुत्री और दशरथकी पुत्रबधू सीताको मत खाओ। आज मैंने एक भयानक और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है, जिससे इसके पतिका कल्याण और राक्षसोंका नाश होना ज्ञात होता है। त्रिजटाके इस वचनको सुनकर सब राक्षसियाँ भयभीत हो गयीं और उससे बोलीं—कहो! तुमने कैसा स्वप्न रातमें देखा है? तब त्रिजटा उससे कहने लगी—'आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि श्रीरामचन्द्र आकाशमें चलनेवाले हाथी दाँतकी पालकीमें जिसमें एक हजार घोड़े जुते हुए हैं, बैठकर श्वेत वस्त्र धारण किए लक्ष्मणके सहित आये हैं। सीताभी श्वेत वस्त्र पहने समुद्रसे घिरे हुए एक श्वेत पर्वतपर बैठी हैं। फिर मैंने देखा कि लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी चार दाँतोंवाले एक विशाल हाथीपर चढ़कर सब प्रकारसे सूर्यके समान प्रदीप्त हो रहे हैं। और पुनः वे दोनों भाई श्वेत वस्त्र धारण किए सीताके पास

आये हैं। तब सीता उस पर्वतसे उठकर आकाश स्थित हाथीके कन्धेपर आ बैठी हैं और वह हाथी लङ्कापर चढ़ आया है। पश्चात् श्रीरामचन्द्र आठ सफेद बैलोंसे जुते हुए रथपर चढ़कर यहाँ आये हैं। फिर दिव्य पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो उत्तर दिशाकी ओर चले गये हैं तथा रावण मूँड़-मुँड़ाये और तेलमें भीगा है, लाल कपड़े और कर्वीरकी माला पहने है। तेल पी रहा है, हँसता है, नाचता है; व्याकुलेन्द्रिय है तथा नग्न हो गधेपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है। फिर मैंने देखा कि राक्षसेन्द्र रावण भय-भीत हो नतशिर गधेसे पृथ्वीपर गिर पड़ा है और फिर सहसा व्याकुल हो; भयभीत और मदसे विह्वल हो उठ बैठा है। उस समय वह सर्वथा ही नग्न है तथा दुर्वचन कह रहा है। पश्चात् असह्य दुर्गन्धिपूर्ण अन्धकारमय नरकके समान महान मलकी कीचमें प्रवेशकर उसीमें डूब गया है। फिर एक काली स्त्री उसका गला बाँधकर दक्षिणकी ओर खींचे लिए जा रही है। ऐसे ही महाबली कुम्भकर्ण और महाराज रावणके सब पुत्रोंको भी शिर मुँड़ाये और तेलमें भींगा, मैंने देखा है। फिर रावण और मेघनाद क्रमशः सुअर और सूँसपर और कुम्भकर्ण ऊँटपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जा रहे हैं। एकमात्र विभीषणको ही मैंने श्वेत छत्र लगाये देखा है और वह अपने चार मन्त्रियोंके साथ आकाशमें स्थित था। इस रमणीय लंकापुरीके बाहरी और भीतरी द्वार टूट गये हैं तथा यह सबके सहित समुद्रमें डूब गयी है। राखसे भरी हुई लंकामें राक्षस-रमणियाँ तेल पी-पीकर मतवाली हो रही हैं और विद्रूपकी हँसी हँसती हैं। कुम्भकर्ण आदि प्रधान राक्षस लाल वस्त्र पहने गोबरके कुण्डमें गिर गये हैं। अतः अब तुमलोग यहाँसे हट जाओ, बहुत शीघ्रही तुम देखोगी कि श्रीरामने सीताको पा लिया और उनके द्वारा सब राक्षस मारे गये। तुम लोगोंने जो उनकी प्रिय पत्नीको डराया और धमकाया है, इसे वे सहन नहीं करेंगे। अब यह सीता अपने अनेक दुःखोंसे मुक्त होकर उत्तम सुख पावेगी। हे राक्षसियों! तुम लोग इनसे क्षमा माँगो, अधिक कहनेसे क्या लाभ है? राक्षसोंके लिए भारी संकट उपस्थित है। यह सीता तो बड़ी दयामती हैं, केवल प्रणाम करनेसे ही प्रसन्न हो जाँयगी और ये ही तुम्हें उस महान् भयसे बचा सकती हैं। देखो, आजकल सीताकी बाइ

आँख भी फड़क रही है, जिससे इन्हें कोई प्रिय संवाद सुननेको मिलेगा। इनकी बाँई भुजाभी रोमाञ्चित हो गई हैं और सहसा फड़क उठती है। इसका यही फल है कि श्रीरामचन्द्रजी बहुत ही शीघ्र इनसे मिलेंगे। देखो सामने ही वृक्षकी शाखापर बैठा हुआ यह पक्षी भी बार-बार मीठी बोली बोल रहा है। यह सभी सीताके लिए भावी सुखकी सूचक हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

सीता का पुनः विलाप

इस प्रकार पतिदेवके विजय संवादसे लज्जाशील सीता प्रसन्न हो गयी और बोलीं—'यदि ऐसा हुआ तो अवश्य ही मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी।' फिर रावणके कठोर वचनोंकी याद आनेपर वे विलाप करने लगीं। व कहने लगीं- -संतोंने सत्य ही कहा है कि बिना समय आए किसीकी मृत्यु नहीं होती। ऐसा न होता तो इतनी धमकायी जानेपर भी मैं जीवित रहती! अब तो मैं इस दुष्ट रावणके हाथ मारी जानेवाली हूँ, इसलिए आत्मघात करनेसे भी मुझे कोई दोष नहीं लगेगा। चाहे जो भी हो, मैं इसे अपना हृदय तो नहीं दे सकती। लोकनाथ श्रीरामके आनेके पहले ही यह दु राक्षसराज अवश्य अपने पैने वाणोंमें मेरे अंकोंको काट डाले। किसी प्रकार मेरी अवधिके ये दो महीने भी शीघ्र समाप्त तो होते। कारागारमें पड़े जैसी की मेरी स्थिति है। हा राम! हा लक्ष्मण! हा सुमित्रे! हा कौशल्ये! हा मेरी माताओं! आज मैं घोर संकटमें पड़ी हुई हूँ। हा सत्यव्रती, जीवोंके हितकारी राम! आपको नहीं ज्ञात है कि मैं राक्षसोंके द्वारा मारी जानेवाली हूँ। मेरी यह सारी तपस्या विफल हो गयी। हे राम! मैं तो केवल एक आपकी ही अनुरागिणी हूँ और मरजाने पर भी चिरकालतक मेरा तो आप ही में प्रेम रहेगा। मैं विष या शस्त्रके द्वारा शीघ्रसे शीघ्र अपने जीवनका अन्त कर देती। परन्तु यहाँ तो मुझे विष या शस्त्र देनेवाला भी तो कोई नहीं है। शोकातुरा सीताने इस प्रकार बहुत विचार करके अपनी चोटीसे गला बाँधकर प्राण देनेका निश्चय किया। सर्वाङ्ग कोमल सीता उस सिंसिपा

वृक्षके नीचे पहुँचीं। उसी समय उन्हें शोकको दूर करनेवाले कुछ लोक-प्रसिद्ध शकुन हुए, जिनकी पूर्व-संभावना थी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर कांडका अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२८॥

उन्तीसवाँ सर्ग

सीताके शुभ सूचक शकुन

इस प्रकार शाखाके पास पहुँची हुई दुःखिनी, आनन्दहीन, पवित्र सीताको बहुतसे शुभ शकुन वैसेही दृष्टि आने लगे जैसे धनवानोंके यहाँ नौकर आने लगते हैं। सीताका शुभ-सूचक वामनेत्र, भुजा और जंघा फड़कने लगी। यह स्पष्ट सूचक थी कि श्रीरामचन्द्रजी बहु शीघ्र उन्हें मिलेंगे। ऐसा और भी कई बार उन्हें परिचय मिला था। अतः उनका चित्त प्रसन्न हो गया और हर्षसे उनका हृदय प्रफुल्लित होगया। सीता शुक्लपक्षमें उदयकालीन चन्द्रमाके सुशोभित होनेके समान शोभा पाने लगीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

तीसवाँ सर्ग

सीतासे बातचीत करनेके लिए हनुमान्‌का मनमें अनेक तर्क-वितर्क

इधर विक्रमी हनुमान् सीताका विलाप, त्रिजटाका स्वप्न, राक्षसियोंका धमकाना, ये सब ठीक-ठीक सुन लिये। उस समय सीता उन्हें ऐसी जान पड़ती थीं जैसे नन्दवनमें कोई देवी हों। उन्हें देखकर हनुमान् मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगे, जिन सीताको हजारों लाखों बानर विदिशाओंमें ढूँढ़ रहे हैं, आज मैंने उन्हें पालिया। मैं तो दूत बना गुप्त रूपसे शत्रुसे शत्रुका पता लगा रहा था। अब-तक तो मैंने रावणकी पुरी और उसके प्रभावका निरीक्षण किया है। अब मैं राम-पत्नी जो अपने पतिके दर्शनार्थ बड़ी उत्सुक हैं, उन्हें सान्त्वना दूँगा। क्योंकि ये शोकसे संज्ञाशून्य-सी होरही हैं। इन्हें सान्त्वना दिए बिना मेरा यहाँसे हट जाना बड़ी भूल होगी। परन्तु कठिनता तो यह है कि मैं उन्हें समझाऊँ कैसे ? और यदि रात्रि रहते मैंने उन्हें सान्त्वना न दी तो ये मेरे चले जानेपर, अपनी रक्षाका कोई उपाय न देख अपना प्राण विसर्जन कर देंगी। फिर जब श्रीरामचन्द्रजी मुझसे सीताके विषयमें संदेश पूछेंगे, तब इनसे वार्ता किए बिना मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा?

अब तो इन राक्षसियोंके रहते भी कोई अवसर पाकर शनैः शनैः मैं इन्हें
सान्त्वना दूँगा। मैं बहुत छोटा हूँ, विशेषकर वानर। इसलिए मनुष्यों के
समान संस्कृत वचन बोलूँगा। यदि मैं ब्राह्मणके समान संस्कृत बोलूँ तो सीता
रावण समझकर डर जायगी, इससे मुझे अवश्यही मनुष्य-भाषा व्यवहार करना
चाहिये। इसीप्रकार मैं अनिन्दिता सीताको समझा सकूँगा। परन्तु कहीं सीता
मुझे रावण समझ चिल्लाने लगी तो इससे अनेक शस्त्रधारिणी राक्षसियाँ
यहाँ एकत्र हो जायँगी और मुझे ढूँढ़ने पकड़ने और मारनेका यत्न होगा। मैं
वृक्षोंकी शाखाओंपर दौड़ूंगा, इससे वे और चिल्लायेंगी जिससे रावणके गृह
रक्षक राक्षसोंको आना पड़ेगा और मुझे पकड़नेका उपाय करेंगे, फिर मैं
पकड़ा जाऊँगा और इससे मैं उनको नष्टभी करूँगा; किन्तु समुद्रके पार नहीं
जा सकूँगा। इससे सीताका मनोरथभी पूरा न होगा और मैं पकड़ लिया
जाऊँगा। हिंसा-प्रेमी राक्षस जानकीको मार डालेंगे, इससे राम-सुग्रीवका कार्य
नष्ट हो जायगा और इधर जानकी समुद्र पार रहती है। यदि युद्धमें राक्षसोंने
मुझे मार डाला तो रामचन्द्रजीको दूसरा सहायक नहीं दिखाई पड़ता। विचार
करता हूँ, तो ऐसा कोई वानर नहीं जो सौ योजन लम्बायमान समुद्रका लंघन
करे। सीतासे वार्ता करनेमें मुझे यही गड़बड़ी ज्ञात होती है और न वार्ता
करनेसे उसका प्राणत्याग भी निश्चित है। मैं दूत हूँ। मेरी थोड़ी-सी असाव-
धानीसे सिद्धप्राय कार्य नष्ट होसकता है। अपना बुद्धिमत्ताका अहंकार रखने
वाले दूत कार्यको नष्टकर देते हैं। फिर जिस प्रकार यह काम न बिगड़े, कोई
असावधानी न हो, मेरा समुद्र-लंघन व्यर्थ न होजाय और सीताको उद्विग्नता
न हो—इन सबपर विचारकर परम बुद्धिमान् हनुमान्‌ने अपना कर्त्तव्य
निश्चित किया। उन्होंने इक्ष्वाकुवंश-कीर्त्तन द्वारा श्रीरामके धर्मानुकूल संदेश
को मधुरवाणी द्वारा सीतासे ऐसा कहनेका निश्चय किया कि जिससे सीता
उनकी बातोंपर विश्वास करलें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम् सुन्दर काण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणका धनुष-बाण सहित किष्किन्धा गमन

इस प्रकार हनुमान्‌ने सब कर्त्तव्य निश्चित किए और वहीं वृक्ष

शाखामें छिपे हुए विदितात्मा रामकी भार्याको देखते और सुनाते हुए इस प्रकार मधुर और सत्य वचन बोले—यशस्वी इक्ष्वाकुवंशमें एक पुण्यात्मा दशरथ नामके राजा थे। जिनके पास अगणित रथ, हाथी और घोड़े थे। ये महाराज अहिंसक, दयालु, सत्य पराक्रमी और इक्ष्वाकुवंशके लक्ष्मि-वर्द्धन थे। ये राज-चिह्नोंयुक्त, शोभा-सम्पन्न, पर सुख-दाता, स्वयं सुखी और समुद्रान्त पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र राम जिनका मुख चन्द्रमाके समान है और जो सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, विशेषज्ञ तथा पिताके प्रिय हैं। वे वीरवर श्रीरामचन्द्र अपने वृद्ध पिता महाराज दशरथके वचनकी रक्षाके लिए पत्नी और भाईके साथ वनमें आए थे, वहाँ रहकर उन्होंने अनेकोंका वध किया। जनस्थानका विध्वंस और खर-दूषणका वध सुनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ और वह मायाके द्वारा श्रीरामको भुलावा देकर उनकी पत्नी जानकीको हर ले गया। श्रीराम परम साध्वी सीता देवीकी खोज करते हुए मातङ्ग वनमें आकर सुग्रीव नामक वानरसे मिले और उन्होंने उसे अपना मित्र बना लिया। तत्पश्चात् बालिका वध करके उन्होंने वानरोंका राज्य सुग्रीवको दे दिया। वानर-राज सुग्रीवकी आज्ञासे सहस्रों वानर सीता देवीका पता लगानेके लिए बाहर निकले हैं। वे सब स्वेच्छया रूप धारण कर सकते हैं। उन्हींमेंसे एक मैं भी हूँ। सम्पातिके कहनेसे विशालनेत्री भगवती सीताका दर्शन करनेके लिए सौ योजन चौड़े समुद्रको लाँघकर मैं यहाँ आया हूँ। मैंने रामजीके मुखसे जानकीका जैसा रूप, रंग और जैसी शोभा सुनी थी, वैसी ही इन्हें पाया है।' इतना कहकर कपिश्रेष्ठ हनुमान् मौन हो गए। अब इन बातोंको सुनकर जानकीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने केशोंसे ढँका हुआ मुँह ऊपरको उठाकर शिंशपावृक्षकी ओर देखा और चकित हो इधर-उधर सब दिशाएँ देखती हुई, सब ओरसे चित्त हटाकर केवल रामका स्मरण करती हुई नतमुख करके नितान्त प्रसन्न हुईं। उसी समय उन्होंने सुग्रीवके सचिव अचिन्त्यबुद्धि वायुपुत्र हनुमान्‌को उदयाचलपर स्थित सूर्यके समान देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दर काण्डका इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌का वानर-रूप देखकर सीताका शोकित होना

अनन्तर शाखाओंमें छिपे हुए हनुमान्‌को देखकर सीताका मन कुछ

चञ्चल हुआ। हनुमान्‌का शरीर विद्युत्‌के समूहकी भाँति तेजस्वी एवं लालिमायुक्त पीतवर्णका दिखाई दे रहा था। वे श्वेत वस्त्र धारण किए थे तथा उनके नेत्र तपाए हुए सुवर्णकी भाँति चमक रहे थे। तब इस प्रकार उनको देखकर विदेहकुमारी सोचने लगीं—'अहो! वानर-योनिका यह जीव तो बड़ा ही भयङ्कर है, जिसे पकड़ना कठिन है। इसकी ओर तो कोई आँख भी नहीं उठा सकता। ऐसा विचारकर वे आतुर हो "हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!" कहती हुई सहसा रो पड़ीं और मन्द स्वरमें करुण विलाप करने लगीं। इतनेमें उन्होंने देखा कि वह श्रेष्ठ वानर विनयपूर्वक उनके निकट आ बैठा। इससे सीता और भी चिन्तामें पड़ गईं और सोचने लगीं—यह कोई स्वप्न तो नहीं है? सम्भव है, मेरे मनको कोई भावना हो। किन्तु कोई तर्क स्थिर नहीं होता। इसका तो स्पष्ट रूप दिखाई दे रहा है और यह मनुष्यके समान बोलता भी है। मैं वाणीके स्वामी बृहस्पति और ब्रह्मादि देवताओंको नमस्कार करती हूँ। इस वनवासी जीवने जो कुछ कहा है, वह सत्य हो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ सर्ग

हनुमान् और सीताकी बातचीत

उसी समय विद्रुम-समान मुखवाले, नम्रवेशधारी, सीताकी दशासे दीन, वायुपुत्र हनुमान् वृक्षकी शाखासे प्रणामकर माथेपर अंजलि रखकर सीतासे मधुर वाणीमें बोले—"हे कमलपत्राक्षि, मलिन कौशेय-वस्त्र-धारिणी! आप कौन हैं? आपके नेत्रोंसे ये शोकके आँसू क्यों गिर रहे हैं? देवता, असुर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर, रुद्र, मरुद्गण और वसुओंसे आप कौन हैं, किसकी कन्या अथवा पत्नी हैं? मुझे तो आप कोई देवता-सी जान पड़ती हैं। आपका पुत्र, पिता, भाई अथवा पति कौन हैं जो परलोक गया है तथा जिसके लिए आप शोक करती हैं? इस प्रकार रोने और पृथ्वीका स्पर्श करनेके कारण मैं आपको देवी नहीं मानता। आप बारंबार किसी राजाका नाम ले रही हैं। क्या आप किसी राजाकी महारानी या किसी नरेशकी कन्या हैं। आपका जैसा अलौकिक रूप है तथा जैसी तपस्विनीका-सा वेष दिखाई

देता है, इससे तो आप श्रीरामचन्द्रकी महारानी जान पड़ती हैं।" तब उनके ऐसे वचन सुनकर रामके कीर्त्तनसे प्रसन्न जानकी उस वृक्षपर बैठे हनुमान्‌से बोलीं–मैं पृथ्वीके श्रेष्ठ राजाओंमें मुख्य महाराज दशरथकी पुत्रवधू, महात्मा विदेह जनकराजकी कन्या हूँ। मेरा नाम सीता है तथा मैं बुद्धिमान रामकी स्त्री हूँ! सत्यवादी राजा दशरथने कैकेयीको दो वरदान देनेके लिए कहा था। कैकेयीने वरदानके रूपमें श्रीरामका वनवास माँगा। श्रीरामने पिताके उस वचनका पालन राज्याभिषेकसे भी बढ़कर प्रिय समझा और उन्होंने अपने उत्तरीय वस्त्र उतार दिए तथा वन-यात्राके लिए तैयार हुए। सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी अपने श्रेष्ठ भ्राताका साथ देनेके लिए पहलेही से कुश तथा वल्कल धारण करके तैयार खड़े थे। मैं भी अपने पति श्रीरामचन्द्रके साथ हुई और हम तीनोंने महाराजकी आज्ञाको आदर देकर दृढ़ता पूर्वक उत्तम व्रतका पालन करते हुए वनमें प्रवेश किया। अमित तेजस्वी श्रीराम मेरे साथ दण्डकारण्यमें निवास करते थे। वहींसे दुरात्मा रावण मुझे हर लाया। आजसे दो महीने तकके लिए उसने मेरे जीवनकी अवधि निश्चित कर दी है; अतः उतने समयके बाद मुझे प्राणत्याग करना पड़ेगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌का सीताको समझाना और सीताका हनुमान्‌को रावण समझ भयभीत होना

दुःख पीड़िता सीताके वचन सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—'देवि! मैं श्रीरामका दूत हूँ और उनकी आज्ञासे आपके लिए उनका सन्देश लेकर आया हूँ। उन्होंने अपनी कुशल कहवायी है और तुम्हारी कुशल पूछी है। महातेजस्वी लक्ष्मणने भी आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम कहलाया है।' नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मणके कुशल समाचार सुनकर भगवती सीताके सम्पूर्ण शरीरमें हर्षके मारे रोमाञ्च हो गया और वे हनुमान्‌से बोलीं—'यदि मनुष्य जीवित रहे तो उसे सौ वर्ष पश्चात् भी आनन्द प्राप्त होता है–यह लोकोक्ति मुझे सत्य प्रतीत होती है।' सीता और हनुमान्‌के मिलापसे दोनोंको अद्भुत प्रसन्नता प्राप्त हुई। तब वे एक दूसरेसे हृदय खोलकर वार्तालाप करने लगे। शोकसन्तप्त

सीताकी बातें सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी कुछ निकट चले गये। परन्तु वे ज्यों-ज्यों सीताके निकट जाते त्यों-त्यों उन्हें यह सन्देह होता जाता कि कहीं यह रावण न हो। फिर तो वे अशोकवृक्षकी शाखा छोड़ वहीं पृथ्वीपर बैठ गयीं। महाबाहु हनुमान्‌ने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। किन्तु वे भय-भीत होनेके कारण फिर उनकी ओर देख न सकीं और एक दीर्घ-श्वास लेकर बोलीं—यदि तुम मायावी रावण हो तो यह तुम्हारे लिए अच्छी बात नहीं है। अथवा तुम रावण न भी हो क्योंकि तुम्हें देखनेमें मेरा मन प्रसन्न हुआ है। कपिश्रेष्ठ! यदि तुम सत्य ही श्रीरामके दूत हो तो तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे उनका समाचार पूछती हूँ। क्योंकि श्रीरामकी चर्चा मुझे अति प्रिय है। हे बानर! मेरे प्रियतम रामके गुणोंका वर्णन करो। फिर तो वायुनन्दन हनुमान् सीताको प्रसन्न करते हुए सूर्यके समान तेजस्वी रामका गुण-गान करते हुए बोले—सम्पूर्ण विश्व उन महात्माकी भुजाओंके आश्रित है-उन्हींकी छत्र-छायामें विश्राम करता है। मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत होकर आपके पास आया हूँ। सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीराम प्रतिदिन आपका स्मरण करते हैं। जनकात्मजे! यह बड़े सौभाग्यकी बात् है कि राक्षसियोंके चंगुलमें सफँकर भी आप अभीतक जीवित हैं। अब शीघ्र ही तुम महारथ राम और लक्ष्मणको यहाँ देखोगी। अमित तेजस्वी सुग्रीव और उनकी विशाल बानरी सेना यहाँ आवेगी। मैं सुग्रीवका सचिव हनुमान् नामक वानर हूँ। समुद्र लाँघकर दुरात्मा रावणके मस्तकपर पैर रखकर इस नगरीमें प्रवेश किमा है। देवि! जैसा आप मुझे समझ रही हैं, मैं वह नहीं हूँ। यह विपरीत आशंका त्याग मेरी बातोंपर विश्वास कीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌का सीतासे लक्ष्मण सहित रामका वर्णनकर समाचार कहना

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌से रामचन्द्रकी बातें सुनकर सीता मधुर वाणी बोलीं—'तुम्हारा रामचन्द्रसे साथ कहाँ हुआ, तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो, नरों और वानरोंका यह साथ कैसा? राम और लक्ष्मणके जो चिह्न हैं वे पुनः मुझसे कहो जिससे मेरे मनकी शंका निवृत्त होवे।' वायुनन्दन

हनुमान् सीताके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रका यथावत् वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा—हे देवि ! कमलनयन पूर्णचन्द्रानन राम रूप और उदारतासे युक्त उत्पन्न हुए हैं। वे सूर्यके समान तेजस्वी, पृथ्वीके समान क्षमावान्, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् और इन्द्रके समान यशस्वी हैं। वे स्वयं चरित्रवान् और सबके धर्मरक्षक हैं। इस प्रकार वे शत्रुतापी चातुर्वर्ण्य रक्षक, संसार-हेतुकर्त्ता और उसके पालक हैं। वे प्रकाशमान त्रिवर्ण-पूजित, ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेवाले और सत्कर्म प्रचारक हैं। वे राजनीति में शिक्षित, ब्राह्मणोंके उपासक, ज्ञानी, शीलवान् और नम्र हैं। वे चतुर्वेद और वेदाङ्गोंके प्रामाणिक ज्ञाता हैं। उनके कंधे विशाल, भुजाएँ लम्बी, गला सुराहीदार, सुन्दर मुख, गलेकी हँसली छिपी हुई, नेत्र लाल हैं और वे राम नामसे प्रसिद्ध हैं। उन प्रतापीके सब अंग शरीरके अनुकूल हैं और वे श्याम वर्णके हैं। उनके हाथ पैरके तलवे लाल हैं, पैरोंकी रेखायें, मस्तकके बाल और पुरुष-चिन्ह कोमल हैं। बचन, गमन और नाभि ये तीनों गंभीर हैं। उदर और कंठमें त्रिवली है। इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी सत्य-धर्म-परायण, श्रीसम्पन्न, संग्रह और अनुग्रहमें परायण, देश और कालके विभागको समझनेवाले तथा सबसे प्रिय बोलनेवाले हैं। उनके सौतेले भाई सुमित्रा कुमार लक्ष्मण भी बड़े तेजस्वी हैं। वे अनुराग, रूप और गुणोंमें श्रीरामकेही समान हैं। परन्तु लक्ष्मणके शरीर की कान्ति सुवर्णके समान गौर वर्णकी है। वे दोनों नरश्रेष्ठ आपको देखनेके लिए उत्कण्ठित होकर पृथ्वीपर आपकीही खोज करते हुए हमलोगोंसे मिले थे। उनके शरीरपर वल्कल वस्त्र तथा हाथमें धनुष-बाण था। उन दोनों भाइयोंको देख कपि-श्रेष्ठ सुग्रीव भयभीत हो गये और उन्होंने शीघ्रही मुझे उनके पास भेजा। मुझसे यथार्थ बातें जानकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर मैं उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाकर सुग्रीवके पास ले गया और सुग्रीव को उनका यथार्थ परिचय कराया। परस्पर वार्तालाप करनेसे उनमें बड़ा प्रेम होगया और बानरराज सुग्रीवने एक दूसरेको अपने ऊपर बीती हुई पूर्व घटनाएँ सुनाई और दोनोंने दोनोंको आश्वासन दिया। तत्पश्चात् बानरयूथपतियोंने अपने शरीरपर शोभा पानेवाले आभूषणोंको लेजाकर बड़ी प्रसन्नता से श्रीरामचन्द्रको दिखलाया। ये वेही आभूषण थे, जिन्हें आपने उस समय

पृथ्वीपर गिराया था जब कि राक्षस आपको हरकर लिये जारहा था। मैं ही उन सबको बटोरकर ले आया था जिसे सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको दिया था। तब उन आभूषणोंको हृदयसे लगाकर देवोपम रामने बहुत विलाप किया और पुनः पुनः उन बहुमूल्य आभूषणोंको देखते और दिखाते रहे। उन्हें नींद तक नहीं आती, शोक और चिन्ता जलाती रहती है। हे सीते! पुरुष-सिंह राम इस रावणको उसके मित्र और बन्धु-बान्धवों सहित मारकर शीघ्रही आपसे मिलेंगे। श्रीराम और सुग्रीवने मिलकर एक दूसरेकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की है। श्रीरामने बालिको मारनेका और सुग्रीवने आपकी खोज करनेका वचन दिया। पश्चात् बानरराज सुग्रीव उन दोनों वीर राजकुमारोंके साथ किष्किन्धा गये। वहाँ श्रीरामने बालिको मारा और सुग्रीवको सब भालुओंऔर वानरोंका राज्य दिया। हे देवि! इसप्रकार श्रीराम और सुग्रीवमें मित्रता हुई और सुग्रीवने बड़े-बड़े बलवान् वानरोंको बुलाकर उन्हें आपकी खोजमें दसो दिशाओंमें भेजा जिनकी आज्ञा पाकर हम तथा और भी बहुत-से वानर आपका पता लगानेके लिए पृथ्वीपर विचरते रहे हैं। हम बालि-पुत्र अङ्गदके साथ एक तिहाई सेना लेकर बड़ी कठिनतासे समुद्रके तटपर आये। मार्गमें गृध्रराज सम्पातिके भाईसे भेंट हुई जिससे राक्षसके द्वारा जटायुके बधका प्रसङ्ग कहा तो उसे सुन अरुण-पुत्र सम्पातिको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंनेही रावणके अन्तःपुरमें आपके रहनेका पता बताया। परन्तु सौ योजन विस्तृत समुद्रको देखकर सभी विषाद ग्रस्त होगये। यह देख मैंने उन सबके महान् भयको दूर किया और सौ योजन सागरको लाँघकर राक्षसोंसे भरी हुई इस लंकामें रातके समय प्रवेश किया। यहाँ आनेपर मैंने रावणको भी देखा और शोकसे पीड़ित आपकाभी दर्शन किया। हे देवि! यह सारा वृतान्त मैंने आपसे निवदन किया। मैं दशरथनन्दन रामका दूत हूँ और उन्हींकी कार्य-सिद्धिके लिए मैं यहाँ आया हूँ। यह मेरी बड़ी भाग्य है कि आपका दर्शन मिला। इस प्रकार विश्वसनीय कारणों तथा श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिन्हों एवं स्वभावका वर्णनकर हनुमान्ने शोकसे कृशकाय सीताको अपना विश्वास दिलाया जिससे उन्हें अति हर्ष हुआ। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बह चले। हनुमान्ने कहा—मैथिली! आपने जो पूछा, वह सब मैंने आपको बता दिया। अब आप धैर्य धारण करें। श्रीरामचन्द्र आपको शीघ्रही मिलेंगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका पतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌का सीताको मुद्रिका देना तथा विश्वासकर सीताकी उनसे बात करना

महातेजस्वी पवनात्मज हनुमान् सीताको विश्वास देनेके लिए पुनः नम्रता से बोले—'हे महाभागे। मैं बानर हूँ और बुद्धिमान् रामका दूत हूँ। हे देवि! यह रामनामांकित अंगूठी देखो जो तुम्हारे विश्वासके लिए ले आया हूँ और महात्मा रामने दी है। हे देवि! अब शीघ्रही तुम्हारे दुःखोंका अन्त होगा। तुम्हारा कल्याण हो।' तब पतिके हाथका भूषण लेकर सीता देखने लगीं। फिर तो पतिके मिल जानेके समानही आनन्दित हुईं। उनका मुख मण्डल हर्षसे चन्द्रवत् शोभित हुआ। अब वह हनुमान्‌की प्रिय समान उनकी प्रशंसा करने लगीं तथा उन्होंने राम लक्ष्मणकी कुशल पूछी। फिर यह कहा कि 'वे पुरुष-श्रेष्ठ मेरे उद्धारके लिए कुछ प्रयत्न करते हैं? वे हताश तो नहीं होते, व्यग्र तो नहीं होते, कार्योंमें भूल तो नहीं करते और राज-पुत्र राम पुरुषोंके योग्य कार्य तो करते हैं? दुःखपर दुःख पाकर व्याकुल तो नहीं होते? क्या कौशल्या सुमित्रा तथा भरतका कुशल-संवाद उन्हें मिलता जाता है। मेरे शोकके कारण वे सम्मान योग्य राम अन्य मनसक्य तो नहीं होगये हैं? क्या वे मेरा उद्धार करेंगे? क्या रामके भयंकर आँखोंसे मैं रावणको शीघ्र मारा हुआ देखूँगी? हे दूत! मैं यहाँ तभीतक जीवित हूँ, जब-तक उनके आगमनकी आशा है।' इस प्रकार और भी बहुत-सी बातें कहकर, हनुमान्‌के मुखसे ही उनके रमणीय और हितकारी वचन सुननेके लिए चुप हो गयीं। तब सीताके वचन सुनकर परम पराक्रमी हनुमान् हाथ जोड़कर उत्तरमें बोले—कमलनयन राम आपका यहाँ रहना नहीं जानते, इसीलिए शीघ्र न पहुँच सके; अन्यथा जैसे इन्द्र शचीको ले गए थे, वैसेही वे शीघ्र आपको यहाँ से ले गए होते। अब मेरे वचन सुनकर वे बानरों और भालुओंकी एक विशाल सेनाके साथ यहाँ आवेंगे और बाणोंसे समुद्रको बाँधकर लंकापुरीके राक्षसोंका विनाश कर देंगे। उनके इस कार्यमें बाधक चाहे स्वयं कालही क्यों न होगा, वह उसकाभी बध कर देंगे। फिर अन्य देवता या असुरकी तो बातही क्या है? हे बैदेहि! मैं मलय और विन्ध्य आदिक पर्वतोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि, पूर्णचन्द्रके समान उदित

रामचन्द्रका मुँह आप शीघ्र देखेंगी। आपमें उनका इतना ध्यान लगा रहता है कि शरीर पर चढ़े हुए डाँस, मच्छड़, कीड़े-मकोड़े आदिके हटानेकी चिन्ता नहीं रहती। प्रतिक्षण उन्हें आपकाही ध्यान रहता है। आपको छोड़ वे और कुछ सोचतेही नहीं। दिनके पाँचवें प्रहरमें वे कुछ जंगली फलमूल आदिका आहार करते हैं और नींद तो आतीही नहीं तथा जब कभी कुछ सोभी जाते हैं, तो सीता! सीता! कहते उठ खड़े होते हैं और सर्वदा सीता-सीता रटा करते हैं। आपकी प्राप्तिकाही उन्होंने व्रत धारण कर लिया है, और वे अहर्निश इसी प्रयत्नमें हैं।' इस प्रकार रामकी चर्चासे सीताका शोक दूर हो गया; परन्तु रामचन्द्रके शोकित होनेसे वहभी उन्हींके समान शोकित हो गयीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दर काण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

सीता और हनुमान्की बातचीत तथा हनुमान्का सीताको विशालरूप दिखाना

पूर्ण चन्द्रानना सीता इन वचनोंको सुनकर उनसे यह धर्मार्थ वचन बोलीं—हे बानर! तुम्हारे ये वचन विष मिले अमृतके समान ह, कि रामचन्द्र तुम्हारा सदैव चिन्तन किया करते हैं और वे दुःखी हैं। इसका तो यह समाधान है कि चाहे कोई कितना ही ऐश्वर्यशाली हो अथवा अति भयानक दुःखमें आवद्ध हो—उन दोनोंको जेवरीमें बाँधकर काल खींचता है। दुखीको सुखी और सुखीको दुखी वही बनाता है। भाग्यको उलट देना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। हम सभी कर्तव्य-विमुख हो गए ह। चिन्ता तो यह है, कि श्रीरामचन्द्र इस शोकक पार कैसे होंगे? इसमें तो उन्हें बड़ी कठिनता उठानी पड़ेगी। राक्षसोंको मारकर, रावणका नाशकर और लंकाको उजाड़कर मेरे पति मुझे कब मिलेंगे? तुम रामसे यही कहना कि शीघ्रता करें। यह वर्षको अवधि बीतने न पावे। क्योंकि इतनेही दिनोंका मेरा जीवन है। यह दशवाँ महीना बीत रहा है, दो महीने और शेष हैं। क्रूर रावणने यही अवधि दी है। उसके भाई विभीषणने मुझे लौटा देनेके लिए उसे बहुत समझाया; पर वह उनकी बात नहीं मानता है। क्योंकि वह कालवश हो गया है। उसे युद्धक्षेत्रमें मृत्यु ढूँढ़ रही है। विभीषणकी बड़ी पुत्री कलाने यह बात मुझसे कही है। उसकी माताने उसे मेरे पास भेजा था। दुष्ट रावण

अपने मित्र अविन्ध्य नामक-राक्षसका भी कहना नहीं मानता। उसने उसे राक्षसोंके नाश होनेकी बात कही है। रामचन्द्रमें तो सभी गुण विद्यमान हैं। मुझे आशा है कि वे मुझसे शीघ्र मिलेंगे। मैं उनके प्रभावको जानती हूँ।' इस प्रकार शोक पीड़ित सीताके कहनेपर हनुमान् उनसे बोले—'मेरा वचन सुनते ही बानर भालुओंके साथ श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही आपके पास आवेंगे। अथवा हे अनिन्दिते! आप मेरी पीठपर चढ़ें, आजही इस राक्षससे मैं आपका उद्धार कर दूँ। आपको पीठपर लेकर इस सागरको पार करनेकी मेरी शक्ति है। मैं चाहूँ तो रावण सहित समस्त लंकाको भी मैं उठा सकता हूँ। प्रस्रवण पर्वतपर बैठे हुए रामके पास आजही मैं आपको पहुँचा दूँगा। हे देवि! आप मेरी पीठपर चढ़ें, मेरी प्रार्थनाकी अपेक्षा न करें। आपको जब मैं लेकर चलूँगा, तब मेरा पीछा करनेकी शक्ति समस्त लंका निवासियोंमें नहीं है।' कपिश्रेष्ठकी इन अद्भुत बातोंको सुनकर हर्षसे सीताका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया। उन्होंने कहा—'हनुमान्! तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है, फिर इतनी दूर मुझे ले जानेकी इच्छा तुम क्या करते हो? यह तो तुम्हारी बानरी चंचलताही है।' सीताके ऐसे वचनको सुनकर वायुपुत्र हनुमान् विचारमें पड़ गए। वे सोचने लगे कि यह मेरा बल या प्रभाव नहीं जानती हैं, अतएव यह मेरा रूप देखें। ऐसा सोचकर शत्रुनाशी हनुमान्ने सीताको अपना रूप दिखाया। वह उस वृक्षसे नीचे उतर मेरुके समान विशाल, प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी होकर सीताके समक्ष खड़े हो गए। फिर बोले—'देखिए, पर्वतों, वनों, अटारियों, तोरणों तथा रावणके साथ समस्त लंकाको ले जानेकी शक्ति मुझमें है। हे देवि! आप अपनी बुद्धि ठीककर लक्ष्मण सहित रामका शोक दूर कीजिए। तब वायुनन्दन हनुमानन्को पर्वतके समान देखकर कमलाक्षी सीताको उनके बलका विश्वास हो गया और उन्होंने कहा—हे कपिश्रेष्ठ! तुम मुझे अवश्य ले जा सकते हो, फिर भी तुम्हारे साथ जाना मेरा अनुचित होगा, क्योंकि वायुके समान तुम्हारे वेगसे मैं मूर्च्छित हो जाऊँगी और तुम्हारी पीठसे गिर जानेका भय है। इसलिए हे शत्रुविनाशन! मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती। मेरा हरण होते देख राक्षस तुम्हारा पीछा करेंगे और यदि तुम कहीं घिर गए तो और भी संकटमें पड़ जाओगे।

युद्धमें जय-पराजयका कोई निश्चय नहीं रहता। मैं भी राक्षसोंके तर्जन, गर्जनसे मर जाऊँगी और तब तुम्हारा सब प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। यद्यपि तुम सब राक्षसोंको मारनेकी शक्ति रखते हो, पर तुम्हारे द्वारा राक्षसोंका बध होनेसे रामचन्द्रको अयश होगा। उस समय मेरे लिए तुम्हारे उद्योग व्यर्थ हो जायँगे। हाँ, तुम्हारे रामचन्द्रके आनेमें अनेक गुण हैं। फिर मैं अपनी पति भक्तिके कारण रामके अतिरिक्त किसी अन्यका शरीर स्वेच्छया स्पर्श नहीं कर सकती। विवश और अरक्षित रहनेकी स्थिति कुछ और है। जब रामचन्द्र मुझे यहाँसे ले जायँ तो यह उनके योग्य होगा। मैंने सुना है कि युद्धमें उनकी समता कोई नहीं कर सकता। हे कपिश्रेष्ठ। लक्ष्मण सहित मेरे प्रिय रामचन्द्रको सेनापतियों सहित यहाँ शीघ्र ले आओ। मुझे दुःखमें पड़े अतिकाल हो गया। मुझे शीघ्र प्रसन्न करो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा पचम् सुन्दर काण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌का सीताको समझाना और सीताका हनुमान्‌को मणि देना

सीताके इस वचनको सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान् बड़े प्रसन्न हुये। फिर वे बोले—'हे देवि! आपका कथन सर्वथा ही सत्य है। यह बात स्त्री-स्वभाव के, विनयके तथा पतिव्रता नारीके अनुरूप है। इसमें सन्देह नहीं कि आप स्त्री होनेके कारण मेरी पीठपर बैठकर सौ योजन चौड़े समुद्रके पार नहीं जा सकतीं। तथा दूसरा कारणभी जो अपने कहा है कि पातिव्रत्य-धर्म पालन के कारण मैं स्वेच्छया किसी अन्यका शरीर स्पर्श नहीं कर सकती, यह भी आपके योग्य है, आपको छोड़ भला ऐसा कौन कह सकता है? मैं तो आजही आपको श्रीरघुनाथजीसे मिला सकता था, परन्तु यदि आप मेरे साथ नहीं चलना चाहतीं तो अपनी कोई पहचान ही मुझे दे दीजिये जिससे श्रीरामजी यह जान जायँ कि मने आपका दर्शन किया है। हनुमान्‌के ऐसा कहनेपर सीता अश्रु गद्गद कण्ठसे भग्नस्वरमें बोलीं—कपिश्रेष्ठ! मैं तुम्हें एक उत्तम पहचान बताती हूँ। मेरे प्रियतमसे इस प्रकार कहना—'नाथ! चित्रकूट पर्वतके उत्तर-पूर्ववाले भागपर मन्दाकिनीके तटपर जहाँ फल-मूल और जलका आधिक्य है, वहाँ जब तपस्वियोंके आश्रममें निवास करती थी,

उन्हीं दिनों एक कौवेने मुझे चोंच मार दी थी। उस समय मैं आपके पास आयी और थककर आपकी गोदीमें बैठ रही। मैं कौवे पर कुपित-सी हो रही थी, आपने मुझे शान्त किया और मैं देर तक आपकी गोदीमें सोती रही। फिर जब उठी, तब आप मेरी गोदमें सो गये। इतनेमें वह कौवा फिर आया और मुझे सोकर उठी देख उसने सहसा झपटकर मेरे शरीरमें चोंचें मार दीं।' कपिश्रेष्ठ! उस समय मेरे शरीरसे रक्तकी बूँदें निकल पड़ीं। वह कौवा बार-बार उड़-उड़कर मुझपर प्रहार करने लगा, जिसे देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने इन्द्रके पुत्र जयन्तको देख लिया, जो कौवेका रूप धारणकर आया था। उसकी गति वायुके समान तीव्र थी। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामने उस कौवेको कठोर दण्ड देना चाहा और कुशकी चटाईसे एक कुश निकाल उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित कर कालाग्नि-सा प्रज्वलित कर दिया और कौवेकी ओर चलाया और अन्तमें उसका प्राण ही लेता कि बड़े अनुनय विनयपर उन्होंने उसकी दाहिनी आँख ही नष्टकर छोड़ दी। वह वीरवर श्रीरामको प्रणामकर अपने वासस्थानको चला गया। हे हनुमान्! तुम मेरे स्वामीसे यह कहकर कहना कि—प्राणनाथ! जब आपने मेरे लिए एक कौवेपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर दिया था, तब मुझे हरनेवाले राक्षसको कैसे क्षमा कर रहे हैं? अपने तीखे शायकोंसे इसके सहित सब राक्षसोंका संहार क्यों नहीं कर डालते? अथवा बड़े भाईकी आज्ञा ले वीरवर लक्ष्मणही आकर क्यों नहीं मेरा उद्धार करते? विदेहकुमारी सीताके आँसू बहाते इन करुणापूर्ण वचनोंको सुनकर महातेजस्वी हनुमान्ने कहा—देवि! आप कदापि चिन्ता न करें। आपके लिए राम-लक्ष्मण दोनों भाई बड़ेही दुःखी हैं और आपको देखनेके बड़े उत्सुक हैं। वे शीघ्र ही आकर समस्त राक्षसों-को भस्म कर डालेंगे। अब आप वहाँके लिए और जो सन्देश देना चाहें दें।' तब सीताने कहा-श्रीरामचन्द्रको मेरा मस्तक झुकाकर प्रणाम कहना और मेरी ओर से उनका कुशल-समाचार पूछना। फिर श्रीरामचन्द्रजीका जिनके ऊपर मुझसे भी अधिक प्रेम है—उन लक्ष्मणसे भी मेरी ओरसे कुशल-समाचार पूछना और ऐसी बातें करना जिससे द्रवित हो वे मेरा दुःख दूर करनेके लिए शीघ्र तत्पर हो जायँ।' ऐसा कहकर सीताने वस्त्रमें बँधी हुई

दिव्य चूणामणिको खोलकर निकाला और 'इसे श्रीरामको दे देना।' यह कहकर हनुमान्‌के हाथपर रख दिया। मणि लेकर उन्होंने सीताको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणाकर विनीत भावसे उनके समीप खड़े रहे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम् सुन्दर काण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ सर्ग

हनुमान् और सीताकी वार्ता

मणि देकर सीता हनुमान्‌से बोलीं—'यह मेरा दिया हुआ चिन्ह श्री रामचन्द्रका पूर्ण जाना हुआ है। इस मणिको देखकर वीर राम माताको, मुझको और राजा दशरथको अवश्य स्मरण करेंगे। इसे देखकर राघव समुत्साहित होंगे तथा तुमको प्रेरित करेंगे। हे हनुमान्! तुम प्रयत्न करके मेर दुःखोंका विनाश करनेमें सहायक बनो। भयंकर पराक्रमी हनुमान्‌ने 'बहुत अच्छा' कहकर सीताकी आज्ञा पालन-करनेकी प्रतिज्ञाकी और उन्हें शिर झुकाकर वे प्रस्थान करने लगे। पवनकुमारको प्रस्थान करते देख भगवती सीताका गला भर आया और वे गद्गद वाणीमें बोलीं—हनुमान्! महाबाहु राम इस दुःख-सागरसे मेरा जिस प्रकार उद्धार करें, वैसा ही उपाय करना। अपनी वाणीके द्वारा तुम यह धर्म उपार्जन करो। किन्तु मेरे मनमें यह बड़ी शंका है कि वानर भालुओंकी सेना तथा वे दोनों राजकुमार अपार सागरको कैसे पार करेंगे। तुम गरुड़ और वायु—ये ही तीन समुद्र लाँघ सकते हैं। फिर कार्य कैसे सिद्ध होगा? इसपर हनुमान्‌ने कहा—देवि! वानर और भालुओंका सेनाके सेनापति सुग्रीव सत्यवादी हैं, वे आपके उद्धारके लिए दृढ़ निश्चय कर चुके हैं। वे राक्षसोंके संहारमें समर्थ हैं। वे अरबों वानरोंकी सेना ले लंकापर आक्रमण करेंगे। उनके पास ऐसे-ऐसे वानर यूथपति हैं कि एकही छलाँगमें लंकामें पहुँच जायँगे। आपके मनमें किसी प्रकारका भय नहीं होना चाहिये। राक्षसोंके इस भयंकर देशमें आपको अधिक दिनोंतक नहीं रहना पड़ेगा। आपके प्रियतमके आनेमें बहुत बिलम्ब नहीं है। जब तक मेरी भेंट उनसे हो, इतने समयके लिए आप अपने प्राणोंकी रक्षा करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३९॥

चालीसवाँ सर्ग

सीता और हनुमान्‌की वार्ता

महात्मा वायुपुत्रके वचन सुनकर देवकन्याके समान सीता अपने उद्धारके सम्बन्धमें बोलीं—'हे वानर! तुम्हारे जैसे प्रियभाषीको देखकर हर्षसे मैं रोमाञ्चित हो गई हूँ। अब तुम मुझपर वही करना, जिससे मैं श्रीरामका दर्शन कर सकूँ। उन्हें उस कौवेका स्मरण अवश्य दिलाना जिसकी उन्होंने कुशके बाणसे उसका एक नेत्र भङ्ग कर दिया था। उनसे यह भी स्मरण दिलाना कि 'प्राणनाथ! पहलेकी उस बातको भी स्मरण कीजिए, जब कि मेरे कपोलमें लगे हुए तिलकके मिट जानेपर आपने अपने हाथसे मैनसिलका तिलक लगाया था। यह दुःसह दुःख और राक्षसोंके साथ निवास—मैं यह सब आपके लिएही सहन कर सकती हूँ।' अब कपिश्रेष्ठ हनुमान् उस चूड़ामणिको लेकर भगवती सीताको मस्तक झुका प्रस्थान करने लगे। उन्हें जानेके लिए उत्साहित देख जानकीके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए। फिर वे गद्गद कण्ठसे बोलीं—वानरवीर! तुम ऐसी युक्ति करना जिससे महाबाहु रघुनाथजी इस दुःखसागरसे मेरा उद्धार करें। मेरा दारुण दुःख और इन राक्षसोंकी डाँट-डपटका समाचारभी तुम श्रीरामके समीप जाकर कहना। जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो। यह सुनकर हनुमान् कृतार्थ हो गए और प्रसन्न हो वहाँसे उत्तरकी ओर चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४०॥

एकतालीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌का रावणकी मनोहर वाटिकको उजाड़ना

जानकीसे सुन्दर वचनों द्वारा आदर पाकर हनुमान् जब प्रस्थित हुए, तब उस स्थानसे अन्य स्थानमें टूटकर उन्होंने विचार किया—मैंने सीताका दर्शन तो कर लिया, अब थोड़ा-सा कार्य—'शत्रुके बलको ज्ञात करना' शेष रह गया है। इसके लिए साम, दान, भेद इन तीन प्रयोगोंको छोड़ केवल दण्डरूप चौथा ही प्रयोग करना उत्तम होगा। क्योंकि राक्षसोंके प्रति साम आदि नीतिका प्रयोग करनेसे कोई लाभ नहीं होता। ऐसी दशामें इस कार्यकी सिद्धिके लिए पराक्रमही उपयोगी है। यदि इन राक्षसोंके मुख्य-मुख्य वीर

युद्धमें मारे जायँ, तो ये लोग कुछ नम्र हो सकते हैं। मुझे इसी यात्रामें शत्रुकी प्रबलता कहाँ तक है—इसका निश्चय कर लेना चाहिए। यह करके चलनेपर ही स्वामीकी आज्ञाका पूर्णतः पालन होगा। अतः कोई कारण निकालकर युद्धमें मन्त्री, सेना और सहायकों सहित रावणका सामना करके मैं उसके हार्दिक अभिप्राय तथा सैनिक शक्तिका अनायासही ज्ञान करूँगा। तत्पश्चात् यहाँसे प्रस्थान करूँगा। इसके लिए इस निर्दयी राक्षसके इस सुन्दर उपवनकोही मैं विध्वंस करूँ। तब इसके नष्ट होनेपर राक्षसराज रावण मेरे ऊपर क्रोध करके अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत बड़ी सेना लेकर आएगा। उस युद्धमें मेरी गति रुक नहीं सकती। मैं अपने प्रबल पराक्रमसे रावणकी भेजी हुई समस्त सेनाका बिनाश करकेही सुख पूर्वक किष्किन्धा जाऊँगा। ऐसा विचारकर भयानक पुरुषार्थी हनुमान् क्रोधसे पूर्ण हो गए और वायुके समान बड़े वेगसे रावणकी बाटिकाके वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे। उन्होंने वृक्षोंको खंड-खण्ड कर दिया। जलाशयोंको मथ डाला। लतामंडप और चित्र भवन उजाड़ डाले। उन्होंने रावणके मनको विशेष कष्ट पहुँचानेवाले सब कार्य किए। फिर अनेकों महाबलियोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे कपिश्रेष्ठ हनुमान् उस प्रमदा-वनके मुख-द्वारपर आए, उस समय वे अपने अद्भुत तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ सर्ग

रावणका सेना भेजना और उसके साथ हनुमान्का युद्ध

उधर पक्षियोंके कोलाहल और वृक्षोंके टूटनेके शब्दसे लंका निवासी भयसे उद्विग्न हो गए। प्रमदा-वनमें सोयी हुई भयानक राक्षसियोंकी नींद टूट गयी। हनुमान्ने और भी भयानक रूप धारणकर उन्हें भयभीत कर दिया। वे राक्षसियाँ दौड़कर रावणके पास गयीं और बोलीं—'राजन्! अशोक-बाटिकामें एक भयंकर शरीरवाला बानर आया है, जिसने सीतासे बातकी है और जो बड़ा पराक्रमी ज्ञात होता है। संभव है वह इन्द्र या कुबेरका दूत हो अथवा रामनेही उसे सीताकी खोजमें भेजा हो। उसने प्रमदा-वनको उजाड़ दिया है। केवल वही स्थान बचा है जहाँ देवी जानकी रहती हैं। उसे उसने

बचा दिया है और अशोक-वृक्षोंको भी उसने नहीं उखाड़ा है। इसलिए उस उग्र रूपधारी बानरको कठोर दण्ड देनेकी आप आज्ञा दें। राक्षसियोंकी बातें सुनकर राक्षसेन्द्र रावण चिताग्नि-सा क्रोधसे त्रस्त हो गया। उसने तत्क्षण अपने ही समान वीर पराक्रमी किङ्कर नामक राक्षसोंसे हनुमान्को कैद कर लेनेकी आज्ञा दे दी। वे वेगशाली अस्सी हजार किङ्कर नामके राक्षस हाथोंमें कूट और मुद्गर लिए हनुमान्को पकड़ने चले और आकर घेर लिए। उन्हें देख पर्वताकार हनुमान् पृथ्वीपर अपनी पूँछ पटकने और तुमुल गर्जन करने लगे जिससे लङ्का गूँज उठी। उसी समय हनुमान्ने महाबली राम और लक्ष्मणकी जयघोष की और कहा—'मैं कोसल-नरेश श्रीरामचन्द्रका दास हूँ, मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायु-पुत्र शत्रु सैन्य-संहारक हूँ। मेरे समक्ष सहस्रों रावण भी क्या हैं? मैं लङ्कापुरीको नष्ट-भ्रष्ट कर डालूँगा।' हनुमान्की घोर गर्जनसे समस्त राक्षसोंमें आतंक छा गया। हनुमान्ने अपने स्वामीका नाम लेकर स्वयं ही अपना परिचय दे दिया था, जिससे राक्षसोंको उन्हें पहचाननेमें कोई सन्देह नहीं रहा। वे नानाप्रकारके अस्त्र-शस्त्रका प्रहार करते हुए हनुमान्पर टूट पड़े। महाबली हनुमान्ने फाटकपर रखे हुए एक भयंकर लोह-परिघको उठा उसीसे राक्षसोंका संहार करना आरंभ कर दिया। क्षणमात्रमें ही उन्होंने उन सब राक्षसोंका संहार कर डाला। बचे-बचाये राक्षसोंने रावणके पास जाकर किङ्करोंके वधका समाचार कह सुनाया। उसे सुन रावणके नेत्र रक्तवर्णके हो गए। उसने अतुलित पराक्रमी प्रहस्तके पुत्रको हनुमान्से युद्ध करनेके लिए भेज दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४२॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

हनुमान्का वाटिका विध्वंसकर राक्षसोंको मारना

किंकरोंके मारनेके पश्चात् हनुमान्ने विचार किया कि मैंने बनको तो उजाड़ दिया, परन्तु राक्षसोंके कुल देवताका मन्दिर नहीं तोड़ा। इस कारण अब इसे ही नष्ट कर दूँ। कपिश्रेष्ठ उस विशाल मन्दिर परचढ़ गये जो मेरुके शिखर-सा उत्तुङ्ग था। वहाँ पहुँचकर हनुमान् जोर-जोरसे अपनी पूँछ पटकने लगे जिसके शब्दसे लंका गूँज उठी। हनुमान् राम, लक्ष्मण और सुग्रीवकी

जयघोष करने लगे। उस जयघोषसे कुपित हो वहाँ सहस्रों राक्षसोंने प्राम खड्ग, परशु आदि लेकर हनुमान्‌पर प्रहार करते हुए उन्हें घेर लिया। वायु पुत्रने भी बड़ा क्रोध किया। उन्होंने शीघ्र ही मन्दिरका एक बड़ा खंभ उखाड़ लिया और उसे घुमाने लगे जिससे प्रकट हुई अग्निने मन्दिरको जला दिया। हनुमान्‌ने कहा—अब ऐसे ही करोड़ों वानर आकर लंकापुरी को नष्ट कर देंगे। अब न तो रावण रहेगा और न तुम सब। क्योंकि तुम सबने महात्मा रामसे वैर किया है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर कांडका तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

हनुमान् द्वारा प्रहस्त-पुत्र जाम्बुमाली का वध

इतनेमें रावणकी आज्ञा पाकर प्रहस्त-पुत्र जाम्बुमाली धनुष लेकर उस पर विशाल और सुन्दर बाण चढ़ा तथा अपना भयानक रूप किए हनुमान की ओर आया। उसके धनुषसे निकले बाणोंसे आकाश सहसा ही आच्छा दित हो गया। वह गधेके रथपर चढ़कर आया था, जिसे देख हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए और वे गर्जन करने लगे। उसने तोरणके खोंडरे में बैठे हुए महाकपि हनुमान्‌को अपने पैने बाण चलाकर मारना आरंभ किया। हनुमान का रक्तवर्ण मुख रक्तरंजित हो और भी लाल हो गया। इससे कुपित हो हनुमान्‌ने समीप ही में पड़े हुए एक पत्थके बड़े टुकड़ेको उखाड़कर जोरसे उस राक्षसपर फेंका; जिसे जाम्बुमालीने एक साथ ही दश बाण चलाकर चूर-चूर कर दिया। तब उस उद्योगको निष्फल देखकर हनुमानने एक विशाल वृक्ष उखाड़कर उसपर फेंका। उसे भी उस राक्षसने काट गिराया और कई बाणोंसे जाम्बुमालीने वीरवर हनुमान्‌को उनके कई स्थानोंमें मारकर क्षत-विक्षत कर दिया। अब तो हनुमान्‌को बड़ा क्रोध आ गया। उन्होंने एक विशाल परिघ उठाकर जाम्बुमालीकी छाती में जो मारा तो उसके शरीर खंड-खंड हो गये और धनुष, रथ, गधे नहीं दिखाई पड़े। महारथ जाम्बुमाली को हनुमान्‌ने शीघ्र ही मार गिराया। प्रहस्त-पुत्रके मारे जानेसे रावणने बड़ा क्रोध किया और उसने अपने मन्त्रीके कई बलवान् पुत्रोंको शीघ्र आज्ञा दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम सुन्दर काण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

हनुमान् द्वारा रावणके सात मंत्रि-पुत्रोंका वध

राक्षसेन्द्रसे प्रेरित हो सूर्यके समान तेजस्वी वे सात मन्त्रि-पुत्र जो बड़ेही अस्त्र-शस्त्र ज्ञाता धनुर्धर थे, मेघके समान गर्जन करनेवाले, घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़कर; धनुषोंका शब्द करते हुए विद्युत-मेघवत् अपने-अपने गृहोंसे बाहर हुए। उधर किङ्करोंके बधसे उनकी माताएँ, बान्धवों और मित्रोंके साथ शोक से व्याकुल हो गयीं। इतनेमें वे सातों मन्त्रि-पुत्र परस्पर होड़ लगाकर तोरण पर बैठे हुए हनुमान्की ओर बढ़े और उनपर बाण-वृष्टि करते हुए घोर गर्जन करने लगे। उनकी बाण-वर्षासे हनुमान् ढँक गए। परन्तु जैसे धनुषयुक्त मेघोंसे वायु क्रीड़ाकरता है,वैसेही वीर हनुमान् उन धनुर्धारियोंसे क्रीड़ाकरतेहुए तत्कालही शोभित हुए। उन्होंने घोर गर्जन करते हुए राक्षसोंकी विशाल सेनाको भयभीत कर दिया। किसीको थप्पड़ोंसे, किसीको पैरसे, किसीको मुक्के से मारा और किसीको नखोंसे फाड़ दिया। किसीको छातीसे और किसीको जंघोंसे मसल डाला। कोई उनके भयानक गर्जनसेही पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब इस प्रकार उन आमात्य-पुत्रोंके मारे जानेसे उनके सैनिकभी भाग चले। प्रचण्डपराक्रमी हनुमान् पुनः तोरणपर चढ़ गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ सर्ग

हनुमान् द्वारा रावणके पाँच सेनापतियोंका मारा जाना

मन्त्रिपुत्रोंके मारे जानेसे रावणने आगेका कार्यक्रम निश्चितकर उसने विरूपाक्ष, भूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस और भासकर्ण इन पाँच सेनापतियोंको हनुमान् को पकड़नेकी आज्ञा दी और कहा कि तुम लोग हाथी, घोड़े, रथ और एक बड़ी सेनाके साथ जाकर उस बानरको पकड़ लाओ। बड़ी सावधानीसे उसके पास जाना। क्योंकि बड़ी-बड़ी सेनाओंको विध्वंस करनेवाले उस बानरको मैं कोई बड़ा प्राणी समझता हूँ और वह बानर नहीं है। संभव है कि उसे इन्द्र ने भेजा हो, क्योंकि उससे हमारी बुराई है। बानर समझकर उसकी उपेक्षा न करना। वह बड़ा पराक्रमी है। मैंने विपुल पराक्रमी बालि, सुग्रीव, महा-

बली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि वानरोंको देखा है। परन्तु उनके कार्य तथा उनमें रूप बदलनेकी ऐसी शक्ति नहीं है। वानरके रूपमें यह कोई बड़ा प्राणी है। बड़े उद्योग द्वारा तुम लोग इसे दण्डित करो। क्योंकि युद्धमें सफलता अनिश्चित होती है। फिर तो वीर रावणके वचन मानकर उन वीरोंने सेनाके साथ जाकर उस महाकपिको देखा जो तोरणपर बैठा था। उसे देखकर सब राक्षस अपने भयानक अस्त्र-शस्त्र लेकर उसकी ओर दौड़े। उसी समय दुर्धरने पाँच वाण हनुमान्के सिरमें मारा। जिसके लगनेसे गुंजायमान करते हुए हनुमान् सहसा उसके रथपर कूद पड़े और उसके रथके आठों घोड़ोंको मारकर युग तथा धूरेको तोड़ डाला और दुर्धरको भूमिमें गिरा दिया। उसे गिरते देख विरूपाक्ष और धूम्राक्षने बड़ा क्रोध किया और हनुमान्को मुष्टिको से मारा। हनुमान् उनके वेगको रोक पृथ्वीपर उतरे और एक शाल्व-वृक्ष लेकर उन दोनों वीर राक्षसोंको मार डाला। तब उन तीन राक्षसोंके मारे जाने से बली प्रघर्स तथा क्रुद्ध भासकर्ण आगे बढ़े और ऐसा मारा कि हनुमान्के गात्रोंसे रुधिर बहने लगा। उनके शरीरसे लोहूसे लाल हो गए। इससे अत्यन्त क्रुद्ध हो हनुमान्ने उन्हें भी मार डाला और उनके साथ जितनेभी हाथी, घोड़े और सैनिक आए थे उनकाभी नाश कर दिया। संग्राम-भूमि उन मृतकोंसे पट गयी। मार्ग अवरुद्ध हो गया। इन्हें मार हनुमान् फिर तोरण पर जा बैठे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

अक्षकुमार-वध

हनुमान् द्वारा अपने पाँच सेनापतियों, सेवकों और वाहनों सहित उनका मारा गया सुनकर रावण अपने समक्ष बैठे हुए अक्ष नामक पुत्रकी ओर देखा, जो युद्धमें दुर्धर्ष तथा उसके लिए सर्वदा उत्कण्ठित रहनेवाला था। पिताके दृष्टिपात मात्रसे प्रेरित होकर वह प्रतापी और युद्धके लिए उत्साहपूर्वक उठा और रथारूढ़ हो हनुमान्की ओर चल दिया। वह रथ उसे बड़ी तपस्यासे प्राप्त हुआ था। उसमें मनके समान आठ घोड़े जुते थे। देवता और असुर कोई भी उस रथको नष्ट नहीं कर सकते थे। उसकी गति का कहीं भी अवरोध नहीं था। वह आकाशमें चलनेवाला और विद्युत्-सा

प्रकाशमान सब प्रकार और सब विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित, सोनेके सिकलसे बँधा हुआ और सूर्यके समान चमकीला था—ऐसे रथपर बैठकर देवतुल्य पराक्रमी अक्षकुमार निकला और हाथी घोड़े और रथोंके शब्दसे पर्वतोंके साथ पृथ्वी और आकाशको गुँजाता हुआ सेना लेकर तोरणपर बैठे हुए शक्तिमान् हनुमान्के पास पहुँचा। वहाँ उसने विस्मयसे उद्विग्न हनुमान्को गर्वसे देखा तथा वह सूर्यके समान बढ़ने लगा। हनुमान्के पराक्रमसे अक्षको क्रोध आ गया था। इससे उसने एकाग्रचित्त होकर हनुमान्को स्थिर और दुःखसे निवारण करने योग्य तीन तीखे बाणोंसे युद्धके लिए प्रेरित किया। देवता और असुरोंको भी आश्चर्यदायक उन दोनोंका अपूर्व समागम हुआ। पृथ्वीके प्राणियोंका आनन्द जाता रहा। सूर्यका तपना और वायुका चलना बन्द हो गया। कुमार और वानरके बड़े पराक्रमके युद्धको देखकर पर्वत हिलने लगे, आकाश गर्जने लगा और समुद्र क्षुभित हुआ। उसी समय वीर कुमारने विषैले सर्पके समान तीन बाण हनुमान्के मस्तकमें मारे। वे नवोदित सूर्यके सदृश लाल हुए। अनन्तर सुग्रीवके श्रेष्ठ सचिव हनुमान् ऐसा बढ़ने लगे कि सूर्यके समान अपने नेत्राग्निकी किरणोंसे अक्षकुमारको उसकी सेना और वाहनको दग्ध करने लगे। इधर अक्ष भी उस वानर रूपी पर्वतपर जलधाराके समान बाण वृष्टि करने लगा। हनुमान् मेघवत् गर्जने लगे। अक्षकुमार उनपर बाण बरसाताही रहा। तब उस अक्षके बाणोंको व्यर्थ करते हुए हनुमान् आकाशमें विचरण करने लगे। साथही उस बालककी वीरता देख हनुमान् प्रसन्न होते और सोचते कि यह मारने योग्य नहीं है। क्योंकि यह महात्मा तो बड़ा पराक्रमी और युद्धके कष्टोंको सहनेवाला है। युद्ध-कर्म-निपुण यह तो नागों, यक्षों तथा मुनियोंसे भी निस्सन्देह पूजा पानेके योग्य है। इसका पराक्रम तो देवता और असुरोंको भी कम्पित करनेवाला है। किन्तु उपेक्षा करनेसे तो यह पराजित कर देगा। क्योंकि युद्धमें इसका पराक्रम बढ़ रहा है। इसलिए अब इसको मार देनाही अच्छा है। क्योंकि बढ़ती हुई आगकी उपेक्षा उचित नहीं। अब हनुमान्ने अपने वेगको और भी बढ़ा दिया और तत्क्षण ही उसके पवन-गतिसे चलनेवाले रथके आठों

घोड़ोंको थप्पड़ोंसे मारकर गिरा दिया, रथके युगको तोड़ डाला। रथके टूट जानेसे वह ऊपरसे गिर पड़ा तथा उस रथको त्याग धनुष और तलवार लेकर आकाशमें उड़ा। तब उसे ऋषियोंके समान आकाशमें उड़ते देख वायुसे पराक्रमीने उस राक्षसके दोनों पैर दृढ़तापूर्वक पकड़ लिए और जैसे बड़े भारी सर्पको पकड़कर कोई घुमाता है वैसे ही अपने पिता वायुके समान पराक्रमी कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने अक्षयको सहस्रोंबार घुमाकर पृथ्वीपर पटक दिया। उसकी बाहें, जंघा, कमर और छाती टूट गयीं और रक्त बहने लगा। उसके नेत्रोंकी हड्डियाँ टूट गयीं। जोड़ बिखर गए और बन्धन शिथिल हो गये। इस प्रकार वायुपुत्रने राक्षसको मार डाला। उसे धराशायीकर हनुमान्‌ने रावणको बहुत भयभीत कर दिया। अक्षको मारकर हनुमान् प्रलयकालीन कालकी समान अवकाशका समय व्यतीत करनेके लिए फिर उसी तोरणपर जा बैठे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित द्वारा हनुमान्-बंधन

अक्षकुमारके मारे जाने पर महात्मा रावणने अपने मनको सावधान कर क्रुद्ध हो देवतुल्य इन्द्रजीतको आज्ञा दी—'बेटा! तुमने ब्रह्माकी आराधना से अनेकों प्रकारसे अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रके आश्रममें रहनेवाले देवता भी युद्धमें तुम्हारे अस्त्र-बलके समक्ष स्थिर नहीं रह सके। त्रैलोकमें तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है जो युद्धमें श्रमित न होता हो। तुम देश-कालका ज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ और परम बुद्धिमान् हो। युद्धमें कोईभी कार्य तुम्हारे लिए असंभव नहीं है। त्रिलोकीके सभी बीर तुम्हारी शारीरिक शक्ति और अस्त्र-बलको जानते हैं। तुम्हारा तपोबल, अस्त्रबल और पराक्रम मेरेही समान है। देखो, किङ्कर नामवाले समस्त राक्षस मारे गये। जम्बुमालीभी जीवित न रहा। सात मन्त्रिकुमार और पाँच सेनापति भी घोड़े, हाथी और रथोंसे युक्त अति विशाल सेनाओंके साथ कालकवलितहो गये और आज अक्षकुमारभी अपने प्राण त्याग चला। इसप्रकार अपना विशाल संहार देखकर वानरके प्रभाव और पराक्रमको समझ लो; फिर अपनी शक्ति का भी विचार करके तुम अपने बलके अनुसार उपयोग करो। जैसे शत्रुकी

शक्ति क्षीण हो और वह वशमें आवे, वही करो। क्योंकि तुम अस्त्रधारी वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ हो। वायु पुत्र हनुमान्‌के बलका कोई सीमा नहीं है। वह अग्निके समान तेजस्वी है। उसे अस्त्र आदि साधनोंसे मारना असम्भव है। अतः सावधान होकर जाओ और ऐसा उपाय करो, जो अचूक हो।' अपने पिता राक्षसराज रावणके वचन सुनकर इन्द्रजीतने युद्धके लिए प्रस्थान करनेका निश्चयकर शीघ्र ही पिताकी परिक्रमा की और उत्साहसे राजभवनके बाहर आया। यहाँ उसका सुसज्जित रथ खड़ा था, जिसपर बैठकर वह हनुमानको लक्ष्यकर आगे बढ़ा। उसे इन्द्रके चिह्नवाली ध्वजासे सुशोभित रथ पर बैठकर आते देख कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने बड़े जोरसे गर्जना की और अपने शरीरको बढ़ाया। दिव्य रथपर बैठे हुए इन्द्रजीतनेभी बिजलीकी तरह गड़गड़ाहटके समान भयंकर शब्दोंमें धनुटङ्कार किया। हनुमान् और इन्द्रजीत दोनों ही महाबली, अत्यन्त तेजवान् तथा युद्धमें निर्भय थे। देवराज और दैत्यराजकी भाँति उन दोनोंमें वैर बँधा हुआ था। अतः वे एक दूसरेसे भिड़ गए। हनुमान् विशाल शरीर धारणकर अपने पिता वायुके मार्गपर विचरने और उस महारथी राक्षस-वीरके बाणोंको व्यर्थ करने लगे। इतनेहीमें इन्द्रजीतने स्वर्ण-पुंखवाले अत्यन्त तीखे बाण चलाए; किन्तु उन कपिश्रेष्ठने बाणोंके मध्यसे निकलकर अपनेको बचा लिया। इन्द्रजीतके बाण व्यर्थ होकर गिर पड़े। इससे उसके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। तब उसने हनुमान्‌को कैद करनेको बात सोची। उसने धनुषपर ब्रह्माजीके दिए हुए अस्त्रका सम्मान किया और हनुमान्‌को लक्ष्य करके छोड़ा, जिसमें वे बँध गए, पृथ्वीपर गिर पड़े। ब्रह्माजीके वरदानसे उन्हें किञ्चितभी भय नहीं हुआ। उन्होंने उसे अपने प्रति ब्रह्माजीका अनुग्रह ही समझा और यह सोचा कि इस प्रकार ब्रह्मा, इन्द्र और देवता—तीनों मेरी रक्षा करते हैं। राक्षसों द्वारा पकड़े जानेपर भी मेरा लाभ ही दिखाई देता है; क्योंकि इससे मुझे राक्षसराज रावणके साथ बातचीत करनेका अवसर मिलेगा। अतः शत्रु मुझे पकड़कर ले चलें।' ऐसा निश्चय करके हनुमान्‌जी निश्चेष्ट हो गए। फिर तो सभी शत्रु निश्चेष्ट होकर उन्हें बलपूर्वक पकड़ने और डाँट बनाने लगे। उसपर हनुमान्‌जी मानों कष्ट पा रहे हैं, इस प्रकार चीखते और कटकटाते थे। राक्षसोंने देखा, अब यह

हाथ पैर नहीं हिलाता; तब वे सन और वल्कलके रस्सोंसे उन्हें बाँधने लगे। उनसे बँध जानेपर पराक्रमी हनुमान्‌जी ब्रह्मास्त्रके बन्धनसे मुक्त हो गए और केवल बल्कलसे ही बँधे रहे। और यह देख क्रूर राक्षस उन्हें बन्धनोंसे पीड़ा देते हुए खींचकर ले चले। उनके मुष्टिकोंकी मार सहते हुए कपिश्रेष्ठ रावणके पास पहुँचे। वहाँ हनुमान्‌को देख राक्षस कटुवाक्य कहने लगे। कोई कहते इसे मार डालो, जला डालो तथा खा डालो। महात्मा हनुमान् रावणका रत्नभूषित गृह देखनेसे रावणने देखा कि विकृताकार राक्षस बानरको घसीट रहे हैं। कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने भी तेज बलयुक्त रावणको तप्त सूर्यके समान देखा। वानरको देख रावणके नेत्र लाल होगये। उसने मन्त्रियों द्वारा जो उसका परिचय पुछवाया तो हनुमान्‌ने कहा कि—मैं वानरराज सुग्रीवके यहाँसे आया हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४८

उनचासवाँ सर्ग

हनुमान्‌का रावणको देखना

मेघनादके इस कार्यसे पराक्रमी हनुमान्‌को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे क्रोधयुक्त रावणको देखने लगे। रावण सोनेका मुकुट जिसपर मोतियाँ रखी थीं पहने था और अनेक आभूषणोंसे सुशोभित हो रहा था। वह दामी रेशमी वस्त्र पहने था, रक्त चन्दन धारण किए तथा उसके शरीरमें अङ्गोंकी विभिन्न रचनायें थी। उसकी लाल आँखें देखनेमें भयानक और सुन्दर थीं तथा उसके दाँत चमकीले और तीखे तथा ओठ लंबे थे। मन्दराचलके शिखरके समान उसके दशशिर थे, जिनसे वह शोभित होरहा था। वह मन्त्र तत्त्ववेत्ता मन्त्रियोंके बीचमें बैठा था, जिनसे वह ऐसाही आश्वासित किया जारहा था, जिस प्रकार देवताओं द्वारा इन्द्र। ऐसे रावणको हनुमान्‌ने देखा। राक्षस उन्हें पीड़ित कर रहे थे तथापि वे राक्षसराजकी शोभाको देखते ही रहे। उसकी वीरता, पराक्रम और प्रगतिको देखकर हनुमान्‌ने मनही मन कहा—जैसा यह सर्व-लक्षण सम्पन्न है, यदि इसमें अधर्मकी अधिकता न होती तो यह इन्द्र सहित देवलोकका रक्षक होता। परन्तु यह तो इतना क्रूर और क्रोधी है कि अपने क्रोधसे समस्त भूमण्डलका नाश कर सकता है। तेजस्वी राक्षसेन्द्रके प्रभावको देखकर हनुमान् अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥४९॥

पचासवाँ सर्ग

रावणका हनुमान्‌से पूछना और उनका उत्तर देना

पिङ्गाक्ष हनुमान्‌को समक्ष देखकर रावण बड़ा क्रुद्ध और शंकित हुआ कि यह कौन है? क्या ये भगवान् नन्दी तो साक्षात् यहाँ नहीं आये हैं, जिन्होंने कैलासमें मेरे हँसनेपर मुझे श्राप दिया था, वही बानर बनकर तो नहीं आये हैं! अथवा वह बाणासुर बानर बनकर आया है? इस प्रकार क्रोधसे लाल नेत्र करके रावण अपने श्रेष्ठ मन्त्री प्रहस्तसे बोला—'इस दुरात्मासे पूछो कि यह कहाँसे आया है और किसलिए आया है। बनको उजाड़ने और राक्षसों को मारनेसे इसे क्या लाभ हुआ? प्रवेश-निषेध मेरी इस नगरीमें इसके आने और युद्ध करनेका क्या प्रयोजन, इस मूर्खसे पूछो।' तब इसपर जो प्रहस्त ने पूछा तो बानर-श्रेष्ठ हनुमान् बोले—मैं इन्द्र, यम अथवा वरुणका दूत नहीं हूँ और न कुबेरसे ही मेरी कोई मैत्री है और न विष्णुने ही मुझे भेजा है। मैं जन्मसे बानर हूँ। राक्षसेन्द्रके दर्शनार्थ आया था जो दुर्लभ था। इसलिए राक्षसराजके दर्शनार्थही मैंने बन उजाड़ा, जिसपर बली राक्षस युद्ध करनेके लिए मेरे पास पहुँचे तो मैंने अपनी रक्षाके लिए उत्तरमें युद्ध किया। मुझे पितामहका वर है कि मैं देवता और असुरोंसे भी पाशके द्वारा बन्धनमें नहीं आ सकता। परन्तु केवल राजाके दर्शनार्थ मैंने यह अस्त्र माना है। किन्तु अस्त्रसे युक्त हूँ। मुझे बँधा समझकर राक्षस तुम्हारे पास ले आये हैं। मैं श्रीरामचन्द्रके किसी कार्यवश तुम्हारे पास आया हूँ। मैं उन्हीं अतुल पराक्रमी रामका दूत हूँ—यह जानकर प्रभो, मेरे हितकर वाक्य सुनें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पचम् सुन्दर काण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ सर्ग

हनुमान्‌का रावणको उपदेश

बली हनुमान्, बली रावणको देखकर उसे अर्थयुक्त और असन्दिग्ध वचन बोले—हे राक्षसेश! सुग्रीवके कहनेसे मैं यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारे भाई विभीषणने कुशल पूछी है। अपने भाई महात्मा सुग्रीवका संदेश सुनो जो धर्मार्थयुक्त है तथा इस लोक और परलोकमें कल्याणकर है। अभी निकट भविष्यमें दशरथ नामके एक राजा थे जिनके पास रथ, हाथी और घोड़े थे तथा जो इन्द्रके समान तेजस्वी थे। उनके परमप्रिय ज्येष्ठपुत्र महाबाहु

राम पिताकी आज्ञासे घरसे निकलकर दण्डकवनमें आये। साथमें उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणभी दण्डकवनमें आये थे। सीता विदेह देशके राजा महात्मा जनककी पुत्री हैं जो जनस्थानसे अदृश्य हो गयी हैं। उन्हें खोजते हुए राजकुमार राम अपने भाईके साथ ऋष्यमूक पर्वतपर आकर सुग्रीवसे मिले हैं। सुग्रीवने उनसे सीताको ढूंढ़नेकी प्रतिज्ञाकी है और श्रीरामने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिलानेका वचन दिया पश्चात् श्रीरामने युद्धमें वालि को मारकर सुग्रीवको वानर-भालुओंके राज्यपर बिठाया। वानर-श्रेष्ठवालि को तो तुम पहलेही से जानते हो, जिन्हें श्रीरामने बाणसे यमपुरी भेज दिया। उन्हीं सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीवके आदेशसे हजारों लाखों वानर सब दिशाओं तथा आकाश-पातालमें जाकर सीताको ढूँढ़ रहे हैं। सभी वानर महा बलवान् हैं जिनकी गति कहीं रुकती नहीं है। मेरा नाम हनुमान् है। मैं वायुदेवका औरस पुत्र हूँ। सीताका पता लगाने और आपका दर्शन करनेके लिएही इस सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर तीव्रगतिसे यहाँ आया हूँ। यहाँ विचरते हुए आपके अन्तःपुरमें मुझे जानकीका दर्शन हुआ। हे महामते! आप धर्मार्थके ज्ञाता हैं, बड़ी तपस्याकी है, अतः पराथी स्त्रीको अपने घरमें रोक रखना आपके लिए कदापि उचित नहीं है। धर्म विरुद्ध कार्योंसे अनेकों अनर्थ उत्पन्न होते हैं और वे कर्त्ताका समूल विनाश करदेते हैं। देवताओं और असुरोंमें ऐसा कोई नहीं है जो श्रीरामके क्रोध करनेपर लक्ष्मणके धनुष से छूटे बाणके समक्ष स्थिर रह सके। त्रयलोक्यमें ऐसा कोई नहीं जो रामका अपराध करके सुखी रह सके। इसलिए मेरी यह हितकर बात स्वीकार कीजिए और सीताको श्रीरामके पास लौटा दीजिये। विष-मिश्रित भोजनके समानही सीताको पचाना देवताओंके लिए भी असंभव है। आपने तपस्या करके धर्मके फलस्वरूप इस ऐश्वर्य तथा शरीर और प्राणोंको चिरकालतक धारण करनेकी शक्ति प्राप्त की है. इसका विनाश उचित नहीं। श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव, न देवता हैं, न यक्ष हैं और न राक्षस ही हैं। श्रीरामचन्द्र मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरों के राजा। अतः उनके हाथसे तुम कैसे अपने प्राण बचा सकोगे? जनस्थान के राक्षसोंका संहार, बालिका वध और श्रीराम तथा सुग्रीवकी मैत्री—इन तीनों कार्योंको पूर्णतः विचार लो। फिर अपना हित विचार करो। यद्यपि

मैं अकेला ही हाथी, घोड़े और रथों सहित समस्त लङ्काको नाश करनेकी शक्ति रखता हूँ; परन्तु श्रीरामका यह विचार नहीं है। उन्होंने मुझे इस कार्यकी आज्ञा नहीं दी है। जिसने सीताका तिरस्कार किया है; श्रीरामचन्द्रने स्वयं ही उसके नाश करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। जिनको तुम सीताके नामसे ज्ञात करते हो और जो इस समय तुम्हारे अन्तःपुरमें विद्यमान है, उसे सम्पूर्ण लंकाकी विनाशक कालरात्रि समझो। वही शरीर धारणकर तुम्हारे पास कालकी फाँसी लिए आ पहुँची है। उसमें स्वयं गला फँसाना बुद्धिमानों की बात नहीं। अपने कल्याणकी चिन्ता करो। तुम अपने इतने बृहत् परिवार सहित समृद्धशालिनी समस्त लंकाको मृत्यु-मुखमें न झोंको। राक्षसेन्द्र! मैं भी श्रीरामका दूत हूँ और विशेषतः वानर हूँ। मेरी सत्य वाणी सुनो। महायशस्वी श्रीराम प्राणियों सहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके पुनः उसका निर्माण करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। वे विष्णुके समान पराक्रमी हैं। उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता। तुम लोकेश्वर, राजसिंह रामका ऐसा अप्रिय कार्य करके कदापि जीवित नहीं रह सकते। चतुरानन स्वयंभू ब्रह्मा, त्रिपुरान्तक त्रिनेत्र रुद्र, महेन्द्र इन्द्र, ये कोई भी राघवके समक्ष स्थिर नहीं रह सकते।' तब उन निर्भय वक्ता कपिके वचन सुनकर अप्रतिभ दशाननने क्रोधसे नेत्र विस्फारितकर उन महाकपिके वधकी आज्ञा दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पचम् सुन्दर काण्डका एक्यावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५१॥

बावनवाँ सर्ग

कपि-वधके लिए हनुमान्‌का रावणको निषेध करना

दुरात्मा रावणके द्वारा हनुमान्‌के वध होनेकी आज्ञा सुनकर विभीषणने उसे उचित नहीं समझा। क्योंकि हनुमान्‌ने पूर्णतः अपने दूत होनेकी बात कह दी थी। विभीषण उत्तम कार्य-कर्त्ता थे। उन्होंने नम्रतापूर्वक अपने पूज्य बड़े भाईसे यह निवेदन किया कि—'हे राक्षसेन्द्र! क्षमा कीजिए, क्रोध त्यागिए और प्रसन्न हो मेरी बात सुनिए। राजा लोग दूतका वध नहीं करते। इस वानरका वध करना धर्म विरुद्ध है। ऐसा करना आपके लिए अयोग्य और लोक विरुद्ध है। क्योंकि आप धर्मज्ञ, कृतज्ञ तथा राजधर्म-निपुण हैं। यदि आपके समान बुद्धिमान भी क्रोधवश हो जायँ तो शास्त्रज्ञान प्राप्त करनेका केवल

परिश्रम ही फल होगा। अतएव हे राजेन्द्र! आप योग्यायोग्यक विचारकर दूतको दण्ड मात्र दें।' विभीषणकी बात सुनकर राक्षसेश रावण बड़ा कुपित हुआ और बोला—हे शत्रुसूदन! पापियोंक वध करनेमें पाप नहीं है। इसलिए मैं इस पापी वानरका वध करूँगा। तब रावणके इस अधर्ममूलक वचनको सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रे विभीषण बोले—लंकेश्वर राक्षसेन्द्र! आप प्रसन्न हों और धर्म अर्थयुक्त मे ये वचन सुनें। सज्जनोंका कथन है कि दूत सब समयों और सब स्थानों में अवध्य है। निस्सन्देह इसने बड़ा अप्रिय कार्य किया है, तथापि सज्जन दूतोंके बधकी सम्मति नहीं देते। उनके लिए अनेक दंड हैं। अंग-भंग क देना, कोड़े लगवाना, भौं आदि मुँड़वा देना, ऐसेही दंड दूतोंके लिए कहे गए हैं। उनका वध तो मैंने कहीं नहीं सुना है। आप तो धर्म अर्थको भली भाँति जानते हैं। आपको अच्छे-बुरेका ज्ञान है। आप जैसा व्यक्ति क्रोधाधीन कैसे हो सकता है? बलवान् मनुष्य क्रोध नहीं करते। धर्मशास्त्र, लौकिक व्यवहार तथा शास्त्रीय ज्ञानमें, हे वीर! आपके समान कोई नहीं है। परन्तु इस बानरके बधसे मैं कोई लाभ नहीं देखता। इस वधका दण्ड आप उनको दें जिन्होंने इसे भेजा है। इसके वधसे आपको शत्रुसे युद्ध करनेकी प्रवृत्तिका नाश नहीं हो सकता। इससे श्रेष्ठ तो यह होगा कि आपके बलवान् सेनापति अपने साथ थोड़ीसी सेना लेकर यहाँसे जाएँ और शत्रुओंपर प्रभाव डालनेके लिए उन मूर्ख राजपुत्रोंको पकड़ लावें। लघु भ्राता विभीषणकी इन उत्तम बातोंको राक्षसराजने मनही मन स्वीकार किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा पचम् सुन्दर काण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५२॥

तिरपनवाँ सर्ग

रावणका कपिकी पूँछ जलानेकी आज्ञा देना

महात्मा विभीषणकी बात देश और कालके उपयुक्त थी। उसको सुनकर दशाननने उत्तर दिया—तुम्हारा कथन सत्य है, वास्तवमें दूतके वधकी बड़ी निन्दा की गयी है। परन्तु वधके अतिरिक्त दूसरा दण्ड इसे अवश्य देना चाहिए। वानरोंको अपनी पूँछ बड़ी प्रिय होती है। अतः शीघ्रही इसकी पूँछ जला दो। जली पूँछ लेकरही यह अपने स्वामीके पास जाय, जहाँ

इसके मित्र, कुटुम्बी, भाई-बन्धु तथा हितैषी इसे अंग-भंगके कारण पीड़ित एवं दीन दशामें देखें। राक्षस इसकी पूँछमें आग लगाकर इसे इस विशाल नगरीके समस्त मार्गोंपर घुमाएँ। स्वामीकी यह आज्ञा सुनकर क्रूरकर्मा राक्षस हनुमान्‌की पूँछमें पुराने कपड़े लपेटने लगे। उस समय हनुमान्‌ने अपना शरीर बहुत बढ़ा लिया। राक्षसोंने वस्त्र लपेटकर उनकी पूँछपर तेल डाल दिया और आग लगा दी। इससे हनुमान् और भी क्रुद्ध हो गए। वे अपनी जलती हुई पूँछसे राक्षसोंको पीटने लगे। तब क्रूर राक्षसोंने मिलकर उन्हें पुनः बाँध लिया। हनुमान्‌ने सोचा—'चलो, अब मैं फिरसे लंकाका निरीक्षण करूँगा।' तदनन्तर क्रूरकर्मा राक्षस बड़ी प्रसन्नतासे हनुमान्‌को पकड़कर ले चले और शंख तथा भेरी बजाकर उनके अपराधोंकी घोषणा करते हुए उन्हें लंकापुरीमें घुमाने लगे। जब इसका समाचार भगवती सीताको मिला कि बन्दरकी पूँछमें आग लगाकर समस्त नगरमें घुमाया जा रहा है, तो इससे विदेहनन्दिनीको बड़ा कष्ट हुआ। वह अग्निदेवसे प्रार्थना करने लगीं कि, हनुमान्‌के प्रति वे शीतल हो जावें। अब हनुमान् अपनी पूँछसे उठती हुई उसी ज्वालासे लंकाको जलाने लगे। फिर एकही क्षणमें वे पर्वताकार हनुमान् बहुत छोटे हो गए और उनके बन्धनोंको छोड़ डाला, फिर बड़े वेगसे उछलकर वे शैल-शिखरके समान नगरके ऊँचे द्वारपर जा पहुँचे और तुमुल गर्जन करने लगे। उन्होंने पूर्व-कासा पर्वताकार रूप धारण कर लिया। फिर इधर-उधर देखकर लोहेका एक परिघ उठा वहाँके समस्त द्वार-रक्षकोंको यमलोक पहुँचा दिया। फिर लंका पुरीका निरीक्षण करने लगे। उस समय जलती हुई पूँछकी ज्वालाओंसे अलंकृत हनुमान् अंशुमाली सूर्यसे शोभित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दर काण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ २

चौवनवाँ सर्ग

सफलमनोरथ तथा प्रवृद्धउत्साह कपि लंकाको देखते हुए शेष कार्योंके सम्बन्धमें विचार करने लगे। उन्होंने सोचा और सब तो मैं कर चुका. अब किलेका नाश करना ही शेष है। किलाके नाश करनेपर मेरा परिश्रम सफल हो जायगा। इस कार्यमें अब अल्प परिश्रमसे ही मुझे सफलता प्राप्त हो

जायगी। यह जो मेरी पूँछमें आग धधक रही है उसको इन गृहोंके द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। यह सोचकर अपनी उस विद्युत-युक्त दीप्त-पुच्छ सहित हनुमान् लंकाकी अटारियोंपर घूमने लगे। राक्षसोंके इस घरसे उस घरपर और घरके बागोंपर दृष्टि डालते हुए लंकाकी अटारियोंपर विचरने लगे। फिर वे प्रहस्तके भवनपर जा उतरे और उसमें आग लगा दिए। फिर महापार्श्वके गृहपर चले गए और उसमें प्रलयंकर अग्नि लगा दी। फिर वज्रदंष्ट्र, शुक और सारणके गृहोंमें हनुमान्ने आग लगायी। फिर कपिपतिने इन्द्रजितका घर जला दिया। इसप्रकार सब राक्षसोंका गृह भस्मीभूत कर हनुमान् राक्षसेन्द्र रावणके घरपर आए और गर्जन करने लगे। उसमें भी उन्होंने अपनी जलती हुई पूँछसे उसमें आग लगा दिया। उस अग्निको पवनने बल दिया जिससे वह हुताशन कालाग्निके समान जलने लगा। फिर तो स्वर्णमण्डित, मणि मुक्तामय, रत्नोंसे विभूषित रावणका महल टूटने लगा। उसकी छतें टूटकर गिरने लगीं। इधर-उधरसे राक्षसोंके दौड़नेका भयानक शब्द होने लगा। उनके उत्साह नष्ट हो गए, शोभा चली गयी। वे अपने घरोंकी रक्षाके लिए व्याकुल थे। हीरा, विद्रुम, वैदूर्य, मुक्ता और चाँदी आदिसे निर्मित गृहोंकी धातु पिघल रही है—यह हनुमान्ने देखा। फिरभी हनुमान् तृप्त नहीं थे। इसलिए हनुमान् द्वारा लगाई गई भीम पराक्रमी अग्निसे धू धूकर लंका जलने लगी। करोड़ों सूर्यके समान उस निर्धूम अग्निने भयंकर शब्द करके महा अग्निके समान लंकाको जला डाला। इसप्रकार अनेक राक्षसोंको मारकर और उनके घरोंमें आग लगाकर महात्मा हनुमान्ने अब रामचन्द्रका स्मरण किया और अपनी पूँछको समुद्रमें बुझाकर उनके पास शीघ्र पहुँचनेका विचार करने लगे। यह सब देख आकाशवासी देवता बहुत विस्मित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम् सुन्दर काण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥५४॥

पचपनवाँ सर्ग

सीताभी जलगई इस आकाशसे हनुमान्का शोकित होना

अब लंकाको इस प्रकार जली और उजड़ी हुई देखकर श्रीहनुमान्को बड़ा खेद हुआ। वे स्वयंही अपनी निन्दा करने लगे। उन्होंने कहा—यह मैंने क्या किया? यहतो बड़ा अनर्थ किया। वे ही धन्य और महात्मा हैं जो

पने कोपको शान्त कर लेते हैं। क्रोधी मनुष्य कौन पाप नहीं कर सकेगा? ोधी मनुष्य गुरु तकका वध कर सकते हैं। यह कठोर वचनोंसे सज्जनोंका ी तिरस्कार कर सकता है। उसे अनुचित-उचित कहनेमें विचार नहीं रहता। से कर्त्तव्या-कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं रहता। परन्तु जैसे सर्प अपनी पुरानी केंचुली याग देता है, वैसेही श्रेष्ठ-जन्तु अपने उत्पन्न क्रोधको क्षमाके द्वारा हटा लेते हैं। मैं बड़ाही मूर्ख, निर्लज्ज और पापी हूँ। मुझे धिक्कार है। यदि सम्पूर्ण लंका जल गई है तो आर्या सीताभी अवश्य जल गई होंगी। तबतो मैंने वामीके कार्यको नाश करदिया। हा, मैंने लंका जलाते समय सीताकी रक्षा न की। क्रोधके वशीभूत हो मैंने तो मूलकाही क्षय करदिया। जानकी विनाश होगईं। क्योंकि लंकाका ऐसा कोई भाग नहीं दीखता जो जला न हो। मैंने समस्त लंका जला दी। यदि मेरी बुद्धि ऐसी नष्ट होगई तो मुझे आज यहीं अपने प्राण त्याग देना योग्य है। अब सुग्रीवके समक्ष जीवित कैसे जाऊँ? राम लक्ष्मणके समक्षभी कैसे जा सकता हूँ? मुझ समर्थ बानरने यह लोक प्रसिद्ध करदिया कि हमारी चञ्चलता स्वाभाविक है। सीताके नष्ट होनेपर राम लक्ष्मणभी नष्ट हो जायँगे और तब सुग्रीवभी कैसे जी सकते हैं। उनके साथही सब वानर भी नष्ट हो जायँगे। फिर इसे सुनकर भ्रातृप्रेमी धर्मात्मा भरतभी शत्रुघ्न सहित न जी सकेंगे। इसप्रकार इक्ष्वाकुवंशके नष्ट होनेपर प्रजाभी कैसे प्राण धारण कर सकेगी। मैं अभागा संसारका विनाशक समझा जाऊँगा। हनुमान् ऐसा सोचही रहे थे कि, उन्हें कुछ निमित्त-चिन्ह दिखलाई पड़े। ऐसा उन्हें पहलेभी दृश्य दिखाई पड़े थे। फिर सोचने लगे—कल्याणी सीताका नाश नहीं हो सकता। आग आगको नहीं जलाती। धर्मात्मा राम के चरित्रसे रक्षित पत्नीको अग्नि नहीं स्पर्श करसकता। अवश्यही राम-सीताका चरित्र-बलही था जो अग्नि मुझे शीतल प्रतीत हुई, और मेरी पूँछ नहीं जली। फिर वह आर्या सीताको कैसे जलावेगी? तप सत्य और भर्त्तामें अनन्यत्व सीताही अग्निको जला सकती हैं। अग्नि उन्हे नहीं जला सकती। उसी समय हनुमान्‌ने वहाँ चारणोंके बचन सुने। उस आकाशबाणीने कहा—'सीता नहीं जली हैं।' फिरतो हनुमान्‌के मनमें तत्क्षण हर्ष उत्पन्न होगया।

अब उन्हें विश्वास होगया कि वे राजपुत्री सीताको अक्षत-प्रत्यक्ष देख
सफल मनोरथहो लौट जाऊँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त॥ ५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

हनुमान्की कथा

तदनन्तर शिंशपा वृक्षकी छायामें बैठी जानकीको प्रणाम हनुमान् बोले—हर्षकी बात है कि मैं आपको अक्षत शरीर देख रहा प्रस्थान करते हनुमान्को बारम्बार देखकर सीता बोलीं—हे निष्पाप! तुम्हारी इच्छाहो, तो एक दिन और किसी गुप्त स्थानमें यहीं रहो। विश्र करके कल जाना। तुम्हारे रहनेसे मेरा शोक कम होता है। हे वानर! तुम्ह चले जाने और आने तक मुझे अपने प्राणोंपरभी विश्वास नहीं। रहेंगे जायँगे। मैंने अति कष्ट पाया है, शोक-से कृश हूँ। तुम्हारा न रहना मु पुनः दुःखी कर देगा। हे वीर! यह अबभी सन्देह है कि राजपुत्र राम अ लक्ष्मण बानर भालुओंकी सेना लेकर इस समुद्रको कैसे पार करेंगे? तीन प्राणी समुद्रको पारकर सकते हैं, गरुण, तुम और वायु। हे कार्य विशारद यदि इस कार्यमें किंचित विघ्न उत्पन्न हो, तब क्या उपाय विचारते हो? श वीरहन्ता! तुम्हीं एक इस कार्यका साधन कर सकते हो। तुम्हारा बल यश होगा। रामचन्द्रका मुझे यहाँ लंकासे लेजानाही योग्य है। जैसे रामका प क्रम प्रकाशितहो, वैसाही तुम करना।' सीताके इस नम्र तथा हेतुक वाक्य सुनकर वीर हनुमान्ने उत्तर दिया—'देवि! बानर भालुओंके सेनाध सुग्रीव आपके लिए असंख्य बानरों सहित यहाँ शीघ्र आयेंगे। साथही रा लक्ष्मण इस लंका नगरीको अपने वाणोंसे व्यथित कर देंगे। फिर रावण मारकर हे सुन्दरी! रामचन्द्र शीघ्रही अपने नगरमें जायँगे। धैर्य धरि आपका कल्याण हो। अल्प समयकी प्रतीक्षा कीजिये। आप शीघ्रही राम द्वारा युद्धमें रावणको मृतक हुआ देखेंगी। इसप्रकार जानकीको संतोष हनुमान् चलनेको प्रस्तुत हुये और वैदेहीको प्रणाम किया। अब वे बानर श्रे समुद्रके मध्यसे पुनः गमन करनेको सन्नद्ध हुये। शत्रुमर्दन हनुमान् प‌द्मक वृक्षोंसे युक्त अरिष्ट नामक श्रेष्ठ पर्वतपर जा चढ़े, जिसका सभी

अत्यन्तही मनोरम था और जिसपर महर्षि, यक्ष, किन्नर और नाग निवास करते थे। वह लताओं और वृक्षोंसे आवृत्त था। उसकी कन्दराओंमें सिंह निवास करते थे। इस पर्वतपर चढ़कर हनुमान् बढ़ने लगे। वायु पुत्रने दक्षिण तटसे उत्तर तटपर आनेकी इच्छा की। उन्होंने सर्पोंसे युक्त भयानक समुद्रको देखा और अपने पैरोंसे जो उस पर्वतको दबाया तो वह बड़े उच्च-स्वरसे बोलता और कम्पित होता हुआ, शिखरोंको गिराता हुआ, वृक्षों सहित पृथ्वीमें धँस गया। उसकी वह गर्जन आकाशमें व्याप्त होगई। कन्दराओंके सिंह हनुमान्के भारसे पीड़ितहो गर्जने लगे। विद्याधरोंकी स्त्रियोंने भयसे उलटा स्वरूप धारणकर लिये। उनके आभूषण ढोले होगये और वे उस पर्वत से उड़कर चली गयीं। दस योजन लम्बा और तीस योजनका ऊँचा वह पर्वत पृथ्वीमें धँसकर उसके बराबरही गया। पश्चात् हनुमान् उस खारे समुद्रको लाँघनेकी इच्छासे आकाश में उड़ चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

हनुमान्का उछलकर उस पार जा अंगद आदिसे भेंट करना

अब महावेग हनुमान् पक्षधारी पर्वतके समान आकाशरूपी समुद्रमें उड़े। वे मेघोंके समूहका आकर्षण करते हुए अपार महासागरके पार गमन कर रहे थे। आकाशमें श्वेत, कृष्ण हरित और रक्त वर्णके बड़े-बड़े मेघ दृष्टि आते थे, जिनमें हनुमान् कभी प्रवेश करते और कभी बाहर निकल आते। इसप्रकार गुप्त प्रकट होते हुए वे चन्द्रवत् दृष्टिगोचर होने लगे। अपने महान् सिंहनादसे मेघ-गर्जनको भी अतिक्रमण करते हुए वे महातेजस्वी समुद्रके मध्य भागमें आ पहुँचे। यहाँ आकर उन्होंने पर्वतराज मैनाकका स्पर्श किया और धनुषसे छूटे हुए वाणकी भाँति तीव्रवेगसे आगे गमन किए। फिर तो वे शीघ्रही उत्तर तटके निकट आ पहुँचे और यहाँ आकर उन्होंने पुनः एक घोर गर्जन की; जिससे समस्त दिशाएँ व्याप्त हो उठीं। फिर हनुमान् अपने मित्रोंके देखनेके लिए उत्सुक होकर उनके विश्रामस्थानकी ओर अग्रसर हुए। वे पूँछ हिलाते हुए सिंहनाद करने लगे। जब उत्तर तटके वानरोंने उनका वह सिंहनाद सुना तो दर्शनकी अभिलाषासे उत्कंठित

हो गए। जाम्बवान्‌के हृदयमें तो बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सब वानरोंको अपने समीप बुलाकर बोले—'निस्सन्देह ये हनुमान्‌ही अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। कृतकार्य हुए बिना इनकी ऐसी गर्जन नहीं हो सकती।' फिर तो महात्मा हनुमान्‌की भुजाओं और जाँघोंका महान् वेग देख तथा उनका सिंहनाद सुनकर सभी वानर हर्षित हो इधर-उधर उछलने-कूदने लगे। वृक्षोंकी सबसे ऊँची शाखापर चढ़कर अपने वस्त्र हिलाने लगे। फिर उन महाकपिको नीचे उतरते देख समस्त वानर हाथ जोड़कर खड़े हो गए। उसी समय पर्वताकार शरीरधारी हनुमान् जो अरिष्ट पर्वतसे उछले थे आकर महेन्द्र गिरिके शिखरपर कूद पड़े। सभी श्रेष्ठ वानर प्रसन्नचित्त हो उनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गए तथा विविध फल-मूलोंको लाकर स्वागत-सत्कार करने लगे। हनुमान्‌ने जाम्बवान् आदि वृद्ध गुरुजनों तथा कुमार अङ्गदको प्रणाम किया। सभी श्रेष्ठ वानर घेरकर हनुमान्‌की स्तुति करने लगे। कोई प्रसन्न होकर गर्जने लगा, कोई किलकिला शब्द करने लगा। कोई वानर प्रसन्न होकर वृक्षकी डाल ले आया। उनसे सत्कृत होकर सत्कार योग्य हनुमान्‌ने संक्षेपमें कहा कि मैंने सीता देवीको देखा है। फिर कुमार अङ्गदका हाथ पकड़कर हनुमान् महेन्द्र पर्वतके रमणीय स्थानपर जा बैठे और वानरोंके द्वारा पूछे जानेपर उनसे बोले—'मैंने जनकपुत्री सीताको अशोकवाटिकामें देखा है, जिन अनिन्दिताकी रक्षा भयानक राक्षसियाँ करती हैं, वे रामचन्द्रको देखनेके लिए उत्कंठित हैं तथा एक चोटी बाँधती हैं। वे उपवाससे दुःखी, दुर्बल और मलिन हैं जिनके केशोंका जटा बन गई है।' हनुमान्‌से यह समाचार सुनकर सभी महाबली वानरसिंह गर्जने लगे। कई कुछ अव्यक्त बोलने, कई गर्जने और किलकिल शब्द करने लगे। उसी समय सब वानरोंके समक्षही अङ्गदने कहा—हे हनुमान्! बल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई अन्य नहीं है। क्योंकि विशाल समुद्रको कूदकर तुम पुनः लौट आए। हे वानरश्रेष्ठ! तुम्हीं हमलोगोंके जीवनदाता हो। तुम्हारीही कृपासे हमलोग सफल मनोरथ हो रामचन्द्रके समीप जायँगे। तुम्हारा पराक्रम धन्य है। यह बड़े प्रसन्नताकी बात है कि तुमने रामपत्नी यशस्विनी सीताको देखा है। इस प्रकार सभी वानर हनुमान्‌को घेरकर, लंका, सीता और रावणके देखनेकी

ात उनके मुँहसे सुननेके लिए उस पर्वतके शिखरपर बैठ गए। कुमार
ङ्गदके बैठनेसे वह पर्वत जगमगा उठा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम् सुन्दर काण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

हनुमान्का अङ्गद आदि से सब समाचार कहना

अनन्तर प्रसन्नतासे पूर्ण जाम्बवान्ने महाकपि प्रसन्न हनुमान्से पूछा कि,
वीर! तुमने देवी सीताको लंकामें कैसे देखा? वे वहाँ किस प्रकार हैं तथा
नके प्रति क्रूर रावणका कैसा व्यवहार है? तुमने सीताको कैसे ढूँढ़ा और
न्होंने क्या उत्तर दिया? सब ठीक-ठीक हमसे कहो। क्योंकि रावणके समीप
लनेपर हमलोग विचारकर वैसाही कहेंगे। जाम्बवान्के ऐसा कहनेपर हनु-
ानको रोमाञ्च हो आया। उन्होंने मन ही मन सीता देवीको प्रणाम किया और
न्होंने समुद्र लंघनसे लेकर लंकामें पहुँचने, लंका जलाने और रावणसे मिल-
र वार्ता करने तथा कल्याणी सीता देवीके साक्षात्कार करने आदिका समस्त
तान्त कह सुनाया और कहा कि 'रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए जब मैंने
नसे कोई चिन्ह माँगा तो सीताने मुझे यह श्रेष्ठ मणि दिया और सन्देशमें
न्होंने यह कहा कि जैसे भी हो राम लक्ष्मण शीघ्र यहाँ आवें। रावणने दो
हीनेका समय दिया है, तभी तक मैं जीवित हूँ। फिर मैं अनाथके समान मर
ाऊँगी और रामचन्द्र मुझे देख न सकेंगे।' सीताके ये दयनीय वचन सुनकर
के बहुत क्रोध आया। मैं आगेके शेषकार्यका विचार करने लगा। उस समय
ा शरीर बढ़कर पर्वतके समान हो गया। मैंने युद्धेच्छासे उसके उपवनका
रा कर दिया। इसपर रावणने अपने प्रमुख योद्धाओंको मेरे वधकी आज्ञा
। अस्सी हजार किंकर नामके राक्षस शस्त्रोंसे युक्तहो मुझे मारने आये।
परिघसे उनको मार डाला। बचे बचाये भाग गये। फिर मैंने रावणके
देवमंदिरकी जिसमें सौ खंभे लगे थे और जो लंकामें सर्वश्रेष्ठ भवन था,
ड़ डाला। तब रावणने प्रहस्तपुत्र जाम्बुमालीको मेरे वधके लिए भेजा
से मैंने उसकी सेना सहित मार डाला। यह सुन रावणने महाबली सात
त्रिपुत्रोंको बड़ी सेनाके साथ भेजा। मैंने एक परिघसे उन सबको यमलोक
दिया। फिर रावणने पाँच सेनापतियोंको भेजा। मैंने उन सबका भी

ससैन्य संहार कर दिया। तब रावणने अपने पुत्र महाबली अक्षकुमारको भेजा। यह मन्दोहरीका पुत्र, रणविशारद, कुमार अनेक राक्षसोंके साथ आया। आकाशमें उड़ने लगा। मैंने उसके पैर पकड़कर सैकड़ों बार घुमाकर मार डाला। तब दशाननने अपने दूसरे पुत्र इन्द्रजितको भेजा। उस राक्षस प्रवरको भी मैंने युद्धमें परास्त कर दिया। परास्त होकर उसने मुझे ब्रह्मास्त्रसे शीघ्रही बाँध लिया। फिर तो अन्य राक्षस मुझे रस्सियोंसे बाँधने लगे। फिर मुझे रावणके पास ले गये। वहाँ रावणसे मेरी बहुत वार्त्ता हुई। मैंने उसकी उस कर्मकी बड़ी निन्दाकर सीताको ससम्मान लौटा देनेकी बड़ी प्रेरणा दी। परन्तु उस क्रूर राक्षसने मुझ दूतकी प्रेरणापर कुछ भी ध्यान न दिया और मेरे वधकी आज्ञा दी। उस दुरात्माको मेरा प्रभाव नहीं ज्ञात था। तब उसके भाई बुद्धिमान विभीषणने मेरे लिए रावणसे प्रार्थनाकी कि यह अनुचित है तथा राजनीतिशास्त्रके विरुद्ध है। राजनीति शास्त्रोंमें दूतका वध नहीं लिखा है। अंगभंग करदेना ही दंड है। तब विभीषणके इस कथनसे रावणने मेरी पूँछमें सन वृक्षोंकी छाल, रेशमी और सूती वस्त्रोंको लपेटकर उसमें आग लगा दी। मैं दिनमें लंका नगरी देखना चाहता था। राक्षस मेरी पूँछमें अग्नि लगा सड़कों पर घुमाते हुए नगर-द्वारपर लाये। उस समय मैंने अपना छोटा रूप बना लिया और उन इन्धनोंको हटा दिया। फिर तो मैं स्वस्थ हो उस नगरद्वार पर चढ़ गया और एक लौह-परिघको लेकर उन राक्षसोंको मार गिराया, पुनः पूँछमें लगी आगसे मैंने सम्पूर्ण लंका जलादी। लंका जलाते हुए मैंने सीताको भी जला दिया। इसप्रकार मैंने रामचन्द्रका बड़ा कार्य नष्ट कर डाला—इस विचारके आनेपर मुझे बड़ा शोक हुआ। परन्तु उसी क्षण आकाशसे चारणोंने शुभ वचन सुनाकर मेरा भ्रम दूर कर दिया और मैंने जाकर सीताको देखा। फिर प्रसन्न हो उनसे विदा हुआ। अनन्तर अरिष्ट पर्वतपर चढ़कर आप सबको देखनेके लिए सूर्य, चन्द्र, वायु सिद्ध और गन्धर्वोंके मार्गसे होता हुआ आप सबके दर्शनार्थ लौट आया। राघव रामके प्रसाद और आप सबके तेजसे सुग्रीवका सब कार्य मैंने इस प्रकार किया। अब आगे जो करना है वह आप सब करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ सर्ग

हनुमान् द्वारा लंकामें अपने किए हुए कार्योंका तथा कुछ अन्य वर्णन।

मारुतात्मज हनुमान् यह कहकर पुनः आगेकी बात कहने लगे। रामचन्द्रका उद्योग सफल हुआ। सुग्रीवका उत्साह सफल हुआ। सीताका शील देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ। आर्या सीताके समान शीलवती स्त्री अपने तपोबलसे समस्त लोकोंको धारण कर सकती है अथवा क्रोध करके जला सकती है। रावण अपने महान् तपसे ही सीताका अंग छूनेपर भी बच गया है, अन्यथा नहीं बचता। इसप्रकार यह कार्य सिद्ध हुआ। अब हम लोगोंको यही उचित है कि जानकीको लेकर राम-लक्ष्मणका दर्शन करें। यद्यपि मैं अकेला ही लंकाको उजाड़ डालूँ तथा रावणको मार डालूँ। फिर भी आप वीरोंकी सहायता प्राप्त हो तो क्या ही उत्तम हो। आप सबकी आज्ञासे मेरा पराक्रम रावणको पीड़ित कर देगा और सेना सहित, पुत्र और भाईके साथ मैं उस राक्षस रावणको मारूँगा। ने उसपर अविरल पत्थरोंकी वृष्टिकी है। मैं देवताओंको भी युद्धमें मार सकता हूँ। फिर उन राक्षसोंको मारना कौन बड़ी बात है? आप सबकी आज्ञा न होनेसे ही मेरे पराक्रमने मुझे रोका। सागर भलेही अपनी मर्यादा त्याग दे, मन्दर पर्वत भलेही उखड़ जाये; पर जाम्बवानको युद्धमें शत्रुसेना विचलित नहीं कर सकती। एक बालि-पुत्र अंगद ही सब राक्षसोंका नाश कर सकते हैं। महात्मा वानर नील और मैन्द, द्विविदको युद्धमें भला कौन रोक सकता है? मैंने ही तो लंका राक्षसीको मारकर नगरी जलायी और मार्गोंपर अपने नामकी घोषणाकी। महाबली राम-लक्ष्मण और राजा सुग्रीवकी जय हो। मैं पवनका पुत्र और रामचन्द्रका दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है, यह मैंने सबको सुनाया। दुरात्मा रावणकी अशोक-वाटिकामें शिंशपाकी छायामें साध्वी सीता दुःखसे बैठी हैं। उन्हें रामके अतिरिक्त अन्य चिन्ता नहीं है। वह पतिव्रता बल-गर्वित रावणको कुछ भी नहीं समझती। एक वस्त्र पहने है तथा धूल-धूसरित हैं। उनसे बातें करके मैंने सब बातें उनसे बतला दी हैं। राम और सुग्रीवकी मयत्री सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई। सीता चाहें तो अपने तेजसे रावणको भस्म कर सकती हैं; किन्तु उसका भी

इतना तप है कि जिससे वैसा नहीं कर सकतीं। इसका एक कारण यह भी है कि राम ही के द्वारा उसका वध निश्चित है। सीता एक तो स्वभावतः कृशकाय हैं, पुनः पति-वियोगसे और भी कृश हैं। इस प्रकार सीता दुःखिनी हैं। अब इसमें आप लोग जो करना चाहें वह करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पञ्चम सुन्दर काण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

साठवाँ सर्ग

वानरोंका परस्पर विचार करना

हनुमान्‌के वचन सुनकर वालिपुत्र अङ्गदने कहा—अश्विनीकुमारके पुत्र ये मैन्द और द्विविद दोनों ही बलवान् और वेगवान् है। पूर्वकालमें पितामहने इन्हें सबसे अवध्य होनेका वर दिया था जिससे प्रमत्त होकर इन्होंने देवताओंका अमृत पान कर लिया था। ये चाहें तो क्रोध करके रथ हाथी, घोड़े सहित समस्त लंकाका नाश कर सकते हैं। मैं भी रावणका शीघ्र ही संहार कर सकता हूँ। फिर आप जैसे प्रख्यात वीरोंके साथसे तो कहना ही क्या है। अकेले वायु-पुत्रने ही लंका जलादी है। यह हम सबने सुनाही है। सीताको देखा, पर उन्हें ले न आये—'श्रीरामके समक्ष ऐसा कहना उचित नहीं ज्ञात होता। हे वानरो! कूदने या पराक्रममें तुम्हारे समक्ष देव, दानव कोई नहीं हैं। अतः अब निशाचर-समुदायके साथ लंकाको विजयकर, युद्धमें रावणका वध करके, सीताको साथ ले, सफल मनोरथ एवं प्रसन्नचित्त होकर ही हमलोग रामचन्द्रके पास चलेंगे।' अङ्गदके ऐसे निश्चय को सुनकर अर्थतत्त्वके ज्ञाता जाम्बवान्‌ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—महाकपे! तुमने अभी जो विचार प्रकट किया, वह मुझे उचित नहीं ज्ञात होता। क्योंकि कपिराज सुग्रीव तथा परम बुद्धिमान् रामने हमें केवल दक्षिण दिशामें सीताकी खोज करनेके लिए आज्ञा दी है, साथ ले आनेकी नहीं। यदि हमलोग किसी प्रकार सीताको जीतकर उनके समीप ले भी चलें, तो वे अपने कुलके व्यवहारका स्मरण करते हुए हमारे उस कार्यको उत्तम नहीं समझेंगे। उन्होंने समस्त श्रेष्ठ वानरोंके समक्ष स्वयंही सीताको जीतकर लाने की प्रतिज्ञाकी है, अतः वे उसे मिथ्या कैसे करेंगे? ऐसी स्थितिमें हमलोगोंका किया हुआ कार्य निष्फल हो जायगा, जिससे श्रीरामचन्द्रजी सन्तुष्ट न

होंगे। अतएव जहाँ राम, लक्ष्मण और तेजस्वी सुग्रीव हैं, वहीं हमलोग चलें और यह बात उनसे कहें कि, हे राजकुमार ! जो कार्य आपने सोचा है, वह इस सबके लिए अशक्य नहीं है; तथापि इस विषयमें श्रीरामका जैसा निश्चय हो, तदनुसार ही तुम्हें कार्यसिद्धिका विचार करना योग्य है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

एकसठवाँ सर्ग

जाम्बवान्की सम्मतिसे वानरोंका किष्किन्धाकी ओर लौटकर मधुबनके फल खाना

अनन्तर जाम्बवान्के वचनको अङ्गद आदि वीर, महाकपि हनुमान् आदि सब बानरोंने स्वीकार किया। फिर वे सबलोग वायुपुत्र हनुमान्को अग्रणी बना मनही-मन प्रसन्नताका अनुभव करते हुए महेन्द्र पर्वतसे उछलते कूदते चल दिये। वे विशालकाय वानर अपने शरीरसे मानों आकाशको आच्छादित करते हुए जा रहे थे। उस समय वेगशाली महाबली हनुमान्की सिद्ध आदि भूतगण प्रशंसा कर रहे थे। कार्य-सिद्धिका यश पाकर वानरोंका उत्साह-बर्द्धन हो रहा था। सभी श्रीरामको प्रिय संवाद सुनानेके लिये उत्सुक थे। सबके मनमें उनका कार्य सिद्ध करनेका दृढ़ निश्चय था। आकाशमें छलाँग मारते हुए वे श्रेष्ठ बानर सैकड़ों वृक्षोंसे भरे हुए एक सुन्दर वनमें पहुँचे, जो अपनी शोभासे नन्दन-बनको भी लज्जित कर रहा था और जो मधुवनके नामसे प्रसिद्ध था। महावीर दधिमुख; जो कपिश्रेष्ठ सुग्रीवके मामा थे, उस बनके रक्षक थे। अङ्गद आदि सभी बानर सुग्रीवके उस मनोरम वनमें जाकर मधु पीनेके लिए उत्कण्ठित हो गये और इसके लिए उन्होंने अत्यंत हर्षित होकर कुमार अङ्गदसे आज्ञा माँगी। कुमारने अपने वयोवृद्ध जाम्बवान् आदि मन्त्रियोंसे परामर्शकर बानरोंको मधुपानकी आज्ञा दे दी। सब वानर 'धन्य-धन्य, कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् सब मधुवनमें प्रवेश करके इच्छानुसार मधु पीने और रसीले फल खाने लगे। जो कोई रक्षक रोकने आते, उन्हें वे उछल-उछलकर मारते थे। कई वानर युत्थ बाँधकर एक-एक कोसा मधु एकत्रित करके सन्तोष सहित पान करते थे। जब रक्षकोंको उन्होंने प्रताड़ित किया तो वे सबके सब व्याकुल होकर दधिमुखके पास गये और कहने लगे कि, हनुमान्के उत्साहित करनेसे सब

बानर उद्धत हो गये हैं और सम्पूर्ण बनको नष्ट कर रहे हैं। यह सुनकर दधिमुखने जाकर उन बानरोंको रोका। परन्तु उन सबने उस वृद्ध वन-रक्षकको भी भयभीत किया। तब उस उग्र तेजस्वीने पुनः बनकी रक्षा करनेका उपाय किया और किसीको निर्भय हो कठोर बचन कहा तथा कुछको थप्पड़ोंसे मारा, किसीके पास जाकर कलह किया और किसीको धमकाया। परन्तु मतवाले बानरोंका वेग न्यून न हुआ, प्रत्युत वे और भी निर्भय हो दधिमुखको तंग करने लगे। उन्हें राजदण्डका भय नहीं रहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर कांडका इकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६१॥

बासठवाँ सर्ग

वानरोंका मधुपान करना और दधिमुखका सुग्रीवके पास जाना

कपिश्रेष्ठ हनुमान् वानरोंसे और भी मधुपान करनेको कहने लगे। अङ्गदने भी वही कहा। उन्हें हनुमान्की सफलताका गर्व था। अङ्गदका वचन सुनकर सभी प्रधान वानर 'साधु-साधु' कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। सबने वहाँ अङ्गदकी पूजाभी की। पुनः मधुवनमें जाकर सब और भी बल-प्रयोग करके मधुपान करने और फल खाने लगे। जानकीको देख तथा उनका वृतान्त सुनकर वे सभी धृष्ट हो गए थे। तब बहुतसे वानरोंको साथ लेकर दधिमुख उन्हें रोकने आया। उसके हाथमें एक विशाल वृक्ष था। वे वानरभी हाथमें पत्थर, वृक्ष तथा पत्थरके टुकड़े लिए कुपित हो चले। वे सबके सब क्रोधपूर्ण थे। वनमें पहुँचकर उन्होंने मधु पीनेवाले वानरोंको बलपूर्वक रोकना आरम्भ किया। महाबली दधिमुखको वृक्ष लेकर बड़े वेगसे आते देखकर अङ्गदने कुपित होकर उन्हें दोनों भुजाओंसे पकड़ लिया और पटक-पटककर मारा। उनकी भुजाएँ, जाँघें और मुँह सभी छिल गए। वे लोहू-लुहान हो कुछ क्षण मूर्च्छित पड़े रहे। फिर एकान्त पाकर अपने सेवकोंसे बोले-'आओ, चलो; स्वामी सुग्रीवके पास। राजाके समक्ष चलकर सारा दोष अंगदके माथे मढ़ देंगे।' रक्षकोंसे ऐसा कहकर दधिमुख उन्हें साथ ले सहसा उड़ चले और अल्प क्षणमें ही सुग्रीवके पास आ गए। यहाँ समतल भूमिपर सुग्रीव राम-लक्ष्मणके साथ जहाँ बैठे थे, वहाँ आकर उतर गए। फिर उदास

मुँह किए सुग्रीवके निकट जा हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नतमस्तक हो प्रणाम किए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ सर्ग

दधिमुख द्वारा वानरोंका उपद्रव वर्णन और सुग्रीवका प्रसन्न हो हनुमान् आदिको बुलाना

दधिमुखको नतशिर देखकर कपिश्रेष्ठ सुग्रीव बोले—'उठो, उठो, तुम मेरे पैरोंपर क्यों पड़े हो ? मैं तुम्हें अभय देता हूँ। सत्य-सत्य कहो—क्या तुम किसीके भयसे यहाँ आए हो। जो कुछ हो तुम कहो ? सुग्रीवसे आश्वासित दधिमुखने कहा—राजन् ! वानरोंने आपके मधुवनका नाश कर डाला। मैंने इन रक्षकोंके साथ उन्हें रोकनेकी बहुत चेष्टाकी, किन्तु वे मुझे कुछ भी न समझकर बड़ी प्रसन्नतामें फल खाते और मधु पीते हैं। जो कोई रोकता है, वे उन्हें मारते और मधुवनसे बाहर निकाल देते हैं। उन्होंने सब रक्षकोंको थप्पड़ोंसे मारा, पीटा और घसीटा है।' इसप्रकार जब दधिमुख कपिराज सुग्रीवसे मधुवनके लूटे जानेका समाचार कह चुके, तब परम बुद्धिमान लक्ष्मणने उनसे पूछा—राजन् ! यह वन-रक्षक वानर यहाँ किस लिए उपस्थित हुआ है ? किस कार्यके लिए इतना दुखी होकर निवेदन करता था ? महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर वाक्यविशारद सुग्रीव लक्ष्मणसे बोले—'आर्य लक्ष्मण ! यह वीर दधिमुख वानर कहता है कि अङ्गद आदि वीर वानरोंने मधु पी लिया। बिना कार्य किए इन सबोंमें ऐसा साहस नहीं हो सकता है कि मेरे वनको उजाड़ दें। अतएव अवश्यही इन लोगोंने कार्य सिद्ध किया है। अवरोधक वनपालोंको उन सबने जानुसे मारा और बली दधिमुख वानरको भी कुछ नहीं समझा। यह मेरा वन-रक्षक है, जिसे मैंनेही नियुक्त किया है। निस्सन्देह हनुमान्ने ही देवी सीताका पता लगाया होगा, अन्य किसीने नहीं। हनुमान्के अतिरिक्त और कोई इस कार्यको सिद्ध नहीं कर सकता; क्योंकि उनमें कार्य सिद्ध करनेकी शक्ति तथा बुद्धि है। उद्योग, पराक्रम और ज्ञान भी हनुमान्में है। जिस दलका संचालक जाम्बवान् हो, महाबली अंगद नियामक हो और हनुमान् सम्मतिदाता हो, वह दल अन्याय कभी नहीं कर सकता। अंगद आदि वीरोंने उस मधुबनको उजाड़ डाला

जो हमारे उपभोगके लिए था—पराक्रम प्रख्यात दधिमुख वानर यही कहने आया है। महाबाहो लक्ष्मण ! निश्चित है कि उन लोगोंने सीताका पता पाया है। वे प्रसिद्ध वानर, सीताको बिना देखे मेरे रक्षित वनका विनाश कभी नहीं कर सकते।' सुग्रीवके मुखसे निकली इस सुखद वाणीको सुनकर धर्मात्मा लक्ष्मण राम सहित प्रसन्न हुए। फिर सुग्रीवने प्रसन्न होकर उस वन-पालसे कहा कि मैं इससे प्रसन्न हूँ कि उन लोगोंने कार्य सिद्ध करके हमारे वनको उजाड़ डाला। हमने उनकी इस धृष्टताको क्षमा किया। तुम शीघ्र मधुवन लौट जाओ और वनकी रक्षा करो तथा तुम्हीं हनुमान् आदि वानरोंको शीघ्र भेजो। मैं उन सबको शीघ्र देखना चाहता हूँ। अब इस समाचारसे, राजा सुग्रीव कार्यसिद्धिको हाथमें आयी हुई जानकर; राम-लक्ष्मण सहित प्रसन्न हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

वानरोंका किष्किन्धा-गमन

सुग्रीवके ऐसा कहनेपर दधिमुखने श्रीराम और लक्ष्मण सहित उन्हें प्रणाम किया और बानरों सहित वे आकाशमें उड़े। शीघ्रही उस वनमें जा प्रविष्ट हुये। उन सब बानरोंके समीप पहुँचे। अङ्गदसे बोले—सौम्य! इन रक्षकोंने अज्ञानवश आप लोगोंको रोका था, इसके लिए आप अपने मनमें क्रोध न करें। आप समुद्रकी यात्रासे श्रमित हैं। फल खाइये और मधुपान कीजिये। यह सब आपहीका है। आप हमारे युवराज और इस वनके स्वामी हैं। मेरो पूर्व मूर्खताको क्षमा कीजिये। मैंने यहाँसे जाकर आपके चाचासे जब आप सबका यह उपद्रव निवेदन किया तो वे प्रसन्नही हुए, क्रुद्ध नहीं हुये। उन्होंने प्रसन्न होकर आप सबको बुलाया है। दधिमुखके ये कोमल वचन सुनकर अङ्गद बोले कि, बानरों ! ज्ञात होता है श्रीरामचन्द्रने यह सब बात सुन ली। क्योंकि वह प्रसन्न होकर बोल रहा है। अतएव हे शत्रुतापी वीरों. कार्य सिद्धकर लेनेपर अब हम सबका यहाँ ठहरना उचित नहीं, पराक्रमी वीरों ने यथेच्छ मधु-पान कर लिया। अब यहाँ कौन कार्य शेष है। अब हमलोग यहाँसे चलें; जहाँ सुग्रीव हैं। आप सब बानर मुझसेजो कहेंगे, मैं वही करूँगा।

यद्यपि मैं युवराज हूँ; तथा आज्ञा नहीं दे सकता। कार्य-सिद्धकोंका अनादर नहीं किया जाता। प्रसन्न अङ्गदके ऐसा कहनेपर सब बानरोंने कहा—राजन्! आपने जैसा कहा है, ऐसा कोई स्वामी नहीं कह सकता। क्योंकि सभी ऐश्वर्यके मदमें मत्त अहंकारी हो जाते हैं। आपके समान ऐसा बचन कोई नहीं कह सकता। आपकी यह नम्रता भावी योग्यताकी सूचक है। बानरोंके स्वामी सुग्रीवके पास जानेके लिएतो हमलोग उत्साहित होकर आये ही हैं। परन्तु आपकी आज्ञा विना कोईभी बानर यहाँसे एक पैरभी नहीं उठा सकता। इसपर अङ्गदने कहा—अच्छी बात है, चलो चलें। ऐसा कहकर वे महाबली बानर आकाशमें कूदे, मानों यन्त्रसे फेंके पत्थरोंसे आकाश भर गया हो। अङ्गद और हनुमान्‌को अग्रणी बना वायु-प्रेरित मेघके समान घोर गर्जन करते हुए आकाशमें शीघ्रतापूर्वक चले। अङ्गदके पहुँचनेपर वानरराज सुग्रीव शोकसन्तप्त श्रीरामसे बोले—भगवन्! आप धैर्य धारण करें, निश्चयही भागवती सीताका पता लग गया है। अन्यथा अवधिके व्यतीत होनेपर तो बानर यहाँ लौटते नहीं। अङ्गदकी प्रसन्नता इसी बातकी सूचक है। यदि कार्यकी असिद्धिपर बानर लौटतेभी तो अङ्गदका मुख उदास होता। जनकात्मजा देवीसीताको देखे विना ये बानर मेरे मधुबनको नष्ट नहीं करते। प्रभो! आप असीम पराक्रमी हैं। इस समय चिन्ता न करें। मेरे बानरोंका इस अहंकारसे आना संभव नहीं, जैसा वे कार्य सिद्ध करके आरहे हैं। इसी समय सुग्रीवको गर्जना करते हुए बानरोंकी किलकारियाँ सुनायी दीं, मानों वे किष्किन्धामें पहुँचकर अपने द्वारा कार्य सिद्धिकी सूचना दे रहे हों। उनका शब्द सुनकर सुग्रीवका हृदय हर्षसे भर गया तथा वे बानरभी अङ्गद और हनुमान्‌को आगे करके श्रीरामचन्द्रके दर्शनकी इच्छासे नीचे उतरे और राम तथा सुग्रीवके पास गये। महाबाहु हनुमान्‌ने श्रीरामको शिर नवाकर कहा कि—'देवी सीता पतिव्रतके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे सकुशल हैं। मैं उनका दर्शनकर आया हूँ।' हनुमान्‌के मुखसे अमृतके समान बचन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मणको बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने बड़े आदरसे उनकी ओर देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ सर्ग

हनुमान्‌का श्रीरामचन्द्रसे सीताका सन्देश कह उनकी दी हुई मणि देना।

तब वाक्यपटु हनुमान्‌ने सीताको जैसा देखा था, वैसा श्रीरामचन्द्रसे कहा और उनकी दी हुई दिव्य मणि उन्हें अर्पणकी। वह मणि अपने तेजसे प्रदीप्त हो रही थी। उसे देनेके पश्चात् हनुमान्‌ने हाथ जोड़कर कहा—मैं सौ योजन लम्बा समुद्र लाँघकर सीताको ढूँढ़नेके लिए तथा दुरात्मा रावणकी नगरी लंकाको देखनेके लिए गया। समुद्रके दक्षिण तटपर लंका नगरी है, जहाँ रावणके अन्तःपुरमें सती सीताको मैंने देखा। हे राम! वे अपने मनोरथोंको अर्पित करके जी रही हैं। विरूप राक्षसियोंके मध्यमें रहती हैं। उनके द्वारा डाँटी डपटी जाती हैं तथा उन्हींके द्वारा उनकी रखवाली होती है। हे वीर! आपके साथ सुख भोगने योग्य सीता इस समय दुःख उठा रहती हैं। उहें रावणन अपने अन्तःपुरमें रोक रक्खा है। राक्षसियोंसे रक्षित, एक वेणी धारण करके दीना सीता आपकी चिन्तामें समय व्यतीत कर रही हैं। वह पृथ्वीपर सोती हैं, । शीतसे कमलनीके समान उनके अंग सूख गये हैं। हे काकुत्स्थ! आपकी ध्यानमग्ना उस देवीको मैंने कैसे ढूँढ़ा! इसके लिए मैंने इक्ष्वाकुवंशकी प्रसिद्धिका कीर्त्तन किया—इसप्रकार क्रमशः विश्वास दिलाकर तब मैंने उनसे सब बातें कहीं। राम-सुग्रीवकी मैत्री सुनकर व प्रसन्न हुईं। हे महाभाग, पुरुषश्रेष्ठ! मैंने उन्हें एक कठोर तपस्विनीके रूप में देखा कि वे आपकी भक्तिमें तल्लीन हैं। उन्होंने आते समय मुझसे कहा था—'पवनकुमार! तुम यहाँ जैसी मेरी दशा देख रहे हो वह सब श्रीरामचन्द्रको बताना और इस मणिको बड़े यत्नसे सुरक्षित लेजाकर उनके हाथोंमें रखना।' उनकी आज्ञानुसार मैं इसे बड़े यत्नसे लायाहूँ। उन्होंने यह भी कहा था कि आपने मेरे ललाटपर मैनसिलका तिलक किया था, उसका स्मरण कीजिये। आर्यपुत्र! मैं एकमास और जीवन धारण करूँगी। पश्चात् राक्षसोंके वशमें पड़कर प्राण त्याग दूँगी। रघुनन्दन! विशालनेत्री सीताने आपसे जो निवेदन करनके लिए कहा था, वह सब मैंने आपको सुना दी। अब आप शीघ्रही समुद्र पार करनेका यत्न करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६५॥

छाछठवाँ सर्ग

मणिको देखकर रामका विलाप और हनुमान्‌से फिर पूछना

हनुमान्‌के ऐसा कहनेपर दशरथात्मज रामने उस मणिको हृदयसे लगा लिया और उसकी ओर देखकर शोकसे व्याकुलहो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे सुग्रीवकी ओर देखकर कहा—'प्रिय ! इस मणिको देखकर मेरा हृदय द्रवीभूत होगया। मेरे श्वसुरने यह मणि विवाहकालमें सीताको दिया था। इसकी उत्पत्ति समुद्रसे हुई है। इन्द्रने किसी यज्ञमें सन्तुष्ट होकर राजा जनकको यह मणि अर्पित की थी। यह सर्वदा मेरी प्रियाके सीमान्तपर शोभा पाती थी। आज इसे देखनेसे मैं उसीको आयी हुई समझता हूँ। सौम्य ! वैदेही सीताने जो कहा है, वह पुनः पुनः कहो। लक्ष्मण ! वैदेहीके बिना आये इस जलोत्पन्न मणिको मैं देख रहा हूँ, इससे बड़ा दुःख और क्या होगा ? वैदेही एक मास तक जीती रहेगी, बहुत है। मैं तो उस असितेक्षणाके बिना एक क्षणभी नहीं जी सकता। मुझेभी, वहीं ले चलो, जहाँ तुमने मेरी प्रियाको देखा है। हा, मेरी सती सीता भयानक राक्षसियोंके मध्यमें कैसे रहती है ? हनुमत् ! सीताने मेरे लिए और क्या कहा है, वह सब कहो, मैं उसीसे जीता रहूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ सर्ग

हनुमान् द्वारा विस्तारपूर्वक सीताका सन्देश निवेदन

महात्मा रामके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌ने सीताकी सब बातें इस प्रकार कहीं। 'हे पुरुषर्षभ ! देवी जानकीने अपना चिह्न पहले चित्रकूटमें जैसा हुआ था, जब वह आपकी गोदमें विश्राम कर रही थीं और सहसा वह कौवा आया था तथा जिसने आकर चोंच मारा था, जिस रुधिरसे आपभी जाग उठे थे—उन सब घटनाओंका स्मरण दिलाया है। वह शक्रका पुत्र था जो पृथ्वीपर आकर कौवा बन गया था। वह वायुके समान शीघ्रगामी था। हे महाबाहो ! उस कौएपर आपने बड़ा क्रोध किया था और अपने आसनसे कुश निकालकर उसे ब्रह्मास्त्र मंत्रसे अभिमंत्रितकर कौएकी ओर जलते हुए फेंका था, जिस प्रदीप्त कुशने उस कौएका पीछा किया। सब देवताओंनेभी

भयभीत होकर उसका त्याग किया। वह समग्र त्रिलोकीमें घूमा, पर कोई उसे रक्षक नहीं मिला। वह पुनः आपकी शरणमें आया। तब उस पृथ्वीमें पड़े शरणागतको देखकर, वधके योग्यभी, उसकी आपने रक्षा की। आपका अस्त्र व्यर्थ नहीं हो सकता था, इसलिए, कौएका दाहिना नेत्र भंगकर उसे आपने छोड़ दिया। वह आपको, राजा दशरथको प्रणाम करके तथा आपसे विदा होकर अपने घर चला गया इस प्रकार आप अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, बली और शीलवान् हैं। फिर हे राम ! आप राक्षसोंके लिए अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं करते ? हे राम ! आपके समक्ष युद्धमें देव, दानव, गन्धर्व, असुर कोईभी स्थिर नहीं रह सकते। हे पराक्रमी ! यदि आप मेरा कुछभी आदर करते हों तो शीघ्रही अपने नियमित बाणोंसे युद्धमें रावणको मारें, अथवा परन्तप नरश्रेष्ठ लक्ष्मणही भ्राताकी आज्ञा लेकर मेरी रक्षा क्यों नहीं करते? वे दोनों पुरुषसिंह तो वायु और अग्निके समान तेजस्वी हैं। फिर मेरी उपेक्षा क्यों करते हैं? अथवा मेराही यह कोई बड़ा पाप है, इसमें सन्देह नहीं। तभी तो वे दोनों भाई समर्थ होकर भी, मेरी रक्षा नहीं करते हैं।' वैदेहीके इन दयनीय वचनोंको सुनकर मैंने सत्य-शपथ करके उन्हें बहुत समझाया और आश्वासन दिया और कहा कि—'आप व्यग्र न हों, राम-लक्ष्मण शीघ्रही यहाँ आकर आपको लिवा जाएँगे तथा लंकाको जला रावणका बध कर डालेंगे। आप मुझे अपना कोई विश्वसनीय चिह्न दें। तब यह मणि जो वस्त्रमें बँधी थी, दोनों हाथोंसे निकालकर उन्होंने आपके लिए दी है। फिर जो मैं नतशिर हो उन्हें प्रणाम कर चला तो मुझे आते देख, अश्रुपूर्ण नेत्रों और गद्गद स्वरमें जनकपुत्री, दीना, सीताने, मुझसे कहा—'हे वानर ! तुम भाग्यवान् हो कि महाबाहु कमलनयन श्रीराम तथा महाबाहु यशस्वी मेरे देवर लक्ष्मणको देखते हो।' तब सीताके ऐसा कहनेपर मैंने उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाकर आपके पास लाना चाहा; किन्तु अपने पतिव्रत्य धर्म-पालनके विचारसे वह न आयीं और आपसे, लक्ष्मण तथा सुग्रीवसे यही सब कुशल समाचार कहनेको उन्होंने मुझसे कहा और उन्होंने बार-बार यही कहा कि, महाबाहु राम इस दुष्ट रावणको मार, मुझे इस दुःख-सागरसे शीघ्र निकाल ले चलें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

हनुमान् द्वारा विस्तारपूर्वक सीताका समाचार-कथन

हनुमान् बोले—हे नरव्याघ्र ! आपके प्रति सीताका जो स्नेह और सौहार्द है, उसके कारण उन्होंने मेरा सत्कार कर जो कहा है, उन्हें और सुनिए। उन्होंने कहा है कि, तुम दशरथ-पुत्र रामसे अनेक प्रकार कहना कि, जिसमें वे रावणको युद्धमें मार मुझे शीघ्र प्राप्त हों। हे वीर ! यदि तुम चाहो तो एक दिन यहीं किसी गुप्त-स्थानमें वास कर विश्राम करो, फिर चले जाना। तुम्हारे रहते तो मैं कुछ क्षणके लिए शोक-मुक्त रहूँगी। हे पराक्रमी ! तुम्हारे जानेपर मेरे ये प्राण रहेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है। मेरी एक दुःखी अवस्था है। फिर मैं दुःख-भागिनी तुम्हें देख पड़ूँ या नहीं। मुझे यह बड़ा सन्देह है कि तुम्हारे भालू और वानरोंके सहायक होनेपर भी, उन्हें लिए दोनों राजपुत्र इस समुद्रको कैसे पार करेंगे ? तीन ही प्राणी तो समुद्र पार करते हैं। गरुड़, वायु और तुम। हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! कार्यकी इस गंभीरताका तुम क्या उत्तर समझते हो ? यद्यपि इस कार्यको तुम अकेले कर सकते हो; तथापि हे शत्रुसैन्यनाशक ! इसमें तुम्हारा ही बल प्रशंसनीय होगा। यदि समस्त सेनाको युद्धमें मार विजयी राम मुझे यहाँसे ले जायँगे तो उससे इनका यशवर्द्धन होगा। राक्षसने बनमें जिस कपटसे मेरा हरण किया है, वैसे ही राम (हरण) न करें। ससैन्य लंकाको भरकर ही शत्रुपीड़क काकुत्स्थ रामका मुझे यहाँसे ले जाना—यही उनके योग्य होगा। महात्मा रामके अनुरूप ही तुम करना। सीताके ये अर्थयुक्त तथा हेतुक वाक्य सुन पुनः मैंने यह उत्तर दिया कि—'हे देवि ! वानर भालुओंके स्वामी कपिश्रेष्ठ सुग्रीवने तुम्हारे उद्धारका निश्चय किया है। सभी मनःगतिशील वानर उनके आधीन हैं। सभी अतुल पराक्रमी हैं। उन सबने पृथ्वीकी कई बार प्रदक्षिणा की है। मुझसे छोटा कोई भी वानर वहाँ नहीं है। बड़े दूत बनाकर नहीं भेजे जाते। आप दुःख न करें। वानर-सेनापति एक छलाङ्गमें लंका पहुँचेंगे। मेरी ही पीठपर चढ़कर वे दोनों भाई आपके पास आवेंगे। आप शीघ्रही सुनेंगी कि इस

मलय पर्वतपर मेघके समान विशाल प्रधान वानरोंकी गर्जना होगी। वे हाथियोंके समान यहाँ शीघ्रही एकत्र होंगे, जिन्हें आप देखेंगी। आप देखेंगी कि शत्रुहन्ता राम शीघ्रही अयोध्यामें राज-पदपर अभिषिक्त होंगे। सीता आपके दुःखसे बहुत पीड़ित थीं। उन अदीन-वक्ता सीताने मेरे प्रिय माङ्गलिक वचनोंसे, शान्ति धारण की। उनका दुःख निवृत्त हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दरकाण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥६८॥

॥ यहाँ सुन्दरकाण्ड समाप्त हुआ ॥

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्वाल्मीकीय मुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा

षष्टम् युद्धकाण्ड

पहला सर्ग

सीताकी खोजकर लौटे हुए हनुमान्‌का आदर

हनुमान्‌के वाक्य सुन श्रीरामचन्द्रजी सप्रेम बोले कि जो कार्य हनुमान् ने किया है, वह पृथ्वीमें दुर्लभ है। गरुड़, वायु और हनुमान्‌को छोड़ मैं अन्य किसीको नहीं देखता जो समुद्र लाँघ जाय। रावण-पालित लंकामें देवता, दानव, यक्ष, नाग और राक्षस कोईभी प्रवेश नहीं कर सकते। सेवकके योग्य हनुमान्‌ने अपने विक्रमसे सुग्रीवका यह कार्य किया है। हनुमान्‌ने सेवक-धर्ममें स्थित हो इस प्रकार मेरी और लक्ष्मणकी बड़ी रक्षाकी है। ऐसे प्रियवादी हनुमान्‌का मैं कुछ प्रत्युपकार नहीं करता—इसका मुझे खेद है। अतएव प्राणियों को आनन्ददायक निज आलिंगनही मैं हनुमान्‌को देता हूँ। अब मुझे यह चिन्ता हो रही है कि समुद्रके दक्षिण तटपर ये सब बानर कैसे पहुँचेंगे। हे सुग्रीव! हनुमान्‌ने आकर वैदेहीका वृत्तान्त तो हमसे कहा; पर बानरोंको समुद्र के उस पार पहुँचनेका क्या उत्तर है? शत्रुहन्ता राम इस प्रकार शोक-सन्तप्त हो हनुमान्‌से ऐसा कहकर फिर चिन्ता करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका पहला सर्ग समाप्त॥ १॥

दूसरा सर्ग

सुग्रीवके वाक्य तथा समुद्र पार करनेका प्रयत्न

रामको इस प्रकार शोकयुक्त देख सुग्रीव यह शोकनाशक बचन बोले—राघव! आप अन्य प्राकृत मनुष्योंके समान क्या विचार करते हैं? यह समय शोकका नहीं; किन्तु आनन्दका है। हे राघव! आप तो बड़े बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ, प्राज्ञ तथा पण्डित हैं, इस प्राकृत बुद्धिको त्याग दीजिये। हम सब

महा नक्र समाकुल सागरको लाँघकर लङ्का पहुँच जायँगे और आपके शत्रुको मार डालेंगे। उत्साहहीन तथा शोकसे व्याकुल मनुष्यके प्रयोजन नष्ट हो जाते हैं। सब वानर बड़े शूर तथा आपके लिए कहींभी जानेमें समर्थ हैं, यहाँ तक कि अग्निमें भी प्रवेश कर सकते हैं। मैं इनके हर्षसे यह बात जानता हूँ और मेरा यह अनुमानभी पुष्ट है। अब वैसाही करें कि, जिस प्रकार पापी रावणको मार आप सीताको लायें। जैसे समुद्रमें सेतु बँधे और हम सब लंकापुरी देखें। त्रिकूट पर्वतपर स्थित लङ्कापुरीको देख-तथा युद्धमें रावणको देखने मात्रसेही आप उसे मरा हुआ समझिये। इस घोर वरुणालयमें विना सेतुके देवता तथा दैत्यभी लङ्कामें नहीं जासकते। जैसेही लंकाके समीप समुद्रमें सेतु बँध गया; वैसेही हमारा सब सैन्य उतर जायगा और शत्रुको जय कर लेगा। हे राजन्! सर्वार्थ-नाशक इस व्याकुल बुद्धिका त्याग कीजिये। शूरताका कार्य करनेवाला वह कर्त्ता भूषण हो जाता है। हे महाप्राज्ञ! इस समय तुम तेज और सत्वगुणका अवलम्बन करो। नष्ट हुए या खो गए पदार्थका शोक करना सब अर्थोंका नाश कर देता है। आप तो बुद्धिमान और सर्व शास्त्रवेत्ता हैं। हमारे जैसे मन्त्रियोंके साथ शत्रुओंको विजय कर लीजिएगा। हे राघव! त्रैलोक्यमें मैं ऐसा किसीको नहीं देखता जो धनुष लेकर आपके समक्ष खड़ा हो सके। वानर भी आपका कोई कार्य नष्ट न होने देंगे। इसलिए आप शोक त्याग कीजिए। शत्रुके प्रति क्रोध न करनेवाले क्षत्रिय मन्द होते हैं और क्रोध करनेवालेसे सब भयभीत होते हैं। प्रथम समुद्र पार कीजिए, फिर शत्रुको मरा हुआ ही समझिए। अधिक क्या कहें, सर्व-प्रकारेण आप विजयी हैं। मुझे विजयके सभी शुभ शकुन दिखाई पड़ रहे हैं और मन भी प्रसन्न है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

लंका-वर्णन

सुग्रीवके सहेतुक वचन सुन रामने अङ्गीकार किए और हनुमानसे बोले—मैं अपने स्वतपसे समुद्रमें सेतु बाँधकर उसके पार उतर सकता हूँ। सागरको सुखा सकता हूँ। अब यह बताओ कि लंकामें कितने दुर्ग हैं। वहाँ कितनी सेना है, द्वारोंपर शत्रुके रोकनेका क्या प्रबन्ध है। लंकाकी रक्षा

करनेके कितने गुप्त यन्त्र लगे हैं। राक्षसोंके कितने मन्दिर हैं। तुम तो लंकाको भली भाँति देखे हो अतः उसका सब हाल कहो। रामके वचन सुन वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्ने कहा—सुनिए; मैं लंकाके दुर्ग, उसकी रक्षाके साधन और जिस प्रकार सेनाके द्वारा वह सुरक्षित है, यह सब आपको सुनाता हूँ। लंकाके चार बड़े द्वार हैं; जिनमें बड़े ही सुदृढ़ किवाड़ लगे हैं और मोटी-मोटी अर्गलाएँ हैं। जिनपर बड़े विशाल और प्रबल उपयन्त्र लगे हुए हैं, जिनसे आक्रामक सैन्यका अवरोध हो सकता है। वीर राक्षसोंने उन द्वारोंपर काले लोहेकी सैकड़ों तोपें बनाकर रख दी हैं। उस पुरीके चारों ओर सोनेका परकोटा है, जिसे तोड़ना बड़ा ही कठिन कार्य है। उसमें मणि, मूँगे, वैदूर्य और मोतियोंका काम हो रहा है। फिर उसके सब ओर बड़ी भयानक और गहरी ठंढे जलकी खाइ है जिसमें ग्राह और मछलियाँ भरी हैं। उस खाईं पर द्वारों तक पहुँचनेके लिए चार संक्रम (मार्ग) हैं; जिनमें यन्त्र लगे हुए हैं और उनके समीपही विशाल भवनोंकी पंक्तियाँ हैं। जब शत्रुकी सेना आती है, तब यन्त्रोंके द्वारा उन संक्रमोंकी रक्षा की जाती है। तथा यन्त्रोंके द्वाराही उन्हें सब ओर खाँइयोंमें गिरा दिया जाता है। वहाँ बहुत बड़ी सेना निवास करती है और वह सब सुवर्ण-खंभ एवं वेदिकाओंसे सुशोभित है। हे रघुनाथ! रावण स्वयं सावधानीसे सैन्य-निरीक्षण करता है। लंकापर आक्रमण करनेके लिए कोई अवलम्बन नहीं है। वह देवताओंके प्रवेशके लिएभी अगम है। उसके चारों ओर जल, पर्वत, वन और कृत्रिम चार दुर्ग हैं। वह सुदूर विस्तृत प्रसरित बसी हुई है, जहाँ प्रवेशके लिए नौकाकाभी मार्ग नहीं है। उसमें लक्ष्यका भी कोई मार्ग संभव नहीं है। वह पर्वतपर बसी हुई पुरी देवपुरीके समान है जो हाथी घोड़ोंसे आकीर्ण तथा अत्यंत दुर्गम है। दुरात्मा रावणकी उस लंकापुरीको खाईं तोपें और विभिन्न यन्त्र सुशोभित कर रहे हैं। लंकाके मध्य भू-भागमें शत-सहस्र राक्षस निवास करते हैं, जिनमें कुल मिलाकर पूरे एक करोड़ दुर्जय राक्षस हैं। किन्तु मैंने उन संक्रमोंको तोड़ दिया है, खाईंको पाट दिया है, लङ्कापुरीको जला दिया है और उसके परकोटोंको गिरा दिया है। हम किसी न किसी उपायसे एक-बार समुद्रको पार कर लें। फिर आप वानरों द्वारा लङ्काको नष्ट हुआ ही

समझिए। अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान्, पनस, नल और सेनापति नील-बस, इतने वानर लङ्का-विजयके लिए पर्याप्त हैं; शेष सैन्यकी आपको आवश्यकता ही क्या है? ये सब तैरकर उस नगरीमें पहुँच जायँगे और उसे नष्ट-भ्रष्टकर सीताको ले आवेंगे। अतएव आप शीघ्रही आज्ञा दीजिए और एक शुभ मुहूर्त्तमें सैन्य-प्रस्थानका विचार कीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग

समुद्र-दर्शन

हनुमान्‌की बात सुन तेजस्वी राम बोले—भयंकर राक्षसोंकी जिस पुरीको विध्वंस करनेको कहते हो, उसे मैं शीघ्रही नष्ट-भ्रष्ट करूँगा। हे सुग्रीव! इस समय सूर्य मध्यमें स्थित है, इससे विजयकारक मुहूर्त्त उपस्थित है जिसमें यात्रा है, इसे तुम भी उत्तम समझो। सीताको हरनेवाला रावण अब अवश्य ही मारा जायगा। आज उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है, कल प्रातः हस्त होगा, उसमें सब सेना सहित प्रस्थान करो। मेरे दाहिने नेत्रका ऊपरी भाग फड़क रहा है, इससे ज्ञात होता है कि, हमारी विजय होगी। यह सुन सुग्रीव और लक्ष्मणने उनकी प्रशंसा की। तब राम फिर बोले -'नल अल्पसंख्यक वानरोंको साथ ले मार्गका निरीक्षण करें। फिर जिस मार्गमें फल मूल अधिक मिलें उसी मार्गसे सब सेना शीघ्र ले चलो। कुछ थोड़ी सेनाको किष्किन्धामें छोड़ दो, शेष सब सेना चले। हे कपिसिंहो! तुम आगे-आगे चल बड़ी विशाल सेनाको आगे बढ़ाते जाओ। महाबली गज, गवय और गवाक्ष ये तीनों सेनाके आगे-आगे चलें। वानर ऋषभ सेनाके दाहिनी भागकी रक्षा करता हुआ चले, गन्धमादन बाम भागकी तथा सब सैन्य-समूहके मध्यमें हम हनुमान्‌की पीठपर चलेंगे और लक्ष्मण अङ्गदकी पीठपर चढ़कर चलें। जाम्बवान सुषेण और महाबाहु वेगदर्शी ये तीनों सेनाके पृष्ठ भागकी रक्षा करते चलें। राघवके ये वचन सुन वानरराज सुग्रीवने वानरोंको चलनेकी आज्ञा दी। वे पराक्रमी वानर गुफाओं और पर्वत-शिखरों से कूदकर चले। फिर वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणसे निवेदित श्रीरामने भी असंख्य वानरों सहित दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। उनके पीछे-पीछे वानर

ी वह विशाल सेना चली। उछलते, कूदते और गर्जन करते हुए सब
ानर मधुर तथा सुगन्धित फल खाते और बड़े-बड़े वृक्ष लिए चल रहे थे।
के आगे ऋषभ, नील और कुमुद अनेकों वानरोंके साथ मार्ग शोधते चले
ाते थे। उस समस्त सेनाके मध्यमें वानरराज सुग्रीव तथा श्रीराम और
क्ष्मण थे। शतवलि नामक वानर दश करोड़ वानरोंके साथ सैन्य-रक्षण
रता जा रहा था। केसरी तथा पनस एक अर्ब वानरोंको साथ लिये सेनाके
क्षिण पार्श्वपर चलता था तथा गज और अर्क नामके वानर अपने साथ
हुत-से वानर लिए वाम पार्श्वसे चलते थे। सुषेण और जाम्बवान् बहुत
क्षोंको साथ लिये सुग्रीवको आगे किये सेनाके पृष्ठ भागकी रक्षा करते
ाते थे। सेनापति नील सेनाको ग्रामोंमें अत्याचार करनेसे रोकता जाता
ा। वलीमुख, प्रजंघ, जम्भ और रसभ ये सब और वानरोंको शीघ्रतासे
मन करनेको कहते चले जा रहे थे। इस प्रकार वे बलोन्मत्त बानर-वीर
ावर चले जा रहे थे। चलते-चलते उन्होंने पर्वतश्रेष्ठ सह्यगिरिको देखा,
सके समीप और भी करोड़ों पर्वत थे। रामके समीप बड़े-बड़े शूरवीर
ानर-श्रेष्ठ घोड़ोंके समान शीघ्रतासे चलते थे और स्वयं राम हनुमान्की
ऊपर और लक्ष्मण अङ्गदपर सवार ग्रहोंसे छिपे चन्द्रमा और सूर्यके समान
ोभित ससैन्य दक्षिणको गमन कर रहे थे। उसी समय शकुनोंके द्वारा
ार्य-सिद्धिकी बात जानकर अङ्गदके कन्धे पर बैठे हुए लक्ष्मणने रामसे
हा—'राघव! आप शीघ्रही रावणको मारकर हरी हुई वैदेहीको पाकर
र्य सिद्ध हो अयोध्याको पधारेंगे। क्योंकि अर्थ-सिद्धि सूचक आकाश और
ूतलपर इस समय ऐसे अनेक कारण दृष्टि आते हैं। देखिए, सेनाके पीछे
से शीतल, मन्द और सुखमय पवन चल रहा है तथा मृगगण और पक्षी
ी सुहावनी वाणी बोल रहे हैं। दिशाएँ प्रसन्न हैं, सूर्य निर्मल है, शुक्र
च्छ पृष्ठकी ओर उदित है और ध्रुव प्रकाशित उदित है। राक्षसोंका नक्षत्र
ो आज कल धूम्रकेतु ग्रहसे पीड़ित है, इससे राक्षसोंकी पराजय निश्चित
। अब राक्षस कालके वशवर्ती हो गए हैं। जल स्वच्छ और मधुर हो गया
। सब वन फूले फले हैं, वायु अधिक नहीं है तथा बिना ऋतुके ही वृक्ष
ुष्पित हो गए हैं। यह व्यूह-बद्ध वानरी सेना बड़ी शोभा-सम्पन्न जान पड़ती

है। हे प्रभो! यह सब देखकर आपको प्रसन्न होना चाहिए।' इसप्रकार वान-
रोंकी सम्पूर्ण सेना पृथ्वीमें फैल गई। नख और दाँतही उनके अस्त्र थे। वे
हाथ और पैरोंकी अँगुलियोंसे बड़ी धूल उछालते हुए चल रहे थे, जिस
धूलिने सूर्यकी प्रभा आच्छादित कर दी तथा अन्धकार छा गया। जब बहुत
योजनों तक वानरोंकी सेना उतरने लगी तो नदियोंके सम्पूर्ण स्रोत उलटे प्रवा-
हित होने लगे। वह सेना निर्मल सरोवर वृक्षोंसे लदे हुए पर्वतों, समतल
भूखण्डों और फलोंवाले बनोंके मध्यमें, इधर-उधर; ऊपर-नीचे सब ओर
फैलकर चल रही थी। सब बानर बड़े प्रसन्न तथा वायुके समान वेगशाली थे।
सब रामके अर्थबलकी जल्पना करते, परस्पर हर्ष तथा वीर्य दिखाते जाते
थे। उनमें कोई तो बड़ी शीघ्रतासे, कोई किलकिलाते चलते थे। कोई
अपनी पूँछको ऊपर उठा फिर पटकते थे, कोई भुजा फैला वृक्ष तथा पर्वत
उखाड़कर तोड़ डालते थे। कोई-कोई कूदकर पर्वतोंके शृङ्गोंपर चढ़ जाते,
कोई चीत्कार और कोई हास्य करते। ऐसे सैकड़ों हजारों, लाखों, करोड़ों
बानरोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई। बानरोंकी सेना रात-दिन चली जाती। कहीं विश्राम
नहीं करती थी। सब हर्षित चित्त, युद्धेच्छुक तथा सीताको मुक्त करनेकी
इच्छासे चले जाते थे। श्रीराम वृक्षोंसे आकीर्ण विचित्र वन तथा सह्य और
मलय पर्वतोंकी नदियों और स्रोतोंको देखते चल रहे थे। मलय पर्वतके समीप
पहुँच वे उसके वृक्षोंसे सुशोभित शिखरपर चढ़ गये। फिर उससे उतरकर
सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ समुद्रतटके रमणीय बनमें आये। वहाँका पर्वतीय
तट निरन्तर उठनेवाली तरङ्गोंसे धुल गया था। वहाँ पहुँचकर रामने कहा—
सुग्रीव! अब तो हम समुद्रके पास पहुँच गये। पर हमारे आगे फिर वह पहले
ही चिन्ता उपस्थित है। यहाँसे आगे अब समुद्रही है जिसे बिना उपाय हम
नहीं उतर सकेंगे। अब हम सब यहाँ ठहरकर समुद्रके पार जानेका विचार
करें। यही सब सोचकर सीताके हरणसे कृश रामने वहीं रहनेकी
आज्ञा दी। रामकी बात सुन लक्ष्मण सहित सुग्रीवने वृक्ष लगे हुए
समुद्र-तटपर सब सेनाको उतार दिया। समुद्र-तटपर ठहरनेसे वह
सेना मधुसम धूसर रंगके जलके सागरवत् शोभित हुई। उसके चलने-
फिरनेसे इतना कोलाहल होरहा था कि समुद्रकी गर्जनकोभी दबा दिया था।
राम-कार्य-तत्पर बानरी सेना तीन भागोंमें ठहरायी गयी। वहाँसे समुद्र बहुत

दूर तक फैला हुआ दृष्टि आता था, जिसके मध्यमें कहीं भी ठहरनेका स्थान नहीं था और राक्षसभी उसमें निवास करते थे तथा अन्य जलचारी जीवोंकी तो बातही क्या है। जलकी बड़ी-बड़ी तरंगें उठ रही थीं तथा पाताल तक जिसकी गहराई थी। तटके दृष्टि न आनेसे समुद्र और आकाश परस्पर मिले हुए थे तथा आकाश समुद्रके समान और समुद्र आकाशके समान दृष्टि आता था। वायु-वेगसे उच्चालित तरंगों द्वारा बड़ा शब्द हो रहा था। यह सब दृश्य बानरगण आश्चर्यसे देख रहे थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

पाँचवाँ सर्ग

श्रीरामका सीताके स्मरण करनेसे उत्पन्न शोक वर्णन

सेनाको सागर-तटपर ठहराकर नीलने उत्तम प्रबन्ध कर दिया था। मैन्द, द्विविद दोनों बानर सेनाकी रक्षाके लिए उसके प्रहरी बने। तब उसके पार्श्व भागमें स्थित लक्ष्मणसे राम बोले—लक्ष्मण! शोकका यह स्वभाव है कि जैसे समय व्यतीत होता है, वैसे-वैसे वह न्यून होता जाता है; परन्तु जानकीको देखे बिना तो मेरा शोक दिन-दिन बढ़ता जाता है। मैं सुनता हूँ कि सीता अभी जीवित है, इसीसे जी रहा हूँ। ऐसा कब होगा, जब शत्रुको समरमें परास्तकर कमलनयनी सीताको देखूँगा? मुझ-सा पाकरभी सीता राक्षसोंके मध्यमें अनाथ-सी बैठी हुई अपना कोई रक्षक नहीं देखती। जनकराजकी कन्या, मेरी प्रिया और दशरथकी पुत्र-वधू होकर वह राक्षसोंके मध्यमें सोती है। सीता तो स्वभावतः कृश हैं। शोक और उपवासोंसे तो अब वह औरभी कृशकाय होगई होंगी। रावणकी छातीमें बाण मारकर कष्टसे मैं उसे अपना शोक कराऊँगा। सीता-वियोगसे मैं कब मुक्त होऊँगा। इस प्रकार रामके विलाप करते दिनका क्षय हुआ और मन्दतेज सूर्य अस्ताचलकी ओर चले गये। जब लक्ष्मणने बहुत समझाया तब रामने सन्ध्योपासन किया। फिर सीताके लिए शोक करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

छठवाँ सर्ग

इधर लङ्कामें हनुमान्‌के घोर-युद्धके भयावह कर्म देख रावण नत-मुख हो राक्षसोंसे बोला—तुच्छ वानर लङ्कामें आकर सम्पूर्ण पुरीको जला गया।

प्रसादों और उपवनोंकी विध्वंस कर दिया। बली राक्षसोंको मार, लंकाको भस्म कर हनुमान्‌ने मलिन कर दिया। अब हमें क्या करना योग्य है, वह आप सब बतलावें। परामर्शकी गई बुद्धि विजय देती है। मुझे परामर्शसे ही कार्य करना रुचिकर है। उत्तम, मध्यम, अधम ये तीन प्रकारके मनुष्य हैं। उत्तम वह है जो एकाग्रतासे अपने भाई बन्धुओंसे मन्त्रणा करता और जो अपने समान मित्रोंसे परामर्श करता है। इस प्रकार वह परामर्शसे कार्य करता हुआ कुछ देव-यत्नभी करता है! मध्यम पुरुष उसे कहते हैं, जो अकेला ही अर्थ चिन्तन करते हुए अकेले ही धर्म-चिन्तन करता है। इसी प्रकार अधम वह है जो गुण-दोषको न विचार देवलोकको कुछ न समझ स्वयंही सब कार्य करनेका विचारकर; अन्योंकी उपेक्षा करता हो। ऐसे ही मंत्री भी उत्तम, अधम तीन जाने। यथा शास्त्र मंत्रणा ही उत्तम है। मन्त्रियोंकी प्रथम बहुमति मन्त्रणा मध्यम कही जाती है। अधिक लोगोंके बैठकर परामर्श करनेमें उसमें सबकी एक सम्मति नहीं बन पाती—वह अधम मन्त्रणा है। तुम इस विषयपर बिचार कर कहो। अब तो राम अपने भाई, मन्त्री और वानरोंकी विशाल सेना ले लंकापुरीको घेरेंगे। निश्चय ही वे सागर उतर आवेंगे। या स्ववीर्यसे सागरको सोख लेंगे, या और ही उपाय करेंगे। इस विषयमें वे वानरोंके साथ परामर्श तो करेंगे ही। तथापि इस पुरीमें ससैन्य जैसे सबकी रक्षा हो, वह उपाय विचार कीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

सातवाँ सर्ग

रावणकी मन्त्रियोंसे मन्त्रणा

रावणके ऐसा कहनेपर सब राक्षस 'नीति-विरुद्ध-शत्रु' का बिचार न कर हाथ जोड़ बोले—राजन्! हमारे पास बड़ी विशाल सेना है जो मुद्गर, शूल, शक्ति-और पटा आदि अस्त्रोंसे युक्त है, फिर आप चिन्ता क्यों करते हैं? आपने तो कैलास स्थित यक्षों सहित कुवेरको जीतकर वशवर्ती बना लिया था। महादेवके मित्र, बड़ी बड़ाईके योग्य तथा महाबली लोकपाल होनेपर भी आपने उनको जीत लिया था। यक्षोंको मार तथा बन्दीकर आप यह पुष्पक विमान ले आये थे। आपके भयसे ही दानवने अपनी कन्या

आपको दे दी। अति बली दानव-श्रेष्ठ सुरासद मधुदैत्यको भी पकड़कर आपने अपने वशमें लिया था। बासुकि, तक्षक, शंक आदि नागोंको जीतकर अपने बशमें किया था। अक्षय बली, शूर दानवोंसे एक वर्ष युद्ध कर, स्वबलसे उनको अपने वशमें कर वहाँ बहुत सी माया सीखी और वरुण के बली पुत्रोंको आपने युद्धमें विजय किया तथा यमलोकरूप महासागरको मथकर यम और मृत्युपर भी बहुत बड़ी विजय प्राप्त की थी। फिर रामपर विजय पाना कौन बड़ी बात है? महाराज! आप आनन्दसे बैठे रहें, आप-को परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं है। इन वानरोंको तो अकेले इन्द्र-जीत ही संहार कर डालेंगे। इन्होंने अत्युत्तम माहेश्वर यज्ञका अनुष्ठानकर दुर्लभ वर प्राप्त किया है, जो संसारमें किसी दूसरेको मिलना बहुत ही कठिन है। इन्होंने समुद्रके समान देव-सेनापर विजय प्राप्तकर देवराज इन्द्रको पकड़ लिया था तथा ब्रह्माके कहनेपर इन्द्रको छोड़ा था और तब वह स्वर्ग गये थे। अतः आप इन्द्रजीतको तब-तक के लिए छोड़ दीजिए जब-तक वह वानरों सहित रामचन्द्रको यमपुर न भेज दे। मनुष्यों द्वारा आई इस आपदा को आप कुछ न समझें। निस्सन्देह आप रामका बध कीजियेगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

आठवाँ सर्ग

रावणकी मन्त्रियोंसे मन्त्रणा

तब अतिबली सेनापति प्रहस्त नामक राक्षसने हाथ जोड़कर रावणसे कहा—'हम देव, दानव, गन्धर्व, नाग, इन सबको जीतने में समर्थ हैं, फिर मनुष्य राम लक्ष्मण क्या हैं? हम प्रमत्त थे इसीसे हनुमान्‌के छलमें आ गये। सावधान होते तो वह जीवित कदापि न जाने पाता। अब आप आज्ञा दें तो सागर, बन, पर्वत सहित भूमि वानरोंसे रहित कर डालेंगे। वानरों से राक्षसोंकी क्या रक्षा करनी है?' इसी समय दुर्मुख नामक राक्षस बड़ा क्रोधकर बोला—उस वानरका किया हुआ अनादर हम नहीं सह सकते। लंका, अन्तःपुर तथा राक्षसराजका अपमान हम नहीं सहन कर सकते। इससे अभी अकेला ही मैं जाकर जहाँ कहीं बानर होंगे, सबको मार डालूँगा। इसी समय महाबली बज्रकष्ट मांस और रुधिर लगा परिघ ग्रहणकर बोला—

दुर्धर्ष राम लक्ष्मण और सुग्रीवके रहते हनुमान्‌को मारनेसे क्या प्रयोजन ? अतः मैं आज अकेलाही इस मुद्गरसे राम लक्ष्मण और सुग्रीवको मार कपि सेनाको कम्पितकर चला आऊँगा। राजन्! मेरी एक और भी बात सुनिये। उपाय-कुशल ही शत्रुओंको जीतता है।' इसके पश्चात् कुम्भकर्णके पुत्र महाबली निकुम्भने क्रोधमें भर कर कहा—'आप सब लोग तो यहीं महाराजके पास रहें, राम और लक्ष्मणको तो मैं अकेलाही मार आऊँगा। इतना ही नहीं, मैं सुग्रीव, हनुमान् और सब बानरोंको भी नष्ट कर डालूँगा।' फिर पर्वतके समान विशालकाय वज्रहनु नामके राक्षसने कहा—'आपलोग निश्चिन्त होकर अपना काम करें; मैं अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, राम, अङ्गद, हनुमान् और सब बानरोंको मार डालूँगा।'

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

नवाँ सर्ग

विभीषणका रावणको समझाना

फिर तो निकुंभ; रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, दुर्द्धर्ष, मेघनाद, प्रहस्त, विरूपाक्ष, वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष और दुर्मुख आदि राक्षस परिघ, पट्टिश, शूल, प्रास, फरसा धनुष और तलवार लेकर आगे आये और सबके सब अपने तेजसे तमक-तमक कर कहने लगे—'हम आजही राम, सुग्रीव और लक्ष्मण को मार डालेंगे तथा हनुमान् को भी नष्ट कर देंगे।' इतनेमें ही विभीषणने हाथ जोड़कर कहा—तात! जो कार्य साम, दान और भेद, इन तीन उपायोंसे सिद्ध न हो सके, उसीके लिए नीतिज्ञोंने बल-प्रयोग करनेका विधान किया है। सेना सहित राम सावधान हैं, आप उन दुराधर्षको कैसे जीतना चाहते हैं ? इस प्रकार यद्यपि वे अजेय हैं, तो भी आपलोग उन्हें परास्त करना चाहते हैं। भला जो हनुमान् समुद्र लाँघ आया; उसकी गतिको कौन जान सकेगा ? अपरिमित बलशाली शत्रुका कभी भी अनादर न करे। आपका श्रीरामजीने क्या अपराध किया था जो आप उनकी भार्याको हर लाये। यदि कहिये कि, रामने खरको मारा तो प्राणीको अवश्यही शक्तिभर अपने प्राणोंकी रक्षा करनी चाहिये। यदि खरके ही मारनेमें सीताको हरा जिससे हमपर इतनी बड़ी विपत्ति आई है तो

अब सीताको त्याग दीजिये कलहसे कुछ सिद्ध न होगा। मैं समझा हूँ कि रामके साथ शत्रुता निरर्थक है। सीता उनको लौटा दीजिए। जब तक राम लंकापुरीको वीदीर्ण न करें, तब तक उनकी मर्यादाको उन्हें दे दीजिए। जब तक दुर्द्धर्ष वानरी सेना लंकाको विध्वंस न करे, तबतक सीता लौटा दीजिए। रामकी स्त्री उन्हें दे दीजिए। क्योंकि स्वयं न देनेसे राक्षसों सहित यह लंका नष्ट हो जायगी। मैं आपका भाई हूँ, मेरा वचन मानिए। क्योंकि मैं आपके हितकी बात कहता हूँ। उनकी भार्याको उन्हें दे दीजिए। जब-तक राम सूर्य-किरणोंके समान चमकते, अति दृढ़ और सफल बाण आपके बधार्थ छोड़ें उसके पूर्वही दे डालिए। इस सुख और धर्मनाशक क्रोधको शीघ्र ही त्याग दीजिए तथा सुख और कीर्त्ति-वर्द्धक धर्मका सेवन कीजिए। आप मेरे इस कथनसे प्रसन्न हो सीता रामको दे दीजिए।' विभीषणके ये वचन सुन राक्षसेश्वर रावण राक्षसोंको विदाकर अपने अन्तःपुरमें चला आया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

दशवाँ सर्ग

विभीषणका रावणको समझाना और रावणका न मानना

प्रातःकाल धमार्थ-निश्चित विचारको लिए हुए विभीषण राक्षसाधिपके पर्वत शृङ्गोंके तुल्य प्रकाशित उच्च राजप्रासादमें गए जिसमें बड़े-बड़े विद्वान् शोभा पा रहे थे और जो राक्षसों द्वारा सब ओरसे रक्षित था। वह भवन गन्धर्वों और देवताओंके स्थानोंके तुल्य रत्नोंके अति संचयसे नागलोकके समान था। महातेजस्वी विभीषणने वहाँ जाकर राजसिंहासनासीन रावणको प्रणाम किया, जो स्वतेजसे प्रदीप्त और अनेक राक्षसोंसे सेवित था। तब दृष्टिमात्रसे राजाज्ञा पा स्वर्णभूषित आसनपर राजाकी जय कह विभीषण बैठ गए। फिर बड़ी नम्रतासे एकान्तमें कुछ मन्त्रियोंके समक्ष उन्होंने रावणसे यह अत्यन्त हितकारी और युक्तियुक्त वचन कहे कि—'हे परन्तप! जबसे वैदेही यहाँ आई है, तबसे अशुभही दृष्टि आते हैं। अग्निमन्थन समयमें धुँआसहित चिनगारियाँ निकलती तथा उड़ने लगती हैं, ज्योतिभी धुँआँ सहितही निकलती है। सविधि अच्छे-अच्छे मन्त्र पढ़े जानेपर भी आहुतिसे ज्योति पूर्णतया नहीं बढ़ती है। अग्निशालाओं और वेदपाठके स्थानोंमें

सर्प दृष्टि आते हैं तथा हवामें चींटियाँ दृष्टि आती हैं। गायोंका दूध सूख गया है, हाथियोंका मद प्रवाह अवरोधित है और सुभोज्य पाकर भी अश्व दुःखित हो हिनहिनातेही रहते हैं। हे राजन् ! गधे, ऊँट तथा खचर रुदन किया करते हैं और औषधि करनेपर भी वे स्व-स्वभावको नहीं प्राप्त होते हैं। काकोंके झुण्ड दिशाओंमें कटु शब्द करते हैं तथा विमानोंपर मँडलाते हैं। गीधभी एकत्र होकर नगरके ऊपर मँडलाते रहते हैं। दोनों संध्याओंमें सियारिनें नगरके समीप आकर अमङ्गल शब्द करती हैं। ऐसी स्थितिमें मुझे तो यही प्रायश्चित्त श्रेय ज्ञात होता है कि सीता श्रीरामचन्द्रको लौटा दी जाय, ये अपशकुन राक्षस-राक्षसी, नगर और अन्तःपुर सभीके लिए हैं। यह विचार कहनेमें आपसे सभी मन्त्री संकोच करते हैं। परन्तु मैंने जो विचार किया या देखा सुना है, वह आपके समक्ष निवेदन करता हूँ। अब जैसा उचित हो कीजिए। जब मन्त्रियोंके मध्यमें बैठे हुए रावणसे यह हित वाक्य विभीषणने कहा, तब उससे बहुत सन्तुष्ट हो रावण उत्तर देने लगा—मैं तो कहींसे भी भय नहीं देखता। अतः राम कदापि सीताको नहीं पावेंगे। इन्द्रादिक देवताओंके साथ भी वे मेरे समक्ष युद्धमें कैसे खड़े हो सकते हैं? प्रचण्ड युद्धविक्रमी रावणने ऐसा कहकर विभीषणको विदा किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

रावणकी सभामें सब मन्त्रियों और राक्षसोंका जमाव

रावण मैथिलीके साथ काम-मोहित होने तथा सुहृदोंका अपमान करनेसे कृश हो गया। नित्य सीताके स्मरणसे, निकट आए हुए रामके साथ युद्ध होगा—इसका उसे स्मरण ही न था। परन्तु राक्षसों और मित्रोंके कहनेसे उसे ज्ञात हुआ कि अब युद्धका समय उपस्थित है। अतः वह सुवर्णसे बने मणि, मूँगोंसे विभूषित रथपर आरूढ़ हुआ जिसमें शिक्षित अश्व जुते थे। रथारूढ़ रावण अपनी सभामें गया। समस्त शस्त्रधारी राक्षस रावणके आगे खड़े हुए। फिर चारों ओर घेरकर चले। इस प्रकार राक्षसों द्वारा स्तुति, जयकार और आशीर्वचन सुनता हुआ तेजस्वी रावणने राजसभामें प्रवेश किया। उस सभामें सुनहले, रुपहले आसन बिछे हुए थे जो स्फटिक मणिके

समान श्वेत थे। इस सभाको विश्वकर्माने बसाई थी। राजसिंहासनपर बैठते ही राक्षस-राजने अपने दूतोंको आज्ञा दी—'तुम लोग शीघ्र ही सब राक्षस सभासदोंको बुला लाओ।' दूतगण रावणकी आज्ञा पाकर लंकाके महलों, विहार-स्थानों, शयन-गृहों और उद्यानोंमें जा-जाकर सबको राजसभामें चलने का आदेश सुनाने लगे। तब कोई रथपर, कोई हाथीपर चढ़कर तथा कोई पैदल ही सभाकी ओर प्रस्थित हुए। फिर सभा भवनमें आकर प्रवेश किया। वहाँ पहुँच उन्होंने यथायोग्य राक्षसोंको अभिवादन किया। सैकड़ों शूर-वीर सुवर्णमयी सभामें आए। वे सभी मन्त्र-निपुण और कार्योंकी सुगम व्यवस्था में कुशल थे। उसी समय सुवर्ण विरचित रथपर सवार हो महायशस्वी विभीषण भी रावणकी सभामें आए और बड़े भाईसे नमस्कार कह प्रणाम किया। फिर शुक, प्रहस्त नामक मन्त्रियोंने भी आकर अपना नाम कह अभिवादन किया। रावणने सबको अलग-अलग आसन दिए। फिर तो सुन्दर वर्ण तथा नाना प्रकारकी मणियोंसे भूषित वस्त्रधारी, अगरु और चन्दन लगाए राक्षसोंके मालाकी सुगन्धसे सभा महकने लगी। कोई बोलता नहीं था। सब अति बलवान् राजाहीका मुख देख रहे थे जो शस्त्रधारी मनस्वी रावण ऐसा ही था, जैसे वसुओंके मध्यमें इन्द्र शोभित हो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११॥

बारहवाँ सर्ग

रावण और मन्त्रियोंकी मन्त्रणा

तब परिषदकी ओर देखकर समर-विजयी रावण सेनापति प्रहस्तको समझाते हुए बोला—सेनापति! अब तुम अपने चारों प्रकारके योद्धा गणों को नगर-रक्षाके लिए आज्ञा दे दो! प्रहस्तने राजाज्ञाको तत्क्षण कार्यान्वित किया। फिर राजाके सन्मुख बोला कि राजाज्ञया यथा सर्वत्र बलवान् सैनिक नियुक्तकर दिये गये। अब आपको जो अभीष्ट हो वह करें। तब प्रहस्तके ऐसे वचन सुन सर्व-गुणग्राही रावण मित्रोंके मध्यमें बोला—सभासदो! धर्म, अर्थ, काम-विषयक कठिनता उपस्थित होनेपर तुम सभीलोग प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख लाभ-हानि और हिताहितका विचार करनेमें समर्थ हो। आपलोगोंकी सम्मति सर्वदा विजयिनी रही है। इससे मुझे आशा है कि, आपके साथसे मुझे राज-

लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी। अब मैं अपना वह अभिप्राय कहता हूँ जो कुम्भकर्णके सोनेके कारण अबतक कह नहीं सका। कुम्भकर्ण छः महीने सोकर इस समय जागा है। आप सब जानते हैं, कि राक्षसोंसे सेवित जनस्थानसे जिस जनकात्मजा सीताको मैं हरकर ले आया हूँ, उसके समान त्रैलोक्यमें अन्य स्त्री मुझे नहीं दिखाई पड़ती; परन्तु वह अलसगामिनी मेरी शय्यापर नहीं चढ़ना चाहती। वह तनुमध्या, पृथुश्रोणी, शरद्-चन्द्रमुखी, सौम्य स्वभाववाली मय-निर्मित मायाकेही समान है। मैं उसको देख वशीभूत होकर आतुर हो गया हूँ। मुझमें अब क्रोध और हर्ष समान होगए हैं तथा मैं दुर्बलभी होगया हूँ। नित्यके शोक सन्तापने मुझे अति व्यथितकर दिया है। सीताको यहाँ आये एक वर्ष होगया; पर उसने मेरी इच्छा न की। वह एकमात्र अपने भर्त्ता रामकाही मार्ग देख रही है—यही उसकी प्रतिज्ञा है। इधर मैं कामवशहो नितांत थकितहो गया हूँ। परन्तु आप लोग यह तो बतलाइये कि ये वानर इस अक्षोभ्य समुद्रको कैसे उतरेंगे तथा वे दोनों दशरथके पुत्रभी सागर कैसे पार करेंगे? अकेले बानरने आकर हमारा बड़ा अपमान किया है। इससे आप लोगोंके विचारमें जो आये वह कहिये। यद्यपि हमें मनुष्यसे भय नहीं हैं तथापि परामर्श करना चाहिये। उधर सुग्रीवादि बानरोंको साथ ले वे दोनों राजकुमार सीताका समाचार सुनकर समुद्रके उत्तर तटपर आगये हैं। पर मैं सीताको वापस न दूँगा। किन्तु उन दोनों राजकुमारोंको मार डालूँगा। इसमें जो सुन्दर न्याययुक्त बातहो वह विचारकर कहिये। रावणका ऐसा रोना सुन कुम्भकर्ण बड़ा क्रुद्धहो बोला—सीता-हरणके समय तुमने हमलोगोंसे क्यों नहीं पूछा। तभी इसका बिचार किया जाता। हे महाराज! आपके ये सभी कर्म अप्रतिम हैं। करनेसे पहले पूछते तो हम रोक देते। मन्त्रयुक्त राज्यकरने-वाला राजा कभी दुःखी नहीं होता। शास्त्र-विपरीत कर्म, उपाय सहित हों तो भी वे सब दूषितहो जाते हैं। तुमने बिना बिचारेही यह जो कार्य किया है, उसपर तुम्हें रामने मार नहीं डाला—यही बड़ी बात है। यद्यपि तुमने अच्छा काम नहीं किया है, तथापि मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार इस कामकी शान्ति करूँगा—चाहे वह तुम्हारा शत्रु इन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवन, कुबेर तथा वरुण के समानभी कोई क्यों न होगा; मैं उसे मार डालूँगा। मेरे शब्दसेतो इन्द्रभी

भयभीत होता है। मैं राम-लक्ष्मणको मार बानर-यूथपोंका भक्षण करलूँगा। सुखपूर्वक रमण करते हुए सुरा-पान करो। रामके मरतेही सीता सदैवके लिए तुम्हारी हो जायगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१२॥

तेरहवाँ सर्ग

विभीषणकी मन्त्रणाका निरादर

रावणको क्रुद्ध जान महाबली महापार्श्व मुहूर्त्तभर विचारकर रावणसे बोला—'जो मृग सर्प निषेधित वनमें जा मधु पाकर भी मधुपान नहीं करता, वह मूर्ख है। शत्रुसूदन! ईश्वर तो तुम हो। फिर तुम्हारा ईश्वर कौन है? इससे शत्रुओंके शिरपर पैर रखकर तुम सीताके साथ विहार करो। काम सिद्ध हो जानेपर तुमको कौन भय होगा? फिर प्राप्त-अप्राप्त काल सब सह लीजिएगा। कुम्भकर्ण और मेघनाद तो हमलोगोंके साथ इन्द्रको भी रोक सकते हैं। यदि राम आए भी तो यदि साम, दाम, भेदादिसे समझा देंगे या फिर दण्डही देंगे। किन्तु यहाँ जितने भी आपके शत्रु आवेंगे उन्हें निःसन्देह हमलोग वशमें कर लेंगे।' महापार्श्वके ऐसा कहनेपर रावण बोला—हे महापार्श्व! एक समय पुंजिकस्थली नामक अप्सरा जो आकाशमार्गसे ब्रह्माके स्थानको जा रही थी, उसे देखकर मैंने बलात् उसके साथ संभोग किया जिससे ब्रह्माने कुपित होकर मुझे यह शाप दे दिया है कि, जब तुम कभी किसी स्त्रीके साथ भोग करोगे तो तुम्हारा सिर फटकर सौ टुकड़े हो जायगा। इसी भयसे सीताको मैं अपनी शैय्यापर नहीं चढ़ाता। परन्तु राम मेरे बल और वेगको नहीं जानते इसीसे चढ़े चले आते हैं। रामने दो मुँहें सर्पोंके समान मेरे बाणोंको चलते नहीं देखा है, इसीसे युद्धमें सन्मुख आते हैं। परन्तु मैं अपनी विशाल सेना साथ ले रामकी सेनाका वैसा ही नाश कर दूँगा जैसे सूर्य नक्षत्रोंकी प्रभाको नष्टकर देता है। मैंने ही तो स्वबाहुबलसे इस कुबेर-पालित पुरीको कुबेरसे छीन लिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥१३॥

चौदहवाँ सर्ग

तथाच

निशाचरेन्द्र रावण और कुम्भकर्णकी गर्जन सुनकर विभीषणने ये

सार्थक और हितकारी वचन कहे—यह सीता तो पाँच शिरवाली स्त्री है। इसे किसने आपके गलेमें लपेट दिया है ? जब तक पर्वत-शिखरके समान ऊँचे वानर, जिनके दाँत और नखही आयुद्ध हैं, लंकापर आक्रमण नहीं करते तथा जब-तक श्रीरामचन्द्रके, वायुगामी, वज्रतुल्य बाण राक्षसोंके सिरोंतक नहीं पहुँचते; तबतक आप उन्हें सीता सौंप दें। राजन् ! कुम्भकर्ण, मेघनाद, महापार्श्व, महोदर तथा अतिकाय वे सब रामके समक्ष युद्धमें कोई भी स्थिर नहीं रह सकते। यदि सूर्य और पवन भी तुम्हारी रक्षा करना चाहें तो भी तुम रामसे जीते न बचोगे। प्रहस्तने कहा—क्यों; हम सबसे अवध्य हैं। फिर रामसे हमेशा भय होगा। प्रहस्तके ऐसे अहित वचन सुन विभीषण ने कहा—प्रहस्त ! राजा, महोदर, तुम, कुम्भकर्ण, जैसा अपना प्रयोजन रामके प्रति व्यक्त कर रहे हो, वैसा कर नहीं सकते। राम सर्वार्थवित हैं। उन्हें हम सब मार नहीं सकते। क्योंकि धर्म-प्रधान महारथी रामके आगे देवता भी मूढ़ हो सकते हैं। जबतक रामके हाथसे छूटे तीक्ष्ण बाण तुम्हारे शरीरको विदीर्णकर उस पार नहीं निकल गए हैं; तभीतक तुम ऐसी बातें करते हो। रावण, त्रिशिरा, कुम्भकर्णका पुत्र निकुम्भ तथा इन्द्रजीत भी पराक्रमी रामको युद्धमें नहीं परास्तकर सकते। देवान्तक, नारान्तक, अतिरथ, अतिकाय तथा अकम्पन आदि कोई भी युद्धमें रामके आगे टिक नहीं सकते। व्यसनानुरक्त राजा रावणकी सेवा शत्रुतुल्य जो मित्र बनकर करते हो, इससे राक्षसोंका नाश अवश्यम्भावी है। अब तुम सब मिलकर रामरूपी सागरमें निमग्न हो; पातालरूपी काकुस्थ मुखमें पतनशील रावणकी रक्षा करो। मेरा यही मत है कि रामको सीता दे दो—इसीमें लंका वासियोंका हित है। सच्चा मन्त्री वही है जो स्वपक्ष बुद्धिसे विचार स्वामीके हितकी बात कहता है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् युद्धकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

विभीषणका मेघनादको डाँटना

विभीषणके ऐसे वचनोंको सुन राक्षसोंके युत्थके प्रधान मेघनाद बोला—'हे कनिष्टतात ! आप यह अनर्थ वाक्य क्या कहते हैं ? इस राक्षसवंशमें

उत्पन्न कोई भी ऐसी बात नहीं कहेगा। हमलोगोंके समक्ष वे दोनों भाई मनुष्य कुछ नहीं हैं। उन्हें तो मैंही मार सकता हूँ। इन्द्रको पकड़कर मैंने उसे नत कर दिया और सब देवता भयभीत हो भाग गये। मैंने ऐरावतको भी मारा जो ऊर्ध्वश्वास लेता हुआ पृथ्वीमें गिर पड़ा और उसके दाँत निकाल सब देवताओंको भी मारा।' तेजस्वी मेघनादके वचन सुन विभीषणने कहा—हे तात! तुम अभी बालक हो, इसीसे परामर्श करनेमें तुमको निश्चय नहीं है, इसीसे अनर्थके वाक्य कहते हो। तुम मित्र नहीं शत्रु हो। हे बालक! तू जो मन्त्रणाके लिए मन्त्रियोंके मध्यमें आया है तो तू दुष्ट-मति मार डालने योग्य है। मेघनाद! तू बड़ा अविचारी, अल्पबुद्धि और मूर्ख है। क्योंकि लड़कपनकी ही बातें कहता है। भला रामके समक्ष युद्धमें कौन ठहर सकता है? हे राजन्! जानकी रामको देकर सुख पूर्वक अपनी इस लंकामें निवास कीजिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा पंचम् सुन्दर काण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त॥ १५॥

सोलहवाँ सर्ग

विभीषणके प्रति रावणके कठोर वाक्य

विभीषणके ये हित-वाक्य सुन रावण कठोर वाक्य बोला—क्रोधित शत्रु तथा विषधर सर्पके साथ भलेही रहे; किन्तु मित्रवत् आचरण न करनेवाले भाईके साथ न रहे। मैं सजातीय वन्धुओंका स्वभाव जानता हूँ कि वे जातिवालों पर दुःख पड़नेपर हर्षित होते हैं। राक्षस! जैसे गौओंमें हव्यकव्यादिक लिये दुग्ध, स्त्रियोंमें चञ्चलता तथा ब्राह्मणोंमें तपस्या होती है, ऐसेही जातिवाले लोगोंसे भय होता है। कहते हैं एकबार कुछ लोगोंके हाथमें फंदा लिए आते देखकर हाथियोंने कहा था कि 'हमें अग्नि, पाश या अन्य किसी दूसरे प्रकारके शस्त्रसे भय नहीं है, हमारे लिए तो अपनेही स्वार्थी जाति भाई भयंकर होते हैं। निःसन्देह येही हमारे बन्धनका उपाय बतलाते हैं। अतः हमतो सबसे अधिक जाति भयको दुःखदायी समझते हैं। तुमकोभी मेरा सत्कार, ऐश्वर्य तथा शत्रुओंके शिरपर स्थित होना नहीं सुहाता। सत्य है क्रूर पुरुषोंमें सौहृदता नहीं रहती। तुम अनार्य हो। जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर सूँडसे धूल उछालकर अपने शरीरको मैला कर लेता है, उसी

प्रकार दुर्जनोंकी मैत्री कलुषित होती है। हे निशाचर! यदि और कोई ऐसा कहता तो मैं अबतक उसे मार डालता, पर तुझको धिकार है। विभीषण ऐसे कठोर वचन सुन हाथमें गदा लिए अपने साथके चार राक्षसों सहित वहाँसे ऊपरको उछला और बड़ा क्रुद्ध हो राक्षससे बोला—राजन्! तुम हमारे बड़े भाई हो, इससे पिताके समान हो, जो चाहे कहो, पर धर्ममें स्थित न रहनेसे तुम्हारा यह कठोर वचन नहीं सह सकता। तुम कालके परावर्ती हो इसीसे जनहितकारी हित-वाक्य नहीं मानते हो। हे राजन्! संसारमें प्रियवादी मनुष्य तो बहुत मिलते हैं, परन्तु अप्रिय व पथ्य वचन कहने सुननेवाले लोग दुर्लभ हैं। मैं तुम्हारे नाशकी उपेक्षा नहीं करता, इसीसे हित-वाक्य कहा। मैं रामके हाथों मरा हुआ तुम्हें नहीं देखना चाहता था। परन्तु खेद है कि तुम कालके वश होरहे हो। मैंने जो कुछ कहा उसे क्षमा कीजिए। अब आप अपने इस पुरीकी रक्षा कीजिये। आपका कल्याण हो, मैं जाता हूँ, मेरे बिना अब आप सुखसे रहिये। मैं आपका हितेच्छु था, इसीसे आपको रोका। परन्तु आपको मेरे वचन अच्छे न लगे। गतायुष मनुष्य मित्रोंकी बात नहीं मानते।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् सुन्दर कांडका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥१६॥

सत्रहवाँ सर्ग

विभीषणका श्रीरामचन्द्रजीके पास आना

रावणसे ऐसे वचन कह विभीषण एक मुहूर्त्तमें ही राम-लक्ष्मणके समीप आ पहुँचे। उनको विद्युतके समान गगनमें स्थित, पृथ्वीपर बैठे हुए बानरोंने देखा। उनके चारों सेवक और विभीषण भी दिव्य एवं श्रेष्ठ आयुध धारण किए उनके साथ थे। उन पाँचों राक्षसोंको देख बानरों सहित सुग्रीव बड़ी बुद्धिमानीसे विचार करने लगे। उन्होंने थोड़ी देर सोचकर फिर हनुमान् आदि सब वानरोंसे कहा कि—'देखो, चार राक्षसोंको साथ लिए, यह सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित राक्षस निश्चयही हमें मारनेके लिए आ रहा है।' सुग्रीवकी यह बात सुनकर उन वानरोंने साल-वृक्ष और पर्वतकी शिलाएँ उठा लीं तथा इसप्रकार कहने लगे—'महाराज! इन दुष्टोंका संहार करनेके लिए आप शीघ्रही हमें आज्ञा दीजिए, जिससे ये मन्दमति मरकर ही पृथ्वीपर गिरें।'

जिस समय वानरगण परस्पर ऐसी वार्त्ता कर रहे थे, उस समय विभीषण समुद्रके उत्तरी तटपर आकर आकाशमें ही ठहर गए। फिर उन्होंने सुग्रीव तथा अन्य वानरोंको देखकर उच्च स्वरमें कहा—"रावण नामका जो महापापी राक्षसराज है, मैं उसीका छोटा भाई विभीषण हूँ। रावणने जटायुको मार जनस्थानसे सीताका हरण किया और उसीने असहाय और दीन जानकीको रोक रखा है। मैंने अनेक प्रकार युक्तियुक्त वाक्योंसे उसे बार-बार समझाया कि, आप श्रीरामजीको सीता लौटा दें—इसीमें भला है।' यद्यपि यह बात मैंने उसके हितके लिए कही थी, तथापि कालसे प्रेरित रावणने मेरे हितके वचन नहीं माना और मुझे कठोर वचन कह दासोंके समान अनादृत किया। अतएव मैं अपने पुत्र और स्त्रियोंको वहीं त्याग रामकी शरणमें आया हूँ। अतः आप महात्मा रामसे निवेदन कीजिए कि विभीषण आया है। यह सुनकर सुग्रीवने शीघ्रही श्रीरामके पास जाकर लक्ष्मणके समक्षही क्रुद्ध होकर कहा कि 'यह विभीषण पहले आपके शत्रु रावणकी सेनामें रहता था, अब हमलोगोंके समीप आया है। यह तो अवसर पाकर हमलोगोंको मदद ही देगा। इसकारण अब आप सावधान हो जावें। क्योंकि राक्षस स्वेच्छाचारी होते हैं, जब चाहते हैं अन्तर्द्धान हो जाते हैं। वे शूरवीर और मायावी तो होते ही हैं। इसलिए इनका विश्वास नहीं करना चाहिए। संभव है यह रावणका कोई गुप्त दूत हो। यदि ऐसा हुआ तो हमलोगोंमें प्रवेशकर यह निश्चयही भेद उत्पन्न कर देगा। फिर अवसर पाकर मार डालेगा। मित्रों, वनवासियों, स्वाधीन राजाओंकी तथा स्वयंकी नियुक्तिकी हुई सेना तो ग्रहण करने योग्य होती है; पर शत्रु-सैन्य त्याज्य है। यह आपके शत्रु राक्षसका भाई है, इसका विश्वास करना उचित नहीं। यह रावणका छोटा भाई विभीषण है जो चार राक्षसोंको साथ लिए आपकी शरणमें आया है। ज्ञात होता है कि रावणने इसे भेजा है। अतः इसे दण्ड दीजिए। आपको विश्वासमें डालकर, यह रावण-प्रेषित, आपको मारनेके लिए ही यहाँ आया है। इस विभीषणको इसके चारो मन्त्रियों सहित मार डालिए या कोई कठोर दण्ड दीजिए।' ऐसा कहकर सेनानायक सुग्रीव चुप हो गया। सुग्रीवके ऐसे वचन सुन राम समीपेस्थित हनुमानादि वानरोंसे बोले—'विभीषणके विषयमें सुग्रीवने

जो अत्यर्थयुक्त वचन कहा, वह तुम सबने भी सुना। पर बुद्धिमान्को उचित है कि जहाँ उसका अर्थ समझमें न आवे, वहाँ सबसे सम्मति ले लेवे। इसलिए तुम सब अपने विचार व्यक्त करो। रामजीके ऐसा कहनेपर सबने उनकी बड़ी प्रशंसाकी और अङ्गदने कहा कि विभीषणकी परीक्षा ली जाय, फिर आप अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे विचार कीजिए। जाम्बवान्‌ने कहा—हम सब कुसमय और कुदेशमें हैं। विभीषणसे शंकित रहें। मैन्दने कहा—विभीषणसे मधुर वचनोंमें पूछना चाहिए कि उसका अभिप्राय क्या है। दुष्ट हो तो त्याग और सज्जन हो तो ग्रहण किया जाय। तदनु मन्त्रिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने कहा कि 'मेरे लिए तो आपका गौरवही सर्वश्रेष्ठ है। इन सब मन्त्रियोंके कथनमें दोष है। क्योंकि परीक्षाका कोई प्रयोजन नहीं। बिना नियोजन कुछ ज्ञात नहीं होता और शीघ्र नियोग करना दोष है। हाँ, विभीषणके कुसमय आगमनकी एक बात है। आपका और रावणका कुछ गुण-दोष देख विचारकर ही विभीषण शीघ्र आए, यह सुकालही है। उनका यह कर्म उनकी बुद्धिके अनुसार ही है।'

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् युद्धकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

अठारहवाँ सर्ग

विभीषणकी परीक्षा

हनुमान्‌के इन वचनोंको सुनकर सर्वशास्त्र विशारद राम प्रसन्न हो लक्ष्मणसे बोले—मित्रभावसे आये विभीषणको मैं नहीं त्याग सकता। शरणागतकी रक्षा न करना निन्दनीय है। रामके ऐसे वाक्य सुन सुग्रीवने कहा—राक्षस विभीषण अच्छा ही हो, पर त्याज्य है। इसने कुसमयमें अपने उस भाईको छोड़ दिया है जिसके आप जैसे शत्रु शिरपर आ गए हैं। फिर यह कृतघ्न किसको न त्याग देगा? इससे सर्वप्रकारेण त्यागनीय है। वानरराजकी बात सुन, सबकी ओर देखते हुए, सत्पराक्रमी राम पुण्य लक्ष्मणसे कुछ मुस्काकर बोले—सुग्रीवका कथन सर्वथा ही शास्त्रसेवीका कथन है। मेरा विचार और भी सूक्ष्मतर है। ज्ञातिजन और निकट-सम्पर्की समय पाकर शत्रु हो जाते हैं। कष्ट पानेपर स्वामीको भी मार डालते हैं—विभीषणके आनका यही कारण है। राजा तो अपने निष्पाप कुलसे भी शंकित रहता

है। हम जानते हैं कि विभीषणको हमारे राज्यकी इच्छा नहीं है। कारण कि हम उसके कुलके नहीं हैं। राक्षसोंमें भी विवेकी होते हैं। इसलिए विभीषण ग्राह्य है। इसके सम्मिलनसे हमको हर्ष और राक्षसोंको भय होगा। सब भाई भरतके ही समान नहीं होते। मेरे तुल्य पिताका आज्ञाकारी पुत्र और आपके समान मित्र भी नहीं होते। रामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण सहित सुग्रीव उठ खड़े हुए और नम्रतासे बोले—क्षमाशीलोंमें श्रेष्ठ! इस राक्षसको तो रावणका भेजा हुआ ही समझिए। इसका निग्रह ही उचित है। सुग्रीवकी बात सुन विचारकर राम बोले—हे सुग्रीव! विभीषण दुष्ट हो या अदुष्ट; वह हमारा क्या अनिष्ट कर सकता है? हे हरीश्वर! चाहूँ तो मेरे अँगुली भ्रमा देने मात्रसे सम्पूर्ण पिशाच, दानव, यक्ष तथा राक्षसादिकों का संहार हो सकता है। सुना है कि कबूतरने शरणागत काथोंको अपना मांस देकर उसकी पूजाकी थी। जब कबूतरने अपने स्त्री-नाशक शत्रुकी रक्षाकी तो मेरे समान पुरुष क्यों न रक्षा करें? कण्डव ऋषिके धर्मात्मा कण्डुने भी एक कथा कही थी, वह सुनो! यदि शत्रु भी दीन हो घरमें आकर प्रार्थना करे तो उसे न मारे और प्राण देकर भी उनकी रक्षा करे। यदि वह अपनी शक्ति-भर उसकी रक्षा नहीं करता तो पाप लगता है, निन्दा होती है। ऐसा न करनेपर वह अरक्षित शत्रु उसका पुण्य लेकर चला जाता है। दुःखीकी रक्षा न करना दोष है। मैं तो धर्मिष्ठ कण्डवका वचन मानूँगा। यदि कोई एकबार भी दुःखित हो कहे कि मैं तुम्हारा हूँ, तो मैं उसे सब प्राणियोंसे अभयदान देता हूँ। हे सुग्रीव! मैंने अभयदान दिया, वह चाहे विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो, शीघ्रही मेरे समीप ले आओ।' रामके ऐसे वचन सुन सुग्रीव मित्रभावसे पूर्ण हो गए। उन्होंने कहा—हे राम! मुझे आपके ऐसे वचनोंपर आश्चर्य नहीं। आप सन्मार्गमें स्थित हैं। मुझे भी यही आत्मविश्वास है। अनुमान-भाव हनुमान्की परीक्षा से विभीषणका चित्त शुद्ध है। अतएव हे राघव! विभीषण भी हम सबके समान सखा हों। फिर तो सुग्रीवका ऐसा वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी विभीषणसे बड़े प्रेमसे मिले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका अठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१८॥

उन्नीसवाँ सर्ग

राम-विभीषण मयत्री

रामके अभयदानको देख, विभीषण प्रसन्न हो अपने साथियों सहित आकाशसे पृथ्वीपर उतर रामके पैरोंपर गिर पड़े और बोले कि 'मैं राक्षसेन्द्र रावणका छोटा भाई हूँ। उसने मेरा अनादर किया है, जिससे मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मैंने लंकाके अपने सब मित्रों और सब धनको त्याग दिया है। अब मेरा राज्य, प्राण और सुख सब आपहीके अधीन है। यह सुन राम बोले-' हे विभीषण! पहले राक्षसोंका बलाबल तो बतलाओ।' इसपर विभीषण रावणका सब बल कहने लगा। उसके वैसे सब वचन सुन श्रीराम बोले-विभीषण! संग्राममें रावणके जितने भी कर्म तुमने बताये, वे मुझे ज्ञात हैं। इससे मैं रावणको उसके मंत्री प्रहस्त और पुत्रों सहित मारकर तुम्हेंही लंकेश्वर बनाऊँगा ? वह कहींभी जाकर मुझसे जीता नहीं बचेगा। मैं अपने भाइयोंकी शपथ करके कहता हूँ कि, परिजनों सहित रावणको युद्ध में विना मारे अयोध्या न जाऊँगा। 'रामके ऐसे वचन सुन धर्मात्मा विभीषण ने कहा-म जबतक जीता रहूँगा; राक्षसोंका वध करने और लंकाको विध्वंस करनेमें आपकी सहायता करता रहूँगा। विभीषणके ऐसा कहतेही रामने उसे अपने छातीसे लगा लिया और लक्ष्मणसे कहा कि 'हे भाई! सागरका जल लाओ; उसीसे इस विभीषण का राज्याभिषेक करा दो।' लक्ष्मणने वैसाही किया। रामका ऐसी प्रसन्नता देख सब बानर भी किलकिलाने लगे तथा रामकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय हनुमान् और सुग्रीवने भी विभीषणसे समुद्र-तटका साधन पूछा तो विभीषणने कहा कि 'राम समुद्रकी शरणमें जावें। समुद्र उनकी जातिका है, इसलिए वह रामका कार्य अवश्य पूरा करेगा। विभीषणकी यह बात सुनकर सुग्रीव राम और लक्ष्मणके पास गये और विभीषणकी सम्मति कही। रामकोभी यह बात अच्छी लगी। उन्होंने लक्ष्मणसे अपनी सहमति प्रकटकी। फिर सुग्रीव और लक्ष्मणसे समुद्रमें सेतु बाँधनेका विचार व्यक्त किया। इस प्रकार ससैन्य सागर-तरणके लिए राम समुद्रके तटपर जा कुश बिछाकर बैठ गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पंचम् युद्धकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥१९॥

बीसवाँ सर्ग

रावणके दूतका रामकी सेना-निरीक्षण करना

उसी समय रावणके भेजे हुए शार्दूल नामक दूतने आकर सुग्रीव पालित वाहिनीका निरीक्षण करलिया और लंकामें जाकर रावणसे बोला—यह जो वानर सेनाका समूह लंकाके समक्ष पड़ा है, वह दूसरे समुद्रके ही समान है। राम-लक्ष्मण दोनों भाई जो कि बड़े ही स्वरूपवान् हैं और सीताके लिए आये हैं—तटपर स्थित है। सब सेना पड़ी है। उसका समाचार आप शीघ्र लें कि साम, दाम, भेद किस प्रकार कार्य सिद्ध होगा। शार्दूलका यह कथन सुन रावण भली भाँति विचारकर शुक नामक राक्षससे बोला—हे शुक! तुम हमारी ओरसे जाकर सुग्रीवसे मधुरवाणीमें यह कहो कि 'हे सुग्रीव! ऋक्षरजस नामक वानरराजके पुत्र तुम हमारे भाईके समान हो। मैं जो रामकी स्त्री हर लाया; इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ा है। तुम अपनी पुरीको लौट जाओ। क्योंकि इस लंकामें मनुष्य तो क्या; देवता गन्धर्वादिभी नहीं आ सकते। रावणके ऐसा कहनेपर शुक पक्षीका रूप धारणकर शीघ्रही आकाशको उड़ चला और समुद्रके ऊपर दूरतक जाकर, आकाशमें स्थित हो, सुग्रीवसे वह सब बात कहने लगा। उसी समय उछलकर उसे आकाशमें ही पकड़ लिया और उसे मारने तथा पंख उखाड़ने लगे। जब आकाशसे उसे पृथ्वीपर उतारा तब पीड़ित हो शुक बोला—'हे राम! दूत अबध्य है, अतः इन वानरोंको रोकिए।' इसपर रामने वानरोंको मना कर दिया। वानरोंसे छूट वह फिर आकाशमें उड़ गया और बोला कि, हे महाबल! अब बताओ कि, मैं रावणसे आपका क्या सन्देश कहूँगा? तब सुग्रीवने कहा—हे शुक! तुम रावणसे यह कहना कि, तुम हमारे मित्र आदि कुछ नहीं हो किन्तु रामके शत्रु होनेसे बालीके तुल्य वधके ही योग्य हो। चाहे देवता भी तुम्हारी रक्षा करें, चाहे अन्तर्धान हो पातालको भी चले जाओ या शंकरके चरणकमलमें लीन हो जाओ; पर अपने भाई और परिजनों सहित राम द्वारा अवश्य मारे जाओगे। तुमने वृद्ध जटायुको मारा है और सीता का हरण किया है। महात्मा रामको नहीं जानते, यह तुम्हारे प्राण हर लेंगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ सर्ग

रामका कुपित हो धनुषपर बाण चढ़ा उसे सोखनेका कार्य

इधर पहले तो राम कुश बिछाकर समुद्र-तटपर बैठे। फिर अपनी भुजा शिरके नीचे रख शयन करने लगे। उस समय उन्होंने कहा—या तो समुद्र-को उतारना होगा या उसका मरण ही होगा। ऐसी धारणाकर राम विना भोजन किए ही पृथ्वीपर लेट गये। इसीप्रकार नियमसे रामकी तीन रात्रि व्यतीत हो गई और उन्होंने समुद्रकी तीन दिन तक उपासनाकी। परन्तु जब रामकी इस यथार्थ पूजासे भी सागरने प्रसन्न हो उन्हें दर्शन नहीं दिया, तब राम अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने समीपमें बैठे हुए लक्ष्मणसे बोले–'लक्ष्मण! यह तो सागरका बड़ा अहङ्कार है जो वह दर्शन नहीं देता है। शान्ति और क्षमाप्रिय वचन तो सज्जनोंके गुण हैं। दुर्जनोंके समक्ष ऐसे कर्त्ताकी अस-मर्थता प्रकट होती है। हे लक्ष्मण! समझानेसे यश नहीं प्राप्त होता। तुम देखो कि मैं आजही अपने बाणोंसे समुद्रको व्यथित कर देता हूँ। समुद्रको मैं आजही युद्धकर सोख लेता हूँ! यह मुझे क्षमायुक्त देख असमर्थ समझता है। ऐसा समझनेवालेके ऊपर क्षमा करनेवालेको धिक्कार है। सामोपचार से समुद्रका दर्शन नहीं हो सकता। ईसलिए हे लक्ष्मण! मेरा धनुष बाण लाओ, वे समुद्रको सोख लेंगे और सेना उतर जायगी। समुद्रको कोई विचलित नहीं कर सकता; परन्तु आज; क्रोध करके मैं इसे क्षुब्ध कर दूँगा। इसमें सहस्रों तरंगें उठती रहती हैं, फिर भी वह सर्वदा स्वतटकी मर्यादामें स्थित रहता है। आज अपने बाणोंसे मैं इसकी मर्यादा नष्ट कर दूँगा।' यह कहकर रामने हाथमें धनुष ले लिया और रोषसे नेत्र फैलाकर युगान्ता-ग्निके समान हो गये। उन्होंने बल पूर्वकजो उस महाघोर धनुषको खींचा तो संसार कम्पित हो गया और उन्होंने वह उग्रबाण छोड़ही दिया जिसके वेगशाली गमनसे सागर भयंकर शब्द करने लगा। बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगीं। शंखोंक समूह सहित समुद्रसे धुआँ उठने लगा। सागर निवासी सब सर्प व्याकुल हो गये, मुखसे विष, छोड़ने लगे तथा पातालवासी दानव भी व्यथित हो गये! सहस्रों उच्छाल तरंगें उठने लगीं। उन तरङ्गोंके उठने और

गिरनेसे राक्षसादिक विकल हो गये तथा बड़े-बड़े घड़ियालोंके चलनेसे समुद्र में घोर शब्द होने लगा। तब उग्रतेजस्वी लक्ष्मणने शीघ्र साँस लेते हुए श्रीरामके अत्यंत ही निकट आकर धनुषको पकड़ लिया और कहा कि, ऐसा न कीजिए: वीरतम समुद्रका विनाश किए विनाही आपका कार्य हो जायगा। आप सरीखे पुरुष ऐसा क्रोध नहीं करते। उसी समय अन्तरिक्षमें गुप्तरूपसे स्थित ब्रह्मर्षियों और देवर्षियोंने बड़ा हाहाकार किया और उच्च-स्वरसे कहा कि यह क्या अनर्थ है? ऐसा न कीजिए, ऐसा न कीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥

बाईसवाँ सर्ग

अब रघुश्रेष्ठ रामने अति कठोर शब्दोंमें कहा कि "आज मैं पाताल-सहित इस विशाल सागरको सोख लूँगा! अब तेरे भीतर रहनेवाली सब जीव जल जायँगे और तुझमें धूल उड़ने लगेगी और मेरे वाण-वृष्टिसे तेरे जलके सूखने पर सब वानर पैदलही उस पार पहुँच जायँगे। तुम मेरा पौरुष नहीं जानते, इससे हे दानवालय! अब तू दुःखको प्राप्त होगा। ऐसा कह वाणोंको ब्रह्मास्त्र मन्त्रसे संयुक्त कर उसे धनुषपर चढ़ाकर रामने धनुष खींचा तो पृथ्वी व अन्तरिक्ष क्षुभित हो गया, पर्वत काँप उठे, सब लोकोंमें अन्धकार छा गया, दिशाएँ अन्धकारसे पूर्ण हो गइ और सभी सरोवर क्षुब्ध हो गए। आकाशमें उल्कापात हुआ। अन्तरिक्षमें वज्रपात होने लगे। प्रचण्ड वायुसे आकाशमें इधर-उधर मेघ उड़ने लगे। दृश्य अदृश्य सभी प्राणियोंमें भयानक शब्द होने लगा, जिनमेंसे कोई पकड़े गए, कोई सहम गए, कोई भयभीत हो गए और कोई व्यथित हो गए तथा किन्हींने हिलना डुलना स्थगित कर दिया। इसप्रकार जब रामके वाणोंसे सब प्राणियों, लहरों और राक्षसों सहित समुद्र व्यथित हो गया तो उसमें ऐसा वेग उत्पन्न हो गया कि वह अपना तट त्याग चार कोस तक आगे चला गया। पर उस उफनाते हुए समुद्रसे शत्रुहन्ता राम किंचित भी न हटे। फिर तो सागरके मध्यसे समुद्र स्वयंही सूर्यके समान प्रकट हुआ। वह वैदूर्यमणिके समान प्रकाशित स्न सोनेके भूषण धारण किए था। कमलदलके-से उसके नेत्र थे तथा वह सब प्रकारके पुष्पोंकी माला शिरपर धारण किए था। उसके उन भूषणोंमें

समुद्रोत्पन्न मणि जड़े थे और हिमालयके समान शोभित हो रहा था। उसको गंगा सिन्धु आदि नदियाँ चारों ओरसे घेरे थीं। वह रामके निकट आ हाथ जोड़कर बोला कि 'हे राम! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल अग्नि ये सब स्व-स्वभावमें स्थिर हैं और उसके प्रतिकूल कोई नहीं चलते। अगाध रहना मेरा स्वभाव है। यदि मैं थाहवाला हो जाऊँ तो मुझमें विकार उत्पन्न हो जाय। फिर भी मैं वह उपाय करूँगा कि जिसमें आप पार उतर जावें। हे राम! वानरोंके उतरनेके लिए मैं यह उत्तम मार्ग प्रशस्त कर दूँगा कि मेरे मकर प्रभृति जितने जल-पर प्राणी हैं ऊपर उठ जावेंगे और उन्हींपरसे बिना किसी वानरको आघात पहुँचाए वे सबको पारकर देंगे।' यह सुन रामने कहा—हे सागर! अब यह बताओ कि, यह धनुषपर चढ़ाया हुआ सुफल बाण कहाँ छोड़ूँ? यह सुन और उसे देखकर सागर रामसे बोला—हे राम! मेरे उत्तर तटपर एक द्रुम कुल्य नामक स्थान है, जहाँ बड़े पापी अभीरादि चोर रहते हैं और मेरा जल पीते हैं, जिनका स्पर्श मैं नहीं चाहता—आप इस बाणको वहीं छोड़िये। तब सागरके उस बताये स्थानपर रामने वह बाण छोड़ दिया। तबसे वह देश मरुकान्तार कहलाने लगा तथा जहाँ वह बाण गिरा था वह स्थान व्रण-कूप नामसे प्रसिद्ध हो गया। रामने उस मरुकान्तार देशको यह वर दिया कि इस देशमें घास बहुत हो तथा यहाँ रोग न उत्पन्न हों और फल, मूल, तेल, दुग्ध बहुत हों तथा औषधियाँ उत्पन्न होवें। रामके वरदानसे वह देश कल्याणप्रद हो गया। इसप्रकार जब रामके बाणसे उस देशके सब पदार्थ जल गये तब श्रीरामसे सागर बोला—हे सौम्य! आपके दलमें यह नल नामके वानर बड़े श्रीमान् और प्रीतिमान हैं। इनको विश्वकर्माका वर प्राप्त है। ये परम उत्साही मेरे ऊपर सेतुका निर्माण करें। ये अपने पिताके समान ही बड़े कुशल हैं। मैं इनका बनाया सेतु धारण करूँगा। ऐसा कह समुद्र अन्तर्हित हो गया। तब नलने डटकर रामसे कहा कि समुद्र सत्य कहता है। मैं इस बड़े चौड़े सागरमें सेतु बाँधूँगा। कृतघ्न मनुष्यको दण्ड देनाही उचित है। उसको समझाना तथा प्रसन्न करना उचित नहीं। इस सागरने रामके समझाने पर ध्यान नहीं दिया और दण्ड देनेको उद्यत होने पर पुल बँधवाकर मार्ग दिया मैं विश्वकर्माका औरस पुत्र हूँ। विश्वकर्माने मेरी माताको वर दिया

था कि तेरे मेरेही समान पुत्र होगा। बिना पूछे मैं स्वयं अपना गुण क्या कहूँ। मैं समुद्रमें अवश्य पुल बाँध सकता हूँ। हे वानरों ! आजही सेतु बाँधो। फिरतो रामकी आज्ञा होते ही असंख्य वानर चारों ओर दौड़ चले और पर्वतोंपरसे बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़-उखाड़कर सागर-तट पर खींच लाये। विविध प्रकारके वृक्षोंसे सागरको पाट दिया। हाथियोंके तुल्य कलोंके सहारे बहुतसे पर्वत और पाषाण भी उठा लाये जिनके गिरनेसे सागर उछलने लगा वानरोंके कूदनेसे वह विचलित हो गया। वानरोंने सौ योजनका लम्बा सीधा सूत पकड़ा। नल सागरमें सेतु बनाने लगे। रामाज्ञानुवर्त्ती सैकड़ों वानर काष्ठ और पर्वतोंसे, कोई दण्ड धारण करते और कोई अन्य वस्तुएँ ढूँढ़ते-इस प्रकार सेतु-रचना करने लगे। पाषाण और पर्वतोंके कँगूरे लिए वानर दानवोंके समान प्रतीत होते थे। पर्वतों तथा पत्थरोंके गिरनेसे समुद्रमें भयंकर शब्द होने लगा। हर्षित वानरोंने प्रथम दिन चौदह योजन सेतु-रचना की। दूसरे दिन बीस योजन सेतु बनाया। तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाईस योजनसे अधिक और पाँचवें दिन तेइस योजन सेतु-रचनाकर सागरके उस पार तक पूरा कर दिया। इसप्रकार नलने समुद्रमें सेत बाँध दिया। वह सेतु आकाशमें स्वातिपथके समान शोभित हुआ जिसे आकाश-वासी देवताओं गन्धर्वों और ऋषियोंने आकाशमें आकर वहींसे देखा और कहा कि इस दश योजन चौड़े और सौ योजन लम्बे सेतुकी रचनाकर नलने बड़ाही दुष्करकर्म किया है। फिर तो महाबली करोड़ों सहस्रों वानर सेतु बाँधते हुए सागरके उस पार चले गये और जहाँ अति विशाल सुन्दर समान भूमि थी, समुद्रके तट, उसपार विभीषण गदा लिए जा खड़े हुये। तब सुग्रीव रामसे बोले कि, अब आप हनुमान्‌की कमरपर और लक्ष्मण अङ्गदकी पीठपर सवार हों। क्योंकि यह समुद्र अति विशाल है। वे आप दोनों भाइयोंको आकाश मार्गसेही लेकर चले जावेंगे। फिरतो राम-लक्ष्मण हनुमान् और अङ्गदके ऊपर चढ़ तथा उन्हींके साथ सुग्रीवभी आकाश मार्गसे सेनाके आगे चले। कोई जलके ऊपर तैरते हुए, कोई सेतुके ऊपर होकर तथा कोई गरुड़ के समान आकाशमार्गसे चला। वानरोंके नादसे सागरमें बड़ा क्षय हुआ।

रामके साथ नल-निर्मित सेतु से, समस्त बानरी सेना, समुद्रके उसपार, दक्षिण-तटपर जा उतरी। राघवके इस दुष्कर कर्मको देख सिद्धों, चरणों एवं महर्षियों ने वहाँ आकर समुद्रके अति पवित्र जलसे पृथक-पृथक रूपसे उन्होंने रामका अभिषेक किया और अनेक आशीर्वाद दिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

तेईसवाँ सर्ग

रामका लक्ष्मणसे, उत्पन्न अपशकुनोंका वर्णन करना

इसके पश्चात् रामने वहाँ अनेक अपशकुन होते देख लक्ष्मणको आलिंगनकर कहा--'हे लक्ष्मण! शीघ्रही कोई अच्छा स्थान देख व्यूह बना सेनाका पड़ाव डाल दो क्योंकि यहाँ मुझे भयंकर भय निकट दृष्टि आता है। अब शीघ्रही बानरों और राक्षसोंका संग्राम होना ही चाहता है। क्योंकि वायु मलिन चलती है, पृथ्वीमें कम्पन है। पर्वतभी काँप रहे हैं और वृक्ष टूटकर गिर रहे हैं। मांसभक्षी जीवोंके कठोर शब्द होरहे हैं तथा बादलसे बड़े कठोर शब्दसे रक्त मिश्रित जल बरसता है। संध्या काल होनेसे यह और भी भयंकर होगई है तथा सूर्यसे आग निकलती है। मृग तथा पक्षिगण दुःखित होकर रुदन करते हैं। रात्रिमें चन्द्रमा निकलकरभी प्रकाश-क्षीण होरहा है तथा उसके सब किरण काले और लाल हो गए हैं। हे लक्ष्मण! सूर्यमें लघु लाल घेरा बन गया है और उसमें श्याम चिन्ह दृष्टि आते हैं। नक्षत्र भी धूम्राच्छन्न हो गये हैं। कौवे, बाज तथा नीच गीध सहसा घोंसलेसे गिर पड़ते हैं और गीदड़ियाँ अशुभ शब्द करती हैं। उन सब निमित्तोंसे यही ज्ञात होता है कि बानरों और राक्षसोंके हाथोंसे छूटे हुए शूल और खड्गों तथा मांस रक्तकी कीचड़से यह भूमि भर जायगी। इसलिए सब बानरोंको शीघ्रही लंकाके सम्मुख ले चलो।' ऐसा कहकर हाथमें धनुष ले श्रीराम लंकाकी ओर सबसे आगे चले। विभीषण औ सुग्रीव सहित सब बानर गर्जते हुए उनके साथ चले। यह देख राम बड़े प्रसन्न हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका तेईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ सर्ग

सुग्रीवका सैन्य-संगठन तथा शुक और रावणकी वार्ता

अब सुग्रीवने उस समुद्रवत् विशाल सेनाकी यथोचित व्यवस्था की।

उसके वेगसे पृथ्वी डगमगा रही थी। उस समय वानरोंको लंकामें राक्षसोंकी चिल्लाहटका शब्द सुनाई दिया, जो भेरी और मृदङ्गके शब्दोंसे मिलकर बड़ा ही गम्भीर और रोमाञ्चकारी हो रहा था। उसे सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा उसे न सह सकनेके कारण वे उससे भी बढ़कर कोलाहल करने लगे। राक्षसोंने गर्वीले वानरोंकी वह गर्जना सुनी, मानों आकाशमें मेघोंके शब्द हों। दशरथनन्दन श्रीरामने चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित लंकापुरीको देखकर लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! किंचित् लंकाकी ओर तो देखो जो आकाशको स्पर्शकर रही है। ज्ञात होता है कि विश्वकर्माने अपने मनसे ही इसे पर्वत-शिखरपर बसाया है। यह पुरी अनेक शतमंजिले भवनोंसे पूर्ण है। कुबेरके चत्ररथ-वनके समान अनेकों पुष्पित वर्णोंसे उसकी शोभा हो रही है, जिसमें अनेकों प्रकारके फूल-फल लगे हुए हैं।' लक्ष्मणसे ऐसा कहकर दशरथकुमार श्रीरामने युद्धके नियमानुसार सेनाका विभाग किया, जिसमेंसे थोड़ी-सी सेना पृथक करके उन्होंने आज्ञा दी कि नीलके सहित अङ्गद इसके हृदयके भागमें रहें, ऋषभ वानरी सेनाके दक्षिण भागमें रहें, गन्धमादन बाँयीं ओर रहें, मैं लक्ष्मणके सहित सावधानीसे सेनाके शिरोभागमें रहूंगा। जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी—ये तीनों प्रधान ऋक्ष सेनाके मध्य-भागकी रक्षा करें तथा कपिराज सुग्रीव सेनाके पृष्ठ भागकी रक्षा करें। इस प्रकार व्यूह-रचनाकर उन्होंने अपनी सेना समर-भूमिमें नियत की। वानर-वृन्द पर्वतोंके शिखरपर और बड़े-बड़े वृक्ष लेकर लंका ध्वंस करनेके लिए सन्नद्ध हो गए। इधर रामकी आज्ञासे छूटा हुआ शुक जो रावणके पास पहुँचा तो उसके पंख कटे हुए देखकर रावणने उससे उसका समाचार पूछा। पश्चात् भयसे उद्विग्न शुकने, रामकी विशाल वानरी सेनाका वर्णनकर यह व्यक्त किया कि, वे सीताके लिए समुद्रमें पुल बाँधकर पार उतर आए हैं और अब राक्षसोंका मानमर्दन करनेके लिए लंकाके तटपर स्थित हैं। ऋक्ष वानरों के सैन्ययुक्त लंकाके तटकी सब भूमि घिरी पड़ी है। अब या सीता उनको दे दीजिए या युद्ध कीजिए। यह सुन रोषसे रावणके नेत्र लाल हो गए। उसने कहा—यदि देवता, दानव, गन्धर्वभी युद्ध करें तो भी सीताको मैं नहीं दे सकता। मैं तो इसी प्रतीक्षामें हूँ कि मेरे बाण रामपर कब छूटेंगे। अङ्गोंमें

रुधिर लगे रामको वाणोंसे मारकर मैं कब भयभीत करूँगा ? मैं अपनी विशाल सेना लेकर रामकी सेनाको ध्वस्त कर दूँगा। राम नहीं जानते कि मेरा वेग समुद्र-सा तथा बल वायुका-सा है। मेरे तरकससे विषधर सर्पों जैसे वाणको युद्धमें चलते हुए रामने नहीं देखा है—इसीसे वह युद्ध करना चाहता है। राम मेरा युद्ध भी नहीं जानते, न उन्होंने मेरी धनुषरूपी वीणाकाही शब्द कभी सुना है—जब सेनारूप नदीमें स्नात बजाऊँगा तो समक्ष युद्धमें सहस्राक्ष इन्द्र, वरुण, यम अथवा कुबेरको भी स्थित रहना संभव नहीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ सर्ग

रामके समुद्र पार होनेपर रावणकी चिन्ता और शुक सारणको भेज सैन्य निरीक्षण करना

तदनन्तर जब सेना सहित राम समुद्र पार कर आए, तब रावण शुक सारण नामक अपने मन्त्रियोंसे बोला—रामने समुद्रमें पुल बाँधकर अपनी वानरी सेनाको पार उतार दिया—यह तो एक नवीन बात हुई। परन्तु मुझे इसका विश्वास नहीं होता। यदि यह सत्य है तो वानर सेनाकी अवश्य गणना करनी चाहिए। अतः तुम दोनों गुप्तरूपसे वानर सेनामें प्रवेशकर उनका प्रमाण, बल, मुख्य-मुख्य मन्त्रियों और नेताओंका वृतान्त, रामका विचार, वीर्य तथा लक्ष्मणकी सब बातें निश्चयात्मक ज्ञात करो। वानरोंका सेनापति कौन है—यह सब भली भाँति जानकर शीघ्र आओ। रावणकी ऐसी आज्ञा पाकर शुक सारण वानर वेष बना वानर-सेनामें प्रविष्ट हुए। पर वे अचिन्त्य लोमहर्षक वानरी सेनाकी गणना न कर सके। क्योंकि वह विविध स्थानोंमें फैली थी। वे दोनों राक्षस गुप्त रीतिसे निरीक्षण कर रहे थे कि विभीषण उन्हें पकड़ रामके पास लाए, और कहा कि, ये दोनों शुक-सारण रावणके मन्त्री हैं जो यहाँ गुप्तचर बनकर आए हैं। उन्हें देख राम हँसने लगे और बोले--यदि तुमने सब सैन्य तथा हमको देखभाल लिया हो या जैसी आज्ञा थी वैसा कर लिया हो तो अब स्वेच्छया चले जाओ। यदि कुछ देखनेमें शेष रहा हो तो विभीषण फिर दिखा दें। मरण या बन्दी होनेका भय न करो। क्योंकि शस्त्र-रहित मनुष्य और दूत मरने योग्य नहीं होता। हे विभीषण! अब इन्हें छोड़ दो। हे दूतो! लंकामें जाकर रावणसे

हृह देना कि जिस लंकाको पाकर तुमने सीताका हरण किया है. अब वह ब दिखाओ ! प्रातःही लंकापुरी और राक्षसोंकी समस्त सेना मेरे बानरोंसे ष्ट हुई देखोगे।' शुक सरदारसे ऐसा कह राम चुप होगये। उन दोनोंने रामकी जय हो' ऐसा कहा। फिर रावण के पास आकर बोले कि विभीषणने तो मको बथार्थ पकड़ लिया था, पर अमिततेजस्वी रामने हमें छुड़ा दिया, जहाँ कही स्थानपर चार बड़े ही तेजस्वी पुरुष बैठे थे। श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव। ये चारों इस लंकाको उखाड़कर अकलेही बहा सकते हैं। राम, क्ष्मण और सुग्रीवसे रक्षित वह वानर-सैन्य ऐसा दुर्द्धर्ष होगया है कि उसका वता और दैत्यभी प्रतिरोध नहीं कर सकते। अतः विशेषभाव त्याग आप मसे सख्य भावकर मैथिलीको लौटा दीजिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त॥ २५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

सारणका यह वचन सुन रावण उससे बोला—यदि देवता, गन्धर्व और दानवभी कहें तो मैं सीताको न लौटा दूँगा। ज्ञात होता है कि तुम्हें नरोंने बड़ा कष्ट दिया है, इसीसे तुम सीताको लौटा देनाही अच्छा समझते । पर ऐसा कौन है जो युद्धमें मुझे जीत सके। ऐसा कठोरवचन कह राक्षस-ज रावण अपने उच्च श्वेत प्रासादपर चढ़ गया जो कई ताल ऊँचा था। वह नर-सेनाको देखनेके लिए उन दूतों सहित वहाँसे समुद्र, पर्वत और बनोंकी र देखने लगा। उसने समस्त पृथ्वी वानरोंसे छायी हुई देखी जो बानरी ना अपार और असह्य थी। उसे देखकर रावणने पूछा—'इस सेनामें कौन-न बानर प्रधान हैं, कौन विशेष शूर हैं और कौन थलमें बढ़े-चढ़े हैं। ग्रीव किसकी बात बहुत सुनते हैं और कौन-कौन यूथपति हैं?' रावणके सा पूछनेपर सारण सबको दिखा दिखाकर कहने लगा—हे राक्षसेन्द्र ! यह वानर लंकाकी ओर मुख किये गर्जता हुआ बैठा है और जिसको चारों-रसे लाखों यूथप बानर घेरे हुए हैं तथा जिसके नादसे प्राकार, खाई, द्वार क लंका प्रतिहत हुई जाती है, वीर वानर नील है। यह वानरी सेनाका ध्यक्ष है और उसका अग्रणी है तथा जो बानर लंकाकी ओर देखकर र-बार जम्भा रहा है, आकारसे पर्वत शिखरके समान है और कमल केसर-

सी कान्ति है, जिसके शब्दसे चतुर्दिक शब्दित होरहा है—वह युवराज अङ्गद है। यह आपको युद्धके लिए आहूत कर रहा है। यह वालिका पुत्र सुग्रीव बड़ाही प्रिय है। यह रामके लिए बड़ा पराक्रम कर रहा है। इसीकी मन्त्रणा से हनुमान्ने जानकीको यहाँ आकर देखा था। अङ्गद सब वानरोंके यूथ लिए सामने चला आता है। पीछे नील नामक वानर विशाल सेना लिए स्थित है, जिसने समुद्रमें सेतु बाँधा है। इसी नलके पीछे सब वानर चलते हैं और यह जो चांदीके समान श्वेत रंगका श्वेत नामक बानर है—यह त्रिलोकीमें विख्यात् बड़ाही शीघ्रगात्री गोमती नदीके तटपर संरोचन पर्वतका राजा कुमुद है। यह एक लाख सेनाओंको लिए हर्ष सहित अलगही रहता है। इसके अतिरिक्त वह चण्ड नामक वानर है जो अपनी सेना सहित शीघ्रही लंकाको ध्वंस किया चाहता है। फिर यह जो कपिल वर्णका बानर है इसका नाम 'रम्भ' है। यह विन्ध्य नीलगिरिसह्य पर्वतपर रहता है। उसके साथ एक करोड़ तीस, प्रचण्ड बानर हैं। यह भी लंकाको मर्दन किया चाहता है। फिर वह वानर जो कान सिकोड़कर बार-बार जम्भा रहा है, बड़ाही निर्भय है। यह न मृत्युसे भय करता है, न सेनासे ही। इसका नाम 'शरभ' है। यह भी यूथप है। हे राजन्! इस बलवान् शरभके साथ एक लाख चालीस हजार विहारा नामके यूथप हैं। फिर यहजो आकाशको मेघके समान घेरे है, जिसका शब्द नगाड़ों-का-सा सुनाई देता है और जो सब बानरोंके मध्यमें गर्ज रहा है 'पनस' नामक सेनापति है। यह युद्धमें सर्वथाही असह्य है। इसके साथ एक लाख पचास हजार यूथप बानर रहते हैं। ऐसेही वह विनत नामक यूथप वेणा नदीपर रहता है जिसके पास एक लाख साठ हजार बानरोंकी सेना है। यह भी आपको युद्धके लिए आहूत कर रहा है। फिर वह क्रथ नामक बड़ाही अहंकारी बानर है जो गेरूके रंगका बड़ाही पुष्ट शरीरवाला है। ऐसेही वह 'गवय' भी बड़ा तेजस्वी है जो बार-बार अपनी ओर दौड़ता है। यह एक लाख सत्तर हजार बानरोंका स्वामी है। ये सभी यूथप बड़ेही दुःसर वीर हैं और इन सबकी गणना असंभव है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

इन सब यूथपोंको दिखाकर अब मैं आपको उन बानरोंको दिखाता हूँ
ो रामके लिए अपने प्राणोंकी मोह नहीं करते। उधर वह 'हर' नामका
ानर है, जिसकी पूँछपर लाल, पीले भूरे और श्वेत रंगके लंबे-लंबे चिकने
ाल हैं। इसके पीछे सुग्रीवके असंख्य सेवक लंकापर चढ़नेको सन्नद्ध हैं और
धूम्ररंगके जितनेभी दृष्टि आते हैं इन सबकीतो गणनाही नहीं हो सकती।
योंकि ये सब पर्वतों दिशाओं तथा नदियों में रहते हैं—ये सभी ऋक्ष
ापके समान हैं। इनके मध्यमें इनका राजा जोकि बड़ाही भयंकर है, सब
क्षोंका राजा है जिसका नाम धूम्र है—रहता है। इसके छोटे भाईका नाम
ाम्बवान् है। वह देखिए, वहाँ खड़ा है। यह रूपमें तो अपने भाईके ही तुल्य
, परन्तु बलमें उससे बहुत अधिक है। यह जाम्बवान् महा यूथपति है।
ुद्धमें बड़ा असहनशील है। इसने देवासुर संग्राममें इन्द्रकी बड़ी सहायताकी
ी। ये ऋक्ष लोग मृत्युसेभी नहीं डरते और पर्वतों परसे बड़ी शिलाएँ नीचे
कते हैं। ये सब जाम्बवान् केही समान हैं। वह देखिए दम्भ नामक ऋक्ष
जिसने इन्द्रकी सहायताके लिए अपनी विशाल सेना भेजी थी और वह
िसका शरीर एक योजनभर ऊँचा है, जिससे बढ़कर चौपायोंमें किसीका
प नहीं—यह बानरोंका पितामह सन्तादन नामक वह यूथप है जिसने इन्द्रके
ाथ युद्ध किया था; परन्तु हारा नहीं—यहभी यूथप हैं। यह गन्धर्व कन्यामें
ग्निसे उत्पन्न हुआ है। इस बानरोत्तमका नाम 'क्रथन' है, जो असंख्य
ानरोंको साथ लिए अपनीही सेना ले लंकाका मर्दन किया चाहता है। यह
ूथपति सब बानरोंका प्रेरक है जो बनके हाथियोंको भी वृक्षोंको तोड़-तोड़-
र घेरा करता है। यह गङ्गाके तटपर उशोरबीज नामक पर्वत तथा उत्तम
न्दराचल पर्वतपर विहार करता है। इसके साथ अहङ्कारित एक करोड़
ानर रहते हैं। फिर यह जो वायुसे उद्धूत मेघके समान चलता दिखाई देता
यह प्रमाथी नामक यूथप है और वह जो करोड़ों बानर सेतुबन्धके स्थानमें
ि आते हैं गोपुच्छ नामके बानर हैं, जिनका स्वामी गवाक्ष नामक यूथप
। ये सभी स्वपराक्रमसे लंकाका मर्दन किया चाहते हैं। फिर वह देखिए,
केशरी नामक ऐसा बानर-यूथपति है जो सुवर्णके पहाड़पर रहता है और

ऐसेही व्याघ्रोंके समान दुरासद सब अग्निवत् प्रदीप्त, भयंकर, मेघके समान गर्जन करनेवाले वहाँ और भी बहुतसे बानर एकत्र हैं, जिनमें सूर्यका उपस्थान करनेवाला वह शतबलि नामक यूथपति अपनीही सेनासे लंकाका मर्दन किया चाहते हैं। ये सभी बानर पराक्रमी रामके प्रियकारक और अन्य किसीपर दया नहीं करते। इस प्रकार गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील इन सबके साथ दश-दश करोड़ बानर रहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से बानर हैं जो विन्ध्य पर्वतपर-रहते हैं। ये सब बहुत हैं परन्तु लघुपराक्रम भी हैं इससे इन्द्रकी गणना नहीं हो सकती। अन्य सभी महापराक्रमी हैं और चाहें तो क्षणमात्रमें सम्पूर्ण पृथ्वीके पर्वतोंको तोड़ सकते हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२७॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

रावणसे, सारण द्वारा रामकी सेनाका वर्णन

सारणकी बात समाप्त होनेपर शुक रावणसे कहने लगा—'हे राजन्! जिन्हें आप गङ्गातटके वट और हिमालयके साल वृक्षोंके समान स्थित देखते हैं, ये सर्वदा किष्किन्धामें रहनेवाले सुग्रीवके मन्त्री हैं। ये वानर इच्छानुसार रूप धारणकर सकते हैं और देवता तथा गन्धर्वसे उत्पन्न हुए हैं। हे राजन्! संग्रामभूमिमें ये दैत्य और दानवके समान पराक्रमी हैं। इनमें देवताओंके समान रूपवान जिन दो बानरोंको आप बैठे देख रहे हैं, वे मैन्द और द्विविद नामके बानर हैं। युद्धमें इनकी समता करनेवाला कोई नहीं है। ये भी स्वपराक्रमसे लंका मर्दनको सन्नद्ध हैं। फिर वह जिसे मदान्ध हस्तीके समान आप देखते हैं, वह तो सागरको भी क्षुब्ध करसकता है। यह वही है जो लङ्कामें जानकीके और तुम्हारे पास आया था, इसे आप देखही चुके हैं। यही वह केसरी पुत्र हनुमान् है जिसने समुद्रका उल्लंघन किया है। यह जब बालकही था तो प्रातः उदित सूर्यको देख तीन हजार योजन ऊपरसे सूर्यको खींच लानेके लिए कूद गया था और यह अपने बलके अभिमान से उछला था। परन्तु सूर्यको तो न पकड़ सका और जिस गिरिपर सूर्य उदय होता है उसीपर गिर पड़ा था, जिससे इसकी ठुड्ढी कुछ टेढ़ी हो गई थी। जिससे यह हनुमान् कहलाया। इसके बल, रूप तथा

भावका वर्णन कौनकर सकता है। यह अपनेही पराक्रमसे लङ्काको विध्वंस रना चाहता है। मुझे इतनाही ज्ञात है, इससे अधिक इसके बलको म नहीं ानता, और जो इसके समीपमें कमलके समान नेत्रोंवाले साँवले वीर बैठे , वे इक्ष्वाकुवंशके अतिरथी हैं। इनका पुरुषार्थ सम्पूर्ण लोकोंमें प्रसिद्ध है। र्म इनसे कभी अलग नहीं होता। ये ब्रह्मास्त्र और वेदोंके ज्ञाता हैं, अपने णोंसे आकाश और पृथ्वीको विदीर्णकर सकते हैं। इनका क्रोध मृत्युके ान है तथा इन्हींकी पत्नी सीताको आप जनस्थानसे हरकर लाये हैं। यही श्रीराम हैं जो इस समय आपसे युद्ध करनेके लिये आये हैं। इनकी दाहिनी ोर लक्ष्मणजी हैं, जिनकी सुवर्णकी सी आभा है, चौड़ी छाती है, अरुण त्र और काली घुँघराली जटाएँ हैं। ये सर्वदा अपने भाईका प्रिय और तकरनेमें तत्पर रहते हैं, नीति और युद्धमें कुशल हैं तथा सम्पूर्ण शस्त्र-ारियोंमें हैं। ये रामके मानों दक्षिण हस्त हैं। ये रामके कार्यके लिये अपने ाणोंकी भी रक्षा नहीं करते और जो रामके बाँयीं ओर बैठे हैं वे राजा भीषण हैं। श्रीरामने इनको लङ्केश्वर बनाया है और जो सब सेनाके ध्यमें प्रबल बैठे दिखाई देते हैं, वे सब बानरोंके स्वामी सुग्रीव हैं। ये अपने स वानरोंकी अगणित सेना और विभीषण तथा अपने मन्त्रियोंको साथ ए अपने युद्धका आह्वान करते हैं। इस उपस्थित सेनाको देख आप ुके हाथों पराभूत न होकर विजयके लिए उत्कृष्ट उपाय करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध कांडका अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२८॥

उन्तीसवाँ सर्ग

गुप्तचरों द्वारा रावणका रामकी सेनादिका भेद लेना

इस प्रकार शुकके दिखानेसे रावणने समस्त बानर यूथपतियोंको देखा। ामकी दायीं ओर महाबली लक्ष्मण और बायीं ओर अपने भाई विभीषण ा समस्त बानरों के राजा सुग्रीव, अङ्गद, महाक्रमी हनुमान्, जाम्बवान्, य, कुमुद, नील, नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द और द्विविद-आदि बानर-ोंको देखकर रावणका हृदय कुछ उद्विग्न हो गया और उसे क्रोध आ ा। उसने शुक सारणको बहुत फटकारा जिससे उन्होंने विनीत होकर ुसकर लिया। तब उसने क्रोधसे किन्तु कुछ नम्र होकर कहाकि 'तुम

लोगोंको राजनीतिके अनुसार जीवनोपाय नहीं आता। राजा निग्रह औ अनुग्रहमें समर्थ होता है। तुम्हें व्यर्थही शत्रुकी प्रशंसा न करनी चाहिये तुम सबने आचार्य, गुरु और वृद्धोंकी सेवा व्यर्थहीकी; क्योंकि राजनीतिक जो सार है उसे तुम नहीं ग्रहण करसके। ऐसे मूर्ख मन्त्रियोंके रहते तो केवल सौभाग्यसे ही मैं अपना राज्य संचालितकर सका। तुम दोनों तत्क्षण मेरे पास अपना मुँह काला करके चले जाओ। मैं तुम्हारे उपकारोंको सोचकर र जाता हूँ, अन्यथा अभी मार डालता।' रावणके ऐसा कहने पर शुक औ सारण बहुत लज्जित हुए तथा जयजयकार द्वारा उसका अभिनन्दन करके व से प्रस्थान कर चले गये। फिर रावणने अपने निकट बैठे हुए राक्षस महोदर कहाकि, अन्य दूतोंको शीघ्र बुलाओ। राजाज्ञासे सब दूत वहाँ आये। राव उन दूतोंसे बोला—अब तुम लोग रामके मन्त्रियों तथा उनके साथी अन्य का अभिप्राय जाननेके लिये यहाँ से जाओ और गुप्तरूपसे देखो कि उनम क्या परामर्श चल रहा है, वे किस प्रकार शयन करते, कैसे जागते तथ आगे क्या करेंगे इत्यादि—सब जानकर शीघ्रही चले आना। फिर तो वे दू रावणकी प्रदक्षिणाकर जहाँ राम और लक्ष्मण थे वहाँ पहुँचे। वहाँ उन्हों छिपकर सुग्रीव, विभीषण सहित राम और लक्ष्मणको देखा। परन्तु उस समय उन राक्षसोंको विभीषणने देख लिया और उनमेंसे केवल शार्दूलक पकड़ लिया और कहाकि, यह बड़ा पापी है। यह सुन वानरोंने उसे बाँध लिय और रामके पास ले आये, परन्तु रामने उसे भी छुड़ा दिया। वह अन्य गुप्तचरोंके साथ सुवेल पर्वतके पास रामकी सेनाको उपस्थित देखकर रावणक पास पहुँचा और वहाँ जो कुछ समाचार था वर्णन किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२६॥

तीसवाँ सर्ग

गुप्तचर शार्दूलसे रावणकी बातचीत तथा रामकी सेनाका भेद ग्रहण

अब वे दूत सुवेल पर्वतके पास ससैन्य स्थित रामका समाचार कह लगे। तब दूतोंसे रामका आना सुन रावण कुछ व्याकुल हो शार्दूलस बोला कि, हे राक्षस ! तुम कुछ दुःखित विदित होते हो, क्या शत्रुओंके व में पड़ गये थे ? इसपर शार्दूलने विभीषण द्वारा अपने पकड़े जानेका स

माचार कह सुनाया। उसे सुन रावणने कहा—यदि समस्त संसारको और
भय उपस्थित हो तो भी सीताको न लौटाऊँगा। पर तुमने तो रामकी सब
ना देखी ही है। कहो, उसमें कौन वानर सबसे प्रसिद्ध है? शार्दूलने
हा—जाम्बवान् नामक वानर युद्धसे अति दुर्जय है। फिर हनुमान्को तो
ापने देखा ही है, जिस अकेलेने ही समस्त राक्षसोंका अपमान किया था।
से ही धर्म पुत्र सुषेण, धूम्र, केसरी, दधिमुख, सुमुख, दुर्मुख, अग्नि-पुत्र
ील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ तथा गन्धमादन ये सभी एक-
एक श्रेष्ठ और प्रसिद्ध हैं। इसप्रकार दश करोड़ बानर युद्धकी इच्छासे
हाँ आये हैं और जिन्होंने दूषण, खर और त्रिशराको मारा है, वे सिंह
राक्रमी दशरथ-पुत्र रामके गुण तो कोई कह ही नहीं सकता। धर्मात्मा
क्ष्मणभी ऐसे ही हैं कि जिनके समक्ष इन्द्र भी विजय नहीं पा सकते।
ार भाई विभीषणभी राम द्वारा लङ्काका राज्य पाकर उन्हींके हित-तत्पर हैं।
ह सब सेना सुबेल पर्वतपर पड़ी है। अब जो कुछ आप करना चाहें करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३०॥

इकतीसवाँ सर्ग

रावण द्वारा रामके कृत्रिम सिर और धनुषका सीताके समक्ष प्रदर्शन

इसप्रकार जब रावणसे उसके दूतोंने राम और उनकी सेनाका वृत्तान्त
र्णन किया तो रामको लंकाके समीप आया सुन वह उद्विग्न हो मन्त्रियोंसे
हा—'अब मन्त्रणाका समय उपस्थित है, सभी मन्त्री शीघ्र यहाँ आवें।'
सुन सब मन्त्रीगण वहाँ आए। रावण उनके साथ मन्त्रणा करने लगा।
कुछ योग्य था, उसपर विचार किया। फिर आमात्योंको विदाकर स्वस्थान
चला गया। पश्चात् विद्युजिह्व नामक राक्षसको साथले रावण सीताके
पहुँचा। वहाँ उसने विद्युजिह्वसे कहा कि हम दोनों मायासे सीताको
हित करें। तुम रामका मायामय शिर और धनुष वाण लाओ। विद्यु-
ह्वने स्वमायासे शिरादि बनाकर दिखा दिया। इससे रावण बड़ा प्रसन्न
गया और पुनः अशोकवाटिकामें सीताको देखने गया। वहाँ जानकी
मुख बैठी थीं। उन्हें एकमात्र श्रीरामका ही ध्यान था और उन्हें घेरकर
ासियाँ वहाँ बैठी हुई थीं। वहाँ जाकर रावणने धृष्टतापूर्वक अपना नाम

बतलाकर यह कहा कि, हे सीते ! तुम्हारा पति राम कि जिसके तुम आश्रि रहती हो और मेरी प्रार्थना नहीं मानती थीं, वह तो युद्धमें मारा गया। अ तुम्हारी सब आशाओंकी मूल ही नष्ट हो गयी। अब तो तुम दुखिनी मेरी भार्या बनोगी ? अब भी तो तुम इस मूढ़ पतिको त्यागो। मरे रामक क्या करोगी ? अब मेरी पटरानी बनो। हे मूढ़े ! हे पण्डितमानिनी, न मनोरथा सीते ! तुम अपने भर्त्ताका घोर बध सुनो। राम मुझे मारनेके लि सुग्रीवकी विशाल सेना ले सागर तटपर आए थे, वहाँ आते ही सूर्यास्त ह गया और सेना ठहराते अर्द्धरात्रि हो गयी—इसका समाचार पाकर मैंने अप सेनापति प्रहस्तके साथ विशाल सेना भेजी जिसने रात्रिमें ही मार डाला राम सो रहे थे, प्रहस्तने उनका शिर काट लिया, विभीषणको पकड़ लिया यह देख बची हुई सेना भाग निकली। सुग्रीवका भी गला काट तथा हनुमा की दाढ़ी राक्षसोंने नोच डाली और पुनः खड्गसे ये दोनों भी काट डा गए और पनस भी मरा पड़ा है। ऐसेही राक्षसोंने अङ्गदको काटकर खं खंडकर दिया। सब हाथियों और रथोंके नीचे अनेक बार पिस गए। य देखो, रक्त व धूलि लगा तुम्हारे पतिका कटा हुआ सिर है। यह क रावणने राक्षसियोंसे कहा कि विद्युजिह्वको जो युद्धसे रामका सिर लाया है बुला लाओ। विद्युजिह्व रामका सिर ले रावणके आगे खड़ा हुआ। राव ने कहा—इसे सीताके आगे करो। यह भलीभाँति देखले। विद्युजिह्वने व सिर सीताके आगे रख दिया और स्वयं शीघ्र ही अलक्षित हो गया। उसी समय रावणने रामका सुवर्ण-धनुष भी सीताके आगे फेंक दिया औ कहा, रात्रिमें प्रहस्त रामको मार कर यह लाया है। तू मेरे आधीन होजा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका इकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३१॥

बत्तीसवाँ सर्ग

रावण द्वारा रामके कृत्रिम सिरका सीताके समक्ष प्रदर्शन और सीताका शोक

सीता वह सिर और धनुष देख उसे रामका ही जान बड़ी दुःखित हु और रोकर कैकेयीकी निन्दा करने लगीं। फिर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गि पड़ी। एक मुहूर्त्त पश्चात् चैतन्य होनेपर वह सिर हाथमें ले विलाप करने लगीं। उन्होंने अनेक प्रकार अपनेको कुलनाशनी कहकर विलाप किया।

फिर रावणसे बोली–'रामके पश्चात् अब मुझको भी मार डालो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। हे रावण! इनके सिरमें मेरा सिर और अन्य सब अङ्गोंमें मेरे सब अङ्ग मिला दो' इसप्रकार बहुत विलाप करती हुई सीताने फिर पतिको और फिर धनुषको देखा। सीता ऐसे रोदन करही रही थीं कि उसी समय अनीकस्थ नामक राक्षसने आकर रावणसे कहा कि, सेनापति प्रहस्त आया है। वह सब मन्त्रियों सहित आपका दर्शन करना चाहता है और इसलिए आपको बुलानेके लिए मुझे यहाँ भेजा है। कुछ आवश्यक राज्य-कार्य है। आप उन लोगोंको देखिए। यह सुन रावण वहाँसे उन लोगों को देखने गया। वह आमात्यों सहित सभामें एकान्त बैठकर दूतोंके मुखोंसे रामका बल सुनकर विचार करने लगा। इधर रावणके जाते ही वह मायाका सिर व धनुष अदृश्य हो गया। रावण मन्त्रियोंके परामर्शसे जो करणीय विदित हुआ कहने लगा। फिर वह अपने मन्त्रियोंसे समयानुसार बोला–बहुत ही शीघ्र बिगुल बजवाकर सेना यहाँ बुलवाओ। पश्चात् सब ठीक है, ऐसा कहकर दूतोंने सब सेना एकत्र करायी और युद्धेच्छित अधिपतिको उसकी सूचना निवेदित की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ सर्ग

सरमाका सीताको समझाना

उसी समय सरमा नामकी राक्षसी जिसे रावणने अन्य राक्षसियों सहित सीताकी रक्षार्थ नियत किया था और जिससे सीताकी मित्रता हो गई थी, उसने दुःखसे भूमिमें पड़े सीताको देखकर इसप्रकार समझाना आरंभ किया कि 'हे देवि! रावणने जो तुमसे कहा और जो तुमने फिर रावणसे कहा, वह सब मैंने घने वनमें खड़ी हो सुन लिया। रावण यहाँ जिस लिए आया मैंने वह सब जान लिया है। श्रीरामके साथ उनके सोते रहनेपर भी उनसे कोई युद्ध नहीं कर सकता और न कोई उन्हें मार ही सकता है। वानरोंको भी इसप्रकार नहीं मार सकता। लक्ष्मण सहित राम तो स्वयंही शत्रुओंके विध्वंसक हैं। हे सीते! राम मारे नहीं गए हैं। दुष्ट रावणने तुमसे यह सब कपट किया है। तुम्हारा सब शोक दूर हो गया। निश्चयही अब तुम्हें लक्ष्मी प्राप्त

होंगी। क्योंकि राम वानरोंकी सेना लेकर सागर उतर आए। मैंने स्वयं वहाँ जाकर लक्ष्मण और श्रीरामको देखा है। अपने बहुत-से दूतों द्वारा रावणने भी यह समाचार प्राप्त किया है। अब वह अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें मन्त्रियोंसे परामर्शमें लगा है।' इसप्रकार सरमा सीतासे कह ही रही थी कि युद्धके लिए उद्योग करते हुए रावणकी सेनाके नगाड़े और भेरीका विशाल शब्द सुनाई दिया। उसे सुन सरमा बोली—सीते! यह सैन्य-रचनाका नगाड़ा तथा भेरी बजती है, उसे सुनो। हाथी, घोड़े सज रहे हैं सहस्रों आरोही भाले बर्छियाँ लिए जाते दिखाई देते हैं। समुद्रके वेगके समान तथा नदीके प्रवाहके समान सड़कोंपर असंख्य सेना चली जा रही है, कहीं मार्ग नहीं मिलता है। राक्षसों की इस भीड़को देखते ही रोमाञ्च होता है। परन्तु तुमपर तो शोभा छा गई और राक्षसोंपर भय आ गया। अब अचिंत्य पराक्रमी और जितक्रोधी राम रणमें रावणको मार तुम्हें शीघ्रही प्राप्त होंगे! वे लक्ष्मण सहित ऐसा विक्रम करेंगे जैसे विष्णुके साथ इन्द्रने दैत्योंपर किया था। हे सीते! अब राक्षसोंको मार, आगत रामकी गोदीमें बैठी हुई तुमको हम शीघ्र देखेंगी। हे जानकि! अब रामके विशाल वक्षस्थलसे युक्त, उनसे प्राप्त होते समय, तुम आनन्दाश्रु प्रवाहित करोगी। हे सीते! रावणको युद्धमें मार प्रसन्न राम तुम्हारे सहित शीघ्रही सुखी होंगे। इसलिए पर्वत-श्रेष्ठ मेरुके चारों ओर भ्रमण करनेवाले सूर्यके शरण जा; क्योंकि वे ही सब प्रजाजनोंके उत्पत्ति स्थान हैं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ सर्ग

सरमाका सीताको समझाना

इसप्रकार रावणके वाक्योंसे मोहित, सीताको सरमाने, मधुर वचनोंसे प्रसन्न किया। फिर समयको जाननेवाली सरमाने हँसकर कहा—सीते! मैं रामके पास जा उनसे तुम्हारा कुशल मंगल कह फिर लौट सकती हूँ। मेरे समान आकाशमें वायु और गरुणभी नहीं जा सकता। तब सीता मधुर वचनोंमें सरमासे बोली—अवश्य, मैं जानती हूँ कि तुम आकाश और पातालमें भी जा सकती हो और मेरे लिए जो कोई न कर सके वह तुम कर सकती हो। इसलिए तुम जाकर देख आओ कि रावण क्या कर रहा है। क्योंकि वह

ायावी और क्रूर है तथा मुझे मोहित किया करता है।' ऐसा कहती सीताका अश्रुओंसे भींगा मुख पोंछती हुई सरमा बोली—तुम चुप रहो, मैं अभी ाती हूँ। यह कह सरमा रावणकी मन्त्रियोंसे हो रही वार्त्ता सुननेके लिए ली गई और उसका सब अभिप्राय जानकर शीघ्रही लौट आई, यहाँ सीता ी उसकी बाट जोह रही थीं। सरमाके लौटनेपर सीता उससे उठकर मिलीं। मााचार पूछा! सरभाने कहा कि, रावणकी माता और मन्त्रियोंने तुम्हारे ्यागके विषयमें उससे बहुत कहा है। परन्तु वह तुमको लौटाना नहीं ाहता। जब तक वह समरमें मारा नहीं जायगा, तुमको नहीं छोड़ सकता। सकी यह बुद्धि मृत्युके लोभसे ही उपस्थित है। हे श्यामनेत्री! अब रावण हित सब राक्षसोंका संहार होगा और रामचन्द्रजी अपने तीक्ष्ण वाणोंसे मरमें रावणको मार तुमको अयोध्या ले जायँगे। सरमा यह कहही रही थी के भेरी और शंखके शब्दोंसे मिला हुआ सैनिकोंका शब्द सुनाई दिया। ससे समस्त पृथ्वी काँप उठी। वानर-सैन्योंकी वैसी गर्जना सुनकर लंकामें ाक्षसराज रावणकी सेना निस्तेज हो गई। अब रावण अपने जीवनसे िराश हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३४॥

पैंतीसवाँ सर्ग

माल्यवान्‌का रावणसे उसके दुष्कर्म कहना

तब उन भेरी और शंखोंका शब्द सुनतेही महाबाहु राम युद्धके लिए ्यत हुए। इधर उस निनादको सुन रावण मुहूर्त भर विचार आमात्योंकी ोर देख, सबको समीप बुला सभाको गुञ्जायमान करता हुआ, मन्त्रियोंकी ्तुति तथा रामकी निन्दा करता हुआ, सारे जगतको संताप देनेवाला क्रूर ्भाव रावण बोला—रामके समुद्र पारकर आने तथा जैसा आप सबने कहा नके पराक्रमको मैंने सुना और आप सत्पराक्रमियोंको भी मैं जानता हूँ। रन्तु यह कहिए कि, रामके पराक्रमको सुनकर भी आपलोग मौन क्यों हैं? ह सुनकर बुद्धिमान् माल्यवान् बोला—नीतिमान राजाही दीर्घकाल तक ेश्वर्य भोगता है। यथावसर शत्रुओंसे संधि या युद्ध स्वपक्षको वृद्धिकर होता ै। मुझे तो रामके साथ आपकी सन्धिही सुखद प्रतीत होती है। आप

सीता रामको लौटा दीजिए। उनके साथ बिग्रह उचित नहीं। धर्म देवताओंके पक्षमें और अधर्म दैत्योंके पक्षमें है। सत्ययुगमें धर्म अधर्मको ग्रस लेता है और कलियुगमें अधर्म धर्मको ग्रसता है। आपने धर्मका नाशकर अधर्मको ग्रहण किया है। तुम्हारे प्रमादसे बढ़ा अधर्मरूप सर्प अब तुम्हें ग्रस लिया है जिससे देवपक्षकी वृद्धि हुई है। तुमने ऋषियोंको बड़ा कष्ट दिया, बड़ा अनर्थ किया। उसका प्रभाव दुर्द्धर्ष है। क्योंकि वे लोग तपसेही अपना जीवन व्यतीत करते हैं; वे लोग यज्ञोंसेही सर्वदा ईशोपासना करते हैं। वेदपाठी हैं। राक्षसोंने उनलोगोंका अपमान किया है। अब यही महाधूम्र राक्षसोंके तेजको दशोंदिशाओंसे आवृत्तकर लिया है। उनकी तीव्र तपस्या राक्षसोंको जला रही है। तुमने देवताओं और यज्ञोंसे अमरत्व पाया है। पर यहाँ तो मनुष्य वानर और ऋक्ष आए हैं। घोर उत्पात दृष्टिआता है। राक्षसोंका विनाश प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। स्वप्नोंमें पीले दाँतवाली स्त्रियाँ गृह–स्थित वस्तुओंसे हँस-हँसकर बातें करती हैं। इस प्रकार राक्षस माल्यवान्‌ने राक्षसाधिप रावणसे बहुतसे होनेवाले अपशकुनों और दुःखोंका वर्णन किया। उसे सुनकर-समझकर अतुल सामर्थवान् रावण राक्षसोंके मध्यमें मौन होकर बैठ गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३५॥

छत्तीसवाँ सर्ग

रावणका माल्यवान्‌के हित वचनका अनादर

माल्यवान्‌का ये हित वाक्यभी रावणको असह्य हुआ, क्योंकि वह काल के वशीभूत होगया था। वह क्रोधितहो नेत्र घुमा माल्यवान्‌से बोला–'तुमनेजो यह अहित और कठोर बातें कहीं वह मैंने नहीं ग्रहण की। तुमने मनुष्य रामको समर्थ कैसे समझा, जिसने पिताके निकाल देनेपर बानरोंकी शरण ली। राक्षसोंका स्वामी, और देवताओंको भयप्रद मुझे क्या तुमने हीन समझ लिया है? ये जो कठोर वचन तुमने मुझसे कहे हैं वे शत्रुतासे, शत्रुके पक्षपातसे या मुझे उत्साह देनेके लिए कहे हैं। मैं समझता हूँ कि यह तुमने मेरे उत्साहवर्द्धनके लिए ही कहा है। सीताको वनसे लाकर अब भयसे मैं उसे कैसे लौटा दूँ। अब इन असंख्य बानरों सहित सुग्रीव-लक्ष्मण और रामको

तुम मेरे हाथों मारा गया देखोगे। रावणको किससे भय है? चाहे मेरे दो खण्ड हो जावें, पर मैं किसीसे नत होकर नहीं चलूँगा। रामने समुद्रमें प्रथम पुल बाँधा तो इसमें आश्चर्यकी बात क्या है? राम यहाँसे जीते न लौटेंगे।' रावणको क्रुद्ध जान माल्यवान् कुछ उत्तर न दे सका और रावणकी 'जय' बोलकर आज्ञा पा घरको चला गया। रावण आमात्योंसे परामर्श ले सब ओरसे लंकाको रक्षित करने लगा। पूर्व द्वारपर प्रहस्तको, दक्षिणपर महापार्श्व और महोदरको, पश्चिम द्वारपर अपने पुत्र मेघनादको रहनेकी आज्ञा दी और उत्तर द्वारपर शुक और सारण नामक मन्त्रियोंको नियतकर बोला कि इसी ओर मैं रहूँगा। लंकाके मध्यमें जहाँ सब सेना थी वहाँ विरूपाक्षको नियतकर रावण सब मन्त्रियोंसे आशीर्वादात्मक जय सूचक अभिवादन ले, सर्व समृद्ध तथा सुरक्षित अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

इधर श्रीरामचन्द्र, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान, विभीषण, अङ्गद आदि वानरों और भाई लक्ष्मणको एकत्रकर विचार करने लगे कि रावण-पालित इस दुर्जय लङ्कापर विजय कैसे प्राप्त की जाय? तब विभीषणने कहा—अनल, पनस, सम्पाति और प्रभाति ये हमारे मित्र अभी ही लङ्कामें होकर फिर यहाँ लौटे हैं, जो यहाँसे पक्षियोंका रूप धारण कर गए थे। रावणने जो युद्धार्थ विधान किया है, वह सब इन्होंने देख लिया है। रावण नगरके द्वारपर स्थित है। विरूपाक्ष सेनाके मध्यमें स्थित है। दश हजार हाथी, दश हजार रथ, बीस हजार घोड़े और एक करोड़से अधिक बड़े ही क्रूर बलवान् राक्षस रावणके साथ नित्य रहते हैं, जिनका लाखों करोड़ों परिवार है और जो सब युद्धके समय एकत्र हो जाते हैं। यह देखिए, ये अनल आदि यहाँ बैठे हैं। जब रावणने कुबेरसे युद्ध किया था, तब उसके ही समान पराक्रमी निशाचर उसके साथ थे। यह सुन आप क्रोध न कीजिएगा। क्योंकि मैं आपको भयभीत नहीं करता हूँ। आप तो देवताओंको भी दण्ड दे सकते हैं। अतः आप अपनी सेनाको व्यूह-बद्धकर रावणको पूर्णतः मन्थन करेंगे।' विभीषणसे यह सुनकर श्रीरामने वानर नीलके साथ बहुत-से वानर कर उन्हें लङ्काके

पूर्व द्वारपर प्रहस्तसे युद्ध करनेको नियत कर दिया, कहा कि कुमार अङ्गद अपनी विशाल सेनाके साथ दक्षिण द्वारपर और पवनपुत्र हनुमान् पश्चिम द्वारपर और मैं स्वयं उत्तर द्वारपर मदान्ध रावणको मारनेके लिए जाऊँगा। मैं लक्ष्मणको साथ लेकर सीधे वहाँ पहुँचूँगा कि जहाँ ससैन्य रावण खड़ा होगा और सुग्रीव, जाम्बवान् तथा विभीषण ये तीनों सैन्य-व्यूहकी रक्षा करेंगे। युद्धमें कोई भी वानर मनुष्यका रूप न धारण करें। क्योंकि ऐसा करनेसे अपने और परायेका ज्ञान न रहेगा। हम सात व्यक्ति ही मनुष्य रूपमें शत्रुओंसे युद्ध करेंगे। लक्ष्मण सहित मैं तथा मेरे सखा विभीषण और चारों मन्त्रिगण। ऐसा कह विभीषणको साथ ले राम सुवेल पर्वतपर चढ़ गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

अड़तीसवाँ सर्ग

सुबेल पर्वतपर चढ़कर लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषणको साथ लिए रामने वहाँ रात्रि व्यतीत करनेकी इच्छाकी। उनके साथके वायुवेग-गामी सब वानरभी पर्वतपर चढ़गए। पर्वतपर चढ़कर उन सबने त्रिकूट-शिखरपर स्थित हो वहाँसे द्वार-प्रकार युक्त सुन्दर लंकापुरीका निरीक्षणकिया। वानरोंने देखाकि सम्पूर्ण लंका राक्षसोंसे पूर्ण है और वे सब युद्धोत्सुक हो रहे हैं। फिरतो यह देखते ही सब बानरोंने बड़ा शब्द किया। इतनेमें संध्या हो गई तथा पूर्णचन्द्रसे आलोकित रात्रिका आगमन हुआ। फिर तो लक्ष्मण तथा यूथपतियों सहित श्रीरामने सुखपूर्वक सुवेल पर्वतपर निवास किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवाँ सर्ग

लंकाका वर्णन

इसप्रकार वह रात्रि बानर-सेनापतियोंने सुवेलपर ही व्यतीतकी और लंकाके बन उपवनोंको भी देखा। नन्दनवनके तुल्य लंका बड़ी ही मनोहारिणी और रमणीय थी। फिर तो कुछ बानर वीर उसमें जा पहुँचे। तब उन उपवनों में वानरोंके प्रवेशसे पुष्पोंके संसर्गसे वहाँ बड़ीही सुगन्धित वायु चलने लगी। फिर बानर-वीरोंके युत्थसे निकलकर कुछ यूथपति सुग्रींवकी आज्ञासे

लंकामें भी चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने उस बड़े ऊँचे पुष्पोंयुक्त त्रिकूटाचलका शिखर देखा, जो सौ योजन बिस्तृत था और जिस चोटीपर बसी लंकामें मनुष्य नहीं पहुँच सकते थे। वह पुरी दस योजन लम्बी और बीस योजन चौड़ी थी, जिसके श्वेत मेघोंके समान उच्च गोपुर थे तथा वह सुवर्ण और चाँदीके परकोटेसे सुशोभित थी। उसमें बड़ेही उच्च और विशाल भवन तथा देवालय थे तथा उसके राजमहलमें तो एक सहस्र स्तंभ लगे हुए थे, तथा वह गगनचुम्बी कैलास-शिखरोपम था। रावणका चैत्य प्रासाद नगरका भूषणरूप था। सैकड़ों राक्षस उसकी रक्षामें नियत थे। सर्व-पदार्थ-सम्पन्न पूर्ण पुरी लंकाको देख राम आश्चर्य-चकित हो गये। वह रत्नोंसे पूर्ण, उपजीविकाके अनेक साधनोंसे सम्पन्न-प्रसाद पंक्तियोंसे भूषित तथा विशाल द्वारों और सैन्य संयुक्त थी। ऐसी लंकाको रामने देखा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३९॥

चालीसवाँ सर्ग

उसी समय उस लंकाके गोपुरपर खड़ा रावण दिखाई पड़ा। वह शिरपर छत्र लगाए, चन्दन-चर्चित और रक्त आभूषण धारण किए था। उसपर चँवर हो रहा था। वह काले बादलके से रंगका स्वर्ण-जटित वस्त्र धारण किये, ऐरावत हाथीके दाँतोंके क्षतसे छाती युक्त, रक्त वस्त्रधारी और संध्याकालीन मेघ-राशिके सदृश शोभायमान हो रहा था। उसे राम और सभी वानरगण देखने लगे। उसी समय परम पराक्रमी बल-गर्वित सुग्रीव गिरिसे उठकर, उस गोपुरपर कि जहाँ रावण था, ऐसा कूदा कि ठीक उसके समक्ष जा खड़ा हुआ और उसे तुच्छ समझकर निर्भयतासे बोला कि—अरे राक्षस! मैं श्रीरामचन्द्रका मित्र और अनुचर हूँ। अब मुझसे तू जीवित नहीं बच सकता। ऐसा कह उसके शिरसे मुकुट उतार पृथ्वीमें फेंक दिया। सुग्रीवको ऐसा कर्म करते देख रावण बोला—'अरे सुग्रीव! तू जबतक मेरे सामने नहीं आया था तभीतक सुग्रीव (सुन्दरगर्दनवाला) था, अब तो तू ग्रीवाहीन हो जायगा।' यह कहकर रावणने अपनी भुजाओंसे उठाकर सुग्रीवको पृथ्वीपर दे मारा। वानरराज सुग्रीवने भी कंदुककी समान उछलकर रावणको पृथ्वीपर दे पटका। दोनोंके शरीरपर स्वेद-कण छा गए, दोनों

रक्त-रञ्जित हो गए। फिर तो वे एक दूसरेको मारते-पीटते, युद्ध करने लगे। लंकाके आगे वेदीपर दोनों बहुत देर तक द्वन्द युद्ध करते रहे। एकने दूसरे को दबाया और पुनः बड़े बलसे गुत्थम गुत्थमा हो वे दोनों लंकाकी खाईमें जा गिरे। दोनोंही युद्ध-विद्यामें कुशल थे, इसलिए शीघ्रही खाईसे निकल पुनः परस्पर युद्ध करते, मारते, मार खाते, भूमिपर गिरते और फिर उठकर विलम्बतक लड़तेही रहे। कोई भी वीर शीघ्र न थका। बहुत विलम्बतक युद्धकी विविध कलाओंसे दोनोंने एक दूसरेपर प्रहार किया। परन्तु जब कोई श्रमित होता हुआ न दिखाई दिया तो रावण अपनी माया दिखानेको उद्यत हुआ। वानरराज सुग्रीव यह जान गए। अतः वह रावणको वहीं त्याग, वहाँसे आकाशको उड़ चले। सुग्रीवके इस धोखेसे चकित रावण वहीं खड़ा रहा। सुग्रीवको श्रेष्ठ-संग्रामकी कीर्ति प्राप्त हुई। वह रावणको युद्धमें पूर्णतया श्रमितकर आकाश मार्गसे तत्क्षणही रामके पास आ पहुँचे। उन्होंने रामका हर्ष-वर्द्धन किया। वानरोंसे संपूज्य सुग्रीव अपनी सेनामें आ गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

एकतालीसवाँ सर्ग

तब सुग्रीवको देख, राम उनका आलिङ्गनकर बोले—'सुग्रीव ! मुझसे विना विचार किए यह जो साहसका कार्य तुमने किया, इसप्रकारका साहस राजालोग नहीं करते। तुमने तो विभीषण सहित ससैन्य मुझको बड़े संशयमें डाल दिया था। हे वीर ! अब इसप्रकारका साहस कभी न करना। यदि तुम्हारा अपमान हो गया तो फिर सीतासे ही मेरा क्या प्रयोजन है ? अथवा भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नके ही शरीरसे क्या ? यद्यपि मैं तुम्हारे बलको जानता था। परन्तु जब तुम शीघ्र नहीं आए तो मैंने निश्चय कर लिया कि अब ससैन्य रावणको उसके पुत्रों सहित मारकर विभीषणका राजतिलक कर, भरतको अयोध्याका राज दे मैं भी तुम्हारे वियोगसे अपना शरीर त्याग दूँगा।' तब रामको ऐसा कहते देख सुग्रीवने रामसे कहा—हे राम ! आपकी भार्याके हर्त्ता रावणको देखकर मैं शान्त कैसे रहता ? यह सुन रामने वीर सुग्रीवकी प्रशंसा की और लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! अब कहीं जल तथा फल युक्त वन देखकर सेनाको ठहराओ। लोकनाशक भयंकर भय

स्थित हो रहा है। अब ऋक्षों, वानरों और राक्षसोंका नाश होने ही वाला है। इसलिए शीघ्रही दुर्द्धर्ष लंकाको घेरकर आक्रमण करो।' लक्ष्मणसे इसप्रकार कहते हुए महाबली राम उस पर्वत से नीचे उतरे। पर्वतसे उतर रामने अपनी सेनाका निरीक्षण किया। फिर युद्ध-सामग्री देख युद्धके लिए बानरोंको आज्ञा दी। फिर अवसर देख लंकाकी ओर चले। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान और लक्ष्मण ये सब उनके पीछे चले। उनके पीछे बानरों और ऋक्षोंकी विशाल सेना भूमिको आच्छादित करती हुई चली। ऋक्ष बानर बड़ों पर्वतोंके शिखर व वृक्ष ग्रहणकर लंकाकी ओर बढ़े। राम-लक्ष्मणभी शीघ्रही लंकाके पास जा पहुँचे। पताकाओंसे शोभित लंका, चित्र-प्रकार युक्त और बड़ीही दुर्द्धर्ष थी। उस दुर्द्धर्ष लंकामें बानरगण जा डटे। उन्होंने उसके उत्तरी द्वारको जाकर घेर लिया जिसपर रावण अपने भयानक राक्षसों सहित युद्धार्थ सन्नद्ध था। उसी समय छत्तिस करोड़ यूथप बानरों सहित उसपर आक्रमण किया। साथही रामकी आज्ञासे लक्ष्मण और विभीषण उस द्वारपर करोड़ों बानर भेजते रहे। फिरतो सेनापति नील पूर्वद्वारपर मैन्द और द्विविद सहित स्थित हुआ। अङ्गद दक्षिण फाटकपर ऋषभ, गवाक्ष, गज और गवय सहित वहाँ गये तथा तरस-प्रजंघ और अनेक बानर सेनापतियों सहित हनुमान् पश्चिम द्वारपर गये और मध्यके गुल्मपर सुग्रीव श्रेष्ठ बानरोंको साथ ले वहाँ स्थित हुआ। सुषेण और जाम्बवान बहुतसी सेना ले उनके साथ हुये। इन सब बानरोंमें किसीमें दश, किसीमें सौ और किसीमें हजार हाथियोंका बल था तथा किसीमें झुण्डके झुण्ड हाथियोंका बल था। टिड्डी-दल जैसे बानरोंका समूह बड़ाही अद्भुत और विचित्र था। फिरतो क्षणमें बानर लंकाके चारों द्वारपर जा पहुँचे जिनसे सुवेल पर्वत घिर गया और एक करोड़ बानर लंकाके चारों ओर अलगही घूम रहे थे। सभी बानरोंके हाथमें वृक्ष थे। बानरोंसे घिरे राक्षसोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। बानर-समूहका विशाल शब्द होने लगा। उसी समय अङ्गदको बुलाकर रामने राजनीतिके नियमानुसार उसे रावणके पास भेजनेका विचार किया और कहा 'हे सौम्य! तुम रावणके पास जाकर हमारे ये बचन कहो कि—हे मूर्ख निशाचर! यह जो तूने अभिमान युक्त अपराध किया है, इससे अब तुझे

ब्रह्माका मिला वह वरदान नष्ट होगया। सीता-हरणके कारण अतिकर्षित ह
दण्ड धारण किये अब मैं तुझे दंड देनेके लिए लंकाके द्वारपर खड़ा हूँ।
राक्षसाधम ! जिस बलसे सीताको कपटसे हरलाये हो, अब वह बल दिखाओ।
यदि तू सीताको लिये हुए मेरी शरणमें न आयेगा तो बाणोंसे सब राक्ष
का नाशकर दूँगा। अब धर्मात्मा विभीषण लंकाके राजा होंगे। अब
अधर्मी राज्य न करने पावेगा। अरे राक्षस! अब तू शूरताका सहार
ले। अब तू पक्षी होकरभी मेरी दृष्टिसे जीता न बचेगा। तेरे प्राण मेरे आधीन
हैं। यदि दान करना हो तो करले तथा भलीभाँति लंकाको देखले। इसप्रका
रामका संदेश ले अङ्गद आकाशसे रावणके पास चले। वहाँ जाकर दे
कि रावण मन्त्रियों सहित सावधानीसे बैठा है। अग्निवत प्रकाशमान अंग
आकाशसे उतर रावणके समीप जा बैठे और जैसा रामने कहा था, अप
वृतान्त सुनाते हुए कहा कि 'मै श्रीरामका दूत हूँ। मैं बालिका पुत्र अङ्ग
हूँ। श्रीरामने तुमसे कहा है कि अब तुम अपनी पुरीसे निकलकर युद्ध क
और अब पुरुष होओ। मैं तुमको मन्त्रियों, पुत्रों और जाति बन्धु
सहित मार डालूँगा। लंकाका राजा विभीषण होंगे। यह सब तब होग
जब तुम सीताको न लौटाओगे। अङ्गदके ऐसा कहनेपर रावण अति क्रोधि
हुआ और मन्त्रियोंसे बोला कि इस दुष्टको पकड़कर बाँध लो। रावण
आज्ञा सुनकर चार कठोर राक्षसोंने उठकर उस तेजस्वीको पकड़ लिया
अङ्गदने अपना तेज प्रकट करनेके लिए अपनेको स्वयं पकड़ा दिया। फि
सबको झटककर रावणके राज मन्दिरके ऊपर चढ़ गए। चारों राक्षस गि
पड़े। फिर अङ्गदने अपने चरणके प्रहारसे रावणके राजमन्दिरका फाटक गि
दिया और आकाशमें उछल, घोर नादकर राक्षसोंको व्यथित करदिया। पु
बानरोंको हर्षित करते हुए रामके पास चले गये। उधर राज मन्दिरके द्वा
धराशायी होनेसे, रावण ने बड़ा क्रोध किया। इधर राम बहुतसे बानरों सहि
युद्धके लिए उद्यत हुए। सब ओरसे बानर प्राचीरोंपर चढ़ दौड़े। भयं
उथल-पुथल मच गई। राक्षसाधिप रावणके राक्षस योद्धा बड़े-बड़े आयु
को लेकर प्रलयंकरी वायुके समान संचार करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ सर्ग

अब राक्षसोंने रावणके मन्दिरमें जाकर यह निवेदन किया कि रामके वानरोंने लंकाको घेर लिया है। तब नगरीको घिरी सुनकर, पुरीकी रक्षाके लिए रावणने दूनी सेना नियुक्तकर दी और स्वयं प्रासाद पर जा पड़ा। वहाँसे उसने देखा कि असंख्य वानरोंसे लंका घिरगई है। रावण सोचने लगा कि इस सेनाका नाश कैसे हो। वह बानर यूथपोंको नेत्र फैलाकर देखने लगा। इधर विचित्र पाताका युक्त लंकाको देख रामभी सीताका स्मरण करने लगे। फिर शीघ्र शत्रुओंका संहार करनेके लिये बानरोंको आज्ञा दी। वानरोंके घोर नादसे लंका पूरित होगई। सभी बानर यूथप पर्वत शिखर और वृक्ष उखाड़ राम प्रीत्यर्थ लंकाके प्राकारपर चढ़ गये और पुरीके प्रासाद और तोरणको तोड़ने लगे। हजारों, करोड़ों, अर्बों बानर और उनके यूथप लंकाकी चहार दिवारीपर चढ़ स्वर्ण-मन्दिरोंको तोड़ने और रामकी सुग्रीव तथा लक्ष्मणकी जय बोलने लगे। फिरतो उसी समय रावणने क्रोधकर अपनी सेनाके उद्धारार्थ बाहर निकलनेकी आज्ञा दी। राक्षसोंने घोर नाद किया। नगाड़ोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी। राक्षसोंके मुखसे असंख्य शंखभी बजने लगे। बानर-सेनानेभी घोर नाद किया। उन सबके उस शब्द और वाद्योंके घोर नादसे पृथ्वी आकाश और सागर परिपूर्ण होगये। हाथियों की चिग्घाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट और रथोंकी खनखनाहटका भयानक शब्द उत्पन्न हुआ। तदनन्तर वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध आरंभ हुआ। वे प्रदीप्त गदा शक्ति आदि आयुधोंको लिए राक्षस अपना बल बखानते हुए वानरोंको मारने लगे। इसी प्रकार अतिकाय बानरोंनेभी नखों और दाँतोंसे राक्षसोंको मारा तथा सुग्रीवकी जय हो—ऐसा कह बड़ा नाद किया। बानर राक्षसोंके ऊपर गिरकर उन्हें पृथ्वीपर गिराने और मारने लगे। फिरतो वानरों और राक्षसोंके उस संग्रामसे मांस और रक्तका कीचड़ उत्पन्न हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काडका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

युद्धारंभ

तब परस्पर युद्ध करते हुए वानरों और राक्षसोंका सुदारुण बल और

रोष उत्पन्न हुआ। वीर राक्षस घोड़ों, हाथियों तथा रथोंपर चढ़कर रावणकी जय कहते हुए घोर नाद करने लगे। दिशाएँ शब्दित हो गयीं। विशाल वानर सेना भी रामकी विजय चाहती हुई वीरकर्मा राक्षसोंकी सेनापर टूट पड़ी। दोनों पक्षोंसे दौड़ती हुई सेनाओंका द्वन्द्व-युद्ध आरंभ हो गया। वानर दुर्द्धर्ष, सम्पाति और प्रजंघ राक्षससे तथा हनुमान् जाम्बुमाली राक्षस-से युद्ध करने लगे। राक्षस विभीषण शत्रु से लड़ने लगा। निकुम्भसे तेजस्वी नील और प्रघस सुग्रीवसे तथा राक्षस विरूपाक्षसे लक्ष्मण युद्ध करने लगे। राक्षस प्रतवनसे नल और सुषेणका विन्दुमालीसे युद्ध होने लगा। ऐसे ही अन्य प्रचण्ड वानर अन्यान्य घोर राक्षसोंसे द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। फिर तो वानरों और राक्षसोंका अति घोर रोमहर्षण युद्ध आरंभ हुआ। वानरों और राक्षसोंके शरीरोंसे निकले हुए रुधिरकी नदियाँ बह चलीं। उसी समय मेघ-नादने बड़ा क्रोधकर अंगदपर अपनी गदाका प्रहार किया, जिससे क्रुद्ध हो अंगदने भी गदासे मारकर मेघनादका रथ विध्वंसकर दिया। जाम्बुमालीने हनुमान्‌की छातीमें शक्तिका प्रहार किया, जिससे क्रुद्ध हो हनुमान्‌ने उसके रथपर चढ़, लातसे रथ सहित उसको ध्वंसकर दिया। ऐसेही प्रतपन जो नल की ओर दौड़ा तो नलने तीव्रतासे उसके नयन निकाल लिए। परन्तु उसने भी अपने वाणोंसे नल को भिन्न गात्र कर दिया। विरूपाक्षको तो लक्ष्मणने एकही वाणसे मार डाला। इधर अग्निकेतु, रश्मिक, मित्रघ्न और यज्ञकोप इन चार राक्षसोंने जो रामको घेरा तो इन्होंने उन चारोंके सिर अपने वाणोंसे काट डाले। उधर नील और निकुम्भ लड़ रहे थे जिसमें नीलने उसके रथको तोड़ सारथीका सिर काट लिया। ऐसे ही द्विविदने क्रोधकर पर्वत शृंगसे अशनिप्रभको मार डाला। राक्षस विन्द्युमालीने वाणोंसे सुषेणको आहतकर गर्जन किया। सुषेणने एक बड़े पर्वत-शृङ्गसे उसका रथ चूर्णित कर दिया तथा पुनः घोर द्वन्द्वयुद्ध कर उसे मारही डाला। मृतकोंसे संग्राम भूमि पट गई। इसप्रकार वानरों और राक्षसोंके उस तुमुल-युद्धसे वह युद्ध-भूमि अत्यंत ही भयानक हो गई। चारों ओर शृगाल घूमने लगे। देव दैत्योंके युद्धके समान ही वह युद्ध हुआ जिसमें वानरों एवं राक्षसोंके कबन्ध-नृत्य करने लगे। वानरोंके भयानक प्रहारोंसे राक्षसोंके शरीरसे वह रक्तस्राव हुआ

कि जिसके कारण उनकी चेतना नष्ट हो गयी। तीव्र युद्ध करना त्याग सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४३॥

चौवालीसवाँ सर्ग

मेघनादका युद्ध

इसप्रकार बानरों और राक्षसोंके युद्ध करते हुए सूर्यास्त होगया औरप्राणहारिणी रात्रि प्रवृत्त हुई। परस्परमें बँधे वैरसे जयेच्छुक बानरों और राक्षसोंने निशा युद्ध आरंभ किया। निबिड़ अन्धकारमें बानर राक्षसोंसेपूछते कि तुम राक्षस हो और राक्षस बानरोंसे पूछते कि तुम बानर हो—ऐसा कहकर एक दूसरे पर प्रहार करते। मरो कटो, क्यों भाग जाते हो—सेनामें ऐसा शब्द होने लगा। काले-काले राक्षस सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित होकर ऐसे ज्ञात होते थे मानों चमकती हुई औषधियोंसे युक्त पर्वत हों। बानरोंकी भयानक मारसे राक्षसी सेना विचलित हो गई। राक्षस कभी अदृश्य हो जाते; किन्तु श्रीराम और लक्ष्मण अपने सर्प-सदृश बाणोंसे उन्हें दोनों ही अवस्थाओंमें मारने लगे। इस प्रकार रोमाञ्चकारी युद्ध होनेपर रुधिरकी नदियाँ बह चलीं। युद्धके वाद्योंसे तो और ही घोर शब्द हुआ। समस्त युद्ध-भूमि और हो दुःख से देखने योग्य हो गई। राक्षसोंकी नाशक वह रात्रि कालरात्रिके समान भयंकर प्रतीत हुई। तब उस निविड़ अन्धकारमें राक्षसोंने एक स्वरसे राम पर बाण वर्षाना आरंभ किया। उसी समय रामने एक साथही छः बाण चलाकर दुर्धर्ष, यज्ञशत्रु, महपार्श्व, महोदर, अतिकाय और वज्रदंष्ट्र इन छः राक्षसोंको मारकर धराशायीकर दिया। किन्तु उनकी कुछ आयु शेष थी, इससे वे उठकर भाग गये। पश्चात् रामने अग्निशिखाके समान प्रकाशित बाणोंसे दशों दिशाओंको विमलकर दिया। उस समय जो भी राक्षस उनके आगे आये, सब नष्ट हो गये। चारों ओर बाणोंके चलनेसे वह रात्रि जुगुनू उड़ती हुई शरद-रात्रिके तुल्य शोभायमान हुई। परन्तु राक्षसोंके घोरनाद और नगाड़ों के शब्दसे बड़ी भयानकता व्याप्त थी। ऋक्ष और वानर राक्षसोंको पकड़-पकड़कर मारने लगे। अङ्गदने इन्द्रजितके मारडालनेका विचार किया। उन्होंने रथके घोड़ों सहित सारथीको भी मार डाला; जिससे आतङ्कित हो

मेघनाद अन्तर्हित हो गया। अङ्गदके इस अद्भुत पराक्रमकी देवताओं और ऋषियों सहित राम-लक्ष्मणने भी प्रशंसा की तथा सभी आनन्दित हुये। क्योंकि मेघनादका प्रभाव सब लोग जानते थे। बानरों सहित विभीषणने भी अङ्गदकी प्रशंसा की। अङ्गदकी इस प्रशंसाको देख मेघनाद बड़ा कुपित हो युद्ध करने लगा। उसे ब्रह्माका वरदान था। वह अन्तर्हित हो राम और लक्ष्मण पर अपने घोर बाण वर्षाने लगा। उसके बाणोंसे व्यथित होकर राम मोहित हो गये। फिर तो अदृश्य रहते हुए भी उस छली राक्षसने नागफाँस से राम और लक्ष्मणको बाँध लिया। सब वानरोंके देखते, दोनों भाई आहत हो गये।

इ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

मेघनादका राम-लक्ष्मणको नाग पाशसे बाँधना

उसी समय प्रतापी श्रीरामने सुषेणके दो पुत्र, नील, अङ्गद, शरभ द्विविद, हनुमान्, सानुप्रस्थ, ऋषभ और ऋषभस्कन्ध—इन दस बानरोंको इन्द्रजितका पता लगाने की आज्ञा दी। वे बड़े हर्षसे भयंकर वृक्ष उठाकर दशों दिशाओं में खोजते हुए आकाश मार्गसे चले; किन्तु अस्त्रविद्या—विशारद इन्द्रजितने बाणोंकी वर्षा करके उनका वेग रोक दिया। बाणोंसे क्षत-विक्षत हो जानेके कारण वे अन्धकारमें कुछ भी न देख सके। पश्चात् युद्ध-विजयी मेघनाद फिर श्रीराम-लक्ष्मणके शरीरोंको ही बाणोंसे बींधने लगा। उसने उन्हें अपने सर्प सदृश बाणोंसे इतना बींधा कि उनका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। उनके बाणोंसे बहुत रक्त बहने लगा। उसी समय लाल नेत्र किये, काला मेघनाद, अदृश्यमें रहते हुए बोला—'युद्धके समय अलक्षित होनेपर तो मुझे देवराज इन्द्रभी नहीं देख सकते, फिर तुम्हारी क्या गणना है? मैं तुम्हें अभी यमराजके घर भेजे देता हूँ।' धर्मज्ञ राम और लक्ष्मणसे ऐसा कहकर वह उन्हें पैने बाणोंसे फिर बींधने और हर्षसे गर्जने लगा। इस प्रकार उनके सभी अंग बाणोंसे बिंधकर काँपने लगे। उस क्रूर राक्षसके हाथसे घायल होकर दोनों भाइयोंके शरीरसे रक्तकी प्रबल धाराएँ बहने लगीं। राम-लक्ष्मण रक्त-स्नानकर पृथ्वीपर गिर गये। यह देख बानरोंको बड़ा सन्ताप हुआ। नाग-पाशसे बँधे उन दोनों भाइयोंको बानर घेरकर खड़े हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ सर्ग

मेघनादका राम-लक्ष्मणको बाँध अपने पिताके पास जाना

इसके पश्चात् जब उपर्युक्त दस वानर पृथ्वी और आकाश सबको ानकर लौटे, तब उन्होंने राम-लक्ष्मणको बाणोंसे बिंधा पाया। ी समय वहाँ सुग्रीवके साथ विभीषण भी आ पहुँचे। हनुमान् हित नल, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अङ्गद आदि नों भाइयोंके लिए बहुत दुःख करने लगे। अब आकाशमें चारों ओर देखने े, पर छिपे हुए इन्द्रजितको किसीने देख न पाया। केवल विभीषणने ासी मायाके द्वारा छिपे हुए इन्द्रजितको आते देखा। उसी समय इन्द्र- त इन दोनों भाइयोंको सोते देख प्रसन्न हो राक्षसोंको हर्षित करता हुआ ला—देखो, खर और दूषणका बध करनेवाले राम-लक्ष्मण मेरे बाणोंसे त हो गए। अब देवता, दैत्य किसीके छुड़ानेपर भी ये इस नागपाशसे नहीं ट सकते। इन्हींके कारण तो चिन्तित रहते मेरे पिताको रातभर शय्यापर ंद नहीं आती। आज हम सबकी मूल-नाशक उस अनर्थको मैंने शान्तकर या। इन्द्रजितके इसप्रकार कहनेसे कूट-युद्ध करनेवाले राक्षस बड़े चकित और उस कार्यसे उन्हें हर्ष भी बहुत हुआ। वे मेघवत् घोर गर्जन करने ेतथा यह समझे कि श्रीराम मारे गए। उन्होंने इन्द्रजितका बड़ा अभि- दन किया। इन्द्रजितने भी यह देखकर कि अब पृथ्वीपर इन दोंनों भाइयो श्वासभी नहीं चल रही है, उन्हें मृतक समझा। वह राक्षसोंको हर्षित ता हुआ लंकापुरीकी ओर चला। इधर राम-लक्ष्मणको निश्चेष्ट देख ीव बहुत भयभीत हुए। उनका मन खिन्न हो गया और वे बहुत रोने े। तब विभीषणने उन्हें बहुत समझाया और कहा कि, युद्धमें तो ऐसा ा ही है, उसमें विजय निश्चित नहीं हुआ करती। यदि हमारा भाग्य होगा इन्हें अवश्य चेतना आवेगी। सत्य-धर्मानुरागी मृत्युसे नहीं डरते। यह य साहसहीन होनेका नहीं इस समय श्रीरामका अनुसरण करनेवाले नकोंके हितका विचार कीजिए। और जबतक श्रीरामचन्द्रजी संज्ञा-शून्य तबतक इनकी रक्षा कीजिए। चैतन्य होते ही ये दोनों रघुवंशी वीर हमारे स्त भयको निवारणकर देंगे। श्रीरामके लिए यह कोई मृत्युकी बात नहीं

हैं। ये मर नहीं सकते। सब वानरोंको आप शान्त कीजिए।' इसप्रका सुग्रीवको समझाकर विभीषणने छिन्न-भिन्न हुई बानर-सेनाको सन्त्वना दी इधर इन्द्रजित लंकामें लौट अपने पिताके पास आया और हाथ जोड़ रावणसे यह प्रिय वचन बोला कि, मैंने राम-लक्ष्मणको मार डाला। तब उ मरा सुन रावण उछल पड़ा और उठकर सप्रेम पुत्रका आलिङ्गन किया युद्धका सब वृतान्त पूछा। इन्द्रजितने वह सब समाचार कह सुनाया कि किसप्रकार राम निश्चेष्ट कर दिएगए। वह सुन रावण और भी प्रसन्न हु तथा उसका वह दुःख जाता रहा कि जिस भयसे वह दुःखित था। उ प्रसन्नतापूर्ण वचनोंसे अपने पुत्रका अभिनन्दन किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

नागपाशसे बद्ध रामको देख सीताका विलाप

उधर जब विजयी मेघनाद लंकाको चला गया तो वानरगण राम रक्षा करने लगे। सुग्रीवने सब वानरोंकी पादप-सेनाकी रचना की। वे चा ओर देखते कि यहाँ कोई राक्षस न आवे। एक तिनका भी हिलता कि रा राक्षस होनेका उन्हें भय होता। इधर रावणने मेघनादको विदाकर सीता रक्षिका राक्षसियों बुलाया। राक्षसियाँ त्रिजटाको ले रावणके पास आ उनसे रावणने हर्षित होकर कहा—'तुम सब सीतासे जाकर कहो कि राम अं लक्ष्मणको तो इन्द्रजितने मार डाला, तथा उसे पुष्पक विमानसे लेजा रणभूमिमें मृतक दोनों भाइयोंको दिखालाओ, जिसके आश्रयसे गर्वित हो यह मेरे पास नहीं आती थी। अब इसका वह पति तो भाई सहित संग्रा मारा गया। जब उन्हें मरा देखकर यह लौटेगी, उस समय कोई अन्य उपा न देखकर स्वयंही मेरे पास चली आएगी।' दुरात्मा रावणकी यह बात कर वे राक्षसियाँ पुष्पक विमान लेकर अशोक-बाटिकामें सीताके पास आ और उन्होंने पति-वियोगसे शोकाकुला सीताको उसपर चढ़ाया। त्रिजट साथ उस विमानसे जाकर सीताने देखा कि वानरोंकी समस्त सेना कटी प है तथा श्रीराम और लक्ष्मणभी बाणोंसे पीड़ित होकर संज्ञाशून्य हुए बा शय्यापर पड़े हैं। उनके कवच और धनुष टूटकर पड़े हैं। उन दोनों पुरुषों

इसप्रकार पड़े देखकर सीता बहुत दुःखित हुईं और अत्यन्त विलाप करने लगीं। साथही देवकुमारके समान पराक्रमी उन दोनों भाइयोंकी ओर देखकर उनकी मृत्युके विषयमें सीताके मनमें बड़ा तर्क-वितर्क हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

सीताका विलाप

महाबली अपने पति और लक्ष्मणको समरमें निहत देख शोककर्शिता सीता बहुत दुःखी हुईं और इसप्रकार अति विलाप करने लगीं कि—जो मुझे पुत्रवती होकर सर्वदा सौभाग्यवती कहते थे; वे सबलोग इस समय रामके मारे जानेसे अनृतवादी हो गए। जिनके कारण कुल-कामिनियाँ अपने राजा पतियोंके सहित राजपदपर अभिषिक्त होती हैं, मेरे चरणोंमें वे कमलकी रेखाएँ भी हैं। इसके विपरीत जिन कुलक्षणोंके कारण हतभागिनी स्त्रियोंको वैधव्य प्राप्त होता है, उनमेंसे मुझे अपनेमें कोई भी नहीं दिखाई देता, फिर भी मेरा भाग्य फूट गया। लक्षणज्ञोंने स्त्रियोंके लिए कमलके चिह्न अमोघ कहे हैं; परन्तु आज श्रीरामके मारे जानेसे वे भी व्यर्थ हो गए। मेरे महीन नीले केश हैं और भौंहें भी अलग-अलग हैं, दाँत सटे हुए हैं तथा नेत्रोंके समीपवाले भाग, नेत्र, हाथ, पैर टखने और जंघाएँ—ये सब समान और उभरे हुए हैं। नख उतार चढ़ाववाले और चिकने हैं तथा उँगलियाँ भी समान हैं। मेरे देहकी कान्ति मणिवत् कान्तिमान, रोम कोमल, दोनों पैरोंकी अँगुलियाँ और पैरोंके दोनों तलवे मिलाकर बारह हैं। इन सब चिह्नोंसे मैं शुभ लक्षणा कहलाती हूँ। ज्योतिषीजन कहते थे कि मैं पति सहित अधिराज्य पदवीपर अभिषिक्त होऊँगी, वह सब मिथ्या हो गया। हा, हनुमान्‌से मेरा समाचार पाकर यहाँ आनेपर गौके खुरके गढ़ेमें ये दोनों भ्राता डूब गए; जब कि वरुण, अग्नि, इन्द्र, वायु तथा ब्रह्माके आयुधोंसे भी ये सन्तापित नहीं हो सकते थे। परन्तु इन्हें अवश्य शत्रुने समरमें मायासे मार डाला है। यद्यपि युद्धमें रामके समक्ष कोई मनके तुल्य वेगवान् भी जीता नहीं जा सकता था—वही श्रीराम भाई सहित मरे हुए युद्ध-भूमिमें शयन कर रहे हैं। अब तो मुझे इनकी और अपनी माँ की भी

उतनी चिन्ता नहीं है जितनी कौशल्याकी है, जो नित्यही इनको तथा मुझको देखनेकी चिन्ता किया करती हैं।' तब सीताको इसप्रकार विलपते देखकर त्रिजटा बोली—'हे देवि! शोक न करो। ये तुम्हारे भर्त्ता राम जीते हैं। हे देवि! मेरे इस कथनका एक महाकारण है, वह सुनो। हे सीते! युद्धमें स्वामीके मारे जानेपर योद्धाओंके मुख क्रोध और हर्षकी उत्सुकतासे युक्त नहीं रहते; किन्तु यहाँ वे बातें पायी जाती हैं, इसलिये ये जीवित हैं। यह विमान भी दिव्य है, इसका नाम पुष्पक है। यदि इनके प्राण चले गये होते तो वैधव्यावस्थामें यह तुम्हें धारण नहीं करता। इसके अतिरिक्त जब प्रधान वीर मारा जाता है, तब सेना निरुत्साहित और उद्यमहीन हो जाती है। किन्तु इस सेनामें व्याकुलता या उद्वेग नहीं है तथा यह इन दोनोंकी रक्षा भी कर रही है। अतः इन शुभसूचक अनुमानोंसे तुम निश्चित हो जाओ कि राम-लक्ष्मण मरे नहीं हैं। यह बात मैं स्नेहवश तुमसे कह रही हूँ। मैथिली! मैंने तुमसे न तो पहले कभी मिथ्या कहा है और न भविष्यमें ही कहूँगी। तुम्हारा पवित्र चरित्र मुझे सुखद है। इन दोनोंको तो इन्द्र सहित देवता असुर—कोई भी नहीं मार सकते। हे सीते! ये दोनों भाई अस्त्रोंके लगनेसे मूर्छित हैं, पर श्री इनके मुखोंको नहीं छोड़ती है। इससे हे सीते! तुम इस शोक दुःख और मोहको त्यागो।' तब त्रिजटाके ऐसे वचन सुन सीता हाथ जोड़ बोलीं कि 'तुम्हारे वचन सत्य हों।' तत्पश्चात् सीता सहित विमानको लौटाकर त्रिजटा लङ्कामें लाई। राक्षसियों सहित विमानसे उतर सीता अशोकवाटिकामें आईं और राम-लक्ष्मणका स्मरणकर अत्यधिक खेदित हुईं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका अड़तालिसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ सर्ग

नागपाशसे बधे रामका लक्ष्मणके लिए विलाप

दशरथात्मज श्रीराम और लक्ष्मण भयंकर नाग-पाशसे बँधे थे। उनको सुग्रीव सहित सभी वानर शोकातुर होकर घेरे हुए थे। कुछ ही क्षणोंमें उन वीर्यवान एवं पराक्रमी रामको अपनी शक्तिमत्तासे चेतना आ गयी, उन्होंने देखा कि भाई लक्ष्मण बाणोंसे अत्यन्त बिंधकर रक्तमें सने पड़े हैं तथा

उनका मुख अत्यन्त मलिन हो रहा है। अतः वे व्याकुल होकर विलाप करने लगे। (वे बोले) हा, मैंने अपने भाईको रणाङ्गणमें इसप्रकार सुला दिया। अब सीताको पाऊँ भी तो क्या है ? यदि ढूँढ़नेसे कहीं सीताके तुल्य स्त्री भी प्राप्त हो जाय, पर लक्ष्मण तुल्य भाई तो न मिलेगा। यदि लक्ष्मण मृतक हो गए तो मैं भी प्राण त्याग दूँगा। लक्ष्मण-रहित अयोध्यामें मैं कौशल्या, केकयी तथा सुमित्रासे क्या कहूँगा ? उन कम्पित माताओंको कैसे समझाऊँगा ? जो लक्ष्मण मेरे साथ बन आये, मैं उनके विना वहाँ जाकर शत्रुघ्न और भरतसे क्या कहूँगा ? सुमित्रा जब विलाप करने लगेगी तो मैं उसे कैसे सहन करूँगा, इससे यहीं शरीर त्याग दूँगा। मुझ पापीको धिक्कार है कि, जिसके कारण लक्ष्मण शरशय्यापर सो रहे हैं। हा, लक्ष्मण ! मेरे दुःखित होनेपर तुम मुझे समझाया करते थे, पर अब बोलते भी नहीं हो। अङ्गोंमें रक्तयुक्त वाणोंसे विंधे तुम इस शय्यापर सोते हो और बोल भी नहीं सकते, पर नेत्रोंसे बड़ी पीड़ा ज्ञात होती है। हा लक्ष्मण ! मुझ अनार्य की ही अनीतिसे तुम्हारी यह दशा हुई। तुम सहस्रबाहुसे भी अधिक धनुर्विद्यामें निष्णात थे। तुम्हारे मुखसे कभी कठोर वचन मैंने नहीं सुना है। तुम तो इन्द्रके भी अस्त्रोंको नष्टकर सकते थे, वही लक्ष्मण ! तुम आज भूमिपर सो रहे हो। मैंने विभीषणको राक्षसोंका राजा बनानेको कहा था, जो नहीं कर सका। अब यही चिन्ता मुझे जला रही है। हे सुग्रीव ! अब मैं पराक्रमहीन हो गया हूँ। इससे रावण तुम्हारा भी अपमान करेगा। अतः अङ्गद तथा सेनाको आगेकर नील नलादिकोंको साथ ले तुम समुद्र उतर जाओ। हनुमान् जाम्बवान् सहित सब बानरोंका और आपका मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ कि आप सबने मेरे लिए युद्धमें इतना बड़ा दुष्कर्म किया। परन्तु मनुष्यका भाग्य कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। एक मित्रको मित्रके साथ जो करना चाहिए वह आप सबने किया। अब मैं सबको विदा करता हूँ।' रामको ऐसा विलाप करते देख सब बानरगण भी विलाप करने लगे। इतने में सब सेनाको सन्नद्ध खड़ी करके हाथमें गदा लिए विभीषण रामके समीप आये। वानरोंने समझा कि यह कज्जल पर्वततुल्य इन्द्रजीत ही आ रहा है। यह समझ सब बानर भाग चले !

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

पचासवाँ सर्ग

गरुण समागमसे रामका नागपाशसे मुक्त होना

इसी समय विभीषणने आकर रामकी जय-जयकार की। तब विभीषणको देख सुग्रीवने जाम्बवान्से कहा—ओह, विभीषणको ही इन्द्रजीत समझकर बानर भाग रहे हैं। अतः तुम जाकर व्याकुल भागते बानरोंको रोको। फिर तो जाम्बवान्ने ऐसा ही किया। बानरगण जाम्बवान् और विभीषणको देखकर लौट आये। विभीषण राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंके नेत्र जलसे धो पीड़ित हो विलाप करने लगे और बोले—दुष्टात्मा रावण-पुत्रने इन सहज महाविक्रमी दोनों भाइयोंको ठगकर इस अवस्थाको पहुँचा दिया। अब मेरे राज्य पानेका अभिप्राय तो नष्टही होगया; किन्तु वीर शत्रुकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। यह सुन सुग्रीवने विभीषणका आलिंगनकर कहा—धर्मज्ञ! आप चिन्ता न करें, ये दोनों भाई इस चोट-सन्तापसे शीघ्र मुक्त होंगे, रावणको युद्धमें मारेंगे और आपको लंकाका राजा बनाकर रहेंगे। हे सुषेण! तुम हरिगण सहित मूर्छासे जागतेही इन राम-लक्ष्मणको साथले किष्किन्धा चले जाओ और मैं रावणको उसके पुत्र बान्धवों सहित मारकर सीताको लेकर आऊँगा। बानर सुषेण ने कहा—ऐसेही देवासुर संग्रामके समय जब दैत्योंने देवताओंको बाणों से मारकर आच्छादित कर दिया था और वे लोग मूर्छित हो मरभी गये थे तो बृहस्पतिने चिकित्साकर सबको जीवन-प्राण दिया था। इस समयभी उन्हीं औषधियों की खोज करनी चाहिए और इसके लिए सम्पाति, पनसादि बानर शीघ्रही क्षीरसागरके पास जावें। उन औषधियोंमें एक संजीवनी और दूसरी विशल्या नामकी औषधि है। जहाँ क्षीरसागर मथा गया था, वहाँ चन्द्र और द्रोण नामक पर्वतपर वे मिलेंगी। इन दोनों पर्वतोंको देवताओंने क्षीरसागरके मध्यमें स्थापित कर दिया है। बानर सुषेण ऐसा कहही रहा था कि, प्रचंड आँधी आई और बादलों में बिजली चमकने लगी; जिससे वहाँके निवासी सब सर्प भयातुर हो सागरमें जा छिपे। पश्चात् बानरों ने देखा कि विनताके पुत्र आरहे हैं। फिरतो जिन बाणरूपी सर्पोंसे वे दोनों भाई बँधे थे सब गरुणको देख भाग चले। वैनतेयने अपने हाथों से राम-लक्ष्मणको सुहराया और उनके मुखों पर हाथ फेरा। फिरतो उनके स्पर्श करते ही दोनो के शरीर

पूर्ववत् होगये। तेज और उत्साह पहलेसे दूना होगया। गरुड़ने राम-लक्ष्मण को उठाया। तब राम गरुड़से बोले-आपकी कृपासे रावणके पुत्रका दिया हुआ दुःख दूर होगया। हे विमलवस्त्रधारी! कहिए, आप कौन हैं? गरुड़ने कहा-मेरा नाम गरुड़ है तथा आपकी सहायताके लिए आया हूँ। मेरे बिना मेघनादका किया हुआ यह शरबन्ध देवता या दैत्य या वानर कोई भी नहीं छुड़ा सकते थे। मैं आपका मित्र हूँ, इसलिए यहाँ आया हूँ। राक्षसकी माया से कद्रू के पुत्र वाण-सा होकर आपको काटते थे। पर भाई सहित आपतो बड़े भाग्यशाली हैं कि मैं शीघ्रही आ गया। आप लोग सतर्क रहिएगा। राक्षस युद्धमें छल करते हैं। इधर आप जैसे शूर शुद्ध भावकोही श्रेष्ठ समझते हैं। रामसे ऐसा कह गरुड़ने आज्ञा ले प्रस्थान किया और कहा कि हे राघव! अभी अन्य मेरे सखित्वको जाननेका कौतूहल न करें, यह तो संग्राम के पश्चात् आप जानेंगे, जब आप लंका विध्वंसकर तथा रावणको मारकर बहुत शीघ्रही सीताको प्राप्त कीजियेगा। गरुड़ रामसे ऐसा कह उनकी परिक्रमा कर आकाशमार्गसे उड़ चले। अब राम-लक्ष्मणको रोगरहित देख वानर नाद करने और पूँछ फटकारने लगे। सबोंने भेरी मृदंग वाद्य तथा बड़े आनन्द में शंखध्वनि करने लगे। फिर हाथोंमें नानाप्रकारके वृक्ष लेकर, घोर नाद करते, राक्षसोंको डराते, युद्धकी आकांक्षासे लंकाके द्वारोंपर जा लगे। तुमुल-ध्वनि करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

इक्यावनवाँ सर्ग

वानरोंकी सोत्साह गर्जना

जब गर्जन करते हुए वानरोंका तुमुल शब्द रावणने सुना तो वह सभामें बैठे हुए मन्त्रियोंके मध्यमें बोला कि 'यह तो बानरों का शब्द सुनाई दे रहा है। निस्सन्देह इस समय बानर बड़े आनन्दित हैं। क्योंकि राम-लक्ष्मण वाणोंसे आहत हो पृथ्वीपर पड़े हैं। फिर बानर क्यों न ऐसा नाद करें? फिर भी हे मन्त्रियों! तुम लोगोंमें से कोई वहाँ जाकर उनके इस हर्षका कारण शीघ्र ज्ञात कर आओ। यह सुन मन्त्रियोंने नगर-कोटपर जाकर वानरोंकी विशाल सेना देखी। वाण-बन्धसे छूटे दोनों भाइयों को

देखकर राक्षसोंको बड़ा दुःख हुआ। वे भयभीत हो प्राचीरसे उतर रावणके पास आये। राम-लक्ष्मणको इन्द्रजितके शर-बन्धनोंसे मुक्त हुआ कहा, वह सुन रावणका चिन्ता और क्रोधसे मुख विवर्ण हो गया। उसने कहा, जब वे ऐसे विषधर सर्प-वाणोंसे भी छूट गये, तब ऐसे शत्रुके बलमें सन्देह है। ऐसे तेज-धारी वाणभी विफल हो गये ? ऐसा कह उसने एक श्वास ली और राक्षस धूम्राक्षसे कहा कि, तुम एक विशाल सेना लेकर वानरों सहित रामको मार डालनेके लिये शीघ्र प्रस्थान करो। ऐसी आज्ञा पा धूम्राक्ष शीघ्रही वहाँसे प्रस्थित हुआ। सेनाध्यक्षने सेनाको चलनेकी आज्ञा दी। नाना आयुधधारी राक्षस गर्जते हुए चले। महावीर्य धूम्राक्ष राक्षसोंसे आवृत्त हो उस पश्चिम द्वारसे निकला जिसपर हनुमान् स्थित थे। वह गदहे जुते रथपर सवार था तथा बड़े-बड़े अपशकुन हो रहे थे जिसे देख धूम्राक्ष बड़ा दुःखी हुआ। तथापि रावणकी आज्ञासे वह अपनी विशाल वाहिनी सहित रामकी उस असंख्य वानरी सेनासे युद्ध करने आया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५१॥

बावनवाँ सर्ग

हनुमान् द्वारा धूम्राक्ष-वध

भीम विक्रम राक्षस धूम्राक्षको आते देख युद्धाकांक्षी सब वानर गर्जन करने लगे। वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध होने लगा। राक्षसोंने बहुतसे बानरोंको काट डाला और बानरोंने भी अनेक निशाचरोंको पीस डाला। गदाओं, शूलों, पटा-परिघों, त्रिशूलों और तीक्ष्ण वाणोंसे राक्षसोंने बानरों को मारा, उस मारको वानर सह न सके और हर्षित हो युद्धमें प्रवृत्त हुये। फिर तो उन्होंनेबड़े-बड़ेवृक्षोंऔर पत्थरकी शिलाएँ उखाड़लीऔरगर्ज-गर्जकर राक्षसोंको मथना आरंभ किया। इस प्रकार बानरोंका राक्षसोंसे घोर संग्राम हुआ। दोनों पक्षोंकी सेना चूर्ण-विचूर्ण हो गयीं। रक्त-मांसका कीच उत्पन्न हो गया। गन्धर्व-विद्याकी तुल्यही वह युद्ध शोभित हुआ। क्योंकि उसमें धनुष की प्रत्यंचाका शब्द वीणाके समान, आहत वीरोंकी हुचकी तालके समान और बीरोंका मन्द गर्जन गीतके तुल्य था। धूम्राक्षने वाणोंकी वर्षासे सब वानरोंको इधर-उधर लगा दिया। तब अपनी सेनाको इस प्रकार तितर-

[न]ितर होते देख पराक्रमी हनुमान्‌ने एक विशाल शिला उठाकर धूम्राक्षके [र]थपर फेंक दिया। धूम्राक्ष तो बच गया; किन्तु उस शिलाने उसके रथको [चू]र्णितकर दिया। हनुमान् रथको छोड़वृक्षोंको उखाड़-उखाड़ राक्षसोंका नाश [क]रने लगे। उनकी भयानक मारसे राक्षसोंके पैर उखड़ गए। वानर पादपोंको [च]ोटसे राक्षसोंके शिर फूट गये। राक्षसोंको भगा हनुमान् धूम्राक्षपर दौड़े। तब [ह]नुमान्‌को अपनेपर आते देख अब धूम्राक्षने हनुमान्‌के मस्तकमें गदाका प्रहार [क]िया। उस गदासे हनुमान्‌को चोट तो लगी किन्तु उसका ध्यान न कर उन्होंने [उ]से उलटकर धूम्राक्ष परही चला दिया, जिससे उसके सब अंग चूर्ण-विचूर्ण [ह]ो गये और वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। धूम्राक्षको मरा देख शेष राक्षस [ल]ंकाको भाग गये। युद्ध-स्थलमें रक्तकी नदियाँ वह चलीं। वानर आनन्दित [ह]ो हनुमान्‌की प्रशंसा करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् लङ्काकाण्डका बावनवं सर्ग समाप्त ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ सर्ग

वज्रदंष्ट्रका युद्ध

धूम्राक्षको निहत हुआ सुनकर राक्षसेश्वर रावण क्रोधित हो सर्पके [स]मान फुंकारने लगा। तब क्रोधसे व्यथित हो उसने वज्रदंष्ट्रसे कहा कि [अ]ब तुम राक्षसोंको साथ ले जाकर राम व सुग्रीव सहित सब वानरोंका [सं]हार करो। वज्रदंष्ट्रने कहा, बहुत अच्छा। फिर तो वह हाथमें धनुष ले [ह]ाथी, घोड़े, गदहे, ऊँट और ध्वजादि युक्त अपनी वाहिनी सहित शीघ्र ही [यु]द्धके लिए चला। उसके चलते ही आकाशसे उल्कापात हुआ और शृगालों[ने] दारुण शब्द किया। फिर भी अशकुनोंके होनेपर भी वह संग्रामकी इच्छा[से] चलता ही रहा। तब राक्षसोंको आते देख वानरोंने बड़ा नाद किया। [तद]नु परस्पर वानरों और राक्षसोंका भयंकर संग्राम हुआ। वृक्षों, शिलाओं [औ]र शस्त्रोंका घोर शब्द सुनाई दे रहा था। रथोंके पहियों, धनुषके टङ्कारों [औ]र तुरी आदिकोंका बड़ा शब्द होने लगा। इस युद्धमें बहुतोंने मल्लयुद्ध [भी] किया। थप्पड़ों, लातों और घूसोंकी मार हुई। वज्रदंष्ट्र वानरोंको बहुत [भ]यभीत करने लगा। अन्य राक्षस भी वानर सेनाको बहुत मारने लगे। [इस]पर अङ्गदको बड़ी उत्तेजना हुई और उन्होंने वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर

दलके दल राक्षसोंको मारना आरम्भ किया। रुधिरसे पूर्ण युद्ध-भूमि भयंकर हो गई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ सर्ग

वज्रदंष्ट्र-वध

अङ्गद द्वारा अपने बलका घात होते देखकर वज्रदंष्ट्र बड़ा कुपित हुआ। वह धनुष चढ़ा बानर-सेनापर अपने घोर बाणोंकी वर्षा करने लगा। अनेक अस्त्र-शस्त्रधारी राक्षस रथोंसे और वानर पैदल ही शिलाएँ ग्रहणकर युद्ध करने लगे। राक्षसोंके असंख्यों आयुध चले। वानरोंने भी राक्षसोंपर वृक्ष और शिलाएँ प्रहार की। इसमें किसीका शिर और किसीके हाथ पैर कट गए। वानर और राक्षस मर-मरकर समर-भूमिमें सोने लगे। भूमिपर कबन्ध गिरने लगे। अधिक संख्यामें वानरों और राक्षसोंका ही संहार हुआ। फिरभी बानर बली पड़े और उनकी मारसे राक्षसोंकी सेना पलायन करने लगी। इसपर वज्रदंष्ट्रको बड़ी उत्तेजना आई और वह धनुष ले युद्धमें प्रवेशकर बाणोंसे वानरोंको नष्ट करने लगा। वानरगण बहुत व्याकुल हुए और अंगदको बड़ा क्रोध आया और वे दोनों मदान्ध हाथीके समान भिड़कर युद्ध करने लगे। एकने दूसरे पर भीषण प्रहार किया। अंगदने एक पर्वत फेंककर—वज्रदंष्ट्रका रथ तोड़ डाला। दूसरे शिखरको उसके शिर पर चलाया। उसके मुखसे रक्त बहने लगा। वह मूर्छित हो गया। मूर्छा टूटने पर उसने अंगदकी छातीमें क्रोधसे गदाका प्रहार किया। फिर वह मुष्टिक युद्ध करने लगा। मारे प्रहारोंके दोनोंके शरीर लोहू लुहान हो गये। फिर श्रमित हो पृथ्वीपर बैठ गये। पुनः सक्रुद्ध अंगदने उठकर तलवारसे बज्रदंष्ट्रका शिर काट लिया। उसके शरीरके दो टूक हो गये। उसके मरतेही राक्षस लंकाको भाग गये। बानरोंसे प्रशंसित अंगदको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥५४॥

पचपनवाँ सर्ग

अकम्पनका भीषण संग्राम

वज्रदंष्ट्रके मरनेपर रावणने राक्षसोंके सेनाध्यक्ष अकम्पनको भेजा। वह विशाल सेना ले राम लक्ष्मण और सुग्रीवको मारने आया। परन्तु जैसे

न्योंको युद्धके लिए अति सभय अशकुन हुये थे, वैसे ही इसे भी हुये। न्तु उसकी कुछ भी चिन्ता न कर घोर गर्जनके साथ आकर बानरी सेना महायुद्ध करने लगा। वानर रामके और राक्षस रावणके लिए प्राणपणसे द्ध करने लगे। दोनों दलोंके पदन्याससे वह लाल धूलि उठी कि दिशाएँ ाच्छादित हो गईं। कोई दिखाई न पड़ता। दोनों ओरसे विशाल शब्द ते थे। निविण अन्धकारमें कौन स्वपक्षको या कौन विपक्षको मारता है ह कुछ भी ज्ञात न हुआ। पृथ्वी रक्त-रञ्जित हो गई। कीचड़का उबटन ग गया। रक्त-प्रवाहसे सिक्त धूलि दूर हो गई। शवोंसे रणभूमि पूर्ण हो ई। राक्षस और बानर बड़े पराक्रमसे युद्ध करते थे। उसी समय अकम्पनने हान् क्रोधकर बानरोंका मानमर्दन कर डाला।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५॥

छप्पनवाँ सर्ग

अकम्पन-बध

अकम्पनके इस महत्कर्मको देख हनुमान् उसके बधका विचार रने लगे। उन्होंने एक विशाल पर्वत उखाड़कर अकम्पनपर फेंका। परन्तु बतक वह पर्वत उसपर आवे कि, अकम्पनने उसे बीच ही में काट डाला। ससे हनुमान्को स्वयं क्रोधसे मूर्छा आ गई। परन्तु तत्क्षणही अश्वकर्ण नामक वृक्षके नीचे जा उसे शीघ्रतासे उखाड़ उन्होंने सब राक्ष-सोंको मारना आरंभ किया। तब उस विशाल वृक्षको लिए प्राणसंहारक हनुमान्को देख राक्षस भाग चले और अकम्पनने भी घोर नाद किया। साथही उसने तीक्ष्ण चौदह वाणोंसे मारकर हनुमान्को घायल कर दिया। फिर तो हनुमान्ने एक और वृक्ष उखाड़कर अकम्पनके शिरमें मारा। उस वृक्षसे हत हो अकम्पनके प्राण पखेरू हो गए। तब अकम्पनको मरा देख राक्षसगण काँपने लगे। साथही अत्यन्तही भयभीत हो लंकाको भाग चले। सभी बलाढ्य वानर एकत्रित हो हनुमान्की प्रशंसा करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥५६॥

सत्तावनवाँ सर्ग

रावणकी आज्ञा से युद्धार्थ प्रहस्थका प्रस्थान

अकम्पनके बधसे रावण उदास हो सब मन्त्रियोंकी ओर देखने लगा।

फिर वह स्वयंही सब मोरचे देखने चला। उसने देखा कि लंका चारों ओरसे घिर गई है। तब उसने प्रहस्तसे कहा कि अब लंकाके पास शत्रु आ गए हैं, जिससे अब युद्ध करनेके सिवा कोई अन्य उपाय नहीं है। मैं, कुम्भकर्ण, तुम, मेघनाद और निकुम्भ ही इसका भार उठा सकते थे। परन्तु उसके पूर्व तुम एक विशाल सेना लेकर शीघ्रही विजयके लिए प्रस्थान करो। मैं समझता हूँ कि, तुम्हारे जानेसे वानरोंकी सेना विचलित हो जायगी। चञ्चल वानर तुम्हारी गर्जना सहन न कर सकेंगे और जब सेना भाग जायगी, तब राम-लक्ष्मण अवश्यही तुम्हारे वशीभूत हो जायँगे। यद्यपि युद्ध मृत्यु संशय-युक्त है; पर तुम्हारी विजय निश्चय होगी। प्रहस्तने कहा—महाराज! यह तो हमने पहलेही कहा था। पर मन्त्रियों सहित हमलोगोंकी मति परस्पर विरुद्ध रही और हमने सीताको लौटा देनेमेंही आपका कल्याण सोचाथा। फिरतो सर्प-पताका युक्त रथपर सवार हो प्रहस्त राक्षसोंकी विशाल सेना ले लंकाके पूर्व-द्वारसे निकला। इसके चलते समयभी बड़े-बड़े अशकुन हुए। परन्तु औरोंकी समान इसने भी उन अपशकुनोंपर ध्यान न दिया और विजय प्राप्तार्थ वानर-राजकी सेनाकी ओर अग्रसर हुआ। उसने बड़े वेगसे उस सेनामें प्रवेशकिया।

इति श्रीमद्‌वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५७॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

प्रहस्त-वध

तब प्रहस्तको युद्धके लिए आते देख राम विभीषणसे बोले—यह विशालकाय कौन है जो हमारी सेनासे युद्धार्थ आरहा है? विभीषण ने कहा कि, यह रावणका सेनापति प्रहस्त है जो लंकाकी तृतीयांशका सेनापति है और यह अस्त्र विद्यामें बड़ाही शूर और पराक्रमी है। फिरतो राक्षसोंसे आवृत्त प्रहस्तको आतेदेख वानर-सेनानेभी घोरगर्जनाकी औरबड़े-बड़ेवृक्षोंऔरपर्वतों को उखाड़ उसे मारने लगे। प्रहस्त और उसके राक्षस सैनिकभी अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार करने लगे। इस प्रकार शिलाओं और अस्त्रोंकी वर्षा करते हुए बानरों और राक्षसोंका युद्ध होने लगा। राक्षसोंने बानरोंको और बानरों ने राक्षसोंको बहुत मारा। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। बानर और राक्षस क्रोधित हो मुख फैला-फैलाकर दौड़ते और अद्भुत प्रहार करते थे। नारान्तक

म्भहनु, महानाद और समुन्नत ये चारों प्रहस्तके मन्त्री रूप बानरोंको मारते
। इसीसमय द्विविदने अद्भुत पराक्रमकर नारान्तकको गिरिशृङ्गसे मारडाला।
र दुर्मुखने समुन्नतको और जाम्बवान्‌ने कुम्भहनुको मार डाला। यह
ख प्रहस्तने धनुष उठा बानरोंका संहार करना आरम्भ किया। फिरतो ऐसा
र युद्ध हुआ कि दोनों पक्षोंके सैनिक इधर-उधर भागने लगे। मृतकोंसे
ग्रामभूमि पट गई। युद्ध भूमि रक्तकी धारासे ऐसा पूर्ण होगई जैसे पुष्पित-
लासोंसे पृथ्वी शोभित होरही हो। तब प्रहस्त द्वारा वानरोंका इसप्रकार संहार
ख वानर नीलसे न रहा गया और उसने एक विशाल साखूका वृक्षउखाड़-
र प्रहस्तके रथके घोड़ोंको मारडाला और उसका धनुषभी काट दिया जिससे
ह मूशल ले रथसे उतर पड़ा और महान्ध हाथीके तुल्य नीलसे भिड़ गया।
हस्तने बड़े बलसे नीलके मस्तकपर अपने मूशलका प्रहार किया। नीलके
थेसे लोहूकी धारा बहने लगी। परन्तु उसकी चिन्ता न कर नीलने एक
ाला उखाड़कर प्रहस्तके शिरपर पटक दिया जिससे उसकी तत्क्षण
त्युहोगई। प्राणहत प्रहस्त कटे वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके
ार और शरीरसे रक्तस्राव होने लगा। प्रहस्तका बधकर नील बड़ा हर्षित
आ। राक्षस उदासीन हो लंकाको भाग गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ सर्ग

राम—रावण युद्ध

नील द्वारा प्रहस्तके मारे जानेपर रावणको बड़ी चिन्ता हुई। उसने
ोचा अब मैं स्वयंही समर-भूमिको जाऊँगा। फिरतो शंख भेरी और नरसिंह
ादि बजाकर वीरोंके सिंहनाद द्वारा स्तुति सुनकर पर्वताकार, मेघाकार
ौर अग्निके समान प्रकाशित् नेत्रवाला रावण राक्षसों सहित युद्धके लिए
ला। तब उसकी प्रचंड राक्षस सेनाको देखकर राम विभीषणसे बोले-अहो
िभीषण! यह पताका, छत्र, खड्गादि आयुधों तथा राक्षसों युक्त, बहुत
ाथियोंसे सेवित अचल किसकी सेना है? तब विभीषणने सब राक्षसोंका
र्नन कर कहा कि यह अरुणमुखवाला हाथीपर चढ़ा दूसरा अकम्पन है तथा
ह पताकावाले रथपर बड़े-बड़ेदाँतों वाला मेघनाद और विन्ध्य-सा शरीर-

वाला रथारूढ़ जो धनुर्टङ्कोर करता है वह अतिकाय और जो घंटा बजते हाथीपर सवार कठोर शब्द करता आता है, वह महोदर है। वह बैलपर चढ़ा त्रिशिरा तथा चौड़ी छातीवाला जिसकी पताकामें शेषका चिन्ह है—निकुम्भहै और वह जो अति उच्च रथपर आता है वह नरान्तक है तथा वह जो नाना व्याघ्र, ऊँट, हाथी, मृग और अश्वमुखके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले भृत्योंके साथ शोभित है तथा जिसके ऊपर सूक्ष्म कमानीका छत्र लगा है, वह राक्षसेन्द्र रावण है। यह सुनकर राम बोले—'अवश्यही रावणकी दीप्ति तथा तेज प्रशंसनीय है। यह रावणतो सूर्यके तुल्य दुष्प्रेक्ष्य है जिसके तेजके कारण इसका रूप ज्ञातही नहीं होता। इसके शरीरके समान तो देव दानवोंमें कोई नहीं है और इसके सब योद्धाभी पर्वताकार और प्रदीप्त शस्त्रधारी हैं। यह हर्षकी बात है जो आज यह मेरे समक्ष आया है।' ऐसा कह लक्ष्मणको अपने पीछेकर श्रीरामचन्द्र धनुष बाण हाथमें ले खड़े होगये। इतनेमें रावण बानरोंके सागररूप जलसमूहको विदारने लगा। तब रावणको समक्ष आये देख सुग्रीव एक विशाल पर्वत उखाड़कर उसकी ओर दौड़कर उस पर्वत शृङ्गको उसके ऊपर फेंक दिया। परन्तु रावणने तत्क्षणही बाणोंसे उसे काट गिराया। साथही सुग्रीवको मार डालनेके लिएभी उसने एक ऐसा बाणछोड़ा कि जो सुग्रीवको भेदन करता हुआ दूर जा गिरा। सुग्रीव मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिर पड़े। सुग्रीवको मूर्च्छित हुआ देख राक्षसोंने बड़ा हर्ष-नाद किया। यह देख नीलादिक बानर एक स्वरसे रावणपर पर्वत-शिखर फेंकने लगे; परन्तु रावणने अपने बाणोंसे उनके सब प्रहारोंको छिन-भिन्न करदिया। साथहीसब वानरोंको ऐसा मारा कि वे पीड़ित हो रामकी शरणमें भाग गये। फिरतो श्रीरामचन्द्र धनुष उठाकर रावणसे युद्ध करने चले। किन्तु लक्ष्मणने कहा— नहीं, इस दुष्टात्माका तो बध करनेमें मैं समर्थ हूँ, अतः आप मुझकोही आज्ञा दीजिए। यह सुन रामने कहा—अच्छा, तुम्हीं जाओ। पर यत्न पूर्वक कार्य करना। क्योंकि रावण बड़ा वीर्यवान् है। निदान रामको प्रणामकर लक्ष्मण आगे बढ़े। आगे रावण वानरोंपर अपने बाण वर्षाताही रहा। यह देख हनुमान् उसके बाणजालोंको विदीर्ण करते हुए रावणके रथपर टूट पड़े और बोले—देवतादि ऐसे तू अबध्य है, पर बानरोंसे तुझे भय है। इससे आज

ह मेरा दाहिना हाथ तेरे प्राणोंको बाहर निकाल देगा। रावणने कहा—हे
ानर ! तू निर्भय हो अपना हाथ चलाकर अपनी स्थिर कीर्त्ति प्राप्त कर
। फिर मैं तुझको मारूँगा। यह सुन हनुमान् बोले—मैंतो पहलेही तेरे पुत्र
ाक्षयको मार चुका हूँ, उसका स्मरण कर। यह सुनतेही रावणने हनुमान्के
ातीमें एक लात मारी, जिसके उत्तरमें हनुमान्नेभी एक ऐसा लात खींचकर
ारा कि रावण भूकम्पित पर्वतके समान काँपने लगा और व्याकुल होगया। उसे
ाकुल देख सब ऋषि और देवतादि हर्षित हो नाद करने लगे। तब किंञ्चित
श्रामकर रावण बोला—वानर ! शत्रु होनेपर भी तू प्रशंसनीय है। हनुमान्ने
हा—रावण ! तू जीवित रहा, इससे मेरे वीर्यको धिक्कार है। मूर्ख ! एक
ार तो तू मुझपर प्रहार कर। फिर तो मेरे एक ही मुष्टि-प्रहारसे यमपुर
हुँच जायगा। यह सुन रावणने क्रुद्ध हो बड़े यत्नसे अपना दाहिना मुक्का हनु-
ान्की छातीमें मारा। उसके लगनेसे हनुमान् व्याकुल हो गए। रावण अपने
थपर जाकर वानरोंपर वाण वर्षाने लगा। तब नीलने रावणका सामना
िया। रावण नीलको मारने लगा। नील अपना बहुत छोटा रूपकर रावण
ी ध्वजापर कूद गए। फिर कभी ध्वजाके आगे और कभी धनुषके आगे
ा रावणसे युद्ध करने लगे। यह देख लक्ष्मण और हनुमान् सहित रामको
ड़ा आश्चर्य हुआ। स्वयं रावण भी नीलकी लाघवता देख बड़ा विस्मित
ुआ। वानर हर्ष-नाद करने लगे। वानरोंके नादसे रावण बड़ा क्रोधित
ुआ। फिर तो आग्निक अस्त्रका प्रयोगकर उसने नीलको मार देना चाहा।
रन्तु नील मूर्छित होकर ही रह गया। अब रावण लक्ष्मणकी ओर चला।
क्ष्मणने कहा—राक्षसेन्द्र ! वानरोंसे क्या लड़ता है ? अब मेरा बल देख।
ावणने कहा—विपरीत बुद्धि होनेसे ही तुम मेरे समक्ष आए हो। परन्तु इसी
ण यमपुरको प्रयाण करोगे। लक्ष्मणने कहा—महाप्रभाव वाले गर्जते नहीं;
रन्तु तू पापी है, इसीसे बकता है, मैं तेरे बल और पराक्रमको जानता हूँ,
्यर्थ बकनेसे क्या ? यह सुन रावणने क्रुद्ध हो एक साथही सात वाण
क्ष्मणपर चलाया, जिसे लक्ष्मणने अपने तीक्ष्ण वाणोंसे काट डाला। उस
र रावणने और तीक्ष्ण वाण छोड़ा। लक्ष्मणने उन्हें भी काट डाला। यह
ख रावण बड़ा विस्मित हुआ और उसने तत्क्षणही फिर कई तीक्ष्ण वाण

छोड़े । लक्ष्मण सबको काटतेही रहे । पश्चात् लक्ष्मणने भी रावणके बधार्थ कई तीक्ष्ण वाण छोड़े, जिन्हें रावणने काटकर गिरा दिया । फिर रावणने स्वयंभूकृत नामक वाण चलाया जो लक्ष्मणके मस्तकमें जा लगा। उससे लक्ष्मण किंचित विचलित-से हो गए। परन्तु तत्क्षणही सावधान हो लक्ष्मणने एक प्रचंड वाण मारकर रावणका धनुष काट दिया और कई पैने वाण मारकर उसे मूर्छित भी कर दिया । तब उस वाणसे ताड़ित हो रावणने ब्रह्मा की दी हुई प्रचण्ड शक्तिको ग्रहणकर लक्ष्मणपर चला दिया। शक्तिके लगतेही लक्ष्मण पृथ्वीपर गिर पड़े । उनको व्याकुल देख रावण अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर लक्ष्मणको उठाने लगा । यद्यपि हिमवान और सुमेरु पर्वत सहित त्रयलोक्यको भी रावण उठा लेता था, परन्तु लक्ष्मणको न उठा सका । क्योंकि वे श्रीरामका स्मरणकर रहे थे । तब लज्जित हो देवशत्रु रावण लक्ष्मणको अपनी भुजाओंसे और पीड़ित करने लगा; परन्तु लक्ष्मण चलायमान न हुए । उसी समय क्रुद्ध हनुमान्ने दौड़कर रावणकी छातीमें जो एक प्रचंड घूँसा मारा तो वह मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके मुखों, नेत्रों और कानोंसे रक्त बहने लगा तथा वह व्याकुल हो गया । तब रावण को युद्धमें व्याकुल देख देवताओं, ऋषियों और वानरोंने बड़े हर्षका शब्द किया । पुनः हनुमान् लक्ष्मणको दोनों भुजाओंसे उठाकर रामके पास लाए। हनुमान्के सौहार्द और रामकी भक्तिसे यहाँ आतेही लक्ष्मणको वह शक्ति छोड़ रावणके रथपर जा बैठी । उधर मूर्च्छा व्यतीत होनेपर रावणने फिर हाथमें धनुष-वाण ग्रहण किया । अब राम रावणसे युद्ध करने चले। हनुमान् ने रामको अपनी पीठपर चढ़ा लिया । रावण अपने रथपर बैठा था। रामने रावणको देख उसका सामना किया । पहुँचतेही उन्होंने अपने धनुषकी प्रत्यंचासे बड़ा कठोर शब्द किया । फिर गंभीर स्वरमें रावणसे बोले—अब तू मुझसे जीता न बचेगा । जिस शक्तिसे तूने लक्ष्मणको मारा है, अब वही पुत्र-पौत्र सहित तुम्हारे मृत्युका कारण होगी । मैं वही हूँ जिसने जनस्थान निवासी चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया है । तब हनुमान्पर आरूढ़ रामके ये वचन सुन रावणने क्रुद्ध होकर कालाग्निके समान प्रकाशित वाण उनपर छोड़ा जिनसे ताड़ित होनेपर हनुमान् और भी अधिक तेजस्वी हो

ाए। रामने देखा कि हनुमान्‌की पीठमें घाव हो गया है। इससे वे कुपित हो अपने तीक्ष्ण वाणोंसे रावणके ध्वजा, पताका, सारथि और खड्गादि सहित रथको काटकर गिरा दिया। फिर एक वाण शीघ्रतासे रावणकी छाती में मारा जिसके लगनेसे पीड़ित हो रावणने हाथसे धनुष छोड़ दिया और विह्वल हो रामकी ओर देखने लगा। फिर तो उसी समय रामने अर्द्ध चन्द्राकार वाण ले उसका मुकुटभी काटकर गिरा दिया। मुकुटके कट जानेसे रावण ऐसाही श्रीहत हो गया जैसे विष सहित सर्प हो। तब रामने कहा—हे रावण! अबतक मेरे वीरोंको मारकर तुमने बड़ा काम किया है, जिससे थक गए हो। इस कारण मैं तुमको अभी नहीं मारूँगा। जाओ, रात्रिभर विश्रामकर कल फिर आकर मेरा बल देखना। यह सुन दर्पहत रावण लज्जित हो लंकाको चला गया। इसप्रकार देवशत्रु महाबली राक्षसेन्द्रके लंका चले जाने पर लक्ष्मण सहित रामने सब बानरोंको शल्य-रहित किया। देव-शत्रुके इस पराजयसे देवता, दैत्य, भूतगण, दिशा और जलचर-थलचरके सभी प्राणी आनन्दित हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

साठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णका जगाया जाना

अब रामके वाणोंसे दर्पहत रावण लङ्कामें जाकर औरही व्यथित हुआ। ब्रह्मदण्डके समान रामके सफल वाणोंसे वह कदापि शान्ति नहीं पाता था। पश्चात् वह व्यथित रावण सुवर्णमय सिंहासनपर बैठ राक्षसोंकी ओर देखकर बोला—आज मेरी सारी तपस्या विफल हो गई। मैं मनुष्यसे हार गया। ब्रह्माका वह बचन कि मनुष्योंसे तुमको भय होगा—मेरे आगे आया। अब मैं समझ गया कि रामही मेरी मृत्युका कारण है। इक्ष्वाकुवंशीय अनरण्यने मुझे जो शाप दिया था कि 'मेरे ही कुलका एक पुरुष तुझे युद्धमें मारेगा वह मेरी समझमें आया। वेदवतीको घर्षित करनेका कुफल मुझे मिला। वेदवती के समानही यह सीता उत्पन्न हुई। रम्भा और वरुणकी कन्याने भी मुझे ऐसाही शाप दिया था। ऋषियोंके वचन व्यर्थ नहीं जाते। इससे अब आप सब मेरे लिए कोई यत्न करें। अब राजमार्ग में सब राक्षस शीघ्र स्थित हों

और कुम्भकर्णको जैसे भी संभव हो, जगावें। अभी वह नौ दिनसे ही सोया है और नौ, सात, आठ और दश महीने तक सोताही रहेगा। वह उठतेही युद्धमें सब बानरों सहित रामको मार डालेगा। कुम्भकर्ण जाग जावे, फिर यदि मैं रामसे हार भी जाऊँगा तो मुझे इसका कोई दुःख न होगा। यदि मेर ऐसे दुःखमें भी कुम्भकर्णने सहायता न की तो उससे प्रयोजनही क्या? रावणकी आज्ञा सुन सब राक्षस शीघ्रतासे कुम्भकर्णके पास उसे जगाने गये। साथमें चन्दनादि सुगन्धित वस्तुएँ और विविध प्रकारके भोज्य पदार्थ भी ले गये। कुम्भकर्ण चार कोसकी विस्तीर्ण गुफामें सोया था जिसमें उसके शरीर से निकली श्वासमें इतना वेग था कि राक्षस उसके निकट तक पहुँचनेमें कम्पित हो रहे थे। बड़े कष्टसे वे सब उसमें प्रवेश कर सके। निकट जाकर देखा तो कुम्भकर्णके सब रोम ऊपर खड़े थे और वह उर्धश्वासें ले रहा था। उसका भीम नासापुर ऐसा था जैसे बड़ा पाताल हो। सुवर्णका बहुँटा और सुवर्णहीका किरीट धारण किए उसे इस प्रकार सोते हुए राक्षसोंने देखा। फिर उसके खानेके लिए बहुतसे मृगों, महिषों, शूकरोंको बाँध अन्नोंका बड़ा ढेर राक्षसोंने लगा दिया और धूप गन्ध देकर स्तुति आरंभकी। सबने एक स्वरसे बहुतसे श्वेत शंख बजाये। जोर-जोरसे पुकार किया। पैर पकड़ कर पटकने और शब्द करने लगे। परन्तु जब इतने पर भी कुम्भकर्ण न जागा, तब सब राक्षसोंने भुसुण्डी, मुद्गर और गदा आदिक शस्त्रसे और घूँसोंसेभी उसकी छातीपर प्रहार करने लगे। उस समय कुम्भकर्णकी निःश्वासके समक्ष राक्षस वहाँ ठहरभी नहीं पाते थे। तब सब राक्षस मृदंग, तुरुही, शंख, नगाड़े तथा घंटे आदि बजाकर जगाने लगे। कुल दस हजार राक्षस एक स्वरसे कुम्भकर्णके जगानेमें लगे थे। परन्तु जब इस प्रकारभी कुम्भकर्ण न जगा, तब तुमुल स्वरसे सब बाजे बजा घोड़े हाथी आदिको दण्ड देकर उनसे उसे मरवाने लगे। बड़े-बड़े काष्ठ उसके शरीरपर पीटने लगे। मूसलोंसे भी पीटना आरंभ किया, जिस नादसे लंका पूर्ण हो गई, पर कुम्भकर्ण न जागा। तब उसे सिकड़ों आदिसे बाँधकर उसके शरीर पर सहस्रों हाथी दौड़ाये गये। ऐसा करने पर कुम्भकर्ण जागा और यह सब उसे स्पर्श-ज्ञान हुआ। निद्रासे जागते ही उसे भूख लगी और वह जँभाई लेता हुआ उठ खड़ा हुआ।

हाथ उठा और मुँह फैलाकर उसकी वह जँभाई बड़ी ही विकराल थी। जँभाते हुए उसका मुख उदित सूर्यके समान दिखाई देने लगा। उस समय वह युगान्तक काल-सा प्रतीत हुआ। फिर तो राक्षसों ने महिष शकरादि तथा विविध प्रकारके उसे भोजन दिये, जिन्हें वह सब भक्षणकर गया और प्यास लगने पर रुधिर और चरबी पीकर, मदिराके कुम्भ पान करने लगा। जब राक्षसोंने देखा कि अब यह तृप्त हो गया तो समक्ष आ आकर सबने प्रणाम किया और घेर कर खड़े हो। तब उसने उन सब राक्षसों को पहले शान्त कराया और फिर आश्चर्यमें होकर पूछा—तुम लोगोंने मुझे क्यों जगाया, कुशल तो है? राजा को किसीसे कुछ भय तो नहीं है। मैं आज ही रावण का भय निवारण कर दूँगा। मैं समझ रहा हूँ कि किसी अल्प कारणके लिए मुझे कोई जगाता नहीं। इससे शीघ्र बताओ कि किस कारण मुझे जगाया गया है? जब इस प्रकार क्रुद्ध होकर कुम्भकर्णने अपने मन्त्री यूपाक्षसे पूछा, तब वह हाथ जोड़कर वह सब समाचार निवेदन कर दिया कि, जिस प्रकार मनुष्य द्वारा राक्षसों पर विशाल आपत्ति आई थी। साथ ही यह भी कह दिया कि, कलके युद्धमें मनुष्य रामने राक्षसेन्द्र रावण को जीवन-मृत करके ही छोड़ दिया है। जैसा रामने किया ऐसा कोई भी महाराजके साथ नहीं कर सका था। तब अपने भाईके इस अपमान को सुनकर कुम्भकर्ण बोला—यदि ऐसी बात है तो चलो, मैं आज ही ससैन्य राम लक्ष्मण को मार कर तब भाई रावणके दर्शन करूँगा। आज मेरे सभी राक्षस वानरों के रक्त मांससे तृप्त हो जायँगे तथा राम-लक्ष्मणका रक्त तो मैं पान करूँगा। तब राक्षसों में मुख्य महोदरने कहा—महाबाहो! पहले रावण की बात सुन लीजिए, फिर शत्रुओं को जीतिये। कुम्भकर्ण कहा—बहुत अच्छा! ऐसा कहकर आसनसे उठा और पीनेकी और भी वस्तु माँगने लगा। राक्षसोंने तत्काल मद्यमांसादि भक्षण पानकी सामग्री लाकर उसके समक्ष रख दिये। तब मदिराके दो हजार घट पानकर उसने रावणके पास गमन किया। उसके चलते धरती काँपने लगी। उसके तेजसे राजमार्ग प्रकाशित हो गया। फिर तो वह अपने भाईके घर आ, सब बातें सुन शीघ्र ही राम की सेना की ओर चल पड़ा। तब उस पर्वत शिखर तुल्य अनुपम कुम्भकर्णको आते देख वानरोंकी सेना भयभीत हो

गई और बहुतसे बानर भागकर रामकी शरणागत हुए। बहुतसे बानर इधर-उधर भागने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥६०॥

एकसठवाँ सर्ग

विभीषण द्वारा कुम्भकर्णका परिचय

तदनन्तर किरीटधारी कुम्भकर्णको देखकर महातेजस्वी रामने विभीषणसे पूछा कि, यह मुद्रा पर्वतके समान, सजल विशाल मेघकी-सी कान्तिवाला लंकाका कौन राक्षस है जो अकेलेही मुझसे युद्ध करने आ रहा है। ऐसा पर्वताकार अति प्रचंड पुरुष राक्षस है या असुर। इसप्रकारका प्राणी तो हमने आजतक कहीं नहीं देखा है। यह समस्त पूर्वी आकाशको व्याप्त किए नारायण सदृश कौन है? इसके देखनेसे तो समस्त बानर सेना इधर-उधर भाग रही है। तब उदारकर्मा राजपुत्र रामके इसप्रकार पूछनेपर विभीषणने कहा—यह विश्वस्रवाका पुत्र कुम्भकर्ण हो सकता है, जिसकी विशालतामें अन्य कोई राक्षस नहीं है। इसन युद्धमें इन्द्र और यमको भी पराजित कर दिया है। इस महाबली कुम्भकर्णको हजारों, देव, दानव, यक्ष सर्प, राक्षस, गन्धर्व और विद्याधर कोई भी जीत नहीं सके हैं और सबने यही समझा कि 'यह काल है।' यह सभी राक्षसोंकी अपेक्षा बड़ा तेजस्वी है। वरदानके कारण ही यह इतना बली है कि जन्म लेते ही इसने सैकड़ों प्रजाओंका भक्षणकर लिया था। तब देवताओंने जाकर इन्द्रसे प्रार्थनाकी तो इन्द्रने इसपर अपना वज्र छोड़कर इसका वेग कुछ न्यूनकर दिया। परन्तु तब भी यह हाथ पैर पटकता ही रहा और ऐसा गर्जन किया कि पहलेकी भयभीत प्रजा और भी त्रस्त हो गई। इसपर कुम्भकर्ण कुपित हो इन्द्रपर चढ़ दौड़ा और वहाँ जाकर ऐरावतका दाँत उखाड़कर इन्द्रके वक्षःस्थलपर प्रहार कर दिया। इससे ब्रह्मर्षि और दानव सभी खिन्न हो ब्रह्माके पास गये और कुम्भकर्णका किया हुआ कर्म निवेदन किया और कहा कि 'यदि यह इसीप्रकार नित्य प्रजाओं-का भक्षण करता रहेगा तो अल्प समयमें ही सम्पूर्ण जगत शून्य हो जायगा। तब ब्रह्माजीने सब राक्षसोंको बुलाकर जो देखा तो कुम्भकर्ण अवश्य ही बड़ा भयानक प्रतीत हुआ। उन्होंने कहा विश्वस्रवाने निश्चयही

लोकनाशार्थ तुम्हारा निर्माण किया। अतः तुम आजसे मृत्यु तुल्य निद्रामें ही स्थिरहो। यह सुन रावणने ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणामकर रोते हुए बड़ा निवेदन किया कि, आपने ही स्वयं उत्पन्न कर, स्वयंके संविधिको इसप्रकार आप नष्ट न कीजिए। यह न्याय भी नहीं है। आपका वचन भी मिथ्या नहीं हो सकता। अतः यह अवश्य ही निद्रित रहे परन्तु इसकी निद्रा और जागरण का एक समय आप निश्चित कर दें। रावणकी इस प्रार्थनापर ब्रह्माजीने कहा—अच्छा, यह छः मास सोनेपर एक दिन जागता रहेगा और इसमें यह बुभुक्षित होकर अग्निवत् सबका भक्षण करेगा। हे राघव! राक्षसेन्द्र रावण सम्प्रति आपसे भयभीत होकर ही अब कुम्भकर्णको जगाया है। अब यह भयंकर पराक्रमी, वीर कुम्भकर्ण, अपने गृहसे बाहर निकल, अत्यन्त क्रोधित होकर बानरोंको भक्षण करनेके लिए यत्र-तत्र दौड़ रहा है। अतः वानरोंसे कह देना चाहिए कि यह रावणका भाई कुम्भकर्ण है, भागो नहीं। यह सुन, रामने जो सेनापति नीलको आज्ञा दी तो उसने जाकर सब बानरोंको समझाकर खड़ा किया। वानर निर्भय हो, वृक्षों और पत्थरोंसे राक्षसोंको मारने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका इकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

बासठवाँ सर्ग

रावणका कुम्भकर्णको उत्तेजन

इसप्रकार जब राक्षस शार्दूल निद्राके मदसे व्याकुल राजमार्गमें चला तो हजारों राक्षस उसे घेरकर चले तथा अन्य सब अपने घरोंसे उसपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। जब वह रावणके मन्दिरमें पहुँचा तो दूर ही से देखा कि रावण उदास बैठा है। परन्तु कुम्भकर्णको देखते ही वह अति प्रसन्न हो उठकर उसे अपने पास ले आया और स्वयं आसनपर बैठ गया। कुम्भकर्णने भाईको प्रणाम किया और कहा कि क्या करना है। यह सुन रावणने कुम्भकर्णको हर्षित हो हृदयसे लगा लिया और बैठनेके लिए उत्तम आसन दिया। कुम्भकर्णने पूछा—इतनी सामग्रीयुक्त आपने मुझे क्यों जगवाया है। आज कहाँसे भय है? रावणने कहा—तुम्हारे अतिकालसे सोनेके कारण आज जो रामसे मुझे भय प्राप्त हुआ है, तुम नहीं जानते।

वे राम सुग्रीव सहित सागर को पारकर यहाँ आ गए हैं और हमारे कुल का विनाश किया चाहते हैं। देखो, लंकाके सब वन-उपवन उजड़े पड़े हैं। वानरोंने सभी मुख्य-मुख्य राक्षसों को युद्धमें मार डाला है। इसलिए मुझे भय उत्पन्न हो गया है। हे महाबल! अब मेरी रक्षा करो। तुम आज ही इन सबों को मार डालो। हे महाबाहो! अब भाईके लिए यह दुष्कर कर्म करो। मैं तुमसे बड़ी आशा रखता हूँ। देवासुर संग्राममें तुम अनेक बार युद्ध किए हो और देवताओंको विजय किया है। इसलिए हे भीम-पराक्रमी! तुम अपने बलपर आरूढ़ होओ! तुम्हारे समान बली कोई नहीं है। हे संग्रामप्रिय! हे माधवप्रिय! तुम हमारे प्रिय तथा उत्कृष्ट वचनोंके अनुसार आक्रमण कर अपने तेजसे शत्रु-सेनाको वैसे ही उड़ा दो, जैसे प्रचण्ड वायु शरतके मेघ को उड़ा देता है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्ड का बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ सर्ग

रावण और कुम्भकर्ण की वार्त्ता

रावणके इस विलापको सुनकर कुम्भकर्ण हँसने लगा और बोला— महाराज! आपको तो सभी मन्त्रियों और भाई विभीषण तथा मन्दोदरीने भी समझाया; परन्तु आपने किसी का कहना नहीं माना और स्वयंके हठ पर दृढ़ रह सब कुछ अनीतिके कार्य किया फिर मैं क्या कहूँ? देश कालके कृत कर्म तो विपरीत फल देते ही हैं। मुझे भी तो उन सबकी ही सम्मति अच्छी लगी। अपने सुहृदों से पूछकर ही, फिर अपनी बुद्धिसे विचार कर किया कर्म अच्छा होता है। जो पुरुष समय पर धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है, वह सुखी होता है और जो नहीं मानता वह चाहे राजा हो या राजपुत्र, बहुत सुनने का कुछ भी फल नहीं होता। मूर्खों की बात तो कभी माननी ही न चाहिए। जो राजा शत्रुको हेय समझ अपनी रक्षा नहीं करता, वह अनर्थोंको ही पाता है।' कुम्भकर्ण का इन बातोंको सुनकर रावण क्रोधसे पूर्ण हो गया और बोला—'मैं तुम्हारा गुरुके समान पूजनीय हूँ। तुम मुझे क्या शिक्षा देते हो? जो मैंने कहा है, वही करो। विक्रम, ज्ञान तथा दर्पसे मैंने अब तक जो कुछ किया अब उसे ही कहना व्यर्थ है। अब इस समय जो आवश्यक है, उसका विचार करो। सुहृद वही है जो दुःखीका भी साथ देता

और वही बन्धु है जो अनीतिकारी बन्धुकी सहायता करे।' अब रावणको
दुद्ध जान कुम्भकर्णने धीरेसे यह मधुर वचन कहा कि 'आप कुछ भी सन्ताप
 कीजिए। मैंने यह जो कुछ कहा है, वह बन्धुभावके स्नेहसे आपके हितके
लिए कहा है। आप जिससे दुःखी हैं, मैं उनको मार डालूँगा। जो आपके
प्रिय बन्धुके लिए करना चाहिए, मेरे द्वारा अब आप अपने शत्रुओंका परा-
भव देखिए। आज राम-लक्ष्मणके मारे जानेपर वानरोंकी सेनाको पलायन
करते हुए आप देखेंगे। आज मेरे द्वारा लाया हुआ रामका शिर देख आप
सुखी होंगे। आज मैं युद्धमें रामको मार अपने इन शोकयुक्त निशाचरोंके
आँसू पोछूँगा। आज वानरराजको आप युद्धमें मरा हुआ देखेंगे। मुझसे
रक्षित आप दुःखी क्यों होते हैं। पहले राम मुझे मार ले; तब आपको मार
सकेगा। मुझसे बढ़कर ऐसा कौन है जिसकी ओर आप देखेंगे। मैं अकेलेही
आपके सब शत्रुओंका संहार कर डालूँगा। अब मैं दशरथपुत्र रामके वधार्थ
तथा आपके सुखार्थ यहाँसे प्रस्थान करता हूँ। आज लक्ष्मण सहित रामका
वध करके मुख्य-मुख्य सब वानरोंका मैं भक्षण कर डालूँगा। अब आप
मद्यपानकर आज क्रीड़ा कीजिए और शोक त्यागकर जो कुछ भी करना हो
कीजिए। मैं रामको यमलोक पहुँचाकर ही छोड़ूँगा। अब चिरकाल तक
सीता आपके स्वाधीन रहेगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६३॥

चौंसठवाँ सर्ग

महोदरकी कुम्भकर्णको फटकार

कुम्भकर्णका यह वचन सुनकर महोदर नामक मन्त्री बोला—कुम्भकर्ण!
तुमको बड़ा गर्व है। इससे तुम बड़े धृष्ट हो। क्या राक्षसेन्द्र रावण तुम्हारी
शिक्षाके योग्य हैं जो इन्हें नीति सिखलाते हो? इन राक्षसेन्द्र रावणको सब
कुछ ज्ञात है। कर्महीं सब कारणोंका प्रयोजन है। तुम कहते हो कि मैं
अकेलेही जाकर सबको मार जाऊँगा। परन्तु क्या तुम नहीं जानते कि,
अकेले रामने ही जनस्थानमें बहुतसे राक्षसोंको मार डाला था। फिर उन्हें
तुम कैसे जीत सकोगे। राम असह्य हैं, उनको कौन भय दे सकता है? इस-
लिए तुम्हारा अकेले जाना उचित नहीं। तुम इन्द्रसम रामसे अकेले क्या

युद्ध करोगे? कुम्भकर्णसे ऐसा कह चुकनेपर महोदरने रावणसें कहा—आप तो बहुत पहले ही सीताको प्राप्तकर चुके हैं। जब चाहिएगा, सीता आपके वशमें हो जायगी। अभीआप कुछ और छलकर उसे अपनानेकी चेष्टाकीजिए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा पद्मम् युद्धकाण्डका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६४॥

पैंसठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णकी रण-यात्रा

तब ऐसा कहते हुए महोदरको कुम्भकर्णने बहुत फटकारा और रावण से कहा कि, हे भाई! यह महोदर तो कायर और महादुष्ट है, आप इसकी बातोंमें न आइयेगा। मैं तो अकेले ही उस दुरात्मा रामको मारकर आप-का भय निवृत करदूँगा। तब कुम्भकर्णकी बात सुनकर रावणने उसकी बड़ी प्रशंसाकी और कहा—हे तात! निसन्देह यह महोदर रामसे बहुत भयभीत हो गया है, इसीसे इसको युद्ध नहीं रुचता है। हे कुम्भकर्ण! तुम्हारे जैसा हमारे यहाँ और है ही कौन? अतएव, शत्रुओंको मारने और जीतनेके लिए तुम जाओ। शत्रु-नाशके लिए ही तुम्हें जगवाया है। अतः यमके समान तुम शूल हाथमें लेकर जाओ और वानरों सहित राम लक्ष्मणको खा डालो। तुम्हारा रूप मात्र देखकर वानर तो योंही भाग जायँगे। कुम्भ-कर्णसे ऐसा कहकर रावणने अपना नया जन्म माना। क्योंकि वह कुम्भकर्णके पराक्रमको भलीभाँति जानता था। कुम्भकर्ण हर्षित हो युद्ध करने चला। उसने पैना काला लोहे का अति प्रकाशित शूल धारण किया जो इन्द्रके वज्रके ही समान था। उसने लाल फूलोंकी माला धारणकी और अग्निके तुल्य प्रज्वलित हो रावण से कहा कि मैं अकेलही जाता हूँ, यह विशाल सेना यहीं रहे। इसपर रावणने कहा—नहीं, तुम शूल, मुद्गर धारणकर सैनिकोंके साथ जाओ क्योंकि वानरगण बड़े ही शूर और उद्योगी हैं। वे अकेले तुमको दाँतोंसे काटकर मार डालेंगे। इसलिए सैनिकोंको साथ ले जाओ। इतना कह रावण-ने उठकर मणिकी एक माला कुम्भकर्णके गलेमें पहना दी। फिर बहुँटे और मुँदरी आदि आभूषण तथा बढ़िया हार भी पहना दिया। साथ ही पुष्पमाला और कानोंमें कुण्डलभी पहनाया। यह सब धारणकर कुम्भकर्ण

प्रज्वलित अग्निके समान शोभित होने लगा। फिर विद्युतके समान चमकता हुआ कवच धारणकर वह सुमेर-सा शोभित हुआ। इसप्रकार वह त्रिविक्रम के समान शोभित हो रावणका आलिङ्गन और प्रदक्षिणाकर महाबली कुम्भकर्ण प्रस्थित हुआ। फिरतो उसके साथ अगणित शस्त्रधारी राक्षसोंकी सेना पीछे-पीछे चली। उसके देहकी चौड़ाई एक सौ धनुष और ऊँचाई छः सौ धनुष थी। गाड़ीके पहियेके समान उसके नेत्र थे तथा महापर्वतके समान उसकी आकृति थी। वह उग्र दग्ध हुआ सा दीख पड़ता था। इस प्रकार चलते हुए, कुंभकर्ण एक स्थान पर व्यवस्थित रूपसे अपनेको खड़ा करके हँसते-हँसते बोला—'जिस प्रकार दग्ध अग्नि पतङ्गाको जला देता है, उसी प्रकार क्रुद्ध हुआ आज मैं मुख्य-मुख्य वानरोंकी सेनाको दग्ध कर डालूँगा। परन्तु वनचर वानरोंने तो वास्तवमें मेरा कुछ अपराध नहीं किया है। वह जाति तो हमारे जैसे नागरिकोंके लिए आभूषण है। हमारे नगर पर जो यह घेरा पड़ा है इसके मूलमें तो राम लक्ष्मण हैं। अतः उनका बध करनेसे सबका वध हो जायगा, इस लिए संग्राममें मैं उसीको मारूँगा। यह सुनकर अन्य राक्षसोंने भयंकर गर्जना की। जब कुंभकर्ण वहाँ से चला तो उसे चारों ओर से भयंकर अपशकुन होने लगे। परन्तु शरीरको रोमांचित करनेवाले उन सब बड़े उत्पातोंको पर्वा न करता हुआ कुंभकर्ण लंकाके बाहर निकल पड़ा। तब उसने देखा कि लंकाके चतुर्दिक परकोटोंके पार मेघतुल्य अद्भुत वानर-सैन्य पड़ा है। जब वानरों की दृष्टि कुंभकर्णपर पड़ी तो वे वायुके समान इधर-उधर भागे। यह देख कुंभकर्ण मेघके समान भयंकर गर्जन करने लगा। उसकी गर्जन सुनकर बहुतसे बानर पृथ्वीपर गिर पड़े।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त॥ ६५॥

छाछठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णको देख वानरोंका बृहत् पलायन

तब बानरोंको इस प्रकार भागते देखकर अङ्गदने कहा—हे बीरों! लौट आओ, लौट आओ, प्राणोंकी रक्षा क्या करते हो? यह राक्षस युद्धमें कुछ भी समर्थ नहीं, केवल भय मात्र है। फिर तो बड़े कष्टसे सब बानर हाथोंमें

वृक्ष लेकर युद्धमें खड़े हो गये और कुम्भकर्णको मारने लगे। किसीने शृङ्गोंसे, किसीने पाषाणोंसे और किसीने वृक्षोंसे कुम्भकर्णको मारा। परन्तु कुम्भकर्ण कम्पित न हुआ। उसके शरीरमें लगकर शिलाएँ फूट गईं और वृक्ष टूट-टूटकर गिर पड़े। फिर तो कुंभकर्ण वानरोंकी सेनाको ऐसा मथने लगा कि बहुतसे वानर पृथ्वीपर लोटने लगे। बचे बचाये एक दूसरेको लाँघकर भाग चले। सभी भयभीत हो मृतकसे हो गये। कोई स्थिर न रह सका। अङ्गद बार-बार सबको लौटाते और कहते कि फिर युद्ध करो। क्योंकि तुम भागकर भी नहीं बचोगे। भागोगे तो स्त्रियाँभी तुम्हें हँसेगी। तुम प्रकृत वानर भी नहीं हो; फिर क्यों भागते हो? सत्पुरुषोंकी सेवा करने योग्य मार्गका अनुसरण करो और भय त्याग दो। यदि भागकर अपनी रक्षा करोगे तो तुम्हारी कीर्त्ति नष्ट होगी। वानरोंने कहा—यह कुम्भकर्ण तो हम लोगोंका बड़ा दाय कर रहा है। इसलिए हमलोग अपने अपने प्राण की रक्षार्थ भाग रहे हैं। ऐसा कह, कुम्भकर्णको आता देख, सब वानर फिर भाग चले। अङ्गदने फिर समझाकर सबको लौटाया।

इति श्रीमहात्माकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण-वध

अब अङ्गदके बार-बार रोकने और समझानेपर सब वानर प्राणपणसे युद्ध करनेपर प्रस्तुत हुए। उन्होंने बड़े-बड़े गिरि-शृङ्ग और वृक्ष अपने हाथोंमें उठा लिए और एक-स्वरसे कुंभकर्णपर प्रहार करना आरंभ किया। कुंभकर्णभी गदा लिए चारों ओरसे उन्हें मारने लगा। कुंभकर्णकी एक-एक झपटमें सात, आठ सौ और हजारोंकी संख्यामें वानर मरकर धराशायी होने लगे। वह बीस-बीस वानरोंको एक साथही पकड़कर खाता और युद्ध-भूमिमें दौड़ता। फिर भी वानर स्वस्थ चित्त हो वृक्ष पाषाण और शिलादि ले युद्ध भूमिमें जा खड़े होते। इसी समय द्विविद एक लम्बायमान पर्वत उखाड़कर उस पर्वताकार कुम्भकर्णपर दौड़ा और द्रुत वेगसे उसपर छोड़ दिया। उसके आघातसे राक्षसोंके बहुतसे हाथी घोड़े और सैनिक ध्वस्त हो गए। अन्य वानरोंनेभी बहुतसे राक्षसोंको वृक्षोंसे उनके रथों, घोड़ों ऊँटों और राक्षसोंको

ष्ट किया। वीर हनुमान् तो आकाशमें स्थित हो पर्वतोंके शिखर शिलाएँ और वृक्ष ले उसपर गिराने लगे। परन्तु उन सबको कुम्भकर्णने अपने शूल काट डाला। फिर वह शूल लिए सहसा समस्त बानर-सेनापर टूट पड़ा। व उसके आगे हनुमान् एक पर्वतही लेकर जा खड़े हुए और खींचकर ऐसा ारा कि उसके लगनेसे कुम्भकर्ण क्षुभित हो गया। किन्तु तत्क्षणही उसने अपना वह शूल हनुमान्की छातीपर चला दिया जिससे वे व्याकुल हो गए और उनके मुखसे रक्त प्रवाहित होने लगा। तब हनुमान्को कष्टमें देख राक्षसगण हर्षित हो नाद करने लगे और वानरगण युद्ध त्याग फिर भागने लगे। तब नीलने सब सेनाको लौटाकर एक गिरि-शृङ्ग कुम्भकर्णके ऊपर चलाया। कुम्भकर्णने उसे अपने मुष्टिकसे चूर्णकर दिया। किन्तु वह अपने शरीरसे चिनगारियाँ और ज्वाला छोड़ते हुए स्वयंभी पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर तो ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष और गाधधान ये पाँच पुङ्गव एकही साथ कुंभकर्णपर टूट पड़े और पाषाणों, वृक्षों, थप्पड़ों और लातोंसे मारने लगे, जिन प्रहारोंका उसपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा और उसने अपने हाथोंसे ऋषभको पकड़ लिया तथा अन्य बानरोंको भी हाथों और अपने लातोंसे रगड़कर पृथ्वीपर पटक दिया। फिर तो असंख्य वानर एक साथही दौड़कर उसपर चढ़ उसे यत्र-तत्र काटने लगे और नखों, दाँतों, घूँसों और भुजाओंसे कुंभकर्णको मारने लगे। उस समय कुम्भकर्ण कितने ही वानरों को पकड़कर भक्षण करगया। कितनोंको झुण्डके झुण्ड अपने मुखमें झोंक देता। परन्तु बहुतसे उसके नाक, कानसे बाहर निकल आते। तब कुम्भकर्ण फिर उठा। इधर बानरोंके बहुत-से सरदार मारे गए। जिससे बानर व्यथित हो भयङ्कर शब्द करने लगे। तब बानरोंको त्रस्त देख अङ्गद कुंभकर्णके साम्हने दौड़ चले और एक विशाल शिखरसे कुम्भकर्णके शिरपर प्रहार किया। इस शिखरके आघातसे कुम्भकर्ण बड़ा क्रोधित हुआ और शूल चला दिया। बुद्धिमान् अङ्गद बगल हटकर उसके आघातको बचा लिए। साथ ही जो उचककर बलपूर्वक एक लात कुम्भकर्णकी छातीमें मारा तो वह मूर्च्छित हो गिर पड़ा। क्षणभर मूर्च्छित पड़ा रहा। जब उठा तब उसने अङ्गदको भी बलसे एक घूँसा ऐसा मारा कि वह भूमिपर गिर

पड़ा और मूर्च्छित होगया। तब अङ्गदको वहीं छोड़ कुम्भकर्ण शूल ले सुग्री पर दौड़ा। सुग्रीवने एक पाषाण-शिला उठाकर उसकी छातीपर मारा परन्तु वह शिला चूर चूर हो गई और कुम्भकर्णको कुछभी चोट न लगी यह देख बानर हाहाकार करने लगे। फिरतो कुम्भकर्णने क्रोधकर बानरों को मारनेके लिए अपना शूल चलाया; जिसे हनुमान्‌ने पकड़कर तोड़ डाला इससे कुम्भकर्णको बड़ी चिन्ता हुई। परन्तु उसने तत्क्षणही मलयाचल एक शिखर उखाड़कर फेंक दिया। इसके लगनेसे सुग्रीव मूर्च्छित हो गि पड़े। राक्षसोंमें हर्षनाद होने लगा। कुम्भकर्ण मूर्च्छित सुग्रीवके पास पहुँ उसे उठा लङ्काकी ओर चला। उसने समझा कि मानों इसके मरनेसे राम सारी सेना मारी गयी। परन्तु हनुमान्‌के रहते यह कैसे संभव था? हनुमा सब बानरोंको समझा सुग्रीवको उसके हाथसे छुड़ानेका उपाय सोचने लगे इतनेमें कुम्भकर्ण सुग्रीवको ले लंकामें पहुँचा। उसपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। तब उसकी काँखमें पड़े जब सुग्रीवको कुछ चेतना आई तो वह उस छूटनेका उपाय करने लगे। सुग्रीवने झपटकर कुम्भकर्णके नाक और का काट लिये। तब तो कुम्भकर्णने झट सुग्रीवको पृथ्वीपर पटक दिया औ राक्षस उन्हें मारने लगे। परन्तु तब-तक सुग्रीव उछलकर आकाशको उ गये। कुम्भकर्णके शरीरसे रक्तका झरना चल पड़ा। वह अत्यन्तही लो लोहानहो हाथमें मुग्दर ले फिर संग्राम-भूमिको लौट पड़ा। अब वह फि बानर-सेनाका भक्षण करने लगा। बानरोंको ही नहीं; अब वह मोहातुर राक्षसोंकोभी पकड़कर चर्वण करने लगा। सब बानर भागकर रामकी शरण में गये और कहा कि, महाराज! वह तो सैकड़ों बानरोंको एक साथही पकड़ कर खा जाता है और दौड़ता है। तब बानरोंकी यह बात सुन सुमित्रानन्द लक्ष्मण क्रुद्धहो युद्ध करने चले। उन्होंने आतेही कुम्भकर्णको एक साथ सात बाण मारे, जिन्हें उसने तोड़ डाला। इसी प्रकार लक्ष्मणके औरभी ब प्रहारोंको उसने व्यर्थ कर दिया और कहा कि, लक्ष्मण! बस करो, मेरे साथ तु तो क्या; इन्द्रभी युद्धमें खड़े नहीं हो सकते। बोला, राम कहा हैं, पहले रामको मार लूँ, फिर और कोई आयेगा तो उनकाभी भक्षण करूँगा। लक्ष्मणने कहा अच्छा! यदि मरना ही चाहता है तो जा वह देख, पर्वतके समान निश्चल

राम वहाँ खड़े हैं। यह सुन लक्ष्मणकी अवज्ञा करता हुआ वह राक्षस रामको ओर दौड़ा। तब उसे अपनी ओर आते देख श्रीरामने उसके हृदयमें कई तीक्ष्ण वाण मारकर उसे घायल कर दिया। रामके तीक्ष्ण अघातोंसे उसके हाथसे गदा छूटकर गिर पड़ी और वह निरायुध हो वानरोंको अपने मूकोंसे मारने लगा। उसके शरीरसे अविरल रक्त-धारा बह रही थी और वह क्रोध-मूर्छित हो, वानरों, राक्षसों और रीछोंको खाता हुआ दौड़ रहा था। फिर उस महाग्रीव कुम्भकर्णने एक अति भयंकर गिरिशृङ्ग उठाकर रामके ऊपर चलाया जिसे श्रीरामने अपने वाणोंसे काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया और एक वाणसे उसका कवचभी काट डाला। उसके कवचके गिरनेसे भी दो सौ वानर मारे गये। तब कुम्भकर्णके मारे जानेका उपाय सोचकर श्रीलक्ष्मणने श्रीरामसे कहा कि, हे राजन्! कुम्भकर्ण तो मदान्ध है। देखिए, यह वानरों और राक्षसोंको नहीं पहचानता है और सबको भक्षण करता है। इससे सब वानर इस पर्वताकार कुम्भकर्णपर चढ़कर इसे बोझिल करदें। जिससे इसकी गति मन्द पड़ जाये। लक्ष्मणकी यह बात सुन बानर हर्षित हो उसपर चढ़ गये। पर उसने अपना शरीर हिलाकर सबको गिरा दिया। इससे अत्यन्त कुपितहो राम अपने धनुषकी प्रत्यंचापर कठोर बाण चढ़ा जो टंकोर किया तो वह राक्षसभी कुपितहो उनकी ओर दौड़ा और यह जानकर कि यही राम है—कुम्भकर्ण बड़े वेगसे हँसा और समरमें बानरोंको भगाता हुआ दौड़ने लगा। फिर रामसे बोला—मुझे विराध, कबन्ध, खर, वालि तथा मारीच न समझना। मैं कुम्भकर्ण हूँ-यह ध्यान रखो। यह काले लोहेका मेरा भयानक मुग्दर देखो। श्रवण, नासाहीन देख, मेरी अवज्ञा न करो। मेरे शरीरपर अपना पराक्रम दिखाओ। यह सुनकर रामने उसपर अपने तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करना प्रारंभ किया। परन्तु वह कदापि व्यथित नहीं होता। वह उनके सब बाणोंको जलकी धाराके समान पी लेता। तब यह देखकर श्रीरामने वायव्य अस्त्र चलाकर कुम्भकर्णका एक हाथ काट डाला जिससे बहुतसे वानर मर गये। तब वह फिर एक विशाल वृक्ष उखाड़ रामकी ओर दौड़ा। रामने ऐन्द्रास्त्र चलाकर उसका वहभी हाथ काट दिया। उस हाथके गिरनेसे भी बहुतसे बानर और राक्षस मारे गये। फिरभी कुम्भकर्ण दौड़ता ही रहा। तब रामने उसके

दोनों पैरभी काट दिये। उसके वे दोनों कटे हुए पैर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। फिरभी वह हाथ पैर कटा कुम्भकर्ण मुख फैला प्रचन्ड गर्जन करता हुआ रामकी ओर दौड़ा। रामने हजारों पैने बाण उसके मुखमें मारकर उसे पूर्ण कर दिया जिससे वह मूर्च्छित होगया। फिरतो रामने ऐन्द्रास्त्र नामक बाण चलाकर उस भीमदर्शन निशाचर कुम्भकर्णका शिर काट डाला। उसका वह गिरि-शिखर-सा शिर कटकर लंकाके कोटपर जा गिरा और घ समुद्रमें गिरकर कितनेही समुद्री जीवोंको कुचलता हुआ भूमिमें प्रवेश क गया। कुम्भकर्णके मारे जानेपर पृथ्वी और पर्वत प्रसन्न हो चल पड़े। और देवताओंने हर्षध्वनिकी। वानरोंके हर्षका तो कहनाही क्या था; जिसप्रकार रा के मुखसे युक्त होनेपर सूर्य आकाशमें प्रदीप्त हों, ऐसेही कुम्भकर्णका वधकर रा वानर सेनाके मध्यमें प्रदीप्त हुए। जैसे वृत्रासुरके वधसे इन्द्र आनन्दि हुए थे, ऐसेही महाबलाढ्य कुम्भकर्णका बधकर राम आनन्दित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥६७॥

अड़सठवाँ सर्ग

कुम्भकर्णके लिए रावणका विलाप

कुम्भकर्णको मरा सुनकर रावण मूर्च्छित हो गिर पड़ा। उसके पु देवान्तक, नारान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय रुदन करने लगे। मन्त्र महोदर और महापार्श्व भी बड़े शोकित हुये। मूर्च्छा व्यतीत होनेपर राव कुम्भकर्ण-बधसे व्यथित हो विलाप करने लगा। उसने उसके बल, पौ और प्रतापको गा-गाकर बड़ा विलाप किया और कहा कि 'अब इस रा और सीताको लेकर मैं क्या करूँगा। कुम्भर्णके बिना तो अब मैं जी नहीं चाहता। अब यदि मैंने अपने घातक रामको मार न डाला तो मे जीना व्यर्थ है। इसलिए मैं भी वहीं जाऊँगा जहाँ मेरा छोटा भाई गया है मैं भाइयोंके बिना क्षणमात्र भी जीना नहीं चाहता। मैंने मोहवश महात्मा विभीषणका वचन नहीं माना, इसीसे मुझे यह दुःख प्राप्त हुआ। मु धिक्कार है। उसी कर्मका यह दुःखप्रद फल मुझे प्राप्त हुआ है। अपने कनिष्ट भ्राता कुम्भकर्णका बध सुनकर रावण दुःखानुकूल तथा अन्तःकरण से व्याकुल हो गिर पड़ा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युंद्धकाण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥६८॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

नरान्तक-वध

दुरात्मा रावणके इस रुदनको सुनकर त्रिशिराने कहा—'निश्चय ही
म्भकर्ण ऐसा ही महायोद्धा था। परन्तु आप तो उससे भी कहीं अधिक
ष्ठ हैं। आप तो त्रयलोकका विनाश कर सकते हैं। अनेक बार देवताओं
ो विजय कर चुके हैं—'अब रामको उचित शिक्षा दीजिए। परन्तु अभी
ाप यहीं रहें। अकेले मैं ही आपके शत्रुओंका संहार करूँगा।' त्रिशिराके
से वचन सुन रावणने अपना पुनर्जन्म माना। त्रिशिराकी इस बातसे
रान्तक और अतिकाय भी युद्धके लिए प्रोत्साहित हुये। ये सभी वरदानी थे।
से पुत्रोंके मध्यमें विराजमान रावण बड़ा ही शोभित हो रहा था। जैसे
वताओंके मध्यमें इन्द्र। यह सुन रावणने सबको आशीर्वाद दे युद्धमें
ानेकी आज्ञादी। रावणको प्रणाम कर उन्होंने युद्ध-यात्राकी। काल-प्रेरित
स्थान किया। बड़ी साज-सज्जासे रण-यात्राकी। सबके विविध प्रताप थे।
ाक्षसों वानरोंका युद्ध आरंभ हो गया। दोनोंके शरीर रक्त-रञ्जित हो गये।
नके चलाये पाषाणों खड्गोंसे पृथ्वी व्याप्त हो गई। जब-तक वृक्ष पर्वतादि
ूर्ण नहीं हो गये, तब-तक वानर उनसे युद्ध करते ही रहे और फिर वानर
पने अंगोंसे युद्ध करने लगे। सब परस्पर मार-मारका सिंहनादकर रहे थे।
ानरोंका मारसे राक्षसोंके कवचादि टूट गये और बहुतसे मर भी गये। रथसे
, हाथीसे हाथी और घोड़ोंसे घोड़ोंको ले वानर राक्षसोंको मारने लगे।
र तो इतना युद्ध हुआ कि फटे कटे पर्वतों, वृक्षों तथा मृतक बानरों और
ाक्षसोंसे पृथ्वी व्याप्त हो गई। उस समय वानर बड़े गर्वसे राक्षसोंको मार
े थे। यह देख वेगशाली घोड़ेपर चढ़, हाथमें शक्ति लिए नरान्तक वानरी
ामें प्रवेशकर गया और सात सौ वानरोंको मार डाला। उसने वानरोंको
ा घेर लिया कि न तो कोई बोल सकता था, न खड़ा रह सकता था।
के एकही तीव्रतर भालेके कठिन प्रहारोंसे बानरोंका भीषण संहार हुआ।
रान्तकके भयसे वानरी सेना तितर-वितर हो गई। यह देख अङ्गद नरान्तक
आगे कूद गया और बोला इन बेचारे बन्दरोंको क्या मारता है? यदि
ा यह भाला बड़ा पुष्ट है तो मेरी इस छातीपर प्रहार कर। यह सुन

नरान्तकने बड़ा क्रोध किया। उसने हुमककर एक भाला अंगदकी छाती मारा। परन्तु वहाँ लगते ही वह टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब तक अंग ने उछलकर एक लात नरान्तकके रथके घोड़ेको मारा। उस घोड़ेका शि फट गया। फिर तो नरान्तकने भी अंगदके शिरपर एक मुष्टिकका प्रह किया जिससे उसका भी शिर फट गया और वह भी मूर्छित होकर पृथ्वीप गिर पड़ा। परन्तु तत्क्षण ही सचेष्ट होनेपर अंगदने उठकर नरान्तककी छात पर अपने घूँसेका प्रहार कर दिया जिससे उसकी छाती फट गई और र प्रवाहित होने लगा तथा वह निर्जीव हो धराशायी हुआ इसप्रकार अंगद नरान्तकको मार डाला। देवताओं और वानरोंमें हर्ष छा गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

सत्तरवाँ सर्ग

त्रिशिरा आदिका वध

नरान्तकको मरा देख देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर रोने लगे। भा के दुःखसे संतप्त देवान्तक घोर परिघ ले अंगदके ऊपर कूद पड़ा। त्रिशिर भी अंगदकी ओर दौड़ा। महीधरने भी वैसाही किया। किन्तु इन तीनोंक मारसे अङ्गद कुछ भी व्यथित न हुये और अति वेगसे कूदकर महोदरवे हाथीको लातसे मारकर गिरा दिया। उसकी आँख निकल पड़ी और अङ्गदने उसके दाँत उखाड़ उसीसे देवान्तकको ताड़ित किया। फिरतो देवान्तकने परिघ उठा अंगदको मारकर बैठा दिया। त्रिशिराने भी तीन बाण उसके शिरमें मारा। तब अंगदको तीन शत्रुओंसे युद्ध करते देख हनुमान् और नील उनकी सहायतामें आये। हनुमान्को देख देवान्तक परिघ ले उनसे युद्ध करने लगा। नील महोदर लड़ने लगे। उन्होंने महोदरको मार डाला। यह देख त्रिशिरा हनुमान् पर भीषण प्रहार करने लगा। हनुमान्ने अपने नखोंसे त्रिशिराके घोड़ेको चीर फाड़ डाला। तब त्रिशिराने अपनी शक्ति चलाई जिसे पकड़कर हनुमान्ने तोड़डाला। साथही उसकी तलवार छीन उसीसे उसके तीनों शिर काट लिये। यह देख बानर हर्षसे गर्जने लगे। इस प्रकार त्रिशिरा, महोदर, देवान्तक और नरान्तक तीनोंका संहार हो गया। तब महापार्श्व अपनी विशाल गदा उठा बानरोंको भयभीत करने लगा। उसे ऐसा करते

त बानर ऋषभ उससे युद्ध करने लगा। दोनोंने परस्पर कई प्रचंड आघात ाये। अन्तमें उसकी गदा छीन ऋषभने महापार्श्वको भी मारकर यमसदनको ज दिया। राक्षसोंकी सेना भाग चली।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥

इकहत्तरवाँ सर्ग

लक्ष्मण द्वारा रावणपुत्र अतिकायका वध

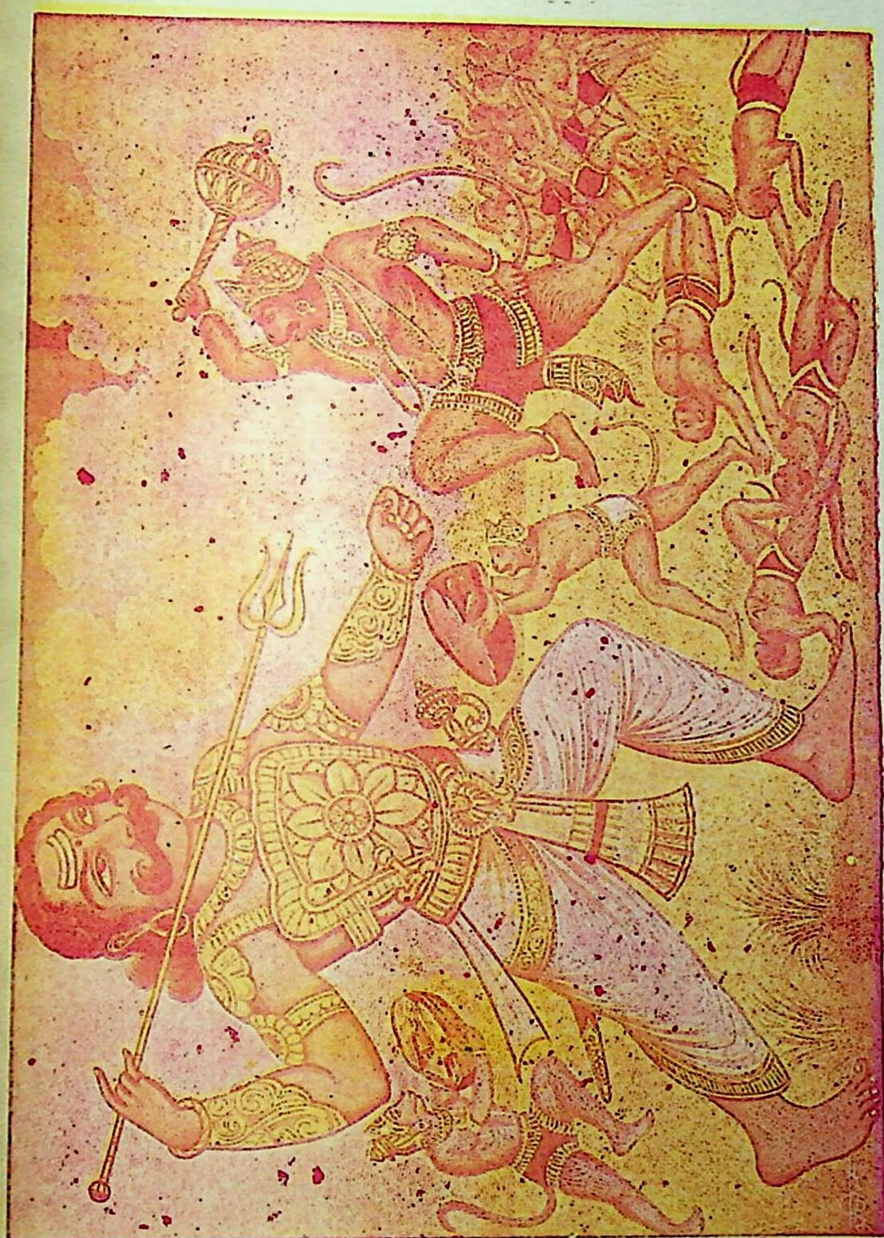
अब इन सबको मरा देख महाप्रतापी और बरदानी अतिकाय बानरों हित रामसे युद्ध करने आया। उसके रथमें हजार घोड़े एक साथही जुते ए थे। उसे देख बानरोंने समझा कि यह तो वही नरान्तक है जिसने घोर द्धकर हमारा भीषण संहार किया है। अतः बानरगण भागने लगे। तब ानरोंको भागते और उस राक्षसको इस प्रकार आतंकित करते हुए आते ेखकर रामने बिभीषणसे जो इसका परिचय पूछा तो विभीषणने कहा—यह ेरके लघुभ्राता भीमकर्मा राक्षसेन्द्र रावण का पुत्र अतिकाय है जो बड़ाही र सेनानी है और जिसके बाहुबलकी रक्षासेही लंका निर्भय रहती है। रावण ी धान्यमालिनी नामक भार्याका यह पुत्र है। इसने बड़ी तपस्याकर ब्रह्माको सन्न किया है। यह भी ब्रह्म-बरदान द्वारा देवताओंसे अजेय है। इसने अपने णोंसे इन्द्रका वज्रभी रोक दिया था। हे वीरपुङ्गव! आप शीघ्रही इसके रनेका उपाय करें। इतनेमें अतिकायने आकर बानर सेनामें उथल-पुथल ा दी। बानर परास्त हो उसका कुछ न कर सके। उसने बानर सेनाको र भी भयभीत किया। फिर उसने बड़े हर्षसे रामसे कहा—मैं धनुष-बाण र अपने रथ पर बैठा हूँ, जो शक्तिमान् और युद्ध-कुशल हो वह शीघ्र झको युद्ध-दान दे। उसकी यह बात लक्ष्मणसे न सही गयी और तरकससे ण निकाल धनुष पर बड़े बलसे टंकोर किया। दिशाएँ शब्दित हो गईं। स भयभीत हो गये। अतिकायने कहा—लक्ष्मण! तुम अभी बालक हो, यहाँ ले जाओ। मेरे बाणोंके प्रहार हिमालय अन्तरिक्ष और कोई भी नहीं सकता। तुम मुझसे युद्ध कर अपने प्राण न गँवाओ। यदि नहीं मानोगे खड़े ही रहोगे तो अभी प्राण त्यागकर यमसदनको चले जाओगे। तिकायके इन दर्पयुक्त वचनोंको सुनकर लक्ष्मणने कहा—'इस प्रकारके

बकवाद करनेसे तुम बड़ा नहीं हो सकता । रे दुष्ट ! मैं तेरे समक्ष खड़ा हूँ अपना कुछ तो बल दिखा । शूरवीर पौरुष दिखलाते हैं । केवल बकने कोई शूरवीर नहीं होता । रथारूढ़ ! तू अपना विक्रम दिखा । फिर तो अप तीक्ष्ण बाणोंसे मैं तेरा शिर काट ही लूँगा । मुझे बालक समझ मेरा अप मान न कर । मुझे तू अपना कालही समझ । वामन तो बालकही थे । प अपने पैरोंसे उन्होंने त्रयलोक्यको नाप लिया था ।' लक्ष्मणकी इस बातक सुनकर अतिकायने धनुषपर बाण चढ़ा लक्ष्मणसे युद्ध करना आरंभ किया लक्ष्मण उसके बाणोंका उत्तर अपने बाणोंसे देने लगे। दोनोंने एक दूसरे बधार्थ दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया । परन्तु राक्षस अतिकाय लक्ष्मणसे ब पड़ा और किसी प्रकार भी न मरता था । तब वायुदेवने आकर लक्ष्मणक कहा कि 'यह राक्षस अभेद्य कवच धारे है, इससे इसे ब्रह्मास्त्रसे मारो ।' त लक्ष्मणने तरकससे एक बाण निकाल उसे ब्रह्मास्त्रसे संयाजित कर अति- कायपर छोड़ा । उस वज्रवत् बाणने आकर अतिकायका शिर काटकर पृथ्व पर गिरा दिया । उसे कटा देख राक्षसोंको बड़ा दुःख हुआ । वे उदासी मुख हो उच्च-स्वरसे रोने लगे और निराश हो लङ्काको भाग चले । वान आनन्दित हो लक्ष्मणकी प्रशंसा करने लगे ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

बहत्तरवाँ सर्ग

अब लक्ष्मण द्वारा अतिकायको मरा सुन रावण और भी उद्विग्न हो गया । उसने कहा, यह राम कैसा अक्लिष्टकर्मा है कि जिसने धूम्राक्ष, अक- म्पन, प्रहस्त और कुम्भकर्ण जैसे वीरोंको भी अपने प्रभाव या माया-मोह मन्त्र द्वारा मार डाला । अब मैं अपने यहाँ ऐसा किसीको नहीं देखता ज आज ससैन्य राम-लक्ष्मण सहित सुग्रीव और विभीषणका वध कर डाले। अहो, राम बड़े बलवान् हैं, जिनके पराक्रमसे सब राक्षसोंका संहार हो गया। अबतो बड़ी सावधानीसे इस लंका और अशोकवाटिकाकी रक्षा करन चाहिए । हे राक्षसों ! अब तुमलोग सब ओरसे स्थित हो वानरोंके पद देखते रहो । सायं, मध्यरात्रि अथवा प्रातःकाल, किसी भी समयमें तुम असावधान



मेघनाद--हनुमान तथा बानरी सेना से लड़ाई ।

मत रहो। रावणकी यह आज्ञा सबने स्वीकार की। रावण पुत्र-शोकसे महान् दुःखी हो उर्ध्वश्वास लेता हुआ अपने निवासस्थानमें प्रविष्ट हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

उसी समय युद्धसे लौटकर शेष राक्षसोंने जाकर नारान्तक, देवान्तक और त्रिशिरा आदिका बध रावणसे निवेदन किया। उन सबको मरा सुन रावण और भी रोने लगा। तब रावणको ऐसा शोकग्रस्त देख उसके पुत्र मेघनादने कहा—हे तात! जब तक इन्द्रविजयी मैं आपके पास हूँ, तब तक तो आपको दुःखी न होना चाहिए। मैं अपने सफल वाणोंसे आजही राम-लक्ष्मणको मार डालूँगा। रावणसे ऐसा कह, उसकी आज्ञा ले मेघनाद रथपर जा बैठा और शीघ्रही समराङ्गणमें जा पहुँचा। उसके साथ हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, व्याघ्रों, गदहों, सूअरों, कुत्तों, सिंहों, शृगालों, कागों, हंसों और मयुरोंपर चढ़कर बहुतसे राक्षस धनुर्वाणादि लिये पीछे-पीछे चले। तेजस्वी इन्द्रजीतने समरमें पहुँचते ही अपने रथके चारों ओर सब राक्षसोंको स्थापित कर दिया और अग्निमें हवन करने लगा। लाजा, अक्षत, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंसे उसने अग्निको आहुतियाँ दीं। फिर काले बकरेको पकड़कर जीवित ही उसे अग्निमें डाल दिया। अग्निदेव प्रसन्न हो गए। विजयके चिन्ह दीख पड़े। अग्नि-शिखा तप्त सुवर्ण-तुल्य हो गई। तब इन्द्रजीतने अपना ब्रह्मास्त्र, धनुष और रथ मँगवाकर सबको अभिमन्त्रित किया और जब पुनः वह अपने उन सब अस्त्रोंको अभिमन्त्रितकर अग्निको आहुति देने लगा तो आकाश भी भयभीत हो गया। उसी समय तेजस्वी मेघनाद अपने शस्त्रों सहित आकाशमें अन्तर्हित हो गया। राक्षस-सैनिक युद्धकी इच्छासे आगे बढ़े और वानरोंको मारने लगे। मेघनाद भी आकाशसे उतर सब वानरोंको काटने लगा। वानर भी पर्वतों और वृक्षोंसे मेघनादको मारने लगे। इससे कुपित हो इन्द्रजीतने अपने एक-एक बाणसे नौ-नौ, सात-सात और पाँच-पाँच वानरोंको मारने लगा। राक्षस प्रसन्न और वानर दुःखित होने लगे। वह अपने विषधर सर्पोंके समान वाणोंसे वानरोंको मार रहा था। ऐसा कोई भी वीरपुङ्गव न था जिसे उसने प्रताड़ित न किया हो। यद्यपि वानर-

गणभी अपने प्राणोंका मोह त्याग उसपर गिरि-शृंग, शिलाएँ और वृक्षादि की वर्षा कर रहे थे। पर वह उस बड़ी घोर वर्षाको काटे डालता था। इस प्रकार उसने वाणोंका जाल बिछाकर सब वानरोंको मथ डाला। वानर सेना रुधिर लिप्त हो गई, उनके शरीर फट गए और अधिकांश सैनिक मोहित हो धराशायी हुए। उस समय इन्द्रजित आकाशमें अन्तर्हित हो वाण बरसाता था जिससे वानर उसे देख भी न पाते थे। उसने सब दिशाओंको वाणोंसे आच्छादित कर दिया। वानर पुष्पित किंशुकसे शोभा देने लगे। जो कोई ऊपर देखे, उसकी आँखही फूट जाय। मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गवय, केसरी, हरिलोमा, नल और कुमुद इन वीर पुंगवोंको तो उसने अपने भल्ल नामक शूलोंसे मारा। इसप्रकार मुख्य-मुख्य वानरोंको व्याकुलकर इन्द्रजित अब राम-लक्ष्मणपर अपने सूर्यवत् प्रकाशित शूलोंकी वर्षा करने लगा। तब रामने लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! यह सुरेन्द्रशत्रु मेघनाद है जो ब्रह्मास्त्र ग्रहणकर हमलोगोंपर वाण बरसा रहा है। उसको ब्रह्माका वरदान है, जिससे यह आकाशमें अन्तर्ध्यान हो हमलोगोंको मारना चाहता है। अब यह हमको और तुमको मूर्च्छित करकेही लंकाको लौटेगा। ऐसा विचार कर उसके वाणोंसे मोहित हो दोनों भाई मृतप्राय हो गए। इन्द्रजित उनको भी खिन्नकर हर्षित हो गर्जने लगा। इसप्रकार युद्धमें वानरोंकी सेना सहित राम-लक्ष्मणको मृतप्राय करके इन्द्रजित रावण-रक्षित लंकामें चला गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्ध काण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

राम-लक्ष्मणको मोहित देख वानर सेनाभी अत्यन्त मोहित हो गई और सब शोक प्रकट करने लगे। तब विभीषणने सबको समझाकर कहा कि तुमलोग भय न करो। राम-लक्ष्मण स्वयंही इन्द्रजीतके अस्त्र-जालमें फँस गए हैं। यह ब्रह्मास्त्र है जिसे ब्रह्माजीने मेघनादको दिया था। उसकी सफलता प्रकट करनेके लिए ही दोनों वीर स्वयंही पृथ्वीपर सो गए हैं। विभीषण के इन वचनोंको सुनकर हनुमानने कहा—'विभीषण! आओ, मैं और तुम दोनों चलकर हतशेष वानरोंको धैर्य देवें।' ऐसा कह वे दोनों प्रज्वलित अग्नि ले उस रातमें टहलने लगे। देखा तो कटे-फटे और अंगोंसे रक्त-प्लावित

ते हुए वानरोंसे पृथ्वी व्याप्त हो रही है। कितनेही खंडित अस्त्र-शस्त्र पड़े
। सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान, सुषेण, वेगदर्शी,
न्द, नल, ज्योतिर्मुख, द्विविद तथा पनस ये सभी युद्ध-भूमिमें मरे पड़े हैं।
प्रकार दिनके पंचम भागमें मेघनादने सरसठ करोड़ वानरोंको मारा था।
भीषण सहित हनुमान्‌ने उन सबको देखा। तब सबसे पहले इन्होंने वृद्ध
म्बवान्‌को खोजना चाहा। खोजते-खोजते विभीषणने देखा कि, ब्रह्माके
त्र वृद्ध जाम्बवान् सैकड़ों बाणोंसे आहत हो पृथ्वीपर पड़े हैं। तब जाम्ब-
न्‌को देख विभीषण बोले--आर्य! आप जीवित तो हैं? विभीषणका शब्द
न जाम्बवान् बड़े कष्टसे बोले--राक्षसेन्द्र! तुम्हारी वाणीके शब्दसे ही मैं
हें पहचानता हूँ, पर व्याकुलता वश नेत्रों से तुम्हें देख नहीं पाता। हे
व्रत! वायु-पुत्र कपिश्रेष्ठ हनुमान् जीवित हैं या नहीं। तब जाम्बवान्‌की
ी बात सुनकर विभीषण बोले--आप राम-लक्ष्मणको छोड़ हनुमान्‌को कैसे
छते हैं? जाम्बवान्‌ने कहा--हनुमान्‌के जीते हुए यह मृतक सेनाभी जानो
वित ही है। और हनुमान्‌के मर जानेपर हमलोग जीवित भी मृतक तुल्य
। यह सुन हनुमान्‌ने जाम्बवान्‌के चरण पकड़कर कहा कि मैं आपकी
ासे जीवित हूँ। हनुमान्‌के वचन सुन जाम्बवान्‌ने अपना पुनर्जन्म माना
र कहा कि हनुमान् अब एक मात्र तुम्हीं सबके आधार हो। राम-लक्ष्मण
इस दुःखसे मुक्त करो। हे हनुमान्! तुम इसी समय समुद्रके ऊपर उड़-
हिमवान्‌पर चले जाओ। उसके आगे ऋषभ पर्वत है और उसके आगे
ास है। उन दोनोंके मध्यमें एक ऐसा पर्वत है जो सब औषधियोंसे युक्त
हे हरिपुंगव! वहाँ दिशाओंको प्रज्वलित करती हुई चार औषधियाँ
दिखाई पड़ेंगी, जो मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और
ानी नामकी हैं। उनको लाकर सब वानरोंको जिला दो।' जाम्बवान्‌की
बात सुनते ही हनुमान्‌में यह बलोत्कर्ष हुआ कि वे तत्क्षण ही उड़कर
पर्वतपर जा पहुँचे कि जिसे जाम्बवान् ने बतलाया था। परन्तु वहाँ उन्हें,
रों योजन लाँघकर जानेपर भी वे चारों औषधियाँ दिखाई न पड़ीं और
श्य हो गईं। इससे हनुमान् कुपित हो गए और उन्होंने उस औषधिवाले
र्ण गिरि-शृंगको ही उखाड़ लिया और गरुड़के समान उसे लेकर मृत

वानर-सेनामें आ पहुँचे। हनुमान्‌को आते देख बचे हुए वानर नाद
लगे। हनुमान् त्रिकूट पर्वतपर उतरकर वानरोंको प्रणाम किए और विभी
से मिले। फिर तो उन ओषधियोंकी गन्धसे वानर, राम-लक्ष्मण तथा
वीर वानर मूर्च्छा-रहित हो गए तथा जैसे रात्रिमें निद्रामें पड़ा मनुष्य
उठता है, वैसे ही उस श्रेष्ठ ओषधिके गन्धसे संग्राममें हत हुए वानर
रहित और वेदना-रहित हो जागृत हो गए। फिर हनुमान् उस पर्वत
को जहाँसे लाये थे वहीं रख आए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

तदनन्तर तेजस्वी सुग्रीवने हनुमान्‌से कहा—देखो, संध्या हो गई
ऐसा न हो कि आज रात्रिमें रावण यहाँ आकर युद्ध करे। अतएव तुम
वानरोंको आज्ञा दो कि अभी मशाल जलाकर लंकाको घेर उसे चारों
से जलादें। फिर जब रावण युद्ध करने आवेगा, तब देखा जायगा। यह
हनुमान्‌ने वैसा ही किया। सब वानर मशाल जलाकर लंकाके सब द्वारों
पहुँच गये और सभी स्थानोंसे उसे जलाने लगे। विविध अस्त्र-शस्त्रादि
और नाना गृहों सहित लंका जलकर राख हो गई। अपनी स्त्रियोंके स
सोते हुए राक्षस और वाहनादिक जलकर भयभीत हो इधर-उधर भाग
लगे। लंकाके जलनेपर उसकी छायासे लालरंगके समुद्रके समान क्षीरसा
शोभित होने लगा। दो घड़ीमें ही वानरोंने समूची लंकाको जला दि
उस समय लंकाकी व्याकुल स्त्रियोंका रुदन सौ योजन तक सुनाई देता था
जो राक्षस कूदकर नगरके बाहर जाते उसे वानर कूद-कूदकर मार डालते
उस समय वानरों और राक्षसोंके शब्दसे दिशाएँ पूर्ण हो गईं। राम-लक्ष्म
ने भी श्रेष्ठ धनुष धारण किया। रामने ऐसा घोर धनुटङ्कार किया कि मा
महादेवजी प्रलय किया चाहते हैं। फिर तो रामके धनुषसे छूटे हुए बाणों
लंकाका द्वार विदीर्ण कर दिया। इतनेमें राक्षस युद्ध करनेको तैयार हुए
उनके सिंहनादसे वह रात्रि कालरात्रिके समान भयंकर हो गयी। तब सुग्रीव
वानरोंको यह आज्ञा दी कि तुमलोग अब लंकाके सब द्वारोंपर जाकर यु
करो। कोई अपने स्थानसे हटे नहीं, अन्यथा अवश्य मारा जायगा। तब

वानरोंने लंकाके द्वारोंको घेर लिया। यह सुनकर रावण बड़ा कुपित हुआ। उसने क्रोधकर जो एक जंभाई ली तो उससे सब दिशाएँ पूर्ण हो गईं। तब रावणने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ और निकुम्भको युद्ध करनेको भेजा। उनके साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजंघ और अकम्पन भी चले। रावणने कहा, तुम सब यहींसे सिंहनाद करते हुए जाओ। वे सब शस्त्र लिए गर्जते हुए बाहर आये। तब उनकी सेनाको देख वानरोंने आगे बढ़कर घोर नाद किया। राक्षसोंके सैनिक कूदकर वानरोंकी सेनामें जा पहुँचे। फिर तो वानर उन्हें वृक्षों, पाषाणों और घूसोंसे मारने लगे। राक्षस भी अपने बाणोंसे राक्षसोंके शिर काटने लगे। शिर कटे राक्षस इधर-उधर विचरने लगे। फिर राक्षसोंने वानरोंको तलवारसे भी मारा। राक्षसों और वानरों का महा-भयंकर युद्ध होने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्ड पूर्वार्द्ध का पं० रामलग्न पांडेय द्वारा संक्षिप्त अनुवादमें पंचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७५॥

युद्धकाण्ड पूर्वार्द्ध समाप्त

श्रीमद्वाल्मीकीय मुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—भाष

षष्टम् युद्धकाण्ड उत्तरार्द्ध

छिहत्तरवाँ सर्ग

कुम्भ-वध

इसप्रकार घोर युद्ध होने लगा। अङ्गद अकम्पनके आगे आ गये। अकम्पनने बड़ी लाघवतासे अङ्गदपर अपनी गदाका प्रहारकर दिया। परन्तु इसके आघातसे बचकर अङ्गदने तत्क्षणही उसपर एक गिरि-शृङ्ग चला दिया जिससे वह रक्त वमन करता पृथ्वीपर गिर पड़ा। किन्तु उसी क्षण सँभलकर उसने फिर अपने तीक्ष्ण प्रहार किए जिससे अंगदने कुपित हो अपने आयुध से उसका रथ और धनुष सब तोड़ डाले। यह देख शोणिताक्षने तलवार चलाया तो अंगदने उसकी तलवार तोड़ दी। फिर प्रजंघ और यूपाक्षभी अंगद पर दौड़े। यह देख मैन्द और द्विविद अंगदकी रक्षामें आये। अब तो तीनों राक्षस इन बानरोंपर दौड़े। बानरोंने भयंकर युद्ध आरंभ किया। परस्पर सबने कई आघात-प्रत्याघात किये। अन्तमें अङ्गदने एक मुष्टिके प्रहार से प्रजंघका शिर तोड़ दिया। तब अपने चाचाको मरा देख यूपाक्ष हाथमें तलवार ले रथसे कूद पड़ा, जिसे आते देख द्विविदने शीघ्रतासे पकड़ लिया। तब अपने भाईको पकड़ा हुआ देखकर शोणिताक्षने आकर द्विविदके वक्ष स्थलपर प्रहार किया। उस प्रहारसे द्विविद काँप उठा। परन्तु उसने शोणिताक्षकी गदा छीन ली। इसी समय मैन्दभी उसके समीप आ पहुँचा। दोनों राक्षसोंसे दोनों श्रेष्ठ बानर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। द्विविदने शोणिताक्षका मुख नोच डाला और पृथ्वीपर दबाकर पीस डाला। ऐसेही मैन्दने भी यूपाक्षको पटककर मार डाला। फिरतो राक्षस सेना भयभीतहो कुम्भकर्णके पुत्रोंके पास भाग गई। तब सबको समझाकर कुम्भने युद्धमें बड़ाही दुष्कर कर्म किया

उसने अपने स्वर्णपुंख बाणोंसे द्विविदको मारकर व्याकुलकर दिया। तब भाईको भग्न देख मैन्द एक विशाल शिलाले कुम्भके समक्ष आया जिसे कुम्भने अपने बाणोंसे काट दिया। फिर अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे कुम्भने अङ्गद को प्रताड़ित किया। पर अङ्गद उससे कुछभी व्यथित न हुए। इससे कुपितहो कुम्भने अङ्गदकी छातीमें एक ऐसा विषबुझा बाण मारा कि जिससे वे मूर्च्छित हो युद्ध-भूमिमें सो गये। बानरोंमें हाहाकार मच गया। जब यह समाचार श्रीरामको मिला तो उन्होंने जाम्बवान् आदि बानरोंको वहाँ जानेकी आज्ञा दी। वे बानर धनुष उठा कुंभके ऊपर जा पड़े। सभी प्रकार उसके वेग रोकने लगे। परन्तु महाबली कुंभ उनके चलाये सभी प्रहारोंको व्यर्थकर देता। इसी समय बानरेन्द्र सुग्रीवने आकर उसका धनुष छीन लिया और तोड़ डाला। साथही उसकी प्रशंसाभी की। इससे कुंभका बल बढ़ गया। वह कूदकर सुग्रीवको पकड़ युद्ध करने लगा। दोनोंही महान् बली थे। युद्धके अधिक परिश्रमसे उसके मुखसे अग्नि निकलने लगा। उन दोनोंके पदोंकी धमकसे भूमि कुछ नीची चली गई। फिरतो सुग्रीवने कुंभको उठाकर बड़े वेगसे समुद्रमें ऐसा फेंक दिया कि वह जलतल तक जा पहुँचा। सागर उछल उठा। चारों ओर जल फैल गया। कुछ देर बाद कुंभ समुद्रसे उछलकर बाहर आया और सुग्रीवकी छातीमें एक मुष्टिक मारा। उत्तरमें सुग्रीवने भी इसपर मुष्टि-प्रहार किया। उस वज्रवत सुग्रीवकी मुष्टिका से मूर्च्छितहो कुंभ पृथ्वीपर गिरा और सर्वदाके लिए उसके प्राण उड़ गये। बचे राक्षस भयभीतहो भाग गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्ड उत्तरार्द्धका छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७६॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

निकुम्भ-वध

कुम्भके मारे जानेपर उसका भाई निकुंभ अत्यन्त क्रुद्ध होकर सुग्रीवकी ओर घूरकर देखने लगा। साथही उसने एक अत्यन्तही सुदृढ़ सुवर्णके बंधनों से बँधा हीरा मूँगा जटित यमराजके तुल्य एक सुन्दर गिरि तुल्य परिघ उठाकर, कण्ठमें निष्क नामक भूषण और कानोंमें कुण्डल धारण किए जो खड़ा हुआ तो मानो साक्षात् यमराजही प्रतीत हुआ। फिरतो उसके समक्ष

किसीको जानेका साहस न हुआ। केवल हनुमान्‌ही वहाँ स्थिर रह सके। निकुंभने उस परिघको उठाकर हनुमान्‌के वज्रवत् वक्षःस्थलपर चला दिया। हनुमान्‌की छातीपर पड़कर वह सौ टुकड़े होगया और महावीर कुछभी विचलित न हुये। उसके उत्तरमें हनुमान्‌ने जो तानकर उसकी छातीपर अपना मुष्टि-प्रहार किया तो उसके अङ्गोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने दौड़कर हनुमान्‌को पकड़ लिया। तब हनुमानको पकड़ा देख बानर बड़ा शब्द करने लगे। फिर उसी क्षण हनुमान्‌ने भी फिर एक प्रचण्ड मुष्टिकसे निकुंभको ताड़ित किया और अपनेको छुड़ा उसे पृथ्वीपर पटककर दबाने लगे। फिर दोनों हाथोंसे उसका शिर और होंठ पकड़कर उखाड़ लिए। निकुंभ मर गया। तब राम और राक्षसमें भयंकर युद्ध होने लगा। निकुंभके मरने पर बानरगण आनन्दित हो गर्जने लगे। दिशाएँ नादसे पूर्ण होगई; पृथ्वी डगमगाने लगी, नक्षत्र मण्डल गिरनेको तत्पर-सा हो गया और राक्षसोंमें भय उत्पन्न हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्ड उत्तरार्द्धका सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवाँ सर्ग

खर-पुत्र मकराक्षकी रणयात्रा

निकुंभ और कुंभको मरा सुन रावण अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। फिर क्रोध शोकसे मूर्च्छित हो उसने खरके पुत्र मकराक्षको आज्ञा दी कि, तुम अपने साथ सेना ले जाकर युद्धमें राम-लक्ष्मणको मार डालो। मकराक्षने स्वीकार किया। वह रावणकी प्रदक्षिणाकर युद्धके लिए घरसे बाहर निकला। सेनाको सजनेकी आज्ञादी। सेनाध्यक्षने रथ और सेना शीघ्र प्रस्तुत करदी। रथ पर चढ़ उसने सारथीको आज्ञा दी कि रथको शीघ्रतासे चलाओ। फिर साथियोंसे बोला कि पहले तुम सब युद्ध करो। रावणने मुझे पहले राम-लक्ष्मणको मारनेकी आज्ञा दी है अतः मैं आज राम-लक्ष्मणको मार डालूँगा। बानरोंकी विमल सेनाको मैं आज अग्निवत् भस्मकर दूँगा। फिर तो मकराक्षके इन बचनोंको सुनकर सब राक्षस गर्जने लगे। हजारों शंख भेरी तथा बीरोंके नादका विशाल शब्द उत्पन्न हुआ। परन्तु दैवात् उस राक्षसके सारथि घोड़े और रथकी ध्वजा पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर उठकर घोड़े धीरे-

[ती]रे पृथ्वीपर पैर रखकर चलने लगे। उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह होने लगा। [उस]के समक्ष प्रबल वायु युक्त आँधी चलने लगी। परन्तु इस अशकुनपर भी [उ]स राक्षसने ध्यान नहीं दिया और राम-लक्ष्मणकी ओर चला गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका अठहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७८ ॥

उन्यासीवाँ सर्ग

मकराक्ष-वध

अब मकराक्षको आया देख सब बानर युद्ध करनेको प्रस्तुत हुए। [रा]क्षसों और बानरोंका युद्ध होने लगा। वे एक दूसरे पर भी बाण-प्रहार करने [ल]गे। नानायुधधारी राक्षसोंने बानरोंको मार-मारकर व्याकुल कर दिया। [बा]तकी बातमें सहस्रों बानर खेत रहे। मकराक्षकी भयानक मारसे बानर सेना [भा]गने लगी। अपनी विजयसे राक्षस गर्जने लगे। तब उन्हें इस प्रकार [गर्ज]ते और बानरोंको पलायन करते देख रामने अपनी भयानक बाण-वर्षासे [रा]क्षसोंका वेग अवरुद्ध करदिया। तब राक्षसोंको अवरुद्ध देख मकराक्ष [रा]म पर कुपित हो उनपर अपने भयानक बाण छोड़ने लगा। अब मकराक्ष [औ]र रामका युद्ध आरंभ हुआ। उसे देखनेके लिए देवता, दानव, किन्नर [औ]र नाग अन्तरिक्षमें स्थित हो गये। रामके छोड़े बाणोंको राक्षस और [रा]क्षसके छोड़े बाणोंको राम सहस्रों खंड करदेते थे। पुनः रामने कुपित हो [उस]का धनुष काट डाला और रथभी तोड़ दिया। इससे मकराक्ष पृथ्वीपर [ख]ड़ा हो हाथमें शूल लेकर रामको मारना चाहा; परन्तु रामने उसे बीचहींमें [का]ट गिराया। आकाश स्थितजनोंने कहा—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। [फि]र वह रामके आगे दौड़न लगा। तब रामने धनुषपर अग्निबाण चढ़ाकर [उ]स निशाचरको मारही डाला। उसका हृदय फट गया। तब मकराक्षको मरा [दे]ख सब राक्षस रामके बाणोंसे भयभीत होकर लङ्काकी ओर भाग चले। [रा]मके बाणसे मकराक्षको मरा देख देवता बहुत संतुष्ट हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका उन्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥७९॥

अस्सीवाँ सर्ग

मकराक्षको मरा सुन रावण दाँत पीस विचार करने लगा कि अब क्या [कर]ना चाहिये? तब उसने अपने पुत्र इन्द्रजितको फिर युद्ध-यात्राकी आज्ञा

दी। पिताकी आज्ञा पा इन्द्रजित यज्ञ भूमिमें जाकर सविधि आहुति दे
लगा। उसके आहुति देतेही लाल वस्त्र लिए राक्षसियाँ आ गईं। उस
बहेरेकी समिधा तथा काले लोहे का श्रुवा बनाकर, भालोंके सरपत वन
उनपर अग्नि जला जीते हुए काले बकरेकी ग्रीवा पकड़कर उसी अग्नि
डाल दिया, जिसके डालते ही अग्निसे धुँवा निकलना बन्द हो गया औ
अग्निकी शिखा दक्षिण ओर भ्रमित हुई। अग्निने स्वयं उठकर हवि ग्रह
किया। पश्चात् इन्द्रजित अपने रथपर आ बैठा। फिर तो सूर्यके समान प्रक
शित मेघनाद ब्रह्मास्त्रके प्रयोगसे बड़ाही दुर्धर्ष हो गया। अग्निहोत्रकर व
ज्योंही पुरीसे निकला कि अन्तर्ध्यान हो गया और कहा कि आज इन दो
भाइयोंको मारकर विजय लक्ष्मीको पाकर अपने पिताको प्रदान करूँगा
आज पृथ्वीतलसे बानरोंका सर्वथाही विनाशकर दूँगा। ऐसा कहकर वह ज
ही अन्तरिक्षमें गया कि उसने राम-लक्ष्मणको बाणोंकी वर्षा करते हुए देखा
फिर तो उसने भी वहींसे उनपर अपने बाणोंकी वर्षा आरंभ कर दी। उस
बाण-समूहसे राम-लक्ष्मण दोनों भाई आहत हो गये; परन्तु उनके बाणों
आकाश आच्छादित हो गया। फिर मेघनादने भी सब दिशाओंमें बाण मा
कर अंधकार कर दिया। वह गुप्त हो इस प्रकार बाण-संचालित करता कि
उसके रथादिके संचालनका किसीको कुछ भी पता न चलता और न वह दृष्टि
आता। वह गुप्त होकर बाणों और नाराचोंकी वृष्टि करता। उसने बहुत
सूर्यप्रभ बाण राम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंके अङ्गोंमें मारे। उन्हें चोट लगी
फिर भी वे अपने स्वर्णपुंख बाण बरसाते ही रहे। वे बाण अन्तरिक्ष
स्थित इन्द्रजितके अङ्गोंको बेधकर रक्तमें डूबे हुए पृथ्वीपर गिर पड़ते
इधर ये दोनों भाई भी इन्द्रजितके बाणोंसे बिंधकर रक्त-रञ्जित हो पुष्पि
शुङ्कके समान शोभा देने लगे। उधर उस राक्षसकी भयानक मारसे वानरोंकी
और ही चिन्तनीय दशा हो गई। यह देख लक्ष्मणने क्रुद्ध हो रामसे कहा
कि अब मैं ब्रह्मास्त्र चलाकर सब राक्षसोंको हत डालूँगा। इसपर राम
कहा—नहीं, एक इन्द्रजितके कारण सबको मारडालना अनुचित है। यु
न करनेवाले, अदृश्य, शरणागत और विक्षिप्तको कभी न मारना। मैं उ
दुष्टके बधका स्वयं ही यत्न करूँगा। वह प्रत्यक्ष हुआ नहीं कि वानर अ

मार डालेंगे। वह मेरे अस्त्रसे बच नहीं सकता। लक्ष्मणको ऐसे समझाकर महात्मा राम दुराचारी इन्द्रजितके बधका अवसर देखने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका अस्सीवाँ सर्ग समाप्त ॥८०॥

इक्यासीवाँ सर्ग

इन्द्रजित द्वारा रचित मायाकी सीताका वध

रामके इस भावको जानकर इन्द्रजीत लंकाको प्रस्थान करगया। परन्तु यह सोचकर कि बिना मेरे युद्धमें गए बेचारे राक्षस मारेजायँगे, इसलिए फिर लौट आया। अब वह पश्चिम द्वारसे निकला। अब उसने सोच लिया कि प्रत्यक्षमें तो इनसे विजय पाना दुस्तर है। अतः उसने मायासे मायाकी सीता रचकर उसे रथपर चढ़ा, युद्धमें सीताका वध दिखाने लगा। ऐसी मायासे वह बानरोंके समक्ष होकर चला। यह देख बानर वृन्दादि ले उसपर दौड़ पड़े। हनुमान् सबके अग्रणी थे। हनुमान्‌ने देखा कि यह राक्षस तो सीताको पकड़ रथपर आ रहा है, इससे उन्होंने उसपर प्रहार नहीं किया। परन्तु उसी क्षण इन्द्रजितने सीताकी वेणी पकड़कर खींचा और ग्रीवापर तलवार रख काटना चाहा। यह सब देख हनुमान्‌को दया आगई। और उन्होंने उसे बहुत फटकारा तथा यह कहा कि, राक्षसाधम! स्त्रीको मारना पाप है, अब तू अवश्यही नष्ट होगा। इन्द्रजीतने कहा—'तुम जिस सीताके लिए यहाँ आये हो उसे मैं मार डालता हूँ। उसको मारकर, फिर राम-लक्ष्मण, तुम्हें; सुग्रीव तथा विभीषणकोभी मार डालूँगा। राजनीतिके अनुसार अमित्रोंको जिस कर्मसे पीड़ा हो—वही करणीय है। अतः इसप्रकार स्त्री-बधमें पाप नहीं है।' हनुमान्‌से ऐसा कह इन्द्रजीतने तलवारसे सीताका सिर काटडाला। छिन्न तपस्विनी सीता पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसे मार इन्द्रजीत हनुमान्‌से बोला—लो, सीता मर गई। अब इसके लिए तुम सबका परिश्रम करना व्यर्थ है। ऐसा कहकर वह अपने रथपर गर्जने लगा। यह देख बानर भयभीत हो इधर-उधर भाग चले।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका इक्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८१ ॥

बयासीवाँ सर्ग

बानरों और राक्षसोंका युद्ध

इन्द्रजीतके इस भयानक शब्दको सुनकर वानर जब दुःखित होकर भागने लगे, तब हनुमान् बोले—बानरों! उदासीन क्यों होते हो? तुम

अपनी वीरता न त्यागो। युद्धका उत्साह न छोड़ो। आओ, मेरे पीछे-पीछे चलो। हनुमान्‌के इस कथनपर सब बानर उनके पृष्ठ मार्गमें आ स्थित हुये और गर्जनकर राक्षसोंसे युद्धभी करने लगे। अब हनुमान् सब वानरोंके मध्यमें स्थित हो राक्षसोंका संहार करने लगे। उन्होंने कुपित होकर इन्द्रजीतके रथपर एक प्रचंड शिला चला दी। परन्तु उसने रथको इसप्रकार चलाया कि रथ अलग और घोड़े अलग होगये, जिससे वह शिला रथमें न लगकर पृथ्वीको फोड़ भीतर प्रवेश कर गयी। परन्तु राक्षसोंको बड़ी व्यथा हुई। बानर राक्षसों पर भयानक प्रहार करने लगे। यह देख इन्द्रजीतने भी बड़ा पराक्रम किया और बहुतसे बानरोंको मार डाला। हनुमान्‌ने भी बहुतसे राक्षसोंको मारा। फिर हनुमान्‌ने सब वानरोंसे कहा कि अब लौट चलो, युद्ध करनेही से क्या लाभ, जब सीताही नहीं रह गईं। अब चलकर यह समाचार राम और सुग्रीव को सुना दें। तब हनुमान्‌को जाते देख इन्द्रजीत होम करनेके लिए निकुम्भ नामक देवालयमें चला गया। वहाँ जाकर उसने होम किया। अग्निसे प्रसन्न हो संध्याकालीन सूर्य-सा दर्शन दिया। पश्चात् सब राक्षस फिर युद्ध करनेको सन्नद्ध हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका बयासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८२॥

तिरासीवाँ सर्ग

पुरुष प्रयत्नके लिए रामको लक्ष्मणका उपदेश

इधर श्रीरामचन्द्रने जाम्बवान्‌से कहा कि—हे वीर! ज्ञात होता है कि इस समय हनुमान् राक्षसोंसे प्रचण्ड युद्धकर रहे हैं, इसलिए तुम उनकी सहायतामें शीघ्र जाओ। यह सुनकर जाम्बान् ज्योंही आगे बढ़े कि त्योंही कुछही दूरपर उन्हें बानरों सहित आते हुए हनुमान मिल गये। उन्होंने ऋक्षराजसे युद्ध में मेघनाद द्वारा सीताके बधका समाचार व्यक्त किया। फिरतो सब लौटकर रामके पास आए। उनके बचन सुन राम कटे वृक्षके समान गिर पड़े। बानर दौड़कर उनपर शीतल सुगन्धित जलके छींटे देने लगे। जब उन्हें चेतना आई तो लक्ष्मण समझाते हुए बोले—हे आर्य! आप तो सर्वदा शुभ मार्ग परही स्थित हैं। परन्तु इतने परभी यदि धर्मने अनर्थों से आपकी रक्षा नहींकी तो वह रिर्थक ही है। ये सब महाभूत जैसे दृष्टि आते हैं,

ऐसे ही धर्म तो कहीं दृष्टि ही नहीं आता, इससे धर्म कहीं नहीं है। यदि होता तो आप जैसों पर विपत्ति आती ही नहीं। यदि संसारमें धर्म अधर्म है तो अधर्मी अवश्य नरकगामी होगा और आप जैसे धर्मात्माको क्लेश न होगा। धर्मसे धर्म और अधर्मसे अधर्म प्राप्त होता है। अधर्मी धर्म नहीं पाता और धार्मिक पुरुष सर्वदा धर्म ही प्राप्त करेंगे। परन्तु प्रश्न यह है कि यदि सत्कर्म फलदायक होता है तो आपमें तो कोई असत्कर्म नहीं, फिर आपको इस प्रकारका कष्ट क्यों मिला करता है ? अथवा यह कहिए कि धर्म दुर्बल और क्लीब है। क्योंकि वह बलके पीछे चलता है। यदि वह ऐसा है तो उसे त्याग बल ही करना चाहिए। अथवा यह सत्य हो कि धर्म ही सत्य है; परन्तु वह तो आपके लिए मिथ्या हो रहा है। हे परंतप ! यदि धर्म प्रबल हो और अधर्म उससे भिन्न पौरुष बलवान् हो तो इन्द्र पौरुषसे विश्वरूपको मार यज्ञरूप धर्म न करते ! इससे पुरुष-प्रयत्न धर्म शत्रुनाशक हुआ और इन दोनोंके योगसे ही मनुष्य अपना-अपना कार्य करते हैं। इसलिए दोनों को ही अपनाना योग्य है। ऐसा मेरा मत है और यही धर्म है। परन्तु आपने तो अर्थमूलक राज्यका त्यागकर धर्मकी जड़ ही उखाड़ दी। संसारके सारे कार्य धनसे ही होते हैं। द्रव्यसे हीन मंदगति पुरुष सारे कर्मोंसे विच्छिन्न हो जाता है। प्राप्त अर्थका त्यागकर जो मनुष्य सुखकी इच्छा करता है उसकी वह बढ़ी हुई इच्छा अन्यायसे द्रव्योपार्जन करने लगती है जिससे उसे ताड़न बन्धन आदि संकट सहन करने पड़ते हैं। धनवान ही संसारमें श्रेष्ठ पुरुष है। ऐश्वर्यमान ही पंडित है। लक्ष्मीवान् ही पराक्रमी है। वही बुद्धिमान् है और वही राजा है। वही अन्योंकी अपेक्षा गुणवान् है। अर्थके त्यागनेपर मनुष्य अनेक आपत्तियोंमें फँस जाता है। हे ज्ञानसम्पन्न राम ! फिर किस लाभसे आपने राज्यका त्याग किया, यह समझमें नहीं आता। दरिद्र पुरुषको पुरुष प्रयत्नके विना द्रव्य नहीं प्राप्त होता। धनके अभावमें धर्मनिष्ठ तपस्वी भी ऐहिक-पुरुषार्थसे भ्रष्ट हो जाते हैं और वही द्रव्य आपके पास नहीं है। देखिए, पिताका वचन मानकर वनमें चले आनेसे ही आपकी भार्याको राक्षस हर ले गया और इस समय मेघनादने बड़ा दुःख दिया है। अब इस दुःखको आप अपने पौरुषसे ही दूर करें। हे नरशार्दूल ! आप उठिए और अपनी आत्माको

पहचानिए और मुझ लक्ष्मणके योगसे रथों, गजों, और अश्वों सहित समूची लंकाको नष्ट कर दीजिए। अब तो सीताकी मृत्यु ही हो गई। फिर किस लिए निष्प्राण हो रहे हैं ?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका तिरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८३॥

चौरासीवाँ सर्ग

विभीषणका रामको समझाना

इधर लक्ष्मण रामको समझा ही रहे थे कि उधर तबतक विभीषण युद्धके सब मोरचोंपर वानर वीरोंको नियुक्तकर उनके पास आ गए। वहाँ पहुँचकर विभीषणने देखा कि वानरों सहित राम शोक-सन्तप्त हैं। मूर्च्छित रामको गोदमें लेकर लक्ष्मण बैठे हैं। तब रामको शोक-सन्तप्त देख विभीषण व्याकुल हो बोले कि, यह क्या बात है? तब विभीषणकी ओर देख लक्ष्मण रोते हुए बोले कि, इन्द्रजीतने सीताको मार डाला है। विभीषणने कहा-नहीं, यह कदापि हो नहीं सकता। मैं सीताके सम्बन्धमें रावणके मनोरथ जानता हूँ। वह कदापि सीताको मार नहीं सकता। यह तो राक्षस इन्द्रजीतने कोई माया की है। अतः आप मायाकी सीताको मरा समझिए। अब निकुम्भिलामें जाकर होम करेगा और अवध्य होनेका वर माँगेगा। यह सब उसकी माया थी। अब हमें उसके उस हवनको ही समाप्त करना है। हे रामजी! आप अकारण इस उत्पन्न खेदको शीघ्र त्याग दे और स्वस्थ-चित्त यहाँ रहें तथा सेना सहित मुझे और लक्ष्मणको वहाँ भेजिए। हम लोग उसे उस कर्मसे च्युत कर उसका बध कर डालेंगे। जैसे भी हो लक्ष्मणको आप यहाँ शीघ्र भेजिए अन्यथा उस धर्मके समाप्त होनेपर इन्द्रजीत अवश्य ही रहेगा और इससे वह देवताओंको भी भयदायक होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका चौरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८४ ॥

पचासीवाँ सर्ग

लक्ष्मण निकुंभिलाकी ओर

विभीषणकी यह बात रामके हृदयंगम हो गई। उन्होंने आज्ञा देकर विभीषणके साथ लक्ष्मणको निकुंभिलामें भेज दिया जहाँ इन्द्रजीत यज्ञ करता था। तब वानरोंको विशाल सेना लिए लक्ष्मण चले ही जा रहे थे कि मार्गमें

ाम्ववान्‌की सेना भी दिखाई पड़ी। लक्ष्मण उन सबको साथ ले जो आगे ए तो उन्होंने देखा कि राक्षसोंकी अपार सेना मार्गमें खड़ी है। वहाँ हुँच कर लक्ष्मण मायावी मेघनादको विजय करनेके लिए ब्रह्माके विधानसे स रूपमें आगे खड़े हुए कि उनके आगे अङ्गद और हनुमान् थे। निविड़तम न्धकारमें वे शत्रु-सेनाको पारकर उसके मध्यमें जा खड़े हुए। जिसमें त्रुओंके चमचमाते शस्त्र झलक रहे थे। उनमें सभी महारथी थे और सभी त्यन्त भयंकर वेगशाली थे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका पचासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८५ ॥

छियासीवाँ सर्ग

ससैन्य विभीषण और लक्ष्मणका निकुंभिला गमन

तदनन्तर विभीषणने कहा—'सुमित्रानन्दन! अब वानरोंको आज्ञा ीजिये कि ये इस मेघवत् काली घटाके समान दिखाई पड़नेवाली राक्षसों ी सेनापर पत्थरोंका प्रहार करते हुए शीघ्र युद्ध आरंभ करें और स्वयं ी आप इनका युद्ध भंग करें। बिना इसके वह राक्षस दिखाई नहीं पड़ेगा! तएव जबतक वह हवन-कार्य आरंभ करे कि इसके पूर्व ही आप इसपर पने वज्रतुल्य वाणोंकी वर्षा करते हुए शीघ्र आक्रमण कर दीजिये। योंकि यह दुरात्मा रावणकुमार बड़ा ही मायावी, अधर्मी, क्रूरकर्मा और म्पूर्ण लोकोंके लिए भयंकर है। अतः इसका शीघ्र वध कीजिए।'

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका छियासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८६ ॥

सत्तासीवाँ सर्ग

विभीषण और मेघनादकी वार्ता

विभीषणके ये बचन सुनकर लक्ष्मणने राक्षसेन्द्रके पुत्रपर वाण वर्षाना ारंभ किया। साथ ही बड़े-बड़े वृक्ष लेकर बानर और भालू भी वहाँ खड़ी ाक्षस-सेनापर टूट पड़े। बानरों और राक्षसोंका भयानक युद्ध होने लगा। नके प्रचंड कोलाहलसे लंका गूँज उठी। बानरोंने वृक्षों और पाषाणोंसे मार रकर सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार कर दिया। उनके लिए महान् भय उपस्थित ोगया दुर्धर्ष वीर इन्द्रजितने जब देखा कि मेरी सेना शत्रुओं द्वारा पीड़ित घोर संकटमें पड़ गई है सो वह अनुष्ठान समाप्त करनेके पहले ही युद्धके

लिए उठ खड़ा हुआ। उसके मनमें क्रोध छा गया। वह वहाँसे उठकर अपने विशाल रथपर आ बैठा। भयंकर साक्षात् यमराजके समान प्रतीत होने लगा। उसी समय विभीषण लक्ष्मणको साथ लिए आगे बढ़े। आगे एक महा वन था जिसमें श्यामघटाके समान एक वट वृक्षके नीचे जाकर इन्द्रजित हवन किया करता था। उसे दिखाकर लक्ष्मणने कहा—इन्द्रजित प्रतिदिन यहीं आकर भूतोंको बलि दिया करता है। इससे वह युद्ध भूमिमें सब भूतोंके लिए अदृश्य हो जाता है तथा अपने उत्तम बाणोंसे शत्रुओंको मारता और बाँध लेता है। अतः जबतक वह इस वट वृक्षके नीचे आये, उसके पहले ही आप उसे रथ, घोड़े और सारथि सहित मार डालिये।' विभीषणने कहा बहुत अच्छा। फिर तो उन्होंने वहाँ खड़े होकर अपने धनुषपर टङ्कारदी। उसे सुनते ही अपने विशाल रथपर बैठा इन्द्रजित सामने आया। उसे देख लक्ष्मणने कहा—राक्षसकुमार! मैं तुझे युद्धके लिए आह्वान करता हूँ। तू मुझसे सँभलकर युद्धकर।' लक्ष्मणको ऐसा कहते सुनकर इन्द्रजितने देखा कि विभीषण वहाँ उपस्थित हैं। तब उसने विभीषणसे कठोर शब्दोंमें कहा—राक्षसेन्द्रके भ्राता! तुम हमारे चचा होकर पुत्रतुल्य मुझसे क्यों सत्रुता करते हो? स्वजनोंको त्याग तुम दूसरोंके दास बन गये। इस कारण तुम शोचनीय हो गये हो। तुममें कुछ भी जात्याभिमान न रहा। सहोदरत्व और सब धर्म भी तुम्हें कुछ भी बाधक नहीं होता। स्वजनके साथ निवास और शत्रुके आश्रयमें नीच बनकर रहना—यह तुम्हारी ओछी बुद्धि है जो तुम्हें समझमें नहीं आता। अन्य यदि गुणी हो और स्वजन यदि निर्गुणभी हो तो स्वजनही श्रेष्ठ है। अन्य अन्यही है। जो स्वपक्षको त्यागकर परपक्षका आश्रय करता है वह स्वपक्षका क्षय हो जानेपर परपक्षके लोगोंसे वध कर दिया जाता है। हे रावणानुज! एक तुम्हीं ऐसे हो जिसकी यह निर्दयता दृष्टिगोचर हुई है। तब भ्रातृपुत्र इन्द्रजितके इस कथनपर विभीषण उससे बोला—हे राक्षस! तुमने मेरा शील नहीं समझा है। इसीलिए यह आत्मप्रशंसा करते हो। तुमने मेरा बड़प्पन भी नहीं विचार किया। इसीसे ऐसा कठोर वचन बोलते हो। मैं क्रूरकर्मी राक्षस कुलमें अवश्य उत्पन्न हुआ हूँ; परन्तु अधर्म अथवा क्रूर कर्मोंमें मुझे आनन्द नहीं आता। इन्द्रजित! यदि एक भाईका स्वभाव पृथक

हो तो सहोदर भ्राता कैसे दूरकर सकता है। सुख तो तभी प्राप्त होता है जब मानव पापबुद्धिको त्याग करता है। मेरा भाई ऐश्वर्यनाशक है। इसी लिए मैंने उसका त्यागकर दिया है। अब यह लंका नगरी, तुम और तुम्हारे पिता इन सबका नाश होनेवाला है। तू बड़ा दुष्ट और मूर्ख है, इसलिए काल-पाशसे बद्ध अब तेरा नाश उपस्थित है। रे राक्षस! अब जो तेरी इच्छा हो बोल ले। तूने मुझे जो कुवाच्य कहे हैं; उसीका अब यह तेरे लिए संकट उपस्थित है कि, अब तू वटवृक्षके समीप जा नहीं सकता। राम का अपराध करके अब तू जी नहीं सकता। तेरी जितनी इच्छा हो उछल उछलकर अपना बल दिखा। परन्तु आज इन लक्ष्मणके वाणोंका लक्ष्य बनकर तू कदापि जी नहीं सकता।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका सत्तासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८७ ॥

अट्ठासीवाँ सर्ग

लक्ष्मण और मेघनादका तुमुल युद्ध

विभीषणका वचन सुन, क्रोधसे व्याप्त रावण-पुत्रने उनके साथ कठोर भाषण किया। पुनः क्रोधावेशमें वहाँसे प्रस्थान कर दिया। परन्तु वह कुछ ही आगे गया था कि लक्ष्मणने उसे घेर लिया। परस्पर व्यंग्य वार्ता हुई। लक्ष्मणने कहा—आज मैं तेरे वाण-पथपर आरूढ़ हूँ। अपना तेज व्यक्त कर। केवल आत्म-प्रशंसा क्यों करता है? यह सुनकर महाबली समर विजयी इन्द्रजित उत्तेजित हो गया और हाथमें धनुष लेकर लक्ष्मणपर तीक्ष्ण वाण छोड़ना आरम्भ किया। उसके छोड़े हुए सर्प विषवत् महान् शक्तिशाली वाण फुंकार करते हुए लक्ष्मणके समीप आ गिरे जिनमें सूर्यसा प्रखर तेज था। उन वाणोंसे युद्धमें उसने लक्ष्मणको बेध डाला। वाणोंसे बिंधे और रक्तसे रंगे लक्ष्मण निर्धूम अग्निके समान दिखाई पड़ने लगे। तब लक्ष्मणके निकट जाकर इन्द्रजीतने कहा—लक्ष्मण! आज तू मेरे वाणों से मरकर यमलोकको जायेगा, यह निश्चित है। राम तो बड़ा मूर्ख और क्षत्रियोंमें अधम है। उस अनार्यके भ्रातृप्रेममें पड़े तेरा आज बध होगा। आज वह राम देखेगा कि तू मेरे हाथों मारडाला गया। इसपर लक्ष्मणने उत्तर दिया—रे क्रूरकर्मा दुर्बुद्धि राक्षस! विना कर्म किए क्या बलबजाता

है। वैसा कर्म करके दिखा तो स्वीकार भी करलूँ। मैं विना कुछ कठोर कहे
विना किसीकी निन्दा किए और विना बलबलाए ही देख कि आज मैं तेरा
बध कर डालूँगा। ऐसा कहकर लक्ष्मणने जो कानतक धनुष खींचकर
पाँच नाराच नामक वाण मारा तो उसका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया। परन्तु
मूर्च्छित होकर भी उसने सचेष्ट होकर तीन वाणोंसे लक्ष्मणको फि
बेध दिया। फिर तो दोनोंमें तुमुल-युद्ध होने लगा। दोनोंही पराक्रमी और
महान् बली थे। दोनोंमें अनुपम तेज था। वृत्रासुरके समान ही दोनों युद्ध
शोभित हुये। एक दूसरेपर असंख्यों वाण प्रहार करने लगे। तब विभीषण
ने कहा—लक्ष्मण! अब इस दुष्ट रावणात्मजके मरनेमें शीघ्रता कीजिये
फिर तो लक्ष्मणने उसपर वह विषवत् वाण छोड़े कि जिसमें वह एक मुहूर्त
तक मूर्च्छित पड़ा रह गया। पश्चात् स्वस्थ हो लाल नेत्र किए लक्ष्मण
बोला—क्या तुम्हें मेरे प्रथम युद्धका स्मरण नहीं है; जब मैंने भाई सहित
तुम्हें बन्धनमें डाल दिया था। मेरे साथ युद्धकर क्यों यमालय जाना चाहते
हो? यदि नहीं मानते हो तो खड़े रहो अभी दिखाता हूँ। ऐसा कह उसने
लक्ष्मणको पहले दश और फिर सौ वाण मारा जिसे देख हँसते हुए लक्ष्मण
ने भी उसपर घोर वाण छोड़े। उनकी उस वाण-वर्षासे मेघनादका स्वर्णकवच
कटकर रथ पर गिर गया। इसपर कुपित हो उसने लक्ष्मणपर एक सहस्र
वाण फेंके जिससे लक्ष्मणका भी कवच कट कर पृथ्वीपर गिर पड़ा। अब
वाण-विद्ध हो दोनों वीर दीर्घ श्वाँस छोड़ते हुए तुमुल युद्ध करने लगे
वाणोंसे उनके सर्वाङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। दोनों लोहूसे लाल हो गये। बहुत
देरतक उन्होंने भीषण युद्ध किया और कोई क्लान्त न हुआ। दोनों ही वीर
अस्त्र-विद्यामें निपुण थे। उनके वाणोंसे आकाश आच्छादित हो गया।
इसप्रकार लक्ष्मण और मेघनाद परस्पर अति घोर युद्ध करते ही रहे और
कोई श्रमित नहीं होता। उनके वाण-बेधित रक्त-प्लावित शरीर अग्नि
तुल्य दृष्टि आते थे। जब इसप्रकार युद्ध करते हुए उन्हें बहुत समय हो गया
तब लक्ष्मणका श्रम हरण करनेके लिए विभीषण उनके समीप जा खड़े हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका अट्ठासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८८॥

नवासीवाँ सर्ग

विभीषण और लक्ष्मणका पराक्रम

अब विभीषण भी राक्षसोंपर बाण चलाने लगे। उनके चारों अनुचर भी शूल, पट्टिश आदि शस्त्रोंसे युद्धमें राक्षसोंको मारने लगे। साथ ही विभीषणने सब बानरोंको उत्साह देकर राक्षसोंपर दौड़ा दिया। वानरोंके जाम्बवान् आदिक प्रधान-प्रधान वीर वानर राक्षसोंको भयंकर मार मारने लगे। विभीषणने कहा—मेघनादको मैं ही मार देता और वीर लक्ष्मणको इतना श्रम नहीं करना पड़ता; किन्तु क्या करूँ नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह हो रहे हैं। अतः इसे लक्ष्मण ही मारेंगे। तब-तक हमलोग इन अधिकांश राक्षसोंको मार डालें। फिर तो वानरों और राक्षसोंका भीषण संग्राम होने लगा। उधर लक्ष्मण इन्द्रजितको मारनेमें ही लगे थे। वाणोंकी अधिकतासे आकाश आच्छादित हो भयंकर अन्धकार छा गया। सूर्य छिप गये। मांस-भक्षी पक्षी भयंकर ध्वनि करने लगे। वायुका चलना बन्द हो गया। उसी समय वीर लक्ष्मणने अपने स्वर्णमुख वाणोंसे इन्द्रजितके रथके चारों घोड़ों को मार डाला और सारथिको भी मार शीघ्रतासे उसका शिर काटकर फेंक दिया। सारथिको मृतक हुआ देखकर इन्द्रजित खिन्न हो गया। उसी समय प्रमाथी, रभस, शरभ और गन्धमादन इन चार बानरोंने उसके रथके घोड़ों पर कूद-कूदकर उन्हें भी मार डाला और लक्ष्मण ने तो भयानक बाण बरसाकर इन्द्रजितका समस्त मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका नवासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८९ ॥

नब्बेवाँ सर्ग

मेघनाद-वध

यह देख इन्द्रजित प्रज्वलित हो राक्षसोंसे बोला—तुमलोग यहाँ स्थिरतासे युद्ध करो, मैं तब तक दूसरा रथ ले आऊँ। ऐसा कह वह विषम बाणों द्वारा अपना मार्ग प्रशस्त कर लंकामें चला गया और वहाँसे शीघ्रही दूसरे रथपर सवार हो चतुर सारथी सहित युद्ध-क्षेत्रमें आ गया। फिर तो युद्धने नवीन रूप धारण किया। परन्तु कुछ ही क्षण तक वह युद्ध चला कि लक्ष्मणने फिर उसका धनुष आदि काटकर रथको तोड़कर घोड़ों और उसके

सारथिको मारकर यमलोकको भेज दिया। इससे कुपित हो रावण-पुत्रने लक्ष्मणको अपने बाणों द्वारा क्षत-विक्षत कर विभीषणके भी मुँहपर कई बाण मारे। फिर लक्ष्मणपर जो शक्तिका प्रयोग किया तो वीर लक्ष्मणने उसे काटकर गिरा दिया। यह देख इन्द्रजितने यमराजका दिया हुआ एक बाण विभीषण पर चलाया, जिसके उत्तरमें लक्ष्मणने कुबेरका दिया हुआ बाण छोड़ा। दोनों बाण परस्पर टकराकर पृथ्वीपर गिर पड़े, जिससे दारुण अग्नि उत्पन्न हो गया। फिर परस्पर लड़कर सौ-सौ खण्ड हो गए। दोनों वीरोंको परस्पर बड़ी लज्जा हुई। तब लक्ष्मणने क्रोधकर वरुणास्त्र और इन्द्रजितने रुद्रास्त्र लेकर एक दूसरेपर प्रहार किया। रुद्रास्त्र नष्ट हो गया। तब वरुणास्त्रसे अपने शस्त्रको नष्ट हुआ देख इन्द्रजितने आग्नेय अस्त्र चला दिया, जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रसे शान्त कर दिया। इसपर उसने असुरबाण चलाया। उसे आता देख लक्ष्मणने महेश्वरास्त्र छोड़कर उसका वेग शान्तकर दिया। इसप्रकार दोनोंका रोमहर्षण युद्ध हुआ। उस युद्धके देखनेके लिए ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, गरुण और नागादि इन्द्रको आगेकर आकाशमें आगए और लक्ष्मणकी रक्षा करने लगे। फिरतो लक्ष्मणने इन्द्रजितके लिए एक अत्यंतही ऐसा श्रेष्ठ बाण धनुषपर धारण किया कि जो कभी युद्धमें पराजितही नहीं हुआ था और जिसका प्रयोग पूर्वकालमें इन्द्रको दैत्यपर विजय देनेवाला था। उस धनुषपर चढ़ा लक्ष्मणने कहा—यदि राम धर्मात्मा और सत्यव्रती हों तो हे बाण! तुम इन्द्रजितका बधकर डालो। ऐसा कह जो उन्होंने उसे ऐसे अस्त्रसे युक्तकर मेघनाद पर छोड़ा तो उसने कुंडलों सहित इन्द्रजितका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। फिरतो मेघनाद का धड़ हाथमें धनुष लिए धराशायी हुआ और बानर हर्षित हो नाद करने लगे। राक्षसोंकी सेना लंकामें पलायन कर गई। संसारकी पीड़ा नष्ट होगई। सबको हर्ष होने लगा। महर्षि गण तथा इन्द्रभी बड़े हर्षित हुए। उस दुष्ट के बधसे प्रसन्न दिशाएँ निर्मल होगई और आकाशसे पुष्प वृष्टि होने लगी। जाम्बवान्, हनुमान् आदि लक्ष्मणका अभिनन्दन करने लगे। लक्ष्मणके इस दुष्कर कर्मको देख देवताओंने इनकी बड़ी प्रशंसा की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका नब्बेवाँ सर्ग समाप्त॥ ९०॥

इक्यानबवाँ सर्ग

मेघनाद-विजयी लक्ष्मणका राम द्वारा अभिनन्दन

शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मण शत्रु-बिजयी इन्द्रजितका बधकर बड़े आनन्दित हुए। फिरतो महातेजस्वी जाम्बवान्, हनुमान् और सभी बानरों को साथ ले विभीषण सहित जहाँ राम थे वहाँ गये। विभीषणने उनके द्वारा मारे गये इन्द्रजितका समाचार कहा जिसे सुन रामके हर्षका अन्त न रहा। उन्होंने शीघ्रतासे उठकर लक्ष्मणका गाढ़ालिंगन किया और बारम्बार उनका मुख देखते हुए उनकी बड़ी प्रशंसा की तथा यहभी कहा कि हे वीर! मेघनाद को मारकर तुमने जो अद्भुत कार्य किया है उससे अब रावणको मारना मेरे लिए बहुत सरल होगया है। अब वह शीघ्रही इसी रातमें मुझसे युद्ध करने आयेगा और मैं उसे मारूँगा। इन्द्रजित उसका दाहिना हाथ था। तुमने उसका वह हाथ तोड़ दिया; जिससे अब वह निर्बल हो गया। इसके लिए तुम्हें मेरा धन्यवाद है। तुम्हारे इस दुर्घट कार्यके कर देनेसे अब मेरी बिजय निश्चित है। बिभीषण और हनुमान्नेभी बड़े पराक्रम किये हैं। तीन अहोरात्र तक युद्ध करनेपर किसीप्रकार आज उसका बधतो हुआ। आज मैं शत्रु-रहित हुआ। अब रावण मेरे समक्ष आवेगा। तब पुत्रके शोकसे सन्तप्त रावणके आतेही मैं उसका वध करूँगा। हे लक्ष्मण! तुमने इन्द्रजितका वध किया तो इससे ज्ञात है कि तुम्हारे स्वामित्वमें मुझे और पृथ्वीकी प्राप्ति होना कुछ दुर्लभ नहीं है। इसप्रकार भाईको आश्वासन तथा आलिंगन देकर राम आनन्दितहो सुषेणको पुकारकर बोले कि, हे मित्रवत्सल! महा बुद्धिमान् लक्ष्मण जिसप्रकार शल्य रहित तथा स्वस्थचित्त होवें वैसी इन्हें औषधि दो तथा अन्य शूरवीर बानरोंको भी अपने उपचार द्वारा शीघ्र शल्य-रहित करो। रामके ऐसा कहनेपर बानरोंके सेनापति सुषेणने लक्ष्मणको एक उत्तम औषधि सूँघनेको दिया जिससे लक्ष्मण शल्य रहित होकर स्वस्थ्य होगये। अन्य बानरोंको भी उन्होंने वह औषधि दी। सभी स्वस्थचित्त आनन्दित हुये। फिरतो राम वानराधिपति सुग्रीव, विभीषण, ऋक्षपति जाम्बवान् और हनुमानादि बानरों सहित बहुत देरतक प्रसन्न होते रहे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका इक्यानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९१ ॥

बानबेवाँ सर्ग

मेघनादके वधसे शोकान्वित रावणका सीताको मारने जाना

उधर जब रावणके सचिवोंने जाकर लक्ष्मण द्वारा मेघनादके मारे जानेका उससे सब समाचार कहा तो रावण क्षण भरके लिए मूर्च्छित हो गया। जब संज्ञा प्राप्त हुई तो वह पुत्र-शोकसे व्याकुल हो अनेक प्रकार उसीकी प्रशंसा कर विलाप करने लगा। अब उसने अपनी बुद्धिसे मेघनादकी मृत्युका कारण सीताकोही जानकर अब उसका वध कर देनाही उचित समझा। वह अपने दाँत पीसकर जँभाई लेने लगा। उसके नेत्र तो स्वभावतः लाल थे; अब वे क्रोधाग्निसे और भी लाल हो गए। वह क्रोधयुक्त यमराजके समान हो गया और सब दिशाओंकी ओर देखने लगा। उस समय रावणके पास कोईभी राक्षस न जा सका। तदनन्तर परम संक्रुद्ध रावण राक्षसोंको युद्धमें स्थित हो जानेकी आज्ञा दी और कहा कि, मैंने सहस्रों वर्ष तक परम तपकर ब्रह्माको प्रसन्न किया है जिसके परिणाम-स्वरूप मुझे देवताओं और दैत्योंसेभी कोई भय नहीं है। आज मैं निर्भय रथारूढ़ हो जब युद्ध-क्षेत्रमें जाऊँगा तो भला मेरे समक्ष कौन आवेगा। आज मैं ब्रह्मासे प्राप्त अपने धनुर्बाणका प्रसन्नतासे प्रयोग करूँगा। आज राम-लक्ष्मणको यथार्थ आपलोग उठा लावेंगे। ऐसा कह संक्रुद्ध रावण सीताको मारनेका विचार करने लगा। इन्द्रजितने मायासे किया था; परन्तु मैं उसे सत्यही करूँगा और राममें आसक्त सीताका वध कर डालूँगा। ऐसा कह श्वेत खड्ग म्यानसे निकाल मन्त्रियों सहित वहाँसे उठ खड़ा हुआ और शीघ्रही सीताके पास जाने लगा। यद्यपि सुहृदोंने उसे रोका भी; परन्तु वह चला गया। राक्षसियोंसे रक्षित सीतानेभी देखा कि हाथमें तलवार लिए रावण आ रहा है। सीता व्यथित हो गईं। आज रामका वियोग समझ वे अधिक दुःखित हो विलाप करने लगीं। उन्होंने मन्थरा, कैकेयी आदिका वह सब कर्म स्मरणकर बहुत विलाप किया। तब उसी समय सुपार्श्व नामक रावणके मन्त्रीने उससे कहा कि, आप साक्षात् कुबेरके अनुज होकर, धर्मको त्याग सीताको क्यों मारने जाते हैं? हे वीर! आप वेद-पारांगत होकरभी स्त्रीका वध कैसे अच्छा समझते हैं? हे पार्थिव! मेरे विचारसे तो प्रतिदिन सीताका दर्शन किया कीजिए और इस क्रोधको

राम परही उतारिए। आज कृष्ण चतुर्दशी है, इससे आज रुककर सेना सजाइए और कलही हमलोगोंके साथ युद्ध-यात्रा कीजिए। जानकीका बध करनेसे क्या होगा ? इससे तो यही उत्तम है कि रथपर आरूढ़ हो समराङ्गण में जाकर राम-लक्ष्मणको मार सीताको ग्रहण कीजिए। मंत्री सुपार्श्वके यह वचन सुनकर रावण अपनी सभाको लौट गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका बानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९२॥

तिरानबेवाँ सर्ग

राम द्वारा राक्षसोंका घोर संहार

पुत्र शोकान्वित रावण सभामें जाकर अपने सेनापतियोंसे बोला कि, मेरी चतुरङ्गिणीसेना शीघ्र तैयार हो। मैं कल प्रातः ही राम-लक्ष्मणको मारने के लिए प्रस्थान करूँगा। तब-तक तुम लोग आज जाकर रामको मारो। रावणकी आज्ञा पा उसके सभी सेनापति राक्षसोंको विशाल सेनाले राम-लक्ष्मणसे युद्ध करने चले। ऐसा भयानक संग्राम किया कि, धूल रक्तसे भींग-कर शान्त हो गई और रुधिरकी नदियाँ बह चलीं। वानरगण अपने दाँतों और नखोंसे राक्षसोंके कान-मस्तक और नाक आदि चीरने-फाड़ने लगे। एक-एक राक्षस पर सौ-सौ वानर दौड़ते थे। राक्षस वानरोंको गदाओं, भालों और फरसोंसे मारते थे। वानर पीड़ित हो रामकी शरणमें गये। यह देख राम राक्षस-सेनाके मध्यमें आकर वाण-वर्षा करने लगे। उनकी अग्निवत् वाण-वर्षासे राक्षसोंका वेग अवरुद्ध हो गया। अब रामने गन्धर्वास्त्रका प्रयोग कर दिया। प्रहार करते हुए रामको राक्षसगण देखही न पाते थे। राम अपने भयानक वाणोंसे राक्षसोंका संहार करने लगे। गन्धर्वास्त्रसे मोहित राक्षसोंको युद्धमें सहस्रों राम दिखाई पड़ने लगे। किन्तु राम तो अकेलेही थे। उन्होंने पौने चार घड़ीमें ही अपने दिव्यास्त्रोंसे राक्षसोंके दश सहस्र रथी, अठारह सहस्र हाथियोंकी अनी, चौदह सहस्र अश्वारोहियोंकी और दो लाख राक्षस पदातियोंकी अनीको मार डाला। तब घोड़े रथ और पताका आदिके नष्ट हो जाने पर हतशेष राक्षस लंकाको पलायन कर गये। मृतक हाथियों, पदातियों, और अश्वोंसे युद्ध-भूमि क्रुद्ध रुद्रको क्रीड़ा-भूमि सदृश दिखाई पड़ी। आकाश-स्थित देव, सिद्ध और महर्षिगण 'धन्य-धन्य' कहकर रामके कर्मोंकी प्रशंसा करने लगे। फिर देवताओंने स्तुति भी की।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका तिरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९३॥

चौरानबेवाँ सर्ग

राक्षसियोंका विलाप

इसप्रकार रावण द्वारा भेजे गए असंख्यों राक्षसोंको उनके हाथी, घोड़ों तथा पताकादि सहित रामने बाणोंसे मार डाला। उनको मरा देख हतशेष राक्षस और राक्षसियाँ दुःखित होकर चिन्तासे व्याकुल हो गईं। उनमें अनेक तो विधवा हो गई थीं और कितनोंके पुत्र; कितनेके भाई-बन्धु वध करा दिए गए थे। वे सब विविध विलापकर रही थीं कि, अपना नाश करनेके लिए ही रावण सीताको यहाँ ले आया। किन्तु वह सीताको पा नहीं सकता। व्यर्थही बलवान् रामसे शत्रुता हो गई। विभीषणने जो कुछ कहा था, उसमें सभी राक्षसोंका हित था। परन्तु रावणने एक न मानी। यदि मान गया होता तो दुःखसे पीड़ित लंका श्मशान तुल्य न हो जाती। कुम्भकर्ण, अतिकाय और इन्द्रजितके मरने पर भी रावण नहीं समझता है। मेरा पुत्र, मेरा भाई; मेरा पति युद्धमें मारा गया। इसप्रकार सब राक्षसियोंका आर्त्तनाद श्रवणगोचर होने लगा। अब उस महाबली रामसे रावणकी कोई देवता भी रक्षा नहीं कर सकते। ब्रह्माजीने तो इसे देव, दानव और राक्षससे अवध्य किया है; किन्तु मानवसे नहीं। अब यह मानव रूप प्रकट हुआ है जो इसका सर्व-संहारही कर डालेगा। अब हम सबका रक्षण करनेवाला इस संसारमें कोई दिखाई नहीं पड़ता। विभीषण धन्य है जो उन संसाररक्षककी शरणमें चला गया। जैसे दावाग्निमें फँसी हुई हाथियोंका कोई आश्रय नहीं होता, वैसेही महान् संकटमें आबद्ध हम सबका भी कोई आश्रय नहीं रहा। इस दुष्टात्मा रावणसे तो हम सबपर बड़ी घोर आपत्ति आ गई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका चौरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ सर्ग

रावणकी युद्ध-यात्रा

इसप्रकार दुःखित राक्षसियोंका करुण-विलाप लंकामें प्रत्येक स्थानपर रावणको सुनाई पड़ा। वह दीर्घ-निःश्वासले बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह क्रोधसे लाल नेत्र किए, दाँतोंसे अपने होंठ चबाता हुआ राक्षसों सहित दुराधर्ष कालाग्निके समान दिखाई देने लगा। फिर वह अपने समीपस्थ राक्षसोंसे





ला-तुमलोग हमारी आज्ञासे जाकर महोदर महापार्श्व और विरूपाक्षसे
हो कि सेना सहित मेरे पास शीघ्र आवें। तब उन राक्षसोंने जाकर वह
ाज्ञा महोदरादि राक्षसोंको सुनाई। रावणकी आज्ञा पातेही वे राक्षस युद्धार्थ
सके पास प्रस्थित हुए। सब महारथियोंने आकर रावणकी जय सुनाई।
वणने हँसकर कहा-आज मैं राम-लक्ष्मणको यमपुर भेजूँगा। आज मेरे
णोंसे आच्छादित अन्तरिक्ष, दिशाएँ, आकाश और सातों समुद्र प्रकाशित
होंगे। आज मेरे बाणरूप लहरियोंमें व्याप्त वानर-मूर्खोंका संहार होजावेगा।
ाज मैं अपने एक-एक बाणसे सौ-सौ वानरोंको मार उन राक्षसियोंके आँसू
छूँगा कि जिनके पुत्र, पति और भाई मारे गए हैं। आज मेरे बाणोंसे वानर-
ना विच्छिन्न होकर पृथ्वी दर्शनीय हो जाएगी और काकों, गृध्रों तथा अन्य
ंसभक्षी पक्षियोंको आज मैं शत्रुके मांसोंसे तृप्तकर दूँगा। अब मेरा रथ शीघ्र
यार करो और धनुष लाओ तथा राक्षसोंके सब उत्तम योद्धा मेरे पीछे-
छे चलें। फिर तो महापार्श्वने शीघ्रही लंकाकी सब सेनाको सन्नद्ध होनेकी
ाज्ञा दी और एक ही मुहूर्तमें सब राक्षसगण नाद करते हुए आ पहुँचे।
भी युद्धमें काम आनेवाले शूल, पट्टिश, गदा, मुशल, खड्ग और मुद्ग-
ादिसे युक्त सज्जित थे। रावण अपने एक सहस्र कलशियोंसे युक्त, जिसमें
ाठ घोड़े जुते हुए थे और जो सब प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंसे सज्जित था उस
थपर जाकर बैठ गया। कितने ही राक्षस उसके साथ चले। युद्धके वाद्य
जने लगे। राक्षसोंने घोर नाद किया। चमर-छत्रधारी, दुराचारी देव-
टक-रावण रामसे युद्ध करने चला। पृथ्वी काँप उठी, वानर भागने लगे।
न्य-परिवेष्टित काल, अन्तक या यमके ही सदृश तेजस्वी रावण धनुष
ा युद्धके लिए प्रस्थित हुआ और जिस ओर राम और लक्ष्मण खड़े थे
ी द्वारसे वह बाहर आया। सूर्यका प्रकाश नष्ट हो गया। दिशाएँ
न्धकारसे व्याप्त हो गई। पक्षियोंका शब्द होने लगा तथा पृथ्वीमें भारी
प हुआ। रक्तकी वर्षा होने लगी, घोड़े हींसने लगे। रावणकी ध्वजाके
ग्रभागपर गृध्र आकर बैठने लगे, उसका वामनेत्र फड़कने लगा, बायीं
जा फड़कने लगी, मुख निस्तेज हो गया और उसका स्वरभंग हो गया।
े मृत्यु-सूचक चिन्ह भी दिखाई पड़े। आकाशसे उल्कापात हुआ और

अमंगल-सूचक शब्द काक तथा गृध्र पक्षी करने लगे। तथापि काल प्रेरि रावण इन सब अपशकुनोंकी पर्वा किए बिना ही स्व-बधार्थ मोहवश प्रस्थि हुआ। उसके रथ-रवको सुनकर राक्षसों और वानरोंकी सेना युद्ध करनेक सन्नद्ध हो गई। रावणने पहुँचतेही अपने क्रुद्ध वाणोंसे वानरोंकी एक विशा सेनाको मार डाला। वह क्रोधित नेत्र किए जिधरही पहुँचता, वानर उस वाणोंको न सहन करते हुए पलायन करने लगते।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका पंचानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९५ ॥

छियानबेवाँ सर्ग

रावणका भयानक आक्रमण और सुग्रीवका अद्भुत पराक्रम तथा विरूपाक्ष-बध

इसप्रकार रावणके बाणोंसे आहत बानरों द्वारा पृथ्वी व्याप्त होगई बानर-सेनामें हाहाकार मच गया। कोईभी बानर-वीर रावणका सामना कर को समर्थ न हुआ। फिरतो बड़ी शीघ्रतासे सब बानरोंको भगाते हुए राक्ष समरमें रामके समीप जा पहुँचा। तब इसको उधर जाते देख बानरराज सुग्री अपने प्रचंड वेग प्रदर्शित करते हुए महाराक्षस विरूपाक्ष तथा उसके साथ सब राक्षसोंसे घोर युद्ध करने लगे। उन्होंने उसके हाथीको मार डाला तब और भी कितनेही राक्षसोंका भयानक संहारकर दिया। विरूपाक्षनेभी सुग्री को बहुत मारा। लातों, मुक्कोंका भी उन दोनोंमें प्रचंड प्रहार हुआ। प दोनोंही बड़े वीर थे, बहुत देरतक युद्ध करतेही रहे। उसी समय सुग्रीव अवसर पाकर विरूपाक्षके माथेपर एक लात मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उसके नेत्र निकल आए और मुखसे रक्त-वमन करता हुआ वह प्राण त्या यमलोकको चला गया। बानर हर्षित तथा राक्षस शोकित हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका छियानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवाँ सर्ग

महोदरका बध और सुग्रीवकी अद्भुत वीरता

इसप्रकार समरांगणमें उत्तम पक्षोंकी सेनाके सर्वनाशसे उसकी स्थि ऐसीही शुष्क होगई जैसे ग्रीष्मकालके शुष्क सरोवर। तब अपनी सेना और विरूपाक्षके इसप्रकारके बध और संहारको देख रावण बड़ा व्यथित हुआ। उसने अपने समीपस्थ महोदरसे कहा कि, हे महावीर! अब इस समय

विजय तुम्हींपर आशान्वित है। शत्रुको मार तुम आज अपना पराक्रम प्रदर्शित करो। यह सुन महोदरने शत्रुकी सेनामें प्रवेशकर वानरोंमें उथल-पुथल मचा दिया। वानरगणभी राक्षस सेनामें प्रवेशकर राक्षसोंको मारने लगे। परन्तु राक्षसोंकी भयानक मारके आगे वानरोंके पैर उखड़ गये; यह देख सुग्रीव महोदरकी ओर झपटे। सुग्रीव और महोदरका भयानक युद्ध होने लगा। महोदर अपने गदादि आयुधोंसे और सुग्रीव वृक्ष तथा पत्थरादि-कोंसे उसे मारने लगे। बहुत देरतक दोनों युद्ध करतेही रहे और श्रमित होने परभी युद्धसे विरत न हुये तथा दोनोंने समीपमें ही पड़ी तलवारको उठा लिया और महोदरने सुग्रीवका कवच काट गिराया। इसके प्रथम ही सुग्रीव उसे विरथकर चुके थे। इसी समय उसकी तलवार उसके कवचमें फँस गयी। वह उसे छुड़ाने लगा। तबतक अवसर पाकर सुग्रीवने अपनी तलवारसे उसका शिर काटकर गिरा दिया। उसका शिर कटतेही राक्षस-सेना पलायनकर गई। वानर सानन्द गर्जने लगे। रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ। राम हर्षित हुए। सुग्रीव में अद्भुत तेज छा गया। आकाश स्थित देवता, सिद्ध तथा यक्षादिगण और पृथ्वीके सब प्राणियोंका भी समुदाय सुग्रीवकी प्रशंसा करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका सत्तानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥९७॥

अट्ठानबेवाँ सर्ग

महापार्श्व-वध

महोदरको मरा देख महापार्श्व सुग्रीव और अङ्गदकी सेनाको क्षुब्ध करने लगा। वानरोंके देह और शिर कट-कटकर गिरने लगे। उसकी मारसे सब वानर निस्तेज होगये। तब उसकी इस कठिन मारको देख अङ्गदने एक लोह-परिघ उठाकर महापार्श्वको ऐसा मारा कि वह तत्क्षण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। इधर ऋक्षराज जाम्बवान्ने एक विशाल शिला लेकर शीघ्रता पूर्वक उसके घोड़ोंको मार डाला और रथकोभी तोड़ दिया। जब दो घड़ी पश्चात् महापार्श्वकी मूर्च्छा व्यतीत हुई तब वह औरभी उत्तेजितहो अङ्गदसे युद्ध करने लगा। परन्तु अमित बल करकेभी वह अङ्गदको मार न सका और अङ्गदने अपने एक मुष्टिक-प्रहारसे ही उसका प्राणान्तकर दिया। राक्षस-

सेना क्षुब्ध होगई, बानरोंमें हर्ष छा गया। यह देख संग्राम करता हुआ रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ। बानर अपने हर्ष-नादसे मानों लंकाको विदीर्ण करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका अट्ठानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९८ ॥

निन्यानबेवाँ सर्ग

रावणकी चलाई शक्तिसे लक्ष्मणका आहत होना

महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्षके मरनेपर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह राम-लक्ष्मणादिको आज मार डालूँगा ऐसा बहुत बकता-झखता हुआ शीघ्रही वहाँ पहुँचा जहाँ राम खड़े थे। उसने रामपर बड़ाही दारुण अस्त्र छोड़ा। उस अस्त्रसे बानर जलने लगे। बानर इधर-उधर भागने लगे। संग्राममें बड़ी धूलि उड़ी। यह देख रामने आगे बढ़कर धनुर्टङ्कोर किया जिससे सैकड़ों राक्षस धराशायी होगए। लक्ष्मण आगे बढ़कर रावणसे युद्ध करने लगे। रावणने उनके बाणोंका वेग अपने बाणोंसे रोक दिया, फिर वह लक्ष्मणको छोड़ रामकी ओर आया। संक्रुद्ध रावणने रामपर भयंकर बाण छोड़ा। यह देख रामने शीघ्रही भल्ल नामके बाणसे उसके सब बाणोंको काट दिया। फिरतो शीघ्रता पूर्वक राम और राक्षस परस्पर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे। बाँयें दायें चित्र-विचित्र मण्डलोंमें दोनों चक्रवत् घूमने लगे। उनके परस्परके भयंकर प्रहारोंसे प्राणियोंमें भय छा गया। दोनों ओरके बाणों से आकाश आच्छादित हो गया। आकाशमें अन्धकार छा गया। एक दूसरे को मार डालनेके अभिप्रायसे दोनोंने भयंकर अचिन्त्य युद्ध किया। उसी समय रावणने रामके शिरमें एक बाण मारा। किन्तु इसकी कुछ पर्वा न करते हुए रामने अपने धनुषपर रौद्रास्त्र चढ़ाकर रावणपर अनेकों बाण बरसाये जो उसके अवध्य मेघाकार कवचमें जा लगे। फिर रामने रावणके शिरमें एक विशाल अस्त्र मारा। रावणने उसे काट दिया। फिर उसने घोर असुरास्त्रका प्रयोग किया। उससे बड़ेही विषम बाण चलने लगे। जिसे देख रामने बड़े उत्साहसे आग्नेयका प्रयोग किया। उससे रावणके वे बड़ेही घोर बाण हत हो गये। यह देख वानरोंको बड़ा हर्ष हुआ। रामभी बहुत प्रसन्न हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका निन्यानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९९ ॥

सौवाँ सर्ग

रावणके शक्ति-वाण द्वारा लक्ष्मणका आहत होना

तब असुरास्त्रको नष्ट हुआ देख रावणने द्विगुण क्रोधसे मय द्वारा निर्मित बड़ाही भयंकर अस्त्र लेकर रामपर चलाया जिससे शूल, गदा, मूशल तथा और भी बहुत अस्त्र चलने लगे। तब यह देख राम ने उन्हें गन्धर्वास्त्र से नष्ट कर दिया। इसपर रावणने सौ अस्त्र चलाया जिससे बड़े-बड़े लाखों चक्र निकलने लगे और जिनसे आकाशमें प्रकाश छा गया। परन्तु रामने उन सबको अपने वाणोंसे नष्टकर डाला। यह देख रावणने रामके सब अङ्गोंमें दश-दश वाण मारा। फिर तो इससे कुपित होकर लक्ष्मणने अपने धनुषपर सात वाण धारणकर रावणकी ध्वजा कई स्थानोंसे काट डाली। साथही उन्होंने रावणके सारथीका शिरभी काट दिया। तबतक विभीषणने कूदकर रावणके रथके आठों घोड़ोंको अपनी गदासे मार डाला। फिर तो रथसे उतरकर रावणने अपने भाई विभीषणपर बड़ा रोष किया और एक महाशक्ति उसपर छोड़ी। परन्तु महावली लक्ष्मणने उसे बीचमेंही काट दिया। संकटापन्न विभीषणको बचा लिया। फिर तो लक्ष्मणने अपने वाणोंसे रावण को ऐसा व्यथित किया कि वह फिर विभीषणपर प्रहार न कर सका। पश्चात् रावणने लक्ष्मणको मारनेके लिए मयद्वारा निर्मित शक्तिको चलाकर उन्हें मार देना चाहा। परन्तु उसी क्षण रामने कहा—लक्ष्मणका कल्याण हो, यह शक्ति सफल न हो। परन्तु रावणने उसे बड़े क्रोधसे चलाया था, इससे वह शक्ति आकर लक्ष्मणके हृदयमें प्रवेशकर गयी। लक्ष्मण पृथ्वीपर गिर गये। भ्रातृवत्सलतासे राम खिन्न हो गये। उनके नेत्र अश्रुओंसे व्याप्त हो गये। परन्तु उन्होंने तत्क्षण उस खिन्नताका त्याग किया और रावणपर अपने अमोघ वाण बरसाना आरंभ किया। इधर बड़े-बड़े बली वानर लक्ष्मण के वक्षःस्थलमें लगी उस शक्तिको निकालनेमें असफल हो गये। तब रामने आकर उसे निकाला और तोड़ डाला। शक्ति निकालते समय रावणने उन्हें बहुत मारा। परन्तु उसे सहन करते हुए रामने लक्ष्मणको सँभालकर वानरोंको वहाँ नियुक्त किया और तब वे रावणसे युद्ध करने चले। उन्होंने

कहा—आज मेरा रामत्व इस युद्धक्षेत्रमें दिखाई पड़ेगा। ऐसा कहकर रा ज्योंही आगे बढ़े कि रावणने उन्हें अपने भयानक वाणोंसे छेद डाला।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका सौवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०० ॥

एक सौ पहला सर्ग

लक्ष्मणको शक्ति लगे पृथ्वीपर रक्तमें पड़े देख राम हताश हो गये उन्होंने रावणसे युद्ध करना त्याग दिया और विलाप करते हुए सुषेण अपनी सब निर्बलता व्यक्त की तथा यह कहने लगे कि—हे सुषेण! अब मे हाथसे धनुष गिर रहा है और मुझे विजय अच्छी नहीं लगती है। इसलि अब युद्ध करना निष्प्रयोजन है। जब लक्ष्मणही युद्धमें शयन कर रहे हैं तो इन सबका क्या होगा? वनको आते समय जैसे ये हमारे पीछे आए हैं वैसे ही मैं भी इनके पीछे-पीछे यमपुरको जाऊँगा। पुरुष चाहे जिस दिशाको चला जाय, स्त्रियाँ और बांधव मिल सकते हैं, परन्तु मैं वह स्थान नहीं देखता जहाँ सहोदर मिलता हो। लक्ष्मणके बिना मुझे राज्यसे क्या है? मैं पुत्रवत्सला माता सुमित्रासे जाकर क्या कहूँगा। भरत और शत्रुघ्नको भी जाकर क्या उत्तर दूँगा। इसलिए मैं यहीं मर जाना अच्छा समझता हूँ। हा भाई! मुझे छोड़ अकेले स्वर्ग क्यों जाते हो? उठो, उठो, मुझ दुःखीको देखो। हे सुषेण! अभी इनमें प्राण है। पहले जिस औषधिको तुम मँगाते थे उसी औषधिको मँगाकर इन्हें जीवदान दो। फिर तो सुषेणने हनुमान्‌को भेजकर पर्वत सहित उठा औषधिको मँगा लिये। सुषेणने उसमेंसे मृत संजीवनी उखाड़कर उसका चूर्ण बना जो लक्ष्मणकी नाकमें लगाया तो उसे सूँघते ही लक्ष्मण निर्व्यथित हो निरोग हो गये। तब लक्ष्मणको पृथ्वीसे उठा हुआ देखकर सब वानरोंमें प्रसन्नता छा गयी और रामने लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! यहाँ आओ। ऐसा कह रामने उनको भलीभाँति आलिंगन किया। लक्ष्मणने कहा—महान् पुरुष अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं। अतः आज संध्या होते-होते आप रावणका वध कीजिये। यदि आपको अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेकी इच्छा है. यदि युद्धमें आपको रावण-वधकी इच्छा है और उसी प्रकार यदि आपको राजकन्या सीताके प्राप्त करनेकी इच्छा है तो हे वीर! आज मैं जैसा आपसे कहता हूँ, वैसा कीजिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एक सौ पहला सर्ग समाप्त ॥ १०१ ॥

एक सौ दूसरा सर्ग

लचमणकी सचेष्टता और रामकी अद्भुत वीरता

शत्रुहन्ता लक्ष्मणके ये वाक्य सुन रामने धनुष ग्रहण कर रावणपर वाण बरसना आरंभ किया। रावण भी रामको लड़ाने लगा। देव गन्धर्व किन्नर उनका युद्ध देखने लगे। इन्द्रने अपने सारथीको बुला रथ ले संग्राम-भूमिमें रामके पास भेजा। मातलि स्वर्गसे रथले रामके पास समराङ्गणमें आया। वह उन्हें रथपर बिठाकर युद्धोन्मुख हुआ। राम उस रथपर बैठ रावणसे युद्ध करने लगे। राम और रावणका लोमहर्षण युद्ध होने लगा। दैत्य रावणसे और देवता रामसे कहने लगे कि आप युद्धमें विजयी हों। एकने दूसरेपर भयंकर प्रहार किया। रावण शूल उठाकर भयंकर नाद करने लगा। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिशाएँ व्याप्त हो गईं। सभी भयभीत हो गये। उसने कहा—राम! खड़े रहो, मैं तुम्हें अभी मारे डालता हूँ। ऐसा कह उसने रामपर अपना वह शूल चला दिया। उसने रामके सब वाणोंको भस्म कर दिया। इससे रामने भी बड़ा क्रोध किया और उन्होंने इन्द्रकी दी हुई परमप्रिय शक्ति उसपर चला दी। उस शक्तिने रावणके शूलको काट दिया। फिर तो रामने अनेकों बाण मारकर रावणका वक्षस्थल बींध डाला। वह पुष्पित अशोक-सा शोभित हुआ। रामके वाणोंसे रावणका शरीर विद्ध होकर रक्तसे डूब गया। राक्षसोंके मध्यमें वह अत्यन्त ही खिन्न हुआ और बड़ा ही क्रुद्ध हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ दूसरा सर्ग समाप्त ॥१०२॥

एक सौ तीसरा सर्ग

रावण-वधार्थ रामका अद्भुत पराक्रम

रामके प्रहारोंसे व्यथित रावणने बड़ा क्रोध किया। उसके धनुषसे छूटे वाणोंसे राम पूर्ण हो गये। परन्तु कुछ कम्पित न हुये। फिर तो उन्होंने क्रुद्ध होकर ऐसे वाण चलाये कि पृथ्वी व्याप्त हो गयी और अन्धकार छा गया। तब राम हँसकर रावणसे यह कठोर वचन बोले कि—रे राक्षसाधम! मेरी अवज्ञाकर जनस्थानसे विवश जो मेरी भार्याको तू हरलाया है तो क्या अपनेको बली समझता है? तू का पुरुष है। क्या तू ही इष्ट कुबेरका भाई

है ? यदि तू मेरे समक्ष ऐसा किए होता तो वाणोंसे हत होकर अवश्य
खरको देखने चला जाता। ठहर, मैं अभी ही तुझे अपने वाणोंसे मार
यमलोक भेजे देता हूँ। ऐसा कहते हुए रामने समीप स्थित रावणपर अ
घोर वाणोंका प्रहार कर दिया। उस समय शत्रुको मारनेके लिए राममें द
बल और उत्साह आ गया था। रामके आगे समस्त अस्त्र स्वयं ही आ
प्रकट हो गये थे। उन वाणोंको फिर ले राम रावणको व्यथित करने ल
फिर तो रामके चलाये वाणोंसे रावण चक्रवत भ्रमित होने लगा। और
वह फिर शस्त्र उठा सका न धनुष। नाना प्रकारके शस्त्र उसके नाश
दृष्टि आने लगे। उसकी मृत्यु अत्यंत ही निकट आ गई। तब रावण
ऐसी अवस्था देख सारथी उसे समराङ्गणसे हटा ले गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ तीसरा सर्ग समाप्त॥ १०३॥

एक सौ चौथा सर्ग

रावणका पुनः रामसे युद्ध करने आना

युद्ध-क्षेत्रके बाहर आकर जब रावणकी मूर्छा व्यतीत हुई तो उस
अपने सारथीको बहुत फटकारा और कहा कि, तू मुझे युद्धसे क्यों ह
लाया ? क्या मुझे साधारण मनुष्य समझ लिया। मेरा यश, वीर्य और ते
सब तूने नष्ट कर दिया। अब शीघ्र ही मुझे शत्रुके समक्ष ले चल। सारथी
कहा—आप मुझे दोष देने योग्य नहीं हैं। मैंने स्वामीके हितार्थ कार्य
अपना कर्त्तव्य पालन किया है। मैंने आपके विश्रामके लिए ही ऐसा का
किया है। अब आप जो आज्ञा दीजिए मैं वही कार्य करूँगा। यह सु
रावण बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे अपने हाथका एक आभूषण निकाल
पुरस्कार रूपमें देकर कहा—अच्छा, अब मेरे रथको रामके समक्ष ले चलो
सारथीने घोड़ों को संकेत किया और वे रथको रामके समक्ष ले आये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ चौथा सर्ग समाप्त॥ १०४॥

एक सौ पाँचवाँ सर्ग

अगस्त्य मुनिका रावण संहारके लिए रामको आदित्य स्तोत्र बतलाना

तदनन्तर समराङ्गणमें राम युद्धसे श्रांत होकर जब चिन्तायुक्त युद्धके
लिए पुनः सज्जित हुए तो उन्हें देखकर देवताओं सहित अगस्त्य मुनि उनके

निकट आकर बोले कि, हे राम ! हे पराक्रमी राम ! आप सनातन पुरुष हैं, इस कारण आप संग्राममें सब शत्रुओंका संहार करेंगे। इसके लिए मैं आपको यह 'आदित्य हृदय स्तोत्र' बतलाता हूँ जो बड़ाही पुण्यप्रद, सर्व शत्रुनाशक, जयावह, नित्य, उत्कृष्ट और कल्याणकारक है। देवताओं और दैत्योंसे संपूज्य ये रश्मिवान, त्रैलोक्याधिपति जो सूर्य भगवान् प्रातःकाल उदय होते हैं—ऐसे बिवश्वान् सूर्यकी आप पूजा करें। ये अपने किरणसे योगियोंको ब्रह्मलोक प्राप्त कराते और देवता, दैत्य तथा मनुष्यादि लोकों सहित सबकी पालना करते हैं। वेही सभी प्रपंचोंके नाशक, उत्पत्तिकर्त्ता और सभीका शोषण करते हैं। देव, ऋतु, ऋतुफल और संसारके समस्त कर्मों के यही प्रभु हैं। विपत्ति, संकट, वन और भय उस्थित होनेपर जो इनकी स्तुति करता है, वह कदापि नाश नहीं होता। इसलिए आप एकचित्त होकर इन जगदीश देवकी पूजा करें। इस स्तोत्रको तीन बार जपनेसे युद्धमें अवश्य विजय प्राप्त होती है।' ऐसा कहकर मुनीश्वरने रामको आदित्य स्तोत्र बतलाया। उसे सुन राम चिन्तारहित हो गए। उन्होंने उसे अपने हृदयमें धारणकर लिया। फिरतो उन्होंने सूर्यकी ओर देखकर इस स्तोत्रका जप किया तो उन्हें अत्यन्त हर्ष प्राप्त हुआ और उन्होंने फिर तीन बार आचमन करके शुचिभूत हो धनुष धारण किया। अगस्त्य मुनि यह कहकर कि 'आप इसीसमय रावणका बध करेंगे।' अपने लोकको चले गए। अब जयेच्छुक रामने मनमें ईश्वरका ध्यान किया और रावणकी ओर देख उसका बध करनेको सन्नद्ध हुए। फिरतो देवताओंके मध्यमें स्थित सूर्य रामको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—शीघ्रता करो, अब रावणका नाश होनेही वाला है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्ड उत्तरार्द्धका एक सौ पाचवाँ सर्ग समाप्त ।।१०५।।

एकसौ छठवाँ सर्ग

रावणका पुनः युद्धागमन और रामसे युद्ध

अब रावणका सारथी सेनाको प्रधर्षित करनेवाला पताकाओंसे पूर्ण एक शोभित रथको देखकर उसमें हेममाली नामक अश्वोंको युक्तकर युद्धकी सामग्रीसे पूर्ण किया। रावण उसमें बैठ शीघ्रही युद्ध-क्षेत्रकी ओर चला। तब काले घोड़ोंसे युक्त रथमें बैठे रावणको आते देख राम उसपर अपने

प्रचंड वाणोंकी धारावत् वर्षा करने लगे। साथही उन्होंने सारथि मातलिसे कहा कि अब तुम सावधानीसे मेरे रथको रावणके समक्ष ले चलो। क्योंकि वह मुझे मारनेके संकल्पसे आ रहा है। इसलिए निर्भयतासे मन और नेत्रको सुस्थिरकर सावधानीसे रथको उसके समक्ष शीघ्र चालित करो। यद्यपि तुम इन्द्रके सारथि हो और ऐसे समयकी सब क्रियाओंको भली-भाँति जानते हो तथापि तुम्हें स्मरण दिलाता हूँ। फिर तो रामके इन बचनोंसे प्रसन्न होकर मातलिने रथको इसप्रकार चलाया कि वह रावणकी बाईं ओर जा लगा। रावण क्रोधसे रामपर वाण चलाने लगा। उत्तरमें रामभी उसपर वाण छोड़ने लगे। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और परमर्षि आदि रामका युद्ध देखनेके लिए उपस्थित हुए। तदनन्तर रावणका नाश और राघवका जयसूचक रोमांचकारी भयंकर उत्पात होने लगा। रावणके रथपर रक्तोंकी वृष्टि होने लगी। प्रचंड वायु उसके रथको चारों ओरसे झँकोरने लगा। उसके रथपर गीधोंके झुंड मँडलाने लगे। आकाशमें बड़े-बड़े उल्कापात होने लगे और जिधर रावण था उधर भूकंप होने लगा। युद्ध करनेवाले राक्षसोंका हाथ स्तंभित हो गया, मानों किसीने पकड़ लिया हो। संग्राम-भूमिमें ऐसी धूलि उठी कि रावणके नेत्रोंके समक्ष अंधकार व्याप्त हो गया। यत्र-तत्र रावणकी सेनामें वज्र गिरने लगा। आकाशमंडल और दिशाओंमें धूल उठकर अंधकारसे वह अदृष्ट हो गया। रावणके रथके घोड़े नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु बहाने लगे। इसी प्रकारके भयंकर दारुण उत्पात रावणके नाशार्थ प्रकट हुए। इसी प्रकार रामके लिए इधर सर्वत्रसे कल्याणकारी जयसूचक शुभ शकुन होने लगे। यह देख राम बड़े हर्षित हुए और युद्धमें उनका और भी उत्साह बढ़ गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका एकसौ छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०६ ॥

एकसौ सातवाँ सर्ग

राम-रावणका घोर युद्ध वर्णन

तदनन्तर राम और रावणका महाघोर युद्ध होने लगा। शस्त्र-सज्जित उभय पक्षके सैनिक परस्पर युद्ध करना भूल उन्हें देखते हुए चित्रवत् जहाँके तहाँ स्तंभित रह गए। राम रावण पूर्वघटित शकुनोंका स्मरणकर निर्भयतासे

युद्धरत हो गए। रामने तो अपने शकुनोंसे जय और रावणने निज मरण मान लिया था, इसकारण दोनोंही शूर वीरता प्रदर्शित करने लगे। रावण अनेकों वाण मार रामके रथकी ध्वजा काटने लगा, परन्तु उसके वाण असफलहो भूमिपर गिर पड़ते। तब उसके प्रतिशोधमें रामने एक तीक्ष्ण वाण मारकर रावणके रथकी ध्वजा काट गिराई। इससे उत्तेजित हो वह रामपर घोर वाण वर्षा करने लगा। प्रथमतः उसने रामके रथके अश्वोंको वाण मारा पर वे दिव्य अश्व थे जिससे वे किंचित् भी विचलित नहीं हुए। तब रावणने गदा, फरसा, चक्र, मूसल, पर्वतोंके शिखर, वृक्षादि और सहस्रों वाण छोड़ा, किन्तु फिर भी वे घोड़े नहीं थके। तब वह रामके रथको छोड़ वानरोंपर अपने वाण वर्षाने लगा। सभीने वह भयदायक वाण-वर्षा देखी। उसने अपने असंख्य वाणोंसे आकाशको अच्छादित कर दिया। रामने भी ऐसा ही किया। फिर तो उनके वाणोंने परस्पर मिलकर एक नवीन आकाशकी रचनाकर दी। आकाशका श्वास लेना अवरुद्ध हो गया। राम निरन्तर रावणके बायें और दाहिने वाण प्रहार करते ही रहे। वे एक दूसरेके हननमें तत्पर हो, घोररूप हो गये। युद्धमें नानाप्रकारकी गति प्रदर्शित करते हुए वे मेघवत् युद्ध करने लगे तथा एक दूसरेके समक्ष ऐसे खड़े हो गये कि रथकी धुरीसे उनके अश्वों के मुख और अश्वोंके मुखसे धुरी सट गई तथा ध्वजा ध्वजासे जा मिली। फिर तो रामने चार वाणोंसे रावणके रथके चारों घोड़ोंको ऐसा मारा कि वे पीछे हट गये, जिसे देख रावणने क्रुद्ध हो रामपर अपने भयंकर वाणोंकी वर्षा कर दी। परन्तु राम उससे व्यथित न हुए। फिर तो उसने उनके सारथी मातलिपर कई तीक्ष्ण वाण चलाए। मातलिपर भी उन वाणोंका कुछ प्रभाव न पड़ा। इससे कुपित होकर रामजीने रावणको अपनी घोर वाण-वर्षासे ऐसा लज्जित किया कि वह प्रहार-रत हो अपने रथमें बैठ गया। पश्चात् उसने गदाओं और मूसलोंसे रामको धर्षित किया। इससे युद्धने फिर भयङ्कर रूप धारण किया। गदाओं, मूसलों, वाणों और फरसोंकी ध्वनि और वायुसे सागर सन्तप्त हो गए। पातालवासी दानव पन्नगादि सब व्यथित हो गए।

पृथ्वी काँप उठी, सूर्य निष्प्रभ हो गए और वायुका बहना बन्द हो ग
यह देख देवता, गन्धर्व, किन्नर और ऋषिगणोंको बड़ी चिन्ता हुई।
स्वस्ति पढ़ रामकी जय उच्चारण करने लगे। आकाशस्थित ऋषि
राम-रावणका वह लोमहर्षण युद्ध देखने लगे। गन्धर्व और अप्सराएँ
लगीं कि, आकाशको सागरसे और सागरसे आकाशकी भी उपमा दे स
हैं, पर राम-रावणका युद्ध तो राम-रावणका ही युद्ध है। उसी समय मह
रामने एक विषधर वाण लेकर उसे जो धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा तो
रावणका शिर कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। परन्तु तत्क्षणाही उसके दू
शिर निकल आया। कुशल रामने वाणसे उसका वह दूसरा शिर भी
डाला; परन्तु पुनः वैसा ही शिर रावणके धड़पर निकला दिखाई पड़ा।
जी ने उसे भी काट डाला। इस प्रकार सौ बार तक रामजीने रावणके
काटे; परन्तु उसके प्राणोंका अन्त दिखाई न पड़ा। इससे राम बड़ी चि
में पड़ गए कि जिन वाणोंसे मैंने मारीच, खरदूषण, कबन्ध और विरा
मारा, सात तालवृक्षोंको बेधा, बालिको मारा और फिर समुद्रको चञ्चल
दिया, वेही वाण अब रावणपर क्यों हतप्रभ हो रहे हैं? यह सोचते हुए
राम निर्निमेष रावणपर वाण बरसाते ही रहे और रावण भी उनपर अ
प्रहार करता ही रहा। रात-दिन एक मुहूर्तके लिए भी; उनका युद्ध स्थ
न हुआ। तब दशरथ पुत्र राम और राक्षसेन्द्र रावणके इस युद्धमें रा
जयका कोई चिन्ह दृष्टि न आते देख इन्द्र-सारथि मातलि रण-रत रा
बोला—

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०७ ॥

एकसौ आठवाँ सर्ग

रावण-वध

तब मातलिने रामसे कहा—हे वीर! इस प्रकार अजानकी स
युद्ध क्योंकर रहे हैं? इसे मारनेके लिए ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कीजिये। फिर
मातलिके ऐसा स्मरण दिलानेपर रामने सर्पवत् उस प्रकाशित वाणको जि
अगस्त्य मुनिने इनको और उनको (अगस्त्यजीको) ब्रह्माजीने दिया थ
ग्रहण किया। यह स्वर्णपुङ्ख वाण सूर्यवत् प्रकाशमान था। वह अग्नि

और काले सर्पके समान विषवत् चमकीला था जो परिघों तथा पर्वतोंका भी भेदन करनेवाला, वज्रसारसे भी पुष्ट तथा महान् दारुण और भयङ्कर था। वह गरुड़के चित्र-विचित्र पुङ्खोंयुक्त, राक्षसोंका मारक और इक्ष्वाकुवंशियोंका भयनाशक तथा स्वयं हर्षवर्द्धक था। तब ऐसे उत्तम बाणको वेदविधिसे मंत्रितकर जब रामने धनुपकी प्रत्यंचापर आरोपित किया तो सब प्राणी काँप उठे। उसी समय परमक्रुद्धसे रामने रावणके वधार्थ उस शत्रुघाती वाणको उसपर चलाया। फिर तो वह इन्द्रके वज्रतुल्य अवाध वाण रावणकी छातीमें जा लगा। उसका हृदय फट गया। शरीरांतक वह वाण रावणके प्राणोंका हरण करता हुआ पृथ्वीमें प्रवेशकर गया और वहाँसे होकर पुनः अपने तरकसमें आ बैठा। प्राणहत रावण पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख हतशेष राक्षस यत्र-तत्र भाग चले। वानर उन्हें मारने दौड़े। परन्तु रामकी विजय देख लौट आये। सब राक्षस अनाथ हो रोने लगे और लङ्कामें भाग गये, वानर हर्षित हो रामकी जय जयकार बोलने लगे। आकाशमें देवताओंने दुन्दुभी बजाई। रामके रथपर पुष्प-वृष्टि होने लगी। आकाशवासी देवताओंने 'बहुत अच्छा हुआ' ऐसा कहकर रामकी स्तुतिकी। वाणों सहित देवताओंमें प्रसन्नता व्याप्त हो गयी। राक्षसेन्द्र रावणके वधसे राम, सुग्रीव, अंगद, विभीषणादि सबके मनोरथ पूर्ण हो गये। दिशाएँ स्वच्छ हो गईं। आकाश निर्मल हो गया। सूर्य स्वप्रकाशमें स्थिर हो गया। लक्ष्मणने, विभीषण, अंगद और सुग्रीव सहित सब मित्रोंने एकत्र हो विजयी रामकी पूजाकी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एक सौ आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०८ ॥

एक सौ नवाँ सर्ग

विभीषण राम-विलाप

अब रामसे परास्त अपने भाई रावणको निहत देख विभीषण व्याकुल हो विलाप करने लगे। उन्होंने उसकी वीरता, विद्वत्ता, तप, तेज और गुण अवगुण कहकर बड़ा विलाप किया। तब विभीषणको इस प्रकार शोकान्वित देख रामने उन्हें समझाया और कहा कि युद्धमें प्रचंड विक्रमी यह रावण मरा नहीं, किन्तु निश्चेष्ट हो गया है। ऐसे मृतक वीरोंके लिए क्षात्रधर्ममें शोक करनेका कोई स्थान नहीं है। कोईभी हो; समरमें सर्वदा विजय ही नहीं

मिलती। कभी वह भी स्वयं हत होता है। इस कारण शोक त्याग अब मरणके पश्चात् जो करना चाहिए इसका वह कृत्य करो। रामने विभीषणको उसके प्रेत कर्म करनेकी आज्ञा दी। संसारमें शत्रुता मनुष्यके जीवन तकही रहती है, मरनेपर नहीं। अतः अब इसका सब संस्कार करो। अब तो यह जैसा तुम्हारा है, वैसाही मेराभी है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एक सौ नवाँ सर्ग समाप्त ॥१०९॥

एक सौ दशवाँ सर्ग

रावणकी स्त्रियोंका विलाप

महात्मा राम द्वारा रावणको मृतक हुआ सुन उसकी स्त्रियाँ शोककर्शित हो हे आर्यपुत्र! हे प्राणनाथ! ऐसा कहती हुई, युद्ध-भूमिकी ओर चल पड़ीं। यहाँ आकर उन्होंने महाद्युतिमान् रावणको युद्धमें काले अञ्जनके ढेर सा मरा पड़ा देखा। उसे देखते ही सबकी सब उसके अङ्गोंपर गिर पड़ीं। उसका आलिङ्गनकर सब रोने लगीं। कोई चरण पकड़कर, कोई कंठ-अवलम्बनकर, कोई हाथ फैला पृथ्वीही पर पड़ गईं और कोई मूर्च्छित हो गईं। कोई अङ्कमें उसका शिर लेकर मुँह देख-देखकर रोने लगीं। इस प्रकार उसे मरा हुआ देख, वे शोकसे रुदन करती, चिघाड़ती और बिलखती हुई रुदन करने लगीं। कोई कहती—'हा, जिसने इन्द्र तथा यमराजको वित्रासित किया, कुबेरसे पुष्पक विमान छीना, गन्धर्वों, ऋषियों और देवताओंको बड़ा भय दिखाया वही तुम युद्धमें पड़े सो रहे हो? जो देवताओं दानवों और राक्षसोंसे भी अवध्य था, वह आज पैदल एक मनुष्यसे मारा गया पृथ्वीपर सो रहा है? जिसे देव, असुर और यक्ष कोई न मार सके थे वही रावण एक निर्वीर्य मनुष्यके समान मनुष्य द्वारा मारा गया।' इस प्रकार कहती हुई उसकी सब भार्याएँ शोक-पीड़ित हो विलाप करने लगीं। उन्होंने कहा—तुम अपने और सब राक्षसोंका संहार करानेके लिये ही सीताको यहाँ लाये थे। तुमने अपने भाई विभीषणका हित वाक्य भी नहीं सुना, तुम्हें ऐसा अज्ञान छा गया? यदि तुम सीताको रामको लौटा दिए होते तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता। यदि तुम विभीषणके वचन मान लिए होते तो राम तुम्हारे मित्रवर्गोंके समान हो जाते और हम सब वैधव्यको न प्राप्त होतीं। तुमने बलात् सीताको यहाँ

रोककर सबको एकही साथ मरवा डाला। इस प्रकार कुररी पक्षीके समान उसकी सब स्त्रियाँ नेत्रोंसे दुःखाश्रु छोड़ती हुई व्याकुल हो गयीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ दशवाँ सर्ग समाप्त ॥११०॥

एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग

रावणकी अन्त्येष्टि

इसप्रकार विलाप करती हुई रावणकी भार्याओंमें श्रेष्ठ पत्नी मन्दोदरी राम द्वारा हत अपने पतिको पृथ्वीपर पड़ा देख विलाप करने लगी कि—हे महाबाहो! तुम्हारे क्रुद्धस्थ होनेपर तो युद्धमें इन्द्रभी भयभीत हो जाते और ऋषि, गन्धर्व और चारणभी यत्र-तत्र पलायनकर जाते थे। वही तुम मनुष्य रामके हाथों मार डाले गये। हे राक्षसेन्द्र! इससे आपको क्या लज्जा नहीं आती है? हा, तुम्हारे जैसे त्रयलोक्य विजयीको एक बनवासी रामने कैसे मार डाला? तुम्हारा वध युद्धमें रामसे संभव नहीं। मुझे तो विश्वास नहीं होता है कि रामने यह कार्य किया हो। संभव है रामका रूप धारण कर कालने किया हो। सनातन परमात्माहीने संहार किया हो। क्योंकि वह आदि मध्यहीन परममहान् श्रेष्ठ, शंख-चक्र-गदाधारी, श्रीवत्सचिह्नयुक्त अजेय सर्वत्र परिपूर्ण पराक्रमी विष्णुनेही मनुष्यका रूप धारणकर राक्षसोंके परिवार सहित तुम्हें मार डाला है। अथवा अपने पूर्व वैरका स्मरणकर इन्द्रियोंने ही तुम्हें जीत लिया। रामने खरको मारा था तभी मैंने जान लिया कि वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। फिर जब वीर हनुमान् निर्भयतासे लंकामें चला आया, तभी मैं भयभीत होगई थी और मैंने कहा था कि रामसे बैर न ठानो। पर तुमने न माना। वसुधाधारिणी भर्तृवत्सला सीताको चुराकर तुमने बड़ा अनर्थ किया। इसीसे सपरिवार अपना विनाश किया। जिस विचारसे सीताकोले आए वह ही सिद्ध हुआ और सीताकी तपस्यासे तुम स्वयंभी नष्टहो गए। सीतासे भी अधिक रूपवती तो तुम्हारी भार्या थी जिसे अज्ञानवश तुम न समझ सके। बिना कारण किसीकी मृत्यु नहीं होती। सीताही तुम्हारी मृत्युका कारण हुई है। तुम्हारा ही दोष है कि तुम सीतारूपी मृत्यु बुला लाए थे। परन्तु हत भागिनो हम हैं जो इस घोर शोक सागरमें डूब रही हूँ। राजाओंकी इस राजलक्ष्मीको धिक्कार है जो फिर महान् क्लेशदायक हो जाया करती है। अब तो मैं काम

भोगोंसे रहित हो बहुत वर्षों तक ऐसा ही विलाप करती रहूँगी। मनुष्यको शुभाशुभकर्म अवश्यही फल देते हैं। तुम मारे गए और विभीषण आनन्दसे है। हे देव! तुम तो महाविशाल मार्ग पारकर गए। अब मुझ पीड़िताकोभी अपनेही साथ लेते चलो। हा, तुम मुझ अतिविलाप करती हुई से क्यों नहीं बोलते, मुझको यहाँ पैदल आया हुआ देख अब क्रोध क्यों नहीं करते? इसप्रकार बहुत विलाप करती हुई मन्दोदरी दुःखसे मोहित और मूर्च्छित हो राक्षसेन्द्रके वक्षस्थलपर गिरकर संध्याकालीन मेघमें विद्युतके समान शोभित हुई। उसे रावणकी अन्य पत्नियोंने पकड़कर उठाकर, और कहा—हे देवि! तुम तो बड़ी बुद्धिमती हो। क्या नहीं जानती कि पाप-पुण्यके विभागमें लोकोंकी क्या श्री स्थिति होती है? जब उन सबने ऐसा कहा तो उसे सुनकर मन्दोदरी और भी विलाप करने लगी। इसी समय श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे कहा कि, इन स्त्रियोंको समझाकर अब तुम शीघ्रही अपने भाई रावणका संस्कार करो। तब उनके मनको जाननेके लिए विभीषणने कहा—'इस धर्मव्रत-त्यागी, क्रूर, निर्लज्ज और परस्त्रीगामी राक्षसका संस्कार मैं नहीं करूँगा। यद्यपि यह मेरे पिताके समान है तथापि मेरे द्वारा यह संपूज्य नहीं हो सकता। यह सुनकर राम प्रसन्न हो विभीषणसे बोले—'मैं तुम्हारी सहायतासे ही रावणको मार सका हूँ, अतः मुझे तुम्हारा भी तो प्रिय करना है। इसका राज्य तो मैं तुमको ही दूँगा। यद्यपि यह राक्षस अधर्म और मिथ्यामें अवश्यही तत्पर था; तथापि यह बड़ा तेजस्वी, बलवान् और संग्राममें सर्वदा प्रबल रहा। इसलिए इसका संस्कार करो। इससे तुम्हारा यशोवर्द्धन होगा।' तब रामकी ऐसी बात सुन विभीषण शीघ्रतासे अपने भाई रावणका संस्कार करने लगा। विभीषणने लंकामें जाकर उसके अग्निहोत्रको प्रज्वलित किया। चन्दन काष्ठ तथा और भी बहुतसे काष्ठ, अगरु आदि सुगन्धित वस्तुएँ श्मशान भूमिको भेजीं। फिर सब राक्षसोंको साथ ले स्वयं भी शीघ्र लौटा। फिर माल्यवान्को साथ लेकर विभीषण सब क्रिया करने लगा। एक सुन्दर शिविका सजा, उसपर रावणको रख, रेशमी वस्त्रोंसे ढक कर ब्राह्मणों सहित बाजेगाजेके साथ, बन्दीजनों द्वारा स्तुति-गान करते और रोती हुई स्त्रियों सहित चलकर समुद्रके तटपर लेजाकर, काष्ठकी चिता बनवा, दक्षिण

[दि]शाकी ओर मुखकर राक्षसोंकी विधिसे अध्वर्युजनों सहित विभीषणने आग [ल]गाई। इस प्रकार स्नात हो गीले वस्त्र धारण किए, सबने कुश और तिल [च]ावलकी तिलांजलि दी। पश्चात् रावणकी उन पत्नियोंको बारंबार समझा [स]माकर विभीषणने कहा कि, अब घर चलो। यह सुन सब राक्षसियाँ नगर [को] चली गईं। विभीषण रामके पास लौट आये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १११ ॥

एक सौ बारहवाँ सर्ग

विभीषणका राज्याभिषेक

अथ रावणका बध देखकर देवता, गन्धर्व, दानव अपने विमानोंमें बैठ [स्व]धा-स्थानको चले गये। रामने इन्द्र-प्रदत्त उनके अग्नि-तुल्य रथको मातलि [क]ो ले जानेकी आज्ञा दी। मातलि उसपर बैठ स्वर्गको चला गया। इसी [प्र]कार प्रसन्न हो रामने सुग्रीवसे भेंट की। फिर लक्ष्मण तथा अन्य वानर-[य]ूथोंसे पूजे जाकर जहाँ सेना पड़ी थी राम वहाँ गये और लक्ष्मणसे बोले—[सौ]म्य! अब मुझमें अनुरक्त और मेरे उपकारी इन विभीषणको अपने [स]ाथ ले जाकर लंकामें इनका अभिषेक कर आओ। अब मेरी यही इच्छा है [कि] ये लंकाके राज्यसिंहासन पर जा बैठे। लक्ष्मणने कहा, बहुत अच्छा। [फ]िर तो लक्ष्मणने सुवर्णका एक कलश हाथमें ले शीघ्रगामी बानरेन्द्रोंको [को], सागरसे जल लानेकी आज्ञा दी। बानर शीघ्रही सागरसे कई घड़े नीर [भ]र लाये। तब उन घड़ोंमें से एक कलशका जल लेकर लक्ष्मणने लंकामें [ज]ाकर विभीषणका राज्याभिषेककर दिया। यह देख उसके मन्त्री और हितेच्छु [प्र]सन्न हो गये। विभीषणको सिंहासनासीन देख रामभी बहुत प्रसन्न हुये। [रा]ज्य-प्राप्तकर विभीषण सब प्रजागणोंको समझकर बहुतसे माङ्गलिक पदार्थ [ले] रामके पास आये। रामने सहर्ष उनको स्वीकार किया। फिर हनुमान्को [ह]ाथ जोड़े खड़े देख राम बोले—हे सौम्य! अब तुम इन महाराज विभीषण [की] आज्ञा ले सीताके समीप जाकर हमारी विजय सुनाओ और कहो कि [हम] लक्ष्मण और सुग्रीव सहित सब कुशलसे हैं। फिर उनका सन्देश ले [हम]ारे पास शीघ्र आओ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका एक सौ बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥११२॥

एक सौ तेरहवाँ सर्ग

हनुमान्‌का सीताको रामकी विजय सुनाना

इस प्रकार आज्ञा पाकर मारुतात्मज हनुमान् निशाचरोंसे पूजि होते हुए लंकामें पहुँचे। वहाँ उन्होंने विभीषणसे आज्ञा ली और अशोक वाटिकामें जाकर सीता का दर्शन किया। वहाँ पहुँचतेही सीता इन्हें पहचान लिया। हनुमान्‌ने जातेही नत शिर प्रणाम किया फिर समक्ष जा खड़े हुए। उन्हें आया देख सीता मौन रहीं। त हनुमान्‌ने सीतासे रावण-बधका सब समाचार कहकर यह निवेदन कि कि, अब आप सर्वथा ही स्वस्थचित्त होइए। आपसे कहनेके लिए रामजी यह कहा है कि, जबसे रावण तुम्हें हरकर यहाँ लाया है, तबसे मैंने नीं नहीं ली है। अब समुद्रको पारकर रावणको मार राक्षसोंके हननका अपन प्रण हमने पूर्ण किया। इससे अब तुम किसी प्रकारकी भय न करना। क्योंकि लंकाका यह सब ऐश्वर्य हमने विभीषणको सौंप दिया है। इस प्रसन्न होइए। विभीषण भी आपके समीप प्रसन्नतासे आनाही चाहते हैं हनुमान्‌से ऐसा सुन हर्षसे सीताका कण्ठ रुक गया और वह हनुमान्‌से कुछ बोल न सकीं। तब सीताको मौन देख हनुमान् बोले कि, हे देवि! आ क्या विचारकर मुझसे कुछ नहीं बोल रही हैं? सीताने कहा—अपने पति विजय सुनकर मैं क्षणभर कुछ बोल न सकी। हे वानर! यह संदेश इतन प्रिय है कि, इसके बदले तुम्हें देनेके लिए मेरे पास कुछ है नहीं। मैं पृथ्वी में कोई ऐसा पदार्थ नहीं देखती जिसे तुम्हें दिया जाय। त्रयलोक्यका राज्य इस संदेशकी कुछ गणनामें नहीं। यह सुन हाथ जोड़े सीताके समक्ष ख हनुमान्‌ने कहा—हे अनिन्दिते सीते! इस प्रकारका स्निग्ध और मधुर वचन आपही कहने योग्य हैं। जनकात्मजा मैथिली पवनात्मजके ऐसे वचन सुन उ से भी शुभतर बचन बोलीं—अति लक्षण सम्पन्न मधुर गुणोंसे भूषित वचन बोलना तो तुम्हींको आता है। हे वायुपुत्र! तुम सर्वथा ही प्रशंसनीय हो। हनुमान्‌ने कहा—अब यदि आज्ञा दें तो इन सब राक्षसोंको मैं मार डालूँ कि जिन्होंने आपको डराया था। क्योंकि मैंने सुना है कि विकृतानन राक्षसियाँ रावणकी आज्ञासे आपको बहुत कड़वे वचन कहा करती थीं।

यह सुन दीनवत्सला सीता बोलीं—हे हरिश्रेष्ठ ! राजसेवाके वशीभूत हो इन्होंने ऐसा किया। इसलिए इनपर क्रोध न करो। ये सब कष्ट तो मुझे पूर्वजन्मके पापसे भाग्यके उलट-फेरसे प्राप्त हुए। प्राणी अपने किए हुए शुभकर्म ही भोगते हैं। तभी मैंने इनके कुवाक्य सहे। अब जबसे वह मारा गया है, तबसे ये कुछ नहीं कहतीं। सदाचार ही सज्जनोंका भूषण है। अतः उसका रक्षण करना चाहिए। सज्जन पापीपर दया करें। अपराध सबसे होता है। पापियोंके साथ पाप नहीं करना चाहिए। यह सुन वाक्यविद् हनुमान् आनन्दित हो राम-पत्नीसे बोले—अच्छा तो, अब मुझे आज्ञा हो तो मैं रामके समीप जाऊँ। सीता बोलीं—मैं अपने पतिके दर्शन किया चाहती हूँ। हनुमान्‌ने कहा, उन्हें आप शीघ्र देखेंगी। लक्ष्मीके तुल्य सीतासे ऐसा कह हनुमान् शीघ्र रामके पास आए। सीताका कहा हुआ सब संवाद क्रम से कह सुनाया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका एकसौ तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥११३॥

एक सौ चौदहवाँ सर्ग

रामका सीताको स्नानकराकर अपने पास बुलाना

मारुतिनन्दनसे सीताका सब समाचार सुन राम नेत्रोंमें जल भर लाये। फिर एक दीर्घश्वास ले पृथ्वीकी ओर देखते हुए समीपस्थ विभीषणसे बोले—हे विभीषण ! अब सीताको दिव्य उबटनादिसे स्नानकरा दिव्य भूषण पहनाकर यहाँ शीघ्र लाओ। यह सुन विभीषण अपने अन्तःपुरमें पहुँच सब स्त्रियोंको सीताके पास चलनेको कह उन्हें साथ ले सीताके पास पहुँचे और हाथ जोड़कर बोले—अब आप उबटनादि आभूषण धारण कीजिये और शिविकापर बैठकर अपने पतिके समीप चलिये, वे आपको शीघ्र देखना चाहते हैं। यह सुन सीताने कहा—मैं बिना स्नान किएही अपने पतिके दर्शन करना चाहती हूँ। विभीषणने कहा—आपको रामकी आज्ञाही करणीय है। यह सुन पति-भक्ता सीताने कहा—बहुत अच्छा, जैसी स्वामीकी आज्ञा है, मैं वैसाही करूँगी। फिरतो सीताको स्नानकरा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृतकर एक उत्तम रथपर बिठा विभीषण उन्हें वहाँसे रामके पास ले आए। शिविकाको समीपमें रोक वे रामके पास गए। राम ध्यानावास्थित थे। फिर विभीषणने नम्रता पूर्वक कहा कि

सीता आगई हैं। तब बहुत दिनों बाद राक्षसके गृहसे आई हुई सीताको देख राम रोष; हर्ष तथा दीनतासे युक्त हो गए। फिर सीताको शिविकामें आई देख कुछ प्रसन्नहो विभीषणसे बोले—सीता शीघ्र हमारे समीप आवें। विभीषण सबको हटाने बढ़ाने लगे। इस हटावढ़ीसे वानर और रीछ बड़ा शब्द करने लगे। तब उनको छड़ी बेतसे बलपूर्वक हटानेसे उन्हें उदासीन देख, सबका अनादर न सहते हुए रामने उन्हें रोककर कहा—विभीषण ! हमारा इसमें अपमान है। लोगोंको क्लेश न दो। स्त्रियोंका परदा गृह वस्त्र तथा प्राकारादि नहीं है, उनका पातिव्रत्यही बड़ा विशाल पर्दा है। दुःख विपत्ति, युद्ध, स्वयंवर, यज्ञ तथा विवाहमें स्त्रियोंको सबके समक्ष बाहर निकलना अनुचित नहीं है। सीता विपत्तिमें पड़ी थीं जिससे ये अन्य जनभी बड़े दुःखित थे। फिर समीप आनेमें तो इनमें कुछ दोष नहीं। इससे शिविकासे उतरकर सीता पैदलही मेरे निकट आवें। विभीषण सीताको पैदल ही बुला लाये। इससे लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान्‌को बहुत दुःख हुआ। सीता अपने अङ्गोंमें लीन हुई-सी रामके समीप पहुँची। किंचित क्रोधसे युक्त; किन्तु सौम्य-मुख युक्त रामका सौम्यमुखी सीताने बहुत दिन बाद दर्शन किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११४ ॥

एक सौ पन्द्रहवाँ सर्ग

तब पार्श्वमें स्थित मैथिलीको देख राम अपने हृदयान्तर्गत भावको प्रकट करते हुए बोले—हे भद्रे ! मैंने समरमें शत्रुको जीतकर तुम्हें फिर प्राप्त कर लिया। पराक्रमसे करने योग्य जो था वह मैंने कर दिखाया। अब शत्रुपर तुम्हें चुरानेका जो दोष था वहभी दूर होगया। वह दैवकृत दोष मैंने दूर किया। अपमानित पुरुष यदि निरादर करनेयालेका बिध्वंस न करे तो उसका पौरुषही क्या ? इसलिए हनुमानका समुद्रको लाँघना, लंकाको जलाना, आज सब सफल और प्रशंसनीय हुआ। सुग्रीवकी हित-मंत्रणाभी आज सुफल हुई। रामके इन वचनोंको सुन सीताके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगा। फिर तो सीताको अपने समीप आई देख रामका हृदय लोकापवादके भयसे तत्क्षणही कुछ और हो गया। अतः वे सीतासे सब बानरों और राक्षसोंके समीपही बोले कि—शत्रु-कृत अपमानको नष्ट करनेके लिए मैंने रावणको मारा

तुम्हारे लिये नहीं। अपना अपवाद मिटाने और स्वकुलकीर्त्ति-रक्षाके लिए भी मैंने रावणका बध किया है। तुम बहुत दिन तक रावणके यहाँ रही हो, इसलिए मुझे तुम्हारे आचारमें सन्देह है। अब तुम मुझे अच्छी नहीं लगती हो। अतएव सीते! अब तुम्हारी जहाँ इच्छाहो वहाँ चली जाओ। अब तुमसे मेरा कुछभी सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि उच्चकुलमें उत्पन्न होकर भला ऐसा कौन होगा जो अन्यके गृहमें बासकी हुई स्त्रीको फिर ग्रहण करे। तुम रावणके अंकमें गई और कुदृष्टिसे देखी गई हो। फिर मैं तुम्हें कैसे ग्रहण करूँ। जिसलिए मैंने तुम्हें जीता था, वह कार्य होगया। अब हमसे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। इस सम्बन्धमें तुम लक्ष्मण और भरतसेभी पूछ सकती हो। शत्रुघ्न; सुग्रीव तथा विभीषणसे भी पूछो। तुम्हें जिसमें सुखहो, वह करो। 'सीताने सोचा था कि अब अनेक प्रिय वचन सुनूँगी, किन्तु ऐसे अप्रिय बचनोंको सुनकर वह रोने लगीं।'

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त॥ ११५॥

एक सौ सोलहवाँ सर्ग

इसप्रकार रामके रोषपूर्ण और कठोर वाक्योंको सुनकर सीता प्रव्यथित होगईं। सबके समक्ष भर्त्ताके ऐसे बचन सुन, मैथिलीको घोर लज्जा हुइ। वह अत्यंतही संकुचित होकर अति रुदन करने लगीं। फिर अपने अश्रुपूर्ण मुखको पोंछती हुई धीरेसे बोलीं—हे वीर! अप्राकृतिकजनोंके समान आप ऐसा रूखा वचन अपने मुखसे क्यों कहते हैं? हे महाराज! आप मुझे जैसी समझकर कह रहे हैं, मैं वैसी नहीं हूँ। कुछ दूषित स्त्रियोंके चरित्रसे यदि आप सब स्त्रियोंके चरित्रके सम्बन्धमें ऐसी शंका करते हों तो यह उचित नहीं है। मुझे परवशतासे राक्षसका अङ्ग-स्पर्श हुआ। किन्तु मन तो मेरे अधीन है जो आपमेंही सर्वदा लगा रहा। हे मानद! यदि अब तक भी आपने मुझे नहीं समझा तो मैं सर्वदाके लिए मृतक हो गई। जब हनुमान्‌को आपने भेजा था तभी मेरा परित्याग क्यों नहीं कहला दिया। मैं उसी क्षण हनुमान्‌के समक्षही अपना प्राण विसर्जनकर देती। फिर आपको यह युद्ध न करना पड़ता और आपके मित्रोंकोभी क्लेश न होता। हे नृपशार्दूल! आपने क्रोधवश मुझेभी सब नारियोंके तुल्य समझ लिया और मेरे पिताने मुझे

पृथ्वीसे पाया इसकाभी विचार आपने यही किया कि, मुझे समझा। बाल्य
वस्थामें आपने मेरा पाणिग्रहण किया था, उसकाभी कुछ प्रमाण न निकल
तब ऐसा कहती हुई, रुदनसे अश्रुपात करती, कण्ठ-अवरुद्ध गद्गदवाणी
सीताने लक्ष्मणसे कहा कि—'हे लक्ष्मण ! अब मेरे लिए चिता बनाओ
क्योंकि इस दुःखकी यही औषधि है। मेरे गुणोंके कारणही सबके सम
आज मेरे पतिने मुझे त्याग दिया, इससे मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी। सीता
इस वाक्यको सुनकर लक्ष्मण रामकी ओर देखने लगे। राम कुछ नहीं बोले
लक्ष्मणने चिता रच दी। रामने काल जैसा रूप बना लिया, जिससे को
कुछ कह न सके। सीता प्रज्वलित अग्निके पास चली गईं। फिर देवता
और सब ब्राह्मणोंको प्रणामकर अग्निके निकट जा हाथ जोड़कर बोलीं—
हे अग्निदेव ! यदि मेरा मन कभी रामसे अन्यत्र नहीं गया हो, तो आप स
लोक साक्षी मेरी रक्षा करें। यदि राम मुझे दुष्टाचारिणी समझते हों और
वैसी होऊँ; तो भी आप साक्षी हैं। ऐसा कह अग्निमें पदार्पणकर मन
निःशंक हो सीता उस प्रदीप्त चितामें प्रवेशकर गईं। सब देखते ही रह गये
सब स्त्रियाँ चिल्ला उठीं। चारों ओरसे हाय-हायका शब्द होने लगा। दे
दानव, गन्धर्व, बानर और ऋषिगण आश्चर्य करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका एकसौ सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११६ ॥

एक सौ सत्रहवाँ सर्ग

देवताओं द्वारा सीताकी पवित्रता घोषित

तब सबको इस प्रकार कहते सुनकर श्रीरामचन्द्रके नेत्र अश्रुपूर्ण हो
गये और वे क्षणभर व्याकुल हो सोचतेही रहे कि, उसी समय महात्मा कुबे
पितरों सहित यमराज, इन्द्र, वरुण, महादेव तथा सर्वलोककर्ता ब्रह्मा आदि
अपने विमानों पर चढ़ लंकापुरीमें उनके पास आ पहुँचे और उन सर्व भूष
भूषितसे बोले कि—'हे राम ! आप तो सब लोकोंके कर्त्ता और श्रेष्ठ ज्ञानि
हैं। फिर सब समझते हुए भी अग्निमें गिरती हुई सीताकी उपेक्षा आप
कैसेकी ? देवगणोंमें श्रेष्ठ होते हुए आप कैसे नहीं जानते हैं ? सृष्टिके आर
में आपही तो त्रयलोककर्त्ता और ऋतधाता बसु हुये। फिर प्रजापति हुये
इस प्रकार तीनों लोकोंके आदि कर्त्ता तो आपही हैं। रुद्रोंमें आठवें रु

साध्योंमें पाँचवें साध्य तो आपही हैं। आदि, मध्य और अन्तमें आपही दृष्टि आते हैं। फिर भी सीताको आप प्राकृत मनुष्यके तुल्य त्याग देते हैं?' लोकपालोंके इस कथनपर राम बोले—मैं तो अपनेको दशरथ-पुत्र राम जानता हूँ। यह सब आप क्या कहते हैं? इसपर उन देवोंने रामकी सब विशिष्टता बतलाई और कहा कि आप साक्षात् विष्णु हैं। प्रलयमें एक शृङ्ग के मत्स्यका और बारह अवतार आप अपनी इच्छासे लेते हैं। एक अक्षर ब्रह्म, आदि मध्य और अन्त सर्वत्र आपही हैं और सर्वलोक परमधामरूप । शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, पुरुष पुरुषोत्तम, अजित खड्गधृक, विष्णु, कृष्ण, वृहद्बल, सेनानी, ग्रामीण आदि सब तुम्हारेही नाम हैं। आपही सब संसारके उत्पत्ति-स्थान तथा नाशक उपेन्द्र और मधुसूदन हैं। सिद्धों और साधकोंके आश्रय रूप ओंकार और परमात्मा आपही हैं। आपकी उत्पत्ति और नाशको कोई कह नहीं सकता। हम सब देवताही आपके रोम हैं। वेद आपके संस्कार हैं। आपने यहाँ रावणके वधार्थही मनुष्य देह धारण किया था, वह कार्य आपने कर लिया। अब बैकुण्ठको चलें। हे राम! आपका दर्शन सफल है। आपके भक्त इस लोक और परलोकमें भी सफल होते हैं। जो आपके इस प्राचीन इतिहासको पढ़ेंगे उनका कभी अपमान न होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११७ ॥

एकसौ अट्ठारहवाँ सर्ग

श्री अग्निदेवका सीताको पवित्रकर रामको समर्पण करना

ब्रह्माके इन शुभ वचनोंको सुनकर श्री अग्निदेव सीताको अपनी गोदमें लिए बाहर निकले। चितामें एक कम्पन हुआ और अग्नि जानकीको लिए बाहर आये। प्रातःकालीन सूर्यके तुल्य लाल रेशमी वस्त्र ओढ़े घुघुवारे केशों युक्त, फलित पुष्पमाल धारण किए, उन्होंने अति सुन्दरी सीताको लाकर रामको सौंप दिया। फिर वे पाप-पुण्यके साक्षी अग्नि बोले—'हे राम! ये तुम्हारी सीता हैं जिनमें पापका किंचित् लेश भी नहीं है और इन्होंने मन वचन बुद्धि तथा दृष्टिसे भी अभी पाप नहीं किया है। इन दीना सती सीताको रावण बलपूर्वक हर ले गया था। परन्तु वहाँ जाकर भी ये सर्वदा तप-परायणही रहीं। इन्होंने उस राक्षसकी ओर कभी दृष्टिपातभी न किया, इसलिए इन

निष्पाप सीताको स्वीकार कीजिये।' अग्निके इन वचनोंको सुनकर र
लक्ष्मण मौन रहे। फिर हर्षसे व्याकुल हो उनपर विचारकर देवताओंसे बोले
मैं समझता हूँ कि सीता पवित्र हैं, परन्तु बहुत समय तक ये रावणके घ
रहीं। यदि मैं सीताको शुद्ध न कर लेता तो सब लोग यही कहते
राम बड़े अनार्य हैं। मैं वह सब कुछ जानता हूँ कि इन्हें अपनानेके
रावण बड़े-बड़े यत्न किये। पर यह कभी भी उसके वशमें न पड़ीं। इन
मुझमें सर्वथाही अनन्य भाव है। सीता सब प्रकार विशुद्ध हैं। मैं इन
नहीं त्यागूँगा। आप सब देवताओंके वचन तो मुझे अवश्यही पा
करना चाहिये। सब देवताओंसे ऐसा कहकर महाबली, विजयी
कीर्तिमान रामने सीताको स्वीकार किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्ध काण्डका अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११८ ॥

एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग

महेश्वर-कथन और राम, लक्ष्मण, सीतासे दशरथका मिलाप तथा उपदेश

रामके ऐसा कहनेपर भी उनसे भी अधिक शुभतर वचन श्री महे
बोले—'हे कमलनयन, हे महापराक्रमी, हे शत्रुतापन, धर्मात्मा
में श्रेष्ठ राम! आपने यह कृत्यकर बड़ा ही अच्छा किया है। यह
ही आनन्दकी बात है कि संग्राममें उत्पन्न हुए संसारके भयको आ
निवारण किया। अब अयोध्या जाकर दीन भरतको सांत्वना दे, यशस्वि
कौशल्या, कैकेयी और सुमित्राका दर्शनकर राज्य कीजिए। फिर सब ज
को आनन्द दे, इक्ष्वाकुवंशमें सन्तति उत्पन्नकर अश्वमेध यज्ञकर अनु
कीर्त्तिलाभ करके तथा ब्राह्मणोंको धन देकर आप स्वर्ग चले आइयेगा।
विमानपर आपके पिता राजा दशरथ भी यहाँ आये हैं। मनुष्यलोकमें
तुम्हारे पिता बड़े ही यशस्वी राजा थे। तुम्हारे जैसे पुत्रसे उद्धार हो
कारण अभी यह इन्द्रलोक गए थे। अब लक्ष्मण सहित तुम इनका अ
वादन करो।' महादेवके इन वचनोंको सुनकर लक्ष्मण सहित रामने
विमान-शिखरपर चढ़े हुए अपने पिताको प्रणामकर उनका दर्शन कि
तब अपने प्राणसे भी प्रिय पुत्रको देखते ही दशरथको अतिशय आन
हुआ। उन्होंने झपटकर रामको आलिंगन किया और कहा कि—'हे रा

तुम्हारे बिना मुझे स्वर्गमें भी रहना अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे वनवासके समय कैकेयीने जो कुछ कहा था वह मेरे हृदयमें अबतक चुभता है। तुम्हें कुशलसे देखकर और लक्ष्मण सहित तुम्हारा आलिंगन कर आज मैं तुम्हें देखकर दुःखसे मुक्त हो गया। आज तुमने मेरा उद्धार किया। हे सौम्य राम! तुम मेरे सब पुत्रोंमें पुरुषोत्तम हो। अब मैं जाता हूँ। अब कौशल्याका मनोरथ पूर्ण हुआ कि वनसे निवृत्त होकर घर आए हुए तुम्हारा सानन्द अवलोकन करेंगी। रावणका बध करके तुमने देवताओंको संतुष्ट किया है। इस प्रशंसनीय कार्यसे तुम कीर्तिमान हुये हो। तुम्हें दीर्घायु प्राप्त हो।' तब राजा दशरथको हाथ जोड़कर राम बोले—हे धर्मज्ञ! आप कैकेयी और भरतपर कृपा करें। क्योंकि आपने जो यह कहा था कि—'पुत्र सहित मैंने तेरा त्याग किया।' उस शापका प्रभाव कैकेयीपर न पड़े। दशरथने कहा—एवमस्तु! फिर लक्ष्मणसे बोले कि-'हे धर्मज्ञ! तुम्हें इस पृथ्वीपर पूर्ण कीर्त्ति प्राप्त होगी। रामके प्रसन्न होनेसे तुमको स्वर्ग प्राप्त होकर उत्तम यश प्राप्त होगा। हे लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो। तुमने रामकी बड़ी सुश्रूषा की है। ये राम ही अव्यक्त, अविनाशी, श्रुति-प्रतिपादित, देवताओंके आधारभूत और गुह्य ब्रह्म हैं। अतएव जो तुमने वैदेही सीता सहित इन रामकी एकनिष्ट सेवाकी है इससे तुम्हें सब धर्मोंके आचरणका फल और यश प्राप्त हुआ है। इस प्रकार लक्ष्मणको समझाकर श्रद्धाञ्जलि स्थित सीतासे दशरथजी बोले—हे पुत्री! हे वैदेहि! रामने जो तुम्हें यहाँ त्याग दिया था इसका तुम इनपर क्रोध मत करना। तुम्हारे हितार्थ ही इसने ऐसा किया है। हे पुत्रि! तुम्हारे बड़े ही पवित्र आचरण हैं। इससे अन्य सभी पतिब्रता स्त्रियोंकी कीर्ति तुमसे पीछे पड़ गई। पति-शुश्रूषाके विषयमें तो तुमसे कुछ कहना ही नहीं है, तथापि रामही तुम्हारे मुख्य देवता हैं—यह मुझे अवश्य कहना चाहिए।' इसप्रकार पुत्र राम और सीताको समझाकर राजा दशरथ विमान-योगसे इन्द्रलोकको चले गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥११९॥

एकसौ बीसवाँ सर्ग

इन्द्रके वरदान द्वारा मृतक बानरी सेनाका जीवित हो उठना

दशरथके चले जानेपर पाकशासन इन्द्र अति सन्तुष्ट हुये रामसे

बोले–हे पुरुषोत्तम राम ! हमारा दर्शन व्यर्थ नहीं होता। हम तुमपर प्रस
हैं। तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो वह कहो।' महेन्द्रके ऐसा कहनेपर रा
प्रसन्न हो बोले—हे देवराज ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मेरी केव
यह इच्छा पूर्ण कीजिये कि—'मेरे कारण पराक्रम करके ये जितने वान
यमलोकको गये हैं, वे सब जीवित हो जायँ। इन्हें अपने स्वजनों एवं
पुत्रादिकोंसे पुनः भेंट हो। यही वर मैं आपसे माँगता हूँ। महात्मा राघवव
इस बातको सुनकर महेन्द्र बोले—रघूत्तम ! तुम्हारा माँगन वर बड़ा मह
है; परन्तु जो मैं एक बार कह चुका वह अन्यथा नहीं होता; अतः तुम्हा
माँगन सिद्ध होगा। सभी वानर जीवित हो जायँगे। इन्द्रके ऐसा कहते
सभी वानर व्रणरहित स्वच्छ होकर निद्रासे उठे हुएके समान उठ पड़
अद्भुत चमत्कार हो गया। सब अत्यंत संतुष्ट होकर रामकी प्रशंसा कर
लगे। फिर इन्द्रने कहा कि, हे राम ! अब तुम यहाँसे अयोध्याको जा
और सब बानरोंको भी जानेकी आज्ञा दो और अपनेमें अनुरक्त मैथिलीक
सांत्वना दो। फिर भरत, शत्रुघ्नको और सब माताओंको भेंटकर नगर
लोगोंको आनन्दित कर अपना राज्याभिषेक कराओ।' लक्ष्मण सहित रा
से ऐसा कहकर देवराज इन्द्र भी चले गए। रामने सब देवताओंका अभि
नन्दनकर भ्राता सहित सब सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौ बीसवाँ सर्ग समाप्त॥१२०॥

एकसौ इक्कीसवाँ सर्ग

श्रीराम और विभीषण

उस रात्रिको सानन्द वहाँ निवासकर प्रातः होनेपर विभीषण राम
समीप आकर हाथ जोड़ जय बोले और निवेदन किया कि, हे राघव! स्नान
उबटन आदि सब उपकरणों सहित स्त्रियाँ चन्दन माला लिए आपके आ
खड़ी हैं। तब विभीषणकी यह बात सुन राम बोले कि यह तुम सुग्रीवादि
वानर यूथपोंका आदर करो। मैं अभी विशेष स्नानादि नहीं कर सकता
क्योंकि धर्मात्मा भरत मेरे लिए तप कर रहे हैं। अतः धर्मात्मा भरतके
बिना मैं स्नान वस्त्र भूषणादि नहीं धारण कर सकता। अब तुम यह विचार करो
कि मैं अयोध्यामें शीघ्र कैसे पहुँच जाऊँ; क्योंकि वहाँका मार्ग परम दुर्गम है।

यह सुन विभीषण बोले—मैं यहाँसे एक दिनमेंही आपको अयोध्या पहुँचा दूँगा। मेरा बड़ा भाई रावण वैश्रवणका जो पुष्पक विमान लाया था वह आपहीके बैठनेके लिए यत्नसे रखा है। आप उसपर बैठकर अनायासेन अयोध्याको चले जावेंगे। परन्तु अभी तो आप सीता और लक्ष्मण सहित यहाँ निवास कीजिए और मुझे सेवाका अवसर दीजिए। मेरा सत्कार ग्रहण-कर तब जाइयेगा क्योंकि मैं आपका अनुचर हूँ। यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी सब वानरों और राक्षसोंको सुनाकर बोले कि हे वीर! तुमने मन्त्रित्व और मित्रता द्वारा सब प्रकार शुश्रूषा कर हमारी बड़ी पूजा की है। अब कुछ करना नहीं है। हे राजन्! मैं तुम्हारी यह प्रार्थना इसलिए नहीं स्वीकार कर सकता कि, मुझे शीघ्रही भरतको देखना है। सब माताओंका भी शीघ्र दर्शन करना है। इसलिए हे विभीषण! हमें जाने दीजिए और क्षमा कीजिए। अब विमान मँगाइये। फिर तो राक्षसेश्वरने शीघ्रही वह पुष्पक विमान मँगाया जिसकी बड़ी ही अद्भुत रचना थी। उसे देखकर लक्ष्मणसहित राम विस्मित हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ इक्कीसवां सर्ग समाप्त ॥१२१॥

एक सौ बाईसवाँ सर्ग

विभीषणादि सहित राम सीता लक्ष्मण आदिका पुष्पक विमानमें बैठ लंकासे प्रस्थान

पुष्प-भूषित पुष्पकको उपस्थितकर विभीषणने हाथ जोड़ कुछ और सेवाके लिए श्रीरामचन्द्रसे निवेदन किया। श्रीरामने प्रसन्न हो आज्ञा दी कि, इन सब वानरोंका मणि, वस्त्र, धन और दानादिसे सबका सत्कार करो। इन्होंने मेरे लिए युद्धमें अपने प्राणोंकी बलि चढ़ा दी है। अतः इनका श्रम सफल करो। इसी तरह जब आप देशानुसार दान देते और द्रव्य संग्रह करते रहेंगे तो ये सब आपके पास आते जाते रहेंगे। यह सुन विभीषणने रत्न, धन और वस्त्रादि दान दे वानरोंका बड़ा सम्मान किया। फिर श्रीरामचन्द्रजी सीताको गोदमें ले भाई लक्ष्मण सहित उस उत्तम पुष्पक विमानपर जा बैठे। फिर सब वानरों, सुग्रीव और विभीषणकी बड़ी प्रशंसा करते हुए बोले—अब आपलोग हमें अपने स्थानको जानेकी आज्ञा दीजिए। एक कार्य-हितकारी मित्रको मित्रके साथ जैसा करना चाहिए, आपने किया। अब अपनी सेना

ले हे सुग्रीव ! किष्किन्धाको जाइए तथा हे विभीषण ! आप लङ्काका राज्य भोगिए। मैं अयोध्या जाता हूँ। आप सबसे विदा माँगता हूँ। तब विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा कि 'हम सब भी अयोध्याको चलना चाहते हैं। आप हमें भी लेते चलिए। हे नृपसत्तम ! आपको अभिषिक्त हुआ देख तथा माता कौशल्याका अभिवादनकर बहुत शीघ्र स्वगृहको लौट आवेंगे। यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवादि वानरों तथा लंकेश्वर विभीषण सहित सबको सहर्ष पुष्पकपर चढ़ जानेकी आज्ञा दी। सबके आरूढ़ होनेपर वह उत्तम विमान रामकी आज्ञासे ऊपर उठा। जब आकाश मार्गसे होकर ऊपर चला तो श्रीरामचन्द्र कुबेरके समान शोभित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एक सौ बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥१२२॥

एक सौ तेईसवाँ सर्ग

पुष्पक विमान में बैठी सीताको रामचन्द्रका सब स्थान दिखलाना

इसप्रकार जब रामकी आज्ञासे उत्तम विमान हंसयुक्त महानाद करके मार्गमें होकर चला, तब सब ओर देखते हुए रघुनन्दन राम मैथिलीसे कहने लगे—हे सीते ! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लङ्काको देखो। यह युद्धका वह स्थान है जहाँ राक्षसों और वानरोंके मांसका कीचड़ हो गया था। हे विशालाक्षि ! यहींपर रावणको मैंने हत किया था। इसी स्थानपर कुम्भकर्ण और प्रहस्तको भी मारा था। यहीं सुषेणने विद्युन्मालीको मारा और यहाँ लक्ष्मण ने मेघनादका बध किया था। इसी स्थानपर मन्दोदरीने रावणके लिए बड़ा रुदन किया था, जिसके साथ उसकी सहस्रों पत्नियाँ भी थीं। यहाँ सागर तरणकर हमलोगोंने प्रथम रात्रि निवास किया था। हे सीते ! यह सेतु देखो जो हमने समुद्रमें बाँधा है। इसके बाँधनेमें नलने बड़ा परिश्रम किया है। यह समुद्रमें हिरण्यनाभ मैनाक पर्वत है। यह हनुमान्‌के विश्रामके लिए स्वयं ही सागरमें प्रकट हुआ था। इसी स्थानपर श्रीमहादेवजी हमपर प्रसन्न हुए जो यमलोक्य पूजित सेतुबन्ध तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है और सब पापोंका नाशक है। इसी स्थानमें विभीषण मुझे मिले थे। हे सीते ! वह किष्किन्धा नगरी है, जहाँ मैंने बालि का घात किया था। तब बालि पालित किष्किन्धा-पुरीको देख सीता रामसे यह मधुर वचन बोलीं कि—हे महाराज ! मैं चाहती

हूँ कि, तारा आदि सुग्रीवकी पत्नियोंको भी साथ लेते चलिए। यह सुन रामने कहा–ऐसा ही होगा। जब पुष्पक किष्किन्धामें पहुँचा, तब सुग्रीवसे कहकर रामने तारा आदिक सब प्रधान वानर-पत्नियों और वानरोंको बुलवा लिया और सब पुष्पकपर चढ़ाकर आगे चले। ऋष्यमूक गिरिके निकट पहुँचकर रामने सीताको वह स्थान भी दिखाया जहाँ उनकी सुग्रीवसे मित्रता हुई थी। फिर शबरीका स्थान, कबन्धका स्थान और रावणने जटायुको मारा था वह स्थानभी रामने सीताको दिखाया। फिर कहा–हे सीते! यह वही हमलोगों का आश्रम है, अभी वही पर्णकुटी भी दृष्टि आती है जहाँसे बलात् रावण तुमको हर ले गया था। यह सुन्दर जलवाली गोदावरी नदी दीख पड़ती है। यह अगस्त्यका और यह शरभङ्गका आश्रम दिखाई पड़ता है। यह अत्रि आश्रम है और यहाँपर मैंने विराध-बध किया था। हे सीते! इस स्थानपर तो तुमने तपस्विनी अनुसूयाके दर्शन किए थे। वह चित्रकूट दीख पड़ता है। यहीं भरत आए थे। यह अति रमणीक यमुना नदी दिखाई देती है। हे सीते! यह भरद्वाज ऋषिका आश्रम है। यह अति पुण्यरूप गङ्गा हैं। यह देखो शृङ्गवेरपुर है, जहाँ मेरा मित्र गुह निवास करता है। हे सीते! वह देखो, अयोध्या दिखाई देती है। वनसे लौटनेपर इसे नमस्कार करो। यह सुन सबने अयोध्याको शिर नवाया। फिर सब शिर उठा-उठाकर श्वेत गृह समुदायों युक्त अमरावती सदृश अयोध्याको देखने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ तेईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२३ ॥

एक सौ चौबीसवाँ सर्ग

राम-भरद्वाज मिलन

इसप्रकार पूर्ण चौदहवें वर्षकी पंचमीको रामने भरद्वाजाश्रमपर पहुँचकर मुनिका अभिनन्दन किया और पूछा कि–हे भगवन्! क्या इधर अयोध्याका कोई शुभ-समाचार आपको मिला है। भरत भलीप्रकार प्रजा-पालन करते रहे हैं। सब माताएँ जीवित तो हैं? रामके ऐसे वाक्य सुन भरद्वाजजी रामसे कुछ स्मित पूर्वक बोले–हाँ, आपकी आज्ञाके वशवर्ती जटिल भरत, आपकी पादुकाको आगे रख सब कार्य करते हुए आपको प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे राम! आप जिस कठिन वेशमें वन-यात्रा करते हुए मेरे यहाँ आए थे, वह

देखकर उस समय मुझे मार्मिक कष्ट हुआ था; पर अब सिद्धार्थ हो तुम्हें यहाँ देखकर मुझे उत्तम प्रीति प्राप्त हुई है। हे राघव ! जनस्थानमें तुम्हें जितना कष्ट भोगना पड़ा वह सब मुझे विदित है। परन्तु तुम ब्राह्मणों और तपस्वियोंके हितैषी हो। मैथिलीको रावण हर ले गया था। उस देव-कंटकका बधकर अब तुम सीता, लक्ष्मण सहित सकुशल लौटे हो। यह सब समाचार मैं अपने तपोबलसे जानता हूँ। हमारे शिष्यगण प्रतिदिन अयोध्यामें आते जाते रहते हैं जिससे वहाँका भी समाचार प्राप्त होताही रहता है। हे राम ! हम भी आपको वर देते हैं। अब आप हमारे दिए हुए अर्घ्य पाद्यादि स्वीकार कीजिए और कल अयोध्या जाइयेगा। भरद्वाजका ये वाक्य सुन प्रसन्न हो रामने कहा—बहुत अच्छा और फिर मुनिसे यह वर माँगा कि यहाँसे अयोध्या तकके जितने पादप हों सब अनवसरमें भी फलयुक्त हो जावें और उन सबसे मधु चूने लगे और वे नानाप्रकार उत्पन्न हो जावें। यह सुन मुनिने कहा—तथास्तु। मुनिके ऐसा कहते ही वहाँके सब पादप कल्पवृक्ष हो गए। सब फलयुक्त हो गए और सब वृक्षोंसे मधु श्रवने लगा। मार्गके वाहर वारह कोस इधर-उधरके सभी वृक्ष इसीप्रकारके हो गए। फिर तो सब वानर बड़ी प्रसन्नतासे वे दिव्य फल तोड़-तोड़कर खाने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एक सौ चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२४ ॥

एक सौ पच्चीसवाँ सर्ग

रामका अयोध्याका समाचार लानेके लिए पहले हनुमान्‌को भेजना

अयोध्याको देख राम भरतकी वह बात सोचने लगे जो उन्होंने कहा था कि यदि आप चौदह वर्ष पूरा होते-होते न आये तो मैं अग्निमें प्रवेशकर जाऊँगा। फिरतो वे पवन पुत्रसे बोले—'हे हरिश्रेष्ठ! तुम शीघ्रही अयोध्यामें जाकर देखो कि वहाँ सबलोग कुशलसे हैं। मार्गमें निषादपतिसे भी मिलते जाना। तुम अयोध्या पहुँचकर भरतसे कहना कि सीता और लक्ष्मण सहित राम कुशलसे सब वानरों सहित आरहे हैं। शत्रुओंको विजयकर राम अपने महाबली मित्रों सहित आपके समीप आगये हैं। यह सब कहकर भरतके चित्त का भाव जान लेना और हमारे सम्बन्धकी जो बातें हों उन्हें भी ज्ञातकर शीघ्र लौटना; क्योंकि पिता पितामहादिकोंका राज्य पाकर किसका मन नहीं

बदल जाता। यदि इतना दिन राज्य भोगनेके पश्चात् अबभी भरतका राज्य भोगनेमें मन हो तो वे सब पृथ्वीका राज्य भोगें, मैं प्रसन्न हूँ। यह सब समझकर तुम शीघ्र लौटो।' रामकी यह आज्ञा सुन मारुतिनन्दन हनुमान् शीघ्र ही अयोध्याको चले। वे गरुण वेगसे चलकर शृङ्गवेरपुर आकर गुहसे मिले। रामकी सब कुशल कही और कहा कि 'आज रातभर वे भरद्वाजाश्रममें रहकर कल प्रातः चलेंगे, तुम यहीं उनकी प्रतीक्षा करो।' गुहसे ऐसा कह वह आकाशसे उड़कर नन्दिग्रामके समीप जो अयोध्यासे एककोस है, वहाँ पुष्पित और फलित वृक्षोंसे युक्त और विभूषित स्त्रियोंसे सेवित ग्राममें स्थिर चीरवसन धारी, जटा रखाये, दुःखित चित्त, फलफूल खानेवाले कृशकाय भरत एक इन्द्रियजित तपस्वीके समान भोजपत्र और मृगचर्म बिछाये बैठे हैं। उनके आगे रामकी वे पादुकाएँ हैं जिनसे आज्ञा लेकर पृथ्वीका पालन करते हैं। भरतको ऐसा देख अयोध्यावासी भी भोग बिलास नहीं करते थे। तब ऐसे चीर मृगचर्मधारी भरतसे हाथ जोड़ हनुमान् बोले—दण्डकारण्यके निवासी जिन रामका आप ध्यान करते हैं, उन्होंने आपसे अपनी कुशल कही है। हे देव! अब इस दारुण शोकको त्यागिये। इसी क्षण आप अपने भ्रातासे मिलियेगा। रावणको सपरिवार मारकर सिद्धार्थ हो मित्रवर्गों सहित राम आरहे हैं। लक्ष्मण तथा सीता भी आती हैं। यह सुन सहसा आनन्दके कारण भरत मूर्च्छित हो गये। फिर एक मुहूर्त्त पश्चात उठे तो हनुमान्‌का आलिंगनकर प्रेमाश्रु त्यागते हुए बोले—आप देवता हैं या मनुष्य, जो भी हों मुझपर बड़ी दया की है। हे सौम्य! इस प्रिय बचनके पुरस्कार जो कहो वही दूँ। फिर बोले कि, एक लक्ष गौ, सौ गाँव और सोलह कन्याएँ पत्नी बनानेके लिए मैं तुम्हें देता हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥१२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ सर्ग

हनुमान्‌का भरतसे रामागमन सहित वनबासके समाचार कहना

ऐसा कहकर भरतजी हनुमान्‌से फिर रामका समाचार पूछने लगे। वानरोंसे मित्रता कैसे हुई इत्यादि सब समाचार हनुमान्‌ने शीघ्र ही कह सुनाया। दण्डकारण्यका वास; जनस्थानसे मारीच द्वारा कपट वेषपर रावणका आकर सीताको हर ले जाना तथा सुग्रीवकी मित्रता, बालि-बध,

सुग्रीवको राज्य, वानरों द्वारा सीताकी खोज, अपना समुद्र-लंघन, अशोक-वाटिकामें सीताके दर्शन करना, पुनः सेतु-बन्धन, प्रहस्त, कुम्भकर्ण-वध तथा लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित-वध और राम द्वारा रावण-बधका सब समाचार हनुमान्ने क्रम-पूर्वक सविस्तार भरतसे कह सुनाया। फिर यह भी कहा कि इन सबके मारे जानेपर इन्द्र, वरुण, यमराज, महादेव, ब्रह्मा और आपके पिता दशरथजी भी स्वर्गसे उतरकर आए थे और ऋषियों सहित उन सब महानोंने रामको वरदान दिया, जिसे ग्रहणकर राम पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो अपने मित्रों और भ्राता लक्ष्मण तथा श्री सीता देवी सहित आ रहे हैं। अभी भरद्वाजजीके आश्रममें बसे हैं। अब प्रातः पुष्य नक्षत्रमें आप रामके दर्शन करेंगे। हनुमान्के ये वाक्य सुन भरत हाथ जोड़कर बोले—मेरी चिरकालकी साधना आज पूर्ण हुई।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्ठम् युद्धकाण्डका एकसौ छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२६ ॥

एक सौ सत्ताईसवाँ सर्ग

भरत-राम-विलाप

यह सुनकर सत्यविक्रम भरतने शत्रुघ्नको आज्ञा दी कि इसी समय जितने देव-मन्दिर हैं, सबोंमें जाकर लोग गन्ध माल्यादिकोंसे पुनीत पूजन करें और सब भाट, बन्दीजन, वादक, नृत्यक तथा आमात्यों सहित हमारी सब मातायें, अपनी स्त्रियों सहित सैनिकगण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, मुख्य-मुख्य वैश्यजन तथा अन्य जातियाँ भी—ये सभी लोग श्रीरामचन्द्रके दर्शनार्थ पुरसे बाहर चलें। भरतका ऐसा वाक्य सुन शत्रुघ्नने अनेकों सेवक बुला सबको सब कार्योंको विभक्तकर दिया। सभीको सम-विषम स्थानोंको सुन्दर बना देनेकी आज्ञा दी। अयोध्यासे नन्दिग्राम तक समस्त मार्ग हिमतुल्य सिंचनकर, सर्वत्र खील, पुष्प और पताका युक्त कर देनेकी आज्ञा दी। सूर्योदयसे पूर्वही पुरीके सब भवन और राज-मार्गादिको पुष्प-माल्यादि स्वर्णवत् समलंकृत कर दो। राजमार्गपर सैकड़ों प्रहरी टहलते रहें। फिर तो हर्षित शत्रुघ्नकी आज्ञानुसार दृष्टि, जयंत, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मंत्रपाल और सुमंत्र ये आठों मंत्री सहस्रों मत्त ध्वजायुक्त हाथियों और हेमभूषित हाथियोंपर चढ़कर चले। कितने ही लोग घोड़ों और रथोंपर सवार होकर चले और बहुतसे पुरुष

शक्ति, ऋष्टि, प्राश और ध्वजा पताकादि लेकर चले। सहस्रों अश्वोंकी सेना और कितनेही प्रमुख वीर पदातियोंके सैन्य सहित चले। तदनन्तर दशरथ की सब रानियाँ कौसल्या और सुमित्राको आगे कर लोग रथोंपर बैठकर चल दिये। तदुपरान्त भरत मुख्य ब्राह्मणों और मुख्य मन्त्रियों तथा महाजनों सहित माल्य-मोदकती हाथमें लेकर, शंखों और भेरियोंकी ध्वनि कराते, बंदी-जनोंसे वंशावलीका वर्णन कराते हुए, रामचन्द्रकी खड़ाऊँको शिरपर धारण किये श्वेतछत्र युक्त, हाथमें श्वेत हेमभूषित चँवर लिए, कृशकाय, मृगचर्म धारण किये भ्रातृ-आगमनको सुन हर्षित हो रामको बुलानेके लिए वैसाही चले। घोड़ों, रथों, शंखों और नगाड़ोंके नादसे तथा हाथियोंकी चिंघाड़से मानों पृथ्वी कम्पित हो गई। उसी समय सम्पूर्ण गुण सम्पन्न भरद्वाजजीसे विदा हो, जो सई नदीको पारकर शालवनको कम्पित करती हुई बानरी सेना सहित बहुत दूरपर चन्द्रतुल्य विमान दिखाई पड़ा और युवा बालवृद्ध स्त्री-पुरुषोंका "यह राम आ गये" ऐसा शब्द होने लगा। सब लोग अपने वाहनों से पृथ्वीपर उतरकर, आकाशमें स्थित चन्द्रमाके समान रामको विमानपर बैठे देखने लगे। तदनन्तर हाथ जोड़कर भरतने हर्षित हो रामसे कुशल प्रश्न किया और अर्घ्यपाद्यादिसे उनकी पूजा की। उस समय भरताग्रज राम ब्रह्माके बनाये विमानपर बैठे हुए इन्द्रवत् शोभित हो रहे थे। तदनन्तर भरतने विमानारूढ़ रामको प्रणाम किया और रामानुवर्ती हंस युक्त विमान पृथ्वीपर उतरा। भरतने विमानपर चढ़कर रामका पुनः अभिवादन किया। रामने प्रसन्न हो भरतको उठाकर हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर भरतने अपना नाम लेकर वैदेहीको प्रणाम किया और लक्ष्मणने उनका अभि-वादन किया। पुनः भरतने यथाक्रम सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील और ऋषभ आदिको हृदयसे लगाया। फिर पनस आदिसे मिले। बानरोंने भरतकी कुशल पूछी। तदनन्तर भरतजी सुग्रीव और विभीषणसे बोले—हे सुग्रीव! उपकारसे मित्र और अपकारसे अमित्र होते हैं। तुम आज निजकृत कर्मोंसे हम चारों भाइयोंके पाँचवें भाई हुये। फिर विभीषणसे कहा कि रामने तुम्हारी ही सहायतासे ऐसा दुष्करकार्य किया। तदनन्तर वीर शत्रुघ्नने लक्ष्मण सहित रामको प्रणाम करके विनययुक्त

सीताके युग्म चरणोंको ग्रहणकर प्रणाम किया। फिर रामने शोककर्षि माता कौशल्याके निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया। पुनः यशस्विनी कैके और सुमित्राकी बन्दनाकर सब माताओं सहित पुरोहित वशिष्ठजीके समी गये। उन्होंने कहा—हे महावीर ! हे कौशल्यानन्दवर्धन ! आपका आगम मङ्गलदायक हो। फिर तो इसीप्रकार अंजलिबद्ध सब पुरवासी भी कहते औ जयध्वनि करने लगे। धार्मिक भरतने दोनों पादुकाएँ अपने हाथोंसे राम चरणोंमें पहिना दीं। पुनः भरतने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रसे निवेदन कि कि, हे महाराज ! यह सम्पूर्ण राज्य जो आपने मुझे सौंपा था आप समर्पण करता हूँ। आज मेरा जन्म कृतार्थ हुआ और मनोरथ पूर्ण हुये आप अयोध्यामें आकर आज पुनः राजा हुये। आप धनागार, कोषाग गृह और सेनाका निरीक्षण कीजिये जिसे मैंने आपके बल और तेजसे द दश गुणा उन्नत किया है।' भरतके ऐसे भ्रातृवत्सल वाक्य सुनकर विभीष नेत्रोंसे अश्रुविन्द टपकने लगे। हर्षित रामने भरतको छातीसे लगा लिय रामने भरतको विमानपर बैठा लिया। राम भरतके भवनपर आकर विमान पृथ्वीपर उतरे। रामने विमानको कुबेरके पास गमन करनेकी आज्ञा दी विमान धनदालयकी ओर चला गया। कुबेरके पास पहुँचा। रामच वशिष्ठजीके चरण ग्रहणकर उनके समीप जा बैठे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका एकसौ सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२७ ॥

एक सौ अट्ठाईसवाँ सर्ग

तदुपरान्त कैकेयीनन्दवर्धन भरत शिरसे हाथ जोड़ सत्य पराक्र रामसे बोले—आपने मेरी माताके मान रक्षणार्थ जो राज्य मुझे दिया था, ध धरोहररूप राज्यको अब मैं आपको अर्पण करता हूँ। मैं इस राज्य-भार उठानेमें असमर्थ हूँ। मेरे लिए राजछिद्रोंका वन्द करना कठिन है। हे राघ अब मैं यही चाहता हूँ कि आजही मध्यान्हके तप्त सूर्यवत् राजसिंहासन आप विराजमान हों और संसार देखे। फिर तो भरतके ऐसे वचन सुन रा कहा 'तथास्तु' और शुभ आसनपर विराजमान हुए। तदनन्तर शत्रुघ्न आज्ञासे परम निपुण भाई रामके समीप उपस्थित हुए। तब उन भाइयों प्रथम भरतको, महाबली लक्ष्मणको, वानरेन्द्र सुग्रीव और राक्षसेन्द्र विभीष

को स्नान कराया। फिर रामने अपनी जटा उतरवाई। फिर स्नानकर उवटन लगा मूल्यवान् वस्त्रोंसे अलंकृत हो अपने शरीरको सजाया। लक्ष्मीवान् शत्रुघ्नने राम और लक्ष्मणको सब उत्तम आभूषण पहिनाए। सुमन्त्रने सज्जित रथ लाकर खड़ा किया। राम उसपर आरूढ़ हुए। सुग्रीव और हनुमान् भी उनके साथ हुए। सर्वाभरण भूषिता और कानोंमें कुण्डल धारण किए सीता और सुग्रीवकी पत्नियाँ भी नगर दर्शनकी इच्छासे उनके पीछे-पीछे चलीं। इधर अयोध्यामें दशरथके सब मंत्री वशिष्ठजीको अग्रणी बना मंत्रणा करने लगे। उन्होंने नगरकी सजावट और रामकी विजय तथा उनके अभिषेकके लिए सेवकोंको आज्ञा दी। फिर राम-दर्शनकी कांक्षासे ये लोगभी नगरके बाहर निकले। तबतक निष्पाप राम इन्द्रके समान रथारूढ़ नगरकी ओर आने लगे। देखा तो भरत घोड़ोंकी लगाम पकड़े थे, शत्रुघ्न छत्र धारण किए थे और लक्ष्मण रामके शिरपर चमर डुला रहे थे। विभीषणभी एक श्वेत चँवर लिए रामके पार्श्वमें खड़े थे। अन्तरिक्षस्थित ऋषियों, मरुद्गणों सहित देवताओंने रामकी स्वस्ति सूचक एक मधुर स्तुति की। सुग्रीव महाराज दशरथके शत्रुञ्जय नामक हाथीपर बैठे। अन्य वस्त्राभूषण भूषित वानरगण भी नौहजार हाथियोंपर चढ़कर चले। इस प्रकार नरशार्दूल राम शंखों और नगाड़ोंके शब्द सहित धवल धाम-शोभित अयोध्यापुरीमें प्रविष्ट हुए। नगरवासियोंने अतिरथी रामका ससमाज दर्शन किया। सबने रथारूढ़ भाइयों सहित रामका जयोच्चार किया। प्रजापुञ्ज राम ब्राह्मणों और मन्त्रियों सहित तारागणोंमें चंद्रवत शोभित हुए। उनके आगे सभीप्रकारके वाद्य बजरहे थे। मांगलिक पाठ हो रहे थे। गौ, कन्या, ब्राह्मण सुवर्ण और माङ्गलिक द्रव्य लिए ऐसे बहुत लोग उनके आगे चले। मार्गमें रामने मंत्रियोंसे वानरेन्द्र सुग्रीवकी मित्रता और हनुमान्का प्रभाव वर्णन किया। राक्षसोंका बल और वानरोंका कार्य सुन अयोध्यावासी आश्चर्य करने लगे। इस प्रकार श्रुतिमान राम वानरोंके पराक्रमकी प्रशंसा करते हुए अयोध्यापुरीमें प्रविष्ट हुये। पुरवासियोंने प्रत्येक गृहोंपर झंडियाँ लगा दी थीं। रामने अपने पिता दशरथके गृहमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने अपनी सकल माताओंको प्रणाम किया और धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरतसे कहा—हे भाई! हमारा विशाल-भवन

सुग्रीवके लिए दे दो। भरतने सुग्रीवका हाथ पकड़ उनको उस गृहमें प्रवे
कराया। सबकी सुखशय्या सजवा दी। पश्चात् भरतने सुग्रीवसे कहा कि अ
बानर समुद्रका जल लावें। रामका अभिषेक हो। बानरश्रेष्ठ हनुमान् जाम
वान्, वेगदर्शी और ऋषभ चार कलशा जल भरलाये। यही चारों जनें प
सौ नदियोंका भी जल लाये। पूर्वी समुद्रका जल-कलश सुषेण लाये। बान
ऋषभ दक्षिण सागरसे और गवय पश्चिम सागरसे तथा नील उत्तर साग
जल ले आए। बानरोंके द्वारा लाये हुए उस जलको देखकर मन्त्रियों सहि
शत्रुघ्नने गुरु वशिष्ठ तथा सुहृद् जनोंसे अभिषेक करनेकी प्रार्थनाकी। फिर
ब्राह्मणों सहित वृद्ध वशिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीको सीताजीके साथ रत्ननिर्मि
पीढ़ेपर बैठाकर जैसे वसुओंने इन्द्रका अभिषेक किया था, उसी प्रकार व
विजय, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, गौतम और बामदेवने ऋत्विक्, ब्राह्म
कन्या, मन्त्र, सैनिक, व्यापारीगण और आकाशमें स्थित समस्त देवता प
चारों लोकपालोंके साथ स्वच्छ और सुगन्धित जल तथा सर्वौषधियोंके रस
श्रीरामका अभिषेक किया। फिर ब्रह्माजीका निर्मित किया हुआ वह मुकु
कि जिससे पूर्वमें महाराज मनुका फिर क्रमशः उनके सभी वंशधर राजाओं
अभिषेक हुआ था, विविध रत्नोंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके रत्नोंसे ज
पीढ़ेपर रखा गया। तदनन्तर उसी मुकुट से कुल--पुरोहित वशिष्ठने त
ऋत्विजोंने अन्य आभूषणोंसे रामको सजाया। उस समय शत्रुघ्नने राम
शिरपर मांगलिक श्वेत छत्र और सुग्रीवने श्वेत चमर व्यजन किया। प
अन्य श्वेत बालोंका चमर विभीषणने लिया। उस समय इन्द्रकी प्रेरणा
वायुदेवने उन्हें सब प्रकारके रत्न और मणियोंसे सुशोभित मोतियों
माला दी तथा देवता और गन्धर्व गगनमें गाने तथा अप्सराएँ नाच
लगीं। सब कुछ यथायोग्य ही सम्पादन हुआ। श्रीरामके उस अभिषे
समय पृथ्वी धान्ययुक्त वृक्ष फलयुक्त और पुष्प सुगन्धमय हो गये।
सब कुछ रामाभिषेकोत्सवमें घटित हुआ। फिर तो रामने एक ल
अश्व और सौ साँड़ों सहित बहुत-सी दूध देनेवाली गौएँ औ
तीस करोड़ अशर्फियाँ ब्राह्मणोंको दान दीं। पुनः रामने सुग्रीवको विवि
प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र और एक मणि-जटित सुवर्णकी माला दी त

अंगदको वैदूर्यमणि-जटित दो बाजूबंद दिये। इसके पश्चात् उन्होंने सीताको श्रेष्ठमणि-जटित एक मोतियोंकी माला, कभी मलिन न होनेवाले दो वस्त्र तथा अनेकों दिव्य आभूषण दिये। उस आभूषणको मैथिलीने हनुमान्‌के पूर्वकृत उपकारको स्मरणकर दे दिया। क्योंकि उनमें धृति, यश, तेज, सामर्थ्य, निपुणता, विनय, पौरुष, विक्रम और बुद्धि आदि गुण सर्वदा निवास करते हैं। इस प्रकार सभी प्रधान बानरोंका वस्त्राभूषणों द्वारा सत्कार हुआ। पुण्यकर्मा राम द्वारा सब प्रकारके अभीष्ट पदार्थों द्वारा सम्मानित हो सब प्रधान वानर अपने स्थानको चले गये। फिर पृथ्वीपति रामने द्विविद, मैन्द और नीलके सब मनोरथ पूर्ण किये। सब किष्किन्धा आये। राक्षसराज विभीषण भी लंकामें आ गये। श्रीरामजी सानन्द राज्य करने लगे। एक दिन उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि, तुम युवराज बन मेरे साथ राज्यका भोग करो। कार्यभार सँभालो। लक्ष्मणने कहा नहीं, यह मेरे योग्य नहीं। तब रामने भरतको उस पदपर अभिषिक्त किया। महाराज राम ने दश हजार वर्ष राज्य करके पुण्डरीक अश्वमेध और अन्य अनेक यज्ञ कर देवताओंको तृप्त किया। अपार दान-दक्षिणा दी। रामके राज्यकालमें किसी स्त्रीको वैधव्यका दुःख नहीं भोगना पड़ा और न कोई आधि-व्याधि ही थी। चोरोंका कहीं नाम भी न सुनायी पड़ता था। उस कालमें वृद्धोंको बालकोंके मृतक संस्कार नहीं करने पड़ते थे। सब लोग राम-दर्शनकर धर्मरत सानन्द समय व्यतीत करते थे। कोई हिंसक न था। सभी निःरोग सहस्र वर्षकी आयु पाते थे। वृक्षोंमें सर्वदा पुष्प और फल लगे रहते थे। यथेष्ट वर्षा होती और सुखद वायु बहता। प्रजा धर्मपरायण थी और सब संतुष्ट थे। कोई अन्याय न करता था। समस्त प्रजा सुलक्षण और धर्मवान् थी। इस प्रकार दश हजार वर्षतक रामने राज्य किया। इस आदिकाव्यकी रचना पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने की थी, जो धर्म, यश, और आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा राजाओंको विजयदाता है। इस संसारका जो जन इसका निरन्तर श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस काव्यके श्रवणसे पुत्राकांक्षी पुत्र और धनाकांक्षी धन पाता है। राजागण अपने शत्रुओंको विजय कर समस्त पृथ्वीको जय करनेमें समर्थ होते हैं। स्त्रियाँ इस काव्यको सुनकर

सुपुत्रवती होंगी। रामके इस विजय-चरित्रको सुनने वालेकी बड़ी आयु होत
है। जो भी वाल्मीकि निर्मित इस प्राचीन काव्यका श्रवण करते और श्रद्धा
इसका अनुसरण करते हैं, वे बड़े-बड़े दुःखोंसे छूट हो जाते हैं। इसके
सुननेवाला प्रवासान्तमें सकुशल लौटकर सकुटुम्ब आनन्द प्राप्त करता है
इसके श्रोताको रामानुग्रह सर्व मनोरथ प्राप्त होते हैं। उसपर सब देवता प्रस
रहते हैं। जिसके गृहमें यह ग्रन्थ रहता है वहाँ कोई विघ्न नहीं होते। रा
पृथ्वीकी जय करता और प्रवासी कल्याण प्राप्त करता है। जो रजस्व
स्त्री शुद्धि-स्नानसे सोलहवें दिन तक इस काव्यको नियम पूर्वक सुनती
वह सुपुत्रोंकी माता होती है। इस प्राचीन इतिहासकी पूजा-पाठ करनेवाले
सब पाप निवृत्त हो दीर्घायु प्राप्त होती है। इसका श्रोता निश्चय ही वं
और पुत्र प्राप्त करता है। उसपर सनातन विष्णु सदा कृपालु रहते हैं। य
सब श्रोताओंको मंगलप्रद है। यह आख्यान श्रवण और पाठ करनेसे
देवताओं और पितरोंको प्रसन्न करता है। ऋषिवर बाल्मीकिकृत इ
संहिताको जो लिखता है वह स्वर्गमें वास पाता है। इसके श्रवणसे
प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होतीं तथा कुटुम्ब और धन धान्यादिकी वृ
होती है। शरीर निःरोग रहता, चतुर्दिक कीर्ति फैलती, भ्रातृभाव स्थि
रहता तथा बुद्धि और तेजकी वृद्धि होती है। एतदर्थ शुभकी इच्छा रख
वाले सभी पुरुषोंको इसका नियम पूर्वक पाठ करना योग्य है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् युद्धकाण्डका एक सौ अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १२८ ॥

॥ यहाँ षष्टम् युद्धकाण्ड समाप्त हुआ ॥

श्रीगणेशायनमः

श्रीमद्वाल्मीकिमुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—भाषा

सप्तम् उत्तरकाण्ड पूर्वार्द्ध

पहला सर्ग

राक्षसोंका बधकर जब श्रीरामने राज्य ग्रहण किया, तब समस्त मुनिगण लक्ष्मणके बल पराक्रमकी प्रशंसा करनेको अयोध्यामें पधारे। पूर्वदिशाके निवासी कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथिके पुत्र कण्ड्व; दक्षिणके निवासी—स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, अगस्त्य, सुमुख और विमुख; पश्चिम दिशाके आश्रयी—नृषंगु, कवषी, धौम्य और सशिष्य कौषेय तथा उत्तर दिशाके आश्रयी—वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जगदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि आये। समस्त ऋषि रघुनाथजीके राजभवनपर पहुँच कर ड्योढ़ीपर खड़े हो गये। वे सभी अग्निके समान तेजस्वी थे। द्वारपालोंने इन्हें सादर बैठाया। तब वेदवेदाङ्गके ज्ञाता; अनेक शास्त्रोंमें निष्णात, मुनि श्रेष्ठ, धर्मात्मा अगस्त्यजी द्वारपालोंसे बोले—'दशरथनन्दन श्रीरामसे जाकर हम मुनियोंके आगमनकी सूचना दो। द्वारपाल तत्क्षणही श्रीरामचन्द्रके पास गया। ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य आदिके पधारनेका समाचार सुनाया। महर्षियोंका आगमन सुनकर श्रीरामने कहा—सबको यहाँ यथा सुखसे ले आओ। फिर तो वे सब ऋषिश्रेष्ठ रामके पास पहुँचे। श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़ उठ खड़े हुये। सबका अर्घ्य, पाद्यार्घ्यसे पूजन किया और बड़े आदरसे सबको एक-एक गौ दिया। तत्पश्चात् सबको प्रणाम करके शुद्ध भावसे उन्हें सुवर्णके आसनपर बैठाया जिसपर कुशासन और मृगचर्म बिछे थे। रामने उन सबकी कुशल पूछी। तब उन वेदवेत्ता महर्षियोंने कहा—हे रघुनन्दन! हे महाबाहो! आपके कुशलसे हम सभी कुशलपूर्वक हैं। आपने सब लोकोंको रुलानेवाले रावण का वध किया, वह सौभाग्यकी बात है। हे राम! आपके लिए पुत्र पौत्रवान्

रावणका नाश करना कोई बड़ी बात न थी। निस्सन्देह आप त्रयलोक्य विजे
हैं। राक्षसेन्द्र रावणका वधकर आपको सीता सहित विजयी देखकर ह
अपना सौभाग्य समझते हैं। धर्मात्मन लक्ष्मण आपके एक ऐसे हितकारी भ्रा
हैं कि, माताओं और बन्धुओं सहित हम आपको सकुशल देख रहे हैं। य
तो दैवातही था कि आपने प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर और अकम्
आदि राक्षसोंको मारा। अन्यथा ये सब तो बड़ेही दुर्धर्ष थे। कुम्भकर्ण तो ऐ
था कि जिसके समान विशालकाय भूमण्डलमें कोई था ही नहीं। दैवा
आपने उसे भी मार डाला। त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्त कभी ऐसेही थे
उन्हें भी आपने मार डाला। राक्षसेन्द्र रावण तो अवश्य ही था। उससे द्
युद्धकर आपने विजय प्राप्त की—यह भी बड़ा आनन्द हुआ। परन्तु हे
रावणका पराभव उतना अशक्य नहीं था जितना इन्द्रजीतका। युद्धमें
मार डालना—यह तो बड़े हर्षकी बात है। क्योंकि वह माया-युद्ध करता थ
उसका वध सुनकर हम लोग बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। परन्तु हमें तो आ
जयकी इच्छा थी। उससे भी आपने विजय-लाभ किया, यह हमारा सौभा
है। क्योंकि उसे कोई मार नहीं सकता था। आपने हमें अभयदान दि
भवितात्मा मुनियोंके इन वचनोंको सुनकर रामनेभी आश्चर्य चकित हो
हाथ जोड़ लिया और पूछा कि, हे भगवन्! महावली रावण और कु
कर्णको छोड़कर आप इन्द्रजितकी प्रशंसा क्यों कररहे हैं? वह रावणसे
कर क्यों हुआ? अतिकाय त्रिशिरा आदि भी तो ऐसेही दुर्धर्ष थे? इन्द्र
का प्रभाव बल और पराक्रम कैसा था? उसने इन्द्रको कैसे जीता था
वह कैसे प्राप्त हुआ था? पुत्रसे बली पिता क्यों नहीं था? युद्धमें वह
पितासे भी अधिक पराक्रमी कैसे हुआ? मेरा यह निवेदन है कि, मु
यह कथन कीजिये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका पहला सर्ग समाप्त॥१॥

दूसरा सर्ग

विश्रवा-उत्पत्ति

महात्मा राघवके इस वचनको सुनकर महातेजस्वी कुम्भयोनि अगस्त्य
ने कहा—हे राम! सुनिये, इन्द्रजित महत् तेजस्वी और बलवान था जि

उसका कोई शत्रु उसे मार नहीं सकता था, वह अपने शत्रुका वध करकेही रहता था। हे राघव ! इस सम्बन्धमें मैं तुम्हें पहले रावणका जन्म और उसकी वर-प्राप्तिका वर्णन करता हूँ। पूर्व सत्युगमें ब्रह्माके एक पुत्र पुलस्त्य नामक थे जिनके तपका प्रभाव ब्रह्माजीकेही समान था। तब एक तो उनका ऐसा तप दूसरे विमल गुणवान्भी थे। इससे वे सभीके मित्र बन गये। तब तप करनेकी इच्छासे वे मुनिश्रेष्ठ मेरुपर्वतके समीप तृणविन्दुके आश्रममें जाकर तप करने लगे। तब उनको तपः स्वाध्यायमें रत देख, वेदमंत्र-श्रवण और विहारकी इच्छासे बहुतसी कन्याएँ वहाँ जाने लगीं। उनमें अप्सराएँ भी रहतीं और ये सब ऋषियों, नागों और राजर्षियोंकी कन्याएँ थीं। इनके कारण तपस्वी पुलस्त्यके तपमें विघ्न पड़ने लगा। इससे एक दिन पुलस्त्य जीने कह दिया कि अब कलसे जो कन्या यहाँ मुझे दिखाई पड़ेगी वह गर्भवती हो जायगी। इस ब्रह्मशापके भयसे दूसरे दिन कन्याएँ वहाँ नहीं गयीं। परन्तु उनमें राजर्षितृणविन्दुकी कन्याने नहीं सुना था; इसलिए वह दूसरे दिन पुलस्त्यजीके आश्रममें चली गई और स्वच्छन्दतासे विचरने लगी। परन्तु उसने अन्य कन्याओंको वहाँ नहीं देखा। इससे उसे कुछ आश्चर्य हुआ। फिरभी वह राजर्षिकन्या वेद-ध्वनि सुननेकी इच्छासे मुनिका दर्शन करने चली गई। किन्तु जैसेही उसने उन तेजस्वी मुनिको देखा कि वैसेही उसका शरीर पीला पड़ गया और वह गर्भवती हो गई। उसे अपना शरीर देखकर बड़ी व्यग्रता हुई और भागकर अपने पिताके आश्रममें चली आई। यहाँ पिताने देखतेही उससे जो समाचार पूछा तो उसने कहा--और तो कुछ नहीं। आज पुलस्त्यमुनिके आश्रममें जातेही मेरे अङ्गोंमें यह परिवर्तन अनायासही हो आया है। मुनिने नेत्र बन्दकर देखा तो उन्हें सब कुछ ज्ञात होगया। वे उस कन्याको साथ ले पुलस्त्यमुनिके आश्रमपर आए और उनसे प्रार्थना पूर्वक उसे अपनी सेवकिनी बना लेनेकी प्रार्थना की। ब्राह्मणश्रेष्ठ पुलस्त्यजी धार्मिक राजर्षि तृणबिंदुके उन वचनोंको सुन उस कन्याको 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर अङ्गीकार किया। कन्याको पुलस्त्यजीको सौंप राजा तृणविंदु अपने आश्रम में लौट आये। वह राजतनयाभी अपने गुणोंसे पतिको संतुष्टकर वहाँ रहने लगी। तब एक दिन उसके शील-स्वभावसे संतुष्टहो मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी उससे

बोले कि 'हे सुश्रोणि ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ , इसलिए हे देवि ! आज मैं अपनेही तुल्य एक ऐसा पुत्र देता हूँ कि जो उत्तम वंशोंका वर्द्धक होगा और पौलस्त्य नामसे प्रसिद्ध होगा । परन्तु तुमने मेरी ध्वनि सुनकर गर्भ धारण किया है जिससे उसका नाम विश्रवा होगा । ऐसा वर पाकर वह देवी बड़ी प्रसन्न हुई । फिर तो कुछही समय पश्चात् त्रिलोक विख्यात-यशोधर्म-समन्वित विश्रवा नामक पुत्रको प्रसव किया । यह विश्रवा भी वेदज्ञ मुनि व्रताचारी तथा अपने पिताके समान तपस्वी हुए ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग

विश्रवाकी तपश्चर्या, विवाह उनसे वैश्रवण उत्पत्ति, तपस्या और ब्रह्माजीका वरदान

अल्पकालमें ही पुलस्त्य-पुत्र मुनिश्रेष्ठ विश्रवा अपने पिताकेही समान तप करने लगे । वे सत्यवादी, शीलवान् , जितेन्द्रिय, स्वाध्याय निरत, पवित्र भोगोंमें अनासक्त और सर्वदा धर्म-तत्पर रहा करते थे । तब विश्रवाके आच-रणको देखकर महामुनि भरद्वाजने अपनी देवाङ्गना तुल्य सुन्दरी कन्याका उनसे विवाह कर दिया । फिर संतानेच्छुक उस कन्यासे धर्मात्मामुनि विश्रवाने एक ऐसा पुत्र उत्पन्न किया जो ब्राह्मणोचित समस्त गुणोंसे युक्त परम अद्भुत बलवान् था । उसके जन्मसे पितामह पुलस्त्यजीको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने अपने पौत्रमें कल्याणकारिणी बुद्धि देखकर कहा कि यह तो धनाध्यक्ष होगा। फिरतो उन्होंनेही देवर्षियों सहित उसका नामकरण किया और कहा कि 'यह बालक विश्रवासे उत्पन्न हुआ है और वैसाही है भी । अतः इसका नाम वैश्र-वण होगा । फिरतो उस महातपोवनमें रहते हुए वह वैश्रवणभी बड़े तेजस्वी हुए । उन्होंने सोचा कि, धर्मही परमगति है । अतः मैं भी धर्माचरण करूँगा। उन्होंने कठिन व्रतके साथ हजारों वर्षके घोर तप किए; जिसमें वे कभी जल पीकर, कभी वायु-पानकर और कभी निराहारही रह जाते थे । इस प्रकार उन्होंने एक हजार वर्ष, एक वर्षकी भाँति व्यतीत कर दिए । तबतो ब्रह्माजी उनके इस तपको देखकर प्रसन्न होगए और इन्द्रादिक देवताओंको साथ ले उन्हें वर देनेके लिए उनके आश्रमपर पधारे और बोले—हे सुव्रत ! हे वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ, बर माँगो । तब अपने समक्ष ब्रह्माजीको उपस्थित

देख वैश्रवणने कहा—भगवन् ! मेरी इच्छा है कि मैं लोकपाल बनूँ और समस्त धन मेरे पास रहे। वैश्रवणकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीको औरभी प्रसन्नता हुई और उन्होंने 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकारकी तथा वैश्रवणसे फिर बोले—हे वत्स ! मैं चौथा लोकपाल रचनेही वाला था, अब तुम्ही उस पदको स्वीकार करो। जाओ, अपार धनके स्वामी बनो। इन्द्र, वरुण और यमके साथ तुम्हारा चौथा स्नान होगा। यह सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पक विमान है, इसे तुम अपनी सवारीके लिए लो और आजही से देवताओंकी समानता प्राप्त करो। अब मैं अपने लोकको जाता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। ऐसा कहकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गए। ब्रह्मादि देवताओंके चले जानेपर धनेश वैश्रवणजीने हाथ जोड़कर अपने पितासे कहा—'भगवन् ! मैंने पितामह ब्रह्माजीसे अभीष्ट वरदान प्राप्त है; किन्तु उन्होंने मेरे रहनेका कोई स्थान नहीं बताया है। अतः अब आपही मेरे लिये किसी ऐसे निवास-स्थानका विचार कीजिये, जहाँ रहनेसे किसीभी प्राणीको कष्ट न हो ? पुत्रके इसप्रकार कहनेपर मुनिश्रेष्ठ विश्रवा बोले—धर्मज्ञ ! सुनो। दक्षिण समुद्रके तटपर एकत्रिकूट नामक पर्वत है, जिसके शिखपर एक विशाल पुरी है, जिसका नाम लंका है। विश्वकर्माने उसे राक्षसोंके लिये बनाया था। वह अमरावतीके ही समान रमणीय है। अतः तुम लंकामें ही निवास करो। उसके चतुर्दिक् चौड़ी खाईं खुदी हैं और वह यन्त्रों तथा शस्त्रोंसे परिपूर्ण है। वह लंकापुरी रमणीय है। सुवर्ण और वैदूर्य मणिके उसके द्वार हैं। पहले उसमें राक्षस रहा करते थे। किंतु अब विष्णुके भयसे वे वहाँ से भागकर पृथ्वीके नीचे रसातलमें जा बसे हैं। तुम वहाँ जाकर सुखसे रहो। वहाँ तुम्हें या और किसीकोभी कोई कष्ट न होगा। तब अपने विश्रवा मुनिके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा पुत्र वैश्रवण अब राक्षसकी चारो ओरसे समुद्रसे घिरी हुई लंकामें प्रसन्नता पूर्वक निवास करने लगे। देवता और गन्धर्व उनका यशोगान करने लगे। उनका हृदय बड़ा विनीत था। धर्मात्मा धनेश्वर वैश्रवण पुष्पक द्वारा समय-समय पर अपने माता-पिताके समीप प्रायः आते-जाते रहते।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग

राक्षसोंका पूर्व इतिहास तथा उन्हें महादेव-पार्वतीका वरदान

अगस्त्यजीके कहे हुए इस वृतान्तको सुनकर श्रीराम विस्मित हो गए उन्होंने बारम्बार शिर कम्पितकर अगस्त्यजीकी ओर देखते हुए पूछा—हे भगवन् ! आपसे यह सुनकर कि लङ्कामें पहलेहीसे राक्षस रहते थे, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्या वे राक्षस रावण, कुम्भकर्ण आदिसे भी बढ़कर बली थे हे ब्रह्मन् ! उनके मूल पूर्वज कौन थे और उनका क्या नाम था। विष्णुजीसे उनका क्या वैर था कि उन्होंने उन्हें मार भगाया ? तब रामके ऐसा पूछनेपर अगस्त्यजी बोले—हे राम ! ब्रह्माजीने पहले जलकी सृष्टिकी और उसकी रक्षार्थ अनेक प्राणियोंको उन्होंने उत्पन्न किया। उनमें हेति और प्रहेति नामके दो राक्षस थे। वे दोनों भ्राता मधुकैटभके समानही वीर थे। उनमें प्रहेति बड़ा धार्मिक था जो तपोवनमें जाकर तप करने लगा और हेतिने विवाहके लिए बड़ा यत्न किया। उस समय कालकी एक बहिन थी जिसका नाम 'भया' था। अभी वह कुमारीही थी कि उसका रूप अति भयंकर हो गया हेतिने उसी भयाके साथ विवाह किया। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम विद्युत्केश था। उसका विवाह संध्याकी पुत्रीसे हुआ, जिसका नाम सालकटङ्कटा था। उसे पाकर निशाचर विद्युत्केश बड़ा प्रसन्न हुआ और सुखसे रहने लगा। कुछ काल पश्चात् उस संध्या-पुत्रीने विद्युत्केशसे गर्भ धारण किया और मन्दराचलपर जाकर वहाँ एक पुत्र प्रसव किया और उस नवजात शिशुको वहीं त्याग फिर विद्युत्केशके पास चली आयी। इधर उसका त्यागा हुआ पुत्र मेघका भाँति शब्द करने लगा। फिर मुँहमें मुट्ठी डालकर धीरे-धीरे रोने लगा। उसी समय वृषभारूढ़ शिव-पार्वती आकाश मार्गसे उधर होकर कहीं जा रहे थे। उन्होंने वहाँ उस बालके रोनेका शब्द सुना। उसके निकट जाकर देखा तो पार्वतीजीको बड़ी दया आई। उन्होंने उनके कहनेसे उस राक्षस-पुत्रकी वय उसकी माताके समान कर दी और उसे अमरत्व प्रदान कर दिया। महादेवजीके लिए ऐसा करना कोई बड़ी बात न थी। क्योंकि वे अक्षर और अविनाशी हैं। महादेवजीने पार्वतीजीको प्रसन्न करनेके लिए एक पुरके समान एक विमान भी दे दिया और हे नृपात्मजा! पार्वतीने

जीने राक्षसियोंको यह वर भी दे दिया कि 'राक्षसियाँ गर्भ धारण करते ही शिशु उत्पन्न करें और वह तत्क्षण माताकी आयुका हो जाया करे। हे राम! फिर तो वह विद्युत्केशका पुत्र सुकेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ और महादेवजीके वरदानसे वह बड़ा अभिमानी हो गया। अब आकाशचारी नग (विमान) और लक्ष्मीको प्राप्त कर वह सर्वत्र विचरण करने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥४॥

पाँचवाँ सर्ग

सुकेशका वंश-विस्तार

तदनन्तर सुकेशको वरदान-प्राप्त तथा धार्मिक देखकर विश्वावसुके समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गन्धर्वने अपनी 'देववती' रूप यौवनशालिनी कन्या जो दूसरी लक्ष्मीकेही समान तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थी—उसे ददी। उससे सुकेशने अग्निके समान शरीरधारी तीन पुत्र उत्पन्न हुए। बलवानोंमें श्रेष्ठ उन तीनोंके क्रमशः ये नाम थे। माल्यवान्, सुमाली और माली। सुकेशके ये तीनों पुत्र तीन लोकोंकी समान, तीनों अग्नियोंकी समान, तीनों वेदोंके समान अथवा वात, पित्त, कफकी समान उग्र और भयङ्कर थे। तेजस्वी तो ऐसे थे कि शीघ्रही बढ़कर युवा हो गए। फिर वे तीनों मेरु पर्वतपर जाकर कठोर नियमों द्वारा सब प्राणियोंको भयोत्पादक तप करने लगे। उनके घोर तपसे देवताओं और मनुष्यों सहित त्रयलोक्य संतप्त हो उठा। तब तो अपने विमानपर बैठकर ब्रह्माजी उन्हें वर देने आए। कहा, वर माँगो। इस पर वे राक्षस वृक्षोंकी तरह थर-थर काँपते हुए हाथ जोड़कर बोले—हे देव! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो हम आपसे यही माँगते हैं कि हममें परस्पर प्रीति बनी रहे और हमें कोई जीत न पावे। हम अपने शत्रुओंके संहारक हों और अजर-अमर हों। ब्रह्माजीने कहा—तथास्तु। तुम लोग ऐसा ही होओ, सुकेशके पुत्रोंको ऐसा वर दे, ब्रह्माजी अपने लोकको चले गए। हे राम! अब वे राक्षस वरदान पाकर अत्यन्त निर्भय हो देवताओं और असुरोंको सताने लगे। देवता, महर्षि और चारण अनाथोंकी भाँति अपना रक्षक ढूँढ़ने लगे। फिर उन्हें कोई रक्षक न मिला। तब वे शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माके पास गए और कहा कि देवताओंकी इच्छानुसार आपही उनके

गृह-निर्माण-कर्त्ता है। अतः हमलोगोंके लिए किसी उच्चस्थानपर एक ऐसा भवन बना दीजिए जो शिव-भवनकी समान बड़ा विस्तृत और ऊँचा हो। तब उन महाबलवान् राक्षसोंके वचन सुनकर विश्वकर्माने उन्हें बास करनेके लिए इन्द्रकी समान स्थान बतलाते हुए कहा कि—'दक्षिण समुद्रके तटपर सुवेल पर्वतके समीपही एक त्रिकूट नामका पर्वत है जिसके मध्यका शिखर बड़ाही उन्नत मेघके सदृश दीख पड़ता है, जिसके ऊपर पक्षीभी नहीं पहुँच सकते। उसके ऊपर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी एक नगरी बनी हुई है, जिसका नाम लंका है। उसकी दीवारें सोनेकी हैं और सुवर्ण तोरण (फाटक) से भूषित है। इस लंकापुरीको मैंने इन्द्रकी आज्ञासे बनाया था। तुमलोग उसीमें जाकर रहो। हे शत्रुओंके संहारक राक्षसों! जब तुम वहाँ बहुतसे राक्षसों सहित बस जाओगे, तब शत्रुओंसे दुर्धर्ष हो जाओगे। विश्वकर्माके इन वचनोंको सुनकर वे राक्षस अपने साथ सहस्रों सेवकोंको लेकर उस नगरीमें जा बसे। लंकाके स्वर्णभूषित गृहोंमें बसकर वे बड़े हर्षित हुए। हे राघव! इसी समय स्वेच्छया एक गन्धर्वी उत्पन्न हुई जिसका नाम नर्मदा था। उसके तीन पुत्रियाँ थीं, जो ह्री, श्री और कीर्तिके समान ही द्युतिमान थीं। उसने अपनी तीनों पुत्रियोंको क्रमशः उन तीनों राक्षसोंको दे दी। उन्होंने उनसे उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें विवाह किया। उनसे माल्यवानने अपनी सौन्दर्यवती सुन्दरी नामक पत्नीसे वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त ये सात पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही उसने 'अनला' नामक एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न की। फिर सुमालीकी भार्या केतुमती जो पूर्णिमाकी चन्द्रमाके समान सुन्दरी थी उसने अपने गर्भसे प्रहस्त, कम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली, सुपार्श्व, संहादि, प्रघस और भासकर्ण ये महाबली पुत्र और कुम्भीनसी, कैकसी, राका और पुष्पोत्कटा नामकी कन्याएँ भी उत्पन्नकीं। इसीप्रकार मालीने अपनी वसुधा नाम्नी सुन्दर पत्नीसे अनल, अनिल, हर और सम्पाति ये चार पुत्र उत्पन्न किए। यही चारों विभीषणके मन्त्री हुये। इस प्रकार राक्षसश्रेष्ठ उन तीनों राक्षसोंका परिवार बहुत बढ़ा और वे तीनों अपने सैकड़ों पुत्रोंके

साथ इन्द्र सहित सब देवताओं, ऋषियों, नागों और यक्षोंको सताने लगे। वे सब दुरासद राक्षस, वायुकी सदृश संसारमें सर्वत्र भ्रमण करते। संग्राम-क्षेत्रमें कालके समान अमित तेजस्वी हो जाते और वरदानके प्रभावसे गर्वित हो सर्वदा यज्ञोंको नष्ट किया करते।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

छठवाँ सर्ग

सुकेश-पुत्रों द्वारा सताये गये देवताओंकी ओरसे विष्णुजीका कुपित हो उन्हें मारने जाना

उन राक्षसोंसे पीड़ित होकर देवता, ऋषि और तपस्वी भयसे व्याकुल हो देवदेव महादेवकी शरणमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने त्रिपुरमर्दक कामारि शिवजीको प्रणाम किया और भयसे कम्पित वाणी द्वारा यह निवेदन किया कि—'हे भगवन्! हे प्रजाध्यक्ष! ब्रह्माजीके वरसे धृष्ट हो सुकेशके पुत्र सम्पूर्ण प्रजाको बड़ा कष्ट दे रहे हैं। हमारे शरणदाता आश्रमको उन्होंने उजाड़ दिया जो अब बास करने योग्य नहीं रह गया। देवताओंको स्वर्गसे हटाकर वे स्वयं ही वहाँ अधिकार कर लिये तथा देवताओंकी समान ही अब वे तीनों राक्षस स्वर्गमें विहार करते हैं। माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते हैं कि—'विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण और सूर्य मैं ही हूँ। अब तो उन दुर्धर्ष और अहंकारी राक्षसोंके साथ रहना हमारे लिए बड़ा कठिन हो गया है। क्योंकि वे हम सबको बड़ा कष्ट दे रहे हैं। हे प्रभो! हम आपकी शरण आये हैं। उनका नाशकर, हमें अभय कीजिये।' तब उन समस्त देवताओंकी इस प्रार्थनाको सुनकर कपर्दी, नीललोहित महादेवजीने कहा-देवताओं! मैं तो उन राक्षसोंको न मारूँगा। क्योंकि मुझसे तो वे अवध्य हैं। परंतु मैं तुम्हें वह उपाय बतलाता हूँ कि, उन्हें कौन मार सकेगा। हे महर्षियों! तुम लोग इसीप्रकार देवताओं सहित भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ, वे उनका नाशकर डालेंगे। भगवान् शिवजीके ऐसा कहनेपर देवता उनकी जय-जयकार करकर निशाचरोंके भयसे पीड़ितहो विष्णुजीके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने शंख, चक्र, गदाधारी देवनारायणके चरणोंमें प्रणाम किया और व्याकुलता से कहा कि—'हे देव! सुकेशके तीनों पुत्रोंने वरदानकी शक्तिसे आक्रमण करके हमारे स्थान हरण कर लिये हैं। त्रिकूट पर्वतके

शिखरपर लंकानामकी जो दुर्गम नगरी है, वहाँ रहकर वे निश्चर हम सब देवताओंको क्लेश दे रहे हैं। हे मधुसूदन! हमारे हितार्थ आप उनका संहार करें, हम सब आपकी शरण आये हैं। आप हमारी रक्षा करें। आपके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है जो हमारी रक्षा करे। राक्षस मदसे मतवाले हो रहे हैं। अतः आप अपने चक्रसे उनका शिर काटकर हमें अभय कीजिये। देवताओंके इस प्रकारके निवेदनको सुनकर देवाधिदेव जनार्दन उन्हें अभय देते हुए बोले—'शिव से दर्पित राक्षस सुकेशको मैं जानता हूँ तथा उसके पुत्रों को भी जिनमें माल्यवान् श्रेष्ठ है, मैं अपरिचित नहीं हूँ। वे अवश्यही धर्मकी मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं। मैं उनका नाश करूँगा। तुम सब चिन्ता त्याग दो।' समर्थ विष्णुसे ऐसा आश्वासन पाकर देवता उनकी जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थानको चले आये। जब इसका समाचार माल्यवान् को प्राप्त हुआ, तब उसने अपने दोनों भाइयोंको बुलाकर विष्णुजीके कुपित होनेकी सब बात कह सुनाई और कहा कि अब इस विषयमें हम लोग भी उचित कार्यवाही करें। क्योंकि हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवद्रोही दैत्योंको इन्हीं विष्णुने मारा है। नमुचि, कालनेमि, संह्लाद, राधेय, यमलार्जुन, हार्दिक्य शुम्भ और निशुम्भ आदि बड़े-बड़े बलवान् और शक्तिशाली असुर इन्हींके हाथसे मारे गये हैं। अब वहीं नारायण हमें भी मारना चाहते हैं। अतः हम सब भी कोई उचित उपाय करें। तब ज्येष्ठ भ्राता माल्यवान्की यह बात सुनकर सुमाली और मालीने कहा—'भाई! हम लोगोंने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किये हैं। ऐश्वर्यकी रक्षा तथा उसका उपयोगभी किया है। हमने आरोग्यप्रद जीवन पाया है तथा अपनी कुल-परम्परागत हमने धर्मकी स्थापना की है। हमने देवसेना रूपी अगाध सागरमें प्रवेश करके बड़े-से-बड़े शत्रुपर भी विजय प्राप्तकी है। अतः हम लोगोंको मृत्युसे कोई भय नहीं है। नारायण, रुद्र, इन्द्र या यमराज कोई भी क्यों न हो, हमारे समक्ष भयातुर हैं। परन्तु विष्णुजी हमपर क्यों कुपित हैं, इसका कोई कारण नहीं ज्ञात होता। संभवतः देवताओंके ही उत्तेजनसे उनका मन हमारी ओरसे विपरीत हो गया है। अतएव हम सब एकत्र होकर आजही सब देवताओंका बधकर डालें यही उचित है। क्योंकि उन्हींके कारण यह उपद्रव उपस्थित हुआ है।' ऐसा

विचारकर उन महाबली निशाचरोंने युद्धोद्योगकी घोषणाकर दी। राक्षसोंकी सब सेना एकत्र होने लगी। रथ, हाथी, घोड़े, गधे, बैल, ऊँट गरुड़के समान पक्षी, सिंह, बाघ, सुअर और नीलगाय आदि वाहनोंपर वे बलोन्मत्त निशाचर लंका छोड़कर देवलोकको चल दिये। उस समय पृथ्वी और आकाश में भयंकर उत्पात प्रकट हुये। सम्पूर्ण भूतोंका लय-सा होता दिखाई पड़ा। गीधोंका समूह राक्षसोंपर काल-सदृश मँडलाने लगा। फिरभी वे कालपाश बद्ध राक्षस नहीं लौटे और बढ़तेही चले गये। जब देवदूतोंने राक्षसोंके इस उद्योग का समाचार विष्णुजीसे कहा, तब वह तत्क्षणही सहस्र सूर्यके समान चमचमाता कवच धारणकर, बाणोंसे पूर्ण दो तरकस लिए, कटिसूत्र धारण किए हुए, प्रदीप्त खड्ग उठा अपने वाहन गरुड़पर जा बैठे और इनके अतिरिक्त उन्होंने पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन, चक्र, कौमोदकी गदा, नंदकी खड्ग, और शार्ङ्गधनुष इस प्रकार सभी श्रेष्ठ आयुधोंको उन्होंने ग्रहणकर लिया। फिरतो श्याम स्वरूप, पीताम्बर पहने और गरुड़की पीठपर सवार, श्रीनारायण सुमेरुपर्वत स्थित विद्युत मेघके समान शोभित होते हुए राक्षसों के संहारार्थ वहाँ जा पहुँचे। उस समय सिद्ध, देवर्षि, महानाग, गन्धर्व और यक्ष उनकी स्तुति करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

सातवाँ सर्ग

अब श्रीनारायणको युद्धके लिए उद्यत देख इन राक्षसोंने उनपर अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरंभ कर दी। नीलवर्णकी कान्तिवाले श्रीनारायण राक्षसोंके घेरेमें जा पड़े। फिर तो जैसे खेतोंपर टीडियाँ और अग्निपर मच्छर, मधु-घटपर डाँस और सागरमें मगर गिरते हों, ऐसे ही राक्षसोंके चलाए हुए वज्रवत् बाण श्रीहरिके शरीरमें समाने लगे। मानों प्रलयकालमें जीव भगवान्के शरीरमें समा रहे हों। राक्षसी सेनाके विविध बाणोंसे श्रीहरि आच्छादित हो गये। किन्तु उनके प्रहारोंको उन्होंने ऐसा ही सहन किया जैसे मछलियोंके वेगको समुद्र सहता है। तदनन्तर उन्होंने शार्ङ्गधनुष उठा अपने वज्रवत् बाणोंसे राक्षसोंका संहार करना आरंभ कर दिया और मनके समान वेगवान् पैने बाणोंसे श्रीविष्णुजीने सैकड़ों-सहस्रों राक्षसोंको मार डाला।

अविनाशी और साक्षात् नारायण हो। राक्षसोंका नाश करनेके लिए तुम्हारा अवतार हुआ है। हे नराधिप! आज मैंने तुम्हें समस्त राक्षसोंकी जैसे उत्पत्ति हुई है सुना दी। हे रघूत्तम! अब मैं तुम्हें रावण और उसके पुत्रोंका अन्य-वृत्तान्त और उनका अतुल प्रभाव सुनाता हूँ। इसप्रकार जब सुमाली रसातलमें चला गया, तब श्रीकुबेरजी लंकामें चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

नवाँ सर्ग

रावण, कुम्भकर्ण, सूर्पणखा तथा विभीषणका जन्म

कुछ दिन पश्चात् सुमाली राक्षस रसातलसे निकलकर अपनी सुन्दरी कन्या सहित मनुष्यलोकमें विचरने लगा। तब इसप्रकार पृथ्वीपर विचरते हुए उसने पुष्पक विमानपर आरूढ़ कुबेरजीको देखा जो अपने पिता विश्रवाके दर्शन करने जारहे थे। यह देख सुमालीको आश्चर्य हुआ। वह मृत्युलोक छोड़ रसातलमें पहुँच अपनी पुत्री कैकसीसे बोला—हे पुत्रि! अब तुम्हारे विवाहका समय हो चुका है। अधिक क्या कहें; मानीजनोंके लिए कन्या दुःखका कारण होती है। क्योंकि यह कोई पहलेसे नहीं जानता कि, कन्याका विवाह कैसे वरसे होगा। मातृकुल पितृकुल और श्वसुरकुल—इन तीनों कुलोंको कन्या सदैव संशययुक्त रखती है। अतः अब तुम ब्रह्माके कुलमें उत्पन्न पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा मुनिको स्वयंही जाकर वरणकर ले। हे पुत्री! विश्रवाको वरण करनेसे तुझे कुबेरके समानही तेजस्वी पुत्र लाभ होगा। फिरतो वह कन्या अपने पिताके वचनोंको सुन और पितृ-गौरवको स्वीकार कर जहाँ विश्रवा मुनि तपस्या कर रहे थे वहाँ जाकर खड़ी हो गई। तब पूर्ण चन्द्रानना उस परम सुन्दरीको देख परमोदार विश्रवा मुनिने उस कन्यासे कहा-भद्रे! तू किसकी दुहिता है और यहाँ कैसे आई है? तब उस कन्याने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! यह तो आप अपने तपसे ही जान सकते हैं; फिर भी मैं आपको यह बतलाती हूँ कि, मैं अपने पिताकी आज्ञासे आपके पास आई हूँ और मेरा नाम कैकसी है। शेष वृतान्त आप स्वयं जान सकते हैं। विश्रवा मुनिने ध्यानकर उसके आनेका प्रयोजन ज्ञातकर लिया और तब उससे कहा—भद्रे! मैंने तेरे मनकी बात जान ली। हे मत्तगजेन्द्रगामिनी!

मुझसे पुत्र उत्पन्न करानेकी तेरी अभिलाषा है, किन्तु इस दारुण समयमें तू मेरे पास आई है। अतः तुमसे क्रूर-कर्मा राक्षस उत्पन्न होंगे। विश्रवा मुनिके ऐसे वचन सुन कैकसीने कहा–हे भगवन्! आप जैसे ब्रह्मवादी द्वारा मैं दुराचारी पुत्रोंको नहीं चाहती। अतः आप मुझपर कृपा कीजिये। इसपर मुनिश्रेष्ठने कहा–अच्छा, तेरा पिछला पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे राम! फिर तो कुछ काल पश्चात् उसने बड़ा भयंकर बीभत्सरूपी राक्षस पुत्र प्रसव किया। उसके दस सिर, बड़े-बड़े दाँत और बीस भुजाएँ थीं तथा वह काल रंगका पहाड़के समान था। उसके लाल होंठ, विशाल शिर और चमकीले बाल थे। उसके जन्मते ही पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र खलभला उठा, आकाशसे बड़े-बड़े उल्कापात हुए, सूर्यका प्रकाश मन्द पड़ गया और देवताओंने रक्तकी वर्षाकी। तदनन्तर पितामह ब्रह्माके समान ही उसके पिताने उसका नामकरण किया और कहा कि इस दस शिरवाले पुत्रका नाम दसग्रीव होगा। फिर कैकसीके गर्भसे कुम्भकर्णका जन्म हुआ जिसके समान लम्बा चौड़ा कोई अन्य प्राणी न था। फिर विकराल मुखवाली सूर्पणखा उत्पन्न हुई और सबके पश्चात् धर्मात्मा विभीषणका जन्म हुआ। उसके जन्मके समय आकाशसे पुष्प-वृष्टि हुई तथा देवताओंने दुन्दुभी बजायी और सबने साधु-साधु कहा। कुम्भकर्ण और दशग्रीव उस महावनमें बढ़ने लगे। कुम्भकर्ण बड़ा उन्मत्त हुआ। उसकी भोजनसे कभी तृप्ति ही न होती थी और तीनों लोकोंमें घूमकर महर्षियोंको भक्षण किया करता था। विभीषण बाल्यकालसे ही धर्मात्मा था। वह सर्वदा धर्ममें स्थित रह स्वाध्याय करता और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता। कुछ काल पश्चात् धनपति वैश्रवण पुष्पक विमानपर बैठ अपने पिताका दर्शन करनेके लिए वहाँ आए जो अपने तेजसे प्रदीप्त हो रहे थे। तब उन्हें देखकर राक्षस-कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीवके पास आई और बोली—'हे पुत्र! अपने भाई वैश्रवणको देखो, ये कैसे तेजस्वी हैं। क्या ही अच्छा होता यदि तुम भी अपने भाईके ही समान होते। यद्यपि तुम बड़े पराक्रमी हो; तथापि ऐसा प्रयत्न करो, जिससे तुम भी वैश्रवणके ही समान तेजस्वी और वैभवशाली हो जाओ।' माताकी यह

बात सुनकर प्रतापी दशग्रीवको बड़ा रोष हुआ। उसने कहा—माँ! तु चिन्ता न करो। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि, अपने पराक्रमसे भाई वैश्रव के समान या उससे भी बढ़कर होजाऊँगा।' यह कहकर उसने तपस्या करने विचार किया और गोकर्णके पवित्र आश्रमपर जाकर वहाँ भाइयों सहि तप करने लगा। उसने घोर तपकर ब्रह्माजीको प्रसन्नकर लिया। उन्हो प्रसन्न होकर उसे विजयदायक वर प्रदान किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

दशवाँ सर्ग

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषणका तप तथा वरदान

इतना सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्य मुनिसे पूछा–हे ब्रह्मन्! उ महाबली भाइयोंने कैसे तपस्या की? यह सुन अगस्त्यजी प्रसन्न होकर बोले हे रामजी! कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियोंको संयमकर धर्म-मार्गमें स्थित हुअ और ग्रीष्मकालमें अपने चारों ओर अग्नि जलाकर पञ्चाग्नि तापने लगा फिर वर्षा ऋतुमें वीरासनसे बैठकर जलकी वृष्टिको सहता तथा शीतकाल जलमें बैठा रहता। इस प्रकार तप करते हुए उसने दश हजार वर्ष व्यती कर दिये। विभीषण तो सदासे ही धर्मात्मा थे। वे नित्य धर्म-परायण हो पाँ हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़े रहे। उनका नियम समाप्त होनेपर आकाश पुष्प-वृष्टि हुई तथा देवताओंने स्तुतिकी। तदनन्तर विभीषणने अपनी दो भुजाएँ उठाकर, मस्तक ऊपर उठाकर; स्वाध्याय-परायणहो पाँच हजार वर्षों सूर्यकी आराधनाकी। इस प्रकार मनको वश किए विभीषणनेभी दश हजा वर्ष व्यतीत किये। दशग्रीवने तो दश हजार वर्षतक निरन्तर उपवास कि और प्रत्येक हजार वर्षके पूर्ण होनेपर वह अपना एक मस्तक काटकर अ में होमकर देता था। इस प्रकार नौ हजार वर्ष व्यतीत होने तक उसके मस्तक अग्निदेवको अर्पित हो गये और जब दश हजार वर्ष पूर्ण होने लग तब उसने अपना दशवाँ मस्तक काटना चाहा, फिर तो उसी क्षण उसके समक्ष ब्रह्माजी आ उपस्थित हुये। उनके साथ देवताभी थे। तब ब्रह्माजीने संतुष्ट होकर कहा–दशग्रीव! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, वर माँग। पितामहके यह वाणी सुनकर दशग्रीवका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने नत मस्तक

ब्रह्माजीको प्रणाम किया और हर्ष-गद्गद वाणीमें कहा—'भगवन्! प्राणियोंको मृत्युका भय सर्वदा लगा रहता है, अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ।' ब्रह्माजीने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। तू और कोई वर माँग। हे राम! जब लोककर्त्ता ब्रह्माजीने ऐसा कहा; तब दशग्रीवने हाथ जोड़कर यह प्रार्थनाकी—प्रजानाथ! मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओंके लिये अवध्य होऊँ। अन्य प्राणियोंकी मुझे चिन्ता नहीं है। मनुष्य आदि जीवोंको तो मैं तृणवत् समझता हूँ। दशग्रीवके ऐसा कहनेपर देवताओं सहित खड़े ब्रह्माजीने कहा—अच्छा, ऐसाही होगा। हे राम! दशग्रीवसे ऐसा कहकर ब्रह्माजी उससे फिर बोले—हे अनाथ! मैं तेरे ऊपर अति प्रसन्न हूँ। अतः मैं अपनी ओरसे भी तुझे वर देता हूँ। तूने अपने जिन सिरोंको काटकर अग्निमें होम दिया है, वे सिर तेरे पूर्ववत् हो जायँगे तथा एक और भी तुझे यह दुर्लभ वर देता हूँ कि जिस समय तू जैसा रूप धारण करना चाहेगा, वैसाही रूप तेरा हो जायगा। ब्रह्माजीके यह कहतेही राक्षस दशग्रीवके वे होम किए सब सिर पूर्ववत् निकल आये। हे राम! दशग्रीवको ऐसा वर दे, ब्रह्माजी विभीषणसे बोले— हे वत्स विभीषण! मैं तेरी धर्मबुद्धि देखकर प्रसन्न हूँ, अतः हे सुव्रत! तू वर माँग। धर्मात्मा विभीषणने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन्! जब आप लोक-गुरु ब्रह्माजी स्वयंही मुझपर प्रसन्न हैं, तब मुझे और चाहिए ही क्या? मैं तो ऐसेही कृतार्थ हो गया। परन्तु आप मुझे वर देनाही चाहते हैं तो हे सुव्रत! आप मुझे यह वर दें कि, परम आपदा पड़नेपर भी मेरी बुद्धि धर्ममेंही तत्पर रहे और हे भगवन्! बिना किसीके शिक्षित किएही मुझे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करना आ जाय और जिस आश्रममें मैं रहूँ उसके प्रति मेरी सदैव निष्ठा-वृद्धि होती रहे। हे परमोदार! मेरा यही सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट है। ब्रह्माजीने कहा—एवमस्तु! तुम जैसा चाहते हो सब कुछ वैसाही होगा। राक्षस-योनियोंमें उत्पन्न होकरभी तुम्हारी बुद्धि अधर्ममें प्रवृत्त नहीं होती, इसलिए मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ। विभीषणसे ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी कुम्भकर्णको वर देनेके लिए उद्यत हुए, तब सम्पूर्ण देवताओंने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—'भगवन्! आप कुम्भकर्णको वरदान न दीजिए।'

क्योंकि आपको स्वयं ज्ञातही है कि, विना वर पाएही यह दुष्ट तीनों लोकों
सताया करता है। नन्दनवनमें सती अप्सराओं और इन्द्रके दस सेवकों
इसने भक्षण करडाला है। इसके भक्षण किए ऋषियों और मनुष्योंकी
गणनाही नहीं है। जब बिना वर पाएही इसकी यह करणी है, तब वर पाने
तो यह समस्त त्रिभुवनकोही चर्वणकर जायगा। अतः हे अमितप्रभ! व
मिस इसे अज्ञान प्रदान कीजिए। इससे लोक-कल्याणभी होगा और इस
भी मान बना रहेगा।' तब देवताओंके ऐसा कहनेपर पद्म-संभव ब्रह्माजी
सरस्वती देवीका स्मरण किया। उनके स्मरण करतेही सरस्वती आ पहुँ
और हाथ जोड़कर बोलीं—'हे देव! मैं आ गयी हूँ, कहिए क्या आज्ञा
है? ब्रह्माजीने कहा—'वाणी! तुम राक्षसराज कुम्भकर्णकी जिह्वापर बैठ
इसके मुँहसे देवताओंके अनुकूल बात निकालो।' सरस्वती ने कहा—
'बहुत अच्छा।' यह कह सरस्वती कुम्भकर्णके मुँहमें प्रवेशकर गयीं। त
ब्रह्माजीने कहा—महाबाहु कुम्भकर्ण! तुमभी जो चाहो वर माँगो।
सुनकर कुम्भकर्णने कहा—'देवदेव! मैं यह चाहता हूँ कि, मैं अनेक व
तक सोता रहूँ।' ब्रह्माजीने कहा—तथास्तु! ऐसा कहकर देवताओं सहि
ब्रह्माजी चले गए। पश्चात् सरस्वती देवीभी उसके मुखसे निकल आईं औ
आकाश मण्डलमें चली गयीं। अब कुम्भकर्णको चेत हुआ। वह दुरा
दुःखीहो चिन्ता करने लगा कि, हाय! मेरे मुखसे ऐसा वचन क्यों निक
गया। मुझे ज्ञात होता है कि देवताओंने आकर मुझे ठग लिया, इसप्र
वे सब भाई तप द्वारा ब्रह्माजीसे वरदान पाकर श्लेष्मान्तक उस वनमें
पिताके पास फिर आ गये और सुखसे रहने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ सर्ग

कुबेरका लंकापुरी त्याग कैलाशपर अलकापुरी बसाना तथा रावणका लंका प्रवेश

उधर सुमाली इनतीनों भाइयोंके बरदान पानेका समाचार सुनकर मारी
महोदर; प्रहस्त, और विरूपाक्ष अपने इन मन्त्रियों और कुछ अनुचरों सहि
पातालसे बाहर निकल दशग्रीवसे मिलने आये। अपने प्राचीनके रोषको
वह आकर दशग्रीवसे हृदय लगाकर मिला। और उसकी वर-प्राप्ति

प्रसन्नता व्यक्तकी तथा यह कहा कि, जिस लंका-नगरीमें तुम्हारे भाई धनाध्यक्ष निवास करते हैं, वह हम लोगोंकी है। पूर्वमें वहाँ हम राक्षसोंका निवास था। अब यदि साम, दान अथवा बल-प्रयोग द्वारा पुनः आप उसे लौटाकर हस्तगत करदें तो हम सबका कार्य सिद्धहो जाय। दशग्रीवने कहा—'नानाजी! धनेश हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं, उनके सम्बन्धमें आप मुझसे ऐसी बात न कहें। सुमाली चुप होगया। तब कुछ क्षण पश्चात् अवसर पाकर प्रहस्तने नम्रतासे कहा कि, हे महाबाहो! आप यह क्या कहते हैं? आप वीर हैं। वीरोंका ऐसा कोई भ्रातृभाव नहीं चलता। देखिए, अदिति और दिति दोनों सगी बहिनें हैं। उन दोनोंकाही विवाह प्रजापति कश्यपसे हुआ है। उनमें अदिति ने देवताओं और दितिने दैत्योंको जन्म दिया है। पूर्वमें बनों, पर्वतों और समुद्रों सहित यह समस्त पृथ्वी दैत्योंकेही अधिकारमें थी। परन्तु विष्णुने युद्धमें दैत्योंको मारकर यह समस्त त्रिलोकी देवताओंके अधीनकर दी। आशय यहकि, एक आपही ऐसा नहीं करने जारहे हैं, ऐसा विपरीत आच-रण पहलेभी हुआ है। प्रहस्तकी यह बात सुनकर दशग्रीव प्रसन्न होगया। उसने कहा—बहुत अच्छा। फिरतो दशग्रीव उन राक्षसोंको साथ लेकर त्रिकूट पर्वतपर चला गया और वहाँसे उसने प्रहस्तको दूत बनाकर लंकामें भेजते हुए यह कह दिया कि—'प्रहस्त! तुम शीघ्रही जाकर यक्षराज कुबेरसे शांति पूर्वक कह दो कि—हे राजन्! यह लंकापुरी राक्षसोंकी है। यदि इसे आप प्रसन्नता पूर्वक हमें लौटा दीजिये तो आपके द्वारा यह धर्मका पालन समझा जायगा।' फिर तो प्रहस्त कुबेर-पालित लंकामें गया और दशग्रीवने जैसा सिखाया था, वैसाही उनसे प्रस्ताव किया तथा यह कहा कि, पूर्वकालमें यह रमणीक लंकापुरी सुमाली आदि राक्षसोंके अधिकारमें थी। अब आप इसे उनको लौटा दें। हम प्रार्थना पूर्वक याचना करते हैं। इसीलिए आपके भाई दशग्रीवने मुझे आपके पास भेजा है। तब प्रहस्तसे ऐसी बात सुनकर कुबेरने कहा—'पहले लंका निशाचरोंसे सूनी थी। उस समय पिताजीने मुझे इसमें रहनेकी आज्ञा दी और मैंने आकर इसे बसाया। हे दूत! तुम जाकर दश-ग्रीवसे कह दो कि, यह पुरी तथा जो कुछ अकंटक यह राज्य मेरे पास

है, वह सब तुम्हाराभी है। मेरा राज्य या धन तुमसे बँटा हुआ नहीं है।' यह कहकर धनाध्यक्ष अपने पिता विश्रवा मुनिके पास चले गये और सब समाचार कह सुनाया, तथा पूछा कि अब मैं क्या करूँ? यह सुन मुनिश्रेष्ठ विश्रवाने कहा---हे पुत्र! दशग्रीवने मुझसे भी यह बात कही थी। इसपर उस दुर्बुद्धिको मैंने बहुत डाँटा और बार-बार कहा कि, ऐसे बुद्धिसे तू नष्ट हो जायगा। परन्तु जबसे वर मिला है, तबसे वह बड़ा दुष्ट होगया है और उसके लिए मान्य अमान्य कुछ नहीं रह गया है। मेरे शापसे उसका स्वभाव बड़ा दारुण होगया है। अतएव अब तुम अपने अनुयायियों सहित कैलाश पर्वतपर जाओ और वहीं अपनी पुरी बनाओ और लंकाको त्याग दो। कैलाश बड़ा राज्य-स्थान है। वहाँ तुम औरभी सुखी रहोगे। हे धनद! इस राक्षससे बैर करना उचित नहीं है। क्योंकि तुम जानतेही हो कि इसे सर्वोत्कृष्ट वर प्राप्त हो चुका है। यह सुन कुबेर अपने पिताकी आज्ञा मान सपरिवार, यात्रियों, वाहनों और धनको साथ ले, कैलास पर्वतपर चले गए। फिर तो प्रहस्तने जाकर वह समाचार दशग्रीवसे कह सुनाया जो वहाँ पर्वतपर अपने मन्त्रियों और अनुचरों सहित बैठा था। उसने कहा—लङ्कापुरी खाली हो गई, अब आप हमलोगों सहित उसमें चलकर प्रवेश कीजिए। कुबेरजी अपने पिताकी आज्ञा मान कैलाश पर्वतपर चले गए। फिर तो दशग्रीव अपने अनुचरों सहित लङ्कामें जा बसा। लंकामें पहुँच राक्षसोंने रावणको राजतिलक दिया तथा उसने उस पुरीको फिर बसाया। नीले मेघके समान राक्षसोंके समूह लंकामें आकर बस गए। उधर कुबेरनेभी कैलास पर्वतपर जाकर अति सुन्दर इन्द्रकी अमरावतीके समान अपनी अलकापुरीकी स्थापना कर उसे बसाया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

बारहवाँ सर्ग

अब रावण अभिषिक्त हो अपने भाइयों सहित अपनी बहिन सूर्पणखा के विवाहको चिंतामें पड़ा और कालकेयवंशी दानवेन्द्र विद्युजिह्वके साथ उसका ब्याह कर दिया। पश्चात् जब एक दिन रावण वनमें शिकार खेल रहा था कि, वहाँ उसकी दृष्टि दितिके पुत्र 'मय' पर जा पड़ी। उसके साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी। तब रावणने जो उसका समाचार पूछा तो 'मय' ने

अपने जीवनका सब वृतान्त सुनाते हुए कहा कि, यह मेरी कन्या है जो हेमा नामक अप्सरासे उत्पन्न हुई है। मैं इसके लिए योग्य वरकी खोजमें इधर-उधर विचर रहा हूँ, आप कौन हैं, अपना परिचय तो दीजिए। पुलस्त्य-नन्दन रावणने ब्रह्माकी तीसरी पीढ़ीमें अपनेको उत्पन्न होनेवाला बतलाकर कहा कि, इसप्रकार मेरा नाम दशग्रीव है। राक्षसेन्द्रके ऐसा कहनेपर मय ने अपनी कन्याका हाथ दशग्रीवके हाथमें दे दिया और कहा कि यह मेरी कन्या हेमा अप्सरासे उत्पन्न हुई है, इसका नाम मन्दोदरी है, इसे आप पत्नीके रूपमें ग्रहण कीजिए। दशग्रीवने कहा—बहुत अच्छा। फिर तो वहीं अग्नि प्रतीक्षकर उसने मन्दोदरीका पाणिग्रहण किया। मयने उसको एक अद्भुत और अमोघ शक्ति भी प्रदान की। दशग्रीवने उसी शक्तिसे लक्ष्मण पर प्रहार किया था। इसप्रकार भार्या-ग्रहणकर दशग्रीव लंकामें चला गया। लंकामें जाकर फिर उसने अपने दोनों भाइयोंका भी विवाह किया। कुम्भकर्ण का व्याह वैरोचनकी पौत्री अर्थात् बलिकी पुत्री बज्रज्वालासे और गन्धर्व-राज शैलूषकी धर्मज्ञा पुत्री सरमासे विभीषणका व्याह हुआ। समय पाकर मन्दोदरीके गर्भसे मेघनाद उत्पन्न हुआ। उसीको इन्द्रजीत कहा जाता है। उसने जन्म लेतेही मेघ-सा गर्जन किया था, जिससे समस्त लंकानिवासी स्तम्भित हो गए थे, इससे दशग्रीवने उसका नाम मेघनाद रखा था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१२॥

तेरहवाँ सर्ग

रावणका कुबेरके दूतको मार डालना

अब कुछ दिनोंके पश्चात् ब्रह्माके वरदानके अनुसार कुम्भकर्णको मूर्तिमती तीव्र निद्राने आ घेरा। तब उसने समीप स्थित अपने भाई रावणसे कहा कि—'हे राजन्! अब मुझे निद्रा बाधित कर रही है। अतएव मेरे सोनेके लिए कोई पृथक एक भवन बनवा दीजिए। यह सुन रावणने एक योजन चौड़ा और दो योजन लम्बा एक सुन्दर गृह निर्माण करा दिया। उसका वह शयन-गृह चित्र विचित्र बड़ाही दर्शनीय था। महाबली कुम्भकर्ण निद्राविष्ट हो सहस्रों वर्षों तक उसमें पड़ा सोताही रहा और जागा नहीं। उन दिनों रावण निरंकुश हो देवताओं, ऋषियों, यक्षों और गन्धर्वोंको मारता

पीटता रहा। उसने बड़े-बड़े उपद्रव किए। तब धर्मज्ञ धनेश्वरने अपना द
भेजकर रावणको यह बतलाया कि—'आप अपने चरित्रको सुधारें औ
अपनी शक्तिको धर्मके कार्यमें व्यय करें। यह सब उपद्रव करना उचित न
है। अबतक जो कुछ किए हो वही बहुत है। अब तो ऐसा कोई कार्य
करो कि, जिसमें कुलमें दूषण लगे। अन्यथा देवता और देवर्षिगण मिल
तुम्हारे मारनेका उपाय सोच रहे हैं।' कुबेरका यह सन्देश सुनकर रावण
नेत्र मारे क्रोधके लाल हो गए। उसने अपने दाँत कटकटाते और ह
मलते हुए दूतको यह कहकर मार दिया कि, 'धनेश्वर मेरा बड़ा भाई
इसीसे क्षमा करता हूँ, अन्यथा मैं उसे मार डालता। परन्तु अब तू यहाँ
जीवित नहीं जायगा। उसे मारकर दुष्ट रावणने राक्षसोंको खिला दिया
पश्चात् वह रावण त्रिलोकीको विजय करने चला और सर्वप्रथम कुबेर
ही उसने आक्रमण किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवाँ सर्ग

तब यह देखकर कि रावण मुझसे युद्ध करने आया है, कुबेरने यक्षों
उससे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। यक्षों और राक्षसोंका भयंकर युद्ध हुआ
अल्प क्षणमें ही रावणके मंत्री व्यथित हो गए। रावण भी रुधिरसे न
गया; तथापि कालदण्डके समान अपनी गदा उठाकर उसने अनेक यक्षों
मार डाला। बातकी बातमें उसने यक्षोंकी सेनाको भस्म कर दिया। कु
थोड़ेही यक्ष शेष रह गए। तब कुबेरने फिर बहुतसे यक्षोंको राक्षसोंसे यु
करनेके लिए भेजा। संयोधकंटक नामक बड़ा वीर यक्ष भी अपनी बड़ी बल
सेना लेकर आ पहुँचा। उसने अपने चक्रके प्रहारसे राक्षस मारीचको मार
मूर्च्छित कर दिया। परन्तु मारीच फिर उठा और युद्ध कर उस यक्षको म
भगाया। पश्चात् रावण कुबेर-पालित अलकापुरीके प्रधान द्वारपर जा लग
वहाँ कुबेरके सैनिक यक्षों सहित द्वारपालसे उसका युद्ध हुआ। द्वार
पालने उसे बहुत मारा भी, परन्तु ब्रह्माके वरदानसे वह वीर धराशायी न
हुआ। फिर तो रावणने उस द्वारपालको मारकर पुरीमें प्रवेश किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ सर्ग

रावणका कुबेरको युद्धमें परास्तकर पुष्पक विमान प्राप्त करना

तदनन्तर कुबेरने मणिभद्र नामक महायक्षाको चार हजार यक्ष-सैनिकों सहित रावणसे युद्ध करनेको भेजा। परन्तु रावणके मंत्री प्रहस्त और महोदरने मिलकर दो हजार यक्षोंको युद्धमें मार डाला और अकेले मारीचने दो हजार यक्षोंका संहार किया। क्योंकि राक्षसोंका युद्ध मायाके बलसे होता था और यक्षोंका सरलता युक्त था। इससे यक्षोंसे राक्षस प्रबल हुए। परन्तु यक्ष मणिभद्रने राक्षस धूम्राक्षसे बड़ा युद्ध किया। उसने अपनी गदाके प्रहारोंसे धूम्राक्षको मार-काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। वह लोहू-लोहान हो मूर्च्छित हो गया। यह देख रावण मणिभद्रपर टूट पड़ा। उसने मणिभद्रपर अपनी शक्तियोंका प्रहारकर उसका मुकुट काट गिराया। इससे वह यक्ष वीर युद्ध-क्षेत्रसे पलायन कर गया। यह देख राक्षस सिंहनाद करने लगे। इतनेमें कुबेर हाथमें गदा लिए दिखाई पड़े। उनके साथ कोष-रक्षक शुक और प्रोष्ट-पद तथा पद्म और शंख नामक कोष-देवता भी आए। उन्होंने आकर देखा तो पितृ शापित रावण धृष्टतासे खड़ा है और अपने ज्येष्ठ भ्राताका प्रणामादि शिष्टाचार भी नहीं करता। तब ऐसे रावणको देख कुबेरजीने पितामह—कुलोचित कथित उससे कहा—'हे दुर्मते! मेरे मना करनेपर भी तू नहीं मानता। इसका कटुफल तू नरकमें पाएगा। तब तुझे सूझ पड़ेगा। अज्ञानका कर्म-फल पश्चात् पाकर समझ पड़ता है। क्या तुझे अपने क्रूर कर्मोंका नितान्तही ज्ञान नहीं रहा? अरे मूढ़! जो अपने माता-पिता, ब्राह्मण और आचार्यका अपमान करता है उसे यमराजके यहाँ बड़ा कष्ट प्राप्त होता है। परन्तु मैं तुमसे अधिक वार्तालाप क्या करूँ? क्योंकि मूर्खसे अधिक वार्तालाप न करना चाहिए।' ऐसा कह कुबेरने रावणके मारीच आदि मन्त्रियोंपर भयानक प्रहार कर दिया। वे तड़ित हो युद्ध-क्षेत्र त्याग पलायनकर गए। तब रावणके मन्त्रियोंको भगाकर महाबलवान् कुबरने रावणके मस्तकपर अपनी प्रचंड गदाका प्रहार किया; किन्तु रावण अपने स्थानसे विचलित न हुआ। अब कुबेर और रावण दोनों परस्पर युद्ध करने लगे। रावण व्याघ्र,

शूकर, मेघ, पर्वत, सागर, वृक्ष, यक्ष और दैत्यके रूपोंमें दृष्टि आने लगा उसका मुख्य स्वरूप दृष्टिगोचर ही न होता। उसी समय रावणने अपने ए विशाल अस्त्रसे कुबेरकी विशाल गदाको विद्ध कर दिया। साथही उन मस्तक पर भी प्रहार किया। उस प्रहारको कुबेर सहन न कर सके और र वमन करते हुए वृक्षकी समान धराशायी हो गए। यद्यपि निधि देवताओं कुबेरको उठाकर नन्दन वनमें पहुँचाया और सचेष्ट किया। इसप्रका धनेश्वर कुबेरको परास्तकर रावणने विजय-स्वरूप उनका पुष्पक विमा छीन लिया। पुष्पककी विचित्र रचना थी। अब दुर्मति रावण उसपर आरू हो कैलाससे नीचे उतरा। अब उसने अपनेको ऐसा समझा मानों त्रिलोकी को विजय कर लिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

सोलहवाँ सर्ग

हे राम! इसप्रकार रावण अपने भ्राता कुबेरको विजयकर स्वामिकार्ति के जन्म-स्थान 'शरवण' नामक सरकंडोंके विशाल वनमें जा पहुँचा। वहाँ आगेके पर्वतोंपर चढ़कर जब वह चला तो पुष्पककी गति अवरुद्ध ह गयी। वहाँ रावण सोचने लगा कि, पुष्पक क्यों नहीं चलता है? इतनेही अति करालरूप, काले-पीले रंगोंवाले अति लघुरूप उसे नन्दीश्वर दिख पड़े जो बड़े ही विकटरूप, मूँड़ मुड़ाए शिवकी सेवामें लगे रहनेवाले थे उन्होंने रावणके निकट जाकर निर्भीकतासे कहा—'हे दशग्रीव! यहाँ शिव क्रीड़ा कर रहे हैं। अतः तू यहाँसे चला जा। इस पर्वतपर चाहे गरुड़, ना यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस कोई भी हो, नहीं जा सकता।' नन्दीके वचनोंको सुनकर रावण मारे क्रोधके जल गया, उसके नेत्र लाल हो गए वह अपने कुण्डलोंको हिलाता हुआ पुष्पक विमानसे उतर पड़ा और कहता हुआ कि, यह कौन शंकर हैं? पर्वतके नीचे आ गया। वहाँ रावण देखा कि, नन्दी दीप्त शूल लिए दूसरे महादेवकी समान ही शंकरजी निकट खड़े हैं। तब बानर जसा नन्दीश्वरका मुख देख, रावण अट्टहा करने लगा। यह देख नन्दी बड़ेही कुपित हुए। उन्होंने कहा—'दशानन तूने जो मेरे वानररूपकी अवज्ञाकर अट्टहास किया है तो मेरे समान ह

तेजस्वी वानर तेरे वंशका मूलोच्छेद करनेके लिये उत्पन्न होंगे। वेही तेरे इस प्रवल अहंकार और शारीरिक बलके दर्पको दूर करेंगे। यद्यपि मैं तुझे अभी इसी क्षण मार डालता, तथापि क्या करूँ, तू तो स्वकृत दुष्कर्मोंसे पूर्व ही मर चुका है। फिर मेरेको मारना ही क्या है? महात्मा नन्दीश्वरके यह कहतेही देवताओंने आकाशमें दुन्दुभी बजायी और पुष्प-वर्षा की। परन्तु महावली रावणने इसकी किंचितभी चिन्ता न की। पर्वतके निकट जा वृषभपति रुद्रकी अवहेलना करनेके लिए उस पर्वतको ही उखाड़देना चाहा और तत्क्षणही अपनी दोनों भुजाएँ उसके भीतर प्रवेशकर पर्वतको उठा लेना चाहा। पर्वत काँपने लगा। पर्वतके कम्पसे महादेवजीके समस्त गण काँप गए और पार्वतीजीभी भयभीतहो महेश्वरसे चिपट गईं। हे राम! फिर तो महादेवजीने बिना किसी प्रयासकेही अपने पैरके अँगूठेसे उस पर्वतको दबा दिया। पर्वतके दबातेही उनके नीचे रावणकी विशाल भुजाएँ पिसने लगीं। वह रोषसे तथा भुजाओंके दबनेकी पीड़ासे सहसा ऐसे वेगसे चिल्लाया कि, उसके चीत्कारसे त्रयलोक कम्पित हो गया। व्रजपात जैसा शब्द सुनाई पड़ा। देवता विचलित हो गये, समुद्र संक्षुब्ध हो गये, पर्वत काँप उठे। तब दशाननके मन्त्रियोंने उससे कहा—हे दशानन! अब तुम उमापति नीलकंठ महादेवको स्तुतिसे प्रसन्न करो। यहाँ तुम्हारी रक्षाका अब कोई अन्य उपाय नहीं है। महादेव जा बड़े दयालु हैं। शरण जातेही वह तुमपर प्रसन्न हो जायँगे। तब दशाननने शिवजीको प्रणामकर सामवेदके विविध मन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति करना प्रारंभ किया और उस प्रकार रोते बिलपते उसे एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये, तब महादेवजी रावणपर प्रसन्न हुए और पर्वतसे भुजाएँ निकालनेका उसे अवसर दिया। साथही उसी दिनसे उसके उस चीत्कारके कारण उन्होंनेही उसका नाम 'राव' रख दिया और कहा कि अब तेरी जिधर इच्छाहो, चला जा। उसी समय श्री महादेवजको प्रसन्न देख रावणने देवताओं गन्धर्वों, दानवों, राक्षसों, गुह्यकों, नागों तथा अन्य प्राणियोंसे अपने अवध्यता तथा ब्रह्माजी द्वारा वर-प्राप्तिकी बात कहकर यह निवेदन किया कि—इतनेपर भी मेरी जो शेष आयु रह गई है वह मेरे किसी कार्यसे नष्ट न हों, इसका मुझे वर

दीजिये और अपना एक शस्त्रभी दीजिए। इसपर श्रीमहादेवजीने उसे अपना चन्द्रहास नामक महादीप्त खड्ग (तलवार) प्रदान किया तथा उसकी शेष आयु भी देदी। साथही यह भी आदेश दे दिया कि, इस खड्गका कभी अनादर मत करना अन्यथा यह मेरे पास चला आवेगा। रावण महादेवजीको प्रणाम कर पुष्पकपर बैठ वहाँसे लौट पड़ा और पृथ्वीके सभी बलवानों और पराक्रमी क्षत्रियोंको सताने लगा। कितने ही शूर-वीर उसकी अवज्ञापर मार डाले गये। बुद्धिमान् जनोंने उसे दुर्जय समझ अपनी पराजय स्वीकार कर दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥१६॥

सत्रहवाँ सर्ग

वेदवती द्वारा रावणको शाप

हे राजन्! अब वह महाबली रावण पृथ्वीपर विचरता हुआ एकदिन हिमालयके वनमें जा पहुँचा। वहाँ उसने साक्षात् देव-कन्याके समान एक ऐसी कन्या देखी जो मृगचर्म धारण किए तपोनुष्ठानमें रत थी। उसे देखते ही रावण कामदेवसे पीड़ित हो गया और मुसकाकर उसका परिचय पूछते हुए उसे विमोहित कर अपनी अभिलाषा तृप्त करना चाहा और कहा कि, तेरी यह युवावस्था और सौन्दर्य तेरे इसप्रकारके तपके योग्य नहीं है, तू अपने इस संकल्पको त्याग दे। फिर तू यह तो बतला कि, इतना कठिन तप किस लिए करती है? तू किसकी पुत्री है और तेरा पति कौन है? तब रावणके इसप्रकार पूछनेपर उस यशस्विनी एवं तपस्विनी कन्याने रावणका सविधि आतिथ्य करते हुए कहा कि 'मैं ब्रह्मर्षि कुशध्वजकी पुत्री हूँ। मेरा नाम वेदवती है। मेरे विवाहके लिए कितनेही देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग मेरे पितासे मिले और मुझसे ब्याह कर देनेकी प्रार्थना की परन्तु मेरे पिता यह चाहते थे कि, उनके जामात्र सुरेश्वर विष्णु हों, अन्य नहीं। इससे बलगर्वित दैत्येन्द्र शुम्भने उन्हें रात्रिमें सोते समय मार डाला। मेरी महाभागा माता उनकी शवके साथ सती हो गयीं। तबसे मैं अपने पिताकी इच्छानुसार श्रीविष्णुको ही अपना पति बनानेके लिए तप कररही हूँ। जो सत्य बात थी, वह मैंने तुमसे कह दी। उन पुरुषोत्तमके अतिरिक्त मेरा कोई अन्य पति नहीं हो सकता। हे रावण! मैंने तुमको जान लिया।

म यहाँसे चले जाओ। मैं अपने तपोबलसे त्रयलोक्यमें जो कुछ होता है
ह सब जानती हूँ। यह सुनकर कामबाणसे पीड़ित रावण विमानसे उतर
ड़ा और अश्लील बकता हुआ उसके केशोंको पकड़कर उससे वर्वस अपनी
ाम-पिपाशा शान्त करना चाहा तथा विष्णुकी निन्दा भी किया। इसपर
दवतीने क्रोधमें भरकर अपने हाथसे जो उस समय खड्गरूप हो गये थे—
पने उन बालोंको काट डाला और अपने क्रोधसे अग्नि प्रदीप्तकर रावणको
स्म करती हुई उस अग्निमें प्रवेशकर गई, तथा यह कह गई कि रे पापात्मा!
रा बध करनेके लिए मैं पुनः उत्पन्न होऊँगी। क्योंकि पापी पुरुषको मारना
त्रयोंके वशकी बात नहीं है। यदि मैं तुझे शाप दूँ तो मेरी तपस्या क्षीण
ती है। यदि मैंने कुछ भी सुकृत किया हो तो उसके पुण्यसे फिर किसी
र्मात्माके गृहमें आयोनिज जन्म धारण करूँ। ऐसा कह वेदवती उस
धकती चितामें कूद पड़ी। चिताके चारों ओर पुष्प छितरा उठे। हे प्रभो!
ही वेदवती जनकराजाके गृहमें कन्या रूपसे उत्पन्न होकर तुम्हारी भार्या हुई
। हे महाबाहो! तुम भी वे ही सन्तान विष्णु हो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त॥ १७॥

अठारहवाँ सर्ग

रावणका राजा मरुतको जीतना

वेदवतीके अग्निमें प्रवेश करनेके पश्चात् रावण पुष्पक विमानपर बैठ
र चारों ओर पृथ्वीमें विचरते हुए उशीरवीज नामक उस देशमें जा पहुँचा
जहाँ देवताओं सहित राजा मरुत यज्ञ कर रहे थे और बृहस्पतिजीके सगे
ता धर्मज्ञ संवर्त ऋषि सब देवताओं सहित उनका यज्ञ करा रहे थे। तब
दानसे अजित रावणके वहाँ पहुँचते ही उसे देख, उसके सतानेके भयसे
देवता पक्षिरूप होकर पलायनकर गए। रावण अपवित्र कुत्तेके समान
यज्ञशालामें प्रवेशकर गया और वहाँ जाकर राजा मरुतसे बोला—या तो
मुझसे युद्ध करो या हार मानो। मरुतने पूछा—तुम कौन हो? यह सुन-
रावण अट्टहास करते हुए बोला—मैं तुम्हारी सरलतापर प्रसन्न हूँ।
ोंकि तुम धनद कुबेरके लघु भ्राता मुझ रावणको नहीं पहचान रहे हो।
लोक्यमें मेरे बलको कौन नहीं जानता? जिस रावणने अपने ज्येष्ठ भ्राता

को पराजित कर उसका यह पुष्पक विमान छीन लिया, उसे कौन न
जानता ? राजा मरुतने कहा—तुम धन्य हो। वास्तवमें तुम्हारे जैसा श्ला
पुरुष तो त्रिलोकीमें कोई नहीं है जिसने अपने बड़े भाईको युद्धमें परा
कर दिया। भला इसपर भी तुम अपनी प्रशंसा करते हो ? रे दुष्ट ! ख
रह। अब तू मेरे समक्ष आकर जीता नहीं जा सकता। मैं अपने पैने वाण
तुझे आजही यमालय भेजता हूँ। तदनन्तर राजा मरुत धनुष वाण ले रा
से युद्ध करनेके लिए यज्ञशालासे बाहर निकले। किन्तु संवर्त मुनिने उ
आगे आकर उनका मार्ग रोक दिया और कहा—यह माहेश्वर यज्ञ है, इ
क्रोध करना आपके कुलका घातक होगा, अतः इससे युद्ध न कीजि
यज्ञदीक्षित-पुरुष क्रोध नहीं करते। फिर यह राक्षस अजेयभी है। तब अ
गुरुकी आज्ञा मानकर राजा मरुतने रावणसे युद्ध करनेका विचार त
दिया। रावणके मंत्रीने कहा—मरुत हार गया। फिर तो ऐसी घोषणा
यज्ञमें आए हुए ऋषियोंको खा-चबाकर, उनका रक्त भरपेट पीकर रा
पुनः पृथ्वी-मण्डलपर विचरने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका अठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ सर्ग

इक्ष्वाकुवंशी महाराज अनरण्यका रावणको शाप

अब राजा मरुतको जीतकर राक्षसाधिप युद्ध-कांक्षी रावण नगरों
विचरने लगा। उसने महेन्द्र और वरुणके समान श्रेष्ठ राजाओंके स
जाकर कहा कि, या तो तुम मुझसे युद्ध करो या अपनी हार मानो। त
बुद्धिमान् राजाओंने परस्पर गोष्ठीकर अपनी हार मान ली। क्योंकि रा
को वरदानका बल था। मरुत, महेन्द्र, वरुण, सुरथ, गाधि, गय और पुरू
आदि सब राजाओंने उससे अपनी पराजय स्वीकार ली। तब रावण अयो
ध्यापुरीमें पहुँचा। वहाँ महाराज अनरण्यसे भी उसने वैसाही कहा। कि
अयोध्याधिपति महाराज अनरण्यने कहा—मैं तुझसे युद्ध करूँगा। महारा
अनरण्यने पहलेहीसे रावणका वृतान्त सुनकर अपनी सेना सजा रक्खी थी।
फिर तो उनकी वह सेना राक्षसके बधार्थ शीघ्रही युद्धके लिए निकल पड़ी।
उसमें दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े तथा सहस्रों अश्ववारोही और पदा

सैनिक थे। दोनों ओरसे घोर युद्ध हुआ। महाराज अनरण्य और राक्षसेन्द्र रावणका अद्भुत युद्ध होने लगा। किन्तु कुछही क्षणोंमें रावणके बलवान मन्त्रियों एवं मायावी राक्षसोंने उनकी समस्त सेनाको काट-मारकर बचे-बचाये सैनिकोंको मार-पीटकर भगा दिया। पृथ्वी रक्त-रंजित हो गई। युद्ध क्षेत्रमें भयानक दृश्य उपस्थित हो गया। फिर महाराज अनरण्यने राक्षसराजके शिरमें आठ सौ बाण मार उसे विक्षिप्त करदेना चाहा। किन्तु उन सब बाणोंसे रावणको खरोच तक न लगी। इतनेमें क्रोधमें भरकर रावणने महाराजके मस्तकपर जो एक थप्पड़ लगाया तो उसे वे सहन न कर सके और जैसे वनमें बिजलीका मारा साखूका वृक्ष गिर पड़ता है, वैसेही वे धराशायी हुए। आहत होनेपर उन्होंने कहा—'हे राक्षस! यह जो तुमने इक्ष्वाकुकुलका अपमान किया है, इसके कारण, मैं कहता हूँ कि, यदि मैंने दान दिया हो, होम किया हो, तप किया हो और न्यायपूर्वक प्रजापालन किया हो तो इक्ष्वाकुकुलमें दाशरथी राम उत्पन्न होकर तेरा बध करें।' महाराज अनरण्य के मुखसे यह वचन निकलतेही मेघोंकी गर्जनाके तुल्य आकाशसे नगाड़ोंके बजनेका शब्द सुनाई पड़ा और पुष्प-वृष्टि हुई। तदनन्तर महाराज अनरण्य स्वर्ग सिधारे और रावणभी चला गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १९ ॥

बीसवाँ सर्ग

राक्षसाधिप रावण पृथ्वीपर मनुष्योंको कष्ट देता हुआ विचर रहा था कि उसने मेघपर आरूढ़ मुनिपुङ्गव नारदजीको देखा। उसने उन्हें प्रणाम किया और कुशल पूछ आगमनका कारण पूछा। देवर्षिने कहा—विश्रवा-नन्दन राक्षसेन्द्र! खड़े रहो। मैं तुम्हारे मन्त्रियों और तुमपर बड़ा प्रसन्न हूँ। तुमने तो गन्धर्व और नागादिकोंको वैसेही पराजित करदिया है कि जैसे विष्णुने दैत्योंको। अतः मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ। अब मैं तुम्हारे हितकी कुछ बात कहता, हूँ, ध्यानसे सुनो! हे तात! तुमतो देवताओंसे भी अवध्यहो। फिर इन बेचारे मनुष्योंको क्यों मारते हो। ये तो स्वयंही मृत्युके वशात् हैं। ये तो बेचारे स्वयं ही सदा विपत्तिग्रस्त रहते हैं और विशेषतः अपना कल्याण करनेमें अत्यन्तही मूढ़ हैं। जरा आदि सैकड़ों व्याधियोंसे आवृत्त रहते हैं। अतः

ऐसोंके मारनेसे क्या लाभ है ? ये तो अपने सुख-दुःखके समयको भी नहीं जानते । देखो न, ये मनुष्य कहीं हँसते हैं, कहीं रोते हैं । परिवारके स्नेहमें फँसकर नष्ट हो जाते हैं, जिससे इन्हें अपने क्लेश तकका ज्ञान नहीं रहता । फिर इस मर्त्यलोकको दुःखी करके तुम क्या करोगे ? तुम तो निःसन्देह ही इस लोकको विजयकर चुके हो । फिर ये सब मरकर यमपुरी ही में तो जायँगे । अतएव हे पौलस्त्यनन्दन ! तुम यमराजकी पुरी पर चढ़ाई करो । इस पुरीको जीतो । क्योंकि उसे जीतनेपर ही तुम अपनेसे सबको जीता हुआ समझोगे । तब इस प्रकार नारदजीके समझाये जानेपर स्वतेजसे दीप्त लंकापति रावणने उन देवर्षिको प्रणाम किया और मुस्कराता हुआ कहने लगा—देवर्षे ! आपका कहना यथार्थ है, मैं ऐसा ही करूँगा । इस समय मैं विजयार्थ रसातलकी यात्रा कर रहा हूँ । फिर त्रयलोक्य विजयकर नागों और देवताओंको अपना वशवर्ती बनाऊँगा और पुनः अमृत-प्राप्तिके लिए समुद्र-मंथन भी करूँगा । इसपर नारदजीने कहा—अच्छा, यदि तुम्हें रसातलही जाना है तो अन्य मार्गसे क्यों जाते हो ? यह मार्ग सीधे प्रेतराजके नगर यमपुरीको चला गया है, इससे तुम सीधे उनके समक्ष जा निकलोगे । यह सुनकर रावणने शरद्कालके मेघके समान हँसकर कहा—बहुत अच्छा, हम ऐसा ही करेंगे । अब मैं यमके बधार्थ ही इस दक्षिण दिशाके मार्गसे जाता हूँ; जहाँ सूर्य-पत्र यमराजका निवास है । मेरी यही तो पूर्व-प्रतिज्ञा थी कि, मैं चारो लोकपालोंको विजय करूँ । उसमें सब प्राणियोंको सतानेवाले उस यमराजको म मारूँगा । ऐसा कह और नारदजीको प्रणामकर रावण दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा । नारदजी क्षणभर मौन हो विचार करते रहे । उन्होंने सोचा, भला यह कालको कैसे जीतेगा ? यमराज तो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी हैं । उन्हींके प्रतापसे तो समस्त लोग सचेत हो सांसारिक कार्य किया करते हैं । वही तो त्रयलोक्यके शासनकर्त्ता और त्रयलोक्य-विजेता हैं । उन यमराजको यह कैसे जीतेगा ? इसका तो मुझे बड़ा कुतूहल है । अतः स्वयं ही चलकर यमराज और रावणका युद्ध देखूँगा ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ सर्ग

इसप्रकार निश्चयकर यमराजको सब वृत्तान्त सुनानेके लिए नारदजी शीघ्रतासे यमपुरीकी ओर अग्रसर हुये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि, यमराज अग्निको साक्षीकर सब जीवोंका यथोचित न्याय कर रहे हैं। देवर्षिको आते देख यमराजने उठकर उनको यथाविधि अर्घ्य प्रदान कर बैठनेको आसन दे, कुशल प्रश्न किया और आगमनका कारण पूछा। नारदजीने कहा—मैं जिस लिए आया हूँ, वह सुनो और फिर जो करना हो, वह करो। पितृराज! दुर्जेय दशग्रीव! तुम्हें बल-प्रयोग द्वारा वशमें करने आरहा है। हे प्रभो! इसलिए शीघ्रतासे मैं तुम्हारे पास आया हूँ। अब देखूँ कि, कालदण्ड-प्रहारीकी विजय होती है या पराजय। इसी समय सूर्यवत् प्रदीप्त दशग्रीवका पुष्पक विमान आता हुआ दीख पड़ा। वहाँ पहुँच कर रावणने देखा कि सब प्राणी बाँधकर मारे-पीटे जारहे हैं। सब प्राणी पुण्यों और पापोंका फल पा रहे हैं। जलके स्थानमें रक्तसे पूर्ण अति गंभीर वैतरणी नदीके सब पारकर रहे और बालूपर पीटे जारहे हैं। कितनेही खड्गों और छुरेंसे काटे जारहे हैं। बहुत-से प्यासे और भूखे रहकर जल माँग रहे हैं। इसप्रकार वहाँ रावणने सहस्रों प्रकार जीवोंको दुःखमें देखा। पुण्यात्मा अपने पुण्यसे सुन्दर-सुन्दर भवनोंमें विद्यमान थे तथा गानवाद्यसे आनन्द पा रह थे। तब इसप्रकार के दृश्य देखते हुए रावणने उन पापियोंको जो अपने पापकर्म फलसे कष्ट भोगाये जारहे थे उन्हें अपने बलसे मुक्त कर दिया। फिरतो रावण द्वारा जीवोंको मुक्त हुआ देख यम-किङ्करोंने उसपर आक्रमणकर दिया। उन शूरोंके दौड़नेसे बड़ा हलहला शब्द हुआ। शत-सहस्र शूर-वीरोंने प्रासों, परिघों, शूलों, मूशलों, शक्तियों और तोमरोंको पुष्पक विमानपर वर्षाया। विमानकी अटारियों और बैठकोंको भग्न करने लगे। पर ब्रह्म प्रतापसे वह कहीं सेभी क्षतिग्रस्त न हुआ। धर्मराजके उन लाखों सैनिकोंकी गणना नहीं हो सकती जो अभिलषित युद्ध करने लगे। उधर रावणभी स्वयं युद्ध कर रहा था। कुछ क्षण पश्चात् सभी यमकिङ्कर एक स्वरसे रावणपर टूट पड़े और उसपर शूलोंकी वर्षा करने लगे। उस शूल वर्षासे रावणका शरीर विध उठा

रसातलमें जहाँ दैत्य और नाग रहते हैं और जिसके रक्षक वरुणदेव
वहाँ चला गया। तब वासुकि नागकी भोगपुरीमें जाकर वह नागोंको
कर उस मणिपुरीमें गया, जहाँ निवातकवच दैत्य बास करते थे। वहाँ
रावणने सबको युद्धकी उत्तेजना दी। वे दैत्यभी बड़े पराक्रमी, बलवान्
दुर्मद थे। अतः उन्होंने बड़े हर्षसे अपने विविध अस्त्रों द्वारा रावणसे
संग्राम किया और उभयमें किसीने अपनी पराजय न स्वीकार की। तब
पितामह ब्रह्माजी वहाँ भी शीघ्रही जा पहुँचे और उन्होंने उन्हें सम
मित्रता करा दी। निवातकवचोंने रावणका बड़ा सत्कार किया। वहाँ
रावणने निवातोंसे सौ प्रकारकी मात्राएँ सीखीं। फिर वरुणदेवके न
खोज करता हुआ रावण कालकेय दैत्योंके 'अश्म' नामक नगरमें प
कालकेय दैत्य बड़े बलवान् थे। किन्तु रावणने उन्हें भी परास्त कर
इसी युद्धमें रावणने अपने बहनोई (शूपनखाके पति) विद्युज्जिह्वको त
के घाट उतार दिया। उस युद्धमें रावणने क्षणमात्रमें चार सौ दै
मार डाला। तदनन्तर रावणको श्वेत मेघकी सदृश वरुणका दिव्य
दिखाई पड़ा। रावणने वहीं सुरभी गौभी देखी जिसके थनसे सर्वदा द
धार बहा करती थी और जिससे क्षीरोद सागरकी उत्पत्ति हुई
वही सुरभि महावृषभेन्द्र (महादेवजी) के नादिया की माता है जिसके
शीत-रश्मि-निशाकरकी उत्पत्ति हुई। उसीसे अमृत उत्पन्न हुआ। उस
अद्भुत सुरभिकी प्रदक्षिणाकर रावणने वरुणका वह श्रेष्ठ भवन देखा
सैन्य-सुरक्षित और बड़ाही भयंकर था। वहाँ पहुँचकर रावणने
सेनापतियोंको ताड़ित किया तथा युद्धकर उन्हें मार डाला। इतनेहीमें
वरुणके पुत्र पौत्र क्रुद्ध हो रावणसे युद्ध करनेको आ पहुँचे। फिर दो
सुर संग्रामकी भाँति दोनों ओरसे आकाशमें घोर युद्ध आरम्भ हुआ।
की सेनाने अपने अग्निवत् वाणोंको चलाकर रावणको संग्रामसे विमुख
दिया। तब उसके महोदर आदि मंत्री वरुणके पुत्रोंसे युद्ध करने लगे
उन्हें परास्त-सा कर दिया। अश्व-रथ-रहित वरुण-पुत्र निश्चेष्ट आकाश
खड़े रह गए और बिना रथादिके भी स्वप्रभावेन नीचे नहीं गिरे।
अब वे फिर युद्ध करने लगे। यह देख, तब-तक सचेष्ट हो रावण भी

प्रहार करने लगा। फिर जलधाराके समान वाण बरसाकर वरुणके पुत्रोंको मारने लगा। वरुणके पुत्र युद्धमें मूर्च्छित हो गए। सारथि उन्हें उठाकर तत्क्षण घर ले आया। रावण गर्जने लगा। साथही उसने वरुणके सेवकोंसे कहा कि तुम मेरा सन्देशा वरुणसे जाकर कहो। इसपर वरुणके 'प्रहास' नामक मंत्रीने कहा—इस समय सलिलेश्वर वरुणजी गन्धर्व-गान श्रवण करनेके लिए ब्रह्मलोक गए हुए हैं। उनके वीर कुमारोंको तो तुम परास्तही कर चुके हो। अब वरुण महाराजकी अनुपस्थितिमें तुम क्या व्यर्थ परिश्रम करते हो? यह सुन रावणने वहाँ भी अपने विजयकी घोषणा करा दी और पुनः वहाँसे प्रस्थानकर पुष्पक विमानको उड़ाता हुआ लंकाकी यात्रा कर दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका तेईसवाँ सर्ग समाप्त॥ २३॥

चौबीसवाँ सर्ग

रावणका बहुत सी कन्याओं और स्त्रियोंका हरण करना तथा उनसे शापित होना

वहाँसे लौटते समय दुरात्मा रावण मार्गके राजर्षियों, देवताओं और दानवोंकी कन्याएँ हरण करता हुआ लंकामें आया। जिसकी भी दर्शनीय कन्या या सुन्दरी स्त्रीको मार्गमें देखता, उसके बन्धुजनोंको मारकर उसे हरकर अपने विमानमें बैठा लेता। इसप्रकार उसने कितनीही राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, पन्नगों और यक्षोंकी कन्याएँ अपने विमानमें बैठा लीं। वे बेचारी दुःखी हो शोकार्त्त भयोत्पन्न अग्नि-ज्वाला सा अश्रुधार बहाती थीं। एक नहीं सैकड़ोंही कन्याएँ शोक सन्तप्त ऐसाही अश्रुप्रवाहित्त कर रही थीं। उनके शोक और विलापका वर्णन नहीं हो सकता। उन सब कन्याओं और स्त्रियोंने भी रावणको यही शाप दिया कि 'यह दुर्मति पर-स्त्रीके कारणही मारा जावे।' उन पतिव्रताओंके मुखसे यह वाक्य निकला ही था कि, आकाशमें दुन्दुभी बज उठी और पुष्पोंकी वर्षा भी हुई। फिर तो उन स्त्रियोंके शापसे रावणका पराक्रम नष्ट हो गया और उसकी कान्ति मन्द पड़ गई। उन पतिव्रताओंके शापको सुन रावण उदास हो गया। इस प्रकार वह उनके विलाप और शाप सुनता हुआ लंकामें आया। निशाचरोंने बड़ा स्वागत किया। परन्तु वह ज्योंही वहाँ पहुँचा कि, त्योंही उसकी बहिन उसके समक्ष

आकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। रावणने बहिनको उठाया और परिसान्त्वना देकर पूछा कि—हे भद्रे ! क्या बात है ? शीघ्र बोलो कि, तुम क्या कहना चाहती हो ? तब उस रक्ताक्षी निशाचरीने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसकी ओर देखकर कहा—हे राजन् ! निश्चयही तू बलवान् है। इसलिए बलपूर्वक तूने मुझे विधवा कर डाला। तुमने चौदह सहस्र कालकेय दैत्योंको मारने समय मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय महाबलवान् पतिको भी शत्रु समझकर मार डाला। अतः तू मेरा नाममात्रकाही भाई है। तूने उसे क्या मा मानों मुझेही मार डाला। हे राजन् ! अब तेरे कारण मुझे वैधव्य भोगना पड़ा। तुझे अपने बहनोईकी तो रक्षा करनी ही चाहिए थी। किन्तु तूने तो उसे स्वयंही मार डाला। तब रावणने उसे उठाकर धैर्य बँधाया और कहा—बहिन युद्धमें मुझे अपने और परायेका कुछ ज्ञान न था, जिससे तेरा स्वामी मेरे हाथसे मारा गया। जो होना था वह हो गया। अबसे जो तेरे हितकी बात होगी, मैं वही करूँगा। अब तू अपने ऐश्वर्यवान् भ्राता खरके पास जाकर रह। तेरा वह महाबली भाई खर अबसे चौदह हजार राक्षसोंका स्वामी होगा। वह तेरी मौसीका पुत्र है। वह तेरी सब आज्ञाओंका नित्य पालन करेगा। महाबली दूषण उसका सेनापति होगा। ऐसा कहकर दशग्रीवने खर के साथ रहनेके सैनिक राक्षसोंको आज्ञा सुना दी। खर चौदह हजार भयानक राक्षसोंको साथले तत्क्षणही दण्डकवनको प्रस्थित हुआ और वहाँ पहुँच कर निष्कण्टक राज्य करने लगा। शूर्पणखा भी वहीं चली गयी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ सर्ग

इस प्रकार जब दशग्रीव उस खरको घोर सेना और अपनी बहिनको सान्त्वना देकर हर्षित और स्वस्थ हुआ, तब अपने अनुचरोंको साथ लेकर वह निकुम्भिला नामक लंकाके उस उपवनमें चला कि, जहाँ उसका भयंकर रूपधारी पुत्र मेघनाद काले मृगका चर्म ओढ़े हुए और दण्ड-कमण्डलु लिए यज्ञमण्डपमें शोभित हो रहा था। वहाँ रावणने अपना बीसों भुजाएँ फैलाकर पुत्रको हृदयसे लगाया और पूछा कि 'हे पुत्र ! तू यह क्या कर रहा है ? तब पुरोहित शुक्राचार्यने रावणसे कहा—'राजन् ! तुम्हारे पुत्रने

सविस्तृत सात बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, जिसमें अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव-यज्ञ तो इसने पूर्ण कर लिये हैं। तत्पश्चात् माहेश्वर-यज्ञ आरंभ होनेपर तुम्हारे पुत्रको साक्षात् महादेवजीसे कई वर प्राप्त हुये हैं। एक इच्छानुसार चलनेवाला दिव्य रथ भी इसने पाया है और तापसी नामकी माया भी प्राप्त हुई है जिसके द्वारा अन्धकार व्याप्त हो जाता है। यह माया जिसे प्राप्त होता है उसकी गतिको देवता या असुर कोई भी नहीं जान पाते। इनके अतिरिक्त इसे दो अक्षय तरकस, दुर्जेय धनुष तथा संग्राममें शत्रुघाती एक बड़ा ही बलाढ्य शस्त्र भी प्राप्त हुआ है। आज ही यज्ञकी समाप्तिमें यह सब इसे प्राप्त हुआ है तथा हम दोनों आज ही आपसे मिलनेके इच्छुक थे। यह सुनकर रावणने कहा—यह कार्य अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि इसमें तो विविध उपचारोंसे तुमने मेरे शत्रु इन्द्रादि देवोंकी पूजा भी का होगी। अच्छा, जो किया वह ठीक ही है। इसमें संदेह नहीं कि, तुम्हें पुण्यकी प्राप्ति होगी। आओ! अब घर चलें। यह कह रावण अपने पुत्र और विभीषणको साथ ले अपने भवनमें आया। वहाँ उसने उन सब रोती हुई स्त्रियोंको विमानसे उतार दिया। तब उन सब स्त्रियोंके प्रति रावणकी आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषणने कहा—'राजन्! आपके ये आचरण उसके सुयश, धन और कुलका नाश करनेवाले हैं। हे राजन! जिसप्रकार आपने इन स्त्रियोंके बन्धुजनोंको मार-पीटकर इनको हरा है; उसीप्रकार मधु दैत्यने आपके मस्तकपर पाँव रखकर आपकी बहिन कुम्भीनसी सीको हरले गया है।' रावणने पूछा—तुम सब क्या करते थे? विभीषणने उत्तर दिया—आपका पुत्र यज्ञमें लगा था। मैं जलमें निवास करता था और भैया कुम्भकर्ण नींदका आनन्द ले रहे थे। इसी समय महाबली मधुने आक्रमण किया और यहाँ के प्रधान-प्रधान राक्षस मन्त्रियोंको मारकर वह कुम्भीनसीको हर ले गया। यद्यपि वह अन्तःपुरमें भलीभाँति सुरक्षित थी। परन्तु आप अपनी दूषित बुद्धिके कारण, पाप-प्रवृत्त हुए हैं। इस कर्मका फल आपको इसी लोकमें प्राप्त हो गया। इसे आप भली प्रकार समझ लें। तब विभीषणका यह वचन सुनकर राक्षसेन्द्र रावण क्रोधसे जल उठा। उसके नेत्र लाल हो गये। उसने

कहा—मेरा रथ शीघ्र जोतकर लाया जाय। शूरवीर योद्धा युद्धके लिए सन्नद्ध हों। भाई कुम्भकर्ण और मुख्य मुख्य निशाचर नाना प्रकारके आयुधों से सज्जित हो वाहनोंपर आरूढ़ हों। मैं मधुका आजही बधकर देवलोककी यात्रा करूँगा। राक्षसोंको चार हजार अक्षौहिणी सेना युद्धके लिए सन्नद्ध हो गई। मेघनाद उस सेना का अग्रणी हुआ। रावण मध्यमें और कुम्भकर्ण उसके पृष्ठ भागमें स्थित हो प्रस्थित हुआ। धर्मात्मा विभीषण अपने धर्माचार में रत लङ्का में रह गये। शेष सभी निसाचर मधुपुरीकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर दशग्रीवने अपनी बहिन कुम्भीनसीको देखा, किन्तु मधुका दर्शन नहीं हुआ। कुम्भीनसी भाईको, हाथ जोड़ उसके चरणोंपर गिर पड़ी। क्योंकि वह रावणसे भयभीत रहा करती थी। रावणने उसे भयभीत देखकर उठा लिया और कहा—भय न कर। मैं राक्षस-श्रेष्ठ रावण हूँ। अब बोल कि, मैं तेरे लिये क्या करूँ? वह बोली—राजन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो हे मानद! अब आप मेरे पतिका बध न कीजिये। क्योंकि कुलीन स्त्रियोंके विपत्तियोंसे बढ़कर यह बड़ी विपत्ति है। आप अपने वचनको सत्य कीजिये। मैं प्राथना कर रही हूँ। आप मेरी ओर देखें। आपने स्वयं अभी अपने मुखसे कहा है कि "भय न करो।" तब रावण अपनी मौसेरा बहिनसे हर्षित हो बोला—शीघ्र बतला तेरा पति कहाँ है? मैं उसे अपने साथ लेकर जयके लिए स्वर्ग-लोकको प्रस्थान करूँगा। तुझपर दयाकर और तेरे स्नेह वश अब मैं मधुका बध नहीं करूँगा। यह सुनकर कुम्भीनसी महलमें गयी और अपने सोये हुए पतिको उठाकर प्रसन्नता पूर्वक बोली—आर्यपुत्र! मेरे महाबली भाई दशग्रीव पधारे हैं। ये स्वर्गलोकपर विजय पानेकी इच्छासे आपको सहायक बनाना चाहते हैं। आप अपने बन्धु-बान्धवों सहित इनकी साहाय्य को जाइये। तब पत्नीकी बात सुनकर मधुने "बहुत अच्छा" कहते हुए उसे स्वीकार किया और राक्षसेन्द्रके पास जाकर धर्मानुसार उसका पूजन किया। मधु द्वारा सम्मानित दशग्रीव रातभर उसके यहाँ रहा। प्रातः वहाँसे प्रस्थान किया। कैलासपर्वतके समीप पहुँचते हुए संध्या हो गई। इससे वहीं एक शिखरपर उसने अपनी सेनाका शिविर स्थापित किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका पचीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२५॥

छब्बीसवाँ सर्ग

रावणको नलकूवरका शाप

इस प्रकार संध्या समय कैलाश पर्वतके शिखरपर अपनी सेनाको स्थित कर रावण स्वयंही विश्राम करने लगा। अन्य सब सैनिक भी निद्रा-विभोरहो रहे। इतनेमें चन्द्रोदय हुआ। महा पराक्रमी रावण उठकर पर्वत-शिखरपर बैठकर चन्द्रमाकी प्रभा और वृक्षोंके कारण वर्द्धित कैलाश-पर्वतका शोभा देखने लगा, जहाँसे कुबेरके भवनमें गान करती हुई अप्सराओंकी मधुर ध्वनि भी श्रवणगोचर होरही थी। संगीतकी मधुर तान, विविध पुष्पोंकी शोभा, शीतल वायुका स्पर्श, पर्वतकी रमणीयता, रजनीकी मधुवसा और चन्द्रोदय-उद्दीपनकी इन समस्त सामग्रियोंके कारण रावण कामासक्त होगया। इसी समय सब अप्सराओंमें श्रेष्ठ चन्द्रमुखी रम्भा इसी मार्गसे आ निकली। उसके सुन्दर शरीरपर दिव्य वस्त्र और आभूषण शोभा रहे थे। अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगा था और केश पाशमें पारिजातके पुष्प गुँथे हुए थे। वह दिव्य पुष्पोंसे दिव्य शृङ्गार करके किसी उत्सवमें सम्मिलित होने जारही थी। वह अपनी अलौकिक कांतिसे दूसरी लक्ष्मीकेही सदृश ज्ञात होती थी। उस समय रावण तो कामके वशीभूत था ही। अतः उसने उठकर तत्क्षणही रम्भाका हाथ पकड़ लिया। रम्भा बहुतही लज्जित होगई। तथापि रावणने मुसकाकर कहा—वरारोहे! तुम कहाँ जा रही हो। तुम्हारी क्या इच्छा है। यह समय किसके अभ्युदयका है, जो तुम्हारा उपभोग करेगा? यह सुन्दर शिला है, इसपर बैठकर विश्राम करो। हे भीरु! इस जगतमें मुझसे बढ़कर कोई नहीं है। इन्द्र, विष्णु, अश्विनीकुमार, कोईभी मेरी समता नहीं कर सकते। अतः मुझे त्यागकर तेरा अन्यके पास जाना उचित नहीं। देख, मैं त्रिलोकीका विधाता दशग्रीव हूँ और तुझसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और सुन्दरी! मेरा कहना मान ले। रावणके ऐसे वचन सुन, रम्भा काँप उठी। उसने हाथ जोड़कर कहा—राक्षसराज! आप मुझपर प्रसन्न होइये—मुझ पर कृपा कीजिये। आपको मुझसे ऐसी बात न कहनी चाहिये। क्योंकि आप मेरे महान् हैं, गुरु और पिताके तुल्य हैं। यदि मुझे और कोई ऐसा कहे तो

आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। मैं धर्मतः आपकी पुत्र-वधू हूँ, यह आपसे सत्य कह रही हूँ। मैं इस समय आपके भाई कुबेरके पुत्र नलकूबरकी सेवामें जा रही हूँ। आप इस कार्यमें विघ्न न करें। मुझे त्यागकर सज्जनोंके मार्गपर चलिए। रावणने कहा—रम्भे! तुम अपनेको मेरी पुत्र-वधू क्यों बता रही हो? यह विचार तो उस स्त्रीके लिए आता है जो किसी एक पुरुषकी पत्नी हो। तुम्हारे देवलोककी तो स्थिति ही कुछ और है। अप्सराओंका कोई पति नहीं होता। ऐसा कह उस निशाचरने बल पूर्वक रम्भाको उस शिलापर बैठा लिया और कामासक्त होकर उसका उपभोग किया। पश्चात् उस अप्सराको उसने छोड़ दिया। वह भय-कम्पितहो नलकूबरके पास चली गई और हाथ जोड़कर उसके चरणोंपर गिर पड़ी। नलकूबरने कहा—'कल्याणी! यह क्या बात है? तुम मेरे पैरोंपर क्यों गिर रही हो? वह थर-थर काँप रही थी। पश्चात् उसने हाथ जोड़कर, जो कुछ हुआ था वह सब बात कही। तब उसपर बलात्कारकी बात सुनकर वैश्रवण कुमार नलकूबरने ध्यान लगाकर रावणकी की हुई सब बर्बरताको ज्ञात कर लिया। उसके नेत्र क्रोधसे लाल होगए। उन्होंने तत्क्षण सविधि आचमनकर हाथमें जल ले राक्षसेन्द्र रावणको यह भयंकर शाप दे दिया कि—'हे भद्रे! तेरी इच्छा न रहने परभी काम-पीड़ित होकर किसी स्त्रीपर अत्याचार करेगा तो उसके सिरके सात टुकड़े हो जायँगे। फिरतो उसके मुँहसे प्रदीप्त अग्निकी सदृश इस शापके व्यक्त होते ही देवताओंने आकाशमें नगाड़े बजाये और पुष्पवृष्टिकी। ब्रह्मादिक सब देवता प्रसन्न होगये। दशग्रीवकी मृत्युका यह द्वार बन गया। दशग्रीवने जब से इस रोमाञ्चकारी शापको सुना तबसे उसने अकामा स्त्रियोंपर बलात्कार करना त्याग दिया। नलकूबरके इस शापका वृतान्त जब उन सब स्त्रियोंने सुना, जिन्हें रावण हरकर लाया था, तब वे मनमें बड़ी प्रसन्न हुई।

-इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा सरल् उत्तरकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ सर्ग

देवताओं और राक्षसोंका युद्ध तथा सुमाली-वध

अब कैलास पर्वतको लाँघकर महातेजस्वी दशानन अपनी समस्त सेना सहित इन्द्रलोकमें जा पहुँचा। रावणके आक्रमणसे इन्द्रका सिंहासन

डगमगा गया। फिर तो आदित्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, साध्यगण तथा उनचासों मरुद्गण देवताओं सहित उससे युद्ध करने चले। इधर स्वयं इन्द्र भयभीत हो विष्णुजीके पास पहुँचे। ब्रह्माजीके वरदानकी सब बात कह उचित मार्गसे प्रस्थानकी प्रार्थना की। उन्हें उससे युद्ध करनेकी भी प्रेरणा दी। विष्णुजीने कहा—अवश्यही ब्रह्माजीसे वरदान पाकर रावण इस समय बड़ाहो दुर्जय है। तुम उससे युद्धकर कदापि विजयी नहीं हो सकते और न मैं ही इस समय उससे युद्ध करूँगा। क्योंकि शत्रुका वध किए बिना विष्णु कभी समरभूमिसे नहीं आते। किन्तु रावण वरदानके बलसे सुरक्षित है। इससे अभी मेरा अभीष्ट पूर्ण नहीं होगा। तथापि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं ही इस राक्षसकी मृत्युका कारण होऊँगा। मैं ही इसे सपरिवार मारकर देवताओंको प्रसन्न करूँगा। परन्तु अभी समयकी अपेक्षा है। तुम जाकर देवताओं सहित उससे निर्भय युद्ध करो। फिर तो ग्यारहों रुद्रादि सबने कवच धारणकर राक्षसोंपर आक्रमण किया। प्रातःकालसे ही भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। राक्षसोंकी अपार अक्षय वाहिनीको देख देवता व्यग्र हो गये। तदनन्तर विविध आयुधधारी देवताओं, राक्षसों और दानवोंका घोर तुमुल युद्ध आरंभ हो गया। रावणके शूरवीर और मन्त्रिगण युद्ध करने लगे। उन्होंने भीषण प्रहारकर देवताओंकी सेनाको मार गिराया। वे दशों दिशाओंमें भाग चले। तब अपनी सेनाको भागते देख अष्टम वसु, सवित्र, त्वष्टा और पूषा तथा आदित्यदेवने बड़े साहसके साथ राक्षसोंका सामना किया। युद्ध होने लगा। अब देवताओंकी मारसे राक्षसोंकी सेना त्रस्त होने लगी। यह देख राक्षस सुमाली बड़े क्रोधसे उनसे युद्ध करने आया। देव-सेना नष्ट होने लगी। उसने इन देवताओंको भी मार भगाया। परन्तु सवित्र वसु फिर अपनी प्रचंड रथवाहिनी ले उसपर टूट पड़े। उन्होंने सुमालीके वेगको रोक दिया। सुमाली और वसुका रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। फिर तो महाबली वसुने अपने महा-महा बाण मारकर उसके सर्परथको खंड-खंड कर गिरा दिया, फिर अपनी प्रचंड गदाके प्रहारसे उन्होंने उसे मार ही डाला तथा और भी जितने आये उन सबका उन्होंने उस गदासे मारकर संहारकर दिया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम उत्तरकाण्ड का सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ सर्ग

मेघनाद और जयन्तका युद्ध

सावित्र द्वारा सुमालीको नष्ट एवं भस्म हुआ देखकर समस्त राक्ष सेनाका देवताओं द्वारा पीड़ित होकर पलायन करते देख महाबली रावण पुत्र मेघनाद अत्यंतही कुपित हुआ और जैसे प्रज्वलित अग्नि वनकी ओ झपटती है, वैसेही वह अपने इच्छानुसार चलनेवाले विशाल रथपर बै देवताओंकी ओर झपटा। फिर तो उस विविध आयुधोंसे सुसज्जित मघना कों देखते ही समस्त देव-सेना भयभीत हो गई। यह देख इन्द्रने उ सान्त्वना दिया और अपने पुत्र जयन्तको उससे युद्ध करनेको भेजा। इन्द्र नन्दन जयन्तदेव भी एक अति विलक्षण रथपर आरूढ़ हो संग्राम क्षेत्र आया। सब देवता उसके साथ हो रावण-पुत्र मेघनादपर प्रहार करने लगे जयन्त और मेघनादका समान युद्ध होने लगा। इतनेमें मघनादने जयन्त सारथी मातलि-पुत्र गोमुखको बहुतसे बाण मारकर घायलकर दिया। उत्त में जयन्तने भी मेघनादपर बहुतसे बाण छोड़े। इसप्रकार दोनों ओरसे प्रहा हो ही रहे थे कि, मेघनादने अपनी मायासे संग्राम-भूमिमें अन्धकार छा दिया। त्रिलोकवासी प्रजा व्याकुल हो गई। मेघनादकी मारसे देव-सैन्य बहुत पीड़ि हुआ। उस समय किसीको अपने और परायेका कोई ज्ञान नहीं रहा। युद्ध भूमिमें बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। सब सैनिक व्याकुल हो इधर-उध विचरने लगे। यह दशा देख पराक्रमी वीर पुलोमा नामक दैत्य शची-पुत्र जयन्तको पकड़कर भागा। पुलोमा शचीका पिता था जो जयन्तका नाना लगता था। वह अपमे नातीको लेकर समुद्रमें प्रवेशकर गया। तब जयन्त को वहाँ न देख देवता युद्ध-क्षेत्रसे व्यथित हो भाग चले। मेघनाद उन्हें खदेड़ने लगा। तब पुत्रको वहाँ न देख इन्द्र मातलिसे रथ मँगा उसपर बैठ इन्द्रपुरीसे शीघ्र ही युद्ध करने चले। रुद्र, बसु, आदित्य, अश्विनीकुमार उनके साथ हुए। इसी समय रावणभी विश्वकर्माके बनाए दिव्य रथपर बैठ रणभूमिमें इन्द्रके समक्ष जा पहुँचा। अब उसने मेघनादको युद्धसे विरत कर दिया। वह अलग जा बैठा। फिर तो देवताओं और राक्षसोंका विकट युद्ध आरंभ हुआ। कुम्भकर्ण भी बहुतसे अस्त्र लिए था; परन्तु उसे द

ज्ञात ही न था कि विपक्षी कौन है। जो भी उसके समक्ष पड़ता वह उसी को लातों-घूसोंसे मारता। इसी समय मरुद्गणोंकी भयानक मारसे राक्षसी सेना पलायन करने लगी और कितने ही राक्षस तो मारे गए और कितने ही घायल हो रणभूमिमें तड़फड़ाने लगे। हत-आहत सैनिकोंके रक्तकी नदी प्रवाहित हो गई। गीध और कौओंके समूह एकत्र हो गए। तब अपनी विशाल राक्षसी सेनाका नाश देख अत्यन्त प्रतापी रावण अत्यन्त ही क्रुद्ध हुआ और तीव्र वेगसे सागरके समान उमड़ती हुई उस देव-सेनामें प्रवेशकर इन्द्रके समक्ष जा पहुँचा। वहाँ उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। बाणोंकी घोर वर्षासे चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ सर्ग

मेघनादका इन्द्रको बाँधकर लंका ले जाना

अब देवताओं और राक्षसोंका तुमुल युद्ध होने लगा। अंधकारकी उस घोर निविड़तामें इन्द्र, रावण और मेघनाद—ये ही तीन सावधान रह सके। देवताओंने राक्षसोंका घोर संहारकर दिया। यह देख रावण अत्यन्त ही कुपित हुआ। उसने अपने सारथि सूतसे कहा—तुम शीघ्रही मेरा रथ देवताओंकी सेनाके उस पार उदयाचल तक चलाओ। सूतने शत्रु देवताओंके मध्यसेही रथको आगे बढ़ाया। इन्द्रने देवताओंको उत्तेजन देकर कहा—क्या देखते हो, रावणको जीवितही पकड़ लो। क्योंकि वरदानके प्रभावसे यह मारा तो जा नहीं सकता, अतः शीघ्रता करो। देवताओंसे ऐसा कह इन्द्र दूसरी ओर घूमकर राक्षसोंको मारने लगे। फिर तो रावण अबाध गतिसे उत्तरकी ओरसे देव-सेनामें प्रवेश कर गया। इन्द्र दक्षिणकी ओर राक्षसोंपर प्रहारकर रहे थे। रावण सौ योजन तक प्रवेशकर गया। उसने अपने प्रचंड बाणोंसे देवताओंको त्रस्त करदिया, इतनेमें दानवों और राक्षसों ने बड़ा हाहाकार किया कि, हा! हम सब मारे गये, इससे यह निश्चय हो गया कि इन्द्रने रावणको पकड़ लिया। फिर तो परम क्रोधातुर हो मेघनाद उस दारुण देव-सेनापर टूट पड़ा। उसने कई उत्तम बाणोंसे इन्द्रके सारथिको मारकर घायलकार दिया। तब इन्द्र रथ और सारथिको वहीं त्याग ऐरावतपर

जा बैठे और मेघनादको ढूँढ़ने लगे। पर वह तो अपनी माया द्वारा अन्तरिक्षमें अदृश्य हो रहा था। इन्द्र उसकी मायामें फँस गये। उसने उन्हें बाँध लिया। यह देख देवता बड़े चिन्तित हुये। यद्यपि इन्द्र स्वयं अनेक प्रकारकी माया जानते थे, तथापि इन्द्रजीत उन्हें बलपूर्वक पकड़ ले गया। इससे देवता परम कुपित हो रावणको ऐसा मारने लगे कि, वह रणसे विमुख हो गया। अब उसकी युद्ध-शक्ति सर्वथाही क्षीण हो गयी। बाणों की घोर वर्षासे उसका शरीर जर्जरित हो गया। उसी समय अदृश्य रह मेघनाद अन्तरिक्षसे बोले—पिताजी! आप चिन्ता न करें, हमने इन्द्रको बाँध लिया। अब युद्ध समाप्त हो गया, चलिए घर चलें। हमने देवताओं का मान-मर्दनकर दिया। त्रिलोकपति इन्द्रको हमने बाँध लिया। यह सुन देवताओंने युद्ध स्थगितकर दिया और इन्द्र-सहित वे वहाँसे प्रस्थान कर दिये। रावण भी अपने पुत्रकी बात सुन हर्षित हो वहाँसे चलकर मेघनाद को प्राप्त हो उसकी प्रशंसा करने लगा और कहा—हे पुत्र! तूने मेरे कुल और वंशका गौरव बढ़ाया। आज तूने देवताओं सहित इन्द्रको जीत लिया। अच्छा, अब तू इन्द्रको रथपर चढ़ा और अपनी सेना सहित लङ्काको चल। मैं भी तेरे पीछे-पीछे अपने मंत्रियों सहित हर्षित होता हुआ आता हूँ। इस प्रकार मेघनाद इन्द्रको पकड़कर लंकामें ले आया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम उत्तरकाण्डका उन्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२९॥

तीसवाँ सर्ग

इसप्रकार जब इन्द्र पकड़कर लंकामें लाए गए, तब सब देवता ब्रह्मा जीको आगेकर रावणके पास गए। वहाँ पहुँच ब्रह्माजीने आकाशमें स्थित हो, पुत्र और भ्राताओं सहित बैठे हुए रावणसे कहा—वत्स रावण! मैं तेरे पुत्रकी शूरवीरतासे सन्तुष्ट हूँ। क्योंकि वह तुमसे भी युद्धमें श्रेष्ठ हुआ है। इसप्रकार तुमने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली। अतः मैं तुम दोनोंही पर प्रसन्न हूँ। हे रावण! अब तेरा यह अतिबली पुत्र संसार में इन्द्रजित नामसे विख्यात होगा। परन्तु हे महाबलाढ्य! अब तुम इन्द्र को छोड़ दो। इसके स्थानमें बोलो कि, तुम देवताओंसे क्या चाहते हो। इस पर महाविजयी इन्द्रजित बोला—हे देव! यदि आप इन्द्रको छुड़ाना

ाहते हैं, तो इसके बदले मुझे अमरत्व प्रदान कीजिए। ब्रह्माजीने कहा—
वत्स ! इस पृथ्वीका कोई भी प्राणी अमर नहीं हो सकता। मेघनादने
हा–अच्छा, अब मुझे यह वर दीजिए कि, मैं जब कभी शत्रुपर विजय
ानेकी इच्छासे संग्राममें उतरूँ और मन्त्रयुक्त अग्निदेवका पूजन करूँ, उस
मय अग्निसे मुझे ऐसा दिव्य रथ प्राप्त हो जाया करे कि, जिसपर बैठकर
ुद्ध करते हुए मुझे कोई मार न सके। हाँ, यदि मैं जप और हवनको पूर्ण
िए विनाही युद्ध करूँ तब मेरी मृत्यु हो। इसपर ब्रह्माजीने कहा—एव-
स्तु। ऐसाही होगा। फिर तो यह वर पाकर मेघनादने इन्द्रको छोड़ दिया।
ब देवता उनके साथ हो स्वर्गको चले। उस समय इन्द्र दीन-से हो रहे थे।
नका देवोचित तेज लुप्त-सा हो गया था और वे चिन्तामग्न हो कुछ और
ी और सोच रहे थे। तब उनकी मनःस्थितिको पहचानकर ब्रह्माजीने कहा–
वराज ! यह तुम्हारे पूर्व पापोंका ही फल है। अब यह शोक क्या करते
ो ? तुम्हें स्मरण है; तुमने उस उत्तम गुण सम्पन्न मेरी उत्पत्ति की हुई
ुन्दरी अहल्यापर, जिसे मने धर्मात्मा महर्षि गौतमको अर्पण किया था–
ैसा अत्याचार किया था, उस समय तुम्हें मेरा कुछ भी भय न रहा और
ुमने उस निरीह मुनिपत्नी पर बलात्कार किया। मुनिने उसे अदृश्य हो
ानेका शाप दिया और तुम्हें भी शापित किया। तब अहल्याकी प्रार्थनापर
ौतमने कहा कि 'इक्ष्वाकुवंशमें एक तेजस्वी महारथीका अवतार होनेपर
िक जिनका श्रीराम नाम होगा और जब वे तपोवनमें आवेंगे तब उनके
र्शनसे तू पुनः पवित्र हो मुझे प्राप्त होगी और तुम्हें कहा था कि
ू शत्रुके हाथमें पड़ेगा।' वही तुम्हारा पाप उदय हुआ है। अब तुम
ष्णव यज्ञ कर उस पापसे निवृत होओ। तुम्हारा पुत्र जयन्त युद्धमें मारा
हीं गया है। उसे उसका नाना अपने साथ लेकर समुद्रमें प्रवेश कर गया
। इस समय वह उन्हींके पास विद्यमान है। ब्रह्माजीके वचन सुनकर देव-
ाजने स्वर्गमें जाकर वैष्णव-यज्ञ किया और पुनः स्वर्गका राज्य-पालन करने
गे। हे राम ! इन्द्रजित इसप्रकारका बली था। अन्योंकी तो बातही क्या
उसने देवराज इन्द्रको जीत लिया था। अगस्त्यमुनिका वचन सुन राम-
क्ष्मण बड़े आश्चर्यित हुए। तब वानरों सहित रामके पास बैठे विभीषणने

लगी। यह देख रावण मुखसे तो कुछ न बोला, किंतु अपने दाहिने हाथ
अँगुलीसे शुक और सारणको नदीको बाढ़का कारण ज्ञात करनेके लि
संकेत किया। वे दोनों भाई पश्चिमकी ओर आकाशमें उड़े। उड़ते-उ
जब आधा योजन निकल गये तब देखा कि, एक पुरुष स्त्रियोंके साथ ज
विहार कर रहा है जो साल वृक्षके समान परमोन्नत है, जिसके केश खुले
हैं और नेत्र मदात्ययसे लाल होरहे हैं और वह अति मदपान से मतवा
होरहा है तथा जैसे अपने सहस्रों चरणोंसे सुमेरु पर्वत पृथ्वीको दबाए
हो, ऐसेही अर्जुनकी सहस्रों भुजाओंसे नदीका जल अवरुद्ध है। वह बल
सहस्रों श्रेष्ठ स्त्रियोंसे समावृत्त है। शुक और सारण उस अद्भुत दृश्य
देखकर शीघ्रही लौटे और रावणसे सब देखा हुआ वृतान्त कहा। शु
और सारण के इसप्रकार कहनेपर रावण बोल उठा—'वही अर्जुन है
तदनंतर रावण अपने मंत्रियों सहित युद्धकी लालसासे उधरही चला औ
शीघ्रही वहाँ जा पहुँचा जहाँ अर्जुन जलक्रीड़ा कर रहा था। वह अञ्जन
समान काला और बड़ाही बलवान् था। वहाँ पहुँचकर उसने अर्जुनको स्त्रि
से आवृत्त जल बिहार करते हुए वैसेही देखा जैसे बहुत-सी हथिनियोंके सा
कोई गजेंद्र जलबिहार करता हो। राजा अर्जुनको देखतेही राक्षसरा
रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गए उसने अर्जुन के मंत्रियोंसे गम्भीर वा
में यह कहा—'मंत्रियों! तुम लोग दैत्यराज अर्जुनसे कहो कि, तुमसे यु
करनेके लिए रावण आया है।' मंत्रियोंने कहा—'इस समय महाराज स्त्रि
के मध्यमें हैं और ऐसी स्थितिमें आप युद्ध करना चाहते हैं? आजके दि
क्षमा कीजिए और रातभर यहाँ ठहर जाइये। कल अर्जुनसे मिलकर यु
कर लीजिएगा। और यदि आपको युद्ध करनेको बड़ी शीघ्रता हो तो
हम सबको संग्राममें मारकर यमराज के पास पहुँच जाइए। यह सु
रावणके मन्त्रियोंने अर्जुनके कितने मन्त्रियोंको तो मार डाला औ
कितनेहीको भूखे होनेसे कारण खा डाला। उभय मन्त्रियोंके युद्धसे नर्मदा
तटपर बड़ा कोलाहल हुआ। अर्जुनके पक्षके योद्धा रावणके पक्षवालोंपर
और रावणके पक्षवाले वीर तथा मंत्रिगण अर्जुनके पक्षवालोंपर बाण, तोमर,
भाले, त्रिशूल और वज्र आदिक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगे। जब य

समाचार वीर राजा अर्जुनको मिला तो वह अपने साथ क्रीड़ित स्त्रियोंसे बोला—'तुम सब किंचित् भी भयभीत न होना।' ऐसा कह उन सबको जलसे बाहर निकाला और क्रुद्ध-विकृत नेत्रोंसे अपनी गदा ले तीव्रतासे राक्षसोंपर टूट पड़ा। परन्तु तत्क्षण ही विन्ध्यके सदृश अचल प्रहस्त हाथमें मूसल ले उसके समक्ष जा पहुँचा। उसने उस लौह-जटित मूसलसे अर्जुनपर प्रहार किया। फिर यम-सी भीषण गर्जना की। किन्तु अस्त्र-कुशल अर्जुनने तनिक भी चिन्ता न की और अपनी गदासे उसके प्रहारको व्यर्थकर दिया। उन गदाघातोंसे प्रहस्त धराशायी हुआ। प्रहस्तको धराशायी हुआ देख मारीच, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्ष युद्ध-क्षेत्रसे पलायनकर गये। यह देख स्वयं रावणने वीर-श्रेष्ठ अर्जुनपर आक्रमण किया। सहस्र भुजाधारी नरनाथ और बीस भुजाधारी निशाचरनाथका रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। दोनोंही सिंहके समान बली थे। भयानक गर्जनाकर रुद्र और यमराजके समान कुपित हो वे एक दूसरेपर प्रहार करने लगे। उस समय उन गदा-प्रहार को वे दोनों उसी प्रकार सहन करने लगे, जैसे पर्वतोंने भयंकर वज्राघातोंको सहनकर लिया था। विद्युतकी घोर गर्जनसे जैसे दिशाएँ गूँज उठती हैं, उसी प्रकार उनकी गदाओं के प्रहारसे सभी दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं। इसी क्षण अर्जुनने कुपित होकर रावणके विशाल वक्षःस्थलपर पूर्ण शक्तिसे गदाका प्रहार किया। परन्तु रावण तो वरके प्रभावसे सुरक्षित था; अतः उसके वक्षःस्थलसे टकराकर उस गदाके दो खंड हो गये। तथापि अर्जुनके गदा-प्रहारसे रावण एक धनुष पीछे हट गया और रोता हुआ पृथ्वीपर बैठ गया। रावणको व्याकुल देखकर अर्जुनने दौड़ कर उसे पकड़ लिया और अपने सहस्र करोंके द्वारा उसे जेंवरीसे बाँध दिया। रावणके बँध जानेपर सिद्ध, चारण और देवताओंने 'धन्य-धन्य' कहा, अर्जुन के ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की। फिर तो जैसे सहस्र लोचन इन्द्र राजा बलिको जीत अमरावतीमें आये थे, वैसे ही अर्जुन भी रावणको बाँधे हुए अपनी माहिष्मती-पुरीमें आया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम उत्तरकाण्ड का बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

❀ तैंतीसवाँ सर्ग ❀

पुलस्त्यजीका पौत्र-स्नेहवश माहिष्मती-पुरीमें जाकर रावणको मुक्त कराना तथा रावण का लज्जित हो लंकाको लौट जाना

रावणको पकड़ लेना, वायुको पकड़ लेने के समान था। स्वर्गमें वार्ता-

लाप करते हुए पुलस्त्यजीने जब देवताओंके मुखसे यह बात सुनी तो वे पुत्र स्नेह वश थर्रा उठे और वायु-गतिसे महिष्मती-नरेशसे भेंट करने आये आकाशसे उतरते समय वे पैरों चलकर आते हुए सूर्यके समान ज्ञात होते थे राजाके द्वारपालों और मन्त्रियोंने उनके आगमनकी सूचना राजाको दी तब तपस्वी पुलस्त्यका आगमन सुन वे हाथ जोड़े हुए उनकी अगवानोके आए। राज-पुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क-सामग्री ले आगे चले। सूर्यके समान ऋषिका आगमन देख सहस्रबाहुने बड़े आदरके साथ उनको वैसेही प्रणाम किया जैसे ब्रह्माको इन्द्र प्रणाम करते हैं, फिर उन्हें अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क और गौ समर्पणकर महाराज अर्जुनने गद्‌गद् वाणीसे कहा–'मुने! आज मैं आपके देव-वन्द्य चरणोंकी वन्दना कर रहा हूँ; अतः आजही मैं वास्तवमें सकुशल हूँ, मेरा व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो गया, जन्म सफल हुआ और आजही मेरी तपस्या भी सफल हुई। हे ब्रह्मन्! यह राज्य, ये स्त्री-पुत्र और हम सबलोग आपके ही हैं। आज्ञा दीजिए, हम आपकी क्या सेवा करें? यह सुनकर, पुलस्त्य मुनिने धर्म, अग्नि और पुत्रोंका कुशल मंगल पूछा। साथही उन्होंने हैहयनाथ अर्जुनसे कहा–'हे नरेन्द्र! हे कमलनयन! हे चन्द्रमुख! तुममें अतुलित बल है। तभी तो तुमने दशग्रीवको जीत लिया है। अहो! जिसके भयसे सागर और पवन भी मौन होकर आज्ञा पाने की प्रतीक्षा किया करते हैं, हे राजन्! तुमने मेरे उसी रण-दुर्जय पौत्रको युद्ध में परास्तकर बाँध लिया है। तुमने उसका यश पीकर अपना नाम विख्यात किया है। हे वत्स! अब मैं तुमसे यही माँगता हूँ कि, मेरा वाक्य मानकर, तुम रावणको मुक्त कर दो।' अर्जुनने पुलस्त्यजीकी आज्ञा शिरोधार्यकी और विना किसी आपत्तिके ही सहर्ष राक्षसेन्द्र रावणको मुक्त कर दिया। (यहो नहीं) बहुमूल्य वस्त्रों; आभूषणों और पुष्प-मालयोंसे उसका सत्कार भी किया। फिर अग्निके समक्ष उपस्थित हो' अपने मनको शुद्धकर इसके साथ मैत्री भी कर ली। फिर ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यजीको प्रणाम कर राजा अर्जुन अपने भवनमें प्रविष्ट हुआ। पुलस्त्यने भी रावणको विदा किया। यद्यपि अर्जुनने रावणका स्वागत किया, तथापि पराजित हो जानेके कारण वह लज्जित होता हुआ लंकाको चला गया। ब्रह्मपुत्र पुलस्त्यजी भी रावणको

छुड़ा ब्रह्मलोकको प्रस्थित हुए। हे रघुनन्दन ! इसप्रकार बलवान्से भी अधिक बलवान् लोग हैं। यदि कोई अपनी भलाई चाहता है तो वह अन्यों का अपमान न करे। तदनन्तर निशाचरराज रावण सहस्रबाहु अर्जुनसे मित्रताकर और भी गर्वित हो गया। अब वह नृपालोंका नाशक वन पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका तैतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३३॥

चौंतीसवाँ सर्ग

अर्जुन द्वारा मुक्त किया गया राक्षसाधिप रावण फिर सब पृथ्वी-परिभ्रमण करने लगा। जहाँ कहीं भी उसे अधिक बलवान् मनुष्य या राक्षसों का होना सुनाई पड़ता, वह वहीं दौड़कर जाता और उसे युद्धके लिए ललकारता। एक दिन वह बालि-पालित किष्किन्धापुरीमें पहुँचा और उसने सुवर्णमालाधारी बालिको युद्धके लिए बुलाया। तब युद्धकी इच्छासे आए हुए रावणसे बालिके मन्त्री, तारा, तारा के पिता सुषेण, अङ्गद और सुग्रीवने कहा—राक्षसेन्द्र ! इस समय बालि तो बाहर गये हुए हैं, जो आपके जोड़के हैं। अभी अल्प क्षणके लिए आप ठहरिए। बालि चारों समुद्रोंपर सन्ध्याकर, अब आयाही चाहते हैं। तब-तक शंखके समान श्वेत हड्डियोंके इस ढेरको देख लो। ये उनकी हड्डियाँ हैं, जो वानरराज बालिसे युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आ चुके हैं। हे रावण ! यदि तुमने अमृतरस भी पान किया होगा, तो भी बालिके समक्ष जानेपर, तुम फिर जीवित न रह सकोगे। हे विश्रवाके पुत्र ! आज तुम इस संसारको देखलो और अल्प क्षणोंको ठहरो, फिर तो तुम्हारा जीवन दुर्लभ हो जायगा। और यदि तुम्हें मरनेकी त्वरा हो तो दक्षिण समुद्रपर चले जाओ। वहीं समुद्रके तटपर तुम्हारी बालिसे भेंट हो जायगी। बालि पृथ्वीपर स्थित अग्निकी समान भभकता है। तब उनकी इन बातोंको सुनकर उनका तिरस्कार करता हुआ रावण पुष्पकपर बैठ दक्षिण समुद्रकी ओर गया। वहाँ पहुँच उसने सुवर्णगिरिके समान उन्नत बालिको सन्ध्योपासन करते हुए देखा। काजलके समान काले रंगका रावण विमानसे उतर पड़ा और बालिको पकड़नेके लिए पैरोंकी आहट न करते हुए तत्क्षणही उसकी ओर चल

दिया। परन्तु दैवयोगसे बालिने उसे देख लिया। किन्तु उसकी दुष्ट अभिप्रायको जानकर भी वह किञ्चित व्यग्र न हुआ और न उसकी ओर कुछ ध्यान ही दिया। उसने निश्चयकर लिया कि 'यह मुझे पकड़ना चाहता है, परन्तु मैं इस दुष्टको अपने पार्श्वमें दबाकर अन्य तीन समुद्रोंपर जाऊँगा। इसके हाथ, वस्त्र और पैर लटकते रहेंगे जिससे गरुड़के पंजेमें फँसे हुये सर्पके समान लोग इसे मेरे पार्श्वमें पड़ा देखेंगे।' यह सोचकर बालि मौन ही रहा और वेद-मन्त्रोंका जाप करता रहा। जब रावणने समझा कि, अब तो मैं हाथ बढ़ाकर इसे पकड़ सकता हूँ, उसी समय बालिने दूसरी ओर मुँह किए ही उसे इसप्रकार पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है। फिर तो वह उसे बगलमें दाबे हुए बड़े वेगसे आकाशमें उड़ा। रावण उसे बार-बार नोचता था। तब भी वायु जिसप्रकार बादलको उड़ा ले जाता है उसी प्रकार बालि उसे बगलमें दबाये चलता था। इसप्रकार रावणके परास्त हो जानेपर उसके मन्त्री उसे बालिसे मुक्त करनेके लिये रावणके पीछे-पीछे दौड़ते रहे। परन्तु बालि तक वे पहुँच ही नहीं पाते थे। इससे वे श्रमित होकर बैठ गये। इतनेमें महावेगवान् वानरराज बालि रावणको लिये हुए पश्चिम समुद्रपर पहुँचा, वहाँ स्नान, संध्या और जप करके वह उत्तर समुद्रपर आया। वहाँ भी उसने संध्याकी और पुनः पूर्व समुद्रपर आया। वहाँ भी संध्योपासन करके उसे पार्श्वमें दबाये किष्किन्धा लौट आया। किष्किन्धाके उपवनमें पहुँचकर उसने रावणको अपनी काँखसे छोड़ दिया। और बार-बार हँसकर पूछा—कहिए, आप कहाँसे आ रहे हैं? तब काँखमें इतनी देर दबे रहनेके कारण रावण भी श्रमित हो गया था जिससे उसके नेत्र व्याकुल हो रहे थे। राक्षसेन्द्रने विस्मित हो बालिसे कहा——वानरराज! तुम तो साक्षात् इन्द्रके समान हो। मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ, युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आया था। परन्तु आज तुम्हारे हाथसे पकड़ लिया गया। अहो! तुम्हारा बल, पराक्रम और गांम्भीर्य आश्चर्योत्पादक है। तुमने मुझे पशुकी समान पकड़ चारों समुद्रोंपर परिभ्रमण किया। हे वीर! तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कोई भी वीर नहीं है जो मुझे लिए इसप्रकार वहन करे। ऐसी गति तो मन, वायु

और गरुड़ इन तीनकी ही है। अथवा निःसन्देह चौथे आप ऐसे वेगशाली हैं। हे वानरराज ! मैंने आपका बल देख लिया। अब मैं अग्निको साक्षी बनाकर आपके साथ सर्वदाके लिए मित्रता करता हूँ। स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन—ये सभी वस्तुएँ हम दोनोंकी सम्मिलित रहेंगी।' फिर तो वानरराज और राक्षसराज दोनोंने अग्नि प्रज्वलित कर परस्पर बन्धु-स्नेहकी स्थापनाकी और एकने दूसरेका आलिङ्गन किया। फिर दोनों हर्षित हो एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए किष्किन्धामें गये। रावण एक मास तक किष्किन्धामें सुग्रीवकी समान रहा। फिर त्रयलोक्य-नाशक रावण के मंत्री वहाँ आ उसे लिवा ले गये। हे प्रभो ! यह एक प्राचीन घटनाका वृतान्त है; जिसमें बालिने रावणको नत किया और पुनः अग्नि-सानिध्यमें उससे बन्धुत्व स्थापित किया था। हे राम ! बालिमें अनुपम बल था, किंतु अग्नि जिसप्रकार पतङ्गको दग्धकर होती है, उसीप्रकार आपने उस बालिको एक ही बाणसे मार डाला।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४ ॥

पैंतीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी द्वारा हनुमान्‌की महत्ताका प्रकाश

तदनन्तर राम विनम्र हो, हाथ जोड़ दक्षिण दिशावासी अगस्त्य मुनिसे बोले—महाराज ! यद्यपि बालि और रावणमें अतुल बल था, तथापि मेरा विचार यह है कि, ये दोनोंही हनुमान्‌के समान न थे। शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—ये सभी हनुमान्‌में विद्यमान् थे। क्यों कि सीताको खोजती हुई जब वानरी सेना समुद्रको समक्ष देख व्याकुल हो रही थी, तब यह वीर उन्हें धैर्य बँधा सौ योजन चौड़ा समुद्र लाँघ गये थे। फिर लंकापुरीकी अधिष्ठात्री राक्षसीको परास्तकर रावणके अन्तःपुरमें सीता का इन्होंने पता लगाया और उनसे वार्तालापकर उनको धैर्य दिया। फिर अकेलेही हनुमान्‌ने रावणके सेनापतियों, मन्त्रिपुत्रों, किङ्कर नाम्नी सेनाको और रावणके एक पुत्रका भी इन्होंने वध किया। फिर ब्रह्मास्त्र-बन्धनसे मुक्त होकर रावण का तिरस्कार करते हुए लंकाको इन हनुमान्‌ने वैसेही जला डाला जैसे अग्नि पृथ्वीको जला डालती है। युद्ध-क्षेत्रमें तो हनुमान्‌ने जैसे

कार्य किए वैसे न तो इन्द्र, न विष्णु और न कुबेरही कर सकते हैं। मैंने तो इन्हींके बाहुबलसे लंकाको ध्वंसकर, सीता, लक्ष्मण, विजय, राज्य, मित्र और बान्धवोंको पाया है। अधिक क्या कहूँ; यदि बानरनाथ हनुमान्‌ने मेरी सहायता न की होती तो जानकीका पता तक लगना कठिन था। जिस समय बालि और सुग्रीवका विरोध हुआ, उस समय सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये इन्होंने बालिको क्यों नहीं मारा? मैं तो यही समझता हूँ कि, उस समय इन्हें अपने बलका ज्ञान नहीं था। इसीसे ये अपने प्राणोंसे प्रिय सुग्रीवको दुःख भोगते देखते थे। आप हनुमान्‌के विषयमें सब बातें यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक सुनाइए। राघवके इन सहेतुक वचनोंको सुनकर अगस्त्यजी कहने लगे—हे रघुश्रेष्ठ! हनुमान्‌के विषयमें आपने जो कुछ कहा, वह सत्यही है। बल, गति और बुद्धिमें इनकी समान कोई नहीं है। पूर्वकालमें मुनियोंने इन्हें यह शाप दे दिया था, कि बल रहनेपर भी इन्हें अपने बलका ज्ञान नहीं रहेगा। सूर्यके वरदान्‌से सुवर्णरूपी सुमेरु नामका एक पर्वत है, जिसपर हनुमान्‌के पिता केशरी राज्य करते हैं, उनकी अञ्जनी या अञ्जना नामसे विख्यात पत्नीके गर्भसे पवन देवने एक पुत्र उत्पन्न किया। शालवृक्षकी फुनगीकी समान इस पुत्रको उत्पन्नकर अञ्जना फल लेनेके लिए वनमें चली गयी। उस समय माताके चले जानेपर भूखकी प्रबलताके कारण बालक हनुमान् रोने लगे। इतनेमें ही इन्हें जपा-कुसुमके समान उदय होता हुआ सूर्य दृष्टि आया। उसे फल समझकर ये सूर्यकी ओर दौड़े। यह देखकर देवता, दानव और यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—यदि बाल्यावस्थामें ही इनका ऐसा वेग और पराक्रम है तो युवावस्था होनेपर इनका बल और वेग कैसा होगा? तब अपने त्रपुको सूर्यकी ओर जाते देख उसे उसके दाहसे रक्षाके लिए उस समय वायुदेवभी हिमके समान शीतल होकर उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। इस प्रकार बालक हनुमान् अपने और अपने पिताके बलसे कई सहस्र योजन आकाश पार करके सूर्यके समीप जा पहुँचे। तब सूर्यने यह सोचकर कि, यह बालक है, गुण-दोषका अभी इसे ज्ञान नहीं है और इसके द्वारा देवताओंका भी विशेष कार्य होना है—ऐरावतपर चढ़कर इन्द्र रोकनेके लिए आये। पर इन्होंने ऐरावतको भी एक फल समझा और उसे

ग्रहण करने दौड़े। उस समय कुछ क्षणके लिए इनका और ही भयंकर रूप हो गया। इससे इन्द्रको कुछ क्रोधहो आया और उन्होंने इनपर वज्रका प्रहार कर दिया। वज्राघातसे ये उस पर्वतपर आ गिरे जिससे इनकी बाँयीं ठुड्डी टूट गयी। हनुमान्‌को वज्रके प्रहारसे विह्वल होते देखकर वायुदेवको इन्द्रपर बड़ा क्रोध आया। अतः उन्होंने समस्त प्रजाके भीतरसे अपनी गतिका अवरोधकर दिया और अपने शिशुको ले एक गुहाके भीतर जा बैठे। इससे प्रजाके मल-मूत्र रुक गए, जिसके कारण उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। इतना ही नहीं; वायुके कोपसे लोगोंके लिए साँस लेना कठिन हो गया। उसके अङ्ग अङ्ग टूटने लगे। वे काष्ठके समान हो गए। तीनों लोकोंमें धर्म-कर्मका अभाव हो गया। वेदाध्ययन तथा यज्ञादिक कहीं दिखाई नहीं पड़ता। तब देवता, गन्धर्व, असुर और मनुष्य आदि सभी प्रजा व्याकुल होकर सुखकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्माके पास दौड़ी गयी। वहाँ देवताओंने हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे निवेदन किया कि—'हे भगवन्! हे प्रजानाथ! हम लोग वायुसे पीड़ित होकर आपकी शरण आए हैं। आप सबके दुःखहर्त्ता हैं। अतः वायुके निरोधसे हमें जो कष्ट हो रहा है, उसे दूर करनेकी आप कृपा करें।' तब देवताओंकी इस प्रार्थनापर प्रजापति ब्रह्माजी उन सबको साथ ले वहाँ गए, जहाँ इन्द्रके मारे हुए अपने शिशुको लिए पवनदेव बैठे हुए थे। उन्होंने देखा कि, वे अपने पुत्रको गोदमें लिए बैठे हैं। उनकी वह दशा देखकर ब्रह्माजीको बड़ी दया आयी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ सर्ग

श्रीअगस्त्यजी द्वारा हनुमान्‌का जीवनवृत्त वर्णन

पुत्रके मारे जानेसे वायुदेव बहुत दुःखित थे। ब्रह्माजीको देखते ही वे पुत्रको लिए हुये उनके समक्ष उठ खड़े हुए और तीन परिक्रमाकर उनके चरणोंपर गिर पड़े। ब्रह्माजीने आभूषणोंसे भूषित निज करों द्वारा पवनदेव-को उठा लिया और उनके शिशुके शरीरपर भी हस्त संचालन किया। कमलज ब्रह्माके कर-स्पर्श होते ही पवन-पुत्र जल सिंचित धानकी समान फिर सजीव हो गए। गन्धवाही प्राणभूत वायुदेवने अपने पुत्रको जीवित हुआ

देख अपना अवरोध त्याग दिया और प्रसन्न हो तत्क्षणही सब प्राणियोंमें सञ्चरित हो गये। समस्त प्राणी वायुरोधसे युक्त हो हर्षित हो गये। तब वायुका प्रिय करनेकी इच्छासे देव-पूजित ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'इन्द्र, अग्नि, वरुण, महेश्वर और कुबेर! आप सब लोग यद्यपि जानते हैं तो भी मैं आपके हितकी बात कहता हूँ। इस बालकके द्वारा आप लोगोंके अनेकों कार्य होंगे। अतः वायुदेवकी प्रसन्नताके लिए आप सब इसे वर दें।' तब प्रसन्न वदन और सहस्रनयन इन्द्रने हर्षित हो सुवर्णमयी कमल पुष्पोंकी माला हनुमान्‌के गलेमें डालकर कहा कि—'मेरे हाथसे चलाए गए वज्रसे जो इसकी ठोड़ी (हनु) कुछ टेढ़ी हो गई है, उससे आजसे इस कपि शार्दूलका हनुमान् नाम पड़ा। साथ ही इसे मैं यह एक अद्भुत वरदान भी देता हूँ कि, आजसे यह हनुमान् मेरे वज्रसे अवध्य होगा। तदनन्तर तिमिर नाशक भगवान् सूर्यने कहा—मैंने अपने तेजका शतांश इस शिशुको दिया इसके अतिरिक्त जब यह शास्त्राध्ययनके योग्य होगा तब मैं स्वयं ही इसको सब शास्त्र पढ़ा दूँगा जिससे यह हनुमान् वाग्मी होगा और इसके समान शास्त्रवेत्ता कोई अन्य न होगा। फिर वरुणजीने इसे यह वर दिया कि, मेरी फाँसी और जलसे दशलाख वर्षोंतक भी यह न मरेगा। यमने वर दिया कि यह मेरे दण्डसे अवध्य होगा और निःरोग होगा। कुबेरने कहा कि, इसे युद्धमें कभी विषाद न होगा तथा मेरी यह गदा संग्राममें इसका बध न कर सकेगी।' श्रीमहादेवजीने इन्हें यह वर दिया कि 'यह मेरे और मेरे आयुधोंके द्वारा भी अवध्य होगा। फिर उस बालकको देखकर विश्वकर्माने कहा—मेरे द्वारा निर्मित जितने भी दिव्यास्त्र हैं उनसे यह किसीसे भी न मारा जा सकेगा तथा यह चिरकालतक जीवित रहेगा। अन्तमें ब्रह्माजी बोले—यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा। इसप्रकार हनुमान्‌जीको देवताओंके वरोंसे अलंकृत देख ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुये और वायुसे बोले—वायो! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंके लिए भयंकर और मित्रोंके अभयकर्त्ता होगा। इसे कोई भी जीत न सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा तथा यह जहाँ चाहेगा, जा सकेगा। इसकी गति कहीं भी अवरुद्ध न होगी और यह बड़ा ही यशस्वी होगा। यह युद्धस्थलमें रामको प्रसन्न करनेवाला

अद्भुत कार्य करेगा। इस प्रकार हनुमान् को वर देकर और वायुदेव से आज्ञा लेकर ब्रह्मा आदि सब देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये। वायुदेव भी पुत्र को लेकर अञ्जनाके घर आये और उसे देवताओंके दिए हुए वरदान का प्रसङ्ग कह वहाँ से चल दिए। हे रामजी! इस प्रकार अनेकों वर पाकर उनके प्रभाव से हनुमान् इतने बली हो गए थे कि ये अपने वेग से साक्षात् समुद्र के समान पूर्ण थे और निर्भय होकर ऋषियों के स्थानपर उपद्रव किया करते थे। ये शान्तचित्त मुनियोंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते थे, अग्निहोत्र रोक देते थे और ढेर के ढेर रखे हुए वल्कलों को नष्ट कर डालते थे। ऋषिगण शान्त स्वभाव के थे। वे करते ही क्या? इस प्रकार यह महाबली हनुमान् ब्रह्माजी के वरदान के कारण ब्रह्मदण्ड से अवध्य हो ऐसे कर्म किया करते थे। ऋषियों को यह बात ज्ञात थी। अतः दण्ड देने की शक्ति रखते हुए भी वे इनके उपद्रवोंको सह लिया करते थे। फिर भी केसरी और वायु ने इनको ऐसे कार्य करने से मना भी किया; तथापि यह मर्यादा का उल्लंघन ही करते गए। हे राम! तदनन्तर अङ्गिरा और भृगु वंशोत्पन्न क्रुद्ध मुनिजनोंने कुछ क्रोध कर ही दिया और यह शाप दिया कि—हे वानर! जिस बल से तू हम लोगों को कष्ट देता है, वह बल तुझे चिरकाल के पश्चात् स्मरण होगा। किन्तु जब कोई तुझे तेरी कीर्ति स्मरण कराएगा, तब तेरा बल बढ़ जाया करेगा। इस प्रकार ऋषियों के वचन के प्रभाव से हनुमान् का तेज और ओज घट गया और ये मृदुल प्रकृति के होकर उनके आश्रमोंमें विचरने लगे। बालि और सुग्रीवके पिता ऋक्षराज थे जो सूर्यके समान तेजस्वी और सब वानरोंके राजा थे। उन्होंने बहुत समय तक वानरों का राज्य किया और फिर वे मृत्यु को प्राप्त हो गए। उनका देहान्त होनेपर मन्त्रियों ने पिता के स्थानपर बालिको राजा और बालिके स्थानपर सुग्रीवको युवराज बनाया। तब अग्निकी जैसे वायुसे स्वाभाविक मैत्री है, वैसेही सुग्रीवके साथ बालि का बाल्यकाल से बड़ा स्नेह था। दोनों में परस्पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं था। हे राम! जिस समय बालि और सुग्रीवमें शत्रुता हुई, उस समय बालिके भयसे भटकते हुए सुग्रीवको हनुमान्‌के बलका स्मरण नहीं हुआ और स्वयं हनुमान् तो शाप-वश भूले ही थे जिसके साथ रहने पर भी बालिके साथ युद्ध होनेपर उसी

अन्यथा संसारमें ऐसा कोई नहीं जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गाम्भीर्य, चातुर्य, शूरताई और धैर्यमें हनुमान्‌से बढ़ कर हो। ये अतुल शक्तिशाली कपिराज व्याकरणका अध्ययन करनेके लिए सूर्यकी ओर मुँह रखकर उनके आगे उदयाचलसे अस्ताचल तक चले जाते थे। इन्होंने सूत्र, वृत्ति, कार्तिक, भाष्य और संग्रह सभीका पूर्णतः अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंका ज्ञान तथा छन्द शास्त्रमें भी इनकी समान कोई नहीं है। ये सभी विद्याओं और तपस्याओंमें देवगुरु बृहस्पतिके समान हैं जिनके समक्ष स्थिर रहनेकी किसीमें शक्ति नहीं है। वास्तवमें तो इनके तथा सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, अङ्गद, रम्भ, गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, प्रभ, ज्योतिर्मुख और नल आदि वानर तथा भालुओंके रूपमें आपकी सहायतार्थ देवताही अवतीर्ण हुए हैं। हे राम! हनुमान्‌ने बाल्यावस्थामें जो-जो कर्म किए थे, वे सब मैंने तुमको सुनाए। अधिक क्या कहूँ, तुमने जो कुछ मुझसे पूछा था; उसका उत्तर मैंने तुमको दिया। अगस्त्यजीकी ये बातें सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण वानरों तथा राक्षसों सहित बड़े विस्मित हुए। फिर अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीसे अपने विदा होनेकी आज्ञा माँगी, तो वे हाथ जोड़ प्रणामकर नम्रतापूर्वक बोले—महर्षे! आज आपके दर्शनसे तो मानों मुझपर देवता प्रसन्न हुए तथा पिता और प्रपितामह गण तृप्त हुए और कुटुम्बियों सहित प्रसन्न हुए। मैं प्रसन्न हुआ। किन्तु आपकी सेवामें मेरा एक स्पृहारहित यह निवेदन है कि "मैं पुरवासियों और देशवासियोंको अपने-अपन कार्योंमें नियुक्तकर आप सत्पुरुषोंकी कृपासे यज्ञ करूँ। अतः आपलोग मेरे यज्ञोंके नित्य सदस्य बनें। इसक लिए आपको सम्मिलित होना और नित्य आगे रहना होगा।" रामके इस प्रस्तावको सुनकर व्रतधारी अगस्त्यादि ऋषियोंने "तथास्तु" कहा और ऐसा कहकर वे अपने-अपने आश्रमोंको चले गए। इधर श्रीराम विस्मित होकर उन्हीं बातों पर विचार करते रहे। तत्पश्चात् सूर्यास्त होनेपर उन्होंने राजाओं और वानरोंको विदा किया और रात्रि होनेपर उन्होंने अपने अंतःपुरमें गमन किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ सर्ग

राज्याभिषेकके अनन्तर ऋषियोंके चले जानेपर प्रथम रात्रिके पश्चात् वन्दीजनों द्वारा रामको जगाया जाना

जगत्प्रसिद्ध धर्मात्मा रामके अभिषेककी यह प्रथम रात्रि वंदीजनों पुरवासियोंको हर्ष-वर्द्धक थी। किन्तु वह रात्रिभी व्यतीत हो गई। वह रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल महाराज श्रीरामको जगानेवाले बन्दीगण राजप्रासादमें उपस्थित हुए जिनके कण्ठ बड़ेही मधुर थे। वे हर्ष-वर्द्धन करते हुए महाराजकी यथावत् स्तुति करने लगे—'श्रीकौशल्याजीकी प्रसन्नताके वर्द्धक श्रीराम जागिए। हे महाराज! आपके सोते रहने पर तो समस्त संसारही सोता ही रहेगा। आपका पराक्रम विष्णुके समान और रूप अश्विनीकुमारोंके समान है। बुद्धिमें आप बृहस्पतिके समान हैं और रूपमें अश्विनीकुमारोंके समान हैं तथा प्रजापालनमें स्वयं प्रजापतिके ही सदृश हैं। आपकी क्षमा पृथ्वीके समान, तेज सूर्यके समान, वेग वायुके समान और गम्भीरता समुद्रके समान है। आप शिव सदृश युद्ध में अविचल हैं। आपकी-सी सौम्यता तो चन्द्रमामें ही पायी जाती है। हे राजन्! आपके समान राजा न पूर्वमें कोई हुए और न भविष्यमें होंगे। आप युद्धमें दुर्धर्ष हैं तथा धर्मनिरत रहकर प्रजाके हित में तत्पर हैं। 'अतः कीर्ति और लक्ष्मी आपको कभी त्याग नहीं सकती। हे काकुत्स्थ! ऐश्वर्य और धर्मकी स्थिति आपमें सर्वदा विद्यमान रहती है।' बन्दीजनोंने इसी प्रकार तथा अन्यभी अनेकों प्रकार मधुर कण्ठसे स्तुति की। सूतोंनेभी दिव्य स्तुतियों द्वारा आपको जगाया। तब इसप्रकार स्तुतियोंके द्वारा अपनी स्वच्छ शय्या त्याग श्रीराम वैसेही जागे जैसे श्रीनारायण शेष शय्यासे उठे हों। उस समय सहस्रों सेवक नम्र भावसे हाथ जोड़े हुए खड़े थे और कितनेही स्वच्छ पात्रोंमें जल भरे हुए खड़े थे। उस जलको ले महाराज ने नित्य कृत्य किये। तदनन्तर पवित्र हो अग्निहोत्र किये और उस देवालय में पधारे जहाँ समस्त इक्ष्वाकुवंशीय जाया करते थे। वहाँ वे देवता, पितर और ब्राह्मणोंका यथोचित पूजनकर मित्रों सहित ड्योढ़ीपर आये। वहाँ महात्मा मन्त्रिगण तथा वशिष्ठादि अग्नितुल्य तेजस्वी पुरोहित और देश देशान्तरोंके नृपतिगण तथा ऐश्वर्यशाली अन्य व्यक्ति श्रीरामके पास आए।

महायशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नभी श्रीरामकी सेवामें वैसेही तत्पर हु जैसे ऋग, यजु और साम तीनों वेद यज्ञमें उपस्थित रहते हैं। हर्षित और प्रसन्न मुख सेवक उनकी सेवाके हेतु पार्श्वमें आ स्थित हुए। साथही महापराक्र और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुग्रीवादि बीस वानर श्रीरामके सम आ बैठे। फिर राक्षसों सहित श्रीमान् विभीषण वहीं आ बैठे, मानों कुबेर पास गुह्यकगण बैठे हों। तदनन्तर महाजन, वृद्धजन और कुलीनजन श्री से मिलने आये जो नम्र होकर प्रणाम करके यथोचित आसनोंपर विराजम हुए। इसप्रकार ऋषियों, राजाओं, वानरों और राक्षसोंके साथ स विराजमान रघुनाथजी मुनियों द्वारा सेवित देवराजसे भी श्रेष्ठ प्रतीत हु जब सबलोग यथा स्थान आसनोंपर विराजमान हुए, तब पुराणवेत्ता महा लोग उन्हें कर्णमधुर कथाएँ सुनाने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३७॥

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका सब राजाओंको विदा करना

इसप्रकार महाबाहु राम सम्पूर्ण भूमण्डलपर राज्य करते हुए पुरवासि पर शासन करने लगे। कुछ दिन व्यतीत होनेपर उन्होंने मिथिला (राजाजनक) से प्राञ्जलिभूत (हाथ जोड़कर) होकर कहा—'महारा आप सब प्रकार हमारे रक्षक हैं और हम आपही के पाले हुए हैं। म आपही के उग्र तेजकी सहायतासे रावणको निहत किया है। हे राज मिथिकुल और इक्ष्वाकुकुलके इस अनुपम सम्बन्ध द्वारा परस्पर ऐसी प्री है, जिसकी कोई उपमा नहीं हो सकती। अतः आप रत्नादिके रूपमें हम भेंट स्वीकार करके अपनी राजधानीको पधारें। आपकी सहायताके भरतजी साथ जायँगे।' तब जनकजीने कहा—बहुत अच्छा और रघुन जी से बोले—'राजन्! मैं आपके दर्शन और न्यायानुकूल व्यवहारसे बहु प्रसन्न हूँ। आपने मेरे लिए जो रत्न एकत्रित किए हैं, वे सब मैं अपन सीता आदि पुत्रियोंको देता हूँ। ऐसा कह राजा जनक चले गये। त श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक अपने नाना केकयराज-पुत्रयुधाजि से कहा—'मामा! मैं, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आपहीके हैं और अयो

का यह सम्पूर्ण राज्यभी आपहीका है। आप सर्व प्रकारेण हमारे उपकारकर्त्ता हैं। केकयराज वृद्ध हैं। वे आपके लिए चिन्तित होंगे। अतः मेरे विचारसे आपकाभी आजही चले जाना उचित है। विदाईकी भेंट में बहुत-सा धन और विविध प्रकारके रत्न लेकर, लक्ष्मण आपको पहुँचाने जायेंगे। युधाजितने भी जाना स्वीकार किया और कहा—'हे राघव! यह समस्त धन और रत्न अक्षय होकर आपहीके पास रहे।' रामने प्रदक्षिणाकर उनको प्रणाम किया। फिर केकय राजकुमारने रामकी प्रदक्षिणाकी और लक्ष्मण सहित वहाँसे प्रस्थित हुए। उनको विदाकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने मित्र काशीनरेश राजा प्रतर्दनको कहसे कहा—'राजन्! आपने बड़ी प्रीति प्रदर्शितकी और भरतके साथभी आपने बड़ा उद्योग किया। अब आपभी अपनी रमणीय नगरी द्वारोंसे सुशोभित वाराणसी नगरीको पधारें।' ऐसा कह श्रीरामचन्द्रजी ने सिंहासनसे उठकर प्रतर्दनको गले लगाया और उन्हें विदा किया। निर्भीक काशिराज शीघ्रही वाराणसीको चल दिये। काशीपतिको विदाकर श्रीरामचंद्रभी अन्य तीन सौ राजाओंसे मुसकाते हुए मधुरवाणीसे बोले—आप सब की हमपर बड़ी प्रीति है। आपहीके तेजसे राक्षसाधम रावण मारा गया है। मैं तो उसका वध करनेमें निमित्तमात्र हूँ। वनमें सीताके हरे जानेका समाचार देकर महात्मा भरतजीने आप लोगोंको यहाँ आमन्त्रित किया था और आप सब महानुभाव नृपति युद्धमें सम्मिलित होनेको तत्पर थे। अब यहाँ आए आप को बहुत दिन व्यतीत हुए। अतः अब आप लोगभी अपनी-अपनी राजधानियोंको प्रस्थान कीजिये।' तब उन राजाओंने परम हर्षित होकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि 'हे महाराज! यह परम सौभाग्यकी बात है कि, आपकी विजय हुई और यह राज्यभी स्थिर रहा। यहभी सौभाग्यकी बात है कि, सीता मिल गयीं और शत्रु रावणका संहार हुआ। यही हमारा मनोरथ था। वह पूर्ण हुआ। हमलोग इसीमें हर्षित हैं। आपने हमारी जो प्रशंसाकी, वह आप की उदारता है। अन्यथा हमलोग किस योग्य हैं। हमें नहीं ज्ञात कि, हम किस प्रकार आपकी प्रशंसा करें। अब हम आपकी आज्ञा ले विदा होते हैं। आप तो सर्वदा हम लोगोंके अन्तःकरणमें वास करते हैं। हे महाराज! हम लोगोंपर आप सर्वदा प्रीति बनाए रहियेगा।' इसपर श्रीरामचन्द्रजीने

होकर जायँ और सुग्रीव सहित मेरा भी सर्वदा सप्रेम स्मरण करते रहें। श्रीरामचन्द्रजीका यह भाषण सुनकर सब रीछ, वानर और राक्षस 'धन्य-धन्य' कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे और कहा कि 'हे राम! तुम्हारी बुद्धि ब्रह्माजीके समान सदैव प्राणिमात्रका कल्याण करनेवाली है। तुममें सर्वोत्कृष्ट माधुर्य भी विद्यमान है। तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है। वे सब ऐसा कह ही रहे थे कि, इसी समय हनुमान् ने कहा—राजन्! आपमें मेरी परम भक्ति और प्रीति सदैव बनी रहे। मेरा मन आपको छोड़ और किसीमें अनुरक्त न हो। हे रघुनन्दन! जब-तक यह कथा इस संसारमें प्रचलित रहे, तब-तक मेरे प्राण और शरीरसे आप कभी पृथक न हों। तथा हे पुरुषर्षभ राम! आपका यह पावन चरित्र तथा कथा मुझे अप्सराएँ गाकर सुनाया करें। हनुमान्‌की इन प्रेमपूर्ण बातोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और स्नेह पूर्वक कहा—हे वानरोत्तम! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। इसमें सन्देह नहीं है। जब तक इस लोकमें मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तब-तक तुम्हारी कीर्त्ति भी विद्यमान रहेगी और तभी तक तुम भी शरीर धारणकर यहाँ बास करोगे और मेरी कथा तब-तक विद्यमान रहेगी कि जबतक यह लोक विद्यमान रहेंगे। तुम्हारे इस एकही उपकार पर मैं तुम्हें अपने प्राणदान करता हूँ। और तुम्हारे शेष उपकारोंके हमलोग सर्वदा ऋणी हैं। मनुष्य प्रत्युपकारोंका पात्र होता है। अतः तुम्हारे उपकार मेरे हृदयमें सर्वदा विद्यमान रहेंगे।' ऐसा कहकर श्रीरामने अपने गलेसे चन्द्रसदृश चमकीला पन्नेका हार उतारकर श्रीहनुमान्‌के गलेमें पहना दिया। उस हारको पहनकर हनुमान् बड़े ही शोभित हुये। श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी बार्ता सुनकर सब वानर उठ-उठकर उनको प्रणामकर स्वगृहोंको प्रस्थित हुये। कपिराज सुग्रीव और विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके गले से लिपटकर उनसे जा मिले। तीनोंके नेत्रोंसे अश्रुधार प्रवाहित हो गई। सबके कण्ठ गद्‌गद हो गये। बड़े दुःख सहित उन्होंने रामको छोड़ा। उनको बड़ा कष्ट हुआ। राम-वियोगसे दुःखी राक्षस, रीछ और वानरभी अब उन्हें प्रणामकर सप्रेम जहाँसे आए थे वहाँको प्रस्थित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४०॥

एकतालीसवाँ सर्ग

श्रीभरतजी द्वारा-राज्यकी प्रशंसा

इसप्रकार रीछों, वानरों और राक्षसोंको विदाकर श्रीरामचन्द्रजी अपने भाइयों सहित हर्षित हो अयोध्यामें निवास करने लगे। एक दिन मध्याह्नोत्तर के समयमें उन्होंने यह आकाशवाणी सुनी कि 'हे सौम्य राम! मेरी ओर देखो। हे प्रभो! मैं पुष्पक नामक विमान हूँ और कुबेरके गृहसे आया हूँ। हे नरोत्तम! जब मैं आपकी आज्ञा पा कुबेरके पास गया तो उन्होंने मुझसे य... कहा कि, महाराज श्रीरामचन्द्रजीने दुर्धर्ष राक्षसेन्द्र रावणको मारकर तुमको भी जीत लिया है; अतः अब तुम उन्हींकी सेवामें जाओ। इससे महात्मा कुबेरकी आज्ञासे मैं आपके समीप आया हूँ। अब आप निश्चित हो मुझे अपना वाहन बनावें। कुबेरकी आज्ञासे मेरी गति अबाध है। आपके प्रतापसे मैं सर्वत्र गमन करूँगा।' महाबली राम पुष्पकका यह वचन सुनकर आकाश की ओर देखकर बोले—वाहनश्रेष्ठ! तुम्हारा स्वागत है। यदि ऐसा है तो बहुत ही अच्छी बात है। मुझे तो कुबेरकी प्रीतिके अनुसार ही आचरण करना है। यह कहकर महाबाहु रामने पुष्पों, खीलों, चंदन तथा धूपादिसे पुष्पकका पूजनकर कहा—हे पुष्पक! अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जाकर रहो और जब मैं तुम्हें स्मरण करूँ, तब यहाँ आ जाना। हे सौम्य! यह सिद्धसेवित मार्ग है अब तुम जाओ और किसी प्रकार दुःखी न होना और गमन करते हुए किसीसे टकराना नहीं। पुष्पक कृतार्थ हो चला गया। तदनन्तर भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—आपके शासनकालमें तो ऐसे भी कितने अद्भुत प्राणी दिखाई देते हैं और उनके वचन सुनाई पड़ते हैं जो मनुष्य नहीं और प्रजामें भी कोई रोगग्रस्त नहीं देख पड़ता जब कि अभी कुछ ही महीनेमें आप राज्यासीन हैं। क्योंकि मैं देखता हूँ कि, कितने ही देहधारी जीव अतिजीर्ण होकर भी अभी मृत्युको नहीं प्राप्त हुए हैं और स्त्रियोंको प्रसवकालमें कोई कष्ट नहीं होता तथा सब पुरवासी हृष्ट-पुष्ट दिखाई पड़ते हैं। समस्त पुरवासी और जनपद अत्यन्त हर्षित है। बादल भी यथावसर अमृतके समान जलकी वर्षा करते हैं। सर्वदा सुखस्पर्शी माङ्गलिक वायु प्रवाहित हो रहा है। ऐसा तो

कभी नहीं हुआ। मैं ही नहीं सब पुरवासी और जनपदके लोग भी यही क
हैं। भाई भरतके इन वचनोंको सुनकर नृपोत्तम राम बड़े हर्षित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम उत्तरकाण्डका इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ४१॥

बयालीसवाँ सर्ग

श्रीरामका सीता सहित अयोध्याकी अशोकवाटिकामें जाकर उसकी शोभा देखना, आन
प्रमोद कर सीताके गर्भवती होनेपर हर्षित होकर रामका उनकी इच्छा पूछना तथा
सीताका यह कहना कि तपस्वियोंके आश्रमोंको देखने जाऊँगी।

हेमभूषित पुष्पकको विदा कर राम उस अशोकवाटिकामें गए जि
चन्दन, आम, अनार, तुङ्ग, लालचन्दन और देवदारुके वृक्ष लगे थे और
चम्पक, पुन्नाग, मधूक, पनस और पारिजातसे वाटिका निर्धूम अग्निके सम
दमक रही थी। उसमें सब ऋतुओंमें फूलनेवाले सुन्दर पुष्पित वृक्ष लगे थे अ
सुस्वादु फलवाले वृक्ष भी विद्यमान थे। ऐसे भी वृक्ष थे जिनमेंसे सुग
निकलती थी। नवीन पत्तों और कोपलोंसे वहाँके वृक्ष सुशोभित थे।
दिव्य वृक्षोंको चतुर मालियोंने उत्तम प्रकारसे लगाया था जिनमें सुन्दर प
और पुष्प लहरा रहे थे। उनपर मत्त भ्रमर गूँज रहे थे। उसमें आम्रभृ
कोयल अपनी सुहानी बोली बोल रही थी तथा भौंरे और अन्य रङ्ग-विरङ्गे प
शोभायमान हो रहे थे। वहाँ कोई वृक्ष तो श्वेत रङ्गके, कोई अग्नि-शि
की नाईं लाल रङ्गके, कोई नीलाञ्जनके समान नील रंगके तथा कई अ
प्रकारके भी वृक्ष लगे थे। वहाँ विविध आकारकी बावलियाँ थीं जि
स्वच्छ जल भरा था और जिनमें मणिके सोपान थे तथा भीतरकी तह स्फटि
पत्थरकी निर्मित की गई थी। उनमें पुष्पित कमल और कुमोदिनीके पु
शोभित थे। उनमें चक्रवाक, पपीहा, शुक, हंस और सारस बोल रहे थे। ए
जिनके तटोंपर पुष्प-भारसे लदे हुए रंग विरंगे वृक्ष लहलहा रहे थे। ए
समृद्धिपूर्ण अशोकवाटिकामें आकर राम एक विशाल सुन्दर पुष्प-सज्जित आ
पर जिसपर कुशकी आसनी बिछी थी, बैठ गए वहाँ सीताको अपने नि
बैठाकर उन्होंने अपने हाथसे स्वच्छ मौरेय नामक आसव वैसेही पिलाया जै
इन्द्र अपनी इन्द्राणी शचीको पिलाते हैं वहाँपर अच्छी सुस्वादु माँस औ
विविध प्रकारके फल रामके व्यवहारार्थ सेवकोंने तत्क्षण लाकर रख दि

और नृत्य-गान आरंभ हुआ। अप्सराएँ, पन्नगियाँ, किन्नरियाँ और परम चतुर स्त्रियाँ मदमाती होकर रामके समक्ष नाचने लगीं। इसीप्रकार नित्य मनको प्रसन्न करनेवाली शृङ्गारित स्त्रियोंका नृत्य-गान श्रीरामचन्द्रजी श्री जानकीजीके साथ बैठकर सुना करते थे। श्रीराम सीता-सहित ऐसे बैठे हुए थे, मानों अरुन्धतीके पास वसिष्ठजी बैठे हों। इसप्रकार देवकन्याओंके समान सीताको श्रीरामचन्द्रजी सर्वदा प्रसन्न किया करते थे। इसमें उनके बहुत दिन व्यतीत हो गए। यहाँ तक कि भोगविलासका सुखदायी शिशिर ऋतुभी व्यतीत हो गया। धर्मात्मा राम पूर्वान्ह (दोपहरके सूर्य) तक धर्मानुसार समस्त धर्मकार्यकर; दिनका शेष भाग व्यतीत करने रनवासमें जाते। सीता जीभी दिनके प्रथम अर्द्धभागमें समस्त देवकार्यकर विशेष श्रद्धा भक्ति सहित अपनी सासोंकी सेवा किया करतीं। सेवा करते समय वे अपनी सब सासोंको समान समझतीं। फिर विविध प्रकारके वस्त्राभूषण धारणकर श्रीरामचन्द्रजीके पास जा बैठतीं। तब सीताको गर्भवती देख राम आनन्दित हो बड़े हर्षित हुए। उन्होंने देवबालाके समान वरवर्णिनी सीतासे कहा—देवि! अब तुम गर्भवती हो गई हो। इसलिए हे वरारोहे! कहो, तुम्हारी इच्छा किस वस्तु पर है। तुम जो कहो, मैं तुम्हारी वह इच्छा पूर्ण करूँ। इसके उत्तरमें सीता ने मुसकाकर रामसे कहा—'हे राघव! पवित्र तपोवनोंको देखना चाहती हूँ। गङ्गातटपर निवास करनेवाले, उग्र तेजस्वी और फल मूलाहारी ऋषियोंके मैं चरण-सेवा करना चाहती हूँ। हे देव! यही मेरी परम कामना है। तपोवनके ऋषियोंके आश्रममें यदि मैं एक रातभी रह पाऊँ तो मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जाय।' अक्लिष्टकर्मा रामने कहा—वैदेहि! तुम निश्चिन्त रहो, ऐसाही होगा। तुमको मैं कलही तपोवनमें भेज दूँगा। सीतासे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी अपने मित्रोंके साथ राज-भवनके मध्य चौकमें चले आए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ सर्ग

रामका जासूसों द्वारा सीताके विषयमें निन्दापूर्ण जन-श्रुतिका सुनना

अब वहाँपर श्रीरामचंद्रजीके पास ऐसे मनुष्य आ बैठे जो विविध प्रकारकी कथावार्ता कहनेमें निपुण तथा हास्यका थे। उनके नाम थे, विजय

कभी नहीं हैं । भाई इति ९.३।

काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्र और सुमागध चेत अन्तः करणसे महात्मा श्रीरामके समक्ष विविध प्रकारकी हँसाने बातें करने लगे । उसी समय श्रीरामचन्द्रजी भी अयोध्यामें कई गत समयकी वार्त्ता पूछने लगे और यह भी पूछा कि, आजकल क्या हो रहा है? मेरे आश्रित पुरवासीजन, सीता, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके विषयमें क्या कहते हैं? शत्रुघ्नके और मेरी माता कैकेयीके विषयमें लोगोंका क्या मत है? क्योंकि (अविचारी) राजाके राज्यमें ही नहीं; तपोनिष्ठ आश्रमोंमें भी निन्दा होने लगती है । रामके इसप्रकार कहनेपर भद्र बोला—'राजन्! पुरवासीजन चम्प श्रीमहाराजकी प्रशंसा ही करते हैं । हे सौम्य! अयोध्यावासियोंमें तो दमवापके द्वारा) दशाननका बध लेकर लंकाको विजय करनेकीही बड़ी चर्चा होती रहती है ।' भद्रके ऐसा कहनेपर श्रीरामने कहा—यही नहीं, और भी बहुत-सी बातें होंगी—वह सब कहो । उन सब बातोंको सुनकर मैं अच्छाई करूँगा और अशुभ कार्योंको त्याग दूँगा । हे भद्र! इसे कहनेमें तुम कुछभी शंका न करो और कहो । मैं जानना चाहता हूँ कि, पुरवासी और जनपदजन मेरी क्या-क्या टिप्पणी कहते हैं । राघवके इसप्रकार पूछनेपर भद्रने सँभलकर और हाथ जोड़कर कहा कि 'हे राजन्! वन, उपवन, हाट, वाट और चौराहों पर पुरवासी लोग आपके विषयमें जैसी बातें कहते हैं, मैं उन सबको आपसे निवेदन करता हूँ। वे कहते हैं कि, श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रपर सेतु-रचना करके तो यह बड़ा ही दुष्कर कार्य किया है। ऐसी बात तो पूर्वकालके देवता या दानवोंमें भी नहीं सुनाई होगी। रावण बड़ा दुर्जय था, उसे इन्होंने समस्त सेना और वाहनोंके साथ नष्ट कर दिया तथा राक्षसों सहित रीछों और वानरोंकोभी अपने वशमें कर लिया; किन्तु ये रावणको मारकर सीताको ले आये और उनपर किसी प्रकारका दोष प्रकट न करके उन्हें घरमें रख लिया । इनके हृदय में सीताके संभोगका सुख कैसा घरकर गया है! जिन्हें रावण बलपूर्वक गोद में उठाकर ले गया, जो लंकामें ले जायी गयीं और अशोकवाटिकामें राक्षसों के अधीन होकर रहीं उसको भी इन्होंने नहीं समझा । अब हमलोगोंकोभी स्त्रियोंकी ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी । क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजाभी

उसीका अनुकरण करती है।' महाराज ! सभी नगरों और प्रान्तों इसीप्रकारकी बातें कह रहे हैं। भद्रकी ऐसी बातें सुनकर रामने सभी पूछा-'बताओ, भद्रने जो कुछ कहा है वह आपलोगोंकी दृष्टि तक ठीक है।' इसपर सभीने पृथ्वीपर शिर रखकर श्रीरामको प्रणाम किया और एक स्वरसे कहा—देव ! निःसन्देह यह बात ऐसी ही है।' इसप्रकार सबके मुँहसे ऐसी बात सुनकर रामने अपने सभी मित्रोंको जानेकी आज्ञा दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका जासूसोंको विदाकर लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको बुलाना

सब हितैषी मित्रोंको विदाकर श्रीराघवने विचारकर अपना कर्तव्य निश्चित किया और फिर अपने समीपस्थ द्वारपालसे कहा—'शीघ्रही सुमित्रानन्दन लक्ष्मण, महाभाग भरत और अजेय शत्रुघ्नको ले आओ।' भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर द्वारपालने प्रणाम किया और सीधा लक्ष्मणके महल में चला गया। वहाँ जा, हाथ जोड़कर जय जयकार करते हुए बोला—कुमार ! शीघ्र पधारिये, महाराज आपसे मिलना चाहते हैं। लक्ष्मणजीने कहा—अच्छा, और फिर ये उसी समय रथपर चढ़कर श्रीरामके महलकी ओर चल दिये। इसके पश्चात् द्वारपाल भरतजीके पास गया और हाथ जोड़कर जय-जयकार करते हुए विनयपूर्वक बोला—महाराज आपको देखना चाहते हैं। द्वारपालके मुँहसे भगवान् श्रीरामकी आज्ञा सुनकर भरत तत्क्षणही आसनसे खड़े होगए और पैदलही रघुनाथजीके पास चल दिए। उन्हें जाते देखकर द्वारपाल बड़ी त्वरतासे हाथ जोड़े हुए शत्रुघ्नजीके पास पहुँचा और उनसे बोला—'रघुश्रेष्ठ ! पधारिए, महाराज आपको देखना चाहते हैं। श्रीलक्ष्मणजी और परम यशस्वी भरतजी पहलेही वहाँके लिए पधार चुके हैं।' द्वारपालकी बात सुन कर शत्रुघ्नजी आसनसे उठे और पृथ्वीको ओर सिर झुकाकर रघुनाथजीके पास चल दिये। द्वारपाल रामके पास पहुँचा और हाथ जोड़कर उन्हें सभी भाइयोंके आनेकी सूचना दी। कुमारोंका आना सुन, नतमुखहो राम उदास हो द्वारपालसे बोले—तुम कुमारोंको शीघ्र मेरे पास यहाँ लिवा लाओ। क्योंकि वेही मेरे जीवनाधार हैं और वेही मेरे प्राणप्रिय हैं। रामकी आज्ञा

पाकर श्वेतवस्त्रधारी तीनों कुँवर बड़ी सावधानीसे हाथ जोड़े हुए रामके वनमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि, श्रीमहाराजका मुख शोभाहीन कमलके समान मुरझाया हुआ है। वे तत्क्षणही उनके चरणोंमें सिर रखकर सावधानीसे एक ओर खड़े होगए। श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगाया और अपने हाथोंसे उठा-उठाकर आसनोंपर बैठाया। फिर उनसे कहा---राजकुमारो! आपलोग मेरे सर्वस्व हैं, आपही मेरे जीवन हैं और आपलोगोंके दिए हुए राज्यका ही मैं पालन करता हूँ। आप सभी शास्त्रज्ञ हैं और बुद्धिकी दृष्टिसे भी बहुत प्रामाणिक हैं। अतः आप सब लोग मिलकर मेरी एक बातका अनुमोदन करें। जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा—तब तीनों भाई व्याकुल होकर बड़े ध्यानसे यह सोचने लगे कि, देखें महाराज क्या कहते हैं?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ सर्ग

भाइयोंके समक्ष सीताके अपवादको कहकर रामका लक्ष्मणको आदेश देना कि सीताको वनमें छोड़ आओ

कुमारोंके उदास हो बैठ जानेपर रामने शुष्क मुखसे कहा--भाइयों! तुम्हारा कल्याण हो। मैं जो कुछ कहूँ, उसके विपरीत मत चलना। सीताके विषयमें और मेरे प्रति पुरवासियोंका जो मत है उसे आप सब सुनें। पुरवासियों और प्रान्त-वासियोंमें मेरे विषयमें जो अपवाद फैला हुआ है वह मेरे लिए बड़ाही मर्मभेदी है। मैंने इक्ष्वाकुवंशी महानुभावोंके कुलमें जन्म लिया है और सीता भी महात्मा जनकके पवित्र कुलमें उत्पन्न हुई है। लक्ष्मण! तुमको तो यह ज्ञातही है कि, किस प्रकार रावण विजन दण्डकारण्यसे उन्हें हरकर ले गया। उसको मैंने मारभी डाला। उसके पश्चात् लंकामें ही सीताके विषयमें मेरे मनमे यह विचार हुआ था कि, इनके इतने दिनों तक यहाँ रह चुकने पर मैं इन्हें राजधानी कैसे ले जा सकूँगा। लक्ष्मण उस समय अपनी पवित्रताका परिचय देनेके लिए सीता तुम्हारे समक्षही अग्निमें प्रवेश कर-गई थी और देवताओंके सान्निध्यमें स्वयं अग्निदेवने उन्हें निर्दोष बताया था। यही नहीं, आकाशचारी वायु, चन्द्रमा और सूर्यनेभी देवताओं और ऋषियोंके समक्ष यह बात कही थी। स्वयं मेरी आत्मा-भी सीताको शुद्ध सम-

झती है। इसीसे मैं इन्हें लेकर अयोध्या आया था, परन्तु इससमय पुरवासियों और प्रान्तवासियोंमें बड़ी निन्दा होरही है। इससे मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। लोक निन्दासे मनुष्यकी बड़ी अपकीर्ति होती है। अधम लोकोंमें बास करना पड़ता है। देवताभी इसे अशुभ समझते हैं। कीर्तिमानकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। महात्माजन कीर्तिमान होनेकेही सब प्रयत्न करत हैं। हे पुरुषर्षभो! अपवादसे मैं बड़ा भयभीत होता हूँ और इसके भयसे तो मैं अपने जीवनको और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ। आप लोग देखें, मैं इस समय अकीर्तिरूपी शोक-सागरमें निमग्न हो रहा हूँ। मनुष्यकी इससे बड़ा दुःख तो मैं नहीं देखता। हे लक्ष्मण! तुम कल प्रातः ही सुमंत्रसे रथ जुतवाकर और उसपर सीताको सवार कराकर मेरे राज्यके बाहर गङ्गाजीके उसपार तमसा-तटपर जहाँ महर्षि बाल्मीकिका दिव्य आश्रम है—छोड़ आओ। उसी जन-शून्य वनमें सीताको छोड़, तुम शीघ्रही लौट आना। हे लक्ष्मण! तुम इतना मेरा कहना करो और सीताके लिए मुझसे कुछभी मत कहना। हे लक्ष्मण! अब तुम जाओ और इसके विषयमें कोई सोच-विचार मत करो। यदि इसमें तुम किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित करोगे तो उससे मुझे बड़ी अप्रसन्नता होगी। मैं आपलोगोंको अपने चरणोंकी और जीवनकी शपथ दिलाता हूँ कि, मेरे इस निर्णयके विरुद्ध आप न तो कुछ कहें और न किसी प्रकारकी प्रार्थना करें। यदि आप मेरा सम्मान करते हैं और मेरी आज्ञामें रहना चाहते हैं तो अब सीताको यहाँसे ले जायें और मेरी आज्ञाका पालन करें। सीताने भी पहले मुझसे कहा था कि 'मैं गङ्गातटपर ऋषियोंके आश्रम देखना चाहता हूँ।' अतः उनकी यह इच्छा पूर्ण करो।' इसप्रकार कहते-कहते श्रीरघुनाथजीके नेत्र अश्रुपूर्ण होगए और फिर अपने भाइयोंके साथ वे महलमें चले गये। उनका हृदय शोकसन्तप्त होगया और वे हाथीकी समान दीर्घश्वास लेने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४५॥

छियालीसवाँ सर्ग

जब रात्रि व्यतीत हुई और प्रातः काल हुआ, तब उदास और शुष्क चित्त लक्ष्मणने सुमंत्रसे कहा—'हे सारथे! शीघ्रही रथ लाओ। महाराजकी आज्ञासे मैं सीताजीको पुण्यकर्मा महर्षियोंके आश्रमोंपर ले जाऊँगा। सुमन्त्र

'जो आज्ञा' कहकर शीघ्रही उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ एक रथ ले आये। उसपर बड़ाही सुन्दर और सुखप्रद आसन बिछा था। फिर उन्होंने लक्ष्मणजीसे कहा—'प्रभो! रथ प्रस्तुत है; अब जो कुछ करना हो, कीजिये।' सुमन्त्रके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणजी राजमहलमें गये और सीताजीके पास जाकर बोले—'देवि! आपने महाराजसे मुनियोंके आश्रमोंपर जानेकी इच्छा की थी और महाराजने उसके लिए प्रबन्ध करनेका वचन दिया था, अतः अब महाराजकी आज्ञासे शीघ्रही मेरे साथ गंगा तटपर ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंमें चलें। मैं आपको मुनिजनसेवित वनोंमें ले चलूँगा।' महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर सीताजी बड़ी प्रसन्न हुईं और जानेको तैयार हो गईं। उन्होंने (मुनि-पत्नियोंको देनेके लिए) मूल्यवान् वस्त्र और विविध रत्न अपने साथ लिए और लक्ष्मणसे कहा—'ये सब बहुमूल्य आभूषण, वस्त्र और रत्न आदि मैं मुनि-पत्नियोंको दूँगी।' लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर सीताजीको रथपर चढ़ाया और रामाज्ञाको स्मरणकर शीघ्रही रथमें बैठकर चल दिये। उस समय सीताजीने कान्तिवान् लक्ष्मणसे कहा—'हे रघुनन्दन! इस यात्रामें मुझे बहुतसे अपशकुन दिखाई दे रहे हैं, मेरे वाम नेत्र फड़क रहे हैं, हृदय व्याकुल-सा हो रहा है, मन व्यथित हो अधीरता बढ़ा रहा है और समस्त पृथ्वी शून्य-सी ज्ञात हो रही है। भ्रातृवत्सल लक्ष्मण! तुम्हारे भाई सकुशल रहें, मेरी सब सासुएँ सानन्द रहें तथा नगर और जनपदमें भी सब लोग सकुशल रहें।' सीताने हाथ जोड़कर देवताओंसे ऐसी प्रार्थनाकी। लक्ष्मणजीनेभी सीताके अपशकुनोंका अर्थ समझते हुए उन्होंने नत सिरहो प्रणाम किया और कुम्हलाते हुए हृदयसे कहा—'कल्याण हो।' तदनन्तर जाते-जाते लक्ष्मण गोमतीके तीरवर्ती आश्रममें पहुँचे और रातभर वहीं विश्राम किये। प्रातः होनेपर लक्ष्मणने सुमंत्रसे कहा—'शीघ्र रथ जोतो, आज मैं गंगाका जल शिरोधार्य करूँगा।' आज्ञा पातेही सारथिने घोड़ोंको रथमें जोत दिया और फिर हाथ जोड़कर सीताजीसे कहा—'रथपर बिराजिये।' सारथिके प्रार्थना करनेपर सीताजी रथपर जा बैठीं। इस प्रकार लक्ष्मण और सारथिके साथ सीताजी मध्याह्नके समय पापनाशिनी गंगाके तटपर पहुँचीं। गंगाकी धारा देखकर लक्ष्मणजी आतुर होकर जोर-जोरसे रोने लगे। तब

उन्हें व्याकुल देखकर सीता बोलीं—लक्ष्मण ! गंगा तटपर आकर तुम रोने क्यों लगे ? मैं तो बहुत दिनोंसे यहाँ आनेके लिए उत्सुक थी। अब हर्षका समय आनेपर तुम मुझे दुःखी क्यों कररहे हो ? हे पुरुषर्षभ ! श्रीरामके पास तो तुम सदाही रहते हो । अब उनसे दो दिनका बिछोह होनेपर हीं इतने शोकाकुल हो गये। लक्ष्मण ! वे तो मुझेभी प्राणोंसेभी बढ़कर प्रिय हैं; परन्तु देखो, मैं तो इस प्रकार शोकातुर नहीं हूँ। तुम ऐसी नादानी मत करो। मुझे गङ्गाके उस पार ले चलो और तपस्वियोंके दर्शन कराओ। मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी। फिर मुनियोंका यथायोग्य अभिवादनकर वहाँ एक रात रह कर हम अयोध्या लौट चलेंगे। कमलनयन श्रीरामके दर्शनोंके लिए तो मेरा मन भी उत्कण्ठित हो रहा है। सीताके ये वचन सुनकर लक्ष्मणने अपने नेत्र पोंछ लिए और नाविकोंको बुलाया। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा–महाराज ! नौका प्रस्तुत है। फिर तो लक्ष्मणने उस विस्तृत और सुसज्जित नौकापर पहले सीताको चढ़ाया और फिर स्वयं चढ़े।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४६॥

सैंतालीसवाँ सर्ग

अब लक्ष्मणने सुमन्त्रको रथके साथ वहीं ठहरनेको कह दिया, तथा नाववालोंसे कहा–'चलो।' गंगाके उस तटपर पहुँचते ही उनके नेत्र अश्रु पूर्ण हो गये। उन्होंने सीतासे हाथ जोड़कर कहा–'सीते ! मेरे हृदयमें सबसे कठिन दुःख यह हो रहा है कि, आज श्रीरघुनाथजीने बुद्धिमान् होकरभी मुझे वह कार्य दिया है, जिसके कारण लोकमें मेरी निन्दा होगी। इससे तो मेरा मरनाही श्रेयस्कर था, 'हे देवि ! आप प्रसन्न हों, मुझे दोष न दें।' यह कहकर और हाथ जोड़कर लक्ष्मणजी पृथ्वीपर गिर गये। तब लक्ष्मणजी रो रहे हैं और प्राञ्जलिभूत होकर अपनी मृत्यु चाहते हैं—यह देखकर सीता बहुत व्याकुल हो गयीं और उन्होंने उनसे कहा—लक्ष्मण ! क्या बात है, मैं तो कुछ नहीं समझ रही हूँ ! महाराज तो कुशलसे हैं न ? मैं तुम्हें महाराजकीही शपथ देकर पूछती हूँ–जिस बातसे तुम्हें इतना सन्ताप हो रहा है, यह सब मुझसे सत्य-सत्य कहो। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ।' सीताके इस प्रकार शपथ दिलानेपर लक्ष्मण अत्यन्त दीन हो, नतमुख किए, गद्गद कण्ठसे

बोले—जनकनन्दिनी ! राजधानी और राज्यभरमें तुम्हारे सम्बन्धमें जो महाभयंकर अपवाद फैला हुआ है, उसे सभामें सुनकर श्रीरामजी बड़े दुःखित हुए और वे मुझसे सब बातें कहकर महलमें चले गये। आप मेरे समक्ष निर्दोष प्रमाणित हो चुकी हैं, तो भी महाराजने लोकापवादके भयसे आपको त्याग दिया है। आप कोई और बात न समझें। अब महाराजकी आज्ञासे और आपकी भी ऐसी ही इच्छा है—यह समझकर मैं आश्रमोंके पास ले जाकर आपको वहीं छोड़ दूँगा।' यहीं श्रीगंगाजीके तटपर महर्षियोंका तपोवन है। आप विषाद न करें। यहाँ परम यशस्वी विप्रवर वाल्मीकिजी निवास करते हैं। ये मेरे पिता दशरथजीके घनिष्ठ मित्र हैं। उनके आश्रममें आप सुखपूर्वक निवास करें। आप रामको हृदयमें रखकर सर्वदा पातिव्रत्यका पालन करें। हे देवि ! ऐसा करनेसे आपका परम कल्याण होगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ सर्ग

लक्ष्मणके इन दारुण वचनोंको सुनकर जनकात्मजा वैदेहीजी अत्यन्त दुःखित हुईं और पृथ्वीपर गिर पड़ीं। वे कुछ क्षण अचेत रहकर उठीं और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे एवं दीन हो लक्ष्मणसे बोलीं—हा लक्ष्मण ! क्या विधाताने मुझे दुःख भोगनेहीके लिए बनाया है जो वह दुःख आज मूर्त्तरूप दृष्टि आ रहा है। नहीं ज्ञात कि, पूर्व जन्ममें मैंने कौन-सा पाप किया था, अथवा किसका स्त्रीसे वियोग करवाया था, जिसके फल-स्वरूप मेरे शुद्ध चरित्रा और पतिव्रता होनेपर भी, मेरे पतिसे मेरा वियोग करवाया जाता है। पहले भी श्रीरामजीके साथ वनमें वासकर मैंने रामके चरणोंकी सेवाकी; किन्तु हे लक्ष्मण ! आज तो कुछ और ही स्थिति है। यदि मुनिजन मुझसे पूछेंगे कि 'तुमने क्या अपराध किया था, किस कारणसे महात्मा श्रीरामने तुम्हें त्यागा है ?' तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ? इस समय मैं गंगाजीमें डूबकर अपने प्राण भी नहीं त्याग कर सकती। क्योंकि ऐसा करनेसे मेरे पतिदेवका राजवंश नष्ट हो जायगा। किन्तु लक्ष्मण ! तुम तो वैसा ही करो, जैसी महाराजने तुम्हें आज्ञा दी है। तुम मुझ दुखियाको छोड़ जाओ। तुम्हें तो राजाज्ञाकाही पालन करना चाहिये। अब मेरी बात सुनो—'मेरी सब सासुओं

को हाथ जोड़कर और सिर नवाकर प्रणाम करना तथा महाराजसे और अन्य सबसे भी नत सिर हो मेरी कुशल कहना। महाराज धर्ममें सावधान रहनेवाले हैं। उनसे कहना—रघुनन्दन ! वास्तवमें तो आपको ज्ञात ही है कि सीता शुद्ध-चरित्र है, सर्वदाही आपके हितमें तत्पर रहती है और आपके प्रति प्रेम एवं भक्ति रखनेवाली हैं। आपने केवल लोकापवादसे भयकर ही मुझे त्यागा है। अतः आपकी जो निन्दा हो रही है, वह मुझे दूर करनी होगी। क्योंकि आपही मेरे परमाश्रय दाता हैं।' उनसे यह भी कहना कि 'आप धर्मपूर्वक बड़ी सावधानीसे पुरजनोंके साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा अपने भ्राताओंसे करते हैं। पुरवासियोंके साथ धर्मानुकूल आचरण करना ही आपका परम धर्म है और इसीसे आपको उत्तम यशकी प्राप्ति होगी। पुरुषोत्तम् ! अपने शरीरके लिए तो मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है। अतः पुरवासियोंका मेरे विषयमें जैसा अपवाद है वह भले ही बना रहे। स्त्रीके लिए तो पति ही उसका देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है; इसलिए उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये। मेरी ओरसे ये सब बातें जाकर तुम महाराजसे कह देना। अब तुम जाओ और यह भी देखते जाओ कि, इस समय मैं गर्भवती हूँ।' सीताके इन वचनोंको सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त कातर हो गये। उन्होंने पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया, किन्तु मुँहसे कोई शब्द न निकला। फिर उनकी प्रदक्षिणा करके जोर-जोरसे रोते हुए कुछ देरतक सोचकर बोले—हे साध्वि ! मुझे आप क्या कहती हैं ? इसके पहले तो मैंने कभी आपका रूप देखा भी नहीं है, केवल आपके चरणोंका ही दर्शन किए हैं। अब श्रीरामकी अनुपस्थितिमें इस निर्जन बनमें आपको कैसे देख सकता हूँ? यह कहकर उन्होंने सीताको प्रणाम किया और नाव पर चढ़ गए। नावपर चढ़कर उन्होंने मल्लाहको उसे चलानेकी आज्ञा दी और वे शोकभारसे पीड़ित गंगाके उत्तर तटपर आ पहुँचे। दुःखके कारण वे अचेत हो रहे थे। फिर भी शीघ्रही रथपर चढ़ गए और बार-बार घूमकर नदीके दूसरे तटपर अनाथकी नाईं बिलखती हुई सीताकी ओर देखते हुए चल दिए। सीताजीने जब देखा कि

और लक्ष्मण दूर चले गए, तब वे सहसा व्यग्र हो शोक सागरमें निमग्न हो गयीं। अब उन्हें कोई भी अपना रक्षक दिखाई न पड़ा, जिससे वे दुःखातुर हो जोर-जोरसे विलाप करने लगीं।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ सर्ग

महर्षि वाल्मीकिका आकर सीताको अपने आश्रममें लिवा ले जाना

उस स्थानके निकटही कुछ मुनिकुमार थे। जब उन्होंने सीताको रोते देखा तो वे सब दौड़कर महाबुद्धिशाली वाल्मीकिजीके पास गए। उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणामकर उन्हें सीताके रोनेके विषयमें सब बातें बतलायीं। वे बोले—'भगवन्! आप चलकर देख सकते हैं। हमने नदीके तटपर एक दुखिया स्त्रीको रोते देखा है। उसे पहले हमने कभी नहीं देखा। वह साक्षात् लक्ष्मीके समान है। वह अत्यन्त शोकाकुल है और अनाथकी न्याईं छटपटा रही है।' यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजो सीताके समीप गये और उन्हें अपने तेजसे आह्लादित करते हुए मधुरवाणीमें बोले—'पतिव्रते! तुम राजा दशरथकी पुत्रवधू, श्रीरामकी प्रिय महारानी और राजा जनककी पुत्री हो, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। जिस समय तुम यहाँ आ रही थीं, तभी अपनी धर्म-समाधिके द्वारा मुझे ज्ञात हो गया। त्रिलोकीमें जो कुछ होरहा है, वह सब मुझे ज्ञात है। मैं तपोमयी दृष्टिसे जानता हूँ कि, तुम निष्पाप हो। हे वैदेहि! मेरे आश्रमके समीपही कुछ तपस्विनी स्त्रियाँ तप कर रही हैं, वे अपनी पुत्रीके समान तुम्हारा पालन करेंगी। यह अर्घ्य ले और अपने मन को सावधानकर सन्ताप रहित हो जा और जिसप्रकार तू अपने गृहमें रहती थी, उसीप्रकार यहाँ रह। अब दुःखी मत हो।' मुनिवर वाल्मीकिका यह अद्भुत भाषण सुनकर सीताने उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'जो आज्ञा।' फिर मुनिके चलनेपर वे हाथ जोड़े उनके पीछे चलीं। मुनि वाल्मीकिको सीताके साथ आते देख मुनि-पत्नियाँ उनके पास आयीं और उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोलीं—मुनिवर! आपका स्वागत है। हम सब आपको प्रणाम करती हैं। कहिए, हम आपकी क्या सेवा करें? उनके ये वचन सुनकर वाल्मीकिजी बोले-ये महामति श्रीरामकी

धर्मपत्नी सीता यहाँ आयी हैं। ये राजा दशरथकी पुत्रवधू, महाराज जनककी पुत्री और बड़ी पतिव्रता हैं। इनको कोई अपराध न होनेपर भी पति देवने इन्हें त्याग दिया है। अब मुझेही इनका पालन करना है। अतः आप सब इनपर अत्यन्त स्नेह-दृष्टि रखें। मेरे कहनेसे तथा बड़े कुलको होनेसे ये आप लोगों में आपलोगोंकी विशेष आदरणीया हैं।' इसप्रकार महायशस्वी और महातपस्वी वाल्मीकिजी उन तापसियोंको भलीभाँति समझा और जानकीको उन्हें सौंप, शिष्यों सहित अपने आश्रममें चले आये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

पचासवाँ सर्ग

दुःखी लक्ष्मण और सुमन्त्रकी वार्त्तालाप

इधर दीनचित्त लक्ष्मणने जब यह देखा कि, मुनिवर वाल्मीकिजी सीता को अपने आश्रममें ले गये हैं, तब उन्हें बड़ाही सन्ताप हुआ। उन्होंने राज-मन्त्री और सारथि सुमन्त्रसे कहा—'सारथे! देखो, सीताजीके सन्तापका वृतान्त सुनकर श्रीरामजीको बड़ा शोक होगा। इससे बढ़कर श्रीराघवको क्या दुःख होगा कि, महाराजको अपनी शुद्ध चरित्रा पत्नी जानकीको त्यागनी पड़ी। हे सारथे! जानकीका यह वियोग महाराजको अदृष्टके फलके समान प्राप्त हुआ है। मुझे तो इस बातका अब निश्चय हो गया है कि, दैवको कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता है। देखो, जो क्रोधमें भरकर देवता, गन्धर्व, दैत्य और राक्षस सबका नाश कर सकते हैं, वे भी दैवके वशीभूत हुए देख पड़ते हैं। देखो न, प्रथम तो उन्होंने पिताकी आज्ञासे चौदहवर्ष निर्जन दण्डकवनमें वास किया; परन्तु उससेभी अधिक दुःखकी बात यह हुई कि, उन्हें सीताजीको निर्वासित करना पड़ा। सीताके विषयमें हीन वचन बोलनेवाले पुरवासियोंके कारणही ऐसा कीर्तिनाशक कार्य करके श्रीरामचन्द्र-जीने कौन-सा धर्म अर्जन किया? लक्ष्मणकी ऐसीही अनेक प्रकारकी वार्त्ता सुनकर बुद्धिमान् सुमन्त्रने श्रद्धापूर्वक ये वचन कहा—सुमित्रानन्दन! सीता के लिए आप सन्ताप न करें। यह बात ब्राह्मणोंने आपके समक्षही ज्ञात कर ली थी। उस समय दुर्वासाजीकी कही हुई यह बात आपसे या भरतजीसे

कहनेके लिए महाराजने मुझे मना कर दिया था। हे सौम्य ! यद्यपि यह बात मुझे आपके समक्ष कहनी तो न चाहिए, तथापि यदि आप सुननेके लिए उत्सुक हों तो सुनिये। परन्तु कुमार भरत या शत्रुघ्नजीके आगे आप यह बात न कहें। सुमन्त्रके ये गम्भीर अर्थयुक्त वचन सुनकर लक्ष्मण बोले--सुमन्त्रजी ! जो सत्य बात है, वह अवश्य कहो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका पचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

॥ उत्तरकाण्ड पूर्वार्द्ध समाप्त ॥

श्रीगणेशायनमः

श्रीमद्वाल्मीकिमुनि प्रणीत—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा

सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध

इक्यावनवाँ सर्ग

सुमन्त्रका लक्ष्मणको सम्बोधन

महात्मा लक्ष्मणके इस आग्रहपर सूतने उन ऋषिश्रेष्ठका वचन इस-प्रकार सुनना आरंभ किया—'हे लक्ष्मण! पूर्वकालमें एक बार अत्रिके पुत्र दुर्वासा वर्षा ऋतुके चार मास भर वशिष्ठके पवित्र आश्रममें जाकर रहे। उन्हीं दिनों एक बार तुम्हारे तेजस्वी एवं महायशस्वी पिता भी अपने कुल पुरोहित वसिष्ठजीके दर्शन करनेकी इच्छासे उस आश्रममें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि वसिष्ठजीकी बाईं ओर सूर्यसे तेजस्वी दुर्वासा मुनि विराज-मान हैं। तब राजाने दोनों ही मुनिवरोंका अत्यन्त विनयके साथ अभिवादन किया। उन्होंने आसन, पाद्य और फल-मूल आदिके द्वारा राजाका सत्कार किया तथा महाराज भी कुछ समय उनके साथ वहीं रहे। वहाँ मध्यान्हके समय उन महर्षियोंमें विभिन्न मधुर कथाएँ हुआ करती थीं। एक दिन किसी कथाके प्रसङ्गसेही महाराजने हाथ जोड़कर अभिनन्दनपूर्वक तपोधन दुर्वासाजी से कहा--भगवन्! मेरा यश कितने समय तक चलेगा? मेरे रामकी कितनी आयु है तथा और सब पुत्रोंकी भी कितनी आयु है? रामके जो पुत्र होंगे, उनकी आयु कितनी होगी? कृपया मेरे वंशके विषयमें ये सब बात बतलाइये' दशरथजीके ये वचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासाजी कहने लगे--राजन्! सुनिये। एक प्राचीन घटना है। एकबार देवासुर-संग्राममें असुरोंने देवताओंसे पीड़ित होकर भृगुपत्नीकी शरण ली और उससे अभयदान पाकर वे वहाँ निश्चिन्त रहने लगे। तब भृगुपत्नीने दैत्योंको आश्रय दिया है---यह देख-कर देवेश्वर भगवान् विष्णुने अपने पैनी धारवाले चक्रसे भृगुपत्नीका सिर

काट लिया। अपनी पत्नीका वध हुआ देखो। भृगुजीने कुपित होकर विष्णुजी को शाप दे दिया कि—हे जनार्दन! मेरी स्त्री वधके योग्य नहीं थी, फिर भी तुमने उसे मारा है; इसलिए तुम्हें मानवलोक में जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ तुम अनेकों वर्षोंतक पत्नीका वियोगी रहोगे।' किन्तु फिर इसप्रकार शाप देनेके कारण उनके चित्तको कष्ट हुआ और वे श्रीविष्णुजीकी आराधना करने लगे। तब भक्तवत्सल भगवान्‌ने उनके तपसे प्रसन्न होकर कहा—'लोकोंका प्रिय करनेके उद्देश्यसे मैं तुम्हारे शापको ग्रहण करता हूँ।' इसप्रकार महातेजस्वी भगवान् विष्णुको भृगुऋषिका शाप हुआ था। इस समय वे ही तीनों लोकोंमें 'राम' नामसे विख्यात आपके पुत्र हुए हैं। श्रीराम बहुत दिनों तक अयोध्याका राज्य करेंगे। उनके अनुयायी भी बहुत सुखी और धन-धान्य सम्पन्न रहेंगे। वे यहाँ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके फिर ब्रह्मलोकको चले जायँगे। वे बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अश्वमेध यज्ञ करेंगे तथा अनेकों राजवंशोंकी स्थापना करेंगे। सीताके गर्भसे उनके दो पुत्र होंगे। ये सब बातें कहकर महामुनि दुर्वासा जी चुप हो गये। उनके चुप हो जानेपर महाराज भी दोनों मुनीश्वरोंको प्रणाम करके अयोध्यामें लौट आये। इसप्रकार दुर्वासा मुनिकी कही हुई ये सब बातें मैंने उस समय सुनी थीं और तबसे इनको अपने हृदयमें रखे हुए था। अतः उनकी भविष्यवाणी अन्यथा नहीं हो सकती। दुर्वासाजीके कथनानुसार श्रीराघव सीतासे उत्पन्न पुत्रोंका अयोध्यामें ही राजतिलक करेंगे—अन्यत्र नहीं। हे नरोत्तम! इसलिए तुम राम और सीताके लिए सन्ताप न करो और अपने मनको दृढ़ करो। क्योंकि होनी विना हुए नहीं रहती। इसप्रकार सूतकी परम अद्भुत बचनोंको सुनकर लक्ष्मणजी बड़े हर्षित हो धन्य-धन्य कहने लगे और संध्या समय केशिनी नगरके समीप आकर ठहर गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

बावनवाँ सर्ग

श्रीलक्ष्मणका सीताको बनमें छोड़कर उसकी रामको सूचना देना

लक्ष्मणजी केशिनी नगरीमें एक रात्रि वासकर, प्रातः होते ही वहाँसे चल दिये। महारथी लक्ष्मणजी दोपहर होते-होते रत्नों अथवा श्रेष्ठ वस्तुअ

से परिपूर्ण अयोध्यानगरीमें आ पहुँचे। उस समय लक्ष्मण बड़े दुःखी हो मनही मन यह सोचते कि, श्रीरामजीके चरणोंमें पहुँचकर मैं क्या कहूँगा? इतनेमें उनके श्वेत भवनके समीप आ पहुँचे। द्वारपर पहुँच लक्ष्मण रथसे उतर पड़े और नतमुख किए अबाधगतिसे राजभवनमें प्रविष्ट हो गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि श्रीराघव दुखी हो नेत्रोंमें आँसू भरे एक उत्तम आसनपर आसीन हैं। दुःखी लक्ष्मणने उनके युगल चरणोंमें सिर नवा उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—महाराज! आपके आज्ञानुसार श्रीगङ्गाके तटपर सीताको वाल्मीकि मुनिके आश्रमके समीप छोड़ आया। हे नरव्याघ्र! अब आप चिन्ता न करें। क्योंकि कालकी गति ही कुछ ऐसी है। आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष शोकके बशवर्ती नहीं होते। संपूर्ण ऐश्वर्य नाशवान् है। उत्थानका ही नाम पतन होता है। संयोगका अन्त वियोग और जीवनका अन्त मरणही है। अतएव एक न एक दिन पुत्रों, कलत्रों और मित्रों एवं धन ऐश्वर्यसे तो पृथक होना ही पड़ता है। अतः इनमें अनुरक्त होना उचित नहीं। हे काकुत्स्थ! आप तो स्वयं अपनेको समझाने और अपने मनको धैर्य बँधानेमें सर्वथा समर्थ हैं। यही नहीं, किंतु आपतो समस्त लोकोंको समझा बुझा सकते हैं। फिर आपके लिए अपना शोक निवारण करना कोई बड़ी बात नहीं है। हे पुरुषर्षभ! आप जैसे महानुभाव मोहको नहीं प्राप्त होते। अब यदि आप इस प्रकार दुःखी या उदास होंगे, तो फिर लोग आपकी निन्दा करेंगे।' महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर मित्रवत्सल राम सप्रेम लक्ष्मणसे बोले—नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! तुम्हारा कहना यथार्थ है। तुम जानकीको गंगा तटपर छोड़ आये, मैं तुम्हारे इस कार्यसे तुमपर सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे इस कथनसे मेरा सन्ताप दूर हुआ। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारे इन सुन्दर वाक्योंके लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका बावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ सर्ग

राजधर्मके प्रसंगमें राम द्वारा नृगोपाख्यान वर्णन

हे सौम्य। तुम्हारे जैसे महाबुद्धिमान् बन्धुका मिलना अत्यंत दुर्लभ है। हे शुभलक्षणोंसे सम्पन्न! अब तुम मेरे मनकी कुछ और बात सुनो और

तदनुसार कार्य करो। आज चार दिन हुए। मैंने पुरजनोंका कोई कार्य नहीं किया, जिससे मेरे मर्मस्थल विदीर्ण हो रहे हैं। हे पुरुषर्षभ! अब तुम सब कार्यार्थियोंसे किंवा वे स्त्री हों या पुरुष और पुरोहितजी तथा मंत्रियोंको बुला कर मेरे पास भेज दो। क्योंकि जो राजा प्रतिदिन नगरवासियोंका कार्य नहीं करता वह घोर नरकगामी होता है। पुराकालमें राजा नृग बड़े यशस्वी, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, बड़े पवित्र और पृथ्वी-पालक थे। एकबार उन्होंने पुष्करक्षेत्रमें बछड़ोंसे भूषित स्वर्ण-भूषित एक करोड़ गौएँ ब्राह्मणोंको दान दी थी! हे अनघ! जिन गौओंको राजाने दानके लिए मँगवायी थी, उनमें भूलसे एक गौ किसी एक दरिद्री अग्निहोत्री एवं उञ्छवृत्तिसे जीविकावाले ब्राह्मणकी गौओंमें आकर मिल गई। वह ब्राह्मण भूखा-प्यासा रह अपनी खोई हुई गौको इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। कई वर्षोंतक उसने सब राज्यमें घूम-फिरकर गौकी खोजकी; पर गौका कहीं पता न लगा। एक दिन वह हरिद्वारके समीप कनखलमें पहुँचा जहाँ उसने एक ब्राह्मणके घरमें अपनी गौको दुर्बल बछड़े सहित देखा। ब्रह्मणने उस गौ का नाम शबला रखा था। पहुँचतेही उसने जो 'शबला! आ-आ' कहकर पुकारा तो वह उस ब्राह्मणका कंठ-स्वर पहचानकर उसके पीछे चल पड़ी। तब जो ब्राह्मण उसे पाल रहा था गौको जाते देख वहभी उसके पीछे दौड़ा। उसके समीप पहुँचकर बोला—अहो ऋषि! यह गौ तो मेरी है। यह तो महाराज नृगसे दानमें प्राप्त हुई है। इस प्रकार दोनों पण्डित ब्राह्मणोंमें परस्पर विवाद होने लगा। फिर वह दोनों लड़ते-झगड़ते महाराज नृगके पास चले। राजधानीमें पहुँच द्वारपालकी रोकसे राजा तक न पहुँच नगरमें ही ठहर गये। कई दिवस और रात्रि व्यतीत हुई। फिर तो वे ब्राह्मण अति कुपित हो राजाको शाप दे दिये कि, तू कार्यार्थियों को दर्शन नहीं देता, अतएव तू गिरगिट होकर ऐसे स्थानमें रहेगा जहाँ कोई तुझे देख न सकेगा। सैकड़ों हजारों वर्षोंतक तू एक अन्धे कुएँमें गिरगिट होकर पड़ा रहेगा और जब इस धराधामपर भगवान् विष्णु मनुष्य शरीर धारणकर वासुदेव नामसे यदुकुलमें अवतीर्ण होंगे, तब उनके द्वारा इस शापसे मुक्त होगा। उस समय तेरा उद्धार होगा। कलियुगके आरंभमें भूमि भार-हरण हेतु महावली नर-नारायणका अवतार होगा। महाराज नृगको इस

प्रकार शाप देकर दोनों शान्त हुए। फिर उस वृद्ध गौको उन दोनोंने मिलकर किसी ब्राह्मणको दानकर दी। राजा नृग ब्राह्मणोंके शापसे गिरगिट योनि में अब-तक पड़े शापका फल भोगर रहे हैं। हे लक्ष्मण! यह है कार्यार्थियों का विमर्दन, जिसे न निवटानेसे राजाको दोष होता है। कार्यार्थियोंको इसी क्षण मुझसे दर्शन कराओ। सुकृत-कार्य का फल तो राजाको प्राप्त होता है। लक्ष्मण! तुम द्वारपर जाकर उनकी प्रतीक्षा करो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त॥ ५३॥

चौवनवाँ सर्ग

नृगोपाख्यान

श्रीरामचन्द्रके इन बचनोंको सुनकर परमार्थ-ज्ञाता लक्ष्मण प्राञ्जलिभूत हो बोले—महाराज! ऐसे अपराधके लिए उन ब्राह्मणोंने राजा नृगको यह यमदण्ड-सा कठोर शाप दे डाला। परन्तु हे महाराज! यह तो कहिये कि, उस शापको सुनकर राजा नृगने उन ब्राह्मणों से क्या कहा? लक्ष्मणके इस पूछनेपर राघव फिर कहने लगे। उन्होंने कहा, उन दोनों ब्राह्मणोंके चले जाने पर, जब महाराजको उनके शापका वृतान्त ज्ञात हुआ, तो उन्होंने अपने पुरोहित, मंत्रियों और प्रजाजनों, मुखियों अथवा महाजनोंको बुला भेजा और अत्यन्त दुःखित होकर उनसे कहा—कि, आप सबलोग सावधान हो मेरे बचन सुनें। देवर्षि नारद और पर्वत मुनि मुझसे ब्राह्मणोंकी महद्भय बात सुनाकर वायुरूप होकर ब्रह्मलोक गए हैं। अब मैं अपने 'वसु' नामक राज-कुमारको राज-तिलककर शापका फल भोगने जाऊँ तो यही उत्तम है। शिल्पिगण एक यथा-सुखस्पर्शी गड्ढा खोदें। मैं उसीमें पड़ा ब्राह्मणोंका शाप भोगूँ। मेरे लिए तीन गड्ढे निर्मित हों। उसीमें एक तो वर्षा-कालके लिए हो, दूसरा शीत-कालके लिए, तीसरा ग्रीष्म-कालके लिए, सुखस्पर्शी समय व्यतीत करनेके उपयुक्त हो। वहाँ बहुतसे फलवाले वृक्ष और पुष्पित लताएँ लगी हों। वह गर्त सर्वत्र ऐसा रमणीय हो कि, मैं शापान्त तक सुमुख रह सकूँ। उस गर्तसे दो कोस तक सुगन्धित पुष्पवाले वृक्ष लगा दिए जायँ। इस प्रकार सबको सब समझा और कुमार वसुको राजतिलक दे उसे राजधर्म के बहुत उपदेश दिए और कहा कि, ब्राह्मणोंके शापसे मेरा पतन हुआ है।

तुम सर्वदा धर्मतत्पर रह अपने क्षात्रधर्मका पालन करना। मेरे अपराधानुसा
ही ब्राह्मणोंने रोषकर मुझे शापित किया है। तुम मेरे लिए सन्तापित
होओ। कृतान्त बड़ा ही कुशल है। उसीने मेरी यह दुर्गतिकी है। होन
अवश्य होकर रहती है। वह जहाँ चाहती है वहाँ पहुँचा देती है। प्राप्त होनेवाल
अवश्य प्राप्त होती और जानेवाली अवश्य चली जाती है। सुख-दुख विन
भोगे नहीं जाते और वे हैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फल। इसलिए हे वत्स! तु
दुःखको न प्राप्त होना। हे लक्ष्मण! महायशस्वी राजा नृग अपने पुत्रक
इस प्रकार समझाकर उस सुन्दर गर्तमें वास करने चले। वह अनेक रत्नों
विभूषित था। राजा नृगने उस महागर्तमें प्रवेश किया। उसमें उन्हों
ब्राह्मणोंके शापका फल भोगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥५४॥

पचपनवाँ सर्ग

महाराज निमिका उपाख्यान

इसप्रकार राजा नृगके शापकी स-विस्तृत कथा सुनाकर श्रीरामचन्द्रजी
लक्ष्मणसे बोले—अब यदि कुछ और सुनना चाहते हो तो एक वृतान्त और
सुनाऊँ। लक्ष्मणने सप्रम इच्छा प्रकटकी। इक्ष्वाकुनन्दनने कहा—लक्ष्मण!
महाराज इक्ष्वाकुके बारहवें पुत्र राजा 'निमि' बड़े प्रतापी और धर्मनिष्ठ थे
जिन्होंने गौतामाश्रमके समीप वैजयन्त नामक नगर बसाया था। उसीमें
राजा निमि निवास करते थे। उसमें निवास करते हुए उनके मनमें यह आया
कि, मैं अपने पिताको प्रसन्न करनेके लिए कोई बड़ा यज्ञ करूँ। इसके लिए
उन्होंने मनु-पुत्र अपने पिता इक्ष्वाकुसे पूछकर उनकी आज्ञा प्राप्त की। वशि-
ष्ठजीको यज्ञका प्रमुख वरण किया। तदनन्तर अत्रि, अङ्गिरा और तपोधन
भृगुका वरण राजाने की। पश्चात् वशिष्ठजीने राजर्षि निमिसे कहा कि, आपसे
प्रथमही मैं इन्द्रके यहाँ वरण हूँ। उनका यज्ञ कराकर, आपका यज्ञ कराऊँगा।
यह कहकर वशिष्ठजी इन्द्रके यहाँ यज्ञ कराने लगे। इधर महाराज निमिने
वसिष्ठजीके स्थानमें, श्रीगौतमजीको यज्ञ करानेके लिए वरणकर, यज्ञ आरंभ
किया। उन्होंने सब ब्राह्मणोंको एकत्रकर नगाधिप (हिमालय) के निकट और
अपने पुरके समीपही यज्ञ करना आरंभ किया। पाँच हजार वर्षोंतक यज्ञ

दीक्षित रहे। उसी अवधिमें इन्द्रका यज्ञ पूर्ण कराकर भगवान् वशिष्ठ ऋषि भी आ गये और देखा कि, गौतमजी राजाका यज्ञ पूर्ण करा चुके हैं। यह देखतेही वशिष्ठजी क्रोध-पूर्ण हो गए, किन्तु राजासे भेंट करनेके लिए वहाँ कुछ देर तक खड़े रहे। उधर राजाको नींद कष्ट दे रही थी, जिससे वे सो गए। इसपर वशिष्ठजी औरही कुपित हुए। राजासे भेंट न होनेके क्रोधसे उन्होंने कहा—राजन्! तुमने मेरे आगमनकी प्रतीक्षा न की और यज्ञके लिए अन्यको वरणकर दिया। यह तुमने मेरा अपमान किया है। अतः तुम्हारा शरीर निर्भूत हो चेतनाशून्य हो जायगा। राजाने जागकर वह शाप-व्यवस्था सुनी और उन्होंनेभी अत्यंत क्रोधकिया तथा महर्षि वशिष्ठको शाप देनेको उद्यत हुए। उन्होंने कहा—आपने मुझ सोते हुए पर शापाग्नि फेंकी है। अतएव तुमभी निर्जीव हो जाओगे। नृपद्विजेन्द्रोंने एक दूसरेको शापित किया। दोनोंही समान प्रभाववाले थे। तत्क्षणही शरीर-रहित हो गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ सर्ग

निमि-वशिष्ठोपाख्यान

रामसे भाषित इस कथाको सुनकर शत्रुहन्ता लक्ष्मण प्राञ्जलिभूत हो प्रदीप्त तेजस्वी रामसे बोले—हे राघव! वे राजा और वशिष्ठजी तो देवताओं के समान थे, फिर देह-रहित होकर कैसे गिर पड़े? इसपर श्रीरामने कहा—हे लक्ष्मण! वे दोनोंही धर्मात्मा थे जिन्होंने परस्परके शापसे देहका त्यागकर वायुरूप धारणकर लिया। अपना स्थूल शरीर त्याग वशिष्ठजी स्थूल शरीर प्राप्त्यर्थ अपने पिता ब्रह्माजीके पास गए। वहाँ जा ब्रह्माजीको प्रणाम कर विनय किया कि, मैं वायुभूत हो रहा हूँ, मुझे अन्य शरीर प्रदान कीजिए। ब्रह्माजीने कहा—अब तुम मित्रावरुणके वीर्यमें प्रवेशकर मेरे अधीन अयोनिज रहे। वशिष्ठजी वरुणलोक चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि, उन वरुण आदि सबपर मित्र अर्थात् सूर्यका शासन है। उसी समय वहाँ उर्वशी नामक अप्सरा अपनी सखियों सहित पहुँच आई और वरुणालयके तट-पर उसने बड़ी क्रीड़ा की। उस रूप यौवन-सम्पन्नाको देखकर वरुणने हर्षित हो उससे मैथुन करनेकी इच्छा प्रकट की। तब उस अप्सराने कहा—मित्रदेवके

साथ मैं पहलेसे वचनबद्ध हूँ। यह सुन काम पीड़ित वरुणसे न रहा गया और उन्होंने अपना वीर्य एक घड़ेमें डाल दिया। उर्वशीने कहा, आपने यह भी अच्छा किया। यद्यपि मेरा शरीर इस समय मित्रके अधीन है, तथापि मेरा मन तो आपही में है। इसमें उर्वशीको मित्रके समीप पहुँचनेमें कुछ विलम्ब हुआ, जिससे जब वह उनके पास गयी तो उन्होंने उसे दुराचारिणी आदि बहुत कुछ कहकर क्रोधपूर्वक शाप दे दिया कि 'तू अब कुछ दिनोंके लिए मृत्युलोकमें जाकर रह। वहाँ बुध-पुत्र काशिराज पुरूरवाको अपना पति बना। उर्वशी प्रतिष्ठानपुरमें महाराज पुरूरवाके यहाँ चली गई। फिर तो उर्वशीके गर्भसे बलवान् राजा 'आयु' की उत्पत्ति हुई। राजा नहुष इन्हीं आयुके पुत्र थे जिन्होंने एक लाख वर्षतक इन्द्रपुरीका शासन किया। इस-प्रकार उर्वशी मृत्युलोकमें आकर चिरकाल तक रही और पुनः इन्द्रलोकको चली गयी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्धका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ सर्ग

श्रीअगस्त्यजी और विदेहराज जनककी उत्पत्ति

इस अद्भुत एवं दिव्य कथाको सुनकर लक्ष्मणजी परम प्रसन्नहो श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—हे राम! जब उन ब्रह्मर्षि और राजर्षिने अपने शरीरों को त्याग दिया, तब फिर किस संयोगसे उनको पुनर्देहकी प्राप्ति हुई? लक्ष्मण के इस प्रश्नको सुनकर सत्पराक्रमी रामने कहा—हे लक्ष्मण! उस कुंभसे जो मित्रावरुणके वीर्यसे हुआ था, उससे दो तेजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हुये। प्रथम तो उससे महर्षि अगस्त्यजी प्रकट हुए और प्रकट होतेही मित्रसे बोले कि, "मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ।" यह कहकर वे वहाँसे प्रस्थान कर दिये। यह वही वीय था जो उर्वशीको लक्ष्यकर कुम्भमें रखा गया था। और वह वरुण जी का ही था। इसके कुछ काल पश्चात् मित्रवरुण संभव इक्ष्वाकुकुलपूज्य परम तेजस्वी श्रीवशिष्ठजी उत्पन्न हुए। तब उन अनिन्दित वशिष्ठजीके जायमान होतेही महाराज इक्ष्वाकुने कहा—हे सौम्य! आप मेरे वंश-कल्याणार्थ मेरे कुलपुरोहित होइए। यह तो महात्मा वशिष्ठकी पुनः देह-प्राप्ति हुई। अब निमिका वृतान्त सुनो। महाराज निमिको देह-रहित देख मनीषियोंने उनके

उसी देहसे यज्ञदीक्षा पूर्ण कराना चाहा। उन्होंने राजाके निष्प्राण शरीरको गन्ध, पुष्प और वस्त्रोंसे तथा अन्य अनेक प्रकारसे रक्षा की। यज्ञके पूर्ण होनेपर भृगुजीने राजा निमिसे कहा कि, राजन्! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अतएव मैं तुम्हारे इस शरीरको चैतन्य करूँगा। साथही वहाँ सब देवगण भी आये और उन्होंनेभी कहा कि, राजर्षे! वर माँगिये। आपकी चेतना कहाँ निरूपित हो। तव निमिकी आत्माने कहा—'सुरसत्तमो! मैं सब प्राणियोंके नेत्रोंपर निवास करना चाहता हूँ।' देवताओंने कहा—बहुत अच्छा। आप वायुरूपसे सब प्राणियोंके नेत्रोंपर निवास करें। इससे विश्रामार्थ सब प्राणी वारम्बार नेत्र बन्द करेंगे। ऐसा कह सब देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गए। फिर महात्मा ऋषियोंने हवनके मंत्रोंको पढ़-पढ़कर निमिके निष्प्राणशरीर को अरणी बनाकर उसका मंथन किया। जिससे एक महातपस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ। मंथन करनेसे वह उत्पन्न हुआ था जिससे उनका नाम निमि पड़ा और ऋषियोंने प्रकट किया था जिससे उनका दूसरा नाम जनकभी पड़ गया और वह चेतना शून्य देहसे उत्पन्न हुये थे, इसकारण उनका विदेह नाम हुआ। इस प्रकार विदेह राजा जनककी उत्पत्ति हुई। निमिके वंशज नृपतिगण मैथिल कहे गए। राजा निमिके शापसे ही ब्राह्मण वशिष्ठजी ही विदेह हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ सर्ग

राजा ययातिका आख्यान

श्रीरामचन्द्रजीके इसप्रकार कहनेपर शत्रुहन्ता लक्ष्मण तेजस्वी रामसे पुनः बोले—हे राजशार्दूल! यह विदेह राजकी पुरातन कथा जो वशिष्ठ-मुनिकी कथासे युक्त है महत् अद्भुत और आश्चर्यदायक है। किन्तु मैं यह कहता हूँ कि, यज्ञदीक्षित महाराज निमिने महर्षि वशिष्ठको क्षमा क्यों नहीं कर दिया? तब क्षत्रि-पुङ्गव राम लक्ष्मणसे बोले—हे वीर! सब पुरुषोंमें क्षमा नहीं होती। क्रोध बड़ा दुःसह होता है। इस सम्बन्धमें तुम सतोगुणी राजा ययातिकी कथा सुनो जिन्होंने क्रोधको प्रश्रय नहीं दिया। राजा ययाति महा-राजा नहुषके पुत्र थे जो प्रजा-पालन और सबकी सुख-सम्पत्ति वर्द्धनमें सदा तत्पर रहा करते थे। इस पृथ्वी मण्डलपर सबसे अधिक रूपवती उनकी

पत्नियाँ थीं। जिनमें एकका नाम शर्मिष्ठा, जो दितिकी पौत्री और दैत्यराज बृषवर्पाकी पुत्री थी। वह राजाको अति प्रिय थी। दूसरी शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी थी जो राजाको उतनी प्रिय न थी। उन दोनोंके दो रूपवान पुत्र हुए। शर्मिष्ठाके गर्भसे पुरु और देवयानीके गर्भसे यदुका जन्म हुआ था। राजा पुरु पर विशेष स्नेह था। तब यह देखकर यदुने अपनी मातासे कहा—हे माता! तुमतो सामर्थ्यशाली भार्गव देवके कुलमें उत्पन्न हुई हो। फिर ऐसा मानसिक कष्ट क्यों सहती हो? आओ, मैं और तुम दोनों अग्निमें कूद पड़ें। फिर राजा दैत्य-पुत्रीके साथ निश्चित विहार करें। यदि तुझे यह न स्वीकार हो तो तू यह अपमान सह। किन्तु मुझे आज्ञा दे। क्योंकि मुझसे तो यह नहीं सहा जाता। मैंतो निश्चयही प्राण त्याग करूँगा। इसपर देवयानी परम दुःखिनी हो ध्यान द्वारा अपने पिताको स्मरण करने लगी। तब अपनी पुत्रीको दुःखित और कुपित जान, उसके स्मरण करतेही महाराज शुक्राचार्य उसके पास जा उपस्थित हुये और देवयानीको अस्वस्थ देख अपनी पुत्रीसे बोले—बेटी! तेरी यह क्या दशा है? जब उन्होंने इस प्रकार कई बार पूछा, तब देवयानी क्रुद्ध होकर बोली—'मुनिसत्तम! अब मैं अग्निमें कूदकर या विषपानकर अथवा जलमें डूबकर अपने प्राण विसर्जन कर दूँगी और किसी प्रकार जीना नहीं चाहती। आपको नहीं ज्ञात कि, मैं कितनी दुःखी हूँ और मेरा यहाँ कैसा अनादर होता है। राजर्षि ययाति मेरा और मेरे पुत्रका बड़ा तिरस्कार करता है। तब अपनी पुत्रीके यह कथन सुनकर मुनि भार्गवको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने राजा ययातिको यह शाप दे दिया कि, तूने मेरा अनादर किया है, अतः तुझे अभी जरावस्था आ घेरे। तू सर्वाङ्ग शिथिल हो जावे। इस प्रकार राजाको शापितकर देवयानीको समझाकर आचार्य शुक्र अपने घर आये। सूर्यके समान तेजस्वी भार्गव नहुष-पुत्रको शाप दे वहाँसे प्रस्थित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ सर्ग

तथा च—

इधर जब शुक्रजीके कुपित होनेका समाचार नहुष-पुत्र राजा ययातिको

मिला तो वे बड़े दुःखी हुए और अपने पुत्र यदुसे बोले—पुत्र यदु! तू धर्मज्ञ है। अतः मेरा बुढ़ापा ले ले, जिससे मैं आनन्दसे विहार करूँ। क्योंकि अभी विषय-भोगसे मेरी तृप्ति नहीं हुई है। जब मैं विषय भोगसे तृप्त हो जाऊँगा, तब तुझसे अपना बुढ़ापा ले लूँगा। इसपर यदुने राजासे कहा कि, आपका तो प्रिय पुत्र पुरु है, वही आपका बुढ़ापा लेगा। तब यदुके ऐसा कहनेपर राजा ययातिने पुरुसे कहा—हे महाबाहो! मेरी प्रसन्नताके लिए तुम मेरा बुढ़ापा ले लो। राजाका यह वाक्य सुन पुरुने प्राञ्जलिभूत होकर कहा—मेरे अहोभाग्य हैं। मैं आपका अनुगृहीत हूँ। मैं आपके इस शासन में स्थित हूँ। पुरुके ये वचन सुनकर राजा ययाति परम प्रसन्न और सुखी हुए तथा उन्होंने अपना बुढ़ापा पुरुको दे उनका यौवन ले सहस्रों वर्ष तक पृथ्वीका शासन करते हुए सहस्रों यज्ञ किये। पश्चात् अपने पुत्र पुरुसे कहा कि, अब तुम मेरा बुढ़ापा मुझे दो और अब मैं तुमपर प्रसन्न होकर राज्यपर तुम्हारा अभिषेक करूँगा। पुरुसे ऐसा कह देवयानी-पुत्र यदुसे कुपित होकर कहा—हे दुरासद! तू मेरे औरससे क्षत्रिय रूपमें कोई दुर्धर्ष राक्षस उत्पन्न हुआ है। इसीसे तूने मेरी आज्ञा नहीं मानी। अतः तू कभी भी राजा न हो सकेगा और तुझे मेरा शाप है कि, तू दुर्धर्ष पिशाचोंको उत्पन्न करेगा। तू सोमवंश में न रहेगा और तेरी सन्तानेंभी दुष्ट-चरित्र होंगी। राजर्षि ययाति इसप्रकार यदुको शापितकर समय आनेपर स्वर्ग सिधारे। पुरु धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। काशी राज्यके निकट प्रतिष्ठानपुर (प्रयागके पूर्व गंगाके निकट झूँसी नामक स्थान) में महायशस्वी राजा पुरु राज्य करने लगे। यदु सोमवंशसे बहिष्कृत हो गया। वह क्रौंचवनके दुर्गपुरमें जा बसा और वहाँ उसकी सहस्रशः सन्तानें उत्पन्न हुयीं। हे लक्ष्मण! इसप्रकार क्षात्रधर्मसे युक्त राजा ययातिने शुक्राचार्यके शापको चुपचाप सहनकर लिया; किन्तु राजर्षि निमि क्षमा न कर सके। हे सौम्य! यह सब प्राचीन आख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। अब हमको उसी प्रकार करना चाहिए जिसमें कि, राजा नृगकी भाँति हमें कोई दोष न लगे। चन्द्रतुल्यानन रामके इसप्रकार कथा करते हुए रात्रि हो गई, आकाशमें तारागण दिखाई पड़ने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

साठवाँ सर्ग

यमुनातट-वासी ऋषियोंका आगमन

इसप्रकार श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण प्रजा-पालन करने लगे। इतनेमें वसन्तऋतुकी रात्रि आ गई जिसमें न तो बहुत शीतलताही थी; न गर्म। एक दिन प्रातःकाल जब महाराज रामचन्द्र स्नान और सन्ध्योपासनकर पुरवासियोंका कार्य देखनेके लिए राजसभामें विराजमान हुए तो सुमन्त्रने आकर कहा—हे महाराज! कुछ तपस्विगण द्वारपर आये हैं। भृगुवंशी च्यवन उनके अग्रणी हैं। वे आपके दर्शनकी शीघ्रता कर रहे हैं। वे सब ऋषिगण यमुनातटके निवासी हैं और आपकी कृपाके इच्छुक हैं। तब सुमन्त्रके ये वचन सुन, राम बोले--अच्छा, उन्हें यहाँ लिवा लाओ। महाराजकी आज्ञा पा सुमन्त्रने हाथ जोड़ उन तेजस्वी तपस्वियोंको महाराजके समक्ष पहुँचा दिया। जब वे ब्राह्मण राजसभामें गए, तब उन्होंने बहुत-से फल मूल श्रीरघुनाथजी के आगे उनकी भेंट-स्वरूप उपस्थित किए और उन्होंने उनकी भेंट स्वीकार की। फिर महाबाहु श्रीराम उन सब मुनियोंको यथा आसन दे, उन्हें हाथ जोड़ प्रणामकर उन्होंने उनके आगमनका कारण पूछा और कहा कि, बतलाइए, मैं आपका क्या हित करूँ? आज्ञा दीजिये, आपके सब मनोरथ पूरे होंगे। मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि, यह समस्त राज्य और हृदयस्थित मेरे प्राणतक--ब्राह्मणके ही लिए हैं। ऋषियोंने 'धन्य-धन्य' कह प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि, हमने बड़े-बड़े राजाओंके निकट जा, अपना प्रयोजन कहा परन्तु हमारा कार्य कहीं नहीं हुआ। किन्तु आपने ब्राह्मणोंके गौरवसे, हमारा आगमन जानकर जो आपने प्रतिज्ञा कर ली, तो अब हमें आशा हो गई कि, निश्चयही आप हम लोगोंका कार्य कर दीजिएगा और हम ऋषियोंका भय अवश्य ही दूर हो जायगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥६०॥

एकसठवाँ सर्ग

रामका ऋषियोंको आश्वासन

ऋषियोंके इस कथनपर काकुत्स्थ रामजी बोले---हे महर्षियों! बतलाइए, आपका क्या कार्य है जिसके करनेसे आपका भय दूर होगा? श्रीरामजीके ऐसा कहनेपर भृगुवंशी च्यवनजी बोले---हे नरनाथ! हमारे भयका कारण सुनिए। सतयुगमें मधुनामका एक बड़ा बुद्धिमान दैत्य था जो

लीलाका ज्येष्ठ पुत्र था। वह ब्राह्मण-भक्त और शरणागतवत्सल भी था तथा देवताओंसे उसकी बड़ी प्रीति थी। तब उसकी धर्मनिष्ठा और शूरताको देखकर शिवजीने सादर उसे एक अद्भुत वर और अपने त्रिशूलसे भी बड़ा अग्निके समान प्रदीप्त त्रिशूल देकर यह कह दिया था कि, जब-तक तुम देवताओं और ब्राह्मणोंसे विरुद्ध न होगे, तक-तक यह शस्त्र तुम्हारे पास रहेगा। जब तुम उनके विरुद्ध हो जाओगे, तब यह तुम्हारे पास न रहेगा। इस शूलको तुम जिसपर छोड़ोगे वह नष्ट हो जायगा और यह फिर तुम्हारे पास लौट आवेगा। इसपर उस महादैत्यने शिवजीको प्रणामकर पुनः यह माँगा कि 'यह शूल मेरे वंशमें सर्वदा विद्यमान रहे।' शिवजीने कहा, ऐसा नहीं हो सकता; किन्तु मैं तुझपर प्रसन्न हूँ जिससे तेरी याचना निष्फल भी नहीं कर सकता। अतः तेरे एक पुत्रके पास भी यह शूल बना रहेगा और यह जब-तक उसके हाथमें रहेगा, तब-तक उसे कोई मार नहीं सकता। इस प्रकार महादेवजीसे यह अद्भुत वर पाकर मधुने एक अति विशाल भवन बनवाया। उसकी पत्नीका नाम कुम्भीनसी था और वह बड़ी महाभागा थी। विश्वावसुकी पत्नी महाकान्तिमयी अनलाके गर्भसे वह उत्पन्न हुई थी। उसीका पुत्र महा पराक्रमी लवणासुर है जो बड़ा ही दुष्ट होनेके कारण अहर्निश पाप-कर्म ही किया करता है। तब ऐसे दुर्विनीत पुत्रको देखकर मधु क्रुद्ध और दुःखी हुआ; किन्तु लवणसे उसने कुछ कहा नहीं और कुछ ही दिनके अनन्तर वह इस लोकको त्यागकर वरुणालयमें प्रविष्ट हो गया। परन्तु जानेके पूर्व मधुने लवणको वह शूल देकर वरदानकी बात कह दी। अब उसी शूलको लेकर लवण अपने दुष्ट स्वभाव द्वारा सब तपस्वियोंको सता रहा है। यह सुन अब आप जो उचित समझें करें। क्योंकि आपही तक हमारी गति है। हे तात! जब हमने यह सुना कि, आपने सकुटुम्ब रावणका संहार किया है, तब हमने समझा कि, आप हमारी रक्षा करेंगे। क्योंकि पृथ्वी मण्डलपर अन्य कोई भी राजा ऐसा नहीं है जो लवणसे हमारी रक्षा कर सके। अतः लवणके भयसे आप हमारी रक्षा करें। आप महा बलाढ्य हम सबके इस भयको दूर करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका इकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥६१॥

बासठवाँ सर्ग

रामचन्द्रका ऋषियोंसे लवणासुरका वृतान्त पूछना।

उन ऋषियोंके इस कथनपर श्रीराम हाथ जोड़कर बोले—अच्छा, आप लोग यह बतलावें कि लवणासुरका आहार क्या है, आचार क्या है और कहाँ रहता है? इसपर उन ऋषियोंने लवणासुरकी वृद्धिका सब वृत्तान्त यह सुनाया और कहा कि, वैसे तो वह सब जीवोंका भक्षण करता है किन्तु तपस्वियोंका विशेष भक्षक है। उसका आचार बड़ा ही रौद्र है और वह नित्य मधुवनमें निवास करता है। वह नित्य बहुत ही सहस्रों सिंह, व्याघ्र मृग, पक्षी और मनुष्योंको मारकर खा जाता है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से जीवोंको वह बीच-बीचमें मारकर खा डालता है। लवणका यह वृत्तान्त सुनकर श्रीराघवने कहा—अब आप लोग भय न करें, मैं उस राक्षसको मरवा दूँगा। उन तपस्वियोंसे ऐसा कहकर श्रीरघुनन्दनजीने अपने भाइयोंसे पूछा कि, आप लोगोंमेंसे लवणासुरको कौन मारेगा? यह कार्य-भार किसे दिया जाय? भरतको या शत्रुघ्नको? जब श्रीराघवने ऐसा पूछा, तब भरतजी बोले—मैं उसका वध करूँगा। यह कार्य मुझे सौंपा जाय। भरतजीके ये वचन सुनकर लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न स्वर्ण-सिंहासन त्यागकर उठ खड़े हुए और रामको प्रणामकर बोले—राजन्! भरतजी तो अपना कार्य कर चुके हैं। क्योंकि जिस समय आप अयोध्यासे वनको चले गये, उस समय इन्होंने अयोध्याकी रक्षा की थी और आपके लौट आने तक सन्तप्त हो अनेक क्लेश सहे थे। अतः अब इन्हें और कष्ट नहीं सहना है। तब राम बोले—अच्छी बात है, यही सही। अब मैं जो कहता हूँ, वह करो। मैं तुमको शुभ मधुनगरका राज्य देता हूँ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि, भरत यहीं रहें तो इन्हें यहीं रहने दो। तुम शूरवीर हो और नगर बसा सकते हो। अतएव तुम यमुनातटपर एक सुन्दर नगर बसाओ। क्योंकि जो कोई किसी राजवंशका उन्मूलन करके उसे फिर नहीं बसाता, तो वह नरकगामी होता है। तुम मधुके पुत्र दुरात्मा लवणासुरको मारकर वहाँ धर्म-पूर्वक प्रजा-पालन करो। हे शूर! मेरा कथन सुनकर, फिर कुछ न कहना। क्योंकि लघुजनोंको अपने महानोंकी आज्ञा पालन करनी चाहिए। तुम मेरा

दिया हुआ यह राज्य ग्रहण करो और वशिष्ठादि ब्राह्मणोंके साथसे सविधि मन्त्रयुक्त वहाँ अपना अभिषेक कराओ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ सर्ग

लवणासुरके वधार्थ रामका शत्रुघ्नको दिव्यास्त्र-प्रदान।

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर, शत्रुघ्नजी बहुत लज्जित हुए और मन्द स्वर में बोले—हे काकुत्स्थ! मैं तो समझता हूँ कि यह अधर्म है। क्योंकि ज्येष्ठ भ्राताके रहते लघु भ्राताका अभिषेक कैसे हो सकता है? परन्तु हे पुरुषर्षभ! आपकी आज्ञाका पालनभी तो अवश्य होना चाहिए। क्योंकि आपकी आज्ञाका दुरतिक्रम नहीं हो सकता। यद्यपि भरतजी प्रतिज्ञा करचुके थे किन्तु मैं बीचहीमें बोल उठा कि, मैं लवणका बध करूँगा। इसीसे मुझे यह दुर्गति प्राप्त हुई है, ज्येष्ठ भ्राताका उत्तर नहीं देना चाहिए। क्योंकि उत्तर देनेसे अधर्म होता और परलोकविवर्जित है। एक तो मैं भरतजीको बातमें बोल उठा, दूसरे अब आपकी बातमें बोलता हूँ। अतः हे मानद! इन दोनों अधर्मोंके लिए आप मुझे दण्डित न कीजियेगा। मैं तो आपके इच्छानुसारही कार्यकारी हूँ। किन्तु अपना राज्याभिषेक करानेमें (ज्येष्ठभ्राताके समक्ष) मुझे जो पाप होगा उससे आप मेरी रक्षा करेंगे। महात्मा शत्रुघ्नके ऐसा कहनेपर रामने प्रसन्न होकर भरत और लक्ष्मणसे कहा—आप लोग अभीही अभिषेककी सामग्री प्रस्तुत करें, मैं इसी समय शत्रुघ्नका अभिषेक करूँगा। फिर तो महाराजकी आज्ञा पाकर तदनुसारही सबने सब कार्य किया। सब राजा और ब्राह्मण राजभवनमें एकत्र हुए। शत्रुघ्नका राज्याभिषेक होने लगा। अभिषिक्त होनेपर शत्रुघ्नजी सूर्यकी भाँति शोभायमान होने लगे। पुरवासियों सहित राघवका हर्षवर्धन होने लगा। वेदपाठी बहुत सन्तुष्ट हुए। कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी तथा अन्य समस्त राजस्त्रियाँ मङ्गलाचार करने लगीं। शत्रुघ्नके अभिषिक्त होनेपर यमुनातटके निवासी ऋषियोंको विश्वास हो गया कि, अब लवणासुरका वध अवश्य होगा। तदनन्तर अभिषिक्त शत्रुघ्नको अपनी गोदमें बैठाकर और उनका तेज-वर्द्धन करते हुए श्रीरघुनाथजीने मधुरवाणीमें कहा—हे सौम्य! मैं तुम्हें यह दिव्य एवं अमोघ बाण देता

हूँ जो शत्रु के नगरको विध्वंस करने वाला है। इसी वाणसे तुम लवणासुर का वध करना। यह एक देवनिर्मित वाण है। मैंने रावणपर भी इसका प्रयोग नहीं किया है। क्योंकि इसके चलाने पर बहुत प्राणियोंका नाश हो जाता है। शिवजीने मधुको जो शत्रुनाशक उत्तम शूल दिया है, वह उसे अपने गृहमें रखकर इधर-उधर विचरता है और उस त्रिशूलका वह नित्य पूजक है। जब कोई शत्रु उससे युद्ध करने आता है तब वह उस शूलको गृहमेंसे मँगाकर उसे मारता है। अतएव हे पुरुषशार्दूल! जब वह नगरके बाहर गया हो, तब तुम अस्त्रोंसे सज्जित हो उसके नगर-द्वारको रोक लेना और उसे गृहमें प्रवेश न करने देना। ऐसा करनेसे तुम अवश्य उसे मार सकोगे। अन्यथा वह किसी प्रकार न मारा जायगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

चौंसठवाँ सर्ग

रामचन्द्रका शत्रुघ्नको युद्धस्थलमें जानेकी आज्ञा देना और तैयारी करना

शत्रुघ्नसे ऐसा कह और पुनः पुनः उनकी प्रशंसाकर श्रीरघुनन्दन पुनः उनसे बोले---हे पुरुषर्षभ! चार सहस्र घोड़े, दो सहस्र रथ और सौ उत्तम हाथी तुम अपने साथ ले जाओ और नगरके मध्यकी दूकानें जिनसे आवश्यक सामग्रियोंकी प्राप्ति हो तथा नर-नर्तक ये सब तुम्हारे साथ जायँगे। सैनकादिक व्ययके लिए एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राभी तुम लेते जाओ। इसप्रकार पर्याप्त धन तथा वाहनोंसे पूर्ण होकर तुम यात्रा करो। हे वीर! तुम अपने साथ बहुत-से सैनिकोंकोभी ले जाओ जिन्हें समयपर मासिक वेतन देकर उनको सन्तुष्ट रखना। इसप्रकार तुम ससैन्य वहाँ पहुँचकर अकेलेही धनुष-बाण लेकर मधुवनमें चले जाना जिससे मधुपुत्रको यह न ज्ञात हो सके कि, तुम उससे युद्ध करनेके लिए आए हो। अब तुम निःशङ्क होकर जाओ। हे पुरुषर्षभ! उसके मारनेका और कोई उपाय नहीं है। हे सौम्य! तुम ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें और वर्षाऋतुके आरम्भमें उसको मारना। यही उस दुष्टके मारनेका समय है। महर्षियोंको अग्रणी बना सैनिकों सहित अब तुम प्रस्थान करो, जिससे ग्रीष्मके रहतेही तुम्हारी सेना श्रीगङ्गाके पार हो जाय। रामके इन आदेशोंको सुनकर शत्रुघ्नने अपनी सेनाको प्रस्थानकी आज्ञा दी और स्वयं अन्तःपुरमें जाकर कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयोको प्रणाम किया।

फिर श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमाकर और उनको प्रणामकर तथा भरतजा एवं लक्ष्मणको हाथ जोड़कर पुरोहित वशिष्ठजीको दण्डवत करके रामकी परिक्रमा कर प्रस्थित हुए। हाथियों और घोड़ों आदिसे युक्त उनकी विशाल वाहिनी तो पहिलेही चल पड़ी थी। फिर रघुवंशवर्द्धन रामसे विदा ले स्वयं शत्रुघ्नभी प्रस्थित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का चौसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ सर्ग

पुत्रोंको भेजनेके पश्चात् शत्रुघ्नका अकेले प्रस्थान

सैनिकोंको भेजकर शत्रुघ्नजी एक मास तक अयोध्यामें रहे। पश्चात् उन्होंने अकेलेही प्रस्थान किया। मार्गमें दो दिन लगाकर तीसरे दिन वाल्मीकिजीके पवित्र आश्रममें पहुँचे। वहाँ उन्होंने महर्षि वाल्मीकिका अभिवादन किया और एक रात्रि वहाँ निवास करनेके लिये आज्ञा ली। वाल्मीकिजीने प्रसन्न हो उन्हें अपना अतिथि स्वीकार किया। शत्रुघ्नजी फल-मूल खाकर रातभर वहाँ रहे। रातमें उन्होंने महर्षिसे पूछा कि, आश्रमके निकट पूर्वकी ओर यह किसकी यज्ञ-सामग्री दीख पड़ती है? इसपर वाल्मीकिजीने उसका परिचय देते हुए उनकेही पूर्वज राजा सौदासका वृतान्त कह सुनाया। उन्होंने कहा कि, राजा सौदास बड़े धार्मिक थे। एक दिन जब वह आखेटको निकले तो उन्होंने वनमें घूमते हुए दो राक्षसोंको देखा जो कई हजार मृगादि वन्यपशुओंका भक्षण करके भी सन्तुष्ट नहीं होते थे। यह देखकर उन्होंने बाण चलाकर उन दो में से एकको मार डाला। जब वह राक्षस मरकर पृथ्वीपर गिरा तो राजा उसकी ओर देखने लगे। तब उनसे उसका साथी राक्षस बहुत दुःखी होकर बोला—हे पापी! तूने निरपराध मेरे इस मित्रको मारा है; अतः मैं तुझसे इसका प्रतिशोध लूँगा। यह कहकर वह राक्षस वहीं अदृश्य हो गया। कुछ समय पश्चात् जब राजा सौदासका पुत्र वीर्यसह राजसिंहासन पर आसीन हुआ और जब वह इसी आश्रमके निकट अश्वमेध यज्ञ करने लगा, जिस यज्ञकी रक्षा वशिष्ठजी करते थे, तब वही राक्षस पुराने बैरको स्मरणकर वशिष्ठजीका रूप बनाकर राजाके पास आकर कहने लगा कि, आज इस यज्ञकी समाप्तिमें शीघ्रही मुझे मांस सहित

भोजन कराओ। इसमें सोचने विचारनेकी आवश्यकता नहीं है। तब ब्राह्मण रूपधारी राक्षसके वचन सुनकर राजाने अपने चतुर रसोइयेको स्वादिष्ट हविष्यान्न प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दे दी जिसे सुन रसोइयाँ आश्चर्यमें पड़ गया। इसी समय वही राक्षस एक रसोइयाँका रूप धरकर रसोईं घरमें प्रविष्ट कर गया और माँस बनाकर राजाके समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि, यह हविष्य आमिष अन्न तैयार है। यह सुन राजाने अपनी मदयन्ती पत्नी सहित बसिष्ठजीको भोजन करनेको उठाया। जब वसिष्ठजीको यह ज्ञात हुआ कि, यह मनुष्यका मांस है, तब वह क्रुद्ध हो वीर्यसहसे बोले—राजन्! तूने जैसा भोजन मेरे समक्ष उपस्थित किया है, वैसाही भोजन तेरा भी होगा। इसमें सन्देह नहीं। यह सुन सौदासने क्रुद्ध हो, हाथमें जल ले जब वसिष्ठजीको शाप देना चाहा, तब रानीने रोककर कहा—भगवान् वसिष्ठ आपके शाप योग्य नहीं हैं। आप इनके शापके कारण इन्हें शापित न करें। रानीकी बात मानकर राजाने उस तेजोमय जलको अपनेही पैरोंपर डाल दिया। इससे उनके दोनों पैर काले पड़ गए। उसी दिनसे उनका कल्माषपाद नाम हो गया। पश्चात् रानी सहित राजाने बारम्बार मुनिके चरणोंमें प्रणामकर वशिष्ठरूपधारी राक्षसकी सब बात कह सुनाई। तब वसिष्ठजीने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें यह वर भी देता हूँ कि, बारह वर्षमें इस शापका अन्त हो जावेगा और उस समय तुमको इस बातका स्मरणभी न रहेगा। हे शत्रुघ्न! इसप्रकार राजा उस शापको भोग और अन्तमें पुनः राज्यको प्राप्तकर धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करने लगे। उन्हीं कल्माषपाद राजाके यज्ञका यह सुन्दर स्थान है जो मेरे आश्रमके निकट है और जिसके विषयमें तुमने प्रश्न किया है। यह सुन महर्षिको प्रणामकर शत्रुघ्न पर्णशालामें चले गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड, उत्तरार्द्ध का पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

छाछठवाँ सर्ग

लवकुश—उत्पत्ति

जिस रात्रिमें शत्रुघ्नजी वाल्मीकिजीके आश्रमकी एक पर्णशालामें जाकर ठहरे थे, उसी रात्रिमें सीताजीके दो पुत्र उत्पन्न हुए। अर्द्धरात्रिके समय मुनिबालकोंने आकर बाल्मीकि मुनिको यह शुभ संवाद सुनाया कि, हे भग-

न्! श्रीराम-पत्नी सीताके दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं। अतएव आप चलकर बाल-ग्रह-नाशिनी रक्षा कीजिये। तब उनके उन बचनोंको सुनतेही वाल्मीकि वहाँ गए जहाँ वे दोनों बालचन्द्रवत् पराक्रमी राज-पुत्र थे। वहाँ जाकर उन दोनों राजकुमारोंको देख महर्षि बाल्मीकिजी प्रसन्न हुए और मन्त्र पढ़कर उनकी भूतघ्नी रक्षाकी। फिर एक मुष्टि कुश लेकर उसमेंका आधा भाग-लव अर्थात् लड़को ले और उसे बीचमें ही से चीरकर, महर्षिने उससे सक्रम दोनोंकी रक्षा की, जिससे कोई बालग्रहादि वहाँ न जा सके। फिर मंत्र पढ़कर उन्होंने कुशसे उनका मार्जन किया और उनमेंसे पूर्व उत्पन्न बालकका नाम कुश और पीछेका नाम लव रखा। जब इसप्रकार बालकोंकी रक्षाकर वाल्मीकिजी अपनी कुटीको चले गये तब उस रक्षाको ले निष्पापवृद्धा तपस्विनियाँ बड़ी सावधानीसे बालकोंकी रक्षाका कार्य करने लगीं। जब उस अर्द्ध रात्रिके समय शत्रुघ्नजीने यह शुभ संवाद सुना तो वे सीताकी पर्णशालामें जाकर बोले—यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि, तुम्हारे दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं। शत्रुघ्नकी वह श्रवण मासकी रात्रि इस प्रकार सानन्द बहुतही शीघ्र व्यतीत होगई और प्रातःकाल होते ही वे सब कृत्योंसे निवृत्त हो पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये। मार्गमें उन्होंने सात रात्रियाँ और व्यतीत कीं तथा च्यवनादि महर्षियोंसे अनेक कथाएँ सुनते हुए वहाँ निवास किए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥६६॥

सरसठवाँ सर्ग

मान्धाताकी कथा

उन्हीं रात्रियोंमें जिस रात्रिको श्रीशत्रुघ्नजी च्यवन ऋषिके आश्रममें निवास किए—उन्होंने पूछा कि, हे ऋषि! लवणासुरके त्रिशूलकी क्या विशेषता है। उस शूलसे कितने लोग मारे गए हैं तथा कौन-कौन उस शूल से द्वन्द्व युद्ध करने आए थे? इसपर च्यवन ऋषिने कहा कि, हे रघुनन्दन! इस शूलसे असंख्य जन मारे गए हैं; किन्तु इस शूल द्वारा इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न मानधाताके विषयमें जो घटना घटित हुई थी वह सुनो। हे राजन्! पूर्व-कालमें महाराज युवनाश्वके पुत्र महाबली मान्धाताने जब स्वर्ग-विजयकी इच्छाकी तब उनसे इन्द्रने कहा-अभी तो तुम समस्त पृथ्वीकोही बशमें नहीं

कर सके हो फिर देवराजपर आक्रमणकी इच्छा क्यों करते हो ? अभीतो मधुवन-निवासी मधु-पुत्र लवणासुर हो तुम्हारी आज्ञाका पालन नहीं करता। इसपर नत शिर हो वे पृथ्वीपर आ लवणासुरको युद्ध करनेके लिए पहले उसके पास अपना दूत प्रेषित किया। परन्तु नर मांसभक्षी लवणने उस दूत-काही भक्षणकर लिया। इसपर कुपित हो महाराज मान्धाताने द्रुतगतिसे उसपर अपने प्रचंड बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी जिससे वह राक्षस बड़ा पीड़ित हुआ। फिरतो उसने शिव-प्राप्त उस शूलको उठा लिया और उससे उसने महाराज मान्धाताको मार डाला। किन्तु तुम तो कल प्रातःकाल ही लवणासुरका बध कर डालोगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। जिस समय वह निहत्था होगा, उस समय तुम उसे बधकर डालोगे। इससे बड़ाही लोक-कल्याण होगा। हे नरषर्षभ ! उसके त्रिशूलमें बड़ा बल है। मान्धाता तो धोखेमें मारे गए थे। परन्तु तुम कलप्रातः निस्सन्देह लवणको मार डालोगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका सरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

अरसठवाँ सर्ग

शत्रुघ्नका मधुपुरीके द्वारको अवरोधकर लवणासुरसे वार्तालाप

दूसरे दिन प्रातःकाल होतेही वह राक्षसवीर आहार लेनेके निमित्त अपने पुरसे बाहर निकला। उसी समय शत्रुघ्नजी यमुना नदी पारकर, हाथमें धनुष लिये मधुपुरके मुख्य द्वारपर उससे युद्ध करनेके लिए जा खड़े हुए। मध्याह्नके समय वह क्रूरकर्मा राक्षस कई हजार जीवोंको मार और उनको लादे हुए आगया। उसने देखा कि, धनुष बाण लिए शत्रुघ्न द्वार पर खड़े हैं। तब लवणने शत्रुघ्नसे पूछा कि, इस धनुषबाणसे तू क्या करेगा ? हे नराधम ! मैंने क्रोधमें भरकर तेरे जैसे सहस्रों आयुध-धारी वीरोंका भक्षणकर डाला है। आज तेरा भी अन्तिम समय उपस्थित है। पुरुषाधम ! आज मेरे आहारमें कुछ न्यूनता थी इसीसे तू यहाँ प्रथमहीसे विद्यमान है। ऐसा कह वह शत्रुघ्नका उपहास करने लगा। मारे क्रोधके शत्रुघ्नके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़े। शरीरसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने लवणसे कहा—मैं तुझसे द्वन्द्व युद्ध चाहता हूँ। मैं बुद्धिमान् महा-राज श्रीरामचन्द्रका भ्राता और दशरथजीका पुत्र हूँ तथा शत्रुहन्ता शत्रुघ्न मेरा नाम है। मैं तेरा बध करनेको आया हूँ। तू मुझसे युद्ध कर। तू

समस्त जीवोंका शत्रु है, अतः आज मेरे हाथसे बचकर जीता न जा पावेगा। लवणासुरने कहा—अरे! वही राम; जिसने स्त्रीके कारण मेरे मौसेरे भाई रावणको मार डाला है? मैं तो उसे मारना ही चाहता था। परन्तु छोड़ दिया था। अब तू स्वयं ही आ गया है। अतः मैं तुझे अवश्य मारूँगा। परन्तु तू मुझे थोड़ा अवसर दे। मैं अपना शस्त्र ले आऊँ, तब तुझे मारूँ। क्योंकि तेरी यह अपमान जनक बातें मैं नहीं सहन कर सकता। तेरे समान यहाँ कितने आए और मेरे द्वारा मारे गये। शत्रुघ्नने कहा—वह मूर्ख है जो शत्रुको अवसर देता है। मैं वैसा मूर्ख नहीं। मैं तो तुझे अभी ही मारकर यमलोकको भेजूँगा। क्योंकि तू बड़ा पापी है। तू त्रयलोकका और रघुकुल राघवका शत्रु है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवाँ सर्ग

लवणासुर-वध

महात्मा शत्रुघ्नके इन वचनोंको सुनकर लवणासुर क्रोधाविष्ट हो बोला-ठहर, ठहर! मैं तुझे अभीही मारता हूँ। ऐसा कह वह अपने दोनों हाथ मींजता और दाँतोंको कटकटाता हुआ रघुसिंह शत्रुघ्नको युद्धके लिए प्रचारने लगा। शत्रुघ्नने कहा-तू क्या रोष करता है? जब तूने अन्योंको मारा होगा, उस समय शत्रुघ्न नहीं हुये थे। अब तो यह तेरे समक्ष खड़े हैं। आज मेरे हाथसे जोड़े गए बाण तेर प्राणोंका हनन कर ब्राह्मणों, ऋषियों और देवताओंको प्रसन्न करेंगे। इतने ही में लवणासुरने एक विशाल वृक्ष उखाड़कर शत्रुघ्नपर फेंका जिसे शत्रुघ्नने बाण मारकर उसके सौ टुकड़े कर दिये। पश्चात् लवणासुरने एक वृक्षसे शत्रुघ्नके शिरपर मारा कि, वे मूर्छित हो धराशायी हुये। शत्रुघ्नके मूर्च्छित हो गिरनेपर लवणको गृहमें प्रवेशकर अपना त्रिशूल ले आनेका अवसर प्राप्त हो गया; तथापि उसने शत्रुघ्नको तुच्छ जान ऐसा न किया। वह अपने भक्ष्य जीवोंको उठाने लगा। इतने में शत्रुघ्न सचेष्ट हो गये। उन्होंने शीघ्र ही अपना अस्त्र सँभाला और पुनः उसका प्रवेश-द्वार रोक लिया। ऋषिगण उनकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय शत्रुघ्नने (रामका दिया हुआ) अमोघ बाण अपने धनुषपर चढ़ाकर

कालाग्निके समान जो उसे छोड़ा तो देवता, गन्धर्व, मुनि और अप्सरादि सहित समस्त जगत् व्याकुल हो ब्रह्माजीके समीप भाग गया और उस एकही बाणने लवणासुरका वक्षःस्थल विदीर्णकर इक्ष्वाकुकुलनन्दनके तरकसमें पूर्ववत् आ गया। लवणासुर वज्राहत पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके मारे जानेपर, वह दिव्य शूल सब देवताओंके देखते-देखते शिवजीके पास चला गया। शत्रुघ्नजीने उस एकही बाणसे त्रिलोकीका भय दूर किया। देवर्षि, सर्प, पन्नग, अप्सरादि समस्त प्राणी शत्रुघ्नकी प्रशंसा करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्धका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥६६॥

सत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्न द्वारा मधुपुरीका पुनः निर्माण

लवणासुरका बध कर चुकनेपर शत्रुघ्नके पास अग्निमुख इन्द्रादि समस्त देवताओंने आकर उन्हें धन्यवाद दिया और वर माँगनेका अनुरोध किया। शत्रुघ्नजीने कहा—यह देवनिर्मित मधुपुरी शीघ्रही धन-जनसे पूर्ण हो जावे। देवताओंने एवमस्तु कहकर उन्हें यही वर दिया। इतनेहीमें शत्रुघ्नकी सब सेनाने पहुँचकर शीघ्रही उस पुरीको बसाना आरंभ किया। बारहवें वर्षमें वह पुरी पूर्णतया सुख-सम्पन्न बस गयी। उस प्रदेशका नाम शूरसेन प्रदेश प्रसिद्ध हुआ। सबलोग वहाँ निर्भय रहने लगे। सम्पूर्ण देश धन-धान्ययुक्त हो गया। यह मधुपुरी यमुनाके तटपर अर्धचन्द्राकार बसी हुई विविध व्यापारोंसे शोभित हो गई। लवणासुरके बनवाये विशाल भवनोंको शत्रुघ्नने और भी रम्य बनवा दिया। पश्चात् बारहवें वर्ष शत्रुघ्नजो अयोध्यामें आ श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका दर्शन करनेका विचार करने लगे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका सत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७०॥

इकहत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्नका अयोध्या-प्रस्थान और वाल्मीकि आश्रममें रातभर निवास।

बारहवें वर्ष कुछ सेवकों और सैनिकोंको साथले शत्रुघ्नजी राम-पालित अयोध्याके लिए प्रस्थित हुए। मार्गमें सात आठ स्थानोंमें ठहरते हुए वे श्रीवाल्मीकि मुनिके आश्रममें पहुँचे। वहाँ मुनिने अर्घ्य, पाद्यादि दे उनका बड़ा आदर किया और कई प्रकारकी मधुर कथायेंभी सुनाई। साथही उन्होंने कहा कि, तुमने लवणको मारकर अति दुस्तर कार्य किया है। मैंने तो वह युद्ध

ज्योंका त्यों इन्द्रकी सभामें स्थित रहते हुए देखा। मैं तुम्हारे इस कार्यसे अति प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुम्हारा मस्तक सूघूँगा; क्योंकि स्नेहकी यही पराकाष्ठा है। यह कहकर महामतिमान वाल्मीकिजीने शत्रुघ्नका मस्तक सूँघा और उनके सब सेवकोंका आतिथ्य सत्कार किया। जब शत्रुघ्नजी भोजनकर चके, तब उन्होंने दूरसे श्रीरामका चरित सम्बन्धी मधुर संगीत सुना जिसमें रामको पूर्व कृतियोंका वर्णन था। वह बीणाके स्वरसे कण्ठस्वर मिश्रित रामचरित गाया जा रहा था। वह गान संस्कृत श्लोकोंमें होरहा था, उस ज्ञानमें छन्द, व्याकरण और सङ्गीत शास्त्रके समस्त लक्षण विद्यमान थे। तब श्रीरामके संबन्धमें जैसी-जैसी घटनाएँ हुई थीं, ठीक वेही घटनाएँ उस गानमें सुनकर शत्रुघ्न चकित हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़े। वे कुछ क्षणके लिए अचेत हो गये। पुनः सचेत हो बार-बार दीर्घश्वास लेने लगे। उनके साथीभी उसे सुनकर नतमुख कर लिए और इतनी पूर्व हुई घटनाओंको नवीन होती हुई सी जानकर 'आश्चर्य है, आश्चर्य है'—ऐसा कहने लगे। उन्होंने कहा—यह क्या है? इस समय हम कहाँ हैं? यह स्वप्न तो हम नहीं देख रहे हैं? बड़ा आश्चर्य है। लोगोंने शत्रुघ्नजीसे कहा—आप मुनि-पुङ्गव बाल्मीकिजीसे पूछिए कि, यह क्या है? कृर्तृकगान है? अथवा और कुछ? तब शत्रुघ्न जी ने कहा—सैनिकों! मुनिसे ऐसा प्रश्न करना मेरे लिए उचित नहीं है। क्योंकि मुनियोंके आश्रमोंमें तो ऐसे आश्चर्य वृत्त होते रहते हैं। कुतूहल वश हमलोग ऐसी बातें पूछकर मुनिको क्यों कष्टित करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

बहत्तरवाँ सर्ग

श्री शत्रुघ्नजीका अयोध्यामें आकर रामके दर्शन करना

शय्यागत शत्रुघ्नको नींद न आई। वे पड़े-पड़े राम-चरित्र सम्बन्धी संगीतपर विचार करते रहे। वह मधर गान वीणापर गाया जारहा था। उसे सुनते-सुनते ही शत्रुघ्नने वह रात्रि व्यतीत कर दी। रात्रि व्यतीत होनेपर और प्रातः-कृत्य समाप्तकर शत्रुघ्नजीने हाथ जोड़कर मुनि-श्रेष्ठ वाल्मीकिजीसे अपने प्रस्थान करनेकी आज्ञा माँगी। महर्षिने शत्रुघ्नको गले लगाकर बिदा किया। वे मुनिश्रेष्ठको प्रणामकर अपने उत्तम रथपर बैठ राम-दर्शनार्थ शीघ्रही

अयोध्याको प्रस्थान किए। अयोध्यामें पहुँचकर रामसभामें विराजमान पूर्ण-चन्द्रानन श्रीरामचन्द्रजीको उन्होंने विनत हो प्रणाम किया और कहा कि, हे महाराज! आपने जो आज्ञा दी थी, मैंने उसका पालन किया। वह पापी लवण मारा गया और वहाँ मैंने पुरी भी बसा दी। हे रघुनन्दन! मुझे वहाँ रहते कई वर्षगत हो चुके थे। अब आपके विना मुझसे वहाँ नहीं रहा जाता। हे अमित विक्रमी! हे काकुत्स्थ! अब मुझपर दया कीजिए। जिसप्रकार मातृहीन वत्स नहीं रह सकता, उसी प्रकार मैं आपके विना, वहाँ अकेले नहीं रह सकता। शत्रुघ्नके इस प्रकार कहनेपर काकुत्स्थ रामने उन्हें गले लगाया और कहा—हे वीर! दुःखो न होओ। क्षत्रियोंको ऐसा कहना उचित नहीं। राजा लोग परदेशमें रहनेसे दुःखी नहीं होते; किन्तु धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं। हे नरश्रेष्ठ! जब तुम चाहो तब मुझसे मिलनेके लिए यहाँ चले आया करो और फिर अपनी पुरीको चले जाया करो। निस्सन्देह तुम मुझे प्राणप्रिय हो; किन्तु राज्यका पालन करना भीतो आवश्यक है। अतः अब तुम सात दिन तक मेरे साथ रहो! फिर अपने सेवकों और वाहनों सहित मधुपुरीको लौट जाना। रामके इस धर्मयुक्त और मनोनुसारी बचनोंको सुन कर शत्रुघ्नजी उदास होगए और मन्दस्वरसे बोले—'जो आज्ञा।' इसप्रकार रामाज्ञासे शत्रुघ्नने अयोध्यामें सात रात्रियाँ व्यतीत कीं और पुनः सत्परा-क्रमी राम, भरत और लक्ष्मणजीसे आज्ञा माँगकर अपने रथपर जा बैठे। महात्मा भरत और लक्ष्मणजी शत्रुघ्नको कुछ दूरतक पैदल पहुँचाने गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा-सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्धका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ सर्ग

ब्राह्मणके बालककी मृत्युपर श्रीरामचन्द्रजीका ऋषियोंसे परामर्श

इसप्रकार शत्रुघ्नको विदाकर श्रीराघव भ्राताओं सहित धर्मपूर्वक राज्य पालन करने लगे। कुछ समय पश्चात् उस नगरका एक वृद्ध ब्राह्मण अपना मृत-बालक लेकर राज-भवनके द्वारपर आकर पुत्र-स्नेहसे हा पुत्र! हा पुत्र!' कहकर अनेक प्रकारसे उच्च-स्वरमें महा विलाप करते हुए यह कहने लगा—मैंने पूर्व जन्ममें ऐसा कौन-सा पाप किया था कि, आज मेरा एक मात्र पुत्र मर गया। हा, मेरा बालकतो अभी तरुणभी नहीं हुआ था, उसकी अभी चौदहही

वर्षकी अवस्था थी कि मुझे दुःख देनेके लिए वह अकालही कालकवलित हुआ। हे पुत्र ! मैं और तुम्हारी माता, हम दोनोंही तुम्हारे शोकमें अल्प समयमेंही मृतक हो जायँगे; इसमें सन्देह नहीं। मुझेतो स्मरण नहीं आता कि, मैंने कभी मिथ्या भाषण किया हो, किसीकी हिंसाकी हो अथवा किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाया हो। न जाने किस पापसे मेरा यह पुत्र पितृकर्म किए बिनाही इस बाल्यावस्था मेंही यमलोकगामी हुआ। रामके राज्यमें तो ऐसी भयंकर अकालमृत्यु न पहले कभी देखी गयी थी और न सुनी ही गयी थी। अतः निःसन्देह रामजीका ही कोई पाप होगा जिसके कारण इनके राज्यमें बालकोंकी मृत्यु होने लगी। अतएव राम ! आप मृत्यु-पाशमें बँधे हुए इस बालकको जीवित करें, अन्यथा अनाथवत् मैं अपनी स्त्री सहित राजद्वार परही प्राण दे दूँगा। राजाके दोषसे जब प्रजाका सविधि पालन नहीं होता, तब उसे ऐसी आपत्तियाँ सहन करनी पड़ती हैं। राजाके दुराचारी होनेपर ही प्रजामें अकालमृत्यु होती है, उसीसे यह अकालमृत्यु हुई है। ऐसेही अनेक प्रकारके वाक्योंसे उसने बार-बार राजाके समक्ष अपना दुःख निवेदन किया और शोकसन्तप्त हो वह अपने मृत पुत्रका आलिङ्गन करता हुआ रोता ही रहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवाँ सर्ग

ब्राह्मण-पुत्रकी मृत्युसे दुःखी हो रामचन्द्रका दुःखी होना और ऋषियोंसे कारण पूछना

महाराज श्रीरामने उस ब्राह्मणका दुःख और शोकपूर्ण करुणक्रन्दन सुना। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने मन्त्रियों, महर्षि वसिष्ठ, वामदेव तथा महाजनों सहित अपने भ्राताओंको बुलाया, तब वसिष्ठजीके साथ मार्कण्डेय, मौदगल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम और नारद ये आठ ब्राह्मण आये जिन्होंने 'महाराज रामकी जय हो' कहकर आशीर्वाद दिया। तब इन सब ब्राह्मणोंको सुखासनोंपर बिठाकर श्रीरघुनाथ जीने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सब वार्त्ता सुनाकर उनसे कहा कि "यह ब्राह्मण राजद्वारपर धरना दिए पड़ा है।" महाराजके ये दीनतायुक्त वचन सुनकर अन्य सब ऋषियोंके सान्निध्यमें नारदजीने कहा—राजन् ! जिस कारणसे इस बालककी अकाल मृत्यु हुई है वह सुनिये। पहले सतयुगमें

केवल ब्राह्मणही तपस्वी हुआ करते थे। उस समय कोई ब्राह्मणेतर मनुष्य किसी प्रकारकी तपस्यामें प्रवृत्त नहीं होता था। ब्राह्मणकी प्रधानता होनेसे उस युगमें अज्ञानकाभी अभाव था, सब लोग अकाल मृत्युसे रहित और दीर्घदर्शी होते थे। फिर त्रेतायुग आया। इसमें सुदृढ़ शरीरवाले क्षत्रियोंकी प्रधानता हुई और वे भी उस प्रकारकी तपस्या करने लगे। परन्तु सतयुग में जो पुरुष थे, वे तप और पराक्रमकी दृष्टिसे इनकी अपेक्षा उन्नतशील थे। इस प्रकार पूर्वयुगमें जहाँ ब्राह्मण उत्कृष्ट और क्षत्रिय अपकृष्ट थे, वहाँ त्रेता युगमें वे समान हो गये। यह देखकर मनु आदि धर्माचार्योंने, सर्वलोकसम्मत चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाकी स्थापनकी। इस युगमें अधर्मने अपना एक पैर रखा। अतः अधर्मका संयोग होनेसे लोगोंके तेजका किंचित ह्रास हुआ तथा आगे औरभी ह्रास होगा। सत्ययुगमें कृषि आदि जीविकाके राजस साधन मलके समान त्याज्य थे और उनको 'अनृत' नामसे प्रसिद्धि थी। किन्तु जब अधर्म ने अपना एक चरण रखा, तब वह 'अनृत' ही जीविकाका प्रधान साधन हो गया। इससे लोगोंकी आयु पूर्वकी अपेक्षा न्यून हो गयी। अतः पृथ्वीपर अधर्मका यह अनृतरूप चरण पड़नेपर सद्धर्मपरायण पुरुषही आचरण करते हैं। तथापि त्रेतायुगमें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोही वर्ण तपस्या करते हैं, अन्य वर्ण सेवा कार्य किया करते हैं। द्वापर युगमें वैश्यभी तप करने लगते हैं; परन्तु शूद्रका तप करना तो द्वापरयुगमें भी अधर्म माना जाता है। वही शूद्र दुर्बुद्धिवश इस समय आपके राज्यमें तपकर रहा है। उसीके कारण यह बालमृत्यु हुई। यदि कोई मूर्ख मनुष्य किसी राजाके राज्यमें कोई अधर्म या न करने योग्य कार्य करता है तो उसका वह कार्य उस राज्यके अनैश्वर्य का कारण बन जाता है और उस राजाको भी निःसन्देह नरकगामी होना पड़ता है। और जो राजा धर्म पूर्वक प्रजा-पालन करता है, वह प्रजाके वेदाध्ययन; तप और शुभकर्मोंके पुण्यका छठाँ भाग प्राप्त करता है। अतः आप अपने राज्यमें शोध कीजिये और जहाँ कोई पाप होता दृष्टि आये उसे दूर कीजिये। इससे धर्मकी और मनुष्योंकी आयुमें वृद्धि होगी और यह बालक भी जीवित हो उठेगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषासप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥७४॥

पचहत्तरवाँ सर्ग

शूद्र तपस्वी शंबूकसे रामजीके प्रश्न

नारदके इन अमृतमय वाक्योंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको अपार आनन्द हुआ और उन्होंने श्रीलक्ष्मणसे कहा--'सौम्य! जाओ, इन ब्राह्मण देवताको सान्त्वना दो और इनके बालकका शरीर तैलपात्रमें रखवा दो। उसकी शव-रक्षाका ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये, जिससे उसका कोई भी अङ्ग विकृत या नष्ट न हो।' लक्ष्मणसे ऐसा कहकर उन्होंने मनही मन पुष्पक-विमानका स्मरण किया। श्रीरामजीका ऐसा अभिप्राय समझकर वह सुवर्णमण्डित विमान एक मुहूर्तमें वहाँ उपस्थित हो गया। श्रीरामचन्द्रजी महर्षियोंको प्रणामकर पुष्पकपर आरूढ़ हो धनुष, भाथा और चमचमाती हुई तलवार लेकर भरत और लक्ष्मणको नगरीकी रक्षामें नियतकर, इधर-उधर ढूँढ़ते हुए पहले पश्चिम दिशामें चले गये। फिर हिमखण्डसे आवृत्त उत्तर दिशाकी ओर गये। परन्तु उन दोनों दिशाओंमें उन्हें अल्प भी पाप दृष्टि न आया। पश्चात् उन्होंने पूर्व दिशाका भी निरीक्षण किया। किन्तु वहाँ भी शुद्ध सदाचारका पालन होता था। इससे वे वहाँसे दक्षिणकी ओर चले गये। वहाँ शैवल पर्वतके उत्तरकी ओर उन्हें एक विशाल सरोवर दृष्टि आया जिसके तटपर उन्होंने एक तपस्वीको कठोर तप करते हुए देखा जो अधोमुख होकर तप कर रहा था। तब उस तपस्वीके समीप जाकर भगवान् श्रीरामने पूछा—तपोवृद्ध! तुम्हें किस वस्तुकी इच्छा है? स्वर्ग चाहते हो या कोई और वस्तु? ऐसा कौन पदार्थ है, जिसके लिए तुम ऐसी कठोर तपस्या कर रहे हो? इसके अतिरिक्त तुम यह भी बताओ कि, तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र किस जातिके हो?

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७५ ॥

छिहत्तरवाँ सर्ग

रामचन्द्र द्वारा शूद्रका बध

पुण्यकर्मा रामके ये वाक्य सुनकर वह तपस्वी बोला--मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और इसी शरीरसे देवत्व प्राप्त किया चाहता हूँ, इसीलिए मैं ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ। मेरा नाम शंबूक है।' वह इस प्रकार कह ही रहा था कि, श्रीरामने तलवारसे उसका मस्तक काट दिया। उसका बध होते

हो इन्द्र और अग्नि आदि देवताओंने पुष्प-वृष्टिकर रामकी प्रशंसा की और बोले—'हे देव ! आपने यह एक महत्त्वपूर्ण देव-कार्य किया है जिससे यह शूद्र हमारे लोकमें स-शरीर न आ सकेगा, अतः आप जो चाहें, वर माँग लें।' तब स्वर्गमें श्रीरामने हाथ जोड़कर इन्द्रसे कहा--यदि आप सब देवता मुझपर प्रसन्न हैं तो ब्राह्मणका बालक जी उठे। श्रीराघवके ये वाक्य सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और बोले--'राम ! आप निश्चिन्त रहें, वह ब्राह्मण-बालक तो जिस समय आपने इस शूद्रको मारा उसी समय जी उठा। आपका शुभ हो, कल्याण हो। अब हम अगस्त्यजीका आश्रम देखना चाहते हैं। उन परमतेजस्वी महर्षिकी दीक्षा समाप्त हो चुकी है। उन्हें जल-शय्या ग्रहण किए पूरे बारह वर्ष व्यतीत हो गए। अतः हम उनका अभिनन्दन करनेके लिए जा रहे हैं, आप भी उनके दर्शनार्थ गमन कीजिए।' देवताओंकी आज्ञा स्वीकारकर श्रीरामचन्द्रजी विमानपर चढ़े। देवगण अपने विशाल विमानोंके द्वारा अगस्त्याश्रमको चले। श्रीरामचन्द्र उनके पीछे हो लिए। तपोनिधि अगस्त्यजीने देवताओंको आया देखकर उन सबका समान-रूपसे सत्कार किया तथा देवगण उनका अभिनन्दन कर अपने अनुचरों सहित स्वर्गको चले गए। देवताओंके प्रस्थान करनेपर रामने पुष्पकविमानसे उतरकर अगस्त्य मुनिको प्रणाम किया। तब परमतेजस्वी अगस्त्यजी ने कहा--'हे राम ! आपका स्वागत है; आपने यहाँ पदार्पण किया, यह मेरे लिए सौभाग्यकी बात है। अनेकों उत्तम गुणोंके कारण आपके प्रति मेरा परमभाव है। आप मेरे आदरणीय अतिथि हैं और सर्वदा मेरे मनमें विद्यमान रहते हैं। आज रात भर इस आश्रममें मेरे ही समीप रहिए। आप साक्षात् नारायण हैं, सब कुछ आपमें ही स्थित है तथा आप ही समस्त देवताओंके स्वामी और सनातन पुरुष हैं। कल प्रातःकाल आप पुष्पक विमान द्वारा अपने नगरको प्रस्थान करें। हे सौम्य ! देखिए, यह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दिव्य आभूषण है। मेरा प्रिय करनेके लिए आप इसे ग्रहण करें।' श्रीरामने वह आभूषण ग्रहण किया और अगस्त्यजीसे उसका वृत्तान्त पूछा। इसपर अगस्त्यजीने उन्हें एक वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का छिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवाँ सर्ग

अगस्त्यजी द्वारा रामको त्रेताका एक वृतान्त सुनाना

(अगस्त्यजी बोले) हे राम ! पूर्व त्रेतामें सौ योजनका विस्तृत एक वन था जिसमें न कोई पक्षी रहता था और न कोई अन्य वन्य-पशुही । मैं इसी निर्जन वनमें तप करने आया । क्योंकि इसमें मुझे फल और मूल बड़े स्वादिष्ट ज्ञात हुए और वनके मध्यमें विशाल रमणीय चार कोसका एक सरोवरभी था जो हंसों चक्रवाकों और कारण्डव पक्षियोंसे सुशोभित रहा करता था । उसकी अन्य विशेषताओंके साथ, उसका जल बड़ा स्वादिष्ट था । साथही उसके तटपर एक बड़ाही अद्भुत आश्रमभी था जो बड़ाही प्राचीन था । परन्तु उसमें कोई एकभी तपस्वी नहीं रहता था । ग्रीष्मका समय था, मैं एक रात्रिके लिए उसमें आकर स्थित हो गया । जब प्रातः मैं उसमें स्नान करने गया तो वहाँ मुझे एक अति स्थूलकाय शव दृष्टि आया जो उस सरोवरकी शोभा-सा हो रहा था । इतनेमें मुझे वहाँ एक औरभी चमत्कार दिखाई पड़ा । वहाँ एक स्वर्गीय विमान आ गया । उसमेंसे एक स्वर्गीय मनुष्य उतरा जिसके साथ सहस्रों वस्त्राभूषणोंसे सज्जित अप्सराएँ थीं । उस स्वर्गीय पुरुषने वहाँ उतरकर उस मुर्देका मांस भक्षण किया और पुनः सरोवरमें हाथ मुँह धोकर जब वह विमानपर चढ़ने लगा, तब मैंने उससे प्रश्न किया कि, हे भद्रपुरुष ! तुम इतने सुन्दर एवं दिव्य स्वरूपवाले होकरभो मुर्देका मांस भक्षण जैसा यह घृणित कार्य क्या करते हो ? इसका क्या कारण है ? मुझसे स्पष्ट कहो । फिर उस प्राणीने मुझसे अपना सब वृतान्त कह सुनाया ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवाँ सर्ग

राजा श्वेतकी कथा

हे रघुनन्दन ! मेरे इसप्रकार पूछनेपर उस देव-पुरुषने मुझे अपना सारा वृतान्त कह सुनाया । उसने कहा—मेरे लिए यह बन्धन अनिवार्य है । पूर्वकालमें सुदेव नामके एक राजा हो गए हैं जो विदर्भमें राज्य करते थे । उनके दो रानियाँ थीं जिनसे उन्हें दो पुत्रोंकी प्राप्ति हुई । उनमेंसे एक तो 'श्वेत'

मैं हूँ और दूसरा मेरा छोटा भाई 'सुरथ' था। पिताके मरनेके पश्चात् नगर-वासियोंने मुझे राजा बनाया और बड़ी सावधानीसे प्रजापालन करने लगा। एक हजार वर्षतक मैंने राज्य किया। फिर मैंने किसी प्रयत्न द्वारा अपनी आयु ज्ञातकी और प्रत्येक प्राणी मरणशील है, यह विचार मैं वनवासी हुआ। इसी सरोवरपर आकर मैं तप करने लगा और भाई सुरथको राज्य दे दिया। यहाँ आकर मैंने बहुत दिनों तक तप किया। फिर तीन हजार वर्ष तक तप करके मैं ब्रह्मलोक पहुँचा। वहाँ पहुँचनेपर मुझे भूख प्याससे बड़ा कष्ट हुआ। मेरे अंग शिथिल हो गए। तब मैंने उसका कारण ब्रह्माजीसे जो पूछा तो उन्होंने कहा--तुम्हारे लिए तुम्हारा ही स्वादिष्ट सुन्दर मांस है। उसीको नित्य खाया करो। क्योंकि तुमने तप-कालमें अपना शरीर पोषण किया था। बिना बोये फल कभी नहीं प्राप्त होता। तुमने कभी कुछभी दान नहीं किया है। तुम केवल तपही करते रहे। इसलिए स्वर्गमें आकरभी तुम्हें क्षुधा कष्ट दे रही है। जब इस वनमें अगस्त्यजी आवेंगे तब तुम इस कष्टसे मुक्त होंगे। क्योंकि वे देवताओंको भी तारनेमें समर्थ हैं। तबसे मैं इस शरीरका भोजन करता हूँ। इसे खाते मुझे अधिक वर्ष हो गए। अगस्त्यजीके विना मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। हे सौम्य! यह एक सुवर्णका भूषण मैं तुम्हें देता हूँ। इसे ग्रहण करो और मुझपर कृपा करो। हे राघव! मैंने उसका दिया हुआ यह आभूषण ले लिया। फिर तो उसका वह पूर्ण शरीर नष्ट हो गया और वह राजर्षि तृप्त होकर स्वर्गगामी हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डे उत्तरार्द्धका अठहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७८॥

उन्यासीवाँ सर्ग

राजा दण्डकी कथा

अगस्त्यजीके इन अद्‌भुत वचनोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उनसे विदर्भ-राज श्वेतके तपका और उस वनके पशु-पक्षी-हीन होनेका वृतान्त पूछा। अगस्त्यजीने कहा—हे राम! सतयुगमें महाराज मनुही इस पृथ्वी मण्डलके राजा थे जिनके वंशवर्द्धक इक्ष्वाकु नामक बड़ा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। तब महाराज मनुने इक्ष्वाकुको राज्यभार देकर कहा कि, तुम राजा होकर

राजवंशोंकी प्रतिष्ठा करो। तुम दण्ड द्वारा प्रजा-पालन करो। परन्तु किसी निरपराधको दण्ड न देना। जो राजा अपराधीको यथोचित दण्ड देता है, वही राजा स्वर्गगामी होता है। पुत्रको ऐसा समझाकर मनुराज स्वर्ग चले गए। महापराक्रमी इक्ष्वाकु सचेष्ट हो राज्य करने लगे। उन्होंने विविध प्रकार के यज्ञ और तपका तथा दान देकर देवपुत्रोंके समान सौ पुत्र उत्पन्न किए। उनमेंसे सबसे छोटा पुत्र बड़ा मूर्ख और विद्याहीन था। इसीसे महाराजने उसका नाम 'दण्ड' रखा। उन्होंने सोचा कि, इस मूर्खपर दण्डपात अवश्य होगा। उस उद्दण्ड पुत्रको उन्होंने विन्ध्याचल और शैवल पर्वतके मध्यका भाग जो अत्यन्तही घोर प्रदेश था, दिया। उस देशका 'दण्ड' राजा हुआ। वहाँ उसने एक उत्तम नगर बसाया। उस पुरका मधुमन्त नाम रखा और उसने सुव्रत शुक्राचार्यको अपना पुरोहित नियत किया। फिर तो वह वहाँ इन्द्रके समान राज्य करने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका उन्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥७९॥

अस्सीवाँ सर्ग

गुरु शुक्राचार्यकी पुत्री अरजाके साथ कामी राजा दण्डकी उद्दण्डता

हे राम! इस प्रकार राजा दण्डने वहाँ बहुत दिनोंतक राज्य किया। एक दिन जब चैत्र मासका सुन्दर दिन था, राजा दण्ड अपने पुरोहित शुक्राचार्यके रमणीक आश्रमपर गया। वहाँ उसने विहार करती हुई परम सुन्दरी शुक्राचार्यकी कन्याको देखी जो उस समय भूतलपर एक अद्वितीय सुन्दरी थी। उसे देखतेही वह मूर्ख राजा काम-पीड़ित हो गया और उस कन्याके निकट जाकर उसका परिचय पूछने लगा। उसने कहा—'मैं अक्लिष्टकर्मा शुक्राचार्यकी पुत्री हूँ और इसी आश्रममें रहती हूँ। तुम मुझे बर्वस मत पकड़ो। क्योंकि मैं अभी क्वाँरी हूँ और अपने पिताके अधीन हूँ। फिर मेरे पिता आपके गुरु हैं और आप उनके शिष्य हैं। यदि तुम कोई अनुचित कार्य करोगे तो वे महातपा अतिक्रुद्ध हो तुम्हें विपत्ति में डाल देंगे। यदि तुम्हारी यही इच्छा हैं तो तुम मुझे धर्मसे वरण करो। मेरे पिताके पास जाकर तुम मेरे लिए प्रार्थना करो। अन्यथा तुमको कटु फल भोगना पड़ेगा। क्योंकि क्रुद्ध होनेपर मेरे पिता त्रिलोकीको भस्मकर सकते हैं। सम्भव है कि, मेरे

लिए प्रार्थना करनेपर मेरे पिता मुझे तुमको दे भी दें।' जब अरजाने इस प्रकार कहा, तब कामसे विकल मदोन्मत्त राजा हाथ जोड़ शिर नवाकर बोला—'हे सुश्रोणि! अब मुझपर कृपा करो, व्यर्थ समय न नष्ट करो। हे वरानने! अब तेरे पीछे मेरी जान निकलना चाहती है। तू मुझसे मिलजा। फिर भलेहो मैं मारा जाऊँ, भलेही मुझे घोर पातकही क्यों न लगे। हे भीरु! मैं बहुत विकल हो रहा हूँ। अब तू अपने चाहनेवालेको अपना ले।' यह कह उस बलवान् दण्डने बरजोरी दोनों हाथोंसे उस कन्याको आलिङ्गन कर लिया और उस छटपटाती कन्याके साथ यथेष्ट विहार किया। फिर द्रुत गतिसे अपनी मधुमन्त नामक राजधानीको चला गया। उधर अरजाभी अपने आश्रमके समीप खड़ी हो अत्यन्त दुःखी हो रोने लगी और अत्यन्त भयभीत हो अपने देवसन्निभ पिताके आनेका मार्ग देखने लगी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका अस्सीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८० ॥

इक्यासीवाँ सर्ग

दण्डको शुक्राचार्यका शाप

इस घटनाके एक मुहूर्त्त पश्चात् जब देवर्षि शुक्रने यह समाचार सुना तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। ऐसा जान पड़ा मानों वे तीनों लोकको भस्मकर डालेंगे। क्योंकि एक तो वे ऋषि उस समय बहुत भूखे और अरजा दीन और धूलमें लिपटी पड़ी प्रातःकालीन मन्द जुन्हाईकी न्याईं उन्हें दीख पड़ी थी। उन्होंने हाथमें जल लेकर कहा—यह दुर्मति राजा सात रातमें पुत्र, सेना और बाहनों सहित नष्ट हो जावे। इस दुष्ट राजाके राज्यको, चारों ओर सौ योजन तक इंद्र धूलकी वृष्टिकर इसे नष्ट कर डालें। यहाँके सभी चराचर जीव उस धूलि-वर्षासे नष्ट हो जावें। दंडका सम्पूर्ण राज्य सात दिनोंकी निरन्तर धूलि-वृष्टिसे नष्ट-भ्रष्ट हो जावे। इस प्रकार क्रोधपूर्ण लाल नेत्र किए शुक्राचार्यने राजाको शापितकर उस आश्रमके वासियोंसे कहा—'तुम सब दण्डका राज्य त्यागकर कहीं अन्यत्र चले जाओ।' फिर तो आश्रमवासी उस राज्य को त्याग तत्क्षण ही अन्यत्र चले गये और अरजासे महर्षिने कहा कि—हे दुर्बुद्धिन! तू इसी आश्रममें रह। यह एक योजनका जो सुन्दर सरोवर है, इसपर तू निश्चिन्त होकर यहाँ रहती हुई अपने कर्मोंका फल भोग और

अपने उद्धार होनेके समयकी प्रतीक्षा करे। यहाँ तेरे समीप जितने पशु-पक्षी रहेंगे उस धूलिकी वर्षासे नष्ट नहीं होंगे।' अरजाको ऐसा समझाकर शुक्राचार्यभी अन्यत्र निवास करनेके लिए चल दिए। अरजा नतशिर वहाँ रहने लगी। इधर भार्गव मुनिके कथनानुसार सात दिनमें धूलवृष्टिसे अपने भृत्यों और वाहनों सहित राजाका वह सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो गया। ब्रह्मर्षिके शाप का कटु फल राजाको प्राप्त हुआ। हे काकुत्स्थ! उसी समयसे इस देशका नाम दण्डकारण्य प्रसिद्ध हुआ। फिर इसमें आकर तपस्वियोंने वास किया जिससे इसको जनस्थानभी कहा गया। हे राम! तुमने जो पूछा, वह सब मैंने कहा। इतनेमें संध्याका समय देख राम सहित मुनिवर्य अगस्त्य संध्योपासन करने चले गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका इक्यासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८१ ॥

बयासीवाँ सर्ग

ब्राह्मणके बालकको सजीव कर रामका अयोध्यागमन

ऋषि अगस्त्यके इन वचनोंको सुन उनकी आज्ञा ले श्रीरामचन्द्रजी अप्सराओंसे सेवित उस निर्मल जलाशयके समीप सन्ध्योपासन करनेके लिए चले गए। वहाँ आचमनपूर्वक सन्ध्योपासन कर चुकनेके पश्चात् वे पुनः महात्मा अगस्त्यके आश्रममें लौट आए और अगस्त्यजीने उन्हें बहुतसे कन्द-मूल, मसाले और साठीके चावलका भात आदि पवित्र भोज्य पदार्थ भोजन को दिए। नरश्रेष्ठ राम अगस्त्यजीके दिए हुए उन अमृत तुल्य पदार्थोंका भोजन कर हर्षित हो वह रात्रि उसी आश्रममें व्यतीत किए। फिर प्रातःकाल उठकर प्रातःके आवश्यक कृत्योंसे निश्चिन्त हो विदा माँगनेके लिए अगस्त्य जीके समीप गए और प्रणामकर कहा--'भगवन्! अब मुझे अपने स्थानपर जानेकी आज्ञा दीजिए। आपके दर्शनोंसे मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। अब अपनेको कृतकृत्य करनेके लिए फिर कभी आपके दर्शनार्थ आऊँगा।' श्रीरामजीके ये वचन सुनकर धर्मचक्षु तपोधन अगस्त्यजो बड़े प्रसन्न हुए और उनसे बोले-'रघुनन्दन! आपके ये सुन्दर वचन बड़ेही अद्भुत हैं। आप तो स्वयंही समस्त प्राणियोंको पवित्र करनेवाले हैं। जो लोग एक मुहूर्तके लिए

भी आपके दर्शन पा लेते हैं वे पवित्र स्वर्गके अधिकारी और देवताओंके भी पूज्य हो जाते हैं। इस प्रकार आप सभी देहधारियोंको पवित्र करनेवाले हैं। पृथ्वीमें जो लोग आपकी कथाएँ कहते हैं, वे सिद्धि प्राप्तकर लेते हैं। आप निश्चिन्त होकर पधारें, आपके मार्गके सब विघ्न दूर हों तथा आप धर्मपूर्वक राज्य-शासन करें, क्योंकि आपही संसारके परम आश्रय हैं।' मुनिके इसप्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने बुद्धिमान् मुनिको हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा अन्य सब ऋषियोंकाभी यथोचित अभिवादन कर वे स्वर्णजटित पुष्पक-विमान पर चढ़ गए। जाते समय ऋषियोंने उन्हें सब ओरसे आशीर्वाद दिया। फिर वे स्थान-स्थान पर सम्मान पाते हुए मध्याह्नके समय अयोध्यामें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पुष्पक विमानको छोड़ दिया और कहा--अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।' फिर वे ड्योढ़ीके भीतर खड़े हुए द्वार-पालसे बोले--तुम अभी जाकर भरत और लक्ष्मणको मेरे आनेकी सूचना दो और उन्हें बुला लाओ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका बयासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८२॥

तिरासीवाँ सर्ग

श्रीरामका भरत और लक्ष्मणसे राजसूय यज्ञका परामर्श।

अक्लिष्टकर्मा रामकी आज्ञा पाकर द्वारपाल दोनों कुमारोंको बुला लाया। तब उन्हें आया हुआ देखकर श्रीराघवने उठकर उनका आलिङ्गन किया और बोले—मैंने ब्राह्मणका कार्य तो ठीक-ठीक कर दिया। अब मेरी इच्छा एक राजसूय यज्ञ करनेकी है। क्योंकि वह राजधर्मकी चरम सीमा है। मेरे विचारसे राजसूय-यज्ञ अक्षय और अविनाशी फल देनेवाला है। तथा वह समस्त पापोंको नष्ट कर देता है। तुम दोनों मेरे आत्माही हो, अतः मेरी इच्छा तुम्हारे साथ इस यज्ञका अनुष्ठान करनेकी है। इस समय मेरे साथ तुम भी विचार करो कि, हमारे लिये कौन-सा कर्म इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी होगा? वाक्य-विशारद श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर भरतने प्राञ्जलिभूत होकर कहा—'महाराज! सर्वोत्कृष्ट धर्म, पृथ्वी और यश—यह आपहीमें प्रतिष्ठित हैं। समस्त राजाओं सहित हम दोनों आपको वैसाही मानते हैं जैसे सब देवता ब्रह्माजीको मानते हैं।

जैसे पुत्र पिताको देखते हैं, उसी प्रकार आपके प्रति सबके भाव हैं। हे राघव ! आप सम्पूण पृथ्वी और समस्त प्राणियोंके भी आश्रय हैं। फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं, जिसमें पृथ्वीके सब राजवंशों और वीरोंका हमारे कोपके कारण संहार होना संभव हो।' भरतजीके ये अमृत-तुल्य वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको अतुलित आनन्द हुआ और वे बोले—भरत ! तुम्हारा यह कथन बड़ाही उदार, धर्मसंगत और पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला है। मेरे हृदयमें राजसूय यज्ञका संकल्प उठ रहा था, किन्तु तुम्हारे सत्परामर्शसे मैं उसे त्याग देता हूँ; क्योंकि बुद्धिमान्‌को कोईभी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे अन्योंको कष्ट हो। हे भरत ! युक्ति वचन तो बालकोंकीभी स्वीकार करनी चाहिए। अतः मैं तुम्हारा यह उत्तम कथन स्वीकार करता हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का तिरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८३ ॥

चौरासीवाँ सर्ग

वृत्रासुरकी कथा

श्रीराम और महात्मा भरतके इस प्रकार कहनेपर श्रीलक्ष्मणजीने कहा—रघुनन्दन ! अश्वमेध यज्ञ सब पापोंको नष्ट करनेवाला है। यदि आपकी इच्छा यज्ञही करनेकी हो तो यह यज्ञ कीजिए। सुनते हैं पुराकालमें जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी थी, तब वे अश्वमेधके द्वाराही उस पापसे मुक्त हुए थे। हे महाबाहो ! जब देवता और असुरोंमें मेल था, उस समय वृत्र नामका एक बड़ा दुर्द्धर्ष लोकमान्य दैत्य था जो सौ योजन चौड़ा और इससे तिगुना ऊँचा था। यही नहीं; वह बड़ा धर्मज्ञ, कृतज्ञ और बुद्धिमान्‌भी था तथा समस्त भूमण्डलका बड़ी सावधानीसे शासन करता था। उसके राज्यमें पृथ्वी सब प्रकारकी अभीष्ट वस्तुएँ उत्पन्न करती थीं तथा फल, फूल और मूल सरस होते थे। पृथ्वी बिना जोते-बोएही अन्न उत्पन्न करती थी तथा पूर्णतया धन-धान्य सम्पन्न थी। इसप्रकार वह बड़ेही विस्तृत राज्य और अद्भुत राज्यका शासन करता था। इसी समय उसे यह विचार हुआ कि, मैं कठोर तप करूँ। क्योंकि परम कल्याणका साधन तो तपही है और सब प्रकारका सुख तो

मोह मात्र है। अतः उसने अपने पुत्रको पुरवासियोंको सौंप दिया और स्वयं समस्त देवताओंको सन्तप्त करता हुआ उग्र तप करने लगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का चौरासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८४॥

पचासीवाँ सर्ग

इन्द्रका अश्वमेध यज्ञ

तब विष्णुकी सहायता ले देवताओं सहित इन्द्र उस वनमें पहुँचे जहाँ वृत्रासुर तप कर रहा था। उन्होंने देखा कि, असुर-श्रेष्ठ वृत्रासुरका तेज ऐसा बढ़ गया है कि, वह तीनों लोकोंको मानों तपाए डालता है। उसे देखतेही देवगण व्यग्र हो गए और सोचने लगे—हम इसे कैसे मारें; क्या किया जाय जिससे हमारी पराजय न हो? देवता ऐसा सोचही रहे थे कि, इन्द्रने अपना वज्र उठाकर वृत्रासुरके मस्तकपर पटक दिया। इन्द्रका वज्र प्रलयाग्निके समान भयंकर और बड़ाही प्रदीप्त था। जब उससे कटकर वृत्रासुरका सिर गिरा तब सारा संसार भयभीत हो गया। निरपराध वृत्रका बध करना उचित नहीं था; अतः इन्द्र उसके कारण बहुत चिन्तित हुए और सब लोकोंमें सीमा-वर्ती अन्धकारमय प्रदेशमें चले गए। जानेके समय ब्रह्महत्या उनके पीछे लगी और उनके शरीरपर गिरकर उन्हें दुःखातुर कर दिया। तब सब लोकों के अन्तमें जाकर वे कुछ समय तक अचेत और संज्ञाशून्य होकर पड़े रहे। इन्द्रके न रहनेसे सारा संसार व्याकुल हो उठा। पृथ्वी उजड़ी-सी हो गयी; क्योंकि इसके जल और वन सब सूख गए। नदियों और सरोवरोंमें जलका सर्वथाही अभाव हो गया तथा वर्षा न होनेसे सब जीवोंमें व्याकुलता व्याप्त हो गई। यह देखकर अग्नि आदि देवता त्रिभुवनपति भगवान् विष्णुका पूजन कर उनकी बार-बार स्तुति करने लगे—परमेश्वर! आप जगत्के पिता तथा सबके पूर्वज और परम आश्रय हैं। समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिएही आपने यह विष्णु रूप धारण किया है। इस वृत्रका बधभी वास्तवमें आपने ही किया है। किन्तु इसके कारण ब्रह्महत्या इन्द्रको कष्ट पहुँचा रही है, अतः आप उसकी निवृत्तिका उपाय बतलाइए। इसपर विष्णुजीने कहा—परम पवित्र अश्वमेध यज्ञके द्वारा मेरी आराधना करते हुए इन्द्र पुनः देवराजका

पद प्राप्त कर लेंगे और फिर उन्हें किसी प्रकारका भय न रहेगा' देवताओं को ऐसा आदेश देकर विष्णुजी अपने लोकको चले गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका पचासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८५ ॥

छियासीवाँ सर्ग

ब्रह्महत्या-निवास

अब बृहस्पतिजीको साथ लेकर देवगण उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ इन्द्र गुप्त थे। उन्हें ब्रह्महत्यासे आविष्ट देखकर वे उन्हींको आगेकर अश्वमेध यज्ञ करने लगे। जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्महत्याने आकर कहा कि 'मेरे लिए कोई स्थान बतलाओ।' देवताओंने उससे कहा—'तू अपने चार भागकर दे।' तब ब्रह्महत्याने अपने चार भाग करके कहा—'मैं अपने एक भागसे तो इच्छा-नुसार वर्षाके चार मासोंमें जलसे पूर्ण नदियोंमें रहूँगी, दूसरे भागसे सर्वदा पृथ्वीमें निवास करूँगी। तीसरे अंशमें तीन दिन तक युवती स्त्रियोंमें निवास करूँगी—इससे उनका दर्प नष्ट होता रहेगा और चौथे भागसे उन लोगोंमें निवास करूँगी जो ब्राह्मणोंको मिथ्या दोष लगाकर सताया करते हैं।' तब देवताओंने कहा—'तुम जैसा कहती हो, वैसा ही हो।' फिर सब देवताओंने प्रसन्न होकर इन्द्रकी बन्दनाकी तथा इन्द्रभी निष्पाप और सन्ताप शून्यहो गए। इन्द्रके अपने पदपर प्रतिष्ठित हो जानेपर समस्त संसारभी सुखी हो गया। हे राम! अश्वमेध यज्ञकी ऐसी महिमा है। हे महाभाग! अतएव आपभी अश्वमेध यज्ञ कीजिए। इन्द्रके समान पराक्रमी राम लक्ष्मणजीके कहे इन उत्तम और मनोहर वचनोंको सुनकर परम सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका छियासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८६ ॥

सत्तासीवाँ सर्ग

कर्दम-पुत्र राजा इलकी कथा

वक्ताओंमें श्रेष्ठ, महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणके इन वचनोको सुन-कर और मुसकाकर कहा कि—'हे नर-श्रेष्ठ! तुमने जो यह कथा कहीसो ऐसी ही है। वृत्रासुर-बधकी कथा और अश्वमेध यज्ञका फल ऐसाही है। हे सौम्य!

मैंने सुना है कि, पूर्वकालमें कर्दम प्रजापतिके ज्येष्ठ पुत्र इल बड़े धार्मिक थे और वाह्लीक देशमें राज्य करते थे। वे सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें करके पुत्रकी न्याई उसका पालन करते थे। देव, दानव, गन्धर्व और यक्ष सभी उनसे भय करते थे और उनके क्रुद्ध होनेपर त्रयलोक कम्पितहो जाता था। एक समय चैत्रमासमें जब वह राजा अपनी सेना आदि लेकर बनमें आखेटको गये तो उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ स्वामिकार्तिकका जन्म हुआ था। उस बनमें दुर्धर्ष देवाधि देव महादेवजी पार्वती सहित विहार करते थे। उस समय भृषभध्वज शिवजीने पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिए अपना स्त्री रूप बना लिया था। तब उन्हें स्त्री रूप देख बनके पुरुषवाची वृक्ष और मृगादिक सब स्त्रीबाची होगए। यहाँ तक कि उस समय उस बनमें जो भी थे सब स्त्रीरूप हो गए। महादेव कर्दम-पुत्र इलको बड़ा दुःख हुआ। परन्तु जब उन्होंने यह जाना कि यह सब शिवजीका प्रभाव है तो वे अत्यन्त भयभीतहो अपने अनुचरों, सैनिकों और वाहनों सहित शितकण्ठ, कपर्दी देवदेव महादेवजीके शरणमें गए। तब वरदानी शङ्करने पार्वती सहित हँसकर कहा—'राजर्षे! कर्दमके पुत्र! हे महाबली! उठो, उठो,। हे सुव्रती! पुरुषत्वको छोड़कर और जो चाहो वह माँगो।' यह सुनकर राज इल बड़ा दुःखी हुए। उन्होंने सुरश्रेष्ठ शिवजीसे अन्य कोई वर नहीं माँगा। फिर उन्होंने शैलजा को सभक्ति प्रणामकर उनसे कहा—'हे माताजी! हे वरदानी! तुम सब लोकों और देवताओंकी वरदात्री हो। हे देवि! तुम्हारा दर्शन सफल होता है। अब मुझपर कृपा दृष्टि करें।' तब राजाकी इस प्रार्थनाको सुन और उनके हृदयगत भावको जानकर शिव सान्ध्यिमें विराजमान उन देवी पार्वतीने शिवजीकी अनुमति ले राजासे यह सुन्दर वचन कहा—हे राजन्! मुझे आधा वरदान तो महादेवजी दें और आधा मैं दूँगी। इसपर राजाने हर्षित होकर कहा कि—हे अलौकिक गुणरूप भूषित—भगवति! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि, मैं एकमास तक स्त्री और एक मासतक पुरुष रहा करूँ। पार्वतीजीने कहा—एवमस्तु। ऐसाही होगा और जब तुम पुरुष रूप रहोगे, तब तुम्हें अपने स्त्री रूपका स्मरण न रहेगा और जब स्त्री रहोगे तब

पुरुष रूपका स्मरण न रहेगा। तदनुसार तबसे कर्दमके पुत्र एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहने लगे। स्त्री रूपमें उनका नाम इला हो जाता था।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का सत्तासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८७॥

अट्ठासीवाँ सर्ग

इला और बुधका संयोग

श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे राजा इलकी कथा सुनकर भरतजी और लक्ष्मणजी बड़े विस्मित हुए तथा बोले कि, हे महाराज! अब इसे विस्तारसे सुनाइये कि, जब राजा स्त्री होता था, तब क्या-क्या दुर्गति भोगता था और पुरुष होनेपर क्या किया करता था? इसपर काकुत्स्थ राम कहने लगे-प्रथम मासमें जब वह लोक सुन्दरी स्त्री हुआ, तब वह अपने नौकरों चाकरोंके साथ उसी वनमें प्रवेश कर इला नाम से पर्वतकी कन्दराओं में विचरती। उस बनमें एक अति रमणीय सरोवर था। वहाँ उसने चन्द्रमाके पुत्रको देखा जो उसी सरोवरके जलमें खड़े होकर उग्र तप कर रहे थे। उसी समय स्त्री इलाने अपने साथियों सहित वहाँ जाकर उस सरोवरका जल खलबला डाला। तब इलाको देख बुध काम-पीड़ित हो जलसे निकल तटपर आए और अपने आश्रममें जा आश्रमकी रहनेवाली स्त्रियोंसे जो उसको बुलवाना चाहा तो उन्होंने कहा—वह तो पति-विहीना हमारी स्वामिनी है। इस पर क्षत्रिय बुधने अपनी आवर्तनी विद्याका स्मरणकर योगबलसे राजा इल का सब वृतान्त ज्ञातकर लिया और उन सब स्त्रियोंसे कहा कि, अब तुम सभी किम्पुरुषी होकर इस पर्वतीय प्रान्तमे रहो तथा अपने लिए यहाँ गृह आदिका भी निर्माणकर लो। उन स्त्रियोंने ऐसाही किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका अठासीवाँ सर्ग समाप्त ॥८८॥

नवासीवाँ सर्ग

इलासे पुरूरवाकी उत्पत्ति

इसप्रकार किम्पुरुषीकी उत्पत्ति सुनकर, भरतजी और लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा; यह तो बड़ी अद्भुत कथा आपने कही। तदन्तर

श्रीरामजी पुनः धर्मात्मा प्रजापतिके पुत्र इलकी कथा कहने लगे। (उन्होंने कहा) एक समय अवसरसे बुधने अन्य समस्त किन्नरियोंको विचरते देख, रूप यौवन सम्पन्न इलाको एकान्तमें पाकर कहा--हे वरारोहे ! मैं चन्द्रमाका पुत्र बुध हूँ। मुझे प्रेम-दृष्टिसे देखकर सन्तुष्ट करो। इलाने बुधकी बात स्वीकार करली। चन्द्र-पुत्र इलाके साथ विहार करने लगे। इस विहार में उनको वैशाख मासभी क्षण-सा व्यतीत होगया। अब इलाका स्त्रीरूप व्यतीत होगया और वे पुरुष हो गये और बुधभी तपस्या करने लगे। उस अवधिमें उन्होंने कहा—अब मेरा पुत्र 'शशविन्दु' राज्य करे। इस पर बुधने इन्हें समझा-बुझाकर एक वर्षके लिए-वहाँ रोक लिया। उस अवधिमें वे एक मास स्त्री और एक मास पुरुषके रूपमें वहाँ वास करने लगे। स्त्री बनकर वे बुधके साथ विहार करते और पुरुष बनकर धर्मशास्त्रका अनुशीलन करते। इतनेमें नौ मासका समय व्यतीत हो गया। तब बुधसे सुन्दरी इलाने पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। पुत्र उत्पन्न होतेही उस सुश्रोणिने उसे बुधको सौंप दिया। इलाका वह पुत्र अपने पिता बुधके ही समान रूपवान् हुआ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का नवासीवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८९ ॥

नब्बेवाँ सर्ग

अश्वमेधके प्रभावसे इलको पुन्सत्व-प्राप्ति

जब बारहवें मासमें महाबली राजा इल पुनः पुरुष हुए, तब महायशस्वी सम्बर्त्त, भृगपुत्र च्यवन, अरिष्टनेमि, प्रमोदन, मोदर, दुर्वासा आदि ऋषियोंको बुलाकर तत्त्वदर्शी बुधने उन अपने सब मित्रोंसे महाबली राजा इलको इस दशाका वर्णनकर उनसे निवेदन किया कि, आपलोग कोई ऐसा उपाय करें, जिसमें इनका भला हो। इसप्रकार वे लोग परस्पर वार्त्तालाप करही रहे थे कि, उसी समय महातेजस्वी कर्दमजी भी बहुतसे मुनियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। पुलस्त्य, क्रतु, वषट्कार, ओङ्कार आदि समस्त महातेजस्वी ऋषिगण बुधजीके आश्रममें एकत्र हुए। उन्होंने हाह्लीश्वरके सम्बन्धमें पृथक्-पृथक् अपने विचार दिए। तब कर्दम मुनिने अपने पुत्रकी हित-कामनासे कहा कि, मेरे विचारसे शिवजीको छोड़कर इसकी और कोई औषधि नहीं

है और शिवजीको अश्वमेधसे बढ़कर प्रिय अन्य कोई यज्ञ नहीं है। अतएव, आओ! हम सब अश्वमेध यज्ञ करें। राजर्षि सम्वर्त्त ऋषिके शिष्य शत्रुतापन मरुतने यज्ञका भार लिया। बुधके आश्रमके समीपही वह यज्ञ हुआ। उस अश्वमेधसे शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने इलके समक्ष सब ब्राह्मणोंसे कहा कि—वर माँगो। ब्राह्मणोंने कहा—इलको सदैवके लिए पुरुषत्व प्रदान कीजिए। फिरतो शिवजीने प्रसन्न हो इलको सर्वदाके लिए पुरुषत्व प्रदान किया। इलको वरदान दे शिवजी अन्तर्धान हो गये। यज्ञभी समाप्त हुआ। सब ज्ञानी ऋषि भी अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। राजा इलने भी वाह्लीक देशको त्याग कर सुन्दर मध्य देशमें प्रतिष्ठानपुर नामक नगर बसाया। वाह्लीकने अपने पुत्र 'शशविन्दुको राजा बना दिया। शशविन्दु बड़ा प्रतापी राजा हुजा। प्रजापतिके पुत्र बहुत दिनों तक प्रतिष्ठानपुरमें राज्यकर अन्तमें ब्रह्मलोक सिधारे और उनसे उत्पन्न पुरूरवा राजा हुए। हे पुरुषर्षभ! अश्वमेघ यज्ञका यह प्रभाव है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका नब्बेवाँ सर्ग समाप्त ॥९०॥

इक्यानबेवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका अश्वमेध यज्ञ करना तथा यज्ञ-हेतु सामग्री भेजनेकी आज्ञा देना

अमित पराक्रमी राम अपने भाइयोंको यह कथा सुनाकर, फिर लक्ष्मण से यह धर्मयुक्त वचन बोले—वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप तथा अश्वमेध यज्ञ करानेमें निपुण सब ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे परामर्श करो। मैं सावधानतापूर्वक उत्तम लक्षणोंवाले अश्वकी पूजाकर उसे छोड़ूँगा। श्रीरामके यह वचन सुनकर विक्रमी लक्ष्मण शीघ्रही उन सब ब्राह्मणोंको बुलाकर श्रीराघवसे भेंट करा दिये। वे सब ब्राह्मण श्रीरामजीको प्रणाम करते देख उन्हें आशीर्वाद देने लगे। फिर श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर उनसे अश्वमेधके विषयमें निवेदन किया। ऋषियोंने उनका प्रस्ताव सुनकर श्रीमहादेवजी को नमस्कार किया और सब प्रकारसे उस यज्ञकी प्रशंसा की। तब ब्राह्मणोंके वे अद्भुत वचन सुनकर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और उस कर्मके लिए उनकी भी स्वीकृति समझकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा——हे महाबाहो! तुम सुग्रीवके

पास संदेशा भेजो कि, वे बहुत-से प्रधान-प्रधान बानरोंके साथ इस यज्ञ-महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए आवें। अतुल पराक्रमी विभीषणकोभी बहुत-से राक्षसोंके साथ यज्ञमें आना चाहिए। हमारे हितैषी अन्य राजाओंका भी यज्ञकी संरक्षताके हेतु यहाँ शीघ्र उपस्थित होना अति आवश्यक है। हमारे राज्यके जो धर्मनिष्ठ ब्राह्मण देशान्तरोंमें चले गए हैं, उन सबको निमन्त्रण भेजने चाहिए तथा तपोधन ऋषियों एवं अन्य देशोंके ब्राह्मणोंको भी सपत्नीक आमन्त्रण देना चाहिए। नैमिषारण्यमें गोमती नदीके तटपर यज्ञशाला बनानेकी आज्ञा दो। क्योंकि वह स्थान बड़ाही पवित्र है। वहाँ यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए सर्वत्र शान्ति विधान प्रारम्भ करा दो। अनेकों धर्मज्ञ पुरुष नैमिषारण्यमें इस महायज्ञके दर्शन करेंगे तथा हमारे द्वारा विधिवत् सम्मानित और तृप्त होकर जायँगे; अतः तुम सभीको निमन्त्रित करो। पहले एक लाख बैल चावल लेकर तथा दश हजार बैल तिल, मूँग, चना, कुलथी, उड़द और नमक लेकर चलें। इन्हींके प्रमाणसे घी, तेल आदिभी जाने चाहिए। साथही सुगन्धित द्रव्यका जानाभी आवश्यक है। भरतजी कई करोड़ सोने-चाँदीके सिक्के आगे लेकर बड़ी सावधानीसे यात्रा करें। उनके साथ सेना भी यात्रा करे तथा मार्गमें दूकानें लगानेवाले वणिक्-जन, रसोइये, वेदज्ञ ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, प्रियजन, सेवक, बढ़ई, कोषाध्यक्ष, सब माताएँ, कुमारोंका रनिवास, मेरी पत्नीकी सुवर्ण प्रतिमा और यज्ञ दीक्षामें कुशल ब्राह्मणगणभी भरतजीके साथ यात्रा करें।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका इक्यानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥९१॥

बानबेवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीकी अश्वमेधके लिए सामग्री भेजनेके पश्चात् अश्व छोड़ना

इसप्रकार सब सामग्री भेजवाकर, श्रीरामचन्द्रजीने समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त कृष्णवर्णका अश्व छोड़ा। उस अश्वकी रक्षाके लिए उसके साथ श्रीलक्ष्मणजीको तथा ऋत्विजोंको भेज पीछे ससैन्य काकुत्स्थ राम नैमिषारण्यके लिए प्रस्थित हुए। वहाँ बड़ी अद्भुत यज्ञशाला बनाई गयी थी, जिसे देखकर महाबाहु श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'यह स्थान बड़ा सुन्दर है।'

जब श्रीरामचन्द्रजी नैमिषारण्यमें पहुँच गए, तब सब राजा उपहार लेकर उपस्थित हुये। श्रीरामने उनका यथोचित सत्कार किया। राजाओंके सत्कारका कार्य भरत और शत्रुघ्न पर निर्भर था तथा लक्ष्मणजीकी रक्षामें अश्व-पर्यटनकी विधि सम्पन्न हुई। उस यज्ञमें केवल एकही बात सुन पड़ती थी—'जबतक याचक सन्तुष्ट न हों, उनके इच्छानुसार दिए जाओ।' इसके अतिरिक्त कोई अन्य शब्द वहाँ सुनाई नहीं देता था। जबतक याचकोंके मुखसे कोई शब्द न निकलता, तबतक राक्षस और वानर उन्हें देतेही रहते। वहाँ कोई भी पुरुष दीन, दुःखी या मलिन न था; सबलोग हृष्ट-पुष्टही दिखाई देते थे। उस यज्ञमें जो चिरंजीवी महात्मागण थे, उन्हें ऐसे किसीभी यज्ञका स्मरण नहीं था, जिसमें दानकी ऐसी धूम रही हो। जिसे सुवर्णकी इच्छा थी वह सुवर्ण पाता था, धनेच्छुक धन पाता और रत्नार्थीको रत्न दिए जाते थे। वहाँ रात-दिन दिये जानेवाले चाँदी, सोने, रत्न और वस्त्रोंकी ढेरियाँ लगी रहती थीं। तपस्वियोंका कथन था कि ऐसा यज्ञ तो कभी इन्द्र, चन्द्र, यम और वरुणके यहाँ भी नहीं देखा गया। नृपश्रेष्ठ भगवान् श्रीरामका यह सर्वगुण सम्पन्न यज्ञ एक वर्षसे भी अधिक समय तक होता रहा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका बानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९२ ॥

तिरानबेवाँ सर्ग

वाल्मीक्यागमन

इसप्रकार वह परमाद्भुत यज्ञ हो ही रहा था कि, इतनेमें वहाँ अपने शिष्योंको साथ लिए हुए भगवान् वाल्मीकि मुनि आ पहुँचे। उन्होंने ऋषि-समुदाय सहित उस अद्भुत यज्ञको देखा और अपने लिए एकान्त स्थानमें सुन्दर पर्णशालाओंकी व्यवस्था करायी। उनकी सुन्दर कुटीके समीप श्रीरामकी ओरसे खाद्य पदार्थोंसे भरे हुए कई छकड़े और उत्तमोत्तम फल मूल रखवा दिए गए थे। वाल्मीकिजीने अपने दो शिष्य—कुश और लवसे कहा—'तुम दोनों भाई एकाग्र चित्त होकर बड़े आनन्दके साथ सम्पूर्ण रामायण काव्यका गान करो। ऋषियों और ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानोंपर, गलियोंमें और राजमार्गोंपर तथा राजाओंके भवनोंमें भी इसका गान करना। श्रीरामके गृहद्वारपर, जहाँ ब्राह्मणजन यज्ञ कार्यकर रहे हैं, वहाँ और ऋत्विजोंके आगे

इस काव्यका विशेषरूपसे गान करना चाहिए। यहाँ पर्वतोंके शिखरोंपर नानाप्रकारके स्वादिष्ट फल लगे हैं। (भूख लगनेपर) उन्हें खा लिया करना और उत्साहपूर्वक काव्यका गान करते रहना। यहाँके मधुर फल-मूल खा लेनेसे तुम दोनों बालकोंको न तो श्रम होगा और न तुम्हारे गलेकी मधुरताही नष्ट होगी। यदि महाराज श्रीराम तुम्हें गान करनेके लिए बुलायें तो उनसे तथा वहाँ बैठे हुए ऋषि-मुनियोंसे यथायोग्य विनीत व्यवहार करना। मैंने पहले भिन्न-भिन्न संख्याके श्लोकोंसे युक्त रामायण काव्यके सर्गोंका जिस प्रकार तुम्हें उपदेश किया है, उसीके अनुसार प्रतिदिन बीस-बीस सर्गोंका मधुर स्वरसे गान करना! धनकी इच्छासे थोड़ा भी लोभ न करना। आश्रम-निवासी फल-मूलके आहारी वनवासियोंको धनसे क्या प्रयोजन? यदि रघुनाथजी पूछें—तुम दोनों किसके पुत्र हो? तो महाराज से इतना ही कहना कि, 'हम दोनों महर्षि वाल्मीकिजीके शिष्य हैं।' ये वीणाके सात तार हैं, इनसे बड़ा मधुर शब्द निकलता है। इसमें अपूर्व स्वरोंका प्रदर्शन करनेवाले ये स्थान बनाए गये हैं। इनके स्वरोंको झंकृत करके—मिलाकर मधुर स्वरमें काव्यका गान करना। प्रारम्भसे ही इसका गान होना चाहिये। तुम लोग कोई ऐसा व्यवहार न करना, जिससे राजाका अपमान हो; क्योंकि राजा धर्मकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका पिता होता है। अतएव तुम दोनों भाई प्रसन्न एवं एकाग्रचित्त होकर कल प्रातःकालसे ही वीणाके लय पर मधुर स्वरसे रामायणका गान प्रारम्भ कर दो।' मुनिके इसप्रकार उपदेश देनेपर मैथिली सुत दोनों बालक यह कहकर कि—"बहुत अच्छा, जो आज्ञा" वहाँसे चले गये। फिरतो वे दोनों अत्यन्त उत्सुक कुमार महर्षि वाल्मीकिके उस अद्भुत उपदेशको हृदयंगमकर, मनमें हर्षित हो, उस आश्रममें वैसेही रातमें सोये, जैसे च्यवनाश्रममें शुक्र-नीति-संहिताका उपदेश पाकर दोनों अश्विनीकुमार सोये थे।

[इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का तिरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥९३॥

चौरानबेवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका कुश और लवसे श्रीमद्रामायणका गान सुनना

प्रातःकाल होते ही मैथिलीनन्दन लव और कुश उठे और स्नानादि

कृत्योंसे निश्चिन्त हो एवं अग्निहोत्रकर वाल्मीकिजीके कथनानुसार श्रीमद्रामायणका गान करने लगे। वाल्मीकि निर्मित 'पाठ और गानके स्वरोंसे भूषित ध्वनि एवं परिच्छेदादि प्रमाणोंसे युक्त, वीणा-लय मिश्रित, वह अपूर्व मनोहर काव्य उन ऋषिकुमारोंके मुखसे सुनकर श्रीराघवको बड़ा कुतूहल हुआ।' जब महाराजको यज्ञकार्यसे अवकाश मिला, तब उन पुरुषसिंहने महर्षियों, राजाओं, विद्वानों और सेठ साहूकारोंको बुलाया। पौराणिकों, वैयाकरणों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, स्वर-लक्षण ज्ञाताओं, गान-श्रवणोत्सुक द्विजों, सामुद्रिक लक्षणों तथा संगीत लक्षणों तथा संगीत विद्याके जानकारों, भिन्न-भिन्न छन्दोंके चरणों; पाद, अक्षर, समास, गुरुलघु प्रयोगके ज्ञाता पिङ्गल–शास्त्रके ज्ञाताओंको; कला, मात्रा, प्रस्तार, मेरु, मर्कटादिके ज्ञाताओंको, ज्योतिषाचार्योंको, व्यवहारकुशलोंको, तर्कज्ञाताओं, बहुश्रुतों तथा छन्द, वेद और पुराणोंके ज्ञाता ब्राह्मणोंको, चित्रकाव्यज्ञोंको, सूत्रज्ञोंको, गान और नृत्यकला-कुशलजनोंको सभामें एकत्रकर श्रीरामचन्द्रने रामायण गान करनेवाले उन दोनों बालकोंको सभामें बुलाया। सभासदोंमें श्रोताओंका हर्ष वर्द्धन करनेवाली वार्त्ताएँ होने लगीं और मुनि कुमारोंने अपना गान आरम्भ किया। फिर तो मधुर संगीतका तार बँध गया। बड़ा अलौकिक गान था; जिसकी विशेषताओंके कारण किसी भी श्रोताको सुननेसे तृप्ति नहीं होती थी। मुनि-समुदाय और महापराक्रमी राजा आनन्दमग्न होकर उन दोनोंको पुनः पुनः देख रहे थे, मानों उनकी रूपमाधुरीको नेत्रोंसे पान कर रहे थे। फिर वे सब परस्पर कहने लगे 'इन दोनों कुमारोंकी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे सर्वथा ही मिल रही है। ये बिम्बसे प्रकट हुए प्रतिबिम्बसे ज्ञात हो रहे हैं। यदि इनके शरीर पर जटा और वल्कल वस्त्र न होते तो हमें श्रीराममें और इन दोनों कुमारोंमें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।' नगर और प्रान्तमें निवास करनेवाले इसप्रकार बातें कर रहे थे, इतनेमें ही नारदजीके कहे हुए प्रथम सर्ग—मूल रामायणका आरंभसे ही गान प्रारम्भ हुआ। वहाँसे लेकर बीस सर्गोंतक उन्होंने गान किया। तत्पश्चात् अपराह्नका समय हो गया। उस गानको सुनकर भ्रातृवत्सल श्रीरघुनाथजीने कहा—'इन दोनों बालकोंको

सुवर्णके अठारह हजार सिक्के पुरस्कारके रूपमें दे दो।' भाईको आज्ञा पाकर भरत उन दोनोंको पृथक्-पृथक् सुवर्ण-मुद्राएँ देने लगे; किन्तु उन युग भ्राताओं ने उन्हें नहीं ग्रहण किया और विस्मित होकर कहा—'इनका क्या होगा? हम वनवासी हैं। वनके फल-मूलसे हमारा जीवन-निर्वाह होता है, फिर यह सुवर्ण, चाँदी वनमें लेजाकर हम क्या करेंगे?' उनके यह वचन सुनकर सबके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ। श्रोतागण और श्रीरामचन्द्रजी—सभी आश्चर्य चकित हो गये। तब श्रीराघवको यह ज्ञात करनेकी उत्सुकता हुई कि—'इन्होंने यह काव्य-शिक्षण किससे प्राप्त किया है?' इसलिए उन्होंने इन दोनों मुनि कुमारोंसे पूछा—'इस महाकाव्यकी श्लोक-संख्या कितनी है? इसकी समाप्ति कहाँपर हुई है? तथा इसके निर्माण करनेवाले मुनिश्रेष्ठ कौन हैं और कहाँ रहते हैं?' रामके इस प्रश्नका मुनिकुमारोंने उत्तर दिया—महाराज! जिस सम्पूर्ण चरित्रको हमने आपको सुनाया है उस महान् काव्य-के रचयिता भगवान् वाल्मीकि हैं। वे इस यज्ञमें पधारे हुए हैं। उनके बनाए इस महाकाव्यमें चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं। उन महात्माने आदिसे अन्ततक पाँच सौ सर्ग तथा छः काण्डोंका निर्माण किया है। इनके सिवा उन्होंने उत्तरकाण्डकी भी रचनाकी है। महर्षि वाल्मीकि ही हमारे गुरु हैं और उन्होंने ही आपके चरित्रको काव्यका रूप दिया है। इसमें आपके जीवन तकका समस्त वृत्त सन्निहित हैं। राजन्! यदि आपने इसके श्रवणका विचार किया हो तो यज्ञ-कर्मसे अवकाश प्राप्त होनेपर इसके लिए एक निश्चित समय नियत कीजिए और स्वभ्राताओं सहित बैठकर इसे नियमितरूपसे श्रवण कीजिए।' श्रीरामने कहा—'बहुत अच्छा।' तत्पश्चात् उनसे आज्ञा प्राप्तकर दोनों भाई—कुश और लव प्रसन्नता पूर्वक उस स्थानपर गए, जहाँ मुनिवर वाल्मीकि जी स्थित थे। श्रीराम भी महात्मा मुनियों और राजाओंके साथ उस मधुर संगीतको सुननेके पश्चात् यज्ञशाला में चले गए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का चौरानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ सर्ग

अपनी शुद्धताका प्रमाण देनेके लिए सीताको रामकी आज्ञा

इस प्रकार श्रीरघुनाथजी राजाओं और वानरोंके साथ कई दिनों तक

वह उत्तम रामायण-गान सुनते रहे। उस कथासे ही उन्हें यह ज्ञातहुआ कि, कुश और लव सीताके ही सुपुत्र हैं। तब सभामें श्रीरामचन्द्रजीने सबके समक्ष अपने दूतोंको बुलाकर आज्ञा दिया कि, तुम महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें जाकर कहो कि, यदि सीता शुद्ध-चरित्र और निष्पाप हैं तो आपकी आज्ञासे वे यहाँ आकर जन-समुदायमें अपनी शुद्धता प्रमाणित करे।' तुम इस विषयमें महर्षि वाल्मीकि तथा सीताके हार्दिक अभिप्रायकोभी जान लेना, क्या वे यहाँ आकर अपनी शुद्धिका विश्वास दिलाना चाहती हैं? इन सबको पूर्णतया ज्ञातकर शीघ्र आओ और मुझसे सब वृतान्त कहो। कल प्रातः ही मिथिलेशकुमारी जानकी यहाँ आयें और मेरा कलंक दूर करनेके लिए पूर्ण सभामें शपथ करें।" श्रीरामके ये अद्भुत वचन सुनकर दूत 'जो आज्ञा' कहकर मुनिवर वाल्मीकिके समीप गए और श्रीरामके हार्दिक अभिप्रायको ज्ञातकर उन महातेजस्वी मुनिने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा ही होगा। श्रीराघवने जैसा कहा है, जानकी वैसाही करेंगी। क्योंकि स्त्रियोंका पति ही देवता है। मुनिके यह वचन सुन दूतोंने तत्क्षण लौटकर मुनिके वचन श्रीराघवजीसे कहे। वह सुन काकुत्स्थ राम बड़े प्रसन्न हुये और सभामें उपस्थित राजाओं और ऋषियोंसे उसका समाचार कहकर कल सभामें उपस्थित हो सीता-शपथ सुननेका सबको आज्ञा दी। सब ऋषि 'धन्य-धन्य' कहकर रामकी प्रशंसा करने लगे। फिर सबलोग अपने वास-स्थानपर गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका पंचानबेवाँ सर्ग समाप्त॥९५॥

छानबेवाँ सर्ग

सीताकी शुद्धताके विषयमें महर्षि वाल्मीकिके वाक्य

उस रात्रिको व्यतीतकर महातेजा रामने यज्ञशालामें जाकर समस्त ऋषियोंको बुलाया। वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, विश्वामित्र, दीर्घतपा, महातपस्वी दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, दीर्घजीवी मार्कण्डेय महायशस्वी मौदगल्य, गर्ग, च्यवन, धर्मज्ञ शतानन्द, तेजस्वी भरद्वाज, अग्नि पुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, महायशस्वी गौतम, तथा उत्तम व्रत पालन करनेवाले अन्य बहुतसे महर्षि कौतूहल वश वहाँ एकत्रित हुए। पराक्रमी राक्षस और महाबली वानरभी वहाँ विद्यमान थे। अनेक देशोंसे पधारे हुए सहस्रों

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सीताको साथ लेकर वहाँ आये। मुनिवर वाल्मीकिजीने जब सुना कि सभी समुदाय एकत्रितहो पाषाणवत निश्चय,वहाँ स्थित हैं, तब वे सीताको साथ लेकर वहाँ आये। आगे-आगे मुनि थे और पीछे-पीछे सीता नतशिर चली आरही थीं। उनके हाथ जुड़े हुए थे और नेत्रोंसे अश्रुधार प्रवाहित थी। वे मनही मन भगवान् श्रीरामका चिन्तनकर रही थीं। उस समय महर्षिके पीछे आती हुई सीता ऐसी जान पड़ती थीं मानों ब्रह्माजीके पीछे श्रुति चली आती हो। सीताको इसप्रकार आते देखकर सभामें धन्य-धन्यकी ध्वनि होने लगी। तदनन्तर उस सभामें बड़ा कोलाहल हुआ। क्योंकि सीता देवीको उस दीन दशामें देखकर लोगोंको बड़ा दुःख हुआ और वे मारे दुःखके विकल होगए। महर्षि वाल्मीकि जानकीको अपने साथ लिये उस भीड़ में प्रवेश कर श्रीराघवसे बोले—हे दशरथे ! जिस सीताको आपने अपवादके भयसे मेरे आश्रम के निकट छुड़वा दिया था, यही वह सुव्रता धर्मधारिणी सीता है। हे महाव्रत राम ! तुम लोकापवादसे भयभीत हो। अतएव सीता अपनी शुद्धताका विश्वास दिलाना चाहती है। तुम आज्ञा दो। हे दुर्धर्ष ! ये दोनों बालक सीताके ही हैं और एक साथही उत्पन्न हुए हैं। मैं यह बात तुमसे सत्य,सत्य कहता हूँ। हे राम ! मैं वरुणका दशवाँ पुत्र हूँ। मैंने आजतक कभी असत्यका स्मरण तक नहीं किया है। यह दोनों तुम्हारे पुत्र हैं। यदि यह मैथिली दुष्ट चरित्रा हो तो मुझे सहस्रों वर्षोंका अपने तपका फल न प्राप्त हो। हे राम ! मैंने सीताको शुद्ध जानकरही वनमें ग्रहण किया था, यह पतिव्रता; हैं, शुद्धाचरणवाली हैं और पापशून्या हैं। किन्तु तुम लोकापवादसे भयभीत हो। अतः यह तुमको विश्वास दिलायेंगी। हे राम ! मैंने दिव्य दृष्टिसे देख लिया है कि, जानकी शुद्ध हैं। तुमभी यह जानते हो। परन्तु लोकापवादके भयसे तुमने इनको त्याग दिया है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्डका छानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवाँ सर्ग

सीता-पाताल प्रवेश

महर्षि वाल्मीकिके इस वचनको सनकर और सभाके मध्यमें जानकीको

प्राञ्जलिभूत खड़ी देखकर श्रीराघव बोले—हे भगवन्! हे धर्मज्ञ! आपका कथन सर्वथाही सत्य है। हे ब्रह्मन्! आपके निर्दोषवचनोंपर मुझे पूर्ण विश्वास है। क्योंकि देवताओंके समक्ष वैदेहीने मुझे विश्वास करा दिया था और शपथ ली थी। तभी मैं इसे गृहमें ले आया था। किन्तु हे ब्रह्मन्! क्या करूँ? लोकापवाद बलवान् है। इसीसे मुझे इसे त्यागना पड़ा। आप मुझे इस अपराधके लिए क्षमा करें। मुझे यह भी ज्ञात है कि, यह दोनों पुत्र कुश और लव मेरे ही हैं और जुड़वाँ उत्पन्न हुए हैं; किन्तु इस जनसमूहमें यह सीता यदि शुद्धाचरणवाली सिद्ध हो जाय तो मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी। रामके इस अभिप्रायको जानकर ब्रह्मादि सब देवता उस जनसमूहमें सीता-शपथ देखनेके लिए आकर उपस्थित थे। द्वादश आदित्य, अष्टवसु, एकादश रुद्र, तेरहों बिश्वेदेव, उनचास पवन, साध्यगण आदि सब देवता, समस्त देवर्षि, नाग, गरुड़ और सिंह आदि सभी ब्रह्माजीको आगेकर हर्षित अन्तःकरणसे वहाँ सभामें उपस्थित हुए थे। तब देवताओं और ऋषियोंकी ओर दृष्टिकर श्रीराघव पुनः बोले—मुनिसत्तमो! मुझे तो महर्षि वाल्मीकिजीके कथनहीसे सीताके निष्पाप होनेका विश्वास हो गया है। किन्तु जगत्में सीता यदि अपनी शुद्धता प्रमाणित करे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हो। क्योंकि इतने लोग सीता-शपथ देखनेको सादर एकत्र हैं। फिर मङ्गलकारी वायु बहने लगा। सब मनुष्य और देवता आनन्दित हो गये। सब उस वायुको अद्भुत और अचिन्त्य वस्तुकी समान देखने लगे। उस समय मानों सतयुग छा गया। तब समस्त मनुष्यों, देवताओं और चतुर्दश भुवनोंके सब प्राणियोंको वहाँ एकत्र हुआ देखकर कषायवस्त्र धारिणी सीता उस जनसमूहमें नतसिर हो, नतनेत्र किए और हाथ जोड़े हुए बोलीं—'यदि मैंने श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर, अन्य किसी पुरुषका मनमें भी कभी चिन्तन किया हो, तो पृथ्वी फट जाय और उसमें समा जाऊँ। यदि मैंने मन, वाणी और कर्मसे रामकोही अपना पति मानाहो तो माधवी (पृथ्वी) देवी मुझे समाने के लिए विवर दें। यदि मेरा यह कथन कि, मैं रामको छोड़ अन्य किसीको नहीं मानती, सत्यहो तो हे पृथ्वी देवी! मुझे समानेके लिए स्थान दें। सीताजी यह कह ही रही

थीं कि, इतनेमें ही पृथ्वी फट गई और उसमेंसे एक दिव्य सिंहासन प्रादुर्भूत हुआ। उस सिंहासनको अमित विक्रमी और दिव्यरत्न विभूषित अनेक नाग अपने सिरोंपर रखे हुए थे। उस धरणी देवीने दोनों भुजाओंसे सीताको उठा कर और "तुम्हारा स्वागत है" कहते हुए, उस सिंहासनमें बिठा लिया। सिंहासनपर बैठ सीताको रसातलमें जाते देख, आकाशसे दिव्य पुष्प-वृष्टि सीताजीके ऊपर हुई। देवगण धन्य-धन्य कहकर सीताकी प्रशंसा करने और यह कहने लगे—देवि सीते! तुम धन्य हो, तुम्हारा शील धन्य है। यज्ञभूमि में उपस्थित ऋषि और नरव्याघ्रनृपति सभी अत्यन्त विस्मित हुए। आकाश और पृथ्वी स्थित स्थावर जंगम तथा पातालवासी भी आश्चर्यित हो हर्षनाद करने लगे। कितनेही तो सीताका ध्यानकर अचेत हो गये। सीताका पृथ्वी में समाजाना देखकर सारा संसार कुछ क्षणके लिए क्षुब्ध हो गया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्धका सत्तानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवाँ सर्ग

शोकित रामको ब्रह्माजीका समझाना तथा राम-वाल्मीकि-आश्रम-निवास

सीताको पातालमें प्रवेश करते देख रामके सानिध्यमें ही बानर और मुनिगण धन्य-धन्य करने लगे। उस समय दीनमना राम यज्ञ-दीक्षाके काष्ठसे लगे, नेत्रोंमें आँसू भरे तथा नतसिर किये बड़ेही दुःखित हो गये। वे बहुत देरतक रोते रहे। फिर क्रुद्ध हो शोक-समाविष्ट हो बोले—देखो, लक्ष्मीके समान रूपवती सीता मेरे नेत्रोंके समक्षसे पातालमें प्रवेशकर गयीं। ऐसा शोक तो मुझे कभी नहीं हुआ था, परन्तु जब मैं इसे समुद्रके पारसे, जहाँ इसका पता लगना कठिन था और कोई इसे देख नहीं पाया था, जाकर ले आया, तब मेरे लिए इसे पातालसे ले आना कौन कठिन बात है? देवि पृथ्वी! तू मेरी सीता मुझे लौटा दे, अन्यथा मुझे तेरे ऊपर क्रोध करना पड़ेगा! क्योंकि तूने मेरा अपमान किया है। तू तो मेरी सास लगती है। क्योंकि राजर्षि जनकने जोतते समय तेरेही भीतरसे सीताको पाया था। अतएव हे पृथ्वी देवि! या तो तू मुझे मेरी सीता लौटा दे अथवा मुझेभी अपने भीतर ले ले। क्योंकि सीता चाहे पातालमें रहे, या स्वर्गमें, मैं तो उसीके साथ रहूँगा। हे महीतले! सीताको ला द। मैं उसके लिए मत्त हो रहा हूँ। यदि

[तु]उसे न सीटा देगी तो मैं पर्वतों और वनों सहित तुझको ध्वस्त और नष्टकर
[दू]गा। मैं समस्त पृथ्वीको जलमें डुबो दूँगा, अथवा फिर जलही जल हो
[ज]ायगा। जब शोक-समन्वित रामने इस प्रकार कहा; तब देवताओं सहित
[ब्र]ह्माजी रघुनन्दनसे बोले—हे सुव्रत राम! तुम सन्ताप करने योग्य नहीं
[हो]। तुम यह समझो कि, तुम हो कौन? तुम अपने पूर्व स्वरूपको तो स्मरण
[क]रो? साध्वी सीता सर्वथा शुद्ध हैं। वे सर्वदा तप-परायण हैं। अब परम
[ध]ाममें तुम्हारा उनसे साक्षात्कार होगा। इसमें किंचित् सन्देह नहीं है। अब
[इ]स सभामें मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दो। तुम्हारे चरित्रसे
[स]म्बन्धित यह काव्य जिसे तुमने श्रवण किया है, सब काव्योंसे श्रेष्ठहै। इसमें
[त]ुम्हारे जीवनका विस्तृत वर्णन है तथा सीताके अन्तर्धान होनेके पश्चात्
[भ]विष्यकी घटनाओंका भी महर्षि वाल्मीकिने उत्तरकाण्डमें वर्णन किया है।
[हे] रघुनन्दन! यह आदिकाव्य है जिसकी तुम्हीं आधारशिला हो। तुम्हाराही
[ज]ीवन वृत्त इस काव्यमें रचित है। इस दिव्य काव्यको मैंने तुम्हारे यज्ञमें
[स]ुना जो अद्भुत और सत्य घटना मूलक एवं अज्ञाननाशक है। हे पुरुष-
[श]ार्दूल! अब तुम सावधान होकर इस महाकाव्य रामायणके अवशिष्ट भाग
[क]ोभी सुनो। हे महायशस्वी एवं महातेजस्वी राम! यह काव्यका उत्तर भाग है
[ज]िससे इसका नाम उत्तर होगा। इसे ऋषियों सहित आपही सुन सकते हैं।
[र]ामसे ऐसा कहकर देवताओं सहित त्रिभुवनेश्वर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले
[ग]ये। शिव ब्रह्मलोकवासी और तपस्वी ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार वहीं स्थित
[र]हे। क्योंकि इन्हें भी श्रीरामके भावी चरितको सुननेकी अभिलाषा थी। तब
[दे]वदेव ब्रह्माकी ऐसी वाणी सुनकर श्रीरामने परम तेजस्वी वाल्मीकिजीसे
[क]हा—हे भगवन्! ये समस्त ब्रह्मलोक-निवासी ऋषि, भावी चरित सुनना
[च]ाहते हैं। अतः मेरे सम्बन्धमें जो कुछ होनेवाला है, वह कल प्रातःकालसे
[स]ुना जाय। ऐसा निश्चयकर, और कुश, लवको साथ ले तथा समागत
[स]बको विदाकर श्रीरामचन्द्रजी महर्षि वाल्मीकिकी पर्णशालामें चले जहाँ
[स]ीताकीही चर्चा और चिन्तनमें उन्होंने वह रात्रि व्यतीत कर दी।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका अट्ठानबेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९८ ॥

निन्यानबेवाँ सर्ग

लव-कुश द्वारा रामचन्द्रजीका भविष्य-गान

प्रातःकाल होते ही नित्यकर्मसे निवृत्त हो और सम्पूर्ण महामुनियोंको बुलाकर रामने कुश और लवसे कहा—तुम निर्भय होकर भविष्य चरितका गान करो। फिरतो सब महात्माओं और ऋषिजनोंके स्थित होनेपर कुश एवं लवने उत्तरकाण्डमें वर्णित भविष्योत्तर भागको सुनाना आरम्भ किया। सत्यसम्पदा सीताके भूतलमें प्रविष्ट होजानेपर यज्ञकी समाप्ति होगई और सीताके वियोग से राम परम दुर्मना होगये। सीताके न रहनेसे रामको यह संसार सूना होगया और वे ऐसे शोकित हुए कि, उनका मन किसी प्रकार शान्त न हुआ। उन्होंने सब राजाओं, रीछों, वानरों, राक्षसों, ब्राह्मणों एवं अन्य जनसमूहको विविध प्रकारके दान मानसे सन्तुष्ट किया तथा राजीवलोचन राम उन सबको विदा-कर मनही मन सीताका स्मरण करते हुए अयोध्यामें आये। फिर उन्होंने किसी और स्त्रीको अपनी पत्नी नहीं बनाया। उन्होंने जितने यज्ञ किए उनमें पत्नीके स्थानमें सीताकी स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित की। इसप्रकार दस सहस्र वर्षोंतक प्रतिवर्ष अश्वमेध यज्ञ किए और प्रत्येक सहस्रवर्ष पश्चात्, अश्व-मेधसे दसगुना अधिक फलदायक बाजपेय यज्ञ किये, जिनमें उन्होंने बहुत सा सुवर्ण दान किया। तदनन्तर अग्निष्टोम, अतिरात्र, गोसव—ये यज्ञ तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से यज्ञ उन्होंने किये, जिनमें उन्होंने बहुतसा धन व्यय किया। इसप्रकार उन महात्माको राज्य करते हुए बहुत समय व्यतीत होगया। रीछ, वानर और राक्षस सर्वदा रामके शासनमें रहे। देश देशान्तरोंके सब राजाओंका उनपर अनुराग बढ़ताही रहा। राम राज्यमें समय पर जल वृष्टि होती रही। सदा सुभिक्ष बना रहता। सब दिशाएँ निर्मल रहतीं और नगरों तथा ग्रामोंमें सब मनुष्य हृष्ट-पुष्ट भरे रहते थे। किसीभी प्राणीकी असामयिक मृत्यु नहीं होती और न कोई व्याधिसे पीड़ित होता। सारांश यह कि, राम-राज्यमें कहीं किसी प्रकारका अनर्थ नहीं होता था। दीर्घ-कालके पश्चात् यशस्वी राम-माता कौशल्या, पुत्र पौत्रोंका आनन्द देखती हुई स्वर्ग सिधारीं। उनके पश्चात् यशस्विनी सुमित्रा और कैकेयीभी बहुत प्रकारसे धर्माचरण करती स्वर्गवासिनी हुईं। वहाँ स्वर्गमें पहुँच सब हर्षितहो

अपने पति महाराज दशरथसे जा मिलीं और स्वकृत धर्मकृत्योंका फल भोगने लगीं। इधर राम कितनेही सहस्र वर्षों तक सुखपूर्वक राज्य करते रहे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका निन्यानवेवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९९ ॥

सौवाँ सग

केकय-नरेशके प्रोहितका आगमन

कुछ दिनोंके पश्चात् कैकेय देशके राजा युधाजितने महात्मा श्रीरामके पास अपने गुरुको, जो गर्गकुलोत्पन्न महर्षि अङ्गिराके पुत्र एक महातेजस्वी ऋषि थे, भेजा। उनके साथ श्रीरामचन्द्रजीको प्रेमोपहारके रूपमें अर्पण करने के लिए उन्होंने दस हजार घोड़े, बहुत से कम्बल, विविध रत्न, चित्र-विचित्र वस्त्र, और सुन्दर आभूषण भी दिये। परम बुद्धिमान् श्रीरामने जब सुना कि, मामा अश्वपतिके भेजे हुए महर्षि गार्ग्य बहुमूल्य भेंट सामग्री लिए अयोध्या में पधार रहे हैं, तब उन्होंने भाइयोंके साथ एक कोस आगे बढ़कर उनकी अगवानीकी और जैसे इन्द्र बृहस्पतिकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार श्रीरामने महर्षि गार्ग्यका स्वागत सत्कार करके राजाका दिया हुआ वह धन स्वीकार किया। पश्चात् मामाका कुशल मङ्गल पूछकर वे मुनिको अयोध्यापुरीमें ले आये और उन्हें एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूछने लगे--भगवन्! मामाने मेरे लिए क्या सन्देश दिया है जिसे कहनेके लिए आपने यहाँ तक पधारने का कष्ट किया है? श्रीरामके बचन सुनकर महर्षिने कहा—'महाबाहो! आपके मामाने कहा है कि, सिन्धु नदीके उभय तट बड़ेही सुन्दर हैं। वहाँ फल-मूल बहुत होते हैं, जिनके कारण वहाँकी शोभा बहुत बढ़ी हुई है। शलूष नामा गन्धर्वके तीन करोड़ पुत्र, जो अत्यन्त बलवान् हैं, उन देशोंके रक्षक हैं। आप उन्हें विजयकर गन्धर्वोंकी नगरीको अपने अधिकारमें कर लें और उभय तटीय देशोंको अपना एक नगर बनावें। आपही ऐसा करनेमें समर्थ हैं, अन्योंका वहाँ प्रवेश नहीं हो सकता।' मामाका यह संदेश सुनकर श्रीराघव बहुत प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा' कहकर उन्होंने भरतजीकी ओर देखा। फिर दोनों हाथ जोड़कर हर्षित हो बोले—महर्षे! आपका मङ्गल हो। ये दोनों कुमार उस देशमें जायँगे। भरतके ये दोनों कुमार महाबली तथा और

पुस्कल जो अपने कर्ममें सावधान हैं वहाँ जाकर मामाकी रक्षामें निवास करेंगे। भरतजी इन दोनों कुमारोंके साथ बहुत-सी सेना लेकर वहाँ जायँगे और गन्धर्वोंको मारकर वहाँ से नगर बसायेंगे। फिर ये मेरे पास लौट आयेंगे। महर्षि से ऐसा कहकर श्रीरामने ससैन्य भरतको वहाँ जानेकी आज्ञा दी और दोनों कुमारोंका अभिषेक किया। एक उत्तम मुहूर्त्त देखकर गार्ग्य ऋषिको आगे किए अपने दोनों कुमारों सहित भरतजीने प्रस्थान किया। भरतकी सेना, इन्द्रकी सेनाके समानही उनके साथ अयोध्यासे चली जिसकी रक्षा भरतके दोनों कुमार करते जा रहे थे। गन्धर्व पुत्रोंके रक्तके प्यासे मांसभक्षी जीव उसके पीछे चले। अन्य बहुतसे दारुणजीव भी उनके पीछे चले। सिंह, व्याघ्र, बाराह तथा आकाशचारी सहस्रों पक्षी सेनाके आगे-आगे चले। फिर तो वह रोग-रहित सेना मार्गमें निवास करती हुई; हृष्टपुष्ट सैनिकों सहित डेढ़ मासमें केकयदेशमें जा पहुँची।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा षष्टम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका सौवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०० ॥

एकसौ पहला सर्ग

भरतजी द्वारा तक्षशिला और पुष्कलावतका निर्माण

भरतजीका आगमन सुन केकयराज युधाजित और गार्ग्य बहुत प्रसन्न हो उनसे मिल पैदल सेना सति गन्धर्वोंके नगरमें जा पहुँचे। तब भरतको युद्धके लिए उपस्थित सुन वे महाबली गन्धर्व युद्धेच्छुक हो गर्जन लगे। गन्धर्वोंसे सात दिन और सात राम भरतका रोमहर्षण युद्ध हुआ। परन्तु उभय पक्षोंमें किसीकी जय-पराजय नहीं हुई। रक्तकी नदियाँ बह चलीं। उन लोहूकी नदियोंमें शक्ति और धनुष तो मगररूप थे और मनुष्योंकी लोथें प्रवाहित हो रही थीं। उसी समय अत्यन्त क्रोधमें भरकर रामानुज भरतने महादारुण लोहास्त्रको गन्धर्वों पर चलाया जिस कालास्त्रसे सब गन्धर्व बँध गये। क्षणमात्रमें ही उस संवर्त्त नामक अस्त्रसे तीन करोड़ गन्धर्वोंको मार गिराया। ऐसा भयङ्कर युद्ध हुआ कि, जैसा देवताओंकी स्मृतिमें भी नहीं हुआ था। इसप्रकार गन्धर्वोंका नाशकर केकयी-पुत्र भरतने वहाँके दो सुन्दर धन-धान्यपूर्ण नगर बसाए, जिनमेंसे एकका नाम तक्षशिला और दूसरेका पुष्क-

लावत् रखा। उन्होंने तक्षशिला में तक्षक को और पुष्कलावत्में पुष्कल राजा बनाथा। इस प्रकार उन दोनों नगरोंमें अपने पुत्रोंको राजसिंहासन पर बैठाकर भरतजी पाँच वर्षोंतक वहाँ रहे। पश्चात् अयोध्या चले आये। यह सुन श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौ पहला सर्ग समाप्त ॥ १०१ ॥

एकसौ दूसरा सर्ग

लक्ष्मण-पुत्रोंके राज्यार्थ भरत और लक्ष्मणकी प्रशंसा

भरतजीसे सब बातें सुन भ्राताओं सहित श्रीराघव बहुत प्रसन्न हुए और लक्ष्मणसे बोले—लक्ष्मण ! तुम्हारे ये जो अङ्गद और चित्रकेतु दो पुत्र हैं, इतने पराक्रमो हैं कि, ये राज्य कर सकते हैं। मेरी इच्छा है कि, इनको भी किसी देशका राज्य दिया जाय, और वह राज्य ऐसा हो जहाँ ये सरलतासे सुखशान्ति पूर्वक निवास कर सकें और हमलोग किसी प्रकार अपराधी न कहे जायँ। इसपर भरतजी बोले कि–कारुथ देश बड़ा रमणीय और सब प्रकार निरापद है। वहाँ का राज्य तो अङ्गदको और चन्द्रकान्त नगरका राज्य चन्द्रकेतुको दिया जाय। फिर तो श्रीरामचन्द्रजीने उन देशोंको अपने अधीनकर उसे लक्ष्मणके दोनों पुत्रोंको दे दिया। अङ्गदके साथ लक्ष्मण और चन्द्रकेतु के साथ भरत वहाँके लिए प्रस्थित हुए। वहाँ उनका प्रबन्ध कर दोनों भाई भरत और लक्ष्मण एक वर्षके पश्चात् श्रीरामके पास लौट आये, यहाँ दोनों महात्मा भरत और लक्ष्मण सर्वदा रामकी सेवामें निवास करने लगे। स्नेह पूर्वक निवास करनेसे अधिक समयका व्यतीत होना कुछ भी ज्ञात न हुआ। दस सहस्र वर्ष तक रामजी राज्य करते रहे। अयोध्या पुरी धन-धान्यसे पूर्ण और सर्वथाही सन्तुष्ट थी। उसमें तीनों भाई प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो सर्वदा शोभायमान हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एक सौ दूसरा सर्ग समाप्त ॥ १०२ ॥

एकसौ तीसरा सर्ग

श्रीरामके पास कारुप ऋषिका आगमन

इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करते हुए कुछ और समय व्यतीत होने

पुरुष काल तपस्वीका रूप धारणकर राजद्वारपर आया। उसने लक्ष्मणसे कहा—महाराजको मेरे आगमनकी सूचना देकर कहो कि, अमित पराक्रमी महर्षि अतिबलका दूत किसी कार्यवश आपसे मिलने आया है। लक्ष्मणने रामसे शीघ्रही उन तपस्वीके आगमनकी सूचना दी। रामने कहा—उन्हें शीघ्र यहाँ बुलाओ। लक्ष्मण उन तेजस्वी ऋषिको श्रीरामके पास लिवा ले गए। रामके निकट पहुँच उस तेजस्वीने कोमलवाणीसे कहा—महाराजकी जय हो, यशोवर्द्धन हो। फिरतो रामने उस महातेजस्वी ऋषिको अर्घ्यपाद्य दे आसनपर बैठाकर कुशल-प्रश्न किया और कहा कि—हे यतिमान्! आप भले आए। अब उनका संदेश कहिए, जिन्होंने आपको दूत बनाकर यहाँ भेजा है। राजसिंह रामके ऐसा कहनेपर मुनिने उत्तरमें कहा—राजन्! मैं अपना सन्देश आपसे एकान्तमें कहूँगा, जब हम और आप दोही व्यक्ति हों। क्योंकि देवताओंका हित तभी होता है, जब उनकी रहस्यमयी बात गुप्त रखी जावे। अतएव हम दोनोंकी वार्त्ता समय यदि तीसरा व्यक्ति सुने या देखे तो वह तुम्हारे हाथसे मारा जाय। श्रीरामने इसकी प्रतिज्ञा की। फिर लक्ष्मणसे कहा—सौमित्रे! तुम जाकर द्वारपर खड़े रहो और वहाँसे द्वारपालको भी हटा दो। जब-तक हम दोनों वार्तालाप करते रहें, तब-तक कोई हमें देखने न आवे। यदि कोई भी ऐसा करेगा तो वह मेरे हाथों बध किया जायगा। लक्ष्मणको यह आदेश देकर काकुत्स्थने कहा कि, अब आप कहिए, क्या कहना चाहते हैं। उसे मैं शीघ्र सुनना चाहता हूँ।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौ तीसरा सर्ग समाप्त॥ १०३॥

एकसौ चौथा सर्ग

काल और रामकी वार्त्ता

श्रीरामका यह कथन सुनकर, ऋषि बोले—हे महापराक्रमी! सुनिए। मैं वह कारण बतलाता हूँ, जिसके लिए मैं यहाँ आया हूँ। हे महाबली! मुझको पितामह ब्रह्माजीने भेजा है। हे परपुञ्जय! पूर्वकालमें जब सृष्टिकी उत्पत्ति हुई थी, तब आपही की मायासे मेरी भी उत्पत्ति हुई। अतएव मैं आपहीका पुत्र हूँ। हे वीर! मेरा नाम काल है और मैं सबका संहर्त्ता हूँ।

लोकपति प्रभु ब्रह्माने कहा है कि, हे सौम्य ! लोकरक्षार्थ तुमने अपनी अवधि बाँधी थी; वह अब पूर्ण हो गयी। आपहीने पूर्वकालमें माया द्वारा लोकका संहारकर महासागरमें शयन किया था। तब मैं उत्पन्न किया गया। उसी समय आपहीने जलचारी विशालकाय अनन्तनागको उत्पन्न किया और आपहीने महाबली दो और जीवोंको उत्पन्न किया। मधु और कैटभको जिनकी अस्थियोंसे पृथ्वी आच्छादित हो गई और जिनकी मेदासे तर होकर यह पृथ्वी मेदिनी कहलाई, कैटभके मारनेसे जो उसकी मज्जा जलमें मिली तो जलके गाढ़ा होने और उसके सूखनेपर यह पृथ्वी बनी और कैटभके बधके पश्चात् उसकी अस्थियोंके पर्वत हो गए, जिनसे यह पृथ्वी अमृत है। इसप्रकार पर्वतों सहित पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। फिर आपने अपनी नाभि-कमल से सूर्यके समान एक कमल उत्पन्न किया जिससे मुझे उत्पन्नकर मुझसे प्रजाकी उत्पत्ति करायी। तबसे मैं आपकी उपासनाकर रहा हूँ। फिर आपने उस सनातन भावको त्यागकर जगद्रक्षार्थ विष्णुरूप धारणकर लिया और अदितिके गर्भमें बलवान् पुत्रके रूपमें उत्पन्न होकर (उपेन्द्र नामसे) आप अपने भ्राताओंके आनन्दबर्धक हो उनकी सहायता कर रहे हैं। फिर मनुष्य रूप धारणकर प्रजाको दुःखी देख आपने रावणका बध भी कर दिया। आपहीने स्वयं ग्यारह हजार वष तक मानवलोकमें रहनेकी अवधि निश्चित की थी। स्वयं संकल्पसे आप महाराज दशरथके पुत्र भी हुये। अब वह आपकी निर्दिष्ट अवधि व्यतीत हो गई। आपका मंगल हो। यदि अभी और प्रजाका पालन करनेकी इच्छा हो तो आप यहाँ रहें। बस, ब्रह्माजीने यही कहा है। यदि आप देवलोकका शासन करना चाहते हैं तो चलिए अपने विष्णुरूपसे सब देवताओंको सनाथ और निर्भय कीजिए। ब्रह्माजीके इस सन्देशको सुनकर श्रीराघवने हँसकर सर्व संहारकारी कालसे कहा—देवदेव ब्रह्माके इस वचनसे और तुम्हारे आगमनसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। त्रिलोकीका कार्य सिद्ध करनेके लिए ही मेरा यह अवतार हुआ था। तुम्हारा मंगल हो। मैं जहाँसे आया था, वहीं चला जाऊँगा। मैं भी यह विचार ही करता था कि, अब चलना चाहिए, तब-तक तुम आ गए। अब कुछ और सोचना नहीं है। ब्रह्माजीने जो कहा है, वह मैं शीघ्र करूँगा।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौ चौथा सर्ग समाप्त ॥ १०४॥

एकसौ पाँचवाँ सर्ग

श्रीरामके पास दुर्वासाका आगमन

श्रीरामचन्द्रजी और कालकी-वार्ता हो रही थी कि, उसीसमय श्रीरामजी से मिलनेके लिए महर्षि दुर्वासा राजद्वारपर पधारे। द्वारपर तो लक्ष्मण स्थित ही थे। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा--मुझे रामका शीघ्र दर्शन कराओ, अन्यथा मेरा कार्य नष्ट हुआ जा रहा है। मुनिको प्रणामकर लक्ष्मणने कहा--आपका क्या कार्य है? मुझे बतलाइये। मैं उसे अभी तत्काल ही कर दूँगा। श्रीरामचन्द्रजी इस समय किसी कार्यमें व्यग्र हैं। अतएव आप एक मुहूर्त्तभर ठहर जाइये। यह सुनते ही ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासा, क्रोधमें भरकर नेत्रोंसे भस्म करते हुए से लक्ष्मणसे बोले--'लक्ष्मण! तुम तत्क्षणही मेरे आगमनकी सूचना श्रीरामचन्द्रजीको दो, अन्यथा मैं तुम्हें तुम्हारे देश, नगर और रामको शाप दे दूँगा। इतना ही नहीं, किन्तु मैं भरतको और तुम्हारी सन्तानोंको भी शाप देता हूँ। क्योंकि अब मैं अपने क्रोधको अपने हृदयमें रोक नहीं सकता।' दुर्वासाके इन भयंकर वचनोंको सुन, लक्ष्मणजीने अपने मनमें जो परिणामको विचारा तो इन्होंने सोचा 'यदि मैं अभी श्रीराघवके पास चला जाता हूँ तो मैं ही मारा जाता हूँ। नहीं तो सबको ऋषिके शापसे नष्ट होना पड़ेगा। अतएव मेरा ही मारा जाना ठीक है, न कि सबका।' यह निश्चयकर, लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके पास चले गये और दुर्वासाके आगमनकी उनको सूचना दी। लक्ष्मणके वचन सुनते ही श्रीरामने कालको विदा कर दिया और तत्क्षण द्वारपर आकर वे अत्रि पुत्र दुर्वासासे मिले। तेजस्वी राम दुर्वासाजीको प्रणाम कर हाथ जोड़-कर बोले---कहिए, क्या आज्ञा है? दुर्वासाजीने कहा---धमवत्सल! मने एक हजार वर्षों तक भोजन न करनेका व्रत धारण किया था। वह आज पूरा हो गया। अतः तुम्हारे यहाँ इस समय जो कुछ तैयार हो, वह मुझे भोजन कराओ। यह सुन राघवेन्द्र रामने अत्यंत हर्षित हो मुनिराजको अमृतके समान भोजन कराया। मुनि श्रेष्ठ दुर्वासाजी भोजनकर रामकी

प्रशंसा करते हुए स्व-आश्रमको पधारे। ऋषि दुर्वासाके चले जा र, क के साथ हुई अपनी विकट प्रतिज्ञाका स्मरणकर श्रीराम मनमें बड़े दु हुये और नीचेको मुखकर लिये। उन्होंने कालकी बातपर निश्चयकर लिया कि, बस अब हो गया। अब मेरी समाप्तिका समय आ गया। राम यही निश्चयकर मौन हो गये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का एकसौ पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०५ ॥

एकसौ छठवाँ सर्ग

श्रीलक्ष्मणका स्वर्ग जाना

श्रीरामजीको (नीचा मुख किए) और खिन्न हुआ देखकर लक्ष्मण हर्षितहो उनसे बोले—हे महाबाहो! आप मेरे लिए दुःखी न हों। क्योंकि कालकी गति ऐसी ही है। होनीकी पूर्वही रचना हो चुकती है। आप निःसंकोच हो मुझे मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कीजिये। प्रतिज्ञा त्यागने वाले पुरुष नरकगामी होते हैं। यदि आपको मुझपर प्रीति है तो आप मुझे मार कर निसंन्देह धर्म-रक्षण कीजिये। लक्ष्मणके इन वचनों सुनकर श्रीरामचन्द्र जीने व्याकुल हो, अपने कुल पुरोहित और मंत्रियोंको बुलाकर तपस्वीके साथकी हुई अपनी प्रतिज्ञा और लक्ष्मणका दुर्वासाके वचनसे अपने निकट चले आनेकी सब बात कह सुनायी। यह सुन सब मंत्री सन्न हो गये। तब महातपस्वी वसिष्ठजीने कहा—मुझे इस रोमहर्षण नाशकारी वृतान्तका पहलेही ज्ञान हो चुका है, लक्ष्मणसे अब तुम्हारा वियोग निश्चित है। हे राजन्! काल बलवान् है। तुम अपनी प्रतिज्ञाको न त्यागकर, लक्ष्मणजीका त्याग करो। क्योंकि प्रतिज्ञा त्यागनेसे धर्मका नाश होता है और धर्मके नाश होने से तीनों लोक और चराचर सहित सब देवता तथा ऋषि नष्ट होते हैं। इसमें संशय नहीं। हे राम! त्रैलोक्यके पालनार्थ तुम लक्ष्मणको त्याग जगतको स्वस्थ करो।' तब महामुनिके इन वचनोंको सुन, उन सबके समक्षही राम लक्ष्मणसे बोले—सौमित्रे! धर्मकी अबाधताके लिए मैं तुमको त्यागता हूँ। साधुजनोंके लिए त्याग और बध समानही है। रामके ये वचन सुन लक्ष्मण व्याकुल हो नेत्रोंमें आँसू भरे सभाको त्यागकर शीघ्रही बाहर निकल आए और

पुरः ... ... भी न जाकर तत्क्षण सीधे सरयू नदीके तटपर जा पहुँचे और आ... कर हाथ जोड़ समस्त इन्द्रियोंका निग्रहकर श्वास रोक लिए। लक्ष्मण को ...सा करते देख इन्द्र, अप्सराएँ, देवता और ब्रह्मर्षि उनपर पुष्प-वृष्टि करने लगे और किसी मनुष्यको दिखलाई न दे—इसप्रकार स्वयं इन्द्र वहाँ आए और महाबलवान् लक्ष्मणको सशरीर उठाकर स्वर्गको चले गये। वहाँ देवताओंने विष्णुके चतुर्थ भाग लक्ष्मणकी प्रशंसकर उनका अभिवादन किया।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौ छठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०६ ॥

एकसौ सातवाँ सर्ग

राम-शरीर-त्यागकी रचना

अब लक्ष्मणके त्यागसे श्रीरामचन्द्रजी और ही दुःखी हो गये। उन्होंने समस्त पुरवासियोंको बुलाकर कहा कि—देखो, अब मैं अयोध्याके राजसिंहासनपर भरतको बिठाकर स्वयं वनको जाऊँगा। अतएव अभिषेककी सब सामग्री शीघ्र एकत्रित करो, विलम्ब न हो। क्योंकि मैं आजही लक्ष्मणके पीछे जाना चाहता हूँ। श्रीरामके ये वचन सुनतेही सभामें उपस्थित सुमंत्रादि समस्तजन अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर अचेत होनेपर भरतजी राज्य की निन्दा करते हुए रामसे बोले—राजन्! मैं अपने सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि, आपके बिना यह राज्य तो क्या, स्वर्गलोक भी मैं नहीं चाहता। हे वीर! आप अपने दोनों पुत्रों कुश और लवका अभिषेककर दीजिए। कौशल देशोंका राज्य कुशको और उत्तर कोशल देशका राजा लवको बनाइए। शत्रुघ्नके पासभी शीघ्रतासे दूत जावे और उन्हें लिवालावे। तब सबको दुःखी देख वसिष्ठजी बोले—वत्स राम! अपनी इस प्रजाकी ओर तो देखो जो मारे शोकके पृथ्वीपर लोट रही है। इनके मनोरथानुसार कार्य कीजिए। इनकी इच्छाके विरुद्ध नहीं। फिर रामने सबको उठाया और कहा-बोलो, मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ? सबने एक स्वरसे कहा—जहाँ राम जायँगे वहीं उनके पीछे हम सब लोग चलेंगे। यदि आपकी हमपर कुछ भी प्रीति है तो पुत्र स्त्री सहित हम सबको भी अपने साथ चलनेकी अनुमति दीजिए। चाहे आप तपोवनमें जायँ या कहीं भी। हम सब भी वहीं चलेंगे। बस,

इसीमें हमलोग प्रसन्न हैं। तब पुरवासियोंमें अपनी ऐसी दृढ़ भ[illegible]
और अपना कर्तव्य विचारकर श्रीरामजीने उन्हें अपने साथ चलनेकी [illegible]
दी। फिर रामने कोशल देशमें कुशको और उत्तर कोशलमें लवको अ[illegible]
षिक्त करदिया। फिर उन्हें गोदमें बिठाकर, उनका सिर सूँघा और सहस्र [illegible]
दश सहस्र हाथी, एक लाख घोड़े तथा अनेक धन रत्न पृथक्-पृथक् अ[illegible]
दोनों पुत्रोंको दिये और उन देशोंमें भेज दिया। इस प्रकार उन दोनों वीरोंक[illegible]
राज्याभिषेककर महात्मा रामने शत्रुघ्नको बुलानेके लिए दूत भेजे।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्ध का एक सौ सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०७ ॥

एकसौ आठवाँ सर्ग

दूतोंका मधुपुरीमें जाकर शत्रुघ्नको सन्देश देना

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे शीघ्रगामी दूत द्रुतगतिसे मधुपुरीकी ओर प्रस्थानित हुये। तीन दिन रात निरन्तर चलकर वे मधुपुरी पहुँचे और शत्रुघ्नजीको समस्त वृतान्त सुनाया। फिर शत्रुघ्नजीको शीघ्र चलनेके लिए कहा। उस घोर कुलक्षयकारी वृतान्तको सुनकर शत्रुघ्न अवाक् हो गये। तदनन्तर उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंका राज्याभिषेक किया। सुबाहुको मथुरापुरीका और शत्रुघातीको विदेश नगरका राजा बनाया और सब सेना और धनका दो भागकर दोनों पुत्रोंको बाँट दिया। फिर स्वयं एक रथमें बैठ अकेले ही अयोध्याको प्रस्थित हुये। अयोध्यामें पहुँचकर शत्रुघ्नने अग्निदेवकी समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रके दर्शन किये। उस समय राम एक सूक्ष्म पीताम्बर धारण किये मुनियोंके साथ विराजमान थे। शत्रुघ्नने आते ही नम्र हो प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा---'हे राम! मैं अपने दोनों पुत्रोंको राज्य देकर आपके साथ चलनेको सन्नद्ध होकर आया हूँ। अतएव अब इसके लिए कोई अन्य आज्ञा न दीजिएगा। मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया चाहता; बल्कि सहगमन ही चाहता हूँ।' शत्रुघ्नका यह दृढ़ निश्चय जानकर रामने उनसे कहा--अच्छी बात है, तुम जैसा चाहते हो वैसा ही होगा। श्रीराम ऐसा कह ही रहे थे कि, इतनेमें असंख्य यथेच्छरूपधारी वानर, रीछ और राक्षस अयोध्या आ पहुँचे। सुग्रीवके नेतृत्वमें वे सब वानर स्वर्ग-गमनके लिए प्रस्तुत राम-दर्शनार्थ आये थे। उन्होंने भी साथ

इच्छा प्रकटकी। सुग्रीवने कहा—'मैं अंगदको राज्य देकर आपके भजनेको आया हूँ।' सुग्रीवके ये वचन सुन महायशस्वी रामने मुसकाकर कहा—बहुत अच्छा। तदनन्तर वे राक्षसेन्द्र विभीषणसे बोले कि, हे विभीषण! हे महाबली! जबतक प्रजा रहे, तब-तक तुम लंकापुरीमें राज्य करो। जब-तक चन्द्र-सूर्य और यह पृथ्वी विद्यमान रहे और जब-तक यह मेरी कथा लोकमें प्रचलित रहे, तब-तकके लिए तुम्हारा राज्य स्थिर हो। हे मित्र! मैं तुमको मित्रभावसे यही आज्ञा देता हूँ। तुम मेरी आज्ञा स्वीकार कर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करो और मुझे इसका कुछ भी उत्तर न दो। हे महाबली, राक्षसेन्द्र! तुमसे एक बात यह भी कहता हूँ कि, इस इक्ष्वाकुकुलके इष्टदेव श्रीजगन्नाथजी हैं। तुम इनकी आराधना करते हो! क्योंकि वे इन्द्रादि देवताओंके पूज्य और सदा आराध्य हैं।' यह सुनकर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीकी बात मान ली। विभीषणसे ऐसा कहकर काकुत्स्थ रामने हनुमान्‌जीसे कहा—हे हनुमान्! तुम तो अपने जीवनके लिए पूर्वही में निश्चयकर चुके हो, वह देखना। अपनी प्रतिज्ञाको व्यर्थ मत करना। हे वानरराज! जब-तक इसलोकमें मेरी कथा प्रचलित रहे, तब-तक तुम हर्षित हो मृत्युलोकमें वास करो। जब श्रीरामने ऐसा कहा, तब हर्षित हो हनुमान्‌ने उसे स्वीकार किया। फिर श्रीरामचन्द्रजीने मैन्द और द्विविदसे भी कहा कि, तुम कलियुग प्रवृत्त होने तक जीवित रहो। इसप्रकार महावीर हनुमान् विभीषण, ब्रह्माके पुत्र वृद्ध जाम्बवान, मैन्द द्विविद इन पाँचोंको रामने यही आज्ञा दी और अन्य सब वानरों और भालुओंसे कहा कि, तुम सब मेरे साथ चलो।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एक सौ आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०८ ॥

एकसौ नवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजीका सबको साथ लेकर स्वर्गारोहण-प्रस्थान

इसप्रकार वह रात्रि व्यतीतकर प्रातःकाल होनेपर विशाल वक्षःस्थल यशस्वी, कमलपत्राक्ष राम अपने पुरोहित वशिष्ठजी बोले—हे महाराज! सब ब्राह्मणों द्वारा प्रज्वलित अग्नि होत्र और वाजपेयका अत्यंत शोभित छत्र धारणकर महापथकी शोभा वर्धन करते हुए आप आगे-आगे चलें।

फिर तो वशिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीके महाप्रस्थानोचित संविधान किये और पीताम्बरधारी राम वैदिक मंत्रोंका उच्चारण करते हुए कुशा लिए सरयू नदीकी ओर अग्रसर हुये। वे चलते समय वेदमंत्रोंके अतिरिक्त न तो कुछ और बोलते थे और न किसी प्रकारकी कोई चेष्टाही करते हुए नंगे पैर प्रकाशमान सूर्य को न्याई और अपने गृहसे निकले थे। उस समय उनके दक्षिण भागमें साक्षात् लक्ष्मी और बाम भागमें भूदेवी तथा उनके समक्ष संहार शक्ति चल रही थी। साथही उनके उत्तम बाण, धनुष और सब आयुधभी चल रहे थे। ब्रह्माका रूप धारणकर तथा अन्य बड़े-बड़े ऋषि तथा समस्त ब्राह्मणोंकी मण्डली,थी। वे सबस्वगका द्वार खुला देखकर श्रीरामजीके साथ चले जाते थे। उनके पीछे रनवासकी सब स्त्रियाँ, वृद्ध, बालक, नपुंसक; दासियाँ सेवकों सहित चली जाती थीं। अपने-अपने रनवासोंके साथ भरत और शत्रुघ्नभी अग्निहोत्र सहित रामके साथ यात्राकर रहे थे। महात्मा ब्राह्मण अपने-अपने अग्निहोत्र सहित तथा स्त्रियों और पुत्रों सहित महाद्युतिमान श्रीरामचन्द्रजीके पृष्ठ भागमें चले जा रहे थे। सब मंत्री तथा सेवकगण, पशु, बालक कुटुम्बियों सहित परमानन्द सहित चले। इसप्रकार समस्त प्रजाने उनका साथ दिया। सब उनके पीछे चले। सब बानर किलकारियाँ भरते रामके पीछे-पीछे दौड़ते हुए चले। उस समुदायमें कोईभी दुःखी, उदास और लज्जित न था; प्रत्युत सब प्रसन्न वदन दीख पड़ते थे। यह एक विलक्षणता थी। इस प्रकार सभी रीछ, वानर, राक्षस, पुरवासी मनुष्य बड़े अनुरागसे सावधानता पूर्वक श्रीरामके पीछे चले। यही नहीं; किन्तु अयोध्याकी सब अदृश्य आत्माएँ भी स्वर्ग-प्राप्ति की कामना से श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे प्रस्थित हुईं। स्थावर, जङ्गम सभी उनके पीछे लग गये। उस समय अयोध्यामें जितनेभी श्वास लेनेवाले कीट पतंग और तिर्यक्योनिवाले जीव थे, वे सभी श्रीरामचन्द्रजीके साथ प्रस्थित हुए।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौनौवाँ सर्ग समाप्त ॥ १०९ ॥

एकसौ दशवाँ सर्ग

रामकी परमधाम-यात्रा

इसप्रकार चलते-चलते जब वे अयोध्यासे लगभग दो कोसकी दूरीपर जा

...वित्र प्रसारसे पश्चिमकी ओर प्रवाहित होनेवाली सरयू नदीको ...नन्दनने देखा जो अपने भँवर-तरंगोंसे शोभित हो रही थी। उनके ...चतेही लोकपितामह ब्रह्माजी सब देवताओं और महात्मा ऋषियोंको ... लिए हुए सौ करोड़ विमानों सहित रामको स्वर्ग ले जानेके लिए आ पहुँचे। आकाशमण्डल दिव्य तेजसे दमक रहा था। सुगन्धित सुखदायी वायु प्रवाहित होने लगा। देवगण पुष्प-वृष्टि करने लगे। सैकड़ों दुन्दुभियाँ बजाते हुए, गन्धर्वों और अप्सराओंसे वह स्थान पूर्ण हो गया। फिर तो श्रीरामचन्द्रजी पैदल ही सरयू नदीमें प्रवेश किए। तब आकाशसे ब्रह्माजी बोले—हे विष्णो। हे राघव! आइये। आपका मंगल हो। आप हमलोगोंके सौभाग्य ही से स्वर्गलोकगामी हो रहे हैं। देव समान कान्तिमान अपने भ्राताओं सहित आप अपने प्रिय लोकमें पधारिये। हे महाबाहो! जिसशरीर में आप प्रवेश करना चाहते हों; उसमें प्रवेश करें। आप चाहे विष्णुके शरीर में अथवा सनातन निजाकाश शरीरमें प्रवेश करें। हे देव! आप ही सब लोकोंकी गति हैं। आपको कोई नहीं जानता। हे भगवन्! आपकी यह विशालनेत्री ज्ञानशक्तिरूपिणी माया जानकी ही आपको जानती हैं। आप अचिन्त्य महाभूत, अक्षय्य और अजर हैं। हे तेजस्वी! आप जिस शरीरमें चाहे उसमें स्वयं प्रवेश करें। फिर तो ब्रह्माकी इस स्तुतिको सुनकर महामतिमान् राम वैष्णवी तेजमें प्रविष्ट हो गये। विष्णुमय हो गये। सब देवता, साध्य, मरुद्गण, इन्द्र और अग्निदेव उनकी पूजा करने लगे। अन्य ब्रह्मर्षि, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, दानव और राक्षस सभी हर्षित हुये। सभीके मनोरथ पूर्ण हुये। सब साधु-साधु कर उनकी स्तुति करने लगे। समस्त स्वर्ग पवित्र हो गया। तब महातेजस्वी विष्णुजी ब्रह्माजीसे बोले—हे सुव्रत! ये जितने भी जीव मेरे साथ आए हैं, इन सबको स्वर्गमें रहनेके लिए आप उत्तम स्थान बतला दीजिए। ये, जो मेरे स्नेहके वश मेरे साथ चले आये हैं, ये सभी मेरे यशस्वी भक्त हैं। मेरे साथही इन सबने प्रमसे शरीर त्याग दिए हैं। अतः इनपर कृपा करना मेरा कर्तव्य है। ब्रह्माजीने उन सबको सन्तानक लोकमें भेज दिया। वानर और रीछ जिन-जिन देवताओंके अंशोंसे उत्पन्न हुए थे, वे उन्हीं-उन्हीं देवताओंमें लीन हो गये। सुग्रीव सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर गये।

अन्य सब जो-जो गोप्तारघाट पर आये थे, वे सब आनन्दाश्रु
सरयूजलमें गोता लगाकर स-शरीर विमानपर-जा बैठे। इसी प्रक
आदि प्राणियोंने भी सरयूके जलमें स्नानकर दिव्य एवं तेजस्व
धारण किया और सबके सब दिव्य लोकको प्राप्त हुये। स्थावर जङ्गम
प्राणियोंने सरयूजलमें स्नानकर-स्वर्गकी प्राप्ति की। सब देवताओंके स
शोभित्त हुये। इस प्रकार लोकगुरु ब्रह्माजी सब जीवोंको उत्तम लोक
स्थान दे, हर्षित होते हुए देवताओं सहित स्वर्गगामी हुये।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौ दशवाँ सर्ग समाप्त ॥११०॥

एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग

रामायण-माहात्म्य

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत यह इतनाही उत्तरकाण्डयुक्त रामायण नामसे प्रसिद्ध वह आख्यान है, जिसकी ब्रह्माजीने प्रशंसाकी है। इसप्रकार भगवान् विष्णु पूर्ववत् स्वर्गमें जा विराजे। तभीसे देवता गन्धर्व सिद्ध और महर्षि इस रामायणकाव्य को नित्य हर्षित हो सुनने लगे। यह उपाख्यान आयु-सौभाग्य-वर्द्धक और पाप-नाशक है। यह काव्य वेदके समान है। पण्डितोंको श्राद्ध-कालमें इसे सुनना चाहिये। इसके पढ़ने और सुननेसे अपुत्री पुत्रवान और निर्धनीको धनकी प्राप्ति होती है। जो इस काव्यके किसी एक श्लोकका एक पाद-भी पढ़ता है, वह समस्त पापोंसे छूट जाता है। अनेक प्रकारका पाप करने वालाभी इस काव्यका एक श्लोक पढ़नेसे सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस काव्यके सुनानेवालेको वस्त्र, गौ और सुवर्ण देना चाहिये। क्योंकि उसकी सन्तुष्टिसे सब देवता सन्तुष्ट होते हैं। यह उपाख्यान आयुवर्द्धक और पुत्र-पौत्रदायक तथा स्वर्ग-प्रदायक है। जो प्रातः श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणको या मध्याह्नके पीछे सायंकालके समय सावधानीसे पढ़ता है वह कभी दुःख नहीं पाता। अयोध्या सारी बहुत दिनों तक सूखी पड़ी रहेगी। फिर उसे ऋषभ नामक राजा बसायेंगे। भविष्यांतर सहित यह आयु-वर्द्धक आख्यान प्रचेता के पुत्र श्रीवाल्मीकिजीका रचित है, जिसे ब्रह्माजीने स्वीकृति दी है।

इति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-भाषा सप्तम् उत्तरकाण्ड उत्तरार्द्धका एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १११ ॥

॥ यहाँ श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण समाप्त हुआ ॥

रामहृदयम् ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीमहादेव उवाच

[illegible] स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् । शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥१॥ [illegible]स्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् । जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ॥२॥ [illegible]ख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः । बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ॥३॥ [illegible]सस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः । साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ॥४॥ साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः । आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ॥५॥ अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पितः । अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते ॥६॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा । ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः ॥७॥ तदाविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः । एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ॥८॥ मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् । न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥९॥ इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात्कथितं तवानघ । मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥ १० ॥

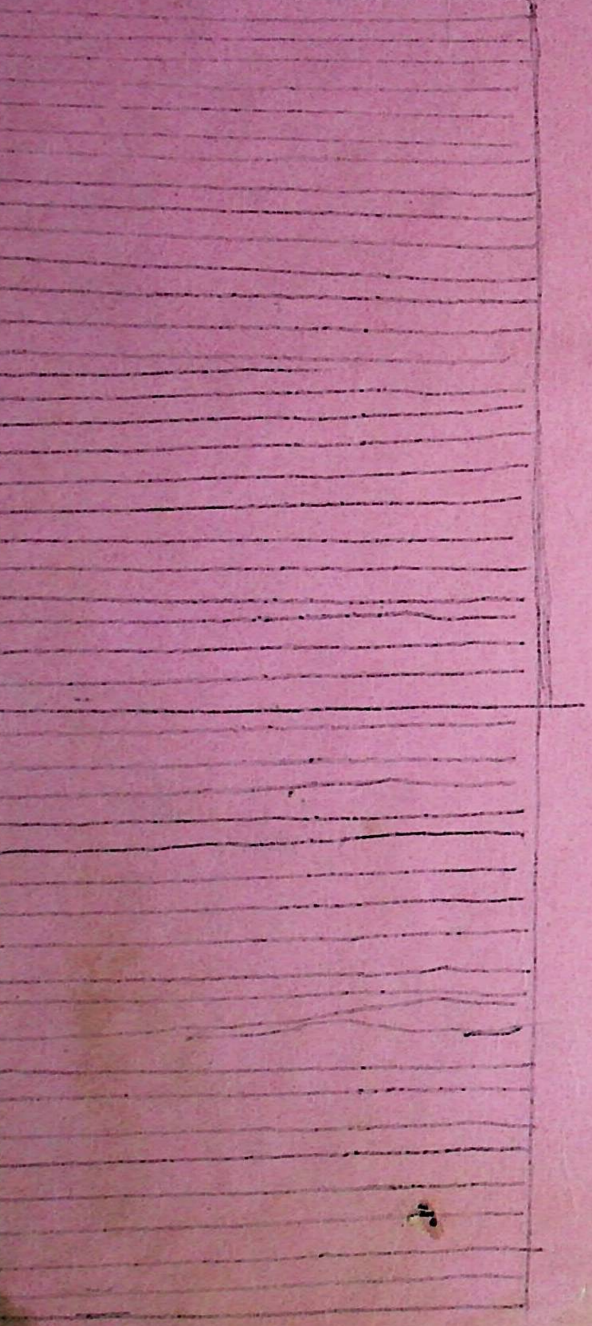
॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे बालकाण्डे श्रीरामहृदयं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्मदेवकृत रामस्तुतिः ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ ब्रह्मोवाच ।

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् । हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ॥ १ ॥ प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् । पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥२॥ मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् । योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥३॥ भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यैर्भोगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् । नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥ ४ ॥ त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी । भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी योगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी ॥५॥ त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् । भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥ ६ ॥ को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं मानासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम् । वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥ ७ ॥ नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् । मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥ ८ ॥ श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः । रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥ ९ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे ब्रह्मदेवकृतं रामस्तोत्रम् ।



To Sink
Ether
Freezing Mixture

